वैदिक कोश

पं० चन्द्रशेखर उपाध्याय
एवं
श्री अनिल कुमार उपाध्याय
I.A.S.

नाग प्रकाशक

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या .... आगत संख्या 135865

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

20

वैदिक कोश

भाग ३

पं० चन्द्रशेखर उपाध्याय
एवं
श्री अनिल कुमार उपाध्याय
I.A.S.

NAG PUBLISHERS

नाग प्रकाशक
११ ए/ यू. ए. जवाहर नगर,
दिल्ली-११० ००७

THIS PUBLICATION HAS BEEN BROUGHT OUT WITH THE FINANCIAL ASSISTANCE FROM RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN, NEW DELHI.

NAG PUBLISHERS
(i) 11A/U.A. (Post Office Building), Jawahar Nagar,
Delhi 110 007.
(ii) Sanskrit Bhawan, 12,15, Sanskrit Nagar,
Plot No. 3, Sector-14, Rohini, New Delhi - 110 085
(iii) Jalalpur Mafi, Chunar, Dist. Mirzapur, U. P.

ISBN 81-7081-292-5 (Set)

FIRST EDITION : 1995

Price : Rs.

PRINTED IN INDIA

Published by Surendra Pratap for Nag Publishers, 11A/U.A., Jawahar Nagar, Delhi-110007 and printed at G. Print Process, 308/2, Shahzada Bagh, Dayabasti, Delhi-110035.

Laser Typesetting By:
Compu-Media-The D.T.P. People,
43, Bunglow Road, Kamla Nagar, Delhi-110 007
Phone : 2911869

वैदिक कोश

भाग २

वैदिक कोश
भाग ३

ब

बकुर - भास्करः भयङ्कर भास मानः द्रवति वृत्ति वा । पृषोदर आदि की तरह भास्कर भयङ्कर भासमान या द्रवण से 'बकुर' शब्द बना है । अर्थ है - (१) सूर्य, (२) वर्षाजल, (३) प्रताप, (४) ज्योति ।
'अभि दस्युं बकुरेणा धमन्ता'
ऋ. १.११७.२१, नि. ६.२६
जैसे सूर्य अपनी प्रवर ज्योति से रोगों का नाश करते या द्यावापृथिवी वर्षा जल से दुर्भिक्ष दूर करते एवं तुम दोनों (राजा और राज पुरुष या अश्विनी कुमार) अपने प्रताप से दुष्टों का विध्वंस करते हो ।

बज- (१) उत्तम गम्य, तेजस्वी ।
'बजः पिङ्गो अनीनशत्'
अ. ८.९.६
(२) गत्यर्थक धातु । अंग्रेजी में budge धातु भी इसी अर्थ में प्रयुक्त है ।

बज- (१) श्वेत सर्षप, उजला सरसों जो 'दुर्णामा' कुष्ट ओषधि की दवा है । -सा.
(२) अभिगमनीय सुन्दर पुरुष -ज.दे.श.
बजं दुर्णामचातनम्'
अ. ८.६.३

बट् - सचमुच
'बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि'
ऋ. ८.१०१.१२, अ. २०.५८.४, साम. २.११३९, वाज.सं. ३३.४०

बडा- सत्य कर के ।
'नह्यन्यं बडा करम्
मर्डितारं शतक्रतो'
ऋ. ८.८०.१

बण्ड - बडि (विभाजन कर्म में) + अच् = बण्ड । अर्थ । (१) विभाजन, (२) निर्वीर्य, नपुसंक -सा.
(३) लड़ाका, (४) परस्पर फूट डालने वाला
(५) चुंगल चोर -ज. दे.श.
(६) भग्न अंगों वाला-ह्विटनी
बण्डेन यत् सहासिम
अ. ७.६५.३

बण्डा- फटी कटी अंगहीन गौ
'बण्डया दह्यन्ते गृहीः'
ऋ. १२.४.३.

बत- अनेकार्थक निपात । अर्थ है-खेद, अनुकम्पा (खेदानुकम्पयोः) अनुकम्पनीय दयनीय ।
बतो बतासि यम
ऋ. १०.१०.१३, अ. १८.१.१५, नि. ६.२८.

बत- खेद अर्थ में प्रयुक्त अव्यय, (२) संज्ञा होने पर इसका अर्थ निर्बल होता है ।
'बतो बतासि यम
नैव ते मनो हृदयं चाविदाम'
ऋ. १०.१०.१३; अ. १८.१.१५; नि. ६.२८.
हे यम, तू निर्बल है । तू सचमुच अनुकम्प्य है (बत असि) । मुझे तेरे मन या हृदय का पता नहीं है ।

बदर- बेर का फल
'सक्तूनां रूपं बदरम्'
वाज.सं. १९.२२

बदर- (१) झाड़ियों उद्यानों की रक्षा करने वाले बेर का बौधा । (२) हिंसाकारी शस्त्रों का प्रहार करने वाले सेनाबल ।
'बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः'
वाज.सं. २१.३०,३१; मै.सं. ३.११.२:१४१.५; १४१.८; तै.ब्रा. २.६.११.२

बद्ध- (१) बध् + क्त = बंद्ध । बंधा हुआ । दे. 'चक्षुष्' ।
'मुमुग्ध्यस्मान् निधयेव बद्धान्'
ऋ. १०.७३.११; साम. १.३१९; का.सं. ९.१९; ऐ.ब्रा. ३.१९.१७; तै .ब्रा. २.५.८.३; तै.ब्रा. ४.४२.३; आप.श्रौ.सू. ६.२२.१; नि. ४.३.
हे आदित्य, बन्धन में बंधे पक्षियों की तरह हमें अपनी किरणों से मुक्त कर (अस्मान् निधया

बद्धान् इव मुमुग्धि) । (२) लग्न । दे. 'अरम्णात्'
'अश्वमिवाधुक्षद् धुनिमन्तरिक्षम्
अतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम्'
ऋ. १०.१४९.१; नि. १०.३२.
जैसे सवार घोड़े की धूल झाड़ देता है उसी प्रकार सविता अगम्य कम्पायमान अन्तरिक्ष में लग्न मेघ को मानों प्रवाहित करता है ।

बद्धक - बंधा हुआ ।
'बन्धान्मुञ्चासि बद्धकम्'
अ. ६.१२१.४; तै.आ. २.६.१.

बद्धकमोचन- बद्ध अवस्था से मुक्त अवस्था की प्राप्ति ।
'प्रैतु बद्धकमोचनम्'
अ. ६.१२१.३

बद्बधानः- (१) खूब सुप्रबद्ध ।
'त्वमर्णवान् बद्बधानां अरम्णाः'
ऋ. ५.३२.१; साम. १.३१५; नि. १०.९
तू ने जलवाला होकर बंधे हुए मेघों को उन्मुक्त किया ।
(२) वध आदि करने वाली सेना ।
'परिष्ठिता अतृणद् बद्बधानाः'
ऋ. ४.१९.८

बधिर - बध् + इरच् = बधिर । बधिरः बद्ध क्षोत्रः (जिसके कान बद्ध हो गये हैं । अर्थ-बहरा । दे. आततर्द ।
'ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द
कर्णा बुधानः शुचमान आयोः'
ऋ. ४.२३.८; नि. १०.४१
ऋतदेव का अत्यन्त मध्य श्लोक बोधित करता हुआ (बुधानः) तथा चमकता हुआ (शुचमानः) मनुष्य के बधिर कानों को भी (बधिरा कर्णा) छेद डालता है (आततर्द) 'बधिरा' बधिरस्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । 'सुपां सुलुक्' से सु का लोप होकर केवल ङ (अ) रह जाता है ।
(२) प्राणियों के प्राण का बध करने या बांधने वाला (३) बहुश्रुत
' अपानक्षासो बधिरा अहासत'
ऋ. ९.७३.६
- बध् + किरच् = बधिर । बध्यते शब्द श्रवणात् निरुध्यते श्रोत्रयस्य इति । सुनने से वञ्चित हो जाता है, कान बन्द हो जाता है, अतः बधिर है ।

बध्यमान- (१) देहबन्धन में फंसा आत्मा, (२) बलि किया जाने वाला पशु -सा.
'ये बध्यमानमनु दीध्याना'
अ. २.३४.३

बन्ध- (१) बन्धन स्थान, (२) कारागार ।
'राज्ञो वरुणस्य बन्धोऽसि'
अ. १०.५.४४.
(३) बन्धु, (४) शरीर की क्रियाशक्ति को बांधने वाला-आत्मा ।
'बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया अपश्यत्'
अ. १९.५६.२

बन्धपाश- कर्मबन्धन का फन्दा ।
'अयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान्'
अ. ६.६३.२; अ. ६.८४.३

बन्धुक्षिद् - बन्धु के समान विद्या सम्बन्ध से अधीन रहने वाला शिष्य ।
'बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः'
ऋ. १.१३२.३

बन्धुः - (१) पृथ्वी का विशेषण । पृथ्वी बन्धुरूपिणी माता है । दे. 'उत्तान' ।
'बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्'
ऋ. १.१६४.३३; अ. ९.१०.१२; नि. ४.२१
यह बन्धुरूपिणी बड़ी पृथ्वी मेरी माता है ।

बन्धु- बन्धु + उ = बन्धु । बन्धु सम्बन्धनात् (बन्धु बाधता है) सम्बन्ध जोड़ता है ।

बन्धुता - (१) भाईपन, (२) सम्बन्ध ।
'महो रुजामि बन्धुता वचोभिः'
ऋ. ४.४.११; तै.सं. १.२.१४.४; मै.सं. ४.११.५: १७३.१५; का.सं . ६.११.

बन्धुपृच्छा - द्वि.व. । सब मनुष्यों को बन्धु के तुल्य जानकर उनके सुख दुःख पूछने वाले ।
'नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा'
ऋ. ३.५४.१६

बन्धुर - बांधने वाला ।
'वध्रिं कृण्वन्तु बन्धुरः'
अ. ३.९.३
'रथस्य बन्धुरम्'
अ. १०.४.२

बन्ध्वेष् - बन्धु + इष् । (१) परम बन्धु वृष्टि और अन्न को उत्पन्न करना (२) बन्धुवत् चाहना ।

'प्र ये तो बन्ध्वेषे गां वोचना सूरयः '
ऋ. ५.५२.१६.
बप्स - धा. । भोजन करना । हिन्दी का 'भकोसना' धातु 'बप्स' का ही अपभ्रंश है ।
बप्सत् - (१) भोजन करने वाला ।
'उप स्रक्वेषु बप्सतः '
ऋ. ८.७२.१५; साम. २.८३२.
(२) खाता हुआ ।
'उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप
ऋ. ७.५५.२
बप्सता- द्वि.व. । खाने वाले
'हरी इवा धासि बप्सता '
ऋ. १.२८.७, नि. ९.३६.
नाना प्रकार के जौ चने आदि अन्नों को खाने वाले परस्पर संगत और वेग से जाने वाले घोड़े.....
बप्सती - द्वि.व. । वप्सत् (खाता हुआ) । का नपुंसक में प्रथमा द्विवचन का रूप ।
'असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः'
ऋ. १०.७९.१; नि. ६.४
वैश्वानर अग्नि की ज्वालाएं बिना चबाए खाती हुई प्रचुर लकड़ी और हवि खाती है । - सा. बच्चे के दोनों जबड़े बिना चतुर खाते हुए प्रचुर दुग्ध खा जाते हैं । -दया.
बब्धाम् - (१) खायें । दे. 'धाना' ।
'बब्धां ते हरी धानाः '
नि. ५.१२.
तेरे अश्व धाना अर्थात् ऋजीष (सोम की सीठी) खायें ।
बबृहाणः- सदा वृद्धिशील
'परि म्रचो बबृहाणस्याद्रेः
ऋ. ५.४१.१२
बभ्रवः - ब.व.। ए. व. का रूप बभ्रु । अर्थ - (१) पीले रंग के जूए के पाश ।
'न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचामक्रत'
ऋ. १०.३४.५
जब जुए पर फेकें पीले पाश शब्द करने लगते हैं ।
बभ्राणः - (१) पुष्ट करता हुआ ।
'बभ्राणः सूनो सहस्रो व्यद्यौत् '
ऋ. ३.१.८

बभ्रि - वि.। (१) रोकने वाला-दुर्ग (२) धारण पोषण करने वाला - दया. ।
'अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनाम् '
ऋ. ३.१.१२; नि. ६.१७.
संग्राम में दुर्ग के समान रोकने वाला या धारण पोषण करने वाला ।
(३) प्रजा का धारण पोषण करने वाला ।
'बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद् विमृड्ढि '
अ. ११.१.३१.
बभ्रु - (१) सूर्य की एक जाति-(२) पीला, (३) गोधूमी ।
'कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्रो '
अ. ५.१३.५
(४) पिङ्गलवर्णा अश्वा (घोड़ी) (५) बभ्रु का अर्थ- विशाल,
(६) नकुल (७) कृशानु
(८) अज, (९) शूलधारी एक मुनि तथा (१०) पिंगल है ।
'बभ्रुर्विशाले नकुले कृशानावजे
मुनौ शूलिनि पिशाचे च-विश्वकोश '
(११) स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ उपदेशिका या अध्यापिका किया है । जहां पूर्वाचार्यों ने 'इन्द्राश्वौ' का अर्थ ' इन्द्र के घोड़े' किया है, वहीं स्वा. दयानन्द ने 'राजा के आप्त अध्यापक तथा उपदेशक ' किया है ।
(१२) पीली ओषधि । दे. 'ओषधि' ।
'मनै नु बभ्रूणामहं
शतं धामानि सप्त च '
ऋ. १०.९७.१; वाज.सं. १२.७५; तै.सं. ४.२.६.१; मै.सं. २.७.१३ : ९३.२; का.सं. १३.१६; १६.१३; श.ब्रा. ७.२.४.२६; नि. ९.२८.
पीली ओषधियों के (बभ्रूणाम्) १०७ नामों को (शतं सप्त च धामानि) जानता हूं (मनै नु) या शरीर के १०७ स्थानों को जानता हूँ ।
(१३) बभ्रु नामक रोग-सा.
(१४) सबको धारण पोषण करने वाला प्राण ।
'बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च '
अ. ५.२३.४; अ. ६.१६.३
बभ्रुक - (१) बभ्रुक नामक पक्षी ।
'बभ्रुकान् अवान्तर दिशाभ्यः '
वाज.सं. २४.२६; मै.सं. ३.१४.७: १७३.१२.

बभ्रुकर्ण – (१) भूरे कान वाला कीट ।
'बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्च'
अ. ५.२३.४; ६.१६.३.
(२) बभ्रुकर्ण नामक रोग, –सा.
(३) प्राणमय साधनों से सम्पन्न जीव ।

बभ्रुधूत – (१) भरण पोषण करने वाले स्वामी से प्रेरित या भयभीत, (२) विद्वानों से पवित्रित –दया. ।
'यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्'
ऋ. ५.३०.११

बभ्रुनीकाशः – भूरे वस्त्र वाला ।
'धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितृणां सोमवताम्'
वाज.सं. २४.१८

बभूवान् – होकर ।
'अधा निविद्ध उत्तरो बभूवान्'
ऋ. ४.१८.९

बभ्रू – द्वि.व. । (१) पीले रंग की घोड़ियाँ–सा. ।
(२) विद्या धर्म को धारण करने वाली तथा अविद्या और अधर्म को हरने वाली अध्यापिका तथा उपदेशिका –दया ।
दे. 'अर्भक' 'कनीनिका'
'कनीनकेव विद्रधे
नवे द्रुपदे अर्भके
बभ्रू यामेषु शोभेते'
ऋ. ४.३२.२३; नि. ४.१५
हे इन्द्र, पीले रंग की घोड़ियाँ (बभ्रू) यज्ञों में (यामेषु) छिद्र की हुई पादुका में (विद्रधे द्रुपदे) नव जात छोटी छोटी कठपुतलियों की तरह (नवे अर्भके कनीनके इव) शोभती हैं (शोभेते) –सा. ।
अथवा, यह अध्यापिका तथा उपदेशिका (बभ्रूः) गढ़ी हुई नवीन पादुकाओं पर (विद्रधे नवे द्रुपदे) छोटी लड़कियों की तरह (अर्भके कनीनके इव) नियमों पर आरूढ़ हो (यामेषु) शोभती हैं (शोभेते) । –दया. ।
(४) पीली वर्दी पहनने वाला ।
'बभ्रूः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः'
अ. ६.९३.१

बभ्रू– (१) धर्म धरन्ती (धर्म धारण करती हुई) –दया.
(२) समस्त प्राणियों को भरण पोषण करती हुई औषधि, –ज.दे.श. (३) राजा और राष्ट्र का भरण पोषण करने वाली समृद्ध प्रजा या पक्व अन्नादि से समृद्ध भूमि
'भूषन् न योऽधि बभ्रूषु नम्नते'
ऋ. १.१४०.६
सूर्य जिस प्रकार प्रकट होकर ही (भूषन्) समस्त प्राणियों को भरण पोषण करने वाली ओषधियों में प्रविष्ट हो जाता है (नम्नते) अथवा अग्नि ओषधियों में व्याप्त होकर .....
या, नायक पुरुष उत्पन्न होकर राजा और राष्ट्र का भरण पोषण करने वाली समृद्ध प्रजाओं और भूमियों के बीच में अपने को सिंहासन पर अधिकृत करता हुआ (भूषन्) अध्यक्ष रूप से प्राप्त होता है ।

बभूवुषी – (१) होती हुई । दे. 'गौरी' ।
'अष्टापदी नवपदी बभूवुषी
सहस्राक्षरा परमे व्योमन्'
ऋ. १.१६४.४१; तै.ब्रा. २.४.६.११; तै.आ. १.९.४; नि. ११.४०
उत्कृष्ट अन्तरिक्ष में माध्यमिका वाक् गौरी दिशाओं एवं चार अवान्तर दिशाओं से एकात्म हो अष्टापदी और ऊपर की दिशा या सूर्य से भी एकात्म हो नवपदी होती हुई बहुत जल बरसाने वाली बन जाती है ।
(५) पोषण करने वाली पीतवर्ण की एक ओषधि जिसमें वशीकरण का गुण है ।
'बभ्रु कल्याणि सं नुद'
अ. ६.१३९.३

बभ्रिः – (१) धारण करने वाला ।
'बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः'
ऋ. ६.२३. ४

बभ्लुश– राज्य का भरण पोषण करने वाला
'नमो बभ्लुशाय व्याधिने'
वाज.सं. १६.१८, तै.सं. ४.५.२.१, मै.सं. २.९.३; १२२.११, का. सं. १७.१२.

बम्भारिः – पाप का शत्रु
'स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे
हस्त सुहस्त कृशानो'
वाज.सं. ४.२७, तै.सं. १.२.७.१, श.ब्रा. ३.३.३.११.

बर्हणा– (वि) (१) बढ़ी हुई –सा. (२) बहुत मात्रा

में -द.

'रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा'

ऋ. १.१६६.६

मरुतों की हेति पशुओं को मारती है (रिणाति) जैसे सम्यक् प्रकार से प्रयुक्त (सुधिता) एवं बढ़ी हुई हिंसा भावना (बर्हणा) पशुओं को -सा.

विज्ञान में विद्युत् बहुत मात्रा में (बर्हणा) सुस्थापित की हुई (सुधिता) पशुओं की तरह (पश्व इव) ले जाती है (रिण्याति) -दया.

बर्हणा - (१) ब्रह्म, (२) वृह् (वृद्ध्यर्थक या हिंसार्थक) + ल्युट् = बर्हण । बर्हण + सु = बर्हणा (सु का आ) । अर्थ - परिवृद्धि ।

(३) परिहिंसा (४) बसने और कर्मफल भोगने योग्य लोक (५) वृद्धि शील प्रजा ।

'इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश'

ऋ. ३.३४.५; अ. २०.११.५

बर्हणावत् - (१) वृद्धि से युक्त, (२) हिंसा से युक्त, (३) वर्धनशील ।

'सुपारासो वसवो बर्हणावत्'

ऋ. ३.३९.८.

(३) बहु विधं वर्धनं विध्यते यस्य स. - (वर्धनशील) ।

'प्राचीनेन मनसा बर्हणावता'

ऋ. १.५४.५

बर्हणावत् मनः - (१) हिंसायुक्त मन-सा. ।

(२) उदार हृदय -दया. । दे. 'रोरुवत्' ।

'प्राचीनेन मनसा बर्हणावता

यदद्या चित् कृणवः कस्त्वा परि'

ऋ. १.५४.५.

हे इन्द्र, जिस कारण तू प्राचीन हिंसा वाले मन से युक्त हो आज भी ग्रीष्म में अपना कर्म करता है-सा.

हे राजन्, सनातन वेद के द्वारा (प्राचीनेन) उदार हृदय से बर्हणावता मनसा) तू राज्य करता है-दया. ।

बर्हन् - 'बृह्' धातु से सम्पन्न । अर्थ है- बृहत् बड़ा । दे. 'पञ्चजना'

'अस्तृणाद् बर्हणा विपः'

ऋ. ८.६३.७

मेघों के पिता या क्षेप्ता इन्द्र के (विपः)बड़े वज्र से (बर्हणा) मेघों को मारा (अस्तृणात्) ।

बर्हिषद् - बृह् (वृद्ध्यर्थक) + इसि = बर्हिस् । (१) बढ़ा हुआ कुश, (२) अग्नि को जो पदार्थों को फैलाता या बढ़ाता है, । बर्हिः + सद् + क्विप् = बर्हिषद् । अर्थ है- (१) यज्ञ में बैठने वाला, (२) विस्तृत आसन पर बैठने वाला, (३) उन्नति करने वाला ।

'बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वाक्'

ऋ. १०.१५.४, अ. १८.१.५१, वाज.सं. १९.५५, तै.सं. २.६.१२.२, मै.सं. ४.१०.६: १५६.१२; का.सं. २१.१४; आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२२.

हे यज्ञ में बैठने वाले पितरो, हम अर्वाचीनों की आप रक्षा करें ।

(५) राज सिंहासन पर बैठने वाला - दया. (५) कुशासन पर बैठने वाला -सा.

'ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम्'

ऋ. ५.४४.१, वाज.सं. ७.१२, तै.सं. १.४.९.१, का.सं. ४.३,श.ब्रा. ४.२.१.९.

ज्येष्ठ कुशासन पर बैठने वाले एवं सूर्य के समान दीख पड़ने वाले (स्वर्विदम्) इन्द्र को...सा.

हे राजन् , आप में वृद्ध राजसिंहासन पर बैठने वाले एवं सुख पहुंचाने वाले अपने आप को.....दया.

बर्हिषदः पितरः- (१) यज्ञ में बैठने वाले पितर ।

बर्हिष्ठा- (१) आकाशस्थ, (२) कुशासन पर रखा हुआ ।

'बर्हिष्ठां ग्रावभिः सुतम्'

ऋ. ३.४२.२; आश्व.श्रौ.सू. ५.९.२१.

बर्हिस्- (१) प्रभूत । (२) कुश, (३) वृद्धि । (४) यज्ञ । (५) पशु, ऐ.ब्रा । पशवो वै बर्हिः पशूनेव तत् प्रीणाति पशून् यजमाने दधाति ।

(६) धान्य के समान बीजभूत एवं शम दम आदि से वृद्धिशील आत्मा ।

'सं बर्हि रक्तं हविषा घृतेन'

अ। ७.९८.१; वाज.सं. २.२२; श.ब्रा. १.९.२.३१.

(७) प्रजा, (८) लोक,

प्रजा वै वर्हिः-कौ.ब्रा. ५.७.

'क्षत्रं वै प्रस्तर विश इतरं बर्हिः'

श.ब्रा. १.३.४.१०.

'नवं बर्हिरोदनायस्तृणीत'

अ. १२.३.३२.

(९) धान्य ।

'बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यते'

ऋ. १.८३.६; अ. २०.२५.६

बर्हिष्य– (१) प्रजाओं के संगृहीत उत्तम पदार्थों के योग्य उत्तम पुरुष (२) उत्तम आसन के योग्य ।

'बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु'

ऋ. १०.१५.५; . १८.३.४५; वाज.सं. १९.५७; तै.सं. २.६.१२.३.

(३) यज्ञ सम्बन्धी

बर्हिष्मती– सुखवृद्धि करने वाली ।

बर्हिस् – बृह् (वृद्ध्यर्थक) + इसि = बर्हिस् । अर्थ – (१) अग्नि जो पदार्थों को फैलाता या बढ़ाता है । (२) यज्ञ, (३) आसन, (४) कुश दे. बर्हिषद् (५) वस्तुओं को फैलाने वाला यज्ञाग्नि–ज.दे.श. ।

'प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्याः'

ऋ. १०.११०.४, अ. ५.१२.४, वाज.सं. २९.२९, मै.सं. ४.१३.३; २०२.१, का.सं. १६.२०.तै.ब्रा. ३.६.३.२, नि. ८.९.

गृह की प्राची दिशा में वस्तुओं को फैलाने वाला यज्ञाग्नि वेदोपदिष्ट विधि के साथ......

सायण ने यहां बर्हि का अर्थ कुश ही दिया है ।

बल – = भृ + अच् = भर = बल । अर्थ – धारण और पोषण करने वाला

बट् – (१) सत्यम् (सचमुच) – दया. (२) यथाभूत, (३) बल–सा.

'बडित्था पर्वतानाम्
खिद्रं बिभर्षि पृथिवि'

ऋ. ५.८४.१, तै.सं. २.२.१२.२, मै.सं. ४.१२.२, १८१.१ का.सं. १०.१२; आप.मं.पा. २.१८.९; नि. ११.३७

हे पृथ्वी अर्थात् विद्युत् , तू इस भूमि या अन्तरिक्ष में (इत्था) मेघ छेदने वाला बल (खिद्रम्) धारण करती है (बिभर्षि) – दया. आधुनिक संस्कृत में इस शब्द का प्रयोग नहीं मिलता । अंग्रेजी का but 'किन्तु' के अर्थ में प्रयुक्त होता है । तथापि बट् का सम्बन्ध but से असंदिग्ध है ।

बलग– गुप्त हिंसा प्रयोग ।

बलदेव – बलदान करना ।

'स्वा तनूर्बलदेयाय मेहि'

ऋ. १०.८३.५

बलदाः – बल देने वाला– इन्द्र परमेश्वर ।

'त्वं हि बलदा असि'

ऋ. ३.५३.१८

'य आत्मदा बलदा यस्य विश्वे'

अ. ४.२.१; १३.३.२४; वाज.सं. २५.१३; तै.सं. ४.१.८.४: ७.५.१७.१

बलविज्ञायः– (१) सब बलों को विशेष रूप से जानने योग्य,

'बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः'

ऋ. १०.१०३.५; अ. १९.१३.५; साम. २.१२०३; वाज.सं. १७.३७; तै.सं. ४.६.४.२; मै.सं. २.१०.४: १३६.२; का.सं. १८.५.

(२) अपने और पराए के सेना बल के भली प्रकार जानने वाला ।

बल्बज– एक प्रकार का घास, दर्भ

'यं बल्बजं न्यसथ'

अ. १४.२.२२.

'उपस्तृणीहि बल्बजम्'

अ. १४.२.२३

बल्बजस्तुका – मूंज की सी गुच्छों वाली वनभूमि

'शतं मे बल्बजस्तुकाः'

ऋ. ८.५५.३

बलाक – (१) बगुला ।

'वायवे बलाकाः'

वाज.सं. २४.२२; मै.सं. ३.१४.३; १७३.३

(२) बल से जाने वाली सेना ।

'सौरी बलाका'

वाज.सं. २४.३३; तै.सं. ५.५.१६.१; मै.सं. ३.१४.१४: १७५.६;

बलाशनाशनी– कफ का बलनाशक रोगों को नष्ट करने वाली ओषधि

'अथो बलाशनाशनीः'

अ. ८.७.१०

बलास– (१) शरीर का बल नष्ट करने वाला श्लेष्मा रोग–दम्मा

'बलासं सर्वं नाशय'

अ. ६.१४.१

(२) कफ

'बलासं कासमुद्युगम्'

अ. ५.२२.११
(३) कफ से उत्पन्न गिलटी रोग
'यौ ते बलास तिष्ठतः'
अ. ६.१२७.२
(४) बल नाशक कफ रोग।
'नाशयित्री बलासस्य'
वाज.सं. १२.९७
(५) बलनाशक।
'बलाशं पृष्ट्यमयामयम्'
अ. १९.३४.१०

बलासी - श्लेष्मा, दम्मा का रोगी
'निबलासं बलासिनः'
ऋ. ६.१४.२

बलि- (१) कर।
'बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि'
ऋ. ७.१८.१९

बलिहार - बलि + हार। कर देना,
'बलिहाराय मृडतान्मह्यमेव'
अ. ११.१.२०

बलिहृत्- (१) बलि अर्थात् कर देने वाला।
'विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः'
ऋ. ७.६.५; तै.ब्रा. २.४.७.९
'विशो बलिहृतस्करत्'
ऋ. १०.१७३.६: का.सं. ३५.७.
'यथा प्राण बलिहृतः'
अ. ११.४.१९

बल्हिक - (१) बली पुरुष, (३) बल्हिक नामक जनपद।
'तावानसि बल्हिकेषु न्योचरः'
अ. ५.२२.५

बल्बूथ- बलशाली'
'शतं दासे बल्बूथे
विप्रस्तरुक्ष आददे'
ऋ. ८.४६.३२, शां.श्रौ.सू. १८.१४.५.

बष्कय- (१) द्रष्टव्य - दया।
(२) सत्य स्वरूप।
'वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्
वि तत्निरे कवय ओतवा उ'
ऋ. १.१६४.५; अ. ९.९.६
अन्तर्दर्शी विद्वान् देखने योग्य (बष्कये) उत्तम पुत्र के निमित्त (वत्से) उसकी देह रचना के लिए ही (ओत वै उ) सातों घटक धातुओं को विविध रूप से विस्तृत करते हैं (वितत्निरे) अथवा,
सत्य स्वरूप (बष्कये) स्तुत्य, सब में बसे या सब को बसाने वाले आत्मा में (वत्से) विद्वान् जन सातों सोम और पाक यज्ञों को विस्तृत करते हैं।

बष्किहा - हिसंकों को भी मारने वाला रक्षक
'मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो बष्किहान्'
वाज.सं. २४.१६, मै.सं. ३.१३.१४; १७१.७, आप.श्रौ.सू. २०.१४. १०

बस्तः- (१) अपने गुरु के दोष को आध्यापन करने वाला विद्यार्थी,
(२) गुरु के अधीन रहने वाला विद्यार्थी
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्'
ऋ. १.१९१.१३
गुरु के अधीन रहने वाला विद्यार्थी (बस्तः) अति शीघ्रता से ज्ञान मार्ग पर लाने वाले आचार्य को (श्वानम् बोधयितारम्) करें।

बस्तवासी, बस्तवासिन् - चमड़ा ओढ़ने वाला।
'अरायान् बस्तवासिनः'
अ. ८.६.११.

बस्ताभिवासिन् - भेड़ बकरे के समान बलबलाने वाला सैनिक जो भेडिया होकर शत्रु पक्ष में घुस जाते हैं।
'अथो बस्ताभिवासिनः
अ. ११.९.२२

बस्त्रि- अर्थ - (१) वस्तुस्तम्भन, सुख का रुकना -दया. (२) शीघ्र, (३) सुखनाशक
'उभा ता बास्त्रि नश्यतः'
ऋ. १.१२०.१२
वे दोनों शीघ्र ही या सुख नाशक होने से नष्ट हो जाते हैं।

बह्वन्ना - (१) बहुत अन्नों या फलों से युक्त - वनस्पति वृत्ति।
'बह्वन्नामकृषीवलाम्'
ऋ. १०.१४९.६

बर्हिर्बिल- शरीर के बिलों से बाहर।
'निर्द्रवन्तु बहिर्बिलम्'
अ. ९८.१३-१८

बह्लिक - बल्ख देश का वेदकालीन नाम।

बहु- (अ) बहुत।

'वित्तेर मस्व बहु मन्यमानः'
ऋ. १०.३४.१३

बहुकारः- बहुत कार्य करने में समर्थ ।
'बहुकार श्रेयस्कर भूयस्कर'
वाज.सं. १०.२८; श.ब्रा. ५.४.४.१४;

बहुचारी- बहुत चलने वाला ।
'बहुचारी भविष्यसि'
अ. ११.३.४६

बहुधा- अनेक प्रकारों से ।
'विश्वा अपश्यत् बहुधा ते अग्ने,
जातवेदस्तन्वो देव एकः'
ऋ. १०.५१.१

बहुप्रजाः- वि. । (१) अनेक अनेक जन्म प्राप्त करने वाला जीवात्मा ।
'स मातुर्योना परिवीतो अन्तः
बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश'
ऋ. १.१६४.३२; अ. ९.१०.१०; नि. २.८.
वह जीवात्मा माता के गर्भ में आ उदर में उल्व जरायु से परिवेष्टित हो यथासमय, उत्पन्न हो अनेकों जन्म प्राप्त करने वाला (बहुप्रजाः) प्रकृष्ट दुःख को (निर्ऋतिम्) प्राप्त करता है । (आविवेश) ।
(२) नाना लोकों को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर ।

बहुपाय्य- (१) बहुत से वीर पुरुषों द्वारा रक्षा करने योग्य ।
'व्यचिष्ठे बहुपाय्ये'
ऋ. ५.६६.६
(२) बहुतों का पालक,
(३) बहुतों से भोग्य ऐश्वर्य ।
'पुत्रो न बहुपाय्यम्'
ऋ. ८.२७.२२

बहुल- (१) नाना प्रकार का ;
'ऐन्द्राग्नं वर्म बहुलं यदुग्रं'
अ. ८.५.१९
(२) वि. । बहूनि सुखानि लाति प्रयच्छति (जो बहुत सुखों को देता है) । (३) बहुत ।
'तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाः'
ऋ. १.५४.९
(४) बड़ा ।
'मा घोषा उत् स्थुर्बहुले विनिर्हते'
अ. ७.५२.२
'पृथ्व पृथ्वी बहुला न उर्वी'
ऋ. १.१८९.२; मै.सं. ४.१०.१; १४२.२; तै.सं. १.१.१४.४; श.ब्रा. २.८.२.५; तै.आ. १०.२.१

बहुलान्तः- (१) बहुत से ऐश्वर्य जन समूहादि से सम्पन्न ।
'तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम्'
ऋ. १०.४२.८; अ. २०.८९.८
(२) प्रभूत बल और सत्य ज्ञान को धारण करने वाला, (३) अन्धकारमयी, मोह-रात्रि का नाश करने वाला ।

बहुलाभिमानः- (१) बहुत आत्मा समान का धारण करने वाला, (२) इन्द्र, (३) राजा ।
'मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः'
ऋ. १०.७३.१; वाज.सं. ३३.६४.

बहुले - (द्वि.व.) (१) द्यावापृथिवी या माता पिता का विशेषण । अर्थ-बहु + ले = बहुत से पदार्थों को ला देने वाले
'उर्वी पृथ्वी बहुले दूरे अन्ते'
ऋ. १.१८५.७, मै.सं. ४.१४.७; २२५,१, तै.ब्रा. २.८.४.८

बहुवादी- बहुत अधिक बोलने वाला ।
'अन्याय बहुवादिनम्'
वाज.सं.

बहुसाकम् - अ. । (१) बहुत जान, एकत्र कर ।
'तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो
बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम्'
ऋ. २.२४.४; नि. १०.१३
उसी मेघ को सूर्य की सभी रश्मियाँ पीती हैं और वर्षा काल में आकाश में उठते हुए मेघ को (उत्सम् उद्रिणम्) बहुत जल मिलकर देती हैं ।

बहुसूवरी- (१) बहुत सम्मान उत्पन्न करने वाली।
'सुषूमा बहु सूवरी'
ऋ. २.३२.७ अ. ७.४६.२; तै.सं. ३.१.११.४; मै.सं. ४.१२.६; १९५.६; का.सं. १३.१६
(२) बहुत से पुत्रों को उत्पन्न करने में समर्थ स्त्री,
(३) बहुत प्रकार राष्ट्रीय प्रेरणाओं की आज्ञा देने वाली राज सभा ।

ब्रध्नः- (१) सबको अपने साथ बांधने वाला, (२) आत्मा, (३) आकर्षण सामर्थ्य से बांधने वाला सूर्य ।

'युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं'

ऋ. १.६.१; अ. २०.२६.४.४७; १०; ६९.९; साम. २.८१८; वाज.सं. २३.५ ; तै.सं. ७.४.२०.१; मै.सं. ३.१२.१८; १६५.९

(४) प्राण, इन्द्रिय और यज को एक बांधने वाला योगी।

'ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयन्'

अ. ७.२२.२; साम. १.४५८; आप.श्रौ.सू. २१.९.१५;

'अयं ब्रध्नस्य विष्टपि'

अ. १३.१.१६.

ब्रध्नस्य विष्टपः- (१) तैंतीस विभागों का प्रवर्तक शासक स्वयं चौंतीसवा ब्रध्न का विष्टप है।

'ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंशः'

वाज.सं. १४.२३; तै.सं. ४.३.८.१; ५.३.३.५; मै.सं. २.८.४: १०९.७; का.सं. १७.४: २०.१३;

(२) संसार को बांधने वाले ब्रह्म का परम तेज।

ब्रवीति- ब्रू (शब्द करना) के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप।

हिन्दी का बोलना, धातु 'ब्रू' से ही बना है।

ब्रह्म- (१) श्वेत कुष्ट को नष्ट करने वाली एक जड़ी, भ्राङ्गी, कांजी, ब्रह्मसुवर्चला।

'दूष्याकृतस्य ब्रह्मणा'

अ. १.२३.४

ब्राह्मी यष्टि भी इसी का एक नाम है।

(२) ब्रह्म विषयक सूक्त, (३) ब्रह्म।

'ब्रह्मणे स्वाहा'

अ. १९.२२.२०; २३.२९; ४३.८; वाज.सं. ३९.१३; ऐ.ब्रा. ६.२२.२, ४; तै.ब्रा. ३.१.५.६; १२.२.४

(४) बृह् + मनिन् = ब्रह्म। ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है।

(५) धन, (६) अन्न, (७) वेद (८) ब्राह्मण (९) महान् ब्रह्माण्ड

ब्रह्मकार - धन, अन्न और वेद का ज्ञान करने में कुशल पुरुष।

'इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकाराः'

ऋ. ६.२९.४

ब्रह्मकिल्विष- (१) परमात्मा की रचना का विषय।

'तेऽवदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्विषे'

ऋ. १०.१०९.१; अ. ५.१७.१

(२) ब्राह्मणों के प्रति अपराध

ब्रह्मकृत् - (१) अन्न, धन और वेद द्वारा स्तुति करने वाला।

'इमे हिते ब्रह्मकृतः'

ऋ. ७.३२.२; साम. २.१०२६

(२) ब्रह्मयज्ञ करने वाला वेद का विद्वान्।

(३) धन, अन्न और ज्ञान को उत्पन्न करने वाला।

'देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन'

ऋ. ७.९.५; मै.सं. ४.१४.११; २३३.२; तै.ब्रा. २.८.६.४

(४) ब्राह्मणों द्वारा शिक्षित (५) धन द्वारा वशीकृत।

'ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन'

ऋ. ३.३२.२

ब्रह्मकृति- (१) धन ऐश्वर्य उत्पन्न करने की साधना। (२) ब्रह्मज्ञान का प्रयत्न और साधन।

'यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठः'

ऋ. ७.२८.५

(३) संसार परमेश्वर की कृति।

'ब्रह्मन् वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणः'

ऋ. ७.२९.२; ऐ.ब्रा. ४.३.३; को.ब्रा. २६.११; आप.श्रौ.सू. ६. २.६.

ब्रह्मगवी- (१) ब्राह्मणों द्वारा शासित की गई पृथ्वी।

'तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतः'

अ. १२.५(१) ६

(२) ब्रह्मशक्ति, (३) विद्या, (४) ब्राह्मण रूप गौ।

'ब्रह्मगवी पच्यमाना
यावत् साभि विजङ्गहे'

अ. ५.१९.४

ब्रह्मचारी- (१) महान् ब्रह्माण्ड में विचरने वाला परमेश्वर।

'ब्रह्मचारी चरति वेविषद् विषः'

ऋ. १०.१०९.५; अ. ५.१७.५

ब्रह्मचोदनी- ब्रह्मविद्या और धन की ओर प्रेरित करने वाली।

'यां पूजन् ब्रह्मचोदनी
मारां बिभर्ष्याघृणे'

ऋ. ६.५३.८

ब्रह्मचोदनौ- द्वि.व.। ब्रह्म विज्ञान या वेद विज्ञान को उन्नत करने वाले।

'अवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ'
वाज.सं. ४.३३

ब्रह्मजाया- महान् विश्व को जन्म देने वाली प्रकृति।
'सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायाम्
पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः'
ऋ. १०.१०९.२; अ. ५.१७.२
(२) ब्रह्म की जाया भूत पृथिवी (३) राष्ट्र सभा।

ब्रह्मज्य - (१) वेद और वेदज्ञों का विनाशक।
'सा ब्रह्माज्यं देवपीयुम्'
अ. १२.५.१५
(२) ब्राह्मण का विनाशकारी।
'राष्ट्रमव धूनुते ब्रह्मज्यस्य'
अ. ५.१९.७

ब्रह्मजुष्ट- ब्राह्मणों द्वारा अनुमोदित।
'सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्टम्'
अ. २.३६.२

ब्रह्मजूतः- ब्रह्म + जू + क्त = ब्रह्म जूत। (१) ब्राह्मणों से संगति करने वाला। (२) महान् शक्ति से सम्पन्न
'ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानः'
ऋ. ३.३४.१, अ. २०.११.१
ब्राह्मणों से संगति करने वाला तथा शरीर से पुष्टांग....

ब्रह्मजूता- ब्रह्म ज्ञानियों से सेवित,
'ब्रह्मजूतां ऋषिष्टुताम्'
अ. ६.१०.८.२

ब्रह्मज्येय- ब्राह्मणों के प्रति अत्याचार।
'ब्रह्मज्येयं तदब्रुवन्'
अ. १२.४.११

ब्रह्मणवर्चः- (१) ब्राह्मण का तेज, (२) विद्वानों का वल।
'सामे ब्राह्मणवर्चसम्'
अ. १०.५.३७

ब्रह्मणःपिता- इस जगत् का पिता विराट्।
'विराजमाहुः ब्रह्मणः पितरम्'
अ. ८.९.७

ब्रह्मण्यत् - (१) धर्मपूर्वक धन चाहने वाला।
(२) ब्रह्म का साक्षात्कार चाहने वाला।
'ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात्'
ऋ. ४.२४.२

ब्रह्मण्यन् - (१) अन्न की आकांक्षा करने वाला कृषक (२) ब्रह्मज्ञान का इच्छुक (३) बृहत् ऐश्वर्य का इच्छुक।
'ब्रह्मण्यन्तः शंस्य राध ईमहे'
ऋ. २.३४.११
(४) धन की कामना करने वाला।
(५) वेदज्ञान का इच्छुक।
'ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः'
ऋ. २.१९.१

ब्रह्मण्वती- वेदज्ञान से युक्त।
'मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीम्'
अ. ६.१०८.२

ब्रह्मणा वावृधाना- वेदज्ञ ब्राह्मणों और विद्वानों को बढ़ाने वाली पृथिवी।
'क्षमां भूमिं ब्रह्मण वावृधीनाम्'
अ. १२.१.२९

ब्रह्मतेजा- वेद या अथर्व वेद के मन्त्रों के समान तेजस्वी।
'यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजाः'
अ. १०.५.३१

ब्रह्मद्रविण- (१) ब्राह्मण रूप धन (२) वेद या अन्न रूप धन।
'वसन्त ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम्'
वाज.सं. १०.१०.

ब्रह्मद्विष्- ब्रह्म + द्विष + क्विप् = ब्रह्मद्विष्। अर्थ -(१) ब्राह्मण द्वेषी, (२) ब्राह्मण का द्वेषी, (३) वेद-विरोधी, (४) नास्तिक, (५) यज्ञविरोधी,।

ब्रह्मन् - व्युत्पत्ति तथा अर्थ के लिए - बृह् + मनिन् = ब्रह्मन्। अर्थ -(१) ब्राह्मण, (२) ब्रह्म का साधक।
'ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत
उद्वंशमिव येमिरे'
ऋ. १.१०.१, साम. १.३४२, २.६९४, तै.सं. १.६.१२.३. कौ.ब्रा. २४.७, नि. ५.५.
हे शतक्रतो इन्द्र या परमात्मा, ब्राह्मण यज्ञकर्म में ध्वजा के समान स्तुतियों से तेरी महिमा बढ़ाते हैं।
(३) वेद।
'हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम्'
ऋ. १०.३०.११, नि. ६.२२.

धनों की प्राप्ति के लिए ब्रह्म को प्रवृत्त करो या वेद को जाने ।

(४) धन ।

'इन्द्राय ब्रह्माणि राततमा'

ऋ. १.६१.१, अ. २०.३५.१, ऐ.ब्रा.६.१८.५,

इन्द्र के लिए दातव्य धनों को देता हूँ (राततमा ब्रह्माणि) (५) अन्न

'तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथा
इन्द्र उक्था समग्मत
अर्चन्ननु स्वराज्यम्'

ऋ. १.८०.१६.

वे अन्न और स्तोत्र पहले की भांति इन्द्र के पास आवे क्योंकि इन्द्र ने वृत्रादि असुरों को मार कर अपना आधिपत्य प्रकट किया है और अपना राज्य शास्त्रीय रीति से चलाते हैं ।

(६) अन्न दाता जल ।

'उर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः'

ऋ. ७.३३.११, नि. ५.१४.

हे अन्न जल, तू विद्युत् के सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ

(७) वसिष्ठ-सा.

हे वसिष्ठ, तू उर्वशी के मन से उत्पन्न हुआ ।

(८) वैद्य ।

अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत्'

ऋ. १०.१६२.२, अ. २०.९६.१२,

उस मांसस्नेही कृमि को अग्नि वैद्य के साथ मिलकर नष्ट करें ।

(९) कर्म-सा ।

'स भन्दना उदियर्ति प्रजावतीः
विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि
ब्रह्म प्रजावद्रयिमश्वपस्त्यम्
पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात्'

ऋ. ९.८६.४१

वह यह यजमान (म) सर्वायुपरिणत वय या अप्रतिहत बुद्धिवाला होकर (विश्वायुः) प्रजा अर्थात् सन्तजिरूप फल देने वाली (प्रजावतीः) सब प्रकार की (विश्वाः) सुपुष्ट (सुभरा) स्तुतियों को (भन्दनाः) नित्यप्रति (अहर्दिवि) प्रेरित करता है (उदियर्ति) । प्रजा के सहित या भोगने वाले सन्तान से युक्त (प्रजावत्) अन्न (ब्रह्म) गोहिरण्यादिधन (रयिम्) तथा व्याप्त गई या अश्ववाला घर (अश्वयस्त्यम्) हमारे लिए (अस्मभ्यम्) हे दीप्त सोम (इन्दो) पीए जाकर (पीतः) तू इन्द्र से मांग (इन्द्रं याचतात्) ।

अन्य अर्थ- हे पावक सोम परमात्मन् ! यह समस्त मनुष्य वर्ग (स विश्वायुः) अहर्निश (अहर्दिवि) सभी उत्तम गुणों को धारण करने वाली (सुभरा) सृष्टि रचना विषयक तेरी स्तुतियों का उच्चारण करता है (प्रजावतीः भन्दनाः उदियर्ति) । हे प्रकाशक परमेश्वर (इन्दो), प्राप्त किए हुए आप (पीतः) उत्तम प्रजा सहित ब्रह्म ज्ञान (प्रजावत् ब्रह्म) बल के भण्डार तथा तेजस्वी जीवात्मा को (इन्द्रम्) हमें प्रदान करें (अस्मभ्यं याचतात्) ।

ब्रह्म परिवृढं भवति सर्वप्राणिभिः यत् तत् अन्नम् (अन्न जो सभी प्राणियों से परिवृढ़ होता या उपजाया जाता है) । अन्न सदा भुक्त होने पर भी घटता नहीं या इस से प्राणी बढ़ते हैं (सर्वदाभुज्यमातमपि अनुपक्षीयमाणत्वात् स्वभावतो वा परिवृद्धम् सर्वस्य जगतः भणात् ।)

(१०) सर्वज्ञ, सर्वविद्य, वेदत्रयी का ज्ञाता (ब्रह्म सर्वविद्यः सर्व वेदितुमर्हति) ।

(११) ब्रह्मा परिवृढः श्रुततः (वेद के अनुसार ब्रह्म ही नेता या परिवृढ़ है । प्रभौ परिवृढ़ पा.७.२.२१ से निपात । अमर कोष में भी कहा है ।

'प्रभु परिवृढोऽधिपः'

(१२) सर्वव्यापी ब्रह्मा 'ब्रह्म परिवृढं सर्वतः' यहां वृह् धातु व्याप्ति अर्थ में आया है । वेदान्तियों का ब्रह्म और वेदों का ब्रह्म दोनों ही परिवृढ़ और सर्व व्यापी है ।

उपनिषदों में ब्रह्म की विवेचना विविध प्रकार से की गई है । जैसे - (१) अन्तमेव ब्रह्म, (२) जलमेव ब्रह्म, (३) प्राणा एव ब्रह्म (४)ओमेव ब्रह्म इत्यादि

(१३) धन, ऋक् , यजुः, अथर्व और साम वेद भी धन ही है ।

आधुनिक अर्थ -(१) सर्वव्यापी ब्रह्म, (२) ऋचा, स्तुति, (३) शास्त्र, (४) वेद, (५) ओम् (६) ब्राह्मण जाति, (७) ब्रह्म शक्ति, (८) तपस्या (९) ब्रह्मचर्य, (१०) पतिव्रत्य (११) सुन्दरम्, (१२) मोक्ष, (१३) ब्रह्मविद्या, अध्यात्म शास्त्र, (१४) वेदों के ब्राह्मण ग्रन्थ (१५) धन

पुल्लिंग होने पर अर्थ - (१) ब्रह्मा, विधि, स्रष्टा, (२) ब्राह्मण, (३) भाव (४) ब्रह्म नामक, ऋत्विज् (५) वेदत्रयी या ज्ञाता, (६) सूर्य (७) बुद्धि (८) सात ऋषियों का एक विशेषण मरीचि, अत्रि, अंगिरस; पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ ये ही सात प्रजापति हैं (९) बृहस्पति का एक नाम, (१०) शिव का एक नाम

ब्रह्मणस्पति - ब्रह्मणः पाता वा पालयिता वा (ब्रह्म, अन्न या धन का पालक । ब्रह्मणस्पति वर्षा द्वारा औषधियों का पालन करता है । अर्थ है- (१) माध्यमिक देव-इन्द्र , (२) परमात्मा ।

'अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिः
मधुधारमभि यमोजसातृणत् '

ऋ. २.२४.४, नि. १०.१३.

मन्थर के समान कठोर मुख वाले भूमि की ओर आते जल धारा वाले जिस मेघ को ब्रह्मणस्पति इन्द्र ने बल से अभिहत किया ।

(३) वेदपति परमेश्वर-दया.

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते '

ऋ. १.१८.१; साम. १.१३९; वाज.सं. ३.२८; तै.सं. १.५.६.४; मै. सं. १.५.४; ७०.१३, का.सं. ७.२.९, श.ब्रा. २.३.४.३५, नि. ६.१०.

ब्रह्मप्रिय - ईश्वर या वेद जिस का प्रिय हो

'ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव '

ऋ. १.८३.२, अ. २०.२५.२

जैसे वर स्वयम्वर में जाकर कन्या की अभिलाषा करते हैं उसी प्रकार वे भी मिलकर वेदज्ञान, परमेश्वर और ऐश्वर्य से पूर्ण उनके प्रिय विद्वान् पुरुष को प्रेमपूर्वक प्राप्त करते हैं, उनकी सेवा सुश्रूषा करते है ।

ब्रह्मप्रियः- वेद और वेदज्ञ ब्राह्मणों का प्रिय ।

'ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव '

ऋ. १.८३.२; अ. २०.२५.२

'ब्रह्मप्रियं पीपयन् सस्मिन्नूधन् '

ऋ. १.१५२.६

ब्रह्मभाग- वेदज्ञ का भाग

'ये मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोः '

ऋ. १४.२.४२

ब्रह्मयुज् - (१) ब्रह्म में युक्त लीन योगी । (२) अन्न वेतनादि पर नियुक्त ।

'ब्रह्मयुजोहरय इन्द्र केशिवः '

ऋ. ८.१.२४; साम. १.२४५; २.७४१

(३) महान् ऐश्वर्य एवं अन्न से युक्त, उत्तम पद पर नियुक्त , (५) वेद का अभ्यास और परमात्मा में योगाभ्यास करने वाला ।

'ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः '

ऋ. १.१७७.२

ब्रह्मयुजा- द्वि.व.। महान् शक्ति आत्मा के साथ युक्त होने वाले प्राण और अपान ।

'ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि '

ऋ. ३.३५.४; अ. २०.८६.१; ऐ.ब्रा. ६.२२.४; कौ.ब्रा. २९.४; आश्व.श्रौ.सू. ७.४.६.

ब्रह्मयुजा हरी- पर ब्रह्म के साथ योग द्वारा और युक्त होने वाले प्राण और अपान ।

'आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी '

ऋ. ८.१७.२; अ. २०.३.२; ३८.२; ४७.८; साम. २.१७; मै.सं. २.१३.९; १५८.१०

ब्रह्मयोग- वेद का विज्ञानमय उपाय ।

'ब्रह्मयोगैर्वा युनज्मि '

अ. १०.५.१ स

ब्रह्मलोक - (१) सबको बांधने वाले परम बंधु रूप परम तेजोमय स्वरूप में आश्रय पाने वाला ब्रह्मज्ञानी (२)महान् परमेश्वर पद

'मह्यं दत्त्वा व्रजंत ब्रह्मलोकम् '

अ. १९.७१.१

ब्रह्मवनिः - ब्राह्मणो को वृत्ति देने वाला

'ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि '

वाज.सं. १.१७,१८;५.२७;६.३

ब्रह्मवर्चस -(१)ब्रह्मवर्चस, (१) वीर्यरक्षा (३) वेदज्ञान की वृद्धि

'ब्रह्मवर्चसायाभिषिञ्चामि '

वाज.सं. २०.३

ब्रह्मवर्चसी - (१) ब्रह्मवर्चस्वी, (२) वीर्यवान्

'आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम '

वाज.सं. २२.२२; वाज.सं. (काण्व) २४.३०; तै.सं. ७.५.१८.१; मै.सं. ३.१२.६;१६२.७; तै.ब्रा. ३.८.१३.१;१८.५.

'ब्रह्मवर्चसी उपजीवनीयो भवति '

अ. ८.१०.१६

ब्रह्मब्रह्म - (१) सब प्रकार का ब्रह्म ज्ञान (२)सब प्रकार का अन्न

'ब्रह्म ब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः

ऋ. ९.७७.३

ब्रह्मवादी - वेद का उपदेष्टा, ब्रह्मवादी

'इति ब्रह्मवादिनो वदन्ति'

अ.१५.१ (१).८

ब्रह्मवाह् - (१) अन्न सम्पादन करने वाली क्रिया, (२) ब्रह्म की प्राप्ति कराने वाली क्रिया, (३) ऋक्, यजुः और सामवेद के स्वर सौष्ठव से युक्त, (४)अन्न या हवि वहन करने में समर्थ

'इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्ते
आ बर्हिः सीद'

ऋ. ३.४१.३ अ.२०.२३.३

ब्रह्मवाहाः - (१) महान् धन, ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र को धारण करने वाला, (२) ब्रह्मवेद को धारण करने वाला विद्वान्। (३) ब्रह्म अर्थात् वेद के विद्वान् ब्रह्माणों के ज्ञान बल से वहन करने योग्य या धारण करने योग्य क्षत्रिय, (४) वेद के विद्वानों को धारण करने वाला।

ब्रह्मवृद्धौ- ब्रह्म का वेदज्ञान से परिपुष्ट दो प्रकार की अग्नि।

'ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ'

अ. १२.१.४९

ब्रह्मशंसित- ब्रह्म अर्थात् वेद के ज्ञान से तीक्ष्ण।

'तिग्महेती ब्रह्मशंसिते'

अ. ८.३.२५

ब्रह्मशंसिता- ब्रह्म, या धनैश्वर्य की प्राप्ति, के लिए अति तीक्ष्ण सेना।

'अवसृष्टा परापत्
शरव्ये ब्रह्मशंसिते'

ऋ. ६.७५.१६; अ. ३.१९.८; साम. २.१२१३; वाज.सं. १७.४५; तै.सं. ४.६.४.४

ब्रह्मशुंभित - ब्रह्म-परमेश्वर द्वारा शुद्ध किया हुआ।

'यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः'

अ. ४.२४.४

ब्रह्महत्या- (१) वेदज्ञान के विनाश का निवारण, (२) महान् ऐश्वर्य की हत्या अर्थात् प्राप्ति का उपाय।

'ब्रह्महत्यायै स्वाहा'

वाज.सं. ३९.१३; तै.सं. १.४.३५.१; तै.आ. ३.२०.१; मा.श्रौ.सू. ९.२.५

ब्रह्मा- (१) प्रजा वृद्धि करने वाला पति।

'अग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता'

ऋ. ७.७.५

(२) वृद्धि शील जीव।

'उर्वश्या ब्रह्मयन् मनसोऽधिजातः'

ऋ. ७.३३.११; नि. ५.१४

(३) ब्रह्मा, (४) वेदज्ञपुरुष,

'चतुःश्रृंगोऽवमीद् गौर एतत्'

ऋ. ४.५८.२; वाज.सं. १७.९०; मै.सं. १.६.२; ८७.१६; का.सं. ४०.७; तै.आ. १०.१०.२

(५) यज्ञ का ब्राह्मण, (६) ब्रह्म ज्ञान।

'मोषु ब्रह्मेव तन्द्रयुः'

ऋ. ८.९२.३०; अ. २०.६०.३; साम. २.१७६.

(६) होता आदि सोलह ऋत्विजों में चार प्रधान हैं - होता, उद्गाता, ब्रह्मा और अध्वर्यु

ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्याम्

ऋ. ८.२.२४

एक सर्वज्ञ ब्रह्म (त्वः ब्रह्म) तरह-तरह के कर्त्तव्य कर्म के सम्बन्ध में (जाते-जाते) ज्ञान देने वाली बात या आत्म विज्ञान (विद्याम्) कहता है (वदति)।

ब्रह्माग्निः- ब्रह्मोपासना।

'व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो'

वाज.सं. ४.११

ब्रह्माणः- (१) ब्राह्मण, (२) यज्ञकर्त्ता

'सोमं यं ब्रह्मणोविदुः
न तस्यास्तीति कश्चन'

ऋ. १०.८५.३, अ. १४.१.३, नि. ११.४

जिस सोम को ब्राह्मण या यज्ञकर्त्ता जानते हैं उसे कोई यज्ञ विमुख पान नहीं करता।

ब्रह्माहुतौ- ब्रह्म वेदज्ञ विद्वान् द्वारा आहुति दिए गए दो प्रकार की अग्नि।

'ब्रह्मवृद्धौ ब्रह्माहुतौ'

अ. १३.१.४९

ब्रह्मी- ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाली वेदवाणी।

'अभि ब्रह्मीरनूषत'

ऋ. ९.३३.५; साम. २.२२०

ब्रह्मौदन- (१) ब्राह्मणशक्ति।

'ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः'

अ. ११.१.३

(२) ब्रह्मरूप शक्ति।

'ब्रह्मौदनं विश्वजितं पचामि'

अ. ४.३५.७

बाकुर- (१) तेजस्वी, प्रकाशमान सूर्य, (२) सूर्यवत् प्रकाशमान
'धमन्ति बाकुरं दृतिम्'
ऋ. ९.१.८, जै.ब्रा. २.३.९१

बाढ - बह् + घञ् = बाढ । (१) गुरुद्वारा दिए और शिष्य द्वारा प्राप्त किए जाते समय ।
'बाढे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती'
ऋ. १.१८१.७
(२) प्रशस्त बल - दया. ।
(३) उत्तम कर्म-ज.दे.श. । दे. 'बाढ़ सृत्वा' 'विसृष्टराति'

बाढ सृत्वा- (१) उत्तम कर्मों का करने वाला, (२) प्रशस्त बल से चलने वाला-दया. । (प्रशस्त बलेन सरति) ।

बाध् - बाधा, रुकावट, रोकना
'भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति'
ऋ. १.९१.२, अ. २०.३५.२.
मैं शत्रुओं को ताड़ना करने और रोकने के लिए (आङ्कषं बाधे) उत्तम रीति से जाने वाले या शत्रु का वर्जन करने वाले यान आदि वाहन और स्तुति योग्य मान और आदर पद को प्रदान करूँ ।

बाधित- पीड़ित, खण्डित वंश वाला ।
'ते वायवे मनवे बाधिताय'
ऋ. ७.९१.१; मै.सं. ४.१४.२: २१६.१२.

बार्हत- शक्तिशाली पुरुष ।
'बार्हतैः सोम रक्षितः'
ऋ. १०.८५.४; अ. १४.१.५

बार्हत् - (१) बृहती अर्थात् वेद वाणी का ज्ञाता विद्वान् (२) वेद और ब्रह्म का उपासक
'बार्हतैः सोम रक्षितः'
ऋ. १०.८५.४, अ. १४.१.५.

बार्हत्सामा- जाया, स्त्री ।
'वि जिहीष्व बार्हत्सामे'
अ. ५.२५.९

बार्हस्पत्य - (१) बृहत् महान् लोकों का स्वामी -परमेश्वर,
(२) बृहस्पति का पुत्र ऋषभ ।
'बार्हस्पत्य उस्त्रियस्तन्तु मातान्'
अ. ९.४.१.

बाल - (१) बालक, बच्चा। बालो बलवर्ती भर्तव्यो भवति (बालक दूसरे के बल से भर्तव्य अर्थात् पालनीय होता है) ।
(२) अम्बा अस्मै अलं भवति (बालक के लिए अम्बा ही पर्याप्त है) ।
(३) अम्बा अस्मै बलं भवति (अम्बा ही बालक का बल है) । (४) बालो वा प्रतिषेधः व्यवहितः (अबल से ही बल हो गया) ।(५) औषधि,
'बालेभ्यः शफेभ्यः रूपायाघ्न्ये ते नमः'
अ. १०.१०.१

बाल् - (१) वर्षा का शब्द ।
'वर्षेणोक्षन्तु बालिति'

बाष्कल- ऋग्वेद के आठ स्थानों में एक ।
अ. १८.२.२२

बाहृङ्क, बाहुवङ्क- (१) बाहु के समान रूप वाला अस्त्र ।
(२) सायण के अनुसार बाहुवंक पाठ है जिसका अर्थ बाहुओं को बांधने वाला है ।
'उरुग्राहेर्बाह्वङ्कैः'
अ. ११.९.१२

बाहु- पु.। (१) हाथ, बांह ।
'उप बर्बृहि वृषभाय बाहुम्'
ऋ. १०.१०.१०; अ. १८.१.११; नि. ४.२०
'अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुम्'
ऋ. ६.७५.१४; वाज.सं. २९.५१; तै.सं. ४.६.६.५; मै.सं. ३.१६.३ : १८७.४; का.सं. (अश्व.) ६.१; आश्व.गृ.सू. ३.१२.११; नि. ९.१५.
हे हाथ में बांधे जाने वाला हस्तघ्न, तू प्रकोष्ठ में चारों तरफ इसी प्रकार लिपटा हुआ है जैसे सर्प अपने शरीर से अपने को लपेट देता है ।

बाहुक्षद् - (१) बाहु से नाश करने वाला (२) बाधित या पीड़ित करने वाले साधनों से दूसरों का नाश करने वाला ।
'बाहुक्षदः शरवे पत्पमानान्'
ऋ. १०.२७.६

बाहुच्युता- परमेश्वर की बाहुओं से प्रेरित की हुई पृथ्वी ।
'बाहुच्युता पृथिवी द्यामिवोपरि'
अ. १८.३.२५-२८; ३०-३५

बाहुजूत- बाहुबलशाली ।
'युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतः'
ऋ. ५.५८.४

बाहुता- दो बाहु
'ता बाहुता न दंसना रथर्यतः'
ऋ. ८.१०१.२
बाहुमान् - बांधने, पीड़ा करने में पूरा सामर्थ्यवान्
'प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान्'
अ. १.७.४
बाहुवृक्तः- बाहुबल से छेदन भेदन करने में समर्थ ।
'बाहुवृक्तः श्रुतवित् तर्यो वः सचा'
ऋ. ५.४४.१२
बाहुशर्धी- (१) बाहुबल से शत्रुओं को पराजित करने वाला ।
'संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्धी'
ऋ. १०.१०३.३; अ. १९.१३.४; साम. २.१२०१; वाज.सं. १७.३५; तै.सं. ४.६.४.१; मै.सं. २.१०.४: १३५.१४; का.सं. १८.५.
बाह्वोजाः- बाहुबल वाला ।
'इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसः'
ऋ. १.१३५.९
ब्राह्म- ब्रह्म सम्बन्धी ।
'रुचं ब्राह्मं जनयन्तः'
वाज.सं. ३१.२१; तै.आ. ३.१३.२
ब्राह्मण- (१) विष चिकित्सा के लिए एक औषधि । ब्राह्मणी ब्राह्मण कन्द गृष्टि नामक ओषधि है जो विष, पित्त और कफ को दूर करने वाला है । विष्वक् सेना वाराही, कौमारी, ब्रह्मपत्री, त्रिनेत्र और अमृत आदि इसी के नाम हैं । राज निघण्टु में लिखा है-वाराही तिक्त कटुका विषपित्तकफा पहा कुष्ट मेघ कृमिहरा वृष्या वल्या रसायनी
'ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमः'
अ. ४.६.१.
(२) ब्रह्म और वेद का ज्ञाता ब्राह्मण ।
'ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः'
ऋ. ६.७५.१०; वाज.सं. २९.४७; तै.सं. ४.६.६.३; मै.सं. ३.१६.३ : १८६.१५; का.सं. (अश्व.) ६.१.
ब्राह्मि- ब्रह्म अथवा वेद द्वारा प्रतिपादित ।
'नमो रुचाय ब्राह्मये'
वाज.सं. ३१.२०; तै.आ. ३.१३.२.
ब्राह्मणाः- (१) सदा बोलने से समर्थ मेढक का विशेषण ।
'संवत्सरं शशयाना
ब्राह्मणा व्रतचारिणः'
ऋ. ७.१०३.१, अ. ४.१५.१३, नि. ९.६.
एक वर्ष तक सुप्त या तपस्या करते हुए (शशयाना) बोलने में समर्थ होने पर भी (ब्राह्मणाः) बोली पर संयम रखने वाले (व्रतचारिणाः) मेढक....
(२) होता, (३) ब्रह्मविद् (४) ब्राह्मण की जाति ।
बिठ - भी (भयार्थक) + ठ = भीठ = विठ । अर्थ है । (१) अन्तरिक्ष , (२) गुण
बिन्दुः - वीर्य
'हिरण्ययो बिन्दुः'
अ. ९.१.२१
बिभर्षि - भृ (भरण करना, धारण करना के म.पु.ए.व. का रूप) अर्थ धारण करती है ।
'खिद्र बिभर्षि पृथिवि'
ऋ. ५.८४.१, तै.सं. २.२.१२.२, मै.सं. ४.१२.२; १८१.१ का.सं. १०.१.२. आप मं. पा. २.१८.९, नि. ११.३७
हे विद्युत् ! तू मेघों को छेदने वाला बल धारण करती है ।
बिभ्यत् - डरता हुआ ।
ऋणा वा बिभ्यद्धनमिच्छमानः
अन्येषामस्तमुप नक्त मेति'
ऋ. १०.३४.१
ऋणग्रस्त जुआड़ी धन की इच्छा से दूसरों को घर रात में चोरी के लिए जाता है ।
बिभ्रत् - धारण करता हुआ ।
बिभ्रती- धारण करती हुई ।
'आ यस्मिन् तस्थौ सुरणानि बिभ्रती'
ऋ. ५.५६.८; नि. ११.५०
जलों को धारण करती हुई ।
बिभीवान्- भयकारक साधन वाला ।
'आवर्तो न शश्रवाणो बिभीवान्'
ऋ. १०. १०५.३
बिलम् - (१) खेत की हराई ।
'यवः पक्वः परो बिलम्'
अ. २०.१२७.१०
बिल्म - (१) प्रदीप्त साधन (२) चीरने योग्य काष्ठ ।
'सं सानु मार्ज्मि दिधिषामि बिल्मैः'

ऋ. २.३५.१२
(३) बेल वृक्ष,
(४) शत्रु भेदन में समर्थ ।
'महान् वै भद्रो बिल्वः'
अ. २०.१३६.१५; शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.८

बिल – (१) घर, लैटिन में Villa
'त्सरन् विषक्तं बिल आससाद'
अ. १२.३.१३.
(२) (न) मर्म, (३) सूक्ष्म भेद
'बिलं विष्यामि मायया'
अ. १९.६८.१

बिष्कला– विस (प्रेरणा अर्थ में) + कला । (१) गर्भ या गर्भ सदृश बालक (२) बालक को बाहर फेंकने वाली माता ।
'अव त्वं बिष्कले सृज'
अ. १.११.३

बिस– कमल ।
बिसं मृणालमव्जादि–अमरकोष
'नाण्डीकं जायते बिसम्'
अ. ५.१७.१६

बिसखा– बिसं खनति इति बिसखा (कमल को खनने वाला) ।
बिस + खन् + विट् = बिसखा
'जनसन खन क्रमगमो विट्'
पा. ३.२.६७
से विट् और 'विट्वनाः' से आत्व
इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्
सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः'
ऋ. ६.६१.२, मै.सं. ४.१४.७ : २२६.९, का.सं. ४.१६, तै.ब्रा. २. ८.२.८, नि. २.२४.
यह सरस्वती नदी अपनी महती बलवती ऊर्मियों से (तविषेभिः शुष्मेभि ऊर्मिभिः) पहाड़ों की चोटी को कमल खनने वालों की तरह (बिसखा इव) काटती है (अरुजत्) ।

बीजः – बीज ।
'कृते योनौ वपतेह बीजम्'
ऋ. १०.१०१.३; अ. ३.१७.२; वाज.सं. १२.६८; तै.सं. ४.२.५.५; मै.सं. २.७.१२: ९१.१५; का.सं. १६.१२, श.ब्रा. ७.२.२.५.
जोतने के बाद खेत में बीज बोओ ।

बीभत्सा – बीभत्स क्रिया ।
'बीभत्सायै पौल्कसम्'
वाज.सं. ३०.१७; तै.ब्रा. ३.४.१.४.

बीभत्सुः – (१) भोगविलासादि में ग्लानि करने वाला साधक ।
'बीभत्सूनां सयुजं हंसमाहुः'
ऋ. १०.१२४.९

बीभत्सुः – (१) बन्धन चाहती हुई स्त्री (२) पृथिवी, (३) प्रकृति
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा'
ऋ. १.१६४.८, अ. ९.९.८.

बीरिटः– भियो वा भासो वा तति (भय या भास् –प्रकाश जहां तना हुआ है वह अन्तरिक्ष) ।
'बीरिटमन्तरिक्षम्'
भीः अस्मिन् तन्यते इति भीतननम्
(इस में भय तना हुआ है । अतः यह भीतनन है) भीतनन से बीरिट हुआ है । निरालम्ब होने से सभी आकाश से डरते हैं ।
'नक्षत्रादीनां भासः अत्रतन्यते
तत् एतत् भास्तननम्' (नक्षत्रादिकों का प्रकाश इसमें रहता है अतः यह भास्तनन है । 'भास्तनन' से ही 'बीरिट' हो गया है ।
'आ विश्पतीव बीरिट इयाते'
ऋ. ७.३९.२, वाज.सं. ३३.३४, नि. ५.२८.
अन्तरिक्ष में (बीरिटे) प्रजाजनों के पालक एवं रक्षक की तरह (विश्पती इव) वायु और आदित्य आते हैं (आ इयाते) ।

बुद्बुदयाशुः– जल के बुलबुले के समान नष्ट हो जाने वाला ।
'सर्वे बुद्बुदयाशवः'
ऋ. १०.१५५.४; अ. २०.१३७.१

बुध्न – (१) बध् + नक् = बुध्न । बद्धाः अस्मिन् धृता आप इति बध्नः अन्तरिक्षम् । (इस में जल बंधे रहते हैं अतः यह अन्तरिक्ष है) ।
(२) बन्धन, (३) शरीर । शरीर में भी प्राण बंधे रहते हैं । (४) शिर – इसमें प्राण या ज्ञानेन्द्रिय बंधें रहते हैं ।
आधुनिक अर्थ – (१) नौका, (२) बर्तन का पेन्दा, (३) पेड़ की जड़, (४) निम्नतम भाग, (५) शिव का एक विशेषण । बुध्न्य भी शिव का विशेषण है । (६) बांधने वाला केन्द्र
'नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषाम्'
ऋ. १.२४.७
इन सबों को बांधने वाला केन्द्र ऊपर ही है ।

बुध्न्य - (१) बुध्ने भवः बुध्न्यः । बुध्न + यत् = बुध्न्य । बुध्न का अर्थ अन्तरिक्ष है । अन्तरिक्ष में निवास करने वाला मेघ ।
(बुध्नमन्तरिक्षम् तन्निवासात्)

बुध्न्यवसु- (१) अन्तरिक्ष में छाया अन्धकार (२) भृत्यादि को कार्य में बांधने वाला ऐश्वर्य
'आ देवो ददे बुध्न्या वसूनि'
ऋ. ७.६.७.

बुध्न्य- (१)जीवों में स्थित मेघ, (२) सबके परम मूल में स्थिति सर्वाश्रय परमेश्वर ।
'उत नोऽहिर्बुध्न्यो मयस्कः'
ऋ. १.१८६.५

बुध्न्या- आधार भूत आकाश में प्रकट होने वाली ।
' स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः '
अ. ४.१.१; ५.६.१; साम. १.३२१; वाज.सं. १३.३; मै.सं. २.७. १५,९६.१२ का.सं. १६.१५; ३८.१४, श.ब्रा. ७.४.१.१४; आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३; शां.श्रौ.सू. ५.९.५.

बुध्न - बांधना, बांध ।
'बुध्ने नदीनां रजस्सु सीदन्'
ऋ. ७.३४.१६, नि. १०.४१
नदियों या जलों के बांधने के लिए ।
- (२) मूल प्रकृति ।
'पुरस्ताद् बुध्न आततः'
ऋ. १०.१३५.६
(३) अन्तरिक्ष ।
'अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे' .
ऋ. ७.३४.१६; नि. १०.४४
हे स्तोता, जलजात इन्द्र को स्त्रोतों से तू स्तुति करता है ।
आधुनिक अर्थ-नौका, बर्तन का पेन्दा, पेड़ की जड़, निम्नतम भाग, शिव का एक विशेषण ।

बुधानः- बुध (ण्यन्त) के लट् में कानच् प्रत्यय करने से 'बुधान' हुआ है । अर्थ है- बोधित करता हुआ ।
'कर्णा बुधानः शुचमान आयोः'
ऋ. ४.२३.८, नि. १०.४१.

बुन्द - बुन्द इषुर्भवति, बुन्दो वा भिन्दोवा भयदो वा, भासमानो द्रवति इति वा
अर्थ - (१) बाण,
(२) दुष्टों को भेदन करने वाला आयुध,
(३) भयप्रद सैन्य
'आ बुन्दं वृत्रहा ददे'
ऋ. ८.४५.४, साम. १.२१६
बुन्द शक इषु का वाचक है । यह या तो 'बुन्द' से या 'भिन्द' से या भयद से या भासमान' से या 'द्रवत्' से हुआ है ।
'साधुर्बुन्दो हिरण्ययः'
ऋ. ८.७७.११, नि. ६.३३.
बाण सोने का बना और शत्रुओं का साधक है (साधुः)
(४) वज्र ।
'इन्द्रो बुन्दं स्वाततम्'
ऋ. ८.७७.६, नि. ६.३४.
इन्द्र ने अच्छी तरह से खींचे वज्र को चलाया (स्वाततम् बुन्दम् निराविध्यत्) ।
देवराज के अनुसार 'बुन्द' वज्र का वाचक है । बृङ् (संभजन) + दन् = बुन्द (धातु का बुन हो जाता है ।) भिद् + दन् = बुन्द । बुन्द भय होता है । बुन्द छूटने पर चमकता है । बुन्द धनुष से मानो द्रवता है । इन अनेक अर्थों में बुन्द' की व्युत्पत्ति की गई है । भिदि्र' + घञ् = भिन्द = बुन्द, भास् + द्रव = भिन्द - बुन्द्र भास् + द्रव = बुन्द ।

बुसम् - जल ।
'आविः स्वः कृणुते गृहते बुसम्'
ऋ. १०.२७.२४; नि. ५.१९
वह आदित्य सदा जगत् को प्रकाशित करता है (स्वः आदिः कुरुते) तथा अपनी रश्मियों से जल को छिपाता है ।

बुस्- ब्रू (शब्द कर्मक) या 'भ्रस्त + स = बुस । अर्थ है उदक, जल । जल के बिना मुख सूख जाने से मनुष्य बोल नहीं सकता है । जल गिरने के समय शब्द करता है ।
अथवा - भ्रंस + अच् = बुस
बुस अर्थात् उदक मेघ से गिरता है । या आदित्य बुस को वर्षाते हुए मेघ से गिराते हैं ।

ब्रुवाणः- बोलता हुआ । 'ब्रू' के लट् में 'शानच्' प्रत्यय कर 'ब्रुवाण' बना है ।

बृबुः- (१) संशयोच्छेदक विद्वान् (२) काट काट कर नए पदार्थ बनाने वाला शिल्पी (३) शत्रुओं का उच्छेदक वीर ।
'अधिबृबुः पणीनाम्'
ऋ. ६.४५.३१;

बृबूकम् - जल ।
'द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम्'
ऋ. १०.२७.२३; नि. २.२२.
आदित्य और वायु ये दो औषधियों के पोषक रस को (पुरीषम्) एवं जल को (बृबूकम्) इस पृथ्वी से आदित्य मण्डल में ले जाते हैं । (वहतः) ।

बृहत् - (१) विविध व्यवहारों का नियमन (२) बड़े राष्ट्रका प्रबन्ध, (३) यह लोक
बृहच्छन्दः
वाज.सं. १५.५; तै.सं. ४.३.१२.२, मै.सं. २.८.७, १११.१६, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.८.२.५.

बृबूक - ब्रू (शब्द करना) + ऊक् = बृबूक । ब्रू का निपातन से ' बृब्रू' हो गया है । अथवा - भ्रंस् + ऊक् = बृबूक् (निपातन से) । अर्थ है जल । जल गिरने के समय शब्द करता है या जल मेघ से गिरता है ।

बृबदुक्थ - (१) बृबत् + उक्थ = बृबदुक्थ ।
'बृबदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये
ऋ. ८.३२.१०, साम. १.२१७, नि. ६.१७.
(२) वच् + कथन = उक्थ । बृबत् का महत् अर्थ में निपातन हुआ है और ह का व हो गया है । बृहत् महत् उक्थं शस्त्रं साम विशेषः यस्य स्तुतौ स बृहदुक्थः (जिसकी स्तुति की ऋचा बड़ी है) ।
(३) अथवा - वक्तव्यम् उक्थम् अस्मै (इस के लिये स्तोत्र कहना चाहिए) । ब्रू + अति = बृबत्, बृबत् + उक्थ = वृबदुक्थ
(४) विद्वान् -दया.
(५) महदुक्थ (बड़ी ऋचा) या जिस के लिए ऋचा कही जाय वह बृबदुक्था है । 'वक्तव्यम् अस्मै उक्थम्'
'बृबदुक्थं हवामहे
सृप्रकरस्नमूतये ।
साधु कृण्वन्तमवसे'
ऋ. ८.३२.१०
हम स्तुत्य या बृहदुक्थ वाले इन्द्र का आह्वान् करते हैं । हम रक्षा के लिए दीर्घ बाहु पसारे हुए (सृप्र करस्नम्) पुनः लोकरक्षा के लिए कल्याण कारी (अवसे साधु कृण्वन्तम्) या अन्न के निमित्त (अवसे) स्तुत्य या बृहदुक्थ वाले इन्द्र को स्वामी दयानन्द के अनुसार विद्वान् को (बृहदुक्थम्) आह्वान् करते हैं ।

बृहत् - बह् + अति = बृहत् । सब ओर बढ़ा हुआ (परिवृढं भवति) सर्वतः व्याप्तम् (सर्वत्र व्याप्त) । अर्थ - (१) महत् , ऊर्जित, प्रभूत, (२) ब्रह्म ब्रह्म सर्वत्रव्याप्त है । 'बृहत् इति महत् नाम धेमम् '(बृहत् महत् का नाम है) (३) महान् , बड़ा ।
'कवि शस्तो बृहता भानुनागा
हव्या जुषस्व मेधिर'
ऋ. ३.२१.४, मै.सं. ४.१३.५; २०४.१५; का.सं. १६.२१, ऐ.ब्रा. २.१२.१५; तै.ब्रा. ३.६.७.२.
हे विद्वानों से प्रशंसित यज्ञवाम् अग्ने तू बृहत् प्रकाश के साथ आकर हव्यों का भोग कर ।
(२) बृहत् नामक साम ।
'इन्द्रामिद् गाथिनो बृहत्'
ऋ. १.७.१; अ. २०.३८.४; ४७. ४; ७०.७, साम. १.१९८;२. १४६, तै. सं. १.६.१२.२. मै.सं. २.१३.६, १५४.१५, का.सं. ८.१६; ३९,१२.
हे उद्गाताओ (गाथिनः), तुम बृहत् नामक साम से (बृहत्) इन्द्र का ही अनुष्ठान करो ।

बृहत् क्षय - (१) बड़ा भारी निवास योग्य सभा भवन, (२) राष्ट्र
'क्षयं बृहन्तं परिभूषति द्युभिः
ऋ. ३.३.२

बृहत् गिरयः - (१) गुणों में बड़े, (२) पर्वत या मेघ के समान सुखों की धारा बहाने वाले वायुगण
'बृहद् गिरयो बृहदुक्षमाणाः'
ऋ. ५.५७.८; ५८.८

बृहच्छन्दाः - बड़ी लम्बी चौड़ी छतों से ढंकी शाला ।
'धरुण्यसि शाले बृहच्छन्दाः'
अ. ३.१२.३

बृहच्छवस् - (१) महायशस्वी,
(२) महद्धवि ।

बृहच्छेप - प्रदीप्ताङ्ग ।
'बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार'
अ. ११.५.१२

बृहत् - (१) पैष्ठय, (२) द्यौ, (३) स्वर्ग, (४) प्राण, (५) क्षत्र, (६) अहः
'तं बृहच्च रथन्तरं च आदित्याश्च

विश्वे च देवा अनुव्यचलन्'
अ. १५.२.२.
(७) महान् तत्व
'बृहद् बृहत्या निर्मितम्'
अ. ८.९.४

बृहत्केतुः – (१) बहुत प्रकाश वाला या बड़ी धूमध्वजा वाला अग्नि, (२) बड़े ज्ञान या ध्वजा वाला ।
'बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतम्'
ऋ. ५.८.२.

बृहत् गर्त – (१) बड़ा भारी सूर्य, (२) मेघ, (३) बड़ा भारी सभापति का पद, (४) महान् रथ
'बृहन्तं गर्तमाशाते'
ऋ. ५.६८.५; साम. २.८१७

बृहत् पलाश – (१) बड़े ज्ञानसम्पन्न पुरुषों से सम्पन्न राजशक्ति (२) बड़े पत्तों वाली
'बृहत्पलाशे सुभगे'
अ. ६.३०.३

बृहत् सत्य – महान् सत्य ।
'सत्यं बृहद् ऋतुमुग्रं दीक्षा तपः'
अ. १२.१.१; मै.सं. ४.१४.११: २३३.८

बृहत्सामा – बड़ा विशाल, आदित्य ब्रह्मचारी ।
'ये बृहत्सामानमाङ्गिरसम्'
अ. ५.१९.२

बृहत्सुम्नः – बड़े भारी सुख एवं आसन का स्वामी-सूर्य परमेश्वर
'बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनः'
ऋ. ४.५३.६

बृहती – (१) बड़ी (२) दूर रहती हुई रात्रि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त
'दिवः सदांसि बृहती वि तिष्ठसे'
ऋ. खि. १०.१२७.१; अ. १९.४७.१; वाज.सं. ३४.३२; नि. ९.२९
हे रात्रि, दूर रहती हुई भी तू स्वर्ग के भवनों को भी अन्धकार से व्याप्त करती है ।

बृहती – (१) वाणी ।
'पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत'
ऋ. ८.५२.९; अ. २०.११९.१; साम. २.१०२७
(२) बृहद् स्थूल प्रकृति ।
'बृहत् बृहत्या निर्मितम्'
अ. ८.९.४

बृहतीआपः – (१) शक्तिशाली प्रकृति की व्यापक तन्मात्राएं-सूक्ष्म कारणावयव,
(२) जलवत् । राष्ट्र में व्यापक प्राप्त प्रजाएं ।
'आपो हयद् बृहतीर्विश्मायन्'
ऋ. १०.१२१.७; वाज.सं. २७.२५; वाज.सं. (का.) २९.३४

बृहतीछन्दः – (१) बृहती छन्द (२) ३६ वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालक ।
'बृहती छन्द इन्द्रियम्'
वाज.सं. २१.१५; मै.सं. ३.११.११:१५८.५; का.सं. ३८.१०; तै.ब्रा. २.६.१८.२

बृहतीदिक् – सर्वोपरि दिशा, विशाल ऊर्ध्वा दिशा, बृहती दिशा
अधि पत्न्यसि बृहती दिक्
वाज.सं. १४.१३; अ. १५.१४; तै.सं. ४.३.६.२, ४.२.२.मै.सं. २.८.३:१०८.९; २.८.९: ११४.६; का.सं. १७.३; ८, २०.११; श.ब्रा. ८.३.१.१४; ६.१.९
'स बृहतीं दिशमनुव्यचलत्'
अ. १५.१ (६) १० ।

बृहदर्की – (१) बड़ी स्तुति के योग्य परम अर्धनाभि ब्रह्मशक्ति, (२) बृहत् अर्क वाली ब्रह्मतेजो रूपा, तुरीय, पाद, अमात्र, चतुर्थपाद शिव, परमशक्ति, आदि नाम से भी इसे पुकारते हैं ।

बृहद्रावा – (१) विशाल गति वाला, (२) बड़ो को भी प्राप्त होने वाला, (३) ऐसा स्वप्न, जिसमें रोगी बहुत बोले ।
'बृहद्रावासु रम्योऽधिदेवान्'
अ. १९.५६.३

बृहद्भा – (१) बड़े भारी तेज से युक्त वैश्वानर सूर्य (२) ज्ञान प्रकाश से युक्त ।
'कथा दाशेमाग्नये बृहद् भाः'
ऋ. ४.५.१

बृहद्भानुः – (१) बड़े तेजों और दीप्तियों से अति तेजस्वी परमेश्वर (२) अग्नि ।
'उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः'
ऋ. १.२७.१२; साम. २.१०१५

बृहदुक्षा – बड़े भारी राज्य कार्य को उठाने में समर्थ ।
'दीर्घतन्तुर्बृहदुक्षायमग्निः'
ऋ. १०.६९.७

बृहद्दिव - बृहत् चद्योतमानश्च बृहद्दिवः (बड़ा चमकता हुआ)। विद्युत् सहित उदक समूह अर्थात् बिजली से चमकता हुआ मेघ

बृहद्रथ- (१) विशाल यान - दया।
'यत्रा रथस्य बृहतो निधानम्'
ऋ. ३.५३.५,६,
(२) बड़े रथ या रमण साधन वाला (३) बड़े रथ से सेना से बलवान्
'अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथम्'
ऋ. १.३६.१८

(४) बड़ा भारी वेग।
'प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रथे'
ऋ. १.५७.१; अ. २०.१५.१; कौ.ब्रा. ३०.९;
(२) बहुत धन वाला

बृहद्वय - सबसे बड़ा बल।
'कि स्विदासीत् बृहद्वयः'
वाज.सं. २३.११,५३, तै.सं. ७.४.१८.१; मै.सं. ३.१२.९: १६६.४; का.सं. (अश्व.) ४.७.श.ब्रा. १३.२.६.१५

बृहद्दिवः - (१) सूर्य वत् बड़े भारी तेज को धारण करने वाला, (२) सूर्य
'आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणः'
ऋ. ५.४३.१३
(३) बड़ा भारी ज्ञान, और प्रकाश,
(४) बड़ी कामना वाला।

बृहद्दिवा - (१) बड़ी भारी कामना से युक्त (२) संसार रचने के प्रबल संकल्प से युक्त, (३) अति तेजस्वी, (४) बड़ा क्रियावान् परमेश्वर
'इडाभगो बृहद्दिवोत रोदसी'
ऋ. २.३१.४

बृहद्रेणुः - बहुत से हिंसक वीर पुरुषों का स्वामी।
'बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणाम्
एकः कुष्टीनामभवत् सहावा'
ऋ. ६.१८.२; का.सं. ८.१७

बृहन्तित्रीणि - विशाल तीन गुण-सत्व, रज और तम्
'यानि त्रीणि बृहन्ति
येषां चतुर्थं वियुनक्ति वाचम्'
अ. ८.९.३

बृहती - बृहत् + ङीष् = बृहती (बडी), द्वि.व.।
(१) उषासानक्ता का विशेषण
(२) अपने गुणों से महान् उषा और रात्रि
(३) चिरकाल तक रहने वाली उषा और रात्रि।
'दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे'
ऋ. १०.११०.६; अ. ५.१२.६, वाज.सं. २९.३१, मै.सं. ४.१३.३: २०२.६; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३, नि. ८.११.
द्युलोक से उत्पन्न, परस्पर सम्मिश्र अपने गुणों से महती तथा सुन्दर शोभा से युक्त उषा और रात्रि, (३) बृहती नामक छन्द। बृहती परि वर्हणात्। अनुष्टुप् छन्द से यह बृहती चार अक्षरों से बड़ी रहती है अतः यह बृहती है। अनुष्टुप् में ८-८ अक्षरों के चार चरण और बृहती के चतुर्थ चरण में चार अधिक अक्षर के रहने से ३६ अक्षर हो जाते हैं।

बृहन्ता- (द्वि.व.) इन्द्र के बाहुओं का विशेषण। अर्थ बड़े-बड़े लम्बायमान।
'ऋश्वा ते इन्द्र स्थविरस्य बाहू
उपस्थेयाम शरणा बृहन्ता'
ऋ. ६.४७.८; तै.ब्रा. २.७.१३.४.
हे इन्द्र! हम तुझ महान् वृद्ध या ज्ञानवयोवृद्ध के दर्शनीय, लम्बायमान, रक्षक या अश्रय देने वाले बाहुओं की सेवा करें या उन्हें प्राप्त करें।

बृहस्पतिः - बृहतः पाता वा पालयिता वा (इस महान् जगत् का रक्षक या महान् उदधि या अन्य बृहत् जलाशयों से जल लेकर पान करने वाला जल शोषक)। बृहत + पतिः = बृहस्पतिः। 'पारस्पकर प्रभृतीनि च संज्ञायाम्' (पा. ६.१.१५७) तथा 'तत् बृहतोः कर पत्योः चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च', से सुट् और त् का लोप)।
पा (पीना या पालन करना) + डति = पति। (डित् प्रत्यय के कारण 'पा' के 'आ' का लोप)
अर्थ- (१) बृहस्पति देवता -सा. (२) वेदपति परमेश्वर -दया.।
'बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत्'
ऋ. १०.९८.७, नि. २.१२.
(३) वेदज्ञ विद्वान् -दया.।
'अनर्वाणं वृषणं मन्द्रजिह्वम्
बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः'
ऋ. १.१९०.१, नि. ६.२३.
(४) सूर्य।
'बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि'

ऋ. १०.१६७.३, नि. ११.१२.
और सूर्य (बृहस्पतेः) तथा चतुर्दशीयुक्त पूर्णिमा के आश्रय में रहकर (अनुमत्याः शर्मणि)
आधुनिक अर्थ - (१) देवताओं का गुरु
(२) एक ग्रह,
(३) बृहस्पति आचार्य
(४) इन्द्र

बृहस्पति - (१) वाणी का पालक आत्मा
'बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृदयः'
अ. १६.३.५
(२) बृहस्पति ग्रह
ऋग्वेद के चतुर्थमण्डल के ५० वें सूक्त में गुरु के सम्बन्ध में स्वतन्त्र कल्पना है । तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी
'बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः
तिष्यं नक्षत्रमपि संबभूव'
तै.ब्रा. ३.१.१

बृहस्पति आत्मा - वाणी का पालक आत्मा ।
'बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृदयः'
अ. १६.३.५

बृहस्पति प्रसूता - (१) बृहस्पति के प्रसूत ओषधि, (२) विद्वान् व्यक्ति से दी गई दवा ।
'बृहस्पति प्रसूता अस्यै संदत्त वीर्यम्'
ऋ. १०.९७.१९

बृहस्पति पुरोहिताः - (१) जिसमें पुरोहित बृहस्पति हो, (२) वेदज्ञ विद्वान् को अपना महामात्य पुरोहित बनाने वाले ।
'बृहस्पति पुरोहिता देवस्य सवितुः सवे'
वाज. सं २०.११

बृहस्पतिसुतः - बृहस्पति अर्थात् बड़े विद्वान् का पुत्र । पति को उद्देश्य कर कहा गया है ।
बृहस्पतिसुतस्य देव सोम ते
वाज.सं. ८.९

बेकनाट- द्वि + एक = द्वेक = बेक । बेकेन नायति इति बेकनाटः
अर्थ - (१) बेक कहकर ब्याज पर रुपया चलाने वाला । द्वि शब्देन एक शब्देन च नाटयतिः इति बेकनाटः (जो दो एक दो एक कहकर मानों नाटक करता है) द्वि का बे और एक का क मिलाकर बेक बन गया । अर्थ है- कुसीदी 'बेकनाटाः खलु कुसीदिनो भवन्ति द्विगुण कारिणो वा द्विगुण दायिनो वा द्विगुणं कामयन्त इति वा ।' बेकनाट ब्याजजीवी हैं जो सदा एक का दो करने के फेर में ही रहते हैं । नट् + घञ् = नाट । द्वेकयोः नाटा तद्वान् (दो एक का नाटक करने वाला) ।
(लैटिन में द्वि का bi हो गया है अथवा-द्विगुण का 'वि' और 'कृ' या 'क' का 'क' लेकर 'विक' बना उसके आगे नरवाची नाट शब्द रख कर बेकनाट बना ।
ब्याज लेने वाला सूदखोर ।
'इन्द्रो विश्वान् बेकनाटां अहर्दृशे'
ऋ. ८.६६.१०, नि. ६.२६.
इन्द्र समस्त सूदखोरों तथा व्यापारियों को कर्म से ही अभिभूत करते हैं ।

बैन्द - लाभ उठाने वाला बीन नामक जाति जो तालों से मछली आदि फंसाते हैं ।
'वैशन्ताभ्यो बैन्दम्'
वाज.सं. ३०.१६

बोध - ज्ञान का बोध कराने वाल गुरु ।
बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षताम्'
अ. ८.१.१३.

बोधतु - जाने ।
'श्रृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना
ऋ. २.३२.४, अ. ७.४८.१, तै.सं. ३.३.११.५, मै.सं. ४.१२.६: १९४.१६, का.सं. १३.१६; साम.मं.ब्रा. १५.३, आप.मं.पा. २.११.१०, नि. ११.३१
सुमना राका हमारी प्रार्थना सुने और हमारा अभिप्राय स्वयं सुने ।

बोधयन्ती - जानती हुई (२) उषा का विशेषण ।
'अद्यसन्न ससतो बोधयन्ती'
ऋ. १.१२४.४; नि. ४.१६
गृहस्वामिनी की तरह सोतों को जगाती हुई (उषा) ।

बोधयिता - बोध कराने वाला गुरु, आचार्य ।

बोधिन्मनसा - ज्ञानयुक्त चित्तवाले अश्विद्वय या स्त्री पुरुष ।
'बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता'
ऋ. ५.७५.५

बोधिन्मना - बोधित् + मनाः । ज्ञान से युक्त चित्तवाला ।
'बोधिन्मना इदस्तु नः'
ऋ. ८.९३.१८

भ

भक्त - (१) परम भजन करने योग्य परमेश्वर, (२) भजन करने वाला भक्त (३) बंटा हुआ ।

भक्षः- भक्षण । भक्ष + अच् ।

'सोमस्येव मौजवतस्य भक्षः'

ऋ. १०.३४.१, नि. ९.८.

भक्षत- (१) विभजन्ते (बांटते हैं) -सा. । भज् (भाग करना) का आर्ष- प्रयोग (२) विभक्षमानाः (विभाग करते हुए)-ज.दे.श.

यहां 'भक्षत' शब्द आख्यात् होकर नाम के रूप में प्रयुक्त हुआ है और 'सुपां सु लुक्' से जस् विभक्ति का लोप हो गया है । (३) भजो, भोगो,

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत

ऋ. ८.९९.३; अ. २०.५८.१, साम. १.२६७; २.६६९, वाज.सं. ३३.४१, नि. ६.८.

जैसे सूर्य में समाश्रित रश्मियाँ सूर्य में स्थित जलों का विभाग करती हैं उसी प्रकार हे मनुष्यो ! तुम इन्हें या परमात्मा के सभी दिए धनों का उपभोग करो ।

भक्षि - दे. ।

'राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह'

ऋ. ७.४१.२; अ. ३.१६.२; वाज.सं. ३४.३५; तै.ब्रा. २.८.९.८, आप. मं. पा. १.१४.२, नि. १२.१४.

जिस भगदेव से राजा भी मुझे धन दे- ऐसी प्रार्थना करते हैं ।

भक्षीमहि- हम भोगें ।

'इषिरेण ते मनसा सुतस्य
भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः'

ऋ. ८.४८.७, का.सं. १७.१९, नि. ४.७.

हम अभिसुत सोम रस को या सृष्ट जगत् को तेरे प्रति सर्वात्म भाव से उसी प्रकार भोग करें जैसे पैतृक सम्पत्ति का ।

भगः - भज् (सेवार्थक) + घञ् = भग । भज्यते सेव्यते भोगार्थिभिः (भोगार्थियों से सेवित होता है) । अर्थ है - (१) भग नामक देव ।

वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूडती ।'

ऋ. ४.३०.२४, नि. ६.३१.

पूषा इष्ट पदार्त दे, भग इष्ट पदार्थ दे और करूडती देव इष्ट पदार्थ दे ।

(२) धन, ऐश्वर्य, ।

'आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तम्'

ऋ. ३.३०.१९; तै.ब्रा. २.५.४.१.

हे इन्द्र ! हमें तू द्युतिमान धन दे । (३) आदित्य जिस का काल सूर्योदय से पूर्ववर्ती है ।

'श्रुष्टी भगं नासत्या पुरन्धिम्'

ऋ. ७.३९.४, नि. ६.१३.

(४) ज्योति ।

'उदीरय पितरा जार आ भगम्'

ऋ. १०.११.६.

हे अग्नि ! जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी के रस के प्रति अपने को प्रेरित करता है वैसे ही तू अरणियों के प्रति या द्यौ और पृथिवी के प्रति प्रीति कर ।

जैसे अन्धकार का विनाशक सूर्य (भगः) द्यावा पृथिवी को ज्योति पहुंचाती है उसी प्रकार से विवाहित पुरुष ! तू माता पिता को सुख पहुंचा । (५) सौभाग्य, सौन्दर्य (६) स्त्री-योनि (७) धर्म । धर्म भजनीय अर्थात् सेवनीय है। (८) भजनीय अन्तरिक्ष, (९) भूमि का रस, (१०) ख, आकाश धर्म के अर्थ में -

'श्रद्धयाग्निः समिध्यते
श्रद्धया हूयते हविः
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि
वचस्या वेदयामसि'

ऋ. १०.१५१.१

श्रद्धा अर्थात् आस्तिकय वृद्धि से अग्नि अर्थात् गार्हयत्य अग्नि की पूजा की जाती है या उसे दीप्त किया जाता है । (श्रद्धया अग्निः समिध्यते); श्रद्धा से ही पुरोडाश आदि हवि अग्नि में प्रक्षिप्त किया जाता है । कहा भी है-

'ना श्रद् दधानस्य हविर्जुषन्ते देवाः'

कौ. सू. ७३.१८

भगधेय धर्म का प्रधान अंग शिर के सदृश यह श्रद्धा है । मूर्धा और मन्त्रगत वचन से ही (वचस्या) घोषित करता हूँ कि श्रद्धाहीन पुरुष के लिए धर्म नहीं है (वेदयामसि) ।

(१०) सूर्योदय से पूर्ववर्ती काल भग है । 'तस्य कालः प्राक् उत्सर्पणात्' । आदित्य के १२ नामों में भग एक है । भग को इसी से अन्धा कहते हैं; क्योंकि वह अनुदित सूर्य है । ब्राह्मण में इस का उल्लेख इस प्रकार है -

"प्रशस्ति ने इसे प्रकाश-रहित बताया। गोपथ ब्राह्मण में लिखा है:- तस्मादाहुः अन्धो वै भगः' भग प्रातः कालीन अन्धकार का अपहर्ता है।

आधुनिक अर्थ - (१) आदित्य के १२ रूपों में एक, (२) आदित्य, (३) शिव का एक रूप, (४) सौभाग्य (५) सम्पत्ति, (६) ऐश्वर्य, (७) प्रसिद्धि (८) सौन्दर्य, (९) प्रेम, (१०) कामक्रीड़ा (११) स्त्रीयोनि , (१२) धर्म, (१३) प्रयत्न (१४) निष्कामता (१५) सुन्दर, (१६) बल, (१७) सर्वव्यापित्वः (१८) उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र

(११) अदिति का पुत्र

'तस्याः अंशश्च भगश्चाजायेताम्'

तै.सं. १.१.९.२

'अंशो भगो वरुणो मित्रो अर्यमा'

अ. ९.४.२.

(१२) सेवन करने योग्य अन्न

'उदेनं भगो अग्रभीत्'

अ. ८.१.२

भगत्ति - सेवनीय उत्तम ऐश्वर्य

'वहा भगत्ति मूतये'

ऋ. ९.६५.१७, साम. २.१८५.

भगभक्त - सेवनीय पदार्थों का यथा योग्य विभाग करने वाला

'भगभक्तस्य ते वयम्
उदशेम तवावसा'

ऋ. १.२४.५.

हे प्रभो! ऐश्वर्यों के विभाग करने वाले तेरे ही हम रक्षण, पालन और ज्ञान-सामर्थ्य से उन्नत उत्कृष्ट पर को प्राप्त करें।

भगवत्तम- सबसे श्रेष्ठ ऐश्वर्य-सम्पन्न भगवान्

'नृणां च भगवत्तमः'

अ. २.९.२

भगवती - भग् + वतुप् + ङीष्। ऐश्वर्यवती, (२) प्रभूत दूध देने वाली गौ, (३) प्रभूत जल देने वाली माध्यमिका वाक्

'सूयवसाद् भगवती हि भूया'

ऋ. १.१६४.४०; अ. ७.७३,११; ९.१०.२०; ऐ.ब्रा. १.२२..१३; ५.२७.६; ७.३.३, कौ.ब्रा. ८.७.

भगवान् - (१) सर्व ऐश्वर्यों का स्वामी प्रभु।

'भग एव भगवाँ अस्तु देवाः'

ऋ. ७.४१.५, अ. ३.१६.५, वाज.सं. ३४.३८; तै.ब्रा. २.५.५.१; ८.९.८.

(२) ऐश्वर्यवान्, भग जैसे स्वामी वाला

'उतेदानीं भगवन्तः स्याम'

ऋ. ७.४१.४; अ. ३.१६.४; वाज.सं. ३४.३७, तै.ब्रा. २.८.९.८; आप.मं.पा. १.१४.४.

भगस्य स्वसा - (१) सूर्य की बहन उषा, सूर्य के समान उत्पन्न होने वाली, (२) सुख तथा सेवने योग्य ऐश्वर्यों को स्वयं प्राप्त करने या कराने वाली कुलवधू

'भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिः'
उषः सूनृते प्रथमा जरस्व'

ऋ. १.१२३.५

भगी (भगिन्)- ऐश्वर्यवान्

तेन मा भगिनं कृणु'

ऋ. ६.१२९.२, ३.

भगेविता - ऐश्वर्य के बल पर रक्षा करने वाले

'भगेविता तुर्फरी फारिवारम्'

ऋ. १०.१०६.८

भङ्गुरावत् - (१) नगर गृहादि को तोड़ने वाला। (२) व्रतादि को नष्ट करने वाला

'हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः'

ऋ. ७.१०४.७

(३) विघ्नकारी पुरुष

विषेण भङ्गुरावतः
प्रति ष्म रक्षसो दह

ऋ. १०.८७.२३, अ. ८.३.२३.

भद्र - (१) भज् + रन् = भद्र (निपातन से सिद्ध)। भजनीयं भूतानाम्' (प्राणियों का सेवनीय)। अभिद्रवणीयं भवति (अभिगमनीय है)। अर्थ है- कल्याणमय, कल्याण कारक।

(२) अथवा भू + रम् के योग से भद्र बना है। भवत् रमयति इति वा - यस्य हि तत् भवति स रमते (जिससे कल्याण होता है वही रमता है)। भू + रम् + ड = भद्र (निपातन से)

(३) कल्याण रूप जो पुरुष हैं उसका भाजन वाला ही भद्र है (भाजन वत् वा)। कल्याण का पात्र। भाजनम् अस्य इति भाजन वत् भद्रम् तैः तद्वत् भवत् भद्रम् (पृषोदरादिवत्)

(४) भाजयिता, यथायोग्य।

(५) भन्दनीय, स्तुत्य। भद्र + रन् = भद्र

'अपि भद्रे सौमनसे स्याम'

ऋ. ३.१.२१; ५९.४;६.४७.१३; १०.१४.६;,

१३१.७;, अ. ६.५५.३, ७. ९२.१; १८.१.५८, २०.१२५.७; वाज.सं. १९.५०;२०.५२.

आधुनिक अर्थ- (१) सुन्दर, (२) कल्याण प्रद, (३) सज्जन (४) प्रभाव, (५) दयालु (६) आनन्ददायक (७) स्तुत्य, (८) सौभाग्य (९) सुवर्ण, (१०) लौह, (११) बैल (१२) एक प्रकार का हस्ती, (१३) पाखण्डी, धूर्त (१४) शिव का एक नाम, (१५) मेरु पर्वत का एक नाम, (१६) एक प्रकार का कदम्ब ।

भद्रजानिः- (१) सुखकरी स्त्री वाला पुरुष, (२) सुखकरी पदार्थों को पैदा करने वाला

'मर्यासो भद्रजानयः '

ऋ. ५.६१.४

भद्रपाप- भला बुरा

'भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः '

अ. १२.१.४८

भद्रम् भद्रम् - अति सुखकरक

'भद्रं भद्रं न आ भर
इषमूर्ज शतक्रतो '

ऋ. ८.९३.२८; साम. १.१७३.

भद्रवाच्य - सुखकारी कार्य का उपदेश

'भद्रवाच्याय प्रेषितः '

वाज.सं. २१.६१

भद्रव्रातः- कल्याण कारी जन समूहों का नायक

'भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षाम् '

ऋ. १०.४७.५, मै.सं. ४.१४.८; २२७.१४.

भद्रश्रुत- कल्याणकारी शब्दों को सुनने वाला

'भद्रश्रुतौ कर्णौ '

अ. १६.२.४.

भद्रशोचिः - (१) कल्याण कारी कान्ति या तेज से सम्पन्न

'ऊर्जो नपाद्भद्रशोचे '

ऋ. ८.७१.३.

(२) कल्याणकारी तेज वाला-अग्नि

'वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे '

ऋ. ५.४.७

(३) सुखमय मार्ग का प्रकाशक

'वयं देव हविषा भद्रशोचे '

ऋ. ७.१४.२

भद्रहस्ता- द्वि.व.। (१) सर्व दुःखहारी शत्रु और दुराचारी और कष्टों के नाशक उपायों से युक्त स्त्री पुरुष, (२) दानादि से भद्र हस्ता स्त्री पुरुष

'तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी '

ऋ. १.१०९.४

भद्रा- (स्त्री) भद् + र + टाप् । कल्याण दायिनी

'भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि '

ऋ. १०.७१.२; नि. ४.१०.

वचन में ही यह कल्याण दायिनी लक्ष्मी निवास करती है ।

'भद्रा इन्द्रस्य रातयः '

ऋ. ८.६२.१-६; ७-९.१०-१२,९९.४; अ. २०.५८.२, साम. २.६७०; तै. सं. ७.४.१५.१.

'देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम् '

ऋ. १.८९.२; वाज.सं. २५.१५; मै.सं. ४.१४.२; २१७.७; नि. १२. ३९.

भद्राह - भद्र + अह । मंगलदायक दिन

'भद्राहमस्मै प्रायच्छन् '

अ. ६.१२८.१

भन्दते- स्तौति (स्तुति करता है), बखान करता है ।

'पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः '

ऋ. ३.३.४, नि. ५.२.

वह बहुप्रिय (प्ररुप्रियः) कवि अपने तेजों से (धामभिः) वेद का बखान करता है (भन्दते) ।

भन्ददिष्टि- भन्दत् + इष्टि । कल्याणकारी दान, सत्संग आदि से युक्त

'तवसे भन्ददिष्ट ये '

ऋ. ५.८७.१

भन्दना - भन्द (स्तुति करना) + ल्युट् + टाप् = भन्दना । अर्थ है (१) स्तुति, भजन -

'स भन्दना उदियर्ति प्रजावती '

ऋ. ९.८६.४१, नि. ५.२.

वह यजमान स्तुतियों को करता या प्रेरित करता है ।

(२) कीर्ति

'उदानंश शवसा न भन्दना '

ऋ. ८.२४.१७; अ. २०.६४.५; साम. २.१०३५.

भन्दनायत् - (१) अपना कल्याण चाहने वाला, (२) स्तुतिशील पुरुष

'जहि शत्रूँ रभ्या भन्दनायतः '

ऋ. ९.८५.२

भन्दमाने - द्वि. व. । (१) नक्तोषासा (रात दिन) या (२) माता पिता, (३) या, स्त्री पुरुष का

विशेषण, (४) सब को सुख देने वाले, सबके कल्याण कारक, एक दूसरे को सुख देने वाले

'आ भन्दमाने उपाके
नक्तोषासा सुपेशसा'

ऋ. १.१४२.७

भन्दिष्ठ- (१) सबसे अधिक सुखकारी तथा कल्याण कारी-परमेश्वर

प्र यद् भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः ।

ऋ. १.९७.३; अ. ४.३३.३; तै.आ. ६.११.१.

जो हमारे विद्वान् पुरुष हैं उनमें आप ही सब से अधिक सुखकारी एवं कल्याण कारी हैं ।

(२) अति कल्याण प्रिय

'आ भन्दिष्ठस्य सुमतिं चिकिद्धि'

ऋ. ५.१.१०; मै.सं. ४.१.४; १७२.६, का.सं. ७.१६; तै.ब्रा. २.४.७.९.

भसत् - चमकने वाला, तेजस्वी

'भसदश्वो न यसमान आसा'

ऋ. ६.३.४

भंगुरावत् - (१) राष्ट्र को तोड़ फोड़ डालने वाला

'हन्तारं भंगुरावतः'

ऋ. १०.८७.२२; अ. ७.७.१; ८.३.२२; वाज.सं. ११.२६; मै.सं. २.७.२; ७६.९; का.सं. १६.२; ३८.१२.

(२) प्रजापीड़क

'विषेण भङ्गुरावतः'

ऋ. १०.८७.२३; अ. ८.३.२३.

भंसस् - (१) योनि

'भंससोप हन्मसि'

अ. ८.६.५.

भंसत् - (१) उपस्थ प्रदेश, योनि

'भंससो विवृहामि ते'

ऋ. १०.१६३.४; अ. २.३३.५; २०.९६.२०.

भयमानः- (१) भयभीत होता हुआ ।

'पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार'

ऋ. ३.३०.१०; नि. ६.२.

बिजली से मारे जाने के पूर्व ही भयभीत हो मेघ तितर बितर हो गया ।

(२) उभय मानः - अन्तरिक्ष और पृथिवी दोनों में गर्जता हुआ मेघ

भयस्थ - (१) भय का स्थान, (२) संसार

'अस्मिन् भयस्थे कृणुतमु लोकम्'

ऋ. २.३०.६.

भरण्य- भरणी नामक नक्षत्र पुञ्ज

'आ मे रयिं भरणय आवहन्तु'

अ. १९.७.५

भरत- (१) अर्पित करो । भृ (भरणार्थक) यहां अर्पणार्थक है । लोट् मध्यम, पुरुष ब.व. का रूप है ।

'तिग्मायुधाय भरता श्रृणोतु नः'

ऋ. ७.४६.१; तै.ब्रा. २.८.६.८; नि. १०.६.

तीक्ष्ण आयुध वाले रुद्र को स्तुतियाँ अर्पित करो और वे हमारी स्तुतियाँ सुनें ।

(२) (सं.) आदित्य ।

यो पृथिव्यादिस्थान् प्राणिनः शुभैः गुणैः विमर्ति स भरतः ।

जो पृथ्वी आदि स्थानों के प्राणियों को शुभ गुणों से भरण पोषण करता है वह भरत है ।

(३) भरण पोषण करने वाला - आत्मा (४) भरण पोषण करने वाला - ईश्वर

'आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः'

ऋ. २.३६.२, अ. २०.६७.४

भरतस्य सूनवः - (१) भरण पोषण करने वाले आत्मा के पुत्र-प्राण गण, (२) भरण पोषण योग्य चराचर जगत् के प्रेरक प्राण, (३) भरण पोषण करने वाले ईश्वर के पुत्र -योगी जन (४) भरत के पुत्र

'आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः'

(५) समस्त संसार का भरण पोषण करने वाले सूर्य से उत्पन्न या सब के पालक मेघ को संचालित करने वाले वायु गण (६) राष्ट्रपति राजा के पुत्र

भरति- चुराता है ।

'यो अघ्न्याया भरति क्षीर मग्ने'

ऋ. १०.८७.१६, अ. ८.३.१५

भरः- (१) भृ (भरण करना) + अच् = भर । अर्थ- (१) बल, बलवन्तो हि भ्रियन्ते धनिभिः अन्यथा विकुर्वाणः सन् दुःसाध्यो भवति (बलवान् को धनी पालते हैं अन्यथा वे अनर्थ करते हैं) ।

(२) अथवा हृ (हरण करना) + अच् = भर (हृग्रहोर्भश्छन्दसि) ।

'भ्रियन्ते यत्र योद्धारः इति भरः (जहां योद्धाओं का भरण किया जाता है) ।

(३) अथवा - ह्रियन्ते हि यत्र योद्धणाम् आयूंसि धनानि च इति भरः (जहाँ योद्धाओं की आयु

हरी जाति या उनका धन घर जाता है) । युद्ध
'उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुम्
अनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु'
ऋ. ४.३८.५
और इस दधिक्रावा इन्द्र को युद्धों में (एवं भरेषु) देखकर शत्रु चिल्लाने लगते हैं (अनुक्रोशन्ति) जैसे वस्त्र लेकर भागने वाले चोर को देखकर लोग चिल्लाते हैं ।
(४) पालन पोषण या रक्षा
'महे भराय पुरुहूत विश्वे'
ऋ. ३.५१.८
अच्छी तरह से पालन पोषण या रक्षा के लिए हे बहुतों के द्वारा आहूत इन्द्र । सभी देवताओं तथा प्राणिमात्र ने .... ।
हे निर्वाचित राजन् ! राजपोषण के महान् कार्य के लिए ...
(५) अन्न, वायु, जल आदि पदार्थ
आधुनिक अर्थ – (१) भरण पोषण, (२) भार, बोध, (३) संग्रह, अधिक परिमाण, (४) ढेरी, (५) तौल की एक मात्रा

भरद्वाज – भरणात् भरद्वाजः । विरूपो नानारूपो महिव्रतो महाव्रत-निरुक्त (१) एक ऋषि का नाम । शब्द रत्नावली में भरद्वाज को अगन्ता (नहीं चलने वाला) अर्थात् अजगर वृत्ति वाला ऋषि कहा गया है ।
(२) हेमचन्द्र ने भरद्वाज को बृहस्पति का पुत्र कहा है । (३) उन्हें विरूप या विश्वरूप भी कहते हैं । (४) सप्तर्षियों में एक (५) भरत् + वाजः = भरद्वाजः । ज्ञान और बल धारण करने वाला -दया. (६) भरद्वाज ही भारद्वाज है । (७) अन्नादि से भरण पोषण करने वाला (८) पुष्ट और वेगवान् अश्वों का स्वामी ।(९) राष्ट्र का द्रष्टा और संचालक प्राण के समान भरद्वाज
पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाज ऋषिः
वाज.सं. १३.५५; मै.सं. २.७.१९;१०४.५; का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.१.९.
(१०) धनादि से भरण पोषण करने का कार्य
'भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्'
ऋ. ६.१७.१४
(११) अन्न और बल का धारण करने वाला, (१२) अन्नोत्पादक विद्वान् (१३) मन (मनो वै भरद्वाजःऋषिः)
यो वै मनः विभर्ति सो अन्नं वाजं विभर्ति । तस्मात् मनो भरद्वाज ऋषिः ।
मन शरीर में रहकर समस्त प्राणों को धारण करता है । वह आत्मा की घृताची शक्ति को जानता है ।
'तां त्वा भरद्वाजो वेद'
अ. १९.४८.६

भरन्ती- हरन्ती । लाती हुई। हरती हुई सम्पादन करती हुई ।
हृ + शतृ + ङीष् = भरन्ती (ह का भ)
'भरन्ती मे अप्या काम्यानि'
ऋ. १०.९५.१०; नि. ११.३६
अन्तरिक्ष में उत्पन्न (अप्या) मेरे कमनीय जलों को (काम्यानि) लाती हुई (भरण्ती) माध्यमिका वाक् उर्वशी -सा.

भरमाण - (१) धारण करता हुआ
'उपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः'
ऋ. १.१४८.२
(२) राष्ट्र के कार्यभार को धारण करता हुआ
'अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत'
ऋ. १.१३५.३, ६.
अध्वर्युओं या अविनाश्य राष्ट्र के संचालक पुरुषों सहित राष्ट्र के कार्यभार को धारणा करते हुए (भरमाणाः) (३) लेता हुआ
'वहमाना भरमाणा स्वा वसूनि'
अ. ७.९७.४

भरहूतिः- (१) भरेषु हूतिः । पालक पुरुषों के बीच सर्व श्रेष्ठ पालक कहलाना, (२) भराय संग्रामाय हूतिः (शत्रुओं को संग्राम के लिए ललकारना) । (३) संग्राम शत्रु को ललकारना
'रत्नं दधाति भरहूतये विशे'
ऋ. ५.४८.४

भरित्र- भरणपोषण करने का साधन
'अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैः'
ऋ. ३.३६.७

भरिभ्रत् - धारण करता हुआ
'इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रत्'
ऋ. १०.४५.७; वाज.सं. १२.२४; तै.स. ४.२.२.२;. मै.सं. २.७.९; ८६.१४; का.सं. १६.९; आप.मं.पा. २.११.२५

भरीमन् - भरण पोषण करने वाला पदार्थ
'पिपृतां नो भरीमभिः'

ऋ. १.२२.१३; वाज.सं. ८.३२; १३.३२; तै.सं. ३.३.१०.२; ५.११.३; ४.२.९.३; मै.सं. २.७.१६; १००.९; का.सं. १३.९; १६.१६; ३९.३; श.ब्रा. ४.५.२.१८.

भरूजा- (१) भ्रस्ज् + अङ् = भरूजा । बाहुलक नियम से रेफ तथा उपधा का ऊम् । अर्थ है - शृगाल

(२) भ्रस्ज (पाक अर्थ में) + अङ् = भरूजा । अर्थ है-भुंजनेवाला, भरभूंजा

भरूजा- (१) कपटकारिणी, (२) क्षुद्र वचनों से हृदय को पीड़ा देने वाली स्त्री (३) चुगलखोरी, पिशुनता

'भरूजि पुनर्वो यन्तु'

अ. २.२४.८

भर्गस् - (१) पापों को भून डालने वाला, (२) समस्त कर्म बन्धनों को भस्म कर डालने वाला तेज, (३) सर्व शत्रु तापक तेज, (४) अन्न

भर्गो देवस्य धीमहि

ऋ. ३.६२.१०; साम. २.८१२; वाज.सं. ३.३५; २२.९; ३०.२; ३६.३; तै.सं. १.५.६.४; ४.१.११.१; मै.सं. ४.१०.३; १४९.१४. श.ब्रा. २.३.४.३९; १४.९.३.१२

'वेदाश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः
कर्माणि धियः तदु ते ब्रवीमि
प्रचोदयन् सविता याभिरेति

गो.ब्रा. १.१.३२

भर्ग- भृस्ज् + ञ् = भर्ग । अर्थ है - (१) तेज (२) पदार्थों को परिपक्व करने वाला ताप

'बडित्था तत् वपुषे धायि दर्शतम्
देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि'

ऋ. १.१४१.१; शां.श्रौ.सू. १८.२३.१४

अग्नि का पदार्थों को परिपक्व करने वाला ताप ही समस्त पदार्थों को दिखलाने और प्रकाशित करने वाला है (दर्शतम्) । वही तेज शरीर की रक्षा पोषण और बुद्धि के लिये भी धारण करने योग्य है (धायि) । यह बात इस प्रकार से (इत्था) सर्वथा सत्य हैं (बट्) वह तेज जिस कारण से (यतः) बल या शक्ति से (सहसः) उत्पन्न होता है । पापों को भून डालने वाला तेज ।

भर्गस्वती - चमत्कार युक्त, ओजस्विनी

'यथा भर्गस्वतीं वाचम्'

अ. ६.६९.२

भर्ता- भृ + तृच् (१) पति, (२) पालक

'भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः'

ऋ. ५.५८.७

भर्मन् - भृ + मनिन् = भर्मन् ।

(१) अधिक करना या अधिक करने वाला, (२) पोषक,

'तस्य भर्मणे भुवनाय देवा'
धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त'

ऋ. १०.८८.१; नि. ७.२५.

उस हवि को अधिक करने के लिए या जगत्पोषक बनाने के लिए (तस्य भर्मणे) तृप्ति कारक बनाने या सुगन्धि प्रद करने के लिए (भुवनाय) उस सुखद अग्नि को (कम्) देवता या विद्वान् लोग हवि, अन्न या पुरोडाश से (स्वधया) बढ़ाते हैं (अपप्रथन्त) ।

भर्वति- (१) अत्ति (खाता है) । 'भर्व' धातु खाना अर्थ में आया है ।

(२) नाश करता है

'अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति'

ऋ. १.१४३.५

(३) पालन करता हुआ

भर्वन् - (१) जल्पता हुआ, (२) पालन करता हुआ (३) खाता हुआ, (४) नाश करता हुआ

'पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन्'

ऋ. ६.६.२, तै.सं. १.३.१४.४.

भर्त्री- भरणपोषण करने वाली

'भर्त्री हि शश्वतामसि'

अ. ५.५.२

भरिभ्रत् - (१) पुष्ट करता है । (२) विविध प्रकार से धारण करता है ।

'वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वाम्'

ऋ. २.४.४.

भरीमन् - (१) भरण पोषण करने वाला साधन, गुण, (२) अन्न

'पिपृतां नो भरीमभिः'

ऋ. १.२२.१३; वाज.सं. ८.३२; १३.३२; तैसं. ३.३.१०.२; ५.११.३; ४.२.९.३; मै.सं. २.७.१६; १००.९; का.सं. १३.९; १६.१६; ३९.३; श.ब्रा. ४.५.२.१८; ७.५.१.१०.

वे दोनों भरण पोषण करने वाले साधनों से हमें

पालन करे या अन्नों से पोषण करें ।

भरेषुजा- भर + इषु + जन (१) भरण पोषण करने और शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला, (२) धनाढ्य वैश्यों और बलशाली क्षत्रियों का उत्पादक (३) संग्रामों में प्रसिद्ध कुशल योद्धा (४) राज्य -सामग्री के साधक वाणों को बनवाने वाला -दया.

'भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसम्'
जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ।

ऋ. १.९१.२१, वाज.सं. ३४.२०; मै.सं. ४.१४.१; २१४.५; तै.ब्रा . २.४.३.८; ७.४.१,

राज्य के भरण पोषण करने और शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले, धनाढ्य वैश्यों और बलशाली क्षत्रिय लोगों के उत्पादक, संग्रामों में प्रसिद्ध कुशल योद्धा (भरेषुजाम्) उत्तम निवास स्थान और उत्तम भूमि के स्वामी (सुक्षितिम्), उत्तम यशों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों से युक्त (सुश्रवसम्) विजय करते हुए (जयन्तम्) तेरे विजय के साथ ही हम भी प्रसन्न हों ।

भल- (अ.) (१) भली प्रकार

'सर्वे भल ब्रवाथ'

अ. ७.५६.७

सायण ने 'भलब्रवाथ' एक शब्द माना है (भलब्रवाथ इत्येकं पदं सह इति योग विभागात् तिङन्तेन समासः -सा.) । पद पाठ में इसे दो पद माना गया है ।

(२) जीव

'भद्रं भल त्यस्या अभूत्'

ऋ. १०.८६.२३; अ. २०.१२६.२३;

भलान- ऋग्वेद के जनों में एक । वसिष्ठ ने ऋ ७.१८.७ में पक्थ, भलान, अलिन, विषाणी और शिव का उल्लेख किया है ।

भलानाः, भलानस् - (१) उत्तम नासिका वाला (२) भल + अनस् । उत्तम रथ पर स्थित

'आ पक्थासो भलानसो अनन्ताः'

ऋ. ७.१८.७

भव - (१) धनुर्धारी भव, शिव का एक पर्याय

'भवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन्'

अ. १५.५.१

(२) सामर्थ्यवान्, (३) सब कार्यों का उत्पादक

'शर्वायास्त्र उत राज्ञे भवाय'

अ. ६.९३.२

भवत् - (१) होने वाला प्राणी ।

'सतश्च गोपां भवतश्च भूरेः'

ऋ. १.९६.७

वर्तमान् प्राणियों एवं होने वाले प्राणियों, बहुतों के रक्षक (भूरेः गोपाम्) अग्नि को

भवद्वसु- सब उत्पन्न होने वाले चर अचर पदार्थों में बसने वाला परमेश्वर

'भवद्वसुरिद्वसुः'

अ. १३.४.५४

भव्य- सुन्दर ।

'प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे'

ऋ. १.१२९.६; नि. १०.४२.

भव्य इन्द्र के लिए में इष्टतम स्तुति करता हूँ ।

भवासि - भव । अर्थ है हो ।

भवाशर्वौ - द्वि .व. । (१) भव और शर्वः । उत्पादक और संहारक परमेश्वर या शिव के दो रूप ।

'भवाशर्वौ मृडतं माभियातम्'

अ. ११.२.१; कौ.सू. ५०.१३; ५१.७.

(३) सर्वोत्पादक और सर्वविनाशक शक्तियाँ

'भवाशर्वौ मृडतम् शर्म यच्छतम्'

अ. ८.२.७

'भवाशर्वौ मन्ये वां तस्य वित्तम्'

अ. ४.२८.१

भवित्र- भविष्य , आगे होने वाला

'शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः'

ऋ. ७.३५.९, अ. १९.१०.९

भवित्वा - ब. व, वि. । भावी पदार्थ और कार्य

'स ना ता काचिद् भुवना भवित्वा

ऋ. २.२४.५

भवीयस् - प्रभूत, प्रचुर

'तमित् पृणक्षि वसुना भवीयसा

ऋ. १.८३.१; अ. २०.२५.१

भष - (सं) । बड़ी ऊंची आवाज से बोलने वाला

'घोषाय भषम्'

वाज.सं. ३०.१९; तै.ब्रा. ३.४.१.१३.

भस- भर्त्सन दीप्तयोः 'जुहोत्यादि' भस धातु भर्त्सना और दीप्ति अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

भर्त्सनं परुष भाषणम् । दीप्तिः द्युति क्रोधाभिव्यञ्जनम् । परुष भाषण करना, दीप्ति करना, क्रोध दिखलाना

'यन्मे बभस्ति नाभिनन्दति'

अ. ९.२.२

भसत्- (१) स्त्री का प्रजनन अंग
'भसन्मे अम्ब सक्थि मे'
ऋ. १०.८९.७ अ. २०.१२६.७
(२) लिंग, तेजोमय, वीर्यवान् अंग, (३) प्रकाशक
'आदित्यै भसत्'
वाज.सं. २५.८; मै.सं. ३.१५.७; १७९.११.
'पायुर्मेऽपचितिर्भसत्'
वाज.सं. २०.९. मै.सं. ३.११.८; १५२.७, तै.ब्रा. २.६.५.५

भसथः- भक्षमथः (खाते हो)।
'न देवा भसथश्चन'
हे इन्द्र और अग्नि! तुम, जो मलिन बात बोलता है, उसका सोम ग्रहण नहीं करते निघण्टु में 'भस' धातु भक्षण अर्थ में आया है।

भस्म- कान्तिजनक जाठर अग्नि
'वैश्वानरं भस्मना'
वाज.सं. २५.८; तै.सं. ५.७.१६.१; मै.सं. ३.१५.७; १७९.१५; का. सं. (अश्व.) १३.६.

भस्मन् - (१) भस्म
'प्रसद्य भस्मना योनिम्'
वाज.सं. १२.३८; तै.सं. ४.२.३.३; मै.सं. २.७.१०; ८८.१०; का. सं. १६.१०; श.ब्रा. ६.८.२.६.
'सं भस्मना वायुना वेविदानः'
ऋ. ५.१९.५

भस्मा- ब.व.। (१) तेजस्वी उत्तम पद (२) तेजस्विनी सेना
'कार्द भस्मा कु धावति'
अ. २०.१३६.१४

भस्मान्त- शरीर जिसका अन्त भस्म है।
'भस्मान्तं शरीरम्'
श.ब्रा. १४.८.३.१; बृ.आ.उप. ५.३.१.

भ्यस्- आत्मनेपदी धातु। डरना या कांपना।
'यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेताम्'
ऋ. २.१२.१; अ. २०.३४.१; तै.सं. १.७.१३.२.
जिसके बल से या सामर्थ्य से द्यौ और पृथ्वी डर गयी या कांप उठी।

भ्रक् (ज्) - (१) चमचमाता हुआ धन आदि, (२) दमकता हुआ वीर्य।
'म्लापयामि भ्रजः शिभ्रम्'
अ. ७.९०.२

भ्रजः- (१) अग्नि, (२) अग्नि विद्या विद्युत द्वारा प्रकाश उत्पादन
'भ्रजश्छन्दः'
वाज.सं. १५.५; तै.सं. ४.३.१२.२; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५. २.५.

भ्रम - (१) अग्नि की मोड़दार लपट
'अग्नेरिव भ्रमा वृथा'
ऋ. ९.२२.२
(२) भ्रमणशील
'तव भ्रमास आशुया पतन्ति'
ऋ. ४.४.२; वाज.सं. १३.१०; तै.सं. १.२.१४.१; मै.सं. २.७.१५; ९७.९; का.सं. १६.१५.

भ्रमासः- ब.व.। ए. व. में भ्रम अर्थ - (१) भ्रमणशील किरण, (२) शस्त्रास्त्र या सैनिक गण।

भा - (१) दीप्ति, (२) अग्नि।
'भायै दार्वाहारम्'
वाज.सं. ३०.१२; तै.ब्रा. ३.४.१.८.

भाऋजीक- ऋजुभा, प्रसिद्धभा (प्रसिद्ध या सरल अकुटित प्रकाश वाला)। अर्थ है (१) अग्नि ऋजुका अकुटिता अप्रतिहता प्रसिद्धा भा दीप्तिः यस्य स ऋजुकभा (जिसकी दीप्ति सीधी हो)। 'ऋजुकभा' से ही 'ऋजीक' हो गया है जो अग्नि का नाम है। (२) अथवा -भासःऋजीकं स्थानम् = भाऋजीकम् - प्रख्यातदीप्ति (३) सदा प्रकाशमान, (४) विद्या रूपी दीप्ति को प्राप्त कराने वाला परमात्मा या पिता -दया.
(५) सम्पूर्ण दीप्ति का स्थान -परमेश्वर
'दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः'
ऋ. ३.१.१२
जो पुत्र के लिए दर्शनीय एवं प्रकाशमान या विद्यादिप्ति को प्राप्त कराने वाला है।
पुनः -
'देवो देवान् परिभूर्ऋतेन
वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान्
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको
मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान्
ऋ. १०.१२.२; अ. १८.१.३०.
हे भगवन् अग्नि! तू द्योतमान देव इन्द्रादि देवों के निकट आह्वान् तथा हवि आदि ले जाने के कारण सर्वतः रहने वाला है (परिभूः), अतः यज्ञ के साथ (ऋतेन) हवि ले जा (हव्यं वह)। तू देवों में या मनुष्य होताओं में श्रेष्ठ है (प्रथमः),

अपने सम्पूर्ण अधिकारों का ज्ञाता है (चिकित्वान्) । धूमकर्ता, धूमरूपी ध्वजा वाला या धूम से विदित होने वाला है (धूमकेतुः), सन्दीपन इन्धन से प्रसिद्ध दीप्ति वाला है (भा ऋजीकः), स्तुत्य है या देवों का मोदक आह्वाता है (मन्द्रः होता), नित्य है (नित्यः) और बुद्धि के अधिदेवता के रूप में (वाचा) मनुष्य की अपेक्षा अत्यन्त यष्टा है (यजीयान्) ।

अथवा, हे अग्नि परमेश्वर, वैदिक ज्ञान के द्वारा (ऋतेन) आप हमें सुख पहुंचाइए (नः हव्यं वह) । यह परमेश्वर सर्वपूज्यदेवों में विद्यमान (देवः देवान् परिभूः) अनादि (प्रथमः) और सर्वज्ञ है (चिकित्वान्) । जैसे धूप अग्नि का ज्ञापक है (धूमकेतुः) यह परमेश्वर अपने तेज से (समिधा) सम्पूर्ण दीप्तियों का स्थान है (भा ऋजीकः) एवं आनन्दधन प्रदाता (मन्द्रः होता) है । नित्य तथा वेदवाणी के द्वारा (नित्यो वाचा) उत्तम ज्ञानप्रदाता है (यजीयान्) ।

(६) दीप्ति से प्रकाशमय और ऋजस्व भाव

भागः – भज् + घञ् = भाग (१) अंश, हिस्सा ।

'यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागम्
अनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति'

ऋ. १.१६४.२१; अ. ९.९.२२; नि. ३.१२;

'प्रतिभागं न दीधिम'

ऋ. ८.९९.३; अ. २०.५८.१; साम. १.२६७; २.६६.९; वाज.सं. ३३.४१; नि. ६.८

(२) पैतृक भाग ।

'तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं
राधो भागमिवेमहे'

ऋ. ८.९०.६; साम. २.७६.२,

हे इन्द्र ! अवश्य ही हम उस बलवान या प्रज्ञावान् या महाप्राण या प्रकृष्टचेतना वाले तुझ से पैतृक भाग की तरह (भागम् इव) धन (राधः) जांचते हैं (ईमहे) ।

भागदुघ – कर रूप से राजा का भाग एकत्र करने वाला

'स्वर्गाय लोकाय भागदुघम्'

वाज.सं. ३०.१३; तै.ब्रा. ३.४.१.८.

भागदेय– सेवनीय अंश

'इमानि वां भागधेयानि सिस्रत'

ऋ. ८.५९.१

भागधेय – अपना अपना सेव्य अंश

'यत्र देवा दधिरे भागधेयम्'

ऋ. १०.११४.३

(२) भोग, (३) जीवन, (४) भाग्य

'मा सो अन्यद् विदत भागधेयम्'

अ. १८.२.३१

'माषाः पिष्टा भागधेयं ते हव्यम्'

अ. १२.२.५३

(५) भजन

'अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयम्'

अ. ६.१११.१

भागधेयी– भागधारण करने वाली

इन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ

वाज.सं. ६.२४; तै.सं. १.३.१२.१; ६.४.२.६, श.ब्रा. ३.९.२.१४; १५.

भागं विभक्ता– कर आदि का विभाग करने वाला राजा (१) इन्द्र

भाजयुः– (१) न्यायपूर्वक विभाग करने वाला, (२) अग्नि का विशेषण (३) ज्ञान प्रदान करने वाला, (४) भजन, सेवन करने की आकांक्षा करने वाला

'त्वमंशो विदथे देव भाजयुः'

ऋ. २.१.४

भात्वक्षस्– (१) तेजोमात्र से बलशाली सूर्य, (२) दीप्ति के स्वामी सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष

'भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवः
अग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः'

ऋ. १.१४३.३

तेजो मात्र से बलशाली सूर्य के (भात्वक्षसः) कभी नष्ट न होने वाले किरण भी (अससन्तः) सदा वेगवान् प्रवाहों के समान (सिन्धवः) सूर्य से बढ़ने वाले होते हैं । वे अन्धकारमयी रात्रि बेला को लांघ कर प्रकाशित हुआ करते हैं ।

अथवा,

दीप्ति के स्वामी सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के (भात्वक्षसः) अविनाषी (अजराः) सदा वेग से बढ़ने वाली सरिताओं के समान वेग से गति करने वाले ज्ञान प्रवाह (सिन्धवः) कभी न सोते हुए (अससन्तः) जागरण शील पुरुषों के समान ही उज्ज्वल गुरु के प्रकाश देने वाले गुरु या शिष्य को भी पार कर प्रकाशित होते हैं (अति रेजन्ते) ।

भान्तः – चन्द्रमा के समान १५ कलाओं से युक्त राजा ।
'भान्तः पंचदशः '
वाज.सं. १४.२३; तै.सं. ४.३.८.१; ५.३.३.२; मै.सं. २.८.४; १०.९.३; का.सं. १७.४; श.ब्रा. ८.४.१.१०

भानु– 'भा' धातु से सिद्ध । अर्थ (१) प्रकाश (२) प्रकाशवान्
'कविशस्तो बृहता भानुनागा
हव्या जुषस्व मेधिर '
ऋ. ३.२१.४; मै.सं. ४.१३.५; २०४.१५; का.सं. १६.२१; ऐ.ब्रा . २.१२.१५; तै.ब्रा. ३.६.७.२.
हे विद्वानों से प्रशंसित यज्ञवान् अग्ने, तू बृहत् प्रकाश के साथ आकर हव्यों का भोग कर ।
(३) सूर्य ।
'पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते '
ऋ. १.९२.१; साम. २.११०.५; नि. १२.७
(४) दीप्तिमान् पदार्थ –किरण
'श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे '
ऋ. १.८७.६; तै.सं. २.१.११.२; ४.२.११.२; मै.सं. ४.११.२; १६७.१५; का.सं. ८.१७.

भाम– (१) उग्रता
'स्वेन भामेन तविषो बभूवान् '
ऋ. १.१६५.८, मै.सं. ४.११.३;१६९.५; का.सं. ९.१८; तै.ब्रा. २.८३.६;
अपनी उग्रता से बलवान् होकर (२) क्रोध ।

भामितः– क्रोध और मन्यु वाला, उत्साही । रुद्र का विशेषण
'वीरान्मानो रुद्र मामितो वधीः '
ऋ. १.११४.८; तै.सं. ३.४.११.३;४.५.१०.३; मै.सं. ४.१२.६;१९२.१७; का.सं. २३.१२,
हे रुद्र ! तू क्रोध और मन्यु से आविष्ट हो हमारे वीर को मत मार ।

भामिन् – (मी) – (१) प्रशस्तः क्रोधः विद्यते यस्य (जिसमें प्रशस्त क्रोध हो) दुष्टों के प्रति भाम या क्रोध करने वाला अग्नि या परमेश्वर ।
'देवजुष्टोच्यते भामिने गीः '
ऋ. १.७७.१
(२) तेजस्वी
'शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् '
ऋ. १.८४.१६; अ. १८.१;६, साम. १.३४१; तै.सं. ४.२.११.३; मै. सं. ३.१६.४; १९०.४, नि. १४.२५.
(३) क्रोधयुक्त
'मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीः '
वाज.सं. १६.१६

भारत– (१) समस्त संसार का भरण पोषण करने वाला –अग्नि, परमेश्वर ।
'उदग्ने भारत द्युमत् '
ऋ. ६.१६.४५, साम. २.७३५
(२) मनुष्यों का हित कारक
(३) सबका पालक पोषक –अग्नि
त्वं नो असि भारताऽग्ने
ऋ. २.७.५

भारतः अग्नि– (१) सब मनुष्यों का हितकारी अग्नि, तेजस्वी पुरुष या प्रभु (२) प्रजा हितैषी तेजस्वी राजा
'तस्मा अग्निर्भारतः शर्म यंसत् '
ऋ. ४.२५.४

भारतजन – (१) भारती वाणी का उपासक विद्वान् (२) मनुष्यों का समूह
'विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् '
ऋ. ३.५३.१२.

भारती– (१) प्रजापालक राजाओं की वाणी । भरत का अर्थ राजा है । (२) यजुर्वेद
'होत्रा मरुत्सु भारती '
ऋ. १.१४२.९
(३) भरतः आदित्यः तस्य स्वभूता दीप्तिः –द्युस्थानी भारती (आदित्य की द्यु स्थानीय दीप्ति) । भरत + अञ् = भारत; भारत + ङीष् = भारती ।
भरतः आदित्यः तस्य भा, इला च ।
आदित्य से उत्पन्न दीप्ति, आदित्य ज्योति ।
'आ नो यज्ञं भारती तूयमेतु '
ऋ. १०.११०.८; अ. ५.१२.८; वाज.सं. २९.३३; मै.सं. ४.१३.३; २०२,९; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.४; नि. ८.१३.
आदित्य से उत्पन्न ज्योति हमारे यज्ञ में शीघ्र आवे ।
आधुनिक अर्थ – वाणी, सरस्वती, संस्कृत प्राय भाषा जिसे नट प्रयोग में लाते हैं ,
'भारती संस्कृत प्राया
वाग्व्यापारो नटाश्रयः '
(४) सब शास्त्रों को अपने में धारण करने वाली स्त्री
'आ भारती भारतीभिः सजोषाः '

ऋ. ३.४.८; ७.२.८.

(५) मनुष्यों की या सूर्य की दीप्ति के समान सब तत्व के प्रकाशित करने वाली वाणी

'त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा'

ऋ. २.१.११

भारद्वाज - (१) एक ऋषि का नाम भरणात् भारद्वाजः (भरण से भारद्वाज हुआ) ।

(२) भारत् + वाजः । ज्ञान को धारण करने वाला

'भारद्वाज सुमतिं याति होता'

ऋ. ६.५१.१२

(३) ज्ञानमय आनन्द आत्मा

'यौ भारद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरम्'

अ. ४.२९.५

भार्म्यश्व- भृम्यश्वस्य पुत्रः (भृम्यस्व का पुत्र) । भृम्यश्व + अण् = भार्म्यश्व । भृ + मिङ् = भृमि (भ्रमण करने वाला या अनवस्थायी) । भृमि + अश्व = भृम्यश्व । भृमयः अस्य अश्वाः (इसके अश्व अनवस्थायी हैं) ।

अथवा - असौ अश्वान् बिभर्ति (यह अश्वों को पोसता है) ।

अथवा - भर्तव्यः अश्वः यस्य (जिस का अश्व भर्तव्य है वह भृम्यश्व है) ।

भार्मा (भार्मन्) - भरण पोषण करने योग्य राष्ट्र या या शरीर

'समाने अधि भार्मन्'

ऋ. ८.२.८

भार्वरः - (१) सब का पालक पोषक -सूर्य (२) समस्त राष्ट्र को भरण पोषण करने वाला ।

'सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः'

ऋ. ४.२१.७

भावः - आत्मा

भावयुः- (१) आत्मा की इच्छा करने वाला (२) भक्ति भाव से युक्त उपासक

'यं ते सुनोति भावयुः'

ऋ. १०.८६.१५; अ. २०.१२६.१५

भाव विकार- कारणात्मा भावः (कारण ही भाव है) ।

तद्विकारा एव हि द्रव्यगुण कर्म भावेन अवस्थिताः सन्तः

नामाख्यातोपसर्ग निपातैः

अभिधीयन्ते (भाव के विकार ही द्रव्य, गुण और कर्म भाव से अवस्थिति हो नाम आख्यात, उपसर्ग और निपात नाम से कहे जाते हैं) ।

वार्ष्यायणि के अनुसार छः भाव विकार हैं । - (१) जायते, (२) अस्ति, (३) विपरिणमते, (४) वर्धते (५) अपक्षीयते तथा (६) विनश्यति अर्थात् - जन्म लेना, रहना, विपरिणाम, वृद्धि, अपक्षय, और विनाश इन्हीं छः भाव विकारों में और विकार भी आ जाते हैं ।

भाव्य - (१) भावयव्य नामक ऋषि, (२) भावयव्य नामक एक राजा (३) आत्म तत्व इच्छुक राजा भावतेन अर्जवेन असौ सर्वार्थान् यवयति अनुतिष्ठयति इति भावयव्यः (अर्जन द्वारा जो सभी अर्थों को अनुष्ठित करावें वह भावयव्य हैं) । भावयव्य से ही भाव्य हुआ है । भाव + यु + यत् = भावयव्य = भाव्य ।

लौकिक अर्थ - भावी, होनहार, भवितव्यता ।

भवित्र- उत्पत्तिस्थान, भुवन

'शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः'

ऋ. ७.३५.९, . १९.१०.९

भास् - भा (चमकना) + असुन् । अर्थ-दीप्ति, आभा ।

'स चित्रेण चिकितं रंसु भासा'

ऋ. २.४.५, नि. ६.१७

वह अग्नि अपनी विचित्र आभा से युक्त हो द्युलोकादि अथवा अग्निहोत्र जैसे स्थानों में (रंसु) जाना जाता है । (चिकिते)-सा.

वह विद्वान् अद्भुत तेज के साथ (चित्रेण भासा) रमणीय स्थानों में (रंसु) निवास करता है (चिकिते) - दया.

भासद - नितम्ब कटि भाग में स्थित गुदा या उपस्थ प्रदेश

'अग्नीषोमयोर्भासदौ'

वाज.सं. २५.५; मै.सं. ३.१५; ४,१७९.१

'यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदात्'

ऋ. १०.१६३.४; अ. २०.९६.२०; आप.मं.पा. १.१७.४.

भास्वती - (१) उत्तम कान्ति वाली । उषा का विशेषण ।

'भास्वती नेत्री सूनृतानाम्'

ऋ. १.९२.७; ११३.४

(२) प्रकाशवती, नाना प्रकाशों से पूर्ण करने वाली -उषा

भासाकेतुः- ज्ञान दीप्ति से सब पदार्थों का ज्ञान कराने वाला-अग्नि
'भासा केतुं वर्धयन्ति'
ऋ. १०.२०.३

भ्राजत् जन्मा- तेजस्वी शरीर वाला
'भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः'
ऋ. ६.६६.१०, मै.सं. ४.१४.११; २३३.१

भ्राजते- भ्राज् (शोभना, चमकना) के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप। अर्थ चमकता है, शोभता है।
'गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः'
ऋ. १.५६.३.
पर्वत श्रृंग की तरह चमकता है।

भ्राजदृष्टयः- भ्राजत् + ऋष्टि = भ्राजदृष्टि। ब.व. मे भ्राजदृष्टयः। अर्थ -(१) चमचमाते बिजली से युक्त मरुद्गण (२) चमचमाते शस्त्र वाले वीर सैनिक
'अध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः'
ऋ. २.३४.५.

भ्राजन्ती उखा- (१) चमकती हुई हंड़िया, (२) बारूद से भरा बम आदि
'मोखा भ्राजन्ती अभिविक्त जघ्रिः'
ऋ. १.१६२.१५; वाज.सं. २५.३७; तै.सं. ४.६.९.२;. मै.सं. ३.१६.१; १८३.१०.
हे राष्ट्र, अश्व या अश्वसैन्य! तुझे कभी बारूद से बम आदि जैसा अस्त्र उद्विग्न न करें।
(३) विस्फोट पदार्थों से फटने वाली विशेष घातक कृत्यों (४) तेज और क्रोध से प्रदीप्त होती हुई पृथिवी

भ्राजः- (१) शत्रुओं को भूंज डालने वाला,
'शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि'
अ. २.११.५, १७.१.२०.
(२) तेजोमय

भ्राजदृष्टिः - (१) अति तेजस्वी ज्ञान दृष्टि वाला
'अजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः'
ऋ. १.३१.१; वाज.सं. ३४.१२.
मरण धर्मा विद्वान् मनुष्य अति तेजस्वी ज्ञान दृष्टि वाले हो जाते हैं।

भ्राजस् - भ्राज् + असुन् = भ्राजस्। अर्थ है - दीप्तिमान्।
'अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्म वक्षसः'
ऋ. १०.७८.२, नि. ३.१५

भ्राजाङ्कारिः - शस्त्रास्त्रों से शोभायमान
'स्वान भ्राजाङ्कारे बम्भारे
हस्त सुहस्त कृशानो'
वाज.सं. ४.२७; तै.सं. १.२.७.१; श.ब्रा. ३.३.३.११

भ्रात्र- भाईपन, बन्धुता, भ्रातृत्व
'त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम्'
ऋ. २.१.९

भ्राता बलास- ज्वर को भ्रष्ट कर जाने वाला कफ
'तक्मन् भ्रात्रा बलासेन'
अ. ५.२२.१२.

भ्रातृ - 'ह्-' (हरना) या 'भृ (भरण करना) + तृच् = भ्रातृ। अर्थ हैं। (१) भागहर्ता (हिस्सा लेने वाला) (२) भर्तव्य (भरण करने योग्य) भ्राता पिता के धन से पोसा जाता है. (३) वायु। वायु वृष्टि के लिये रसों से भरा जाता है।

भ्रातृव्य- शत्रु
'अभ्रातृव्यो अनात्वम्'
ऋ. ८.२१.१३; अ. २०.११४.१; साम. १.३९९; २.७३९
भ्रातृव्यस्य वधाय
वाज.सं. १.१७, १८.
वृश्चतेऽस्याप्रियोभ्रातृव्यो य एवं वेद'
अ. ८.१०.(३).२

भ्रातृव्यक्षयण- भ्रातृत्व भाव के विनाश कारी शत्रु का नाश करने वाला
'भ्रातृव्य क्षयणमसि भ्रातृव्य
चातनं मे दाः स्वाहा'
अ. २.१८.१

भ्रातृव्यचातनं - शत्रुनाशक बल
'भ्रातृव्यचातनं मे दाः स्वाहा'

भ्राशयन् - खूब चमकता हुआ
'नि तिग्मानि भ्राशयन् भ्राश्यानि'
ऋ. १०.११६.५

भ्राश्य- खूब चमकलने वाला।

भिक्षमाणा- याचना करती हुई
'परावतः सुमतिं भिक्षमाणाः'
ऋ. १.७३.६

भिद् - फूट डालने वाली या स्वयं फूटने वाली। भिद् + क्विप् = भिद्।
'भिनत् पुरो न भिदो अदेवीः'
ऋ. १.१७४.८

भिन्दानः - भेदता हुआ। भिद् + शानच्।

'पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन्'
ऋ. ६.२७.६

भिन्दुः- भेदक
'पुरां भिन्दुर्युवा कविः'
ऋ. १.११.४; साम. १.३५९; २.६००; आश्व श्रौ.सू. ७.८.३.
परमेश्वर मुमुक्षु जनों के देहरूप पुरों को तोड़ने वाला, नाना पदार्थों को मिलाने या अलग करने में समर्थ (युवा) तथा क्रान्तिदर्शी है।

भियस् - भय। भी (डरना) धातु से सम्पन्न।
'अकृण्वत भियसा रोहणं दिवः'
ऋ. १.५२.९
'भियसमा धेहि शत्रुषु'
ऋ. ९.१९.६

भिल्म - भिद् + म = भिल्म (१) वेदानां भदेनम् (वेदों की शाखा प्रशाखा करना) (२) भासनम् (प्रकाशन) (३) विल्मम्।
भिद् + = भिल्म = विल्म। अथवा, भास् + म = भिल्म। वर्णव्यव्य से सिद्ध
"साक्षात् कृतधर्माणः ऋषयो बभूव। ते अवरेभ्यः अस्तक्षात् कृतधर्मेभ्यः उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादु। उपदेशाय ग्लायनो अवो विल्मग्रहणाय इमं ग्रन्थ समाम्ना क्षिषुः। वेदञ्च वेदाङ्गा नि च।"
अर्थात् -ऋषियों ने तपोबल से धर्म का साक्षात्कार किया। उन्होंने अपने और शिष्यों को जिन्हें धर्म का साक्षात्कार नहीं हुआ था मन्त्रों द्वारा उपदेश दिया। इन शिष्यों को भी चिन्ता हुई कि आगे के विद्वान् वेदमन्त्रों का शब्दार्थ तथा भेद या शाखा प्रशाखा (विल्मम्) कैसे समझेंगे और इसी उद्देश्य से निघन्टु का निर्माण किया। इतना ही नहीं ब्राह्मण तथा और वेंदान्तों का भी प्रणयन किया।

भिषक् - (१) वैद्य, (२) यज्ञ का भेषज कर्म करने वाला (यज्ञस्य भेषजकृत)
'कारुरहं ततो भिषक्'
ऋ. ९.११८.३; नि. ६.६.
मैं चाटुकार था और मेरे पिता या पुत्र वैद्य।
(३) चार ऋत्विजों में एक ब्रह्मा को भी 'भिषज्' कहते हैं।
स हि सर्वं त्रय्या विद्यया भिषज्यति (वह सभी को त्रयी विद्या का ज्ञाता होने से औषधि देता है)। दुर्ग कहते हैं कि ब्रह्मा प्रायश्चित नामक रोग के उत्पन्न होने पर दवा करते हैं (स हि प्रायश्चित रोगे उत्पन्ने यज्ञस्य भेषजं करोति)।
पुनः- भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्र एवं विद् ब्रह्मा भवति।

भिषज्यन् - पीड़ाएं दूर करता हुआ
'यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन्'

भिषजा- द्वि.व.। रोग दूर करने वाले आश्विद्वय -स्त्रीपुरुष
'युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित्'
ऋ. १०.३९.३
'युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिः'
ऋ. १.१५७.६

भी - भय.।
'न त्वा भीरिव विन्दति'
ऋ. १०.१४६.१; तै.ब्रा. २.५.५.६; नि. ९.३०.

भीमः - भी (भय करना)+ मक् = भीम। विभ्यति अस्मात् (इससे भय खाते हैं अतः यह भीम है) अर्थ है-भयङ्कर इन्द्र का विशेषण। इन्द्र दुष्टों का दमन करने के कारण भीम है।
'मृगो न भीमः कुचरः गिरिष्ठाः'
ऋ. १.१५४.२; १०.१८०.२; अ. ७.६२.३; ८४.३; साम. २.१२२३; वाज.सं. ५.२०; १८.७१; श.ब्रा. ३.५.३.२३; ९.५.२.५.
इन्द्र व्याघ्र या सिंह के समान भयङ्कर (भीमः) कुत्सित गामी या कुत्सित चरण या सर्वत्रगामी (कुचरः) तथा पर्वत निवासी है (गिरिष्ठाः)

भीमयुः- (१) भयप्रद (२) भयप्रद होकर प्रमाण करने वाला
'दुध्रो गौरिव भीमयुः'
ऋ. ५.५६.३

भीमल- भयङ्कर। भीतिप्रद पुरुष
नरिष्ठायै भीमलम्'
वाज.सं. ३०.६; तै.ब्रा. ३.४.१.२.

भीमसंदृक् - भयङ्कर दर्शन वाला
'तान् वर्ध भीमसंदृशः'
ऋ. ५.५६.२

भीमाविलिप्ती- (१) उग्र वशा -गौ (२) पृथिवी जिसका शासन निर्लिपृता से राजा करें।
'तासां विलिप्त्यं भीमाम्

उदा कुरुत नारदः '
अ. १२.४.४१

भीरु- भयभीत, कायर
'यः शूरेभिः हव्यः यश्च भीरुभिः '
ऋ. १.१०१.६

भीष् - भय ।
'शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषां अद्रिवः '
ऋ. १.१३३.६
विद्युत् के भय से (भीषा) पृथिवी के समान अन्तरिक्ष भी चमकता है ।
'रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा '
ऋ. ७.२१.३.
'द्यावा रेजते पृथिवी च भीषा '
ऋ. ८.९७.१४

भीष्मः- भी + मक् = भीष्म । धातु के बाद षुक्- अर्थ-भयङ्कर । विभ्यति अस्मात् इति भीष्मः (इससे डरते हैं अतः यह भीष्म है) ।

भुक् - 'भुज् + क्विप् । (१) भोक्ता, (२) जीवात्मा
'भुगित्यभिगतः '
अ. २०.१३५.१; गो.ब्रा. २.६.१३. आश्व. श्रौ.सू. ८.३.२२.
(३) भोग, सुख की प्राप्ति ।
(४) भोग्य पदार्थ
'या इन्द्र भुज आभरः '
ऋ. ८.९७.१, अ. २०.५५.२; साम. १.२५४; ऐ.आ. ५.२.४.२.

भुज्म- पालन करने वाला
'गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शंभु '
ऋ. १.६५.५
परमेश्वर पर्वत के समान सबको पालन करने वाला है ।

भुज्मा- (१) सबका पालन परमेश्वर
'गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते '
ऋ. ८.५०.२, अ. २०.५१.४.
(२) नाना भोग्य पदार्थों से सम्पन्न

भुज्यु - (१) पालक, भोक्ता पुरुष आत्मा
(२) भुजा का अवलम्ब चाहने वाला
'उत त्यं भुज्युमश्विना सखायः '
ऋ. ७.६८.७

भुञ्जती - रक्षा करने वाली
'एवा ते वयमिन्द्र भुञ्जतीनाम् '
ऋ. १०.८९.१७

भुरण्यति- भुरण धातु क्षिप्र गमन और सायण के अनुसार धारण पोषण अर्थों में प्रयुक्त है ।
भुरण + यु = भुरण्यु । अर्थ है,
(१) क्षिप्रगति वाला मनुष्य (२) धारक पोषक सूर्य ।
भुरण्यति का अर्थ है- क्षिप्र गच्छति (शीघ्र जाता है) या सूर्य के समान आचरण करता है ।

भुरण्यन् - (१) क्षिप्रं गच्छन् । शीघ्र चलने वाला । भुरण् धातु गत्यर्थक है । भुरण् + शतृ = भुरण्यत् (यगन्त लट् में) ।
(२) सायण ने इस का अर्थ - इस लोक का पोषक या धारक सूर्य किया है । उन्होंने 'भुरण' धातु को धारण और पोषण अर्थ वाला माना है (भुरण धारण पोषणयोः) । (भुरण्यु की तरह जो आचरण करता है वह भुरण्यन् है) । अर्थात् भुरण्यु पक्षी के समान जो शीघ्र देवलोक में ले जाय वह सूर्य ।
(३) मरणशील, मर्त्यलोक कालीन
'येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जना अनु त्वं वरुण पश्यसि '
ऋ. १.५०.६, अ. १३.२.२१, अ. २०.४७.१८
निवारक आदित्य (वरुण) तू जो अनुग्राहिणी दृष्टि से (येन चक्षसा) पुण्यवान् मनुष्यों को (जनान्) पुण्यवान् लोगों को देवयान मार्ग से क्षिप्रगति से जाते हुए (अनुभुरण्यन्तम्) देखता है (पश्यसि) इसी से हम तेरी स्तुति करते हैं ।

भुरणा - द्वि. व. । पालन पोषण करने में समर्थ स्त्री पुरुष या राजा रानी या अश्विद्वय ।
'वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता '
ऋ. १. ११७.११

भुरण्यु - भुरण् (क्षिप्रगति) + क्यु = भुरण्यु । अर्थ- क्षिप्रगति वाला शकुनि - पक्षी (२) अथवा भूरिनयु (जो भूरि मार्ग को प्राप्त करावे) से भुरण्यु हुआ है ।
भू + क्रि = भूरि, नयति प्रापयति इति नयुः ।
भूरि + नयु = भूरिनयुः = भुरण्युः ।
भुरण्युः शकुनिः भूरिम् अध्वानं नयति स्वर्गस्य लोकस्यापि बोढा तत्संपाती भुरण्युः । भूरि + णीञ् + क्यु = भुरण्यु । बहुत मार्ग चलने वाला
(३) सूर्य रश्मि जो सूर्यास्त के समय तीव्र गति

गं द्युलोक में चली जाती है । (४) पालक धारक - सूर्य । सायण ने 'भुरण' धातु को धारण और पोषण अर्थों में माना है । भुरण् + क्यु = भुरण्यु ।

भूरण्यू - द्वि.व. । (१) भरण पोषण करने वाले माता पिता ।

'राधः सुरेत स्तुरणे भुरण्यू'

ऋ. १.१२१.५

(२) सन्तानों के पालन पोषण करने वाले स्त्री पुरुष

'इति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू'

ऋ. ६.६२.७

भुरण्यौ - द्वि.व.। (१) पोषक धारक अश्विद्वय । भृ (भरण पोषण अर्थ में) अथवा भुरण् (पालन धारण अर्थ में) + क्यु = भुरण्यु । द्वि.व. में भुरण्यु = भुरण्यौ ।

(२) सबका पालन करने वाले या आशुकारी स्त्री पुरुष

'वने न वायोन्यधायि चाकन्'

शुचिर्वां स्तोमो भुरण्या वजीगः'

ऋ. १०.२९.१, अ. २०.७६.१

हे पोषक या धारक अश्विनीद्वय, वन में जैसे पक्षी द्वारा वृक्ष पर रखा हुआ बच्चा भय या उत्सुकता से देखता हुआ (चाकन्) रहता है उसी प्रकार नीड़ रूपी हममें स्थित तुम्हारा पवित्र स्तोत्र (वां शुचिः स्तोमः) अन्य दोनों के निकट जाता है (अजीगः)। - सा.

हे सबके पालन करने वाले या आशुकारी स्त्री पुरुषों (भुरण्यौ), जैसे इधर उधर देखने वाला या भोजनादि की इच्छा करता हुआ पशु-पक्षी किसी वन में रखा हुआ रहता है, उसी प्रकार सुपर्ण परमेश्वर-पुत्र वेद तुम्हें वन में स्थापित किया हुआ प्राप्त होता है । ज.दे.श.

भुरमाण - (१) भृ + शानच् = भुरयाण (उत्व) । अर्थ है, पुष्टि कारक -दया.

(२) सबका भरण पोषण करने वाला

'युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतम्

ऋ. १.११९.४

आप दोनों विद्वान् और वेगवान् अश्वारोहियों से युक्त (विभिःगतम्) सबक के पालक (भुज्युम्) और सबके भरण पोषण करने वाले (भुरमाणम्) नायक को.....

भुर्वणि- भृञ + क्वणि = भुर्वणि । यः विभर्षि (जो पालन पोषण करता है) । अर्थ है (१) पति, (२) सूर्य, (३) सभाध्यक्ष ।

भुर्वन् - (१) जलों के धारण और आहरण करने का कार्य, (२) भरण पोषण का कार्य,

'अपामिषन्त भुर्वणि'

ऋ. १.१३४.५

जलों के धारण आहरण या प्रजाओं के भरण पोषण के कार्य में (भुर्वणि) प्रेरणा करते रहें (इषन्त) ।

भुरिक् - (१) बाहु, पालनशील बाहु (२) समस्त राष्ट्र (भुरिज्) को भरण पोषण करने वाला

'समी रथं न भुरिजोरहेषत'

ऋ. ९.७१.५

(३) धारक पोषक - दया.

'रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोः'

ऋ. ४.२.१४

(४) कैंची

'क्षुरो न भुरिजोरिव'

अ. २०.१२७.४ शां.श्रौ.सू. १२.१५.१.१.

बाहु के अर्थ में

'सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरम्'

ऋ. ८.४.१६

भूरिषाट् - (१) बहुत भार सहने वाला (२) बहुत शीत, आतपादि सहने वाला

'स ईं रथो न भूरिषाडयोजि'

ऋ. ९.८८.२, साम. २.८२२.

भुवद्वसु - (१) सम्पत्ति शाली, (२) धनों को उत्पन्न करने वाला ।

भुवन - (१) भवनानि भूतानि (प्राणि वर्ग)

(२) जगत् ।

(३) भावन, उत्तम तृप्ति कारक ।

(४) उदक जल । भूतं भुवनम् इति उदकनामसु पठितम् (भुवनस् उदक का पर्याय है) ।

लोक प्राणि जगत् के अर्थ में-

'यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः'

ऋ. १.१६४.२, अ. ९.९.२, १३.३.१८, नि. ४.२७.

जिस काल के गाल में सभी प्राणी अप्राणी विनष्ट हो जाते हैं ।

जल के अर्थ में ।

'नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना'
ऋ. १.१४३.४
पृथिवी की नाभि में जल के बल से (भुवनस्य मज्मना)।
(५) लोक , जीव।
'य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद् भुवनानि विश्वा'
ऋ. १०.११०.९, अ. ५.१२.९, वाज.सं. २९.३४, मै.सं. ४.१३.३: २०२.११, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१४
जिस त्वष्टा में सभी जीवों को उत्पन्न करने वाली इन द्यौ और पृथिवी को तथा समस्त जीवों और लोकों को रूपों से अवयव युक्त किया।

भुवनपतिः– भुवनों का स्वामी
'भुवनपतये स्वाहा'
वाज.सं. २.२, तै.सं. २.६.६.३, मै.सं. ३.८.६, १०३.७, का.सं. २५.७, ३५.८, श.ब्रा. १.३.३.१७.

भुवनस्य गोपाः– सम्पूर्ण प्राणियों का रक्षक – पूषा या आदित्य,
'पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वान् अनष्टपशुर्भुनवस्य गोपाः'
ऋ. १०.१७.३, अ. १८.२.५४, तै.आ. ६.१.१, नि. ७.९.
हे मृतात्मा ! अन्यवहित ज्ञान एवं प्रत्यक्षदर्शी (विद्वान्) सम्पूर्ण प्राणियों के रक्षक (भुवनस्य गोपाः) अविनश्वर पशु भक्त या जिसके रहते पशु नष्ट नहीं होते या निरन्तर प्रकाशवान् आदित्य (अनष्ट पशुः पूषा) तुझे (त्वा) इस लोक से (इतः) उत्तम लोक को पहुंचावे (प्रच्यावयतुः)।

भुवनस्यनाभिः – (१) समस्त संसार का आश्रय – यज्ञ, (२) परमोपास्य परमेश्वर
'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः'
ऋ. १.१६४.३५, अ. ९.१०.१४, वाज.सं. २३.६२.

भुवनस्य रेतः – उत्पन्न होने वाले देह या विश्व का मूल कारण कर्मफल या प्रकृति
'प्रमुञ्चन्तो भुवनस्य रेतः'
अ. २.३४.२
भुवनस्य पंक्तिः भुवन, ब्रह्माण्ड को पकाने या परिपक करने वाली ब्रह्मशक्ति
'सहस्राक्षरा भुवनस्य पंक्तिः'
अ. ९.१०.२१

भुवना– ब.व. (वि.)। भूतकालिक
'सना ता का चिद् भुवना भवीत्वा'
ऋ. २. २४.५

भुवन्ति – (१) भूमि का विस्तार करने वाला (२) कृषि के लिये अनुपयुक्त भूभाग को कृषि के लिए उपयोगी बनाने वाला
'नमो भुवन्तये वारिवस्कृताय'
वाज.सं. १६.१९, तै.सं. ४.५.२.२, मै.सं. २.९.३, १२२.१५, का.सं. १७.१२.

भुवनेष्ठा– सब भुवनों मे स्थित परमात्म शक्ति
'प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः'
अ. ४.१.२.

भुवपतिः–पृथ्वी का स्वामी
'भुवपतये स्वाहा'
वाज.सं. २.२, श.ब्रा. १.३.३.१७

भुवम् – अस्मि। हूँ।
'अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिः'
ऋ. १०.४८.१, ऐ.ब्रा. ५.२१.६, कौ.ब्रा. २२.४, २६.१६
मैं इन्द्र धन का मुख्य, असाधारण सनातन स्वामी हूँ (वसुनः पूर्व्यः पतिः भुवम्)।

भुवः – भु (भूलोक या भूतजात) के षष्ठी एक वचन का रूप। अर्थ– (१) भूलोक का, (२) भूतजात का (३) वातावरण, (४) अन्तरिक्ष लोक, (५) भूः भुवः स्वः नामक व्याहृतियों में द्वितीय (६) भुव नामक अग्नि जो सबका मूल कारण है।
'अयं पुरो भुवः तस्य प्राणो भौवायनः'
वाज.सं. १३.५४
आधुनिक अर्थ – (१) पृथ्वी, (२) संसार, (३) पृथ्वीधन, भूखण्ड, (४) पदार्थ, (४) विषय, (६) प्रतिपाद्य विषय, (७) एक का वाचक, (८) ज्यामितिक रेखा का आधार (९) तीन व्याहृतियों में प्रथम

भुवे– 'भू' शब्द के चतुर्थी ए.व. का रूप। अर्थ– (१) भूलोक के लिए, (२) प्राणी वर्ग के लिए

भूः – भूलोक। भू धातु से सिद्ध। पृथ्वी पर ही सब कुछ उत्पन्न होता है।
'मूर्धाभुवो भवति नक्तमग्निः

ऋ. १०.८८.६, नि. ७.२७.
रात में अग्नि भूलोक की मूर्धा रूप है ।
'भूर्जज्ञ उत्तानपदः'
ऋ. १०.७२.४
उत्तानपाद् से भूमि उत्पन्न हुई

भूत्- भवति (होता है) । लुङ् के अर्थ में लट् का प्रयोग हुआ है । अट् का अभाव है ।

भूतकृत् - (१) प्राणियों को उत्पन्न करने वाली, (२) पंचभूतों को पैदा करने वाली
'यत्र गा असृजन्त
भूतकृतो विश्वरूपाः'
अ. ३.२८.१
(३) समस्त सत्य पदार्थों का उपदेश करना - ऋषि
'स्वसा ऋषीणां भूतकृतां बभूव'
अ. ६.१३३.४
(४) उत्पन्न पदार्थों का भोग करने वाला, (५) पंचभूतों की साधना करने वाला
'यामृषयो भूतकृतः'
अ. ६.१०८.४
(६)समस्त सत्य पदार्थों का उत्पादक ऋषि

भूतन - भवत (होओ) । 'बहुलं छन्दसि' से शप् का लोप और 'तप् तनप् तन धनाश्च' पा. ७.१.४५ से त का तन आदेश'।

भूतपतिः- समस्त प्राणियों और पंचभूतों की शक्तियों का पालक पति और वश करने वाला परमेश्वर
'भूतपतिर्निरजतु'
अ. २.१४.४

भूतस्य पतिः- स्थावरजंगमात्मक जगत का पति-पालक ईश्वर हिरण्यगर्भ ।
हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्
ऋ. १०.१२१.१, अ. ४.२.७, वाज.सं. १३.४, २३.१, २५.१०.का.सं. १६.१५,२०.५, ४०.१, श.ब्रा. ६.४.१.१९, १३.५.२.२३.
सृष्टि के पूर्व परमात्मा से हिरण्य- गर्भ उत्पन्न हुआ, वह अद्वितीय जन्म लेते ही स्थावर जंगमात्मक जगत् का पति, पालक या ईश्वर हुआ ।

भूतसाधनी - समस्त प्राणियों को अपने वश करने वाली - पृथ्वी
'सप्त संसदो अष्टमी भूतसाधनी'
वाज.सं. २६.१

भूतः- (१) स्थावर एवं जगम रूप जगत् ।
(२) उपमार्थक
'इत्था धीवन्तमद्रिवः
काण्वं मेधातिथिम् ।
मेषोभूतोऽभियन्नयः'
ऋ. ८.२.४०
हे वज्रधारी इन्द्र ! (अद्रिवः) इस प्रकार से (इत्थम्) बुद्धिमान् या कर्मनिष्ठ (धीवन्तम्) काण्व मेधातिथि नामक ऋषि के पास आह्वान् सुनते ही जाता हुआ (काण्वं मेधातिथिम् अभियन्) रूप या भेंड की तरह (मेषः भूत) आह्वान् का उत्तर दिए बिना ही तू उनके पास पहुंच गया (अयः) ।
अन्य अर्थ - वज्रिन् राजन्, सत्य वक्ता (इत्था) कर्मशील (धीवन्तम्) मेधावी (काण्वम्) तथा संगति के योग्य अतिथि को (मेधातिथिम्) भेंडे की तरह (मेषः भूतः) प्राप्त होते हुए (अभियन्) आवश्यक सामग्री पहुंचा (अयः)।

भूतांशः - समस्त प्राणियों में व्यापक प्रभु
'आ भूतांशो अश्विनोः काममप्राः'
ऋ. १०.१०६.११

भूति- (१) समस्त ऐश्वर्य
'भूतञ्च मे भूतिश्च मे'
वाज.सं. १८.१४, तै.सं. ४.७.५.२, मै.सं. २.११.५, १४२.९, का.सं. १८.१०.
'भूत्यै जागरणं'
वाज.सं. ३०.१७, तै.ब्रा. ३.४.१.१४
(२) जीवन का आश्रय, (३) सुखभूमि
'भूमिरिति त्वाभिप्रमन्वते जनाः'
अ. ६.८४.१, तै.सं. ४.२.५.३.

भूतु - भवतु (हो) ।
'युवाभ्यां भूत्वश्विना'
ऋ. ८.५.१८, २६.१६
हे अश्विनीद्वय, वह सोम तुम्हें प्रियकर हो ।
'स भूतु यो ह प्रथमाय धायसे
ओजो मिमानो महिमानमातिरत्'
ऋ. २.१७.२

भूमन् - भू + मनिन् = भूमन् । अर्थ है - (१) भूमि, (२) महान् यज्ञ, (३) महान् तपश्चरण ।

'ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना'
ऋ. १०.८२.४, वाज.सं. १७.२८. तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३, १३४.६, का.सं. १८.१
जैसे पूर्वकालीन स्तुतिकर्त्ता ऋषियों ने वार्षसाहस्रिक यज्ञ से सृष्टि की। अथवा, परमात्म भक्तों के समान पूर्वकालीन ऋषियों ने महान् तपश्चरण से जैसे.....
पृथ्वी के अर्थ में प्रयोग-
'यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम'
ऋ. ५.८५.३, नि. १०.४
जैसे पढ़ाने वाला (वृष्टिः) पृथ्वी को (भूम) यव बोने के लिए (यवं न) तरह तरह से सींचता है (व्युनत्ति)।
(४) बहुत, बहुत सी प्रजा, बहुत सेना
'भूम्ने परिष्कन्दम्'
वाज.सं. ३०.१३, तै.ब्रा. ३.४.१.७.
(५) बहुत भारी संख्या
'गृह्णेऽहं त्वेषां भूमानम्'
अ. १९.३१.४
(६) महान् - दया.
(७) कारणभूत - सा.

भूम्य - भूमिषु साधुः। भूमि का उच्च भाग, उच्चप्रदेश
'विभूम्या अप्रथम इन्द्रसानु'
ऋ. १. ६२.५
हे ऐश्वर्यवन्! तू भूमि के उच्च भाग, उत्तम प्रदेश को विस्तृत कर

भूमा - ब्र.व। (१) बहुत, बड़े बड़े
'श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ
भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते'
ऋ. ६.५०.५
तुम हमारा आह्वान सुनकर जब आते हो तो मार्ग में अर्थात् अन्तरिक्ष में बहुत जीव कांपने लगते हैं।
अथवा,
उपदेश का श्रवण कर जब तुम सब क्रियाएं करते हो तब जीवन मार्ग के परिशुद्ध होने पर बड़े बड़े शत्रुसैन्य तुम से कांपते हैं।
(२) (सं.) ए.व.। अधिकता, प्रचुरता
'अन्नस्य भूमा प्ररुषस्य भूमा'
अ. ५.२८.३

भूमि - (१) भूमि, पृथिवी। आधुनिक अर्थ - पृथ्वी, भूभाग, अधित्यका भूमि, स्थान, पृथ्वी धन, कथा, भवन की संतह, चेष्टा, पात्र, विश्वास भूमि, इयत्ता, सीमा, जिह्वा
(२) जब जगत का उत्पादक प्रकृति
'स भूमिं विश्वतो वृत्वा
अत्यतिष्ठत् दशांगुलम्'
ऋ. १०.९०.१

भूमिगृह - (१) जिसका भूमि ही गृह हो, (२) खाक में मिल जाना।
'मा नु भूमि गृहो भुवत्'
अ. ५.३०.१४

भूमिज - भूमि + जन् + ड = भूमिज। अर्थ - (१) भूमि का पुत्र अंगार, कुज, मंगल

भूमि दृंहः - (१) भूमि को दृढ़ करने वाला दर्भ। (२) राज्य को दृढ़ करने वाला।
'भूमि दृंहोऽच्युतश्च्यावयिष्णुः'
अ. १९.३३.२

भूयस्करः - अति अधिक समृद्धि का कर्त्ता
'बहुकार श्रेयस्कर भूयस्कर'
वाज.सं. १०.२८, श.ब्रा. ५.४.४.१४

भूयान् - अधिक।
'भूयानिन्द्रो नमुरात्'
अ. १३.४.४६

भूयाः - भव (हो)।

भूयो भूयः - भविष्य में
'भूयोभूयःश्वः श्वः'
अ. १०.६.५-१७

भूरिदावरी - बहुत से ऐश्वर्य देने वाली
'विद्मा ह्यस्य वीरस्य
भूरिदावरीं सुमतिम्'
ऋ. ८.२.२१

भूर्जय- भूलोक को या जन्मग्रहण रूप भवबन्धन को विजय करने वाला
'प्र भूर्जयो पथापथा'
अ. १८.१.६१, साम. १.९२

भूर्जयन् - भुवनों को वश में करने वाला
'प्र भूर्जयन्तं महां विपोधाम्'
ऋ. १०.४६.५, साम. १.७४

भूर्यासुति- भूरि + आसुति। बहुत से अन्नों का स्वामी- प्रभु, इन्द्र
'वृत्रहा भूर्यासुतिः'

ऋ. ८.९३.१८, साम. १.१४०.

भूर्णयःस्पशः- (१) समस्त संसार को भरण पोषण करने वाले या धर पकड़ करने वाले सब के चरित्रों को देखने वाले नियमरूप दूत

'तस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः'

अ. ५.६.३, का.सं. ३८.१४

'अस्य स्पशो न नि मिषन्ति भूर्णयः'

ऋ. ९.७३.४, आप.श्रौ.सू. १६.१८.७.

भूर्यक्षाः - भूरि + अक्षाः । (१) बहुत आंखों वाले । 'आदित्यासः' का विशेषण, (२) दूतादि रूप चक्षुओं वाले, (३)बहुत से अध्यक्षों के स्वामी राजा

'अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः'

ऋ. २.२७.३

भूरि - भूरि इति बहुवो नामधेयम् । प्रभवति इतिसतः 'भूरि' बहुत का वाचक है । इससे होता है अतः यह भूरि है ।

बहुधाऽपि दीयमानम् एतत् प्रभवति (अनेक प्रकार से देने पर भी यह बढ़ता ही है ।

भू + क्रिन् = भूरि । अंग्रेजी के very शब्द का 'भूरि' शब्द से सम्बन्ध विचारणीय है ।

अर्थ - बहुत, अनेक, अच्छी तरह से । दे. 'अनिन्द्र'

'खलेन पर्षान् प्रतिहन्मि भूरि'

ऋ. १०.४८.७, नि. ३.१०

खलिहान में (खले) धान्य सहित पुआल के समान अनकों शत्रुओं को एक ही साथ कुचल डालता हूँ ।

भूरिकर्या - (१) बहुत अधिक कर्म करने वाला - परमेश्वर (२) राजा

'भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे'

ऋ. १.१०३.६

भूरिजन्मा - (१) नाना जन्मों का स्वामी (२) बहुत से पदार्थों का जन्म दाता

'अस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे'

ऋ. १०.५.१

भूरिलोक - बहुत पुत्रो वाला ।

भूरिदात्रः - प्रचुरदान करने वाला, प्रचुरदाता ।

'भूरिदात्र आ पृणद्रोदसी उभे'

ऋ. ३.३४.१, अ. २०.११.१

हे प्रचुरदान करने वाले इन्द्र या राजन् ! (भूरिदात्र) आप द्युलोक तथा पृथ्वीलोक को जैसे सूर्य पालन करता है वैसे ही प्रजाओं का पालन करें (आ पृणत्) ।

भूरिदावत्तरा - (१) अतिशयेन बहुधनस्थ दाता (प्रत्येक धन को अतिशय रूप से देने वाला) ।

भूरि + दा + वनिप् = भूरिदावत्, भूरिदावत् + तरप् = भूरिदावत्तर ।

बहुत अधिक दान देने वाले इन्द्राग्नी का विशेषण । द्वि.व. में यह प्रयोग है ।

'अश्रावं हि भूरिदावत्तरा वाम्'

क्योंकि मैंने तुम्हें बहुत दान करने वाला सुना है ।

भूरिदावा - बहुत दान देने वाला ।

'भूरिदाव्न आविदं शूनमापेः'

ऋ. २.२७, २८.११, २९.७.

भूरिधनः- बहुत धनी, धनाढय

'उपहूताः भूरिधनाः'

अ. ७.६०.४, आप.श्रौ.सू. ६.२७.३, हि.गृ.सू. १.२९.१.

भूरिधारा- बहुत धारावाली

भूरिधारे - द्वि.व. । द्यावापृथिवी का विशेषण । बहुत धारावाली या बहुत जीवों को धारण करने वाली ।

'असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती'

ऋ. ६.७०.२, नि. ५.२.

परस्पर संश्लिष्ट नहीं होती हुई, बहुत धारा वाली, या बहुत जीवों को धारण करने वाली तथा जलवाली द्यौ और पृथिवी ।

भूरिपर्वस्- (१) बहुत रूपों वाला- परमात्मा या अग्नि ।

(२) पार्थिव वैद्युत आदि रूपों वाला अग्नि-सा.

(३) अनेक रूपों वाला परमेश्वर -दया.

'आ विवेश रोदसी भूरिपर्वसाः'

ऋ. ३.३.४

पार्थिव वैद्युत आदि अनेक रूपों में वर्तमान् अग्नि ने द्यौ और पृथिवी में प्रवेश किया है । -सा.

परमेश्वर द्यौ और पृथिवी में अनेक रूपों में वर्तमान है । -दया.

भूरिपोषिन् - बहुतों का पालन पोषण करने वाला ।

'तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयम्'

ऋ. ३.३.९

भूरिभारः- बहुत भार वाला
'तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः'
ऋ. १.१६४.१३, अ. ९.९.११.
उस काल चक्र में वर्तमान संवत्सर नामक अक्ष प्रभूत भार वाला होने पर भी (भूरिभारः) पीड़ित या भग्न नहीं होता (न तप्यते)।

भूरिमूल- (१) लम्बी जड़ वाला दर्भ (२) बहुत से मूलरूप आश्रयों पर स्थित पुरुष
'अयं यो भूरिमूलः'
अ. ६.४३.२

भूरिरेतस् - (१) जिसमें बहुत से जल हो- अन्तरिक्ष-दया. (२) बहुत वीर्य या बहुत वीर्य वाला
'अग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा'
ऋ. ३.३.११, तै.सं. १.५.११.१
(३) बहुत से लोकोत्पादक वीर्य के सात प्राम-सामर्थ्यों से युक्त -काल
'सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः'
अ. १९.५३.१

भूरि रेतसा- द्वि.व.। बहुत वीर्यशाली (२) सहस्रों प्राणियों को उत्पन्न करने वाली दोनों उषाएं प्रातः और सायम्
'केतुमती अजरे भूरिरेतसा'
अ. ८.९.१२, मै.सं. २.१३.१०, १६०.४, का.सं. ३९.१०

भूरिवारः - (१) सहस्रों कष्टों का कारण करने वाला, (२) बहुतों से वरणीय
'सुखं रथं सुषदं भूरि वारम्'
ऋ. ८.५८.३

भूरिवारा - (स्त्री)। बहुत प्रकार के सुख धनादि को चाहती हुई स्त्री
'इमा उ ते मनवे भूरिवाराः'
ऋ. ३.५७.४

भूरिवृत्राः- (१) बहुत से विघ्न, (२) बहुत से विघ्नकारी दुष्ट पुरुष
'वृत्रा भूरि न्यृञ्जसे'
ऋ. ८.९०.४

भूरिश्रृंगाः- ब.व.। (१) जिन्हें बहुत श्रृंग या दीप्ति हों, बहुत सींगों वाली (२) बहुत दीप्ति वाली दे. 'अयासः'।
(भूरि श्रृंगाः दीप्तयः यासांताः)

भूरिस्थात्रा- (१) बहुत शक्ति प्रदान करने वाली
'भूरिस्थात्रां भूर्या वेशयन्तीम्'
ऋ. १०१२५.३, अ. ४.३०.२
(२) नाना पदार्थों में स्थित होकर उनका त्राण करने वाली राष्ट्री परमेश्वरी शक्ति

भूर्णिः- भ्रम् + नि = भूर्णि। अर्थ (१) भ्रमणशील - सिंह - सा. (२) भृ + नि = भूर्णिः। धारण कर्ता - ज.दे.श.
'भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधम्'
ऋ. ८.१.२०, साम. १.३०७, नि. ६.२४.
जैसे श्रृगालादि वन्यजीव भ्रमणशील सिंह को (भूर्णिं मृगं न) क्रोधित नहीं करता (माचुक्रुधम्)-सा.
सबके धारण कर्ता आप को (भूर्णिम्) सिंह के समान क्रोधित न करूँ (मा चुक्रुधम्)।

भूर्णिःभृगः- (१) भ्रमण शील सिंह। भूर्णि शब्द को कुछ विद्वान् इन्द्र का विशेषण समझ धारण कर्ता अर्थ करते हैं।

भूषण- (१) प्रकट होता हुआ, (२) व्यापक होता हुआ, (३) उत्पन्न होता हुआ।

भूषात् - (१) अतिक्रमण करता है, सामर्थ्यवान् होता है।
'कविर्यदहन् पार्याय भूषात्'
ऋ. ४.१६.११
हे इन्द्र या राजन्! तू क्रान्तदर्शी जिसी दिन (यत् अहन्) आपत्ति को निवारने, या शत्रुओं को पार करने या दुःख सागर में पार होने के लिये इच्छा करता है उसी दिन उन शत्रुओं का अतिक्रमण करता है या सामर्थ्यवान् होता है (पर्याय भूषात्)।

भ्रू - भौं
'पन्थानं भ्रूभ्याम्'
वाज.सं. २५.१

भ्रूण- (१) गर्भ, (२) अङ्कुर
'सर्वा भ्रूणान्यारुषी'
ऋ. १०.१५५.२

भ्रूणहा- (१) भ्रूणघाती पुरुषष (२) वाधायन ने 'भ्रूण' का अर्थ 'कल्पप्रवचनाध्यायी' माना है। कल्प प्रवचन-सहित सांगवेद का विद्वान् भ्रूण है और उसको मारने वाला 'भ्रूणहा' है।

'भ्रूणघ्नि पूषन् दुरितानि मृक्ष्व'
अ. ६.११२.३, ११३.२

भृगवा- (१) पापों को भून डालने वाला-अग्नि, (२) पाप को भून डालने वाला ज्ञान -प्रकाश
'भृगवानं विशेविशे'
ऋ. ४.७.४

भृगवाणः- (१) पदार्थ विद्या से अनेक पदार्थों को व्यवहार में लाने वाला -दया. (२) भुनने वाला -अग्नि -ज.दे.श।
'आ दूत्यं भृगवाणो विवाय'
ऋ. १.७१.४
वह भुनने वाला तीव्र अग्नि को रूप के में होकर (भृगवाणः) तापक्रिया को प्रकट करता है।

भृगुः- भ्रस्ज् (पाक अर्थ में) + उ। ('पथिम्रदि भ्रस्जां सम्प्रसारणं स लोपश्च - उ.) = भृगु। र् का साम्प्रसारण ऋ, स का लोप और ज् का ग।
अर्चिषि भृगुः सम्बभूव। (भृगु नामक ऋषि ज्वाला से उत्पन्न हुए)। ज्वाला बुझ जाने पर जो अङ्गार थे उनसे अंगिरा उत्पन्न हुए (अंगरेषु अंगिराः)।
भृगुः भृज्यमानः न देहे। प्रजापति ने अपना वीर्य अग्नि में डाल दिया। अग्नि में विशेष रूप से परिपक्व होने पर वह वीर्य देह रूप में परिणत हुआ और अत्यन्त तेजस्वी होने से भृगु कहलाया।
स्वा. दयानन्द ने भृगु का अर्थ तपस्वी किया है क्योंकि तपस्वी कष्टों में अच्छी तरह भुना रहता है।
अर्थ - (१) भृगु नामक अथर्व वंश वाले ऋषि -सा.। भृगु और अंगिरा अथर्वाणः कहलाए हैं, (२) जमदग्नि ऋषि का एक नाम, (३) तपस्वी, वाणप्रस्थी।
'अंगिरसो नः पितरो नवाग्वाः
अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः'
ऋ. १०.१४.६, अ. १८.१.५८, वाज.सं. १०.५०, तै.सं. २.६.१२.६, नि. ११.१९
पुनः-
'यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं
नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना।
अग्नि तं गीर्भिर्हिनुहिस्व आ दमे
य एको वस्वो वरुणो न राजति'
ऋ. १.१४३.४
भृगुपुत्र या पाप भर्जक तपस्विजन (भृगवः) सर्वज्ञ या सर्वधन जिस अग्नि को (विश्ववेदसं यम्) वेदी को उत्तरवेदी में (नाभा) भूतजात के (भुवनस्य) बल या निमित्त से (मज्मना) या उदक के हविरूप बल से अधिप्रेत सिद्धि के लिए सामने लाया (आ ईरिरे) उस अग्नि को (तम् अग्निम्) अपने घर में (स्वेदमे) स्तुतियों से (गीर्भिः) सम्मुख हो (आ) प्राप्त कर या प्रेरित कर (हिनुहि) जो अग्नि अकेले (यः एकः) सूर्य के समान (वरुणो न) गवादि धन का स्वामी है (वस्वःराजति)।
स्वामी दयानन्द ने भृगु का अर्थ तपस्वी तथा अग्नि का अर्थ परमात्मा किया है। अतिपरिपक्व ज्ञान वाला, अपने सुदीर्घ अनुभव से ज्ञान को परिपक्व करने वाला ज्ञानी।
(४) एक महर्षि जो भृगुओं के पूर्व पुरुष कहे गए हैं। (५) प्रथम मनु के द्वारा सृष्ट दश ऋषियों में एक (६) शुल्क्र
पौराणिक कथा इस प्रकार है-
एक बार जब ऋषियों में विवाद हुआ कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव में कौन पूज्य है, तो भृगु ही तीनों की परीक्षा के लिए भेजे गए। जब वे ब्रह्मा के पास पहुंचे तब ब्रह्मा ने उनका सम्यक् सत्कार नहीं किया अतः ब्रह्मा को भृगु ने शाप दे दिया कि तू कभी पूज्य नहीं होगा।
जब वे शिव के निकट पहंचे तो शिव पार्वती जी के साथ प्रेममग्न थे। उन्हें शाप दिया कि शिव के लिंग की ही पूजा होगी।
जब वे विष्णु के पास पहुंचे तो उन्हें सोते देखा भृगु ने उनकी छाती पर कस के लात मारी। विष्णु ने उठकर पूछा कि ऋषिवर के पैर में चोट तो नहीं लगी। और पैर सहलाने लगे। भृगु ने विष्णु की इस दयालुता और उदारता से ही उन्हें ही सर्वोत्तम देव समझा।
दूसरी कथा - भृगु ने ब्रह्मा के निकट जाकर जान बूझकर प्रणाम आदि नहीं किया। ब्रह्मा के बहुत क्रुद्ध होने पर उन्होंने उनसे क्षमा प्रार्थना की। पुनः शिव के पास पहुंच भी उन्होंने वैसा ही किया। इस पर शिव क्रोधाग्नि से भभक उठे। उन्हें भी प्रार्थना द्वारा शान्त किया।

आधुनिक अर्थ - (१) जमदग्नि ऋषि का एक नाम, (२) शुक्र का नाम, (३) शुक्र ग्रह, (४) चट्टान (५) पर्वत के ऊपर की समतल भूमि, (६) कृष्ण का नाम,

'कण्वा इव भृगवः सूर्या इव'

ऋ. ८.३.१६, अ. २०.१०.२, ५९.२, साम. २.७१३, मै.सं. १.३.३९, ४६.७, आप.श्रौ.सू. १३.२१.३.

भृङ्गा- भ्रमर, भौंरा

'श्रोत्राय भृङ्गाः'

वाज.सं. २४.२९, मै.सं. ३.१४.८.१७४.२.

'यावतीर्भृङ्गा जत्वः कुरूरवः'

अ. ९.२.२२

भृत्या- भरण पोषण की क्रिया

'य एषां भृत्यामृणधत् स जीवात्'

ऋ. १.८४.१६, अ. १८.१.६, साम. १.३४१, तै.सं. ४.२.११.३, मै. सं. ३.१६.४, १९०.५, नि. १४.२५.

भृति- (१) भरण पोषण , (२) वेतन, वृत्ति,

भृम - (१) भरण पोषण में समर्थ

'वेदा भृमं चित् सनिता रथीतमः'

ऋ. ८.६१.१२

(२) भ्रम, भूल

'मा ते अस्मान् दुर्मतयो भृमाच्चित्'

ऋ. ७.१.२२

भृमल- भौंरा जाति का एक कीट जिसे भेमा भी कहते हैं।

'हेमन्तजब्धो भृमलो गुहा शये'

अ. १२.१.४६

भृम्यश्व- (१) भृ + मिङ् = भृमि। अर्थ है। भर्त्तव्य पालनीय। यहां मिङ् प्रत्यय कर्म में हुआ है।

'भृमयः अस्य अश्वाः'

(इसके अश्व अनवस्थायी हैं)।

अथवा - 'विभर्ति असौ अश्वान्' (यह अश्वों का पालन करता है अर्थात् - अश्व रखने या पोसने वाला।(२) भ्रम् + इन् = भ्रमि। ऐसी व्युत्पत्ति करने पर अर्थ होगा - घोड़े को फेरने वाला (अश्वस्य भ्रामयिता)।

(३) भृम्यश्व नामक एक राजा (४) जिसके अश्व सदा चलने फिरने वाले हों।

(४) जो अनेक अश्वों का धारण करने वाला है।

भृमि - भ्रम् + इन् = भृमि। 'भ्रमेः सम्प्रसारणञ्च' से भ्र के र का ऋ। अर्थ है (१) भरमने वाला - अग्नि।

(२) दुर्ग ने इसका अर्थ - 'त्वदधीन एव संसार मोक्षश्च' (तेरे ही अधीन संसार और मोक्ष है) ऐसा किया है।

(३) सायण ने इसका अर्थ- भ्रामक या कर्म निर्वाहक किया है।

(४) स्वामी दयानन्द के अनुसार इस का अर्थ 'भ्रमणशील' प्रजा है।

'इमामग्ने शरणिं मीमृषो नः
इममध्वानं यमगामदूरात्
अपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां
भृमिरस्यृषि कृन्मर्त्यानाम्'

ऋ. १.३१.१६

हे अग्नि! हमारी इस व्रतलोमिनी हिंसा या मरण रूपिणी संसृति को (नः इमां शरणिम्) तू क्षमा कर या मार्जन कर (मीमृषः) तथा अग्निहोत्रादि रूपी तेरी सेवा का त्याग कर जो हम दूरदेशी मार्ग पर भटक कर आ गए हैं। उसे भी तू क्षमा कर (दूरात् यम् इमम् अध्वानम् अगाम) क्योंकि तू सोमयज्ञ करने वाले मनुष्यों के प्रापणीय या व्यापयिता है (सोम्यानां मर्त्यानाम् आपिः), पालक पिता तथा प्रकृष्ट मति वाला है (प्रमतिः असि)। इतना ही नहीं, तू संसार में भ्रमयिता, भ्रामक या कार्य निवाहक है अर्थात् तेरे बिना संसार नहीं चल सकता (भृमिः)। और तू दर्शन कारी अर्थात् पदार्थों को प्रत्यक्ष करने वाला है (ऋषिकृत्)। अतः तू सभी विज्ञानों के प्रकाश से हमें अनुगृहीत करे- देवयान पथ से जाकर हमें मोक्ष दें।

स्वा.दयानन्द का अर्थ - हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! आप हमारी इस मृत्यु को परिमार्जित करो (नः इमां शरणिं मीमृषः) और इस संसार मार्ग को (इमम् अध्वानम्) जिसे हमने आप से दूर होकर प्राप्त किया है (यं दूरात् अगाम), हम से हटावो। आप प्राप्त हो (आपिः), पिता हो (पिता), प्रकृष्ट बुद्धि वाले सौम्य जनों को तथ्यदर्शी बनाने वाले हो (सोम्यानां मर्त्यानाम्) एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के नायक हो।

(४) धारक सूर्य, (६) भरण पोषण करने वाली स्वामी (७) भ्रमण शील विद्वान् (८) परिव्राजक

'भूमिं चित् यथा वसवो जुषना'
ऋ. ७.५६.२०
(९) भ्रम, संशय, (१०) मेघ
'भूमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत'
ऋ. २.३४.१, तै.ब्रा. २.५.५.४.

भृष्टिः- (१) तेज, प्रकाशं
'सामद्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः'
ऋ. ४.५.३
(२) पर्वत श्रृंग।
'गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः'
ऋ. १.५६.३
वह इन्द्र पौरुष में पर्वत श्रृंगार की तरह चमकता है।-सा.
शीघ्र प्रदाता, महान् तेजस्वी पुरुष अक्षीण यौवन में पर्वत शृंग की तरह चमकता है - दया.।

भृष्टिमत् - (१) पापों को भून डालने वाला अज्ञान -नाशक प्रकाश, (२) जलाने वाला अस्त्र (३) प्रशंसनीय नीतिवाली न्याय भावना से युक्त
'वृत्रस्य यद् भृष्टिमता वधेन
नि त्वमिद्र प्रत्यानं जघन्थ'
ऋ. १.५२.१५

भेकुरिः- (१) प्रकाश करने वाला नक्षत्र, (२) ज्ञान दीप्ति करने वाली
'तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम'
वाज.सं. १८.४०, तै.सं. ३.४.७.१, मै.सं. २.१२.२; १४५.४, का. सं. १८.१४, श.ब्रा. ९.४.१.९.

भेजानः- सेवन करता हुआ
'भेजानासः सुवीर्यम्'
ऋ. १०.१५३.१, अ. २०.९३.४

भेद - विदलीभूत प्रदेश।

भेषज- (१) दवा, ओषधि,
'दिवानक्तं न भेषजैः'
वाज.सं. २१.३६, मै.सं. ३.११.२ः १४२.६, तै.ब्रा. २.६.११.६.
(२) भे + षज। भय का सादन करने वाला कर्म -सा.
(३) भेषजमय हाथ- दया.
'ऊर्ध्वं जिगातु भेषजम्'
ऋ.खि. १०.१९१.५; मै.सं. ४.१३.१०: २१३.१; श.ब्रा. १.९.१.२७; तै.ब्रा. ३.५.११.१; तै.आ. १.९.७; ३.१.
भय का सादन करने वाला कर्म ऊपर जाय- सा.
हे ईश्वर! आप का भेषजमय हाथ हमारे ऊपर रखा रहे - दया.

भेषजाः - ब.व.। (१) ओषधियां।
'सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा'
ऋ. ७.४६.३, नि. १०.६
.हे स्वप्न वचन या वातावरण में आविष्ट या वातावरण को धारण करने वाले रुद्र (स्वपि वात), तेरी सहस्रों ओषधियाँ (२) पथ्य, भोजन। (३) भय सादयितृकर्म (भय दूर करने वाला कर्म भी भेषज है)
(४) भेषजनम् - परमात्मा का हाथ।

भेषज़ी- (१) रोगों को दूर करने वाली
'आप इद् वा उ भेषजीः'
ऋ. १०.१३७.६, अ. ३.७.५, ६.९१.३

भ्रेष्- (धा.) च्युत होना
'नू चित् स भ्रेषते जनो न रेषन्'
ऋ. ७.२०.६

भोज् - यः भुज्यते (जो खाया जाता है) - अन्न,

भोजः - (१) राजा या दानी। भुज् + अच् = भोज
(२) भोजन आदि द्वारा सत्कार करने वाला
'न भोजा मम्रुर्न न्यर्थकीयुः'
ऋ. १०.१०७.८
'किमङ्गत्वा मघवन् भोजमाहुः'
ऋ. १०.४२.३, अ. २०.८९.३
'भोज्यायाश्वं सं मृजन्त्याशुम्'
ऋ. १०.१०७.१०
राजा या दानी के लिए (भोजाय) परिचारक शीघ्र गामी अश्व (आशुम् अश्वम्) अलंकृत करते हैं (संमृजन्ति)। (२) भोजक, भोगी, (३) स्रष्टा, पालक,
'न ते भोजस्य सख्यं मृषन्त'
ऋ. ७.१८.२१
वे ऋषि तुम् भोजक या योगी का संग नहीं बिसारते।
या, तुझ स्रष्टा पालक का संग नहीं छोड़ते।
(३) पृथ्वी का भोक्ता पालक - इन्द्र
'सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम्'
ऋ. २.१४.१०, ६.२३.९.

भोजन - पु (१) पालक परमेश्वर (२) भोक्ता आत्मा,

(३) भोक्ता और पालक राजा
'स्तविष्यामि त्वामहं
विश्वस्यामृते भोजन'
ऋ. १.४४.५, नि. ६.२३
(४) (नः) भुज् + ल्युट् = भोजन। भोज्य पदार्थ, भोजन, (४) भोग्य धन।
भुज्यते यैः यानि वा (जिन से भोजन किया जाता है या जिन से खाया जाता है)।
'दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमानाः
जहुर्विश्वानि भोजनानि सुदासे'
ऋ. ७.१८.१५
दुष्ट कलाबाज बनिए, सुन्दरदान देने वाले यजमान या सुदास राजा को सभी भोजन या धन देवें।
(४) बल, अन्न, धन

भोजनौ – द्वि.व.। परिपालक। भुज् धातु पालनार्थक भी है।
'दातुः पितृष्विह भोजनौ मम'
अ. १८.४.४९

भोजस्– (१) भुज् + असुन्। अर्थ -पालन, (२) भोग
'त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे
महो नृम्णस्य धर्मणाभिरज्यसि'
ऋ. १.५५.३
हे इन्द्र या राजन्! जिस प्रकार मेघ को सूर्य, विद्युत या वायु समस्त प्रजाओं के पालन के लिए (महो नृम्णस्य भोजसे) आघात करता है। उसी प्रकार तू.......

भोज्या – (१) स्त्री -सा.
(२) साहाय्य – दया.
'ददाति मह्यं यादुरी
याशूनां भोज्या शता'
ऋ. १.१२६.६
जो बहुत रंगवाली स्त्री सौ सौ संभोग मुझे देती है। -सा.
मेरी पत्नी प्रयत्न शीलों में अधिक प्रयत्न शीला होती हुई (यासूनां यादुरी) मुझे राज्य-पालन सम्बन्धी अनेक साहाय्य देती है।

भोगः– (प्र.) (१) भोज्य पदार्थ।
'यदा ते मर्तो अनु भोगमानट्'
ऋ. १.१६३.७, १०.७.२, वाज.सं. २९.१८, तै.सं. ४.६.७.३, नि. ६.८
जब मनुष्य तेरे आगे तेरा भोज्य पदार्थ रखता है।
(२) शरीर।
'अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुम्'
ऋ. ६.७५.१४, वाज.सं. २९.५१, तै.सं. ४.६.६.५, वै.सं. ३.१६.३, १८७.४, नि. ९.१५.
हे धनुर्धारी के हाथ में बांधे जाने वाला प्रकोष्ठ (हस्तघ्न), तू प्रकोष्ठ के चारों ओर उसी प्रकार घेरे रहता है जैसे सर्प अपने को अपने शरीर से (अहिरिव भोगैः)।
(३) सर्प का फणि।
'भोगोभिः परिवारय'
अ. ११.९.५

भौमी– भूमि के भीतर तत्वों को प्राप्त करने वाला
'श्वाविद्भौमी'
वाज.सं. २४.३३, मै.सं. ३.१४.१४: १७५.६.

भौवायन् – भुव नामक अग्नि से उत्पन्न प्राण
'तस्य प्राणो भौवायनः'
वाज.सं. १३.५४, तै.सं. ४.३.२.१, मै.सं. २.७.१९: १०३.१५, का .सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.१.१५

म

मकक– हीन आचार वाला पुरुष, मक्कार, धूर्त
'मककान् नाशयामसि'
८.६.१२

मकर– मगर, घड़ियाल
'नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य'
वाज.सं. २४.३५, तै.सं. ५.५.१३.१, मै.सं. ३.१४.१६:१७६.१

मक्ष– मक्खी
'मधौ न मक्ष आसते'
ऋ. ७.३२.२, साम. २.१०२.२६

मक्षा– मधुमक्खी
'यथा मक्षा इदं मधु'
अ. ९.१.१७

म्रक्षकृत्वा– शत्रुओं का नाशक इन्द्र, परमेश्वर
'उग्रबाहुर्म्रक्षकृत्वा पुरन्दरः'
ऋ. ८.६१.१०

मक्षिका– माशति शब्दयति रोषं

करोति वा सा मक्षिका । मश शब्दे रोष करणे च । मश् + सिकन् (हनि मशिभ्यां सिकन्)
(१) मक्खी, (२) शिक्षा या उपदेश या रोष का कार्य करने वाली सभा या सेना
'यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश'
ऋ. १.१६२.९, वाज.सं. २५.३२, तै.सं. ४.८.६, मै.सं. ३.१६.१: १८२.१४
(३) उपदेश या शिक्षा का कार्य करने वाली विद्वत्सभा (४) रोष का कार्य करने वाली सेना –ज.दे.श.

मक्षु – शीघ्र ।
'प्रणः पूर्वस्मै सुविताय वोचत
मक्षु सुम्नाय नव्यसे'
ऋ. ८.२७.१०
हे देवो, पूर्व के हुए तथा नए सुविधा एवं सुख के लिये हमें शीघ्र वचन दें (मक्षु प्रावोचत) ।

मक्षुंगमा– अति वेग से जाने वाली
'मक्षुंगमाभिरूतिभिः'
ऋ. ८.२२.१६

मक्षू– शीघ्र
'प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्'
ऋ. १.५८.९, ६०.५, ६१.१६, ६२.१३.६३.९, ६४.१५, ८.८०.१०, ९.९३.५, अ. २०.३५.१६, कौ.ब्रा. २२.२.

मक्षूमक्षू– अति शीघ्र
'मक्षू मक्षू कृणुहि गोजितो नः'
ऋ. ३.३१.२०

मक्षूतम – अतिशीघ्रकारी, अति कुशल पुरुष
'मक्षूतमस्य रातिषु'
ऋ. ८.१९.१२
'मक्षूतमेभिरहभिः'
ऋ. ९.५५.३, साम. २.३२७

मक्षूयु – शीघ्रकारी अश्व, साधन या विद्वान् ।
'मक्षूयुभिर्नरा हयेभिरश्विना'
ऋ. ७.७४.४

मख – महेः ख प्रत्ययः हलोपश्च । यद्वा मख (गतौ) + घ = मख । अर्थ– (१) त्रुटि रहित यज्ञ छिद्र प्रतिषेध सामर्थ्यात । छिद्रं खमित्युक्तं तस्य मा इति प्रतिषेधः । मा + ख = मख, छिद्र रहित ।
'एष वै मखः य एष तपति'
शा.ब्रा. १४.१.३.५
'स एव मखः स विष्णुः । तत
इन्द्रो मखवान् अभवत् ।
मखवान् ह वै तं मघवान्
इत्याचक्षते परोऽक्षम्'
श.ब्रा. १४.१.१.१३
अर्थ – (१) पूजनीय पद, (२) संग्राम, (३) एकत्र होने या प्राप्त होने का स्थान (४) यज्ञ, त्रुटि रहित पूर्ण व्यवस्था यज्ञ हैं, (५) विष्णु, (६) व्यापक शक्तिमान, परमेश्वर, (७) सूर्य, (८) तेजस्वी राजा, (९) व्यापक राष्ट्र
'देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः'
वाज.सं. ३७.४, श.ब्रा. १४.१.२.१०
'मख' और 'मखि' (गत्यर्थक धातु) + अच् = मख'
(१०) सर्वव्यापक, (११) सर्वज्ञ, (१२) एक मात्र वेद्य, (१३) पूजनीय
'मखस्य ते तविषस्य प्रजूतिम्'
ऋ. ३.३४.२; अ. २०.११.२
मेह + अच् = मख (निपातन से) । दानशील ही महान् और महनीय होता है । आधुनिक अर्थ यज्ञ ही है ।
यज्ञ सफलता के साथ समाप्त हो । पुनः–
'प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय
मारुताय स्वतवसे भरध्वम्
ये सहांसि सहसा सहन्ते
रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः'
ऋ. ६.६६.९; तै.सं. ४.१.११.४; मै.सं. ४.१०.३: १५०.९; का.सं. २०.१२; तै.ब्रा. २.८.५.५; नि. ३.२१.
हे अग्नि! तेरे सहायक ऋत्विज और तू मिलकर शब्द करते (गृणते) शीघ्रता करने वाले (तुराय) अपने बल से बली (स्वतवसे) मरुद्गण के लिए (मारुताय) दर्शनीय अन्न (चित्रम् अर्कम्) दो (प्रमरध्वम्) । जो मरुत शत्रु के बलों को (सहांसि) अपने बल से (सइस) परास्त करते हैं (सहन्ते) और जिन महान् मरुतों से (येभ्यः मखेभ्यः) पृथिवी भय से कांपती है (पृथिवी रेजते) ।
अन्य अर्थ – हे प्रजापुरुषों उप देष्टा (गृणते) आशुकारी (तुराय) अपने सामर्थ्य से युक्त

(स्वतवसं) मनुष्यों के लिए हितकारी (मारुताय) सर्वोत्तम अन्न दो (चित्रम् अर्कम् प्रभरध्वम्) । हे राजन् ! जो स्वसामर्थ्य से (ये सहसा) विरोधिनी शक्ति का सहन करते हैं (सहांसि सहन्ते)और जिन के यज्ञ कर्मों से (मखेभ्यः) पृथ्वी कांपती है (पृथिवी रेजते) उनका भली भांति सत्कार करो । .

मखस्यन् - मख अर्थात् यज्ञ का सम्पादन करता हुआ, (२) ज्ञानयज्ञ का सम्पादन करता हुआ
'ससानमर्यो युवभिः मखस्यन्'
ऋ. ३.३१.७

मखस्युः - यज्ञ का प्रति पादक
'तिस्रो वाचः मखस्युवः'
ऋ. ९.५०.२; साम. २[illegible]६

मगधः - (१) मग़ध देश का वासी
(२) दोषयुक्त कुपथ्यकारी
'अंगेभ्यो मगधेभ्यः'
अ. ५.२२.१४

मगन्दः- (१) कुसीदी-व्याज पर धन चलाने वाला, (२) विषय परायण नास्तिक प्रमदक जो इस लोक के सिवा अन्य लोक का अस्तित्व नहीं मानते, (३) नपुंसक, हिंजड़ा, या मडगड़ा
'आ नो भर प्रभगन्दस्य वेदः'
ऋ. ३.५३.१४; नि. ६.३२.
जो व्याज पर धन चलाने वाले, विषय परायण नास्तिक 'नपुंसक का धन (प्रभगन्दस्य वेदः) उसे हे इन्द्र ! हमें दें (नः आ भर) ।
(४) द्रव्य को ही सर्वस्व समझने वाला ।
'मगद' शब्द 'म + ग + द' से बना है. ।
'माम् आगमिष्यति इति
एवम् अनुचिन्त्य परेभ्यो
धन ददाति स मगदः'
अर्थात् मेरे पास दुगुना तिगुना होकर धन आयेगा ऐसा सोचकर जो दूसरे को धन देता है, वह मगन्द है । 'माम्' का 'म' गमिष्यति का 'ग' और 'ददाति का 'द' मिलकर मगद हुआ, (५) वस्तुतः अध्यात्मवाद न मानने वाला आधिभौतिक वादी मगन्द है । इसी मगद से मगध शब्द बना है, क्योंकि यहां बौद्ध धर्म का प्रचार होंने से यहां के लोग 'मगधाः' कहे जाते हैं ।

मगुन्दया दुहितरः- आनन्द और सुख का क्षय करने वाली दुर्वासना की कन्या रूप बुरी आदतें
'निर्वोमगुन्दया दुहितरः'
अ. २.१४.२.

मगुन्दी - मघ अर्थात् आनन्द या सुख का क्षय करने वाली कुवासना ।

मघा- मह् + घ = मघ । मह्यते इति धनम् । (जो दिया जाता है , वह धन है) । अर्थ है-मघानि । 'शेश्छन्दसि बहुलम्' से 'शि' विभक्ति का लोप ।

मघ- मंह + घ = मघ (घञअर्थे क विधानम् -पा. ३.३.५८) । न का लोप और ह का घ'। मह्यते दी यते इति मघं धनम् (जो दिया जाता है, वह मघ अर्थात् धन है) ।
अर्थ - (१) धन, ऐश्वर्य । (२) धरा, (३) प्रकाश
'तेभिरिन्द्र चोदय दातवे मघम्'
ऋ. ९.७५.५; नि. ४.१५.
हे सोम ! उन समूह रसों से तू इन्द्र को धन देने के लिए प्रेरित कर । -सा.
हे जगदुत्पादक परमात्मन् ! उन महान् उपदेशक वेदों के द्वारा हमारे आत्मा को (इन्द्रम्) धन दान के लिए प्रेरित करें ।

मघत्ति - (१) उत्तम धन का दान
'छंदयन्ति मघत्तये'
ऋ. ५.७९.५
(२) पूज्य धन का लेना
'प्रममर्ष मघत्तयेः'
ऋ. ८.४५.१५
'उद्‌ षु मह्यै मघवन् मघत्तये'
ऋ. ८.७०.९

मघदेय - दातव्य ऐंश्वर्य
'ये राया मघदेयं जुनन्ति'
ऋ. ७.६७.९.
पुनः -
'आ च्यावय मघदेयाय शूरम्'
ऋ. १०.४२.२; अ. २०.८९.२

मघवत् - मघ + वतुप् = मघवत्, धन और ऐश्वर्य से युक्त । इन्द्र या परमेश्वर का एक नामा
'इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे
यत्संगृभ्णा मघवन् काशिरित्ते'

ऋ. ३.३०.५; नि. ६.१.

(२) विद्युत् ।

'तवाहमद्य मघवन्नुपस्तुतौ
धातर्विधातः कलशाँ अभक्षयम्'

ऋ. १०.१६७.३; नि. ११.१२

हे विद्युत् (मघवन्), हे वायु (धातः) तथा हे मृत्यु (विधातः), मैंने तेरी स्तुति में वर्तमान रहकर ऐश्वर्य कलाओं का भक्षण किया (सोमस्य कलशान् अभक्षयम्) ।

(३) धरा का स्वामी । मघ का अर्थ धरा भी

(४) धनपति परमेश्वर -दया. ।

(५) प्रकाशवान्

मघवत्व - महान् ऐश्वर्य

'न मघवन् मघवत्तस्य विद्य'

ऋ. ६.२७.३

मघवा- (१) प्रकाशवान् सूर्य

'रूपं रूपं मघवा वोभवीति
मायाः कृण्वानः तन्वं परिस्वाम्'

ऋ. ३. ५३.८

(२) मघा नक्षत्र का संयोग करता हुआ सूर्य

'स इद्रायो मघवा वस्व ईशते'

ऋ. १०.४३.३

(३) इन्द्र, परमेश्वर

मघा - मघा नामक नक्षत्र जिसमें विवाद निषिद्ध है ।

'मघासु हन्यते गावः'

अ. १४.१.१३.

'अयनं मघा मे'

अ. १९.७.२

मघोनी - मघ + मतुप् + ङीष् = मघोनी (व का उ)। धन धान्य से पूर्ण ।

'नूनं साते प्रतिवरं जरित्रे
दुहीयादिन्द्र दक्षिणा मघोनी'

ऋ. २.११.२१, नि. १.७

हे इन्द्र ! तेरी वह पुत्र रूपी दक्षिणा धनधान्य से युक्त होती हुई स्तुतिशील यजमान को अभिमत अर्थ प्रदान करे (जरित्रं वरं प्रति दुहीयात्)

मंगल - (न.)(१) अंग + र (मतुप् अर्थ में) = अंगल = मंगल (अ का म) ।(२) मज्ज + र + मंगल । जो पापों का मंजन करे वह मंगल है ।

(३) गृ (निगलना) + अच् = गर् = गल । धातु के पूर्व ममट् और अनुस्वार का आगम होने से मंगल शब्द बना । भावी अनर्थों और विघ्नों को निगल जाने वाला ।

(४) मंगयति गमयति सुखम् (जो सुख की ओर पहुंचावे वह मंगल है) । मङ्ग (गत्यर्थक) + अलच् = मंगल ।

आज भी मंगल के निमित्त दधि, दूर्वा एवं अक्षत का प्रयोग किया जाता है ।

(५) मां गच्छतु (मेरे पास आवे) । इस अर्थ में -

मां + गम् + डलच् = मंगल (मा की उपधा ओ का अ) (६) गृ (स्तुति अर्थ में) + अच् = मंग । र् का ल् और गृ के पूर्व मट् । म में अनुस्वार आकार पद सर्वण हो 'ङ' हुआ ।

यत् स्तुत्य भवति (जो स्तुत्य होता है, अथवा यत् गिरति भक्षयति अनर्थान्-जो अनर्थों को निगल जाता है, वह मंगल है) ।

'कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण
इयर्ति वाचमरितेव नावम्
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि
मा त्वा का चिदभिमा विश्व्या विदत्'

ऋ. २.४२.१

कपिञ्जल नामक पक्षी बार बार बोलता हुआ भावी बात का इस प्रकार से संकेत करता है, जैसे नाव का कर्णधार नाव को प्रेरित करे । हे शकुनि ! तू सुमंगल दायक हो । तेरे पास कोई भी विश्व का विघ्न न प्राप्त हो ।

मंगलिका - स्वस्ति वाचन एवं शान्ति पाठ-परक सूक्त

'मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा'

अ. १९.२३.२८

मज्ज- (१) मत् + ज्ञान । (आत्मज्ञान) ।

'निर्मज्ञानं न पर्वणो जभार'

ऋ. १०.६८.९, अ. २०.१६९

(२) मञ्जति शुन्धति इति मज्जा । मज्ञा । राष्ट्र का कण्टक शोधन करने वाला,

'शमस्थभ्यो मज्जभ्यः'

वाज.सं. २३.४४, तै.सं. ५.२.१२.२, का.सं. (अश्व) १०.६.

मज्ज - मज्ञा

'मज्ञभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. ३९.१०, तै.सं. ७.३.१६.२, का.सं. (अश्व) ३.६.

मज्मन् - (१) बल।
'नाभां पृथिव्या भुवनस्य मज्मना'
ऋ. १.१४३.४.
जल के बल से (भुवनस्य मज्मना) पृथ्वी की नायित्री (२) निमित्त।

मट्टट- अटपट बोलने वाला, बड़बड़ाने वाला
'उरुण्डा च मट्टटाः'
अ. ८.६.१५

मणत्सक - मननशील को शक्ति देने वाला
'आमणको मणत्मकः'
अ. २०.१३०.९

मण्ड- मद् अथवा मुद् + क = मुण्ड (नम् का आगम और द का ड) अर्थ है - जल। जल मादक या मोदक होता है।
आधुनिक अर्थ - (१) किसी तरल पदार्थ के ऊपर तैल सा जमा हुआ पदार्थ, भात का मांड़ (३) दूध का मक्खन, (४) सार पदार्थ

मणि- (१) मणि, ताबीज, (२) शत्रुस्तम्भकारी, (३) साक्त्यमणि -सा. ग्रीफिथ।
'अयं मणिः सपत्नहा सुवीराः'
अ. ८.५.२
(४) किसी पदार्थ को अभिमन्त्रित कर उसकी गुट्टिका बना कर हाथ आदि में बाँधा जाता है। यही मणि कहलाता है।
(५) मणि (शब्दार्थक) + इन् = मणि। मणति शब्दयति इति - दया.। अर्थात् जो उपदेश दे वह मणि है। फलतः उपदेशक, शिक्षा देने वाला, मार्ग दर्शक नेता, शिरोमणि, गुरु आदि. मणि हैं।
(६) मनु (ज्ञानार्थक) दिवादि मन (स्तम्भे) चुरादि, और मनु (अवबोधने) तनादि में इन् प्रत्यय जोड़कर मणि बनाते हैं। अर्थ हुआ-जो ज्ञानवान् हो, जो थामे, जो शत्रुओं का स्तम्भन करे, राज्य आदि का भार अपने ऊपर ले दूसरे को ज्ञान करावे, बुद्धि दे वह मणि है। (६) लोक में मण्डनार्थक 'मडि' धातु से इन् प्रत्यय कर मणि मना। ओषधि आदि भी धारण द्वारा रोगादि दूर करने में समर्थ है। यन्त्र, मननशील राष्ट्र-स्तम्भनशील
'तेन बध्नामि त्वा मणे'
अ. ३.५.८

मणि- मणियों का आभूषण बनाने वाला
'रूपाय मणिकारम्'
वाज.सं. ३०.७.तै.ब्रा. ३.४.१.३.

मणिग्रीव - (१) जिसकी ग्रीवा में मणि (यन्त्र, ताबीज आदि) हो, (२) मननशील मन द्वारा समस्त ग्राह्य ज्ञानों को लेने वाला-आत्मा।
'हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णः
तन्न विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः'
ऋ. १.१२२.१४
विश्वेदेव-विनयशील योद्धा या विद्वान् मिलकर कान में सुवर्ण का कुण्डल पहने (हिरण्यकर्णम्) और गले में मणियों की माला पहने (मणिग्रीवम्) उत्तम नायक पुरुष का वह उत्तम जल अर्घ्य, पाद्य, आचमन और अभिषेक आदि से योग्य जल प्रदान कर उसकी सेवा करें।
अथवा तेजोमय हित और रमणीय साधनों और प्राणों से युक्त मननशील मन द्वारा समस्त ग्राह्य ज्ञानों को लेने वाले आत्मा की सभी प्राणी सेवा करें।

मणिच्छद् - मणियों से भूषित वस्त्र पहलने वाला।
'अमणिकाः मणिच्छदः'
अ. २०.१३०.९

मणिवाल- मणि के समान नीले बालों वाला
'मणिवालस्त आश्विनाः'
वाज.सं. २४.३, तै.सं. ५.६.१३.१, पै.सं. ३.१३.४; १६९.५.

मण्डूक- मजूका मज्जनात्
मदतेर्वा मोदति कर्मणः मण्डतेरिति
वैयाकरणाः मण्ड एषायोक इति वा।
मण्डो मदेर्वा सुदेर्वा। नि. ९.६
मण्डूक शब्द-मजूका से बना। मजूका मज्जन से बना। मद या मोद धातुओं से भी इस शब्द की व्युत्पत्ति की गई है। वैयाकरण 'मण्ड' धातु से ही इस की व्युत्पत्ति मानते हैं। मण्डूकों का मण्ड ही ओक अर्थात् घर है। मण्ड मद या मुद से बना है।
नि. ९.६

अर्थ- (१) मेढ़क (२) ज्ञान आनन्द में मग्न ब्रह्मचारी
'प्र मण्डूका अवादिषुः'
ऋ. ७.१०३.१, अ. ४.१५.१३, नि. ९.६.
(३) श्योनाक नामक वृक्ष
(४) मण्डूकपर्णी (मजीठ) ब्राह्मणी।
शीतज्वर की ओषधि में मण्डूक के शरीर के भीतरी विष का प्रयोग बतलाया गया है जैसे सर्प-विष सर्प -दंश के लिये
'इमं मण्डूकमभ्येति अव्रतः'
अ। ७.११६.२
(५) मद, मस्ज, या मन्द + ऊक् = मण्डूक।
'वाचं पर्जन्यजिन्विताम्
प्रमण्डूका अवादिषुः'
ऋ. ७.१०३.१, अ. ४.१५.१३, नि. ९.६.
मेघ को प्रसन्न करने वाली (पर्जन्यजिन्विताम्) वाणी को (वाचम्) मेढ़क (मण्डूका) जोरों से बोलते हैं (प्रावादिषुः)।
पुनः -
'मण्डूका इवोदकात्
मण्डूका उदकादिव'
ऋ. १०.१६६.५
जैसे जल के अभाव में मेढ़क निर्वचन हो जाते हैं, उसी प्रकार आप मेरे बिना न होवें।
अन्य व्युत्पत्ति- 'मन्दूक' या 'मज्जूक' का ही निपातन द्वारा 'मण्डूक' बना।
अथवा-मड् (भूषित करना) + ऊकञ् = मण्डूक (तुम का आगम्)। अथवा 'मण्ड' (जल) + ओक = मण्डूक। मण्डूक का स्थान जल ही है। मण्डूक सदा प्रमुदित रहते हैं। या जल में मग्न रहते हैं। अथवा ईश्वर द्वारा यह विविध प्रकार से मण्डित रहता है। या जल में ही पड़ा रहता है।

मण्डूकी - (१) मेढ़की, (२) आनन्द रस में निमग्न चित्तवृत्ति।
'उपप्रवद मण्डूकि'
अ. ४.१५.१४, नि. ९.७.
(३) आनन्द करने वाली, तृप्त करने वाली, भूमि को सुभूषित करने वाली कला कौशल की समृद्धि (४) आनन्द दायिन्ती विद्वत्सभा
'मण्डूकि ताभि रागहि'
वाज.सं. १७.६, तै.सं. ४.६.१.२, मै.सं. २.१०.१.,१३१.१०, का.सं. १७.१७, श.ब्रा. ९.१.२.२७.
(५) पुत्रैषणा की तृप्तिकारिणी स्त्री।
(६) मद, मस्ज् या मन्द + ऊक = मन्दूक या मज्जूक = मण्डूक। मड् (भूषित करना) + ऊकञ् = मण्डूक। मण्ड (जल) + ओक (स्थान) = मण्डूक। मण्डूक + ङीष = मण्डूकी। अर्थ - मेढ़क की माता, मेढ़क पति, (६) तैरने वाली मण्डूक जाति
'उपप्रवद मण्डूकि
वर्षमा वद तादुरि
मध्ये ह्रदस्य प्लवस्व
विगृह्य चतुरः पदः'
अ. ४.१५.१४,
हे मण्डूकी! मेरे निकट आकर खूब बोल और वर्षा आने की सूचना दे। हे तैरने वाली या समस्त शरीर में विस्तृत उदर वाली (तादुरी) तालाब में अपने चारों पैरों को पसार और तैर।
अन्य अर्थ - हे तैरने वाली मण्डूक जाति! जैसे ज्ञान रूपी ह्रद में तैरने वाली प्रफुल्लवदना प्रजा सर्वांग रूप में उत्तम काल को बतलाने वाली होती है उसी प्रकार तू वर्षा को बोधन कराती है। और जिस प्रकार वह प्रजा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदों को प्राप्त कर वेद रूपी ह्रद में तैरती है उसी प्रकार तू अपने चारों पैरों से तालाब में तैरती है।

मण्डूर - लौह विशेष, फौलाद
'मण्डूर धाणिकी'
ऋ. १०.१५५.४, अ. २०.१३७.१

मण्डूर धाणिकी - लौह कणों को धारण करने वाली-तोप
'यद्ध प्राचीर जगन्तोरो
मण्डूरधाणिकीः'
ऋ. १०.१५५.४, अ. २०.१३७.१.
मण्डूर एक लोह विशेष है और धाणिका गोली, धानी या दाना है। लोहे की धाना छर्रे वाली तोप है।

मण्डूरिका- (१) सब को अति आनन्दित करने वाली राज सभा

मतवचस्त - द्वि.व.। (१) अभिमत प्रियवाणी बोलने

वाले स्त्री पुरुष (२) अश्विद्वय का विशेषण ।

मनवान् - ज्ञानवान जीव

'अयं मतवान् शकुनो यथा हितः '

ऋ. ९.८६.१३,

मतस्न - (१) गुर्दा । kidney

'यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः '

ऋ. १०.१६३.३,

(२) हृदय के दोनों पार्श्वों में स्थित फुस्फुस

'चक्रवाकौ मतस्नाभ्याम्'

वाज.सं. २५.८, मै.सं. ३.१५.७, १७९.१३,

'शर्वं मतस्नाभ्याम्'

वाज.सं. ३९.८., तै.सं. १.४.३६.१, तै.आ. ३.२१.१.

मतस्ने - द्वि.व. स्त्री । गुर्दे (२) आनन्द से सबको स्नान कराने वाले,

(३) तृप्तिकारक ज्ञान से हृदय पवित्र कराने वाले अध्यापक और उपदेशक, (४) आनन्द में रहने वाले स्त्रीपुरुष

'मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम्'

वाज.सं. १९.८५., मै.सं. ३.११.९: १५३.१२, का.स. ३८.३, तै.ब्रा. २.६.४.३,

मत्य - मल स्तम्भे (दिवादि) शत्रुओं का स्तम्भनकारी सामर्थ्य, दण्ड या वज्र

'तृणेद्वनान् मत्यं भवस्य'

अ. ८.८.११.

मत्सखा - (१) मेरा मित्र (मम सखा सखाभूतः) (२) जिसे सभी अपना सखा समझते हैं । (सर्वोऽपि यं मन्यते ममायं सखा), (३) हर्ष में जो मित्र हो (मदन सखा) (४) जो मेरे सखा हैं, उसके सखा (ये नः सखायः तैः सह) । (५) सभी के सखा रूप सूर्य ।

'वि हि सोतोरसृक्षत
नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद् वृषाकपिः
अर्यः पुष्टेषु मत्सखा
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः '

ऋ. १०.८६.१, अ. २०.१२६.१, नि. १३.४.

आदित्य जब प्रतिदिन सभी जीवों के लिए किरणें बिखेरते हैं (सोतो व्यसृक्षत) तब वे किरणें अपने स्रष्टा आदित्य को ही अपना प्रकाशक नहीं समझतीं (इन्द्रं देवं न अमंसत) । जिन रश्मियों के सोम से पुष्ट होने पर (यत्र पुष्टेषु) सभी के सखा रूप (मत्सखा) चर एवं अचर के स्वामी (अर्यः) सूर्य (वृषाकपिः) सोमपान से हर्षित हुए (अमदत्)। हे आदित्य ! तू सबसे बढ़ कर है ।

मत्सत् - मादयताम् (मदयुक्त हो, आराम करे), आनन्दित हो, मस्त हो ।

'माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः '

ऋ. ५.४०.४, अ. २०.१२.७.

मत्सर - मद् + सा । उत्तम तृप्तिकारक (कृध् मदिभ्यः कित्) । तृप्य तृप्यन्ति अनेक देवता इति मत्सरः

'समन्धांस्यग्मत मत्सराणि '

ऋ. ७.७३.४

इस से देवता तृप्त होने हैं अतः यह मत्सर है । अर्थ है - सोमरस, सोममद लाने वाला है, अतः यह मत्सर कहलाया ।

'गोभिः श्रीणीत मत्सरम् '

ऋ. ९.४६.४, नि. २.५,

हे ऋत्विजो ! दूध से (गोभि):सोमरस को (मत्सरम्) मिला (श्रीणीत) ।

(२) लोभ । मत्सर इति लोभ नाम । एनेन अभिमतः भवति (मत्सर लोभ का नाम है क्योंकि लोभ से आविष्ट हो पुरुष धन के आभिमुख्य में मत्त हो जाता है) ।

मत्सरासः- ब.व.। सोमरस का विशेषण (१) मदकारक, (२) हर्ष कारक लोक लोकान्तर

'मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते '

ऋ. ९.६९.६, साम. २.७२०.

मदकारक (मत्सरास) प्रसूत किल गए (प्रसुपः) सोमरस साथ ही जाते हैं (ईरते) - सा. ।

ये हर्ष कारक प्रसुप्त हो जाने वाले अर्थात् अन्न से कारण शरीर में मिल जानेवाले (प्रसुपः) लोक लोकान्तर साथ ही चलते हैं (साकम् ईरते) ।

मत्सरिन्तमः - समस्त प्रजाजनों को अन्न, बल धनादि से पूर्ण तृप्त एवं सुप्रसन्न करने वाला

'इन्द्राय मत्सरिन्तमः

ऋ। ९.६३.२; ९९.८

मत्स्य - (१) मछली

'मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम्'

अ. २०.१६.८

सूखे जल में मछली फंसाने वाला जैसे मछली को देखता है ।
'अद्धयो मत्स्यान्'
वाज.सं. २४.२१, मै.सं. ३.१४.२; १७३.१.
(२) अति प्रसन्न चित्त
'राये मत्स्यासः निशिता अमीव'
ऋ. ७.१८.६
(३) मधु + स्यन्द = मत्स्य (निपातन से) । मधु का अर्थ जल है और स्यन्द गत्यर्थक है । अथवा मद् + भस् + य = मत्स्य । मधौ स्यन्दन्ते, माध्यन्ते ऽन्योनयं मक्षणाय इति वा (जल में चलते हैं इस से मत्य्य नाम पड़ा या मत्स्य परस्पर एक दूसरे को खाने में हर्षित रहते हैं, अतः मस्त्य हैं) ।

मति – मन् + क्तिन = मति । अथवा मति + मतुप्
(१) स्तम्भ करने वाली मुठ्ठी जो रथ में लगायी जाती है । (२) मनन, (३) भजन ज्ञान पूर्वक मन प्रेरणा, (४) उत्तम विचार योग्य बुद्धि (५) मतिमान्
'स इष्टिभिः मतिभी रंह्योभूत्'
ऋ. २.१८.१
(६) तत्व विचार करने वाली मननशक्ति
'मत्यै श्रुताय चक्षसे'
अ. ६.४१.१
(६) स्तुति ।
'इयं वो अस्मत् प्रति हर्यते मतिः'
ऋ. ५.५७.१, नि. ११.१५.
हे रुद्रो ! हमारी यह स्तुति (मतिः) आप लोगों की कामना करती है ।
(७) देवता ।
समिद्धो अञ्जन् कृदरं मतीनाम्
वाज.सं. २९.१, तै.सं. ५.१.११.१; मै.सं. ३.१६.२: १८३.१२; का.सं.(अश्व) ६.२; श.ब्रा. १३.२.२.१४; तै.ब्रा. ३.९.४.८; आप.श्रौ.सू. २०.१७.३; नि. ३.२०.
हे अग्नि देव ! समिद्ध होकर तू देवताओं के गृह हवि पहुंचाते हुए (मतीनां कृदरं अञ्जन्)
(८) रीति नीति – (९) ज्ञान या वाणी स्वरूप परमेश्वर
'अयं सहस्रमा नो दृशे
कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि'
अ. ७.२२.१

मत्सि – अतिहर्षयुक्त
'मत्स्यपायि ते महः
ऋ. १.१७५.१; साम. २.७८२, आश्व.श्रौ.सू. ८.५.१२, शां.श्रौ.सू. ११.११.१६; १२.४.९; १८.११.२

मतीनां साधनः– मनोरथों या बुद्धियों का साधक । पूषा का विशेषण

मतीविद् – (१) विद्वान् के प्रति देने योग्य दान, (२) विद्वान्
'प्रदेवाय मतीविदे'
वाज.सं. २२.१२

मतुथा – मनन शील विचारवान् पुरुष
'पदं यदस्य मतुथा अजीजनन्'
ऋ. ९.७१.५

मथव्य – मथन करने वाला चित्त को हर्ष देने वाला
'मथव्यान्त्स्तोकानप यान् रराध'
अ. २.३५.२

मथ्र – शत्रुओं का मथन करने वाला
'मथ्रा नेमिं नि वावृतुः'
ऋ. ८.४६.२३

मथिन् – मथने वाला
'मथ्ना रजांस्यश्विना वि घोषैः'
ऋ. १.१८१.५

मथी – यः दुष्टान् मथ्नाति (जो दुष्टों को मथता है) – दया.
महि स्तोतृभ्यो मघवन् त्सुवीर्यम्
'मथीरुग्रो न शवसा'
ऋ. १.१२७.११

मद– मद् + घञ् = मद । अर्थ है (१) मदनीय, बलवर्द्धन् (२) जोश, (३) आनन्द ।
'पिबा सोममनुष्वधं मदाय'
ऋ. ३.४७.१, वाज.सं. ७.३८, वाज.सं. (का.) २८.१०; तै.सं. १.४.१९.१; मै.सं. १.३.२२:३८.१; का.सं. ४.८; नि. ४.८.
तू मद के लिए अन्न खाने के बाद सोमरस पी ।
(४) जैत्र (जीतने वाला) । सायण ने इसका अर्थ हर्ष किया है ।

मद् – तृप्ति कारक
'मदा मासरेण'
वाज.सं. २१.४२

मदच्युत् - (१) मद को तोड़ने वाला, इन्द्र का विशेषण।
'इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतम्'
ऋ. १.५१.२

मदच्युता हरी - (१) हर्षवर्षण करने वाले हरणशील प्राण और अपान (२) आनन्द के साथ गति करने वाले दो अश्व
'युक्ष्वा मदच्युता हरी'
ऋ. १.८१.३, अ. २०.५६.३

मदन्ती - मत्त करती हुई तृप्ति करती हुई। नदियों का विशेषण।
'शतपवित्राः स्वधया मदन्तीः'
ऋ. ७.४७.३, नि. ५.६.
बहुतों जलों वाली (शतपवित्रा) स्वकार्यभूत अन्न से (स्वधया) मानवों को मत्त या तृप्त करती हुई नदियाँ .....

मदवृद्धः - (१) स्वयं अपने हर्ष को बढ़ाने वाला, (२) मद से वृद्ध (३) तेजस्वी-सूर्य का विशेषण (४) कोष-सम्पन्न राजा।

मद्यः - हर्षजनक, मदकारक
'पिपीडे अंशुर्मद्यो न सिन्धुः'
ऋ. ४.२२.८
(२) सोमरस . (३) ज्ञान, (४) आभ्यन्तर आनन्द
'सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रतौ'
ऋ. ६.६८.१०, अ. ७.५८.१

मदरवती - मदकारी ओषधि
'वि ते मदं मदावति'
अ. ४.७.४

मदाहनः - मत् + आहनस् = मदाहनः। 'मत्' का अर्थ है मेरे सिवा (मां विहाय) और 'आहनस्' का अर्थ है, असभ्य या असह्य भाषण से मर्म भेदन करने वाला चोट पहुंचाने वाला। यमी के सम्बन्ध में इस शब्द का प्रयोग किया गया है।
(आहन्यत इव यया असौ यम इति आहनाः)। जिससे यम मानों आहत होते हैं, अतः वह यमी आहनः है। इस शब्द का रूढ़ि है- (१) वञ्चक (२) सम्मोहक (३) शत्रुओं का आमने-सामने हनन करने वाला।

मद्याविद् - सुखी प्रजा -दया.
(२) मादयित्री या मदनीय प्रजा -सा.
'उत वां विक्षु मद्यास्वन्धः'
ऋ. १.१५३.४,
हे मित्र और वरुण, या स्वामी दयानन्द के अनुसार, हे उपदेशक तथा अध्यापक, आप की सुखी प्रजाओं में (मद्या सुविक्षु) यह अन्न गायें तथा उत्तम जल नित्य बढ़े (अन्धः गावः देवीः आपश्च पीपयन्तः)

मद्र्यक् - मेरे प्रति। मत् + र्यक।
'वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्चम्'
ऋ. ७.२४.३

मदानां पतिः - हर्ष जनक, तृप्ति कारक ऐश्वर्यों और अन्नों का मालिक
'उप नो हरिभिः सुतं
याहि मदानां पते'
ऋ. ८.९३.३१, साम. १.१५०; २.११४०, कौ.ब्रा. २३.७.

मदावती- सर्षप की माता, हर्ष से सम्पन्न प्रकृति शक्ति
'मदावती नाम ते माता'
अ. ६.१६.२

मद्वा- हर्ष कारक
'इन्द्राय मद्वा मद्यो मदः सुतः'
ऋ. ९.८६.३५

मद्वान् - हर्ष और आनन्द का सेवन करने वाला आत्मा
'इन्द्राय मद्वने सुतम्'
ऋ. ८.९२.१९, अ. २०.११०.१, साम. १.१५८, २.७२.ऐ.ब्रा. ४.६.९, गो.ब्रा. २.५.३, पंच.ब्रा. ९.२.७, आश्व.श्रौ.सू. ६.४.१०, शां.श्रौ.सू. ९.१०.१; १८.६.२.

मदिन्तमः- (१) अति आनन्द दायक
'इन्द्राय सु मदिन्तमम्
सोमं सोता वरेण्यम्'
ऋ. ८.१.१९
(२) अति हर्षदायक सोम (३) परमेश्वर
'आ प्यायस्व मदिन्तम
सोम विश्वेभिरंशुभिः'
ऋ. १.९१.१७, वाज.स. १२.११४; का.सं. ३५.१३.

मदिनामा- (१) अत्यन्त सन्तुष्ट रहने वाली प्रजा
'मदिन्तमानां त्वा पत्मन् आधूनोमि'
वाज.सं. ८.४८; श.ब्रा. ११.५.९.८.

मदिन्तरः - अत्यधिक आनन्द प्रद
'एदु मध्वो मदिन्तरम्'
ऋ. ८.२४.१६; अ. २०.६४.४, साम. १.३८५;२.१०३४ पंचब्रा. २१.९. १६; आश्व.श्रौ.सू. ७.८.२; शां.श्रौ.सू. १२.२५.६.

मदिर - आनन्द प्रद
'अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये'
ऋ. १.१६६.७

मद्रिक् - (१) मेरे समीप
'याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक्'
ऋ. ६.३१.५
(२) समस्त कामनाओं को प्राप्त कराने और स्वयं करने वाला
'स्तुतः श्रवस्यन्नवसोपमद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ्'
ऋ. १.१७७.१
(३) आत्मवशी, (४) हमें प्राप्त
'हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक्'
ऋ. १.१७७.३

मदुधः- ज्ञान रूप मधु का संचय करने वाला
'मधोरस्मि मधुतरो मदुधात् मधुमत्तरः'
अ. १.३४.४

मद्गु- (१) छोटा हंस
'मित्राय मद्गून्'
वाज.सं. २४.२२, मै.सं. ३.१४.३; १७३.३.
(२) जल काक, (३) जल और स्थल दोनों स्थानों में विहार करने वाला यान
'प्लवो मद्गुः'
वाज.सं. २४.३४, मै.सं. ३.१४.१५:१७५.१०.

मदुघ - (१) महुआ नामक वृक्ष- सा. (२) मुलैठी - ज.दे.श. (३) तृप्ति कारक पदार्थ
'आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य'
अ. ६.१०२.३

मदू - आनन्दित करने वाला
'इदं मह्यं मदूरिति'
अ. २०.१३१.१०

मदेमदे - प्रत्येक हर्ष के अवसर पर, प्रत्येक पदार्थ में
'मदेमदे हि नो ददिः'
ऋ. १.८१.७, अ. २०.५६.४, मै.सं. ४.१२.४: १८९.१५, का.सं. १०.१२, आश्व.श्रौ.सू. ७.४.
प्रत्येक हर्ष के अवसर पर, प्रत्येक पदार्थ में हमें तू दे।

मदेरू - (द्वि)। एक वचन में मदेरु। बलातिशयेन मत्तः (अतिशय बल से मत्त) मद् धातु से सम्पन्न। अर्थ है - (१) मत्त, (२) स्तुत्य।
'उदन्यजेव जेमना मदेरू'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.
हे अश्विनी कुमारो! तुम दोनों चन्द्रमा या रत्न के समान विजयशील एवं मदमत्त हो।

मध्य- बीच।
'अमेहयन् वृषभं मध्यआजेः'
ऋ. १०.१०२.५; नि. ९.२३.
वृषभ से संग्राम में बरसवाया या वृषभ ने मूत्रपुरीषोत्सर्ग विश्राम के लिए किया।

मध्यन्दित - मध्यान्ह् काल
'भद्राहं नो मध्यन्दिने'
अ. ६.१२८.२

मद्यम् - (वि)। मद् + यत् = मद्य। मदं करोति असौ (यह मद करता है अतः मध्य है)। अर्थ -मादक मद करने वाला, आनन्द प्रद
आमत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः'
ऋ. २.१४.१
सोम भरे पात्रों से आनन्द प्रद अन्न को सिञ्चित करो।

मध्यम - (१) मंझला भाई, मध्य + म। मध्ये भवः (मध्य में हुआ) (२) मध्यमस्थानीय नमो मध्यनाय वायु
'नमो मध्यमाय च'
वाज.सं. १६.३२, तै.सं. ४.५.६१, मै.सं. २.९.६: १२५.४,

मध्यमःअश्नः - (१) मध्यस्थानीय वायु, (२) मेघमध्वर्ती अशनि। दे. 'अश्न'
'अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः'
ऋ. १.१६४.१, अ. ९.९.१, नि. ४.२६.

मध्यमकोश - (१) बीच का खजाना, (२) अन्तरिक्ष का मेघ, (३) मनोमय कोश। प्रथम कोश अन्नमय और अन्तिम आनन्दमय है।
'विकोश मध्यमं युव'
ऋ. ९.१०८.९, साम. १.५७९; २.३६१

मध्यमःभ्राता- (१) सब सृष्टि के भीतर विद्यमान

भरणपोषण समर्थ, (२) परमेश्वर का मध्यम भ्राता कर्मफल -भोक्ता जीव, (३) सूर्य का मध्य भ्राता सर्व व्यापक पाप, (४) भरण पोषण में समर्थ पृथिवी आदि लोकों में प्रसिद्ध

'तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः'

ऋ. १.१६४.१, अ. ९.९.१, नि. ४.२६.

(५) सब सृष्टि के भीतर विद्यमान भरण पोषण में समर्थ अग्नि

मध्यमःभ्राता अश्नः - (१) बीच के भाई के समान सबको खा जाने वाला (अश्नः) अग्नि, (२) भरणपोषण करने वाला बीच में रहने वाला मंझले भाई के समान अन्नादि खाने वाला जाठर अग्नि, (३) बीच अन्तरिक्ष में स्थित वायुवत् व्यापक वृष्टि के लिए रश्मियों से सोखे जल का अपहरण करने वाला, (४) कर्मफलों का भोक्ता जीव ही मध्यमभ्राता है क्योंकि वह देह का भरणपोषण करता है और देह के बीच में रहता है ।

मध्यम वाट् - बीच मार्ग में ही रह जाने वाला - रथ

'मा वो रथो मध्यमवाड्ते भूत्'

ऋ. २.२९.४

मध्यमशीः - (१) अन्तरिक्ष में व्यापक वायु (२) शरीर में व्यापक प्राण, (३) मध्यम राजा

'उग्रो मध्यमशीरिव'

ऋ. १०.९७.१२, अ. ४.९.४, वाज.सं. १२.८६, तै.सं. ४.२.६.४, मै .सं. २.७.१३: ९४.६; का.सं. १६.१३.

(४) मध्यस्थ

मध्यमा - (१) बीच में स्थित सर्वव्यापक रूप में वर्तमान ब्रह्मशक्ति

'निरायच्छसि मध्यमे'

अ. २०.१३३.३; शां.श्रौ.सू. १२.२२.१.३.

(२) मध्यमस्थान, (३) मध्यम कोटि का शरीर

'या मध्यमा विश्वकर्मनुतेमा'

ऋ. १०.८१.५; वाज.स. १७.२१; तै.सं. ४.६.२.५; मै.सं. २.१०.२, १३३.१०, का.सं. १८.२.

(४) शरीर के मध्यम भाग की नाड़ी (५) मझली स्त्री

'उत त्वं तिष्ठ मध्यमे'

अ. १.१७.२

(६) मध्यमगुण की पृथिवी

'मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः'

ऋ. १.१०८.९

मध्यमाः पितरः - (१) मध्यम स्थानाश्रयी पितर लोग - सा.

(२) मध्यम श्रेणी के ऐश्वर्य सम्पादक पिता- दया.

'उदीरतामवर उत् परासः
उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः'

ऋ. १०.१५.१, अ. १८.१.४४, वाज.सं. १९.४९, तै.सं. २.६.१२.३, मै.सं. ४.१०.६, १५७.४ ऐ.ब्रा. ३.३७.१३, नि. ११.१८.

मृत्यु के बाद अपने कर्मानुसार पितर कई लोकों में रहते हैं । उन्हीं पितरों के उत्तम लोक में जाने के लिए यह प्रार्थना है ।

थियोसोफिस्ट इस सिद्धान्त को मानते हैं । आर्य-समाजी विद्वान् पितर का अर्थ विद्वान् पुरुष मानते हैं । यह ऋचा विचारणीय है ।

मध्यमेष्ठा - मध्यस्थ

'सजातानां मध्यमेष्ठा यथासानि'

अ. ३.८.२

मध्या - मध्य + ङि (सप्तमी प्रथमा में) = मध्या । 'सुपां सुलुक' से 'ङि' का 'डा' हो गया है । अर्थ है । मध्य में या मध्य से ।

'मध्या कर्तोर्विततं सं जभार'

ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७, मै.सं. ४.१०.२: १४७.१; तै.ब्रा. २.८.७.१; नि. ४.११.

सूर्य ने किए जाते हुए कर्मों के मध्य में क्रियाशील जगत् से अपने विस्तृत रश्मि जाल को खींच लिया (विततं संजभार) ।

मध्यायु - मध्यस्थ होने का इच्छुक

मध्वद् - (१) मधु अर्थात् आत्म ज्ञान रस का उपभोग करने वाला (२) जल ग्रहण करने वाली सूर्य की किरण (३) मधु खाने वाला

'यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णाः'

ऋ. १.१६४.२२; अ. ९.९.२१.

मध्वदः सुपर्णाः- (१) जल ग्रहण करने वाले रश्मिगण, (२) मधुर कर्मफल के भोक्ता जीवगण ।

मध्ववर्णस् - मधुर जल वाला । मधु + अर्णस् ।

'मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः'
ऋ. १.६२.६
मधुर जल से पूर्ण चारों दिशाएं

मध्वः दृष्टिः - (१) मधुर अन्नादि की प्राप्ति , (२) रथ के चक्रों में मधु घृतादि चिकने पदार्थों का लगाना ।
'रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः'
ऋ. १.१८०.४

मधु - (१) संसार,
'स प्रत्युदैद् धरुणं मध्वो अग्रम्'
अ. ७.३.१
(२) चैत्र मास,
'उपयामगृहीतोऽसि मधवे'
वाज.सं. ७.३०
(३) मद् (हर्ष और ग्लेपन अर्थों में) + उ = मधु (द् का ध् पृषोदरादिवत्) अर्थ है-मादक (४) धम् । (शब्द करना) + उ = मधु ।
(५) मधु ।
'मध्वा समञ्जन् त्स्वदया सुजिह्व'
ऋ. १०.११०.२; अ. ५.१२.२; वाज.सं. २९.२६, मै.सं. ४.१३.३; २०१.१०, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.६.
हे सुन्दर जिह्वा या ज्वाला वाले अग्नि ! हवि को मधुर रस से मिलते हुए स्वादिष्ट बना ।
(६) सोम रस ।
'आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिम्'
ऋ. ३.४७.१, वाज.स. ७.३८, वाज.स. (का.) २८.१०, तै.सं. १.४.१९.१, मै.सं. १.३.२२, २८.२, का.सं. ४.८, नि. ४.८.
हे इन्द्र ! तू पेट में सोम रस की धारा या संघात को आसिञ्चित कर ।
(७) जल ।
'पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि'
ऋ. ४.३८.१०, तै.सं. १.५.११.४, नि. १०.३१.
वह दधिक्रा देव या मेघ इन स्तुतियों को मध अर्थात् जल से युक्त करें ।
'अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यत्'
ऋ. १०.६८.८; अ. २०.१६.८; नि. १०.१२
बृहस्पति ने मेघ से दबाए या छिपाए जल को देख लिया
(८) पृथ्वी आदि लोक जिस से सुख मिलता है ।
(९) बृहदारण्यक में सृष्टि विद्या के अर्थ में 'मधुविद्या' का प्रयोग किया गया है ।
आधुनिक अर्थ - मधुर, आनन्ददायक, मधु, पुष्प का पराग, मदकर, मद, जल, शर्करा, माधुर्य
(१०) प्राण, (११) ओषधि का रस, (१२) अन्न, (१३) स्वर्ग लोक का रूप, (१४) मधुर पदार्थ
प्राणो वै मधु
श.ब्रा. १४.१.३.३०
ओषधीनां वा एष परमो रसः यन्मधु
श.१.५.४.१८
परमं वा एतदन्तादयं यन्मधु
तै.आ. १३.११.१७
महत्यै वा एतत् देवतायै रूपम् यन्मध्र
तै.ब्रा. ३.८.१४.२.
मधु प्रमुष्य स्वर्गस्य लोकस्य रूपम् यन्मधु
श. ब्रा. ८.४.१.३.
सर्वं वा इदं मधु यदिदं किञ्च
श. ब्रा. ३.७.११.१४
(१५) ऋग्वेद की ऋचाएं भी मधुर हैं ।
'येभ्यो मधु प्रधावति
ताँश्चिदेवापि गच्छतात्'
ऋ. १०.१५४.१, अ. १८.२.१४, तै.आ. ६.३.२.
(१६) वसन्त ऋतु, (१७) ज्ञानमय वेद
'गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे'
ऋ. ८.२१.५; साम. १.४०७

मधुकशा- (१) अमृतमयी, (२) परम रसमयी, (३) सर्वोपरि शासक व्यापक ब्रह्म शक्ति
'दिवस्पृथिव्याः अन्तरिक्षात्
समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे'
अ. ९.१.१.

मधुकूला - जिनके कूलों तक शहद भरा हुआ हो ।
'घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः'
अ. ४.३४.६

मधुकृत् - मधुमक्षिका
'यथा मधु मधुकृतः'
अ. ९.१.१६

मधु मधु मधु- (१) कर्म, उपासना और ज्ञान, (२) शरीर में स्थित प्राण, उदान और ध्यान, (३) ब्रह्म बल, क्षात्र बल और धन बल

'दिवः संस्पृशस्पाहि मधु मेधु मधु'

वाज.सं. ३७.१३

मधुकोश – धन और ज्ञान हुआ अक्षय कोश।

मधुजाता – पृथिवी से उत्पन्न ओषधि

'इयं वीरुत् मधुजाता'

अ. १.३४..१, ७.५६.२,

मधुजिह्वः – (१) अग्नि (२) मधुजिह्वा अथवा मधुरवाणी बोलने वाला विद्वान्।

'मधुजिह्वं हविष्कृतम्'

ऋ. १.१३.३, साम. २.६९.९

मधुदोघ – (१) मधुर जल वाल मेघ (२) मधुर ऋङ्मय ज्ञान रस वाला

'या एतद् दुह्रे मधुदोघ मूधः'

ऋ. ७.१०१.१.

मधुधा – (१) मधु – आदित्य को धारण करने वाली उषा, (२) पति के निमित्त मधुपर्क को लाती हुई मधुर वचनों और मधुर गुणवाणी स्वाभाव को धारण करती हुई या उत्तम जल को धारण करती हुई स्त्री

'ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्'

ऋ. ३.६१.५

मधुधार – (१) जलधारक मेघ, (२) अन्नादि सुख जनक भोग्य पदार्थों का धारक

'मधुधारमभि यमोजसातृणत्'

ऋ. २.२४.४, नि. १०.१३.

जिस जलधारा वाले मेघ को बल से अभिहत किया।

मधुन्तमा – मधुर स्वभाव वाली प्रजा

'मधुन्तमानां त्वा पत्मन्ना धूनोमि'

वाद.सं. ८.४८; वाज. (का.) ८.२२.२, श.ब्रा. ११.५.९.८

मधुप – जल या मधु पीने वाला

'मध्वः पिबतां मधुपेभिरासभिः'

ऋ. १.३४.१०; ४.४५.८३

हे सत्य स्वभाव से युक्त स्त्री पुरुषो! आप दोनों उत्तम अन्न जल के उपयोग करने वाले मुखों से (मधुर्येभिः आसभिः) मधुर अन्न का उपभोग करो।

मधुपाणिः – मधुरमधु, मधुविद्या, ब्रह्मविद्या, वेद का प्रवचन करने वाला

'अध्वर्युं वा मधुपाणिं सुहस्त्यम्'

ऋ. १०.४१.३

मधुपृक् – (१) जीवन रूप अमृत से युक्त जल

'तीव्रो रसो मधुपृचम्'

अ. ३.१३.५; तै.सं. ५.६.१.३; मै.सं. २.१३.१: १५२.१७, का.सं. ३५.३; ३९.२.

(२) अन्न से संपर्क रखने वाला (३) भोग्य पदार्थ का भागी

'मधुपृचं धनसा जोहवीमि'

ऋ. २.१०.६

मधुपेय – (१) उत्तम रस का पान, (२) वेदज्ञान का रसपान,

'आ यातं मधुपेयमश्विना'

ऋ. १०.४१.३

(३) मधुरगुणों से युक्त उपभोग योग्य पदार्थ, (४) बल पूर्वक उपभोग्य राष्ट्र

मधुणौ – (१) भ्रमर, (२) भौरों के समान मधुवत् मधुर ज्ञान अन्न जलादि पदार्थों का उपभोग और संग्रह करने वाले स्त्री पुरुष

'वाजायेट्टे मधुपाविषे च'

ऋ. १.१८०.२

मधुभागः – अन्न का भाग ग्रहण करने वाला राजा

'मधुभागो मधुना सं सृजाति'

अ. ६.११६.२.

मधुमत् घर्म – जलों की वृष्टि सहित घाम, (२) अन्न से युक्त घृत, (३) वृष्टि सहित सूर्य ताप (४) शत्रु पीड़ा का बल सहित तेज

'युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रये'

ऋ. १. १८०.४

मधुमती – मधुर रस से युक्त।

'अपां नपान्मधुमतीरपो दाः'

ऋ. १०.३०.४; अ. १४.१.३७; नि. १०.१९.

तू मधुर रस से युक्त वृष्टिजलों को दे।

मधुमन्मक्षिका – मधुमक्खी

'उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे'

ऋ. १.११९.९

मधुमान् – (१) मधुर प्रकृति वाला पुरुष, (२) मधुमय

'मधुमान् भवति मधुमदरस्याहार्यं भवति'

अ. ९.१.२३.

(३) मधु + मतुप् = मधुमत्। अर्थ है प्रिय, (४) जलयुक्त सूर्य या ऊर्मि का विशेषण

मधुमान् ऊर्मिः - (१) जलमय तरंग (२) तेजोमय शक्तिमय ऊपर गति करने वाला सूर्य, (३) जल से भरा मेघ, (४) ज्ञानमय शब्दमय शास्त्र
'समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारत्'
ऋ. ४.५८.१; वाज.सं. १७.८९; मै.सं. १.६.२: ८७.१३; का.सं. ४०.७, ऐ.ब्रा. ५.१६.७, कौ.ब्रा. २५.१, तै.आ. १०.१०.२, आप.श्रौ.सू. ५.१७.४, नि. ७.१७.

मधुपू - (१) अन्न द्वारा प्रजा का पालन या पवित्र करने वाला, (२) मधु के समान प्रजा पालक
'उद्पूरसि मधुपूरसि'
ऋ. १८.३.३७

मधुला - (१) मधु देने वाला ओषधि (२) विष वैद्य
'मधु त्वा मधुला चकार'
ऋ. १.१९१.१०-१३
(३) आनन्द रस को प्राप्त कराने वाली
'मधु मे मधुलाकरः'
अ. ५.१५.१
(४) मधु + ला
'मधुश्चुत् मधुला मधुः'
अ. ७.५६.२

मधुवचाः - (१) मधुर वचन बोलने वाली
'पिता माता मधुवचाः सुहस्तः
भरे भरे नो यशसा वविष्टाम्'
ऋ. ५.४३.२
(२) वेद रूपी मधुर वाणी वाला -मरमेश्वर
'अग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा'
ऋ. ४.६.५; ७.७.४

मधुवर्णः- (१) मधु के समान चिकना, (२) सुन्दर रंग वाला
'हिरण्यत्वङ् मधुवर्णो घृतस्नुः'
ऋ. ५.७७.३; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१.

मधुवाहन् रथ - (१) मधुर सुखप्रद अन्न आदि या मधुर सुख और वेग आदि का धारण करने वाला रथ (३) स्त्री और पुरुष दोनों का रमणसाधन आनन्द प्रद शरीर ।
'प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम्'
ऋ. १०.४१.२.

मधु वृध् - मधुर अन्नादि से वृद्धि पाने वाला देह
'उताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम्'
ऋ. १०.७५.८

मधुशाखः - (१) मधुर शाखाओं से युक्त (२) ज्ञानमय वेद शाखाओं से युक्त
'मधुशाखः सुपिप्पलः'
वाज.सं. २८.२०

मधुश्चुत् - (१) ज्ञान को प्रदान करने वाला
मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः
वाज.सं. २१.४२
(२) मधुर रस को चु आने वाली
'मधुश्चुत् मधुला मधूः'
अ. ७.५६.२.

मधुषुद् - (१) मधुरभाषी, (२) मधु और मननीय ज्ञान का प्रदाता
'ग्रावेव सोता मधुषुद् यमीडे'
ऋ. ४.३.३.

मधुसंकाश - मधुर मधु के समान
'अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे'
अ. ७.३६.१.

मधुषुत्तम - मधुर रस अन्न अभिषेक आदि उत्पन्न करने में सबसे उत्तम
'अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः'
ऋ. ३.५८.९.

मधुहस्त्य - मधुर अन्नादि उपभोग्य सुखदायी पदार्थों को अपने हाथ में या वश करने में कुशल
'कविर्हि मधुहस्त्यः'
ऋ. ५.५.२

मधू - (१) मधु, (२) मधुक ओषधि (३) शहद -ज.दे.श.
'मधुश्चुत् मधुला मधूः'
अ. ७.५६.२
यह सर्पदंश चिकित्सा में विहित है । राज निघण्टु में लिखा है-
छर्दिं हिक्वा विषश्वास कास शोषातिसार जित् ।
वमन, हिचकी, विषवेग, सांस, दमा, खांसी, तपेदिक और अतिसार का नाशक मधु है । वेद ने इसे सर्प-विषहारी बताया है ।

मधूयुवा - द्वि.व. । (१) मधुर पदार्थों को परस्पर मिलाने वाले, (२) जल तेज और अन्न के मिश्रण और विश्लेषण करने वाले - मित्रावरुण
'मध्व ऊ षु मधूयुवा'

ऋ. ५.७३.८

(३) जल अन्नवत् परस्पर मिलने वाले स्त्री पुरुष

'शमू षु वाँ मधूयुवा

अस्माकमस्तु चर्कृतिः'

ऋ. ५.७४.९

मधूलक – अत्यधिक मधुर, ज्ञानामृत ।

'जिह्वामूले मधूलकम्'

अ. १.३४.२

मनऋङ्गा – द्वि.व. । मननशील विद्वानों के तुल्य सन्मार्ग पर चलने वाले

'मनऋङ्गा मनन्या न जग्मी'

ऋ. १०.१०६.८

मनन्या – द्वि.व. । मनन शील दो पुरुष

मनःसद् – मन में प्रतिष्ठित

'ध्रुवसदं नृषदं मनः सदम्'

वाज.सं. ९.२.

मनसा सन्नद्धः – मननशील मनोरूप अन्तःकरण से अच्छी प्रकार बन्धा हुआ जीव

'निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि'

ऋ. १.१६४.३७

मनत्यति – क्यङन्त 'मनस्य' धातु के प्रथम पुरुष ए.व. में । अर्थ है- (१) मनस्वी भवति (मनस्वी होता है) । (२) प्रहृष्यति (प्रहर्षित होता है) (३) प्रशस्त मनाः भवति (प्रशस्त मन वाला होता है) ।

हिन्दी का 'मनसाना' धातु इसी का समानार्थक है ।

मनः – (१) शास्त्र मनन, चिन्तन, (मनस्) (२) प्रजापति आत्मा .

'शतमनश्छन्दः'

वाज.सं. १५.४

(३) मनः शक्ति

'मनसे चेतसे धिय आकूतये'

अ. ६.४१.१.

(४) मन् + असुन् = मनस् । मननशील (५) मन, (६) प्रज्ञा

'यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत'

ऋ. १०.७१.२; नि. ४.१०

जिस यज्ञ या सभा में ध्यानवान या धीमान् पुरुष शुद्ध मन या प्रज्ञा से वचन बोलते हैं ।

'उर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधि जातः'

ऋ. ७.३३.११; नि. ५.१४.

आधुनिक अर्थ – मन, हृदय, बुद्धि, न्यायशास्त्र का मनस् नामक द्रव्य, अन्तरात्मा, दिल, conscience, विचार, कल्पना, इच्छा, उद्देश्य, प्रभृत्ति, चेष्ट, मानसरोवर झील अंग्रेजी का mind मनस् का ही बिगड़ा रूप है ।

मनस – (सं.पु.) उत्तम चित्तवान्, मननशील

'स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिः'

ऋ. ५.४४.१०

मनसा जविष्टा – मन से भी अधिक वेग वाले प्राण अपान वायु

'ऋतस्य मन्ये मनसा जविष्टा'

ऋ. ५.२.३.

मनस्तेजाः – मन के समान तेजस्वी

'दिक्शंसितो मनस्तेजाः'

अ. १०.५.२८

मनसस्पतिः – अन्तः करण को गिराने वाला पाप संकल्प

'अपेहि मनसस्पते'

ऋ. १०.१६४.१; अ. २०.९६.२३;

मनस्पाप – मानसिक पाप

'परोपेहि मनस्पाप'

अ. ६.४५.१

मनस्केत – मन् द्वारा चिन्तन करने योग्य विषय

'यथा मनो मनस्केतैः'

अ. ६.१०५.१

मनस्मयम् अनः – संकल्प का बना मानस रथ

'अनो मनस्मयं सूर्या

रोहत् प्रयती पतिम्'

ऋ. १०.८५.१२; अ. १४.१.१२

मनस्वान् – मनस् + वतुप् = मनस्वत् । प्रथमा एक वचन में मनस्वान् रूप है । अर्थ (१) मेधावी –सा. (२) चेतन

'यो जात एव प्रथमो मनस्वान्'

ऋ. २.१२.१, अ. २०.३४.१; तै.सं. १.७.१३.२; मै.सं. ४.१२.३ः १८६.४, का.सं. ८.१६, ऐ.ब्रा. ५.२.१, कौ.ब्रा. २१.४; २२.४; नि. १०.१०

जो जन्मते ही देवों में प्रधान और मेधावी हुए –सा.

जो सदा विद्यमान ही रहता, जो सर्वाधार और चेतन है–दया.

(३) मनस्वी

मन्तवै - मनाव्य, मानने योग्य,
मन् + तवै (तव्य के अर्थ में) = मन्तवै ।

मन्त्रश्रुत्य - मन्त्र और श्रुति के अनुसार
'मन्त्रश्रुत्यं चरामसि'
ऋ. १०.१३४.७, साम. १.१७६.

मनायु - ज्ञान का इच्छुक
'मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः'
ऋ. ४.२५.२

मनीषा - (स्त्री) । मन् + असुन् = मनस् । मनस् + ईषा = मनीषा । अर्थ है (१) मनः पूर्विका स्तुति, मनोयोग पूर्वक स्तुति, (२) प्रज्ञा, (३) महत्वाकांक्षा
'प्र सिन्धुमच्छा महती मनीषा
अवस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः'
ऋ. ३. ३३.५; नि. २.२५
मैं कुशिकपुत्र बड़ी महत्वाकांक्षा से अपनी रक्षा का इच्छुक हो शतद्रु के समक्ष जोर देकर बुलाता हूँ ।
(४) श्रद्धा , प्रियातिशय बुद्धि
अमन्दसोमान् प्रभरे मनीषया
(५) इच्छा, (६) स्तुति,
'इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा'
ऋ. १०.४.६

मनु - मन् + उ = मनु ।
(१) मानव मात्र का पिता - सा.
'यामथर्वा मनुष्पिता
दध्यङ् धियमत्नत'
ऋ. १.८०.१६; नि. १२.३४.

मन्तु - (१) प्रशस्त ज्ञान । (२) मननशील, विचारवान् (३) आदर मन करने वाला
'युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः'
ऋ. १.१५२.१; मै.सं. ४.१४.१०; २३१.७; तै.ब्रा. २.८.६.६

मन्तुमस् - ज्ञानी, उत्तम ज्ञान एवं (मन्तुमाः) मनन सामर्थ्य वाला
'आ तत्ते दस्र मन्तुमः
पूषन्नवो वृणीमहे
येन पितॄनचोदयः'
ऋ. १.४२.५
हे दुष्टों के नाश करने वाले, हे उत्तम ज्ञान और मनन सामर्थ्य वाले, हे पूषन् या प्रजापोषक राजन् ! जिस शासन बल से तू माता पिता के समान प्रजा के पालक अधिकारी पुरुषों को प्रेरित करता है, हम तेरे उस प्रजा के रक्षण तथा व्यवहार को चाहते हैं ।
'शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः'
ऋ. १०.१३४.६; साम. २.४४१.

मन्यु - (प्र.) । मन् + युच् = मन्यु । मन् धातु का अर्थ दीप्त करना, क्रोध करना या वध करना है । मन्यन्ति अस्मात् इषवः (मन्यु से वाण अवदीप्त हो शत्रुओं को हिंसित करते हैं) ।
क्रोध में मनुष्य आपे से बाहर हो जाता और मर्यादा खो बैठता है ।
मन्यु से मनुष्य दुराधर्ष रहता है । अर्थ है- (१) वायु, (२) मनस्वी, (३) क्रोध, (४) मरुत्वान् ।
'त्वया मन्यो सरथ मारुजन्तः'
ऋ. १०.८४.१; अ. ४.३१.१; तै.ब्रा. २.४.१.१०, नि. १०.३०.
(५) मन की वह शक्ति जिससे मनुष्य विजय प्राप्त करता है, (६) इच्छा-शक्ति, (७) मनस्विता ।
'विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवः'
ऋ. १०.८४.५; अ. ४.३१.५; नि. ६.२९
हे मन्यु ! तू परमात्मा की ही तरह विजयी और अप्रतिहत शासन है ।
(८) मन्युनामक देवता ।
'अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व'
ऋ. १०.८४.२; अ. ४. ३१.२; नि. १.१७
हे मन्यु ! अग्नि के समान ज्वलित होकर हमारे शत्रुओं को पराजित करो (सहस्व) ।
आधुनिक अर्थ - क्रोध, चिन्ता, आपत्ति, दयनीय दशा, यज्ञ अग्नि, शिव का एक नाम
'मन्युरसि मन्युं मयि धेहि'
में ईश्वर को मन्यु कहा गया है ।
यह शब्द क्रोध से भिन्न शक्ति का वाचक है । मन्युवान् विजयी होता है । क्रोधी अवक्षिप्त वचन बोलता है । मन्यु अन्तरिक शक्ति का बोधक है ।

मन्त्र - मननात् मन्त्रः (मनन से मन्त्र हुआ) । अथवा 'मननात् त्रायत इति मन्त्रः' (जो मनन करने से रक्षा करता है वह मंत्र है) । 'मनि' धातु गुप्त

परिभाषण अर्थ में भी आया है। और इससे भी मन्त्र भी व्युत्पत्ति की गई है। मन्त्र में गुप्त पदार्थों या विद्याओं का वर्णन है।

मन्त्र का मनन अध्यात्म, अधिदेव और अधियज्ञ के उपासक करते हैं। अर्थ है - (१) मन्त्र

'स्तुता मन्त्राः कवि शस्ता अवन्तु'

ऋ. ६.५०.१४, वाज.सं. ३४.५३; मै.सं. १.६.२; ८८.१३; आप.श्रौ. सू. ५.१९.४; नि. १२.३३.

पूर्व ऋषियों द्वारा स्तुत एवं मेधावियों द्वारा प्रशंसित मन्त्र रक्षा करें।

(२) वैदिक ऋचा को भी मन्त्र कहते हैं। छन्द में रहने पर ऋच्, गद्य में रहने पर यजुस् और छन्दोबद्ध रहने पर भी गाने के उद्देश्य से मन्त्र सामन है (३) मन्त्र से वैदिक संहिता का भी बोध होता है।

(४) जादू टोना भी मन्त्र ही है, (५) देवता विशेष की स्तुति करने के लिए भी मन्त्र विशेष होता है, जैसे - 'ऊं नमः शिवायः' 'ऊं नमो भगवते वासुदेवाय'।

(६) सम्मति, राय, विचार, उपदेश योजना, प्रहिता (७) रहस्य, षड्यन्त्र (८) सं. - मननशील- विचार वान्

'सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान्'

ऋ. १.१५२.२

मन्त्रकृत् - (१) वेद मन्त्रों का द्रष्टा ऋषि। सायण ने 'कृत्' का अर्थ ऐतरेय ब्राह्मण के उद्धरण के भाष्य में यों किया है-

ऋषिरतीन्द्रियार्थ द्रष्टामंत्र कृत् करोति धातु स्तत्र दर्शनार्थः।

(ऋषि अर्थात् अतीन्द्रिय अर्थों का द्रष्टा मन्त्रकृत है)। 'करोति' धातु का अर्थ यहां देखना है। ऋग्वेद में एक स्थान पर मन्त्र कृत् शब्द का प्रयोग है।

ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः
कश्यपोद्वर्द्धयन् गिरः
सोमं नमस्य राजानं
यो जज्ञे वीरुधां पतिः
इन्द्रायेन्दो परि स्रव'

ऋ. ९.११४.२

(२) पुनः तै.ब्रा. १३.३.२४ में-शिशुर्वा अङ्गिरसां मन्त्र कृताम् मन्त्र कृदासीत्।

(३) तै. आरण्यक ४.१.१ में

नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यः

(४) मन्त्रकृता वृणीते (यथर्षि मन्त्र कृतो वृणीत इति विज्ञायते)।

आप.श्रौ.सू.

(४) तान् होवाच काद्रवेय सर्पः।

(६) ऋषिर्मन्त्रकृत्। ऐ.ब्रा. ६.१.

मन्त्रश्रुत्य - वह बात जो मन्त्र और श्रुति से अनुमोदित हो

मन्त्रश्रुत्यं चरामसि

ऋ. १०.१३४.७

मन्थ - (१) मट्ठा,

'क्षीरे मामन्थे यतमो ददम्भ'

अ. ५.२९.७

(२) सत्तू का बना घोल

'सवासिनौ पिबतां मन्थमेतम्'

अ. २.२९. ६

(३) सब दुःखों को मथ देने वाला आनन्द रस

'मन्थस्त इन्द्र शं हृदे'

ऋ. १०.८६.१५; अ. २०. १२. १२६.१५.

'यं ते मन्थं यमोदनम्'

अ. १८.४.४२

मन्था - छाछ

'दधिमन्थां परिस्तुतम्'

अ. २०.१२७ (३).९ शां.श्रौ.सू. १२.१७.१.३.

(२) मथनी, रही जिस से दूध दही महा जाता है।

'यत्र मन्थां विबध्नते
रश्मीन् यमितवा इव'

ऋ. १.२८.४

अश्वों को वश करने के लिए जिस प्रकार सारथि रासों को जोड़ता है और जहां लोग इधर दही को मथन करने वाली रही को रस्सी से बांधते हैं।

मन्थिपाः - शत्रुओं का मंथन करने वाला

'देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्तु'

वाज.सं. ७.१७; मै.सं. १.३.१२: ३४.१०; ४.६.३: ८२.६; का.सं. ४.४; २७.८; श.ब्रा. ४.२.१.१४; तै.ब्रा. १.१०.१२; आप.श्रौ. सू. १२.२२.१; मा.श्रौ.सू. २.४.१.६.

'मन्थी मन्थि शोचिषा निरस्तः'

वाज.सं. ७.१८; तै.सं. ६.४.१०.४; का.सं. ४.४; श.ब्रा. ४.२.१. १९; तै.ब्रा. १.१.१.२; आप.श्रौ.सू. १२.२२.८.

मन्थी - (१) शत्रुओं का मथन करने वाला ।
'क्षीर श्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः'
वाज.सं. ८.५७
(२) वाणी विस्तार से उत्पन्न हृदय मन्थन करने की शक्ति (३) ऐड नाम स्तम से उत्पन्न मन्थिग्रह
'ऐडान्मन्थी'
वाज.सं. १३. ५७.
(४) मथनी ।
'शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना'
ऋ. ९.४६.४
हे ऋत्विजो, मथनी से घृत निकालो (मन्थिना शुक्रागृभ्णीत) ।

मन्दमाने - (१) सुखकारक, एक दूसरे का कल्याण करने वाले रातदिन - स्त्री पुरुष '
'आ भन्दमाने उषसे उपाके'
ऋ. ३.४.६

मन्दयुः - प्रसन्न करता हुआ
'प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता'
ऋ. १.१७३.२

मन्दमानाय - मोदमानाय, हृष्यमाणाय, स्तूयमानाय, शब्दमानाय (प्रसन्न, हर्षित, स्तूयमान या शब्दायमान होने वाले के निमित्त) । मोदयुक्त प्रसन्न ।
'प्र वो महे मन्दमानायान्धसः'
ऋ. १०.५०.१, वाज.सं. ३३.२३, ऐ.आ. १.५.२.१, ५.३.१.२; नि. ११ .९
मोहयुक्त इन्द्र या परमेश्वर की स्तुति करो ।

मन्दसानः - (१) उत्तम स्तुतियुक्त
'येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः'
ऋ. २.३०.५,
(२) सदा प्रसन्न करता हुआ
'मन्दसानं इमा आपः'
ऋ. १.१३१.४; अ. २०.७५.२
(३) अति हर्षित
'मन्दसानः सहस्रिणम्'
ऋ. ८.९३.२१
(४) मोदमानः (५) आनन्दित करने वाला । (६) मन्द + असानच् = मन्दसानस । अर्थ है- सर्वानन्दकारक
'मन्दसानः सुतं पिब'
ऋ. १.१०.११

मन्दसानुः - आनन्दित करने वाला - अग्नि का विशेषण ।
'सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः'
ऋ. ५.६०.८; नि. ८.२
हे आनन्दित करने वाला सर्वजनोपकारक अग्नि ! समूह रूप में आश्रित ज्वालाओं से (गणश्रिभिः) सोम रस पी ।

मन्दसाना - स्तुति करती हुई । गुणानुवाद करती हुई
'सा मन्दसाना मनसा शिवेन'
अ. १४.२.६;

मन्द्र - मन्द् + रक् = मन्द्र; अथवा मद् + रक् = मन्द्र । अर्थ है । स्तुत्य ।

मन्द्रजिह्व - (१) आनन्दयुक्त प्रीतिजनक वचन वाला परमेश्वर
'पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम्'
ऋ. ४.५०.१; अ. २०.८८.१, मै.सं. ४.१२.५; १९३.४, का.सं. ९.१९.
(२) मदनजिह्वः मोदनजिह्वः, मदयितृ घोषः (जिसकी जिह्वा प्रसन्न करने वाली हो, जिसकी स्तुति रूपी ध्वनि लोगों के लिए आनन्ददायिनी हो) ।
(३) जिह्वा का अर्थ स्तुति भी है । अतः मन्दजिह्व का अर्थ आनन्ददायिनी स्तुति करने वाला हुआ ।
(४) मन्द + र = मन्द्र प्रशंसित या आनन्दप्रद मधुर वाणी वाला ।
(५) सुन्दर स्तुति या जिह्वा वाला -सा.
(६) सुन्दर वाणी वाला विद्वान् - दया.
'अनर्वाणं वृषभ मन्द्रजिह्वं
बृहस्पतिं वर्द्धया नव्यमर्कैः'
ऋ. १.१९०.१; नि. ६.२३.

मन्द्रजिह्वा - वि.,द्वि.व. । (१) अति हर्ष करने वाली, (२) उत्तम वाणी वाले
'मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणि'
ऋ . १.१४२.८
अति हर्ष को उत्पन्न करने वाले, उत्तम वाणी वाले (मन्द्रजिह्वा), निरन्तर उद्यमशील और

अध्ययनशील.....

मन्द्रयुः - आनन्द की कामना करने वाला

'प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः'

ऋ. ९.८६.१७; साम. २.५०३

मन्म - (१) स्तुति

'मन्म श्रुधि नवीयसः'

. १.१३१.६; अ. २०.७२.३

(२) योग्य करने योग्य

'नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम्'

ऋ. १०.९६.११; अ. २.३२.१.

मन्मन् - (१) समझते हुए, (२) आत्म मनन, आत्म चिन्तन।

'कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः'

ऋ. १०.१३८.१

कृषकों के कृषि कर्म आवश्यक समझते हुए .. दुर्ग। परमात्मा के स्तोता के लिए (कुत्साय) पाप नाशक श्रेष्ठ कर्मों को (अह्यः दँसयः) बतलाते हुए उदय होते हो।-ज.दे.श.।

मन्मशः - मनन करने योग्य मन्त्र से

'यदिन्द्र मन्मशस्त्वा
नाना हवंत ऊतये'

ऋ. ८.१५.१२

मन्यमानः - विचार आदर और मान करने योग्य - परमात्मा

'नू चिन्नु ते मन्यमानस्य'

ऋ. ७.२२.८; . २०.७३.२

मना - निपात से सिद्ध 'मन्' धातु से बना शब्द। अर्थ है - जिस से सब कुछ याञ्चा की जाय। गौ का विशेषण। गो शब्द पृथिवी, गौ, वाणी आदि का वाचक है।

चिदसिमनासि धीरसि'

राजक्रयणी गोस्तुति में यह ऋचा कही गई है। 'चित्त' गौ का वाचक है। गौ में सभी भोग्य पदार्त संचित है। अतः वह 'चित्' हुई। उसी प्रकार गौ मना है, धी है। गौ से सभी कुछ जांचा जाता है, अतः वह मना है। गौ सब कुछ धारण करती है, अतः वह धी भी है।

मनामहे - (१) याचामहे (हम याचना करते हैं)। वेद में 'मन्यामहे' का रूप 'मनामहे' होता है। (१) सायण के अनुसार इसका अर्थ है- स्तवामः (हम स्तुति करते हैं।) (२) मत्वा च उपास्महे। (मानकर उपासना करते हैं)।

'कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे
स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम्
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ
अपो वृणाना वितनोति मायिनी'

ऋ. ५.४८.१

हम सुखकर एवं अपने बल से स्थित (स्वक्षत्राय) अपनी महिमा से यशस्वी (स्वयश से) तथा महान् (महे) प्रिय विश्वदेवों के स्थान के लिए (प्रियाय धाम्ने) स्तुति या याचना करते हैं (मनामहे) जो मध्यमा वाक् (यत्) मध्यमा वाक् के वास स्थान अन्तरिक्ष लोक के (मन्यस्य रजसः) ऊपर (आ) मेघ में अवस्थित (अभ्रे) जलों की चारों ओर बांटती हुई या घेरती हुई (अपः आ वृणाना) तथा प्रज्ञावती होकर (मायिनी) वर्षा रूप में विस्तृत होती है (वितनोति)।

मनायत् - मननशील पुरुष

'यजस्व वीर प्र विहि मनायतः'

ऋ. २.२६.२

मनायुः - प्रशंसा की कामना करने वाला

'प्रति मनायोः उचथानि हर्यन्'

ऋ. ४.२४.७.

(२) मान या ज्ञान का इच्छुक मननशील स्तुति कर्ता (३) ज्ञानरूप परमेश्वर

'विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः'

ऋ. १.९२.९

मनावसू - (१) मन और ज्ञान को वसु अर्थात् धन रूप से देखने वाले अश्विद्वय या स्त्री पुरुष, (२) ज्ञान के धनी

'कूष्ठो देवावश्विना
अद्या दिवो मनावसू'

ऋ. ५.७४.१

मन्दासः- (१) तृप्त (२) दूसरों को तृप्त करने वाला

'मन्दानः शिप्र्यन्धसः'

ऋ. ८.३३.७; अ. २०.५३.१; ५७.११; साम. १.२९७.

(३) प्रसन्न होता हुआ।

'तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्य'

ऋ. ५.३२.६

अभिसुत सोम रस से प्रसन्न होता हुआ उस

वृत्र का या पुत्रतुल्य प्रजाजन को आनन्द देने वाला राजा उस चोर व्यभिचारी आदि को......

पुनः –

'मन्दान इन्द्रो अन्धसः'

ऋ. १.८०.६

मन्द्रा – मन्दना, हषकारी, लोकस्य तर्पयित्री। मन्द अथवा मद् + रक् + टाप् = मन्द्रा'

'यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि
राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा'

ऋ. ८.१००.१०, तै.ब्रा. २.४.६.११, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१; नि. ११.२८.

जब माध्यमिका वाक् शब्दरूपी गर्जन लक्षण वाली अविज्ञातार्थ ध्वनि करती, अन्तरिक्ष लोक या माध्यमिक देवों की ईश्वरा तथा लोक को प्रसन्न करने वाली वर्षा बरसाने लगती है।

अथवा,

जब अविज्ञात अर्थों को बतलाने वाली, विद्वान् लोगों की स्वामिनी प्रसन्नता देने वाली दिव्य वाणी प्राप्त होती है।

(२) स्तुति से प्राप्त होने वाली

(३) जल से हर्षित करने वाली वाक् का विशेषण।

'सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना'

ऋ. ८.१००.११; तै. ब्रा. २.४.६.१०; नि. ११.२९

मन्द्राजनी – अति हर्ष उत्पन्न करने वाली

'मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि'

ऋ. ९.६९.२, साम. २.७२१.

मन्दानः – परम आनन्द प्राप्त करने वाला

'वसोर्मन्दानमन्धसः'

ऋ. ८.८८.१; अ. २०.९.१; ४९.४; साम १.२३६; २.३५; वाज.सं. २६. ११;

मन्दू – द्वि.व.। मन्द् + उ = मन्दु (नुम् का आगम्) अथवा मद् + उ = मन्द्र। अर्थ-(१) प्रदिष्णु मद वाला (१) इन्द्र और मरुत् का विशेषण (३) नित्य प्रसन्न

'मन्दू समानवर्चसा'

ऋ. १.६.७; अ. २०.४०.१; ७०-३; साम. २.२००; नि. ४.१२.

तुम दोनों नित्य प्रसन्न एवं समान दीप्ति वाले हो।

मन्धाता – (१) मुझे धारण या रक्षा करूंगा इस प्रकार राजा द्वारा स्वीकृत प्रजा गण

'मन्धातुर्दस्युहन्तमम्'

ऋ. ८.३९.८

(२) ज्ञान को धारण करने वाला विद्वान् मेधावी।

'मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा'

ऋ. १०.२.२.

मन्मन् – मद् (स्तुति अर्थ में) + मनिन् = मन्मन्। अर्थ है (१) स्तुति, स्तोत्र, (२) मननीय अर्थ जात (३) कर्म, (६) मनमाना धन।

'उप प्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म
देवानामाशा उपवीत पृष्ठः'

ऋ. १.१६२.७; वाज.सं. २५.३०; तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं. ३.१६.१ : १८२.४;

मुझे मनमाना धन आवे (मन्म उपप्रागात्)। यह इच्छा मेरे मन में स्वयमेव आई। सुन्दर पीठ वाला घोड़ा देवताओं की इच्छा पूर्ण करने के लिए आये।

अभिप्रेत पदार्थ के अर्थ में –

'मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्
देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः'

ऋ. १०.११०.२; अ. ५.१२.२; वाज.सं. २९.२६; मै.सं. ४.१३.३; २०१.११, का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.१; नि. ८.६.

हमारे अभिप्रेत पदार्थों को अपने कर्मों या बुद्धि से समृद्ध करता हुआ हमारे इस अहिंसित अध्वर को देवताओं की ओर प्रवृत्त कर।

स्तुति के अर्थ में –

'तमू षु समना गिरा
पितृणां च मन्मभिः'

ऋ. ८.४१.२; नि. १०.५

मैं उसी वरुण को समान वाणी तथा पितरों की स्तुतियों से स्तुति करता हूँ।

प्रज्ञा या कर्म के अर्थ में –

हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति

ऋ। १.१२९.६; नि. १०.४२

जो अन्नवाला इन्द्र हमारी प्रज्ञाओं को आकर्षित करता है।

(७) मन – दया. (८) मननीय अर्थ –सा.

(९) अन्य प्रवृत्ति –

मनु + मनिन् (मनु के उ का लोप) = मन्मन्।

'मनु' धातु अवबोधन अर्थ में आया है। अतः मन्मन् का अर्थ अवबोधन कराने वाला प्रज्ञान हुआ।

मन्मना - मननीय वाणी
युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः
ऋ. १.१५१.६

मन्मसाधनः - (१) मननशील, (२) विज्ञानसाधक,
'कविर्होता यजति मन्मसाधनः'
ऋ. १.१५१.७
बुद्धिमान् दाता या क्रान्तदर्शन होता विद्या या विज्ञान का साधक हो यज्ञ करता है।

मन्यथाः - देखें, मानें, समझें।
मा मे दभ्राणि मन्यथाः'
ऋ. १.१२६.७; नि. ३.२०
हे पतिदेव, मेरे छोटे छोटे रोओं को आप मत देखें (दभ्राणि मा मन्यथाः) -सा.
हे पतिदेव, मेरे सामर्थ्यों को कम न समझिए।

मन्दिः -, आनन्दप्रद, सोम रूप काविशेषण। 'आ सृज तन सुते मन्दि मिन्द्राय मन्दिन्'
हे अध्वर्युवों, सोमरस तैयार हो जाने पर आनन्द प्रद सोम रस को आनन्दमय इन्द्र के सम्मुख होकर प्रस्तुत करो।

मन्दिनः सोमासः - (१) सुप्रसन्न सैनिकों को प्रेरणा करने वाले नेता पुरुष, (२) सौम्य स्वभाव वाले मुक्त पुरुष
'सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः'
ऋ. १०.४३.४; अ. २०.१७.४

मन्दिष्ट - (१) अतिशयेन मन्दिता, (२) विद्वानों के बीच सब से मुख्यतम विद्वान्, (३) इन्द्र का विशेषण
'मन्दिष्ट यदुशने काव्य सचां'
इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति
ऋ. १.५१.११

मन्यमानः - पूजा करता हुआ, श्रद्धा से मानता हुआ।
आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चित्
राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह
ऋ. ७.४१.२; अ. ३.१६.२; वाज.सं. ३४.३५; तै.ब्रा. २.८.९.८; आप.मं.पा. १.१४.२; नि. १२.१४.
जिस भग (आदित्य) को दरिद्र भी (आध्रःचित्) पूजा करते हैं (मन्यमानः) क्योंकि सूर्य के उदय से काल बीता जाता है। राजा भी जिस देव को 'मुझे यह धन दे' ऐसा कहता है (भागं वक्षि)।

मन्यमानाः भृमयः - जाती गई भ्रमण की क्रियाएं
इमा उ वां भृमयो मन्यमानाः'
ऋ. ३.६२.१; आश्व.श्रौ.सू. ७.९.२.

मन्वानाः - ब.व.। मन् + शानच् = मन्वान। ब.व. में 'मन्वानाः। अर्थ है- (१) मानते हुए दुर्ग, (२) मनन करते हुए ज.दे.श.
तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नयः
ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम्'
ऋ. १०.१३८.१
हे इन्द्र, तेरे सख्य में वर्तमान अश्वों ने मेघ में जल को समझते हुए मेघ को विदीर्ण किया-दुर्ग।
हे सूर्य, तेरे सख्य में वर्तमान नेता विद्वान् (वह्नयः) सत्य रूपी प्रभु को मनन करते हुए (ऋतं मन्वानाः) आन्तरिक शत्रु के बल को विदीर्ण करते हैं ('वलं व्यदर्दिरुः)

मन्या - (१) गण्डमाला
'संयन्ति मन्या अभि'
अ. ६.२५.१
(२) राष्ट्र का मान करने वाली राजसभा (२) मन्या नाम की धमनी (४) मनन करने की विज्ञान क्रिया
'चित्तँ मन्याभिः'
वाज.सं. २५.२; तै.सं. ५.७.१४.१; मै.सं. ३.१५.२: १७८.६; का. सं.(अश्व.) १३.४

मनीषा - (१) स्तुति, (२) अभिलाषा
'भुवदग्ने शंतमा का मनीषा'
ऋ. १.७६.१; का.सं. ३९.१४
हे प्रभो, 'कौन सी स्तुति या अभिलाषा अति सुख कारिणी है (शंतमा)।

मनीषिन् - मेधावी। मनसः ईषिन्। मनस् + ईषा = मनीषा; मनीषा + इनि = मनीषिन्।
'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि
तानि विदुः ब्राह्मणा ये मनीषिणः
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति
तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति'
ऋ. १.१६४.४५ अ. ९.१०.२७

परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन चार प्रकार की वाणियों में सभी वाणियों के चार पाद परिमित हैं । (वाक् चत्वारि, पदानि परिमितानि) । उन पादों का रहस्य (तानि) वेदज्ञ ब्राह्मण तथा मेधावी पुरुष (ब्राह्मणाः मनीषिणः) जानते हैं (विदन्ति) । उन चारों पादों में तीन (त्रीणि) गुहा में निहित अर्थात् रखी या छिपी हुई हैं (गुहा निहिताः) । वे इधर उधर नहीं होतीं (न इङ्गयन्ति) । वह्नि के चतुर्थ चरण या पाद को (वाचं तुरीयम्) मनुष्य उच्चारित करते हैं ।

कुछ विद्वानों के मत से चार पाद-भूः, भुपः, स्वः और ओम् हैं । सप्रणव व्याहृतियों के सभी वाक् परिमित हैं ।

(कतमानि तानि चत्वारि पदानि ? ओंकारों महा व्याहृतयश्च इत्यार्षम्) ।

मन्दी - मद् (स्तुति अर्थ में) + घञ् = मन्द, मन्द + इनि = मन्दिन् । (प्रथमा एक वचन में मन्दी) । अर्थ है- (१) स्तुति से तृप्त, (२) प्रसन्न चित्त - इन्द्र का विशेषण ।

मन्दी मदाय तोशते

सोमरस या दुग्ध पीकर प्रसन्नचित इन्द्र या गोस्वामी तेज धारण करने के लिए (मदाय) निर्बलता दूर करता है (तोशते) ।

(३) देवों को प्रसन्न करने वाला (देवानां स्तोत्रेण हर्षकः) (४) स्तुति करने वाला है (मन्दः स्तवः अस्य इति मन्दी) ।

तरत् स मन्दी धावति
धारा सुतस्यान्धसः
तरत् स मन्दी धावति '

ऋ. ९.५८.१

जो स्तोत्र से देवताओं को प्रसन्न करने वाला है (मन्दी) वह तरता है अर्थात् पापों से मुक्त होता है (स तरत्), तथा अभिसुत भक्षणीय सोमरस की धारा से (सुतस्य अन्धसः धारा) ऊर्ध्वगति प्राप्त करता है या उन्नति करता या अच्छी गति पाता है (धावति) ।

मनुः - (१) शत्रुओं को स्तम्मित और राष्ट्र को व्यवस्थित करने में समर्थ पुरुष (२) ज्ञान स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करना ।

मनुजात - (१) मन्त्रपूर्वक धारण किया हुआ, (२) मनन या दृढ़ संकल्प से बना हुआ

'अभि त्वा मनुजातेन
दधामि मम वाससा '

अ. ७.३७.१

(३) मननशील मनुष्य से उत्पन्न, (४) ज्ञानवान् मनन शील

यजा स्वध्वरं जनं
मनुजातं घृतप्रुषम् '

ऋ. १.४५.१

उत्तम यज्ञशील, अहिंसक और ज्ञानवान मननशील आचार्य आदि की शिक्षा प्राप्त कर निष्णात हुए, घृत दुग्धादि के साथ अन्नादि पदार्थों का सेवन करने वाला तथा विधिपूर्वक जलों और ज्ञानों द्वारा स्नात हुए स्नातक विद्वान् पुरुष को भी ऐश्वर्य प्रदान कर तथा उनका सत्संग कर ।

मनुताम् - मन् धातु के लोट् प्र.पु.ए. व. का रूप । मन्यताम्, जानातु ।

'पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत्

ऋ. ६.४७.२९; अ. ६.१२६.१; वाज.सं. २९.५५; तै.सं. ४.६.६.६; मै.सं. ३.१६.३; १८७.८; का.सं. (अश्व.) ६.१. नि. ९.१३.

हे इन्द्र, स्थावर और जंगम जगत् तेरे शब्दों को बहुत प्रकार से मान जाय ।

मनुप्रीतः - मनुष्यों से प्रेम करने वाला

'मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वतः '

ऋ. १०.६३.१

मनुर्हित - (१) मनुष्यों का हितकारी

'मनुर्हितम् सदमिद् राय ईमहे '

ऋ. ३.२.१५

(२) मननशील पुरुषों द्वारा धारित- अग्नि

'ईडे गिरा मनुर्हितम् '

ऋ. ८.१९.२१

मनुष्य - मन + उषन् = मनुष्य । यास्क ने मनुष्य शब्द को मनु या मनुष्य का अपत्य कहा है ।

अर्थ - (१) मनुष्य ।

'इषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा '

ऋ. १.११७.२१; नि. ६.२६

हे दर्शनीय राजा एवं राजपुरुषो ! या अश्विनीद्वय तुम मनुष्य के लिए भरपूर अन्न पैदा करते हुए......

(२) मननशील मनुष्य
'तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा'
ऋ. २.२.५

मनुष - षकारान्त प्रातिपदिक । अर्थ- मनुष्य ।
'अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम्'
ऋ. ६.७०.२
हे द्यावापृथिवी ! हमें सन्तानोत्पादक वीर्य देवें जो मनुष्यों के लिए कल्याण कारक है। अथवा, इस संसार के राजा सूर्य पृथिवी मनुष्यों के लिए हितकर जल हमारे लिये बरसावें ।
(२) स्वर्ग, (३) यष्टा, यज्ञ कर्त्ता,

मनुष्य - (१) मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति (समझ बूझकर कार्य करता है अथवा कर्मों को संलग्न करता है, अतः वह मनुष्य है) ।
(२) स्कन्दस्वामी 'मनुष्य' शब्द को द्विधातुक मानकर 'मन् + सीव ' धातुओं से बना हुआ मानते हैं ।
(३) मनस्य मानेन सृष्टा (प्रसन्न मनया प्रशस्त मन वाले प्रजापित से मनुष्य सृष्ट हुए) ।
(४) मनोः अपत्यं मनुषः व ('मनुष्य' का अर्थ मनु या मनुष् का अपत्य है) । मनुष् + यत् = मनुष्य ।
(५) पाणिनि ने 'मनोर्जातावञ् यतौ षुक् च ' पा.४.१.१६१ से मनु से उत्पन्न मनुष्य है । इस अर्थ में मनु + यत् = मनुष्य कहा है । अर्थ - (१) यज्ञ करने वाला, चिन्तनशील, मनन शील (३) विवेकी पुरुष ।
'चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान्'
ऋ. ६.४७.१६; नि. ६.२२.
. इन्द्र यज्ञ विमुख या बुरे कर्म से धन कमाने वाले या व्यापार करने वाले मनुष्यों को (विशः) दण्ड देता या छकाता है (चोष्कूयते) तथा मननशील विवेकी यज्ञ करने वाले यज्ञशील पुरुषों को पुण्य लोक पहुंचाता है ।
(४) आदित्य रोगादिकों को नाश्न करता है । यास्क ने मन धातु को वधार्थक माना है । मन् + उ = मनु ।

मनुष्यजा - मनुष्यों द्वार एवं विचार पूर्वक परस्पर योगों या यन्त्रों से बनाई ओषधि ।
'दैवीर्मनुष्यजा उत
अ. ११.४.१६

मनुष्यराज - मनुष्य स्वभाव का राजा
'मनुष्यराजाय मर्कटः'
वाज.सं. २४.३०

मनुष्यवत् - मनुष् + वतुप् = मनुष्यवत् । अर्थ (१) मनुष्य की तरह -सा . (२) मननशील - दया.
'अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि
यमा मनुष्वत् प्रदिवो दधिध्वे'
ऋ. ४.३४.३
'मनुष्वदग्न इह यक्षि देवान्'
ऋ. ७.११.३
(४) मनन शील पुरुषों से युक्त
'मनुष्वदग्ने अंगिरस्वदंगिरः'
ऋ. १.३१.१७
शरीर व्याप्त प्राण वायु के सदृश (अंगिरस्वत्) या अग्नि के समान तेजस्वी वायु के समान समस्त संसार के अंग अंग में व्याप्त .....
अथवा,
हे अग्नि या परमेश्वर, तू मनन शील मनुष्यों से युक्त होकर..

मन्तुमाः - ज्ञानवान्
'ब्रवाम दस्र मन्तुम'
ऋ. ६.५६.४

मन्युः - (१) ज्ञानवान् प्रभु
'मन्युरिन्द्रो मन्युरेवा स देवः'
ऋ. १०.८३.२; अ. ४.३२.२, मै.सं. ४.१२.३: १८६.६; तै.ब्रा. २.४.१.११

मन्युइन्द्र - ज्ञानदीप्त, विवेक और असह्य तेज या प्रताप से युक्त मन्यु स्वरूप इन्द्र
'इन्द्रेण मन्युना वयमभिष्याम पृतन्यतः'
अ. ७.९३.१

मन्युभी - (१) क्रोध आदि अन्तः शत्रुओं और अभिमानियों का नाश करने वाला परमेश्वर । बड़े को देखकर अल्प बल वाले का क्रोध उतर जाता है । सौम्य, न्यायशील और विद्वान् भी सामादि उपायों से क्रोध को दूर करता है । परमेश्वर मन्यु है अत उस पर किसी का क्रोध नहीं चलता ।
'ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युभीरसि'
ऋ. २.२३.४

मन्युमत् - क्रोधयुक्त
'तद् वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः'

ऋ. ७.१०४.३

मन्युमत्तम – (१) अत्यन्त प्रकाशमय (२) अति मनन शील

'अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः'

अ. ७.२२.२

मन्युमीः – (१) क्रोध द्वारा शत्रुओं को मारने वाला, (२) अभिमानी शत्रु का नाशक (३) अपना क्रोध नष्ट करने वाला

'स मन्युमी समदनस्य कर्ता'

ऋ. १.१००.६

वह क्रोध द्वारा शत्रुओं को मारने वाला या अपने क्रोध को मन्द कर संग्राम करने वाला है।

मन्दू – द्वि.व.। आनन्द देने वाले

'मन्दू समानं वर्चसा'

ऋ. १.६.७; अ. २०.४०.१; ७०.३; साम. २.२००; नि. ४.१२

लट् के अर्थ में लोट् का प्रयोग

मनै – जानता हूँ, मानता हूँ (मन्ये, जाने)। मन् धातु के उत्तम पुरुष एक वचन का रूप।

'मनै न बभ्रूणामहं
शतं धामानि सप्त च'

ऋ. १०.९७.१; वाज.सं. १२.७५; का.सं. १३.१६; १६.१३; श.ब्रा. ७.२.४.२६; नि. ९.२८.

पीली औषधियों के १०७ नाम या शरीर के १०७ मर्म स्थानों को मै जानता हूँ।

'म्ना' धातु अभ्यास अर्थ में आया है। अभ्यास से ज्ञान होता है। अतः म्ना धातु ज्ञानार्थक भी है।

मनोजवः – मनस् + जु + अच् = मनोजव। अर्थ – (१) मन का वेग, (२) प्रज्ञा, ज्ञान, (३) मन् का गम्य प्रदेश, जहां मन जा सके वह भी मनोजव है (४) मन की गति के समान जिसकी गति हो (मनसो जव इव जवो यस्य स मनोजवः)

'अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो
मनोज वेष्वसमा बभूवुः'

ऋ. १०. ७१.७, नि. १०.९

आँख और कान में समान होने पर भी सखा या छात्र मन के वेग या ज्ञान में असमान होते हैं।

मनोजवाः – मनस् + जव + असुन् = मनोजवस्। अर्थ – मन के वेग से मन्द (२)उत्तम ज्ञान संकल्प के वेग से युक्त

'मनोजवा अयमानः'

ऋ. ८.१००.८;

मनोजाताः देवाः – मन से प्रकट होने वाले इन्द्रियगण

'ये देवा मनोजाता मनोयुजः'

वाज.सं. ४.११, तै.सं. १.२.३.१; मै.सं. १.२.३; ११.१८; का.सं. २.४; श.ब्रा. ३.२.२.१८.

मनोजुः– (१) मनोवेग से चलने वाला, (२) मन से प्राप्त होने योग्य

'मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन'

ऋ. ६.२२.६; अ. २०.३६.६

मनोतरा – द्वि.व.। (१) ज्ञान और कर्मों को मनोबल द्वारा प्रेरणा करने और मनोबल से ही उनके ज्ञान और क्रिया को स्वयं प्राप्त करने और कराने वाले प्राण और अपान।

'मनोतरा रयीणाम्'

(२) मनन या उत्तम ज्ञान प्राप्त करने वाले – अश्विद्वय या स्त्री पुरुष

'मनोतरा रयीणाम्'

ऋ. १.४६.२, ८.८.१२, साम. २.१०७९

(३) परस्पर एक से एक बढ़िया उत्तम मन या चित्त वाले स्त्री पुरुष (४) अश्विद्वय का विशेषण

'या दस्रा सिन्धुमातरा
मनोतरा रयीणाम्
धिया देवा वसुविदा'

ऋ. १.४६.२; साम. २.१०७९

जो ये दोनों एक दूसरे के दुःखों को नाश करने वाले (दस्रा) या एक दूसरे के प्रति दर्शनीय सूर्य चन्द्र, सिन्धु या आकाश से उत्पन्न हुए (सिन्धुमातरा) या सिन्धु के समान गम्भीर माता पिता से उत्पन्न, परस्पर एक से एक बढ़िया उत्तम मन वाले (मनोतरा) कर्म, उद्योग और प्रज्ञा के बल से (धिया) ऐश्वर्य धन या ज्ञान को प्राप्त करने वाले (वसुविदा हैं।

मनोता – (१) ज्ञान और मन को अपने में बांधने वाला, (२) मन के समान अति वेग से जाने में समर्थ

'त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता'

ऋ. ६.१.१, मै.सं. ४.१३.६: २०६.५: का.सं

१८.२०; ऐ.ब्रा. २.१०. २; तै.ब्रा. ३.६.१०.१; शां.श्रौ.सू. ५.१९.१३; मा.श्रौ.सू. ५. २.८.३६
(३) आज्ञापक प्रवक्ता
'त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता'
ऋ. २.९.४
(४) सबके मन का ज्ञाना (५) मनों का आकर्षक
(६) अन्तः करण में ओतप्रोत आत्मा
'धिया मनोता प्रथमो मनीषी'
ऋ. ९.९१.१; साम. १.५४३

मनोधत् – मन को वश करने और ज्ञान को धारण करने वाला
'मनोधृतः सुकृतः तैक्षतध्याम्'
ऋ. ३.३८.२

मनोः नपातः – (१) मननशील मनुष्य और चित्त को न गिरने देने वाले कर्म (२) मननशील मनुष्य के कर्म, (३) ज्ञान से उत्पन्न कर्म
'मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे'
ऋ. ३.६०.३

मनोमुट् – मनोमुह् के प्र.ए.व. का रूप । अर्थ – (१) मन मुग्ध करने वाली–मोहने वाली
'अक्षकामा मनोमुहः'
अ. २.२.५

मनोयुज् – यः मनसां युज्येत (मन अर्थात् इच्छानुसार रथ में जुड़कर चलने वाला अश्व या अश्वारोही भृत्य) ।
'आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुजः'
ऋ. १.५१.१०

मनोयुजः – ब.व.। (१) मन के बल से योग समाधि करने वाले (२) मन से युक्त शरीर को वहन करने वाले प्राण गण, (३) मन को लगाने वाले या चित्त से राजा को सन्मार्ग पर लगाने वाले विद्वज्जन
'घृतपृष्ठा मनोयुजो
ये त्वा वहन्ति वह्नयः'
ऋ. १.१४.६

मनोवाता – ज्ञान के द्वारा प्रेरित
'मनोवाता अधनु धर्मणि ग्मन'
ऋ. ३.३८.२

मनोर्वृधः – ज्ञान का वर्धक
'हन्ता दस्योर्मनोवृधः पतिर्दिवः'
ऋ. ८.९८.६; अ. २०.६४.३; साम. २.५९९

मनोहा – (१) मन का नाशकं रोग
'म्रोको मनोहा खनो निर्दाह आत्मदूषिस्तनदूषिः'
अ. १६.१.३
(२) चित्त या मननशक्ति पर आघात पहुंचाने वाला–अपस्मार उन्माद आदि रोग
'मनो हनं जहि जातवेदः'
अ. ५.२९.१०

ममक – मननशील ज्ञानवान् पुरुष
'पितुर्यत पुत्रोममकस्य जायते'
ऋ. १.३१.११
जैसे पुत्र उत्पादक पिता का होता है वैसे ही मननं शील ज्ञानवान् पुरुष का शिष्य पुत्र के समान होता है । मानव गण , परमेश्वर और वेदचतुष्टयी, आचार्य और विद्या दोनों का पुत्र है ।

ममत् – हर्षयुक्त
'ममञ्चन त्वायुवतिः परास'
ऋ. ४.१८.८

ममन्दुषी – प्रसन्नचित्त स्त्री
'उत मेऽरपद् युवतिर्ममन्दुषी'
ऋ. ५.६१.९

ममसत्यः – (१) मेरा वचन सत्य है, तुम्हारा नहीं इस प्रकार के विवाद का अवसर
'त्वां जना ममसत्येषु इन्द्र'
ऋ. १०.४२.४; अ. २०.८९.४
(२) मेरा पक्ष सच्चा, मेरा पक्ष सच्चा इस प्रकार अपने अपने प्रक्ष को दृढ़ बनाने का कलह

मम्रुषी – (१) पति के विरह में मरती हुई, (२) मरने के उद्यत होती हुई स्त्री ।
ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः
ऋ. १.१४०.८

ममृवान् – (१) मरता हुआ पुरुष
'रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः'
ऋ. १.११६.३; तै.आ. १.१०.२
जैसे कोई मरता हुआ पुरुष (ममृवान्) जीवन रक्षा के लिए धन का त्याग कर दे (रयिम् अवाहाः) (२) प्राण त्याग करने वाला
'उदैरयतं ममृवां समश्विना'
ऋ. १०.३९.९

मयः – (न.) । सुख ।

मयस्कर – सुखप्रद ।
'नमः शंकराय च मयस्कराय च'
वाज.सं. १६.४१, तै.सं. ४.५.८.१; मै.सं. २.९.७; १२६.२; का. सं. १७.१५

मयु – (पु.) । (१) हिंसक जंगली पशु
'मयुं ते शुगृच्छतु'
वाज.सं. १३.४७, मै.सं. २.७.१७: १०२; का.सं. १६.१७; श.ब्रा. ७.५.२.३२.
(२) उत्तम आज्ञा देने वाला पुरुष, .(२) गान, संगीत का ज्ञाता
(३) वाक्
'मयुः प्रजापत्यः'
वाज.सं. २४.३१; तै.सं. ५.५.१२.१; मै.सं. ३.१४.१२; १७४.११, का.सं. (अश्व.) ७.२.

मयूख – (१) खूंटा (१) किरण, कील
'दाधर्व पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा'
ऋ. ७.९९.३; वाज.सं. ५.१६; मै.सं. १.२.९; १९.१; का.सं. २.१० ; श.ब्रा. ३.५.३.१४; तै.आ. १.८.३.

मयूर – (१) मोर ।
(२) मयु अर्थात् वाक् को उत्पन्न करने वाला मुख्य प्राण

मयूरोमा हरिः – (१) मयूर के रोवों के समान चित्रविचित्र हरित नील किरण, (२) मयूर रोम के रंग का घोड़ा (३) मोर के पंख के समान रोएं लगाए वेगवान् मनष्य (४) मयु अर्थात् वाक् को उत्पन्न करनेवाला मयूर मुख्य प्राण का नाम है । उस मुख्य प्राण के रोम के समान आत्मा मयूर रोमा है । (४) सूर्यादि अनन्त लोक मयूररोमा हरि हैं ।

मयूर शेप्या – द्वि.व. । घोड़ों या पुरुषों का विशेषण । मयूर के चिह्न के समान सिर पर सम्मानदि सूचक कलंगी धारण करने वाले ।

मयूरशेप्याहरी – मयूर के पंखों के समान वर्ण वाले दुःखहारी या हरण शील प्राण और अपान वायु
हरी मयूर शेप्या
ऋ. ८.१.२५; साम. २.७४२

मयोभव – सुख के साधन उपस्थित करने वाला
'नमः शम्भवाय च मयोभवाय च'
वाज.सं. १६.४१

मयोभुवा – द्वि.व. । सुख प्रद सूर्य और पवना, (२) सुखों के मूल उत्पादक
'एह देवा मयोभुवा
दस्रा हिरण्यवर्तनी
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये'
ऋ. १.९२.१८; साम. २.१०८५
जिस प्रकार सुखप्रद सुख और पवन (मयोभुवा) प्रकाश और पदार्थों का उपभोग प्रदान करने के लिए (सोमपीतये) प्रातःवेला को प्रकट करने वाली किरणों को (उषर्बुधः) हमें प्राप्त कराते हैं, उसी प्रकार दान आदि उत्तम गुणों वाले (देवाः) सुख के मूल उत्पादक (मयो भुवा) बाधक कारणों को नाश करने वाले हित और प्रिय मार्ग में चलने वाले होकर (हिरण्यवर्तनी) उत्तम पदार्थों के ऐश्वर्य को प्राप्त कराने के लिए (सोमपीतये) प्रातः काल चेतन या जागृत होने वाले विद्वानों को (उषर्बुधः) प्राप्त करावें (वहन्तु) ।

मयोभूः– मयः + भू । 'मयः भवति अस्मात् इति मयोभूः' । (जिससे सुख हो वह मयोभू है) । अर्थ है– (१) सुखकारक
'मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा'
ऋ. १०.१६९.१; तै.सं. ७.४.१७.१; का.सं. (अश्व.) ४.६; तै. ब्रा. ३.८.१८.३ आप.श्रौ.सू. २०.१२.२; आश्व.गृ.सू. २.१०.५.
वायु इन गायों के सामने होकर बहे ।
'आपो हि ष्ठा मयोभुवः'
ऋ. १०.९.१, अ. १.५.१; साम. २.११८७; वाज.सं. ११.५०; ३६.१४; तै.सं. ४.१.५.१
हे नलो, यतः तुम सुख कारक हो ।

मरते – म्रियते (मरता है) । 'व्यत्ययो बहुलम्' - पा. ३.१.८५. से यहां विकरण नामक अव्यय होता है ।

मरायी – शत्रुमारक
'रेवान् मराय्येधते
ऋ. १०.६०.४

मरायु – (१) मरणशील शरीर
'ता मे जराय्वजरं मरायु'
ऋ. १०.१०६.६; नि. १३.५
(२) मृ + अच् = मरा, मर् + टाप् = मरा, मरा + यु = मरायु । अर्थ है– मरणशील
अतः हे 'अश्विनीकुमारो, तुम जरायु तथा मरण शील को अमर करो ।

मरीची - व्यर्थ आशा वाली मरु मरीचिका तुल्य तृष्णा
'यत् ते मरीचीः प्रवतः
मनो जगाम दूरकम्'
ऋ. १०.५८.६

मरीचिः - सूर्य की किरण
मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः'
ऋ. १०.१७७.१

मरीमृश - बार बार गुह्यांगों को स्पर्श करने वाला
'जम्भयन्तं मरीमृशम्'
अ. ८.६.१७

मरुत् - (१) मध्यमस्थानी देवता । मरुतः मितराविणः मित रोचिनः, महत् द्रवन्ति इति वा (मरुत् सुश्लिष्ट रूप से ध्वनि करते हैं, सुश्लिष्ट रूप से द्रवते हैं या अत्यन्त द्रवते हैं, अतः वे मरुत् कहे गए) । कुछ लोगों ने मित का अर्थ अत्यन्त किया है । मित का 'म' और रु (रवना) या रुच् (शोभना) का रुत् होकर मरुत् बना है ।
(२) अथवा 'महत् द्रवन्ति' से 'मरुत्' बना है । महत् का 'म्' और द्रु का 'रुत्' वर्णविपय से हुआ है ।
(३) वि.। अर्थ-अग्नि की ज्वाला ।
'अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिः ऋक्वभिः
सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः'
ऋ. ५.६०.८
हे वैश्वानर अर्थात् सर्वजन हितकर्ता अग्नि, शोभायमान (शुभयद्भिः), प्रशस्त (ऋक्वभिः) तथा परिमित प्रकाश वाली (मरुद्भिः) ज्वालाओं से सोम रस पी ।
(४) वायु, मरुद्गण, मरुत् अनेक हैं अतः नित्य बहुवचनान्त में इसका प्रयोग होता है । (५) निरुक्त में मरुतों को मध्यम स्थायी देवगणों में प्रथम स्थान दिया गया है । (तेषां मरुतः प्रथम गामिनो भवन्ति) । भेद द्वारा वायु ही मरुत् नाम से बहुवचन के भागी होते हैं (वायुरेव हि भेदेन अपेक्ष्यमाणः मरुदभि-धानो बहुवचनभाक् भवति) ।
मरुतों की संख्या ४९ है
(शुक्रज्योतिश्च चित्र ज्योतिश्च इत्येवमाद्यः सप्तसप्तका (४९) देवगणाः मारुतेषु गणेषु सप्त कपालेषु अग्नौ पुराणे च एत एव प्रसिद्धाः) ।
मध्यमा वाक् स्त्रियः सर्वाः
पुमान् सर्वश्च मध्यमः
गणाश्च सर्वे मरुतो
गणभेदाः पृथक् कृतेः
ब्राह्मणो में वर्णों की उत्पत्ति बतलाते हुए लिखा हैं -
'सनैष व्यभवत् । स विशम सृजत । यान्येतानि देव जातानि गुणशः आख्यायन्ते वस्त्वो, रुद्राः आदित्या विश्वेदेवाः मरुत इति ।
(६) वैश्य । ये वैश्य मितरावी या मितभाषी होते हैं । व्यापार में सदा एक सत्य बात बोलते हैं, झूठ कभी नहीं कटते ।
मा (मानार्थक) + रु (शब्द करना) + क्विप् = मारुत् = मरुत् । मरुत् माप से प्रीति करने वाले हैं । अथवा, मा + रुच् + क्विप् = मरुत् ।
अथवा, महत् + द्रव् + क्विप् = मरुत् । ये बहुत चलते हैं । इसी से वैश्य की उत्पत्ति उरुओं से बतलाई गई है ।
स्वामी दयानन्द मरुत् का अर्थ मरणशील मनुष्य या वैश्य या वणिक् वर्ग मानते हैं ।

मरुतःइन्द्रः - (१) सबके जीवनाधार वायु का स्वामी परमेश्वर दया ।
'यं मे दुरिन्द्रो मरुतः'
सबके जीवनधार वायु को स्वामी परमेश्वर ने जिसे मुझे दिया है । - दया.
मरुतों तथा इन्द्र ने जो दान मुझे दिया है -सा.

मरुत्तमा - (१) समस्त शत्रु मारक वीर भटों में और विद्वानों में सर्व श्रेष्ठ (२) द्वि.व. । मुख्य प्राण और अपान
'इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा'
ऋ. १.१८२.२

मरुत्वत् शिशुः - (१) सात मरुतों से युक्त, सात शिरोगत प्राणों से युक्त इस शरीर में शयन करने वाला शिशु नाम आत्मा
'सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते'
ऋ. १०.१३.५; अ. ७.५७.२
पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूः
अपां शिशुः मातृतमास्वन्नः
'सुदेवो असि वरुण यस्य,
ते सप्त सिन्धवः'
ऋ. ८.६९.१२; अ. २०.९२.९, मै.सं. ४.७.८,

१०४.११, नि. ५.२७

इन्द्रोऽस्मान् अरदद् वज्रबाहुः
अपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम्

ऋ. ३.३३.६

सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद् धृत्या मूर्छवत् । तमभ्यतपत्, तस्याभि तप्तस्य मुखं निरभिद्यत् मुखात् वाक्, वाचोऽ ग्निः । नासिके निरभिद्येताम् नासिकाभ्याम् प्राणः, प्राणाद् वायुः । अक्षिणी निरभिद्येताम् । अक्षीभ्यां चक्षुषी, चक्षुष आदित्यः । कर्णौ- र्निरभिद्येताम्-इत्यादि समस्त प्रकरणों में 'शिशु आत्मा 'और 'अपां शिशुः' का आध्यात्म वर्णन है ।

अपं वाव शिशुः योऽयं मध्यमः प्राणः (आत्मा) । तमेताः सप्त अक्षितयः उपतिष्ठते । पुनः-

अर्वाग्विलश्चमस ऊर्ध्वबुघ्नः
तास्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्
तस्यासत ऋषयः सप्ततीरे
वागष्टमी ब्रह्मणा संविदाना

मरुत्वती - (१) मनुष्य के व्यवहारों को सिद्ध करने वाला अपः (जल) - दया. (२) मनुष्यों में विद्यमान जीवों को तृप्त करने वाला अपः (जल)- ज.दे.श. (३) मनुष्य आदि प्रजाओं और वीर भटों से बनी (४) बलवान् मनुष्यों वाली

'सृजा मरुत्वतीरव
जीवधन्या इमा अपः '

ऋ. १.८०.४

'तं त्वा मरुत्वती परि '

ऋ. ७.३१.८

मनुष्यों के व्यवहारों को सिद्ध करने वाली और मनुष्यों में विद्यमान जीवों को तृप्त करने वाली जलधाराओं को आकाश से नीचे गिराता है ।

मरुत्वतीय उक्थ्य - (१) वायु के समान वीर भटों के नामक का सेना बल (२) राष्ट्रीय गान, (३) मरुत् सम्बन्धी उक्थ्य

'मरुत्वतीयमुक्थ्यमव्यथायै '

वाज.सं. १५.१२; तै.सं.४.४.२.२; मै.सं. २.८.९.; ११३.१६; सं. १७.८; श.ब्रा. ८.६.१.७.

मरुत्वती विश् - प्राणों से या 'मरुत् 'विद्वानों वीरों या वैश्य जनों से युक्त प्रजा

'उतोमरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः '

ऋ. ८.१३.२८

मरुत्वान् - मरुत् + वतुप = मरुत्वत् । (१) मरुतों या सैनिकों से युक्त इन्द्र । मरुत् का अर्थ वायु और मरणशील मनुष्य भी है ।

'मरुत्वां इन्द्र वृषभो रणाय
पिबा सोममनुष्वधं मदाय '

ऋ. ३.४७.१; वाज.सं. ७.३८

हे मरुतो या सैनिकों से युक्त वर्षा बरसाने वाला इन्द्र, तू रण तथा मद के लिए अन्न खाने के बाद सोम रस का पान कर ।

(२) मनुष्यों का साथी-दया. ।

मरुत्सुसचा - मरुतों के साथ रहने वाली -माध्यमिका वाक् -विद्युत् ।

आ यस्मिन् तस्थौ सुरणानि बिभ्रती
सचा मरुत्सु रोदसी

ऋ. ५.५६.९

जिस मेघ में जलों को धारण करती हुई (सुरणानि बिभ्रती), मरुतों के साथ रहने वाली (मरुत्सु सचा) रुद्र या वायु की पत्नी माध्यमिका देवी अर्थात् विद्युत् निवास करती है (आतस्थौ)

मरुतां पिता - (१) मनुष्यों, वीर पुरुषों, विद्वानों और वैश्यों तथा उत्तम शिष्यों का पालक,

(२) मरुतों का पिता रुद्र

'आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु '

ऋ. २.३३.१; ऐ.ब्रा. ३.३४.४; तै.ब्रा. २.८.६.९; आश्व.श्रौ. सू. ३.८.१

(३) वीर वायु के समान बलवान् आलस्य रहित पुरुषों या शिष्यों का रक्षक

'इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः '

ऋ. १.११४.६

मरुद्गण - (१) प्राण गण के साथ वर्तमान आत्मा (२) मरुत्

'हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः '

ऋ. ९.६६.२६; साम. २.६६.१

मरुन्नेत्रः - (१) वायु के समान तीव्र चढ़ाई करने वाले सेनापति के अधीन वीर पुरुष

'ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा '

वाज.सं. ९.३६; वाज.सं. (का.) ११.१.२; श.ब्रा.

५.२.४.६

मर्क - (१) समस्त अंगों में चेष्टा करने वाला प्राण वायु, (२) राष्ट्र में विशेष प्रेरणा देने वाला उत्तेजक पुरुष, (३) देह- निर्माण

'उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वा'

वाज.सं. ७.१६.

(२) समस्त जगत् को शोधन करने वाला

'सूरश्च मर्क उपरो बभूवान्'

ऋ. १०. २७.२०

मर्कट - वानर

'मनुष्यराजाय मर्कटः'

वाज.सं. २४.३०

मर्च - (१) बालों को काटना, साफ करना

'यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा'

अ. ८.२.१७, आश्व.गृ.सू. १.१७.१६, पा.गृ.सू. २.१.१९; आप मं. पा. २.१.७, हि.गृ.सू. १.९.१६

(२) पीड़ित करना

'उत वा यो नो मर्चयादनागसः'

ऋ. २.२३.७

(३) दुगना ।

मर्चयति - ठगता है, कहता है । मर्चा धातु ठगना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

'अरातीवा मर्चयति द्वयेन'

ऋ. १.१४७.४

'मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन'

ऋ. १.१४७.५

एक मनुष्य दूसरे को दोनों प्रकार के वचनों से कहता है ।

मर्ज - (१) मांजना, साफ करना

'अग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः'

ऋ. ७.३.५

(२) रहना, वर्तमान रहना । अंग्रेजी का merge धातु विलयन होने के अर्थ में है ।

मर्जयन्तः - मृरूज् (गत्यर्थक) के ण्यन्त लट् के शतृ प्रत्यय कर ' मर्जयत् ' बना है । ब.व. में रूप 'मर्जयन्तः' है । अर्थ- (१) रहते हुए । मर्ज + शतृ = मर्जयन्, मर्जयन् + जस् = मर्जयन्तः ।

'उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः'

ऋ. ७.३९.३; नि. १२.४३

जो विस्तृत अन्तरिक्ष में शुभ धन देने वाले देवता हैं ।

मर्ज्य - अभिषेचनीय, मर्जन या शुद्ध करने योग्य सोमरस

'एतं मृजन्ति मर्ज्यम्'

ऋ. ९.१५.७; ४६.६; साम २.६१८; शां.श्रौ.सू. ७.१५.७

मर्डिता - (१) सुख देने वाला

'मघवन्नस्ति मर्डिता'

ऋ. ८.६६.१३

न देवेषु विविदेमर्डितारम्'

ऋ। ४.१८.१३

(२) कृपालु

'न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डिता'

ऋ. १.८४.१९, साम. १.२४७,२.१०७३, वाज.सं. ६.३७, पंच.ब्रा. ८ .१.५; श.ब्रा. ३.९.४.२४; नि. १४.२८.

मर्त - मृ + यत् = मर्त्य = मर्त, अर्थ- (१) मनुष्य

'कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्'

ऋ. १.८४.८; अ. २०.६३.५; साम. २.६९३; नि. ५.१७

(२) गृहस्थ ।

'गाथान्यः सुरुचो यस्य देवाः
आश्रृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः'

ऋ. १.१९०.१

हिन्दी का 'मर्द' 'मर्त' का ही अपभ्रंश है ।

आधुनिक अर्थ - (१) मनुष्य, (२) मरणशील जीव, (३) पृथ्वी, मर्त्यलोक

(३) विद्यार्थी - दया.

मर्तभोजनम् - (१) मरणशील प्राणियों का भोजन

'आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः'

ऋ. ७.३८.२

(२) मनुष्यों को पालन करने और भोग करने योग्य ऐश्वर्य

'यो अर्यो मर्तभोजनम्
परादादाति दाशुषे'

ऋ. १.८१.६

(३) मनुष्यों का भोग्य पदार्थ

'रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनम्'

ऋ. १.११४.६

हे अमृत, हमारे लिए मनुष्यों के भोगने योग्य ऐश्वर्य प्रदान कर (मर्तभोजनम् रास्व) ।

मर्त्य - मृ + यत् = मर्त्य (त का आगम) । अर्थ

है- मरणशील मनुष्य ।

'या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्
कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः '

ऋ. १.१५५.२

जो इन्द्र और विष्णु मनुष्य या यजमान के लिए यज्ञ के फलस्वरूप (प्रति धीयमानम् इत्) भोजन या अन्न को (असनाम्) हवि पहुंचाने वाले अग्नि के द्वारा (अस्तु कृशानोः) प्रस्तुत करते हैं (उरुष्यथः) ।

पुनः -

चत्वारि श्रृंगा त्रयो अस्य पादाः
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य
त्रिधा ब्रद्धो वृषभो रोरवीति
महो देवो मर्त्यां आ विवेश '

ऋ. ४.५८.३;

अग्नि यज्ञात्मा है । अतः इस ऋचा में यहां की स्तुति होने पर भी अग्नि ही देवता माने गये हैं ।

(१) इस यज्ञ के ऋक् , यजुः, साम और अथर्वन् नामक चार श्रृंग हैं, यज्ञ के तीन सवन ही तीन पाद हैं, प्रायण और उदयन या ब्रह्मौदन और प्रवर्ग्य इनके दो सिर हैं, क्योंकि यज्ञ में इष्टि और सोम की ही प्रधानता रहती है, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, और जगती नामक सात छन्द ही इसके सात हाथ हैं । पुनः यज्ञ, मंत्र, ब्राह्मण और कल्प इन तीन बन्धनों से बन्धा हुआ है । यज्ञ से अनेक कल्प मिलते हैं । अतः यह फलों का वर्षिता या वृषभ है । यह सवन, क्रम से ऋक् , यजुः और साम के मन्त्रों की ध्वनि से सदा ध्वनि करता है । (रोरवीति) । इस प्रकार यज्ञात्मा महानुभाव देव ने ही (महो देवः) मनुष्यों में (मर्त्यान्) यज्ञ के लिए प्रवेश किया (आविवेश) -सा.

(२) कुमारिल कृत तन्त्र वार्तिक के अनुसार यह मन्त्र सूर्य की स्तुति है । चार श्रृंग दिन के चार भाग हैं, तीन पाद तीन ऋतु-शीत, ग्रीष्म और वर्षा । दो शीर्ष दोनों छः छः महीनों के अयन, सात हाथ सूर्य के सात घोड़े, त्रिधा बद्ध-प्रातः मध्याह्न और सायं सवन (तीनों सवन से सोम रस खींचा जाता है) । वृषभ वृष्टि का मूल कारण प्रर्वतक, रोरवीति मेघ का गर्जन और महादेव बड़े देवता सूर्य हैं ।

(३) सायण ने भी इसे सूर्य पक्ष में इस प्रकार लगाया है - चार श्रृंग हैं चारों दिशाएं । तीन पाद हैं तीन वेद, दो शीर्ष हैं रात और दिन । सात हाथ सात ऋतु वसन्तादि छः पृथक् पृथक् और सातवां साधारण । त्रिधा बद्ध पृथिवी आदि तीन स्थानों में अग्नि आदि रूप से स्थित । अथवा ग्रीष्म, वर्षा और शीत इन तीन कालों में बद्ध । वृषभ वृष्टि करने वाला , रोरवीति अर्थात् वर्षा द्वारा शब्द करता है । महादेव बड़ा देवता ।

'मर्त्यान् आविवेश' - अर्थात् नियन्ता ने आत्मा रूप से सभी जीवों में प्रवेश किया ।

(४) शाब्दिकों के मत से इस मन्त्र में शब्द रूप ब्रह्म का वर्णन है । जिसे पतञ्जलि ने महाभाष्य में बतलाया है (पस्पशाह्निक पृ.१२) ।

चार श्रृंग है चारों प्रकार के शब्द - नाम, आख्यात् , उपसर्ग और निपात । उद्योत के मत से चार श्रृंग हैं- परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी । तीन पाद तीनों काल हैं - भूत, भविष्य और वर्तमान । दो शीर्ष दो तरह के शब्द नित्य और अनित्य अर्थात् व्यङ्ग्य और व्यञ्जक (प्रदीप) । सात हाथ हैं सात विभक्तियाँ त्रिधाबद्ध हृदय, कण्ठ और मूर्धा-इन तीनों स्थानों मे बद्ध वृषभ वर्षण करने वाला । महादेव-शब्दब्रह्म, मर्त्यान् आविवेश-मनुष्यों में प्रवेश किया ।

मर्त्यकृत - (१) मनुष्यों के प्रति किया गया अपमान रूपी पाप -सा.

(२) शरीरों के किए जाने वाला कायिक पाप-दया. । मर्त्य का अर्थ यहां शरीर माना गया है ।

'अव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम् '

वाज.सं. ३.४८.

यज्ञ के ऋत्विज् आदि से यज्ञ दर्शन के निमित्त आए मनुष्यों के प्रति अपमानादि रूपी पाप को... सा.

शरीरों से किए कायिक पाप को - दया .

मर्त्यत्व - मनुष्योचित

विश्वा हि मर्त्यत्वना
अनुकामा शतक्रतो '

ऋ. ८.९२.१३

मर्त्यत्रा – (१) मनुष्यों के बीच में

'विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा'

ऋ. १.१६९.२

'उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते'

ऋ. १.१२३.३

मर्त्येनसयोनिः – मरणशील अनित्य देह के साथ रहने वाला जीव

'अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः'

ऋ. १.१६४.३०, ३८.अ. ९.१०.८, १६, ऐ. आ. २.१.८.१२; नि. १४.२३.

मर्त्येक्ति – मनुष्यों से विजयेच्छा करने वाला

'युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित'

ऋ.१.३९.८

मर्ध – नाश करना, हिंसा करना

'नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति'

ऋ. ७.५९.४

मर्म – (१) रहस्य, (२) मर्मस्थान

'देवावै वृत्रस्य मर्मनाविदन्'

(देवताओं ने वृत्र का रहस्य नहीं समझा) ।

मर्माविधम् – मर्मविद्ध सैनिक

'मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु'

अ. ११.१०.२६

मर्मृज्यमाना – (१) अच्छी प्रकार आभूषण धारण करती हुई (२) रजोधर्म के बाद स्नानादि से शुद्ध स्त्री

'मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः'

ऋ. २.३५.४; तै.सं. २.५.१२.२; मै.सं. ४.१२.४: १८८.५

मर्मृजेन्य – (१) सजाने योग्य, अलंकारों से भूषित, करने योग्य

'मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः'

ऋ. १.१८९.७

(२) सब पदार्थों को स्वच्छा करने वाला –अग्नि

(३) व्यवहारों द्वारा विवेकशील

(४) दुष्टों से राज्य को कण्टक शून्य करने वाला

'मर्मृजेन्य श्रवस्यः स वाजी'

ऋ. १.१८९.७

मर्यः – मृ (मरना) + यत् = मर्य

'मर्यो मनुष्यो मरणधर्मा'

अर्थ – (१) मनुष्य, (२) पिता या भाई ।

'मर्यायेव कन्या शश्वचै ते'

ऋ. ३.३३.१०; नि. २.२७

जैसे कुमारी पिता या भाई के लिए झुक जाती है ।

मर्या – (१) मर्यादा । 'मर्यादा' के 'दा' का लोप कर 'मर्या' रह गया है ।

'मर्यादाभिधानं वास्यात्'

(२) वह मनुष्य जिसकी विवाहिता स्त्री जीवित हो ।

मर्यैः आदीयते (मनुष्यों द्वारा अपना पराया का प्रविभाग करने के निमित्त जिसका ग्रहण किया जाय वहीं 'मर्यादा' है) । 'दा' का लोप कर मर्या शब्द रह गया है । मर्या का सीमा अर्थ में आज भी प्रयोग है ।

'को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत'

ऋ. ८.४५.३७; तै.आ. १.३.१; नि. ४.२.

यह कौन सी मर्यादा है कि अहिंसित सखा सखा से बोले या छेड़े ।

मर्यश्री – (१) मनुष्यों के लिए श्री अर्थात् शोभा या लक्ष्मी उत्पन्न करने वाला अग्नि (२) मनुष्य के समान कान्ति वाला, (३) मनुष्यों से सेवनीय, (४) साधारण मनुष्यों से आश्रय करने योग्य

'मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निः'

ऋ. २.१०.५; वाज.सं. ११.२४; तै.सं. ४.१.२.५; ५.१.३.३; मै.सं . २.७.२; ७६.६ का.सं. १६.२; श.ब्रा. ६.३.३.२०

(४) मनुष्यों के बीच विशेष शोभा वान् ।

मर्यादा – मर्य + आङ् + दा + अङ् = मर्याद् । मर्याद् + टाप् = मर्यादा

मर्यैः मनुष्यैः आदीयते गृह्यते स्वपर विषयं प्रविभागार्थम् । (जिसका स्वकीय और परकीय विषयों के प्रविभाग के लिए मनुष्यों के द्वारा ग्रहण किया जाय वह मर्यादा है) ।

(२) मर्यादिनः विभागः मर्यादा (दो मर्याओं का विभाग मर्यादा है) ।

मर्या का अर्थ वह अलग किया हुआ भू भाग है जिसमें किसी की स्वत्ता स्थापित है और जिससे अधिक भूमि पर उसका अधिकार नहीं है ।

(३) संश्रितायाः भूमे आदेः प्रविभागकारिणी या

भूमिः सा मर्यादा (संश्रित भूमि तथा आदि को विभक्त करने वाली भूमि का नाम मर्यादा है)।
'मर्याच आदिश्च मर्यादः'
यह रूढ़ि संज्ञा है
(४) अमरकोश में 'मर्यादाधारणास्थितिः' ऐसा कहा गया है।
(४) सीमा बोधक एक अव्यय। उस सीमा पर जो कुछ भी विभाग को सूचित करने के लिए चिह्न रूप में रखा जाय वह मर्यादा है।
मर्या सीमार्थेऽव्ययः तत्र दीयते या (सा मर्यादा। मर्या + दा + अङ् = मर्याद; मर्याद् + टाप् = मर्यादा।
'विषीव्यति देशौ इति सीमा' (जो देशों को विभक्त करे वह सीमा या मर्यादा है)।
मर्या + आदि + क = मर्याद। अपनी भूमि का अन्त मर्या है और दूसरे की भूमि का प्रारम्भ आदि है। अतः दोनों भूमियों की सीमा ही 'मर्यादा' है।
(६) न्याय अन्याय की व्यवस्था का निर्णय
'मर्यादायै प्रश्न विवाकम्'
वाज.सं. ३०.१०, तै.ब्रा. ३.४.१.६

मलग – धोबी
'ग्रावा शुम्भाति मलग इव वस्त्रा'
अ. १२.३.२१

मल्वः – (१) मलिन हृदय वाला, दुष्ट चित्त वाला
'मल्वो यो मह्यं क्रुध्यति'
अ. ४.३६.१०
(२) तुच्छ पदार्थ, मलवा
'मल्यं बिभ्रती गुरुभृत्'
अ. १२.१.४८
'अन्नं यो ब्रह्मणां मल्वः'
अ. ५.१८.७

मलिम्लुक् – (१) मलिन स्वभाव। चोर,
'मलिम्लुचं पलीजकम्'
अ. ८.६.२
(२) मार पीट का दूसरे का धन हरण करने वाला दुष्ट पुरुष
'मलिम्लुचाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.३०, मै.सं. ३.१२.११: १६३.१७; का.सं. ३५.१०; आप. श्रौ.सू. १४.२५.११

मलिम्लुः – (१) मलिन कार्य वाला दुष्ट, (२) हत्या करने वाला
'द्रंष्टाभ्यां मलिम्लून्'
वाज.सं. ११.७८
(३) चोर, डाकू
'यो मलिम्लुरुपायति'
अ. १९.४९.१०

मशक – (१) छोटा छोटा मच्छड़
'चक्षुषे मशकान्'
वाज.सं. २४.२९; मै.सं. ३.१४.८; १७४.१.

मशकजम्भनी – मच्छड़ आदि विषैले कीटों का नाश करने वाली
'अथो मशकजम्भनी'
अ. ७.५६.२

मशर्शारः – (१) यो मशान् दुष्टान् शब्दान् हिनस्ति दुष्टों का नाश करने वाला राजा)
(२) अज्ञान- नाशक आत्मा

मष्मष – (धा.) विनष्ट करना
'सर्वान् निमष्मषाकरम्'
अ. ५.२३.८

मस्मस (धा.) – पीस डालना, मसल डालना
'सर्वं तं मस्मसा कुरु'
वाज.सं. ११.८०; तै.सं. ४.१.१०.३; श.ब्रा. ६.६.३.१०.

मंस – (१) प्रहार करना, (२) उद्योग करना
'वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः'
ऋ. ७.३४.३

मस्तिष्क – (१) मस्तक में स्थित भूरे रंग का भाग, मस्तिष्क
अशनिं मस्तिष्केन
ऋ. १०.१६३.१
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्कात्
ऋ. १०.१३६.१

मंसीमहि – हम प्रार्थना करते हैं।
'मंसीमहि त्वा वयम्
अस्माकं देव पूषन्'
ऋ. १०.२६.४

मंसीय – मन्ये, जाने (मानता हूं, जानता हूँ)। लट् के अर्थ में लिङ् का प्रयोग।

मसूर – मसूरी नामक अन्न
'गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे'
वाज.सं. १८.१२; तै.सं. ४.७.४.२; मै.सं. २.११.४:

१४२.४; का. सं. १८.९.

मह् - (१) महान्।

'*महो व्रजान् गोमतो देव एषः*'

ऋ. ६.७३.३, अ. २०.९०.३; का. सं. ४.१६; ४०.११, तै.ब्रा. २.८ .२.८; आप.श्रौ.सू. १७.२१.७.

'*महे यत्त्वा पुरूरवो रणाय*
अवर्धयन् दस्युहत्याय देवाः'

ऋ. १०.९५.७, नि. १०.४७.

हे पुरुरवा, तुझे देवों ने महान् युद्ध के लिए तथा मेघ वध के लिए जो बढ़ाया इस लिए तेरे पास आकर नदियां या देवस्त्रियाँ तुझे बढाती हैं।

(२) महस् का अर्थ 'महतः' (महान् का) किया गया है। यह मह् के ङस् का रूप है।

'*त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति*
इतीदं विश्वं भुवनं समेति
यमस्य माता पर्युह्यमाणा
महो जाया विवस्वतो ननाश'

ऋ. १०.१७.१; नि. १२.११.

विश्वकर्मा (त्वष्टा) अपनी दुहिता सरण्यू का विवाह करते हैं (दुहित्रे वहतुं कृणोति)। इस हेतु से (इति) यह समस्त भूतजात दर्शनार्थ एकत्र है (विश्वं भुवनं समेति)। तब (अथ) यम की माता सरण्यू (यमस्य माता) यम और यमी को उत्पन्न कर (पर्युह्यमाना) महान् विवस्वान देव की (महः विवस्वतः) स्त्री वह सरण्यू (जाया) उन अपत्यों को विवस्वान् को समर्पित कर स्वयं अश्व का रूप धारण कर अन्तर्ध्यान हो गई (ननाश) और उत्तरकुरु प्रदेशों में चली गई। नैरुक्त पक्ष में अर्थ - उषा के तमोभाग का मध्यम देव त्वष्टा दूर देश में भेजी प्रकाश रूपिणी दुहिता का विवाह विवस्वान् अर्थात् आदित्य से हो रहा है। इस हेतु प्रभात हुआ जानकर सभी जीव अपने अपने कर्तव्य कर्म में लग जाते हैं। मध्यम देव यमलोक की माता या द्युलोक की जो ही माता है वही स्त्री है। क्योंकि पति ही स्त्री में पुत्र रूप से प्रविष्ट हो उत्पन्न होता है। वह उषा की तपरूपिणी जाया महान् आदित्य का प्रकाश पाते ही हटायी जाकर मानों विलीन हो जाती है।

(३) देने वाला। मह् + क्विप् = मह्

'*प्र वो महे मन्दमानायान्धसः*'

ऋ. १०.५०.१; वाज.स. ३३.२३; ऐ.आ. १.५.२.१; ५.३.१; नि. ११.९

तुम महान् उत्पन्न को देने वाले मोदयुक्त इन्द्र की या परमेश्वर की स्तुति करो।

मह - वि.। (१) महान्। मह् + अच् = मह्।

'*तोदस्येव शरण आ महस्य*'

ऋ. १.१५०.१; साम. १.९७; नि. ५.७

हे अग्ने, जैसे महान् भूखण्ड के बिल में चारों और से जल आकर भी बिल को नहीं भरता उसी प्रकार अनेकों यजमानों के हवियों से भी तू नहीं ऊबता।

'*महो अर्णः सरावती*
प्राचेतयति केतुना'

ऋ. १.३.१२; वाज.स. २०.८६; नि. ११.२७.

(२) तेज या प्रकाश -सा.

'*महः क्षोणस्याश्विना कण्ठाय*'

ऋ. १.११७.८; नि. ६.६

हे अश्विनी कुमारो, तुमने क्षीण दृष्टि से एक ही स्थान पर रहने वाले कण्व को तेज या प्रकाश दिया। -सा. (३) उदक। मह इति उदकनाम,।

महत् अक्षरम् - (१) बड़ा भारी अविनाशी सामर्थ्य, (२) बड़ा भारी अविनश्वर ब्रह्म का ज्ञान

महद् वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः

ऋ. ३.५५.१

महस्,महः - (न.) (१) यश, कीर्त्ति, (२) महत्वपूर्ण कार्य, (३) आनन्द , प्रसन्नता

'*वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने*'

ऋ. १०.४३.७, अ. २०.१७.७.

'*महसे वीणा वादम्*'

वाज.सं. ३०.१९

महत्काण्ड - बडे बड़े काण्ड वाला सूक्त

'*महत्काण्डाय स्वाहा*'

अ. १९.२३.१८

मंह - (धा.)। अर्थ - देना

'*सहस्रेणेव मंहते*'

ऋ. ८.५०.१; अ. २०.५१.३

मंहति - ददाति (देता है)। मंह धातु दानार्थक है

मंहनेष्ठः - मँहन + स्थः (पूज्य पद पर विराजने वाला)

'क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठाः'
ऋ. १०.६१.१; कौ.ब्रा. २३.८

मंहमान – (१) तमो नाशक परमेश्वर
(२) देने वाला इन्द्र परमेश्वर
'अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे'
ऋ. ८.२४.२२; अ. २०.६६.१.

महद्देवाः – (१) महान् परिमाण वाले देवता – सा.
(२) महान् विद्वान् –दया.
'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यः'
ऋ. १.२७.१३; ऐ.ब्रा. ७.१६.८; आश्व.श्रौ.सू. १.४.९; शां.श्रौ .सू.१५.२२; आप.श्रौ.सू. २४.१३.३; नि. ३.२०.
यहां परिमाण भेद से तथा शक्ति और तेज के तारतम्य से देवों का भेद अभिप्रेत है ।

महन् – मह इति उदक नाम । मानेन अन्यान् जहाति इति शाकपूणिः (परिणाम से अन्यों को अति क्रमण करता है) ।
मंहनीयः = पूजनीयः भवति (महान् पूजनीय होता है) ।
अर्थ- (१) महत्व ।
'नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः'
ऋ. २.१२.१; अ. २०.३४.१; तै.सं. १.७.१३.२; मै.सं. ४.१२.३; १८६.५; का.सं. ८.१६; नि. १०.१०.
जो सैनिक बल या बल के महत्व से जाने जाते हैं, हे मनुष्यो, या असुरो, वही इन्द्र या परमात्मा है ।
(२) जल ।
'मह्ना जिनोषि महिनि'
ऋ. ५.८४.१; तै.सं. २.२.१२.२; मै.सं. ४.१२.२; १८१.२, का.सं. १०.१२, आप.मं.पा. २.१८.९; नि. ११.३७
हे जलवाली विद्युत् ! (महिनि) तू जल से (मह्वा) पृथ्वी को तृप्त करती है (जिनोषि) ।

महयत् – उपासना करने वाला
'शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे'
ऋ. ७.३२.१९, अ. २०.८२.२; साम. २.११४७; कौ.ब्रा. २२.४

महयाय्य – महान्
'त्वां देवा महयाय्याय वावृधुः';
ऋ. १०.१२३.७

महः अर्णः – (१) महान् समुद्र –सा. (२) महान् शब्द सागर –दया. ।
'महो अर्णः सरस्वती
प्र चेतयति केतुना
धियोविश्वा वि राजति'
ऋ. १.३.१२; वाज.सं. २०.८६, नि. ११.२७
माध्यमिका वाक् सरस्वती अपनी प्रज्ञा से महान् जल राशि बरसाती है या वेदवाणी कर्मयोगी तथा ज्ञान तथा योग से महान् शब्द सागर को बतलाती तथा संसार के समस्त यज्ञ सम्बन्धी या कर्म सम्बन्धी ज्ञानों को उत्पन्न करती है ।

मह्मन् – (१) सामर्थ्य
'येषां पुरुत्रा विजयस्य मह्मनि'
अ. १०.२.६

महस्पथ – (१) महान् मार्ग
'कदर्यम्णो महस्पथा
अति क्रामेम दूढ्यः'
ऋ. १.१०५.६
सूर्य के समान तेजस्वी, सब दुष्टों के नियन्ता, कठिनता से चिन्तनीय, बुद्धि के अगम्य परमेश्वर को किस महान् उपदेशमय मार्ग से प्राप्त करें ।

महस्वान् – (१) तेज से युक्त ।
'महस्वन्तं मत्सरं मादयाथः'
अ. ४.२५.६
(२) बड़ा भाग्यशाली आदर और अधिकार को प्राप्त
'महस्वन्तो मदा मासरेण'
वाज.सं. २१.४२.

महयमान – अलंकृत करता हुआ
'सधस्थानि महयमान ऊती'
ऋ. ३.२५.५

महा – महान्
'इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानम्'
ऋ. २.११.९

महाकुल – उत्तम कुल में उत्पन्न
'न निन्दिम चमसं यो महाकुलः'
ऋ. १.१६१.१

महागण – बड़े गणों में बढ़े गए सूक्त आदि ।
'महागणेभ्यः स्वाहा'
अ. १९.२२.१७

महागय – (१) अति स्तुति योग्य, (२) विशाल गृह वाला, (३) धनैश्वर्यवान् (४) बड़ी प्रज्ञावाला
'तमीमहे महागयम्'
ऋ. ९.६६.२०, साम. २.८६९, वाज.सं. २६.९, मै.सं. १.५.१; ६६. ११.
(४) महाप्राण, (६) महान् गृह के समान आश्रय

महाग्रामः – बड़ा जनसंघ
'महाग्रामो न यामन्नुत त्विषा'
ऋ. १०.७८.६

महादेव – (१) देव देव, महादेव
'स रुद्रः स महादेवः'
अ. १३.४.४.
(२) जाठर अग्नि ज्वाला से युक्त पित्त
'महादेवस्य यकृत्'
वाज.सं. ३९.९
(३) यज्ञात्मा महानुभाव अग्नि, (२) जल बरसाने वाला सूर्य, (३) शाब्दिकों के मत से शब्द ब्रह्म ही महादेव है ।
'महो देवो मर्त्यां आ विवेश'
ऋ. ४.५८.३; वाज.सं. १७.९१; मै.सं. १.६.२; ८७.१८, का.सं. ४०.७; गो.ब्रा. १.२.१६; तै.आ. १०.१०.२; नि. १३.७

महाधनः – (१) बहुत व्यय कराने वाला समर
'इन्द्रं वयं महाधने'
ऋ. १.७.५; अ. २०.७०.११; साम. १.१३०; तै.ब्रा. २.७.१३.१; शां.श्रौ.सू. ९.२६.३.
(२) महाधन आदि दिलाने वाला –संग्राम या कार्य
हम इन्द्र को महाधन देने वाले संग्राम में तथा छोटे कार्य में भी स्मरण करते हैं ।
'अस्माकं बोध्यविता महाधने'
ऋ. ६.४६.४; ७.३२.२५
'नास्य वर्ता न तरुता महाधने'
ऋ. १.४०.८
संग्राम में इस के सामने रहने वाला (वार्ता) और न इसे पराजित कर इससे बढ़ने वाला ही है (तरुता न) ।

महान्, महत् – (१) मानेन अन्यान् जहाति –शाकपूणिः । मह् (पूजार्थक) से महत् शब्द बना है । 'महत्' के प्रथमा ए.व. का रूप । मंहनीयः भवति इति महान् । शाकपूणि के मत से 'जो मान से औरों को पीछे छोड़ देता है वह महान् है' ।
'स तुर्वणिर्महां अरेणु पौंस्ये'
ऋ. १.५६.३; नि. ६.१४
वह क्षिप्रकारी या शत्रुवध के लिए शीघ्र संभजन करने वाला इन्द्र (तुर्वणि) पौरुष या संग्राम में (पौंस्ये) महान् है । –सा. ।
अथवा वह शीघ्र प्रदाता महात्मा तेजस्वी पुरुष (तुर्वणिः) अक्षीण यौवन में चमकता है ।– दया.

महान् आत्मा – (१) इन्द्र । इनके अनेक नाम हैं हंस, धर्म, यज्ञ, वेनः, भूमि, विभु, प्रभु, शम्भु, वधकर्मा, सोमभूतस्, भुवनम्, भविष्यत्, महत्, आपः, व्योम, यशः, मंह, स्वर्णीकम्, स्मृतीकम्, सतीनम्, गहनम्, गभीरम्, गह्वरम् कम्, अन्नम्, हविः, सद्म, सदनम्, ऋतम् योनिः, ऋतस्य योनिः, ख, सत्यम्, नीरम्, रयिः, सत्, पूर्णम्, सर्वम् अक्षितम्, बर्हिः, नाम, सर्पिः, आपः, पवित्रम अमृतम् । इन्द्रः, हयः, स्वः, सर्गाः । शम्बरम्, अम्बरम्, वियत् , व्योम, धन्वः, अन्तरिक्षम्, आकाशम्, अपः, पृथिवी भूः, स्वयम्भू, अध्वा, पुष्करम्, समुद्रः तपः, तेजः, सिन्धुः, अर्णवः, नाभिः, ऊधः, वृक्षः, तत्, यत्, विप्, ब्रह्म, वरेण्य, आत्मा

महानग्न – सर्वाङ्ग सुन्दर विद्वान्
'महानग्नी महानग्नम्'
अ. २०.१३६.११; शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.४.

महानग्नी – (१) सर्वाङ्ग सुन्दर स्त्री, (२) राजसभा
'महानग्न्युलूखलाम्'
अ. २०.१३६.६; शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.७

महानाम्नी – (१) महानाम्नी नामक वेदवाणी, (२) बड़ी यशस्विनी
'महानाम्न्यो रेवत्यः'
वाज.सं. २३.३५
(२) सामवेद का महानाम्नी नामक आर्चिक
'महानाम्नीर्महाव्रतम्'
ऋ. ११.७.६

महापद – बड़ा भारी राजपद
'अभीवृतेव ता महापादेन'
ऋ. १०.७३.२

महामनस् – (१) महान् स्तम्भन बल
(२) बड़ा ज्ञानवान् पुरुष

'केन महामनसा रीरमान'
ऋ. १.१६५.२; मै.सं. ४.११.३: १६८.९; का.सं. ९.१८.

महामुरु – दृढ़ मूलवाला
'त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुम्'
ऋ. १.५७.६. अ. २०.१५.६

महायम – महान् नियन्ता, महायम
'स उ एव महायमः'
अ. १३.४.५

महाय्य – पूज्य
'तं वो महो महाय्यमिन्द्रम्'
ऋ. ८.७०.८

महावटूरि – (१) वट् (वेष्टित् करना) + ऊरि = वटूरि। अर्थ– महावेष्टित – दया.
(२) अत्यन्त लपेटने या घेरने वाला शत्रुसेना बल (३) लपेटने वाला बड़ा हाथी के सूंड़ या पैर के समान शक्ति
(४) महारणयुक्त
'छिन्धि वटूरिणा पदा
महावटूरिणा पदा'
ऋ. १.१३३.२
लपेट लेने वाले हाथी के सूंड़ या पैर से भी बड़ी शक्ति से घेर कर छिन्न भिन्न कर।
हिन्दी का 'बटोरना' धातु 'बटूरि' से ही बना है।

महावध – (१) विशाल प्रमाण में मार काट
'विश्वं विभाय भुवनं महावधात्'
समस्त भुवन महावध से डर जाता है।
(२) पर्जन्य। 'महावधः यस्य स महावधः पर्जन्यः' (जिसका वध महान् है) – मेघ
(३) मेघ का अधिष्ठाता मध्यम देव वायु

महाव्रत – महत् वृहत् व्रतं यस्य स महाव्रतः (वहान् व्रत वाला महाव्रत का ही महिव्रत हुआ है)।

महाव्रतः – (१) महासैन्दयदला का स्वामी, (२) बड़े बड़े व्रतपालकों या लोक संघों का स्वामी
'महाव्रतस्तुति कूर्मिर्ऋघावान्'
ऋ. ३.३०.३

महावीर – अत्यन्त बलवान्।
महाबुध्न – बड़े मूल वाला
महाबुध्न इव पर्वतः
अ. १.४१.१

महावृष – (१) अधिक वर्षा का प्रदेश, (२) बलवान् पुरुष, (३) महावृषा नामक जनपद
'ओको अस्य महावृषाः'
अ. ५.२२.५

महावैलस्थ अर्मक – बड़े भारी गढ़ो से युक्त ऊंचे नीचे खड्डो से भरा, दुःखदायी स्थान,
'महावैलस्थे अर्मके'
ऋ. १.३३.३

महावैश्वदेव – महावैश्वदेव नामक यज्ञ
'ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे'
वाज.सं. १८.२०; तै.सं. ४.७.७.२; मै.सं. २.११.५: १४३.५; का. सं. १८.११.

महास्य – बड़े बड़े मुख वाला– रुद्रगण
'इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः'
अ. ११.२.३०

महासूक्त – वेद का बड़ासूक्त
'सूक्तेन महा नमसा विवासे'
ऋ. ६.५२.१७

महाहस्ती – बड़े हाथों वाला इन्द्र
'महाहस्ती दक्षिणेन'
ऋ. ८.८१.१

महि – महान्
'धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम्'
ऋ. ६.१९.१०
मुझे महान्, रमणीय एवं स्थूल धन हमें दे।

महि – मंह् + क्विप् = मह् – महिमहत्। अर्थ – महान्। महान यश।
'इन्द्रस्य यस्य सुमखं सहो महि'
ऋ. १०.५०.१; वाज.सं. ३३.२३; नि. ११.९

महिकेरु – कृ + उण् = केरु (इ का ए)। महयो महान्तः केरवः। शिल्प विद्या साधकाः येषां ते महिकेरवः। अर्थ–बड़े बड़े कार्यों को करने वाला विद्वान या शिल्पी
'महिकेरव ऊतये
प्रियमेधा अहूषत'
ऋ. १.४५.४
बड़े बड़े कार्यों को करने वाले विद्वान् एवं शिल्पी गण और सबको सन्तुष्ट करने वाली मनोहर बुद्धियों से युक्त पुरुष भी....स्वीकार करें,

महित्व – महान् सामर्थ्य

'ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा'
ऋ. १.१६४.२५; अ. ९.१०.३

महित्वनम् – महान् सामर्थ्य
'आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनम्'
ऋ. ५.५५.४

महित्वम् – मंह् + क्विप् = मह् = महि, महि + त्व = महित्व । अर्थ – माहात्म्य ।
'मूरा अमूरं न वयं चिकित्वः
महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से'
ऋ. १०.४.४; नि. ६.८.

महित्वा – (१) तृ ए. का रूप । महत्व से – सा. (२) महत्त्वों को । महित्व के द्वि. ब. व का रूप ।
'आविर्विश्वानि कृणुते महित्वा'
ऋ. ५.२.९; . ८.३.२४; तै..सं. १.२.१४.७; का.सं. २.१५
अग्नि समस्त लोकों के जीवों को अपने महत्व से प्रकट करता है । -सा.
तेजस्वी पुत्र अपने अनेक महत्वों को आविष्कृत करता है । – दया.

महिप्रिया – (१) बहुत अधिक प्रिय, सुख देने वाली तथा प्रजा एवं पति को तृप्त करने वाली स्त्री
'प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिया'
ऋ. १.१५१.४

महिन् – (उदक) इनि = महिन् । अर्थ है- उदकवान् (जल वाला) ।

महिनावान् – बड़े भारी बल सामर्थ्य का स्वामी- इन्द्र, परमेश्वर ।
'इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावान्'
ऋ. ३.३९.४

महिनी – (१) महती, (२) जलवाली विद्युत् का विशेषण
'प्र या भूमिं प्रवत्वति
मह्ना जिनोषि महिनी'
ऋ. ५.८४.१; तै.सं. २.२.१२.२; मै.सं. ४.१२.२: १८१.२; का.सं. १०.१२; आप.मं.पा. २.१८.९; नि. ११.३७.
हे जलवाली या महती विद्युत् (महिनी), नीचे पृथ्वी की ओर आने वाली (प्रवत्वति) तू जल से या महत्व से वर्षा द्वारा भूमि को तृप्त करती है (प्रजिनोषि) ।

महिमघः – (१) जिसे बहुत धन हो, (२) महान् एवं पूजनीय उत्तम धन अर्थात् श्रेष्ठ विधि से धन या विद्या का स्वामी पिता या गुरु
'अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः'
ऋ. १.१२०.८

महिमन् – (पु.) महिमा, महत्ता
'अभीशूनां महिमानं पनायत'
ऋ. ६.७५.६: वाज.सं. २९.४३; तै.सं. ४.६.६.२; मै.सं. ३.१६.३: १८६.४; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. ९.१६.
अश्वों की रश्मियों की महिमा गाओ या वर्णन करो ।

महिरत्न – (१) 'पूज्यैः गुणैः रमणीयः' दया. । (पूज्य गुणों से रमणीय) (२) भूमि रत्न के स्वामी, (३) बड़े रत्नों का स्वामी
'भगं न कारे महिरत्न धीमिहि'
ऋ. १.१४१.१०
हे महिरत्न, सब उत्तमकार्यों में (कार) ऐश्वर्य वत् सेवनीय एवं बल के कारण स्तुति योग्य हम तुझे ही जानें ।

महिव्रतः – (१) महान् व्रत वाला । महा. व्रत से ही महिव्रत बना है । अर्थ है- महाकार्य करने वाला ।
'अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम्'
ऋ. १.४५.३; नि. ३.१७

महिवृध् – (१) बड़े ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली
'प्र वो महे महिवृधे भरध्वम्'
ऋ. ७.३१.१०; अ. २०.७३.३; पंच.ब्रा. १२.१३.१९; आश्व.श्रौ.सू . ७.११.३४; शां.श्रौ.सू. १२.३.८; १८.१७.६.
(२) बड़ो को बढ़ाने वाला

महिश्रवः – बड़ा भारी श्रवण करने योग्य वेद का ज्ञानोपदेश
'अस्मे धेहि जातवेदो महिश्रवः'
ऋ. १.७९.४; साम. १.९९; २.९११; वाज.सं. १५.३५; तै.सं. ४.४.४. ५; मै.सं. २.१३.८: १५७.१०; का.सं. ३९.१५.
हे समस्त धर्मों को जानने वाले परमेश्वर, तू हमें बड़ा भारी श्रवण करने योग्य वेद या ज्ञानोपदेश प्रदान कर ।

महिषः – (१) महान् शक्तिमान् (२) सर्वव्यापक

'अपामुपस्थे महिषो ववर्द्ध'
ऋ. १०.८.१; अ. १८.३.६५; साम. १.७१; तै.आ. ६.३.१
(३) पृथ्वी को प्रकाश देने और उसका रस लोने वाला महान् सूर्य
'त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मः'
ऋ. २.२२.१; अ. २०.९५.१; साम. १.४५७; २.८३६; कौ.ब्रा. २७.२ ; शां.श्रौ.सू. १५.२.१; तै.ब्रा. २.५.८.९
(४) मंह् (पूजार्थक) + इषन् = महिष । अर्थ है-पूजनीय, महान् (५) माध्यमिक देव गण वायु आदि (६) मरुद्गण ।
'अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत'
ऋ. ६.८.४; नि. ६.२६; कौ.ब्रा. २१.३,
अन्तरिक्ष में मरुद्गण ने अग्नि को पकड़ा ।
(७) बड़ा यज्ञ - सा. ।
'शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनम्'
ऋ. ८.७७.१०; मै.सं. ३.८.३; ९५.१४.
सैकड़ों बड़े बड़े यज्ञों एवं चरु आदि से सिद्ध ओदन को इन्द्र ने दिया - सा. । सैकड़ो प्रशस्त पदार्थों एवं दूध में पकाए चावल को इन्द्र ने दिया ।
(८) महान् असुर ।
'यो जनान् महिषाँ इव
अतितस्थौ पवीरवान्'
ऋ. १०.६०.३
जो इन्द्र अति महान् असुरों को भी (महिषान् इव) युद्ध से हारकर (युधा अति) ठहरे हुए हैं (तस्थौ) (९) भैंस ।

मंहिष्ठ - (१) महान्
'मंहिष्ठो मत्सदन्धसः'
ऋ. ४.३१.२; अ. २०.१२४.२; साम. २.३३; वाज.सं. २७.४०; ३६.५; मै.सं. २.१३.९: १५९.६; ४.९.२७: १३९.१३; का.सं. ३९.१२; तै.आ. ४.४२.३; आप.श्रौ.सू. १७.७.८.
'प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये'
ऋ. १.५७.१; अ. २०.१५.१; कौ.ब्रा. ३०.९; गौ.ब्रा. २.४.१६; वै.सू. २५.७.
(३) मंह + इष्ठ = महिष्ठ । प्रशस्यतम, प्रपूजित, ।

मंहिष्ठरातिः - अति उत्तमदानशील
'इन्द्रं तमह्वे स्वयस्यया धिया
मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः'
ऋ. १.५२.३

महिष्वणिः - महि + स्वन् + इ = महिष्वणि । अर्थ -घोर शब्द कारी मेघ
'यज्ञं महिष्वणीनाम्'
ऋ. ८.४६.१८

महिष्वान् - उत्तम परिणाम जनक
'न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम्'
ऋ. ७.६८.५

महिषाविशः - बड़े भारी ऐश्वर्यों को देने वाली प्रजाएं
'अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत
विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम्'
ऋ. ६.८.४; नि. ७.२६.

मही - इयमेव मही । इयं वा अदितिर्मही- पृथिवी नाम । वाङ् नाम गो नाम च ।
अर्थ- (१) पृथिवी, (२) वाक्, (३) गो, (४) सामवेद, (४) उत्तम दान आदि देने वाली, (५) वृद्धा, (६) पूज्य शिक्षक- समिति (७) महती सेना,
'अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनाम्'
ऋ. ३.१.१२; नि. ६.१७
(८) स्थान ।
'परेयिवांसं प्रवतो महीरनु'
ऋ. १०.१४.१; अ. १८.१.४९; मै.सं. ४.१४.१६: २४३.६; तै.आ. ६. १.१; आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२२; नि. १०.२०
अपने अपने कर्मानुसार प्रकृष्ट कर्म करने वालों को स्वर्गादि स्थान पहुंचाने वाले वैवस्वत यम को
(९) महती ।
कब इन्द्र के बल महान् और अदृष्ट हैं । (१०) पृथ्वी का एक विशेषण ।
बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्'
ऋ. १.१६४.३३; अ. ९.१०.१२; नि. ४.२१.
बन्धुरूपिणी यह बड़ी पृथ्वी मेरी माता है ।
(११) अन्तरिक्ष ।
'महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र'
ऋ. ८.९०.६; साम. २.७६२; नि. ५.२२.
हे इन्द्र, अन्तरिक्ष रूपी तेरा गृह (ते मही शरणा) यश के समान (कृत्तिःइव) विस्तृत है ।

महोजाया - बड़ी भारी उत्पादक शक्ति-प्रकृति
'महोजाया विवस्वतो ननाश'
ऋ. १०.१७.१; अ. १८.१.५३, नि. ९२.११.

महीधमनि - बड़ी से बड़ी धमनी आदि नाड़ी
'तिष्ठादिद्धमनिर्मही'
अ। १.१७.२

महीयुः - (१) मान सत्कार आदर की आकांक्षा करती हुई
'महामिन्दुं महीयुवः'
ऋ. ९.६५.१; साम. २.२५४
(३) महत्वयुक्त प्रजा चाहने वाला
'विपामग्रे महीयुवः'
ऋ. ९.९९.१; साम. १.५५१

महीलुका - पृथ्वी आदि लोगों को प्रजा रूप से धारण करने वाली वशा- परमात्मा शक्ति
'स्वधाप्राणा महीलुका'
अ. १०.१०.६

महेनदी - (१) महानदी के समान बड़ा भारी शब्द करने वाली (२) परुष्णी नदी का विशेषण
'सत्यमित् त्वा महेनदि'
ऋ. ८.७४.१५

महेन्द्र - महा + इन्द्र । (१) महान् ऐश्वर्यवान् प्रकाश (२) इन्द्र, परमेश्वर
'महेन्द्र एत्यावृतः'
अ. १३.४.२-७,९

महेमतिः - (१) बड़े भारी राष्ट्र को संचालन करने या बड़ा फल प्राप्त करने के लिए बड़ी भारी मति बुद्धि या संकल्प वाला
'तूतुजानो महेमते
अश्वेभिः प्रषितप्सुभिः'
ऋ. ८.१३.११
(२) महायति
'आ नो याहि महेमते'
ऋ. ८.३४.७

महोन्माना - बड़े विशाल परिमाण में फैली हुई ।
'या महती महोन्माना'
अ. ५.७.९

मा - (१) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ
'त्री यच्छता महिषाणामघो माः'
ऋ. ५.२९.८
(२) ज्ञान कराने वाली प्रज्ञा
'मा छन्दः प्रभा छन्दः'
वाज.सं. १४.१८; तै.सं. ४.३.७.१; मै.सं. २.८.३: १०८.१२; २.१३.१४: १६३.८; ३.२.९: ३०.३; श.ब्रा. ८.३.३.५.
(३) माम् (मुझे) 'अस्मद्' शब्द के द्वि.ए.व. का रूप
(४) (अ.) नहीं, निषेधात्मक शब्द ।
'मा मे दभ्राणि मन्यथाः'
ऋ. १.१२६.७; नि. ३.२०
हे पतिदेव, मेरे छोटे छोटे रोओं को मत देख (दभ्राणि मा मन्यथाः) सा.
हे पतिदेव, मेरे सामर्थ्यों को कम न समझ - दया.
(४) लुङ् में मा के साथ अट् का लोप होता है । जैसे मा कार्षीः मा हार्षीः ।
'या चिदन्यद् वि शंसत
सखायो मा रिषण्यत
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते
मुहुरुक्था च शंसत'
ऋ. ८.१.१; . २०.८५.१; साम. १.२४२: २.७१०
ऐ मित्र स्त्रोताओ, इन्द्र के स्तोत्र के सिवा और किसी स्तोत्र का उच्चारण न करो, अन्य की स्तुति से अपनी हिंसा न कर । सोम रस प्रस्तुत होने पर वर्षिता इन्द्र की ही स्तुति कर (सुते इन्द्रमित् स्तोता) । सभी स्तोता एवं होता एकत्र हो (सचा) इन्द्र की ऋचाएं बार बार कह (उक्थाः मुहुः शंसत) ।
पुनः -
'देवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत
विश्वे देवास इह वीरयध्वम्
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिः
मा रधाम द्विषते सोम राजन्'
ऋ. १०.१२८.५
ऐ षट्संख्यक उर्वी नाम्नी देवियो, (द्यौः, पृथिवी, अहः, रात्रि, अप और ओषधियाँ) आप से हम धन आदि जो भी जांचे उसे आप हमारे लिए विस्तीर्ण करें । हे विश्व देवो, आप भी हमारे अंग बनकर इस धनादि दान में पराक्रम दिखावें (इह वीरवध्वम्) । या हमें वीर पुत्र देवें और पुत्रादि रूपी प्रजा से परित्यक्त न होवें (प्रजा या मा हास्महि) और न शरीर से वियुक्त

होवें (या तनुभिः) । हे राजन् सोम, हम शत्रुओं के वश में न जावें (मा रधाम द्विषते सोम राजन्) ।

माकिः – कभी नहीं

'अग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत्'

ऋ. ४.४.३; वाज. सं १३.११; तै. सं. १.२.१४.२; मै.सं. २.७.१५; ९७.१२; का. सं. १६.१५

माकी – द्वि.व. । उत्पन्न करने वाले

'माकी रणस्य नप्त्या'

ऋ. ८.२.४२

माकीना – मेरी

'पूषन् माकीनया धिया'

ऋ. ८.२७.८

माकीम् – (अ.) कभी नहीं, नहीं, मत, निषेधात्मक अव्यय

'माकीं ब्रह्मद्विषो वनः'

ऋ. ८.४५.२३; अ. २०.२२.२; साम. २.८२.

मागध – (१) स्तुतिपाठक ।

'श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधः'

अ. १५.२.५

(२) मगधदेश का वासी,

(३) गवैया

'अतिक्रुष्टाय मागधम्'

वाज.सं. ३०.५; तै.ब्रा. ३.४.१.१.

माघोन– (१) धनवान् पुरुष का इन्द्र या प्रभु का दान

'आविरभून्महि माघोनमेषाम्'

ऋ. १०.१०७.१,

(२) धन का स्वामी बनाने वाला

'यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम'

ऋ. ८.५४.५

माण्डूक– ऋग्वेद के आठ स्थानों में एक ।

मात् – मास्, महीना

'माद्भिः शरद्भिः दुरो वरन्तवः'

ऋ. २.२४.५

मातरः– (१) मातापिता लोग

'यदी मातरो जनयन्त वह्निम्'

ऋ. ३. ३१.२

यद्यपि मातापिता लोग पुत्र पुत्री दोनों को ही पुत्र रूप से या सन्तान रूप से उत्पन्न करते हैं ।

मातरा – (१) निर्माण करने वाले मातापिता (२) गुरु और गुरु पत्नी (३) माता पिता

'प्र मातरा रास्पिनस्यायोः'

ऋ. १.१२२.४

परमात्मा स्तुति में या सुख रस के सदा पान करने वाले पुत्र या शिल्प को (रास्पिनस्य) आयोः) निर्माण करने वाले माता पिता या गुरु और गुरु पत्नी......

'क्षोणी शिशुं न मातरा'

ऋ. ८.९९.६; अ. २०.१०५.२; साम. २.९८८; वाज.सं. ३३.६७.

मातरा गावौ – प्रसूता दो गाएं । विपाशा और शुतुद्रि नदियों की उपमा रूप में प्रयुक्त ।

'गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे'

ऋ. ३.३३.१; नि. ९.३९

विपाशा और शुतुद्रि नदियाँ पतिते जल पूर्ण हो इस प्रकार बहती हैं जैसे प्रसूता गाएं अपने बछड़े को चाटने के लिए दौड़ती हैं ।

मातरिभ्वरि – अपने निर्माता प्रभु के आश्रय में रहकर अपने को प्रकट करने वाली जगत् की महान् शक्तियाँ

'स्वसारो मातरिभ्वरी ररिप्राः'

ऋ. १०.१२०.९; अ. २०.१०७.१२.

(२) माता, जगन्निर्माता में गति करने वाली चितिशक्ति और मनन शक्ति

मातरिश्वनः प्रथमः – अन्तरिक्ष में रहने वाले गतिशील वायु से भी प्रथम विद्यमान सूक्ष्म अग्नि

'त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वनः'

ऋ. १.३१.३

मातरिश्वा, मातरिश्वन् – (१) मातरिश्वसिति गच्छति इति मातरिश्वा । अर्थ–वायु । वायु अन्तरिक्ष में चलता है या श्वास लेता है । अथवा – 'मातरि आशु अनिति गच्छति इति मातरिश्वा' । मातरि + शु + अन् = मातरिश्वन् । शु और आशु शब्द समानार्थक है ।

'यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यो वसते मातरिश्वः'

ऋ. १०.८८.१९

हे मातरिश्वा, जितनी ही रात्रियाँ उषा का

प्रतीक आच्छादित करती हैं या जितनी ही उषाएं रात्रियों से देखी जाती है।

मातरौ - मातापिता
मातृशब्द कोषः छान्दसः
'गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे'
ऋ. ३.३३.१; नि. ९.३९

मातलिः - (१) ज्ञान का संग्रह करने वाला जीव (२) इन्द्र का सारथि
'यन्मातली रथक्रीतम्'
अ. ११.६.२३; कौ.सू. ५८.२५

मातली - (१) इन्द्र, जीव,
'मायाया मातली परि'
अ. ८.९.५
(२) ज्ञानों को प्राप्त कराने वाला
'मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिः'
ऋ. १०.२४.३ अ. १८.१.४७; तै.सं. २.६.१२.५ मै.सं. ४.१४.६: २४३.४; ऐ.ब्रा. ३.३७.११; आश्व.श्रौ.सू. ५.२०.६.

मातवै- मा + तवै। अर्थ (१) सर्व लोक के ज्ञान के लिए -यास्क (२) निश्चय दिलाने के लिए -दया.
'मूर्धानं हिङ्ङ्कृणोन्मातवा उ'
ऋ. १.१६४.२८; अ. ९.१०.६; नि. ११.४२
माध्यमिका वाक् गौ निश्चय दिलाने की लिए भूलोक के पृष्ठरूपी मूर्धा को सूंघती है। दया.
(३) मापने के लिए

माता - (१) माता, (२) सर्वज्ञ, (३) सर्वविधाता ब्रह्म
'मातुर्मात्राधि निर्मिता'
अ. ८.९.५
मा + तृच्। माता, (५) निर्माण करने वाला जगन्नियन्ता परमेश्वर।
'कायमानो वना त्वं यन्मातृरजगन्नपः'
ऋ. ३.९.२; साम. १.५३; नि. ४.१४;
पुनः -
'यदी मातरो जनयन्त वह्निम्'
ऋ. ३.३१.२; नि. ३.६.
यदि ये माताएं, कुल बढ़ाने वाली सन्तति उत्पन्न करें।
(६) सूर्य प्रकाश का निर्माण करने वाली उषा।
'प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः'
ऋ. १.९२.१; साम. २.११०५; नि. १२.७
गमनस्वभावा, आरोचमाना सूर्यप्रकाश की निर्मात्री उषाएं सूर्य में ही लीन हो जाती हैं।
(७) माध्यमिका वाक् विद्युत् को भी माता कहा गया है क्योंकि वह जल का निर्माण करती है।
'तं माता रेढि स उ रेढि मातरम्'
ऋ. १०.११४.४; ऐ.आ. ३.१.६.१५; नि. १०.४६
उस वायु को माध्यमिका वाक् चाहती है (रेढि) और वह वायु भी माध्यमिका वाक् को चाहती है। अर्थात् वे एक दूसरे के आश्रय से जीते हैं।
(८) पृथ्वी, औषध्यादि निर्मात्री पृथिवी।
'बन्धुर्मेमाता पृथिवी महीयम्'
ऋ. १.१६४.३३; अ. ९.१०.१२; नि. ४. २१.
बन्धुरूपिणी यह बड़ी पृथिवी मेरी माता है।
(९) सन्तान उत्पन्न करने वाली माता - जननी
(१०) अन्तरिक्ष। 'मातान्तरिक्षं निर्मीयन्तेऽस्मिन् भूतानि' (अन्तरिक्ष माता है , क्योंकि इसी के सभी जीवों का निर्माण होता है)।
'एतत् हि अवकाश दानेन भूतानां विशिष्टमुपकारं करोति'
(अवकाश दान द्वारा उत्पन्न होने वाले जीवों को अन्तरिक्ष अत्यन्त उपकार करता है)। (११) सर्वभूत निर्मात्री अदिति

मात्या - मति से उत्पन्न होने वाली वाणी
'वाङ् मात्या'
वाज.सं. १३.५८

मात्रमापरः - समस्त जगत् को बनाने वाली प्रकृति से भी परे उत्कृष्ट विष्णु
'परो मात्रया तन्वा वृधानः'
ऋ. ७.९९.१

मात्रा- मीयते अनेन इति मात्रा (इससे मान किया जाता है अतः यह मात्रा है)। मा + ष्ट्रन् + टाप् = मात्रा। अर्थ - (१) परिणाम की इकाई, मान, प्रमाण।
'यत्रस्य मात्रां विमिमीत उ त्वः'
ऋ. १०.७१.११; नि. १.८
और एक उद्गाता (त्वः) यज्ञ में क्या क्या होना चाहिए तथा वेदी कैसी बनायी जाना चाहिए (यज्ञस्य मात्राम्) सम्पादित करता है

(विमिमीते)।
मात्रं त्ववधृतौ स्वार्थे
कात्स्न्र्ये मात्रा परिच्छदे
अक्षरावयवे द्रव्ये
मानेऽल्पे कर्ण भूषणे
काले वृन्ते च....-हैम'

(२) जगत् को निर्माण करने वाली सर्ग कारिणी शक्ति,
'प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः'
ऋ. ३.४६.३

(३) परम सूक्ष्म प्रकृति
'बृहती परिमात्रायाः'
अ. ८.९.५

(४) परिमाण, जीवन के सौ वर्ष की अवधि
'इमां मात्रां मिमीमहे'
अ. १८.२.३८; कौ.सू. ८५.३,१२

(५) निर्माण करने के लिए सूक्ष्म अवयव
'सं मात्राभिर्ममिरे ये मुरुर्वी'
ऋ. ३.३८.३

(६) मात्रा, परिमाण,
'गोस्तु मात्रा न विद्यते'
वाज.सं. २३.४८; आश्व.श्रौ.सू. १०.९.२; शां.श्रौ.सू. १६.५.२.

आधुनिक अर्थ - (१) मात्र - संज्ञाओं में जोड़ने के लिए एक प्रत्यय जिसका अर्थ परिमाण है। (२) मापजोख की एक इकाई, (३) किसी वस्तु का परिमाण, (४) ज्योंही, जब, निष्ठा प्रपयान्त क्रिया से मिला रहता है जैसे विद्धमात्र, (६) ठीक माप, (७) क्षण, (८) अणु, (९) मार्ग, (१०) अल्प भाग, (११) गिनती, (१२) मूल्य, (१३) द्रव्य, (१४) छन्द की मात्रा, (१४) तत्व, (१५) अधिभूत, (१६) नागरी लिपि की शिरो रेखा (१७) कर्णभूषण, (१८) भूषण।

मात्स्य - (१) एक पक्षी। वाचस्पत्य और शब्द कल्पद्रुम महाकोशों के अनुसार मात्स्य रंग (मच्छरंग) जलपक्षी है। गोध, काक, मच्छ रंग, पारावल, आदि रोग कारक पदार्थ का ज्ञान करना चाहिए
'यं वायसो यं मात्स्यः'
अ. १९.३९.९

मातुर्गर्भ - माता के पेट में गर्भ रूप से प्रकट होने वाला आत्मा
'मातुर्गर्भं पितुर सुं युवानम्'
अ. ७.२.१

मातृतमा - (१) उत्तमज्ञान वाली, (२) उत्तम माता के स्वभाव या रूप वाली
'अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासम्'
ऋ. ३.३३.३

मातृतमानदी - (१) उत्तम माताओं के समान अतिशय हितकारी ऐश्वर्य से सम्पन्न उत्तम उपदेश देने वाली आप्त प्रजा, (२) नदियों के समान ममता से अश्रु बहाने वाली उत्तम माता
'न मा गरन् नद्यो मातृतमाः'
ऋ. १.१५८.५

मातृमृष्टा - (१) माता द्वारा अच्छी प्रकार स्नान, अनुलेप, अलंकार, उत्तम शिक्षा द्वारा सुशोधित और सुशोभित कन्या
(२) विदुष्या मात्रा सत्यशिक्षा प्रदानेन शोधिता इव - दया. (विदुषी माता के द्वारा सत्य शिक्षा प्रदान से शोधित कन्या)
'सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषा'
ऋ. १.१२३.११

मातृबन्धु - माता के कुल के बन्धु
परा भावयति मातृबन्धु
अ. १२.५.४३

मादयस्व - तृप्त हो।
'मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र'
ऋ. १.१०१.१०
हे इन्द्र, घोड़ो के साथ तृप्त हो और जो तेरे ....

मादयिष्णु - (१) दूसरों को हर्षित करने वाला
'सांतपना मत्सरा मादयिष्णवः'
अ. ७.७७.३; तै. सं. ४.३.१३.४

माधन - वैशाख मास
'उपयामगृहीतोऽसि माधवाय'
वाज. सं. ७.३०

माध्यन्दिनसवन - (न.) (१) मध्याह्न कालीन सवन-बलि वैश्वदेव होम, (२) २४ से ३६ वर्ष तक की आयु तक ब्रह्मचारी का काल
'माध्यंदिने सवने जातवेदः'
ऋ. ३.२८.४; आश्व. श्रौ. सं. ५.४.६
माध्यंदिने सवने मत्सदिन्द्रः'
ऋ. ५.४०.४; अ. २०.१२.७

इन्द्र माध्यन्दिन सवन में सोम पीकर मस्त हो।

माध्वी - (द्वि.व.। (१) मधुर ज्ञान का मधुकरों के समान सेवन करने वाले,(२) मधुर वचन बोलने वाले अश्विद्वय या स्त्री पुरुष

'माध्वी मम श्रुतं हवम्'

ऋ. ५.७५.१-९; साम. १.४१८; २.१०८३-५

(३) अमृतमयी मधुविद्या अर्थात् आत्म विद्या से युक्त सनातन से वर्तमान प्राण और अपान (४) मधुर ऋग्वेद, मधुविद्या (५) उपनिषद् ज्ञान या आनन्दप्रद अन्नादि के योग्य

'हुवे यद्वां सुते माध्वी वसूयुः'

ऋ. ७.६७.४

(६) मधुरूप आत्मा को धारण करने वाले प्राण और अपान अश्विद्वय

'माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती'

अ. ७.७३.४; आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४; शां.श्रौ.सू. ५.१०.२१.

(७) मधु पीने वाले - मधुपायी। अश्विद्वय का विशेषण।

'स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च'

ऋ. ६.६३.८

हे मधुपायी अश्विद्वय, तुम्हारे स्तोता भी हैं और स्तुति कर्त्ता भी (८) मधुर।

(९) मधु और सोम मिश्रित पेय वाले अश्विनीद्वय। (१०) मधुर रम्य और उत्तम फल जनक

'अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु'

ऋ. १.१८४.४

माधूची - (१) मधु अर्थात् ब्रह्म विज्ञान प्राप्त करने शिक्षक और शिष्य

'मधु माधूचीभ्याम्'

वाज.सं. ३७.१८; मै.सं. ४.९.६: १२६.१२; श.ब्रा. १४.१.४.१३.

मान - (१) सत्कार

'उतेमाशु मानं पिपर्ति'

अ. २०.१३५.८; ऐ.ब्रा. ६.३५.१४; गो.ब्रा. २.६.१४; शां.श्रौ. सू. १२.१९.४.

(२) मा + ल्युट् = मान। अर्थ-विमान, (३) निर्माण, (४) सृष्टि काल।

(५) प्रक्षेप कारी वायुगण, (६) विचारवान्, ज्ञानवान् (७) मानवीय

'येन मानासश्चितयन्त उस्राः'

ऋ. १.१७१.५

(८) अपना मान करने वाला (९) ज्ञान करने वाला, (१०) उत्तम शिष्य

'त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या
रदा मरुद्भिः शुरुधो गो अग्राः'

ऋ. १.१६९.८; मै.सं. ४.१४.१३: २३७.२

मानवस्यत् - (१) समस्त मनुष्यों को अपनी प्रजा बनाने की इच्छा करने वाला, (२) समस्त मनन शील पुरुषों को अपनाने वाला

'मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते
रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः'

ऋ. १.१४०.४

समस्त मनुष्यों को अपनी प्रजा बनाने की इच्छा करने वाले (मानवस्यते), शत्रुओं को स्तम्भन और राष्ट्र को व्यवस्थित करने में समर्थ प्रधान पुरुष के लिए (मनवे) एक दम भाग छूटने को तत्पर (मुमुक्ष्वः) अति वेग से दौड़ने वाले (रघुद्रुवः) रथ को खींचकर डालने वाले (कृष्णसीतासः) और तीव्र गामी (जुवः) घोड़े.... अथवा, समस्त भ्रमणशील पुरुषों को अपनाने वाले ज्ञान स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करने के लिए (मनवे), अपने को संसार बन्धन से मुक्त करने की इच्छा करने वाले, पर्याप्त भोग कर खिन्न हो भटकने वाले (रघुद्रुवः), भूमि पर हल चलाने वाले कृषकों के समान कर्षण या तपस्या द्वारा अपने कर्मबन्धनों को अन्त करने वाले.....

मानवीपर्शुः - (१) मननशील पुरुष की सहचारिणी बुद्धि,

(२) परम पुरुष की पार्श्ववर्तिनी स्त्रीतुल्य प्रकृति

'पर्शुर्ह नाम मानवी
साकं ससूव विंशतिम्'

ऋ. १०.८६.२३; अ. २०.१२६.२३

मानसः ग्रीष्मः - मानस से उत्पन्न ग्रीष्म

'ग्रीष्मो मानसः'

वाज.सं. १३.५५; तै.सं. ४.३.२.१, मै.सं. २.७.१९: १०४.३; का. सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.१.८

मानस्कृत - विचार पूर्वक कर्म करने वाला

'वपुषे मानस्कृतम्

वाज.सं. ३०.१४; तै.ब्रा. ३.४.१.१०

मानस्यक्षयः - दर्प, बल या वीर्य का निवास इन्द्र या परमेश्वर का विशेषण

'अर्यो मानस्य स क्षयः'

ऋ. ८.६३.७

समस्त जगत् का ईश्वर (अर्यः) एवं दर्प, बल या वीर्य का निवास....

मानस्य पत्नी - (१) मान, माप का पालन करने वाली शाला, (२) मान पालन करने वाली सद्गृहिणी

'मानस्य पत्नी उद्धिता तन्वे भव'

अ. ९.३.६

'इदं मानस्य पत्न्या
नद्धानि वि चृतामसि'

ऋ. ९.३.५

(३) मान, प्रतिष्ठा का पालन करने वाली धर्मपत्नी (४) शाला

'मानस्य पत्नि शरणा स्योना'

अ. ३.१२.५

मान्द - (१) सबको आनन्दित करने वाला

'मान्दा स्थ राष्ट्रदाः'

वाज.सं. १०.४; श.ब्रा. ५.३.४.१४

मान्यमानः - (१) मान्य पुरुषों का सत्कार करने वाला, (२) अभिमान करने वाला

'देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थ'

ऋ. ७.१८.२०

मानसः - (१) ज्ञानवान्, (२) माननीय पुरुष

'यद् वां मानास उचथमवोचन्'

ऋ. १.१८२.८

मान्थालः - (१) मथन कर सार भाग प्राप्त करने वाला, (२) एक जन्तु

'आखुः कशो मान्थालस्ते पितृणाम्'

वाज.सं. २४.३८

मान्दार्य - (१) मुझे यह वीर काट डालेगा इस प्रकार का भय शत्रुओं को देने वाला, (२) सब को हर्ष देने वाला

'मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः'

ऋ. १.१६५.१५; १६६.१५; १६७.११; १६८.१० वाज.सं. ३४.४८; मै.सं. ४.११.३: १७०.७; का.सं. ९.१८

(३) स्तोतुमर्हः, उत्तम गुण कर्मस्वभावः-दया. (स्तुति योग्य, उत्तम गुण, कर्म और स्वभाव वाला,) (४) सबको हर्षित करने वाला सर्वश्रेष्ठ

मानुषप्रधनः - मनुष्यों के हितार्थ उत्तम धनों का संग्रह करने वाला

'यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः'

ऋ. १.५२.९

मानुषयुग - मनुष्यों चित जीवन का वर्ष

'पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा'

ऋ. १.१४४.४

मानुषायुगाः - मनुष्य के स्त्री पुरुष रूप जोड़े

'स हि यो मानुषा युगा
सीदद्धोता कविक्रतुः'

ऋ. ६.१६.२३

मापश्यम् - नः । ओषधि को विशेषण । ऐसी ओषधि जिससे पति मुझे ही देखता रहे ।

'मांपश्यमभिरोरुदम्'

अ. ७.३८.१

मामतेय - (१) ममता के भाव से अपनाया हुआ

'ये पायवो मामतेयं ते अग्ने'

ऋ. १.१४७.३; ४.४.१३; तै.सं. १.२.१४.५; मै.सं. ४.११.४: १७४. ३ का.सं. ६.११

(२) ममता करने वाला आत्मा

मामहन्ताम् - मह् (बढ़ाना) पूजा करने का यङ्लुडन्त अन्य पुरुष बहुवचन का रूप । अर्थ बढ़ावें ।

'तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्'

ऋ. १.९४.१६; ९५.११; ९६.९; ९८.३; १००.१९; १०१.११; १०२.११; १०३.८; १०५.१९; १०६.७; १०७.३; १०८.१३; १०९.८; ११०.९; १११.५,१११. २५; ११३.२०; ११४.११; ११५.६; ९.९७.५; वाज.सं. ३३.४२; ३४.३०.

उस आत्मशक्ति को प्राण, अपान वायु आदि बार बार बढ़ावें - दया. । हमारे उस वचन को.....बार बार पालन करे या पूजे ।

माया - (१) परम ज्ञानमयी विधात्री शक्ति, (२) धात्री शक्ति

'माया ह जज्ञे मायायाः'

अ. ८.९.५

(३) प्रभु की निर्माण शक्ति

'पूर्वापरं चरतो माययैतौ'

ऋ. १०.८५.१८; अ. ७.८१.१; १३.२.११; १४.१.२३; मै.सं. ४.१२.२: १८१.३; तै.ब्रा. २.७.१२.२; ८.९.३.

(४) कृति, निर्माण । मा धातु से सिद्ध ।
'मायामू तु यज्ञियानामेताम्'
ऋ. १०.८८.६; नि. ७.२७
इसे लोग देवताओं की माया समझते हैं ।
(४) प्रज्ञा, विज्ञान । (६) भ्रान्ति ।

मायिन् - (१) मायावी शत्रु - सा. (२) प्रज्ञावान् वर - दया.
'येन शुष्णं मायिनमायसो मदे'
ऋ. १.५६.३
जिस बल से इन्द्र सबके शोषक (शुष्णाम्) मायावी शत्रु को (मायिनम्) ...सा.
जिस से उस बलवान् या प्रज्ञावान् वर को स्त्री.....-दया.
(३) मायावी, छली
'यद्ध त्यं मायिनं मृगम्'
ऋ. १.८०.७; साम. १.४१२
जिस बल से तू उस मायावी, छली, इधर उधर भागते या आक्रमण करते हुए हिंसक शत्रुओं यां परस्वापहर्ता को ।

मायिनी - (द्वि.व.) । (१) बुद्धिमान् माता पिता
(२) (स्त्री ए.व.) । मायाविनी या प्रज्ञावती-सा.
(३) मध्यमा वाक् का विशेषण (४) बुद्धिपूर्वक नीति कर्मों को करने वाली ।

मायु - (१) निर्माण करने वाली शक्ति (२) वाक् शक्ति
'अश्वस्यं ब्रध्नं पुरुषस्य मायुम्'
अ. १९.४९.४
(३) उच्च स्वर
'अश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ'
अ. ६.३८.४; का.सं. ३६.१५; तै.ब्रा. २.७.७.१.
(४) मा (प्रक्षेपण या निर्माण अर्थ में) + उण् = मायु (आदि में वृद्धि और अन्त में युक्)। मिनोति स्वतेजः सर्वत्र प्रक्षिपति इति मायुः। (आदित्य अपने तेज को सर्वत्र फेंकता है अतः मायु है) । अर्थ- आदित्य
(५) माति सर्वभूतानि इति मायुः (जो सभी भूतों का निर्माण करता है) ।
(६) मेघ, जल ।
'अयं स शिङ्क्ते ये गौरभीवृता
मिमाति मायुं ध्वसनावधिश्रिता'
ऋ. १.१६४.२९
यह वह मेघ अव्यक्त ध्वनि करता है जिससे मेघ से जल निकलने के समय तक मेघ में रहती हुई विद्युत् नाम्नी माध्यमिका वाक् व्याप्त होकर मेघ बनाती या जल बरसाती है ।
'मियाति मायुं पयते पयोभिः'
ऋ. १.१६४.२८; अ. ९.१.८; १०.६; नि. ११.४२
(६) शब्द, (८) काकुद्
'मायुः काकुद्'
(८) मनुष्य, (९) जीवन
'नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः'
ऋ. ४.६.११
(१०) ज्ञान की कामना वाला
'सद्यो दिदिष्ट मायवः'
ऋ. १०.९३.१५
(११) गौ की हुंकार
'गवामह न मायुर्वत्सिनीनाम्'
ऋ. ७.१०३.२

मायू - द्वि.व.। ए.व. में मायु । अर्थ-गर्जन कराने वाले
'त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू'
अ. १८.४.४.

मार्गार - (१) जल जन्तुओं का शत्रु
'पाराय मार्गारम्'
वाज.सं. ३०.१६

मार्जाल्यः - (१) संशोधक-अग्नि -दया.
(२) सबको शोधने वाला सूर्य, (३) अन्यों को ज्ञान दीक्षा आदि से पवित्र करने वाला
'मार्जाल्यो मृज्यते स्वेदमूनाः'
ऋ. ५.१.८

मार्जालीय - (१) शोधन करने वाली अग्नि ।
'शुन्ध्यूरसि मार्जालीयः'
वाज.सं. ५.३२

मार्डीक - (१) सुख देने वाला राज्य
'कस्ते देवो अधि मर्डीक आसीत्'
ऋ. ४.१८.१२
(२) आरोग्य कारक
'मार्डीकं धेहि जीवसे'
ऋ. १.७९.९; साम. २.८७६; मै.सं. ४.१०.६; १५६.३; का.सं. २.१४ ; तै.ब्रा. २.४.५.३; आप.श्रौ.सू. ८.१४.२४

(३) सुखदायक
'मार्डीकमिन्द्रा वरुणा नियच्छतम्'
ऋ. ७.८२.८
(४) सुखसाधक ऐश्वर्य

मार्तवत्स - मृत बालक का जन्म
'अप्रजास्त्वं मार्तवत्सम्'
अ. ८.६.२६

मार्त्यव - मृत्यु का अधिष्ठाता अन्तक, (२) मृत्युदण्डकारी
'तामन्तको मार्त्यवोऽधोक'
अ. ८.१० (४) ७

मार्ताण्ड - मृत + आण्ड । (१) अण्डों से उत्पन्न पक्षिगण, (२) मृत अर्थात् भिन्न अण्डे से उत्पन्न पक्षी, (३) सूर्य के आश्रय पर जीने वाला
'विश्वो मार्ताण्डो व्रजमापशुर्गात्'
ऋ. २.३८.८
(४) जड़ तत्व का बना अण्ड या जीवित देह
'प्रजायै मृत्यवे त्वत्
पुनर्मार्ताण्डमाभरत्'
ऋ. १०.७२.९; तै.आ. १.१३.३

मार्ष्टि - मृज् (गति शुद्धि अर्थों में प्रयुक्त) के लट् प्र.पु.ए. व.का. रूप । अर्थ गच्छति (जाता है) ।

मारुत - (१) मारने वाले शत्रुओं का स्वामी
'मारुतः क्लथन्'
वाज.सं. ३९.५
मरुत् + अण् = मारुत । मरुत्संयुक्त - मरुतों के साथ ।
(३) मनुष्यों के लिए हितकारी (४) मरुत् सम्बन्धी, (४) मानुषिक बल
(६) वैश्य, क्योंकि वैश्य मितभाषी होते हैं ।
(७) मा (मानार्थक) + रु (शब्दार्थक) + क्विप् = मारुत् = मरुत । वैश्य मापने के प्रेमी होते हैं । अथवा, 'महत् + द्रव् + क्विप् = महद्रव = मरुत्
(८) मरुद्गण ।

मारुतगण - (१) वायुवत् बलवान् शत्रु मारक वीरों का यूथ, (२) सामान्य मनुष्य
'आदित्यान् मारुतं गणम्'
ऋ. १.१४.३; ६.१६.२४; वाज.सं. ३३.४५.
(३) मरुत् सम्बन्धी प्राणगण
'तस्यैष मारुतो गणः'
अ. १३.४.८

मारुतं धाम - (१) मरुतों का स्थान -सा. (२) मानुषिक तेज -दया.
'विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः'
ऋ. १.८७.६; तै.सं. २.१.११.२; ४.२
प्रिय मरुतों के स्थान की प्राप्ति के लिए -सा. ।
प्रिय मानुषिक तेज की प्राप्ति के लिए -दया. ।

मारुतःरथः- (१) मरुतों के साथ मेघ, (२) मरुतों का रथ मेघ । मेघ गति शील है - 'रंहणः' अतः वह रथ कहा गया है । बिना मरुतों की सहायता से मेघ चलता नहीं अतः मेघ को मारुत रथ भी कह सकते हैं-जिसका रथ मरुत् है ।
'रथं नु मारुतं वयं
श्रवस्यमा हुवामहे'
ऋ. ५.५६.८; नि. ११.५०
हम आत्रेय अन्न देने वाले एवं मरुत् रुपी रथं वाले या मरुतों के साथ गति शील मेघ को बुलाते हैं ।

मारुतं शर्ध - (१) वायु का प्रबल वेग
'स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिः'
ऋ. १.१२७.६

मारुताश्व - (१) वायु के समान चलने वाले अश्वों या अश्व सैन्यों का स्वामी - इन्द्र
'उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः'
ऋ. ५.३३.९

भारुतीः विशः - प्राणों से प्रणिता प्रजाएं
'यदा ते मारुतीर्विशः'
ऋ. ८.१२.२९

मावत् - मेरे सदृश ।

मास् - मा (मापना) + असुन् = मास् । अर्थ (१) महीना, (२) मापने वाला या माप, (३) काल को मापने वाला मास । मास से काल मापा जाता है ।
(४) मासाः मानात् (इन से संवत्सर का मान किया जाता है अतः ये मास कहे जाते हैं) ।
(५) अथवा, 'मस् (परिमाण अर्थ में) मस्यते परिमीयते अयम् अनेन वा' (इस से परिभाषा जाना या निकाला जाता है) (६) मा + सस् = मास्

मास - (१) मास, (२) व्यापक विद्वान्

'मासा आच्यन्तु शम्यन्तः'
वाज.सं. २३.४१

मासः - (ब.व.) । (१) वर्ष के १२ महीने, (२) जगत् को बनाने वाली शक्तियाँ (३) राष्ट्र का निर्माण करने वाली प्रजाएं
'किं स ऋधक् कृणवद् यं सहस्त्रम्'
'मासो जभार शरदश्च पूर्वीः
ऋ. ४.१८.४

मासकृत् - मासानाम् अर्द्धमासानां च कर्त्ता । शाकल्य ने इस का पदच्छेद 'मा + सकृत्' किया है । अर्थ है मां सकृत् एकवारम् एव (मुझे एक बार ही)
(२) दूसरी व्युत्पत्ति है- मास + कृत् । मास का अर्द्धमास बनाने वाला चन्द्रमा ।
अरुणो मा सकृद् वृकः
पथा यन्तं ददर्श हि'
ऋ. १.१०५.१८; नि. ५.२१
आरोचन - और नक्षत्रों से अधिक चमकने वाला मासों तथा आर्द्धमासों का कर्त्ता चन्द्रमा आकाश मार्ग से आते हुए नक्षत्र को देखता है । कूप में गिरे कुत्स ही यह उक्ति है कि हे चन्द्रमा, तू तारों को देखता ऊपर जा रहा है, पर मुझे तो (मा) एक बार भी नहीं देखता (सकृत्) ।

माश्चत्व - युद्धकाल
'माँश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे'
ऋ. ९.९७.५४

माष - (१) उड़द, अरहर आदि
'माषाश्च मे तिलाश्च मे'
वाज.सं. १८.१२, तै.सं. ४.७.४.२; मै.सं. २.११.४: १४२.२; का. सं. १८.९
(२) मष् + घञ् = माष । अर्थ - हिंसा

माषाज्य - (१) मघ (हिंसार्थक) से माष हुआ है । आज्य का अर्थ है आजि का साधन शास्त्र । माषाज्य का अर्थ है हिंसक शस्त्र ।
यदाज्यैः देवा जयन्त
आयन् तत् आज्यानाम् आज्यतम्
'यदाजिमायन् तत् आज्यानाम् आज्यत्वस्
'आज्यानि शस्त्राणि स्तोत्राणि'
तै.आ. ७.२.१.
'तं माषाज्यं कृत्वा प्रहिणोमि'
अ. १८.२.५४
(२) मष् हिंसार्थ भ्वादि माषः हिंसा । आज्य - वज्र आदि । माष + आज्य = माषाज्य । अर्थ- उड़द की बड़ी - सा.
(३) घातक हिंसक वज्र का अस्त्र -ज.दे.श.
'आज्येन वै देवा सर्वान कामान् अप्ययन्'
कौ.सू. १४.१
'वज्रो वा आज्यम्'
श.ब्रा. १.३.२.३७

मांस - (१) मांस, (२) उत्तम अन्न (३) उत्तम रस (४) पुरीष, (५) सादन, (६) अन्न, (७) रसीला पदार्थ
'मांस वै पुरीषम्'
श.ब्रा. ८.६.२.१४.
'मांसं सादनम्'
श.ब्रा. ८.१.४.५.
'एतदु ह वैपरमम् अन्नादयं यन्मात्तम्' श.ब्रा. ११.७.१.३
'अन्नम् उपशोर्मासम्'
श.ब्रा. ७.५.२.४२
'अपूपवान् मांसवांश्चरुरेहु सीदतु'
अ. १८.४.३०
'यथा मांसं यथा सुरा'
अ. ६.७०.१
(४) मन को रुचि देने वाला रुचिकर पदार्थ - घी, मलाई फल आदि
'स य एवं विद्वान् मांस मुपसिच्योपहरति'
अ. ९.६.४३
(४) मा + ल्युट् = माननम् = मांसम् (बाहुलक से औणादिक स) । अथवा - मन् (मानना) + स = मानस = मांस (मने दीर्घश्च से 'स' का आदेश और 'म' का दीर्घ) ।
मांसं माननं वा (जो मान्य होता है उसके लिए मांस प्रस्तुत किया जाता है अतः इसका नाम मांस पड़ा) ।

मानसं वा - सुमनसा उपादी यत इति मानसम् (सुन्दर मन से इसका उपादान किया जाता है । अतः यह मानस या मांस हुआ) । मनस् + अण् = मानस = मांस
मनः अस्मिन् सीदति इति वा (इस मांस में सभी का मन चला जाता है या सभी का मन ललच कर भ्रष्ट हो जाता है, ऐसा अर्थ भी कुछ लोग

करते हैं) । शरीर के लिए मांस अत्यन्त आवश्यक है अतः सभी इसकी कामना करते हैं । अतः मन् धातु से मांस हुआ । मनु का निर्वचन - मां + सः = मांसः । अर्थात् इस जन्म में मनुष्य जिसका मांस खाता है, अगले जन्म में वह उसी का मांस खाता है ।

मांस भक्षयिताऽमुत्र
यस्य मांसमिहादम्यहम्
एतन्मांसस्य मांसत्वम्
प्रवदन्ति मनीषिणः

मनु. ५.५५

मांस जम्भनी - मांस शोषक या मांस में फैलने वाले कीटाणुओं का नाशक

'एतास्ते अग्ने समिधः पिशाचजम्भनीः'

अ. ५.२९.१४

मांस्पचनी - (१) मांसानि पचन्ति यस्यां सा (जिसमें मांस पकाए जाते हैं) । दया. (२) मन को अच्छे लगने वाले नाना अन्नों और फलों का परिपाक करने वाली उखा (३) देहगत मांसादि वा परिपाक करने वाली उखा रूपी यह देह (४) मनन योग्य मन की गति के पात्र- उत्तम विचारों को पापिक्व करने वाली उखारूप मस्तिष्क ।

'यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखायाः'

ऋ. १.१६२.१३; वाज.सं. २५.३६; तै.सं. ४.६.९.१; मै.सं. ३.१६. १: १८३.४

(४) मांस अर्थात् मन को अच्छे लगने वाले नाना पदार्थों के परिपक्व करने वाली पृथिवी या बटुआ (५) उवट के मत में मांस पकाने की हंड़िया (६) मांस आदि देह गत धातुओं को अन्न रस से परिपक्व या दृढ़ करने वाला देह रूप पात्र

मांसभिक्ष - मांस अर्थात् मन को लुभाने वाले अन्न आदि पदार्थों की भिक्षा, (२) मन को प्रिय लगने वाले पदार्थों की भिक्षा

'ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासते'

ऋ. १.१६२.१२; वाज.सं. २५.३५; मै.सं. ३.१६.१:१८२.९

(३) मांस की भिक्षा, (४) मनन करने तथा मन को उत्तम प्रतीत देयोग्य ज्ञान और बल अथवा उसके देह की भिक्षा-याचना, (६) मन को लुभाने वाले अन्न, ऐश्वर्य आदि और सैन्य के देह रक्तादि की याचना

मासर- (१) परिपक्व औषधि रस, (२) अन्न, (३) मासिक वेतन बद्ध भृत्य

'अस्थि मज्जानं मासरैः'

वाज.सं. १९.८२; का.सं. ३८.३; तै.ब्रा. २.६.४.२

(४) धान और सावाँ चावल के भातों का तथा शष्य (धान का नया पौधा) तथा लाज (लावा) आदि पदार्थों का मिश्रित रूप मासर है , (५) राज्य कर्मचारी को दिया जाने वाला सुखप्रद वेतन (मांस मासं दीयते यत् तत् मासरम्) (६) येन मासेषु रमन्ते- दया. (जिससे मासों में रमण करते हैं) ।

'आतिथ्यरूपं मासरम्'

वाज.सं. १९.१४

मांसवान् चरु - (१(मांस अर्थात् गूदे वाला चरु । मांस का अर्थ-पुरीष, सादन, अन्नाद्य, अन्न, रसीला, गूदेदार पदार्थ, सर्वश्रेष्ठ अन्नखाद्य

'मांसं वै पुरीषम्'

श.ब्रा. ८.५.२.१४

'मांसं सादनम्'

श.ब्रा. ८.१.४.५

'एतदु ह वै परमं अन्नाद्यम्'

श.ब्रा. ११.७.१.३

'अपूपवान् मांसवांश्चरुरेह सीदतु'

अ. १८.४.२०

मास्म - मत । मा के साथ स्म का प्रयोग ।

'मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये'

ऋ. १०.२७.२४

हे अन्तरात्मन् ! तू आदित्य के इस प्रकार के उपकारों को मत छिपा या मत भूल (मा स्म अप गूहः) ।

मासि मासि - प्रत्येक अर्द्धमास या दर्शपौर्णमास में ।

'अहरहर्जयते मासिमासि'

ऋ. १०.५२.३; नि. ६.३५

यह अग्नि प्रतिदिन तथा प्रत्येक अर्द्धमास अर्थात् दर्शपौर्णमास में उत्पन्न होता है ।

माहना - बड़े भारी सामर्थ्य से

'याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्'

ऋ. १.३२.८

जिन जल धाराओं को (याः चित्) मेघ (वृत्र) बड़े सामर्थ्य से थामे रहता है। (पर्यतिष्ठत्)।

माहिन् – (१) पूज्य, महत्वगुण विशिष्ट

'पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः'

ऋ. १.५६.६

(२) महानुभावता, बड़प्पन,

'अपः क्षोणी सचते माहिना वाम्'

ऋ. १.१८०.५

बड़े होने के कारण नदी आदि पृथ्वी में ही आश्रय पाते हैं। उसी प्रकार आप्त जन आप दोनों की महानुभावता से सूर्य और पृथ्वी के समान स्तुति के योग्य आप दोनों को प्राप्त हो।

(३) महान् आदरणीय

'इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्ति'

ऋ. ३.३६.९; तै.सं. १.७.१३.३; का.सं. ६.१०.

माहिनः – (१) गुणों से महान्

'प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय'

ऋ. १.६१.१; अ. २०.३५.१

(२) पूज्य, महान्, सामर्थ्यवान्

'कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्'

ऋ. १.१६५.३; वाज.सं. ३३.२७; मै.सं. ४.११.३: १६८.१०, का.सं. ९.१८.

'पूषा अविष्टु माहिनः'

ऋ. १०.२६.१,९

(३) इन्द्र का विशेषण।

'अस्मा इदु प्र तवसे तुराय
प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय'

ऋ. १.६१.१; अ. २०.३५.१

इस बलवान् फुर्तीले एवं पूज्य इन्द्र के लिए (तवसे तुराय माहिनाय) तृप्तिकरक अन्न की तरह (प्रयोन) स्तुति अर्पित करता हूँ (प्र हर्मि)।

(४) मह् (पूजा अर्थ में) + इनण् = माहिन। सबसे अधिक महान् पूजनीय – इन्द्र

माहिना – (१) बहुत महत्वपूर्ण, (२) सत्कार करने योग्य

'इडा येषां गण्या माहिना गीः'

ऋ. ३.७.५

(३) अति उत्तम तेजस्विनी परमेश्वरी शक्ति

'विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः'

ऋ. ५.४५.८

माहिनावान् – बहुत से महान् सामर्थ्यों का स्वामी

त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्'

ऋ. ३.५६.३

माहिष – भैंसा

वरुणाय महिषान्

वाज.सं. २४.२८

माही – (१) बहुत बड़ा। 'माहिन्' का प्रथमैक वचन में रूप'

'उक्थैरिन्द्रस्य माहिनम्
वयो वर्धन्ति सोमिनः'

ऋ. ८.६२.१

माहेन्द्र – (१) महेन्द्र का (२) महान् राजा का

'प्राशृङ्गा माहेन्द्राः'

वाज.सं. २४.१७

म्लान – बनाया हुआ

'शतं चर्माणि म्लातानि'

ऋ. ८.५५.३

मिक्ष, मेक्ष – चलना

'मेक्षाम्यूर्ध्वस्तिष्ठन्'

अ. ७.१०२.१

मितद्रुः – (१) मितमार्ग वाला, (२) शोभन गति वाला, बाजी का विशेषण। (३) परिमित गति से जाने वाला

'शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु
देवताता मितद्रवः स्वर्काः'

ऋ. ७.३८.७; वाज.सं. ९.१६.

इस यज्ञ में (देवताता) आह्वानों या स्तोत्रों के किए जाने पर (हवेषु) मित मार्गवाले भी शोभनगति वाले (मितद्रवः) या शोभन अन्न, सुन्दर अर्चा या सुन्दर दीप्ति वाले (स्वर्काः) वाजि नाम देवता हमारे लिए कल्याण-कारक हों।

(३) परिमित परिज्ञात गतिवाला (४) सब पदार्थों में, समान रूप से व्यापक, परमेश्वर

'परि त्मना मितद्रुरेति होता'

ऋ. ४.६.५

(५) परिमित भय वाला

'त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः'

ऋ. ७.७.१

मितः – मिथः परस्पर

'सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्'

ऋ. १०.१८.१२; अ. १८.३.५१; तै.आ. ६.७.१

मितक्षुः – (१) परिमित जानु वाला, (२) सभ्यता पूर्वक पैर सिकोड़ कर बैठने वाला, (३) परिमाण से कदम बढ़ाने वाला, (४) विवेकी पुरुष

'मितज्ञवो वरिमन् आ पृथिव्याः'

ऋ. ३.५९.३; मै.सं. ४.१०.२: १४६.१५; तै.ब्रा. २.८.७.५

मितमेधा – परस्पर सत्संगति युक्त रक्षा

'मितमेधाभिरूतिभिः'

ऋ. ८.५३.५; साम. १.२८२,

मित्र – (पु.) प्रजाओं को मारने बचाने वाला (२) स्नेह करने वाला, स्नेह से सब की रक्षा करने वाला

(३) सूर्य ।

'मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणः'

ऋ. ३.५९.१; का.सं. २३.१२,३५;१९ आश्व.श्रौ.सू. ३.११.१२ नि. १० .२२.

(४) सर्प विष की एक औषधि

'मित्रश्च वरुणश्च'

अ. ३.२२.२; १०.४.१६; तै.आ. १.१३.३

(५) अर्यमा वरुणः – योगियों के तीन भेद, (६) सूर्य के समान प्रज्ञालोकवान् मित्र, (७) भूतजय करने वाला इन्द्रिय संविद् द्वारा स्थित प्रज्ञ अर्यमा और विशाल आकाश रूप समुद्र के समान शान्त शुद्ध चित्त सत्य का अनुभवी योगी वरुण है ।

'पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः'

ऋ. ८.९४.५; साम. २.११३६

(७) मृत्यु से बचाने वाला अन्न, जल और वायु

'मित्रो गृणाति वरुणः'

ऋ. ८.१५.९; अ. २०.१०६.३; साम. २.९९७

(८) मित्रः प्रमीतेः मरणात् त्रायत इति मित्रः (मित्र मृत्यु से रक्षा करता है) । प्रमीति + त्रै + ड = मित्र (प्रमीति का मित् और त्रै का का त्र) । मित्र अर्थात् सूर्य सभी को वर्षा द्वारा मृत्यु से बचाता है । अर्थ है – सूर्य

संमिन्वानः द्रवति (सम्यक् प्रकार से या समन्ततः सदा वर्षा बरसाता हुआ अन्तरिक्ष लोक में द्रवता है) । मि 'धातु प्रक्षेपण अर्थ में भी आया है । या 'मिवि' सेचने '

'सेचनार्थक 'मि' के लट् में 'आनश्' जोड़कर 'मिन्वान' बना है ।

मिवि + द्रु + रक् = मित्र अथवा मि + द्र + ड = मित्र । (पृषोदरादिवत्)

अथवा – 'मिद् ' (स्नेहार्थक) + त्रन् = मित्र ।

'सर्व ह्यसौ उदकेन स्नेहयुति (मित्र अर्थात् सूर्य सभी को उदक से स्निग्ध करता है) ।

अथवा – मानार्थक 'मा + त्रन् ' = मित्र ।

(९) स्वामी दयानन्द ने मित्र का अर्थ मापक किया है । अंग्रेजी का meter का अर्थ भी ऐसा ही है । जैसे Thermometre (धर्म – मित्र) ताप मापक । Barometre - भार मित्र – भारमापक यन्त्र । अतः मित्र hydrogen अर्थात् उद जन वायु का नाम है । यह वायु सब से हल्की है और यह तौल मान की मात्रा या इकाई है । वरुण Oxygen या ओषजन वायु है । यह वायु वरणीय है । स्वामी दयानन्द इसी से 'मित्रावरुण' का अर्थ उदजन और ओषजन (Hydrogen और Oxygen) वायु मानते हैं ।

(१०) यास्क ने भी मित्र का अर्थ वायु दिया है ।

(११) शब्द करता हुआ मित्र, । सूर्य

'मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणः'

(शब्द करता हुआ मित्र कृषकों को कृषि कार्य में प्रवृत्त करता है) । (१२) प्राण वायु –दया.

'तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः'

ऋ. १.९४.१६; ९५.११; ९६.९; ९८.३

उस आत्म शक्ति को प्राण, अपान, अन्तरिक्ष, सिन्धु, पृथिवी और सूर्य बढ़ावें । (१३) आदित्य । अदिति का पुत्र एक वैदिक देवता ।

'प्र स मित्र मर्तो प्रयस्वान्'

ऋ. ३.५९.२; तै.सं. ३.४.११.५; मै.सं. ४.१०.२: १४६.१३; का.सं . २३.१२; आश्व.श्रौ.सू. ३.१२.९; ४.११.६; नि २.१३.

हे आदित्य (मित्र) वह मनुष्य अन्न वाला हो ।

(१४) स्वा. दयानन्द ने मित्र का अर्थ मंत्री और वरुण का अर्थ चुना हुआ राजा किया है । आधुनिक अर्थ – सूर्य, आदित्य जो वरुण के साथ रहते हैं ।

मित्रमहः – (१) मित्रवान् सब का आदर करने वाला, (२) अग्नि, (३) मित्र, (४) प्राण और सूर्यवत् तेजस्वी
'तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम्'
ऋ. २.१.५

'मित्रस्य वरुणस्य चक्षुः – (१) दिन और रात्रि का प्रकाशक सूर्य, (२) मित्र और श्रेष्ठ पुरुष का पथ- प्रदर्शक
'चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवः'
ऋ. ७.६३.१

मित्रातिथेः नपात् – मित्र स्नेही और अतिथिवत् गृह पर आने वाले को नीचे न गिराने वाला
'अधि पुत्रोपमश्रवः
नपान्मित्रातिथेरिहि'
ऋ. १०.३३.७

मित्रधित – सर्वस्नेही ही प्रभु का दिया या बनाया पदार्थ
'यथा यथा मित्रधितानि संदधुः'
ऋ. १०.१००.४

मित्रधिति – (१) दुःखों को दूर करना और सुखों को प्राप्त करना (२) स्नेही मित्रजनों का पालन
'दुहीयन् मित्रधितये युवाकु'
ऋ. १.१२०.९
दुःखों को दूर करने सुखों को प्राप्त करने तथा स्नेही मित्रजनों का पालन करने के लिए ये सब गौएं, भूमिएं और माताएं अपना दूध, अन्न और स्नेह प्रदान करती हैं।

मित्रधेय – मित्रता को बचाए रखना
'मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व'
अ. २.६.४; वाज.सं. २७.५; तै.सं. ४.१.७.२; मै.सं. २.१२.५: १४९.२; का.सं. १८.१६.

मित्रपति – मित्रों का पालक
'त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः'
ऋ. १.१७०.५

मित्रयुजः देवाः – सूर्य के साथ लगे किरण
'रिशादसो मित्रयुजो न देवाः'
ऋ. १.१८६.८

मित्रमहस् – मित्रों को पूजने वाला या मित्रों का पूज्य।
मित्राणि मह्यति यः सः। अथवा, मित्रैः मह्यतेयः सः। मित्र + मह् + असुन् = मित्रमहस्
'दहाशसो रक्षसो पाह्यस्मान्
द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात्'
ऋ. ४.४.१५, तै.सं. १.२.१४.६; मै.सं. ४.११.५: १७४.८: का.सं. ६.११.
(२) अग्नि का वाचक।
'आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्'
ऋ. १०.११०.१, अ. ५.१२.१; वाज.सं. २९.२५; मै.सं. ४.१३.३: २०१.९; का.सं . १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.१; नि. ८.५
हे मित्रों के स्तुत्य (मित्रमहः) तथा चेतनावान् (चिकित्वान्) देवताओं को बुला या उन्हें हवि पहुंचा (च आवह)।
(३) सूर्य, (४) स्नेहवान् मित्रों का आदर करने वाला सूर्यवत् तेजस्वी राजा
अच्छा नो मित्रमहो देव देवान्
ऋ. ६.२.११; १४.६
'स नो मित्रमहस्त्वम्'
ऋ. ८.४४.१४; साम. २.१०६३
अग्नि के अर्थ में –
'यद् देवानां मित्रमहः पुरोहित'
ऋ. १.४४.१२

मित्र्य – सर्वस्नेही ब्राह्मणगण
'अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा'
ऋ. ५.८५.७

मितासद्म – (१) परिमित उत्तम गणित विज्ञान और शिल्प विज्ञान और शिल्प विज्ञान के नियमों से माप कर बनाया गया घर, (२) परिमित स्थान
'नक्षद्धोता परि सद्म मिता'
ऋ. १.१७३.३

मन् – (१) मनुष्य, (२) मननशील, (३) शत्रुस्तम्भनकारी पुरुष
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता'
ऋ. १.१७३.२

मित्रा – द्वि.व.। (१) परस्पर स्नेह वान् स्त्री पुरुष, (२) मित्रा वरुण, (३) प्राण अपान वायु
'आयद् वामीयचक्षसा
मित्र वयं च सूरयः'
ऋ. ५.६६.६

मित्राग्नि – (१) प्राण और अग्नि, (२) नासिका गत प्राण और जठराग्नि, (३) राजा और आयुध

मित्रायु – मित्रता चाहने वाला

'मित्रायुवो न पूर्यतिं सुशिष्टौ'
ऋ. १.१७३.१०

मित्रावरुण - द्वि.व.। (१) घृत और जीरा जो सर्पः दंश में औषधि रूप में दिये जाते हैं।
'आ मां मित्रा वरुणेह रक्षतम्'
ऋ. ७.५०.१
राजनिघण्टु में लिखा हैः-
'गोघृतं वातपित्त विषापहम्
जीरक शुक्ल कृमिघ्नी विषहन्त्री च'
(२) संस्कृत रूप है-मित्रावरुणौ। अर्थ है- मित्र और वरुण नामक देवता, (३) मित्र और वरुण नामक वायु जो जल उत्पन्न करते हैं। (४) मित्र hydrogen और वरुण oxygen वायु है। जिन्हें जोड़कर सूर्य रश्मियाँ मेघ निर्माण करती हैं।
(५) दिन और रात।
'दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते
राजाना मित्रावरुणा विवाससि'
ऋ. १०.६४.५, नि. ११.२३
हे अदिति या सन्धिवेला, तू आदित्य के जन्मरूपी व्रत में या उदय अस्त रूपी कर्म में दिन और राज रूपी राजाओं में व्याप्त रहती है।
(६) मंत्री और चुना हुआ राजा - दया.
उदजन और ओषजन वायु के अर्थ में -
'मित्रं हुवे पूतदक्षम्
वरुणं च रिशादसम्
धियं घृताचीं साधन्ता'
ऋ. १.२.७; साम. २.१९७; वाज.सं. ३३.५७; ऐ.आ. १.१.४.५.
पवित्र करने में चतुर उदजन और जंग द्वारा धातुओं को खाने वाले (रिशादसम्) ओषजन वायु को (वरुणञ्च) मैं ग्रहण करता हूँ (हुवे)। ये दोनों वायु मिलकर जल-निर्माण कार्य को करने वाले हैं (घृताचीं धियं साधन्ता)।
(७) आदित्य और वरुण, (८) यास्क ने भी मित्र का अर्थ वायु किया है। मित्र और वरुण नामक वायुओं को विद्युत् द्वारा मिलाने से वर्षा होती है।
(९) प्राण और अपान वायु, (१०) सूर्य ओर चन्द्रमा, (११) गृहस्थ और गृह पत्नी।
'मित्रावरुण दूडभम्
ऋतुना यज्ञमाशाथे'
ऋ. १.१५.६

मित्रावरुणनेत्रः - (१) न्यायाधीश और नगर की पुलिस के अध्यक्ष के अधीन विद्वान् और वायु के समान तीव्र चढ़ाई करने वाले सेनापति के अधीन वीर पुरुष।(२) प्राणोदना की तरह वेगवान् नेता वाला, (३) मरुत् के तुल्य वेग वान् नेतावाला राजपुरुष
'ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. ९.३६, वाज.सं. (का.) ११.१.२; श.ब्रा. ५.२.४.६.

मित्रावरुणावन्ता - द्वि.व.। (१) मित्र वरुण या ब्राह्मण क्षत्रिय राजाओं से युक्त (२) अश्विद्वय
'मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता'
ऋ. ८.३५.१३

मित्रावरुणै - द्वि.व.। (१) ईश्वर के दो रूप। एक सत्य वादियों से प्रेम करने वाला और दूसरा पापियों का दमन करने वाला, (२) न्यायाधीश और दण्डाधीश, (३)मित्र और वरुण नामक देवता
'मन्वे वां मित्रावरुणावृतावृधौ'
अ. ४.२९.१

मित्रिन् - (१) मित्रवर्ग
'अमित्रान् मोत मित्रिणः'
अ. ११.९.२१
(२) मित्र वाला, (३) सहायवान् मित्र
'प्रखादः पृक्षे अभि मित्रिणो भूत्'
ऋ. १.१७८.४

मित्रियः - (१) स्नेही मित्र होने योग्य
'प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियः'
ऋ. ८.१९.८
(२) मित्र का किया हुआ (३) स्नेह वश किया हुआ
'मित्र एनं मित्रियात् पात्वंहसः'
अ। २.२८.१
(४) स्नेह-पूर्ण
'अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण'
ऋ. ७.६०.१; १४.२.१२

मित्रेरु - मित्र हिंसक
'जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरून'

ऋ. १.१७४.६

मिथती - हिंसा करती हुई - सेना

'आभिस्स्पृधो मिथतीररिषण्यन्'

ऋ. ६.२५.२; मै.सं. ४.१४.१२: २३५.३; तै.ब्रा. २.८.३.३.

मित्रास्पृध्या - परस्परं मत्सु संग्रामेषु भवा सेना - दया. ।परस्पर स्पर्धा से लड़ने वाली सेना ।

मिथुन - (१) छिद्र ,

'मिथुनं कर्णयोः कृधि'

अ. ६.१४१.२

(२) मिनोति श्रयति कर्मा, थुं इति नामकरणः, थ कारोवा नयतिः परोवनिः वा, समाश्रिता अन्योन्यं नयतः वनतः वा, मनुष्यमिथुनौ अपि एतस्मात् एव मेथन्तौ अन्योन्यं वनतः इतिवाः' (मि धातु श्रवण अर्थ में और थु नामकरण प्रत्यय या थकार से परे 'नी' या 'वन' धातु आता है, तब 'मि + न + थु' होकर मध्य का अन्त में और अन्त का मध्य में विपर्यय कर मिथुन शब्द बनता है । अर्थ है- (१) समाश्रित हो एक दूसरे की ओर जाना मिथुन है । काल भी एक दूसरे से परस्पर संयुक्त हो समाश्रित होता है ।

(३) 'मिथ' धातु का संगमन करना अर्थ है । 'वन' धातु का अर्थ कामना करना है । मनुष्य संगमन करते हुए एक दूसरे की कामना करते हैं । इस प्रकार 'मिथ + वन' का मिथुन हुआ (व का उ) इस । मत से दो धातुओं के योग से मिथुन बना है । अर्थ है-जोड़ा (३) मेघ (मेघा और हिंसा) से संग मनार्थक 'वन्' धातु मिलाकर मिथुन होता है । ये एक दूसरे का ताडन करते हुए सेवते हैं ।

(४) रात और दिन का जोड़ा - दया. (५) जोड़े नामों वाला द्यौ और पृथिवी -सा.

'उत स्वसारा युवती भवन्ती
आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम'

ऋ. ३.५४.७

अपनी अपनी परिधियों में घूमते हुए सूर्य और पृथिवी दिन और रात के जोड़े बनाते हैं । - दया.

दो बहनों के समान युवतियाँ सी द्यौ और पृथ्वी परस्पर अन्तर पर बोलती हैं । -सा.

मिथुनत्व - (१) परमपुरुष के साथ विराट् प्रकृति का होना, (२) मैथुन भाव, (३) एक भाव, (४) जगत् की उत्पत्ति का कार्य

'को विराजो मिथुन त्वं प्र वेद'

अ. ८.९.१०; मै.सं. २.१३.१०:१५९.१६

मिथुना - मिथुनौ (दम्पत्ति भाव से रहने वाला जोड़ा)

'अजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः'

ऋ. १०.१७.२; अ. १८.२.३३; नि. १२.१०

मिथुनासः - मिथुन का प्रथमा बहुवचन । वैदिक रूप । अर्थ - दिन रात के जोड़ा ।

'आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र
सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः'

ऋ. १.१६४.११; अ. ९.९.१३

हे आदित्य, तेरे इस चक्र में दिन रात रूपी जोड़ो के रूप में सात सौ बीस पुत्र हैं ।

मिथुया - (१) मिथ्या, झूठ का पक्ष

'न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्'

ऋ. ७.१०४.१३; अ. ८.४.१३

मिथू - (१) व्यर्थ, झूठमूठ, निष्प्रयोजन ।

'छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः'

ऋ. १.१६२.२०; वाज.सं. २५.४३; तै.सं. ४.६.९.४; का.सं. (अश्व) ६.५.

(२) असत्य वादी

'स यो न मुहे न मिथू जनोभूत्'

ऋ. ६.१८.८

मिथूकृत - संसर्ग से उत्पन्न शरीर ।

'प्र ते रथं मिथूकृतम्'

ऋ. १०.१०२.१; शां.श्रौ.सू. १९.११.२

मिथूदृशा - द्वि.व. । (१) उषासानक्ता का विशेषण । (२) एक दूसरे को स्नेह देखने वाले, (३) एक दूसरे के गुणों को दर्शाने वाले

'उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशा'

ऋ. २.३१.५

(४) विषयासक्ति से एक दूसरे को देखने वाले स्त्री पुरुष

'निष्वापया मिथूदृशा'

ऋ. १.२९.३; अ. २०.७४.३.

(४) मिथ्या दृष्टि से युक्त स्त्री पुरुष (६) दुःख से मिले विषय सुख को ही वास्तविक सुख मानने वाले, (७) परस्पर प्रेम से मिथुन होकर सुसंगत होकर देखने वाले ।

मिथोयोध – परस्पर युद्ध करने वाला सिपाही ।
'मिथोयोधः परामृष्टा'
अ। १२.५.२४

मिनन्ति – हिंसा करते हैं ।
' कदा ते मर्ता अमृतस्य धाम
इयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः'
ऋ. ६.२१.३
कब मनुष्य तुझ अमर के धाम में यज्ञ के इच्छुक कभी हिंसा नहीं करते । (२) नष्ट करती हैं ।
'ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि'
ऋ. ७.४७.३
वे नदियाँ इन्द्र के यज्ञादि कर्मों को (इन्द्रस्य व्रतानि) नष्ट नहीं करतीं (न मिनन्ति) ।

मिनानः – (१) तौलने वाला वणिक् । आज भी मेनन उपाधि मद्रास में हैं ।
'दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमानाः
जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे'
ऋ. ७.१८.१५
दुष्ट कलाबाज तौलने वाले वणिक् जन सुन्दर दान देने वाले यजमान या सुदास राजा के लिए विविध प्रकार से भोजन देवें ।

मिनीमसि – हम तोड़ते हैं ।
'प्र देव वरुण व्रतं ।
मिनीमसि द्यवि द्यवि'
ऋ. १.२५.१; तै.सं. ३.४.११.६; मै.सं. ४.१२.६: १९७.१०
हे परमेश्वर, जो भी व्रत हम दिन प्रतिदन तोड़ा करते हैं ।

मिनोति – श्रयति (श्रयण लेता है) । 'मि' धातु श्रयण लेना अर्थ में आया है । लट् प्र.पु. ए.व. का यह रूप है ।

मिमाति – निर्मिमीते, निर्वर्तयति, करोति, (निर्माण करता है, निवर्तन करना है, करता है) ।

मिम्यक्ष – 'अक्ष' धातु का यङ्लङ्गन्त रूप । अर्थ है-जल्द-जल्द चलती है या बार बार मिलकर एकता प्राप्त करती है-सा. (२) जानती है-दया.
'मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी'
ऋ. ६.५०.५
हे मरुतो, जिन तुम लोगों के साथ रुद्र की पुत्री माध्यमिका वाक् जल्द जल्द चलती है, अथवा बार बार मिलकर एकता प्राप्त करती है । -सा. अथवा जिनमें दिव्य गुण सम्पन्ना रानी राज्य कर्म जानती हैं ।

मिमानः – (१) देता हुआ ।
'ओ जो मिमानो विमृधो नुदस्व'
ऋ. १०.८४.२; अ. ४.३१.२
हे मन्यु ! हमें बल देकर (ओजो मिमानः) शत्रुओं को (मृधः) संग्राम से भगा (विनुदस्व) । (२) हिंसा करता हुआ ।
'दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमानाः'
ऋ. ७.१८.१५; नि. ६.६.

मिमाना – (वि,द्वि.व.) । मिमानौ, निर्मिमानौ, उत्पादयन्तौ (निर्माण या उत्पादन करते हुए या निर्माता) ।
मा + शानच् = मिमान । द्विवचन में मिमानौ । वैदिक रूप है 'मिमाना' ।
अर्थ है – (१) निर्माण करने वाले सूर्य और अग्नि या (२) अग्नि और वायु ।
'मिमाना यज्ञं मनुष्यो यजध्यै'
ऋ. १०.११०.७; अ. ५.१२.७; वाज.सं. २९.३२; मै.सं. ४.१३.३: २०२.७; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.१२.
मनुष्य की पूजा के निमित्त (मनुषो यजध्यै) यज्ञ का निर्माण करने वाले सूर्य और अग्नि (यज्ञं मिमाना) ।
(२) अग्नि और वायु – ज.दे.श. ।

मिमाय – निर्मिमीते (बनाते हैं) । लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग । माङ् धातु मान या निर्माण अर्थ में आया है ।

मिमिक्षतम् – सेचन करो ।

मिमिक्षुः – वृष्टि करने वाला ।
'गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारम्'
ऋ. ३.५०.३.

मियेध – (१) शत्रु हनन का कार्य संग्राम (२) मेघ अर्थात् ज्ञान रूप पवित्र यज्ञ, (३) परस्पर संगति या मैत्री भाव
'यत्त्वा होतारमनजन् मियेधे'
ऋ. ३.१९.५
(४) सत्संग करने वाला
आसानेभिर्यजमानो मियेधैः'
ऋ. ६.५१.१२
(४) पवित्र यज्ञ

'उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे'

ऋ. ७.१.१७

मियेध्य – डुमिञ् + केध्यच् = मियेध्य । अर्थ – (१) अग्नि द्वारा अन्तरिक्ष में पदार्थों का प्रक्षेप्ता, (२) यज्ञकर्त्ता यजमान, (३) हस्तक्रिया कुशल विद्वान्, (४) प्रजापति पद के योग्य राजा (४) ऋत्विक् (६) उपासना करने योग्य ईश्वर.

'वसिष्वा हि मियध्य
वस्त्राण्यूर्जां पते
सेमं नो अध्वरं यज'

ऋ. १.२६.१

हे यज्ञ कर्त्ता यजमान, ऋत्विक्, प्रजापति पद के योग्य राजन्, उपासना करने योग्य परमेश्वर, हे अन्नों, बलों, पराक्रमों और समस्त परम रसों के परिपालक (ऊर्जांपते) तू वस्त्रों को धारण कर (वस्त्राणि वसिष्व) और हमारे हिंसा रहित यज्ञ रूप कर्म कर ।

(७) मेघार्ह । (८) अग्नि का विशेषण ।

'वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य'

ऋ. १.३६.९; वाज.सं. ११.३७; तै.सं. ४.१.३.४; मै.सं. २.७.३: ७७.१६; ४.९.३; १२३.१२; का.सं. १६.१३; श.ब्रा. ६.४.२.९; तै. आ. ४.५.२.

मिषन् – मिष् (स्पर्द्धा करना) + शतृ = मिषन् । स्पर्द्धमानः (सदा स्पर्द्धा करता हुआ) । (२) आंखें निमीलित करता हुआ भूलोक-दया. (३) तरसता हुआ सूर्य – यास्क ।

'गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तम्'

ऋ. १.१६४.२८, अ. ९.१०.६; ऐ.ब्रा. १.२२.२; आश्व.श्रौ.सू. ४. ७.४; नि. ११.४२

मिह् – (१) मेघ, (२) शस्त्र वृष्टि करने वाला सैन्य

'मिहं वसान उपहीमदुद्रोत'

ऋ. २.३०.३

(३) जल वृष्टि करने वाली विद्युत

'न यां मिहमकिरद् ध्रादुनिँ च'

ऋ. १.३२.१३

जिस जल वृष्टि और अव्यक्त शब्द करने वाली विद्युत को भी मेघ चारों ओर फेंकता है वह भी सूर्य तक नहीं पहुंचती है ।

मी – (धा.) । गति करना ।

'यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे'

अ. ४.२४.४.

मीढ – संग्राम ।

'स ज्ञामिभिर्यत् समजाति मीढे

ऋ. १.१००.११

वह बन्धुवर्गों से मिलकर जब युद्ध में शत्रुओं को उखाड़ फेंकता है ।

मेढ – प्रजननाङ्ग

मेढ्रं ते शुन्धामि'

वाज.सं. ६.१४; श.ब्रा. ३.८.२.६.

मीढ्वान् – (१) मेघ के समान ज्ञान का वर्षण करने वाला, (२) बरसाने वाला

'यथा नो मीढ्वान् स्तवते सखा तव'

ऋ. २.२४.१

(३) वृष्टि द्वारा सेचक

'मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात्'

ऋ. १.२७.२; साम. २.९८५

मेघ के समान प्रजाओं पर सुख और शत्रुगण पर शस्त्र आदि बरसाने वाला वीर्यवान् पुरुष हमारा प्रेरक आज्ञापक अभिषेक युक्त राजा हो ।

मीढुष् – (१) समस्त संसार में जीवन सेचन करने वाला । मिह (बरसाना) + उष् = मीढुष् ।

'महिव्रतस्य मीढुषः'

अ. १३.३.१

(२) सर्वदाता

'अरं दासो न मीढुषे कराणि'

ऋ. ७. ८६.७

(३) सुखों का वर्षण करने वाला

(४) जल बरसाने वाला मेघ

'मित्राय वोचं वरुणाय मीढुषेः'

ऋ. १. १२९.३; १३६.६.

मीढुषःमरुतः – (१) मनोरथों को बरसाने वाले मरुत् – सा.

(२) भक्त मनुष्य-दया. ।

मीढुषः – (ब. व.) । ए.व. का रूप मीढुष् है । अर्थ- (१) मनोरथों को बरसाने वाले मरुत् -सा. (४) परमात्मा के भक्त या सेवक – दया. ।

'तां आ रुद्रस्य मीढुषो विवासे'

ऋ. ७.५८.५

मैं उन मनोरथों को बरसाने वाले रुद्र के पुत्र मरुतों की परिचर्या करता हूँ (आ विवासे) – सा. । मैं दुःख भंजक परमात्मा के (रुद्रस्य) सेवक मनुष्यों की सेवा करता हूँ (मीढुषः

आविवासे) - दया.

मीढुष्टम - (१) वृक्ष तथा उद्यान् आदि के सेचन में समर्थ
(२) रुद्र
'नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च'
वाज.सं. १६.२९; वाज.सं. (का.) १७.४.३; तै.सं. ४.५.५.१; मै. सं. २.९.५: १२४.११; का.सं. १७.१४
'मीढुष्टम शिवतम'
वाज.सं. १६.५१; वाज.सं. (का.) १७.८.५; तै.सं. ४.१०.४; मै. सं. २.९.९: १२७.१५; का.सं. १७.१६.
(४) प्रेसेत्कृतम्, (५) अति सेवनीय (६) सुखों ज्ञानों और ऐश्वर्यों को बरसाने वाला
'कद् रुद्राय प्रचेतसे'
मीढुष्टमाय तव्यसे ।
वोचेम शन्तमं हृदे'
ऋ. १.४३.३
उत्तम ज्ञान से युक्त (प्रचेतसे), सुख ज्ञान और ऐश्वर्यो को प्रजा पर बरसाने वाले (मीढुष्टमम्) । बहुत बड़े बल शाली (तव्यसे) हृदय में विराजमान (हृदे), दुष्टों को रुलाने वाले राजा (कद् रुद्राय) परमेश्वर तथा उत्तम उपदेश देने वाले आचार्य को प्रसन्न करने के लिए शान्ति दायक वचन बोलें ।

मीढुष्मती - (१) सेक्ता वीर्यप्रदः स्वामी यस्याः - दया.
(जिसका स्वामी वीर्य प्रद हो)
(२) वर्षा करने वाले मेघ से युक्त मेघमाला, (३) ज्ञान, वर्षा और ऐश्वर्य की वर्षा करने में समर्थ प्रजा पोषक स्वामी की प्रजा ।
'मीढुष्मती व पृथिवी पराहता'
ऋ. ५.५६.३

मीढुष्मान् - (१) उत्तम सेचन करने वाला, (२) प्रजा को बढ़ाने वाले गुणों से युक्त
'मीढुष्मन्तो विष्णुर्मृडन्तु वायुः'
ऋ. ६.५०.१२

मीमयत् - मीमयति, शब्दं करोति (शब्द करता है) । मी धातु शब्द कर्मा अर्थात् शब्द करना अर्थ में आया है ।

मीमयति - शब्द करता है ।

मीमांसमानः - (१) विवेचना करता हुआ ।
'पृथङ् नरो बहुधा मीमांसमानाः'
अ. ९.१.३
(२) जो स्वयं शंका कर रहा हो ।
'न द्विषतोऽन्नमश्नीयात्
न मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य'
अ. ७.६ (२) ७

मीमांसित - (१) शंका का पात्र, सन्देह पात्र पुरुष
'न द्विषतोऽन्नमश्नीयात्
न मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य'
अ. ९.६ (२) ७

मीमृषः - (१) 'मृष्' (मर्षण करना, क्षमा करना, मार्जन करना) के लोट् म.पु. ए.व का रूप । अर्थ-क्षमा कर, मार्जन कर या परिमार्जित कर ।
(२) दूर का ।
'इमामग्ने शरणिं मीमृषो नः'
ऋ. १.३१.१६; अ. ३.१५.४; ला.श्रौ.सू. ३.२.९; आश्व.गृ.सू. १. २३.२५
हे अग्नि, हमारी इस व्रत-लोभ रूपिणी हिंसा या मारण रूपिणी संसृति को क्षमा कर या मार्जन कर , -सा.
हे परमेश्वर, तू हमारी इस मृत्यु को परिमार्जित कर । - दया .
हे अग्नि, परमेश्वर, हमारी इस नाश करने वाली अविद्या या हिंसा भावना को दूर कर ।

मीयमान - मापे जाने योग्य ।
'सुमिति मीयमानः'
ऋ. ३.८.३; मै.सं. ४.१३.१: १९९.५; का.सं. १५.१२; ऐ.ब्रा. २. २.८; तै.ब्रा. ३.६.१.१.

मीवान् - (१) हिंसक, (२) घातप्रतिघात में कुशल
'कुमारेण च मीवता'
वाज.सं. २८.१३; तै.ब्रा. २.६.१०.१

मुक्षी - मुञ्ज ।

मुक्षीजा - (१) मुञ्ज की रस्सी
'मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति'
ऋ. १.१२५.२; नि. ५.१९.
जैसे मुञ्ज की रस्सी से (मुक्षीजया) वेगवान् अश्व को बांधते हैं (उत्सिनाति)
(२) मुक्षीजा मोचनात् च सयनात च तननात् च (मुच्, सि और तन क्रियाओं के योग से 'मुक्षीजा' पद बना है । इस की सिद्धि पृषोदरादि शब्द की तरह की गई है) ।
अवमुच्यते पक्षिणः पादे, सीयते बध्यते हि तथा

पक्षी, अथवा सा मुक्षीजा पक्षिणः बधार्थे तन्यते ।
मृगपक्ष्यादि बन्धनरज्जुः (मृग पक्षी आदि को बांधने की रस्सी मुक्षीजा है) ।
मुच + सि + तन् = मुक्षीज । तन् का इज हो गया है ।
मुच्यमाना सती बन्धनं जयति (पक्षी मुक्त किए जाने पर बन्धन पर जय पाता है) । पक्षी को पालने वाला पक्षी का पैर बांध कर छोड़ देता है । इसी रस्सी को मुक्षीजा कहते हैं ।

मुख्या – मुख में विद्यमान ।
'वि ते मुख्यां नयामसि'
अ. ६.४३.३

मुग्ध वैनं शिन – (१) मोह में प्राप्त होकर विनष्ट होने वाला, (२) कार्त्तिक मास, (३) नाशवान् पदार्थों या आचरणों में लिए पुरुष ।
'मुग्धाय वैनं शिनाय स्वाहा'
वाज.सं. ९.२०; १८.२८; श.ब्रा. ५.२.१.२

मुग्धःदेवाः – (१) परमात्मा से मुग्ध दिव्य पुरुष, (२) मूढ़ देवता- सा .
'मुग्धा देवा उत शुनायजन्त'
अ. ७.५.५.

मुच्यते – मुक्त होता है, छुटकारा पाता है, मुच् धातु के कर्म वाच के प्र.पु.ए. व का रूप । दे. 'कृणुते'
'स पादुरस्य निर्णिजो न मुज्यते'
ऋ. १०.२७.२४; नि. ५.१९
इस आदित्य का गमन (स अस्य पादुः) श्रम से (निर्णिजः) मुक्त नहीं होता (न मुच्यते) ।

मुञ्ज – (१) शर औषदि, काश के चार प्रकार हैं । काश, मुञ्ज, मृदुदर्भ और शर
'अन्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत्'
अ. १.२.४
काशः स्वादू रसे तिक्तः
विपाके वीर्यतो हिमः
तर्पणो बलवद् वृष्यः
श्रम शोषभयापहः
काशद्वयं च पितास्र
कृच्छ्रजित् मधुरं हिमम्
मुञ्ज के गुण –
मुञ्जोऽनुष्णो विसर्पास्र
मूत्र वस्त्वक्षि रोगनुत्
वाणाह्वो मधुरः शीतः
पित्तदाहतृषाषहः ।
दर्भ के गुण –
यज्ञमूलं हितं रुच्यम्
मधुरं पित्त नाशनम्'
रक्तज्वर तृषाश्वास
कामल दोष शोषकृत्
दर्भौ द्वौ च गुणे तुल्यौ
तथापि च सितोऽधिकः ।
(२) विमुच्यते इषीकपा (इषीका या सींक से वह नियुक्त किया जाता है, निकाला जाता है इसी से इसका नाम मुञ्ज हुआ) ।
इष् (गत्यर्थक) + ईकक् = ईषक् । मुच् + क = मुञ्ज (क् का ज् और नुम् का आगम बाहुलक नियम से) ।

मुञ्जनेजन – (१) मुञ्जों से शुद्ध किया हुआ, (२) रोगों से छुड़ाने और शुद्ध कर देने वाला ओषधि रस ।
'इदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम्'
ऋ. १.१६१.८

मुद् – (स.)मुद् + क्विप् । (१) सबको मोद देने वाला, सबको हर्षप्रदान करने वाला ।
'तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम'
वाजसं. १८.३८; तै.सं. ३.४.७.१,
(२) हर्षदायिनी सम्पदा
'मुदः प्रमुद आसते'
ऋ. ९.११३.११

मुद्ग – (१) मूंग, एक दहलन अन्न ।
'मुद्गाश्च मे खश्वाश्च मे'
वाज.सं. १८.१२; तै.सं. ४.७.२; मै.सं. २.११.४: १४२.४; का.सं . १८.९.

मुद्गल – (१) आनन्दमयी दशा में लीन होने वाला जीवनमुक्त (२) आनन्द धन योगी
'यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलम्'
अ. ४.२९.६
(३) आनन्द प्राप्त करने वाला विद्वान्
'गवां मुद्गल प्रधने जिगाय'
ऋ. १०.१०२.५; नि. ९.२३
(४) मुद्गवान् मुद्गलिकः वा, मदनं गिलति इति वा, मदङ्गिलः वा । मुद्ग + ल (मत्वर्थक) मुद्गलः मुद् + गिल + क = मुद्गल । पृषोदरादिवत् ।

अर्थ- मुद्गर जिसे योद्धा अखाड़े में भांजते हैं, (२) मुद्ग की विद्या वाला, (६) मुद्गप्राय भोजन करने वाला मुद्गल है, (७) मदन या काम देव को मिल जाने वाला भी मुद्गल है । (८) मद को ही गिल जाने वाला, (९) मद या इर्ष को गिल जाने वाला (१०) निर्वृत्त सर्वेन्द्रियार्थ- जो सभी इन्द्रियों के विषयों से निवृत्त हैं वह मुद्गल है, (११) भार्म्यश्व का पुत्र मुद्गल ऋषि -सा. (१२) सात्विक अन्न खाने वाला, जितेन्द्रिय , निरभिमान या हर्ष शोक में समचित्त राजा - ज.दे.श.

'तेन सूभर्वं शतवत् सहस्रम्'
गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय'

उस सांढ से मैं मुद्गल ने सुन्दर लक्ष लक्ष गाएं युद्ध में जीतीं । -सा.

उस सांढ़ से सात्विकान्न भोजी, जितेन्द्रिय, निरभिमान या हर्ष शोक में समचित्त राजा ने (मुद्गलः) धनापहारक या प्रजाभक्षक शत्रु राजा को (सूभर्वम्) तथा लक्ष लक्ष गाएं युद्ध में जीतीं ।

मुद्गलानी - (१) सुखजनक साधनों को प्राप्त करने वाली सेना ।

'रथीरभून्मुद्गलानी गविष्ठौ'

ऋ. १०.१०२.२

मुद्र - मुद् + र । आनन्द जनक

'यद्वो मुद्रं पितरः सोम्यं च'

अ. १८.३.१९

मुद्रा - (१) मुद् + र + टाप् (मर्यादा) ।

मुनिकेश - (१) मुनि के समान जटा वाला

'उद्धर्षिणं मुनिकेशम्'

अ. ८.६.१७

मुनेःमूलम् - (१) मुनि अर्थात् तेजस्वी अग्नि का मूल अर्थात् प्रतिष्ठा स्थान-आग्नेय तत्व (२) तीव्र जलन पैदा करने वाला पदार्थ (३) सम्भवतः मुनि नामक कोई औषधि कौशिक सूत्र में गण्डमाला की चिकित्सा के लिए विहित । तीखी शलाका (शर) से गण्डमाला के फोड़ों को फोड़कर उनका रक्त निकालना, प्रातः काल गर्म जल से धोना, काली ऊन को जलाकर उसे घी में मिलाकर मलहम बनाकर लगाना । कुत्ते से चटाना, गले पर से गन्दा खून निकालने के लिए गोह या जोंक लगाना, सेंधा नमक पीसकर उन पर छिड़कर कर मिट्टी लगाकर मलना, तांत के गण्डमाला के नसों को बांधना ।

मुमुक्षु - (१) एक दम भाग छूटने को तत्पर अश्व, (२) अपने को संसार - बन्धन से मुक्त करने की इच्छा करने वाला ।

मुमुग्धि - भृशं मुञ्च (बार बार मुक्त कर) । मुच् धातु के यङन्त म. पु. ए.व. का रूप ।

' मुमुग्ध्यस्मान् निधयेव बद्धान्'

ऋ. १०.७३.११; साम. १.३.१९; का.सं. ९.१९; ऐ.ब्रा. ३.१९.१७; तै.ब्रा. २.५.८.३; तै.आ. ४.४२.३; आप.श्रौ.सू. ६.२२.१; नि. ४.३

हे आदित्य, बन्धनों में बंधे पक्षियों की तरह (निधया बद्धान् इव) हमें अपनी किरणों से युक्त कर (मुमुग्धि) ।

मुमुचानः - (१) मुक्त होने वाला का टूटने वाला फल या खूंटे से घूटने वाला पशु

'द्रुपदादिव मुमुचानः'

अ. ६.११५.३; वाज.सं. २०.२०; मै.सं. ३.११.१०: १५७.११; का.सं. ३८.५; श.ब्रा. १२.९.२.७; तै.ब्रा. २.४.४.९; ६.६.३; आप. श्रौ.सू. १९.१०.५.

मुर् - शत्रुमारक - बली पुरुष ।

'न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरः'

ऋ. ८.६६.२; साम. २.३८

मुष् - चोर

'समीं पणेरजति भोजनं मुषे'

ऋ. ५.३४.७

मुष्क - (१) मुष् + क । (२) मुख (खण्डनार्थक) + क = मुष्क (षत्व छान्दस) । मोचनात् वा इति निरुक्तम् । प्रषेर्वा । षस्य मः छान्दस ।

अर्थ - (१) शत्रुओं या अज्ञान का खण्डन करने वाला

(२) बन्धन से छुड़ाने वाला (३) पुष्टि करने वाला क्षात्र या ब्रह्म बल ।

'मुष्काविदस्या एजतः'

अं. २०.१३६.१; वाज.सं. २३.२८; शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.२

(४) अण्डकोष, (५) उत्पादक अंग

'अरायानस्या मुष्काभ्याम्'

अ. ८.६.५

मुष्कभारः - (१) परिपुष्ट, (२) सामर्थ्यवान्
'प्रमुष्कभारः श्रव इच्छमानः'
ऋ. १०.१०२.४

मुष्कयोर्बद्धः - (१) अण्डकोषों में बद्ध (२) लंगोट बद्ध ब्रह्मचारी (३) गर्भाशयादि स्थानों में बंधा हुआ।
'किमु त्वावान् मुष्कयोर्बद्ध आसते'
ऋ. १०.३८.५; तै.ब्रा. १.२२८

मुष्कर - (१) कमल का नाल।
'क्षिणोमि मुष्करं यथा'
अ. ६.१४.२

मुषायत् - (१) अचानक ले जाता हुआ।
'मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान्'
ऋ. १.६१.७; अ. २०.३५.७
(२) अपहरण करता हुआ

मुष्काबर्ह - बैलों के अण्डकोशों को तोड़ देना, कुटवा देना या कटवा देना।
'मुष्काबर्हो गवामिव'
अ. ३.९.२

मुषित - नष्ट हो गया हुआ।
'हिमेव पर्णा मुषिता वनानि'
ऋ. १०.६८.१०; अ. २०.१६.१०

मुष्टिः - (१) दुःख से छुड़ाने वाला सुसंगठित राष्ट्र, (२) शत्रुनाशक शस्त्रबल, (३) मुट्ठी, (४) राष्ट्र (राष्ट्रंमुष्टिः) (५) शासन।
'गभे मुष्टिमतं सयत्'
वाज.सं. २३.२४; तै.सं. ७.४.१९.४; श.ब्रा. १३.२.९.७; तै. ब्रा. ३.९.७.५; आश्व.श्रौ.सू. १०.८.१०; शां.श्रौ.सू. १६.४.१.
(६) मुष्टिः मोचनात् वा, मोषणात् वा मोहनात् वा। मुच्, मुष् या मुह् धातु से 'मुष्टि' शब्द बना है। इसमें क्या छिपा हुआ है ऐसा पूछकर मुट्ठी को लोग खोलते या बन्द करते हैं अतः यह मुष्टि है (मुच्यते ह्यसौ किमस्त्यपिहितेऽ त्रेति केनचित् पृष्टे सति) मुच् + क्तिन् = मुष्टि। परधन हरण करने में मुट्ठी का उपयोग किया जाता है अतः यह मुष्टि हुआ (तेन हि मुष्यते पर धनम्)। मुष् + क्तिन् = मुष्टि।
मुट्ठी में क्या रखा है यह जानने के लिए सभी उत्सुक या मुग्ध रहते हैं अतः इसे मुष्टि कहा गया (तत्र हि मुह्यतिपरः किमेतत् मुष्टौ) मुह् + क्तिन् = मुष्टि। क्तिच् प्रत्यय भी किया जाता है। मुच् के च् का या मुह् के ह् का ष पृषोदरादिवत् हुआ है।
क्तिन् प्रत्यय कर्म, करण या अधिकरण अर्थ में हुआ है।

मुष्टिहत्या - (१) मुट्ठी या मुक्के से हत्या, (२) चित्त वृत्ति को विषयों में हर ले जाने वाली या आत्मा के स्वरूप को संप्रमोष या विस्मरण करा देने वाली तामस तृष्णा को मारना ही मुष्टि हत्या है।
'नि येन मुष्टिहत्यया
नि वृत्रा रुणधामहै'
ऋ. १.८.२; अ. २०.७०.१८
(३) बाहुयुद्ध।

मुष्टिहा - (१) मुक्कों से मारने वाला।
'शकम्भरस्य मुष्टिहा'
अ. ५.२२.४
(२) चोरी आदि को नष्ट कर देने वाला, (३) मुट्ठी के समान संघ बनाकर रहने वाले पांचों प्रजाओं द्वारा शत्रु को दण्डित करने वाला
'युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतः'
ऋ. ५.५८.४

मुषीवान् - (१) स्तेय कर्मण भित्तिं भित्वा दृष्टिमावृत्य परपदार्थपहर्त्ता (सेन्ध मारकर चोरी से दूसरे की चीज लेने वाला)।

मुसल - मुहुसरम् मुसलम् (जो बार बार अन्न के प्रति चलता है)। मुहु + सृ + अलच् = मुसल (मुरल -उरल -मुसल-कुवल आदि के सदृश)। मुहु का मुस और सृ के स का लोप हो गया है।

मुह - मोह।
'स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्'
ऋ. ६.१८.२

मुहुक - (१) बार बार कार्य करने वाला सहकारी, (२) बार बार जगत् को बनाने वाला विकृति युक्त कारण।
'यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति'
ऋ. ४.१७.१२
(३) युद्ध
'कस्मिञ्चच्छूर मुहुके जनानाम्'
ऋ. ४.१६.१७

मुहुः - मुहुः मूढ इव कालः । जो समय मूढ़ के समान अव्यक्त ही चला जाता है । मुह् + उस् मुहुष् अथवा मुहुः । यह अव्यय है। (२) यावत् आभीक्षणञ्च इति - यास्क । अर्थात् जब तक आभीक्षण है तब तक मुहुः है । काल बार बार आता है और चला जाता है । सम्मुख आए समय को आभीक्षण या अभिक्षण कहते हैं । इसी से बिगड़ कर 'अभी' बना है ।

'मुहुरुक्था च शंसत'

ऋ. ८.१.१; अ. २०.८५.१; साम. १.२४२; २.७१० परमात्मा के प्रशस्त गुण कर्मों का बार बार गान करो ।

मुहुर्गी - (१) बार बार गर्जन करने वाला, (२) बार बार सेना और अधीन रथों की आज्ञाएं देने वाला ।

'मुहुर्गीरितो वृषभः कनिक्रदत्'

ऋ. १.१२८.३; का.सं. ३९.१५.

बार बार गर्जन करने वाला बैल या साँढ़ जिस प्रकार गरजता और वीर्य को गौओं में स्थापन करता और बार गर्जन करने वाला मेघ जल को भूमियों पर बरसाता है....

मुहूर्त - (१) मुहूर्तम् एवैः अयनैः अवनैः वा (मुहूर्त अयन तथा अवन अर्थों में बना है) । इ (जाना) + ल्युट् = अयन । अव (कान्त्यर्थक) + ल्युट् = अवन, इ (गत्यर्थक) + अच = एव । मुहूर्त वह है जो गमन शील हो या रक्षा करने वाला हो या सुन्दर हो ।

(२) मुहुः + ऋतुः = मुहूर्तः (बार बार आने वाला काल) । मुह + उस् = मुहुः ऋ (गत्यर्थक) + तु = ऋतु, मुहुः + ऋतु = मुहूर्त । अर्थ - क्षण, समय का एक भाग, शुभसमय ज्योतिष में ४८ मिनट का एक मुहूर्त माना गया है । किञ्चित काल

(३) घड़ी भर, (४) मुहुः + ऋतम् = मुहूर्त । बार बार ऋत अर्थात् सत्य ज्ञान

'ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः'

ऋ. ३.३३.५

मूक - (१) गूंगा ।

'अनन्ताय मूकम्'

वाज.सं. ३०.१९; तै.ब्रा. ३.४.१.१३.

मूजवत् - (१) मूजवान् नामक पर्वत जहाँ सोमलता का होना वेद में लिखा है । मूजवान, शब्द मुञ्जवान् से हुआ है । इस पर्वत पर मुञ्ज (झलास) प्रचुर मात्रामें पाया जाता है । अत मुञ्ज + वतुप् = मुञ्जवत् बना । 'मञ्जै तद्वान्' (मुञ्जों से भरा) पृषोदरादिवत् सिद्ध ।

'तेनावसेन परो मूजवतोऽतीहि'

तै.सं. १.८.६.२; मै.सं. १.१०.४: १४४.१४; १.१०.२०: १६०.१५; का.सं. ९.७; ३६.१४; ला.श्रौ.सू. ५.३.१२.

हे रुद्र, उस पाथेय के साथ (तेन अवसेन) मूजवान् पर्वत के उस पार मूजवतः पर जा (अतीहि) ।

मूजवान् - (१) मूंज वाला प्रदेश, (२) मूजवान् पर्वत, (३) कमजोर देह धारी

'ओको अस्य मूजवन्तः'

अ. ५.२२.५

मूत्र - मुच्यते यत् तत् मूत्रम्

उणादि - ४.१६३

अर्थ - मूत्र, त्यागने योग्य पदार्थ ।

'रेतो मूत्रं वि जहाति'

वाज.सं. १९.७६, मै.सं. ३.११.६: १४९.४; का.सं. ३८.१; तै. ब्रा. २.६.२.२.

मूर - (१) मूर्च्छाकारी विचार ।

'याघं मूरमादधे'

अ. १.२८.३; ४.१७.३

(२) मुह् + क्त = मूढ़ = मूर । मूर्ख, अज्ञानी ।

'मूरा अमूर न वयं चिकित्वः
महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से'

ऋ. १०.४.४; नि. ६.८

हम विद्यार्थी मूढ़ हैं, हम जगत्पिता की महिमा नहीं जानते । हे अमूढ़ मित्र वनस्थ आप उसका महत्व जानते हैं । अथवा, हे अमूढ़ चेतनवान् अग्नि, हम मूढ़ भला तेरा माहात्म्य क्या जानें । तू ही अपना माहात्म्य जानता है । (३) मृत्यु । मृङ् (प्राण त्याग करना) से मूर बना है । आप्टे ने मृत्यु अर्थ ही स्वीकार किया है ।

मूरदेव - (१) मरने मारने वाला

'परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि'

ऋ. १०.८७.१४; अ. ८.३.; १०.५.४९

(२) मारक व्यापाराः राक्षसाः -सा. (मारने वाले राक्षस)

(३) मूलेन औषधेन दीव्यन्ति परेषां हननाय क्रीडन्ति
(४) अथवा, मूढ़ाः कार्याकार्यविभागबुद्धि शून्याः सन्तो ये दीव्यन्ति -सा.।
हिंसक राक्षस या विष औषधों से दूसरों को मार कर मजा लूटने वाले का विवेक रहित ही जूआ खेलने वाले।
(४) मूर्ख देवों को पूजने वाले
(६) मूढ़ होकर व्यसनों में क्रीड़ा करने वाले
'आ जिह्वया मूर देवान् रभस्व'
ऋ. १०.८७.८; अ. ८.३.२.
(७) मृत्यु की पीड़ा देने वाला।
'विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु'
ऋ. ७.१०४.२४; अ. ८.४.२४

मूर्ण - तोड़ दिया गया।
'मूर्णा मृगस्य दन्ताः'
अ. ४.३.६

मूर्धा - (१) शिरोवत् प्रधानभूत, सिर के सदृश जो प्रधान है, मूर्धा।
'मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निः'
ऋ. १०.८८.६; नि. ७.२७.
रात में अग्नि भूलोक का मूर्धा रूप होता है। आधुनिक अर्थ- ललाट, भौंह, सिर, प्रधानभूत, चोटी, शीर्ष, नेता मुखिया, आगे, सामने
(२) मूर्तम्, अस्मिन्, धीयत इति मूर्धा। मूर्त + धा + कनिन् = मूर्धन् (इसमें प्राणिमात्र उप निबद्ध होकर रखा है, अतः यह मूर्धन् है)। मूर्तधा से ही मूर्धा हुआ। जैसे सिर कट जाने से प्राणी अवश्य मृत्यु का भागी होता है। उसी प्रकार अग्नि के अभाव में सभी मर जायेंगे। अनिवार्य होने से भूलोक का मूर्धा माना गया है। अर्थ है- अग्नि, मूर्धा

मूल - (१) आदिकारण
'नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यः'
अ. ६.१३.३
(२) मूल नामक नक्षत्र
'ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम्'
अ. १९.७.३
(३) मूलं मोचनात् वा मोषणात् वा मोहनात् वा (मूल शब्द मुच्, मुष् या मुह् धातु से बना है)। मुच, मुष्, मुह्, + लक् = मूल। धातु का मू भाव। जड़ उखाड़ी जाती है (मुच्यते), जड़ पृथ्वी से रस चूसती है (मुष्णाति) तथा जड़ मूढ़ के समान बलवान् होती है (मूढ़ भवति)।

मूलकृत् - (१) अपनी जड़ आप ही काटने वाला
'यः कृत्याकृन्मूलकृद् यातुधानः'
अ. ४.२८.६

मूलबर्हण - (१) मूल नक्षत्र जिसमें उत्पन्न बालक मूल का ही नाश करता है-सा.
(२) नाभि में बालक की लगी नाड़ी का काटना -ज.दे.श.
'मूलबर्हणात् परि पाह्येनम्'
अ. ६.११०.२; ११२.१

मूलबर्हणी - (१) मूल का नाश करने वाली।
'मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा'
अ. १२.५.३३

मूषः - मुष् (चुराना) + क्विप् = मुष्। मूस अन्न चुराता है। मूष् शब्द बहुवचनान्त है। अर्थ है- मूस।
'मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः'
ऋ. १.१०५.८; १०.३३.३; नि. ४.६.
मुझे मानसिक चिन्ताएं या कामनाएं (आध्यः) उसी प्रकार खाए जाती है जैसे मूस मैला सूत्र, घी लगी पूंछ या अपना जननेन्द्रिय।

मूषिक - मूष् (स्तेय) + किकन् = मूषिक। अर्त- (१) मूस, (२) चोर।

मृक्तवाहस् - (१) शुद्ध विद्या का ग्रहण करने वाला, (२) ज्ञान कर्म में निष्ठजीव।
'द्वितीय मृक्तवाहसे'
ऋ. ५.१८.२

मृक्षतम् - दूर करो।

मृक्ष - अतिशुद्ध - इन्द्र
'यः शक्रो मृक्षो अश्व्यः'
ऋ. ८.६६.३; शां.श्रौ.सू. १८.८.१५.

मक्षिणी - (१) शुद्ध प्रजा, (२) योग भूमि, (३) विशुद्ध भूमि।
'देवापिना प्रेषिता मृक्षिणीषु'
ऋ. १०.९८.६

मृग - (१) सिंह, (२) ज्ञानी जनों द्वारा खोजने योग्य, (३) परम पवित्र पावन परमेश्वर।
'द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान्'

ऋ. ७.८७.६
(४) मृग ।
'स पक्षन्महिषं मृगम्'
ऋ. ८.६९.१५; अ. २०.९२.१२
(५) इधर उधर भागने वाला या आक्रामक हिंसक पशु या शत्रु, (६) मन (७) हिरण ।
'सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तः'
ऋ. ६.७५.११; वाज.सं. २९.४८; तै.सं. ४.६.६.४; मै.सं. ३.१६.३ : १८७.२; नि. ९.१९.
यह इषु अर्थात् बाण सुन्दर पंख आच्छादित करता है तथा इसका दांत मृग के सिंह जैसा होता है । (अस्य दन्तः मृगः) (९) मृज् (गत्यर्थक) + घ = मृग । यहां बाहुलक से वृद्धि नहीं हुई है । 'चुजोः कः' से ज् का ग् ।
नित्यं ह्यसौ मार्ष्टि गच्छति (यह सदा चलता है अतः मृग है) ।
(१०) सिंह और व्याघ्र के अर्थ में प्रयोग–
'मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः'
ऋ. १.१५४.२; १०.१८०.२; अ. ७.२६.२; ८४.३; साम. २.१२२३; वाज. सं. ५.२०; १८.७१; तै.सं. १.६.१२.४; मै.सं. १.२.९: १९.१२; ४.१२.३: १८३.१४; का.सं. २.१०; ८.१६; श.ब्रा. ३.५.३.२३; ९.५. २.५.
हे इन्द्र, तू सिंह व्याघ्र के समान भयंकर (मृगो न भीमः) हिंसक होने के कारण कुत्सित गमन या कुत्सित चरण या सर्वत्रगामी एवं पर्वत निवासी है (गिरिष्ठाः)

मृगदन्तः – मृग या सिंह के जैसा दांत ।

मृगयः – (१) शुद्ध या स्वामी प्रभु का अन्वेषक ।
'निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनः'
ऋ. ८.३.१९

मृगण्युः – मृगया करने वाला ।
'युवां मृगेन वारणा मृगण्यवः'
ऋ. १०.४०.४

मृगयस् – (१) प्राणी –दया. (२) जल एवं खाद्य अंश ढूंढने वाला प्राणी ।
'धन्वान् वा मृगयसो वितस्थुः'
ऋ. २.३८.७

मृगयक् – मृगो का शिकारी ।
'नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः'
वाज.सं. १६.२७; मै.सं. २.९.५: १२४.७ का.सं. १७.१३

मृगय – व्याधा
'भृत्यवे मृगयुम्'
वाज.सं. ३०.७; तै.ब्रा. ३.४.१.३

मृगशिरः – मृगशिरा नक्षत्र ।
'अस्तुभद्रं मृगशिरः शमार्द्रा'
अ. १९.७.२

मृगःहस्ती – (१) शुद्ध श्वेत हाथी (२) हाथी पशु ।
'मृगो न हस्ती तविषीमुषाणः'
ऋ. ४.१६.१४

मृगाणां माता – (१) वनस्थ वृत्ति वनमृगों की माता तुल्य है, (२) आत्मज्ञान की खोज करने वाले गुणों अर्थात् तत्वान्वेषियों के लिए माता स्वरूप वनस्थ वृत्ति ।
'प्राहं मृगाणां मातरम्
अरण्यानिमशंसिषम्'
ऋ. १०.१४६.६

मृच् – मृचि (हिंसार्थक) + क्विप् = मृच् । अर्थ (१) विनाशकारी साधन ।
'मा नो मृचा रिपूणाम्'
ऋ. ८.६७.९

मृजानः – पवित्र करता हुआ ।
'कस्ये मृजाना अति यन्ति रिप्रम्'
अ. १८.३.१७

मृड – (१) दया कर, हिंसा न कर ।
'अवसाय पद्वते रुद्र मृड'
ऋ. १०.१६९.१; तै.सं. ७.४.१७.१; नि. १.१७.
हे रुद्र, तू इस चरण वाले, चल चल कर घास चरने वाली गौ पर दया कर ।
(२) सं. । सबको सुखी करने वाला दयालु प्रभु ।
'मृडा सुक्षत्र मृडय'
ऋ. ७.८९.१–४

मृडति – प्रयच्छति (प्रदान करता है) मृड धातु दानार्थक है । दया और पूजा अर्थों में भी यह धातु आया है । (मृडयति रूप दानकर्मा पूजाकर्मा वा) उपदया का अर्थ रक्षा करना है ।

मृडाति – मृडातु । बल तथा धन से संस्कृति युक्त करे । मृड् धातु का लोट् अर्थ में लट् प्र. पु.ए.व. में प्रयोग ।
'स नो मृडाती दृशे'

ऋ. ४.५७.१; अ. ७.१०९.१; तै.सं. १.१.१४.२; मै.सं. ४.११.१; १६०.४; का.सं. ४.१५; आप.मं.पा. २.१८.४७; नि. १०.१५.

वह क्षेत्रपति हमें इस प्रकार के लाभ तथा सुख भोग के लिए बल तथा धन से संस्कृत या युक्त कर।

मृडयत्तम् - सब से अधिक सुख देने वाला -अग्नि।

'सोमाहुतो जरसे मृडयत्तमः'

ऋ. १.९४.१४

मृडयन्तु - प्रयच्छन्तु, रक्षन्तु, पूजयन्तु (दें, रक्षा करें, पूजा करें)।

मृडयाकु - (१) सबको सुख देने वाला।

'क्वस्य ते रुद्र मृडयाकुः'

ऋ. २.३३.७

(२) दयाशील।

'सुशेवो नो मृडयाकुः'

ऋ. ८.७९.७

मृडीक - (१) उत्तम सुख।

'वि मृडीकाय ते मनः
रथीरश्वं न सन्दितम्
गीर्भिर्वरुण सीमहि'

ऋ. १.२५.३

हे वायु, जैसे रथी थके घोड़े को पुचकारता है उसी प्रकार हम भी सुख के लिए तेरे हृदय या ज्ञान को स्तुतियों से बांधते हैं (सीमहि)।

मृण - उच्छेद करना।

'सर्वांश्च प्रमृणन् क्रिमीन्'

अ. ५.२३.६

मृन्मयी - मिट्टी की बनी।

'मृन्मयीं योनिमग्नये'

वाज.सं. ११.५९; तै.सं. ४.१.५.४; मै.सं. २.७.६: ८१.५; का.सं . १६.४; श.ब्रा. ६.५.२.२१.

मृतभ्रज् - नष्टवीर्य, नष्टतेजाः।

'वरुणाय मृतभ्रजे'

अ. ४.४.१

मृतस्य स्वधा - मृत गत देह का निज कर्मफल।

'जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिः'

ऋ. १.१६४.३०; अ. ९.१०.८

मृत्यु - (१) आदित्य (स एष आदित्यो मृत्यः)।

श.ब्रा. १०.५.१.१.

(२) अग्नि।

अग्निर्मृत्युः

कौ.सू. १३.३

योऽग्निर्मृत्युः सः

जै.ब्रा.

(३) आदित्य के समान प्रकाशमान ज्ञानी पुरुष।

(४) अज्ञान बन्धन से मुक्त करने वाला आचार्य।

'मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि'

अ. ६.१३३.१

(५) बन्धन से मुक्त करने वाला परमात्मा -यम।

'तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे'

ऋ. १०.१६५.४; अ. ६.२८.३; ६३.२; ८४.३

(६) मृ + च्यु + उ = मृत्यु। मारयति इति मृत्युः। जो मारता है वह मृत्यु है। मध्यम प्राण मृत्यु है (माध्यमो हि प्राणः मृत्युः)। मध्यम प्राण शरीर को अन्य प्राणों से वियुक्त करता है। अतः उसका नाम मृत्यु है। कहा भी है- प्राणम् अनुक्रामन्तम् सर्वेप्राणाः अनुक्रामन्ति।

(७) मृ + त्युक् = मृत्यु। 'मृ' में 'णि' अन्तर्भूत है (युजि मृङ्भ्यां युक् त्यकौ)

(८) मृतं च्यावयति इति वा शत बलाक्ष्यो मौग्दल्यः।

मुद्गल का अति बलवान् इन्द्रियों वाला पुत्र मौद्गल्य है।

(९) मृत्यु वह है जो मरणासन्न, उपक्षीण आयु या उपक्षीण कर्म करने वाले पुरुष को प्रच्युत करता है। वह आदमी जो मरणासन्न है मृत (मृ + क्त) है। क्षीणायु या क्षीण संस्कार पुरुष मृत है। उसे ही मृत्यु मारती है। वह मृत्यु शरीर का मध्यम प्राण है जो ऊर्ध्व श्वास व्यक्ति को मारता है। मृत + च्यु + उ = मृत्यु (निपातन से)।

अथवा मृत्य मृत प्राणी को और किसी योनि में ले जाती है।

परं मृत्यो अनु परे हि पन्थां
यस्ते स्व इतरो देव यानात्
चक्षुष्मते श्रृण्वते ते ब्रवीमि
मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्

ऋ. १०.१८.१; वाज.सं. ३५.७; श.ब्रा. १३.८.३.४.

पुत्र कामना वाले आज्य होम में स्थालीपाक विधान के समय षड़ाहुति में इसका प्रयोग होता है।

अर्थ है -

हे सभी को मारने वाली मृत्यु, तू अन्य मार्ग से पराङ्मुख होकर (परं पन्थं अनु च परे हि) जो तेरा अपना देवमार्ग से भिन्न पितृयान है (यः ते देवयानात् इतरः) उस मार्ग से जिससे देवयान में स्थित हम तुझ से अनामृष्ट रहे तुम चक्षु वाले तथा सुनने वाले अर्थात् अप्रतिहत विज्ञान वाले मारक को मैं कहता हूँ (चक्षुष्मते श्रृण्वते ते ब्रवीमि) कि तू हमारी दुहिता, दौहित्र या सन्तनि को मत मार (नः प्रजां मा रीरिषः) और पुत्र और पौत्रादिकों को भी न मार (न उत वीरान्) ।

मृत्युदूत् - (१) मृत्यु अर्थात् प्राण- विच्छेद की पीड़ा देने में समर्थ वीर पुरुष । (२) यमराज का दूत- सा. ।

'नयतामून् मृत्युदूताः '

अ. ८.८.११.

मृत्युपाश - (१) मृत्युकारक विषाद, (२) दरिद्रता, (३) पीड़ा, श्रान्ति, थकान, (४) मूर्छा आदि ।

'मृत्युपाशैरमी सिताः '

अ. ८.८.१०

मृत्युबन्धु - (१) मृत्यु समम का बन्धु (२) मृत्यु के तुल्य मारक दण्ड कर्ता और बन्धुवत् प्रिय ।

'यथेमेतद् भवसि मृत्युबन्धुः '

ऋ. १०.९५.१८

(३) मृत्यु का बन्धु- मनुष्य ।

'ये चिद्धि मृत्युबन्धवः
आदित्या मनवः स्मसि '

ऋ. ८.१८.२२

मृद् - मर्दन करने की क्रिया ।

'मृदं बस्वैः '

वाज.सं. २५.१; तै.सं. ५.७.११.१; मै.सं. ३.१५.१: १७७.७; का .सं. (अश्व.) १३.१.

मृदितः - मारा गया, कुचला गया शत्रु ।

'प्रब्लीनो मृदितः शयाम् '

अ. ११.९.१९

मृदु - म्रद् + उ = मृदु (पथि म्रदिभ्रम्नां सम्प्रसारणं सलोपश्च) म्रद् धातु मर्दन अर्थ में आया है । मृदु का अर्थ कोमल है ।

मृदूदर - मृदु + उदर । (१) ऋदूदर सोम (२) मृदुः उदरेषु इति वा (जो उदरों में मृदु हो) ।

मृध् - (१) नाश कारिणी शत्रु -सेना (२) युद्ध ।

'विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वो मृधः '

ऋ. २.२३.१३

(३) शत्रु ।

'व्यास्थन्मृधो अभयं ते अभूत् '

अ. १३.१.५

(४) दुःखदायिनी विपत्ति ।

'पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वाः '

ऋ. १०.६७.११; अ. २०.९१.११

(५) हिंसक, युद्ध करने वाला मृध् + क्विप् = मृध् । मृध् धातु हिंसा तथा युद्ध करने के अर्थों में आया है ।

'वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व '

ऋ. १०.१८०.२; अ. ७.८४.३; साम. २.१२.२३; वाज.सं. १८.७१.

हे इन्द्र, तू शत्रुओं को विशेष रूप से ताड़ित कर (विताढि) तथा हिंसकों या युद्ध करने वालों को (मृधः) विशेष रूप से तिरस्कृत कर (विनुदस्व) ।

शत्रु के अर्थ में ।

'आजो मिमानो वि मृधो नुदस्व '

ऋ. १०.८४.२; अ. ४.३१.२

हे मन्यु, हमें बल देकर (ओजः मिमानः) संग्राम से शत्रुओं को भगा (मृधः विनुदस्व) । संग्राम के अर्थ में प्रयोग-

'नि दुर्योणे कुयवाचं मृधिश्रेत् '

ऋ. १.१७४.७

मृधस् - (१) तिरस्कार, (२) संग्राम ।

'आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याहि
आ चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयम्
अयं सुतः सुमुख मा मृधस्कः '

ऋ. २.१८.४

हे इन्द्र, आप दो चार या छः अश्वों से युक्त रथ से सोमपान के लिए इस यज्ञ में आवें । यह सोम चुलाया हुआ है । हे सुमुख, आय किसी से युद्ध न करें (मृधः मा कः)।

'सुत' का अर्थ 'यज्ञ', 'सोमपेयं का 'ऐश्वर्य पाना' और ' मृधस्' का अर्थ तिरस्कार भी किया

गया है ।

मृध्र - (१) मधुर ।

'दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः

ऋ. १.१७४.२; नि. ६.३१

हे इन्द्र, इन दानशील मनुष्यों को (दनः विशः) मधुरभाषी बना (मृध्रवाचः) -सा. ।

हे राजन्, कर प्रदाता प्रजाओं को (दनो विशः) शिक्षा द्वारा मधुर वाणी वाला बनाइये (मृध्रवाचः) -ज.दे.श.।

मृध्रवाक् - (१) दिल दुखाने वाली बात बोलने वाला, (२) मृदु वाणी बोलने वाला ।

'यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः'

ऋ. १०.२३.५; अ. २०.७३.६

(३) दूसरों को पीड़ा देने वाली असत्य वाणी बोलने वाला ।

'न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः'

ऋ. ७.६.३

(४) बड़ी बड़ी वाणी वाली, (५) उद्यमयुक्त बलवती वाणी वाली ।

मृन्मयगृह - (१) मिट्टी का बना घर (२) मृत् + मयट् = मृन्मय । मृत्यु से आक्रान्त शव तुल्य, (३) अवश्य ग्रहण करने योग्य या आत्मा को पकड़े हुआ शरीर ।

'मोषु वरुण मृन्मयं
गहं राजन्नहं गमम्'

ऋ. ७.८९.१

मृशन्ती - (१) सम्पर्क, सन्धि या स्पर्श करती हुई -विराट्

'विश्वं मृशन्तीमभिरूपां विराजम्'

अ. ८.९.९

मृषन्त - मृषन्ति । छोड़ते हैं, बिसारते हैं । 'मृष्' धातु छोड़ना, बिसारना, त्यागना, अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । अंग्रेजी का miss धातु मृष् से मिलता जुलता है ।

'न ते भोजस्य सख्यं मृषन्त'

ऋ. ७.१८.२१

वे तुझ भोजक, भोगी या स्रष्टा पालक को नहीं छोड़ते...

मृष्ट - सहिष्णु तितिक्षु, - अग्नि ।

'मृष्टोऽसि हव्यसूदनः'

वाज.सं. ५.३२.

मृषा - व्यर्थ । अव्यय है ।

'न मृषाश्रान्तं यदवन्ति देवाः'

ऋ. १.१७९.३; श.ब्रा. १०.४.४.५.

मृषाश्रान्त - व्यर्थ परिश्रम से श्रान्त होने वाला थकने वाला ।

मेक - अंग, बनावट । अंग्रेजी शब्द make भी संज्ञा के अर्थ में इसी अर्थ में प्रयुक्त है ।

'न मेथेते न तस्थतुः सुमेके'

ऋ. १.११३.३; साम. २.११०१

मेखला - (१) ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने के पूर्व कटि से पहने जाने वाला पदार्थ । यह मुञ्ज आदि की बनी होती है ।

(२) इसके बांधने से आयु बढ़ती है ।

'वीरघ्नी भव मेखले'

अ. ६.१३३.२

'दीर्घायुत्वाय मेखले'

अ. ६.१३३.५

मेघ - (१) जल बरसाने वाला मेघ ।

'मेघाय स्वाहा'

वाज.सं. २२.२६; तै.सं. ७.५.११.१; का.सं. (अश्व.) ५.२.

(२) गिरि । 'असौ अन्तरिक्षे समुद्गीर्णो भवति' (मेघ के समान गिरि भी अन्तरिक्ष में समुद्गीर्ण है) ।

(३) वृत्र । तत् कः वृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः (तो कौन वृत्र है ? मेघ) ।

(४) मिह् (सेचनार्थक) + घञ् = मेघ । 'असौ सिञ्चति' (यह सींचता है) ।

(५) उपल । उपर उपलो मेघो भवति । मेघ का अर्थ पर्वत और पर्वत का अर्थ मेघ है । उपल शब्द पर्वत और मेघ दोनों का वाचक है । 'उपरता आप इति वा' । मेघ में जल आकर रत हो जाते हैं । अतः मेघ को 'उपरत' या 'उपर' कहा गया ।

मेधसाति - लाभ, कृषि आदि की प्राप्ति ।

'मेधसाता वाजिनमह्वये धने'

ऋ. १०.१४७.३

मेधा - पवित्र ज्ञान समझने और प्रकट करने वाली प्रतिभा ।

'स मे श्रद्धां च मेधां च'

अ. १९.६४.१; शां.गृ.सू. २.१०.३

मेडि – (१) ज्ञान वाणी ।
'मेडिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे'
ऋ. ३.२६.९
(२) संगति,
'वातस्य मेडिं सचते निजूर्वन्'
ऋ. ४.७.११; का.सं. ७.१६
(३) मिलाने वाला (४) स्वर मेलन रूप वाक् ।
'साम्नो मेडिश्च तन्मयि'
अ. ११.७.५

मेढ्र – मिह + ष्ट्रन = मेढं । अर्थ (१) मूत्रेन्द्रिय ।
'अपि नह्याम्यस्य मेढ्रम्'
अ. ७.९५.३

मेथ – धा. । संग करना । अंग्रेजी का mate धातु इसका समानार्थक है ।

मेथति – आक्रांशतिकर्मा (मिथ धातु आक्रोशार्थक है) ।
चतस्रः पन्त्यः अश्वम् अभिमेथन्ति
यह वाक्य प्रसिद्ध है । लोक में भी शाला को मेथनक कहते हैं (शालः मेथनकः) । शाला को लोग सदा गालियाँ देते हैं । और वह भी लोगों को गालियाँ दिया करता है ।
'मिथ्' का अर्थ मिलना (mix), समझना, चोट पहुंचाना और मारना भी है ।

मेथेते – (द्वि.व. प्र.पु.)। अर्थ–संग नहीं करते । 'मेथ' धातु संग करना अर्थ में आया है ।
'न मेथेते न तस्थतुः सुमेके
नक्तोषासा समनसा विरूपे'
ऋ. १.११३.३; साम. २.११०१
रात दिन (नक्तोषासा) सुन्दर अंगों वाले होकर भी (सुमेके) परस्पर संग नहीं करते (न मेथेते) और न ठहरते हैं (न तस्थतुः) । वे समान मन वाले होकर भी (समनसा) एक दूसरे से भिन्न रूप वाले (विरूपे) हैं ।

मेथामसि – मेथामः (मारें) ।
'न पूषणं मेथामसि'
ऋ. १.४२.१०
हम सब के पोषक पुरुष को न मारें ।

मेथिः – (१) शत्रुओं को विनाशक (२) दण्डकारी ।
'इमं मेथिमभि संविशध्वम्'
अ. ८.५.२०
(३) परस्पर का संग (४) मैथुन ।
'शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तद्‌र्म'
अ. १४.१.४०

मेदन – (१) स्नेह या मिलन कारण ।
'घृतमन्नं घृतम्वस्य मेदनम्'
ऋ. १०.६९.२

मेदस् – 'मिदृ मेदृ मेधाहिसनयोः भ्वादि' ।
'मेदो वै मेधः'
श.ब्रा. ३.८.४.६.
अर्थ– (१) व्याघ्र, सिंह आदि हिंसक जन्तु, (२) हिंसा कारी पुरुष, (३) अन्न (४) व्रीहि, यव ।
'मेदसां पृथक् स्वाहा'
वाज.सं. २१.४०
'मेधाय इति अन्नायेत्येतत्'
श.ब्रा ७.५.२.३२.
तेमेधं (देवाः) खनन्त इव अन्वीयुः तम् अन्वविन्दन् ताविमौ व्रीहियवौ । मेधो वा आज्यम् । तै.ब्रा. ३.१.१२.१.
(३) आज्य,
(४) मिद् (स्नेहन अर्थ में) + असुन् = मेदस्
मेदस्तु वया वसे – अमर कोष
जो स्निग्ध करता है वह मेद है । मेदा ।
'तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः
स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य'
ऋ. ३.२१.४
(हे कर्मिष्ट अग्ने, तेरे लिए मेदा और घृत के कण टपक रहे है) । (५) स्निग्ध पदार्थ, (६) चर्बी । आधुनिक अर्थ– चर्बी, एक मिश्रित जाति, सर्प, राक्षस, घृत ।

मेदस्तः – मेदस् + तसिल् = मेदस्तः । मेदसा प्रदेशेन (चर्बी वाले अंग से) ।

मेद्यन्तु – तृप्त हों । 'सिद्ध' धातु तृप्त्यर्थक है ।
'मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसे'
ऋ. २.३७.३; नि. ८.३
हे द्रविणोद नामक अग्ने, तेरे वे घोड़े जिससे तू चलता है, तृप्त हों ।

मेदनी – 'मेदृ, मेधृ हिंसनयोः' भ्वादि मिदि स्नेहने । अर्थ – (१) बुद्धिप्रद, (२) रोग नाशक , (३) स्निग्धगुण युक्त पौष्टिक औषधि ।
'मेदिनीर्वचसो मम'
अ. ८.७.७

मिदा स्नेहने दिवादिः । मिदा स्नेहने भ्वादि
(४) पृथिवी ।

मेदी - (१) बलवान् ।
'स्थिरेणेन्द्रेण मेदिना'
अ. ६.६५.३
(२) मित्र
'इन्द्र मेद्यहंतव'
अ. ५.८.९
'भूमे सूर्येण मेदिना'
अ. १२.१.३३

मेध - (१) अन्न । सात प्रकार के अन्न हैं- हुत, प्रहुत, पयः, मनः, वाक्, प्राण । इन्हें प्रजापति ने अपनी मेधा ज्ञान- शक्ति से उत्पन्न किया ।
'सप्तमेधान् पशवः पर्यगृह्णन्'
अ. १२.३.१६
(२) हिंसाकारी वर्ग
'उत मेधं श्रृतपाकं पचन्तु'
ऋ. १.१६२.१०; वाज.सं. २५.३३; तै.सं. ४.६.८.४; मै.सं. ३.१६. १: १८२.१३

मेधपति- (१) यज्ञ या पवित्र पुरुषों का पालक ।

मेधसातिः - (१) अन्नलाभ, (२) यज्ञ, (३) संग्राम ।
'मेधसाता सनिष्यवः'
ऋ. ७.९४.६; साम. २.१५२; तै.सं. १.७.८.२
(४) सत्संग, (४) दान की प्राप्ति ।
'विप्रासो मेधसातये'
ऋ. ८.३.१८
(६) यज्ञ का लाभ, (७) पवित्र कर्म का लाभ (८) शत्रु हिंसन का लाभ, (९) परस्पर सत्संग का लाभ ।
'यं त्वं रथमिंन्द्र मेधसातये
अपका सन्तमिषिर प्रणयसि'
ऋ. १.१२९.१

मेघ्य - मेघों के विज्ञान जानने वाला ।
'नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च'
वाज.सं. १६.३८; तै.सं. ४.५.७.२; मै.सं. २.९.७: १२५.१३; का. सं. १७.१५.

मेध्य - पवित्र ।
'एदं बर्हिरसदो मेध्योऽभूः'
अ. १८.४.५२

मेधा - (१) आत्मा को धारण करने वाली चितिशक्ति ।
'त्वं नो मेधे प्रथमा
गोभिरश्वेभि रा गहि'
अ. ६.१०८.१
(२) आत्म ज्ञान को धारण करने वाली परम बुद्धि ।
'यां मेधां देवगणाः
पितरश्चोपासते
वाज.सं. ३२.१४.
(३) धारणवती धी, वह बुद्धि जिसमें धारणा करने वाली शक्ति हो ।
मतौ धीयते मतिधा (जो बुद्धि में धारणा की जाय वह मतिधा है) । मतिधा = मद्धा = मेधा ।

मेधाकारः - ज्ञान और सन्मति देने वाला ।
'मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनम्'
ऋ. १०.९१.८; साम. २.३३४; का.सं. ३९.१३; तै.ब्रा. ३.११.६.३; आप. श्रौ.सू. १६.३५.५

मेधातिथि - (१) ऋतम्भरा प्रज्ञा-सिद्ध आत्मा, (२) धारणा वती बुद्धि से युक्त तीव्र ज्ञानी पुरुष, (३) मेधातिथि नामक ऋषि, काण्व मेधातिथि ।
'यौ मेधातिथिमवथो यौ गविष्ठिरम्'
अ. ४.२९.६
(४) संगति के योग्य अतिथि - ज.दे.श.

मेधावी - मेधा + विनि = मेघाविन् । मेधया तद्वान् भवति (मेधा से मेधा वाला होता है) । अथवा 'अभेदेन तृतीया' से 'धान्येन धानवान्' की तरह 'मेधया मेधावी' होता है । अर्थ है-- बुद्धि मान् ।

मेध्यातिथि - (१) अन्नादि से सत्कार करने योग्य अतिथि या अतिथिवत् पूज्य पुरुष, (३) एक वैदिक ऋषि ।
'यथा प्रावो मघवन् मेध्यातिथिम्'
ऋ. ८.४९.९
(३) मेध्यैः अतिथिभिः युक्तः (पूज्य अतिथियों वाला गृहस्थ) (४) शिष्यों से युक्त अध्यापक ।
'यं कण्वं मेध्यातिथिर्धनस्पृतम्'
ऋ. १.३६.१०
(५) व्यापक प्रभु या अतिथि का उपासक ।
'काण्वं मेध्यातिथिम्'
ऋ. ८.२.४०;

मेधिर - मेध + इरच् । अर्थ - (१) यज्ञवान् - दुर्ग.
(२) अग्नि का विशेषण,

'*कविशस्तो बृहता भानुनागाः*
हव्या जुषस्व मेधिर '
ऋ. ३.२१.४; मै.सं. ४.१३.५: २०४.१५; का.सं. १६.२१.
हे विद्वानों से प्रशंसित यज्ञवान् या मेधावी विद्वान् (अग्ने), तू बृहत् प्रकाश के साथ आ और हव्यों का भोग्य कर ।
(३) मेधावी । दया. (४) प्रज्ञावान्, (५) धनवान् ।
पुनः-
'*इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्याः*
इन्द्रो अपामिन्द्र इत् पर्वतानाम्
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणाम्
इन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः '
ऋ. १०.८९.१०
परमेश्वर द्युलोक का स्वामी है । पृथ्वी का स्वामी है, जल का स्वामी है, पर्वतों का अधिपति है । परमेश्वर महान् से महान् आत्माओं का राजा है और वही मेधा-सम्पन्न पुरुषों का (मेधिराणाम्) शासक है । प्राप्त वस्तु के संरक्षण के लिए वह स्तुत्य है (क्षमे) और अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के लिए आह्वातव्य है ।

मेन - मि + न = मेन । अर्थ है- प्रक्षेप्य ।
'*भगेन मेने परमे व्योमन्* '
ऋ. १.६२.७

मेनका - (१) मेनका च सहजन्या च द्यावापृथिवी
श.ब्रा.- ८.८.१.१७
मेनका और सहजन्या नामक दो सहयोगियों में एक, (२) जिसे सभी मानें वह विद्वानों की सभा मेनका है, (३) जन समुदाय की संघ शक्ति सहजन्या है, (४) द्यौ (५) मेनका नाम्नी ।
'*मेनका च सहजन्याचाप्सरसौ* '
वाज.सं. १५.१६; तै.सं. ४.४.३.१; मै.सं. २.८.१०: ११.४.१७; का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.१७

मेन्य - (१) ज्ञेय -दया. (२) मध्यमा वाक् -सा.
'*आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आ*
अपो वृणाना वितनोति मायिनी '
ऋ. ५.४८.१
जो मध्यमा वाक् के वासस्थान अन्तरिक्ष के ऊपर (यत् मेन्यस्य रजसः आ) मेघ में (अभ्रे) स्थित जलों को (अपः) ढंकती हुई (आवृणाना) मायाविनी या प्रज्ञावती हो (मायिनी) वर्षा बरसाती है । - सा.
सर्वतोज्ञेय अन्तरिक्ष लोक के मेघ में (आ मेन्यस्य रजसः अभ्रे) जैसे जल को बरसाती हुई (यत् अपः वृणाना) उसे वृष्टि द्वारा फैलाती है (वितनोति) वैसे ही बुद्धिपूर्वक नीति कर्मों को बरती हुई (मायिनी) सर्वत्र फैलाती है- दया.

मेना - (१) मैना नामक पक्षी । (२) ग्ना, स्त्री ।
मेना ग्ना इति स्त्रीणाम् (मेना और ग्ना ये स्त्री के वाचक हैं) ।
'मेनाः मानयन्ति एनाः' (शुभ कृत्यों में पुरुष स्त्रियों की पूजा या सत्कार करते हैं । अतः वह मेना कही गई) ।
(३) मान (पूजार्थक) + घञ् = मेना (उपधा का ए) ।
(४) अथवा, मान + इनच् = मेन । अंग्रेजी का Women शब्द मेना से मिलता जुलता है ।
आ प्र द्रव हरियो मा वि वेनः
पिशङ्गराते अभि नः सचस्व
नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्ति
अमेनाँश्चिजनिवतश्चकर्थ '
ऋ. ५.३१.२
हे अश्व वाला इन्द्र (हरिवः), हमारे सम्मुख आ (आ प्र द्रव), हम से निरपेक्ष न हो (वि वेनःमा) । हे सुन्दर दान करने वाला इन्द्र (पिशङ्गरते), हमारे सम्मुख आ (नः अभिसचस्व) । तुझ से बढ़कर और कोई देवता नहीं है (त्वत् अन्यत् नहि अस्ति) । हे धनी इन्द्र (वस्यो इन्द्र), तू अस्त्रीक स्तोताओं को भी (अमेनांश्चित्) प्रजनन कर्म में समर्थ या स्त्री युक्त करता है (जनिवतः चकर्थः) । अतः हम तेरी आशंका करते हैं ।
(३) सर्वमाननीय वेदवाणी ।
'*आन्मेनां कृण्वन्नच्युतो भुवद्गोः*
ऋ. १०.१११.३

मेनिः - (१) आयुध ।
'*मेन्या मेनिरसि* '
अ. २.११.१
(२) अस्त्र द्वारा फेंका गया साधन, (३) निवारक अस्त्र ।

मेने - द्वि.व.। एक वचन में मेना (१) एक दूसरे

का मान करने वाली देवस्त्रियाँ या स्त्री पुरुष (२) मेना नामक दो पक्षियों के समान-अश्विद्वय का विशेषण ।
'मेने इव तन्वा शुम्भमाने'
ऋ. २.३९.२

मेम्यत् - (१) सबको आज्ञा करता हुआ ।
'सुप्राङ्जो मेम्यद्विश्वरूपः'
ऋ. १.१६२.२; वाज.सं. २५.२५; तै.सं. ४.६.८.१; मै.सं. ३.१६.१: १८१.१०; का.सं. (अश्व.) ६.४
(४) सब बाधक शत्रुओं का नाश करता हुआ ।

मेय - मापने योग्य ।
'अभीशुना मेया आसन्'
अ. ६.१३७.२

मेष - (१) सूर्य, (२) आत्मा ।
'मेष इव वै सं च वि चोर्वच्यसे'
अ. ६.४९.२; का.सं. ३५.१४; आप.श्रौ.सू. १४.२९.३
(३) मिष् + अच् = मेष । सबको चेतना देने वाला - सूर्य ।
'मेषं विप्रा अभिस्वरा'
ऋ. ८.९७.१२; अ. २०.५४.३; साम. २.२८१
(४) भेंड़ (५)प्रतिस्पर्द्धी से टक्कर लेने वाला पुरुष, (६) ज्ञानरूपी जलों का वर्षक विजयी स्पर्धालु मस्तकबल से जीने वाला विद्वान् पुरुष । (७) आनन्दप्रदाता आत्मा ।
'पीवानं मेषमपचन्त वीराः'
ऋ. १०.२७.१७
(८) रूप ।
'मेषो भूतोऽभि यन्नयः'
ऋ. ८.२.४०; नि. ३.१६.
रूप या भेड़ की तरह (मेषः भूतः) जाता हुआ (अभियन्) तू पहुंच गया (अयः) । पाणिनि ने 'मिष्' धातु को स्पर्द्धा अर्थ में लिया है । भूत शब्द के साथ युक्त होकर 'मेष' उपमार्थक हो जाता है ।
भेड़ के अर्थ में प्रयोगः-
शं नः करत्यर्वते
सुगं मेषाय मेष्ये
नृभ्यो नारिभ्यो गवे'
ऋ. १.४३.६
(७) इन्द्र । इन्द्र सुखों या जलों का वर्षण करने से मेष है ।
'अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियम्
इन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम्'
ऋ. १.५१.१
(८) स्पर्द्धक, प्रतिस्पर्धी, विद्वान्-दया.
'शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानम्
ऋजाश्वं तं पितान्धं चकार'
ऋ. १.११६.१६
जो प्रजा के मा बाप के समान पालक पर बैठकर भी (पिता) राजा चोर सरकार बनाए और उसे दृढ़ रखने के लिए सैकड़ों प्रतिस्पर्धी विद्वान् सभासदों को भी (शतं मेषान्) शासन करने में समर्थ सरल स्वभाव के पुरुष को (ऋजाश्वम्) अन्धकार में रखे (अन्धं चकार) और उसे पीड़ित करे तो....

मेषी - (१) भेंड़ी ।
'सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोः'
वाज.सं. २४.१; मै.सं. ३.१३.२: १६८.११
(३) भेंड़ी के समान श्वेत वस्त्रधारी सरस्वती नामक विद्वान् पुरुष (३) पर शक्ति से प्रेरित होने वाली ब्रह्म बीज से निषिक्त-ब्रह्म की शक्ति से वीर्यवती प्रकृति ।
'प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्यः'
ऋ. ९.८६.४७

मेहत्नु - (१) नाड़ी जिससे आत्मा शरीर से मूत्र बनने और निकलने की व्यवस्था करता है ।
'मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे'
ऋ. १०.७५.६

मेहन - (१) मूत्रनाड़ी, मूत्रेन्द्रिय ।
'प्र ते भिनद्धि मेहनम्'
अ. १.३.७
'मेहनाद्वनंकरणात्'
ऋ. १०.१६३.५; अ. २०.९६.२१
(२) मंह + ल्युट् = मेहन (बाहुलक से अ का इ) । मंह् धातु दान और वृद्धि अर्थों में आया है ।
मेहन + सु = मेहना । 'सुपां सुलुक्' से सु का आकार । अर्थ है- दातव्य धन (४) वर्धनीय । शाकल्य 'मेहना' को एक पद और गार्ग्य इसे तीन पदों से बना मानते हैं । यास्क ने दोनों अर्थों को मान्यता दी है ।

(५) गार्ग्य के अनुसार 'मे + इह + न' से 'मेहना' बना है, जिसका अर्थ है- मेरे यहां नहीं हैं ।
(६) मिह् + ल्युट् = मेहन । बढ़ने वाला ।
'यद्रिन्द्र चित्र मेहना'
ऋ. ५.३९.१; आश्व.श्रौ.सू. ७.८.३; शां.श्रौ.सू. ११.११.१५; नि . ४.४.
हे इन्द्र, जो तेरा पूजनीय धन बढ़ने वाला है ।

मेहनावत् - (१) जिससे प्रशस्त वर्षा हो- सूर्य, (२) सुखों की वृष्टि और वृद्धि करने वाला ।
'विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतः'
ऋ. २.२४.१०

मेहनावान् - (१) उदारता से देने योग्य धन (मेहना) से सम्पन्न -इन्द्र ।
'व्यानशी रोदसी मेहनावान्'
ऋ. ३.४९.३

मेहनाःपर्वतासः - (१) वर्षाकारी मेघ (२) मे + हनाः । मेरा इसमें कुछ नहीं इस प्रकार की त्याग भावना वाले निःसंग पर्वतवत् अचल प्रजा पालक जन ।
'अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासः'
ऋ. ८.६३.१२; वाज.सं. ३३.५०

मेहन्ती - मूत्र करती हुई ।
'राजयक्ष्मो मेहन्ती'
अ. १२.५.२२

मैघी - (१) मेघ सम्बन्धी ऋचा (२) सब पर सुख बरसाने वाला ।
'मैघीर्विद्युतो वाचः'
वाज.सं. २३.३५

मैत्र - (१) प्रजा के प्रति स्नेहवान् (२) भरण पोषण से रक्षा करने वाला ।
'मैत्रः शरसि संताप्यमाने'
वाज.सं. ३९.५

मैत्रावरुण - (१) मित्र और वरुण का पुत्र वसिष्ठ-सा. (२) मित्र और वरुण नामक वायुओं से उत्पन्न जल-ज.दे.श.।
'उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठ'
ऋ. ७.३३.११; नि. ५.१४.
हे वसिष्ठ, या वासकतम जल, तू मित्र और वरुण से या भित्र और वरुण नामक वायुओं से उत्पन्न हुआ है ।
(३) मित्र और वरुण-प्राण और अपान दोनों का स्वामी-जीव

मैत्रावरुणी - मित्र (न्यायाधीश) और वरुण (दुष्टों का कारक) सम्बन्धी ।
'पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः'
वाज.सं. २४.२; मै.सं. ३.१३.३: १६९.४

मैनाल - (१) हिंसक जन्तुओं का नाश करने वाला ।
'विषमेभ्यो मैनालम्'
वाज.सं. ३०.१६; तै.ब्रा. ३.४.१.२

मो - (१) निषेधार्थक अव्यय ।
'मो षु देवा अदः स्वः
अव पादि दिवस्परि'
ऋ. १.१०५.३
वह परला सूर्य या पारलौकिक सुख (अदःस्वः) आकाश में अन्तरिक्ष से भी परे हैं (दिवः परि) । वह कभी नीचे न गिरे (मो अव पादि) ।

मोकी - (सं.) । मुच् + अच् + ङीष् । अर्थ (१) रात्रि । (२) सब बाधाओं से मुक्त करने वाली -मुक्ति ।
'अनुव्रतं सवितुर्मोक्यागात्'
ऋ. २.३८.३

मोघम् - (अ.) (१) व्यर्थ, झूठमूठ, अनृत, असत्य ।
'यो मा मोघं यातुधानेत्याह'
ऋ. ७.१०४.१५; अ. ८.४.१५.
जिसने मुझे झूठमूठ व्यर्थ ही राक्षस कह दिया ।

मोद - सं. । (१) प्रसन्नता, (२) सुगंध ।

मोषथाः - मोषथः । (१) निरुदक करते हो -सा. । (२) धीरे धीरे सार खींच लेते हो - दया. ।
'अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसम्
मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः'
ऋ. ५.५४.६
हे वृष्टि के विधाता मरुतो, (वेधसः) आप लोगों का गण या बल (शर्धः) शोभता है जिस गण या बल से (यत्) (अभ्राजि) जलयुक्त मेघ को (अर्णसं वृक्षम्) निरुदक् करते हो (मोषथा) जैसे घुन (कपना इव) वृक्ष को चाट जाते हैं । -सा.
हे विद्वान् मनुष्यो, तुम्हारा उत्साह (शर्धः) प्रदीप्त होता है (अभ्राजि) जो कि तुम (यत्) जैसे बींधने वाले छोटे छोटे कृमि वृक्ष को धीरे धीरे हर लेते हैं (वेधसः कपनाः वृक्षम् इव) एवं शब्द

सागर वेद को (अर्णसम्) धीरे धीरे ग्रहण कर लेते हो । -दया.

मोह - मूर्च्छा ।
'श्रमस्तन्द्रीश्च मोदश्च'
अ.८.८.९

म्रोक - (१) धन अहरण कर छिप जाने वाला चोर, (२) काम ।
'म्रोकानुम्रोक पुनर्वो यन्तु'
अ. २.२४.३

मौजवत - (१) (ए.व.वि.) । मुञ्जवत् + अण् = मौञ्जवत् । मुञ्जवति भवः मौजवतः । अर्थ मुञ्जवान् पर्वत पर होने वाला-सोम. ।
'सोमस्येव मौजवतस्य भक्षः'
ऋ. १०.३४.१; नि. ९.८
मुञ्जवान् पर्वत पर सोम का होना इससे सूचित होता है ।

मौजवतः सोमः - मुञ्जवान् पर्वत पर उत्पन्न सोम ओषधि

मौञ्ज - मुञ्ज में रहने वाला विषैला-जीव ।

मौनेय - मननशील अन्तः करण का स्वामी-आत्मा ।
'उन्मदिता मौनेयेन
वाताँ आ तस्थिमा वयम्'
ऋ. १०.१३६.३

य

यक्न - (१) यकृत्, कलेजा ।
'यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः'
ऋ. १०.१६३.३; अ. २०.९६.१९; आप.मँ.पा. १.१७.३
'पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना'
वाज.सं. ३९.८

यकः - जो ।
'यके सरस्वतीमनु'
ऋ. ८.२१.१८

यका - या (जो) ।
'यकासकौ शकुन्तिका'
वाज.सं. २३.२२; श.ब्रा. १३.२.९.६; ५.२.४.

यकांशलोकका - जीवन के किस अंश में लोक लगा हुआ है ।
'उयं यकांशलोकका'
अ. २०.१३०.२०

यकृत् - यजति इति यकृत् । यज् + ऋतन् । यथा + कृत् -दया. (छेदनार्थक) + क्विप् = यकृत् । बाहुलक नियम से यथा का 'य' मात्र रह जाता है । 'यथा कथा च कृत्यते' मृदु होने से यकृत् जैसे तैसे सुविधा से अप्रयास ही काट दिया जाता है अतः यह यकृत कहलाया ।
अर्थ है - कलेजा ।
'चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत्'
अ. ९.७.११.
'महादेवस्य यकृत्'
वाज.सं. ३९.९
(२) समस्त प्रजाओं को सत्कर्म में लगाने वाला, दानशील विद्वान् धार्मिक पुरुष । (३) राष्ट्र का भीतरी घटक और उपकारक अंग
'यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन्'
वाज.सं. १९.८५

यक्ष - न. । (१) उपासनीय देव ।
'यस्या व्रते प्रसवे यक्षमेजति'
अ. ८.९.८
(२) आदर सत्कार, (३) संगति ।
'मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गाः'
ऋ. ४.३.१३.

यक्षति - (१) पूजा करना चाहता है -सा. (२) दान दे.-ज.दे.श. ।
'इयक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति'
ऋ. १०.११.६; अ. १८.१.२३.
क्योंकि (इ) यह यजमान देवताओं की पूजा करना चाहता है ।
(यक्षति) -सा.
चाहने वाले को (हर्यतः) दान दे. (यक्षति)

यक्षदृश् - पूज्य जनों का दर्शन करने वाला ।
'यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः'
ऋ. ७.५९.१६; तै.सं. ४.३.१३.७; मै.सं. ४.१०.५: १५५.६; का.सं . २१.१३.

यक्षन् - यज्ञ करने का इच्छुक ।
'कदा ते मर्ता अमृतस्य धाम
इयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधानः'
हे बलवन्, यज्ञ के इच्छुक मनुष्य कभी तुझ अमर के धाम में हिंसा नहीं करते ।

यज्ञभृत् - (१) उपासना करने वालों का पालन पोषण करने वाला, (२) यक्षों का पालन पोषण करने वाला बृहस्पति ।

यक्षम् - सब इन्द्रियों का सुसंगत व्यवस्था करने वाला -मन ।

'यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानाम्'

वाज.सं. ३४.२.

यक्ष्मः - पु. (१) यक्ष्मा रोग ।

'आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति'

ऋ. १०.९७.११; वाज.सं. १२.८५; तै.सं. ४.२.६.२; मै.सं. २.७. १३; ९३.१८; का.सं. १६.१३; नि. ३.१५.

यक्ष्मारोग का आत्मा नष्ट हो जाता है ।

(२) पूजनीय अतिथि ।

'यक्ष्मा यन्ति जनां अनु'

अ. १४.२.१०

यक्ष्मनाशनी - (१) रोग नाशक, (२) स्वच्छ ।

'अयक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः'

अ. ३.१२.९; ९.३.२३

यक्ष्यमाण - यज्ञ करने वाला ।

'यन्मानुषान् यक्ष्यमाणां आजीगः
तद् देवेषु चकृषे भद्रमप्नः'

ऋ. १.११३.९

हे उषे, जो तू यज्ञ करने वाले मनुष्यों को व्यापती है, प्रेरित करती है वह तू देवताओं या बुद्धिमान पुरुषों में सुखकारी (भिद्रम्) कार्य को (अप्नः) करती है (चकृषे) ।

यक्ष्यमाणा - संगत होती हुई ।

'पत्नी यक्ष्यमाणा'

अ. २०.१३५.५

यक्षि - यज् (पूजा करना, संगति करना, दान करना आदि, अर्थों में प्रयुक्त) से सम्पन्न । अर्थ- (१) पूजित किया, (२) पूजाकर -सा. (३) संगति करता है -ज.दे.श.

'त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठः
जरूथं हन् यक्षि राये पुरन्धिम्'

ऋ. ७.९.६.

हे अग्ने, वसिष्ठ ने बहुकर्ममतम तुझ को संदीप्त कर धन प्राप्ति के लिए स्तोत्र द्वारा पूजित दिया (यक्षि) ।

अथवा, हे अग्ने, तुझे वसिष्ठ प्रदीप्त करते हैं (वसिष्ठ समिधानः), तू परुष भाषी राक्षस गण को मार (जरूथं हन्) तथा धनवान यजमान के लिए बुद्धिमान देवगण की पूजा कर (यक्षि) -सा.

अथवा, - हे हमारे नायक विद्वान् , विद्या ज्योति को प्रदीप्त करता हुआ धनाढ्य मनुष्य बहुत बुद्धि वाले आप के प्रति (त्वां पुरन्धिम्) आदर भाव को पहुंचाता हुआ धर्म धन की प्राप्ति के लिए आप की संगति करता है ।

यक्षी - पूजा करने वाले भक्त प्रजाजनों का स्वामी ।

'मा त एनस्वन्तो यक्षिन् भुजेम'

ऋ. ७.८८.६

यक्ष्मोधा - यक्ष्मा रोग, केशों को रखने वाला रोग ।

'यक्ष्मोधामन्तरात्मनः'

अ. ९.८.९

यक्षु - (१) गंगा यमुना के बीच का कोई आर्य-भिन्न देश, (२) दान देने और आदर करने वाला ।

'पुरोडा इत् तुर्वशो यक्षुरासीत्'

ऋ. ७.१८.६

यज्ञ - (१) प्रख्यातं यजतिकर्मा इति नैरुक्ताः (यजन कर्म ही जो लोक में विख्यात है यज्ञ है) ।

(२) यज् + नङ् = यज्ञ ।

'इमं नो यज्ञमुपयाहि विद्वान्'

ऋ. ५.४.५; अ. ७.७३.९; मै.सं. ४.११.१: १५९.३; का.सं. २.१५; तै.ब्रा. २.४.१.१; नि. ४.५.

(३) यज्ञ, (४) अग्नि, (५) प्रजापति ।

'याञ्च्यो भवति इति वा'

(इसमें लोग अन्नादि की याचना करते हैं । अतः यह यज्ञ है) । या, यजमान ही यज्ञ द्वारा वर्षा आदि की याचना करते हैं । अथवा, देवगण ही यजमानों से हवि आदि की कामना करते हैं ।

श्रुति में कहा है -

'ककुद्दोषणी शलाका दोषणी याचते महादेवः'

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी यह वाक्य हैः-

'यतो वै देवानाम् अन्नं सम्भूतम्
समभावयन् इति ह विज्ञायते'

इस यज्ञ से अन्नादि की याचना सिद्ध है ।

यज् से नङ् प्रत्यय अधिकरण अर्थ में आया है ।

यजुभिः उन्नः भवति इति वा (मन्त्रों से जो क्लिन्न हो जाय वह यज्ञ है)।
यजुष् + उन्न = यज् + न = यज्ञ,
बहु कृष्णाजिन इति औपमन्यवः→औपमन्यव आचार्य के मत से जो यज्ञ में विशिष्ट साधक है वह कृष्णाजिन ही है। अतः इस लक्षण से उपलक्षित कर्म यज्ञ है।
अजिन + इ = अज् + न + प = अज् + न = यज्ञ।
'यजूंषि एनं नयन्ति इति वा'
(मन्त्र ही यज्ञ को आरम्भ से अन्त तक सफलता प्राप्त करते हैं। अतः मंत्र लक्षण से यह यज्ञ कहा गया है)।
(६) यज्ञस्थली -यास्क।
(७) ब्रह्म। (८) अग्नि
अग्नि के अर्थ में यज्ञ का प्रयोगः -
'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः
तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्
ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः'
ऋ. १.१६४.५०; १०.९०.१६; अ. ७.५.१; वाज.सं. ३१.१६; तै.सं. ३.५.११.५; मै.सं. ४.१०.३: १४९.१; का.सं. १५.१२; श.ब्रा. १०.२.२.२.
ज्ञान और कर्म का समुच्चय करने वाले यजन शील देव बनने वाले (साध्याः) तथा विश्व की रचना करने वाले प्राण रूप ऋषि स्थावर जंगम भाव समापन्न हविर्भूत अग्नि से (यज्ञेन) सर्व देवता रूप आदित्य आदि के रूप में अग्नि की ही पूजा करते हैं (यज्ञम् अयजन्त)। उस समय उसी प्रकार के ज्ञान युक्त कर्म ही मुख्य थे (तानि धर्माणि प्रथमा नि आसन्)। उन भावी देवरूपी ऋषियों ने (ते) महात्मा होते हुए (महिमानः) उसी महान् एकान्त सुख आत्मा का सेवन किया या उससे तादात्म्य स्थापित किया (नाकं सचन्त)।
'अग्निः पशुरासीत्, तमातभन्त
तेन अयजन्त इति ब्राह्मणम्'
अग्नि पशु था, उसे पूर्व ऋषियों ने प्राप्त किया -उसी से यज्ञ किया। तानि धर्माणि प्रथमान्यासन (वे ही धर्म या, कर्म सर्वमुख्य या सर्वप्रथम हुए)। ते ह नाकं महिमानः समसेवन्तः (उन ऋषियों ने महात्मा रूप में होते हुए अपना ही सेवन किया)। ये देवगण द्युस्थानी थे ऐसा निरुक्त कारों का कथन है। पहले देवों का ही युग था (पूर्वं देव युगमित्याख्यानम्)।
साध्य कौन हैं? द्युलोकवासी सप्तर्षि या विश्वेदेव, प्राण या रश्मियाँ?
ऐतिहासिक पक्ष - प्रजापति के प्राणरूप देवों ने मानस- संकल्प द्वारा (देवाः यज्ञेन) प्रजापति की पूजा की (अजयन्त)। उस पूजा से प्रसिद्ध जगत् रुपी विकारों के मुख्य धारक हुए (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्)। जिस विराट् प्राप्ति रूपी नाक में पुरातन विराट् के उपासक एवं साधक देव रहते हैं (यत्र पूर्वे साध्याः देववाः सन्ति) उस विराट् रूपी स्वर्ग को (नाकम्) वे उपासक महात्मा (तेह महिमानः) प्राप्त करते हैं (सचन्त)।
(९) आत्मा, (१०) समाधि द्वारा ईश्वर के साथ संगति लाभ करने वाला, (११) पूज्य यज्ञरूप परमेश्वर।
यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ'
अ। ७.९७.५, वाज.सं. ८.२२.
(१२) परस्पर संगत हुए प्राणों के परस्पर आदान, प्रतिदान भय व्यवस्थित जीवनमय यज्ञ।
'इमं नो यज्ञमुपयाहि विद्वान्'
ऋ. ५.४.५ अ.७.७३.९; मै.सं. ४.११.१: १५९.३; का.सं. २.१५; तै.ब्रा. २.४.१.१; नि. ४.५.
(१३) सब को परस्पर मिलाए रखने वाला परमेश्वर
'देवासो यज्ञमत्नत'
ऋ. ८.१३.१८; ९२.२१, अ. २०.११०.३; साम. २.७४.
स (सोमः) तायमानो जायते। सयात् जायते तस्मात् यज्ञः। यज्ञोह वै नाम एतत् यत् यज्ञः-श.ब्रा.
'यज्ञो वैविशः। यज्ञेहि सर्वाणि
भूतानि विष्टानि'
श.ब्रा. ८.७.३.२१.
'वाग् यज्ञस्येति'
श.ब्रा. १२.८.२.४.
'सत्यं यज्ञेन'

वाज.सं. २०.१२; का.सं. ३८.४; श.ब्रा. १२.८.३.३०; तै.ब्रा. २.६.५.७.

यज्ञनी – (१) यज्ञ का नेता, यज्ञ का प्रधान अग्नि।

'यत्रा वदेते अवरः परश्च
यज्ञन्योः कतरो नौ विवेद'

ऋ. १०.८८.१७

जिस कर्म में यह पार्थिव अग्नि और वह सूर्य या आन्तरिक अग्नि या वायु परस्पर यह विवाद करते हैं कि हम दोनों यज्ञ के नेताओं में कौन अधिक यज्ञ कर्म जानता है।

(२) यज्ञ + नी + क्विप् = यज्ञनी। त्रिविध यज्ञों का नेता अग्नि।

'ऋतुना यज्ञनीरसि'

ऋ. १.१५.१२

यज्ञपति – (१) यज्ञ का स्वामी, यजमान

'तच्छंयोरा वृणीमहे गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये'

ऋ. खि. १०.१९१.५; तै.सं. २.६.१०.२; श.ब्रा. १.९.१.२६; तै.ब्रा. ३.५.११.१; तै.आ. १.९.७; ३.१; आश्व.श्रौ.सू.१.१०.१; आश्व.गृ.सू. ३.५.९; शां.गृ.सू. ४.५.९; नि. ४.२१

हम शंयु से प्रार्थना करते हैं कि यज्ञ का देवों के प्रति गमन हो तथा यजमान का देवों के प्रति गमन हो। – सा.

हम उस सदाचारी शान्त विद्वान् को अपने यज्ञ में आने की और यज्ञपति के समीप पधारने की याचना करते हैं – दया.

उरु ते प्रजापतिः प्रथताम्

तेरा यजमान खूब बढ़े

(२) प्रजापालक, (३) राष्ट्र का पालक राजा।

'देव सवितः प्र सुव यज्ञं प्र सुव यज्ञपतिं भगाय'

वाज.सं. ९.१; ११.७; ३०.१ श.ब्रा. ५.१.१.१४, १६; ६.३.१.

यज्ञप्रीः – यज्ञ या राष्ट्र को प्रसन्न या अनुरञ्जित करने वाला।

'वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः'

वाज.सं. २७.३१.

यज्ञमन्मा – (१) पूज्य प्रभु का मनन करने वाला, (२) आचार्य गुरु या राजादि का मान करने वाला,(३) सत्संगादि ज्ञान करने वाला, (४) यज्ञमय जीवन वाला।

'प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते'

ऋ. ७.६१.४

यज्ञर्त – यज्ञ में पूजनीय।

'यज्ञर्तो दक्षिणीयः'

अ. ८.१०.७

यज्ञवनस् – (१) सत्संग मैत्री दान और यज्ञ को देने वाला, (२) सब प्रजाओं का दाता और स्वीकर्ता परमेश्वर।

'ज्येष्ठं यज्ञवनसम्'

ऋ. ४.१.२.

यज्ञबन्धुः – (१) यज्ञों का बन्धु अग्नि, (२) उत्तम दान, सत्संग और मैत्रीभाव द्वारा सब का बन्धु।

'स चेतयन् मनुषो यज्ञबन्धुः'

ऋ. ४.१.९

यज्ञवाहस् – (१) मित्रभाव, सत्संग, कर आदि देकर राजा प्रजा सा सम्बन्ध करने वाला, (२) उपास्य प्रभु या आत्मा की प्राप्ति करना, (३) यज्ञीय होम का वहन करना।

'वर्चोधा यज्ञ वाहसे'

ऋ. ३.८.३; २४.१; वाज.सं. ९.३७; मै.सं. ४.१३.१: १९९.५; का. सं. १५.१२; श.ब्रा. ५.२.४.१६.

यज्ञवाहसः – ब.व.। यज्ञस्य निवर्तकाः देवाः (यज्ञनिवर्तक देव)

'यज्ञं यद् यज्ञवाहसः'

अ. ६.११४.२

यज्ञवाहसा – द्वि.व.। हुत द्रव्यों को वहन करने वाले सूर्य चन्द्रमा।

'ऋतुना यज्ञवाहसा'

ऋ. १.१५.११; तै.ब्रा. २.७.१२.१, आप.श्रौ.सू. २१.७.१६.

यज्ञश्री – (१) यज्ञ की शोभा बढ़ाने वाला।

'यज्ञश्रियं नृमादनम्'

ऋ. १.४.७; अ. २०.६८.७

यज्ञसंशित – यज्ञ के विज्ञान में सुशिक्षित।

'यज्ञसंशितो ब्रह्मतेजा'

अ. १०.५.३१

यज्ञस्यनेता – यज्ञ का नामक सूर्य।

'आ यस्मिन् सप्त रश्मयः
तता यज्ञस्य नेतरि'

ऋ. २.५.२

यज्ञस्य पक्षौ – (१) यज्ञ के पंख स्वरूप अग्नि और सोम, (२) आत्मा और परमेश्वर।

'यज्ञस्य पक्षा वृषयः कल्पयन्तः'

अ. ८.९.१४

यज्ञस्य मात्रा - यज्ञ में क्या होना चाहिए तथा कैसी किस प्रमाण में वेदी बनाई जानी चाहिए। इत्यादि बातें।

यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः'

ऋ. १०.७१.११; नि. १.८.

एक अध्वर्यु (त्वः) यज्ञ में क्या क्या होना चाहिए तथा किस मात्रा में वेदी बनाई जानी चाहिए इत्यादि बातों को (यज्ञस्यमात्राम्) सम्पादित करता है। (विमिमीते)।

यज्ञस्य रथ्यः - विश्वरथ का संचालक।

'यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशाम्'

ऋ. १०.९२.१, ऐ.ब्रा. ४.३२.६; कौ.ब्रा. १९.९; २२.२.

यज्ञसाध् - (१) यज्ञ को साधने वाला (२) रुद्र का एक विशेषण (३) प्रजापालन रूप उत्तम कर्म का साधक।

'त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधम्
वंकुं कविमवसे नि ह्वयामहे'

ऋ. १.११४.४

(४) यज्ञ साधन करने वाला अग्नि।

(५) अध्यापन या ज्ञानदान करने वाला विद्वान्।

'तं यज्ञसाधमपिवात यामः'

ऋ. १.१२८.२

यज्ञसाधः - (१) यज्ञैः विज्ञानादिभिः साधितुं शक्यः (यज्ञों या विज्ञानों से साधने योग्य परम पुरुष), (२) महान् ब्रह्मरूप यज्ञ को वश करने वाला।

'तमीडत प्रथमं यज्ञसाधम्'

ऋ. १.९६.३

यज्ञस्यसाधनः - यज्ञ का साधन अग्नि, (२) संग्राम करने का साधन, (३) संग्राम का विजय करने वाला।

'विप्रोयज्ञस्य साधनः'

ऋ. ३.२७.८; साम. २.८२८; आप.श्रौ.सू. ९.३.२०

यज्ञानां पिता - (१) यज्ञों का एक -परमेश्वर या अग्नि।

'पिता यज्ञानामसुरो विपश्चिताम्'

ऋ. ३.३.४.

यज्ञों का रक्षक तथा विद्वान् स्तोताओं के मध्य में प्रज्ञा वाला (यज्ञानां पिता) या तत्ववेत्ताओं का प्राण दाता (विपश्चिताम् असुरः)।

(२) सब श्रेष्ठ कर्मों, सद्व्यवहारों, सत्संगों, पूज्य पुरुषों और सब आत्माओं का पिता पालक, (३) अग्नि।

यज्ञायत् - (१) यज्ञादि करने वाला, (२) परस्पर सत्संग चाहने वाला राष्ट्र।

'यज्ञायते वा पशुषो न वाजान्'

ऋ. ५.४१.१; मै.सं. ४.१४.१०: २३१.१०; कौ.ब्रा. २३.३.

यज्ञायज्ञा - (१) यज्ञ, (२) मिलकर करने योग्य उपासना, (३) युद्ध यज्ञ, सत्संग आदि कार्य।

'यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिः'

ऋ. १.१६८.१

(४) प्रत्येक यज्ञ में या सग्राम में या सभा में।

'यज्ञायज्ञा वो अग्नये'

ऋ. ६.४८.१; वाज.सं. २७.४२; साम. १.३५; २.५३; मै.सं. २.१३.९ : १५९.१०; का.सं. ३९.१२; ऐ.ब्रा. ३.३५.६; आप.श्रौ.सू. १७. ९.१.

यज्ञायज्ञिय - पशु, अन्नाद्य, वामदेव्य पिता, शान्ति, भेषज, प्रजबन, प्राजापत्य प्राण, यजमान लोक, अमृतलोक, स्वर्ग, अन्तरिक्ष।

'तं यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यम्'

अ. १५.२.१०

यज्ञासाह - महान् यज्ञ को धारण करने वाला अग्नि।

'यज्ञासाहं दुव इषे'

ऋ. १०.२०.७

यज्ञियः - यज्ञ + घ = यज्ञिय।

'यज्ञर्त्विग्भ्यां घ खञौ'। अर्थ (१) यज्ञ-सम्पादक, (२) चारों आश्रयों के यज्ञों के सम्पादक हे 'अर्थवन्'।

'तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानाम्'

ऋ. १०.१४.६, अ. ६.५५.३; १८.१.५८; वाज.सं. १९.५०; तै.सं. २.६.१२.६; ५.७.२.४; का.सं. १३.१५; नि. ११.१९.

(३) यज्ञार्ह।

'आ वामुपस्थमद्रहा
देवाः सीदन्तु यज्ञियोः'

ऋ. २.४१.२१; मै.सं. ३.८.७: १०५.७; नि. ९.३७.

हे द्यावा पृथिवी, तुम दोनों के निकट यज्ञार्हदेव सन्निहित हो।

(४) देवता ।
'माया मू तु यज्ञियानामेताम्'
ऋ. १०.८८.६; नि. ७.२७
लोग इसे देवताओं की माया समझते हैं ।
(५) यज्ञकर्त्ता । (६) उपासनीय, पूजनीय, आदरणीय माता, पिता या, गुरु ।
'अंहोमुचं वृषभं यज्ञियानाम्'
अ. १९.४२.४; तै.सं. १.६.१२.४.

यज्ञियपावकः - (१) यज्ञाग्नि ।
'शुद्धाभवन्तो यज्ञियासः पावकाः'
नि. ६.१२

यज्ञिया - (१) यज्ञ रूपिणी । (२) यज्ञमय परमेश्वर की उत्पादिका शक्ति पूर्णिमा -पूर्ण ब्रह्मशक्ति ।

यज्ञिया तनू - यज्ञ के योग्य शरीर ।
'इयं ते यज्ञिया तनूः'
वाज.सं. ४.१३; वाज.सं. (का.) ४.५.५; श.ब्रा. ३.२.२.२०; आप. श्रौ.सू. १०.१३.९.

यज्ञियानिनामानि - (१) परमात्मा के अनेक नाम जैसे मित्र वरुण, अर्यमा आदि ।
'नामानि चिद् दधिरे यज्ञियानि
भद्रायान्ते रणयन्त संदृष्टौ'
ऋ. ६.१.४; मै.सं. ४.१३.६: २०६.१२; का.सं. १८.२०; तै.ब्रा. ३.६.१०.२
जो परमान्या के अनेक नामों को धारण करते हैं वे भद्र संदर्शन में रमण करते हैं । अर्थात् उन्हें अभद्र के दर्शन नहीं होते ।
(२) यज्ञयोग्य नाम या स्तोत्र

यज्ञियानौ - (१) यज्ञमयी नौका ।
'न ये शेकुर्यज्ञियां नावामारुहम्'
ऋ. १०.४४.६; अ. २०.९४.६; नि. ५.२५.
जो यज्ञरूपी नौका चढ़ न सके ।

यज्ञियासः - यज्ञिय + जस् = यज्ञियासः । अर्थ है- यज्ञार्ह देवता, यज्ञ के अधिकारी ।

यच्छतम् - यम् (देना) के लोट् म.पु.ब.व. का रूप । अर्थ-नियच्छतम् , दत्तम । दो ।

यच्चित् - यद्यपि । दे. 'उलूखलक' ।
'यच्चिद्धि त्वं गृहे गृहे उलूखलक युज्यसे'
ऋ. १.२८.५; आप.श्रौ.सू. १६.२६.१; नि. ९.२१.
हे ओखल, यद्यपि तू घर में काम में लाया जाता है (गृहे गृहे युज्यसे) ।

यज - पूजाकर । दे. 'आवक्षत्'

यजतः - (१) यजनीय । दे. 'धियन्धाः' ।
'उपस्तोषाम यजतस्य यज्ञैः'
ऋ. ७.२.२; वाज.सं. २९.२७; मै.सं. ४.१३.३: २०१.१२; का.सं. ३७.४; तै.ब्रा. ३.६.३.१; नि. ८.७.
हम यजनीय नराशंस अर्थात् अग्नि का महत्व (यजतस्य) हवि या स्तोत्रों से (यज्ञैः) निकट जाकर गाते हैं (उपस्तोषामः) ।
(२) यज्ञिय, (३) यज्ञिमधूम के ऐसा कृष्ण रंग ।
(३) बाहर आने या प्रसव कर देने योग्य गर्भ । दे. 'अनाकृत' ।
'वि यदस्थाद् यजतो वातचोदितः
ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः'
ऋ. १.१४१.७

यजतं शुक्रम् - यज्ञ करने योग्य शुल्क वर्ण अर्थात् दिन । दे. 'पूषा' ।
'शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यत्'
ऋ. ६.५८.१; साम. १.७५; तै.सं. ४.१.११.२; मै.सं. ४.१०.३: १५०.४; ४.१४.१६: २४३.१०; का.सं. ४.१५; ऐ.ब्रा. १.१९.९; नि. १२.१७.
हे पूषन् , तेरा शुल्कवर्ण एक दिन होता है जो यज्ञ करने के योग्य है (यजतम्) ।
'भरते मर्योमिथुना यजत्रः'
ऋ. १.१७३.२

यजत्र - (१) दानशील (२) ईश्वरोपासक, यजनशील, यजमान, सत्संगति के योग्य पुरुष, (३) सेवक, (४) ध्यानवान् ।
'भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः'
ऋ. १.८९.८; साम. २.१२२४; वाज.सं. २५.२१; मै.सं. ४.१४.२: २१७.११; का.सं. ३५.१; तै.आ. १.१.१; २१.३; आप.श्रौ.सू. १४. १६.१.

यजता सरस्वती - (१) दान देने और सत्संग से प्राप्त होने योग्य वाणी, पूजनीय सरस्वती ।
'सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम्'
ऋ. ५.४३.११; तै.सं. १.८.२२.२; मै.सं. ४.१०.१: १४२.९; का.सं. ४.१६.

यजता - द्वि.व.। यज्ञ करने वाले परस्पर संगत स्त्री पुरुष ।
'त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे
परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम्'
ऋ. १.३४.७

हे शान्ति और तेज से युक्त स्त्री पुरुषो, यज्ञ करने वाले , परस्पर संगत आप दोनों प्रतिदिन तीन धातुओं के बने शरीर का पृथ्वी पर ब्रह्म चारी रहकर तीन बार या तीन दिनों तक शयन करो ।

'अक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणौ अधः शायिनौ स्याताम् । अतः ऊर्ध्वं त्रिरात्रं द्वादशरात्रं सवत्सरम् वा ।

आश्व. गृ सू. ९.१०.१२.

यजत्रा - सत्संग, मैत्री करने वाली यज्ञशील स्त्री ।

'ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः '

ऋ. ३.५७.४

यजते - द्वि.व. । (१) 'उषासानक्ते' का विशेषण । अर्थ (१) यज्ञ की सम्पादकयित्रियाँ या पूज्य -सा. (२) यज्ञ करने के योग्य प्रातः और सायं -ज.दे.श. । दे. 'उपाके' ।

'आ सुष्वयन्ती यजते उपाके '

ऋ. १०.११०.६; अ. ५.१२.६; २७.८; वाज.सं. २९.३१; मै.सं. ४.१३ .३: २०२.५; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.११.

सुन्दर रीति से चलने वाली या परस्पर एक दूसरे का वैभव देख विस्मय करती हुई या मुस्कुराती हुई (सुष्वयन्ती) यज्ञ की सम्पादयित्रियाँ या पूज्य या यज्ञ करने योग्य उषा और रात्रि या प्रातः सायं ।

(३) पूजा करता है या यज्ञ करता है । (४) परस्पर संगत द्यावापृथिवी या स्त्रीपुरुष ।

'उरूची विश्वे यजते निपातम् '

ऋ. ४.५६.४

यजथ - (१) पूजा-सा. (२) परमेश्वर प्राप्ति । दे. 'रुशत् '

यजध्यै-यज् + शध्यैन् = यजध्यै । अर्थ - यजमान । यष्टुम् (यज्ञ या पूजा करने के लिए) तुम् अर्थ में 'शध्यैन' प्रत्यय होता है । दे. 'कारु'

याजमान - यज् + शानच् = यजमान । यज्ञ करने वाला ।

'यजमानाय शिक्षिते '

वाज.सं. २८.१५

यजस् - (१) संगतिकारक, (२) यज्ञपरक ।

'इन्द्राग्नी यजसा गिरा '

ऋ. ८.४०.४

यज्वनाम् अभिजिताःस्वर्गा - यज्ञशील पुरुषों द्वारा प्राप्त विविध सुख

'ये यज्वनामभिजिताः स्वर्गाः '

अ. १२.३.६

यज्वरी - (१) शिल्पविद्या - सम्पादन हेतु अग्नि और जल ।

'अश्विना यज्वरीरिषः '

ऋ. १.३.१; कौ.ब्रा. १४.५; ऐ.आ. १.१.४.७; आश्व.श्रौ.सू. ४.१५.२; शां.श्रौ.सू. ६.६.१; ७.१०.१२.

(२) देवपूजा या यज्ञकरने वाली प्रजा ।

'विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा '

ऋ. १०.४१.२

यजामहाः - (१) 'यजामहे' ऐसा कहने वाले (२) यज्ञ दान आदि करने वाले, (३) आचारवान् ।

'प्रगाथा ये यजामहाः '

वाज.सं. १९.२४

यज्वा - यज्ञशील ।

'यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् '

ऋ. २.२६.१

यजिष्ठ- सबको मिलाने या शक्ति देने में समर्थ अग्नि, (२) सब को संगत करने और सब को भृति आदि देने वाला । दे. 'अपां सधस्थ' (३) वृष्टि, अन्न आदि देने वाला । अग्नि, (४) दानशील (५) यज्ञ करने वाला अग्नि ।

'यजिष्ठ होतरा गहि '

ऋ. २.६.६

यजीयान् - (१) यष्टृतरः, अतिशयेन यष्टा (मनुष्य होता से बढकर यष्टा अर्थात् अग्नि) । यज् + ईयसु = यजीयान् । अर्थ- (१) प्रवीणतम यज्ञकर्ता । दे. 'अपिशत् ' ।

'तमद्य होतरिषितो यजीयान्
देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् '

ऋ. १०.११०.९; अ. ५.१२.९; वाज.सं. २९.३४; मै.सं. ४.१३.३: २०२.१२; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.४; नि. ८.१४.

हे प्रवीणतम यज्ञकर्ता विद्वान् , उस त्वष्टा देव को तू पूज ।

यजुः - यज् + उस् = यजुष् । यजुः यजतेः (यज् धातु से यजुष् बना है) । तेन हि विशेषतः इज्यते (यजुर्वेद से ही विशेषतः यज्ञ किया जाता है ।

अतः वह यजुः कहा जाता है) । अर्थ - (१) मंत्र, (२) यज्ञविधि, (३) यजुर्वेद ।

'यजो ह वै नामैतद् यत् यजुरिति'

श.ब्रा. ४.६.७.१३

यजुरा - द्वि.व. । (१) अश्विद्वय (२) पूज्य होकर रहने वाले स्त्री पुरुष ।

'पश्वेव चित्रा यजुरा गमिष्ठम्'

ऋ. १०.१०६.३

यजुर्वेदस्य षडशीतिभेदाः

यजुर्वेद के ८६ भेद हैं । उनमें चरकों के १२ हैं जैसे - चरक, आह्वरक, कठ, प्राच्य, प्राच्यकठ, कपिष्ठल कठ, चारायणीय वारायणीय, वार्तान्नवीय, श्वेताश्वतर, औपमन्यव, पातण्डिनीय, मैत्रा यणीय ।

मैत्रायणीय के छः भेद-मानव, वराह, दुन्दुभ, छागलेय, हारिद्रवीय, श्यामायनीय ।

तैतियों के दो भेद-औखेय, खाण्डिकेय ।

खाण्डिकेयों के ५ भेद-कालेत, शाय्यायनी, हैरण्यकेशी, भारद्वाजी, आपस्तम्बी ।

वाजसनेय शाखा के मानने वाले विद्वानों के १५ भेद - वाजसनेय, जाबाल, बोधायन, काण्व, माध्यन्दिनीय, शाफेय, तापनीय, कपोल, आवटिक, परमावटिक, पाराशर, वैणेय, अद्ध और बौधेय ।

यज्यु - (१) यज्ञकर्ता । यज् + युच् = यज्यु । दे. 'दीर्घप्रयज्यु' (२) होमादि शिल्पविद्या - साधक विद्वान्, (३) यज्ञशील, (४) उपासक

'त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरः'

ऋ. १.३१.१३

हे परमेश्वर अग्नि, तू यज्ञशील पुरुष का रक्षक अन्तर्यामी है ।

यजूंषि - 'एष यन्नेवेदं सर्वं जनयति, एतं यन्त मिदमनु प्रज्ञायते । तस्माद् वायुरेव यजुः । अयमेवा काशो जूः । यदिदमन्तरिक्षम् । एतं हि आकाशमनु जवते ।

तदेत् यजुर्वायु श्चान्तरिक्षं च यच्च जूश्च । तस्मात् यजुः । श.ब्रा. १०.३.५.२

इयै त्वा ऊर्जे त्वा । वायवे स्थ । देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठ तमाय कर्मणे । इत्येयमादि कृत्वा यजुर्वेदमधीयते । गो.ब्रा. १.२७

मन एव यजूंषि

श.४.६.७.५.

यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुर्योनिम्

तै.ब्रा. ३.१२.९.२

यत् - (अ.) जब । दे. 'अविचेतन' ।

यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि
राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा'

ऋ. ८.१००.१०; तै.ब्रा. २.४.६.११; नि. ११.२८.

जब माध्यमिका वाक् शब्द रूपी गर्जन लक्षण वाली अविज्ञातार्थ ध्वनि करती, माध्यमिका देवी की ईश्वरा तथा लोक को प्रसन्न करने वाली वर्षा बरसाने लगती है ।

जब अविज्ञान अर्थों को बतलाने वाली, विद्वान् लोगों की स्वामिनी, प्रसन्नता देने वाली दिव्य वाणी प्राप्त होती है ।

(२) यावत्कालम् - जब तक (३) जो (सर्वनाम) ।

(४) यतः (क्योंकि) जिसका से । दे- 'अगोह्य' ।

(५) यत्नवान् । यत्नशील ।

'दद्दृचा सनिं यते'

ऋ. ५.२७.४

'ऋधग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा'

ऋ. ७.६१.३

यत् अहन् - जिसी दिन ।

'कविर्यदहन् पार्याय भूषात्'

ऋ. ४.१६.११

यतङ्करः - (१) बांधने वाला, (२) यत्नशील ।

'वेतीद्वस्थ प्रयता यतंकरः'

ऋ. ५.३४.४

यतते - संयतते, संगच्छते (साथ साथ प्रयत्न करना है या जाता है) । यत् धातु यत्न करने के अर्थ में आता है । यहां अर्थ हैं - चलता है , प्रयत्न करता है । दे. 'कम' ।

'वैश्वानरो यतते सूर्येण'

ऋ. १.९८.१; वाज.सं. २६.७; तै.सं. १.५.११.३; मै.सं. ४.११.१ : १६१.४; का.सं. ४.१६; नि. ७.२२,२३.

वैश्वानर अग्नि प्रातः उदय लेने वाले सूर्य के साथ चलता है ।

यतन् - वश करता हुआ ।

'चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम्'

ऋ. ५.४८.५

यतमः - जो, जो कोई ।

'इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने'

ऋ. १०.८७.८; अ. ८.३.८

'घर्मं नो ब्रूत यतमंश्चतुष्पात्'

अ. ४.११.५

'क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भ'

अ. ५.२९.७

यतयः - विशेष यत्न, गति बल देने वाले तेजोमय सूर्यादि लोक ।

'यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत'

ऋ. १०.७२.७

यतरत् - दो में से जो, जो भी

'तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयः'

ऋ. ७.४.१२; अ. ८.४.१२.

यतस्रुक् - (१) स्रुच् के समान इन्द्रियों को वश करने वाला, (२) यज्ञार्थ स्रुवा का प्रयोग करने वाला- ग्रहण करने वाला ।

'दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक्'

ऋ. ४.२.९

(३) जिसके हाथ में स्रुक, अर्थात् घृताधार पात्र हो, (४) हवन करने वाला, यज्ञ करने वाला (५) संयत वीर्य वाला जितेन्द्रिय ।

'समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे'

ऋ. १.१४२.१

(६) प्राणों और इन्द्रियों पर संयम करने वाला ।

'निमितासो यतस्रुचः'

ऋ. ३.८.७

(७) स्त्री पुरुषों लोकों और इन्द्रियों को दमन करने वाला ।

'यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यम्'

ऋ. ३.२.५

यतस्रुचा - साधन और उपसाधनों से युक्त परस्पर सम्मिलित अध्यापक तथा उपदेशक, (२) स्त्री पुरुष, (३) गुरुशिष्य, (४) राजा प्रजा आदि जोड़े

'यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः'

ऋ. १.८३.३; अ. २०.२५.३; ऐ.ब्रा. १.२९.११.

जो दोनों परस्पर सम्मिलित स्त्री पुरुष, गुरुशिष्य राजा, प्रजा, आदि जोड़े तेरी सेवा या आशा का पालन करते हैं ।

(५) यता उद्यता स्रुचा स्रुग्वत् पयोः तौ-दया.।

(६) स्रुचा को हाथ में स्थिर करते हुए अध्वर्यु ।

'यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा'

ऋ. १.१०८.४

स्रुचा को पकड़े तथा कुशासन बिछाते हुए अध्वर्यु ।

(७) वीर्य या अपने प्राणों की रक्षा करने वाले स्त्री पुरुष ।

यत्र - अ. । यत् शब्द से । अर्थ-जहाँ ।

'यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत'

ऋ. १०.७१.२; नि. ४.१०

यत्रकामम् - जहाँ जहां इच्छा हो ।

'यत्रकामं भरामसि'

अ. ९.३.२४.

यता - (१) संयत, (२) नियमों में रहने वाली ब्रह्म चारिणी ।

'यता सुजूर्णी रातिनी घृताची'

ऋ. ४.६.३

यतानः - यत्न करता हुआ ।

'हंसा इव श्रेणिशो यतानाः'

ऋ. ३.८.९

'लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः'

ऋ. ५.३३.१०

यतिः - (१) सर्व नियन्ता, बलवान् ।

'सहस्रणीतिर्यतिः परायती'

ऋ. ९.७१.७

(२) अव्यय । जितना ।

'अनुपूर्वं यतमानाः यतिष्ठ'

ऋ. १०.१८.६

यतिधा - जितने प्रकार का ।

'तां नो विधेहि यतिधा सखिभ्यः'

अ. ८.९.७

यती - (१) चलती हुई (२) विद्युत

वृष्टी द्यावो यतीरिव

ऋ. ५.५३.५

(३) घरों से पृथक् होकर रहने वाली स्त्री ।

'कुवित् पतिद्विषो यतीः'

ऋ. ८.९१.४

यत्सीम् - यत् + सीम् । अर्थ- (१) जैसे - दया.

(२) जब-सा. । दे ' अश्विना' ।
'आस्रो यत् सीममुञ्चतं वृकस्य '
ऋ. १.११७.१६; नि. ५.२१.
जब या जैसे तुम दोनों ने वृक के मुख से या आदित्य के मुख से वर्तिका या उषा को छुड़ाया । (३) जैसे ही ।
(४) जो कुछ ।
'यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृडतु '
ऋ. १.१७९.५

यतुनः - (१) गमनशील-सा. (२) प्रयत्न शील-दया. (३) सूर्य का विशेषण । दे. 'अविदत् '
'ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुना '
ऋ. ५.४४.८
अत्यन्त प्रवृद्ध, गमनशील या प्रयत्न शील सूर्य के प्रज्ञापक कर्म से -

यत्पुर् - प्रयत्नसाध्य नगर । दे. -दया. ।
'सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त्
ऋ. १.१७४.२; ६.२०.१०
विस्तृत प्रयत्न साध्य नगरियों को (सप्त यत्पुरः) कल्याणप्रद (शर्मदर्त् बनाया) -दया. ।
सायण ने 'यत्' का अर्थ 'यतः' किया है । अर्थ देखें. 'दन् ' में ।

यथा - जिस प्रकार । यत् + था ।
'आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति
पुरा जीवगृभो यथा '
ऋ. १०.९७.११; वाज.सं. १२.८५; तै.सं. ४.२.६.२;मै.सं. २.७.१३: ९३.१८; का.सं. १६.१३; नि. ३.१५.
यक्ष्मा रोग का आत्मा दवा देने के पूर्व ही नष्ट हो जाता है । जैसे जीव मारने वाले के द्वारा जीव के मारे जाने के पूर्व ही दैव योग से जीव मर जाय ।

यथाचित् - जिस प्रकार ।
'यथाचित् पूर्वे जरितार आसुः '
ऋ. ६.१९.४
'यथाचिद् विशो अश्व्यः '
ऋ. ८.४६.२१.

यज्ञयदी - उपासन यज्ञ का अग्ररूप वशा- परमात्म शक्ति ।
'यज्ञपदीराक्षीरा '
अ. १०.१०.६.

यथापरु - शरीर का प्रत्येक जोड़, सन्धि ।
'यथापरु तन्वं सं भरस्व '
अ. १८.४.५२.

यथापुरा - पूर्ववत् , पहले के जैसा ।
'नेषि णो यथा पुरा
अनेनाः शूर मन्यसे '
ऋ. १.१२९.५
पूर्व काल के समान ही तू (यथा पुरा) स्वयं अपराध और पाप से रहित (अनेना) हमें सन्मार्ग पर चला । तू सब कुछ जानता है (मन्यसे) ।

यथा भागम् - अपने अपने भाग के अनुकूल ।
'यथाभागमावृषायिषत '
वाज.सं. २.३१.

यथायथा - जैसे जैसे ।
'यथायथा पतयन्तो वियेमिरे '
ऋ. ४. ५४.५

यथावशम् - (१) अभिलाषा या इच्छा के अनुसार ।
'यथावशं तन्वः कल्पयाति '
ऋ. १०.१५.१४; अ. ७.१०४.१, १८.३.५९; वाज.सं. १९.६०.
(२) वश, अधिकार और विशेष जितेन्द्रियता के अनुसार ।
'ब्रह्मणस्पतेरभवद् यथावशम् '
ऋ. २.२४.१४; मै.सं. ४.१४.१०: २३०.१२; तै.ब्रा. २.८.५.२.
(३) यथाशक्ति
'यथावशं तन्वं कल्पयस्व '
ऋ. १०.१५.१४.
(४) स्वच्छन्द रूप से ।
'स्यन्दमाना यथावशम् '
अ. ३.१३.४; तै.सं. ५.६.१.३; मै.सं. २.१३.१: १५२.१३.
'यथावशं तन्वं चक्र एषः '
ऋ. ३.४८.७; ऋ. ७.१०१.३

यथाविद् - (१) यथावत् ज्ञान या ऐश्वर्य की प्राप्ति ।
'इन्द्रिमर्च यथाविदे '
ऋ. ८.६९.४; अ. २०.२२.४; ५१.१; ९२.१; साम. १.१६८, २३५; २. १६१, ८३९.
(२) यथावत् श्रम के अनुसार द्रव्य की प्राप्ति
(३) ज्ञान और आनन्द का लाभ ।

'नाभा यज्ञस्य संदधुर्यथाविदे'
ऋ. ८.१३.२९
यथास्थाम – अपने अपने स्थान पर ।
'यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव'
अ. ७.६७.१
यद्धनाम – यत् + ह + नाम । जो कुछ भी । दे. 'अयोः' ।
'विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम'
ऋ. १.१८५.१; नि. ३.२२.
जो कुछ भी है सब आत्मा से विभृत है ।
यदि – अगर । दे. 'जामि' । यत् + इ ।
'यदी मातरो जनयन्त वह्निम्'
ऋ. ३.३१.२, नि. ३.६
यदि ये माताएं कुल को बढ़ाने वाली सन्तति (पुत्र या पुत्री) उत्पन्न करती हैं ।
'देवी यदि तविषी त्वावृधोतये'
ऋ. १.५६.४
यदीम् – यत् + ईम् । जब भी ।
'यदीमेनां उशतो अभ्यवर्षीत्'
ऋ. ७.१०३.३
यदु – (१) यती + उ + यदु । (१) दूसरे का धन मारने के लिए यत्नशील (२) एक वैदिक राजा (३) ऋग्वेद का एक जन ।
पिता पुत्र दिवोदास और सुदास को यदु और तुर्वशों से संघर्ष करना पड़ा था । तुर्वश और यदु सहयोगी थे । अगस्त्य ने इन दोनों के लिए ऋ. १.१७४.९ मंगल कामना की है । सव्य अंगिरस ने भी ऋ. १.५४.६ में कण्व के पुत्र वत्स ऋ ८.७.१८ में इसका उल्लेख किया है । यदुओं और तुर्वशों के पुरोहित कण्व थे । वसिष्ठ सुदास की मंगल कामना करते हैं ।
'त्वमपो यदवे तुर्वशाय'
ऋ. ५.३१.८; अश्व.श्रौ.सू. ९.५.२.
यद्ते – यदा + इत् । जभी । दे. 'अभूताम्' 'आत्'
'यदेदेनमदधुर्यज्ञियासः
दिवि देवाः सूर्यमादितेयम्'
ऋ. १०.८८.११, मै.सं. ४.१४.१४: २३९.१७, नि. ७.२९
जभी यज्ञार्ह देवों ने द्युलोक में प्रातः काल सूर्य को अग्नि को स्थापित किया ।
'यदेदयुक्त हरितः सधस्तात्'
ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७; मै.सं. ४.१०.२: १४७.२; तै.ब्रा. २.८.७.२; नि. ४.११.
यदा – जब । दे. 'अभूताम्' ।
'यदा चरिष्णू मिथुनावभूताम्'
ऋ. १०.८८.११
जब साथ साथ चलने वाले सूर्य और वैश्वानर एक जोड़े के समान प्रादुर्भूत हुए ।
यन् – (१) या + शतृ = यत् । प्र.ए.व.में 'यन्' । अर्थ–जाता हुआ । दे. 'अरुण' 'भासकृत्' 'वृक'
'अरुणो मा सकृद् वृकः
पथा यन्तं ददर्श हि'
ऋ. १.१०५.१८; नि. ५.२१.
(२) इस लोक से उस लोक को जाने वाला –सा. (३) ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरुकुल जाने वाला छात्र –दया. । दे. 'कपन'।
'चक्षुरिव यन्तमनुनेषथा सुगम्'
ऋ. ५.५४.६
हे मरुतो, तुम इस लोक से उस लोक को जाने वाले को शोभन मार्ग बताओ (यन्तं सुगम् अनुनेषथा) जैसे आखें राह बताने में अनुग्रह करती है (चक्षुः इव) –सा. ।
हे वेद विद्या प्राप्त मनुष्यो, आप विद्या के लिए प्राप्त हुए हमारे पुत्रों को ज्ञान–दर्शक मार्ग बताइए । – दया.
यन्त्र – यम् + त्रल् = मन्त्र । यम अर्थात् नियन्त्रण करने का साधन ।
यम् + त्रन् = यन्त्र । दे 'अरम्णात्'
'सविता यन्त्रैः पृथ्वीमरम्णात्'
ऋ. १०.१४९.१; नि १०.३२
सविता ने वृष्ट्यादि साधनों तथा वायवीय पाशों से पृथ्वी को संयत कर स्थिर किया ।
यन्ता – (१) नियामक, व्यवस्थापक (२) बृहस्पति का विशेषण ।
'ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता'
ऋ. २.२३.२९, २४.१६; वाज.सं. ३४.५८; मै.सं. ४.१२.१: १७८.७; ४.१४.१०: २३०.९; तै.ब्रा. २.८.५.१.
(३) समस्त संसार को नियम में रखने वाला परमेश्वर ।
'यन्तासिधर्ता'

वाज.सं. २२.३; मै.सं. ३.१२.१: १६०.१; श.ब्रा. १३.१.२.३

यन्तारा - (१) यन्तारौ - सूर्य के दो अयन (२) ऋतु के नियन्ता दो मास ।
'द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः'
ऋ. १.१६२.१९

यन्त्री - (१) नियमकारिणी शक्ति ।
'यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवाऽसि धरित्री'
वाज.सं. १४.२२.

यन्तुरः - (१) नियन्ता ।
'अग्निमीडिष्व यन्तुरम्'
ऋ. ८.१९.२; साम. २.१०३८
(२) सब को नियम में रखने वाला अग्नि, (३) उत्तम नियन्ता ।
'अग्निं यन्तुरमप्तुरम्'
ऋ. ३.२७.११

यभ - धा. । मैथुन करना ।
'यभ मामद्ध्योदनम्'
अ. २०.१३६.११

यम - (१) व्यवस्थापक, (२) मय, शिल्पी ।
'तत्र यमः सादना ते कृणोतु'
अ. १८.३.५२
(३) यम् + अच् = यम । यच्छति इति यमः । जो जीवों को प्राणों से उपरत करता है । वह यम है । (यम-यति उपरमयति जीवितात् सर्वं भूतग्रामम् इतियमः) ।
(४) देवराज के अनुसार 'यच्छति प्रयच्छति स्तोतृभ्यः कामान् इति यमः मध्यम स्थानः वायुः रति (स्तोताओं को अभीष्ट पदार्थ जो देता है । वह यम अर्तात् मध्यमस्थायी वायु है) ।
(५) स्वर्ग नरक का देने वाला यम-सा. ।
'वैवस्वतं संगमनं जनानां
यमं राजानं हविषा दुवस्य'
ऋ. १०.१४.१; अ. १८.१.४९; ३.१३; मै.सं. ४.१४.१६: २४३.७; तै. आ. ६.१.१; नि. १०.२०.
प्राणियों को अपने अपने कर्मानुसार स्वर्ग नरक पहुंचाने वाले विवस्वान् के पुत्र यम राजा को हवि से पूज ।
(६) आदित्य, -सा. (७) शुद्ध वायु । दे. 'आदधिरे', 'किः' 'पलाश'
'अयं यो होता किरु स यमस्य'
ऋ. १०.५२.३; नि. ६.३५.
अग्नि आदित्य का या शुद्ध वायु का कर्त्ता है (यमस्य किःउ)
(८) सायं कालीन अस्तंगत आदित्य को भी यम कहा गया है ।
(९) पितृपति यम ।
'यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे
देवैः संपिबते यमः
अत्रा नो विश्पतिः पिता
पुराणाँ अनु वेनति'
ऋ. १०.१३५.१
(१०) प्राण । यह जीवन प्रदान करता है । (११) अग्नि । 'अग्निरग्पि यम उच्यते' जैसे -
'जातः यमः जनित्वं यमः
यमः कनीन जारः'
अग्नि कन्याओ के कन्यात्व को नष्ट करता है । कन्या के चार पति अर्थात् संरक्षक हैं -
'सोमः प्रथमो विविद
गन्धर्वो विविद उत्तरः
तृतीयो अग्निष्टे पतिः
तुरीयस्ते मनुष्यजा'
ऋ. १०.८५.४०
सोम, उत्पादक पिता, गन्धर्व देववाणी को धारण कराने वाला, अग्नि विवाहाग्नि और मनुष्य जातीय पति ।
(१२) अन्धकार । (१३) योग के आठ यमों में प्रथम ।
अहिंसा सत्यवचनं ब्रह्मचर्यमकल्कता अस्तेयमिति पञ्चैते यमाख्यानि व्रतानि
योगशास्त्र के दश यमः-
ब्रह्मचर्य दया क्षान्ति दानं सत्यम कल्कता
अहिंसा स्तेय माधुर्ये दमश्चेति यमाः स्मृताः'
या.स्मृ. ३.३.१३
आ नृशंस्यं दया दया सत्यमहिंसा क्षान्ति-रार्जवम्
प्रीतिः प्रसादो माधुर्यं मार्दवञ्च
(१४) मृत्यु का देवता यम यमादश ।
(१५) सूर्य का पुत्र मृत्यु या यम
(१६) जोड़ा ।
आधुनिक अर्थ- (१) संयम, (२) आत्मसंयम (३) कोई धार्मिक अनुष्ठान, (४) योगशास्त्र के

१० प्रकार के यम, (५) मृत्यु देवता यम, (६) सूर्य का पुत्र यम (७) साथ उत्पन्न होने वाला भ्राता।

(१७) युगल रूप में उत्पन्न बालक।

'ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य'

अ. ६.११०.२

(१८) विवाह बन्धन में बंधा पुरुष

(१९) वैवस्वत यम

'यमस्य मा यम्यं काम आगन्'

ऋ. १०.१०.७; अ. १८.१.८

यमदूत – (१) बन्धन करने वाला या बंधन से पीड़ा पहुंचाने वाला नियुक्त पुरुष, (२) यमराज का दूत जो मृतात्मा को ले जाता है।

'यमदूता अपोम्भत'

अ. ८.८.११

(३) विवस्वान् सूर्य के उत्पन्न काल के निरन्तर गतिशील परिवर्तनशील खण्ड दिन, मास, पक्ष ऋतु, वर्षा आदि।

'वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतान्'

अ. ८.२.११.

यमन् – सर्वनियामक।

'इयं ते राण्मित्राय यन्तासि यमन'

वाज.सं. १८.२८

यमनी – नियम व्यवस्था को करने वाली।

'यन्त्र्यसी यमनी'

वाज.सं. १४.२२; तै.सं. ४.३.७२; मै.सं. २.८.३: १०.९.१; का.सं. १७.३; श.ब्रा. ८.३.४.६; १०.

यमनेत्र – नियन्त्रण कर्त्ता नेता वाला, (२) युद्ध विजयी वीर पुरुष।

'यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा'

वाज.सं. ९.३५, श.ब्रा. ५.२.४.५.

यमर्यमा – काम क्रोध आदि पर वश, करने वाला।

'सजोषसो यमर्यमा'

ऋ. १०.१२६.१ साम. १.४२६.

यमराज – (१) सर्व नियन्ता, सबका राजा परमेशवर।

'अपरिपरेण यथा यमराज्ञः पितॄन् गच्छ'

अ. १८.२.४६

यमःराजा – पितरों का राजा यम। दे. 'अनुपस्पशान' 'वैवस्वत'

'यमं राजानं हविषा दुवस्या'

ऋ. १०.१४.१; अ. १८.१.४९; ३.१३ मै.सं. ४.१४.१६: २४३.७; तै.आ. ६. १.१; नि. १०.२०.

यमराट् – (१) यमराज, । (२) नियन्ताराजा।

'यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः'

ऋ. १०.१६.९; अ. १२.२.८; वाज.सं. २५.१९.

यमराज्य – यम का राज्य, नियन्ता का राज्य,

'ये समानाः समनसः
पितरो यमराज्ये'

वाज.सं. १९.४५.

यमयोः – (१) दिन रात के जोड़ो में, (२) भोग्य भोक्ता सम्वण्ध से बद्ध युगल जीव और प्रकृति दोनों में, (४) प्राण अपान के जोड़ों में।

'त्वं यमयोरभवो विभावा'

ऋ. १०.८.४

यमस्य करणः – (१) नियामक प्राणात्मा का करण अर्थात् कार्य –स्वप्न। ज. दे.श.।

'देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्थ करणः'

अ. ६.४६.२; १६.५.६.

(२) प्राण हरण रूप यम का व्यापार करने वाला

(३) यम, मृत्यु को बांध लेने वाले का साधन स्वप्न।

'ग्राह्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः'

अ. १६.५.१.

यमस्य जातम् अमृतम् – (१) यमनियम में निष्ठ सर्वनियन्ता परमेश्वर के प्रसिद्ध या प्रकाशित, सब दुःखों से रहित, अमृतमय मोक्ष सुख, (२) यम विनयम पालनरूप ब्रह्मचर्य का प्रकट अविनाशी वीर्य।

'यमस्य जातममृतं यजामहे'

ऋ. १.८३.५; अ. २०.२५.५

हम यम नियम में निष्ठ, सर्व नियन्ता परमेश्वर के प्रसिद्ध या प्रकाशित सब दुःखों से रहित अमृतमय मोक्ष दुःख को प्राप्त करते हैं।

अथवा,

यम नियम पालनरूप ब्रह्मचर्य का प्रकट अविनाशी वीर्य हम प्राप्त करते हैं।

यमस्यमाता – (१) त्वष्टा (विश्वकर्मा) की पुत्री सरण्यू जिसका आदित्य से विवाह हुआ और उसी के यम और यमी उत्पन्न हुए–सा.

(२) मध्यम देव यम की माता ज्योति महान् आदित्य की भार्या समझी हुई। यह

आध्यात्मिक अर्थ है । दे. 'कृणोति'

'यमस्य माता पर्युह्यमाना
महो जाया विवस्वतो ननाश ।

ऋ. १०.१७.१; अ. १८.१.५३; नि. १२.११.

वह यम की भाविनी माता त्वष्टा की पुत्री सरण्यू विवाहिता हो (पर्युह्यमाना माना) यम और यमी को उत्पन्न कर महान् आदित्य की भार्या अदृश्य हो गई । -सा.

मध्यम देव यम की माता वह ज्योति महान् आदित्य की भार्या समझी गई । प्रभात होते ही सूर्य की ज्योति सूर्य के पास से छिटकर दूर भाग गई ।

(३) सर्वनियन्ता की जगत् निर्मात्री प्रकृति ।

भयस्यश्वानौ - (१) यम के दो कुत्ते (२) परमात्मा के दिन और रात्रिरूपी निरन्तर गतिशील कुत्ते ।

'यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ'

अ. ८.१.९

यमस्यषट् - (१) संयम में रहने वाले जीव के मनसहित छः इन्द्रियाँ, (२) काल रुप संवत्सर की छः ऋतुएं

'अष्टेन्द्रस्य षड् यमस्य'

अ. ८.९.२३

यमस्य सभासदः - (१) इस तपस्वी शरीर के भीतर व्यापक प्राण, (२) राष्ट्र के नियामक राजा के सभासद् ।

'यमस्यामी सभासदः'

अ. ३.२९.१

यमसानः - यम अर्थात् संयम का सेवन करने वाला ।

'भसदश्वो न यमसान आसा'

ऋ. ६.३.४

यमस् - (१) यम अर्थात् नियन्त्रण करने वाले नियमों को बनाने वाली अथवा नियामक पुरुषों को आज्ञा में चलाने वाली राजसभा (२) जुड़वां जनने वाली स्त्री ।

'यमाय यमसूम्'

वाज.सं. ३०.१५

(३) संयमवान् ब्रह्मचारियों को उत्पन्न करने और विद्या धाराओं से स्नान कराने वाला आचार्य, (४) राष्ट्र प्रबन्धकर्ता यम है उसके ऊपर शासक सभा यमसू है,

(५) सूर्य चन्द्रादि जोड़ो को उत्पन्न करने वाला- परमेश्वर

'यमा चिदत्र यमसूरसूत'

ऋ. ३.३९.३

यम्यः - नियन्ता सारथि के वश अश्व ।

'नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः'

ऋ. ५.४४.४

यमा - द्वि.व. । (१) यम नियम से रहने वाले जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष (२) अश्विद्वय ।

'अजेव यमा वरमा सचेथे'

ऋ. २.३९.२

यस्या - द्वि.व. । (१) रात्रि और उषा जो यम अर्थात् सूर्य से उत्पन्न हो प्राणियों को जागृति और विद्रा में बांधती है, (२) सर्वनियन्ता परमेस्वर के अधीन रहने वाली ।

'नाना चक्राते यम्या वपूंषि'

ऋ. ३.५५.११

यमितवै - निग्रह करने के लिए । दे. 'मन्था' ।

'यत्र मन्थां विबध्नते
रश्मीन् यमितवा इव'

ऋ. १.२८.४

यमिष्ठ - (१) अति कुशल नियन्ता ।

'यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते'

ऋ. १.५५.७

हे इन्द्र, जो नियन्त्रण करने में कुशल (यमिष्ठासः) रथियों के साथ बैठने वाले सारथि लोग- ।

यमी - यम + इन् = यमिन् अथवा यम + ङीष् = यमी ।

अर्थ - (१) यम की बहन -सा. (२) माध्यमिका वाक् - दुर्ग ।दे. 'अध' ।

अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वाम्
परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तव
अधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम्'

ऋ. १०.१०.१४

हे यमी, तू किसी अन्य वर को ढूंढ और उससे भोग कर जैसे लता वृक्ष से मिली रहती है । तू उसके मन में प्रवेश कर और वह तेरे मन में और इस प्रकार सुन्दर भोगादि सुख कर ।

दुर्ग ने यम को माध्यमिका देव और यमी को

माध्यमिक वाक् उषा माना है ।

ऐतिहासिक और आध्यात्मिक पक्ष में यमी का अर्थ भिन्न भिन्न है । यम और यमी भाई बहन समझे गए हैं । शब्द कल्पद्रुम आदि कोषों में यमुना नदी को यम भगिनी और यमी कहा गया है । यमी का पर्यायवाची यमुना भ्राता बताया गया है । दीपावली तीसरे दिन भ्रातृ द्वितीय (भाई दूज) मनाया जाता है। यम यमी को पति पत्नी के वाचक मानना भूल है । यम और यमी सगोत्र भाई बहन हैं । सगे नहीं ।

ऋग्वेद का यम यमी सूक्त पठनीय है ।

यमुना - प्रयुवति गच्छति इति यमुना ।

(प्रकर्ष से अपना जल दूसरी नदी में मिश्रित कर जाती या बहती है अतः यमुना है) ।

अथवा, (२) प्रवियुतं गच्छति इति वा (तरंगों से स्तिमित होकर जो चलती है वह यमुना है) । यु धातु मिश्रण और उपमिश्रण दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है ।

अर्थ- (१) यमुना नाम्नी नदी

'इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति'

ऋ.१०.७५.५. तै.आ. १०.१.१३; नि. ९.२६.

आधुनिक अर्थ- यमुना नदी जिसे यम की स्वसा कहा गया है ।

(२) नियन्त्रण करने वाली सेना (३) राष्ट्रीनीति, (४) यम नियमान्विता क्रिया - दया.

'यमुनायामधि श्रुतम्
उद् राधो गव्यं मृजे'

ऋ. ५.५२.१७

(५) पशुओं को नियन्त्रण करने वाली नीति, (६) नियन्त्रण करने वाला जल, (७) नियन्ता ।

'आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च'

ऋ. ७.१८.१९

(८) शरीर की पिंगला नाम की नाड़ी जो देह के समस्त अंगों को सुव्यवस्थित करती और संयम से रखती है ।

यय्य - दूर देश में जाने और पहुंचाने देने वाला रथ ।

'अर्वाञ्चमद्य युय्यं नृवाहणम्'

ऋ. २.३७.५; कौ.सू. १२.३.१४; आप.श्रौ.सू. २१.७.१७

ययातिवत् - (१) ययाति राजा के समान -सा. (२) प्रयत्नवान् -दया. (३) वायु के समान समस्त संसार के अंग अंग में व्यापक -ज.दे.श. (४) क्रियाशील

'मनुष्वदग्ने अंगिरस्वदंगिरः'
ययातिवत् सदने पूर्ववच्छुचे'

ऋ. १.३१.१७

हे अग्नि के समान तेजस्विन्, हे अंगिरः, सूर्य के समान प्रकाश वाले वायु के समान समस्त संसार में अंग अंग में व्यापक हे शुचि, तू मननशील पुरुषों से युक्त होकर.....

ययाथ- याहि (जा) । लोट् के अर्थ में लिट् का प्योग । दे 'अनस्' ।

ययिः - (१) जाने वाला ।

'उग्रो वां ककुहो ययिः'

ऋ. ५.७३.७

(२) वेग से गम न करने वाला- मेघ ।

'उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजत्'

ऋ. १.५१.११

वेग से गमन करने वाले मेघ को (यमिम्) वायु या विद्युत् (उग्रः) अपने आघात से टकरा कर उसके जलों को (अपः) प्रवाह रूप से (स्रोतसा) बहा देता है (निर् असृजत्) ।

यमिनी - (१) नियम कारिणी, नियामक परमेश्वरी शक्ति, (२) प्रकृति, (३) जोड़ा बनी प्रकृति, (४) राजव्यवस्थापिका सभा ।

'यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः'

अ. ३.२८.१

यमी - (१) विवाह बन्धन में बंधी स्त्री (२) विवस्वान् की पुत्री यमी ।

यम यमी के सम्बन्ध में वेद के भाष्यकारों में बहुत मतभेद है । वस्तुतः यम यमी विवाहित स्त्री पुरुष का ही द्योतक है ।

'यमस्य मा यम्यं काम आगन्'

ऋ. १०.१०.७; अ. १८.१.८.

ययी (ययिन्) - वेग से प्रयाण करने वाला ।

'सिन्धवो न ययियो भ्राजदृष्टयः'

ऋ. १०.७८.७

ययुः - शत्रुओं पर विजय करने के लिए प्रयाण करने वाला ।

'ययुर्नामासि'

वाज.सं. २२.१९, तै.सं. ७.१.१२.१; मै.सं.

३.१२.४: १६१.१०; श .ब्रा. १३.१.६.१; तै.ब्रा. ३.८.९.२; आप.मं.पा. २.२१.२९.

यंसन् – प्रयच्छन्तु, ददतु (देवें)। यम् (दानार्थक) के लोट् प्र. पु.ब.व. का रूप।

यव – (१) यव, (२) राष्ट्र, (३) प्रजा।
'विट् वै यवः राष्ट्र यवः
दे. 'सूयवसाद्'
(४) यु + अच्। यव नामक अन्न। यह शरीर को जुटाता है, पुष्ट करता है अतः यव कहलाया दे. 'अभिधमन्ता'।
'यवं वृकेणाश्विना वयन्ता'
ऋ. १.११७.२१; नि. ६.२६.
(५) शरीर इन्द्रिय आदि संघात को मिलाए रखने वाला आत्मा।
'इमं यवमष्टायोगैः'
अ. ६.९१.१
(६) अग्नि (७) अग्रणी पुरुष (८) सोम (९) ज्ञानवान् आचार्य।
'अग्निर्यव इन्द्रो यवः सोमो यवः'
अ. ९.२.१३.
(१०) शत्रुओं को दूर करने में समर्थ।
'यवोऽसि'
वाज.सं. ५.२६; ६.१ तै.सं. १.३.१.१; २.२.; ६.१; मै.सं. १.२.११: २०.१५; १.२.१४: २३.१०; का.सं. २.१२, ३.३; श.ब्रा. ३.६.१.११; ७.१४; तै.आ. ६.१०.२; आप.श्रौ.सू. ७.९.१०; ११.१२.५; कौ.सू. ८२.१७.

यव्य – (१) यव आदि उपजाने योग्य खेत (२) शत्रुनाशक वीरों का उत्पादक राष्ट्र (३) यव का बना।
'गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहा
इषं वरमरुण्यो वरन्त'
ऋ. १.१४०.१३
भूमि और इन्द्रियों को हितकारी (गव्यम्) और यवादि के योग्य क्षेत्र को प्राप्त कर (भव्यं यन्तः) वृष्टि और उत्तम अन्न को (इषम् वरम्) प्रदान करते हैं (वरन्त)।
अथवा,
गौओं के दुग्ध के समान भूमि से प्राप्त ऐश्वर्य और वेदवाणी से प्राप्त ज्ञान को (गव्यम्) और यवादि अन्नोपयोगी क्षेत्र और शत्रुनाशक वीरोत्पादक राष्ट्र को प्राप्त होते हुए बहुत दिनों तक (दीर्घाहा) प्रजा को सन्मार्गों में प्रेरक (इषम्) वरणीय उत्तम पदाधिकार को (वरम्) प्राप्त करें।
'यव्ये गव्ये एतदन्नमत्त'
वाज.सं. २३.८

यवमणि – (१) शाप, क्रूरदृष्टि, पिशाच आदि के भय निवारण के लिए यवमणि का प्रयोग किया जाता है। कौशिक और सायण आदि के अनुसार यह 'जौ' का बनाया ताबीज है।
'अग्निर्यवः इन्द्रोयवः सोमोयवः
यव या वानों देवाः यावयन्त्येनम्'

यवमत् – यवादि अन्न से युक्त। दे. 'शम्ब'।

यवमान् – यवादि की खेती करने वाला।
'कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चित्'
ऋ. १०.१३१.२; अ. २०.१२५.२; वाज.सं. १०.३२; १९.६; २३.३८; तै .सं. १.८.२१.१; ५.२.११.२; मै.सं. १.११.४: १६६.३; २.३.८: ३६ .३; ४.८.९: ११८.१६; का.सं. १२.९; १४.३; ३७.१८; श.ब्रा. ५.५.४.२४; १२.७.३.१३; तै.ब्रा. २.६.१.३.

यवयावा – भगा देने में समर्थ। 'यु' धातु योग और वियोग अर्थों में आया है।
'यवयावानो देवाः यावयन्त्वेनम्'
अ. ९.२.१३.

यवयावानः – मन को साथ लेकर चलने वाले।

यवयुः – अन्नादि का इच्छुक।
'त्वामिद्यवयुर्मम कामः'
ऋ. ८.७८.९

यवस – घास तृण।

यवस प्रथम – (१) यव गेहूं आदि जाति के अन्नों में से सबसे उत्तम (२) शत्रुओं को नाश करने में सबसे श्रेष्ठ, (३) सबसे उत्तम यव आदि प्राप्त करने वाला।
(४) मिश्रण, अमिश्रण, उचित अंश के ग्रहण करने और हानिकारिक अंश के त्याग में श्रेष्ठ।
'यवस प्रथमानां सुमत्क्षराणाम्'
वाज.सं. २१.४३.

यवसादः – चोर के समान कर्मफल भोगने।
'सं यद्वयं यवसादो जनानाम्'
ऋ. १०.२७.९

यवाद् – यव + अद् + क्विप् = यवाद्। (१) यव

या अन्न खाने वाला, (२) नाना भोगों को भोगने वाला जीव ।
'अहं यवाद उर्वज्रे अन्तः'
ऋ. १०.२७.९

यवानः – पृथक् करता हुआ ।
'यवानो यतिस्वभिः कुभिः'
अ. २०.१३०.७

यवाशिर् – (१) मिलाने और विभाग करने अर्थात् संयोग और विभाग करने से मिश्रित ।
'त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्कः'
ऋ. २.२२.१; अ. २०.९५.१; साम १.४५७; २.८३६; कौ.ब्रा. २७.२; शां.श्रौ.सू. १५.२.१; तै.ब्रा. २.५.८.९.
(३) यव आदि अन्न और शत्रुओं के नाशक सेनाबलों के आश्रय पर विद्यमान ।
'यवाशिरं च नः पिब'
ऋ. ३.४२.७; अ. २०.२४.७
(३) यव आदि से मिला, (४) अन्नादि के बल से शत्रुओं का नाशक ।
'यवाशिरो भजामहे'
ऋ. १.१८७.९ का.सं. ४०.८
(५) यो यवान् अश्नाति – दया. । यव आदि औषधि पर आश्रित रहने वाला ।
(६) यव आदि अन्नों से गृहीत, (७) अन्न से मिश्रित सोमरस ।

यव्यागीः – शत्रु को दूर कर देने वाली वाणी ।
'महश्चिद् यस्य मीढुषो यव्या
हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः'
ऋ. १.१७३.१२; वाज.सं. ३.४६; श.ब्रा. २.५.२.२८.

यव्यावती – शत्रुओं को दूर करने में कुशल पुरुषों से बनी सेना ।
'यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या'
ऋ. ६.२७.६

यविष्ठः – युवन् + इष्ठ = यविष्ठ (१) सबसे बड़ा या सामर्थ्यवान् (२) सब में रमने वाला या सब से पृथक् परमात्मा (३) पदार्थों को मिलाने वाला या पदार्थों में मिलने वाला अग्नि, (४) जल कणों को पृथक् करने वाला अग्नि, (५) बलशाली, (६) अत्यन्त युवा ।
'यविष्ठ दूत नो गिरा'
ऋ. २.६.६

यविष्ठ्य – (१) युवतम (२) मिश्रयितृतम (मिलाने वालों में श्रेष्ठ) – दुर्ग ।
(३) अग्नि का विशेषण (४) युवा समान वसिष्ठ विद्वान् – दया. । दे. 'पज्र'
'तं जुषस्व यविष्ठ्य'
ऋ. ३.२८.२
(५) पदार्थों को मिलाने और फाड़ने वाला परमेश्वर, (६) पूज्यतम ।
'तज्जुषस्व यविष्ठ्य'
अ. १९.६४.३; वाज.सं. ११.७३; ७४; तै.सं. ४.१.१०.१; मै.सं. २. ७.७: ८३.८; १०, का.सं. १६.७; श.ब्रा. ६.६.३.५; ६.
(६) युवा पुरुषों में सर्वोत्तम बलवान् ।
'तव क्रत्वा यविष्ठ्य'
ऋ. ३.९.६

यवी – (१) संयोग विभाग करने वाली गति, (२) अपने से कम अवस्था वाली ।
परा शुभ्रा अयासो यव्या
साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः'
ऋ. १.१६७.४.

यवीयुध् – शत्रुनाशक प्रहारक बल ।
'सहस्रेणेव सचते यवीयुधा'
ऋ. ८.४.६

यशः – (१) जल । दे. 'ऊर्ध्वबुध्न' ।
'यस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्'
नि. १२.३८.
जिस सूर्य में (यस्मिन्) अनेकों प्रकार के जल (विश्वरूपं यशः) रखा हुआ है (निहितम्) ।
(२) यश, बड़ाई, । दे. 'ऋचीषम' ।
'मित्रो न यो जनेष्वा
यशश्चक्रे असाम्या'
ऋ. १०.२२.२
जो इन्द्र मित्र के सदृश जनों में यश फैलाते हैं ।
(३) अन्न, (४) धन ।

यशसः – यशः अस्य अस्ति इति यशसः । यशस्वी – दया. ।

यशस्तमः – (१) सबसे अधिक यशस्वी ।
'अहमस्मि यशस्तमः'
अ. ६.३९.३; ५८.३
(२) जल से युक्त, (३) अति प्रचुर अन्न देने

वाला ।
'यशस्तमस्य मीढुषः '
ऋ. २.८.१

यशस्वती – यशवाली स्त्री या कुमारी । दे. 'नवोदा'
'यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः '
ऋ. १.७९.१; तै.सं. ३.१.११.५.

यशसा – (१) अन्न या धन से – सा. (२) यशस्वी-दया. । दे. 'राष्पिन् ' ।

यशाः – यशस्वी ।
'यशा इन्द्रो यशा अग्निः '
अ. ६.३९.३; ५८.३

यष्टवे – यज् + तवेन् = यष्टवे । अर्थ है– यज्ञ करने के लिए । 'तवेन्' प्रत्यय 'तुमुन्' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।
'अद्या नूनं च यष्टवे '
ऋ. १.१३.६
आज अवश्य यज्ञ करने के अवसर में......

यंसत् – देवें । यम् (यच्छ) के लोट् प्र.पु. ए.व. रूप । दे. 'ईषु'
'तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् '
ऋ. ६.७५.११; वाज.सं. २९.४८; तै.सं. ४.६.६.४; मै.सं. ३.१६.३ : १८७.३; नि. ९.१९.
उस युद्ध में इषु हमें कल्याणमय शरण या विजय देवें ।

यह्वः – यज् + वन् = यह्व (वन्नन्त निपात) । य का ह आदेश । विशेषण । अर्थ है – (१) गुणों से महान् (२) अग्नि, परमात्मा, (४) पिता ।
'अपां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः '
ऋ. ३.१.१२.
दे. 'आजुह्वान ' ।
'त्वं देवानामसि यह्व होता '
ऋ. १०.११०.३; अ. ५.१२.३; वाज.सं. २९.२८; मै.सं. ४.१३.३; २०१.१५; ४.१४.१५: २४२.७; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.२; नि. ८.८.
(६) पूजनीय, (७) महान् , (८) बड़ा पक्षी का बच्चा ।
'यह्वा इव प्रवया मुज्जिहानाः '
ऋ. ५.१.१; अ. १३.२.४६; साम. १.७३; २.१०९६; वाज.सं. १५.२४; तै.सं. ४.४.४.२; मै.सं.२.१३.७: १५५.१५

यह्वती – यह्व (आचार अर्थ में) + शतृ + ङीष् = यह्वती । महत इव आचरन्ती । अर्थ है· (१) महती, विशाल ।
'ते सेधन्ति पथो वृकं
तरन्तं यह्वतीरपः '
ऋ. १.१०५.११
वे सूर्य की किरणें क्रान्ति मार्गों पर गति करती हुई विशाल समुद्र के जलों पर भी पड़ती हैं । (२) महान् आप्त जन (३) व्यापक शक्तियाँ (४) सबका उत्पादक व्यापक प्रभु ।
'यत्रामूर्मह्वतीरापः '

यह्वी – (१) बड़ी नदी, (२) जल धारा, (३) महती ।
'स्वयमत्कैः परिदीयन्ति यह्वीः '
ऋ. २.३५.१४.
(४) गुणों से बड़ी, (५) उत्तम कन्या ।
'दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः '
ऋ. ३.१.६.

यहुः – यज् + उ = यहु । ज् का ह् । अर्थ + (१) महान् , ।
'विश्वेत इन्द्र पृतनायवो यहो '
ऋ. ८.४.५.
(२) पुत्र । दे. सहसो यहुः '

याच – धा. । परस्मैपदी । अर्थ देना ।
'यदुदकं याचति अपः प्रणयति '
अ. ९.६ (१) ४

याचन् – प्रार्थना करता हुआ । जांचता हुआ । दे. 'गल्दा' ।
'सदा याचन्नहं गिरा '
ऋ. ८.१.२०; साम. १.३०७; नि. ६.२४.
सदा मैं स्तुति द्वारा तेरी प्रार्थना करता हुआ ।

याचिषत् – याचेत् (याचना करते हैं) । लट् में सिप् का आगम हुआ । है । अर्थ-याचता है या जांचा । दे. 'गल्दा '
'क ईशानं न याचिषत् '
ऋ. ८.१.२०; साम. १.३०७; नि. ६.२४.
समर्थ से कौन नहीं जांचता है ?

याच्छ्रेष्ठा – यात् + श्रेष्ठा । शत्रु-हिंसा के कार्य में सबसे उत्तम ।

याज्या – (१) पृथिवी ।
'इयं याज्या '
श.ब्रा. १.७.२.११
(२) अन्न ।

'अन्नं वै याज्या'
कौ.सू. १५.३
गौ.ब्रा. ३.३.२२,
(३) प्रति।
प्रत्तिर्वै याज्या
पुण्यै व लक्ष्मीः'
ऐ.ब्रा. २.४.
'याज्याभिर्वषट्कारान्
वाज.सं. १०.२०
(४) यज्ञों में आहुति काल में पढ़ने योग्य ऋचा।
(५) वृष्टि।
'वृष्टिर्वै याज्या विद्युदेव'
ऐ.ब्रा. २.४
'पुरोनुवाक्या याज्याभिः'
वाज.सं. २०.१२; मै.सं. ३.११.८: १५१.११; श.ब्रा. १२.८.३.३०

यात् – (१) जाने वाला यात्री।
'आवोऽवचिः क्रतवो न याताम्'
ऋ. ६.४८.१
(२) जितना।
'यादेव विद्म तात् त्वा महान्तम्'
ऋ. ६.२१.६

यात्द्यावा – आए दिन।
'यान्नु द्यावस्ततन् यादुषासः'
ऋ. ७.८८.४

यातम् – पहुंचना, पहुंच।
'नहि स्थूरि ऋतुथा यातमस्ति'
ऋ. १०.१३१.३; अ. २०.१२५.३

यातयज्जनः – (१) दुष्टों को पीड़ा देने वाले पुरुषों का स्वामी, (२) समस्त राष्ट्रवासी जनों को सन्मार्ग में प्रेरित करने वाला अर्यमा या न्यायकारी पुरुष।
'अर्यमा यातयज्जनः'
ऋ. १.१३६.३
(३) प्रजाजनों को अपने कार्य में लगाने वाला–सूर्य मित्र।
'यातयज्जनो गृणते सुशेवः'
ऋ. ३.५९.५; तै.ब्रा. २.८.७.६.

याता – आक्रमणकारी।
'अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र'
ऋ. १.३२.१४
मेघ पर या मेघ के समान शत्रु पर आक्रमण करने वाले किसको तू देखता है।

यातुः – (१) यातयितव्य, यातना देने योग्य, (२) राक्षस।
यात् + उ= यातु,
अथवा (३) या (जाना) + तु = यातु। नित्य चलने वाला या राक्षस, (४) यज्ञ में विघ्नकर्त्ता दे. 'अपि'।
'न यातव इन्द्र जूजवर्नः'
ऋ. ७.२१.५
हे इन्द्र! राक्षस हमारा यज्ञ भ्रष्ट न करें।
'नैऋतः यातु रक्षसी
(५) आततायी, दे. 'पराशर'
आधुनिक अर्थ– यात्री, हवा, समय, राक्षसः।

यातुचातन – पीड़ा जनक दुष्ट जनों का नाशक।
'तदङ्ग यातुचातनम्'
अ. १.१६.२

यातुजम्भन – समस्त मानस और शारीरिक पीड़ाओं को रोकने वाला– अञ्जन या ज्ञानाञ्जन।
'यातुजनम्भनमाञ्जन'
अ. ४.९.३

यातुजूः – (१) पीड़ा देने वाला शत्रु (२) पीड़ा पहुंचाने वाला।
'अव स्थिरा तनुहि यातुजूनाम्'
ऋ. ४.४.५; १०.११६.५; वाज.सं. १३.१३; तै.सं. १.२.१४.२; मै. सं. २.७.१५: ९७.१६; का.सं. १६.१५.
(३) प्रयाण करने में अतिवेग से जाने वाला, (४) चढ़ाई करने के निमित्त वेग से आने वाला।

यातुधानः – (१) राक्षस। दे. 'अद्य'
'अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि'
ऋ. ७.१०४.१५; अ. ८.४.१५; नि. ७.३.
यदि मैं राक्षस होऊं तो आज ही मर जाऊं।
(२) 'यातु' अर्थात् मृत्यु देहावसान रूप कष्ट को लाने वाला–पीड़ादायक रोग।
'नमस्ते यातुधानेभ्यः'
ऋ. ६.१३.३
(३) कुटिल मार्गों से धन प्राप्त करने वाला, ठग, चोर लुटेरा, राक्षस।

'यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम्'
वाज.सं. ३०.८

यातुधानी – (१) पीड़ा देने वाली कुटिल चाल चलने वाली जीवजाति ।
'अदृष्टान् सर्वाञ्जम्भयन्
सर्वाश्च यातुधान्यः'
ऋ. १.१९१.८

यातुमत् – (१) प्रजापीड़क ।
'नूनं सृज दर्शनिं यातुमद्भ्यः'
ऋ. ७.१०४.२०, अ. ८.४.२०

यातुमती – (१) जिसमें बहुत यातु अर्थात् आक्रमण कारी या हिंसक हो– सेना ।
(२) पीड़ा देने वाले शस्त्रास्त्रों से सजी शत्रु सेना, (३) अन्यों को पीड़ा देने वाले उपायों को करने वाला दुष्ट ।
'शीर्षा यातुमतीनाम्'
ऋ. १.१३३.२
पीड़ा देने वाले शस्त्रास्त्रों से सजी शत्रु सेनाओं के सिर भागों या प्रमुख सेनानायकों और मुख्य बलवान् दलों को (शीर्षा)......

यातुमान् – पीड़ाकारी ।
'अशनिं यातुमद्भ्यः'
ऋ. ७.१०४.२५; अ. ८.४.२५

यातुमावत् – (१) यातुमावतः इति सायणः (२) यातुऽअमावतः इति दयानन्दः । यातुऽमावतः इति पदपाठः '
अर्थ – (१) पीड़ादायक पुरुषों का स्वामी । दे. 'रक्षस्वी'

यातुमावान् – (१) यान साधनों अश्वादि का स्वामी, (२) यातु + मावान् – प्रमाण या पीड़ा देने में मेरे समान बल वाला ।
'न यं यावा तरति यातुमावान्'
ऋ. ७.१.५.

याथातथ्यतः – यथार्थरूप से, ठीक ठीक ।
'याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्'
वाज.सं. ४०.८; ईश.उप. ८.

यादमानः – (१) याचमानः, प्रर्थित ।
'शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः'
ऋ. ३.३६.१
(२) निरन्तर आता हुआ ।
'समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः'
ऋ. ६.१९.५
(३) यत्न करता हुआ ।
'अमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः'
ऋ. ७.७६.५

यादस् – (१) जलजन्तु, (२) जल ।
'यादसे शाबल्याम्'
वाज.सं. ३०.२०

याद्वः – मनुष्य ।
'नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीहि'
ऋ. ७.१९.८; अ. २०.३७.८

याद्वःपशुः – (१) मनुष्यों का हितकारी पशु, (२) यत्नवान् मनुष्यों के बीच कुशल तत्वदर्शी ।
'यो अस्ति याद्वः पशुः'
ऋ. ८.१.३१.

याद्राध्य – (१) यात् + राध्य । जल जन्तुओं से सेवनीय, (२) गतिमान जंगम प्राणियों से सेवनीय, (३) शरण में आने वाले शिष्य या प्रजागण से आराधनीय ।
'याद्राध्यं वरुणो योनिमप्यम्'
ऋ. २.३८.८

यादुरी – यती (प्रयत्न करना) + उरन् = मादुर यादुर + ङीष् = यादुरी । अर्थ – (१) बहुत रेत वाली स्त्री –सा. (२) प्रयत्नशीला – दया. । दे. 'आगधिता' ।
'ददाति मह्यं यादुरी
याशूनां भोज्या शता'
ऋ. १.१२६.६
जो स्त्री (भोज्या) मुझे रेतवाली सौ संभोग देती है ।

यादृक् – यत् + दृश् = यादृश्, अर्थ – (१) जैसा । दे. 'अविदत्' ' धायि' ।
'यादृश्मिन् धायि तमपस्यया विदत्'
ऋ. ५.४४.८, नि. ६.१५
यजमान जिस कामना में मन रखता है उस कामना को क्रिया रूप से या फल रूप से प्राप्त करता है ।

यादृश्मिन् – यादृशे (जिस प्रकार में) दे. 'धायि'

यानम् – फल प्राप्ति कराने वाला । दे. 'अध्वर' ।
'तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान्'
मध्वा समञ्जन् स्वदया सुजिह्व'
ऋ. १०.११०.२; अ. ५.१२.२; वाज.सं. २९.२६;

मै.सं. ४.१३.३: २०१.१०; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.१; नि. ८.६
हे अग्ने, यज्ञ के इन फल प्राप्ति कारक हवि रूप भागों को मधु रस से मिलाते हुए स्वादिष्ट बना।

यामः - यम् + घञ् = याम (१) यज्ञ। दे. 'अर्भक'
'कनीनकेव विदधे नवे द्रुपदे अर्भके
बभ्रू यामेषु शोभेते'
ऋ. ४.३२.२३; नि. ४.१५.
हे इन्द्र, दो पीली घोड़ियाँ यज्ञों में विद्ध (यामेषु विद्रधे) पादुकाख्य स्थान में अधिष्ठित (द्रुपदे) नई कन्याओं की तरह सोहती है।(२) दुर्ग ने इसका अर्थ अजिस्थान, युद्धस्थान, बन्धनस्थान एवं मन्दुरा किया है। (३) याम बन्धन को कहते हैं। अ ग्रेजी में **jam** रुकावट के अर्थ में आया है। हिन्दी में भी जाम लग जाना इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है।
(४) रथ। येन गच्छति (जिस से जाया जाता है)।
'विभुर्वां याम उत रातिदश्विना'
ऋ. १.३४.१
तुम लोगों का रथ और दान सामर्थ्यवान् हो। आधुनिक अर्थ - निमन्त्रण, संयम, सहन, पहरा देने वाला प्रहरी, दिन का अष्टम भाग। यज्ञ अर्थ में अब इस शब्द का प्रयोग नहीं है।
(५) प्रहर।
'स यामनि प्रति श्रुधि'
ऋ. १.२५.२०
वह तू प्रति प्रहर प्रत्येक मनुष्य या जन्तु के कष्टों को श्रवण करता है।
(६) आना जाना, (७) मेघों को या मेघ के जलों को एकत्र करने वाला- वायु का गमन।
'चित्रो वोऽस्तु यामः'
ऋ. १.१७२.१
(८) राजनियम, (९) क्रूर कर्म-सा.
(१०) यामं धनम्, बीजमयं धनम्-ग्रीफिथ
(११) नियम, व्यवस्था।
'यद् यामं चक्रुर्निखनन्तो अग्रे'
अ. ६.११६.१
(१२) यम नामक अधिकारी का।
'कर्णा यामाः'
वाज.सं. २४.३; मै.सं. ३.१३.४: १६९.६
(१३) गमन, प्रयाण, (१४) परस्पर वैवाहिक बन्धन, (१५) राज्यप्रबन्ध।
'कुत्राचिद् याममश्विना दधाना'
ऋ. ७.६९.२; मै.सं. ४.१४.१०: २२९.१४; तै.ब्रा. २.८.७.७.
(१६) गमन करने में समर्थ रथ।
'अस्मिन् यामे वृषण्वसू'
वाज.सं. ११.१३; तै.सं. ४.१.२.१; मै.सं. २.७.२: ७५.३; का.सं . १५.१; श.ब्रा. ६.३.२.३.

यामकोशाः - (१) मार्ग के कोश- दया. (२) लम्बे लम्बे खङ्गवाले, (३) बड़ा कोश-खजाना, (४) बड़ा दान, ।
'इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन्'
ऋ. ३.३०.१५

यामन् - (१) व्यवस्थित राष्ट्र, (२) संसार मार्ग।
'शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि'
ऋ. ७.३२.२६; अ. १८.३.६७; २०.७९.१; साम. १.२५९; २.८०६; तै. सं. ७.५.७.४; का.सं. ३३.७; ऐ.ब्रा. ४.१०.३
(३) यामनि, (प्रति प्रहर) (४) इस संसार में।
'यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन्'
ऋ. १.३३.२
वह परमेश्वर भक्तों द्वारा प्रति प्रहर या इस संसार में हव्य है।
(४) युद्ध के लिए यात्रा। दे. 'करा'
'प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि'
ऋ. १.१३८.२
वेग से गमन करने के निमित्त (यामनि) जैसे वेग से जाने वाले अश्व को (अजिरम्) लिया जाता है।
(४) दिन।
'यामन्यामन्नपयुक्तं वहिष्ठम्'
अ. ४.२३.३

यामनि यामनि - (१) प्रत्येक यम निमय में अभ्यस्त, (२) विवाह कृत्य।
'पूषा यामनि यामनि'
ऋ. ९.६७.१०

यामश्रुत - (१) यामाः श्रुताः येन-दया. (२) प्रति प्रहर श्रवण करन वाला (३) यम नियमों का पालन करता हुआ, (४) वेदादि का गुरु मुख

से श्रवण कर चुकने वाला ।
'दाना सचेत सूरिभिः
यामश्रुतेभिरञ्जिभिः '
ऋ. ५.५२.१५

यामहूतमा – द्वि.व. । संयमशील पुरुषों को आदरपूर्वक गुरुरूप से स्वीकार करने वाले ।
'ता यामन् यामहूतमा
यामन्ना मृडयत्तमा '
ऋ. ५.७३.९

यामहूतिः – (१) उपरमाह्वान रूप कर्म – दया.
(२) लोगों पर नियन्त्रण करने वाले सेनापति की आज्ञा ।
'श्रोतारो यामहूतिषु '
ऋ. ५.६१.१५

याम्य – (१) बांधने और राष्ट्र के नियमन में समर्थ
'नमो याम्याय च क्षेम्याय च '
वाज.सं. १६.३३; तै.सं. ४.५.६.१; मै.सं. २.९.६: १२५.५; का. सं. १७.१४.

यामि – याचामि (याचे), ईमहे, यामि यादि धातु याञ्चा अर्थ में प्रयुक्त किए गए हैं ।
निरुक्त में वर्ण लोप वाले शब्दों की गणना में 'यामि' का भी उल्लेख है (अथापि वर्णलोपो भवति तत् त्वा याभि इति) ।
यहां याचामि से यामि हो गए हैं । याचामि में आत्मने पद का व्यत्यय भी है ।
'तत् त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानः
तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः
अहेडमानो वरुणेह बोध्युः
उ शंस मा न आयुः प्र मोषीः '
ऋ. १.२४.११
शुनः शेप ने इस त्रिष्टुप् से वरुण को प्रसन्न किया ।
हे वरुण, जिस प्रकार प्रौढ़ स्तोत्र से स्तुति करता हु आ (ब्रह्मण वन्दमानः) कोई यजमान हवियों द्वारा आयु की प्रार्थना करता है (तत् आशास्ते) उसी प्रकार मैं तुझ से आयु की याचना करता हूँ (त्वा तत् यामि) । तू भी इसी कर्म में समाहूत होकर (इह) अत्यन्त आदृत हुआ समझ (अहेडमानःबोधि) । हे बहुतों से प्रशंसित (उरुशस्) हमारी आयु न चूस (नः आयुः मा प्रमोषीः) ।

यामुन – (१) यम नियम साधन से योग रूप में उत्पन्न ज्ञान,
(२) आंजन के दो भेदत्रैककुद और यामुन में एक ।
'यदि यामुनमुच्यसे '
अ. ४.९.१०

यावत् – (अ.) जितना । दे. 'इलीविश' ।
'यावत्तरो मघवन् यावदोजः '
ऋ. १.३३.१२
हे इन्द्र, जितनी तुझ में शक्ति हो और जितना ओज हो । -सा. । हे ऐश्वर्यवान् राजन्, जितना तेरा शारीरिक बल है (यावत् तरः) और जितना आत्मिक बल है (यावत् ओजः) -दया. ।

यावती – जितना ।
'यावतीः कियतीश्चेमाः '
अ. ८.७.१३

यावद् द्वेषा – (१) समस्त अप्रीति कारक द्वेषादि कर्मों को दूर करने वाली उषा या स्त्री । दे. 'ऋतपा' ।

यावन्मात्रम् – जितना ही । दे. 'अवर' ।
'यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं
सुपर्ण्यो वसते मातरिश्वः '
ऋ. १०.८८.१९; नि. ७.३१.
हे मातरिश्व, जितनी ही रात्रि या उषा का प्रतीक आच्छादित करती हैं या जितनी ही उषाएं रात्रियों में देखी जाती है ।

यावा – पैरों से जाने वाला ।
'न यं यावा तरति यातुमावान् '
ऋ. ७.१.५.

याव्या – नदी ।
'वार्ण त्वा याव्याभिः '
ऋ. ८.९८.८: अ. २०.१००.२; साम. २.६१.

याशुः – (१) संभोग -सा. (२) प्रयत्नशील -दया. दे. 'आगधिता' ।
'ददाति मह्यं यादुरी
याशूनां भोज्या शता '
ऋ. १.१२६.६
जो स्त्री (भोज्या) बहुत रेत वाली सौ संभोग देती है- -सा.
जो मेरी पत्नी प्रयत्नशीलों में अधिक प्रयत्न शीला होती हुई मुझे राज्य-पालन -सम्बन्धी

अनेकों साहाय्य प्रदान करती हैं (भोज्या शता ददाति)।

याहि - (१) संगच्छ (संगमन कर मैथुन कर)-सा. (२) साधारण अर्थ-जा। दे. 'आहनस्'।

युः - (१) या (प्रापण अर्थ में) + कु = यु। अर्थ है- गमन, गमयिता (जाता हुआ या ले जाने वाला) (२) रथ का विशेषण,
(३) उपासना के कर्म को प्राप्त भक्तों से उपसित परमेश्वर।
'न योरुपब्दिरश्व्यः
श्रृण्वे रथस्य कच्चन
यदग्ने यासि दूत्यम्'
ऋ. १.७४.७
हे अग्नि, जब तू दूत कर्म को प्राप्त होता है तब तू अत्यन्त बलकारी हो जाता है (अश्व्यः)! तेरे जाते हुए रथ का (यो रथस्य) शब्द (उपब्दिः) क्या सुनाई नहीं पड़ता (न श्रृण्वे कच्चन)? अथवा,
हे प्रभो, जब तू भक्तों से उपासित होता है (युः) तब सब दुखों को दूर करने वाले रमणयोग्य रस स्वरूप तेरा अति समीप होकर प्राप्त करने योग्य अज्ञान का नाशक, भक्तों का पालक, भोक्ता आत्मा का (रथस्य) हितकारी शब्द (उपब्दिः) क्या नहीं सुनाई देता है?
(४) दुःखदायी।
'स्वैः स एवैरिरिषीष्ट युर्जनः
ऋ. ८.१८.१३

युक् - (१) गृह-कार्य में दक्ष, (२) समस्त कार्यों में सहयोग देने वाली, (३) सावधान रहने वाली स्त्री (४) राज्य कार्य में सहयोग देने वाली प्रजा।
'युजो युज्यन्ते कर्मभिः'
वाज.सं. २३.३७; तै.सं. ५.२.११.१; मै.सं. ३.१२.१२: १६७.७

युक्त - समाधि में स्थिति योगी।
'त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यं च'
अ. ८.९.७

युक्तग्रावा - (१) प्राणों को योग में लगाता हुआ, (२) सोम चुलाने के लिए ग्रावा (पत्थर) को लगाया हुआ,
(३) शस्त्र वान्, क्षत्रिय।
'युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः'
ऋ. २.१२.६, अ. २०.३४.६
(४) ग्रावा अर्थात् उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुषों का सत्संग करने वाला, (५) शस्त्रास्त्र के बांधने में वीर सैनिक।

युक्ता - द्वि.व.। विवाह बंधन से संयुक्त स्त्री पुरुष। दे. 'शिशुमार'।

युक्ताश्वरयि - (१) अश्व जोड़कर ले जाया जाने वाला धन।
'प्र वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वम्'
ऋ. ५.४१.५

युक्ताःषट् - (१) पदों पर नियुक्त छः अमात्य, (२) मन चक्षुआदि छः इन्द्रियाँ, (३) छः ऋतुएं।
'उतो स मह्यमिन्दुभिः
षड्युक्तां अनु सेषिधत्'
ऋ. १.२३.१५
राजा ऐश्वर्यों द्वारा (इन्दुभिः) अपने पदों पर नियुक्त छः अमात्यों को मुझ यजमान के लिए अपने अनुकूल चलावें (अनु सेषिधत्)।
अथवा, सूर्य छः ऋतुओं को अपने अनुकूल चलावें। या जीव मन चक्षु आदि छः इन्द्रियों को अपने अनुकूल चलावें।

युगः - (१) जूआ, जो हम जोतने के समय बैलों की गरदन पर रखा जाता है। दे. 'इत्' 'युनक्त'
'वियुगा तनुध्वम्'
वाज.सं. १२.६८

युगस्यरवः - (१) पतिपत्नी की युगल जोड़ी का गृह।
'खे युगस्य शतक्रतो'
ऋ. ८.९१.७; अ.१४.१.४१,
(२) युग नामक यान विशेष का अवकाश। युग वह यान है जिस में वर और कन्या ही बैठ सकते हैं। पाणिनी ने भी 'युग्यं च पत्रे' में निपातन द्वारा 'युग्य' पद वाहन अर्थ में साधा है। (३) शरीर के जोड़े इन्द्रियों का छिद्र।

युगा - रथ के जूओं के समान स्त्री पुरुष।
'नावेव नः पारयतं युगेव'
ऋ. २.३९.४

युच्छ् - प्रमाद करना।
'न यो युच्छति तिष्यो यथादिवः'
ऋ. ५.५४.१३

युज् (युक्) - युज् + क्विप् = युज् । अर्थ- (१) सखा, मित्र सम्बन्धी । दे. 'आश्रुकर्ण' ।
'कृष्वा युजश्चिदन्तरम्'
ऋ. १.१०.९
मेरी बातों को सुनकर मित्र या सम्बन्धी की तरह (युजः वित्) हृदयंगम करें । (अन्तरं कृष्व) । (२) सहयोगी, साथी ।
'त्वया प्रति ब्रुवे युजा'
ऋ. ७.३१.६; अ. २०.१८.६
(३) सहायक ।
'बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा'
ऋ. २.२३.१०

युज्यः - युज् + यत् = युज्य । (१) संयुक्त -सा. (२) सहयोगी । दे. ' अस्मे '
'भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे'
ऋ. १.१६५.७; मै.सं. ४.११.३; १६९.३; का.सं. ९.१८.
यह उक्ति मरुतों की है ।
हे वृषभ् इन्द्र, तू ने अनेकों वीरता के कार्य किए परन्तु वह सब हम लोगों की सहायता से तथा संयुक्त बल से (युज्येभिः पौंस्येभिः) -सा.
हे राजन् ! आप हम सहयोगियों एवं समान चित्त वालों से मिलकर पुरुषार्थों के द्वारा बहुत उत्तम राज्य पालन करते हो ।- दया.
(३) युज्य का अर्थ मेल खाने योग्य भी हो सकता है । और तब ' युज्येभिः समानेभिः' का अर्थ समान बल वाले एवं मेल खाने योग्य हम लोगों के सहयोग से किया जा सकता है ।
(४) संयोग से प्राप्त होने वाला और रथादि संचालन कार्य में लगाने योग्य बल, (५) योग-समाधि से प्राप्त होने वाला बल, (६) सहकारी शस्त्रास्त्र बल ।
'त्वष्टा चित् ते युज्यं वावृधे शवः'
ऋ. १.५२.७; मै.सं. ४.१२.३; १८५.३.
जिस प्रकार मेघ के अवयव अवयव को सूक्ष्म कणों से छेदन भेदन करने में समर्थ सूर्य या विद्युत् (त्वष्टा) संयोग से प्राप्त होने वाले और रथादि संचालन कार्यों में लगाने योग्य बल को बढ़ाता है (युज्यं शवः वावृधे) ।
अथवा - सब सृष्टि का रचयिता परमेश्वर, योग समाधि से प्राप्त होने वाले बल को बढ़ाता है ।
(६) परस्पर सहयोग से होने वाला ।
'भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे'
ऋ. १.१६५.७; मै.सं. ४.११.३: १६९.३; का.सं. ९.१८.
(८) सदा साथ रहने योग्य, (९) समाधि द्वारा प्राप्त करने योग्य ।
'युज्यो मे सप्तपदः सखासि'
अ. ५.११.९
(१०) सत्संग से प्राप्त होने वाला ।
'यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति'
ऋ. ७.२२.२; अ. २०.११७.२
(११) मित्र भाव, (१८) उत्तम पद पर नियुक्त, करना ।
'प्र पूषणं वृणीमहे
युज्याय पुरूवसुम्'
ऋ. ८.४.१५.

युजानः - (१) समाधान करता हुआ (२) अपने में रखता हुआ । दे. 'नमोयुजानः' ।

युज्या - (१) योग्य, (२) सत्संग ।
'तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे'
ऋ. ८.९०.२; अ. २०.१०४.४; साम. २.८४३

युञ्जा - द्वि.व.। (१) परस्पर संयुक्त योग द्वारा एकाग्रचित्त आत्मा और मन, प्राण, अपान, (२) दो घोड़े । दे. 'पृषती' ।

युजिष्ठः - (१) अतिशयेन यष्ठा, अत्यन्त यजन शील, (२) देवों का अतिमात्र यष्ठा अग्नि ।

युतद्वेषाः - (१) जिसका परस्पर का द्वेष भाव दूर हो गया हो, (२) जिस का शत्रु दूर हो गया हो ।
'इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिः
युतद्वेषसः समिषा रभेमहि'
ऋ. १.५३.४; अ. २०.२१.४
विद्युत् के बने अस्त्र से (इन्द्रेण) प्रजा के नाशक अत्याचारी डाकू लोगों को (दस्युम्) भयभीत करते हुए (दरयन्तः) तथा उन्हें मारते काटते हुए और अति वेगवान् द्रुत गामी वीरों द्वारा शत्रुओं को दूर कर के या ज्ञानवान् उत्तम विद्वानों द्वारा परस्पर के द्वेष भावों को दूर कर के (इन्दुभिः युतद्वेषसः) अन्नों द्वारा या प्रबल इच्छा से या प्रबल सेना से (इषा) युद्ध आदि

कार्य प्रारम्भ करें (संरभेमहि) ।
अथवा, जलों और अन्नों के एक साथ उपयोग द्वारा परस्पर के द्वेष के भावों को दूर कर (समिषा) संगठित हो कार्य आरम्भ करें (रमेमहि) ।
(३) परस्पर सब द्वेषों से रहित ।

युत्कारः – युत् + कारः । युद्ध करने वाला ।
'युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना'
ऋ. १०.१०३.२; साम. २.१२००; वाज.सं. १७.३४; तै.सं. ४.६.४.१; मै.सं. २.१०.४: १३५.११; का.सं. १८.५

युध् – (१) योद्धा, सैनिक ।
'युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया'
ऋ. १.५३.७; अ. २०.२१.७
तू शत्रु पर प्रहार करने वाले वीर पुरुष से (धृष्णु या युधा) योद्धा शत्रु को ही (युधम्) जा पकड़ता है ।
(२) प्रहार शक्ति, (३) युद्ध, (४) योग (५) कष्ट का अनुभव ।
'युधेदापित्वमिच्छसे'
ऋ. ८.२१.१३; अ. २०.११४.१; साम. १.३९९; २.७३९
'शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत'
ऋ. २.१७.२.

युध्म – (१) यः युध्यते (योद्धा) ।
'सनात्स युध्म ओजसा पनस्यते'
ऋ. १.५५.२
(२) वेग से प्रहार या धक्का लगाने वाला विद्युत् ।
'युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराजः'
ऋ. ३.४६.१; मै.सं. ४.१४.१४: २३८.७; ऐ.ब्रा. ५.५.२; कौ.ब्रा . २२.८; शां.श्रौ.सू. १८.१९.६.
(३) दुष्टों पर विपत्ति तथा वज्र का प्रहार करने वाला, (४) युद्ध शाली–इन्द्र परमेश्वर ।
'च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः'
ऋ. २.२१.३
'स युध्मः सत्वा खजकृत् समद्वा'
ऋ. ६.१८.२; का.सं. ८.१७.

युधां पतिः – (१) योद्धाओं क्षत्रियों का स्वामी, (२) योगियों का पालक प्रभु ।
'सोमस्यांशो युधां पते'
अ. ७.८१.३

युध्यामधि – (१) युधि + आमधि । जो संग्राम में रोग पकड़ता है – शत्रु– दया.
(२) युद्ध में पीड़ा दायक (३) युध्या + मधि (मदि) । युद्ध का मतवाला ।
'नि युध्यामधिमशिशादभीके'
ऋ. ७.१८.२४

युधि – युद्ध ।
'यदीदहं युधये सन्नयानि'
ऋ. १०.२७.२

युधिगमः – १) युद्ध में जाने वाला साहसी सैनिक ।
'स्वस्त्या च युधिंगमः'
अ. २०.१२८.११; शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.६.

युधेन्य – युद्ध करने योग्य साधन ।
'प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि'
ऋ. १०.१२०.५; अ. ५.२.५; २०.१०७.८

युनक्त – जोतो । यु (मिलाना) धातु के लोट् म.पु.ब.व. का रूप । दे . 'इत्'
'युनक्तं सीरा वि युगा तनुध्वम्'
ऋ. १०.१०१.३; वाज.सं. १२.६८; श.ब्रा. ७.२.२.५.
हे देवो, हलों को जोतो (सीरा युनक्त) तथा जुआठों को विस्तृत करो (युगा वितनुध्वम्) ।

युपित – निःशंक खड़ा ।
'याभ्यां रजो युपितमन्तरिक्षे'
अ. ४.२५.२

युयवन् – (१) दूर करे । यावयन्तु,
'अपमिश्रयन्तु, पृथक् कुर्वन्तु (पृथक् करें) 'यु' धातु मिश्रण और अभिश्रण दोनों अर्थों में आया है ।
दे. 'देवताति'
'सनेम्यस्मद् युयवन्नमीवाः'
ऋ. ७.३८.७; वाज.सं. ९.१६; २१.१०; तै.सं. १.७.८.२; मै.सं. १.११.२: १६२.११; का.सं. १३.१४; श.ब्रा. ५.१.५.२२; नि. १२.४४
रोगों को दूर करें ।

युयुजानः – (१) योगाभ्यास द्वारा समाहित करने वाला – परमेश्वर, (२) समाधान करता हुआ अग्नि ।
'दूत ईयसे युयुजान ऋष्व'
ऋ. ४.२.२.
(३) नाना प्रकार का योग अर्थात् सन्धि आदि

करने वाला ।
'ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन्'
ऋ. ५.४०.८

युयु – मोहना । दे. 'योपन 'जनयोपन' ।

युयुजानसप्ती – द्वि.व.। (१) अश्विद्वय का विशेषण । (२) योग में जाने वाले रथादि यन्त्रों में जुड़ने वाले वायु, विद्युत् (३) वेगवान् अश्वादि को अपने रथ में जोड़ने वाले अश्विद्वय या स्त्री पुरुष, (४) अपने सातों प्राणों से युक्त मन को योग द्वारा एकाग्र करने वाले ।
'उप भूषतो युयुजानसप्ती'
ऋ. ६.६२.४

युयूषन् – यु + सन् + शतृ = युयूषन् , अर्थ है– (१) सेवनेच्छुक (२) प्राप्त करने का इच्छुक –दया. । दे. 'गध्य', 'ऋज्रा' ।
'ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन्'
ऋ. ४.१६.११; नि. ५.१५.
हे इन्द्र, तू सीधे या सुन्दर सोमरस राजपथ से (ऋज्रा) ग्रहणार्ह सोमरस को (गध्यम्) अन्न की तरह सेवनेच्छुक हो (वाजं न युयूषन्) जाता है ।
अथवा – हे राजन्, ग्राह्यबल की तरह (गध्यं वाजं न) सत्याचरण की प्राप्ति की इच्छा रखता हुआ (ऋज्रा युयूषन्) तू जाता है (यासि) – दया.

युवजानिः – युवती स्त्री का पति ।
'महाँ इव युवजानिः'
ऋ. ८.२.१९; साम. १.२२७

युवत् – (१) युवावस्थापन्न, (२) सत्यासत्य विवेकी ।
'सं यदोजो युवते विश्वनाभिः'
ऋ.य ५.३२.१०

युवतयः – ब.व.। । (१) दूर दूर तक फैली दिशाएं, (२) मिलने वाली जलधाराएं ।
'युवतयः' दारा के समान बहुवचन है और पति के लिए एकवचन है ।
'यमिन्धते युवतयः समित्था'
ऋ. २.३५.११.

युवतिः – (१) मिश्री भवन्ती (युक्त होती या मिश्रित होती हुई) । यह शब्द भी 'यु' धातु से बना है । (२) ब्रह्म से मिलाने वाली ब्रह्म विद्या । दे. 'अमूर' ' विश्पति'
'रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन्'
ऋ. १०.४.४.
(प्रजा पालक होते हुए आचार्य ब्रह्म से मिलाने वाली ब्रह्मविद्या का निरन्तर आस्वादन करते रहते हैं)– ज.दे.श.
गार्हपत्य अग्नि जार की तरह मानों आहुति रूपी युवति का बार बार आस्वाद लेते रहते हैं ।
(३) मिलती हुई या छूटती हुई ।
'सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्चकृष्टीः
सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान
सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिः
न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम्'
ऋ. १०.१७८.३; ऐ.ब्रा. ४.२०.२०; नि. १०.२९
जो तार्क्ष्य (यः) सभी उपयुक्त अवसर पर (सद्यश्चित्) बल से (शवसा) पांच प्रकार के मनुष्यों के निमित्त जल विस्तीर्ण करते हैं (पञ्चकृष्टीः अपः ततान) जैसे सूर्य वर्षा ऋतु में अपनी ज्योति से जल विस्तारते हैं (सूर्य इव ज्योतिषा) क्योंकि इस तार्क्ष्य की गति को कोई रोक नहीं सकता (न स्म वरन्ते) ठीक उसी प्रकार जैसे धनुष से छूटी तथा अपने लक्ष्य की ओर जाती हुई या लक्ष्य से मिलती हुई सिरकी को कोई रोक नहीं सकता (युवतिः शर्यां न) ।
(४) अति बलवती विद्युत् । (५) युवती कन्या ।
'आस्थापयन्त युवतिं युवानः'
ऋ. १.१६७.६
(६) सदा जवान, सदा स्थिर रूप से सगंत, निरन्तर सृष्टि उत्पन्न करने में समर्थ प्रकृति, स्त्री ।
'इषिरा योषा युवतिर्दमूनाः'
अ. १९.४९.१

युवती – द्वि.व. । (१) युवितियों सी द्यौ और पृथिवी–सा. ।
(२) सामने तथा पीछा होते हुए सूर्य और पृथिवी ।
'उत स्वसारा युवती भवन्ती'
ऋ. ३.५४.७

युवद्वयः – (१) यौवनावस्था, चढ़ती जवानी ।
'तक्षन् पितृभ्यामृभवो युवद् वयः'

ऋ. १.१११.१
ऋभु अथवा विज्ञान सहित क्रिया उत्पन्न करने में कुशल पुरुष अपने पालक माता पिताओं के सुख के लिए सेवा योग्य बनायें ।

युवद्रिक् - तुम दोनों के ऊपर आश्रित ।
'श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक्'
ऋ. ४.४३.७; अ. २०.१४३.७

युवन् - 'यु' धतु से सम्पन्न । युवा, (२) पुरुषार्थी-दया. । यु + क्वनिप् (३) स्तुति शील -सा. । दे. 'दन्' 'रन्धीः' ।
'यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः'
ऋ. १.१७४.२.
हे इन्द्र, तू ने स्तुति शील पुरुकुत्स के लिए धन सम्पादित किया -सा. ।
हे राजन् ! तू ने पुरुषार्थी कृषक के लिए कष्ट नष्ट किया (वृत्रं रन्धीः) ।
(४) यु (मिश्रीकरण) + क्वनिप् = युवन् प्रयौति कर्माणि (जो कर्मों को मिश्रित करता है या सम्पन्न करता है वह युवा है) । दे. 'चरथाय'
(५) यस्मिन् वयसि यस्य वा अस्थीनि युवन्ति जिस वय में या जिसकी हड्डियाँ पुष्ट होती हैं वह युवा है ।
आधुनिक अर्थ-नवयुवक, स्वस्थ, सुन्दर ।
अंग्रेजी का you शब्द भी यु धातु से बना प्रतीत होता है ।

युवन्युः - जवानों का दलपति ।
'रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः'
ऋ. ५.४२.१५

युवभ्यो देवेभ्यः - (१) युवक देवताओं के लिए - सा. (२) युवक विद्वानों के लिए - दया. । दे. 'अर्भक' ।
'नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यः
नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः
यजाय देवान् यदि शक्नवाम
मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः'
ऋ. १.२७.१३;
शक्ति और तेज के तारतम्य से देवताओं का भेद अभिप्रेत है ।

युवम - तुम दोनों you । दे. 'जरथ' ।
'युवं च्यवानं सनयं यथा रथम्'
ऋ. १०.३९.४; नि. ४.१९
हे अश्विनी द्वय, या राजा, तथा राज पुरुषो, तुम दोनों पुराने रथ को जैसे शिल्पी नया कर देता है वैसे ही वृद्ध च्यवन ऋषि को या वृद्ध उपदेशक को नया ....

युवमानः - (१) प्राप्त करता हुआ, (२) संयोजक, (३) भेदक, (४) आत्मा का विशेषण । दे. 'अघ्न' ।

युवयु - आप दोनों के हितार्थ ।
'इमा ब्रह्माणि युवयुन्यग्मन्'
ऋ. ७.७०.७; ७१.६.

युवशा - युव + श = युवश । अर्थ - (१) युवा विद्यार्थियों को समीप रखने वाला-दया.
(२) बलवान् पुनर्युवा-ज.दे.श. ।
'धेनुःकर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा'
ऋ. १.१६१.३
(२) युवा या युवती
'स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यानाम्'
ऋ. ८.३५.५

युवा - (१) सदा नया, (२) अजर अमर (३) देह, इन्द्रिय और उनके सामर्थ्यों को मिलाने वाला-आत्मा (४) गर्भ में डिम्ब से स्वयं मिथुनित होने वाला ।
'मातुर्गर्भं पितुरसुं युवानम्'
अ. ७.२.१

युवाकु - यु (मिश्रण और अभिश्रण अर्थों में) + आकु = युवाकु । अर्थ - (१) एक दूसरे से मिली या पृथक् क्रियाओं को सिद्ध करने वाला, (२) लड़ाकू ।
'युवाकु हि शचीनां
युवाकु सुमतीनाम्'
ऋ. १.१७.४
हम उत्तम बुद्धियों, शक्तियों और वेदवाणियों के साथ अपने को मिलाए रखें और उत्तम मनन करने वाले विद्वानों के साथ सत्संग करें ।
(३) यः यावयति मिश्रयति सर्वाभिः विद्याभिः सह जनान् - दया । (जो लोगों को सभी विद्याओं से मिलाता है) (४) मिलाने वाला ।
'प्रार्चद् दयमानो युवाकुः'
ऋ. १.१२०.३
तुम दोनों का सच्चा प्रिय पुरुष या सबको विद्योपदेश से मिलाने वाला (युवाकुः) उपदेष्टा

पुरुष सब पर दयालु होकर (दयमानः) तुम दोनों का सत्कार करे (प्रार्चत्)।
(४) तुम दोनों को चाहता हुआ।
'अर्वांवां नूनमश्विना युवाकुः'
ऋ. ७.६७.४

युवानः - 'युवन्' शब्द का बहुवचन। (१) युवा रुद्र, (२) शरीर में रसों को मिलाने वाले प्राण वायु, (३) युवा सैनिक।
'युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनः'
ऋ. १.६४.३

युवायु - (१) तुम दोनों को चाहता हुआ।
'युवायवोऽति रोमाण्यव्यया'
ऋ. १.१३५.६
ये सब राजा और सेनापति तुम दोनों को हृदय से चाहते हुए (युवायवः) कभी समाप्त होने वाले (अव्यमाः) उच्छदेन या काट गिराने योग्य शत्रुओं को (रोमाणि) पार कर जाने में समर्थ हो (अति)।

युवायुज् - (१) युवाभ्यां युज्यते यः सःरथः (पशुओं से जोड़ा रथ)- रथ, (२) प्रजाओं के परस्पर प्रेम और इच्छापूर्वक मिलकर एक हो जाने वाला आनन्ददायक गृहस्थ रूप रथ-ज.दे.श.।
'युवोरश्विना वपुषे युवायुजम्
रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम्'
ऋ. १.११९.५
हे स्त्री पुरुषो, आप दोनों के ही परस्पर प्रेम और इच्छापूर्वक मिलकर एक हो जाने वाला (युवा युजम्) बलपूर्वक धारण करने योग्य, (शर्ध्यम्) रमणकारी आनन्ददायक गृहस्थ रूप रथ को (रथम्) इस गृहस्थ तत्व के विषय में उपदेश करने में कुशल विद्वान्, आचार्य और पुरोहित तुम दोनों को उत्तम रीति से बीज वपन द्वारा सन्तान उत्पन्न करने के लिए (वपुषे) विवाहित करते हैं (येमतुः)।
(अथवा),
तुम दोनों को ही जुड़ने वाले बलपूर्वक संग्राम करने योग्य रथ को आज्ञाकारी दो उपदेशक सारथी ही शत्रुओं को खण्ड खण्ड कर देने के लिए ही (वपुषे)।

युवावत् - (१) यौवन वाला, बलशाली। दे. 'सिन'। (१) तुम दोनों की रक्षा करने वाला (३) तुम दोनों को चाहने वाला।
'युवावते न तुज्या अभूवन्'
ऋ. ३.६२.१

युष्मयन्ती - आप दोनों स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्यों को बतलाने वाली वाणी।
'इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः'
ऋ. २.३९.७

युष्माकोतिः - आप लोगों की रक्षा शक्ति।
'युष्माकोती रिशादसः'
ऋ. ७.५९.९; तै.स. ४.३.११.३; मै.सं. ४.१०.५: १५४.८; का.सं. २१.१३.

युष्माः देवाः - स्वरूप से भिन्न भिन्न ज्ञान प्रकाशक और ग्राह्य विषय के अभिलाषी इन्द्रियगण-प्राण।
'युष्मांश्च देवान् विश आ च मर्तान्'
ऋ. ४.२.३.

युष्मावत् - आप लोगों के सदृश।
'मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म'
ऋ. २.२९.४

युष्मोतः - आप लोगों से रक्षित।
'युष्मोतः विप्रो मरुतः शतस्वी'
७.५८.४

युश्मेषित - तुम लोगों को जीतने की इच्छा वाला।
'युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित'
ऋ. १.३९.८

यूथः - यु (मिश्रणार्थक धातु) + थल् = यूथ (जिसमें छोटे बड़े सभी एकत्र होते हैं वह यूथ हैं)। अर्थ- (१) समूह। दे. 'इडा'
'यूथस्य माता'
मेघ समूह की निर्यात्री इडा (माध्यमिका वाक्) अर्थात् विद्युत्। पुनः, दे. 'इडा'।
(२) विकृतिगण, प्राकृतिक विकार रूप महत् आदि पदार्थ, (३) ताराओं का यूथ।
'क्व स्वित् सूते नहि यूथे अस्मिन्'
ऋ. १.१६४.१७; अ. ९.९.१७; १३.१.४१.
(४) इन्द्रिय गण।

यूथस्यमाता - मेघसमूह की निर्मात्री। इडादेवी (माध्यमिका वाक् विद्युत्)। दे. 'इडा', 'यूथ'।
'अभि न इडा यूथस्य माता
स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु'

ऋ. ५.४१.१९; नि. ११.४९
मेघ समूह की निर्मात्री (यूथस्य माता) रूपवती विद्युत् उर्वशी नाम से प्रसिद्ध जो माध्यमिका देवी इडा है (उर्वशी इडा) वह हमें जलों से खूब सन्तुष्ट करें (नदीभिःस्मत् अभिगृणातु)।

यूथ्य – (१) समूह में बसने वाला।
'सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचा'
ऋ. १०.२३.४; अ. २०.७३.५
(२) यूथपति, (३) यूथ में सर्वश्रेष्ठ।
'शिशीते यूथ्यो वृषा'
ऋ. ९.१५.४; साम. २.६२.१

यूपव्रस्क – (१) स्तम्भ के लिए काठ काटने वाला, (२) शत्रुओं का नाशकारी, (३) शत्रुओं को मोहित करने वाला। (४) प्रजाओं के बीच स्तम्भ के समान सर्वाश्रय, (५) सूर्य के समान तेजस्वी राजा।
'यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाः'
ऋ. १.१६२.६; वाज.सं. २५.२९; तै.सं. ४.६.८.२; मै.सं. ३.१६.१ : १८२.८
(६) यज्ञ के यूप के गढ़ने वाला (७) शत्रुनाशक राजा या उसके बल अधिकार को बताने वाला।

यूपवाहः – (१) यज्ञयूप को वहन करने वाला, (२) शत्रुनाशक राजा को अपने ऊपर धारण करने वाला।
'यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाः'
(३) स्तम्भ ढोने वाला।

यूयवत् – 'यु' धातु का अर्थ मिलाना और पृथक् करना है। पृथक् करोति (अलग करता है)। लकार का व्यत्यय आर्ष है।
दो जोष्ट्री देवियों में एक (अन्या) आप के पापों को (आद्या द्वेषांसि) दूर करती है (यूयवत्)। पुनः, दे. 'जोष्ट्री'।

युयुविः – सब शत्रुओं को दूर करने वाला।
'द्विषो युयोतु यूयुविः'
ऋ. ५.५०.३

यूष (यषन्) – (१) शरीर में पक्वाशय में स्थिर पक्वरस, (२) जल।
'आपो यूष्णा'
वाज.सं. २५.९
'या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि'
ऋ. १.१६२.१३; वाज.सं. २५.३६; तै.सं. ४.६.९.१; मै.सं. ३.१६. १: १८३.४;

येमानः – (१) संयमन या नियन्त्रण करने वाला या करता हुआ।
'नृभिर्येमानः कोश आ हिरण्यये'
ऋ. ९.७५.३; साम. २.५२.
(२) इन्द्रियों को नियम में रखने वाला।
'गा येमानं परिषन्तमद्रिम्'
ऋ. ४.१.१५.
(३) नियन्त्रण में रखने वाला, (४) नियम पूर्वक पालन करने वाला।
'ऋतं येमान ऋतमिद् वनोति'
ऋ. ४.२३.१०

येवाष – (१) एक प्रकार का रोग– कृमि, (२) सरक सरक कर चलने वाला।
'येवाषासः कष्कषासः'
अ. ५.२३.७

येषन् – (१) अंग अंग में फैलाने वाला, (२) उबलता हुआ।
'प्र त्वा चरुमिव येषन्तम्'
अ. ४.७.४

येषन्ती – (१) उबलती हुई, (२) आगे बढ़ती हुई।
'उखा चिदिन्द्र येषन्ती'
ऋ. ३.५३.२२

येष्ठ – चलने में सब से उत्तम रथ।
'आ वां रथो रथानाम्
येष्ठो यात्वश्विना'
ऋ. ५.७४.८

येष्ठा – (१) अपने लक्ष्य की ओर जाने में उत्तम।
'यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः'
ऋ. ७.५६.६

येष्ठौ – द्वि.व.। अति नियम में रहने वाले अश्विद्वय का स्त्री पुरुष।
'आ वां येष्ठाश्विना हुवध्यै'
ऋ. ५.४१.३

योः – अप्राप्त रोगों को दूर ही से निवारण करना।
'शं यो रभि स्रवन्तु नः'
ऋ. १०.९.४; अ. १.६.१; साम. १.३३; वाज.सं. ३६.१२; का.सं. १३ .१५; ३८.१३; तै.ब्रा. १.२.१.१; २.५.८.५; तै.आ. ४.४२.४; आप.श्रौ.सू. ५.४.१.

योक्त्र– (१) बांधने वाला। (२) आत्मा को बांधने

वाला देह ।

'वि योक्त्रं वि नियोजनम्'

अ. ७.७८.१

(३) युज् + ष्ट्रन् = योक्त्र । अर्थ है- मिलाने वाली अंगुली । दे 'अवनि' ।

'दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो
दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः'

ऋ. १०.९४.७

(४) वृष आदि के गले में युगबन्धन का नाम भी योक्त्र है ।

'आबन्धोः योत्रं योक्त्रम्'

-अमर

(५) निन्दित कार्य ।

'आपो योक्त्राणि मुञ्चत'

ऋ. ३.३३.१३; अ. १४.२.१६

(६) बन्धन ।

'समाने योक्त्रेरेणि सह वो युनज्मि'

अ. ३.३०.६

(७) आचार्य द्वारा बांधी हुई मेखला आदि रज्जु,

(८) परस्पर संयोग का प्रेमबन्धन ।

योक्ता - योग करने वाला योगी ।

'योगाय योक्ताराम्'

वाज.सं. ३०.१४; तै.ब्रा. ३.४.१.१०

योग - (१) अलभ्य वस्तु का लाभ ।

'योगं प्रपद्ये क्षेमं च'

अ. १९.८.२

(२) शकट, (३) सम्बन्ध । दे. 'ऊधस्'

'ऋतस्य योगे विष्यध्वमूधः'

ऋ. १०.३०.११; नि. ६.२२.

सोम रखने के यज्ञरूपी ऊध को यज्ञ के शकट में नियुक्त करो -सा. ।

यज्ञ के सम्बन्ध में (ऋतस्य योगे) अज्ञानता को छोड़ो (ऊधः विष्यध्वम्) -ज.दे.श.।

योगक्षेम - जो प्राप्त न हो उसकी प्राप्ति और प्राप्त हुए की रक्षा ।

'योगक्षेमो नः कल्पताम्'

वाज.सं. २२.२२; तै.सं. ७.५.१८.१; मै.सं. ३.१२.६: १६२.११; श.ब्रा. १३.१.९.१०; तै.ब्रा. ३.८.१३.३.

योगः योगः - (१) प्रत्येक संग्राम

(२) प्रत्येक योग-समाधि

'योगे योगे तवस्तरम्'

ऋ. १.३०.७; अ. १९.२४.७; २०.२६.१; साम. १.१६३; २.९३ वाज.सं. ११.१४; तै.सं. ४.१.२.१; ५.१.२.१ मै.सं. २.७.२: ७५.५; ३.१.३:३.२१ ; का.सं. १६.१; १९.२; श.ब्रा. ६.३.२.४; आप.श्रौ.सू. १६.२.३ ।

योग्य - समाधि द्वारा प्राप्त करने योग्य ब्रह्म ।

'त्वं हि युक्तं युयुक्षे योग्यञ्च'

अ. ८.९.७

योगे योगे - प्रत्येक ऐश्वर्य -प्राप्ति के अवसर पर ।

दे. 'तवस्तरम्' 'योगः योगः' ।

योजनम् - (न.) मिलाने वाली अंगुली । दे. 'अवनि'

'दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो
दशयोक्त्रेरेभ्यः दशयोजनेभ्यः'

ऋ. १०.९४.७

लौकिक अर्थ - (१) चार कोस का एक योजन, (२) जोड़ना ।

'चतुष्कोश्याञ्च योगे च -मेदनी

योजन - (१) सदा योगदेने वाला, (२) योजन

'कति स्वित् ता वि योजना'

ऋ. १०.८६.२०; अ. २०.१२०.२०

(३) लगाना-दया. ।

'आरे यस्य योजनम्'

ऋ. १.१९१.१०

योजि - (१) जो जोड़कर बनाया जाय-रथ ।

'प्राता रथो नो योजि सस्त्रिः'

ऋ. २.१८.१

योतवे - यु (दूर करना) + तवे । अर्थ- दूर करना ।

'विदुर्द्वेषांसि योतवे'

ऋ. ८.१८.५

योतु - प्राप्त होने योग्य धन ।

'अदेव ईशे पुरुहूत योतोः'

ऋ. ६.१८.११

योधानः - (१) युद्ध करता हुआ । दे. 'अष्टा' ।

'द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम्'

ऋ. १.१२१.८

योधीयान् - सबसे अधिक युद्ध करने वाला ।

'प्रतीचश्चिद् योधीयान् वृषण्वान्'

ऋ. १.१७३.५

योन्य - (१) जल से पूर्ण, योनि अर्थात् गृहवत्

देहमय ।
'यः कृन्तदिद् वि योन्यम्'
ऋ. ८.४५.३०

योना – योनौ (योनि में) ।
'सुपां सु लुक् '
– पा. ७.१.३९ से 'ङि का 'आ' । दे. 'इत्' ।

योनि – अभियुत एनां गर्भः (इस योनि से गर्भ अभियुत रहता है) । ' यु' धातु मिश्रण अर्थ में आया है । अर्थ है- (१) गर्भाशय । दे. 'अमीवा' ।
'यस्ते गर्भममीवा
दुर्णामा योनिमाशये' ।
ऋ. १०.१६२.२; अ. २०. ९६.११; नि. ६.१२.
(२) अवकाश । दे. 'आगात्' ।
'एवा रात्र्युषसे योनिमारैक्'
ऋ. १.११३.१; साम. २.१०९९; नि. २..१९
उसी प्रकार रात ने उषा के लिए अपने अपर भाग (चतुर्थ प्रहर) रूपी अवकाश की कल्पना की ।
पुनः – दे. 'इत् ' ।
'स मातुर्योनि परिवीतो अन्तः'
ऋ. १.१६४.३२; अ. ९.१०.१०; नि. २.८.
वह जीवात्मा माता के गर्भ में जरायु से परिवेष्टित हो....
(३) अन्तरिक्ष । यह सभी जीवों के निर्माण तथा आशम का स्थान है । दे. 'उत्तान ' ।
'उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तः'
ऋ. १.१६४.३३; अ. ९.१०.१२; नि. ४.२१.
उत्तान, ऊपर तने सभी प्राणियों के भोगसाधन द्यौ और पृथिवी की के बीच में सभी जीवों के निर्माण तथा आश्रय का स्थान अन्तरिक्ष है (योनिः) ।
(४) यज्ञस्थान, (५) सृष्टि, (६) गृह । दे. 'उपाके'
'उषासानक्ता सदतां नियोनौ'
ऋ. १०.७०.६; ११०.६; अ. ५.१२.६; वाज.सं. २९.३१; मै.सं. ४.१३.३; २०२.५; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.११.
उषा और रात्रि यज्ञ, सृष्टि या गृह में नियमपूर्वक नित्य रहे ।
(७) स्त्री योनि । यह स्त्री योनि भी इसी स्नायु से परियुत रहती है ।
योनि शब्द स्त्रीलिंग और पुलिंग दोनों में प्रयुक्त है ।
(८) क्षेत्र, खेत, (९) २४ विभागाध्यक्षों का प्रवर्त्तक राजा ।
'योनिश्चतुर्विंशः'
वाज.सं. १४.२३; तै.सं. ४.३.८.१; ५.३.३.४; मै.सं. २.८.४: १०९.५; का.सं. १७.४: २०.१३; शै.ब्रा. ८.१.१८.
(१०) पलंग, (११) रथ, (१२) एकत्र होने की सभा आदि स्थान ।
'आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे'
ऋ. १०.१८.७; अ. १२.२.३१; १८.३.५७; तै.आ. ६.१०.२.

योनिप्राण – पञ्चप्राण ।
'योऽस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम'
अ. १५.१ (१५) ७

योपन – युपु (विमुग्ध करना) + ष्यु = योपन । अर्थ मोहने वाला रूप । दे. 'जनयोपन' ।

योयुवतिः – सर्वत्रमेल सत्संग रखने वाली प्रजा ।
'नदं योयुवतीनाम्'
ऋ. ८.६९.२; साम. २.८६२; ऐ.आ. १.३.५.३; ५.१.६.५.

योषन् – स्त्री । दे. 'दोहस्'

योषणा – स्त्री ।
'वधूयुरिव योषणाम्'
ऋ. ३.५२.३; ६२.८; ४.३२.१६.

योषणे – द्वि.व. । 'उषासानक्ता' का विशेषण । (१) परस्पर संमिश्र उषा और रात्रि- सा. (२) शुभ कर्मों को संयुक्त करने वाली उषा और रात्रि –ज.दे.श. । दे. 'उपाके' ।
'दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे'
ऋ. १०.११०.६; अ. ५.१२.६: वाज.सं. २९.३१; मै.सं. ४.१३.३: २०२ .६; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३.
द्युलोक से उत्पन्न परस्पर संमिश्र या शुभकर्मों को मिलाने वाली (दिव्ये योषणे) गुणों से महती या दीर्घकाल तक रहने वाली (महती) सुन्दर शोभायुक्त या महान् सुख को देने वाली रोचिष्णु उषा और रात्रि....

योषा – (१) योषा यौतेः । मिश्रणार्थक 'यु' धातु से 'स' प्रत्यय कर 'उ' का गुण और 'स' का 'ष'

और टाप् का योषा बना है ।
यु + स + टाप् = योषा । स्त्री अपने को पुरुष से मिलाती है (सा हि मिश्रयति आत्मान पुरुषेण साकम्) ।
श्रुति में भी विवाह संस्कार के समय ऐसा वाक्य है -
'अङ्गानि ते अङ्गैः सन्दधानि,
अस्थीनि ते अस्थिभिः सन्दधानि'
(तेरे अंगों में अपने अंगों को मिलाऊं और तेरी हड्डियों से अपनी हड्डियों को मिलाऊं) ।
(२) भेदनीति की वाणी ।
'रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथुज्रयः'
ऋ. १.१०१.७
भेदनीति की वाणी जैसा महान् शत्रु संहारक बल बढ़ाती है ।

र

रक्षमाणः - रक्षा करता हुआ । दे. 'रिरिक्वान्' ।
रक्षस् - (१) रक्षा करने वाला, (२) अन्न का आवरण- छिलका, ।
husks 'रक्षस्' का ही अपभ्रंश है ।
'पूतः पवित्रैरपहन्तु रक्षः'
अ. १२.३.१४
(३) रक्षा करने का साधन, (४) करने योग्य पदार्थ ।
'अस्त्रा रक्षांसि'
वाज.स. २५.९; मै.सं. ३.१५.८: १८०.२
(४) राक्षस । 'रक्षि तव्यम् अस्पात्' (इससे शरीर की रक्षा करनी चाहिए) ।
'रहसि क्षणोति इति वा'
वह एकान्त में हिंसा करता है अतः राक्षस है । अथवा 'रात्रौ नक्षते ति वा (वह रात में चलता है अतः वह राक्षस है) ।
रक्ष (पालनार्थक) + असुन् = रक्षस् ।
पाक्ष (गत्यर्थक) + असुन् = रक्षस् । दे. 'अनागस्' ।
'वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसः'
ऋ. ५.८३.२; नि. १०.११.
मेघ वृक्षों एवं राक्षसों का [illegible]य करते हैं ।
(५) रोग के कृमि भी राक्ष[illegible] हैं क्योंकि वे भी रात में अधिक कष्ट देते हैं ।
'वि ज्योतिषा बृहता भात्यग्निः
आविर्विश्वानि कृणुते महि त्वा
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः
शिशीते श्रृंगे रक्षसे विनिक्षे'
ऋ. ५.२.९; अ. ८.३.२४; तै.सं. १.२.१४.७; का.सं. २.१५; नि. ४. १८.
यह अग्नि महान् तेज से दीप्त है और इस प्रकार समस्त लोकों और जीवों को अपने महत्व से (महित्वा) प्रकट करता है । आसुरी मायाओं को (अदेवीः मायाः) अभिभूत करता है (प्रहसते) तथा अपनी दुस्तर्य ज्वालाओं को राक्षसों के विनाश के लिए (रक्षसे विनिक्षे) और तीक्ष्ण बनाता है (शिशीते) जैसे बैल तटों को ढाहता हुआ अपनी सींग तेज करता है (श्रृंगम्) ।
'दुरेवाः अदेवीः मायाः'
का अर्थ दुष्ट मार्ग में ले जाने वाली अदेवी माया' भी किया गया है ।
अन्य अर्थ- वह तेजस्वी पुत्र (अग्निः) महान् ज्योति से दीप्त होता है, अनेक प्रकार के महत्वों को आविष्कृत करता है, दुष्ट मार्ग में ले जाने वाली राक्षसी माया को पराभूत करता है (दुरेवाः अदेवीः मायाः प्रसहते) तथा राक्षसों को मारने के लिए अपने प्रभाव तथा प्रताप को तीक्ष्ण करता है (रक्षसे विनिक्षेश्रृंगे शिशीते) ।
रक्षास्विन् - (१) रक्षस् + विन् = रक्षस्विन् । अर्थ -दुष्ट राक्षसों पुरुषों या रोगों से युक्त । दे. 'घृताहवन्' 'दीदिवा' (२) राक्षसों या दुष्टजनों का स्वामी ।
'प्रति ष्म रिषतो दह
अग्ने त्वं रक्षस्विनः'
ऋ. १.१२.५
हे अग्नि या सूर्य या तेजस्वी, तू दुष्ट पुरुषों या राक्षसों से युक्त (रक्षस्विनः) शत्रु संघों को या जीवन- नाशक दुष्ट रोगों से युक्त पदार्थों को जला, तप्तकर या भस्म कर ।
'नेह भद्रं रक्षस्विने'
ऋ. ८.४७.१२
(३) राक्षसों का सहायक, (४) अन्यों के कार्यों में विघ्न डालने वाले का सहायक ।

'दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम्'
ऋ. ७.९४.१२
(४) रक्षस् या दुष्ट जनों का सरदार ।
'अनाधृष्टं रक्षस्विना'
ऋ. ८.२२.१८
(१) दुष्ट राक्षस आदि का सहायक ।
'रक्षस्विनः सदमित् यातु मावतः
विश्वं समत्रिणं दह'
ऋ. १.३६.२०

रक्षस्विनी – (१) विघ्नों से पूर्ण, (२) राक्षसों या बाधकों से उपेत
'विरप्शिन् वि मृधो जहि रक्षस्विनीः'
अ. ६.२.२.
(३) कार्य में विघ्न डालने वाली । दुष्टाचारिणी स्त्री ।
'अग्नी रक्षस्विनीर्हन्तु'
अ. ७.११४.२

रक्षसे – रक्षसः (राक्षस का) । षष्ठी के अर्थ में यहां चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हुआ है । दे. 'रक्षस्'
'शिशीते शृङ्गे रक्षसे विनिक्षे'
ऋ. ५.२.९
(राक्षस के विनाश के लिए)

रक्षाः – राक्षस ।
'यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह'
ऋ. ७.१०४.१६; अ. ८.४.१६

रक्षिता – (१) रोकने वाला (२) रखने वाला ।
'इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानाम्'
ऋ. १०.६७.६; अ. २०.९१.६
(३) रक्षक । दे. 'अप्रायु' ।
'अप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे'
ऋ. १.८९.१; वाज.सं. २५.१४; का.सं. २६.११; कौ.ब्रा. २०.४; नि. ४.१९.

रक्षोयुज् – (१) विघ्न कारी पुरुषों का सहयोगी, (२) रक्षक का सहयोगी ।
'रक्षोयुजे तपुरघं दधात'
ऋ. ६.६२.८

रक्षोहत्य – राक्षसों या दुष्ट पुरुषों का नाश ।
'रक्षोहत्याय वज्रिवः'
ऋ. ६.४५.१८

रक्षोहणा – द्वि.व. । विघ्नकारी पुरुषों या राक्षसों का नाश करने वाले अश्विद्वय या स्त्री पुरुष ।
'रक्षोहणा सम्भृता वीडुपाणी'
ऋ. ७.७३.४

रक्षोहन् – दुष्ट, राक्षस स्वभाव विघ्नकारी पुरुषों का नाशक ।
'रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम्'
ऋ. २.२३.३, का.सं. २६.११

रक्षोहा – (१) सब रोगों का नाशक
'रक्षोहामीवचातनः'
ऋ. १०.९७.६; अ. १.२८.१; १९.४४.७; वाज.सं. १२.८०; तै.सं. १.४.४६.२; ४.२.६.२; मै.सं. २.७.१३: ९३.१२; का.सं. १६.१३; ३८.१२; आप.श्रौ.सू. १६.६.७.
(२) राक्षसों का नाशक । इन्द्र का विशेषण । दे. ' अस्मदाविद् '
'रक्षोहा मन्म रेजति'
ऋ. १.१२९.६; नि. १०.४२.
जो राक्षसों को मारता हुआ हमारी प्रजाओं को आकम्पित करता है ।

रक्षोहा ब्राह्मः – एक वैदिक ऋषि ।

रक्षोहाविप्र – वैद्य का नाम ।
'विप्रः स उच्यते भिषक्
रक्षोहामीवचातनः'
ऋ. १०.९७.६; वाज.सं. १२.८०; तै.सं. ४.२.६.२; मै.सं. २.७.१३ : ९३.१२; का.सं. १६.१३.
वह विषक् विप्र है जो रोग को दूर करता है । (अमीव चातनः) ।

र्यक् – सम्मुख ।
'अस्मद्र्यक् शुशुचानस्य यम्याः'
ऋ. ४.२२.८

रघट् – (१) रघु + अट् + क्विप् = रघट् । छोटी उड़ान वाला पक्षी, (२) अर + घट = रघट् ५ अति वेग से चलने वाला पक्षी ।
'दिव्या या रघटो विदुः'
अ. ८.७.२४

रघ्वी – (१) सदा कर्म करने में कुशल प्रजा (२) वेगवती नदी ।
'उत म ऋज्रे पुर यस्य रघ्वी'
ऋ. ६.६३.९
'रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः'
ऋ. १.५२.५; मै.सं. ४.१२.३: १८५.४

अति वेग से बहने वाली नदियाँ (रघ्वीः) जैसे नीचे स्थान में (प्रवणे) बह जाती हैं (सस्त्रुः)।

रघु – (१) लघु। रघुया का अर्थ लघुगति से किया गया है, (२) सायण ने 'रघु' का अर्थ शीघ्रगामी किया है। दे. 'प्र'।

'वयो न पप्तू रघुया परिजन्मन्'

ऋ. २.२८.४

सूर्य की रश्मियाँ पक्षियों की तरह लघुगति से चारों ओर उड़ती सी शीघ्र नीचे आती हैं (रघुया परिज्मन् पप्तुः)।

जैसे शीघ्रगामी पक्षियाँ उड़ती और भूमि पर आती हैं वैसे ही ये नदियाँ कभी थकती नहीं ....सा.।

रघुजाः – (१) वेग में प्रसिद्ध अश्व, (२) वेग उत्पन्न करने वाले यन्त्र।

'मदा अर्षन्ति रघुजा इव त्मना'

ऋ. ९.८६.१

रघुपत्वानः – ब.व.। (१) शीघ्रगामी वायु गण के झकोरे।

'रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः'

ऋ. १.८५.६; अ. २०.१३.२; ऐ.ब्रा. ६.१२.९; गो.ब्रा. २.२.२२

शीघ्रगामी वायु की तरह वीर पुरुषों, आप लोग अपने बाहुबल से अच्छी प्रकार आगे बढ़ें (बाहुभिः प्रजिगात)।

रघुन्द्रुः – (१) तीव्र वेग से जाने वाला अश्व या अश्वारोही।

'समर्वन्तो रघुद्रुवः'

ऋ. ५.६.२; साम. २.१०८९; वाज.सं. १५.४२; वाज.सं. (का.) १६.५ .३०; मै.सं. २.१३.७: १५७.१

(२) बहुत गति से दौड़ने वाली, (३) पर्याप्त भोग भोग कर उनसे खिन्न हो उनसे भागने वाला।

दे. 'मानवस्पत्'

रघुद्रू – शीघ्रता से दौड़ने वाला अश्व। दे. 'रघुद्रु'

रघुपत्मजंहाः – (१) लघु तुच्छ पदार्थ के प्रति गिरने के व्यसन को छोड़ने वाला, (२) वेग से सुदूर मार्गों में जाने में समर्थ।

'वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः'

ऋ. ६.३.५; मै.सं. ४.१४.१५: २४०.१२

रघुमन्यु – (१) स्वल्प क्रोध वाला। क्रोध रहित, (२) ज्ञान की तीव्र भावना वाला पुत्र या शिष्य।

'प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धः
यज्ञं रुद्राय मीढुषे भरध्वम्'

ऋ. १.१२२.१

ऐ क्रोधरहित या ज्ञान की तीव्र भावना वाले पुत्रो या शिष्यो (रघुमन्यवः) तुम्हारे दुःखों को दूर करने वाले पिता या गुरु के प्रति उनकी पालना करने वाले अन्न आदि को (पान्तम् अन्धः) तथा उचित सत्कार को (यज्ञम्) श्रद्धापूर्वक भेंट रूप में लाया कर (प्रभरध्वम्)।

रघुयामा – लघु अर्थात् प्रशस्त यम नियमों का विधाता।

'रघुयामा पवित्र आ'

ऋ. ९.३९.४; साम. २.२५०

रघुवर्तनि – (१) लघु अर्थात् शीघ्र वेग से युक्त –रथ, (२) स्वल्प छोटे मार्ग से जाने में समर्थ रथ।

'आ नूनं रघुवर्तनिं
रथं तिष्ठाथो अश्विना'

ऋ. ८.९.८; अ. २०.१३०.३

रघुयत् – अति वेग से गमन करने वाला पिण्ड।

'गुहा रघुष्यद् रघुयद् विवेद'

ऋ. ४.५.९

रघुष्यद् – अति वेग वाला।

'आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदः'

ऋ. १.८५.६; अ. २०.१३.२; ऐ.ब्रा. ६.१२.९; गो.ब्रा. २.२.२२; आश्व.श्रौ.सू. ५.५.१९

रघुष्यदः – (१) अति वेग से जाने वाले वायु या वीर पुरुष।

'गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः'

ऋ. १.६४.७

रघुष्यद् हरिण – अतिवेग से दौड़ने वाला हरिण।

'हरिणस्य रघुष्यदः
अधि शीर्षाणि भेषजम्'

अ. ३.७.१

रजतनाभिः– काबेरक – रजत में बंधा हुआ पृथ्वी में गड़े खजाने का मालिक कुबेर।

'तां रजतनाभिः काबेरकोऽधोक्'

अ. ८.१०.(५) ११

रजतनाभी – सुवर्णचान्दी आदि धन स्वे सबको

बांधने वाले ।
'पौष्णौ रजतनाभी '
वाज.सं. २९.५९, तै.सं. ५.५.२४.१;

रजतपात्र - चांदी सोना का पात्र ।
'आसीद् रजतपात्रं पात्रम् '
अ. ८.१० (४) ६

रजता - (१) राग से युक्त स्त्री (२) धमैश्वर्य से सम्पन्न ।
'रजता हरिणी सीसाः '
वाज.सं. २३.३७; तै.सं. ५.२.११.१; मै.सं. ३.१२.२१: १६७.७

रजनी - (१) कुष्ट और पलित रोग में प्रयुक्त एक औषधि-हरिद्रा (हल्दी), दारुहरिद्रा उदकीर्ण रोचना, शिशपा, वन बीजपुर, यूथिका, मूर्वा ये सभी पीता कहालती हैं । ये त्वचा दोष, कण्डू, कुष्ट आदि के नाशक है ।

रजस् - रजःरजतेः ज्योतिः रज उच्यते । रज् + असुन् = रजस् । अर्थ है- (१) ज्योति, (२) रजःलोक । दे. 'अक्तु' ।
'विद्यामेषि रजस्पृथु '
ऋ. १.५०.७, अ. १३.२.२२, २०.४७.१९, नि. १२.२३
(३) लोक । 'लोकाः रजांसि उच्यन्ते ' (लोकों को भी रज कहा जाता है) । दे. 'अद्याचित् '
'त्वया दृढ़ानि सुक्रतो रजांसि '
ऋ. ६.३०.३
हे इन्द्र, तू ने लोकों को दृढ़ किया । लोकों में पुण्य प्राप्त करने वाले जाते हैं ।
(४) उदक, जल । ' उदकं रज उच्यते ' (रज उदक का नाम है) । उदक अपने स्नेह नामक गुण से लोगों को अनुरंजित करता है । माधव के मत से रज् धातु गत्यर्थक है । 'लोकेषु प्राणिनः रज्यन्ते (लोकों में पुण्य करने वाले प्राणी जाते हैं ।
जल के अर्थ में प्रयोगः-
'रजःसुसीदन् '
(जल में रहते हुए) ।
'रजसो विमाने'
(जल के निर्माता अन्तरिक्ष में) (५) अन्तरिक्ष । दे. ' अरुषी' 'अर्ध' 'अञ्जते' ।
'पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते '
ऋ. १.९२.१; साम. २.११०५; नि. १२.७
उषा अन्तरिक्ष के पूर्वार्द्ध में सूर्य को व्यक्त करती है ।
(६) जगत् । इस अर्थ में स्वा. दयानन्द ने 'रजस्' शब्द का ग्रहण किया है । दे. 'क्षयन् ' ।
'क्षयन्तमस्य रजसः पराके '
ऋ. ७.१००.५; साम. २.९७६; तै.सं. २.२.१२.५; मै.सं. ४.१०.१: १४४.७; का.सं. ६.१०; नि. ५.९
इस जगत् से दूर पृथक् रहते हुए उसे ।.....
सायण ने यहां 'रजस् ' का अर्थ अन्तरिक्ष किया है ।
(७) 'असृगहनी रजसी उच्येते ' (रुधिर और दिन का भी वाचक रजस् शब्द है)।
'रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवः '
ऋ. ५.६३.५; तै.ब्रा. २.४.५.४; नि. ४.१९
(८) द्यौ और पृथिवी को भी रजसी कहते हैं ।
(९) रजोधर्म ।
'मासि मासि रजोह्यासां
दुष्कृतान्यपकर्षति ' ।
(स्त्रियों को रुधिर प्रतिमास आन्तरिक दोषों को निकाल फेंकता है) ।
अन्य उदाहरणः -
'या ते अग्ने रजः शया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा '
वाज.सं. ५.८; श.ब्रा. ३.४.४.२४
'भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता '
ऋ. १०.८.६; वाज.सं. १३.१५; १५.२३; तै.सं. ४.४.४.१; मै.सं. २.७.१५:९८.२; का.सं. १६.१५; कौ.ब्रा. १२.७; श.ब्रा. ७.४.१.४२; १३.४.१.१३; तै.ब्रा. ३.५.७.१.
आधुनिक अर्थ - (१) धूलि, (२) पुष्परज (३) अणु, (४) सूर्य किरणों में दृश्यमान रजः कण (५) कृष्य भूभाग, (६) अन्धकार, (७) रजोगुण (८) मासिक स्राव (ऋतु धर्म) (९) अन्तरिक्ष लोक ।
(१०) आकाश में फैली हुई धूलि, (१) आकाश में फैला सूर्य प्रकाश ।
'अवः पश्यन्ति विततं यथा रजः '
ऋ. १.८३.२; अ. २०.२५.२

रजयित्री - (१) हृदय को रंगने वाली स्त्री, अनुरागिणी, प्रेमिका ।
'प्रकामाय रजयित्रीम् '

वाज.सं. ३०.१२; तै.ब्रा. ३.४.१.७.

रजस - (१) राजस, रजोगुण का बना हुआ।
'यत् ते नियानं रजसम्'
अ. ८.२.१०
(२) एक प्रकार का जलप्राणी।
जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि'
अ. ११.२.२५

रजसः अन्तौ - (१) समस्त संसार के अन्त, छोर (२) स्त्री के रजो भाव की दोनों सीमाएं, (३) लोकों के दोनों अन्त- (४) दोनों मूल कारण- रज और वीर्य (५) पुत्र और पुत्री।
'वि चक्रमे रजसस्यात्यन्तौ'
ऋ. ५.४७.३; वाज.सं. १७.६०; तै.सं. ४.६.३.४; मै.सं. २.१०.५: १३७.१५; का.सं. १८.३; श.ब्रा. ९.२.३.१८

रजसस्पतिः - समस्त लोकों का पालक।
'शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः'
ऋ. ७.३५.५; अ. १९.१०.५

रजस्य - सूक्ष्म धूल का व्यापार करने वाला।
'नमः पांसव्याय च रजस्याय च'
वाज.सं. १६.४५; तै.सं. ४.५.९.१; मै.सं. २.९.८; १२६.१३; का. सं. १७.१५.

रजसी - (१) द्यौ और पृथिवी। दे. 'अहवन्'।
वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः'
ऋ. ६.९.१; नि. २.२१.
रात और दिन, द्यौ और पृथिवी के प्रति अपनी अपनी प्रवृत्ति से बार बार आते रहते हैं।

रजसो विमानः - (१) अन्तरिक्ष का धारक विशेष रूप निर्माता वायु,
(२) प्रजा लोकों के बीच विशेष ज्ञान और मान आदर से युक्त (३) समस्त लोक समूह का विशेष निर्माता।
'अर्क स्त्रिधातू रजसो विमानः'
ऋ. ३.२६.७; वाज.सं. १८.६६; मै.सं. ४.१२.५: १९२.१०; नि. १४. २
(४) जल का निर्माता अन्तरिक्ष। दे.'जरायु'।
'ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने'
ऋ. १०.१२३.१, वाज.सं. ७.१६, तै.सं. १.४.८.१, मै.सं. १.३.१०:३४.१, का.सं. ४.३, श.ब्रा. ४.२.१.८, १०, नि. १०.३९
जल के निर्माता अन्तरिक्ष में स्थित मेघ रूपी जरायु में गर्भवत विराजमान विद्युत्
'गंभीर शंसो रजसो विमानः'
ऋ. ७.८७.६

रजसःवृषभः - (१) अन्तरिक्ष से वर्षा करने वाला। मेघ।
'वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः'
ऋ. ८.५७.३; अ. २०.१४३.९

रजस्तुरः - (१) रजोभाव का नाशक।
'साधारणं रजस्तुरम्'
ऋ. ९.४८.४; साम. २.१९०
(२) समस्त लोक लोकान्तरों का संचालक।
'अश्वं न स्तोमममप्रुरं रजस्तुरम्'
ऋ. ९.१०८.७; साम. १.५८०; २.७४४.

रजस्तुर - (१) लोकों और धूलियों को वेग से चलाने वाला वायु, (२) लोगों को चलाने वाला विद्वान्। (३) राजसभा तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति से शीघ्र कार्य कारी पुरुष
रजस्तुरं तवसं मारुतां गणं
ऋजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये
ऋ. १.६४.१२
(४) समस्त लोकों का प्रेरक अग्नि।
'रजस्तूर्विश्वचर्षणिः'
ऋ. ६.२.२.
(५) रजः + तुर्। जल और पृथ्वी दोनों पर चलने वाला रथ, (६) रजोगुण को दूर करने वाला।
'अनवसो अनभीशू रजस्तूः'
ऋ. ६.६६.७

रजिः - (१) राजसभा में लिप्त।
'नम्रं मर्याकरो रजिम्'
अ. २०.१२८.१३; शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.१.
(२) सैन्यपंक्तिः (३) सेना की नाक या अग्रणी होकर रहने वाली राज्यशक्ति।
'त्वं रिजं पिठीनसे दशस्यन्'
ऋ. ६.२६.६
(४) रज्जु, रस्सी, (५) स्तुति।
'रजिष्ठया रज्या पश्व आ गोः'
ऋ. १०.१००.१२

रजिष्ठ - अति धर्मात्मा
'मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः'
ऋ. ७.५१.२

(२) अति तेजस्वी, शुद्ध।
'वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः'
ऋ. ८.१०१.१०
(३) रजस् + इष्ठ = रजिष्ठ। दे. 'रजस्'। रजिष्ठ का अर्थ है- उत्तम दिनों का निर्माण करने वाला, (४) तेजस्वितम, (५) ऋतुतम, (६) रजस्वलतम, (७) प्रविष्टतम।
'देवेभ्यो वनस्पते हवींषि
हिरण्यवर्ण प्रदिवस्ते अर्थम्
प्रदक्षिणि द्रशनया नियूय
ऋतस्य वक्षि पथिभी रजिष्ठैः'
मै.सं. ४.१३.७: २०८.११; का.सं. १८.२१; तै.ब्रा. ३.६.११.३; नि. ८.१९.
हे वनस्पते अग्ने, प्रतप्तज्वालायुक्त या पीतवर्ण (हिरण्यवर्ण) इन हवियों को ज्वाला रूपी जिह्वा से सम्यक् प्रकार से लेकर (नियूय) देवताओं के निकट ऋजुतम मार्ग से ले जाता हुआ (रजिष्ठैः ऋतस्य पथिभिः प्रदक्षिणत्), या दुर्ग के मत से जलमय सुखद मार्गों से देवताओं के निमित्त ले जा (देवेभ्यः वृक्षि) यह तेरा प्राचीन कर्म ही तुझे कहता हूं (ते प्रदिवः)।
अन्य अर्थ- पितृयज्ञ में अतिथि यज्ञ के पंखों वाले गार्हपत्य अग्नि (हिरण्यवर्ण वनस्पते), अपने से प्रतिगृहीता को दाहिनी ओर रखकर दिए जाने वाली दक्षिणा रज्जु से बंधकर (प्रदक्षिणित् दशनया नियूय) यज्ञ के ऋजुतम मार्गों से उत्तम दिनों के निर्माण करने वाले मार्गों से (ऋतस्य रजिष्ठैः पथिभिः) माता पिता आदि और विद्वानों के लिए हविओं को प्राप्त कर (देवेभ्यः हवींषि वक्षि)। हे गार्हपत्याग्नि, तेरा यह प्रयोजन सनातन है जिसे हम तुम्हें कह रहे हैं (ते अर्थम् प्रदिवः)।
(८) ऋजु + इष्ठ = रजिष्ठ। अति ऋजु, सरल।
'त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम्'
ऋ. १.९१.१
हे सोम उत्पादक परमेश्वर, तू अति ऋजु सरल मार्ग की ओर ले जाता है।
(९) धूलिकणों से युक्त। दे. 'पियानः'।
'नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः'
ऋ. १.७९.३

रजिष्ठा - (१) अति सरल।
'रजिष्ठया रज्या पश्व आ गोः'
ऋ. १०.१००.१२

रज्जु - सृज् (विसर्ग अर्थ में) + उ = सर्जु = रस्जु = रज्जु। अर्थ है - जो सिरजा जाय। रज्ज शब्द का ही पुनः वर्ण विपर्यय से जुर और जोर बन गया है।

रज्जुसर्ज - लम्बी रस्सी बनाने वाला।
'दिष्टाय रज्जुसर्जम्'
वाज.सं. ३०.७; तै.ब्रा. ३.४.१.३.

रजेषित - गर्दभों, ऊंटों या लोक से बने प्रजाजनों से प्राप्त होने योग्य।
'अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितम्'
ऋ. ८.४६.२८

रजोयुक् - (१) लोकों का प्रेरक, (२) प्रकृति के रजोगुण से योग करने वाला,
'यस्येदमा रजोयुजः'
अ. ६.३३.१;

रण - (१) रण, (२) रमण योग्य शरीर।
'स्थिरो रणाय संस्कृतः'
ऋ. ८.३३.९; अ. २०.५३.३; ५७.१३; साम. २.१०४८
(३) रम् (रमण करना) + अच् = रण। रमन्ते अस्मिन् योद्धारः (रस रण में योद्धा रमते हैं)। अर्थ है संग्राम, युद्ध। दे. 'अनुष्वधम्'
'मरुत्वां इन्द्र वृषभो रणाय
पिबा सोम मनुष्वधं मदाय'
ऋ. ३.४७.१; वाज.सं. ७.३८; तै.सं. १.४.१९.१; मै.सं. १.३. २२: ३८.१; का.सं. ४.८; नि. ४.८.
हे मरुतों या सैनिकों से युक्त वर्षा बरसाने वाला इन्द्र, तू रण तथा मद के लिए अन्न खाने के बाद या अन्न के सहित सोमरस का दान कर। पुनः, दे. 'अवर्धन्'।
(४) रमणीय, सुन्दर। दे. 'ऊर्ज्'
आपो हि ष्ठा मयोभुवः
ता न ऊर्जे दधातन
महे रणाय चक्षसे'
ऋ. १०.९१.१; अ. १.५.१; साम. २.११८७; वाज.सं. ११.५०; ३६.१४; तै.सं. ४.१.५.१; ५.६.१.४; ७.४.१९.४; मै.सं. २.७.५: ७९.१७; ४.९.२७: १३९.४; का.सं. १६.४; ३५.३; नि. ९.२७.
हे जलो, तुम सुखदायक हो, वे तुम हमारे

भोजनार्थ अन्न के लिए (न ऊर्जे) अनुग्रह करो और महान् (महे) तथा सुन्दर (रणाय) ज्ञान के लिए (चक्षसे) भी अनुग्रह करो।

आधुनिक अर्थ – रण, संग्राम, रणभूमि।

रणयन्त – रमयन्ति। रमाते हैं। दे. 'पर'।

'भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ'

ऋ. ६.१.४; मै.सं. ४.१३.६: २०६.१२; का.सं. १८.२०; तै.ब्रा.३. ६.१०.२

वे तुझ अग्नि या परमेश्वर के सम्यक् दर्शन के लिए अपने को रमाते हैं।

रणयन्ति – रमण करते हैं। दे. 'अमृक्त'

रण्यजित् – रमणीय या रण से प्राप्त ऐश्वर्य का विजेता।

'विश्वजित् सोम रण्यजित्'

ऋ. ९.५९.१

रण्यवाक् – रमणीय वाणी वाला विद्वान्।

'प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते'

ऋ. ३.५५.७

रण्य – (१) सजाया (२) रमण्यीय।

'आबेधू रण्याय कम्'

अ. ९.३.६

रण्या – रण + यत् = रण्य। द्वि.व. में 'रण्यौ' का वेद में 'रण्या' होता है। बाहुओं के विशेषण के रूप में इसका प्रयग हुआ है। अर्थ है-(१) रमणीय, (२) आपत, पीन, (३) रणार्ह। दे. 'उभ'।

रण्व – (१) अग्रणी, नामक। दे. 'क्षेम'

'दाधार क्षेममोको न रण्वः'

ऋ. १.६६.३

(२) रमणीय।

'रण्वः सन्दृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः'

ऋ. १.१४४.७; १०.६४.११

रण्व संदृक् – (१) सम्यग्दर्शना उषा, (२) रमणीय, सौम्य दृष्टि या सौम्यलोचना स्त्री।

'प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक्'

ऋ. ३.६१.५

(३) उत्तम कान्ति से चमका हुआ अग्नि, (४) रम्य रूप से दीखने वाला, (५) रम्य पदार्थों को दिखलाने वाला- अग्नि।

'त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक्'

ऋ. ७.१.२१; आश्व.श्रौ.सू. ४.१३.७

रञ्वसंदृश – रमणीय और दर्शनीय –अग्नि।

'उप त्वा रण्वसंदृशम्'

ऋ. ६.१६.३७; साम. २.१०५५; मै.सं. ४.११.२: १६३.६; का.सं. ४०. १४.

रण्वा – (१) रमणीय, सुन्दर प्रिय, सुख प्रद।

'अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः'

ऋ. २.४.४.

(२) यः सुखं प्रापयति – दया.। सुख देने वाला।

'पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी'

ऋ. १.६५.५

जो अग्नि विद्युत्, राजा या परमेश्वर शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के सुख को बढ़ाने वाली पुष्टि के समान सुख देने वाला है। भूमि के समान सबको अपने में आश्रय देने वाला है।

रण्विते – द्वि.व.। (१) द्यावापृथिवी या स्त्री पुरुष का विशेषण, (२) नाना शब्दों से गुञ्जित, (३) रमणीय शब्दों को बोलती हुई।

'उषासानक्ता वय्येव रण्विते'

ऋ. २.३.६

रत्न – रम् + रक् = रत्न। अर्थ है- (१) रमणीय, (२) रत्न। दे. 'अस्मे'।

'अस्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि'

ऋ. ७.२५.३; नि. ५.५.

रत्नधा – (१) रमणीय धन देने वाला सविता –सा. (२) सूर्यादि रमणीय पदार्थों का कर्त्ता। दे. 'अमति'

रत्नधातमः – (१) रम् + रक् = रत्न, रत्न + धा + क्विप् = रत्नधा। रत्नामि दधाति इति रत्नधाः (जो रत्न धारण करता है वह रत्नधा है)। रत्नधा + तमप् = रत्नधातमः (अतिशयेन रत्नधा इति रत्नधातमः)।

(२) सायण के अनुसार अतिशयेन रत्नानां धारयिता पोषयिता वा (रत्नों का अतिशय धारक या पोषक)।

(३) यास्क ने 'रमणीयानां धनानां दातृतमः' (रमणीय धनों का सबसे उत्तम दाता) ऐसा अर्थ किया है।

(४) स्वामी दयानन्द ने इसका आधिभौतिक अर्थ- कृत्रिमहीरा का प्रदाता और आध्यात्मिक

अर्थ सूर्य, चन्द्र आदि रत्नों का उत्तम दाता अर्थात् परमेश्वर किया है ।
(५) रत्नों का धारण करने वाला
(६) यज्ञफलरूप रत्नों का धारण करने वाला । अग्नि या परमात्मा का विशेषण ।
'होतारं रत्नधातमम्'
ऋ. १.१.१; तै.सं. ४.३.१३.३; मै.सं. ४.१०.५: १५५.२; का.सं. २.१४; गो.ब्रा. १.१.२९; नि. ७.१५.

रत्नधेय – (१) रत्न या उत्तम धन की प्राप्ति । (रत्नों का देना ।
'एषं वां भागो निहितो रत्नधेयाय'
अ. ६.१४०.२
(२) रमणीय, मनोहार ।
'विभातीनां सुमना रत्नधेयम्'
ऋ. ४.१३.१
'सनाद्धि को रत्नधेयानि सन्ति'
ऋ. १०.७८.८

रत्निनी – (१) उत्तम रमणीय गुणों से अलंकृत, (२) रत्नों से जुड़ी लड़ी के समान वाणी ।
'वाचं वाचँ जरितू रत्निनीं कृतम्'
ऋ. १.१८२.४

रथ – रस, वीर्य ।
'इन्द्रस्य प्रथमो रथः'
अ. १०.४.१; कौ.सू. १३९.८
(१) रंह् (गत्यर्थक) + कथन् = रथ (ह् और न का लोप) । रंहति गच्छति अनेन इति रथः (इससे मनुष्य चलता है अतः यह रथ है)
(२) स्थिरतः वा स्यात् विपरीतस्य ('स्थिर' शब्द को ही विपरीत कर के 'रथ' बन गया है) । स्थिर + घ = रथ (स् और इ का लोप) ।
(३) रममाणः आस्मित् तिष्ठति (रमण करता हुआ मनुष्य इसमें बैठता है) । 'रम + स्था' से रथ बना ।
(४) रम + कथन् = रथ (बाहुलक से म का लोप) ।
(५) रस (शब्द करना) + कथन = रथ ।
(२) जो चलता है वह रथ है । दे. 'अनस्' ।
'ययाथ दूरादनसा रथेन'
ऋ. ३.३३.१०; नि. २.२७
हे स्तुतिकर्ता विश्वामित्र, तू दूर से आया है अतः शकट या रथ से जा ।
(३) शरीर । दे. 'अभ्यधीताम्' ।
'युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः'
ऋ. १०.४.६
(४) मेघ । मेघ भी रंहणशील –गतिशील है । अतः यह रथ है । दे. ' आहुवेम ' ।
'रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे'
ऋ. ५.५६.८; नि. ११.५०.
हम अन्न देने वाले मरुतों के साथी मेघ को या मरुत् रूपी रथ वाले गतिशील मेघ को बुलाते हैं ।
आधुनिक अर्थ – गाड़ी, रण में चलने वाला रथ, पैर, अंग, शरीर ।
(५) यान । दे. 'दक्षिणावत्' ।
'यत्रा रथस्य बृहतो निधानम्'
ऋ. ३.५३.५,६.
जहाँ बड़े बड़े रथों का निधान है ।

रथकार – रथ बनाने वाला ।
'मेधायै रथकारम्'
वाज.सं. ३०.६; तै.ब्रा. ३.४.१.२.

रथक्रीत – इन्द्रिय रसों के परित्याग के बदले में प्राप्त ।
'यन्मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम्'
अ. ११.६.२३, कौ.सू. ५८.२५.

रथगृत्स – (१) रसों के संचालन में परम बुद्धिमान, (२) कुशल ।
'तस्य रथ गृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ'
वाज.सं. १५.१५; तै.सं. ४.४.३.१; मै.सं. २.८.१०; ११४.१३; का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.१६

रथचर्षण – (१) रथ खींचने का स्थान, रमण योग्य गृहस्थ का राज्य कार्य को उठाने का समय ।
'यो ह वां मधुनो दृतिः
आहितो रथचर्षणे'
ऋ. ८.५.१९

रथजित् – (१) रमण साधन या वेगों पर वश करने वाला पुरुष, (२) काम वेग को वश में रखने वाला ।
(३) आत्मसाधक जितेन्द्रिय योगी ।
'रथजितां रथजितेयीनाम्'
ऋ. ६.१३०.१

रथजूति – शरीर में रथ का वेग लाने वाला आंजन का विशेषण ।

'रथ जूतिमनागसम्'
अ. १९.४४.३

रथतुः – रथ के वेग से चलने वाला।
'तेनोऽवन्तु रथतूर्मनीषाम्'
ऋ. १०.७७.८

रथतूर् – ये रथान् तूर्वन्ति शीघ्रं गमयन्ति ते रथतूरः। रथ को शीघ्र चलाने वाले-अश्व।
'शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः'
ऋ. १.८८.२
रथों को वेग से ले जाने वाले अश्वों से या यन्त्रों से उत्तम शोभाप्राप्त करने के लिए (शुभे) श्रेष्ठ सुखकारी प्रजापालक राजा को प्राप्त होते हैं।

रथन्तर – (१) पृथिवी, (२) वाक्, (३) ब्रह्मवर्चस्, (४) ऋग्वेद, (५) देवरथ, (६) अन्न, (७) अग्नि (८) प्रजनन, (९) रथन्तर, (१०) परोक्ष, (११) वैरूप।
'तं बृहच्च रथन्तरं च'
अ. १५.१ (२) २
(१२) रथों के मार्गों का निर्माण और प्रबन्ध, (१३) यह लोक।
'रथन्तरं छन्दः'
वाज.सं. १५.५; तै.सं. ४.३.१२.२; मै.सं. २.८.७: ११२.१ का. सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५.२.५.
(१३) रसतम, (१४) अपान।
'रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत्'
ऋ. १.१६४.२५; अ. ९.१०.३
'रसतमं ह वै तद् रथन्तरमित्या चक्षते परोऽक्षम्
श.ब्रा. ९.१.२.३६
अयं पृथिवी लोको रथन्तरम्
ऐ.ब्रो.
वां रथन्तरम्
तै.ब्रो.
ब्रह्म वै रथन्तरम्
ऐ.ब्रो.
अपानो रथन्तरम्
तै.ब्रो.
प्रजननं वै रथन्तरम्
तै.ब्रो.
(१५) रथों के बल पर शत्रु संकट से पार करने वाला क्षात्र बल।
'गायत्रेण रथन्तरम्'
वाज.सं. ११.८; तै.सं. ३.१.१०.१; ४.१.१३ मै.सं. २.७.१: ७४.१०; ३.१.१:२.६ का.सं. १५.११; श.ब्रा. ६.३.१.२०; कौ.सू. ५.७.
(१६) अन्तरिक्ष, (१७) अधिक वेगवान् या शक्तिमान्।

रथप्रा – (१) रथ से आने वाला, (२) महान् ऐश्वर्यवान् सर्व वरणीय ब्रह्माण्ड में व्यापक प्रभु।
'बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम्'
ऋ. ६.४९.४; वाज.सं. ३३.५५; मै.सं. ४.१०.६: १५८.२ तै.ब्रा. २.८.१.२.

रथप्रोत – जो सदा रथ पर ही चढ़ कर युद्ध करता है।
'तस्य रथप्रोतश्चामरथश्च सेनानीग्रामण्यौ'
वाज.सं. १५.१७; मै.सं. २.८.१०: ११४.२० का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.११.८

रथमुख – रथ का वह भाग जिसमें घोड़े जुड़ते हैं।
'अग्नी रथमुखम्'
अ. ८.८.२३.

रथयुः – रथ + यु (मतुप् या कामना अर्थ में) = रथयु। अर्थ-(१) रथवान् रथवाला। इन्द्र का विशेषण। दे. 'अश्वयु'।
'अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुः इन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्त'
ऋ. १.५१.१४; नि. ६.३१.
(२) रथ की कामना करने वाला।

रथर्य – (१) व्यायाम, (२) देह रूप रथ से प्राप्त होना।
'यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि'
ऋ. १०.३७.३

रथर्यति – रथं हर्यति – रथर्यति। हर्य धातु गति और कान्ति अर्थ में आया है। 'रथं हर्यति' से ही 'रथर्यति' बन गया है। अनुस्वार और ह का लोप हो गया है। अर्थ है- (१) रथ की कामना करता है (रथं कामयते) (२) रथम् आत्मनः इच्छति (अपने लिए रथ चाहता है)। इस अर्थ में रथ + कपच् + तिप् = 'रथर्यति' हुआ है। 'रथ का इच्छुक' इस अर्थ में 'रथर्यति' नाम है और 'रथ की कामना करता है' इस अर्थ में

आख्यात है ।

'एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति
आविष्कृणोति वग्वनुम्'

ऋ. ९.३.५; साम. २.६०९

यह निकलता हुआ तथा सुन्दर सोम रस (एषः पवमानः देवः) हमारे यज्ञ में आने के लिए रथ की कामना करता (रथर्यति) और आकर देवों के निमित्त अपना दान चाहता है (दशस्यति) तथा मुझे 'देवताओं को दो' ऐसी वाणी का प्रकाश करता है (वावनुम् आविष्करोति) –सा. ।

अन्य अर्थ – यह रमणस्थान परमेश्वर की कामना करने वाला (एषः रथर्यति) पवित्र तथा तेजस्वी शान्तविद्वान् (पवमानः देवः) सुख प्रदान करता है (दशस्यति) और वेदवाणी से संभजनीय ज्ञान को प्रवाहित करता है (वग्वनुम् आविष्करोति) ।

(२) परमेश्वर की कामना वाला ।

रथर्वी – फणि वाला सर्प ।

'पैद्वो रथर्व्याः शिरः
सं बिभेद पृदाक्वाः'

अ. १०.४.५

रथवत् – (१) रमण–साधन शरीर को धारण करने वाला– आत्मा, (२) रथ वाला । दे. 'नभोजू' ।

रथवाहण – रथ और घोड़ा आदि ऐश्वर्य ।

'प्रस्थावद् रथवाहणम्'

अ. ३.१७.३; वाज.सं. १२.७१; तै.सं. ४.२.५.६; मै.सं. २.७.१२; ९१.१८; का.सं. १६.१२; श.ब्रा. ७.२.२.११.

रथवाहन – रथ को चलाने योग्य उपकरण ।

'रथवाहनं हविरस्य नाम'

ऋ. ६.७५.८; वाज.सं. २९.४५; तै.सं. ४.६.६.३; आप.श्रौ.सू. २० .१६.१८.

रथवीति – (१) रथ के द्वारा गमन, (२) रथ से प्राप्त होने वाला– आने वाला ।

'सुतसोमे रथवीतौ'

ऋ. ५.६१.१८

'एष क्षेति रथवीतिः
मघवा गोमतीरनु'

ऋ. ५.६१.१९

रथस्पति – (१) रथों का स्वामी, (२) सेना का स्वामी, (३) महारथी नेता ।

'एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः'

ऋ. ५.५०.५

रथस्पृक् – रथ + स्पृश् + क्विप् = रथस्पृश् । प्रथमा एकवचन में रथस्पृक् अर्थ– रथ में लगा ।

'ता अत्रसन् रथस्पृशो नाश्वाः'

ऋ. १०.९५.८

रथस्यखः – (१) रमण करने योग्य शरीर की इन्द्रियाँ ।

'खे रथस्य खेऽनसः'

ऋ. ८.९१.७; अ. १४.१.४१; तै.ब्रा. १.२२१.

(१) रथ का अवकाश, (४) रमण योग्य इन्द्रियों का छिद्र ।

रथस्य निधानम् – (१) रथशाला – या. । (२) वेगवान् यन्त्राश्व का नियोजन– दया. । दे. 'दक्षिणावत्'।

'यत्रा रथस्य बृहते निधानम्'

ऋ. ३.५३.५,६

जहाँ रथ शाला है–यास्क ।

जहां यन्त्राश्वों का नियोजन या विमोचन होता है – दया.।

रथस्वनः – जिसके रथ में अद्भुत शत्रुभयकारी शब्द निकलता है ।

'तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ'

वाज.सं. १५.१६; तै.सं. ४.४.३.१; मै.स. २.८.१०: ११४.१६ का. सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.१७.

रथ्यः – (१) रथ में जोते जाने वाला अश्व । दे. 'आसस्राणाशः ।

'इन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः'

ऋ. ६.३७.३; नि. १०.३

रथ में जोते जाने योग्य घोड़े ।

(२) रथ की धुरी । दे. 'आहनस्' ।

'तेन वि वृह रथ्येव चक्रा'

ऋ. १०.१०.८; अ. १८.१९

हे यमी, तू उससे विवाह कर जैसे रथ के दो पहिए एक ही धुरी पर रहते हैं ।

(३) रथ का भार उठाने में समर्थ रथ की धुरी ।

'आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुः'

ऋ. १.३५.६

रथ का भार उठाने में समर्थ रथ की धुरी जिस रथ पर चढ़ने वाले का भार सहन करता है उसी

प्रकार वायु के आश्रय पर सूक्ष्म जलों के समान जीवगण (अमृता) स्थिर हैं।

रथ्यचक्र – (१) रथ योग्य चक्र, (२) रथ के चक्र के समान बना चक्रव्यूह।
'नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक्'
ऋ. १.५३.९; अ. २०.२१.९

रथ्यः सप्तिः – (१) रथ का घोड़ा, (२) रथ रूप शरीर में विद्यमान देह से देहान्तर जाने वाला जीव।
'सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः'
ऋ. २.२१.७

रथ्या – (१) उत्तम देह और आत्मा से युक्त।
'बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता'
ऋ. ५.७५.५
(२) द्वि.व.। रथ में लगे दो अश्वों के समान स्त्री पुरुष या दो नदियाँ –शुतुद्रु और विपाशा।
'अच्छा समुद्रं रथ्येव याथः'
ऋ. ३.३३.२

रथ्यासः – रथ + यत् = रथ्य। ब.व. में रथ्य + जस् = रथ्यासः रथ में जुते जाने वाले अश्व। 'अज्जसे रसुक्' से जस् का असुक् हो जाता है। दे. 'आसस्त्राणासः'।

रथिणी इष् – रथ वाहनों से युक्त सेना।
'इन्द्र ता रथिनीरिषः'
ऋ. १.९.८; अ. २०.७१.१४

रथिर – (१) रमणीय ज्ञान वाला, (२) रथ का स्वामी, (३) रमणीय स्वरूप या रसस्वरूप परमेश्वर।
'सुदानुं देवं रथिरं वसूयवः'
ऋ. ३.२६.१
(४) रथारोही, (५) रमणयोग्य शरीर धारी।
'रथिरासो हरयो ये ते अस्रिधः'
ऋ. ८.५०.८
(६) रथ सैन्य के संचालन का स्वामी।
'सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त'
ऋ. ७.७.४.
(७) रमण योग्य रथ अर्थात् शरीर को वश करने वाला।
'सुन्वन्ति सोमं रथिरासो अद्रयः'
ऋ. १०.७६.७
(८) महारथियों के बीच रमण करने वाला महारथी
'अनु देवान् रथिरो यासि साधन्'
ऋ. ३.१.१७

रथिरा – (१) रथ पर विराजमान अश्विद्वय या (२) सहयोगी स्त्रीपुरुष।
'यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्राः'
ऋ. ७.६९.५; मै.सं. ४.१४.१०: २३०.३ का.सं. १७.१८; तै.ब्रा. २.८.७.८

रथीतमः – अतिशय रथों वाला या नृतम् परमातमा। दे. 'उत्', 'न्यैरयत्'।
'सूरश्चक्रं हिरण्ययम्
न्यैरयद् रथीतमः'
ऋ. ६.५६.३
अतिशय रथों वाला या नृतम (रथीतमः) प्रेरकपरमात्मा (सूरः) आदित्य के लिए सुवर्णमय कालरूपी चक्र को (हिरण्य चक्रमे) चलाता है (न्यैरयत्)।

रथीः – (१) गमयिता, (२) प्राप्त कराने वाला। दे. 'आघृणि'।
'रथीर्ऋतस्य नो भव'
ऋ. ६.५५.१
हे पूषन्, सूर्य या हे विद्वन्, आप हमारे यज्ञ के गमयिता या सत्य विद्या के प्राप्त कराने वाले हो (ऋतस्य रथीः)।

रथीतमा – द्वि.व.। (१) उत्तम महारथी, (२) देह में आश्रित प्राण और अपान।
'दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा'
ऋ. १.१८२.२

रथीतर – अतिशयेन रथयुक्तो योद्धा (रथी जिससे बढ़कर दूसरा न हो)।
'नकिष्ट्वद् रथीतरः'
ऋ. १.८४.६

रथेष्ठः – रथ में स्थित।
'रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः'
ऋ. २.१७.३

रथेचित्रः – जिसके रथ में चित्र विचित्र रचना और युद्धार्थ विचित्र उपकरण हो।
'तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ'
वाज.सं. १५.१६; तै.सं. ४.४.३.१; मै.सं. २.८.१०: ११४.१६ का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.१७.

रथेशुभ् – रथ पर शोभने वाला। दे. 'क्रीड़'।

रथोपस्थ – (१) रथ का उपस्थ, (२) रथी के बैठने का स्थान ।
'परिवत्सरो रथोपस्थः'
अ। ८.८.२३

रथौजाः – (१) रथों के द्वारा पराक्रम करने में कुशल ।
'तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ'
वाज्र.सं. १५.१५; तै.सं. ४.४.३.१; मै.सं. २.८.१०: ११४.१३ का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१६.

रद् – धा. । काटना, खोदना । दे. 'किविर्दत्'
जिसमें 'रदति' का अर्थ काटना या खोदना कहा गया है ।

रदति – (१) काटता है – सा. (२) खोदता या खनता है – दया. । दे.' क्रिविर्दती' ।
'यत्रा वो दिद्युद् रदति क्रिविर्दती'
ऋ. १.१६६.६; नि. ६.३०.
जब आप की काटने वाली हेति, मेघ समूह को इस प्रकार काटती हैं-सा.
जिस विज्ञान में (यत्रा) तुम्हारे काटने वाले दांतों वाली विद्युत् (वः क्रिविर्दती विद्युत्) खोदने का काम करती है (रदति) । -दया. ।

रदन्ता – (१) प्रदान करते हुए- अश्विद्वय या विद्वान् स्त्री पुरुष ।
(२) भूमि से खनकर प्राप्त करते हुए ।
'वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता'
ऋ. १.११७.११
पालन पोषण करने में समर्थ (भुरणा) मेधावी ज्ञानवान् पुरुष का ब्राह्मण को (विप्राय) अन्न (वाजम्) प्रदान करते हुए (रदन्ता) आप दोनों....
अथवा,
रजत, रत्न आदि ऐश्वर्य और अन्त को भूमि से खनकर प्राप्त करते हुए...।

रदावसु – (१) शत्रु कर्षण करने वाला प्रजा का स्वामी, (२) धनों का दाता – इन्द्र ।
'स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो'
ऋ. ७.३२.१८; अ. २०.८२.१; साम. १.३१०; २.११४६

रदित – (१) दाँत गड़ाया गया, (२) सांप का दांत से काटना, (३) शत्रु द्वारा मारा जाना ।
'रदिते अर्बुदे तव'
अ. ११.९.७, ८,९,१०, ११,१३, १४,१५

रध् – धा. । वश में होना ।
'द्विषंश्च मह्यं रध्यतु'
अ. १७.१.६
(२) हिंसा करना । दे. 'दन'
जिसमें 'रन्धीः' का अर्थ 'नाश कीजिए' किया गया है ।
(३) सम्पादन करना-सा.
(४) वश में जाना-सा. ।
(५) हिंसा और रोधन करना । -दीक्षित ।(६) रहना ।

रध्यति – (१) वशं गच्छति (वश में जाता है), (२) हिंसति (हिंसा करता है) (३) संराधन करता है । दे. 'रध्', 'रधान', 'आभर' ।

रध्र – (१) आराधन करने वाला उपासक (२) दुष्टों को दण्ड करने वाला दयनीय वीर पुरुष ।
'यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य'
ऋ. २.१२.६; अ. २०.३४.६
(३) धनाढ्य
(४) दृढ़ (५) वश करने योग्य, (६) प्रबल, (७) समृद्धिमान् ।
'इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति'
ऋ. ७.५६.२०
(८) आराधन या साधन करने वाला ।
'रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ'
ऋ. २.३०.६

रध्रचोदः – (१) आगे आए बाधक हिंसकों को दूर करने वाला, (२) उत्तम ऐशवर्यवान् समृद्ध पुरुषों को भी प्रेरणा करने वाला इन्द्र परमेश्वर ।
'रध्रचोदः श्नथनो वीडितस्पृथुः'
ऋ. २.२१.४

रध्रचोदनः – (१) वपूरगामियों को सन्मार्ग में चलाने वाला ।
'अनानुदं वृषभं रध्रचोदनम्'
ऋ. १०.३८.५; जै.ब्रा. १.२२८
(२) अपने वशीभूत अधीन व्यक्तियों को उत्तम शिक्षा देने वाला ।
'किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः'
ऋ. ६.४४.१०

रध्रतुर – (१) हिंसकों को नाश करने वाला ।
'अरध्रस्य रध्रतुरो बभूव'
ऋ. ६.१८.४

रधाम - (१) रध (रहना) धातु के आशीर्लिङ् उ.पु.ब.व. का रूप । अर्थ है हम रहें । दे. 'मा'
'मा रधाम द्विषते सोम राजन्'
ऋ. १०.१२८.५; अ. ५.३.७; तै.सं. ४.७.१४.२; आप.मं.पा. २.९.६;
हे राजन् सोम, हम शत्रुओं के वश में न जाने पावें (द्विषते मा रधाम) । हिन्दी का 'रहना' धातु 'रध' धातु का ही बिगड़ा रूप है ।
दीक्षित का अर्थ-द्विषतेतदर्थं मार धाम परिपक्वा हवनार्हा मा भूम । (शत्रुओं के लिए परिपक्व हवन के योग्य हम न होवें) ।
(२) वशं गच्छेम (वश में जावें) । दिवादिगणीय 'रध्' धातु वश करना अर्थ में है ।
(३) दीक्षित के मत से 'रध्' धातु हिंसा और रांधना अर्थ में है (हिंसा संराध्योः) । (४) यास्क ने इसे गमनार्थक ही माना है ।

रन् - (१) देता हुआ .
'युवं ह्यास्तं महो रन्'
ऋ. १.१२०.७
आप दोनों बड़े भारी पूजनीय ज्ञान और रक्षक एवं ऐश्वर्य को देने योग्य होओ ।

रन्त - (१) रमन्ते (रहते हैं) । दे. 'अर्वाक्' ।
'ज्मया अत्रः वसवो रन्तदेवाः'
ऋ. ७.३९.३; नि. १२.४३.
जो पृथिवी में बसने वाले देवता यहां हैं ।
(३) अरमन्त- (रमण किया या रमे)
पुनः दे. 'उरुज्रि' ।
'बहुलं छन्दसि' से शप् का लोप और अट् का अभाव ।

रन्त्यः - रमणीय । (२) रमण करने, योग्य ।
'कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूत्'
ऋ. १०.२९.३; अ. २०.७६.३
'वसन्त इन्नु रन्त्यः'
आ.सं. ४.२.
(३) सुख देने वाला ।

रन्ता - स्त्री. । रमण करने योग्य, रमणीय ।
'इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे'
वाज.सं. ८.४३, श.ब्रा. ४.५.८.१०.

रन्तिः - (१) रमण करने वाला (२) सुप्रसन्न प्रजाजन सुखी ।
'श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च'
ऋ. ७.१८.१०
(३) चित्त की प्रसन्नता, (४) (रमण) ।
'इह रन्तिरिह रमताम्'
वाज.सं. २२.१९; श.ब्रा. १३.१.६.२.
'स्पार्हा भवन्ति रन्तयो जुषन्त यत्'
ऋ. ९.१०२.५

रन्ती - समस्त क्रीड़ा, चेष्टा, व्यापार करने वाली चिति शक्ति ।
'सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी'
साम. २.१००४; तै.ब्रा. २.१४४.

रन्धय - साधय (साध या वश में कर) । रध् धातु वश करना अर्थ में तथा रांधना-पाक बनाना अर्थ में आया है । दे. 'रधाम' । अर्थ- (१) दे. (२) अधिकार में कर । दे. 'आभर' ।
'नैचाशाखं मघवन् रन्धयानः'
ऋ. ३.५३.१४; नि. ६.३२.
हे मघवन्, तू हमें नीच योगी से उत्पन्न पुत्रादि का धन (नैचाशाखम्) धन दे (रन्धय नः) । दे. 'रध्यति', 'रध' ।

रन्धिः - (१) विनाश, (२) वशीकर -दया
'भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम्'
ऋ. ७.१८.१८

रन्धीः - (१) सम्पादित किया-सा. । (२) रौंदा नष्ट किया-दया. । दे . 'दन्' ।
'यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः'
ऋ. १.१७४.३
हे इन्द्र, तूने स्तुतिशील पुरुकुत्स के लिए (यूने पुरुकुत्साय) धन सम्पादित किया (वृत्रं रन्धीः) सा. । हे राजन्, तूने पुरुषार्थी कृषक के लिए (यूने पूरुकुत्साय) कष्ट को नष्ट किया (वृत्रं रन्धीः) ।

र्यक् - अ.। (१) सामने-सा. । (२) प्राप्त होने वाला । -दया. । दे . 'अमिन' ।
'अस्मद् र्यग् वावृधे वीर्याय'
ऋ. ६.१९.१; वाज.सं. ७.३९; तै.सं. १.४.२१.१; मै.सं. १.३.५: ३८.१३; का.सं. ४.८; श.ब्रा. ४.३.३.१८; तै.ब्रा. ३.५.७.५.
हमारे सामने या हमें प्राप्त होने वाला सूर्य बल के लिए बढ़ते हैं ।

रप् - (१) लप, बोलना ।

'ऋता वदन्तो अनृतं रपेम'
ऋ. १०.१०.४
(२) उपदेश करना ।
'रपत् कविरिन्द्रार्कसातौ'
ऋ. १.१७४.७

रपः – (१) स्त्री पर बलात्कार सम्बन्धी पाप ।
'अप कृत्यामयो रपः'
वाज.सं. ३५.११; श.ब्रा. १३.८.४.४

रपस् – (१) पाप वाची अव्यय ।
'रपोरिप्रम् इति पापनामनी भवतः'
(रपस् और रिप्र पाप के नाम हैं)
'बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वाक्
इमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्
त आ गतावसा शन्तमेन
अथा नः शं योररपो दधात'
ऋ. १०.१५.४; वाज.सं. १९.५५; मै.सं. ४.१०.६: १५६.१३. का.सं. २१.१४; नि. ४.२१.
हे यज्ञ में बैठने वालो, हे पितरो, हम इस पीढ़ी वाले अर्वाचीनों की रक्षा आप करें (अर्वाक् ऊती)। हम लोगों ने आप लोगों के लिए (नः) इन हवियों को तैयार किया है (इमा हव्या चकृम)। अतः आप उन्हें ग्रहण करें या आस्वादें। आस्वादन कर वे आप सुखतम रक्षा करने वाले बनकर आवें (शतमेन अवसा आगत) और हमें (अथ नः) रोग और भय से रहित (शंयोः) और पापहीन करें (आपः दधात)।

रप्श – स्तुति करना, आज्ञा देना ।
'वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिः'
ऋ. ४.२०.५

राशदूधन् – (१) गर्जता हुआ अन्तरिक्ष वाली, (२) बड़े बड़े दूध से भरे थनों वाली (३) व्यक्त उपदेश करने वाली वाणी ।
'इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिः'
ऋ. २.३४.५

रप्सुदा – (१) उत्तम रूप प्रदान करने वाला सूर्य ।
'मही यज्ञस्य रप्सुदा'
ऋ. ८.७२.१२; साम. १.११७; २.९५२ वाज.सं. ३३.१९,७१
(२) उत्तम यश बल देने वाला ।

रफ – पीड़ा देना ।

रफित – पीड़ित, दुःखित जीव । रफ (पीड़ा देना) + क्त = रफित ।
'अनवान्त्सन् रफितयोपजग्मुषे'
ऋ. १०.११७.२

रभस – (१) वेगवान् – अग्नि (२) कार्य करने वाला ।
'व्यचिष्ठमन्नैः रभसं दृशानम्'
ऋ. २.१०.४; वाज.सं. ११.२३; श.ब्रा. ६.३.३.१९
(३) अति कार्यकुशल ।
'वृको न रभसो भिषक्'
वाज.सं. २१.३८; मै.सं. ३.११.२: १४२.१३; तै.ब्रा. २.६.११.७
(४) बलवान् ।
'अधैनं वृका रभसासो अद्युः'
ऋ. १०.९५.१४
(५) गृह ।
'आसीना ऊर्ध्वं रभसं विमिन्वम्'
ऋ. ३.३१.१२.
(६) सर्वकर्ता प्रभु ।
'श्लोक यन्त्रासो रभसस्य मन्तवः'
ऋ. ९.७३.६

रभस् – बल, वेग ।

रभस्वत् – (१) उद्योग शील । रभस् + वतुप् ।
'इन्द्र राये रभस्वतः'
ऋ. १.९.६; अ. २०.७१.१२
(२) बलवान् । दे. 'सुतुक्'

रभ्यस् – रभ् + असुन् + ईयसु = रभ्यस । अर्थ –
(१) अति रभीयान् पुरुषार्थी–दया. ।
(२) अति वेगवान् ज.दे.श. ।
'पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः'
ऋ. १.१२०.४
आप दोनों सहनशील, शत्रु पराजयकारी (सह्यस) और अति वेगवान् शीघ्रकारी हम सबकी (रभ्यसः) रक्षा करो (पातम्) ।

रभिः – दृढ़ ।
'हिरण्ययी वां रभिः ईषा अक्षो हिरण्ययः'
ऋ. ८.५.२९.

रभिष्ठाः – (१) अति अधिक बल से कार्य प्रारम्भ करने वाले, (२) वेगवान् बलवान् (३) मरुद्गण का विशेषण ।
'पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः'
ऋ. ५.५८.५; मै.सं. ४.१४.१८: २४७.१५,

तै.ब्रा. २.८.५.७

रभिष्ठा – स्त्री. । (१) खूब दृढ़ता से बांधने वाली ।
'अभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया'
वाज.स. २१.४६

रभोदा – (१) बलप्रद, (२) ज्ञानप्रद ,
'तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदाम्'
ऋ. ६.२२.५; अ. २०.३६.५

रम्भिणी – (१) उत्तम गृहस्थ कार्यों को आरम्भ करने वाली, (२) प्रेमालिंगन करने वाली स्त्री, (३) बलवती अस्त्रादि शक्ति, (४) वाणी ।
'ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे'
ऋ. १.१६८.३

रम् (रंसु) – रम् + विच् = रम् । (१) रमणीय पदार्थ । 'रंसु' रम् शब्द के सप्तमी बहुवचन का रूप है । अर्थ है- रमणीय पदार्थों में ।
आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तः
शिग्भ्यो नामिमीत वर्णम्
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा
जजुर्वां यो मुहुरा युवा भूत्'
ऋ. २.४.५; नि. ६.१७

जिसका महत्व (यत् अभ्वम्) मेरे स्पृहणीय हविदाता (मे वनदः) सदा गाते हैं (आपनन्त) वह अग्नि (सः) मेधावियों के निमित्त, या सायण के अनुसार, हमारे रूप की कामना करने वाले ऋत्विजों के लिए (उशिग्भ्यः) नर या प्रार्थना को हिंसित नहीं करता (वर्णं न अमिमीत) तथा वह अपनी विचित्र आभा से युक्त हो (चित्रेण भासा) द्युलोकादि या अग्निहोत्र जैसे रमणीय स्थानों में (रंसु) जाना जाता है (चिकेत) और जो अग्नि बार बार जीर्ण होकर भी तरुण सा हो जाता है (जुजुर्वान् मुहुः आयुवाभूत्) ।

अन्य अर्थ – हे प्रशस्त पदार्थों के दाता मनुष्यो (वनदः), यतः तुम मेरे उपदिष्ट कर्मों में स्थिर रहते हुए अपने से बड़े विद्वान् का सत्कार करते हो (यत् में अभ्वम् अमनन्त) अतः वह विद्वान् तुम इच्छुकों के (उशिग्भ्यः) वर को (वर्णम्) नहीं टालता (न अमिमीत) और जो जीर्णावस्था को प्राप्त करता हुआ (जुजुर्वान्) भी युवा की तरह पुरुषार्थी होता है (मुहः आ युवा भूत्) वह विद्वान् अद्भुत तेज के साथ (सं चित्रेण भासा) रमणीय स्थानों में (रंसु) निवास करता है (चिकिते) ।

रमतिः – (१) आनन्द विनोद, (२) अनुकूल प्रवृत्ति, (३) अनुग्रह ।
'मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु'
अ. ६.७३.२,३
(४) सर्वत्र आनन्द से रहने वाली रमने वाली गौ ।
'पदज्ञा स्थ रमतयः'
अ. ७.७५.२;

रमध्वम् – विराम करो । दे. 'अच्छ' ।

रम्जाति – रम् धातु के लट् प्र.पु.ए.व.का रूप । लोक में 'रम्' क्रीड़ा अर्थ में आया है । परन्तु यास्क ने इसे संयमन अर्थ में लिया है । अर्थ है- (१) नियन्त्रण करता है ।
निघण्टु २.२०.३४ में इसे वधार्थक धातु माना गया है । परन्तु निमन्त्रण से वध की प्रायः तुल्यता है ।
सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णात् (सविता ने यन्त्रों से पृथिवी को नियन्त्रित किया) ।
रम् धातु में 'श्ना' प्रत्यय व्यत्यय नियम से जोड़ा गया है । दे. 'अदर्दः' ।

रम्ब – लम्ब, लटकना ।
'न सेशे यस्य रम्बते'
ऋ. १०.८६.१६; अ. २०.१२६.१६

रम्भः – (१) रम्भः पिनाकमिति दण्डस्य (रम्भ और पिनाक ये दोनों दण्ड के नाम हैं) –यास्क
(२) 'रम्भ आरयन्त एनम्' स्खलित न होने के लिए लोग दण्ड को धारण करते हैं अतः यह रम्भ कहा गया है) ।
रभ्यते अयम् इति रम्भः (इसका आश्रय लिया जाता है) । रभ् + घञ् = रम्भ (अकर्त्तरि च कारक संज्ञायाम्) ।
मोदिनी कोष में –
'रम्भाः कदल्यप्सरसोर्ना वणौ वारणान्तरे –ऐसा कहा है । यहाँ वेणु दण्ड का ही वाचक है, क्योंकि मनु ने 'वैणवीं धारयेत् यष्ठिम् सदोकञ्च कमण्डलुम्' ऐसा कहा है ।
रम्भ (आश्रय लेना) + अच् = रम्भ (मभ् का आगम) । जिसका आश्रय लिया जाय । अर्थ है (१)लकुटी, डंडा । दे. 'आ' ।

'आ त्वा रम्भं न जिव्रयः '
ऋ. ८.४५.२०; नि. ३.२१.
जैसे वृद्ध लकुटी का सहारा
लेते हैं वैसे ही मैं तेरा सहारा लेता हूँ।
(२) आश्रय, आधार, अवलम्ब ।

रम्भी - (१) समस्त विश्व का निर्माता । (२) आरम्भ करने वाला, (३) उत्तम कर्म करने वाला जीव (४) क्रिया कुशल, (५) उद्योगी ।
'रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यम्'
ऋ. २.१५.९

रयि - रीयत इति रयिः (जो दिया जाता है वह रयि अर्थात् धन है) । दे. 'नू च' । आज भी 'राय' शब्द धनवान् या राजा की उपाधि है । रा (दानार्थक धातु) से रयि हुआ है ।

रयिदौ - द्वि. व. । (१) ऐश्वर्य या धन देने वाले ।
'युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणाम्'
ऋ. ३.५४.१६

रयिषाच् - (१) ऐश्वर्यों से सम्पन्न । (२) जो धन के साथ सम्पर्क करता है- दया.
'नासत्या रयिषाचः स्याम'
ऋ. १.१८०.९

रयिषाट् - (१) सब ऐश्वर्य बल को विजय करने वाला ।
'इयर्ति वाचं रयिषाडमर्त्यः '
ऋ. ९.६८.८
(२) बल वीर्य एवं दैहिक विभूतियों को अपने वश में करने वाला जीवात्मा, (३) ऐश्वर्य को वश में करने वाला ।
'होता निषत्तो रयिषाडमर्त्यः '
ऋ. १.५८.३
समस्त ग्राह्य भोग्य रूप आदिं विषयों का ग्रहण करने वाला (होता) शरीर के भीतर धारण किया जाकर (निषत्तः) मृत्यु रहित (अमर्त्यः) बल, वीर्य एवं दैहिक विभूतियों को वश में रखने वाला जीवात्मा ।

रयिष्ठा - (१) धन और प्राणों में अधिष्ठाता रूप में स्थित, (२) धन बल की प्रतिष्ठा, (३) धनवान् देश में रहने वाला सरस्वान् देवता (४) रस-सागर ईश्वर ।
'आ नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयाति'
अ. ७.३९.१

रयिष्ठान - (१) शरीर का धन स्वरूप प्राण में जिसकी स्थिति है- जीव (२) धन ऐश्वर्य में जिसकी स्थिति है वह इन्द्र ।
'रयिष्ठानो रयिमस्मासु धेहि'
ऋ. ६.४७.६; अ. ७.७६.६

रयिस्थान - (१) शरीर के धनस्वरूप रयि अर्थात् प्राण में जिसकी स्थिति हो-जीव । दे. 'रथिष्ठान' । (२) ऐश्वर्य का आश्रय

रयीयन् - (१) ऐश्वर्य की कामना करने वाला ।
'अयमु वां पुरुतमो रयीयाम्'
ऋ. ३.६२.२

रराट - (१) ललाट (२) शिरोभाग, (३) मुख्य भाग
'विष्णो रराटमसि'
वाज.सं. ५.२१; तै.सं. १.२.१३.३; ६.२.९४; मै.सं. १.२.९:१९. १०; ३.८.७: १०५.११ का.सं. २.१०; २५.८; श.ब्रा. ३.५.३.२४; आप.श्रौ.सू. ११.८.१

रराणः- रा (दानार्थक)+ कानच् । (व्यत्यय से लिट् में) = रराण । देता हुआ । दे. 'अदीधेत् ।
'देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणः '
ऋ. १०.९८.७; नि. २.१२
सायण ने इसका अर्थ 'रममाणः ' किया है जिसका अर्थ है- रमण करता हुआ

रराणत्- आनन्द युक्त हुआ, प्रसन्न चित्त

रराण- सदा दान देने वाली स्त्री
'निरस्मभ्यमनुमती रराण'
अ. १.१८.२

ररावसु- ऐश्वर्य का दाता
'स्तोतारमिद् दिधिषेय रदावसो'
ऋ. ७.३२.१८; अ. २०.८२.१; साम. १.३१०; २.११४६

ररावा - (१) दानशील
'न्यराती रराव्णाम्'
ऋ. ८.३९.२

ररिवाँ, ररिवान् - रा (दानार्थक)+ क्वसु = ररिवास् । (१) दान देने की इच्छा से युक्त-सा. । दाना भिप्राय युक्तः ।
(२) निरन्तर विद्या प्रदान करता हुआ - दया.।
दे. 'अज'
'अहेडमानो ररिवाँ अजाश्व'
ऋ. १.१३८.४; नि. ४.२५
दान देने की इच्छा से युक्त या निरन्तर विद्या

प्रदान करते हुए हे पूषन् या क्रियाशील इन्द्रिय वाले विद्वान्, हम पर क्रुद्ध न होता हुआ हमारे समीप आ।

'रीवाँ' शब्द रयिवान्, रैवान् या ररिवान् का ही बिगड़ा रूप है।

ररुष् - रा (दान देना) + क्वसु = ररुष्। अर्थ है-(१) दान देने वाला। दे. 'अररुष्'

'मा नः शंसो अररुषः'

ऋ. १.१८.३; वाज.सं. ३.३०; का.सं. ७.२; श.ब्रा.२.३.४.३५; आप. श्रौ.सू. ६.१७.१२.

अदान शील पुरुष का कष्टप्रद वचन हमारे पास न पहुंचे।

रवथः- (१) उपदेश

'बृहस्पते रवथेना वि दिद्युते'

ऋ. ९.८०.१

(२) महान् घोष करने वाला

'दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान्'

ऋ. १.१००.१३

महान् घोष करने वाला (रवथः) सूर्य के तेज के समान चमकने वाला अमित शक्तिशाली वज्र।

रशना- अश् + अशच्। अश्नुते व्याप्नोति इति रशना। अर्थ है-(१) रस्सी, (२) व्यापक शक्ति, (३) व्यवस्था या अधिकार।

'या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य'

ऋ. १.१६२.८; वाज.सं. २५.३१; तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं. ३.१६.१: १८२.१०; का.सं. ६.४

'यदीं गणस्य रशनामजीगः'

ऋ. ५.१.३; साम. २.१०९८

दूसरी व्युत्पत्ति - रश् (बांधना) + युच् + टाप् = रशना। रशीति बन्धनार्थो धातुः सौत्रः। बन्धन्ति बन्धनीयं, बध्यत आभिः इति वा (बांधता है या इससे बन्धनीय पदार्थ बांधे जाते हैं)। अर्थ है -रस्सी। (२) अंगुलि। दे. 'अभ्यधीताम्'

'रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम्'

ऋ. १०.४.६; नि. ३.१४

(दसों अंगुलियों से पकड़े) (३) ज्वाला, (४) जिह्वा। दे. 'अमृत'।

'वनस्पते रशनया नियूया'

ऋ. १०.७०.१०; मै.सं. ४.१३.७:२०९.१; का.सं. १८.२१; तै.ब्रा. ३.६.१२.१; आश्व.श्रौ.सू. ९.५.२; नि. ८.२०

हे वनस्पते, ज्वाला से निबद्ध कर ....।

(५) भोजदेव ने इस प्रकार व्युत्पत्ति की है- अश्नुवते कर्माणि इति रशना (जो कर्मों को व्याप्त करता है वह रशना है)।

(६) देवराज ने इसका अर्थ अंगुलि, योत्क्र तथा रश्मि किया है (अंगुलयो योत्क्राणि रश्मयश्च इति देवराज यज्वानः)

रशनायमाना- श्रृंखला के समान पूर्व के आती हुई वंश परम्परा।

'येदं पूर्वागन् रशनायमाना'

अ. १४.२.७४

रश्मि- (१) विवेकी पुरुष

'रश्मिना सत्याय सत्यं जिन्व'

वाज.सं. १५.६; श.ब्रा. ८.५.३.३

(२) रशि (रश्) + मि = रश्मि।

अथवा - यम् + इन् = रश्मि (य का रश्)।

अथवा -'बध्नाति उदकम्' (उदक को बांधता है) अथवा, 'बध्यते तैः उदकम्' (उन से उदक बांधा जाता है) अथवा 'अश् (व्याप्त्यर्थक) + मि = रश्मि ('अशेरश् च' से अश् का रश् आदेश।

अर्थ है - (२) गौ। सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यते (सभी रश्मियां गौ हैं)-यास्क

मेदिनीकोश में भी-

गौः स्वर्गे च वलीवर्दे रश्मौ च कुलिशे पुमान्
स्त्री सौरभेयी दृक् वाणादि भूम्वप्स भूम्नि च (३) किरण, (४) प्रग्रह (पगहा)

किरण प्रग्रहौ रश्मिः
- अमर कोष

रश्मिः यमनात् (रश्मि शब्द संयमन या आदान से बना है)।

(५) पाश, बन्धन, रस्सी। दे. 'अभीशु' (६) उपभोग्य पदार्थों का संग्रहकारी पुरुष

'अंशुश्च मे रश्मिश्च मे'

वाज.सं. १८.१९; तै.सं. ४.७.७.१; मै.सं. २.११.५:१४३.२; का.सं. १८.११.

आधुनिक अर्थ - डोर, रस्सी, पगहा, लगाम, चाबुक, किरण।

रस्- धा. शब्द करना।

रसति- शब्दं कुरोति (ध्वनि करता है)। रस् धातु शब्द कर्मा है।

रसा- (१) शरीर की वह नाड़ी जिससे समस्त शरीर में रस व्यापता है।
'सु सर्त्वा रसया श्वेत्या त्या'
ऋ. १०.७५.६
(२) पृथिवी, (३) नदी
'याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुः'
ऋ. १.११२.१२
जिन उपायों से पृथ्वी या नदी को (रसाम्) जल प्रवाह से (उद्नः क्षोदसा) पूर्ण कर देते हो (पिपिन्वथुः)।
(४) रस् (शब्द करना) + अच् + टाप् = रसा। अर्थ है-नदी, जल। जल भी शब्द करता है। दुर्ग ने यास्क के -'कथं रसानि तानि उदकानि इति वा' का अर्थ यों किया है-'अपि नाम स्वादूनि ? (क्या वे स्वादिष्ट हैं)। 'कथं रसा' का अर्थ उन्होंने नहीं किया है जिस का अर्थ है- किस स्वाद के जल वाली यह है। दे. 'अस्मेहिति'

रसाः- ब.व.। दे. 'रस'। (१) सोम रस। दे. 'असक्रा'।
'रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन्'
ऋ. ६.६३.८
हे अश्विद्वय, तुम्हारे लिए सोमरस भी हैं जो तुम्हारे दान को लक्ष्य कर दिए गए हैं।

रसाय्यः- (१) ज्ञान-रस के तृप्त शिष्य, (२) रस से पूर्ण
'रसाय्यः पयसा पिन्वमानः'
ऋ. ९.९७.१४; साम. २.१५७

रसार्शि - नाना जलों से अभिषिक्त, (२) यः रसम् अश्नाति दया. (जो रस पीता है)
(३) बल को धारण करने वाला (४) उत्तम जलादि का उपभोक्ता राष्ट्र
'रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य'
ऋ. ३.४८.१

रसी- रस + इनि। रसयुक्त अन्न
'परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिः'
ऋ. ८.१.२६; साम. २.७४.३

रंसु- (१) रमणीय स्वरूप
'स चित्रेण चिकिते रंसु भासा'
ऋ. २.४.५; नि ६.१७

रंसुजिह्वः- (१) रम्य मधुर वाणी बोलने वाला, (२) रमणीय ज्वाला या किरण वाला-अग्नि, सूर्य।
'होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः'
ऋ. ४.१.८

रहसू- एकान्त में सन्तानोत्पत्ति करने वाली व्यभिचारिणी स्त्री।
'आरे मत् कर्त रहसूरिवागः'
ऋ. २.२९.१

रंह - गमन करता, प्राप्त करना
'स रंहत उरुगायस्य जूतिम्'
ऋ. ९.९७.९

रंहति- (१) रंह् (गत्यर्थक) के लट् प्र.पु. एक वचन का रूप। अर्थ है-जाता है

रंहमाणा- वेगवती नदी
'रंहमाणा व्यव्ययं
वारं वाजीव सानसिः'
ऋ. ९.१००.४

रंहय- (१) रंह् + यत्। गमन करने योग्य-रथ, (२) प्राप्त करने योग्य
'स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत्'
ऋ. २.१८.१
(३) वेग से जाने वाला
'अस्मभ्यं दस्म रंह्या'
ऋ. ४.१.३

रंहिः- (१) वेगवती शक्ति
'यास्ते शोचयो रंहयो जातवेदः'
अ. १८.२.९
(२) वेगवान्
'गोषाः शतसा न रंहिः'
ऋ. १०.९४..३
(३) रंह (गत्यर्थक) + कि = रंहि। दे. 'युवति'

रहु - अधर्मत्यायी। दे. 'रहूगणाः'

रहूगणाः- (१) अधर्म को त्यागने वाले और शत्रु से अपने देश को छुड़ा देने वाले (२) अति वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाले, (३) अधर्म युक्त प्राणियों के समूह को त्यागने वाले।
'अवोचाम रहूगणा
अग्नये मधुमद्वचः'
ऋ. १.७८.५

रा - धा.। देना, लाना

'*अस्मे रयिं रासि वीरवन्तम्*'
ऋ. २.११.१३
हिन्दी का 'ला' धातु 'रा' से ही बना है । अर्थ है 'लाकर दे ' । देखिए-'रास्व' ।

राक्षस- रहसि क्षिणोति इति राक्षसः (जो एकान्त मे घात करता है या जो प्रकट में तो किसी आश्रम में है, परन्तु अप्रकट रूप में आश्रम धर्म का नाश करता है) । दे. 'रक्षस्'

राका- (१) जो अनुमति सभा से ऊपर श्रेणी की १६ या २० अमात्यों से युक्त रहती है, (२) वाम राजसभा (३) पूर्ण चन्द्र वाली पूर्णिमा, (४) षोड़श कलायुक्त रूपवती स्त्री
'*राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे*'
ऋ. २.३२.४; अ. ७.४८.१; तै.सं. ३.३.११.५; मै.सं. ४.१२.६:१९४. १६; का.सं. १३.१६; नि. ११.३१.
(५) रा (दानकर्मा) + क + टाप् = राका । अर्थ है-पूर्णिमा । मैं सुन्दर आह्वान् वाली पूर्णिमा को सुन्दर स्तुति से पुकारता हूँ । पूर्णिमा हविर्दान के लिए होती है अतः उसका नाम 'राका' पड़ा (हविर्दान निमित्तं हि सा भवति) ।
' राति ददाति अस्मिन् हविः अग्नौ ऋत्विक् ' (ऋत्विक् इस दिन अग्नि में हवि देते हैं) ।
(६) चतुर्दशी का अन्तिम एक प्रहर और पूर्णिमा का आठ प्रहर - यही नौ प्रहर चन्द्रमा की पूर्ण कला है । इनमें प्रथम दो प्रहर जिनमें कला पूर्ण रहती है, अनुमति और अन्तिम ७ प्रहर राका कहलाती है ।
(७) दानशीला पत्नी-दया.। मैं प्रेमपूर्वक लाने योग्य दानशील पत्नी को आदर पूर्वक अपने समीप बुलाता हूँ ।
आधुनिक अर्थ- (१) पूर्णिमा का दिन विशेषतः रात, (२) पूर्णिमा की अधिष्ठात्री देवी, (३) कन्या जिसके मासिक धर्म का आरम्भ हुआ हो, (४) खुजली ।

राज् , राट् - राज् + क्विप् = राज् । अर्थ है- (१) राट्, रातमान, दीप्यमान । दे. 'अश्विनी '

राज- उपार्जन करना, पैदा करना ।
'*ये सहस्रमराजन्*'
अ. ५.१८.१०

राजकः- (१) छोटा राजा, (२) स्वप्रकाश आत्मा
'*चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु*'
ऋ. ८.२१.१८

राजकृता- (१) राजाओं की बनी सेना (२) राजाओं द्वारा प्रयुक्त कृत्या
'*शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता*'
अ. १०.१.३

राजन्य- (१) राजा, (२) क्षत्रिय
'*राजन्ये दुन्दुभावायतायाम्*'
अ. ६.३८.४
(३) राजा का पुत्र
'*आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्*'
वाज.सं. २२.२२; मै.सं. ३.१२.६:श.ब्रा. १३.१.९.२
'*क्षत्राय राजन्यम्*'
वाज.सं. ३०.५; तै.ब्रा. ३.४.१.१

राजन्ती- द्वि.व.। (१) द्यावापृथिवी का विशेषण, (२) भुवन को दीप्त करती हुई । दे. 'अशश्चन्ती
'*राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी*'
ऋ. ६.७०.२
इस भुवन को दीप्त करती हुई द्यावापृथिवी...

राजपुत्रा- (१) राजा को पुत्रवत् अपने अधीन रखने वाली-राजसभा, न्यायसभा, जनसभा (२) अदिति जिसके राजा पुत्रवत् हैं ।
'*पिपर्तु नो अदिती राजपुत्रा*'
ऋ. २.२७.७

राजपुरुष- राज्ञः पुरुषः राजपुरुष (जिस पुरुष का स्वामी राजा है) ।

राजयक्ष्म - राजयक्ष्मा ।
'*अज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्*'
ऋ. १०.१६१.१; अ. ३.११.१; २०.९६.६

राजवध - राजा का आयुध ।
'*नमो राजवधेभ्यः*'
अ. ६.१३.१.

राजसूयः - (१) राजा रूप से प्रेरक शत्रु नाशक सेनापति । (२) दर्भ ।
'*अपामग्निर्वीरुधां राजसूयाम्*'
अ. १९.३३.१
(३) एक यज्ञ ।
'*राजसूयं वाजपेयम्*'
अ. ११.७.७.

राज्य - राजा के पद के योग्य.
'*हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः*'

ऋ. ७.६.२.

राजा - राज (दीप्त्यर्थक) + कनिन् = राजन् । प्रथमा ए. व. में राजा । अर्थ - (१) स्वामी, जो अत्यन्त दीप्त एवं शोभायमान हो, (२) राजा । दे. 'अनुपस्पशान, 'यम', 'वैवस्वत' ।

'यमं राजानं हविषा दुवस्य'

ऋ. १०.१४.१; मै.सं. ४.१४.१६: २३४.७ नि. १०.२०.

(३) आदित्य । दे. 'अहन्' ।

'वैश्वानरो जायमानो न राजा अवातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि'

ऋ. ६.९.१; नि. २.२१.

राज में अग्नि के समान उत्पन्न होता हुआ अंधकारों को दूर करता है । पुनः, दे. 'प्रतारी' ।

आधुनिक अर्थ - राजा, प्रधान, राजपुरुष, क्षत्रिय, युधिष्ठर, इन्द्र, चन्द्रमा ।

(४) सबका स्वामी, (५) तेज, पराक्रम न्याय, विद्या और प्रभाव से दीप्यमान ।

'त्वं राजेन्द्र ये च देवाः'

ऋ. १.१७४.१; शां.श्रौ.सू. १४.२५.५

राजाना - (१) उत्तम गुणों और तेजों से प्रकाशमान, (२) एक दूसरे को अनुरञ्जन करने वाले । दिन रात (३) सूर्य चन्द्र, (४) राजा प्रजा, (५) आत्मा परमात्मा ।

'त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि'

ऋ. ३.३८.६

(६) सर्वलोकेश्वरौ- राजमानौ 'राजानौ' का ही वेद में राजाना' रुप होता है । दे. 'अतूर्तपन्थाः'

राजाश्व - अश्वों में राजा ।

'राजाश्वः पृष्ट्यामिव'

अ. ६.१०२.२

राजासन्दी - (१) राजा के बैठने के लिए आसन ।

'आसन्दी रूपं राजासन्द्यै'

वाज.सं. १९.१६

राजतम - (१) अति प्रेम से देने योग्य ।

'इन्द्राय ब्रह्माणि राततमा'

ऋ. १.६१.१; अ. २०.३५.१; ऐ.ब्रा. ६.१८.५.

(२) दातव्यधन । दे. 'ओह' ।

मैं इन्द्र के दातव्य धनों को देती हूँ ।

रातहव्य - (१) अन्न आदि का दानशील पुरुष ।

'को वामद्या करते रातहव्यः'

ऋ. ४.४४.३; अ. २०.१४३.३

(३) रातानि दत्तानि हव्यानि येन यस्मै वा (जो हव्य देता है या जिनके लिए हव्य दिया जाता है) ।

'यो रातहव्योऽवृकाय धायसे'

ऋ. १.३१.१३

जो रातहव्य अग्नि या परमेश्वर, अहिंसक एवं सबको पालन पोषण करने वाला ।

रातहविः - (१) जो हवि देता है, (२) क्षेत्र में अन्न डालने वाला कृषक ।

'जनाय रातहविषे महीमिषम्'

ऋ. २.३४.८

रातिः - (१) शिष्यों को प्रदान करने योग्य प्रवचन ।

'वि रातिं मर्त्येभ्यः'

ऋ. ८.९.१६; अ. २०.१४२.१

(२) दानशील (३) दानाध्यक्ष नामक राष्ट्र का अधिकारी, (४) दानशील अर्यमा- सा. ।

'धाता रातिः सवितेदं जुषन्ताम्'

अ. ३.८.२; ७.१७.४ वाज.सं. ८.१७; तै.सं. १.४.४४.१; मै.सं. १.३.३८: ४४.१ का.सं. ४.१२; १३.९,१० श.ब्रा. ४.४.४.९

(५) रा + क्तिन् । दे. 'अनर्शरातिः' ।

'भद्रा इन्द्रस्य रातयः'

ऋ. ८.६२.१-१२; ९९.४ अ. २०.५८.२; साम. २.६७०; तै.सं. ७.४. १५.१.

परमात्मा का दान कल्याण कारक होता है ।

(३) धन । दे. 'अस्मे'

'सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु'

ऋ. ७.२५.३

नाना प्रकार की प्रशंसनीय कामनाएं और धन हों ।

पुनः दे. 'उपसेदिम्'

रातिनी - (१) रा + क्त + इनी । दिए होम या नाना पदार्थों से युक्त घृताची ।

'अच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम्'

ऋ. ३.१९.२

(२) सुख देने वाली, (३) बहुतों के दिए दानों या अशिषों को प्राप्त करने वाली ।

'यता सुजूर्णी रातिनी घृताची'

ऋ. ४.६.३

रातिषाच् - (१) दान आदि सत्कर्मों में स्थिति पुरुष।
'त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे'
ऋ. २.१.१३; तै.ब्रा. २.७.१२.६.
(२) दान योग्य वृत्ति या भृति द्वारा सहस्रों को बंधने वाला धनाढ्य राजा।
'ता नो रासन् रातिषाचो वसूनि'
ऋ. ७.३४.२२.
(३) अनेकानेक दान देने वाला।

रातिषाचः - ब.व.। ए.व. में रातिषाच्। (१) दक्षिणा के दान और प्राप्ति के लिए एकत्र होने वाले दाता और प्रतिगृहीता।
'शमभिषाचः शमु रातिषाचः'
अ. १९.११.२

रातिसाच् - (१) दान देने या ग्रहण करने वाला।
'इष्टावन्तो रातिषाचो दधानाः'
अ. १८.३.२०

रामी - रात्रि
'उषा न रामीररुणैरपोर्णुते'
ऋ. २.३४.१२.

रात्रि - (१) समस्त प्राणियों को रमण कराने वाली, (२) समस्त प्राणियों को जीवन देने वाली समष्टि प्रकृति, (३) सोम, (४) वरुण, (५) वारुणी, (६) क्षत्र का रूप रात्रि है (७) प्रजा की पालक राज्य व्यवस्था (८) राज्यशक्ति, (९) समस्त जगत् को अपने भीतर लेने वाली।
सोम रात्रिः - श.ब्रा. ३.४.४.१५.
'यो राजसूयः स वरुणसवः'
तै.ब्रा. २.७.९.१.
'राज्ञ एव राजसूयम्'
श.ब्रा. ५.१.१.१२
'स राजसूयेन इष्ट्वा राजा इति नाम अधत्त'
गो.ब्रा. ५.५.८
'ब्रह्मणो वै रूपमहः क्षत्रस्य रात्रिः'
तै.ब्रा. ३.९.१४.३
'आ रात्रि पार्थिवं रजः'
अ. १९.४७.१
(१) रा (दानार्थक) + त्रिप् = रात्रि। त्रिप् अधिकरण अर्थ में हुआ है। प्रदीयन्तेऽस्यामवश्यायाः (रात में ओस गिरते हैं अतः वे रात मिले दान हुए हैं)।
अथवा - रात्रि उलूक आदि जीवों को रमण करते हैं अतः यह रात्रि है (प्ररमयन्ति भूतानि नक्तञ्चराणि)।
अथवा- रात्रि जीवों को कार्य करने से रोकती है अतः रात्रि है। (उपरमयति इतराणि)।
(१०) रात दे. 'अप्रायि'।
'आ रात्रि पार्थिवं रजः
पितुरप्रायि धामभिः'
ऋ.रिव. १०.१२७.१; अ. १९.४७.१; वाज.सं. ३४.३२; नि. ९.२९.
हे रात्रि, तू अन्तरिक्ष के साथ पृथिवी लोक को अन्धकार से व्याप्त कर देती है।

रात्रि केतु - चन्द्रमा।
'रात्रिः केतुना जुषताम्'
वाज.सं. ३७.२१; ३८.१६ मै.सं. ४.९.८: १२८.१४ श.ब्रा. १४.२ .१.१,२.४१.

रात्री - (१) प्रलय रात्रि, (२) तमोमयी निद्रा, (३) मूर्छा।
'रात्री जगदिवान्यद्धंसात्'
अ. ६.१२.१.
(४) रमण, आनन्द, (५) हर्ष प्रदान करने वाली स्त्री।
'आगन् रात्री संगमनी वसूनाम्'
अ. ७.७९.३
(६) रात्रि। दे. 'आत्'।
'आद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै'
ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७; मै.सं. ४.१०.२; १४७.२; तै.ब्रा. २.८.७.२: नि. ४.११.
तुरत ही (आत्) रात्रि सभी को लिए (सिमस्मै) अन्धकार (वासः) फैला देती है (तनुते)।
(७) रा + त्रिप् = रात्रि, रात्रि + ङीष् = रात्री।
द.ऋ.भू.१८२०

राथजितेयी - (१) रमण साधनों या वेगों पर वश करने वाली स्त्री
(२) काम वेगों पर वश करने वाली स्त्री, (३) आत्म-साधक योगी की ध्यानवृत्ति।
'रथजितां राथजितेयीनाम्'
अ. ६.१३०.१

राथन्तर - रथ, बल या आत्मज्ञान से तरण करने वाला।

'अग्नये गायत्राय राथन्तरायाष्टाकपालः'
वाज.सं. २९.६०

राध्य - आराधना करने योग्य।
'एवा ते राध्यं मनः'
ऋ. ८.९२.२८; अ. २०.६०.१; साम. १.२३२; २.१७४

राध्यः - रथ समूहों का स्वामी।
'एष स्य राथ्यो वृषा'
वाज.सं. २३.१३; श.ब्रा. १३.२.७.५

राद्धिः - (१) फल की प्राप्ति।
'राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिः'
अ. ११.७.२२
(२) कर्म-सिद्धि.
'राद्धिः समृद्धिरव्यृद्धिः'
अ. १०.२.१०

राधः - (१) राध् (संसिद्धि, रांधना)। + असुन् = राधस्। अर्थ है- (१) धन (धन से ही सभी कार्य सिद्ध होते हैं। या धन की सहायता से हम भोजन रांधते हैं अतः राधस् का अर्थ धन हुआ)।
'राध इति धननाम'
'राध्नुवन्ति अनेन'
(२) अथवा राध् (आराधना करना) + असुन् = राधस्। धन की आराधना की जाती है। अतः यह 'राधस्' कहलाया।
'राधस्तन्नो विदद्वसो
उभायाहस्त्या भर'
ऋ. ५.३९.१; साम. १.३४५; २.५२२, नि. ४.४.
हे प्राप्त धन इन्द्र, वह धन हमें दोनों हाथों से लाकर दे।
दे. 'अन्तगस्त्व'।
'प्रजावताराधसा ते स्याम'
ऋ. १.९४.१५; नि. ११.२४

राध - धन। दे. 'निवहिस्'
'स्तोत्रं राधानां पते'
ऋ. १.३०.५; अ. २०.४५.१; साम २.९५०

राध्य - (१) सिद्ध करने वाला, साधक।
'बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या'
ऋ. २.२४.१०
(२) श्रेष्ठ, प्राप्तव्य धन। दे. 'अश्विष्टिमत्'

राधे - द्वि.व.। अनुराधा नक्षत्र।
'राधे विशाखे सुहवानुराधा'
अ. १९.७.३.

राधोदेय - उपासना या आराधना का उपहार देने वाल।
'राधोदेयाय सुन्वते'
ऋ. ८.४.४; साम. २.१०७२

रान्द्रय - हर्षजनक।
'रान्द्र्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः'
ऋ. ६.२३.६

रामः - (१) रमण करने योग्य।
'प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु'
ऋ. १०.९३.१४
(२) कृष्ण वर्ण, (३) शूद्र। दे. 'रामा' (4) काला पशु।
'अधोरामः सवित्रः'
वाज.सं. २९.५८; तै.सं. ५.५.२२.१
(सविता के लिए काला पशु)।
इन दिनों 'राम' शब्द का प्रयोग शूद्र की उपाधि के लिए किया जाने लगा है।

रामयन् - रमाया। दे. 'तुर्वणि'।
'दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि'
ऋ. १.५६.३
दुष्ट शत्रुओं को पकड़ने वाला (दुध्रः) इन्द्र ने दुष्टों को कारागृहों में (आभूषु) रमाया (रामयन्) -सा.
विद्या से पूर्ण कर (दुध्रः) प्रसन्नता से रमण कराने वाला शोभायमान (आभूषु) -दया.

राम्य - (१) ब्रह्म में रमण करने वाला तत्व ज्ञानी, (२) रमण करने योग्य प्रजा।
'आविर्धेना अकृणोद् राम्याणाम्'
ऋ. ३.३४.३; अ. २०.११.३; वाज.सं. ३३.२६
(३) उत्पन्न करने वाला स्तुति पाठक।

रामा - (१) सर्व रमणकारिणी परम दिव्या परमात्म शक्ति।
'अथो अव्यां रामायाम्
शीर्षक्तिमुपबर्हणे'
अ. १२.२.९
(२) कृष्णजातीया स्त्री, काली स्त्री, (३) शूद्रा लिखा भी है -
अग्निं चित्वा न रामामुपेयात् रामा रमणाय उपेयते न धर्माय कृष्ण जातीया। एतस्मात्

सामान्यात् ।

'अग्निहोत्र कर कृष्णा स्त्री अर्थात् शूद्रा से संगमन न करें । शूद्रा संगमन के लिए न कि धर्म के लिए है । सामान्यतः राम शब्द कृष्ण का वाचक है ।

इसी से 'अधस्तात् रामः' का अर्थ 'अधस्तात् कृष्णः' (अत्यन्त काला) किया गया है ।

पुनः-

'अधोरामः सवित्रे ' का अर्थ हुआ- 'काला पशु सविता के लिए'

अधस्तात् का अर्थ 'अत्यन्त' है क्योंकि सूर्य के नीचे ढलने पर अन्धकार होता है (अधस्तात् बेला या तमः भवति) ।

आधुनिक अर्थ - (१) सुन्दरी, नवयुवती, प्रियतमा, स्त्री, शूद्रा स्त्री ।

(४) कुष्ठ और पलित रोगों में काम आने वाली एक ओषधि-आरामशीतला, गृहकन्या, रोचना और लक्ष्मणा भी इसके नाम हैं । गृहकन्या या घृतकुमारी पित्त, कास, श्वास और कुष्ठ का नाशक है ।

आरामशीतला दाहदोष, विस्फोट और व्रण का नाशक है ।

रामायणी - (१) 'रामा ' नामक रक्तनाडी में छिपी रहने वाली गण्डमाला ।

'असूतिका रामायणी '

अ. ६.८३.३

राम्या - (१) रात्रि, (२) रमण करने योग्य स्त्री ।

'या भानुना रुशता राम्यासु '

ऋ. ६.६५.१

'स इधान उषसो राम्या अनु '

ऋ. २.२.८

रायत् - (१) भोंकने तथा भयङ्कर चीत्कार करने वाला कुत्ता या शत्रु ।

'जम्भयतमभितो रायतः शुनः '

ऋ. १.१८२.४

रायः - (१) उत्तम ऐश्वर्य, (२) लौकिक मणि, (३) मुक्ता आदि पदार्थ ।

'रयिश्च मे रायश्च मे '

वाज.सं. १८.१०; तै.सं. ४.७.४.१; मै.सं. २.११.४:१४१.१८;का. सं. १८.९.

रायस्कामः - (१) धन और ऐश्वर्य की कामना करने वाला ।

'तमु त्वा गोतमो गिरा
रायस्कामो दुवस्यति '

ऋ. १.७८.२

रायस्पोष - धन समृद्धि को बढ़ाने वाला ।

'रायस्पोषमौद्भिदम् '

ऋ.खि. १०.१२८.२; वाज.सं. ३४.५०; हि.गृ.सू. १.१०.६; आप.मं. पा. २.८.१.

रायस्पोषवनिः - धनैश्वर्य से पुष्टि देने वाली ।

'सिंह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा '

वाज.सं. ५.१२; श.ब्रा. ३.५.२.१२

रारण - रराण, रमे, (रमण करता हूँ) । यह 'रण् ' धातु 'रम् ' धातु की तरह रमणार्थक है । वर्ण और काल के व्यत्यय से 'रारण' बना है । लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग है ।

'नाहमिन्द्राणि रारण
सख्युर्वृषाकपेर्ऋते
यस्येदमप्यं हविः
प्रियं देवेषु गच्छति
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः '

ऋ. १०.८६.१२; अ. २०.१२६.१२; तै.सं. १.७.१३.२; का.सं. ८.१७; नि. ११.३९

इन्द्र अपने से विभक्त शक्ति इन्द्राणी के प्रति कहते हैं-

हे इन्द्राणी, मैं अपने मित्र वृषाकपि के बिना सुख का अनुभव नहीं करता या नहीं रमता (न रराण) जिस वृषाकपि को उद्दिष्ट कर यह प्रीतिकर जल से संस्कृत चरु, पुरोडाशादि हवि सभी देवता बड़ी श्रद्धा से ग्रहण करते हैं (हविःदेवेषु गच्छति) ।

अर्थात्, मेरा सखा मनुष्य वृषाकपि नहीं अपितु स्वयं विष्णु है (हरविष्णू वृषाकपी) । यह बात मैं इन्द्र जो सब से बढ़कर हूँ कहता हूँ । मैं वृषाकपि से भिन्न नहीं रह सकता ।

रारन्धि - (१) संयत कर या संयमी बना । दे. 'असुनीति' ।

'रारन्धिनः सूर्यस्य संदृशि '

ऋ. १०.५९.५; नि. १०.४०

हे प्राण वायु, हमें संयत कर जिस से हम सूर्य का दर्शन करते रहें ।

(२) भृशं रन्धय, संसाधय, वशे गमय (खूब

रांध, खूब साध, खूब वश में ला) ।
रध् धातु हिंसा, संराधन और वश करना अर्थ में आया है ।
'रध हिंसा संराध्योः'
दे. 'असुनीति'
(३) रमण कर ।
'सोम रारन्धि नो हृदि'
ऋ. १.९१.१३
हे सोम, ऐश्वर्यवान् परमेश्वर या शुक्र, तू हमारे हृदय में रमण कर (रारन्धि) ।

रारहाण - (१) शीघ्र भ्रमणशील (अश्व) रंह् 'गत्यर्थक' धातु से सम्पन्न । दे. 'जू' ।
'आ त्वा जुवो रारहाणा अभि प्रयः'
(२) ज्ञान प्रदान न करता हुआ-आचार्य ।
'अश्वासो न रथ्यो रारहाणाः'
ऋ. १.१४८.३

रावा - आज्ञा देने वाला ।
'रावासि गभीरमिममध्वरं कृधि'
वाज.सं. ६.३०.

राशि - (१) समूह ।
'वस्वो राशिमभिनेतासि भूरिम्'
ऋ. ४.२०.८
(२) राशि, (३) जनसंघ का प्रतिनिध ।
'वसो राशि रजाश्व'
ऋ. ६.५५.३

राष्टि - प्रकाशित होता है ।
'प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः'
ऋ. १.१०४.४
शूरवीर राजा धनैश्वर्यों से पूर्ण समृद्ध प्रजाओं के साथ (पूर्वाभिः) राज्य करता है और राष्ट्र में प्रकाशित होता है (राष्टि) और खूब अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है (प्रतिरते) ।

राष्ट्रदा - (१) राष्ट्र को देने में समर्थ प्रजा या जनता ।
'वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदाः'
वाज.स. १०.२; श.ब्रा. ५.३.४.५

राष्ट्रदिप्सु - राष्ट्र या जनपद पर घात लगाने वाला ।
'ये चास्य राष्ट्रदिप्सवः'
अ. १०.३.१६

राष्ट्रभृत् - (१) अपराधी पुरुषों से बचाकर राष्ट्र का पालन करने वाली संस्था ।
'उग्रं पश्ये राष्ट्रभृत् किल्विषाणि'
अ. ६.११८.२
(२) राष्ट्र का रक्षक ।
'उग्रं पश्या राष्ट्र भृतो ह्यक्षाः'
अ. ७.१०९.६

राष्ट्रभृत्य - राष्ट्र का भरण पोषण ।
'अभिभूयाय त्वा राष्ट्रभृत्याय'
अ. १९.३७.३

राष्ट्री - वि. । (१) ईश्वरा, (२) स्वामिनी । दे. 'अविचेतन'
'यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि
राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा'
ऋ. ८.१००.१०; तै.ब्रा. २.४.६.११; नि. ११.२८
जब माध्यमिक वाक् शब्द रूपी गर्जन लक्षण वाली अविज्ञातार्थ ध्वनि करती है माध्यमिक देवों की इश्वरा तथा लोक को प्रसन्न करने वाली वर्षा बरसाने लगती है ।
अथवा,
जब अविज्ञात अर्थों को बतलाने वाली, विद्वान् लोगों की स्वामिनी, प्रसन्नता देने वाली दिव्य वाणी प्राप्त होती है ।
(३) राष्ट्र की स्वामिनी शक्ति ।
'अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्'
ऋ. १०.१२५.३; अ. ४.३०.२.

रास् - धा. । प्रदान करना ।
'अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा'
अ. १९.७.४.

रासत् - (१) रास् + शतृ = रासत् । अर्थ-देता हुआ अथवा, (२) रासतु ददातु (दे) । दे. 'रा' (दानार्थक धातु के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप) । 'सिमं बहुलं लेटि' से सिप् का आगम । रास् धातु देना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । दे. 'अभ्यानट्'
'स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्राः
धियं धियं सीषधाति प्र पूषा'
ऋ. ६.४९.८; वाज.सं. ३४.४२; तैसं. १.१.१४.२; नि. १२.१८
वह पूषा धर्म्य या अभियूजित आगमन वाले धनों को देता हुआ हमारे प्रत्येक कर्म को प्रसाधित करें ।

रासभ - (१) मार्गोपदेश करने वाला ।

'उपास्थाद् वाजी धुरि रासभस्य'
ऋ. १.१६२.२१; वाज.सं. २५.४४; तै.सं. ४.६.९.४.
(२) शब्द और दीप्ति से युक्त अग्नि ।
'युञ्जाथां रासभं युवम्'
वाज.सं. ११.१३; तसं. ४.१.२.१; ५.१.२.१; मै.सं. २.७.२: ७५ .३; ३.१.३: ३.१४; का.सं. १६.१; १९.२; श.ब्रा. ६.३.२.३; आप. श्रौ.सू. १६.२.२.
(३) शब्दकारी, (४) यन्त्राग्नि, (५) अश्व, (६) मुख्य प्राण । (७) शब्दायमान-दया.
(८) अन्तर्नाद करने वाला परम उपदेष्टा आत्मा, (९) उपदेष्टा, आज्ञापक (१०) गर्दभ ।

रासमाना - प्रदान करती हुई ।
'वसूनि नो वसुदा रासमाना'
अ. १२.१.४४.

रास्ना - बागडोर ।
'अदित्यै रास्वासि'
वाज.सं. १.३०; ११.५९; ३८.१,३; तै.सं. १.१.२.२; ४.१.५.४; मै .सं. १.१.२: २.२; १.१.३: २.७; २.७.६: ८१.३; ३.१.७:८.१९; ४.१.२: ३.१४.; ४.९.७: ८२७.५; का.सं. १.२; १६.५; १९.६; ३१.१; श.ब्रा. १.३.१.१५; ६.५.२.१३; १४.२.१.६; ८; तै.ब्रा. ३.२.२.७ ; तै.आ. ४.८.१; ५.७.१; आप.श्रौ.सू. १.४.१०; १२.७; १५.९.३; १६.५.१.

रास्पिन् , रास्पिन - (१) रापिन् रासिन् (रास्पिन नो रास्पी रपत्तेः वा रसतेः वा) । रप् या रस् धातु से रास्पिन् बना है । यह यास्क का मत है ।
रप् + घञ्, रस् + घञ् = रास । राप में 'स' का और रास के बाद 'प' का आगम होने से रास्प बना । अर्थ है- (१)उदक, (२) स्तोत्र
रास्प + इनि = रास्पिन् (उदकवान्) ।
रस् धातु ध्वनि अर्थ में आया है । उदक और शब्द दोनों ध्वनि युक्त हैं । अतः रास्पी का अर्थ हुआ (१) मेघ, (२) स्तोता ।
उनके मन से जो रमणशील या रसनशील है वह रास्पी है ।
रास्पिन् + अच् (मत्वर्थीय) = रास्पिन । अर्थ है-(१) मेघवान् (२) स्तोता सम्बन्धी (३) वक्ता दया. ।
'उत त्या मे यशसा श्वेतनायै
व्यन्ता यान्तौशिजो हुवध्यै ।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वम्
प्र मातरा रास्पिनस्यायोः'
ऋ. १.१२२.४
वे अश्विनीद्वय भी (उत त्या) मेरे अन्न या धन से तृप्त (मे यशसा) श्वेत्या उषा का काल आने पर (श्वेतनायै) पुरोडाश का भोजन करे (व्यन्ता) तथा सोमरस का पान करे (पान्ता) । ऐ मेधावी ऋत्विजो (उशिजः), उन अश्विनों का आह्वान करें (आहुवध्यै) और आप लोगों से मैं यह भी निवेदन करता हूँ (वः प्र) कि आप अपां नपात् नामक देव को भी इसमें भागी बनावें (अपां नपातम् कृणुध्वम्) तथा सर्वभूत निर्मात्री द्यौ और पृथ्वी को भी भागी बनावे (प्रमातरा) ।
प्रकृष्ट ध्वनि युक्त वृष्टयुदक वाले मेघ की स्तुति करने वाले के पुत्र की प्राप्ति के निमित्त या मेघवान् इन्द्र की प्राप्ति के लिए (रास्पिनस्य आयोः) ।
स्वा.दयानन्द का अर्थ-वे यशस्वी तत्वदर्शी रक्षक और माता की तरह स्नेह करने वाले अध्यापक तथा उपदेशक (मातरा) मेरे और तुम्हारे लिए प्रदीप्त विद्या को (मे वः श्वेतनायै) देने के लिए (हुवध्यै) प्रवृत्त हो (प्र) । हे विद्याभिलाषी मनुष्यो, (औशिजः) वक्ता मनुष्य की (राष्पिनस्य आयोः) सन्तानों का संरक्षण तुम भली भांति करो (प्रकृणध्वम्) ।

रास्पिरः (१) यः दानानि स्पृणाति -दया. (२) धनैश्वर्य को पूर्ण करने वाला वैश्य जन ।
'विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन्'
ऋ. ५.४३.१४

रास्व - प्रदान कर । दे. 'मर्तभोजन'
'रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनम्'
ऋ. १.११४.६

रि - धा. । परे हटाना, पार करना ।
'शुभा यासि रिणन्नपः'
अ. १३.१.२१.

रिक् - तरफ ।
'न घा त्वद्रिगप वेति मे मनः'
ऋ. १०.४३.२; अ. २०.१७.२.

रिक्तकुम्भ - (१) खाली घड़ा, (२) खाली घड़े के समान निस्सार बांस, (३) क्षुद्र पुरुष, (४) तुच्छ बात ।
'सर्वैमें रिक्तकुम्भान्'

अ. १९.८.४

रिक्थम् - रिचिर, (रिच्) + थ = रिक्थ। जिसका पृथक् करण हो वह रिक्थ है। द्रव्यं वित्तं .... *रिक्थमृक्थं धनं वसु-अमर*

अंग्रेजी में riches धन का वाचक है।

अर्थ है- (१) धन, (२) पैतृकधन। दे. 'जामि')

'न जामये तान्वो रिक्थमारैक्'

ऋ. ३.३१.२; नि. ३.६.

बहन के लिए बेटा पैतृक धन न दे।

रिख - लिख।

'आरिख किकिरा कृणुः

ऋ. ६.५३.७,८

रिणन् - (१) व्यापता हुआ, (२) गति देता हुआ।

' यद् देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः '

ऋ. २.२२.४; साम. १.४६६

देदीप्यमान सूर्य या अग्नि तत्व के बल से, (देवस्य शवसा) प्राण या वायु तत्व को (असुम्) गति देता हुआ (रिणन्) जल तत्व में गति उत्पन्न करता है (अप्रः प्र अरिणाः)।

अथवा,

अग्नि तत्व के बल से जलों में व्याप कर प्राण तत्व को प्रकट करता है।

अथवा,

मेघ के विद्युत या तेज के बल से वृष्टि द्वारा जल को लाकर समस्त जीवों को जल प्राप्त कराता है।

(३) आते हैं - दुर्ग, (४) ले जाता हुआ-ज.दे.श.

'रि' धातु आना, लाना, या ले जाना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

हिन्दी के लेना और लाना का मूल 'रि' धातु ही है।

दे. 'कुत्स,' दशस्यन्' दंसयः

'यत्रा दशस्यन्नुषसो रिणन्नपः कुत्साय मन्वन्नह्यश्च दंसयः '

ऋ. १०.१३८.१

जिस मेघ के विदीर्ण होने पर (यत्रा) माध्यमिक देव उषा (उषसः) मेघ में स्थित जलों को देती है (अह्य अपः दशस्यन्) और वे जल पृथ्वी पर कृषक के कृषि कर्म को सफल करने के लिए (कुत्साय दंसयःमन्मन्) आते हैं (रिणन्) - दुर्ग।

हे सूर्य, तू मनुष्य के लिए उषा काल को उदय करते हुए (उषासः दशस्यन्) और ओस जल को ले जाते हुए (अपः रिणन्) परमात्मा के स्तोता के लिए (कुत्साय) आत्ममन से (मन्मना) एवं पाप नाशक श्रेष्ठ कर्मों को जतलाते हुए (अह्य दंसयश्च)। - ज.दे.श.

रिणाति - (१) मारता है-सा. (२) ले जाता है-दया.। दे. 'क्रिविर्दती '

'रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा '

ऋ. १.१६६.६

मरुतों का आयुध पशुओं को (पश्वः) उस तरह से मारता है(रिणाति) जैसे सम्यक् प्रकार से प्रयुक्त (सुधिता) बढ़ी हुई हिंसा भावना (बर्हणा) पशुओं को -सा.।

विज्ञान में विद्युत बहुत मात्रा में सम्पादित की हुई (बर्हणा सुधिता) पशुओं की तरह ले जाती है (पश्व इव रिणाति) - दया.।

रिणीतम् - चलाओ, पालन करो।

'सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् '

ऋ. १.११७.११

प्रजावर्ग को पालन करने वाली नीति को (निश्पलाम्) सत्य स्वभाव न्यायी हो अच्छी तरह चलाओ (संरिणीतम्) या पालन करो। -दया.।

रित् - सब ओर जाने वाली गाड़ी।

'यदिन्द्रो अनयद् रितः '

ऋ. ६.५७.४; साम. १.१४८.; का.सं. २३.११.

रिप् - कष्ट,

'रिपः काश्चिद् वरुणध्रुतः सः '

ऋ. ७.६०.९

(२) पृथिवी, (३) पाप।

'पाति प्रियं रिप्रो अग्रं पदं वेः '

ऋ. ३.५.५; ४.५.८

(४) पाता। दे. शुचन्।

(४) माता।

'रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः '

ऋ. १०.७९.३

भूमि के निम्न प्रदेश में (रिप उपस्थे) बार बार लताओं का आस्वादन करते हुए (रिरिह्वांसम्)... देखा -सा.।

माता की गोद में दूध पीते हुए बालक को (रिप्रः उपस्थे अन्तः रिरिह्वांसम्) ।

रिप्त – (१) प्राप्त, (२) क्रूर कर्म ।
'यदत्र रिप्तं रसिनः सुतस्य'
वाज.सं. १९.३५; का.सं. ३८.२; श.ब्रा. १२.८.१.५; तै.ब्रा. २.६.३.२; आश्व.श्रौ.सू. ३.९.५.
(३) लिप्त, लिपटा हुआ ।
'यद्वास्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति'
वाज. सं. २५.३२; ऋ. १.१६२.९;

रिप्र – रिप् + र = रिप्र = (१) दुःख देने वाला (२) यज्ञ, (३) मल, (४) भाव, (५) पाप ।
रपो रिप्रम् इति पापनामनी भवतः
'विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीः'
ऋ. १०.१७.१०; अ. ६.५१.२; वाज.सं. ४.२; मै.सं. १.२.१: १०.२; ३.६.२: ६१.८; का.सं. २.१; श.ब्रा. ३.१.२.११.
रिप्रमधेध्यम् (जो अमेध्य है वह रिप्र है) ।

रिपु – रिप् + उ = रिपो । (१) पापी, शत्रु ।
'अन्तिचित् सन्तमह
यज्ञं मर्त्यस्य रिपोः'
ऋ. ८.११.४
'न यं रिपवो न रिषण्यवः
गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति'
ऋ. १.१४८.५
जिस प्रकार काष्ठादि के गर्भ में लगे अग्नि को बड़े आन्धी के झकोरे भी नहीं नष्ट कर सकते उसी प्रकार जिस ब्रह्मचारी को सावित्री के गर्भ में या विद्या के ग्रहण काल में विद्यमान अग्निस्वरूप तेजस्वी को न भीतर शत्रु (रिपवः) और न हिंसा करने वाली (रिषण्यवः) आत्मा की नाशक प्रवृत्तियां (रेषणाः) विनाश करें (रेषयन्ति) ।

रिप्रवाह – (१) पापों को फैलाने वाला या धारण करने वाला पुरुष ।
'यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः'
ऋ. १०.१६.९; अ. १२.२.८; वाज.सं. ३५.१९
(२) पाप ढोने वाला पुरुष ।

रिफि – (१) विनाश करना ।
'सा पशून् क्षिणाति रिफती रुशती'
अ. ३.२८.१

रिफ् – (१) युद्ध (२) निन्दा, (३) हिंसा अंग्रेजी का rift शब्द 'रिफ्' धातु से सम्बन्ध रखता है जिसका अर्थ मनमुटाव, झगड़ा होता है । दे. 'अरेपस्'

रिफती – विनाश करती हुई । दे. 'रिफ' ।

रिभ् – (धा.) । स्तुति करना ।
'उषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः'
ऋ. ७.७६.७

रिरिक्वान् – (१) त्याग करने वाला, (२) देह या करादि धन का त्यागी ।
'रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम्'
ऋ. ४.२४.३
'रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः
सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः'
ऋ. १.७२.५
मित्र मित्र के लिए जैसे देखते ही (निमिषि) अपने शरीर तक को आलिंगन द्वारा त्याग देता है ('रिरिक्वासः) ।

रिरिक्षुः – हिंसाकारी शत्रु ।
'विश्वाद् रिरिक्षोरुत वा निनित्सोः'
ऋ. १.१८९.६

रिरिचे – (१) अधिक होता है, बढ़ जाता है । 'रिच्' धातु के लिट् प्र.पु.ए.व. में लट् के अर्थ में प्रयोग । दे. 'तु' ।
'प्र ते महना रिरिचे रोदस्योः'
ऋ. ६.२४.३
तेरी महिमा द्यौ और पृथिवी से अधिक है ।

रिरिह्वान् – बार बार आस्वादन करता हुआ । दे. 'शुचन्तम्' 'रिप्' ।

रिश् – (१) स्वाद लेना । दे. 'रिशन्ताम्' । (२) हिंसार्थक धातु । दे. 'रिशाद्स' 'रिशा' ।

रिशन्ताम् – स्वाद लें । दे. 'अवस'
'ऊर्जस्वती रोषधीरारिशन्ताम्'
ऋ. १०.१६९.१; तै.सं. ७.४.१७.१.
बलदायिनी औषध तृणों का घूम घूम कर गायें स्वाद लें ।

रिश्य – हिंसक जन्तु ।
'रिश्यस्येव परीशासम्'
अ. ५.१४.३

रिष्यपदी – मृग की तरह पैरों से चंचल ।
'रिष्यपदीं वृषदतीम्'
अ. १.१८.४.

रिशा - (१) जंग, (२) हिंसक, (३) आयुध। 'रिक्ष' धातु-हिंसार्थक है। जंग भी धातु को नष्ट करता है। दे. 'आप्य'।

(४) रोग, (५) रोग, । दे. 'रिशादस्'

रिशादस् - (१) रिश (हिंसार्थक) के ण्यन्त में 'रेशयत् आसिन्' का रिशादस् हो गया। 'रेशयदासिन्' (रेशयतां हिंसयितॄणाम् असिता) (१) हिंसकों को मारने वाला। दे. 'आप्य'।

'अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसः
देवासो अस्त्याप्यम्'

ऋ. ८.२७.१०; नि. ६.१४.

हे हिंसकों को मारने वाले देवो, आप लोगों की जाति समान है और आप में बन्धुत्व है (आप्यम्)।

(२) धातुओं को या जंग लगाकर खाने वाला ओषजन वायु जिसे वरुण कहा गया है।

(३) वरुण देवता का विशेषण जो वरुण हिंसकों को मारने वाला समझा गया है।

दे. 'मित्र'।

'मित्रं हुवे पूतदक्षं
वरुणञ्च रिशादसम्

ऋ. १.२.७; साम. २.१९७; वाज.सं. ३३.५७.

(४)दुर्ग के मत से इसका अर्थ आयुधों को चलाने वाला है (रेशयत आयुधानि ये अस्यान्ति ते) (४) कुछ विद्वान् यास्क के 'रेशयासिनः' को 'रेशयदारिणः' पढ़ते हैं। और इसका अर्थ हिंसकों को विदीर्ण करने वाला करते हैं।

रिशादा - हिंसा या प्राणापहरण करने वाले कारणों के विनाशक प्राण और अपान मित्रावरुण।

'मित्र एनं वरुणो वा रिशादाः'

अ. २.२८.२

रिष् - (१) नष्ट होना।

'नू चित् स भ्रेषते जनो न रेषन्'

ऋ. ७.२०.६

(२) हिंसक। दे. 'अहिर्बुध्न्य'।

'मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धात्'

ऋ. ५.४१.१६; ७.३४.१७; नि. १०.४५.

अन्तरिक्षस्थ मेघ हमारे हिंसक को न दें।

(३) रिष् + क्विप् = रिष्। अर्थ है- पाप-दया. (४) बन्धन-सा.। दे. 'निचुङ्कुण' 'पुरुरावन्'

'पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि'

वाज.सं. ३.४८; ८.२७;श.ब्रा. २.५.२.४७; ४.४.५.२२; १२.९.२.४.

हे पूज्यप्रभो, मुझे अनेक प्रकार संताप देने वाले पाप से (पु रुराव्णः रिषः) रक्षा कर- दया.।

हे अवभृथ स्नान या हे वरुण, मुझे संतापदायी संसार के (पुरुराव्णः) बन्धन से (रिषः) रक्षाकर (पाहि)

(४) रेषण, हिंसक। (५) शत्रुओं का घातक आक्रमण।

'यं बाहुतेव पिप्रति
पान्ति मर्त्यं रिषः अरिष्टः सर्व एधते'

ऋ. १.४१.२

जिस वीर या धर्मात्मा पुरुष की बाहुएं जिस प्रकार शरीर की रक्षा करती हैं उसी प्रकार प्रबल सेनादल पालन करते हैं और घातक शत्रु के आक्रमण से (रिषः) बचाते हैं (पान्ति) वह किसी प्रकार हिंसित या पीड़ित न होकर सब अंगों सहित बढ़ता है (अरिष्टः सर्व एधते)।

रिषण्यत - दुःखी बनाओ। दे. 'उक्थ'

'सखायो मा रिषण्यत'

ऋ. ८.१.१; अ. २०.८५.१; साम. १.२८२; २.७१०; कौ.ब्रा. २३.७.

हे मनुष्यो, अपने आप को दुःखी मत बनाओ।

रिषण्यु - हिंसा करने वाली, नाश करने वाली। दे. 'रिपु'।

'न यं रिपवो न रिषण्यवः'

ऋ. १.१४८.५;

रिषत् - हिंसक शत्रु। दे. 'घृतहवन' 'दीदिवाः'।

'घृताहवन दीदिवः
प्रति ष्म रिषतो दह'

ऋ. १.१२.५;

रिषयधी - (१) हनन करना,

(२) नाश, दे. 'जूर्णि'

रिषयध्यै - मारने या वध करने के लिए।

'स्वयं सा रिषयध्यै'

ऋ. १.१२९.८

जो शक्ति या सेना हमें हिंसित करने के लिए।

रिष्ट - (१) चोट खाया हुआ अंग।

'यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्तम'

अ. ४.१२.२.

(२) लकड़ी ।
'तक्षा रिष्टं रुतं भिषक्'
ऋ. ९.११२.१
(३) रिष् + क्त = रिष्ट । अर्थ-टूटा पदार्थ ।
नानानं वा उ नो धियो
वि व्रतानि जनानाम्
तक्षा रिष्टं रुतं भिषक्
ब्रह्मा सुन्वन्तमिच्छति
इन्द्रायेन्दो परि स्रव'
ऋ. ९.११२.१
हम लोगों के विभिन्न कर्म हैं (नः जनानाम् विव्रतानि) और बुद्धियां भी भिन्न भिन्न हैं (वा उधियः नानानम्) । जैसे बढ़ई टूटे पदार्थ को, वैद्य रोगी को और ब्राह्मण यज्ञकर्त्ता को चाहता है वैसे ही हो ऐश्वर्यधाम (इन्दो) ऐश्वर्य के लिए (इन्द्राय) ऐश्वर्य की वर्षा कीजिए (परिस्रव) ।

रिह् - धा. । प्राप्त करना, पूजा करना स्तुति करना चाटना, अर्चना करना ।
'क्रतुं रिहन्ति मधुनाभ्यञ्जते'
ऋ. ९.८६.४३; . १८.३.१८; साम. १.५६४; २.९६४

रिहन्ति - अर्चयन्ति, पूजयन्ति, स्तुन्वन्ति (अर्चना, पूजा या स्तुति करते हैं) । रिह् धातु स्तुति, रजा या अर्चा अर्थों में आया है ।
यास्क ने - रिहन्ति, लिहन्ति स्तुन्वन्ति, वर्धयन्ति, पूजयन्ति इति वा ऐसा कहा है ।
'शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति'
ऋ. १०.१२३.१; वाज.सं. ७.१६; तै.सं. १.४.८.१; मै.सं. १.३.१०: ३४.२; का.सं. ४.३; श.ब्रा. ४.२.१.१०; नि. १०.३९.
मेधावी विप्र इस मध्यस्थानीय विद्युत् को शिशु के सदृश स्तुति करते हैं ।
आजकल रेहना-(रन्दा देना), रेह (एक प्रकार की मिट्टी जिससे कपड़ा साफ किया जाता है) और रेहल जिस पर पुस्तकें रखी जाती हैं - इन शब्दों का रिह् धातु से सम्बन्ध विचारणीय है ।

रिहाणे - रिह् (चाटना) + शानच् + टाप् = रिहाणा । द्वि.व. में 'रिहाणो' (१) दो गायों का विशेषण ।
'गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे'
ऋ. ३.३३.१; नि. ९.३९
शुभ्र प्रसूता दो गाएं जिस प्रकार अपने बछड़े को चाटने की लालसा से दौड़ती हैं ।
(२) उत्तम भोजनादि का स्वाद लेते हुए,
(३) चाटते हुए,
(४) परस्पर आलिंगन या प्रेमादि करते हुए स्त्री पुरुष ।

रीत्यापा - (१) जल प्रवाह कराने वाले वायु और विद्युत् , (२) ज्ञान, गति और ऐश्वर्य की प्राप्ति करने वाले मित्रावरुण ।
'वृष्टिद्यावा रीत्यापा'
ऋ. ५.६८.५; साम. २.८१७; मै.सं. ४.१३.९: २१२.२; श.ब्रा. १.९ .१.६; तै.ब्रा. ३.५.१०.२;

रीति - री + क्तिन् । (१) धारा ।
'तामस्य रीतिं परशोरिव प्रति'
ऋ. ५.४८.४
(२) बहती नदी, (३) रीति, (४) गति, (५) नीति,
'महीव रीतिः शवशासरत् पृथक्'
ऋ. २.२४.१४; मै.सं. ४.१४.१०: २३०.१३; तै.ब्रा. २.८.५.२.

रीरधः - प्रेरित कर । दे. 'जिहीडान' 'हत्नु' 'हृणान')
'मा नो वधाय हत्नवे
जिहीडानस्य रीरधः'
ऋ. १.२५.२
हे वरुण, अज्ञान में अनादर करने वाले पुरुष के वध करने और किसी पर आघात पहुंचाने के लिए हमें मत प्रेरित कर ।

रीरिषत् - नष्ट करो ।
'मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः'
ऋ. १.८९.९; वाज.सं. २५.२२; मै.सं. ४.१४.२: २१७.४; का.सं. ३५.१; गो.ब्रा. १.४.१७; श.ब्रा. २.३.३.६; आप.श्रौ.सू. १४.१६.१; आप.म.पा. २.४.३; हि.गृ.सू. १.४.१३.
हमें उस आयु तक पहुंचाने के लिए (आयुःगन्तोः) बीच बीच में हमारी आयु को नष्ट मत होने दो (मा रीरिषत) ।

रीरिषः - हिंसा करें । दे. 'क्ष्मा' ।
'मा न स्तोकेषु तनयेषु रीरिषः'
ऋ. ७.४६.३; नि. १०.७.
मेरे पुत्र पौत्र रूपी सन्तानों में हिंसा न करें ।

रीषत् – (१) हिंसा करने वाला जीव ।
'मा रीषते सहसावन् परा दाः'
ऋ. १.१८९.५;
(२) हिंसा करने वाला व्याघ्रादि पशु ।
'पाहि रीषत उत वा जिघांसतः'
ऋ. १.३६.१५

रीषन् – एक दूसरे को मारने वाला ।
'द्रुहे रीषन्तं परिधेहि राजन्'
ऋ. २.३०.९

रुक्म – रुच् + म = रुक्म ।
अर्थ
– (१) सुपर्ण –सा. (२) प्रताप–दया । दे. 'जज्झती'
'आ रुक्मैरा युधा नरः
ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत'
ऋ. ५.५२.६
वृष्टि के नेता (नरः) महान् मरुतों ने (ऋष्वा मरुतः) सुवर्ण–निर्मित आयुधों तथा शक्तियों को मेधों के प्रति छोड़ा (रुक्मैः आयुधा ऋष्टीः असृक्षत) । – सा. ।
हे बड़े मनुष्यो (ऋष्वानरः), अपने प्रतापों से शस्त्रों एवं अस्त्रों का निर्माण करो (रुक्मैः आयुधा ऋष्टीः आ असृक्षत)– दया. ।
(३) रुचिकर ।

रुक्म प्रस्तरण – सुनहले बिछौने से सजा हुआ ।
'रुक्म प्रस्तरणं वह्यंम्'
अ. १४.२.३०

रुक्म वक्षसः – रुच् + मनिन् = रुक्म । अर्थ–सुवर्ण, रुचिकर । रुक्मवक्षस् का अर्थ है – (१) सुवर्ण की छाती वाला या रुचिकर छाती वाला । यह शब्द मरुतों के विशेषण के रूप में बहु वचन में ही प्रयुक्त हुआ है ।
सायण ने इसका अर्थ –
'रुक्मालङ्कृत वक्षस्काः'
(सुवर्ण से अलंकृत वक्षवाला) किया है ।
(१) रुचिकर छाती वाले मरुद्गण का विशेषण । दे. 'वातासः'
'अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्मवक्षसः'
ऋ. १०.७८.२; नि. ३.१५.
जो मरुद्गण (ये) दीप्तिमानता से सुन्दर (भ्राजसा) तथा रुचिर छाती वाले (रुक्म वक्षसः) है...

रुकमवक्षसः मरुत – दीप्तिमान विद्युत को धारण करने वाले वायुगण ।
'यद् युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसः'
ऋ. २.३४.८

रुक्मी – प्रशस्त कर्म या गुणों से युक्त ।
'रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु'
ऋ. १.६६.६

रुक्ष – (१) कान्तिमान, (२) उत्तम पद पर आरूढ़ ।
'वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत्'
ऋ. ६.४.७

रुग्ण – भंग होना ।
'विदद् यदी सरमा रुग्णमद्रेः'
ऋ. ३.३१.६; वाज.सं. ३३.५९; मै.सं. ४.६.४: ८३.१०; का.सं. २७. ९; तै.ब्रा. २.५.८.१०; आप.श्रौ.सू. १२.१५.६.

रुच् – (१) प्रीति, (२) दीप्ति ।
'गोश्वश्वेषु या रुचः'
वाज.सं. १३.२३; १८.४७; तै.सं. ४.२.९.४; ५.७.६.३; मै.सं. २. ७.१६: ९९.१; का.सं. १६.१६

रुचानः – (१) कान्ति से चमकता हुआ –सूर्य, (२) गुरु ।
'अयं रोचयदरुचो रुचानः'
ऋ. ६.३९.४

रुचिः – (१) क्रान्ति, (२) ईश्वर ।
'रुचिरसि रोचोऽसि'
अ. १७.१.२१.

रुजाति – रुज् (भग्न करना) के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । दे. द्यावापृथिवी ' ।
'श्रृणाति वीडु रुजति स्थिराणि'
ऋ. १०.८९.६
इस परमात्मा का मन्यु मेघ वृन्दों या कठोर चेताओं को (स्थिराणि) भग्न करता है । (रुजति) ।

रुजन् – रुग्णान् कुर्वन् (रुग्ण करता हुआ) । 'रुज् शतृ = रुजत् । रुज धातु रोगी करना या पराजय करने के अर्थ में आया है । अतः अर्थ है– (१) पराजय करता हुआ (२) रुग्ण करता हुआ ।

रुजाना – रुज् (रुग्ण करना, भग्न करना, पराजय करना) + शानच् (वेद में व्यत्यय से) + टाप् = रुजाना । (१) 'रुजाना नद्यो भवन्ति'
(रुजाना नदियों का नाम है) नदी तटों को भग्न

करती है । लोक में रुजती होता है । रुज + शतृ + ङीष् = रुजती ।

'अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे
महावीरं तुविबाधमृजीषम्
नातारीदस्य समृतिं वधानाम्
सं रुजानाः पिपिष इन्द्र शत्रुः '

ऋ. १.३२.६

वृत्रासुर, मेघ या असुर ने (इन्द्रशत्रुः) दुर्मद, मदमत्त या वचन मात्र से वीर (दुर्मदः) योद्धा रहित के सदृश (अयोद्धा इव) महा विक्रान्त (महावीरम्) अनेक शत्रुओं को बाधित करने वाले (तुविबाधम्) इन्द्र को (ऋजीषम्) पुकारा (आजुह्वेहि) और इस प्रकार प्रभावशाली इन्द्र के प्रहारों का (अस्य वधानाम्) संगम, समागम या लेखा, जोखा न कर सका (समतिं न अतारीत्) तथा उनके प्रहारों से विशीर्ण हो नदियों को मानों पीस का चूर्णचूर्ण कर दिया (रुजानाः संपिपिष) । इन्द्र द्वारा मारा जाकर वृत्रासुर ने अपने शरीर के विस्तार से नदियों को उद्वेलित कर दिया ।

वृत्र का अर्थ मेघ भी है । अन्य अर्थ- यदि कोई घमण्डी अयोद्धा की तरह निर्बल शत्रु (दुर्मदः अयोद्धा इव) महावीर अनेकों का सामना करने वाले (महावीरं तुवि बाधम्) प्रयत्नशील राजा को (ऋजीषम्) ललकारता है (आजुह्वे) । वह इसके प्रहारों की मार को (अस्य वधानां समृतिम्) नहीं सह सकता (न अतारीत्) और वह नदियों की तरह नाश करने वाला राजा (रुजानाः इन्द्र शत्रुः) उसे कुचल डालता है (संपिपिषे) ।

रुत् - रु + क्विप् = रुत् (तुक् का आगम) अर्थ - (१) रोग, (२) शब्द करने वाला जो शब्द करता है वह रुत् है ।

(३) रोगी ।

'तक्षारिष्टं रुतं भिषक् '

ऋ. ९.११२.१

रुदत् - रोता हुआ ।

'त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्च '

ऋ. १.३३.७

हे इन्द्र, तू इन रोने वालों एवं भोग विलासी पुरुषों को (जक्षतः) ।

रुद्र - (१) शिव का एक पर्याय ।

(२) ब्रह्म का उपदेश करने वाला आचार्य, (३) शब्द ब्रह्म रूप से सबके हृदय में व्यापक, (४) सबको अन्त काल में रुलाने वाला (५) सब पर करुणा से दया करने वाला, (६) रुत् अर्थात् संसार का दुःख का विनाशक ।

'रुद्रं जलाष भेषजम् '

ऋ. १.४३.४; अ. २.२७.६

(७) रु + क्विप् = रुत् (तुक् का आगम) रुत् + रा + क = रुद्र । रुत् सत् राति ददाति दुःखम् इति रुद्रः (जो रवता हुआ , गर्जन करता हुआ या सनयित्नु शब्द करता हुआ वर्षा का जल देता है वह रुद्र है) ।

(८) रुद्रो रवति (जो रवता है वह रुद्र है) ।

(९) रोरूयमाणः द्रवित इति वा (मेघ के उदर में स्थित हो अत्यन्त रव करता हुआ जो द्रवता है वह रुद्र है) । रोरूयमाण + द्रु + ड = रुद्र (रोरुयमाण का रु और द्रु का द्र)

(१०) रोदयते वा (रुलाता है) । अतः रुद्र कहलाया । रोदि + रक् = रुद्र (रोदि) के 'णि' का लोप । रुद्र शत्रु कूलों को रुलाता हे । अथवा रुद् + रक् = रुद्र (बाहुलक से)

(११) रुद्र नामक देवता । दे. 'अवस'

'अवसाय पद्वते रुद्र मृड '

ऋ. १०.१६९.१; तै.सं. ७.४.१७.१; नि. १.१७

(हे रुद्र, तू इस चरण युक्त पथ में चल चल कर चरने वाली गौ की हिंसा न कर) ।

पुनः, दे. 'आयुध '।

'इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः '

ऋ. ७.४६.१; तै.ब्रा. २.८.६८; नि. १०.६

स्थिरधन्वा रुद्र के लिए इन स्तुतियों को अर्पित कर ।

(१२) दुःख भंजक परमात्मा -दया. । पुनः, दे. 'कुवित् '

'ताँ आ रुद्रस्य मीढुषो विवासे '

ऋ. ७.५८.५

मैं उन मनोरथों को बरसाने वाले रुद्र के पुत्र मरुतों की अभिमुख हो परिचर्या करता हूँ-सा.। हम उस दुःख भंजक परमात्मा के (रुद्रस्य) सेवक मनुष्यों की (मीढुषः) सेवा करते हैं (आविवासे)- दया. ।

(१३) ज्वरादि व्याधि रूपी आयुध वाले तथा वातावरण में आविष्ट या वातावरण को धारण करने वाले (स्वपिवातः) रुद्र की कल्पना की गई है। दे. 'क्ष्मा'

'या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि'

ऋ. ७.४६.३; नि. १०.७

(१४) अग्नि। अग्निरपि रुद्र उच्यते (१५) वैश्य। दे. 'मरुत्'

(१६) मरुतों को भी रुद्र कहा गया है। दे. 'आरुद्रासः'।

(१७) रोग के अर्थ में भी यजुर्वेद में रुद्र का प्रयोग हुआ है।

शतरुद्रियाणाम्

(१८) इन्द्र ने पिता प्रजापति को बाण से छेदा। उसकी अनुचिन्ता कर वह रोया। रुलाने के कारण ही इन्द्र रुद्र कहलाया।

(इन्द्रः किल पितरं प्रजापतिं चिच्छेद, तम् अनुशोचन् अरुदद् तत् रुद्रस्य रुद्रत्वम्)।

रुद्रवर्तनी - (१) प्राण ही जिसके मार्ग हो।

'आ यातं रुद्रवर्तनी'

ऋ. १.३.३; वाज.सं. ३३.५८; ऐ.आ. १.१.४.८

(२) अश्विद्वय का विशेषण, (३) शरीर में ११ रुद्रों अर्थात् प्राणों के समान राष्ट्र में जीवन संचार करने वाले विद्वान् स्त्री पुरुष

'तदश्विना भिषजा रुद्रवर्तनी'

वाज.सं. १९.८२; मै.सं. ३.११.९: १५३.५ का.सं. ३८.३; तै.ब्रा. २.६. ४.१.

(४) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापति के समान या दुःख दूर करने वाले वैश्य के समान कार्य व्यवहार करने वाले स्त्री पुरुष (५) अश्विद्वय

'यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी'

ऋ. ८.२२.१; १०.३९.११

रुद्रस्यमरुतः- (१) रुद्र के पुत्र मरुत सा.। (२) दुःख भंजक परमात्मा के भक्त -सा. दे. 'कुवित्' 'मीढुषः'।

'ताँ आ रुद्रस्य मीढुषो विवासे'

ऋ. ७.५८.५

मैं उन रुद्र के मनोरथ बरसाने वाले पुत्र मरुतों की परिचर्या करता हूँ। -सा.।

मैं उस दुःख भंजक परमात्मा के सेवन जनों की सेवा करता हूँ - दया.।

रुद्रस्य मूत्रम्- (१) रोगहारी तीव्र द्रव्य का स्तर भाग-आसव (२) रुद्र का मूत्र-सा.।

'रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः'

अ. ६.४४.३

रुद्रस्य सूनुः- (१) रुद्र का पुत्र, (२) जीव का प्रेरक प्राणवायु (३) शत्रु दल को रुलाने वाले संग्राम के अथवा वीर सेना पति के पुत्र, (४) कारण रूप वायु से उत्पन्न प्राण। (५) ज्ञानोपदेश का दाता विद्वान्।

रुद्रहूतिः- रुद्र या दूसरे को रुलाने वाले वीर को बुलाने वाला

'स्वाहा रुद्राय रुद्रहूतये'

वाज.सं. ३८.१६; श.ब्रा. १४.२.२.३८

रुद्रा - द्वि.व.। (१) शब्द करने वाले-अग्नि और वायु, (२) दुष्टों को रुलाने और मर्यादा का पालन करने वाले उत्तम वचन बोलने वाले स्त्री पुरुष।

'वर्ती रुद्रा नृपाय्यम्'

ऋ. २.४१.७; वाज.सं. २०.८१

(३) सबको रुलाने वाले दुष्ट पीड़क शासकों द्वारा सेवित पृथ्वी, (४) वेद द्वारा उपदेष्ट्री। ब्रह्मशक्ति।

'आदित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि'

वाज.सं. ४.२१.

(५) दुःखों को दूर करने, उत्तम उपदेशों को देने और ५४ वर्ष का ब्रह्मचर्य पालन करने वाले दुष्टों को रुलाने वाले-सेना पति, (६) सभापति, (६) अश्विद्वय, (७) मातापिता, (८) पुरुष, (९) अध्यापक उपदेशक। दे. 'पुरुमन्तू।

रुद्राणां माता - (१) रुद्रों या दुष्टों को रुलाने वाले वीर पुरुषों को दूध पिलाकर पुष्ट करने वाली गौ, (२) रुद्रों की माता।

'माता रुद्राणां दुहिता वसूनाम्'

ऋ. ८.१०१.१५; तै.आ. ६.१२.१; आश्व.गृ.सू. १.२४.३२; साम.मं. ब्रा. २.८.१५; पा.गृ.सू. १.३.२७; आप.मं.पा. २.१०.९.

रुद्रासः - (१) रुद्रगण। रुद्र देव के सिवा 'रुद्रासः' का प्रयोग रुद्रों के गण का परिचायक है। जैसे इन्द्र के साथ मरुतों का रहना वेदों में हम देखते हैं, उसी प्रकार इन्द्र के साथ रुद्रों के आने का भी वर्णन है। दे. 'आगन्तन'।

'आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसः
हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन'
ऋ. ५.५७.१; नि. ११.१५.
हे रुद्रो, इन्द्र के साथ समान प्रेम के साथ, सोने के रथ पर चढ़े, यथा शास्त्र किए जाते हुए यज्ञ के लिए आओ ।

रुद्रिय - रुद्र + घ = रुद्रिय । अर्थ है । (१) रोगोत्पादक, (२) रुद्र-सम्बन्धी । रुद्र का अर्थ रोग भी है । दे. 'रुद्र' ।

रुद्रियासः - रुद्र + घ + जस् = रुद्रियासः । रुद्र का अर्थ जीव है । अतः 'रुद्रिय' का अर्थ है । (१)- जिलानेवाले वायुगण या (२) जीव के प्राण वायु ।

रुधत् - (१) रुका हुआ, (२) वीर्यनिरोध करने वाला ।
'नदस्य मा रुधतः काम आगन्'
ऋ. १.१७९.४; नि. ५.२.
(३) रुध् (निरोध करना, रोकना) + शतृ = रुधत् । इन्द्रियों पर संयम करने वाला-ब्रह्मचारी (रेतसः इन्द्रियग्रामस्य वा निरोद्धा) । (४) संरुद्ध प्रजनन (५) जितेन्द्रिय ।
दे. 'आगत' 'नद' ।
लोपामुद्रा कहती है-जप करते हुए ब्रह्मचारी अगस्त्य के प्रति काम भावना मेरे प्रति आई ।

रुधि - (१) पाप करने से रोकने वाला नियम, व्यवस्था मर्यादा, (२) ध्यान को सेतु, बांध, बाड़, खाई, परकोट । दे. 'रुधिक्रा' ।

रुधिक्रा - रुधि का अर्थ है- (१) प्रजाओं को पाप से रोकने वाला नियम या व्यवस्था, (२) जल का सेतुबांध, बाड़, खाई, परकोट आदि को भी लांघ जाने वाला, (२) इस नाम का दैत्य -सा.
'यः पिपुं नमुचिं यो रुधिक्राम्'
ऋ. २.१४.५.

रुप् - (१) रोपने वाला,(२) ज्ञानांकुर बीज को रोपने वाला गुरु, (३) अंकुरवती भूमि, बीजोत्पादक भूमि, (४) सन्तति उत्पादिका स्त्री ।
(५) रुप, (रोपण करना) रोपना, आरोपण करना) + क्विप् = रूप् आरोपण कर्त्ता पर मात्मा -दया. (६) जिस पर सब कुछ आरोपित होता है । पृथ्वी-सा. । दे. 'जबारु' 'सस' 'पृश्नि'
'ससस्य चर्मन्नधि चारु पृश्नेः
अग्रे रुप आरुपितं जबारु'
ऋ. ४.५.७
जिस आदित्य का दीप्तिमान मण्डल (चारु जबारु) सृष्टि केआदि में या पूर्व दिशा में (अग्रे) पृथ्वी के निकट से (रुपः) निश्चल द्युलोक के ऊपर (पृश्ने : अधि) चलने के निमित्त (चर्मन्) आरोपित हुआ (आरुपितम्) -सा. ।
जिस सोते हुए पति के भी शरीर पर (ससस्य चर्मन् अधि) सुन्दर ऊर्ध्व रेतस्त्व आरोपित हो (चारु जबारू आरोपितम्) जैसे द्युलोक के आरोपणकर्त्ता परमात्मा का (पृश्नेः अग्रे रुपः) आदित्य मण्डल आरोपित है (चारु जबारु) - दया. ।

रुप - (१) सीढ़ी, (२) उत्तम पद पर चढ़ने का साधन रूप योग मार्ग।
'पञ्च पदानिरुपो अन्वरोहम्'
ऋ. १०.१३.३.
(३) बीज से उत्पन्न होने वाला पुरुष ।
'त्रीणि पदानि रुपो अन्वरोहत्'
अ. १८.३.४०

रुमः - (१) उपदेश और श्रुति -सम्पन्न ज्ञानी पुरुष, (२) ब्राह्मण ।
'यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृपे'
ऋ. ८.४.२; अ. २०.१२०.२; साम. २.५८२.
(३) ऋग्वेदालीन एक देश (४) उपदेष्टा, (५) रमणीय, (६) ब्राह्मण का स्वभाव ।

रुरु - रुरु नामक मृग ।
'रुद्रेभ्यो रुरून्'
वाज.सं. २४.२७; मै.सं. ३.१४.९: १७४.३

रुरुक्वान् - रुचिमान, शोभने वाला ।
'सूरो न रुरुक्वान् शतात्मा'
ऋ. १.१४९.३; साम. २.११२४.

रुरुचानः - कान्ति से चमकने वाला ।
'रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महाम्'
ऋ. ३.२.३; कौ.ब्रा. २५.९

रुरुशीर्ष्णी - (१) मृग के समान अग्रमुख वाली इषु या बाण की डंडी (२) प्रमुख नेताओं को अपने शिरोमणि पद पर नियुक्त करने वाली सेना ।
'आलाक्ता या रुरुशीर्ष्णी'
ऋ. ६.७५.१५

रूरु - निरन्तर उपदेश करने वाल ।
'रुरू रौद्रः '
वाज.सं. २४.३९; तै.सं. ५.५.१९.१; मै.सं. ३.१४.२०: १७७.२; का.सं. (अश्व.) ७.९

रुवण्यु - (१) सुशब्दायमान- दया.
(२) उत्तम उपदेष ज्ञान ज.दे.श.
'आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै '
ऋ. १.१२२.५
मै औशिज-उशिज का पुत्र या विद्याप्रेमी गुरु तथा माता पिता का पुत्र या शिष्य-आपलोगों के उत्तम उपदेश और ज्ञान का (रुवण्युम्) उपदेश देने के लिए (हुवध्यै) ।

रुवन् - उपदेश देता हुआ ।
'प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तम् '
ऋ. ५.४२.१४.

रुश् - (१) चमचमाना, श्वेत वर्ण का प्रकाश देना । दे. 'अनूची' 'रुशद्वत्सा' 'रुशती' ।
'रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागात् '
ऋ. १.११३.२; साम. २.११००; नि. २.२०.
रुशत् (२) हिंसा करना ।

रुशत् - रुश् + शतृ = रुशत् । दीप्तिमान ।
'अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः '
ऋ. १.११५.५; अ. २०.१२३.२; वाज.सं. ३३.३८; मै.सं. ४.२२०.१०; तै.ब्रा. २.८.७.२.
(२) रुच् । दीप्ति अर्थ में + अति = रुशत् (गुण का अभाव और च् का श्) । अर्थ है - वर्ण विशेष (३) ज्वाला से निकलने को प्रकाश (ज्वलनाविर्भूत प्रकाशरूपः वर्ण विशेषः) - देवराज ।
(४) हिंसार्थक रुश् + शतृ = रुशत् । अर्थ -वज्र । दे. ' आगात् '.
(५) श्वेत प्रकाश करता हुआ ।
'अबोधि होता यजथाय देवान्
ऊर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरास्थात्
समिद्धस्य रुशददर्शि पाजो
महान् देवस्तमसो निरमोचि '
ऋ. ५.१.२; साम. २.१०९७; मै.सं. २.१३.७: १५६.१
यह होम निष्पादक अग्नि यष्टव्य देवों को पूजने के लिए (यजथाय) प्रबोधित किया जाता है (अबोधि) । वह अग्नि प्रातः काल सुन्दर मन से (प्रातः सुमनाः) उद्दीप्त होता है (ऊर्ध्वः अस्थात्) । उस समय उस उद्दीप्त अग्नि का ज्वाला रूपी दीप्तबल (समिद्धस्य रुशत् पाजः) दर्शनीय होता है (अदर्शि) । इस प्रकार महान् अग्निदेव अन्धकार से मुक्त होते हैं (निरमोचि) ।
अन्य अर्थ- शुद्ध मन वाला यज्ञकर्त्ता (सुमनाः होता) ऊपर की ओर गति करने वाले अग्नि के समान उन्नति की ओर जाता हुआ परमेश्वर प्राप्ति के लिए (यजथाय) दिव्य भावों को जानता है (देवान् अबोधि) और प्रातः काल परमेश्वर का उपस्थान करता है (प्रातः अस्थात्) । तब उस देदीप्यमान विद्वान् का तेजस्वी रूप वर्ण और बल दिखाई देता है (समिद्धस्य रुशत् पाज अदर्शि) तथा दुःख से छूट जाता है ।

रुशत्पशुः - (१) दीप्तियुक्त तेजस्वी उत्तम पशुसम्पदा से युक्त (२) तेजस्वी अंगों वाला पुरुष, (३) तेजस्वी किरणों वाली उषा ।
'अभूदुषा रुशत्पशुः '
ऋ. ५.७५.९; ऐ.ब्रा. २.१८.१०,१२; कौ.ब्रा. ११.६; का.श्रौ.सू. ९ .२.२४; आप.श्रौ.सू. १२.५.१

रुशती - (१) श्वेत वर्णा, दीप्ता, (२) उषा का विशेषण । दे. ' अनूची '
'रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागात् '
ऋ. १.११३.२; साम. २.११००; नि. २.२०
श्वेतवर्णा, दीप्त सूर्य रूपी वता वाली उषा आई ।
(३) लक्ष्मी - दया.
(३) ज्वलित रूप श्री या दीप्ति वर्णा स्त्री-सा. दे. 'अश्विना' ।
'युवं श्यावाय रुशतीमदत्तम् '
ऋ. १.११७.८.
हे अश्विनी कुमारो, तुम दोनों ने कुष्ठ रोग के कारण कपिश वर्ण वाले श्याव नामक ऋषि या राजा को ज्वलित रूप श्री या दीप्तवर्णा स्त्री दी - सा. ।
हे राजा तथा राजपुरुषो, तुम उत्तम गृह के प्रापक विद्वान् को लक्ष्मी दी - दया. ।

रुशद्रोहिणी - (१) गहरे रंग की बढ़ने वाली लता । दे. 'रोहिणी' ।

रुशद्वत्सा - दीप्तवर्ण सूर्य रूपी वत्स वाली उषा ।

दे; 'अनूची,' 'रुशती'।
'रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागात्'
ऋ. १.११३.२; साम. २.११००; नि. २.२०

रुशदूर्मि- (१) रुशन्त्य ऊर्मयः ज्वालाः यस्य स जीवः (दीप्ति वाली ज्वाला से युक्त जीव (२) अग्नि।
'कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर'
ऋ. १.५८.४
हे जीवात्मन्, तेरा प्राप्त करने योग्य (ते एम) परमपद अत्यन्त आकर्षण करने वाला हृदयग्राही है।
अथवा,
हे अग्ने, तेरा मार्ग कृष्ण है।

रुशन् - उछलता हुआ।
'चरन् वत्सो रुशन्निह'
ऋ. ८.७२.५

रुशम - (१) शत्रुओं की नाशकारिणी सेना का दल।
'आ रुशमेषु दद्महे'
अ. २०.१२७.१; आश्व.श्रौ.सू. ८.३.१०;शां.श्रौ.सू. १२.१४.१.१.
(२) हिंसाकारी क्षत्रिय पुरुष (२) वेद कालीन एक देश का नाम, (४) रोगों का शान्ति कारक।
'शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपम्'
ऋ. ८.३.१२.
(५) हिंसक, (६) क्षत्रिय का स्वभाव।
'यद् वा रुमे रुशमे श्यावके कृपे'
ऋ. ८.४.२; अ. २०.१२०.२; साम. २.५८२
(७) सर्व-नियन्ता परमेश्वर।
'तिरश्चिदर्ये रुशमे परीरवि'
ऋ. ८.५१.९; साम. २.९५९; वाज.सं. ३३.८२
(८) शत्रुहिंसक सैन्य, (९) तेजस्वी वीर पुरुष।
'भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्'
ऋ. ५.३०.१२

रुह् - (१) उच्चस्थान, पद (२) आरोहण शील जीव
'रुहो रुरोह रोहित आ रुरोह'
अ. १३.१.४.
'रुहो रुरोह रोहितः'
अ. १३.३.२६
(३) प्ररोह, अङ्कुर।
'सहस्रमुत वो रुहः'
ऋ. १०.९७.२; वाज.सं. १२.७६; तै.सं. ४.२.६.१; मै.सं. २.७.१३ : ९३.३ का.सं. १६.१३; श.ब्रा. ७.२.४.२७.

रूपका - (१) नाना रूपों और व्यूहों वाली सेना।
'रूपका उतार्बुदे'
अ. ११.९.१५

रूपधेय - रूप।
'त्वष्टा येषां रूपधेयानि वेद'
अ. २.२६.१

रूपम् - (१) रुच् (दीप्ति अर्थ में) + पन् = रूप।
अर्थ- (१) रूप। दे. 'अजीगः'।
'अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यम्'
ऋ. १.१६३.७; वाज.सं. २९.१८; तै.सं. ४.६.७.३.
(२) रुचिकर सुन्दर रूपवान् (३) रुद्र का विशेषण।
'दिवो वराहमरुषं कपर्दिनम्
त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे'
ऋ. १.११४.५
(४) रूपं रोचतेः (रुच् धातु से सम्पन्न। दीप्यमान, प्रकाशक (५) रूप्यते प्रज्ञापय्यते एभिः रूपाणि (रूपों से पदार्थ जाने जाते हैं)। दे. 'कवि'।

रूपाणां त्वष्टा - (१) रोचमान, तेजस्वी पदार्तों एवं जीव जन्तुओं का निर्माता।
'त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम्'
अ. ९.४.६.

रूपाणि - गृहस्थी का धन और पशु आदि सम्पत्ति।
'विश्वा रूपाणि पुष्यत'
अ. ७.६०.७; १३.२.१०

रूर - (१) पीड़ादायक ज्वर, (२) अग्नि। 'अग्निर्वै रूरः'।
'यत् त्वं शीतोऽथो रूरः'
अ. ५.२२.१०
(३) तप देकर उत्पन्न होने वाला। ज्वर जिसे हुडु भी कहा जाता है। दे. 'हुड्'।
'नमो रूराय शोचिषे कृणोमि'
अ. १.२५.४

रूपशः - (१) प्रत्येक भिन्न भिन्न रूप, (२) प्रति देह में प्रत्येक रूप।

'स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः'
ऋ. १.१६४.१५.
(२) शेष बचा खुचा ।
रेक्णस् – धन । रिच् + असुन् = रेक्णस्' । (नुट्, गुण, च का आदेश) ।
'यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य
रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति'
ऋ. १.१६२.१; वाज.सं. २५.२५; तै.सं. ४.६.८.१; मै.सं. ३.१६.१ : १.१८१.९
दे. 'अचेतन'
'परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णः'
ऋ. ७.४.७; नि. ३.२
उदक सम्बन्ध रहित मनुष्य का धन त्याज्य है ।
(२) रेक्ण. इति धन नाम- यास्क
'रिच्यते प्रयतः' (धनी जब मरने लगता है तो यह धन रिक्त रह जाता है) । अर्थात् इसी लोक में रह जाता है । (३) सन्तान ।
रेक्णस्वती – (१) उत्तम ऐश्वर्य और वीर्य वाली ।
'रेक्णस्वत्यभि यावाममेति'
ऋ. १०.६३.१६; नि. ११.४६.
(२) धन वाली या जल से धन वाली स्वस्ति या देवगोपा नाम्नी देवता का विशेषण ।
आर्यसमाजी विद्वानों ने स्वस्ति या देवगोपा का नाम मेघ माना है । दे. 'देवगोपा'
वह धनवाली या जल से धन वाली है (रेक्ण-स्वती) जो हमें स्पृहणीय पदार्थों को या जलों को देती है (या वामम् अभ्येति) या जो मेघ प्रशस्त, ज्वालों को धारण करता है (वामम् अभ्येति) ।
रेकु – (१) संशयास्पद, (२) सबसे अतिरिक्त, (३) सर्वातिशयी ।
'गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य
रेकुपदं न निदाना अगन्म'
ऋ. ४.५.१२.
रेकुपद – शंकास्पद स्थान ।
'रेकु पदमलकमा जगन्थ'
ऋ. १०.१०८.७
रेज – (१) प्रकट होना । अंग्रेजी का raise धातु यहां विचारणीय है ।
'स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः'
ऋ. १.१६४.१५; अ. ९.९.१६; तै.आ. १.३.१; नि. १४.१९.
(२) गत्यर्थक ।
रेजति – रेजयति, आकम्पयति ।
रिज धातु गत्यर्थक है । दे. 'अस्मदानिद्'
'हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति'
ऋ. १.१२९.६; नि. १०.४२.
जो अन्नवाला इन्द्र हमारी प्रज्ञाओं को आकर्षित करता है ।
'रिज' धातु और अंग्रेजी का rise धातु प्रायः समानार्थक है ।
रेजन्ते – रेज (कांपना) के लट् प्र.पु. बहुवचन का रूप । अर्थ । (१) कांपते हैं । दे. 'अभ्यर्धयज्वन्' 'भूमा' ।
'भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते'
ऋ. ६.५०.५
जीवन मार्ग के परिशुद्ध होने पर बड़े बड़े शत्रु सैन्य कांपने लगते हैं ।
अथवा,
तब अन्तरिक्ष में बहुत जीव कांपने लगते हैं ।
रेजमानः – कांपता हुआ ।
'गिरींरज्रान् रेजमानां अधारयत्'
ऋ. १०.४४.८; अ. २०.९४.८
रेणु – (१) रजो रेणु, धूलि, (२) रमणीय स्वरूप, (३) गुणवती ।
'इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः'
ऋ. १.५६.४
पूज्य और शत्रुओं का विवेक करने वाला (अर्हरिष्वणिः) अथवा वेगवान् धनापहारी पुरुषों को अपने प्रताप से रुलाने वाला बड़े उद्योग से उत्तम रजो रेणु के समान गुणवती तुझे प्राप्त हो ।
रेणुककाटः – (१) रेणुक + काट । धूल से भरा शुष्क कुंआ,
(२) नीरस पुरुष
'न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते'
ऋ. ६.२८.४; अ. ४.२१.४; का.सं. १३.१६; तै.ब्रा. २.४.६.९; आश्व.श्रौ.सू. ६.१४.१८; ९.५.२.
(३) अव्यय । ऐसा अश्व का वेग जिससे उड़ी हुई धूल से कूप आदि भी भर जाय ।
'अपावर्णं रेणुककाटं नुदन्ताम्'
वाज.सं. २८.१३; तै.ब्रा. २.६.१०.१.
(३) पैरों से धूल उड़ा लेने वाला हिंसक जीव,

लकड़बग्घा (४) कसाई, (५) समस्त संसार को तोड़ फोड़ कर रजः रूप में बदल देने वाला प्रलयकारी यम ।

रेतः – (१) सन्तानोत्पादक वीर्य, (२) जल, दे. 'असश्चन्ती'
'अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम्'
ऋ. ६.७०.२
हे द्यावापृथिवी, हममें वह सन्तानोत्पादक वीर्य दें जो मनुष्यों के लिए कल्याण कारक हो ।
अथवा,
इस संसार के राजा सूर्य पृथिवी के मनुष्यों के लिए हितकारी जल दें ।

रेतोधा – (१) रेतस् धारण करने वाला तत्व ।
'रेतोधा आसन् महिमान आसन्'
ऋ. १०.१२९.५; वाज.सं. ३३.७४; तै.ब्रा. २.८.९.५
(२) प्रकृति में अपना वीर्य धारण कराने वाला परमेश्वर, (३) जल बरसाने वाला सूर्य ।
'स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम्'
ऋ. ३.५६.३; ७.१०१.६

रेभ – (१) व्यर्थ कोलाहल करने वाला, पागल के समान बेकने वाला ।
'तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे'
ऋ. १०.८७.१२; अ. ८.३.२१.
(२) स्तुतिशील विद्वान् ।
'वच्यस्व रेभ वच्यस्व'
अ. २०.१२७.४; गो.ब्रा. २.६.१२; शां.श्रौ.सू. १२.१५.१.१
'समीं रेभासो अस्वरन्'
ऋ. ८.९७.११; अ. २०.५४.२
(३) विद्याओं का उपदेश करने में कुशल ।
'अनुपश्चात् कवयो यन्ति रेभाः'
ऋ. १.१६३.१२; वाज.सं. २९.२३; तै.सं. ४.६.७.५;
(४) स्तोता- दया. । स्तुतिशील-ज.दे.श. ।
'याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्यः
उद् वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे'
ऋ. १.११२.५
हे विद्वान् आचार्य और शिक्षित पुरुषो, मातापिता और योग्य स्त्री पुरुषो, आप दोनों जिन रक्षा आदि उपायों और ज्ञानवाणियों से (याभिः) स्तुतिशील (रेभम्) सब प्रकार से अपनाए हुए विनीत एवं उपवीत (निवृतम्) अथवा सब कष्टों अज्ञानों या दुःखों से घिरे हुए (सितम्) शुद्धाचारी अभिवादनशील पुत्र और शिष्य को परमज्ञानमय परमेश्वर या परमसुख का दर्शन करने के लिए (स्वर्दृशे) उत्तम पद की ओर प्रेरणा करते हैं (उद्वन्दनम् ऐरयतम्) ।
अथवा – हे प्राण और अपान, वासनाओं से या अज्ञान से घिरे (निवृतम्) कर्मबन्धनों में बंधे (सितम्) स्तुति कर्त्ता उपासक आत्मा को (रेभम्) परमात्मा के दर्शन के लिए ऊपर उठाते हैं ।
राजा और सेनापति प्रार्थना करने वाले शत्रुओं के कारागार में बंधे पुरुष को उबारते हैं ।
(५) नवजात शब्द करता हुआ बालक भी रेभ है । दे. 'परिषूति' ।
'युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथः'
ऋ. १.११९.६

रेरिह् – (१) चाटने वाला, (२) नीच, लोभीपुरुष ।
'क्रव्यादमुत रेरिहम्'
अ. ८.६.६

रेरिहन् – (१) चरता हुआ, (२) घास आदि को दग्ध करता हुआ अग्नि (३) चाटता हुआ बालक (४) आस्वादन करता हुआ ।
दे. 'अधीवास'

रेरिहाणा – (१) स्पर्श करती हुई, (२) चाटती हुई ।
'ऊर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा'
ऋ. ३.५५.१४.
(३) द्वि.व. । उत्तम सुखास्वाद करती हुई ।
'अन्तरू षु चरतो रेहिहाणा'
ऋ. ६.२७.७.

रेवत् – (१) ऐश्वर्यवान् आत्मा ।
'गोदा इद् रेवतो मदः'
ऋ. १.४.२; अ. २०.५७.२; ६८.२; साम. २.४३८

रेवती – (१) रेवती नामक ऋचा, (२) धनधान्य, सम्पन्न ।
'महानाम्न्यो रेवत्यः'
वाज.सं. २३.३५.
(३) खेती नामक नक्षत्र ।
'आ रेवती चाश्वयुजौ भगं मे'
ऋ. १९.७.५.
(४) धन ऐश्वर्य से युक्त स्त्री या प्रजा ।
रेवतीर्नः सधमादः

इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः'
ऋ. १.३०.१३; अ. २०.१२२.१; साम. १.१५३; २.४३४; तै.सं. १.७.१३.५; २.२.१२.८; ४.१४.४; मै.सं. ४.१२.४:१८९.५; का.सं. ८.१७.
हमारी ऐश्वर्य शालिनी स्त्रियाँ अन्नों से युक्त होकर ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र में (इन्द्रे) राजा या परमेश्वर के आश्रय में रहकर हमारे साथ सुख और आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करने वाली हों ।

रेवान् - रयिमान्, धनवान्,

रेषण - (१) आंधी का झकोर, (२) आत्मा की नाशक प्रवृत्ति । दे. 'रिप' ।

रेषय - नाश करना । दे. 'रिपु'

रेष्मच्छिन्न - प्रचण्ड वायु से टूटा हुआ तृण ।
'रेष्मच्छिन्नं यथा तृणम्'
अ. ६.१०२.२

रेषम्य - हिंसाकारी प्रबल अंधड़ के समय उचित उपाय जानने वाला ।
'नमो वात्याय च रेष्म्याय च'
वाज.सं. १६.३९; तै.सं. ४.५.७.२; मै.सं. २.९.७: १२५.१४; का. सं. १७.१५.

रेष्मा - (१) सिर में लगा आघात आदि (३) हिंसक ।
'रेष्माणं स्तुपेन'
वाज.सं. २५.२; मै.सं. ३.१५.२: १७८.७;
(३) बवण्डर, आन्धी ।
'रेष्मा प्रतोदः'
अ. १५.२.७
(४) रेषको वातात्मको वायुः -सा. (प्रचण्ड वायु) ।

रेढि- चाहता है । रिह (चाहना) + तिप् = रेढि । दे. 'आविवेश' ।
'तं मातारेढि स उ रेढि मातरम्'
ऋ. १०.११४.४; ऐ.आ. ३.१.१६.५; नि. १०.४६
माध्यमिका वाक् उस वायु को चाहती है और वायु भी जलनिर्मात्री विद्युत् को चाहता है ।

रै - (पु.) । (१) धन । दे. 'अचेतन' ।
'नित्यस्य रायः पतयः स्याम'
ऋ. ४.४१.१०; ७.४.७; नि. ३.२.
पुनः दे. 'प्रतारीः' 'तुरीय' ।

रैभ्या - (१) उपदेश देने वाले विद्वान् पुरुषों की शिक्षा, (२) रैभी नामक ऋचा ।
'रैभ्यासीदनुदेयी'
ऋ. १०.८५.६; अ. १४.१.७.

रैवतः - (१) रेवतीषु पशुषु भवः - दया. (२) धनसम्पन्न, (३) पशु सम्पत्ति से सम्पन्न ।
'वरा इवेद् रैवतासो हिरण्यैः'
ऋ. ५.६०.४
(४) धनाढ्य राष्ट्र, (५) त्रयस्त्रिंशस्तोम से उत्पन्न रैवत पृष्ट
'त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्यां शाक्वरैवते'
वाज.सं. १३.५८, तै.सं. ४.३.२.३, मै.सं. २.१७.१९: १०४.१४

रैवत्य - (१) धनवान् पुरुषों का, (२) धनी के समान ।
'रैवत्येन महसा चारवः स्थन'
ऋ. १०.९४.१०

रोकः - (१) रुचि, (२) प्रकाश, ।
'आमवत्सु तस्थौ न रोकः'
ऋ. ६.६६.६.
'दिवश्चिदा ते रुचयन्त रोकाः'
ऋ. ३.६.७

रोग - (१) शरीर को तोड़ने वाला ज्वर, अतिसार आदि ।
'एवा रोगं चास्रावं च'
अ. १.२.४

रोचः - रुच् + अच् = रोच । अर्थ (१) कान्तिवान् ।
'रुचिरसि रोचोऽसि'
अ. १७.१.२१.

रोचति - (१) ज्वलति (रुचता है, ज्वलित होता है) ।
'रुशत् इतिवर्णनाम रोचतेः ज्वलतिकर्मणः -यास्क ।
रुशत् का अर्थ वर्ण है ।

रोचते - प्रकाशित करता हुआ या प्र ाश देता है । दे. 'धन्वन्' ।
'तिरो धन्वातिरोचते'
ऋ. १०.१८७.२; अ. ६.३४.३; नि. ५.५.
आदित्य महान् अन्तरिक्ष को (तिरः धन्व) पार कर (अति) हमें प्रकाशित करता या प्रकाश देता है ।

रोचन - शरीर को सुन्दर बनाने वाला । उबटन

आदि पदार्थ ।

'यो भद्रो रोचनस्तमुदचामि'

अ. १४.१.३८

रोचना – ब.व. । (१) तेजस्वी प्रजागण (२) नक्षत्र ।

'रोचन्ते रोचना दिवि'

ऋ. १.६.१; अ. २०.२६.४; ४७.१०; ६९.९; साम. २.८१८; वाज.सं. २३.५; तै.सं. ७.४.२०.१; मै.सं. ३.१२.१८: १६५.१०; ३.१६.३: १८५.५; तै.ब्रा. ३.९.४.२; आप.मं.प. १.६.२.

रोचनस्था – (१) प्रकाश में विद्यामान ।

'केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम्'

ऋ. ३.२.१४

रोचनाकरः – (१) प्रकाश या कीर्त्ति फैलाने वाला ।

'दूरे पारे रजसो रोचना करम्'

ऋ. १०.४९.६

रोचमानः – रुच् + शानच् = रोचमान । अच्छा लगने वाला ।

'दिवोरुचः सुरुचो रोचमानाः'

ऋ. ३.७.५

रोचसे – दीप्यसे (दीप्त होता है) । 'रुच' धातु से म.पु.ए.व. का लट् में । दे. 'चित' ।

रोद – पीड़ा ।

'आद् रोदमघमावयम्'

अ. ८.६.२६.

रोदसी – (१) द्यावा पृथिव्यौ (द्यौ और पृथिवी) (२) स्वर्ग और पृथिवी लोक । दे. 'अपार' ।

'इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे'

ऋ. ३.३०.५; नि. ६.१.

हे इन्द्र, इन दूर पार में स्थित स्वर्ग और पृथ्वी को....

(३) रुद्र + असुन् = रोदस् । रोदस् + ङीष् = रोदसी । यह शब्द आद्युदात्त और स्त्रीलिंग द्विवचनान्त है । नपुंसक द्विवचनान्त और अव्यय के रूप में भी माना गया है ।

(४) माधव के अनुसार अन्तोदात्त रोदसी शब्द रुद्र की पत्नी का वाचक है ।

(५) मध्यम स्थानी रुद्र की विभूति माध्यमिका वाक् पत्नी मानी गई है । (६) क्षीरस्वामी के अनुसार 'रोदस्यौ रोदसी चले' (रोदसी और रोदस् दो शब्द हैं) । पहला ईकारान्त और दूसरा सान्त । पहले का द्विवचन 'रोदस्यौ' और दूसरे का 'रोदसी' है । ईकारान्त रोदसी द्युलोक और भूलोक का वाचक है ।

दूसरा, रोदस् 'रुध् + असुन्' से व्युत्पन्न है और 'ङीष्' जोड़कर स्त्रीलिंग में रोदसी बना है । द्युलोक और पृथ्वी से सभी जीव रुद्र हैं । (आभ्यां हि विविधं रुद्धानि सर्वभूतानि) ।

'रुद् + असुन्' से रोदस् मानने से रुद्र के समान रोदसी को भी भयङ्करी और रुलाने वाली मानना पड़ेगा । द्युलोक की भयङ्करता की कल्पना विविध प्रकार से की जा सकती है । शीतप्रधान देशों में कुहासे की प्रचुरता सर्वविदित है । दिन रात अन्धकार में ओस का गिरना रोना ही तो है । आकाश के भयङ्कर गर्जन और पृथिवी के अनेक संकट क्या दुःखद नहीं है ?

रोदसी शब्द एक रहस्यमय शब्द है । (७) रुद्र को मरुतों का पिता माना गया है अतः रोदसी मरुतों की माता और रुद्र की पत्नी हुई । यदि रुद्र वायु का वाचक है तो रोदसी वायु की पत्नी अर्थात् माध्यमिका देवी या विभूति हुई । दे. 'आहुवामहे'

(८) स्त्री पुरुष-दया. । दे. 'अरुण' 'उज्जिहीते' निचाय्य'

'उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ठ्यामसी
वित्तं मे अस्य रोदसी'

ऋ. १.१०५.१८

जैसे पीठ का रोगी बढ़ई ऊपर ही देखता है जैसे चन्द्रमा भी नक्षत्र को देखकर भी ऊपर ही देखता है, नीचे नहीं, अतः हे द्यावापृथिवी, मेरी इस दशा को तुम जानो –सा.

जैसे पीठ का रोगी चित्रा नक्षत्र चन्द्रमा से योग करता है एवं अन्य नक्षत्र भी योग करते हैं–हे स्त्री पुरुषो, तुम मेरी इस नक्षत्र विद्या को जानो ।

(९) रुद्र की पत्नी । दे. 'अश्विनी'

'आ रोदसी वरुणानी श्रृणोतु'

ऋ. ५.४६.८; ७.३४.२२; अ. ७.४९.२; मै.सं. ४.१३.१०: २१३.११; तै.ब्रा. ३.५.१२.१; नि. १२.४६.

रुद्र की पत्नी तथा वरुण की पत्नी सुनें ।

(१) रोदसी को अव्यय भी माना गया है । विश्व कोष में लिखा है–रोदश्च रोदसी चापि दिविभूमौ पृथक् पृथक् । सह प्रयोगेऽप्यनयोः रोदः स्यादपि

रोदसी ।

(११) रुद्र दुष्टों को रुलाने वाली राष्ट्र के दमनकारी विभाग के अध्यक्ष की स्त्री ।

रोदसी देवी - (१) रुद्र की पुत्री माध्यमिका वाक् - सा.

(२) दिव्यगुण सम्पन्ना रानी -दया.

दे. 'अभ्यर्धयज्वन्'

'मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवीः'

'सिषक्ति पूजा अभ्यर्धयज्वा'

ऋ. ६.५०.५

हे मरुतो, जिन तुम लोगों के साथ रुद्र की पुत्री माध्यमिका वाक् जल्द जल्द चलती है अर्थात् बार बार मिलकर एकता प्राप्त कराती है तथा जिन तुमको अभिवृद्धदान पूषा अपनी रश्मियों से सेवते हैं ।

अथवा - जिनमें दिव्य गुण सम्पन्न रानी राजकर्म जानती है और प्रबुद्ध सुखप्रदाता पोषक राजा प्रजा की सेवा करता है ।

रोदिसिप्रा - (१) द्यावापृथिव्योः आपूरयिता (द्यौ और पृथिवी को चारों और से पूर्ण करने वाला) ।

(२) रोदसी + प्रा + क्विप् = रोदसीप्रा । रोदसी द्यौ और पृथिवी का संयुक्त नाम है । यह शब्द अग्नि के विशेषण रूप से प्रयुक्त हुआ है ।

(३) आदित्य जो द्यौ और पृथिवी का आपूरक है । दे. 'अजीजनत्' ।

'अजीजनत् शक्तिभी रोदिसिप्राम्'

ऋ. १०.८८.१०; नि. ७.२८

(४) अग्नि ।

रोदस्योःगर्भः - (१) द्यावापृथिवी के बीच गर्भवत् गुप्त अग्नि, (२) दोनों अरणियों के बीच गुप्त अग्नि ।

'स जातो गर्भो असि रोदस्योः'

ऋ. १०.१.२; वाज.सं. ११.४३; तै.सं. ४.१.४.२; ५.१.५.३; मै.सं. २.७.४: ७८.१५; ३.१.५: ७.९; का.सं. १६.४; १९.५; श.ब्रा. ६ .४.४.२.

रोधचक्रा - (स्त्री) । (१) रोधाः चक्राश्च यस्यां सा नदीः (तटों और भवरों वाली नदी) ।

(२) चक्र अर्थात् कर्तापन का निरोध करती हुई स्तुति ।

'समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः'

ऋ. १.१९०.७

रोधचक्र - (१) इन्द्रिम-संयम करने वाला विद्यार्थी ।

रोधन - (१) रोकने वाला, (२) स्तम्भ करने वाला-सूर्य । दे. 'वनधिति' ।

रोधना - (स्त्री.) । (१) रुकावट, (२) नियम, व्यवस्था, (३) शत्रु को रोकने वाली सेना ।

'विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यम्'

ऋ. २.१३.१०

रोधस्वती - रोधस् + वतुप् + ङीष् = रोधस्वती । अर्थ - (१) तटों वाली नदी (२) समृद्ध एवं चारों ओर घेरों से घिरी नगरी ।

रोधसी - रुध् + असुन् = रोधस् । रोधस् + ङीष = रोधसी । रोधसी द्यावा पृथिव्यौ विरोधनात् । रोधः कलम् निरुणद्धि स्रोतः (रोध नदी के जल को रोकता है) । कूलम् रुजतेः विपरीतात् (रुज को विपरीत करने से कूल हुआ है) ।

द्यौ और पृथिवी विशेष या विविध जीवों को सृष्टि में टिकाती है । अतः वे रोधसी हैं । अर्थ रोदसी, द्यौ और पृथिवी । दे. 'रोदसी' ।

रोपणा - (१) मूर्च्छा उत्पन्न करने वाली ।

'यक्ष्मासो रोपणास्तव'

अ. ९.८.१९

रोपणाका - (१) घाव आदि दूर का व्रण भरने वाली रोहिणी नामक ओषधि ।

'रोपणाकासु दध्मसि'

ऋ. १.५०.१२; अ. १.२२.४; तै.ब्रा. ३.७.६.२२; आप.श्रौ.सू. ४. १५.१.

(२) शरीर को पोषण करने वाली लेपन योग्य ओषधि, । दे. 'शुक' ।

रोपी - पीड़ा ।

'शतं रोपीश्च तक्मनः'

अ. ५.३०.१६

रोपुषी - (१) विष हरने वाली ।

'विषस्य रोपुषीणाम्'

ऋ. १.१९१.१३

रोम - (१) ब्रह्मचर्य काल में गृहीत मृगाजिन, (२) कम्बल, (३) रोम से आवृत देह -बन्धन

'तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः'

ऋ. ९.९७.११; साम. २.३७०

रोमण्वत् - रोमन् + वतुप् = रोमण्वत्अर्थ है- (१)

रोआंदार, (२) रोमकूपः । दे. 'हसना' ।

रोमण्वन्तौ भेदौ – (१) रोमयुक्त दो खण्ड अर्थात् युवति का गुप्तांग ।

'शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ'

ऋ. ९.११२.४; नि. ९.२

रोमन् – रोआं ।

रोमश – (१) मूछों वाला मुख, (२) तेजस्वी किरणों से युक्त सूर्य ।

(३) रु (शब्द करना) । रौति शब्दयति इति रोम तेनयुक्त (उपदेशकारी प्रवचन) ।

(४) लूयत इति रोमतत् श्यति नाशयति इति रोमशम् ।

अंधकारों को काटने वाला

(५) विघ्नों या जन्म मरण के बन्धनों को काटने वाला ।

'सेदीशे यस्य रोमशम्'

ऋ. १०.८६.१६; अ. २०.१२६.१६

रोमशा – (१) वह स्त्री जिसके अंगों में रोएं उग आए हों–प्रौढ़ा वयस्का स्त्री । दे. 'उप' ।

'सर्वाहमस्मि रोमशा
गन्धारीणामिवाविका'

ऋ. १.१२६.७

मेरे सर्वांग में रोएं हो गए हैं । जैसे गन्धार देश की भेड़ियों में अविका जाति की भेड़ी को ।

रोरुवत् – रोरूयमाणः (स्तनयित्नु शब्द करता हुआ) ।'रु' (शब्द करना) के यङ् लुङन्त में 'कानच्' प्रयत्न कर 'रोरूयमाण' बना है । वैदिक रूप है – 'रोरुवत्' जो 'शतृ' प्रत्यय जोड़कर बना है ।

'नि यद् वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि
शुष्णस्य चिद् व्रन्दिनो रोरुवद् वना
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता
यद्या चित् कृणवः कस्त्वा परि'

ऋ. १.५४.५

हे इन्द्र, जो तू मेघ को मार बार बार स्तनयित्नु शब्द करता हुआ (यत् रोरुवत्) शब्द कारी वायु के ऊपर (श्वसनस्य मूर्धनि) रसों के शोषक (शुष्णस्य चित्) अपनी किरणों से आम्र आदि को मृदु बनाने वाले भगवान् आदित्य को मण्डल के ऊपर (व्रन्दिनः) जलों को (वना) आवर्जित करता या रोकता है (निवृणक्षि) अतः तू अवश्य ही जल को नीचे बरसा तथा पुनः उसे ऊपर उठा शक्तिमत्ता का परिचय देता है । सायण ने वायु और सूर्य की किरणों से जो वृष्टि का जल पुनः सूर्य के ऊपर जाता है वह क्रिया इन्द्र के द्वारा सम्पन्न होती है–ऐसी व्याख्या की है ।

जिस कारण (यत्) तू प्राचीन हिंसा वाले मन से युक्त हो (प्राचीनेन बर्हणावता मनसा) आज भी ग्रीष्म में (अद्याचित्) अपना कर्म करता है (कृणवः) अतः तुझ से बढ़कर कौन है ? (त्वा परि) ।

दुर्ग ने 'प्राचीनेन' का अर्थ 'तस्मिन् कर्मणि अदीनेन अभिमुखेन' (उस कर्म में अदीन एवं अभिमुख से) किया है ।

'प्राचीनेन बर्हणावता मनसा' का अर्थ विचारणीय है । प्राचीन का अर्थ अन्यत्र भी धन के विशेषण के रूप में किया गया है ।

स्वा. दयानन्द का अर्थ – हे राजन्, जिस प्रकार शब्दकारी आकाश में (श्वसनस्य मूर्धनि) रसों को सुखाने वाले तथा फलादि को पकाकर मृदु करने वाले सूर्य की किरणें अन्धकार को दूर करती हैं (शुष्णस्य व्रन्दिनः) एवं तू ताड़न से दुष्टों को रुलाता हुआ (रोरुवत्) पापान्धकर को दूर करता है (निवृणक्षि) और यतः सर्वदेव सनातन वेद के द्वारा (प्राचीनेन) उदारहृदय से (बर्हणवता मनसा) राज्य करता है (कृणवः) अतः कौन तुझ से बढ़कर है (कः त्वापरि) ।

रोरुवत – युद्ध में रोता कराहता हुआ सैनिक ।

'मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु'

अ. ११.१०.२६

रोष् – घात करना, भंग करना ।

'सो अस्य कामं विधतो न रोषति'

ऋ. ८.९९.४; अ. २०.५८.२

वह परमात्मा इस परिचर्या करने वाले भीड़ की कामना को भग्न नहीं करता ।

रोह – रुह् + अच् = रोह । अर्थ– (१) जन्म ।

'स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु'

अ. १३.१.१३.

(२) उन्नत पद ।

'तेन रोहमायन्नुपमेध्यासः'

अ. ४.१४.१; वाज.सं. १३.५१; मै.सं. २.७.१७;

१०३.३; का.सं. १६.१७; श.ब्रा. ७.५.१.३६

रोहणः – (१) आकाश में उदय होने वाला सूर्य। दे. 'स्वश्चन्द्र'

रोहणी – टूटे फटे अंगों की चिकित्सा के लिए एक ओषधि।
'रोहण्यसि रोहणी'
अ. ४.१२.१.

रोहिच्छयावा – रोहित् + श्यावा। (१) लाल और नीली अग्नि ज्वाला, (२) लाल पोशाक वाली और श्याम वर्ण के अस्त्र शस्त्रों युक्त सेना। दे. 'द्युक्षा'।

रोहिणी – (१) उन्नति शील प्रकृति या प्रजा।
'अनुव्रता रोहिणी रोहितस्य'
अ. १३.१.२२.
(२) लाल रंग की गण्डमाला।
'कृष्णैका रोहिणी द्वे'
अ. ६.८३.२
(३) प्राणों का परिवर्धन करने वाली इड़ा नाड़ी, (४) उषा।
(५) रक्त वर्ण की गौ, (६) उड़ाने वाली औषधि।
'त्वमेतदधारयः कृष्णासु रोहिणीषु च'
ऋ. ८.९३.१३; आ.सं. २.१.
(७) रोहिणी नक्षत्र।
'सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी च'
अ. १९.७.२.
(८) बढ़ने वाली लता, (९) प्रजा, (१०) सन्तति।
'आमासु चिद् दधिषे पक्वमन्तः
पयः कृष्णासु रुशद् रोहिणीषु'
ऋ. १.६२.९
सूर्य कच्ची कोमल लताओं में पकने योग्य रस को प्रदान करता है और सब रसों को आकर्षण करने वाली गहरे रंग की लताओं में (रुशत् रोहिणीषु) अतिदीप्ति कारक रस प्रदान करता है।

रोहित् – (१) पुरुष का संग तज कर पुत्र सन्तानादि से फूलने फलने वाली लता स्वभाव की स्त्री-मृगी।
'रोहित्कुण्डृणाची गोलत्तिका तेऽप्सरसां'
वाज.सं. २४.३७; तै.सं. ५.५.१६.१; मै.सं. ३.१४.१८; १७६.७
(२) मृग, (३) वृद्धिशील प्रजा।
'शार्दूलाय रोहित्'
वज.सं. २४.३०; मै.सं. ३.१४.११: १७४.८

रोहित – (१) लालरंग की पोशाक में सजा हुआ राजा, (२) समस्त संसार का बीज वपन करने वाला रजोभाव से युक्त उत्पादक परमात्मा, (३) आत्मा, (४) सर्वोत्पादक सूर्य।
'यो रोहितो विश्वमिदं जजान'
अ. १३.१.१; तै.ब्रा. २.५.२.१
'आ त्वा रुरोह रोहितो रेतसा सह'
अ. १३.१.१५.
(५) रोहिता नामक मृग।
'क्रमस्वर्श इव रोहितम्'
अ. ४.४.७; ६.१०१.३
(६) वृद्धिशील, (७) तेजस्वी, (८) शरीर में उत्पन्न होने वाली जीव।
'तुरीयमिद् रोहितस्य
पाकस्थामानम्'
ऋ. ८.३.२४.
(८) वृक्षारोपण करने वाला।
'नमो रोहिताय स्थपतये'
वाज.सं. १६.१९; तै.सं. ४.५.२.१; मै.सं. २.९.३: १२२.१४; का. सं. १७.१२.

रोहिता – (१) रक्तवर्ण तेजस्वी प्राण, अपान वायु।
'अत्या वृधस्नू रोहिता घृतस्नू'
ऋ. ४.२.३
(२) लाल रंग के घोड़ों के जोड़े, (३) अग्नि की लाल किरणें
'श्यावा रथं वहतो रोहिता वा'
ऋ. २.१०.२
(४) एक दूसरे के प्रति अनुराग से रक्त, (५) सन्तापादि से वृद्धि को प्राप्त स्त्री पुरुष।
'घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व'
ऋ. ३.६.६.

रोहिताञ्जिः – लाल वर्ण का।
'अग्नयेऽनीकवते रोहिताञ्जिरनड्वान्'
वाज.सं. २९.५९; तै.सं. ५.५.२४.१

रोहिताहरी – (१) लाल अश्व, (२) अन्नादि से पुष्ट प्राण अपान, (३) वृद्धिशील अनुरक्त स्त्री पुरुष।
'हरी ऋक्षस्य सूनवि

आश्वमेधस्य रोहिता'
ऋ. ८.६८.१५

रोहिदश्व - (१) लालवर्ण की ज्वाला वाला अग्नि, (२) रक्त वर्ण के वेगवान् घोड़ो वाला या अग्नि आदि साधनों वाला सूर्य ।
'रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा'
ऋ. ४.१.८.
(३) होरित् + अश्व । रक्तवर्ण का अश्व अर्थात् व्यापक तेज वाला -अग्नि ।
'रोहिदश्व शुचिव्रत'
ऋ. ८.४३.१६
(४) रोहिता अश्वा वेगादयो गणा यस्य (वेग आदि गुण युक्त या रोहित अश्व वाला राजा), (५) अग्नि का विशेषण ।
'तान् रोहिदश्व गिर्वणः त्रयस्त्रिंशतमा वह'
ऋ. १.४५.२; कौ.ब्रा. २०.४
(६) लाल अश्वों का स्वामी ।
'ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुः'
ऋ. १०.७.४

रौहिण - (१) संसार, (२) क्रम से अपनी जड़ फैलाने वाला शत्रु (३) रोहणशील मेघ-दया.
'यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुः'
ऋ. २.१२.१२; अ. २०.३४.१३.
(४) वट वृक्ष, (५) संसार रूप वट वृक्ष (६) रोहिण, अर्थात् वट वृक्ष के समान दृढ़ मूलो पर स्थिर राजा ।
'त्वं रौहिणं व्यास्यः'
अ. २०.१२८.१३; शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.१

ल

लक्ष - लक्ष्य ।
'श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमादत्'
अ. २०.३४.४.

लक्षण - लक्ष (दर्शन और अंकन अर्थ में) + ल्युट् = लक्षण । जो देखा या अंकित किया जाय वह लक्षण है ।

लक्ष्म - लक्ष + मनिन् = लक्ष्म । अर्थ - (१) चिह्न, (२) नाम
'अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु'
अ. ६.१४१.२
'कृणुतं लक्ष्माश्विना'
अ. ६.१४१.३

लक्ष्मण्य - राजमुद्रा चिह्न से अंकित ।
'लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः'
ऋ. ५.३३.१०

लक्ष्मी - (१) सब के बीच में परमेश्वर को व्यापक और शक्तिमान् दिखाने वाली शक्ति ।
'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'
वाज.सं. ३१.२२.
(२) उत्तम लक्षणों वाली ।
'निर्लक्ष्म्यं ललाभ्यम्'
अ. १.१८.१
(३) लक्ष् (दर्शन और अंकन अर्थों में) + ल्युट् = लक्षण । लक्ष्मीः लाभात् वा लक्षणात् वा लप्स्यनात् वा, लाञ्छनात् वा लषतेर्वास्यात, प्रेप्सा कर्मणे लग्यतेर्वा स्यात, आश्लेष कर्मणः लज्जतेर्वा स्यात, श्लाघा कर्मणः-यास्क ।
लक्ष्मी शब्द (१) लक्ष (देखना) धातु से बना है । क्योंकि लक्ष्मीवान् की ओर सभी देखते हैं, या (२) लभ् धातु से बना है क्योंकि लक्ष्मीवान् सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं या (३) लाञ्छन से बना है क्योंकि सभी लक्ष्मी को अंकित या वाञ्छित करते हैं या (४) अभिलाषार्थक लष् धातु से बना है क्योंकि लक्ष्मी की अभिलाषा सभी करते हैं, या (५) लग् आश्लेषणार्थक धातु से बना है, क्योंकि लक्ष्मी का सभी अलिंगन करते हैं, या (६) लज्ज धातु से बना है, जिस का अर्थ अश्लाघा या अपमान है, क्योंकि लक्ष्मीवान् पुरुष अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करते (७) स्वभाव दर्शाने वाली प्रवृत्ति ।
'रमन्तां पुण्या लक्ष्मीः'
अ. ७.११५.४
व्युत्पत्ति- (क) लभ् + ई = लक्ष्मी (लभ् का लक्ष् मुट्) (ख) लक्ष् + ई = लक्ष्मी (मुट्) (ग) लाञ्छ + ई = लक्ष्मी (लक्ष् आदेश और मुट्) । (घ) लष् + ई = लक्ष्मी (ष से कुट् मुट्) (ङ) लग् + ई (कर्त्ता) = लक्ष्मी (श्यन्) (च) लज्ज् + ई = लक्ष्मी (लज्ज् का लक्ष्),(छ) लक्ष्म + ङीष् = लक्ष्मी ।

अर्थ - (१) सम्पत्ति, (२) लक्ष्मी नाम्नी देवता,
'भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि'
ऋ. १०.७१.२; नि. ४.१०.
यह कल्याण दायिनी लक्ष्मी वचन में ही बसती है।
(३) प्रज्ञा,
आधुनिक अर्थ - सौभाग्य, समृद्धि, धन, सफलता, श्री, सौन्दर्य, कान्ति धन की अधिष्ठात्री देवी राजशक्ति सामाज्य, वीरपत्नी।

लग - संग तथा गति अर्थ में प्रयुक्त धातु। दे. 'लगते'

लगते - लग (संग अर्थ में गति अर्थ में) के लट् प्र.पु.ए.व. में 'लगति' रूप भी होता है।

लङ्ग - गत्यर्थक धातु है।

लङ्गति - लगि (गत्यर्थक) धातु के प्र.पु.ए.व. में रूप।

लज्ज, लज्जते - अश्लाघा अर्थ में 'लज्ज' धातु आया है। 'लज्जते' लट् के प्र.पु.ए.व. में होता है। अर्थ है-लजाता है, श्लाघा या प्रशंसा नहीं करता है।

लप्स्य - पाने की इच्छा करना, उत्कण्ठा करना। लट् प्र.पु. ए.व.में 'लप्स्यति' होता है। दे. 'लक्ष्मीं'।

लपित - व्यर्थ झूठमूठ (२) चुगलखोर, (३) व्यर्थ बकवास।
'ये मा क्रोधयन्ति लपितः'
अ. ४.३६.९

लम्ब - लटकना। लह् प्र.पु.ए.व.में 'लम्बते' (लटकता है) होता है। लम्ब धातु से भी 'लाङ्गल' शब्द बना है।

लम्बचूड़ - लम्बते चूड़ा यस्य स लम्ब चूडः। लम्बी शिखा वाला।

लयः - कुषि आदि की बाधाओं का विनाश।
'सीरं च मे लयश्च मे'
वाज.सं. १८.७; तै.सं. ४.७.३.२; मै.सं. २.११.४: १४१.१५; का.सं. १८.८.

ललाट - माथा,
'मस्तिष्कमस्य यतमो ललाटम्'
अ. १०.२.८

ललाम - सबसे सुन्दर।

ललामगुः - (१) सुन्दर उत्तम वाणी से युक्त विद्वान्, (२) सुन्दर गति वाला।
'यद् देवासो ललामगुम्'
अ. २०.१३६.४; वाज.सं. २३.२९; श.ब्रा. १३.५.२.७; शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.१; १६.४.६.
(३) ललाम सुख के लिए जाने और परिश्रम करने वाला-उवट (ललामं सुखं कर्तुम् गच्छति इति ललामगुः)।

ललामी - (१) शिरोवत् उपरिभागः प्रशस्तो यस्याः सा (जिसका ऊपरी भाग सिर के समान प्रशस्त हो)- दया.
(२) उत्तम व्यापक साधनों से युक्त, (३) पौरुष युक्त वीरपुरुषों से बनी सेना दे.। 'द्युक्ष'।
'रोहिच्छ्या सुमदंशुर्ललामीः'
ऋ. १.१००.१६
(४) स्त्रियों में रत्नभूत, सुन्दर
'निर्लक्ष्म्यं ललाम्यम्'
अ. १.१८.१

लब - लवा पक्षी। lark
'सोमाय लबानलभते'
वाज.सं. २४.२४; मै.सं. ३.१४.५: १७३.७

लवइन्द्र - (१) ऋग्वेद के दशममण्डल के ११९ वें सूक्त का देवता (२) जीवात्मा - ज.दे.श.।
(३) लव रूप में स्थित इन्द्र -सा.

लषति - अभिलषति (अभिलाषा करता है)। दे. 'लक्ष्मी'।

लाक्षा - (१) सिलाची, (२) लाह नामक ओषधि पीले वर्ण और पार्श्वों पर सूक्ष्म रोम वाली होती है तथा वट, पीपल पाकड़ पलाश आदि पेड़ों पर पाई जाती है।
'अपामसि स्वसा लाक्षे'
अ. ५.५.७

लांगन - (१) हल,।
'शुनं कृषतु लांगलम्'
ऋ. ४.५७.४; अ. ३.१७.६; तै.आ. ६.६.२
(२) अन्न का पालक, (३) खेत में कुटिलता से चलने वाला हल।
'लाङ्गलं पवीरवत्'
अ. ३.१७.३; वाज.सं. १२.७१; तै.सं. ४.२.५.६; मै.सं. २.७.१२: ९१.१७;का.सं. १६.१२; श.ब्रा. ७.२.२.११;वै.सू. २८.३१; आप. श्रौ.सू. १६.१९.२.
(४) लगि + कल = लाङ्गल (जो चलाया जाता

है) । लगि गत्यर्थक है ।
लग् + अलच् = लाङ्गल । लव + अलच् = लाङ्गल (पृषोदरादिवत्) । अर्थ है वृक (वृको लाङ्गलः भवति) । (संगति), लविलम्ब (लटकना) धातुओं से भी लाङ्गल शब्द बनता है । 'लाङ्गलं लङ्गतेः' ।
लांगूलं लगतेः लङ्गतेः लम्बतेः वा - यास्क
लांगूल (पूंछ) की तरह हल भी पीछे खींचा जाता है । (५) पूंछ । पूंछ पीठ के पीछे लटकती रहती है ।

लाज - लज् या लजि (भर्जन) + घञ् = लाज । लाज् धातु भी भर्जन और भर्त्सन अर्थ में आया है। अतः लाज् + घञ् = लाज । लाजा लाजतेः । अर्थ है-भृष्ट धान्य, भुंजा हुआ धान्य, लावा । अमरकोष में भी कहा है-
'लाजाः पुं भूम्नि चाक्षताः'
आधुनिक अर्थ - लाज का अर्थ भीगा अन्न और लाजा का अर्थ भूंजा अन्न है ।

लाजाः - दीप्त्यर्थक राज् धातु से सम्पन्न । अर्थ - (१) प्रफुल्लित व्रीहि, (२) प्रसन्न प्रजाएं । (३) समृद्ध विभूतियाँ, (४) लावा ।
'लाजाः सोमांशवो मधु'
वाज.सं. १९.१३.

लाजी - लाजिन् शाचिन् इत्येतत्, लाजाः दीप्रयो अस्य सन्ति इति लाजी । इसमें दीप्ति है, अतः यह लाजी है । अर्थ - (१) राजी, (२) प्रकाशों से प्रकाशवान् -परमेश्वर ।
'भूर्भुवः स्वर्लाजीन्'
वाज.सं. २३.८

लाञ्छन - लाञ्छ + ल्युट् = लाञ्छन । लाञ्छन से ही लक्ष्मी शब्द बना है । दे. 'लक्ष्मी' ।

लायः - (१) लक्ष्य, (२) सदा ग्रहण करने योग्य ।
'अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्'
ऋ. १०.४२.१; अ. २०.८९.१; वै.सू. ३३.१९.
(३) हृदय को लगाने वाला बाण ।

लिबुजा - लि + भज् + क्विन् = लिभज् , लिभज् + टाप् = लिभजा = लिबुजा । अर्थ- लता । दे. 'यमी' ।
'अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां
परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्'
ऋ. १०.१०.१४
हे यमी, तू किसी अन्य वर को ढूंढ़ और उससे योगकर, जैसे लता वृक्ष से मिली रहती है । लता वृक्ष में लिपटती छिपती और बैठती जाती है ।
लिबुजा व्रततिः भवति लीयते विभजन्ति इति (लिबुजा लीन एवं विभक्त होती है अतः लिबुजा का अर्थ व्रतति है) ।
'लिभजा' से 'लिबुजा' निपातन से हुआ है ।

लोक - (१) दर्शनीय, (२) उत्तम उपकार, (३) उत्तम जन्म ।
'कर्त्ता सुदासे अह वा उ लोकम्'
ऋ. ७.२०.२
(४) आदित्य की आत्मा, (५) शरीर । दे. 'अप्रमादम्' ।
'सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः'
वाज.सं. ३४.५५; नि. १२.३७
सूर्य के अस्त हो जाने पर उनकी सात रश्मियाँ आदित्य की आत्मा में लीन हो जाती है ।
अथवा
जीव के सो जाने पर इन्द्रियाँ शरीर में सो जाती हैं ।

लोककृत् - (१) प्रजाओं की व्यवस्था करने वाला, (२) लोकसंग्रही ।
'लोककृतः पथिकृतो यजामहे'
अ. १८.३.२५-३५; १८.४.१६-२४.
(३) लोककर्त्ता या स्थानकर्ता-इन्द्र परमेश्वर । दे. 'चित्' ।
'अभीके चिदु लोककृत्
सङ्गे समत्सु वृत्रहा'
ऋ. १०.१३३.१; अ. २०.९५.२; साम. २.११५९; तै.सं. १.७.१३.५; मै.सं. ४.१२.४; १८९.८; तै.ब्रा. २.५.८.२.
सामने आए संग्राम काल में (अभीके सङ्गे) तथा संग्रामों में (समत्सु) अभिपूजित लोककर्त्ता या स्थान कर्त्ता इन्द्र (लोककृत् चित्) वृत्र या विघ्नों का वध या नाश करने वाला होगा (वृत्रहा उ) ।
(४) साक्षात् करने वाला (५) डरने वाला ।

लोककृत्नु - (१) लोकों का रचयिता ।
'उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम्'
ऋ. ८.१५.४; अ. २०.६१.१; साम. १.३८३; २.२३०

लोकसनि – लोक या आत्मा को बल, कान्ति और तेज़ प्रदान करने वाला ।
'पशुसनि लोकसन्यभयसनि'
वाज.सं. १९.४८; मै.सं. ३.११.१०: १५६.१७; का.सं. ३८.२; श. ब्रा. १२.८.१.२२; तै.ब्रा. २.६.३.५.

लोकसंमित – (१) लोक से समान जाना गया-आत्मा ।
'अविं लोकेन संमितम्'
अ. ३.२९.३-५

लोग – (१) लोक समाज ।
'इमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम्'
ऋ. १०.१८.१३; अ. १८.३.५२; तै.आ. ६.७.१.
(२) लोक, जनसमूह ।

लोध – (१) लोब्धा, लोभ के वश में हुआ, लुब्ध ।
'लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः'
ऋ. ३.५३.२३; नि. ४.१४.
(२) लुभ् + क्त = लब्ध = लोध (व का लोप, उ का ओ- पृषोदरादिशब्दों के समान) । दे. 'पशु' ।

लोप्य – (१) घास आदि काटने वाला ।
'नमो लोप्याय चोलप्याय च'
वाज.सं. १६.४५; तै.स. ४.५.९.१; मै.सं. २.९.८: १२६.१३; का. सं. १७.१५.

लोपामुद्रा – (१) इच्छा के कारण अपने को छिपाने की चेष्टा में ही सुख प्रतीत करने वाली स्त्री, (२) लोप + आ + मुद् + रा = लोपामुद्रा । अर्थ-छिपे स्थान पर प्रियतम से अति प्रमोद पूर्वक रमण करने के लिए उत्सुक स्त्री (३) एक वेद कालीन स्त्री, (४) लोप एव समन्तात् प्रत्ययकारिणी यस्याः सा.-दया. ।
'लोपामुद्रा वृषणं नीरिणाति'
ऋ. १.१७९.४
(५) ब्रह्मचर्य की मर्यादा तोड़ने वाली (६) एक अप्सरा जिससे अगस्त्य मोहित हुए थे । (७) अगस्त्य की पत्नी । दे. 'आगत्'

लोमशवक्षणा – (१) पार्श्वों पर सूक्ष्म रोम वाली – (२) सिलाची, लाक्षा ओषधि ।
'शुष्मे लोमशवक्षणे'
अ. ५.५.७

लोपाश – (१) लो + पाश = लोहपाश, (२) लोहे के बने पाश के समान दृढ़
'लोपाश आश्विनः'
'वाज.सं. २४.३६; मै.सं. ३.१४.१७: १७६.३
(३) रोयाशः (४) तृणचारीपशु ।
'लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः'
ऋ. १०.२८.४; नि. ५.३

लोमन् – लूञ् (छेदना) + मनिन् = लोमन् । यत् लूयते तत् लोम (जो लून किया जाता है वह लोम है) ।
अथवा ली (लीन होना) + मनिन् = लोमन् । लोम शरीर में लीन रहता है ।

लोमवत ह्रद – (१) शेवाल युक्त तालाब के समान सलिलमय प्रकृति तत्व ।
'अन्तर्लोमवति ह्रदे'
अ. २०.१३३.६; शां.श्रौ.सू. १२.२२.१.६.

लोष्ठ – रुज् (भङ्ग करना) धातु के अविपर्यय से तन् प्रत्यय कर लोष्ट बना ।
कूलं रुजतेः विपरीतात् लोष्टो अविपर्ययात् (कूलशब्द रूज् धातु को उलट कर और लोष्ट 'रुज्' का विपर्यय किए बिना बनाया गया है) । रुज् + तन् = लोष्ट । लोष्ट भग्नदिया जाता है (भज्यते हि. सः) यह शब्द पुल्लिंग और नपुंसक दोनों हैं ।
अमरकोष में इसे नपुंसक कहा गया है-
'लोष्टानि लोष्टकः पुंसि'
परन्तु पालित ने –
'लेष्टुः शण्ढेऽपि लोष्टः स्यात्' में इसे पुल्लिंग माना है ।
अर्थ- (१) मिट्टी की ढेर या ढेला,

लोह – (१) लोहा, (२) जन्मलाभ, संसार में जन्म लेना ।
'उष्णो लोहे न लिप्सेथाः'
अ. २०.१३४.५
(३) लाल लोहा, कान्तिसार आदि ।
'श्यामञ्च मे लोहञ्च मे'
वाज.सं. १८.१३; तै.सं. ४.७.५.१; मै.सं. २.११.५: १४२.७; का. सं. १८.१०.

लोहित – (१) रुधिर विकार से उत्पन्न लाल चकत्तों वाला रोग ।
'लोहितस्य वनस्पते'
अ. ६.१२७.१

लोहितक्षीरा - (१) रोग के कारण रुधिर के समान दूध देने वाली गौ
'शं गावो लोहितक्षीराः'
अ. १९.९.८

लोहितवासस् - (१) जिसका वस्त्र लाल हो। 'जग्मयः' का विशेषण। दे. 'अभ्राता'।
'अमूर्या यन्ति जामयः हिरा लोहितवाससः'
अ. १.१७.१; नि. ३.४.
(२) जिसमें रक्त का निवास हो ऐसी नाड़ी, (३) रजस्वला स्त्री।

लोहितास्य - रुधिर से मुंह लाल किए हुआ।
'दुर्गन्धीन् लोहितास्यान्'
अ. ८.६.१२

लोहिताहिः - (१) लोहित अर्थात् लोहादि के बने पदार्थों को आघात करने वाला लोहकार-लोहार (२) लाल सर्प जो गृह निर्माण में चतुर होता है।
'कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करं सादस्ते त्वाष्ट्राः'
वाज.सं. २४.३१; मै.सं. ३.१४.१२: १७५.१

लोहितोर्णी - लाल ऊन पहनने वाली।
'फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षीताः सारस्वत्यः'
वाज.सं. २४.४; तै.सं. ५.६.१२.१; मै.सं. ३.१३.५:१६९.८

लोहिनी - लालवर्ण की गण्ड माला।
'अपचितां लोहिनीनाम्'
अ. ७.७४.१

लौक्याः - (१) समस्त लोकों में विद्यमान प्रजाएं
'लौक्या उच्छिष्ट अयत्ताः'
अ. ११.७.३
(२) लोक में विद्यमान प्राणी।
'लौक्याश्च मासाश्च'
अ. १५.६.१७

व

वक्त्व - (१) अध्यापन या प्रवचन करने योग्य उपदेश वाक्य, (२) उपदेश करने योग्य शिष्य।
'विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम्'
ऋ. ३.२६.९

वक्तुः - (१) गर्वित।
'मा नो निदे च वक्तवे'
ऋ. ७.३१.५; अ. २०.१८.५.
(२) बकवास करने वाला, (३) अपशब्द भाषी।

वक्मन् - वच् + मनिन् = वक्मन्। अर्थ-(१) प्रवचन, उपदेश।
'स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मनि'
ऋ. १.१३२.२

वक्मराजसत्यः - (१) वचन में सदा सत्य से चमकने वाला, (२) सदा सत्यभाषी।
'ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः'
ऋ. ६.५१.१०

वक्म्यः - वक्तुं योग्यः (वर्णन करने योग्य)।
'प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषाम्'
ऋ. १.१६७.७

वंक्रि - (१) पसली की हड्डी, (२) कुटिल गति।
'चतुस्त्रिंशद वाजिनो देवबन्धोः वंक्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति'
ऋ. १.१६२.१८; वाज.सं. २५.४१; तै.सं. ४.६.९.३

वक्वः - वक्ता
'ऊर्मिर्न निम्नैर्द्रवयन्त वक्वाः'
ऋ. १०.१४८.५

वक्वन् - वक्ता। दे. 'अनाकृत'।
'इन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः'
६.२२.५; अ. २०.३६.५

वक्वरी - (१) वच् + वरी। ज्ञानोपदेश करने वाली वाणी। दे. 'वक्वन'।
(२) द्वि.व.। प्रशंसिते। सूर्यमण्डल तथा भूमण्डल-दया।
(३) एक वचन में रूप है-'वक्वरि'। अर्थ है बकने वाला।
बकरी शब्द का मूल सम्भवतः वकरी ही हो।
'हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते'
ऋ. १.१४४.६

वक्वा - (१) वक्रगति से जाने वाला। (२) व्यूहादि से वक्रगति से चलने वाली सेना, (३) वक्र, सुन्दरगति वाली स्त्री,
(४) मधुरवचन बोलने वाली।
'प्रायुवो नभन्वो न वक्वाः'
ऋ. ४.१९.७

वक्षणा - (१) जगत् को धारण करने वाली दिशा,

(२) वहन और धारण करने में समर्थ सेना (३) वचन योग्य वाणी ।
'महि ज्योतिर्निहितं वक्षणासु'
ऋ. ३.३०.१४
(४) नदी,
(५) जल बहाने की नाली ।
'इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचम्'
यानि चकार प्रथमानि वज्री
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द
प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम्'
ऋ. १.३२.१; अ. २.५.५; आ.सं. ३.११; मै.सं. ४.१४.१३: २३७.८; तै.ब्रा. २.५.४.२.
वज्री इन्द्र ने मुख्य कर्मों को किया । उन कर्मों का मैं प्रकर्ष से वर्णन करता हूँ । मेघ को हत किया (अहिः अहन्) । तत्पश्चात् (अनु) जलों को बहाया (अपः ततर्द) तथा पर्वतों की नदियों को (वक्षणाः) प्रकर्ष से काटा (प्राभिनत्) ।
स्वा. दयानन्द का अर्थ – मैं विदारक सूर्य की तरह शत्रुमर्दन राजा के पराक्रमों को कहता हूँ । किरणों के द्वारा सूर्य ने जिन कर्मों को करता या किया है उसी प्रकार वज्रधारी राजा को भी राजधर्म के मुख्य कर्मों को करना चाहिए । सूर्य मेघ का दमन करता, जल बरसाता तथा दूर दूर तक फैले प्रवाह को पिघलाता है । उसी प्रकार राजा भी शत्रुओं का दमन कर शान्ति, सुख और लक्ष्मी की वर्षा करें ।
(६) कटि या कुक्षि के भाग
'आ ते ददे वक्षणाभ्यः'
अ. ७.११४.१

वक्षणेस्था – (१) बीच में स्थित, । (२) आज्ञा और राज्य कार्य को धारण करने के कार्य में स्थित ।
'सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः'
ऋ. ५.१९.५

वक्षति – वहतु (पहुंचे) । दे. 'जूर्णि' ।
क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति
ऋ. १.१२९.८; नि. ६.४.
शत्रुओं द्वारा छोड़ी शक्ति या भेजी सेना हमारे पास न पहुंचे (न वक्षति) ।

वक्षथ – (१) कार्य भार को उठाने या धारण करने का सामर्थ्य
'अनूनेन बृहता वक्षथेन'
ऋ. ४.५.१
(२) रोष, तेज, (३) वचनोपदेश ।
'सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषाम्'
ऋ. ७.३३.८; नि. ११.२०
(४) ज्योति, (५) स्तुति कर्त्तादि. 'पट' ।
(५) धारण करने, ढोने का सामर्थ्य ।
'चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथः'
ऋ. १०.११५.१; साम. १.६४; कौ.ब्रा. २१.३

वक्षस् – वह् (सोना) + असुन् = वक्षस् (सक् का आगम, ह् का ञ् और पुनः ष) ।
अथवा-वक्ष् (संघात अर्थ में) + असुन् = वक्षस् । (१) अस्थि पञ्जर का संघात या समूह, (२) छाती । वक्ष काम में ही ऊढ़ अर्थात् प्रवेशित है (इदमपि इतरत् वक्षः एतस्मादेव अध्यूढं काये) ।
(३) प्रकाश-दया. । सायण ने इसका अर्थ छाती ही किया है । दे. 'अदमन्' ।
'उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षः'
ऋ. १.१२४.४; नि. ४.१६.
उषा आदित्य से छाती के समान या आदित्य के प्रकाश से अश्लिष्ट दीख पड़ती है ।

वक्ष्यन्ती – वच् + स्य (लृट् में) + शतृ + ङीष् = वक्ष्यन्ती । कथष्यिन्ती ।
अर्थ – कुछ कहती हुई । दे. 'अधिधन्वन्'
'वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णम्'
ऋ. ६.७५.३; वाज.सं. २९.४०; तै.सं. ४.६.६.१; मै.सं. ३.१६.३: १८५.१४; का.सं. (अश्व). ६.१; नि. ९.१८

वक्षि – वह् (ढोना, खींचना) के लेट् म.पु.ए.व.में 'सिप्' कर वक्षि रूप हुआ है । अर्थ है खींच ले चल, ढो । दे. 'रजिष्ट' ।

वक्षी – (१) ज्वाला, (२) सेना । दे. 'वक्षणेस्था'
'सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः'
ऋ. ५.१९.५

वग्नु – (१) वचन । उपदेश ।
'वग्नुमियर्ति यं विदे'
ऋ. ९.१४.६
(२) वच् + नु । शब्द, मेढ़क की बोली, (३) उत्तम उपदेश ।
'मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति'
ऋ. ७.१०३.२

उत्तम उपदेश के अर्थ में -

'अर्वाचीनं सुते मनः
ग्रावा कृणोतु वग्नुना'

ऋ. १.८४.३; साम. २.३७९; वाज.सं. ८.३३; तै.सं. १.४.३७.१; का .सं. ३७.९; श.ब्रा. ४.५.३.९.

उत्तम वचनोपदेशों को देने वाला वाग्मी पुरुष (ग्रावा) उत्तम वचनोपदेशों से (वग्नुना) तेरे चित्त को अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्य कार्य की ओर आकर्षित करें ।

वग्वन - वाणी द्वारा सेवन करने योग्य सुख ।

'ते सु वन्वन्तु वग्वनाँ अराधसः'

ऋ. १०.३२.२

वग्वनु - वच् + वनु = वग्वनु (१) मुझे देवताओं को दो ऐसी वाणी-सा. (२) वेदवाणी से संभजनीय ज्ञान- ज.दे.श. ।

दे. 'रथर्यति' ।

'आविष्कृणोति वग्वनुम्'

ऋ. ९.३.५; साम. २.६०९

सोमरस यज्ञ में आकरः 'मुझे देवताओं को दो' ऐसी वाणी का प्रकाश करता है (वग्वनुम् आविष्कृणोति)- सा. ।

तेजस्वी शान्त विद्वान् (पवमानः देवः) वेदवाणी से संभजनीय ज्ञान को प्राप्त करता है (वग्वनुम् आविष्कृणोति) - ज.दे. श. ।

वघ - टिड्डी आदि जन्तु ।

'यावतीर्वघा वृक्षसर्प्यो बभूवुः'

अ. ९.२.२२

वघापति - कृषि नाशक जन्तुओं का पति ।

'तर्दापते वघापते'

अ. ६.५०.३

वंक्रि - अंग ।

'वङ्क्रीरश्वस्यं स्वधितिः समेति'

ऋ. १.१६२.१८; वाज.सं. २५.४१; तै.सं. ४.६.९.३.

वङ्कु - (१) धन की कामना करने वाला । 'वङ्कु' शब्द धन के अर्थ में आया है । अंग्रेजी के bank शब्द से 'वङ्कु' का साम्य विचारणीय है ।

'यया वाणिग्वङ्कुरापा पुरीषम्'

ऋ. ५.४५.६

(२) कुटिल गतिवाला ।

(३) अति वेगवान् ।

(४) इन्द्र का विशेषण ।

'इन्द्रो वङ् कू वङ् कुतराधि तिष्ठति'

ऋ. १.५१.११

अतिवेगवान् इन्द्र, सभापति या राजमन्त्री (वंकू इन्द्रः) अति कुटिल मार्गों से दौड़ने वाले अश्वों पर तथा कुटिल चालों के चलने वाले शत्रुओं पर भी अपना अधिकार जमा लेता हैं । (वङ् कुतरा अधितिष्ठति)

(४) कुटिल, टेढ़ा, शत्रुओं से कभी पराजित न होने वाला, (६) रुद्र का विशेषण । दे. 'यज्ञसाध' ।

वङ्कुतरा - द्वि.व. । (१) कुटिल मार्ग पर चलने वाले अश्व । दे. 'वङ्कु' ।

वङ्कू - द्वि.व. । ए.व. में 'वङ्कु' । अर्थ (१) वक्रगति से जाने वाले (२) वक्र गति से देह में व्यापक प्राण अपान वायु ।

'वङ् कू वातस्य पर्णिना'

ऋ. ८.१.११

वङ्गृद - (१) जाने के मार्गों या मर्यादाओं का विनाशक ।

(२) विषादि देने वाला, (३) दुष्ट व्यवहार का उपदेश देने वाला - दया. ।

(३) टेढ़ी चालों, कुटिल व्यवहारों को बतलाने या चलने वाला ।

'त्वं शतावङ्गृदस्याभिनत् पुरः
अनानुदः परिषूता ऋजिश्वना'

ऋ. १.५३.८; अ. २०.२१.८

तू टेढ़ी चालों, कुटिल व्यवहारों को बतलाने या चलाने वाले (वङ्गृदस्य) और अपने अनुकूल उचित पदाधिकारों को न देने वाले दुष्ट शत्रु पुरुष के (अनानुदः) सैकड़ों दुर्गों को (शतापुरः) रुधे हुए कुत्ते के समान आज्ञाकारी, वशवर्त्ती सेना बल द्वारा (ऋजिश्वना) घेर कर तोड़ डाल (अभिनत्) और अधीन पुरुषों से प्राप्त पदार्थ की रक्षा कर (परिषूता) ।

वच् - वाच्, वाणी । दे. 'रथर्यति' ।

वचस् - (१) वच् + असुन् = वचस् । अर्थ - जो बोला जाय, वचन, बात । दे. 'अनस्' ।

'आ ते कारो श्रृणवामा वचांसि'

ऋ. ३.३३.१०; नि. २.२७.

(२) स्तुति । दे. 'अर्वन '

'पृणक्तु मध्वा सममिमा वचांसि'

ऋ. ४.३८.१०; तै.सं. १.५.११.४; नि. १०.३१.
वह दधिक्रा देव या मेघ इन स्तुतियों को मधु अर्थात् जल से युक्त करे ।
विश्वे देवासः श्रृणवन् वचांसि मे
ऋ. १०.६५.१३; नि. १२.३०

वचस्यते – स्तुति की जाती है । दे. 'नमस्यु' ।

वचस्या – (१) वचन, वेदवाणी और गुरु प्रवचन के योग्य
(२) अध्ययन, अध्यापन और ऊहापोह आदि क्रिया ।
'उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्याम्'
ऋ. २.३५.१; मै.सं. ४.१२.४: १८७.१७; का.सं. १२.१५; आप.श्रौ.सू. १६.७.४.
(३) शब्द करने या गरजने वाली, (४) विद्युत गर्जना ।
'अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या'
ऋ. २.१०.६
(५) वच् + असुन् = वचस्, तृतीया ए.व. में 'वचसा'- वचस्या ।अर्थ–वचन से, स्तुति से ।
(६) संज्ञा होने पर अर्थ है–स्तुति । दे. 'अभ्यानट्' 'परिपति' ।
'पथस्पथः परिपतिं वचस्या
कामेन कृतो अभ्यानडर्कम्'
ऋ. ६.४९.८; वाज.सं. ३४.४२; तै.सं. १.१.१४.२; नि. १२.१८.

वचस्यु – (१) शास्त्रोपदेश का इच्छुक, (२) ज्ञानोपदेश के वचनों की इच्छा करने वाला ।
'अददा अर्भां महते वचस्यवे
कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते'
ऋ. १.५१.१३
हे राजन्, जैसे बड़े गुणों से युक्त एवं ज्ञानोपदेश के वचनों की इच्छा करने वाले (वचस्यवे) उत्तम सिद्ध हस्तांगुलियों वाले (कक्षीवते) प्रवीण क्रिया, कुशल शिष्य को (सुन्वते) । आचार्य थोड़ी ही विवेचना कारिणी अथवा छेदन भेदन करने की शिल्पविद्या का (वृचयाम्) उपदेश देता है (अददा) ।
(३) उत्तम वाणी बोलने वाला (४) वेदवाणी का इच्छुक ।
'ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे'
ऋ. १.१८२.३

वच्य– धा. । अभ्यास करना,
'आ वच्यस्व महिप्सरः'
ऋ. ९.२.२; साम. २.३८८.

वच्यमान– (१) कहा गया, (२) प्रेरित, (३) उपदेश किया गया ।
'प्र कारवो मनना वच्यमानाः'
ऋ. ३.६.१; मै.सं. ४.१४.३: २१८.११; कौ.ब्रा. १२.७; तै.ब्रा. २.८.२.५; आश्व.श्रौ.सू. ३.७.५.

वच्यमाना– (१) उत्तम वचनों से प्रशंसित स्त्री, (२) उच्यमाना ।
'इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमाना'
ऋ. ३.३९.१

वचोविद् – परस्पर बातचीत का ज्ञान कराने वाली ।
'वचोविदं वाचमुदीरयन्तीम्'
ऋ. ८.१०१.१६

वचोयुजा– (१) वाणियों से परस्पर अभियोग करने वाले दो वकील ।
'वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम्'
ऋ. ६.२०.९
(२) द्वि.व. । वाणी के साथ चलने वाली । (३) वाणी के साथ योग देने वाले ।
'य इन्द्राय वचोयुजा
ततक्षुर्मनसा हरी'
ऋ. १.२०.२
जो इन्द्र के लिए वाणी के साथ चलने वाले दो वेगवान् अश्वों को निर्माण करते या जीवात्मा के लिए वाणी के साथ योग देने वाले प्राण अपान वायु की रचना करते हैं ।
(४) वाणी या वाक् शक्ति से बंधे हुए प्राण और अपान ।
'संमिश्ल आ वचोयुजा'
ऋ. १.७.२; अ. २०.३८.५; ४७.५; ७०.८; साम. २.१४७; आ.सं. २.३; मै.सं. २.१३.६: १५५.३; का.सं. ३९.१२; तै.ब्रा. १.५.८.२.

वचोविद् – (१) स्तुतिवचन कहने में चतुर, वाग्मीपुरुष, (२) भक्ति का मर्म समझने वाला ।
'सोम गीर्भिष्ट्वा वयं
वर्धयामो वचोविदः'
ऋ. १.९१.११; मै.सं. ४.१०.१;१४२.१७; का.सं. २.१४; पंच.ब्रा. १.५.७; तै.ब्रा. ३.५.६.१.

वज्र- वृजि + रक् = वज्र । स हि वर्जयति प्राणैः प्राणिनः (वज्र प्राणियों को प्राणों से वर्जित या वियुक्त करता है अतः वज्र है) ।

अर्थ - (१) वज्र-सा. (२) पराक्रम-दया. दे. 'इलीविश' ।

'वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम्'

ऋ. १.३३.१२

हे इन्द्र, संघ की अभिलाषा करने वाले शत्रु को (पृतन्युं शत्रुम्) मार (अवधि) -सा. ।

हे ऐश्वर्यवान् राजन्, पराक्रम से (वज्रेण) सेना के साथ आक्रमण करने वाले शत्रु को (पृतन्युं शत्रुम्) मार (अवधीः) -दया.

(३) खड्ग । दे. 'कियेधस्' ।

'अस्मा इन्दु प्र भरा तूतुजानाः
वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः'

ऋ. १.६१.१२; अ. २०.३५.१२; मै.सं. ४.१२.३; १८३.१०; का.सं. ८.१६; नि. ६.२०.

हे राजन् या इन्द्र, इस मेघ वृत्र या दुष्टजन पर शीघ्र वज्र या खड्ग का प्रहार कर क्योंकि तू आशुकारी (तूतुजानः) अनेक गुण -सम्पन्न (कियेधाः) तथा सर्वस्थायी है ।

(४) वीर्य ।

'वीर्य वै वज्रः' वीर्य ही वज्र हैं

श.ब्रा. ७.५.२.२४

वज्रदक्षिण- (१) दक्षिण हस्त में वज्र धारण करने वाला इन्द्र ।

(२) अविद्या नाश के लिए ज्ञानरूपी वज्र को देने वाला । विद्वान् । -दया. ।

'अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे'

ऋ. १.१०१.१; साम. १.३.८०

दाहिने हाथ में वज्र धारण करने वाले (वज्रदक्षिणम्) मरुतों के साथ रहने वाले (मरुत्वन्तम्) इन्द्र को अपनी रक्षा चाहने वाले (अवस्यवः) हम मैत्री को लिए आह्वान करते हैं (हवामहे) । -सा.

हम जिज्ञासु जन (अवस्यवः) ज्ञानामृत बरसाने वाला (वृषणम्) ज्ञानरूपी वज्र को देने वाले (वज्रदक्षिणम्) तथा प्रशस्त मनुष्यों से सहायता सम्पन्न (मरुत्वन्तम्) आचार्य को स्वीकार करते हैं (हवामहे) ।

वज्रभृत्- वज्रधारी इन्द्र या वीरपुरुष । दे. 'दस्युहा'

वज्रबाहुः- (१) जिस के हाथ में वज्र हो, (२) इन्द्र का एक नाम । दे. 'अपाहन्' ।

'इन्द्रो अस्माँ अरदद् वज्रबाहुः'

ऋ. ३.३३.६; नि. २.२६

वज्रापवसाध्य - वज्र + आपवसाध्य । वज्र रूप जल से साधने योग्य प्राणगण ।

'वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन्'

अ. २०.४८.३

वज्रिन् - वृजि + रक् = वज्र, वज्र + इनि = वज्रिन् ।

(१) वज्रधारी इन्द्र । दे. 'आशिर' ।

'इन्द्राय गाव आशिरं
दुदुह्रे वज्रिणे मधु'

ऋ. ८.६९.६; अ. २०.२२.६; ९२.३; साम. २.८४१; तै.ब्रा. २.७.१३.४

गौओं ने वज्री इन्द्र के लिए बार बार दूध दिया ।

(२) पराक्रमी परमात्मा (३) पापों से निवृत्त करने वाले ज्ञान वज्र का धारक इन्द्र । दे. 'ऋचीषमम्'

'इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य
स्तवे वज्र्यृचीषमः'

ऋ. १०.२२.२

इस यज्ञ में आज हम लोगों से (अस्मे) वज्रहस्त, ऋचा के समान गुणों वाला (ऋचीषमः) विख्यात् इन्द्र स्तुत किए जाते हैं ।

वञ्च्- (१) चलना, (२) ठगना, वञ्चना करना

'त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि'

अ. १०.८.२७

वञ्चत् - (१) वञ्चना करने वाला ।

'नमो वञ्चते परिवञ्चते'

वाज.सं. १६.२१; तै.सं. ४.५.३.१; मै.सं. २.९.३: १२३.३; का.सं. १७.१२.

(२) भ्रमण करने वाला ।

'छिन्नपक्षाय वञ्चते'

अ. २०.१३५.१२; शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.५.

वञ्चति- प्राप्त होती है ।

'आहलगिति वञ्चति'

वाज.सं. २३.२२, २३; श.ब्रा. १३.२.९.६

वट्- वेष्टनार्थक धातु, बटोरना, बटोरा जाना (२) सूत कातने में जहाँ रूई सिमिट जाती है उसे वट पड़ना कहते हैं । दे. 'वटूरि'

वटश्वस- (१) वट की कोपल ।

'पिपीलिकावटश्वसः'

अ. २०.१३५.३

वटूरि - (वेष्टनार्थक धातु) + ऊरि = वटूरि । अर्थ (१) वेष्टित -दया. (२) चारों तरफ से घेर लेने वाला वेगवान् सेना बल-ज.दे.श. ।

(३) बटोर लेने वाला ।

(४) लपेट लेने वाला हाथी का पैर या सूंड

'छिन्धि वटूरिणा पदा'

ऋ. १.१३३.२

लपेट लेने वाले हाथी के पैर या सूड़ के समान चारों तरफ से घेर लेने वाले सेनाबल से (वटूरिणा) चारों ओर से घेर कर उसे काट ।

वणिक् - (१) व्यापारी ।

'तुलायै वाणिजम्'

वाज.सं. ३०.१७; तै.सं. ३.४.१.१४.

(२) व्यवहारशील वैश्य, वणिक्

'याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे'
दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत्'

ऋ. १.११२.११

जिन उपायों से, हे उत्तम रीति से दान देने वाले विद्वान् अश्विनो या शिल्पियो (सुदानू) विद्वान् पुरुष के सन्तानों के लिए या औशिज के लिए, व्यवहारशील वैश्य के लिए (वणिजे) दीर्घकाल तक गुरुओं से उपदेश श्रवण करने वाले बहुत ज्ञान वाले धनादि के स्वामी के लिए (दीर्घश्रवसे) धन और ज्ञान का अक्षय कोश वर्षण करते हैं (मधु कोशो अक्षरत्) ।

(३) पण्य + निजिर् (निज्) + क्विप् = वणिज् (ण्य का ण्येप तथा प् का व् पृषोदरादिवत्) । पणिः वणिकः भवति । वणिक् पण्यं नेनेक्ति (पणि वणिक् का नाम है, यह व्यवहार करता है अतः पणि है) ।

वणिक पण्य अर्थात् बाजार में बिकने वाले पदार्थ को बिकने लायक शुद्ध बनाता है इसी से इसका नाम 'वणिज्' पड़ा । अर्थ- बनिया । व्यापारी लोक में 'पणिज्' का वणिज् हो गया है ।

वत्- उपमा में 'वत्' का प्रयोग होता है ।

'वदिति सिद्धोपमा'

ब्राह्मणवत, वृषलवत् । दे. 'प्रियमेधस्'

वत- धा. । प्राप्त करना ।

'अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम'

ऋ. ७.३.१०; ४.१०

वत्स- (१) बछड़ा । दे. 'अमीसेत्'

'गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तम्'

ऋ. १.१६४.२८; अ. ९.१०.६; ऐ.ब्रा. १.२२.२; आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४; नि. ११.४२.

माध्यमिक वाक् औरक अर्थात् मेघ नित्य गौ के लिए तरसते बछड़े के समान सूर्य को देख पर भोंकती है - यास्क ।

मेघ वृष्टिजल के अभाव से निमीलिताक्ष पृथ्वी को देख भोंकता है । -दया.

(२) राष्ट्र में बसी प्रजा ।

(२) गुरुकुल वासी विद्यार्थी

'वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र'

ऋ. ६.२४.४

(४) वद् + स = वत्स विद्या का उपदेश ।

(५) ब्रह्मचर्य वास काल का गुरु ।

'वत्सो वां मधुमद् वचः'
अशंसीत् काव्यः कविः'

ऋ. ८.८.११.

(६) बालक, (७) बसा हुआ संसार ।

'अन्यान्या वत्समुप धापयेते'

ऋ. १.९५.१; वाज.सं. ३३.५; तै.ब्रा. २.७.१२.२.

(८) स्तुति, अभिवादन योग्य, परमपूज्य परमेश्वर ।

'अबन्धनश्चरति वत्स एकः'

ऋ. ३.५५.६

(९) सर्वाच्छादक, सर्वव्यापक स्तुत्य प्रभु ।

'वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्'

ऋ. १.१६४.५; अ. ९.९.६

(१०) मेघ, (११), जीव ।

'अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यत्'

ऋ. १.१६४.९; अ. ९.९.९

(१२) पुत्र, (१३) स्तुत्य,

(१४) सब में बसा या सभी को बसाने वाला आत्मा । दे. 'वष्कय'

वत्सतरी- बहुत छोटी उम्र की कन्या ।

'वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः'

वाज.सं. २४.५,९; मै.सं. ३.१३.६: १६९.१३; ३.१३.१०: १७०.९

वत्सपः- (१) बच्चों का पालन करने वाला, (२)

बड़ी उम्र का बूढ़ा (३) संवर्त रोग से पीड़ित (४) हीन पुरुष ।
'अलिंश उत वत्सपः'
अ. ८.६.१.

वत्स प्रचेतसा- वत्स अर्थात उपदेष्टावत् उत्तम ज्ञानी गुरु के अधीन रहकर उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त करने वाले अश्विद्वय ।
'धीभिर्वत्स प्रचेतसा'
ऋ. ८.८.७

वत्सर - (१) एक वर्ष ।
'वत्सराय विजर्जराम्'
वाज.सं. ३०.१५; तै.ब्रा. ३.४.१.११
(२) सबको आनन्द प्रसन्न रखने वाला ऐश्वर्य प्रदाता अग्नि, परमेश्वर ।
'वत्सरोऽसि'
वाज.सं. २७.४५.; मै.सं. ४.९.१८: १३५.७; श.ब्रा. ८.१.४.८; तै.ब्रा. ३.१०.४.१; तै.आ. ४.१९.१.

वत्सानां पिता - (१) प्रकृति के आगे उत्पन्न होने वाले पञ्चभूत आदि विकृति रूपों के या प्राणियों के आवास हेतु लोकों या मुक्तजीवों का जनक और पालक परमेश्वर, (२) बछड़ों का पिता- सांढ़ ।
'पिता वत्सानां पतिरघ्यानाम्'
अ. ९.४.२,४; तै.सं. ३.३.९.२; मै.सं. २.५.१०: ६१.१६; ४.२.१०: ३३.१७; का.सं. १३.९

वत्सिनी - (१) बछड़े वाली गौ (२) नियम पूर्वक ब्रह्मचर्य करने वाले शिष्यों से युक्त वेदवाणी ।
'गवामह न मायुर्वत्सिनीनाम्'
ऋ. ७.१०३.२

वत्सौ - (१) विराट् सलिल के दो वत्सवत् जीव और ब्रह्म, (२) सूर्य और विद्युत् - ग्रीफिथ
'वत्सौ विराजः सलिलादुदैताम्'
अ. ८.९.१

वदतः- वद् (बोलना) + शतृ + ङस् = वदतः । अर्थ -'वदत्' के षष्ठी ए.व. का रूप ।
दे. 'जोषवाकम्'
अर्थ-बोलते हुए का

वदन् ब्रह्मा - उपदेश देने वाला वेदज्ञ ब्राह्मण ।
'वदन् ब्रह्मा वदतो वनीयान्'
ऋ. १०.११७.७

वद्मा- (१) वन्दना करने योग्य । (२) सब मनुष्यों को उपदेश करने वाला ।
'वद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा'
ऋ. ६.४.४; तै.सं. १.३.१४.७

वध्- (१) हिंसा-साधक आयुध । दे. 'अस्मे'
'जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य'
ऋ. ४.२२.९; ७.२५.३
हे इन्द्र या राजन्, तू हिंसक मनुष्य के (वनुषः मर्त्यस्य) हिंसा साधक आयुध को नष्ट कर (वधः जहि) ।
(२) आघातकारी विद्युत् आदि ।
'इन्द्रो अस्या अववधर्जभार'
ऋ. १.३२.९
सूर्य अन्तरिक्ष रूप मेघ की उत्पादक भूमि पर आघातकारी विद्युत् आदि का प्रहार करता है (अस्याः वधः अवजभार) ।

वध - वध् + अच् = वध । (१) हत्या । दे. 'अप्रचेतस्'
'सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य'
ऋ. १०.११७.६; तै.ब्रा. २.८.८.३
(२) हिंसक, (३) इन्द्र का विशेषण ।
'अनानुदो वृषभो दोधतो वध'
ऋ. २.२१.४
दे. 'अस्मदा निद्'
'वधैरजेत दुर्मतिम्'
ऋ. १.१२९.६; नि. १०.४२.
वह इन्द्र दुष्ट बुद्धि वालों को वध द्वारा जीते ।
'वीडोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधः'
ऋ. १.१०१.४
जो इन्द्र या राजा यज्ञ विरोधी का हन्ता है ।
(३) अस्त्र शस्त्रादि साधन ।
'अथो ये विश्यानां वधाः'
अ. ६.१३.१.

वधक- वध् (संयमन अर्थ में) बन्धन अर्थ में - भ्वादि ।
अर्थ - (१) बांधने वाला, (२) शस्त्रधारी वधक ।
'हन्त्वेनान् वधको वधैः'
अ. ८.८.३;४

वधत्मा - (१) संहारकारी विद्युत् या अस्त्र ।
'महीवद्यौर्वधत्मना'
ऋ. १०.१३३.५; अ. ६.६.३

वधत्र- वध करने का साधन ।
'त्वं शुष्णस्यावतिरो वधत्रैः'
ऋ. ८.९६.१७; अ. २०.१३७.११

वधना- शत्रु को दण्ड देने और नाश करने वाली नीति या सेना ।
'इन्द्रावरुणना वधनाभिरप्रति'
ऋ. ७.८३.४

वधर्यन्ती- शस्त्रास्त्रों और विद्युत् की विद्या ।
'वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीत्'
ऋ. १.१६१.९
आप में एक शस्त्रास्त्रों और विद्युत् की विद्या का प्रवचन करे ।

वधस्नः - (१) वध दण्डादि से राष्ट्र को शुद्ध, स्वच्छ, निष्कण्टक करने वाला राज्य भृत्य, न्यायाधीश, शासक, (२) वधकारी शस्त्रों से शत्रुकण्टकों को साफ करने वाला सैन्य ।
'यो देह्यो अनमयद् वधस्नैः'
ऋ. ७.६.५; तै.ब्रा. २.४.७.९;
(३) शस्त्र
'क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः'
ऋ. ५.४१.१३
(४) शत्रुवध के अनन्तर स्नान करने वाला ।
'वधैर्वधस्नवींखय'
ऋ. ९.५२.३
(५) प्रहार,
'विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः'
ऋ. १.१६५.६; मै.सं. ४.११.३; १६९.२; का.सं. ९.१८; तै.ब्रा. २.८.३.५.

वध्र्यश्व- (१) अश्व अर्थात् वेग से जाने वाले प्रवाह को रोकने या उसको और अधिक बढ़ाने वाला, ।
(२) इन्द्रिय रूप अश्वों को बांधकर संयम से रहने वाला, (३) इन्द्रिय बल को बढ़ाने वाला वीर्यवान् पुरुष ।
'दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे'
ऋ. ६.६१.१; मै.सं. ४.१४.७: २२६.४; का.सं. ४.१६.
(४) वधकारी अश्व सैन्य रथादि का नायक, (५) अग्नि ।
'घृतमग्नेर्वध्र्यश्वस्य वर्धनम्'
ऋ. १०.६९.२
(६) आत्मा, वध्रि + अश्व (७) जितेन्द्रिय, (८) एक ऋषि ।
'यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वम्'
अ. ४.२९.४

वधानां सभरः- शस्त्रास्त्रों की लड़ाई ।
'अमित्री सेना समरे वधानाम्'
अ. ११.१०.२५

वध्रिः- (१) दण्डनीय, (२) शासन में प्रबद्ध ।
'वध्रिर्विषगिरिः कृतः'
अ. ४.६.७.
(३) वृध + रिक = वध्रि । अर्थ-बड़ी हुई शक्ति-दया. (४) बधिया बैल ।
'वृषेव वध्रींरभि वष्ट्योजसा'
ऋ. २.२५.३
(५) वन्ध + क्रिन् = वध्रि । वध्यते यः स वध्रिः (जो बांधा जाता है वह वध्रि है) । बधिया, (४) नपुंसक ।
'वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्'
ऋ. १.३२.७
जिस प्रकार बधिया नपुंसक बैल बलवान साँढ़ के मुकाबले पर आना चाहता हुआ बहुत से स्थलों पर विविध प्रकार से परास्त होता हुआ.....

वध्रिमती- (१) वशीभूत इन्द्रियों से युक्त जितेन्द्रिय स्त्री ।
'युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतम्'
ऋ. १०.३९.७
(२) वध् + रिक् = वध्रि । अर्थ है-बंधुआ, नपुंसक । वध्रि + मतुप् + ङीष् = वध्रिमती । अर्थ है- नपुंसक पति वाली स्त्री (३) यहां लक्षणा से अर्थ है- राजसभा (४) बढ़ी हुई शक्ति से सम्पन्न राजसभा ।
(५) वृध् + रिक् = 'वध्रि' । दयानन्द ने इसका अर्थ 'बढ़ी हुई' किया है ।
'श्रुतं तच्छासुरिव बध्रिमत्या'
हिरण्य हस्तमश्विनावदत्तम्
ऋ. १.११६.१३
हे अश्व दल के स्वामी या अश्विद्वय ! (अश्विना) आप दोनों गुरु के उपदेश के समान अथवा शासक राजा के समान (शासुः) बढ़ी हुई शक्ति से सम्पन्न उस राजसभा के उस

शासन को श्रवण करो (वध्रिमत्याः श्रुतम्) । आप दोनों उसको हित और रमणीय हाथ अर्थात् अवलम्ब अथवा सुवर्णादि धन को रखने वाले वैश्य वर्ग को या सुवर्ण के समान कान्तिमान हनन् साधन से या बल के स्वामी तेजस्वी पुरुष को (हिरण्यहस्तम्) आश्रयरूप से प्रदान करो (अवदत्तम्) ।

वध्रिवाक् - (१) हिंसायुक्त वचन बोलने वाला, (२) निर्बल वाणियों वाला , (३) वृद्धिकारक उत्तम विद्वान् ।
'अरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः'
ऋ. ७.१८.९

वधूदर्श- वधू को देखने के लिए आया हुआ पुरुष ।
'ये पितरो वधूदर्शाः'
अ. १४.२.७३

वधूपथ- (१) नववधू का मार्ग ।
'स्योनं कृण्मो वधूपथम्'
अ. १४.१.६३

वधूमत् षट् अश्वाः- (१) वधू अर्थात् शत्रु का वध करने, उनको कम्पित कर देने वाली छः अश्वसैन्य का सेनापति ।
(२) वहन कारिणी प्राण या चेतनाशक्ति से युक्त चक्षु आदि पांच और छठा मन (३) देधधारक शक्ति से युक्त पांच इन्द्रिय और मन ।
'षडश्वां आतिथिग्वे
इन्द्रोते वधूमतः'
ऋ. ८.६८.१७

वधूमन्ता द्वारथा- (१) राज्यभार को वहन करने वाली विशेष शक्ति से युक्त दो रथ या रथवान् नायक, (२) शरीर और लिंग शरीर रूप दो बन्धुओं से युक्त रथ ।
'द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः'
ऋ. ७.१८.२२

वधूमान् - (१) हिंसा करने वाली शत्रुनाशक शक्ति, (३) वधूयुक्त ।
'वधूमन्तो द्विर्दश'
अ. २०.१२७.२; शां.श्रौ.सू. १२.१४.१.२.

वधूयुः- (१) वधू या स्त्री की कामना करने वाला ।
'वधूयुरिव योषणाम्'
ऋ. ३.५२.३; ६२.८; ४.३२.१६.
(२) जगत् को वहन करने वाली ईश्वरी शक्ति का स्वामी ।
'अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि'
ऋ. ९.६९.३
(३) कन्या की कामना करने वाला वर ।
'यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोः'
अ. १४.२.४२

वनक्रक्ष - (१) तेज भोग्य ऐश्वर्यों एवं लोकों में व्यापक, (२) काष्ठों में अग्नि के तुल्य व्यापक ।
'वनक्रक्षमुदप्रुतम्'
ऋ. ९.१०८.७; साम. १.५८०; २.७४४.

वनं करण- जल पैदा करने वाला मूत्रेन्द्रिय ।
'महेनाद् वनङ्करणात्'
ऋओ. १०.१६३.५; अ. २०.९६.२१;

वनद- (१) जलदाता मेघ, (२) ज्ञानप्रद गुरु, (३) स्तोता ।
'आ यन्ये अभ्वं वनदः पनन्त'
ऋ. २.४.५.
(३) वन का अर्थ स्पृहणीय या प्रशस्त पदार्थ है । बहुवचन में प्रयोग है । अर्थ है- स्पृहणीय हवि को देने वाले यजमान - सा. ।
(२) प्रशस्त पदार्थों को दाता मनुष्य-दया. ।
जिसका महत्व (यत् अभ्वम्) मेरे स्पृहणीय हविदाता सदा गाते हैं । -सा.
हे प्रशस्त पदार्थ के दाता मनुष्यो, (वनदः) यतः तुम मेरे उपदिष्ट कार्यों में स्थित रहते हुए अपने से बड़े विद्वान् का सत्कार करते हो (यत् मे अभ्वम् आपनन्त) ।

वनधिति- (१) सेवन करने योग्य वृष्टि जलों को धारण करने में समर्थ -सूर्य (२) सेवनीय ऐश्वर्यों को धारण करने वाला राजा ।
'स्विध्मा यद् वनधितिरपस्यात्
सूरो अध्वरे परि रोधना गोः'
ऋ. १.१२१.७
उत्तम दीप्तिवाला (स्विध्मा) और सेवन करने योग्य वृष्टिजलों को धारण करने में समर्थ (वनधितिः) अन्तरिक्ष के सब ओर (परि) रश्मि समूह या पृथिवी के स्तम्भन आदि के कार्य करता है ।

वनना - (१) काष्ठ आदि, (२) ज्ञान का याचक
'उन्मध्व ऊर्मिर्वनना अतिष्ठिपत्'
ऋ. ९.८९.४०

वनम् (१) जंगल । दे. 'एजति' ।
'यथा वातो यथा वनं
यथा समुद्र एजति'
ऋ. ५.७८.८; नि. ३.५.
जैसे वायु, जैसे वन और समुद्र दिन दिन गति का स्यन्दन करता या कांपता है ।

वनर्गुः (१) सुन्दर वाणी वाला । वन + गम + डु = वनर्गु (रुट् का आगम) ।
(२) वनगामी । 'वने गन्तुशीलं यस्य स वनर्गुः'

वनर्गू- दे. 'वनर्गु' । (१) द्वि.व. (१) वन में विचरण करने वाले ।
(२) चोरों के विशेषण के रूप में व्यवहृत' । दे. ' अभ्यधीताम् ' ।
'तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू
रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम्'
ऋ. १०.४.६; नि. ३.१४.
(३) ग्राह्य पदार्थों तक पहुंचने वाली बाहुएं (४) सैन्य ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र (५) हिंसनीय शत्रुदल में जाने वाली दो सेनाएं ।

वनर्षद् - वन + सद् + क्विप् = वनर्षद (रुक् का आगम) (१) जलों पर विहार करने वाला -
'श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः'
ऋ. २.३१.१
(२) वन में रहने वाला, (३) तपस्वी, (४) संविभक्त धनों ऐश्वर्यों या गृहों में निवास करने वाला, (५) रश्मियों में स्थित सूर्य, (६) जलों से अभिषिक्त ।
'वनर्षदो वायवो न सोमाः'
ऋ. १०.४६.७; वाज.सं. ३३.१; तै.ब्रा. २.७.१२.१.
वन में विचरने वाला -
'श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवः
वनर्षदो वायवो न सोमाः'
ऋ. १०.४६.७ वाज.सं. ३३.१; तै.ब्रा. २.७.१२.१
(७) ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले परम रमणीय राज्य पद पर विराजने वाला ।
'तिष्ठद्रथं न धूर्षदं वनर्षदम्'
ऋ. १०.१३२.७

वनस्- न. । दूध दूहने का पात्र ।
'आ याहि वनसा सह
गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः'
ऋ. १०.१७२.१; साम. १.४४३

वनसद् - जंगल में रहने वाला दावाग्नि ।
'वनसदे वेट्'
वाज.सं. १७.१२; तै.सं. ४.६.१.४; श.ब्रा. ९.२.१.८

वनस्पतिः- (१) महान् वृक्ष, वट, गूलर, पाकड़ आदि,
(२) प्रजाजनों को आश्रय देने वाला पुरुष, (३) वृक्ष-समूहों के समान सैनिकों का सेनापति, (४) अग्नि ।
'अग्निर्वै वनस्पतिः'
कौ.ब्रा. १०.६
(५) प्राण ।
'प्राणो वै वनस्पतिः
कौ.ब्रा. १२.७
'देवो देवैर्वनस्पतिः'
वाज.सं. २१.५६; ५६; २८.२०; मै.सं. ३.११.५: १४७.१५
(३) वन का स्वामी । दे. 'अरिषण्यन् ' 'वीडयस्व '।
'अरिषण्यन् वीडयस्व वनस्पते'
ऋ. २.३७.३; नि. ८.३.
हे वनस्पते, तू हिंसा की कामना न करता हुआ अपने को दृढ़ कर ।
(७) खदिर (खैर) का यूप, (८) पलाश का यूप -सा. (९) गार्हपत्य अग्नि -दया. । दे. 'क्षय' ।
'अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तः
वनस्पते मधुना दैव्येन'
ऋ. ३.८.१; मै.सं. ४.१३.१: १९९.२; का.सं. १५.१२; ऐ.ब्रा. २. २.४; तै.ब्रा. ३.६.१.१; नि. ८.१८.
हे खदिर या पलाश का यूप (वनस्पते), तुझे अध्वर्युजन (देवयन्तः) देवसम्बन्धी घृत से (दैव्येन मधुना) प्रकाशित करते हैं (अञ्जन्ति) - सा.
हे गार्हपत्य अग्नि, (वनस्पते) अपने में देव भाव की कामना करते हुए (देवयन्तः) तुझे हिंसारहित बलि वैश्व देव यज्ञ में (त्वाअध्वरे) मिष्टान्न और घृत के साथ (मधुना दैव्येन) प्रकाशित करते हैं (अञ्जन्ति) - दया.
(१०) वनानां पतिः वनस्पतिः (वनों का पति) । पारस्कर आदि शब्दों के समान 'सुट्' का आगम । (११) वनानां पाता पालयिता (वनों का पालक)

(१२) द्रविणोदस नामक अग्नि के विशेषण के रूप में इस का प्रयोग हुआ है। अतः वनस्पति का अर्थ अग्नि है। अग्नि वृक्षों के अन्दर रहता हुआ भी जलाता नहीं अपितु बढ़ाता ही है।

'वनस्पते रशनया नियूया'

ऋ. १०.७०.१०; मै.सं. ४.१३.७: २०९.१; का.सं. १८.२१; तै.ब्रा. ३.६.१२.१; आश्व.श्रौ.सू. ९.५.२; नि. ८.२०.

हे वनस्पते, ज्वाला से विवद्ध कर।

(१३) वृष्टि जल की रक्षा करने वाला।

'वीड़यस्वा वनस्पते'

हे वृष्टिजल की रक्षा करने वाला द्रविणोद नामक अग्नि ! तू दृढ़ हो। (१३) यज्ञ का यूप। कात्थक्य आचार्य के मत से अग्नि, शाकपूणि के मत से 'गार्हपत्य अग्नि'

'वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः
स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन'

ऋ. १०.११०.१०; अ. ५.१२.१०; वाज.सं. २९.३५; मै.सं. ४.१३.३: २०२.१४; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.४; नि. ८.१७.

गार्हपत्य अग्नि (वनस्पति) दक्षिणाग्नि (शमिता) और आहवनीय अग्नि (देवः अग्निः) ये तीनों मिष्ट और घृत के साथ (मधुना घृतेन) हवि का आस्वादन करावे (हव्यं स्वदन्तु) (१४) शमिता नामक देवता (१५) आहवनीय अग्नि-शाकपूणि (१६) गार्हपत्य अग्नि। वन का अर्थ गृह होने से वनस्पति का अर्थ गृहपति अर्थात् 'गार्हपत्य अग्नि' हुआ।

(१७) प्राण। 'प्राणमेव तत् प्रीणाति।

'प्राणं यजमानो दधाति
प्राणो वै वनस्पतिः'

ऐ.ब्रा.

(१८) रथ। रथ वनस्पति से ही बनता है। (१९) एक बड़ा जंगली पेड़ जिसमें फूल के बिना ही फल निकलता है। (२०) वृक्ष (२१) सेवन योग जल आदि पदार्थों का पालक पर्जन्य।

'उच्छ्रयस्व वनस्पते'

ऋ. ३.८.३; वाज.सं. ४.१०; का.सं. १५.१२; ऐ.ब्रा. २.२.६; कौ.ब्रा. १०.२; तै.ब्रा. ३.६.१.१; श.ब्रा. ३.२.१३.५; आश्व.श्रौ.सू. ३.१.९; शां.श्रौ.सू. ५.१५.३; आप.श्रौ.सू. ११.९.१३

(२२) किरणों का पालक- सूर्य (२३) राष्ट्रैश्वर्यों के विभागों का भोक्ता, (२४) प्रजाजनों का पालक, (२५) विद्या की याचना करने वाले शिष्यों का पालक आचार्य।

(२६) महान् वृक्ष के समान सब को अपनी छत्र छाया में रखने वाला -राजा।

'वनस्पतिः सह देवैर्न आगन्'

अ. १२.३.१५

वनस्य स्तूपः- विभक्त का सर्वत्र पहुँचाने योग्य तेज का समूह। दे. 'अबुध्न'

'अबुध्ने राजा वरुणो वनस्य'
ऊर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः'

ऋ. १.२४.७

वन्दध्यै- (१) स्तुति करने के लिए।

'अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै'

ऋ. ३.४.३.

(२) प्रार्थना करते हैं।

'वन्दध्या अग्निं नमोभिः'

ऋ. १.२७.१; साम. १.१७; २.९८४

हम स्तुतियों से अग्नि की प्रार्थना करते हैं।

वन्दम् - (१) वन्दन नामक विष बेल। सायण तथा शंकर पाण्डुरंग ने 'वन्दना' पाठ माना है।

'अभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्'

अ. ७.११५.२

(२) वन्द + ल्युट् = वन्दन, स्तुति, (३) स्तुति योग्य। (४) वन्दना करने वाला।

वन्दनम् - देह को जकड़ने वाला विष।

'यद् विजामन् परुषि वन्दनं भुवत'

ऋ. ७.५०.२

वन्दन श्रुत् - (१) स्तुति और अभिवादन को प्रेम से श्रवण करने वाला, प्रार्थना सुनने वाला परमेश्वर, इन्द्र।

'अर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि'

ऋ. १.५५.७

वन्दनाः- ब. व.। (१) वन्दनशील।(२) हां में हां मिलाने वाले चापलूस, खुशामदी।

'न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः'

ऋ. ७.२१.५

और न ये खुशामदी ही हमारे यज्ञ में आवें।

वन्दनेष्ठाः - स्तुति प्रार्थना और उपासना में विद्यमान ।
'असद् यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठाः'
ऋ. १.१७३.९

वन्दमानः- वन्दना करता हुआ ।
'एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः'
ऋ. १०.१४९.५; नि. १०.३३.
उसी प्रकार मैं अर्चन् नामक हिरण्यस्तूप का पुत्र या रक्षा के लिए वन्दना करता हुआ .....

वन्द्यः- वन्द् + यत् = वन्द्य । वन्दनीय ।
'आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्च'
ऋ. १०.११०.३; अ. ५.१२.३; वाज.सं. २९.२८; मै.सं. ४.१३.३: २०१.१४; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.२; नि. ८.८.

वन्य- वनाध्यक्ष
'नमो वन्याय च कक्ष्याय च'
वाज.सं. १६.३४; तै.सं. ४.५.६.१; मै.सं. २.९.६: १२५.७; का. सं. १७.१४.

वन्वत्- समस्त ऐश्वर्य को उचित रूप से विभाग करने वाला-इन्द्र, परमेश्वर ।
'अभिभुवेऽभिभंगाय वन्वते'
ऋ. २.२१.२

वन्वन्- (१) छिन्न भिन्न करता हुआ ।
'गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः'
ऋ. २.४.९
(२) वन (संभजन अर्थ में) + शतृ = वन्वन् अर्थ-वनों का संभजन करता हुआ अग्नि का विशेषण । अग्नि वन को जलाता हुआ वन का संभजन करता जाता है ।
'द्रवन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वा
उस्त्रः पितेव जारयायि यज्ञैः'
ऋ. ६.१२.४
वृक्षों का भक्षयिता (द्रवन्नः) वनों का संभजन करता हुआ अग्नि (वन्वन्) अपने कर्म से (क्रत्वा) अनाश्रित् स्वतन्त्र अर्थात् छूटे सांढ़ के सदृश (नार्वा पिता उस्त्र इव) यज्ञों से उत्पन्न किया जाता है (यज्ञैः जारयायि) ।

वन्ता - (१) विभाग करने वाला (२) सेवन करने वाला भोक्ता ।
'रायो वन्तारो बृहतः स्याम'
ऋ. ३.३०.१८; का.सं. ८.१७

वना - (१) वरण करने वाली नवयुवति ।
'वना जजान सुभगा विरूपम्'
ऋ. ३.१.१३
(२) नपुंसक, ब.व. । एक वचन में वन का अर्थ है- जंगल । (३) काष्ठवन ।
'कायमानो वना त्वं यन्मातृरजगन्नपः'
ऋ. ३.९.२; साम. १.५३; नि. ४.१४.
(४) कमनीय, सुन्दर ।
'वन' धातु सहायता, पूजा, ध्वनि और कामना अर्थों में आया है । वन की सुन्दरता से सभी वन को चाहते हैं ।
(५) जल ।
(६) वन धातु हिंसार्थक भी है । वन में हिंसा भी होती है । द्विवचन बहुवचन 'शि' विभक्ति का 'डा' हो जाता है । वनानि का वैदिक रूप 'वना' है । अर्थ है-वनों को (वनानि)
वन + घञ् (कर्म में) = वन । संज्ञापूर्वक होने से वृद्धि का अभाव ।
वनं प्रस्रवणे गेहे
पुनासे ऽमासि कानने
(७) कमल या अन्य पौधों का एकत्र उपज, (८) गृह, (९) एकत्र उपज, (१०) काष्ठ (११) जंगली (जब वन किसी अन्य शब्द का पूर्व पद रहता है) ।
आधुनिक अर्थ - जंगल, समूह, यूथ ।

वनानां गर्भः - सेवन योग्य ऐश्वर्यों को वश करने वाला-परमेश्वर, (२) वनस्पतियों के बीच छिपा या सेवनीय पदार्थों का भोक्ता जीव, (३) वनस्पतियों में स्थित अग्नि ।

वन्दा - स्तुति करने योग्य रात्रि ।
'वर्ये वन्दे सुभगे सुजाते'
अ. १९.४९.३

वन्दारु - (१) प्रशंसनीय, (२) वन्दनीय ।
'वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे'
ऋ. ५.१.१२; वाज.सं. १५.२५; तै.सं. ४.४.४.२; मै.सं. २.१३.७: १५५.१६; का.सं. ७.१२; तै.ब्रा. १.२.१.९; आप.श्रौ.सू. ५.५.८
'वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने'
ऋ. १.१४७.२; वाज.सं. १२.४२; तै.सं. ४.२.३.४ मै.सं. २.७.१०: ८८.१६; का.सं. १६.१०; श.ब्रा. ६.८.२.९.

वन्वानः - सेवन या अभ्यास करता हुआ ।

वन्धुर - बन्धन विशेष ।
'क्व त्रयो वन्धुरो ये सनीडाः'
ऋ. १.३४.९

वनिः - (१) देने वाला,
'यो रायो वनिर्महान्'
ऋ. १.४.१०; ८.३२.१३; अ. २०.६८.१०;
(२) वृत्ति, कमाई, (३) भाग ।
'मा वनिं व्यथयीर्मम'
अ. ५.७.२

वनिन् - (१) विद्युत युक्त प्राणों को प्राप्त जीव, (२) वन में स्थित वृक्ष ।
'तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे'
ऋ. १.५८.४
हे अग्ने, जिस प्रकार वन में स्थित वृक्षों के प्रतितू महावृषम् के समान उनको खा लेता है, उसी प्रकार तू आत्मा भी नाना सुखप्रद पदार्थों की कल्पना करता है ।
(३) भोग्य ऐश्वर्य या वेतन को प्राप्त करने वाला, (४) सब पदार्थों की पृथक् पृथक् करने वाला वायु ।
(५) भजन करने वाला भक्त ।
'इन्द्रं समीके वनिनो हवामहे'
ऋ. ८.३.५; अ. २०.११८.३; साम. १.२४९; 2.937
'अभि द्युम्नानि वनिनः'
ऋ. ३.४०.७; अ. २०.६.७.
(६) वन में उत्पन्न वृक्ष, (७) उदक वाला मेघ, (८) सेना समूह से युक्त शत्रु ।
'तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि
परश्वेव नि वृश्चसि'
ऋ. १.१३०.४

वनिष्ठः - (१) ज्ञान ऐश्वर्य आदि को उदारता से संविभाग करने वाला ।
'द्रवद् दूतो देवयावा वनिष्ठः'
ऋ. ७.१०.२

वनिष्ठु - (१) स्थूल आंत, (२) याचना ।
'पूषणं वनिष्ठुना'
वाज.सं. २५.७; मै.सं. ३.१५.९: १८०.४
'उग्रं देवं वनिष्ठुना'
वाज.सं. ३९.८
(३) कूल्हा जिसमें स्थूल आंतें रहती हैं, (४) कटि का चूतड़ भाग, (५) भोक्ता ।
'कुम्यो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिः'
वाज.सं. १९.८७; मै.सं. ३.११.९: १५३.१५; का.सं. ३८.३; तै.ब्रा. २.६.४.३.
(५) स्थूल आंत
'वनिष्ठोर्हृदयादधि'
ऋ. १०. १६३.३; अ. २.३३.४; २०.९६.१९; आप.मं.पा. १.१७.३.
(६) भक्ति में निष्ठा रखने वाला ।
वनिष्ठा नावागृह्यन्ति'
अ. २०.१३१.९
(७) गुदा या बड़ी आंत ।
'क्षुत् कुक्षिरिरा वनिष्ठुः'
अ. ९.७.१२.

वनीयान् - अति उत्तम रीति से सेवा करने योग्य ।
'पूर्वः पूर्वो यजमानो वनीयान्'
ऋ. ५.७७.२; मै.सं. ४.१२.६: १९५.१७; तै.ब्रा. २.४.३.१३; नि. १२.५
'वदन् ब्रह्मा वदतो वनीयान्'
ऋ. १०.११७.७

वनीवा - प्रार्थना से युक्त ।
'वनीवानो मम दूतास इन्द्रम्'
ऋ. १०.४७.७; मै.सं. ४.१४.८: २२७.९

वनुयाम - हन्म (मारें, हम मारें, वध करें) । 'मनुष्य' धातु वध करना अर्थ में भी आया है । स्कन्द स्वामी के अनुसार कण्वादि वन् धातु से 'यक्' प्रत्यय कर 'वनुष्य' बना है । यद्यपि वन धातु याचना अर्थ में पठित है तथापि भ्वादि गण में यह हिंसा अर्थ में पठित है ।
'यदिन्द्राग्नी जना इमे
विह्वयन्ते तना गिरा ।
अस्माकेभिर्नृभिर्वयम्
सासह्याम पृतन्यतो
वनुयाम वनुष्यतो
नभन्तामन्यके समे'
ऋ. ८.४०.७
हे इन्द्र और अग्नि, जब ये लोग धन के निमित्त परस्पर एक दूसरे का वचन से आह्वान करते हैं (गिरा विह्वायन्ते) तब तुम दोनों हमारे लोगों के पक्ष में हो (अस्माकेभिः नृभिः) हम नाभाक वंश वाले तुम दोनों के साथ युद्धेच्छु हो (वयं

पृतन्यवः) बार बार शत्रुओं को पराजित करें (सासह्याम) तथा मारने वालों को (वनुष्यतः) हम मारें (वनुयाम) और सभी परपक्ष वाले दुष्टजन नष्ट हो जाएं (अन्यके समे नभन्ताम्)।

वनुयामा – प्राप्त हो।
'वीरैर्वीरान् वनुयामा त्वोताः'
ऋ. १.७३.९

वनुष् – (१) नाना ऐश्वर्यों की अभिलाषा करने वाला।
'ऋतस्य योगे वनुषः'
ऋ. ३.२७.११
(२) हिंसक। दे. 'अस्मे' 'वंध्'।
'जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य'
ऋ. ४.२२.९; ७.२५.३
हे इन्द्र, तू हिंसक मनुष्य के हिंसा साधक आयुधों को नष्ट कर।
(३) सेवनीय ज्ञान।
'ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय'
ऋ. ४.४४.३; अ. २०.१४३.३
(४) शत्रु का नाशकारी।
'प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम्'
ऋ. १०.९६.१; अ. २०.३०.१
(५) कर्मफल सेवन करने वाला जीव।
'जजस्तमर्यो वनुषामरातीः'
ऋ. ४.५०.११; ७.९७.९
(६) भजन करने योग्य।
(७) सेवने वाला, (८) मारने वाला।
(९) संविभाजक-दया. (१०) सेवन करने वाला,
(११) ज्ञान और ऐश्वर्य देने वाला,
'प्रप्रेत् ते अग्ने वनुषः स्याम'
ऋ. १.१५०.३
ऐसे सेवन करने वाले तथा ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले (वनुषः) तेरे अधीन रहकर हम उत्तम पद को प्राप्त हों (प्र प्रःइत् स्याम)।

वनुष्यत् – (१) हिंसा करने वाला, (२) याचनाशील।
'इन्धानो अग्नि वनवद् वनुष्यतः'
ऋ. २.२५.१; मै.सं. ४.१४.१०: २३०.१५; तै.ब्रा. २.८.५.२.
(३) मारने वाला। दे. 'वनुयाम'
(४) आततायी, दुष्टजन।

वनुष्यति – हन्ति (मारता है)। दे. 'वनुयाम'। 'वन' धातु का अर्थ हनन या जिघांसा का भाव निकलता है।

वन्धुरा – (१) जुए में लगे दो काठ (२) परस्पर बन्धुता से युक्त।
'आ वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे'
ऋ. ३.१४.३

वन्धुरेष्ठा – (१) बन्धन युक्त प्रेम सम्बन्ध या प्रबन्ध में स्थित।
'आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठाः'
ऋ. ३.४३.१; ऐ.ब्रा. ६.१९.१०; कौ.ब्रा. २०.२; गो.ब्रा. २.६.२; ऐ.आ. ५.३.१.२; शां.श्रौ.सू. १८.१९.६

वनेजाः – (१) मातृ-गर्भ, जलों या शुक्रों में प्रकट आत्मा।
'विषूचो अश्वान् युयुजे वनेजाः'
ऋ. १०.७९.६
(२) वन में उत्पन्न (३) काष्ठ में उत्पन्न अग्नि, (४) किरणों से उत्पन्न सूर्य, (५) उत्तम सेवनीय ऐश्वर्य में उत्पन्न
'कुत्राचिद् रण्वो वसतिर्वनेजाः'
ऋ. ६.३.३

वनेनती – (१) भक्ति से झुक जाने वाली।
'आय वनेनती जनी'
अ. २०.१३१.८

वनेभ्यः – वृक्षादि समूहों से उत्पन्न अग्नि या विद्युत् जिसे दावानल कहते हैं
'त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यः'
ऋ. २.१.१; वाज.सं. ११.२७; तै.सं. ४.१.२.५; मै.सं. २.७.२; ७६.११; का.सं. १६.२; नि. ६.१.

वप् – धा.। (१) बनाना।
'अवपन् पञ्च मानवाः'
अ. १८.४.५५; तै.आ. ६.६.२.
(२) काटना।
'अदितिः श्मश्रुं वपतु'
अ. ६.६८.२
(३) वप्ता काटना।
'वप्ता वपसि केशश्मश्रु'
अ. ८.२.१७
(४) जलना, यास्क ने वप् धातु को दहनार्थक माना है।

वप - सं. । (१) केश, दाढ़ी काटने वा‿ा नाई, (२) बीज वपन करने वाला किसान ।

'शुभेवपम्'

वाज.सं. ३०.७; तै.ब्रा. ३.४.१३

वपत् - 'वप्' धातु के म.पु.ब.व.का रूप । अर्थ- बोओ ।

'कृते योनौ वपते ह बीजम्'

ऋ. १०.१०१.३; अ. ३.१७.२; वाज.सं. १२.६८; तै.सं. ४.२.५.५; मै.सं. २.७.१२: ९१.१५; का.सं. १६.१२; श.ब्रा. ७.२.२.५

जोतने के बाद (योनौ कृते) खेत में (इह) बीज बोओ (बीजं वपत)

वपते - दहति (जलता है) । 'वप्' धातु बीज बोने के अर्थ में आया है, परन्तु वेद में 'दाहना' अर्थ में भी इसका प्रयोग देखा जाता है ।

यास्क ने वप् धातु को दहनार्थक माना है । क्योंकि सूर्य बीज को इसी हेतु बनाते हैं कि वह बोने योग्य हो जाय । पृथ्वी भी जब तक सूर्य से तप्त नहीं होती तब तक उर्वरा नहीं हो ती । सूर्य अग्नि का ही एक रूप हैं ।।

'त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते
संवत्सरे वपत एक एषम्'

ऋ. १.१६४.४४; अ. ९.१०.२६; नि. १२.२७

तीन केश वाले देवता हैं-अग्नि, वायु और आदित्य । ये ऋतु के अनुकूल लोक पर अनुग्रह करते हैं । उनमें एक पृथ्वी स्थानीय अग्नि संवत्सर के अन्त में पृथ्वी को दाहता (वपते) है ।

वपन्ता - (१) वपन्तौ । दहन्तौ (१) अर्पण करते हुए या देते हुए (२) बोते हुए (३) वप् (बोना) । वप् (बोना) + शतृ + औट् = वपन्तौ -वपन्ता । वेद में 'आ' आ । अश्विनीद्वय का विशेषण । दे . 'अभिधमन्ता'

'यवं वृकेणाश्विना वपन्ता'

ऋ. १.११७.२१; नि. ६.२६

वपनी - वह भूमि जिसमें बीज वपन किया जाता है ।

'त्वमस्या वपनी जनानाम्'

अ. १२.१.६१; कौ.सू. १३७.१४.

वपा - (१) छेदन भेदन शक्ति । (२) सर्वोत्पादक शक्ति । दे. 'वपोदर' । (३) बीज वपन करने योग्य भूमि (४) शत्रुओं का खण्डन करने वाली सेना ।

'वह वपां जातवेदः पितृभ्यः'

वाज.सं. ३५.२०; आश्व.गृ.सू. २.४.१३; शां.गृ.सू. ३.१३.३; कौ.सू. ४५.१४; ८४.१; आप.मं.पा. २.२०.२८.

(५) उच्छेदन करने वाली शक्ति (६) परस्पर खण्डन मण्डन करने की शक्ति, (७) दूसरे की यश कीर्त्ति उच्छिन्न करने की शक्ति, (८) बीज वपन शक्ति, (९) स्नेह, (१०) प्रेममयी शक्ति (११) शाखा, (१२) लक्ष्मी, (१३) कृषि सम्पत्ति

'होता यक्षदश्विनौ छागस्य
वपाया मेदसो जुषेतां हविः'

वाज.सं. २१.४१

वयावत् - शाखायुक्त वृक्ष

'वयावन्तं स पुष्यति
क्षयमग्ने शतायुषम्'

ऋ. ६.२.५

वपावान् - (१) लक्ष्मी वान्, (२) कृषि सम्पत्ति वाला (३) विस्तृत बुद्धिमान् ।

'गोभिर्वपावान् मधुना समञ्जन्'

वाज.सं. २०.३७; मै.सं. ३.११.१: १३९.१५; का.सं. ३८.६; तै.ब्रा. २.६.८.१.

(४) बीजोत्पादक शक्ति से युक्त सूर्य, (५) अज्ञानवत् शत्रु को नाश करने की शक्ति से युक्त, (६) सन्तान परम्परा से युक्त, (७) पुत्रवत् । प्रजा और उत्तम सेना पैदा करने की शक्ति से युक्त पुरुष

'वपावन्तं नाग्निना तपन्तः'

ऋ. ५.४३.७; मै.सं. ४.९.३: १२३.१३; तै.आ. ४.५.२.

वप्ता - वप् + तृच् = वप्त । प्रथमा ए.व. में रूप । वप्ता । अर्थ (१) बीज बोने वाला । कृषक ।

'वप्तेव श्मश्रु वपसि प्र भूम'

ऋ. १०.१४२.४

(१) कोटा काटने वाला नापित, नाई ।

'वप्ता वपसि केशश्मश्रु'

अ. ८.२.१७

वप्सस् - (१) उत्तम रूपवान् पुरुष ।

'उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीः'

ऋ. १.१८१.८

वपुष् - (१) शरीर । वप् (बोना) + उष् = वपुष् (२) जो उत्पन्न किया जाय । (३) शत्रुओं को खण्ड खण्ड कर देना । (४) सन्तान उत्पन्न करना । दे. 'युवायुज्'
'युवोरश्विना वपुषे युवायुजम्'
ऋ. १.११९.५

वपुष्टरा - द्वि.व. । (१) द्यावापृथिवी या स्त्री पुरुष का विशेषण । (२) सुन्दर शरीर वाले, (३) रूप लावण्य युक्त ।
'ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा'
ऋ. २.३.७

वपुष्यन् - (१) रूप संवारता हुआ, (२) तेज बढ़ाता हुआ ।
'देवासो अग्नि जनिमन् वपुष्यन्'
ऋ. ३.१.४

वपुष्यः - (१) उत्तम शरीर धारण करने वाला ।
'स्पार्होयुवा वपुष्यो विभावा'
ऋ. ४.१.१२

वपुष्या - (१) देह में उत्पन्न होने वाली, (२) बीज वपन तथा सन्तान वृद्धि के निमित्त ।
'वपुर्वपुष्या सचतामियं गीः'
ऋ. १.१८३.२

वपुष्ये - द्वि.व. । ए.व. में 'वपुष्या' । अर्थ - (१) रूप से प्रसिद्ध, (२) उत्तम शरीर के डील डौल वाले महान् पति पत्नी , (३) माता पिता ।
'सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी'
ऋ. १.१६०.२

वपुस्तरः - (१) बीज वपन करने वालों में सर्वश्रेष्ठ, (२) रूपवान् पदार्थों में अति कान्ति मान् ।
'इन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः'
ऋ. ९.७७.१; साम. १.५५६.

वपोदर - (१) स्थूल, दृढ़, इन्द्र (२) वपा + दर । छेदन भेदन की शक्ति को धारण करने वाला ।
'तुविग्रीवो वपोदरः'
ऋ. ८.१७८; अ. २०.५.२

वम्रक - वम (वमन करना) + रक् = वम्नः । वम्र + क = वम्रक । वम्र का अर्थ है-दीमक । तपस्या करते करते जिसके शरीर में दीमक लग जाय उसे वम्रक कहते हैं ।

वम्रिः - स्वल्प उम्र की देवी कन्या ।
'देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्य वोऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः'
वाज.सं. ३७.४; श.ब्रा. १४.१.२.१०.

वम्री - वम् + रक् + ङीष् = वम्री । अर्थ है- (१) दीमक । वम्रो वमनात् (उदक उगलने से दीपक वम्र है) । वम्र + ङीष् = वम्री । दे. 'उपजिह्विका'
'वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानं
निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ
व्यन्धो अख्यदहिमाददाना
निर्भूदुखच्छित समरन्त पर्व'
ऋ. ४.१९.९
प्रशस्त घोड़ों वाले राजा या इन्द्र, (हरिवः) पाप रूपी दीमकों के खाए हुए (वम्रीभिः अदानम्) राज पुत्र को (अग्रुवः पुत्रम्) घर से निकाल दो (निवेशनाद् आ जभर्थ), क्योंकि पापधारी राजकुमार अन्धा होता है (अहिम् आददानः अन्धः व्यख्यते) और ऐसा करने से धर्म मार्ग को छिन्न भिन्न कर डालता है । तथा राष्ट्र और धर्म का पालक रमण करता है (पर्व समरन्त) । (२) छोटी छोटी लहर ।

वर्पणीतिः - (१) नाना रूपों का व्यूह करने और चलाने में चतुर सेना पति ।
'प्रमायिनाममिनाद् वर्पणीतिः'
ऋ. ३.३४.३; अ. २०.११.३; वाज.सं. ३३.२६

वय् - दीर्घ जीवन वाला ।
'एषा चासीष्ट तन्वे वयाम्'
ऋ. १.१६५.५; १६६.१५; १६७.११; १६८.१०; वाज.सं. ३४.४८; मै. सं. ४.११.३: १७०.८; का.सं. ९.१८.

वय - पु. । शाखा,
'वया इदन्या भुवनान्यस्य'
ऋ. २.३५.८

वयस् - (१) अन्न, (२) आयु ।
'वयो दात्रे भूयात्'
का.सं. ९.९.
दाता को अन्न या आय हो ।
(३) पक्षी । वी (गत्यर्थक) + असुन् = वयस् । दे. 'अश्वपर्ण' वर्षिष्ठा'
'आ वर्षिष्ठया न इषा
वयो न पप्तता सुमायाः'
ऋ. १.८८.१; नि. ११.१४.

हे सुकर्मा (सुमायाः), अत्यन्त अन्न को देखकर जेसे पक्षी आते हैं वैसे ही तुम आओ ।

(४) जीवन की प्रगति - आयु, (५) जीवन में प्रगति देने वाला अन्न आयु के अर्थ में प्रयोगः-

'बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति'

ऋ. १.१२५.२; नि. ५.१९.

इसे परमात्मा लम्बी आयु दे ।

आधुनिक अर्थ - आयु, जीवन का कोई भाग, यौवन, पक्षी, काक ।

वयः वयः - प्रत्येक प्रकार का अन्न और बल ।

'रूपं रूपं वयो वयः'

अ. १.२२.३; अ. १९.१.३; का.सं. ८.१४.

वयः शय - जीवन को समाप्त करने वाला काल ।

'आ नो वयो वयः शयम्'

साम. १.३५३

वयस्कृत - (१) अन्न का उत्पादक, प्रयोग, (२) अग्नि ।

'वयस्कृच्छन्दः'

वाज.सं. १५.५; तै.सं. ४.३.१२.३ मै.सं. २.८.७: ११२.३; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५.२.६.

वयस्कृत् - (१) जीवन देने वाला ।

'भवा वयस्कृद् उत नो वयोधाः'

ऋ. १०.७.७; का.सं. २.१५

(२) जो वयोवृद्धावस्था पर्यन्त विद्या सुख युक्त आयु देता है । (३) जीवन, बल और ज्ञान का देने वाला-परमेश्वर, अग्नि (४) उत्पादक वीर्य, (५) ज्ञानदाता आचार्य ।

'त्वं वयस्कृत् तव जामयो वयम्'

ऋ. १.३१.१०

वयस्वत् - दीर्घजीवन और बल का उत्पादक ।

'रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः'

ऋ. २.२४.१५; ५.५४.१३; मै.सं. ४.१२.१: १७८.९; तै.ब्रा. २.८.५.३.

वयःसुपर्णाः - (१) चलने वाली सूर्य की रश्मियाँ। 'वयः' का अर्थ पक्षियाँ भी है ।

'सुपर्णाः सुपतनाः' रश्मियों का बाधक है । क्योंकि रश्मियाँ सूर्य से बहुत सुन्दर रीति से निकलती है ।

'वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रम्'

ऋ. १०.७३.११; साम. १.३१९; का.सं. ९.१९; ऐ.ब्रा. ३.१९.२; तै.ब्रा. २.५.८.३; तै.आ. ४.४२.३; आप.श्रौ.सू. ६.२२.१; नि. ४.३.

चलने वाली सूर्य रश्मियाँ सूर्य के निकट गईं ।

वय्य - (१) वस्त्र बुनने वाला । (२) ज्ञाता । वयर (गत्यर्थक) + यन् = वय्य ।

(३) रक्षा करने योग्य ।

'तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम्'

ऋ. ४.१९.६

(४) तन्तु के समान शिष्य परम्परा या पुत्र परम्परा बनाए रखना, (५) तन्तु । सन्तानक-दया. ।

'तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम्'

ऋ. २.१३.१२

(५) यो वयते जानाति इति (जो जानता है) । ज्ञाता, ज्ञानयुक्त (६) कान्तियान, (७) तेजस्वी ।

'त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो'

ऋ. १.५४.६

वया - वी (गत्यर्थक) + अच् = वय, वय + अप = वयम । अर्थ- (१) शाखा । वयः शाखाः 'वेतः वातायनाः भवन्ति ।

'वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा
सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि
वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः'

ऋ. ६.७.६

अमर नित्य वैश्वानर

अग्नि के प्रज्ञापक कर्मरूपी दर्शन या तेज से अन्तरिक्ष के भी जो समुच्छित मेघ या नक्षत्रों के स्थान निर्मित किए गए हैं (दिवः सानूनि विमितानि) और उसी वैश्वानर अग्नि के मूर्धा या धूम के मेघ रूप में परिवर्तत होने पर (तस्य इत् उ मूर्धनि) सभी जल रहते हैं (विश्वा भुवनानि अधि) तथा शाखा के समान बहने वाली या सात नदियाँ पृथ्वी पर आईं (वया इव सप्त विस्रुहः विरुरुहुः) ।

अग्नि के धूम से मेघ बनते हैं, अतः अग्नि ही मेघों का निर्माता हुआ और मेघ से ही जल निकाल कर पृथ्वी नदी रूप में अवतीर्ण हुई ।

(२) ब.व. में 'वयाः' । अर्थ शाखाएं ।

'वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वयाः'

ऋ. ६.२४.३; नि. १.४.

हे पुरुहूत, वृक्ष की शाखाओं के समान तेरी

रक्षाएं बढ़ती हैं ।

(३) शाखा के तुल्य आश्रय करने योग्य प्रकृति ।

'पश्यन्नन्यस्या अतिथिं वयायाः'

ऋ. १०.१२४.३

वयाकी अल्प बल वाला ।

'वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः'

ऋ. ५.४४.५

वय्या - वस्त्र बुनने वाली ।

'उषासानक्ता वय्येव रण्विते'

ऋ. २.३.६

वयित्री - बुनने वाली, तन्तुवाय की लड़की । यह शब्द अपना इतिहास रखता है ।

ताना तानने वाले लड़कों को 'अपस् ,' कातने वाली स्त्रियों को 'ग्ना' और बुनने वाली लड़कियों को वेद में वयित्री कहा गया है । आज का प्रचलित बेटी शब्द वयित्री का ही बिगड़ा रूप है । दे. 'ग्ना' ।

ग्नास्त्वा कृन्तन् अपसोऽतन्वत
वयित्र्योऽवपम् वरुणस्त्वा नयतु'

मै.सं. १.९.४: १३४.८

वस्त्र को लक्ष्यकर अध्यात्म वेत्ता पा पुरोहित कहता है- हे वस्त्र ! तुझे स्त्रियों ने काता, (ग्नाः अकृन्तन्), कुविन्द के छोटे छोटे लड़कों ने (वयित्र्यः) बुना (अवयन्) और तब जल देवता वरुण या कृषक (वरुणः) मुझ अध्यात्म वेत्ता को (बृहस्पतये) इसे मेरे लिए लावे (आनयतु) ।

वयियुः - (१) तन्तुओं का ज्ञान वितान करने वाला-तन्तु वाय (२) शरीर में प्रज्ञा तन्तु का इच्छुक-आत्मा ।

'उत मे प्रयियोर्वयियोः'

ऋ. ८.१९.३७

(३) ऊयते यत् तत् वयियु वस्त्रम् (जो बुना जाता है वह वयियु अर्थात् वस्त्र है) । वस्त्र । दे. 'सुवास्तु' ।

वयुनवत् - (१) प्रकाश वान्, (२) प्रज्ञानवान्, (३) कान्तियुक्त । दे. 'वयुन'

'सूर्येण वयनवत् चकार'

ऋ. ६.२१.३; शां.श्रौ.सू. १४.२४.५; नि. ५.१५.

परमात्मा ने सूर्य के द्वारा प्रकाशवान् किया ।

वयुनम् - (१) सर्वोत्तम शरीर ।

'अभूदिदं वयुनमो षु भूषता'

ऋ. १.१८२.१

(२) वी (गत्यर्थक) + उनन् = वयुन । प्रज्ञान विज्ञान या कान्ति हो । दे. अमृत ।

'वनस्पते रशनया नियूय

ऋ. १०.७०.१०

हे वनस्पते, अत्यन्त दृढ़ एवं सुरूप ज्वाला से निबद्ध कर अपने अधिकार में प्रयुक्त प्रज्ञानों को जानता हुआ ।

(३) वी + न = वेन, अथवा पूजनार्थक अज + उनन = वयुन (अन् का वी आदेश) । कान्ति प्रकाश । दे. 'अवयुन' ।

'स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्
सूर्येण वयुनवच्चकार'

ऋ. ६.२१.३; नि. ५.१५.

उसी परमात्मा ने अन्धकार फैलाया तथा सूर्य के द्वारा जगत् को प्रकाश मान किया (वयुनवत् चकार) ।

अथवा,

उसी परमात्मा को सूर्य की कान्ति की तरह वेद द्वारा ज्ञान प्रकाश किया ।

(४) इशारा, संकेत । दे. 'उरण'

'आ वयुनेषु भूषति'

ऋ. ८.६६.८; अ. २०.९७.२; साम. २.१०४२.

इन्द्र का कुत्ता प्रशस्त मार्गों या प्रज्ञानों में इन्द्र के अनुकूल आचरण करता हैं -सा.

राजा कुत्ता संकेतों पर (वयुनेषु) आक्रमण करता है ।

वयुनशः - (१) ज्ञान शक्ति के अनुसार ।

'होतः वयुनशो यज'

ऋ. ६.५२.१२

वयोधाः - (१) ज्ञान वान् और दीर्घायु पुरुष, (२) जीवन धारक अध्ययन ।

'वयोधसाधीतेनाधीतं जिन्व'

वाज.सं. १५.७

(३) वीर्यबल और अन्न को धारण करने वाला, (४) उत्तम प्रजनन शक्ति वाला ।

'पिशङ्ग रूपः सुभरो वयोधाः'

ऋ. २.३.९; तै.सं. ३.१.११.२; मै.सं. ४.१४.८; २२७.१; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१; शां.श्रौ.सू. १३.४.२; शां.गृ.सू. ५.८.२.

(५) यः जीवं दधाति (सुखमय जीवन प्रदान

करने वाला ।

'रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः'

ऋ. १.७३.१

(३) अन्न और ऐश्वर्य धारण करने वाला ।

'वयोधा अमराहतः'

अ. १८.४.३८

(७) अन्न को अपने भण्डार में सञ्चित कर रखने वाला ।

'शतयोनिर्वयोधाः'

अ. १९.४६.६

(८) समस्त अन्न कर्मफल का धारण करने वाला, (९) अन्न धारण करने वाला -सूर्य ।

'सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः'

अ. ७.४१.२

वयोधेय - अन्न, बल और ज्ञान की प्राप्ति ।

'वयोधेयाय जागृहि'

ऋ. १०.२५.८

वयोधै - दीर्घ आयु धारण करने के लिए ।

'सत्यामाशिषं कृणुता वयोधैः'

ऋ. १०.६७.११; अ. २०.९१.११

वयोनाधः - (१) जीवन को देह के साथ बांधने वाला प्राण (२) राष्ट्र में जीवन, जागृति एवं विज्ञानों द्वारा सबको जीवनप्रद व्यवस्था में बांधने वाला विद्वान् ।

'सजूर्दिवैः वयोनाधैः'

वाज.सं. १४.७

वर - वृ + अच् । (१) श्रेष्ठ, सुन्दर, अभिमत, वरणीय ।

'अथा यजाते वर आ पृथिव्याः'

ऋ. ३.५३.११.

तब सुन्दर स्थान में वह (राजा) यज्ञ करें ।

(२) अभिमत अर्थ है ।

'नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे
दुहीयादिन्द्र दक्षिणा मघोनी'

ऋ. २.११.२१; नि. १.७.

हे इन्द्र, तेरी वह पुत्ररूपी दक्षिणा धन धान्य से सम्पन्न होती हुई (इन्द्र सा ते दक्षिणा मघोनी) स्तुतिशील यजमान को (जरित्रे) अभिमत अर्थ प्रदान करे (वरं प्रतिदुहीयात्) (३) वरण करने योग्य सृष्टि का प्रवर्त्तक कारण ।

'त आसं जन्यास्ते वरा'

अ. ११.८.२

(४) रुकावट ।

'न यो वराय मरुतामिव स्वनः'

ऋ. १.१४३.५

जो मरुतों के शब्द के समान रोका नहीं जा सकता ।

वरण - वरुण नामक वृक्ष जो यक्ष्मा का महौषधि है । वरुण, वरुण और जीरक इसके तीन भेद हैं-शुक्ल जीरक, कृष्ण जीरक और बृहत्पाली । बृहत्पाली जीर्ण ज्वर का भी नाशक है । कृमि का तो सभी है ।

वरुण तमाल वृक्ष का भी नाम है । वह सुगंध होने से कदाचित् यक्ष्मा रोग को भी दूर करता हो ।

वरणाख्यो वनस्पति वनानाम् अधिपतिः वृक्षः'

'वरुणो वारयाता अपं देवो वनस्पतिः'

ऋ. ६.८५.१; १०.३.५.

वरत्रा - (१) उत्तम रक्षा कारिणी शक्ति ।

'वरत्रायां दार्वानह्यमानः'

ऋ. १०.१०२.८

(२) रस्सा, रस्सी ।

'त्रेधा वद्धो वरत्रया'

अ. २०.१३५.१३; शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.३.

(३) वासना ।

'शुनं वरत्रा वध्यन्ताम्'

ऋ. ४.५७.४; अ. ३.१७.६; तै.आ. ६.६.२.

रस्सी के अर्थ में -

'यथायुगं वरत्रया
नह्यन्ति धरुणाय कम्'

ऋ. १०.६०.८

(४) बैल को शकट में जोड़ने की पट्टी ।

'आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः'

अ. ११.३.१०

वरन्ते - वारयन्ति, वारयितुं शक्नुवन्ति (वारण करते हैं)

वरशिखः - उत्तम शिखा वाला इन्द्र ।

'येना वधीर्वरशिखस्य शेषः'

ऋ. ६.२७.४

वरस् - (१) दुःख वारक श्रेष्ठ पदार्थ ।

'युयुषतः पर्युरू वरांसि'

ऋ. ६.६२.१.

(२) आवृत या घेरा हुआ स्थान ।
'वि यद् वरांसि पर्वतस्य वृण्वे'
ऋ. ४.२१.८

वर्चः - (१) २१ विभागाध्यक्षों पर स्वयं २२ वां होकर विराजने वाला राजा ।
'वर्चो द्वाविंशः'
वाज.सं. १४.२३; तै.सं. ४.३.८.१; ५.३.३.३ मै.सं. २.८.४: १०९.४; का.सं. १७.४; २०.१३; श.ब्रा. ८.४.१.१६.
(२) तेज ।
'पुनः पत्नीमग्निरदात्
आयुषा सह वर्चसा'
ऋ. १०.८५.३९; . १४.२.२; आप.मं.पं. १.५.४.
पिता द्वारा दान देने के बाद अग्नि पुनः आय और तेज के साथ दान देते हैं ।
(३) सामर्थ्य, बल ।

वर्चस्य - तेज ब्रह्मचर्य और ।
विद्याध्ययन का हितकारी ।
'आयुष्यं वर्चस्यम्'
वाज.सं. ३४.५०

वर्चस्वत् - उत्तम तेज और अन्नादि ऐश्वर्य से युक्त ।
'इदं हिरण्यं वर्चस्वत'
वाज.सं. ३४.५०

वर्जहः - अन्धकार वर्जनं प्रकाशं हन्ति । (अन्धकार वर्जक प्रकाश का विनाशक घोर अन्धकार) ।

वर्ण - (१) किसी बात को स्वीकार करा देना ।
'वर्णायानुरुधम्'
वाज.सं. ३०.९; तै.ब्रा. ३.४.१.४
(२) आङ् + वृज् + नन् = वर्ण (रपर, गुण, बाहुलक, नियम से आ का लोप) ।
आवृणोति आश्रयम् इति वर्णः (जो आश्रय का आवरण करता है - वह वर्ण है) । अर्थ है-रंग ।
'दे. अनूची'
'समानबन्धू अमृते अनूची
द्यावा वर्णं चरत आमिनाने'
ऋ. १.११३.२; साम. २.११००; नि. २.२०
उषा और रात्रि जिनके समान रूप सूर्य बन्धु हैं जो अमर है तथा जो एक दूसरे का अनुकरण करती है प्राणियों का या अपना अपना रंग बदलती प्रकाशमान अन्तरिक्ष मार्ग से चलती है ।
(३) वस्त्र दान को ही वर्णदक्षिणा कहते हैं । अतः वस्त्र के अर्थ में भी वर्ण शब्द का प्रयोग हुआ है । वस्त्र शरीर को आवृत करता है ।
(४) जाति, आश्रय
आधुनिक अर्थ - रंग, रंगसाजी, सौन्दर्य, जाति, अक्षर, शब्दमात्रा, प्रसिद्धि, यश, प्रसंसा, वस्त्र, पोशाक, बाह्य आकृति, आवरण, गीतक्रम, हाथी का घर, गुण, धन, धार्मिक कृत्य, अज्ञात गुण, पीलावर्ण, रंगीन सुगंध ।

वर्तनि - बार बार लौट करने वाला मार्ग ।
'पर्येका चरति वर्तनिं गौः'
ऋ. ३.७.२.

वर्तनी - (१) वर्तते वया क्रियणा सा सत्कार क्रिया-दया. । (२) जिससे प्रजाजन रक्षित रहे वह क्रिया ।
(३) मार्ग में बाधक ।
'तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी'
ऋ. १५३.८; अ. २०.२१.८

वर्तवे - वृ + तवे = वर्तवे । वरण करने लिए ।
'ऋभुक्षणं न वर्तवे'
ऋ. ८.४५.२९

वर्तस् - आंख की पलक ।
'द्यावापृथिवी वर्तोभ्याम्'
वाज.सं. २५.१; मै.सं. ३.१५१.१; १७७.९

वर्त्मन् - वृत् + मनिन् । मार्ग । दे. 'अभ्राता' ।
'अभ्रातर इव योषाः
तिष्ठति हतवर्त्मनः'
नि. ३.४.

वर्त्र - बन्ध, बांध ।
'वर्त्रं वेशन्त्या इव'
अ. १.३.७

वर्ध - वृद्धि ।
'अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू'
ऋ. १०.१२.४; अ. १०.१.३१

वर्धन - बढ़ाने वाला ।
'तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि'
ऋ. ७.२२.७; अ. २०.७३.१.

वर्धना - बढ़ाने वाला ।
'ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना'
ऋ. १.५२.७; मै.सं. ४.१२.३: १८५.२

हे परमेश्वर, जितने भी वेदमन्त्र या बड़े पृथिवी, आकाश आदि पदार्थ हैं सब तेरी महिमा बढ़ाने वाले हैं ।

वर्धन्तु - वृध् (बढ़ना-यहां पर अर्थ है बढ़ाना) के लोट् प्र.पु. ब.व में । दे. 'गिर' ।
'तमिद्वर्धन्तु नो गिरः '
ऋ. ८.९२.२१; ९.६१.१४; अ. २०.११०.३; साम. २.७४, ६८६; नि. १.१०.
हमारी स्तुतियाँ उस सोम को बढ़ावें ।

वर्धयन्ती - बढ़ाती हुई ।
'देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्ती '
ऋ. १.७१.१
देवों या विद्वान् पुरुषों और अपने से उत्पन्न हुए पुत्रों से उत्तम ज्ञान और अन्न से (प्रयसा) पढ़ाती हुई (वर्धयन्ती) ।

वर्धसे - बढ़ता है । दे. 'इमथा' ।
'आशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे '
ऋ. ५.४४.१; वाज.सं. ७.१२; तै.सं. १.४.९.१; मै.सं. १.३.११: ३४.५; श.ब्रा. ४.२.१.९.
हे सोम जिन क्रियाओं से तू बढ़ता है-सा.
हे राजन् , जिन प्रजाओं से तू बढ़ता है...दया.

वर्ध्र - बांध, रस्सी ।
'त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान् '
अ. १४.१.६०

वर्पणीतिः - (१) रूप को प्राप्त कराने वाला । परमेश्वर, चलाने में निपुण ।
'प्रमायिनाममिनाद् वर्पणीतिः '
ऋ. ३.३४.३; अ. २०.११.३; वाज.सं. ३३.२६.

वर्पस् - (१) नाना रूप के प्राणियों से युक्त राष्ट्र ।
'अनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः '
ऋ. ५.४८.४
(२) वृञ् + असुन् = वर्पस् (पुट् का आगम्)। रूप वह है जो किसी पदार्थ को आवृत करता है । अतः 'वर्प' रूप कहा गया । (वर्प इति रूप नाम, वृणोति इति सतः) ।
अर्थ-रूप ।
'मा वर्पो अस्मदप गूह एतत् '
ऋ. ७.१००.६; साम. २.९७५; तै.सं. २.२.१२.५; मै.सं. ४.१०.१: १४४.५; नि. ५.८.
हे परमेश्वर, जिस अन्य रूप में संसार रूपी रंगस्थली में तू व्याप्त है उस वैष्णवी रूप को हम से मत छिपा (अस्मत् वर्पस् मा अपगूह) ।

वर्मन् - (१) कवच ।
'वर्मेव स्यूतं परिपासि विश्वतः '
ऋ. १.३१.१५
जैसे दृढ़ता से सीया हुआ कवच युद्ध में मनुष्य की रक्षा करता है उसी प्रकार तू रक्षा करता है ।
(२) रक्षक ।
'इन्द्रस्य वर्मासि '
अ. ५.६.१३; का.सं. ३८.१४; आप.श्रौ.सू. १६.१८.८.
'स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु '
ऋ. ६.७५.१; वाज.सं. २९.३८; तै.सं. ४.६.६.१; मै.सं. ३.१६.३: १८५.११.
'वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः '
ऋ. १०.७८.३

वर्वर्ति - 'वृत्' के लट् प्र.पु.ए.व.में यङन्त रूप । अर्थ है-बार बार घूमता है ।
'वर्वर्ति चक्रं परिद्यामृतस्य '
ऋ. १.१६४.११; अ. ९.९.१३
कालचक्र अन्तरिक्ष के चारों तरफ घूमता रहता है ।

वर्ष - (१) मेघ ।
'सर्गा वर्षस्य वर्षतः '
अ. ४.१५.४

वर्षनिर्णिज् - (१) वर्षों तक शुद्ध आचरण से अपने को शुद्ध करने वाले जलों से अभिषिक्त - मरुतों का विशेषण (२) वर्षा द्वारा जगत् को धोने वाला मरुत् ।
'वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजः '
ऋ. ५.५७.४

वर्षनिर्णिजः - (१) वर्षाद्वारा शुद्ध करने वाले वायु गण, (२) शस्त्र वर्षण द्वारा राष्ट्र के शोधक ।
'ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः '
ऋ. ३.२६.५; तै.ब्रा. २.७.१२.४.

वर्षमेदाः - वर्षा के जल से परिपूर्ण होने वाली पृथिवी ।
'नमोऽस्तु वर्षमेदसे '
अ. १२.१.४२

वर्षवृद्ध - (१) आयु में बड़ा, अनुभवी
'प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु '

वाज.सं. १.१६; तै.सं. १.१.५.२; मै.सं. १.१.७: ४.१; ४.१.७: ८.१६; का.सं. १.५.; ३१.४; श.ब्रा. १.१.४.२०; तै.ब्रा. ३.२.५.१०; आ.श्रौ.सू. १.२०.६.

(२) वर्षा से बढ़े हुए , सींक का बना सूप ।

'वर्षवृद्धमुपयच्छ शूर्पम्'

अ. १२.३.१९

वर्षवृद्धा - (१) वर्षा से बढ़ी हुई, (२) सुखादि वर्षण करने में सबसे अधिक बलशालिनी राजशक्ति ।

'बृहत्पलाशे सुभगे वर्षवृद्ध ऋतावरि'

अ. ६.३०.३

वर्ष्मन् - (१) वर्षणकारी मेघ ।

'वर्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत्'

ऋ. ४.५४.४

(२) वृष्टि, सेचन, (३) रूप ।

'वर्ष्मन् दिवो अधि नाभा पृथिव्याः'

ऋ. ३.५.९

वर्ष्य - (१) वर्षा न होने पर जल का उचित प्रबन्ध करने में या अति वृष्टि को दूर करने में समर्थ ।

'नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च'

वाज.सं. १६.३८; तै.सं. ४.५.७.२; मै.सं. २.९.७: १२५.१३; का.सं. १७.१५.

(२) वृष्टि करने वाला, (३) शस्त्रवर्षी वीर भटों से बना सैन्य

'यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं नभः'

ऋ. ५.८३.३

'तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतः'

ऋ. १०.९१.५; साम. २.३३२; पंच.ब्रां. १३.२.१.

वर्ष्यदूत - वर्षा का दूत, शीतल वायु ।

'आविर्दूतां कृणुते वर्ष्यां अह'

ऋ. ५.८३.३

वरानवित्ति - द्रव्य लाभ का नतीजा ।

'अनागमिष्यतो वरानवित्तेः
संकल्पानमुच्या द्रुहः पाशान्'

अ. १६.६.१०

वराह- (१) वराहो मेघो भवति वराहारः (वराह मेघ का नाम है क्योंकि वह श्रेष्ठ आहार अर्थात् उदक का आहरण करता है) । ब्राह्मण में भी लिखा है-

वरमाहारमहार्षीः

'अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यः
महः पितुं पपिवां चार्वन्ना
मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान्
विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता'

ऋ. १.६१.७; अ. २०.४५.७; नि. ५.४.

वृष्टि द्वारा सकल जग के निर्माता इस महान् यज्ञ के अवयवभूत (मातुः महः अस्ता) प्रातः सवनादि तीनों सवनों में (सवनेषु) सोमरूपी अन्न को (पितुम्) शीघ्र ही (सद्यः) पी लिया (पपिवान्) तथा सुन्दर सर्वव्यापी विष्णु या प्राणरूप में सब जीवों में व्याप्त (विष्णुः) असुरों के चिरसञ्चित परिपक्व धन को (पचतम्) अपहरण करते हुए (मुषायत्) शत्रुओं को अभिभूत करने वाले (सहीयान्) शत्रुओं को भक्षण करने वाले वज्र को (अद्रिम्) प्रक्षिप्त करने वाले (अस्ता) इन्द्र ने देखते देखते (तिरः) मेघ को प्रताड़ित किया (वाहं विध्यत्) ।

(२) शूकर (सूअर) । इतरो वराह एतस्मादेव

(३) वराह नामक एक असुर -दुर्ग

'शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनम्
वराहमिन्द्र एमुषम्'

ऋ. ८.७७.१०

इन्द्र सैकड़ो यज्ञ (शतं महिषान्) , चरु आदि से सिद्ध ओदन एवं श्रेष्ठ वराह लाया । -सा. इन्द्र सभी क्षीरपाक ओदन और बड़े यज्ञों को लाया तथा वराह नामक असुर को मारा - दुर्ग सेनापति चोरों के निवास स्थान पर्वत प्रदेशों को जीतकर (एमुषं वराहम्) अनेक प्रशस्त पदार्थों (शंत महिषान्) एवं दूध में पकाए चावल आदि सभी वस्तुओं को लाया । - ज.दे.श.

(४) स्वामी दयानन्द ने मेघ के अर्थ में 'वराह' शब्द को लिया है । वृहति मूलानि । वरं वरं मूलं बृहति इति वा (यह जो दूसरे प्रकार का सूअर नायक है या जो सुन्दर मूलों को उखाड़ता है) ।

(५) अङ्गिरसों का विशेषण । अङ्गिरसोऽपि वराहा उच्यन्ते (अङ्गिरस भी वराह कहे जाते हैं, क्योंकि वे सात्विक अन्न सेवी हैं) ।

'स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिः
गोधायसं वि धनसैरदर्दः
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैः
घर्मस्वेदभिर्द्रविणं व्यानट्'

ऋ. १०.६७.७; अ. २०.९१.७; मै.सं. ४.१४.१०: २३०.११; तै.ब्रा. २.८.५.२.

उस बृहस्पति ने सत्यवादियों या यथार्थ बल रखने वाले (सत्येभिः) सखाओं (सखिभिः) दीप्तिमान (शुचद्भिः) विविध धन रखने वाले (विधनसैः) बरसाने वाले (वृषभिः) वरणीय उदक के आहारों को लाने वाले या, घाम के स्वेदों से या दीप्त आगमनों से या बरसते हुए जलों से या यज्ञ के स्वाद लेने वाले या सायण के अनुसार यज्ञ में जाने वाले या यज्ञ में भाग लेने वाले अङ्गिरसों के साथ (वराहैः घर्म स्वेदिभिः) गौ, वाणी या जलों के धारक इस मेघ को (गोधायसम् ईम्) विदीर्ण किया (अदर्दः) तथा जल लाया (द्रविणम् आनट्) । ये अङ्गिरस १२ क्यों है विचारणीय है । स्वा. दयानन्द ने अङ्गिरस का अर्थ तेजस्वी पुरुष दिया है । इस ऋचा में अङ्गिरस का नाम नहीं है तथापि इस सूक्त में है ।

अन्य अर्थ – (१) वह वेदज्ञाता (ब्रह्मणस्पतिः) सत्यवादी मित्र (सत्येभिः सखिभिः) पवित्र (शुचिद्भिः) त्यागी (विधनसैः) बलवान् (वृषभिः) सात्विक अन्नसेवी (वराहैः) तथा यज्ञों से स्वेदयुक्त (घर्मस्वेदिभिः) अङ्गिरस लोगों के साथ वेद पति परमेश्वर का (गोधायसम्) आदर करता है (अदर्दः) तथा आत्मबल प्राप्त करता है (द्रविणं व्यानट्) ।

(६) माध्यमिक देवगण जैसे मरुत् और रुद्र आदि भी वराह कहे जाते हैं (अथाप्यते माध्यमिक देवगण वदाहव उच्यन्ते) ।

व्युत्पति-(क) वरस्य- उत्कृष्टस्य शत्रोः हन्ता (उत्कृष्ट शत्रु का हन्ता) (ख) उत्कृष्टस्य वृष्ट्यु-दकस्य आहर्ता (उत्कृष्ट वृष्टि का आहर्ता) (ग) उत्कृष्टानां देवानाम् आह्वाता (उत्कृष्ट देवों का आह्वाता), (घ) वरस्य हविषो भक्षयिता (सुन्दर हवि का भक्षण करने वाला) ।

वर + आङ् + हन्, हृ, हू.हु, (मारना, हरण करना, बुलाना भोजन करना) + उ = वराह । पृषोदरादिवत् सिद्ध ।

वरहाः- (१) मरुतों का विशेषण ।

'एतत् त्यन्न योजनमचेति
सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमोवः
पश्यन् हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्
विधावतो वराहून्'

ऋ. १.८८.५

हे मरुद्गण, यह सूक्त साध्य स्तोत्र (एतत् योजनम्) अन्य उत्कृष्ट स्तोत्र के समान ज्ञात होता है (त्यत् न अचेति) जिस इस सूक्त रूप स्तोत्र को (यत्) आप लोगों के लिए (वः) हिरण्यचक्र वाले रथ पर आरूढ़ या रमणीय कर्मों से युक्त (हिरण्यचक्रान्) लौहमयी चक्रधाराओं से युक्त या ऋष्टि नामक दश निशाने वाले अस्त्र विशेष को (अयो दंष्ट्रान्) विविध प्रकार से प्रवर्तित करते हुए (विधावतः) उत्कृष्ट शत्रुओं को मारने वाले या उत्कृष्ट जल देने वाले या उत्कृष्ट देवताओं को आह्वान करने वाले या सुन्दर हवि को खाने वाले (वराहून्) मरुतों को सम्यक् प्रकार से जानते हुए (पश्यन्) गौतम ऋषि ने (गोतमः) उच्चारित किया (सस्वर ह) ।

स्वा. दयानन्द का अर्थ – हे राजपुरुषो, यह शुभदिन और पवित्र बुद्धि का योग (एतत् योजनम्) उस पूर्व मन्त्रोक्त की तरह (व्यत् न) तुमने भली प्रकार जान लिया (अचेति) क्योंकि (यत्) चमकीले चक्रों वाले (हिरण्यचक्रान्) लौह निर्मित आयुधों से युक्त (अयोद्रंष्टान्)- सात्विक आहार सेवी (वराहून्) इतस्ततः जाने वाले (विधवतः) तुम पुरुषों को देखकर वेदवेत्ता ब्राह्मण ने (गोतमः) तुम्हें उपदेश दिया है (सस्वः) । (८) रुद्र को भी वराह कहा गया है ।

'दिवो वराहमरुषं कपर्दिनम्'

ऋ. १.११४.५

(९) पर्वत । पर्वत से मूल धन मनुष्य निकालते हैं ।

आधुनिक अर्थ – सूअर, भेंड़ा, साँड़, घटा, मगर, घड़ियाल, सूअर के रूप में सजाई सेना-वराही । वराहावतार, तौल का एक विशेषण, वराहमिहिर ज्योतिषी, वराह पुराण ।

(१०) सु + आहत । उत्तम रीति से वशीकृत प्रत्याहार द्वारा दमन किया गया प्राण ।

'ब्राह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैः'

ऋ. १०.६७.७; अ. २०.९१.७; मै.सं. ४.१४.१०:

२३०.११; तै.ब्रा. २.८.५.१; नि. ५.४.
(११) श्रेष्ठ ज्ञान से युक्त, स्तुति शील, धर्ममेघ रूप सुसमाहित आत्मा ।
'विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता'
ऋ. १.६१.७; अ. २०.३५.७; नि. ५.४.
मेघ के अर्थ में –
'वराहेण पृथिवी संविदाना'
अ. १२.१.४८

वराहु– दे. 'वराह' । मरुतों का विशेषण । 'वराहु' ही 'वराह' है ।

वराहयुः– (१) वायु की कामना करने वाला, (२) वरहा की कामना करने वाला, (३) उत्तम कहाने योग्य पदार्थों का अधिकारी ।
'श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुः'
ऋ. १०.८६.४; अ. २०.१२६.४

वर्ता– (१) निवारण करने वाला, रोकने वाला ।
'न यस्य वर्ता जनुषा न्वस्ति'
ऋ. ४.२०.७
(२) वृ + तृच् = वर्तृः । प्र.ए.व. में वर्ता ।
'वपरिवर्तयिता, (३) रहने वाला ।
'नास्य वर्ता न तरुता महाधने'
ऋ. १.४०.८
बड़े-बड़े संग्राम में भी (महाधने) न कोई इसके मुकाबले पर रहने वाला (न वर्ता) और न कोई उसे परास्त कर उससे बढ़ जाने वाला ही होता है (न तरुता) ।
(४) वशकारी ।
'न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः'
ऋ. ५.२९.१४
(५) बाधक ।
'न ते वर्तासिराधसः'
ऋ. ८.१४.४; अ. २०.२७.४

वर्या– वरण करने योग्य रात्रि ।
'वर्ये वन्दे सुभगे सुजाते'
अ. १९.४९.३

वर्षा– वृष् + अच् + टाप् = वर्षा । वर्षा ऋतु (वर्षति आसु पर्जन्यः) वर्षाऋतु में मेघ बरसता है ।

वर्षाहू – (१) वर्षा को लाने वाला काल, (२) मेढ़क ।
'वर्षाहूर्ऋतूनाम्'
वाज.सं. २४.३८; मै.सं. ३.१४.१९: १७६.९

वर्ष्म – वृष् + मनिन् = वर्ष्मन् । प्र.ए. में वर्ष्मा अर्थ-वृष्टि कारक सामर्थ्य (२) समस्त लोकों के बन्धन या नियन्त्रण का सामर्थ्य ।
'वर्ष्माणं दिवो अकृष्णोदयं सः'
ऋ. ६.४७.४
(३) चोटी, ऊंची ध्वजा ।
'वर्ष्मा रथस्य नि जिहीडते'
अ. २०.१२७.२; शां.श्रौ.सू. १२.१४.१.२.
(४) वर्ण, (५) देह, (६) भोग साम-
'वर्ष्माणमस्मै वरिमाणमस्मै'
अ. ७.१४.३; का.सं. ३७.९; तै.ब्रा. २.७.५.१; आश्व.श्रौ.सू. ४.१०.१; शां.श्रौ.सू. ५.१४.८

वर्ष्या– वर्षा के जल ।
'अपो दिव्या असृजद् वर्ष्या अभिः'
ऋ. १०.९८.५; नि. २.११.
उस देवादि ऋषि ने दिव्यवर्षा के जल बरसाए ।

वर्ष्याः– ब.व. । वर्षा से प्राप्त जल धाराएं ।
'शमु ते सन्तु वर्ष्याः'
अ. १९.२.१; तै.आ. ६.४.१.

वरिमत् – (१) बहु स्थूलता, (२) विशालता ।
'यावदिदं भुवनं विश्वमस्ति उरुव्यचा वरिमता गभीरम्'
ऋ. १.१०८.२
(३) विस्तार ।
'यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा'
अ. ४.६.२
(४) पृष्ठ ।
'यत् पृथिव्याः वरिमन्ना स्वंगुरिः'
ऋ. ४.५४.४

वरिमा– श्रेष्ठता, महत्त ।
'वरिमा च मे प्रथिमा च मे'
वाज.सं. १८.४; तै.सं. ४.७.२.१; मै.सं. २.११.२: १४.१.२; का.सं. १८.७
'अयं स यो वरिमाणं पृथिव्याः'
ऋ. ६.४७.४
'दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथे'
ऋ. १.५५.१; ऐ.ब्रा. ५.१९.३
(२) सब पदार्थों से अधिक श्रेष्ठता ।
'वर्ष्माणंमस्मै वरिमाणमस्मै'
अ. ७.१४.३

वरिवः- (१) गुरुजन आदि की सेवा (२) अन्तरिक्ष
'वरिवश्छन्दः'
वाज.सं. १५.४,५; तै.सं. ४.३.१२.२,३: ५.३.५.४ मै.सं. २.८.७: १११.१२; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५.२.३,५; आप.श्रौ.सू. १७. ३.४.
(३) परिचरण। दे. 'पुरु' (४) सर्वोत्तम ऐश्वर्य।
'युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार'
ऋ. ३.३४.७; अ. २०.११.७

वरिवस्कृत- (१) सेवादि कर्म करने वाला।
'नमो भुवन्तये वारिवस्कृताय'
वाज.सं. १६.१९; तै.सं. ४.५.२.२; मै.सं. २.९.३: १२२.१५; का. सं. १७.१२.
(२) उत्तम ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाला इन्द्र।
'एष इन्द्रो वरिवस्कृत्'
ऋ. ८.१६.६

वरिवस्यत् - परिचर्या करता हुआ -सा.

वरिवस्यातः- (१) वरि वस्यत् (पूजा करता हुआ) के द्वितीया ब.व. का रूप। अर्थ है-पूजा करते हुए हम लोगों को।
(२) परिपूजित कर-ज.दे.श.।
'उभे यथा नो अहनी सचाभुवा
सदः सदो वरिवस्यात उद्भिदा'
ऋ. १०.७६.१
जिससे (यथा) परिचर्या करते हुए हमें (वरि वस्यतः नः) साथ ही उत्पन्न (सचाभुवा) दोनों द्यौ और पृथिवी (उभे अहनी) घर घर या सभी यज्ञगृहों में (सदःसदः) उद्भेदक धन से पूर्ण करें- सा.।
जिससे हमारे दोनों दिनरात (उभे अहनी) घर घर हमारे अनुकूल होते हुए (सचाभुवा) अपने आविर्भाव से (उद्भिदा) हमारे प्रत्येक गृह को परिपूजित करें (सदः सदः वरिवस्यतः)।

वरिवोधा- (१) वरिवः सुखसेवनं दधाति यः स रथः (सुख सेवन धारण करने वाला रथ)- दया.
(२) धनैश्वर्य को धारण और प्रदान करने वाला-ज.दे.श. (३) सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों को धारण करने वाला शरीर।
'श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः'
ऋ. १.११९.१

वरिवोधातमः- श्रेष्ठ ऐश्वर्य को धारण करने वाला।
'परिवोधातमो भव'
ऋ. ९.१.३; साम. २.४१,

वरिवोवित् - (१) धनवान्, ऐश्वर्यवान् (२) इन्द्र, (३) सेवा कर्म का ज्ञाता।
'वरिवोवित् परिस्रव'
ऋ. ९.६१.१२; साम. २.२३; वाज.सं. २६.१७

वरिवोवित्तर- (१) अति पूजनीय धन लाभ करने वाला।
'स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य'
ऋ. ८.४८.१

वरिवोविद्- (१) धनादि का दाता।
'भवन्तु वरिवोविदः'
ऋ. ८.२७.१४; वाज.सं. ३३.९४.
(२) धन समृद्धि को प्राप्त करने वाला।
'धिष्ण्या वरिवोविदम्'
ऋ. २.४१.९; वाज.सं. २०.८३
(३) धनैश्वर्य प्राप्त करने वाला दमन सामर्थ्य।
'वृत्रघ्ना वरिवोविदा'
ऋ. १.१७५.५

वरिवोदा- जीवन देने वाला जठराग्नि।
'वर्चोदा वरिवोदाः'
वाज.सं. १७.१५; तै.सं. ५.४.५.३; का.सं. १७.१७; २१.७; श.ब्रा. ९.२.१.१७; तै.आ. ४.७.४

वरिष्ठ - वर + इष्ठ = वरिष्ठ। सर्वश्रेष्ठ।
'तद् वार्यं वृणीमहे
वरिष्ठं गोपयत्यम्'
ऋ. ८.२५.१३; नि. ५.१.
हम उस वरणीय धन या ज्ञान का वर्णन करते हैं जो सर्वोत्तम तथा आप लोगों का रक्षणीय हो।
अथवा,
हम उस श्रेष्ठतम, अतिविस्तृत तथा रक्षा के योग्य ज्ञान का वर्णन करते हैं जिसका.....

वर्चिन् - (१) तेजस्वी, (२) शस्त्रास्त्रों से युक्त प्रतिद्वन्दी पुरुष, (३) दैत्य।
'यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रम्'
ऋ. २.१४.६

वर्ति- (१) गृह।
'वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम्'
ऋ. ८.९.११; अ. २०.१४१.१,
(२) लोकयात्रा, (३) अपनी स्थिति।
'ता वर्तिर्यातं जमुषा विपर्वतम्'

ऋ. १०.३९.१३
(४) सत्ता ।
'वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च'
ऋ. १.१८३.३; ६.४९.५.
(५) मार्ग । वृत्ति + ई = वर्ति ।
'त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने'
ऋ. १.३४.४
हे स्त्रीपुरुषो या अश्विद्वय, आप दोनों व्यवहार करने एवं चलने योग्य उत्तम मार्गों को तीन बार अर्थात् बार बार आओ जाओ ।
(६) वर्तमान ।
'तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम्'
ऋ. १.११७.२
हे उत्तम नायक विद्वान् जनो, उसी रथ से हमारे गृह पर भी आया करो ।

वर्तिका- (१) बटेरी, चटेक नामक पक्षी की स्त्री-सा. ।
'याभिर्वर्तिका ग्रसितामुञ्चतम्'
ऋ. १.११२.८; आप.श्रौ.सू. १५.८.१२.
जिन शक्तियों से ग्रस्त बटेर को तुम दोनों ने बचाया ।
अथवा,
ठगों की शिकार बनी बटेरी के समान अतिदीन प्रजा को ठगों और शत्रुओं से छुड़ाते हो ।
(२) संग्राम में वर्तमान सेना -दया.
(३) उषा,
अजोहवीदश्विना वर्तिका वाम्'
ऋ. १.११७.१६; नि. ५.२१.
हे अश्विद्वय, तुम दोनों को बटेरी ने पुकारा । हे उषा, तुम दोनों दिन और रात (अश्विना) को पुकारती है ।
अथवा,
संग्राम में वर्तमान सेना (वर्तिका) तुम दोनों का आह्वान करती है ।
(४) प्रजा-दया.
शतपथ ब्राह्मण में 'विट् वै शकुन्तिका' कहते हुए प्रजा को शकुन्तिका वत लाया है ।

वर्षिमा- (१) ज्ञान, (२) अनुभव, (३) आयु, (४) पद की वृद्धि ।
'वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे'
वाज.सं. १८.४

वर्षिष्ठ- (१) बसने वाला ।
'वर्षिष्ठानि परीणसा'
ऋ. ८.७७.९
(२) अति सुखकारक ।
'सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके'
वाज.सं. १.२२.
(३) अति प्रचुर मात्रा में विद्यमान ।
'तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतः'
ऋ. ३.१६.३
(४) सब से महान्, सबके प्रति आनन्द वर्षण करने वाला- परमेश्वर, (५) उत्तम प्रकाशमय सूर्य -सा.
'वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः'
अ. १९.४९.२

वर्षिष्ठं ऋतम् - (१) खूब बरसाने वाला जल, (२) सबसे अधिक बल स्वरूप सत्यमय ज्ञानमय आत्मा ।
'ऋतं वर्षिष्ठमुपगाव आगुः'
ऋ. ३.५६.२

वर्षिष्ठं रत्नम् - (१) प्रचुर वृष्टि से युक्त रमणीय दृश्य, (२) वृद्धियुक्त चिरकालिक रमणीय जीवन की प्रचुर सुखदायक बल वीर्य (३) अतिशय रमण करने योग्य चिरकाल में विद्यमान पुराण पुरुष ब्रह्मतत्व ।
'वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिः'
ऋ. ३.२६.८

वर्षिष्ठ क्षत्रा- अति बल शाली प्रचुर वर्षा लाने वाले वीर्य जलादि से युक्त
'वर्षिष्ठ क्षत्रा उरुचक्षसा नरा'
ऋ. ८.१०१.२

वर्षिष्ठा - (१) वर्ष + इष्ट + टाप् = वर्षिष्टा इष (अन्न) का विशेषण । दे. 'आपप्तत'
'आ वर्षिष्ठया न इषा
वयो न पप्तता सुमायाः'
ऋ. १.८८.१; नि. ११.१४
हे सुप्रज्ञ मरुतो (सुमायाः), अतिमहान् अर्थात् प्रचुर अन्न, (वर्षिष्ठया इषा) से उपलक्षित पक्षियों की तरह (वयोन) शीघ्र आओ ।
(२) खूब जल वृष्टि से बढ़ी हुई अन्न सम्पत्ति ।
(२) बहुल + इष्टन् + टाप् = वर्षिष्ठा, बहुत अधिक ।

वरीमन् - (१) वरण करने का अवसर ।
'अकारि वामन्धसो वदीमन्'
ऋ. ६.६३.३
(२) वरण करने योग्य किरण (३) वरण करने योग्य उपाय, श्रेष्ठ उपाय ।
'इन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिः'
ऋ. १.१३१.१
महान् आकाश वरण करने योग्य किरणों से अन्धकारनाशक सूर्य के समक्ष झुकते हैं ।
'उरु प्रजया अमृतं वरीमभिः'
ऋ. १.१५९.२

वरीयः- अ. । (१) सर्वथा, एकदम ।
'वरीयो यावया इतः'
अ. ७.६५.१.
(२) वि. । श्रेयान्, उरुतर, बहुतर । उरु + ईयसुन = वरीयस् (उरु का वर आदेश) ।

वरीयसी- अतिश्रेष्ठ, वरण करने योग्य बड़ी भारी ।
अदर्शि गातुरवे वरीयसी
ऋ. १.१३६.३
महान् पराक्रम शाली पुरुष के लिए ही यह अतिश्रेष्ठ वरण करने योग्य भूमि दीख पड़ती है ।

वरीवर्जयन्ती- फटकारती हुई ।
'सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती'
अ. १२.५.२२

वरीवृत - गोलमटोल गाँठ के समान गर्भ से निकलने वाला बच्चा ।
'परिपाहि वरीवृतात्'
ऋ. ८.६.२२.

वर्ची- (१) बलवान् तेजस्वी ।
'शतं वर्चिनः सहस्रं च साकम्'
हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान्'
ऋ. ७.९९.५; तै.सं. ३.२.११.३; मै.सं. ४.१२.५: १९२.५
(२) तेजोमय मेघ ।
'उदव्रजे वर्चिनं शम्बरञ्च'
ऋ. ६.४७.२१.

वर्मी- (१) लोहे का कवच धारण करने वाला ।
'नमो वर्मिणे च वरूथिने च'
वाज.सं. १६.३५; तै.सं. ४.५.६.२; मै.सं. २.९.६: १२५.२; का.सं. १७.१४.
(२) कवच धारी शूरवीर ।
'यद् वर्मी याति समदामुपस्थे'
ऋ. ६.७५.१; वाज.सं. २९.३८; तै.सं. ४.६.६.१; मै.सं. ३.१६.३: १८५.१०
(३) कवच पहने योद्धा

वर्षीयान् - बड़ा । वर्ष + ईयसु = वर्षीयस् । प्र.ए.में वर्षीयान् ।
'इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान्'
वाज.सं. २३.४८; आश्व.श्रौ.सू. १०.९.२; शां.श्रौ.सू. १६.५.२.

वरुण - (१) वृ + उनन् = वरुण । रश्मि जाल से आच्छादित करने वाला रोग विनाशक आदित्य का एक वैदिक नाम । दे. 'आदित्य' । अन्येषामपि देवतानाम् आदित्य प्रवादाः स्तुतयः भवन्ति (अन्य देवताओं की स्तुति से भी आदित्य की स्तुति की जाती है) ।
'उदुत्तमं वरुण पाशमस्मत्'
ऋ. १.२४.१५; अ. ७.८३.३
हे, आदित्य, तू मेरे ऊपर वाले बन्धन को (उत्तरं पाशम्) हम से ऊपर खींचकर ढीला कर (उत्) ।
(२) माध्यमिक वाक् -विद्युत् । दे. 'आरभ'
'महःसमुद्रं वरुणस्तिरो दधे'
ऋ. ९.७३.३; तै.आ. १.११.१; नि. १२.३२.
महान् विद्युत् नामी वरुण (महः वरुणः) जब आदित्य को (समुद्रम्) मेघ जाल से तिरोहित कर देते हैं (तिरोदधे) ।
(३) सूर्य के अर्थ में वरुण का प्रयोगः- दे. 'ऋक्ष'
'अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि
विचाकशच्चन्द्रमानक्तमेति'
ऋ. १.२४.१०; ३.५४.१८; तै.आ. १.११.२
सूर्य के ये अहिंसित एवं आश्चर्यमय कर्म हैं कि दीप्तिमान चन्द्रमा रात में आकाश में आते हैं ।
(४) वरुण मेघजाल से आकाश को आवृत करता है । (५) वरणीय परमात्मा -दया. । सूर्य के अर्थ में प्रयोग -
'येना पावक चक्षसा
भुरण्यन्तं जनाँ अनु
त्वं वरुण पश्यसि'
ऋ. १.५०.६; अ. १३.२.२१; २०.४७.१८; आ.सं.

५.११; वाज.सं. ३३. २२; नि. १२.२२-२५
(६) एक वायु। मित्र और वरुण के योग से जल उत्पन्न होता है। प्रायः मित्र के साथ वरुण का साथ रहता है जैसे मित्रावरुण (७) प्राणवायु।
'तन्नो मित्रो वरुणे मामहन्ताम्'
ऋ. १.९४.१६; ९५.११; ९६.९ ; ९८.३; १००.१९; १०१.११; १०२.११; १०३.८ ; १०५.१९; १०६.७; १०७.३; १०८.१३; १०९.८; ११०.९; १११.५; ११२.२५; ११३.२०; ११४.११; ११५.६; ९.९७.५८
उस आत्मा शक्ति को प्राण अपान आदि बढ़ावें-दया.।
(८) मेघ या जल का देवता।
(९) ओषजन वायु (Oxygen)।
(१०) चुना हुआ राजा।
(११) मित्र का अर्थ मन्त्री और मित्रा वरुण का अर्थ राजा और मंत्री भी किया गया है।
आधुनिक अर्थ-आदित्य, पश्चिम दिशा का स्वामी वरुण, समुद्र, आकाश मण्डल
(२) वरुण नामक विषहारी ओषधि।
'मित्रश्च वरुणश्च'
अ. ३.२२.२; १०.४.१६; तै.आ. १.१३.३
(३) सबको आवरण करने वाला। मेघ।
'मित्रो गृणाति वरुणः'
अ. २०.१०६.३

वरुणतेजाः- (१) वरुण के समान तेजस्वी, (२) स्वयंवृत राजा के समान तेजस्वी।
'अप्सुसंशितो वरुणतेजाः'
अ. १०.५.३३

वरुणध्रुत- (१) वरुण या श्रेष्ठजनों से विनाशित दण्डित (२) श्रेष्ठ पुरुषों से धारित।
'रिपः काश्चिद् वरुणध्रुतः सः'
ऋ. ७.६०.९

वरुणपुत्र- कफ से उत्पन्न ज्वर।
'यदि वा राज्ञो वरुणस्यासि पुत्रः'
अ. १.२५.३

वरुणशेषाः- (१) श्रेष्ठ दुःखकारक पुरुष का पुत्र, (२) श्रेष्ठ पुत्र वाला।
'अनेहसस्त्वोतयः
सत्रा वरुणशेषसः'
ऋ. ५.६५.५

वरुणस्य जामिः- (१) वरण करने योग्य अन्धकार को वारण करने वाले सूर्य की जामि अर्थात् भगिनी उषा, (२) सबको आवरण करने वाले रात्रि रूप अन्धकार की कन्या -उषा (३) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष का अपत्य उत्पन्न करने वाली पुत्री-कन्या, (४) दुःखों से वारण करने वाले भ्राता की भगिनी।
(५) वरुण की भगिनी-उषा।
'भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिः
उषः सूनृते प्रथमा जरस्व'
ऋ. १.१२३.५

वरुणस्य धर्मा- (१) राजा या श्रेष्ठ परमात्मा का धर्म धारण व्यवस्था या राजनियम।
'तं ते तपामि वरुणस्य धर्मणा'
अ. ६.१३२.१-५

वरणमणि- (१) वरण करने या मुख्य रूप से चुनने योग्य श्रेष्ठतम राजतिलक द्वारा अभिषेक करने योग्य (२) शत्रुका तरण करने वाला पुरुष शिरोमणि, (३) शत्रुओं का वारण करने वाले मणित-बीज।
'अयं मे वरणो मणिः
सपत्नक्षयणो वृषा'
अ. १०.३.१

वरुण्प- (१) वह रोग जिसमें बहुत प्यास लगे या जो रोग रात्रिकाल में बढ़े।
'अथो वरुण्यादुत'
ऋ. १०.९७.१६; अ. ६.९६.२; ७.११२.२; वाज.सं. १२.९०.
(२) दमन करने योग्य असत्य भाषणादि अपराध।

वरुणानी - वृ + उनन् = वरुण। वरुण + आनुक् + ङीष् = वरुणानी।
(१) वरुण की पत्नी-सा.।
(२) समुद्र।
'आ रोदसी वरुणानी श्रृणोतु'
ऋ. ५.४६.८; ७.३४.२२; अ. ७.४९.२; मै.सं. ४.१३.१०: २१३.११; तै.ब्रा. ३.५.१२.१; नि. १२.४६.
रुद्र की पत्नी (रोदसी) तथा वरुण की पत्नी (वरुणानी) सुनें।
(३) आत्मा की शक्ति, (४) चिति शक्ति जिससे

स्वप्न निकलता है ।

'वरुणानी ते माता'

अ. ६.४६.१

वरणावती - (१) वरणा नामक ।

ओषधि जिससे विष दूर होता है ।

'वारिदं वारपातै
वरणावत्यामधि'

अ. ४.७.१

धन्वन्तरि राजनिघण्टु के अनुसार 'वरा' ही वरणा है । पान, बन्ध्या, कर्कोटकी, विडङ्ग, हरिद्रा, काकमाची, और उसके दोनों भेद काकजंघा और चूड़ामणि, और वरा के गण में ही हैं ।

इसके अंश से युक्त जल से विषनाशक होता है । पृथ्वी भी वरा है । मिट्टी के प्रलेप से भी सर्प आदि के विष दूर होते हैं ।

वरुत्री- (१) रक्षा करने वाली विद्या -दया. (२) उपद्रवों को धारण करने वाली -सा. ।

वर्धुः- बढ़ाने वाला ।

'वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हाः'

ऋ. १.७१.६

वरूता- (१) अपनाने वाला और विभाग कर रखने वाला ।

'को वस्त्राता वसवः को वरूता'

ऋ. ४.५५.१; शां.श्रौ.सू. १७.८.९

(२) विपत्तियों से बचाने वाला ।

'त्वमिनो दाशुषो वरूतेत्थाधीः'

ऋ. २.२०.२

(३) वरिता, स्वीकर्ता,

(४) रक्षा करने वाला ।

'महश्चिदसि त्यजसो वरूता'

ऋ. १.१६९.१; कौ.ब्रा. २६.१२.

वरूत्री- (१) शत्रुओं से वारने वाली सेना ।

'अस्मान् वरूत्रीः शरणैरवन्तु'

ऋ. ३.६२.३

वरूथः- (१) घर के समान सब को शरण देने वाला, (२) विपत्तियों और आक्रमणों का वारक ।

'वरूथः सर्वस्मा आसीत्'

अ. २०.१२८.१२

(२) वृ + ऊथ = वरूथ । ताप निवारक वृष्टि जल या उत्तम जल ।

'शीर्ष्णा शिरः प्रतिदधौ वरूथम्'

ऋ. १०.२७.१३.

आदित्य अपने शिरः स्थानीय रश्मिजाल से (शीर्ष्णा) ताप निवारक वृष्टि जल या उत्तम जल को (वरूथम्) समस्त संसार के सिर पर बरसाता या रखता है (शिरः प्रतिदधौ) ।

वरूथ्यः- (१) उत्तम गृह में निवास करने वाला, (२) उत्तम सेना संघों का हितैषी, (३) उत्तम रक्षा साधनों से सम्पन्न ।

'उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः'

ऋ. ५.२४.१; साम. १.४४८; २.४५७; वाज.सं. ३.२५; १५.४८; २५.४७; तै.सं. १.५.६.३; ४.४.४.८; मै.सं. १.५.३: ६९.९; का.सं. ७.१, ८; श.ब्रा. २.३.४.३१; कौ.सू. ६८.३१.

(२) गृहोचित् धनधान्यादि सुख, (२) दुःख वारण में समर्थ साधन ।

'विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहे'

ऋ. ८.४७.३

वरूथ्यं छर्दिः- शीत, आतप वर्षा आदि से वरण करने वाला दृढ़ गृह ।

'छर्दिर्यद्वाँ वरूथ्यं सुदानू'

ऋ. ६.६७.२

वरूथी- (१) गृह, प्रासाद आदि का स्वामी ।

'नमो वर्मिणे च वरूथिने च'

वाज.सं. १६.३५; तै.सं. ४.५.६.२; मै.सं. २.९.६ १२५.२; का. सं. १७.१४.

वर्वृतानः- (१) उत्पन्न हुआ, (२) ले जाने वाला ।

'प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः'

ऋ. १०.३४.१; नि. ९.८

वर्वृताना- (१) पुनः पुनः वर्तमानाः बार-बार होती हुई ।

वृत् धातु के लिट् में कानच् और टाप् जोड़कर बना है ।

(२) बहुत पाई जाने वाली, या, (पुल्लिंग में) में बहुत पाए जाने वाले ।

वर्षा ऋतु, सूखे स्थल, शून्य या मरुभूमि में बहुत पाए जाने वाले । 'हर्रे' ।

वरेण्य - वृत् + एण्य = वरेण्य । वरणीय

'विनाकमारव्यत् सविता वरेण्यः

वह सविता वरणीय है और द्युलोक को भी

दिखलाते या प्रकाशित करते हैं (नाकम् व्यारव्यत्) ।

वरेण्य क्रतु- (१) सब से गुण वरण करने योग्य ज्ञान और कर्म से युक्त

'वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये'

अ. ६.२३.१

वरेयु:- सत्कार्य में लगा पुरुष ।

'वरेयवो न मर्या घृतप्रुषः'

ऋ. १०.७८.४

वर्चोधा - तेज का धारण करने वाला ।

'सूरिरसि वर्चोधा असि'

अ. २.११.४

वल- (१) शत्रुनगरों को घेरने में समर्थ,

(२) बलवान् पुरुष ।

(३) विद्युत् आघात् करने वाला । आकाश में व्यापक मेघ ।

(४) संरक्षा संवारण करने योग्य विदयार्थी ।

'अलातृणो वल इन्द्र वज्रो गोः'

ऋ. ३.३०.१०; नि. ६.२.

(५) वृ (आच्छादना) + अप = वल (र का ल् कपिल आदि के समान) । व्रियते अनेन दिश = आकाशावा इति वलः मेघः (इस बल से आकाश आवृत रहता है) ।

अर्थ- (१) मेघ ।

'वल' धातु से भी यह शब्द निष्पन्न हो सकता है ।

'अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः
पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार'

ऋ. ३.३०.१०

हे इन्द्र, या राजन्, जो यह आकाश में आच्छादित , इधर उधर मड़राता हुआ (व्रजः) या अन्तरिक्ष में गोष्ठ भूत पका हुआ मेघ (अ-लातृणः) पूर्ण ही भयभीत होकर (गोः हन्तो पुरा भयमानः) ढीला पड़ जाता या इधर उधर विश्लिष्ट हो जाता है (व्यार)......।

(२) आन्तरिक शत्रु ।

'तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नयः
ऋतं वन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम्'

ऋ. १०.१३८.१

हे सूर्य, तेरे सख्य में विद्यमान नेता विद्वान् (वह्नयः) सत्य स्वरूप प्रभु का मनन करते हुए (ऋतं मन्वानाः) आन्तरिक शत्रुबल को (वलम्) विदीर्ण किया (व्यदर्दिरुः) ।

दुर्ग ने वल का अर्थ मेघ, ऋत का अर्थ जल और वह्नि का अर्थ 'अश्व' किया है ।

(३) शक्ति, (४) वल नामक असुर

(५) नगर पुर आदि को घेरने वाला शत्रु ।

मेघ के अर्थ में प्रयोग -

'भिनद् वलस्य परिधींरिव त्रितः'

ऋ. १.५२.५; मै.सं. ४.१२.३: १८५.५

जिस प्रकार सूर्य और वायु मेघ के पटलों को (वलस्य परिधीः) ऊपर, अण्डे और तिरछे तीनों प्रकारों से (त्रितः) छिन्न भिन्न कर देता है । (अभिनत्) ।

(६) तामस आवरण ।

'इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानाम्'

ऋ. १०.६७.६; अ. २०.९१.६

(७) अन्तः करण को घेरने वाला अज्ञान

'अर्वाञ्चं नुनुदे वलम्'

ऋ. ८.१४.८; अ. २०.२८.२; २०.३९.३ साम. २.९९१; ऐ.ब्रा. ६.७.६; गो.ब्रा. २.५.१३.

घर लेने वाला अन्धकार ।

'बिभेद वलं नुनुदे विवाचः'

ऋ. ३.३४.१०; अ. २०.११.१०; मै.सं. ४.१४.५: २२२.१०.

वलग - गूढ़ हिंसा प्रयोग ।

'इतमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे
निष्ट्यो यममात्यो निचखान'

वाज.सं. ५.२३.

वलगा - (१) वलगाः पीड़ार्थे भूमेरधो बाहुप्रदेशे निरवन्यमानाः असि केशादि वेष्टिता विष वृक्षादि-निर्मिताः पुत्तल्यो वलगा इत्युच्यन्ते -सा. (भूमि में एक हाथ भर नीचे खोदकर उसमें हड्यों और केशों से लिपटी जहरीले विषवृक्ष आदि की बनी पुतली वलगा है)- सा. ।

(२) शत्रुओं को मारने का प्रयोग विशेष जैसे देवता, पिशाची, कृत्या ।

वलगी- (१) गुप्त यन्त्रणा करने वाला, (२) वलगा नामक भूमि के अन्दर किया जाने वाला । प्रयोग ।

'कृत्याकृतो वलगिनः'

अ. १०.१.३१.

वलंरुजः- (१) मेघ को आघात करने वाला सूर्य, (२) वल को मारने वाला- इन्द्र, (३) घेरने वाले शत्रु को प्रबल आक्रमण से तोड़ फोड़ देने वाला ।

'वृत्रखादो वलंरुजः'

ऋ. ३.४५.२; साम. २.१०६९

व्यल्कशा - बड़ी बड़ी शाखाओं वाली ।

'शाण्डदूर्वा व्यल्कशा'

अ. १८.३.६

वल्ग - ललकारना, (२) तप्तजल का खौलना -खदकना,

'उद्योधन्त्यभि वल्गन्ति तप्ताः'

अ. १२.३.२९

(३) अतिथि सत्कार करना

(४) गति करना ।

'आच्छीभं समवल्गत'

अ. ३.१३.२.

वल्गत्- (१) गमन करता हुआ, (३) उत्तम उपदेश करने वाला । पुरुष ।

'वल्गते स्वाहा'

वाज.सं. २२.७; मै.सं. ३.१२.३: १६०.१४.

वल्श- (१) अंकुर, (२) शाखा । branch से वल्श की समानता विचारणीय है ।

'वनस्पते शतवल्शो विरोह'

ऋ. ३.८.११; तै.सं. १.३.५.१; ६.३.३.३ मै.सं. १.२.१४: २३.९; का.सं. ३.२,२६.३; तै.ब्रा. १.२.१.५; आप.श्रौ.सू. ५.२.४; ७.२.८

वल्ह - पूछना ।

'एतद्‌ब्रह्मन्नुपत्वा वल्हामसि त्वा

वाज.सं. २३.५१; आश्व.श्रौ.सू. .१०.९.२; शां.श्रौ.सू. १६.६.३; ला.श्रौ.सू. ९.१०.११.

वल्मीक - दीमक का बना ढेर ।

'वल्मीकान् क्लोमभिः'

वाज.सं. २५.८

वल्गुः -मधुर वचन ।

'जुष्टा वरेषु सुमनेषु वल्गुः'

अ. २.३६.१

ववक्षिथ - 'वच्' या 'वह्' धातु के सनन्त म.पु.ए.व.में अभ्यास (द्वित्व) होने से 'ववक्षिथ' बना है । यहाँ एकवचन के स्थान में बहुवचन तथा 'क्ष' के अ का 'इ' व्य व्यत्यय से हुआ है ।

'अति विश्वं ववक्षिथ'

ऋ. १.८१.५; साम. १.३१२.

ववक्षे- पुनःपुनः ब्रूषे (तू बार बार कहता है) । दे. 'परिचक्ष्य' ।

'अ यद्ववक्षे शिपिविष्टोऽस्मि'

ऋ. ७.१००.६; साम. २.९७५; तै.सं. २.२.१२.५; मै.सं. ४.१०.१: १४४.४; नि. ५.८.

तू जो अपना यह नाम बार बार कहता है (प्र यत् ववक्षे) कि मैं शेप के सदृश तेज में निविष्ट हूँ (शिपिविष्टोऽस्मि) या शरीर में व्याप्त वीर्य की तरह मैं इस भूमण्डल में व्याप्त हूँ ।

ववन् - विद्वान् जन ।

'अग्निर्वन्वे सुवीर्यम्'

ऋ. १.३६.१७

अग्नि विद्वान् जन को उत्तम बल दे ।

ववन्वान् - सब का दाता प्रभु ।

अथो अयुक्तं युजद् ववन्वान्'

ऋ. १०. २७.९

ववर्जुषी- (१) सब दोषों से रहित प्रजा (भृंश दोषान् वर्जयन्ती)-दया . ।

ववर्तत्- सर्वत्र व्याप्त ।

'आ च यज्ञियो ववर्तत्'

अ. २०.५५.१

ववव्रुष्- (१) आवरणकारी अन्धकार ।

'ववव्रुषश्चित् तमसो विहन्ता'

ऋ. १.१७३.५

वव्रः- (१) चारों ओर से घिरा,

(२) कारागार, (२) कूप,

(३) गड्ढा ।

'इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तः'

ऋ. ७.१०४.३; अ. २.४.३;

(४) व्यापक ।

'असिन्वं वव्रं महयाददुग्रः'

ऋ. ५.३२.८

(५) आवृत स्थान, (६) गौओं का बाड़ा, (७) आवृत अन्तः करण, (८) सुगुप्त ।

'अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तः'

ऋ. ४.१.१३.

कूप के अर्थ में -

'स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि'
ऋ. १.५२.३
जेल, आवृतस्थान या गड्ढे के अर्थ में -
'वव्रमनन्तमवसापदीष्ट'
ऋ. ७.१०४.१७; अ. ८.४.१७;
(९) व्रज् + ड = वव्रः (द्वित्व) । सद्यः गन्ता - दया. ।
(१०) सदा चलने वाला वायु 'वव्रासो न' ।
(११) वायुओं और प्राणों के समान जीवन की वृद्धि के लिए निरन्तर देश देशान्तर में भ्रमण करने वाला ।
(१२) मरुतों का विशेषण । 'वावर' और 'व व्र' शब्द की समानता विचारणीय है ।
'वव्रासो न ये स्वजाः'
ऋ. १.१६८.२

वव्रि- वृञ् + कि = वव्रि । वव्रिः इति रूपनाम (वव्रि रूप का नाम है) ।
'तत् हि स्वाश्रयम् आवृणोति'
(रूप अपने आधार को आवृत करता है अतः वव्रि है) । अर्थ है- (१) रूप ।
सुन्दर बाल रखने का नामं 'वावरी' है जिस की समानता 'वव्रि' शब्द से स्पष्ट है ।
(२) आहवनीय अग्नि नाम का विशेषात्मा जिसे घर में आहुति के लिए रखते हैं । -सा.
(३) वरण किया हुआ, आचार्य ।
'शये वव्रिश्चरति जिह्वया दन्'
ऋ. १०.४.४
आहवनीय अग्नि नाम का विशेषात्मा इस परिमित स्थान में आहुतियों को खाता हुआ जलता रहता है ।
अथवा,
वरण किया हुआ आचार्य आश्रम में वाणी द्वारा शिक्षा देते हुए विचरते हैं ।

वव्रिवान् - घेरने वाला, विघ्नकारी
'अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसम्'
ऋ. २.१४.२

वव्रिवासाः- रूप विनाशक या ऊपर के दिखाए वस्त्र से सजा हुआ ।
'आ श्रेषं वव्रिवाससम्'
अ. ८.६.२.

ववृतीय- लगाऊं ।
'अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान्'
ऋ. १.१८६.१०

वश- (१) To wish कामना करना ।
'वशैश्च मक्षू जरन्ते'
ऋ. ८.८१.९
'यथा वशन्ति देवा स्तथेदसत्'
ऋ. ८.२८.४
(२) वश करने योग्य राष्ट्रजन ।
'याभिर्वशं दश व्रजम्'
ऋ. ८.८.२०
(३) जीवन को वश या स्थिर करने वाला सोम, परमेश्वर या शुक्र।
'त्वं च सोमनो वशो
जीवातुं न मरामहे'
ऋ. १.९१.६

वंश- (१) वने + शीङ् + अच् = वनेशय = वनशय = वंश ।
(२) वन् (संभजन) + श्रू = वंश । पृषोदरादिवत् । 'वंशो वनशयो भवति वननात् श्रूयत इति वा' । (बांस मानों वन में सोया रहता है अथवा पोर गिरह गांठों के द्वारा बांस से विभक्त रहता है इसी से वंश कहलाया) ।
अर्थ- (१) बांस, (२) ध्वजा ।
'ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत
उद्वंशमिव येमिरे'
ऋ. १.१०.१; साम. १.३४२; २.६९४; तै.सं. १.६.१२.३; नि. ५.५.
हे शतक्रतो ! ब्राह्मण तुझे ध्वजा की तरह स्तुति के द्वारा बढाते हैं ।
आधुनिक अर्थ - वंश, कुल परिवार, समान पदार्थों का समूह, बांस की ग्रन्थि, एक प्रकार का ईख, रीढ़, शाल वृक्ष, लम्बाई नापने का एक परिमाण ।
(२) बांस के अर्थ में प्रयोग -
'वंशानां ते नहनानाम्'
अ. ९.३.४
ध्वजादण्ड के अर्थ में प्रयोग ।
'ऋतेन स्थूणामधि रोह वंश'
अ. ३.१२.६

वशनी- (१) वश करने में समर्थ, (२) वश में जाने योग्य ।

'अथा देवानां वशनीर्भवाति'

ऋ. १०.१६.२; अ. १८.२.५; तै.आ. ६.१.४.

वंशवर्ती- बांस पर नाचने वाला।

'अन्तरिक्षाय वंशवर्तिनम्'

वाज.सं. ३०.२१; तै.ब्रा. ३.४.१.१७

वशा- (१) वीर्य धारण करने में समर्थ गौ, (२) सुन्दर मनोहर गौ

'उक्षा च मे वशा च मे'

वाज.सं. १८.२७; तै.सं. ४.७.१०.१; का.सं. १८.१२;

(३) उत्तम पृथिवी, (४) दिव्यवाणी, (५) उत्तम स्त्री।

'वशाभिरुक्षभिः'

ऋ. २.७.५

(६) संसार को वश करने वाली परमात्मा शक्ति।

'वशं सहस्रधाराम्'

अ. १०.१०.४

(६) परमेश्वर की सर्व वशकारिणी ज्ञानमयी शक्ति।

(८) वशा रूप गौ-सा.

(९) पृथिवी जिसका शासन प्रजा के हाथ में है।

'यदि हुतां यद्यहुताम्'

अ. १२.४.५३.

(१०) कामना करने योग्य उत्तम पुत्रादि पदार्थ।

'प्र वां निचेरुः ककुहो वशामनु'

ऋ. १.१८१.५

वशान्न - वशा + अन्न। (१) समस्त संसार को समष्टि व्यष्टि रूप से वश करने वाली चेतना शक्ति को ही अपना अन्न अर्थात् मानस भोजन बनाने वाला योगी जन।

'उक्षान्नाय वशान्नाय'

ऋ. ८.४३.११; अ. ३.२१.६; २०.१.३; तै.सं. १.३.१४.७; मै.सं. २.१३.१३: १६३.४, का.सं. ७.१६; ४०,५; ऐ.ब्रा. ६.१०.५; कौ. ब्रा. २८.३;

(२) वशा अन्न (३) यथेच्छ भोजन करने वाला- जीवात्मा (४) सर्ववशकारिणी शक्ति का अन्नवत् उपभोग करने वाला।

'उक्षान्नाय वशान्नाय
सोमपृष्ठाय वेधसे'

ऋ. ८.४३.११; अ. २०.१.३; ३.२१.६

(५) वशा अर्थात् पृथिवी जिसका अन्त है- परमेश्वर

(६) जिसका अन्न सब को वश करने में समर्थ है।

वशायाः पुत्रः- (१) सर्ववशकारिणी ब्रह्मशक्ति का पुत्र (२) वश करने वाली पृथिवी या राष्ट्र के पुरुषों को कष्टों से त्राण करने में समर्थ राजा।

'वशायाः पुत्रमायन्ति'

अ. २०.१२०.१५

वशा-शमन- (१) बन्ध्या गौ का शमन- मारना, (२) पृथ्वी की शक्ति की उपासना।

वशि- पूर्णवशी।

'वशिं भगमिन्द्र'

वाज.सं. २८.३३

वशी- (१) अपराधीन, स्वतन्त्र (२) इन्द्र का विशेषण

(३) स्वा. दयानन्द के अनुसार राजा का विशेषण।

'वशी य आरिवः कर्मणि कर्मणिस्थिरः'

ऋ. १.१०१.४

जो इन्द्र या राजा अपराधीन, स्वतन्त्र है, जो सर्व के आधारभूत मर्यादित मार्ग की तरह है या जिसके पास स्तोता स्तुतियों के द्वारा जाते हैं। (आरितः), (या स्वा. दयानन्द के अनुसार) जो वेदानुकूल चलने वाला राजा है-जो प्रत्येक कर्म में स्थिर है......

वशीय - वश करने में समर्थ।

'अस्मादेतमघ्न्यौ तद् वशीयः'

अ. १८.४.४९

वषट्- (१) सत्कार पूर्वक।

'वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि'

ऋ. ७.९९.७; १००.७; साम. २.९७७; तै.सं. २.२.१२.४; का.सं. ६.०; आश्व.श्रौ.सू. ३.१३.१४.

(२) वहन कार्य -

'वषट् ते पूषन्नस्मिन् सूतौ
अर्यमा होता कृणोतु वेधाः'

अ. १.११.१

(३) दान दिया जाना, (४) आत्म-समर्पण।

'वषट् हुतेभ्यः वषडहुतेभ्यः'

अ. ७.९७.७

वषट्कार- (१) वाक् वै वषट् कारः । वाग् रेतः । रेत एव एतत् सिञ्चति (२) षट् इति । ऋतवो वैषट् , तद् ऋतुष्वेव एतत् रेतः सिच्यते तदृतव रेतः सिक्तमिमाः प्रजा प्रजनयन्ति । तस्मादेव वषट् करोति ।
श.ब्रा. १.७.२.२१.
(३) यो धाना सो वषट् कारः-ऐ.ब्रा. (४) त्रयो वै वषट् काराः वज्रो धामच्छद् रिक्तः । स यदेवोच्चैः वलं वषट् करोति स वज्रः । अथो यः समः सन्ततो निर्हाणच्छत् स धामच्छत् अथ येन वषट् पराध्नोति स रिक्तः गो.ब्रा.
(५) वज्रो वै वषट् कारः-ऐ.ब्रा. (६) एते एव वषट् कारस्य प्रियतमे तनू यदाजश्च सहश्च-कौ.ब्रा., ऐ.ब्रा.
तस्य एतस्य ब्रह्म यज्ञस्थ चत्वारो वषट् कारा-यत् वातो वाति , यत् विद्योतते । यत् स्तनयति, यदवस्फूर्जति-श.ब्रा.
अर्थ - (१) शरीर में वाणी, प्राण और अपान, (२) वीर्य सेचन, (३) छः ऋतुओं में सूर्य बलाधान करता है । यह उसका वषट् कार है, (४) सूर्य स्वतः वषट् कार है, (५) धाता होना, वीर्य आधान करने में समर्थ होना वषट् कार है, (६) ब्रह्म, धामच्छद् और रिक्त वषट्कार के तीन स्वरूप है । (७) ओजः और सहः पराक्रम-शत्रुदमनकारी बल से दोनों वषट्कार के दो रूप हैं । (८) ब्रह्म यज्ञ के चार वषटकार है-वायु का वेग से चलना, विजली का चमकना, गर्जना और कड़कना । (९) यज्ञ में स्वाहा करने वाला ।
'याज्याभिर्वषट्कारान्'
वाज.सं. १९.२०

वषट्काराः - स वै वौक् इति करोति । वाक् वै वषट्कारः वाक् रेताः । रेत एतत् सिञ्चति । षट् इति ऋतवः । ऋतवो वै षट् । ऋतुष्वेव एतत् रेतः सिच्यते । योधाता स एव वषट् कारः।
श.ब्रा. १.७.२.२१.
'वषट्कारैः वषट्कारा'
वाज.सं. २०.१२.

वषट्कृत - (१) स्वाहाकार आदि यज्ञ ।
'इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वषट् कृतम्'
अ. ९.५.१३.
(२) उत्तम सत्कार से युक्त ।
'पत्नीवन्तो वषट् कृताः'
ऋ. ८.२८.२
(३) क्रिया निष्पादित, शिल्पविद्याजन्य (क्रिया द्वारा निष्पादित शिल्प विद्या से हुआ कर्म) ।
(४) वषट्कार, (५) यज्ञ,
(६) आहुति या आदान प्रदान,
(७) सृष्टिगत सर्ग और प्रलय (८) दान शील ।
'इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट् कृतम्'
ऋ. १.१६२.१५; अ. ९.५.१३; वाज.सं. २५.३७; तै.सं. ४.६.९.२; मै.सं. ३.१६.१: १८३.११
तब इसे प्राप्त हुए, समृद्ध, सुन्दर, सबको प्रिय दानशील, परिश्रमी, विद्वान् राष्ट्र और राष्ट्रपति को......
(९) छः हिस्सों में किया गया । सष्ठांश कर ।
'पिबेन्दु स्वाहा प्रहुतं वषट् कृतम्'
ऋ. २.३६.१

वषट्कृति- सत्कार, हवन ।
'सेमां वेतु वषट् कृतिम्'
ऋ. ७.१५.६

वषट् कृति आहुति - (१) वह आहुति जिसमें उत्तमोत्तम क्रिया की जाय, (२) पांचों भूत एवं अहंकार महत् युक्त छः विकारों की आहुति ।
'य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिम्'
ऋ. १.३१.५
जो परमेश्वर या अग्नि स्वयं पांचों भूत और अहंकार महत् युक्त छहों विकारों की आहुति को अपने भीतर ग्रहण करता है ।

वष्कयवत्स- सत्यस्वरूप जगत् का आच्छादक प्रभु ।

वष्टि- चाहता है । वश् + तिप् । वश् ' धातु से ही wish हुआ है ।
'जुहोत पृष्णे तदिदेष वष्टि'
ऋ. २.१४.१
(वह इसे ही चाहता है) ।

वष्टु- कामना करे, अपनावे, संचालन करे ।
'यज्ञं वष्टु धियावसुः'
ऋ. १.३.१०; साम. १.१८९; वाज.सं. २०.८४; मै.सं. ४.१०.१; १४२.८; का.सं. ४.१६; तै.ब्रा. २.४.३.१; ऐ.आ. १.१.४.१६; नि. ११.२६.

कर्मयोग में बसाने वाली या कर्म से प्राप्य धन को देने वाली (धियावसुः) सरस्वती या वेदवाणी हमारे यज्ञ की कामना करे, अपनावे या हमारे प्रत्येक शुभ कर्म का संचालन करें ।

वः – आप के लिए (युष्मभ्यम्) ।

'इमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्'

ऋ. १०.१५.४; अ. १८.१.५१; वाज.सं. १९.५५; तै.सं. २.६.१२.२; मै.सं. ४.१०.६; १५६.१२; का.सं. २१.१४.

हे यज्ञ में बैठने वाले पितरो, आप के लिए हमने ये हव्य तैयार किए हैं इन्हें आप चखें ।

वस्– (१) बसने वाला – प्रजानन ।

'वसां राजानं वसतिं जनानाम्'

ऋ. ५.२.६.

(२) आच्छादित करना ।

'अयं वस्ते गर्भं पृथिव्याः'

अ. १३.१.१६.

वंस – देना ।

'अग्निर्नो वंसते रयिम्'

साम. १२२; तै.सं. ४.६.१.५; का.सं. १८.१.

वंसगः– (१) वृषभ के समान सुन्दर मनोहर गति से चलने वाला नर पुंगव, नर श्रेष्ठ ।

'धरुणोऽसि वंसगोऽसि'

अ. १८.३.३६

(२) सत्यासत्य विवेकी पुरुषों के बीच स्थित,

(३) उत्तम आचारवान

(४) बैल, वृषभ

'यूथे न साह्वां अववाति वंसगः'

ऋ. १.५८.५

(६) सेवनीय समस्त पदार्थों या लोकों में व्यापक ।

(७) उत्तम गति वाला हृष्टपुष्ट बैल

'वृषा यूथेवं वंसगः'

ऋ. १.७.८; अ. २०.७०.१४; साम. २.९७२.

वसति– (१) वासस्थान, ग्राम ।

'वसश्च मे वसतिश्च मे'

वाज.सं. १८.१५; तै.सं. ४.७.५.२; मै.सं. २.११.५; १४२.११; का.सं. १८.१०

'वयो न वसतीरुप'

ऋ. १.२५.४

(२) वस् + अति = वसति । अर्थ है स्थावर आहुति ।

वसत्या– वसति + टाप् = वसत्या । 'वसति' के तृतीय ए.व.का रूप । अर्थ है –वास स्थान से, (२) स्थावर ओषधि की आहुति से ।

वसते– आच्छादित करती है । 'वस् ' धातु आच्छादित करना अर्थ में आया है ।

'यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं
सुपर्ण्यो वसते मातरिश्वः'

ऋ. १०.८८.१९; नि. ७.३१.

हे मातरिश्वा !जितना ही रात्रि या उषा, का प्रतीक आच्छादित करती हैं या जितनी ही उषाएं रात्रियों से देखी जाती हैं ।

वसन्त – (१) वसन्त ऋतु ।

'वसन्तो अस्यासीदाज्यम्'

ऋ. १०.९०.६; अ. १९.६.१०; तै.आ. ३.१२.३

(२) सब प्राणियों को बसाने वाला–परमात्मा ।

'वसन्त इन्नु रन्त्यः'

आ.सं. ४.२.

वसव्य– (१) बसे प्राणिजनों एवं लोक के हित के लिए, (२) द्रव्यों में ।

'अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः
समर्थयस्व बहुते वसव्यम्'

ऋ. २.१३.१३

(३) वसु + यत् = वसव्य । गृह में बसने वाले के लिए हितकारी ऐश्वर्य ।

'अग्निरीरो वसव्यस्य'

ऋ. ५.५५.८; का.सं. ७.१६.

(२) ऐश्वर्य ।

'धत्ते धान्यं पत्यते वसव्यैः'

ऋ. ६.१३.४;

'उभयं ते न क्षीयते वसव्यम्'

ऋ. २.९.५

वसवा– (१) सबको आच्छादित करने वाला ।

'वसवानं वसू जुवम्'

ऋ. ८.९९.८

वसवानः– (१) बसाता हुआ, (२) वसुपति के समान रहता हुआ ।

'स न एनीं वसवानो रयिं दाः'

ऋ. ५.३३.६

(३) स्वगुणैः सर्वान् आच्छादयन् (अपने गुणों से आच्छादित करता हुआ) (४) सबको बसाता

हुआ ।
(५) सब धनों की लादने वाला, (६) बसी प्रजाओं को अपनी छत्रछाया में रखने वाला ।
'त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः'
ऋ. १.१७४.१
(७) बसे हुए प्रजाजनों को चाहने वाला ।
'वसवान वसुः सन्'
ऋ. १०.२२.१५

वसर्हा- (१) वासहेतूनाम् अर्हकः
(२) बसने और आच्छादन करने योग्य गृह वस्त्रादि से आदर करने वाला पिता
(३) अपने समीप बसने वाले शिष्यों को आदर से रखने वाला और उनके द्वारा आदरणीय-गुरु ।
'ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा'
ऋ. १.१२२.३; तै.सं. २.१.११.१; का.सं. २३.११.
बसने और आच्छादन करने योग्य, गृह वस्त्रादि से आदर करने वाला (वसर्हा) उद्यमी या अन्न देने वाला (परिज्मा) पिता या गुरु या अग्नि हमें हर्षित करें (ममत्तु) ।

वस्तः- दिन ।

वस्त्रदाः- वस्त्रदान करने वाले ।
'ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदाः
ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः'.
ऋ. ५०.४२.८

वस्त्रमथिः-वस्त्रमाथी, वस्त्रापहर्ता (वस्त्र लेकर भागने वाला चोर) ।
'उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुम्
अनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु'
ऋ. ४.३८.५; नि. ४.२४.
और इस दधिकावा इन्द्र को देखकर युद्धों में बैरी चिल्लाने लगते हैं (एनं भरेयु अनुक्रोशन्ति) जैसे वस्त्र लेकर भागने वाले चोर देखकर लोग चिल्लाते हैं (वस्त्रमथिं तायुं क्षितपो न)
और युद्धों में (भरेषु) वस्त्र तक चुरा लेने वाले चोर की तरह जिस राजा को प्रजा या शत्रुजन (क्षितपः) कोसते हैं (अनुक्रोशन्ति) ।

वस्न- (१) मूल्य ।
'भूयसा वस्नमचरत् कनीयः'
ऋ. ४.२४.९
(२) व्यापार, (३) वेतन ।
'यच्च वस्नेन विन्दते'
अ. १२.२.३६

वस्नयन्ता- द्वि.व. । (१) रहना- वसना चाहते हुए- मेघ और जल । (२) अच्छादन वस्त्र एवं निवासादि चाहने वाले ।
'अहन् दासा वृषभो वस्नयन्ता'
ऋ. ६.४७.२१

वस्न्य- वस्त्र ।
'अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य'
ऋ. १०.३४.६

वस्म- वस् + मनिन् । (१) आच्छादित करने वाला अन्धकार, (२) बसने योग्य, (३) घर ।
'अवव्यन्नसितं देववस्म'
ऋ. ४.१३.४; मै.सं. ४.१२.५: १९४.१; का.सं. ११.१३
'प्र यद् वयो न पप्तन्वस्मनस्परि'
ऋ. २.३१.१

वस्य- (१) अत्युत्तम वास स्थान
(२) उत्तम ऐश्वर्य ।
'अस्मान् तांश्च प्र हिनेषिवस्य आ'
ऋ. २.१.१६; २.१३
(३) सबको बास देने वाला, (४) सब का शरण रूप रमेश्वर । (५) श्रेष्ठ ।
'वस्यो अस्ति पिता च न'
ऋ. ७.३२.९; अ. २०.८२.२; साम. २.११४७.
(६) २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी-दया ।
(७) गृहस्थ रूप में बसे हुओं में श्रेष्ठ
वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्
इन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान्
ऋ. १.१०९.१

वस्यम् - (१) ऐश्वर्यवान्, (२) सबसे श्रेष्ठ ।
'अथा नो वस्यसः कृधि'
ऋ. ९.४.१-१०; साम. २.३९७-४०६
(३) अति श्रेयस्कर ।
'अहनाहना नो वस्यसावस्यसो दिहि'
ऋ. १०.३७.९
'अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा'
ऋ. ८.२०.१८
'कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः'
ऋ. २.१७.८
(४) वसु + ईयसुन् = वस्यस् । अत्यन्त अधिक

धन ।
'उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्'
ऋ. १.३१.१८
तू हमें उत्तम धन (वस्यस्) एवं ऐश्वर्य प्राप्त करा ।

वस्यसी- उत्तम धन-सम्पन्न स्त्री ।
'पुंसो भवति वस्यसी'
ऋ. ५.६१.६

वस्त्र- (१) आच्छादक प्रकाश, (२) वस्त्र, (३) दोषों का आच्छादक यशः पठ
'तुभ्यमुषासः शुचयः परावति
भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु'
ऋ. १.१३४.४
(४) वस् (आच्छादनार्थक) + ष्ट्रन = वस्त्र ।

वस्यु- (१) अत्युत्तम जीवनोपयोगी ऐश्वर्य ।
'आनिनाय तमु वः स्तुषे'
ऋ. ८.२१.९; अ. २०.१४.३; साम. १.४००

वसा- (१) शरीर में स्थित अंग प्रत्यंग (२) मांस के प्रत्येक परमाणु में बसा जीवन का कारण स्वरूप जीवन शक्ति ।
'शीनं वसया'
वाज सं. २५.९; मै.सं. ३.१५८: १८०.२

वसाति- (स्त्री) । रात्रि ।
'वसातिषुस्म चरथः'
नि. १२.२.
हे अश्विद्वय, तुम दोनों रातों में चलते हो ।

वसानाः- (१) रखती हुई - सूर्य की किरणें ।
'अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति'
ऋ. १.१६४.४७; अ. ६.२२.१; ९.१०.२२; १३.३.९; मै.सं. ४.१२.५: १९३.७; का.सं. ११.९; १३; नि. ७.२४.
सूर्य की किरणें जलों को अन्तरिक्ष में रखती हुई सूर्यलोक में चली जाती है ।
(२) पहनती हुई ।

वसाव्या- बसने वाली प्रजा ।
'वसा व्यमिन्द्र धारयः सहस्रा'
ऋ. १०.७३.४

वस्नाः-विक्रय करने योग्य पदार्थ ।
'वस्नेव विक्रीणावहा'
वाज.सं. ३.४९; तै.सं. १.८.४.१; मै.सं. १.१०.२: का.सं. ९.५; श.ब्रा. २.५.३.१७; आश्व.श्रौ.सू. २.१८.१३.

वस्यान् अधिक श्रेष्ठ ।
'वस्याँ इन्द्रासि मे पितुः'
ऋ. ८.१.६; साम. १.२९२

वस्याः- 'वस्यस्' का प्रथमा एक वचन में रूप । धन से सम्पन्न ।
'कुविन्नो वस्यसस्करत्'
ऋ. ८.९१.४

वसिष्ठ- (१) सब प्राणों में मुख्य रूप से बसने वाला प्राण ।
'वसिष्ठ ऋषिः प्रजापति गृहीतया'
वाज.सं. १३.५४.
(२) वसिष्ठ नामक ऋषि, (३) धनाढ्य मनुष्य ।
ज.दे.श.
'त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठः'
ऋ. ७.९.६
हे अग्नि, तुझे वसिष्ठ संदीप्त करते हैं- सा. ।
हे हमारे नायक विद्वान्, विद्याज्योति को प्रदीप्त हुआ धनाढ्य पुरुष .....
(४) वस् + इष्ठन् = वसिष्ठ । वसु + इष्ठन् - वसिष्ठ । वासकतमम जल - दया. ।
उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठ-हे वासकतम जल या वसिष्ठ, तू मित्र या वरुण या तन्नामक वायुओं से उत्पन्न हुआ है । (५) ४८ वर्षों तक ब्रह्मचारी से रहने वाला आदित्य ब्रह्म चाहा । (६) बसने वाले बस्ती के निवासियों में सर्वश्रेष्ठ प्रतिष्ठित ।
'अनूजहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः'
अ. १८.३.४६
(६) व्रत में अच्छी तरह से स्थित पुरुष ।
'इन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठः'
ऋ. ७.२३.१; अ. २०.१२.१; साम. १.३३०

वसिष्ठ अग्निः- (१) शरीर में सबसे मुख्यरूप में बास करने वाला मुख्य प्राण ।
स एव वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुच्यते - आथर्वण प्रश्नोपनिषद्
ते ह इमे प्राणाः अहं श्रेयसे विवदमानाः ब्रह्म जग्मः । तद् होचुः को नो वसिष्ठ इति तद् होवाच । यस्मिन् वः उत्क्राने इदं शरीरं पापीयो मन्यते स वा वसिष्ठ इति ।
बृहदारण्यकोपनिषद्

वसिष्ठ हनु-- समस्त प्रजा को बसाने वाले लोगों में सबसे श्रेष्ठ, शत्रु को हनन करने वाले साधनों से सम्पन्न ।
'वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम्'
वाज.सं. ३९.८

वसिष्ठाः- (१) उत्तम वसु, (२) विद्वान् गृहस्थ, (३) ब्रह्मचारी गण ।
'प्रति त्वा स्तोमैरीडते वसिष्ठाः'
ऋ. ७.७६.६
(४) पूर्ण ब्रह्मचारी, (५) गुरुकुल वासी उत्तम कर्म करने वाले, (६) प्राणों से श्रेष्ठ जीवगण ।
'स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः'
ऋ. ७.३३.८; नि. ११.२०

वस्ति- (१) शरीर की वस्ति ।
'अपो वस्तिना'
वाज.सं. २५.७
(२) शरीर का मूत्र स्थान- मूत्राशय'
'वस्तिर्न शेपे हरसा तपस्वीः'
वाज.सं. १९.८८; मै.सं. ३.११.९: १५४.३; का.सं. ३८.३; तै. ब्रा. २.६.४.४.
(३) आच्छादनार्थक 'वस् + तिप् = वस्ति' (लट् प्र.पु.ए.व.) आच्छादयति (आच्छादित करता है । (४) मूत्राशय
'यद्वास्तावधि संश्रुतम्'
अ. १.३.६
'आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च'
अ. ११.८.२८

वस्तिबिल- मूत्रकोष्ठ का छिद्र ।
'विषितं ते वस्तिबिलम्'
अ. १.३.८

वंसीमहि- (१) हम परस्पर बांटते हैं (२) सेवन करें । -दया.
'वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः'
ऋ. ६.१९.१०
श्रवणीय यशों से युक्त (श्रोमतेभिः) सुन्दर या याचनीय या संभजनीय धन को परस्पर बांटते हैं(वंसीमहि) -सा. ।
श्रवणीयतम उपदेशों के द्वारा (श्रोतमेभिः) प्रशंसनीय कर्म का सेवन करें (वामं वंसीमहि) -दया. ।

वसीयः - अत्यिधिक धन धान्य समृद्धि ।
'वसीयश्च मे यशश्च मे'
वाज.सं. १८.८; मै.सं. २.११.३: १४१.१०

वस्वी- (१) राष्ट्र में बसने वाली प्रजा ।
'वस्वीरनु स्वराज्यम्'
ऋ. १.८४.१०-१२; अ. २०.१०९.१-३ साम. १.४०९; २.३५६; ३५७; मै. सं. ४.१२.४: १९०.१,३; ४.१४.१४: २३८.६; का.सं. ८.१७.
(२) घर को बसाने वाली पत्नी ।
'वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः'
ऋ. ५.४१.६
(३) अध्यापक, उपदेशक के अधीन बसने वाली शिष्य-मण्डली । '
'वस्वीरू षु वां भुजः'
ऋ. ५.७४.१०
(४) शरीर में वास करने वाले जीवों को बसाने वाली पृथ्वी ।
(५) लोकों में व्यापक ब्रह्मशक्ति ।
'वस्व्यसि'
वाज.सं. ४.२१; तै.सं. १.२.५.१; ६.१.८.१; मै.सं. १.२.४: १३.८; ३.७.६: ८२.१५; का.सं. २.५; २४.४; श.ब्रा. ३.३.१.२; का.श्रौ.सू. ७.६.१६; आप.श्रौ.सू. १०.२२.११; मा.श्रौ.सू. २.१.३ .३८. .
प्राणरूप वसुओं की स्वामिनी-चितिशक्ति
'सुमन्मां वस्वी रन्ती सूनरी'
साम. २.१००४; तै.ब्रा. २.१४४.

वसु- (१) वस् + उ = वसु । (१) वसु नामक देवगण, बहुवचन में वसवः (२) बसने वाला । रहने वाला, (३) जहाँ बसा जाय - पृथ्वी ।
'ज्मया अत्र वसवो रन्त देवाः'
ऋ. ७.३९.३; नि. १२.४३
जो पृथ्वी के देवता इस लोक में रहने वाले हैं (वसवः) ।
(४) धन ।
'यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वः मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति'
ऋ. १.१२५.२; नि. ५.१९
क्योंकि तुझे राजा ने ऋषिकुल से आते देख रात में धन देकर तुझे रख लिया जैसे रस्सी से पक्षी को बांध लिया जाता है ।
(५) गृहस्थ ।
'आ याह्यग्ने वसुभिः सयोपाः'

ऋ. १०.११०.३; अ. ५.१२.३; वाज.सं. २९.२८; मै.सं. ४.१३.३: २०१.१४; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.२; नि. ८.८.

हे अग्ने, तू वसुओं के साथ प्रेम के साथ आ-सा. ।

हे यज्ञाग्नि, तू गृहस्थों से एक साथ (सजोषाः) सेवनीय हैं .

(६) वसु नामक ब्रह्मचारी (८) सर्वपालक परमात्मा -दया.

'अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुना
आदित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा
सजोषसा उषसा सूर्येण च
सोमं पिबतमश्विना '

ऋ. ८.३५.१

हे अश्विनीद्वय, अग्नि, इन्द्र, वरुण, विष्णु, आदित्यों, रुद्रों एवं वसुओं के साथ हो प्रीति से युक्त हो इस सोम रस का पान करो ।

अन्य अर्थ - सबसे प्रीति करने वाले स्त्री पुरुषो, तुम अग्नि, वायु, जल, परमात्मा, आदित्य, रुद्र, वसु ब्रह्मचारियों उषा काल एवं सूर्य के साथ रहते हुए ऐश्वर्य पान करो ।

(९) वसवो यत् विवसते सर्वम् । (जो यह सब विभाग से अवस्थित है- आकाश, पाताल पृथ्वी-उसे वसुगण आच्छादित करते हैं) ।

(१०) गवादि धन ।

(११) अग्नि-अग्निः वस्तुभिः वासव इति समाख्या तस्मात् पृथिवी स्थाना ।

(१२) आठ वसु हैं- अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ और चन्द्रमा । ये आठ ही आकाश, पाताल एवं पृथ्वी को वासित या आच्छादित करते हैं ।

(१३) वसुओं से अर्थात् धनों से युक्त वासव है । वासव और वसु समान अर्थ वाले हैं । इन्द्र

'इन्द्रो वसुभिः वासव इति समाख्या तस्मात् मध्यस्थानी ।'

मध्यस्थानी इन्द्र भी वासव है ।

(१५) द्युस्थानी आदित्य की रश्मियां भी वसु हैं ।

वासव आदित्यरश्मयः
विवासनात् तस्मात् द्युस्थानाः '

(आदित्य की रश्मियाँ अन्धकार दूर करने के कारण वसु हैं) ।

(१६) आठ प्राण ।

'गोभिरश्वेभिर्वसुभिन्यृष्टः

ऋ. १०.१०८.७

(१७) गुरु के अधीन रहने वाला अन्तेवासी विद्यार्थी '

'वसुष्कुविद् वसुभिः काममावरत् '

ऋ. १.१४३.६

वह गुरुओं के अधीन रहकर (वसुः) अन्य अन्ते वासियों के साथ रहकर (वसुभिः) अपने अभिलाषा करने योग्य ज्ञान को (कामम) प्राप्त करे (आवरत) या काम को दूर करें ।

आधुनिक अर्थ - धन, रत्न, सुवर्ण, जल, कोई पदार्थ, एक प्रकार का लवण, ओषधि की जड़, देवताओं का एक वर्ण जिसकी संख्या आठ है- आप, ध्रुव, सोम, पर, अनल, अनिल, प्रत्यूष , प्रभास, (आप के स्थान पर कहीं कहीं अह की गणना की गई है) । आठ, कुबेर, शिव, अग्नि, वृक्ष, झील, तालाब, बागडोर, लगाम, जुआठ का बन्धा, किसी पदार्थ रोकने के लिए कोई साधन, प्रकार किरण ।

वसुक्र - (१) धन से क्रीत वेतन भोगी राजपुरुष, (२) वसुक्र नामक एक ऋषि ।

वसुक्रपत्नी- (१) वेतनभोगियों से बने सैन्य या राष्ट्र को पालन करने की व्यवस्था, (२) वसुक्र ऋषि की पत्नी ।

वसुजित्- समस्त प्राणियों और उनके बसने के लोकों को जीतने वाला ।

'वसुजिति गोजिति संधनाजिति '

अ. १३.१.३७

वसुत्वनम् - (१) ऐश्वर्य युक्त कीर्ति ।

'श्रवः सुरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् '

ऋ. ७.८१.६; ८.१३.१२.

(२) बसाना, शरण देना ।

'वसुत्वनाय राधसे '

ऋ. ८.१.६; साम. १.२९२

वसुता- वसा देने वाला सामर्थ्य ।

'वसूनि राजन् वसुता ते अश्पाम् '

ऋ. ६.१.१३; मै.सं. ४.१३.६: २०७.१५; का.सं. १८.२०; तै.ब्रा. ३.६.१०.५

वसुताति- (१) धन, (२) वेदज्ञानरूपी धन । (३) समस्त बसने वाली जीवों और बसने योग्य लोकों का विस्तारक परमेश्वर ।

'द्युम्नानि येषु वसुताती रारन्
विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम्'

ऋ. १.१२२.१२

जिन श्रेष्ठ यज्ञादि कार्यों के या श्रेष्ठ पुरुषों के आश्रय पर आप सब लोग नाना ऐश्वर्यों को भोगते हैं, उन से उत्तम प्रकार सब का भरण पोषण करने वाले अनेक यज्ञ आदि कामों में और राजा पुरोहित आचार्य आदि श्रेष्ठ पुरुषों में (प्रभृथेषु) अपने ऐश्वर्य का दान किया करो ।

वसुत्ति- जीवनोपयोगी वेतन, वृत्ति या धन ।

'त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये'

ऋ. ८.६१.७

वसुदा- (१) धन देने वाली ।

'अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि'

ऋ. ८.९९.४; अ. २०.५८.२; नि. ६.२३.

हे स्तुति करने वाला, तू पुण्य दान देने वाले, एवं धन देने वाले इन्द्र या परमात्मा के समीप जाकर स्तुति कर ।

(२) धन धान्य देने वाली पृथिवी ।

'वसूनि नो वसुदाः रासमाना'

अ. १२.१.४४.

वसुदानः- ऐश्वर्य का दाता,

'वसोर्वसोर्वसुदान एधि'

अ. १९.५५.४

वसुदावा- उत्तम ऐश्वर्य देने वाला-अग्नि ।

'वसुपते वसुदावन्'

ऋ. २.६.४; वाज.सं. १२.४३; श.ब्रा. ६.८.२.९.

वसुदेयं- (१) दातव्य धन

अथा मनो वसुदेयाय कृष्व'

ऋ. १.५४.९

(२) द्रव्य देने में समर्थ जन

'इषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः'

ऋ. ६.३९.५

(३) जीवों को आजीविका देने वाला परमेश्वर ।

'स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये
नमोवाके वषट्कारोऽनु संहितः'

अ. १३.४.२६

वसुधानः- (१) जिसमें धन रखा जाता है ।

वसुदानः- बहुत धन वितरण करने वाला ।

'यस्तेङ्कशो वसुदानः'

अ. ६.८२.३

वसुधिती- (१) बसने वाले लोकों को धारण करने वाले दिन रात (२) ऐश्वर्यों को धरण करने वाले दिन रात, (३) ऐश्वर्यों को धारण करने वाले, (४) पदार्थों को धारण करने वाली द्यावापृथिवी- दया. ।

'अनुकृष्णे वसुधिती जिहाते'

ऋ. ३.३१.१७

(५) सबको बसाने वाले राष्ट्र धारण करने में समर्थ- अश्विद्वय या स्त्री पुरुष, राजा रानी, सेना सेनापति ।

'वसुधिती अवितारा जनानाम्'

ऋ. १.१८१.१

'देवी जोष्ट्री वसुधिती'

वाज.सं. २८.१५; ३८; तै.ब्रा. २.६.१०.२

वसुधीती- (१) वसुधान्यौ वसूनां, निधान भूते, धारयित्र्यौ (धन की निधि रूपिणी, धारण करने वाली) (२) महीधर ने इसका अर्थ 'जिससे वसु का धारण हो' ऐसा किया है (वसुनो धीतिः धारणं याभ्याम् ते)

वसुधेय- (१) कोश योग्य ऐश्वर्य ।

'वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज'

वाज.सं. २८.१७

(२) धन ।

'वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु'

वाज.सं. २१.४८-५८; २८.१३,१८,३६,४१; का.सं. १९.१३; २०.१५; तै.ब्रा. २.६.१०.१,५

(३) प्रतिविशिष्टेन धनेन साधितः (विशेष धन से साधित यद्ध)

'देवी जोष्ट्री वसुवने वसुधेयस्य वीताम्'

मै.सं. ४.१०.३: १५१.३; ४.१३.८: २१०.३; का.सं. २०.१५; तै.ब्रा. ३.६.१४.१; आश्व.श्रौ.सू. २.१६.१२; शां.श्रौ.सू. ३.१३. २७

दो जोषयित्री देवियाँ विशेष धन से सम्पादित यज्ञ के अंश को पीयें ।

वसुपतिः- (१) धन का स्वामी -राजा (२) इन्द्र ।

'तमा पृण वसुपते वसूनाम्'

ऋ. ३.३०.१९; तै.ब्रा. २.५.४.१.

हे वसुओं के स्वामी इन्द्र, हमारी उस कामना को पूर्ण कर - सा.।

हे धनों के स्वामी राजन् आप उन्हें पूर्ण करें।

वसुपत्नी- वसु अर्थात् आत्मा की पालिका या पत्नी रूप चिति शक्ति।

'हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनाम्'

ऋ. १.१६४.२७; अ. ७.७३.८; ९.१०.५; ऐ.ब्रा. १.२२.२; नि. ११.४५

वसुमत् - ऐश्वर्य से पूर्ण।

'आ न उप वसुमता रथेन'

ऋ. १.११८.१०

वसुमान् पर्वत- (१) धन रत्न पूर्ण पर्वत।

(२) २४ वर्षों तक ब्रह्मचर्य और प्राणों और वीर्य का पालक एवं व्रतपालक शिष्य।

'आ चा विशद् वसुमन्तं वि पर्वतम्'

ऋ. २.२४.२

वसुरोचिः- धन प्रजादि की कान्ति से सम्पन्न।

'सहस्रं वसुरोचिषः'

ऋ. ८.३४.१६

वसुवनः- (१) धनाभिलाषी.

'वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु'

वाज.सं. २१.४८-५८; २८.१३; १८,३६,४१

(२) धन का संविभाजन वन (संभजनार्थक) + अप = वन। वसुनः वननम् वसुवनम्। मजदूरों को खेत काटने के बाद जो मजदूरी दी जाती है उसे भी वन कहते हैं।

'आन्या वक्षद्वसु वार्याणि
यजमानाय वसुवने'

वाज.सं. २८.१५; तै.ब्रा. २.६.१

दो जोषयित्री देवियों में एक धन संभजन करने के लिए (वसु वनाय) यजमान के लिए वरणीय धन लाती या देती है।

(३) धन का निधान।

वसुवनिः - आवास योग्य अन्न, वस्त्र, धारण आदि का बांटने वाला गृहपति।

'ऊर्जं बिभ्रद् वसुवनिः'

अ. ७.६०.१; वाज.सं. ३.४१

(२) समस्त वास करने वाले जीवों और लोकों के भजन करन योग्य।

'स रुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाके वषट्-कारोऽनु संहितः'

(२) अपने में बैठने वाले को ले जाने में समर्थ रथ।

'प्रति प्रियतमं रथं
वृषणं वसुवाहनम्'

ऋ. ५.७५.१; साम १.४१८; २.१०९३

वसुवित्- (१) धन प्रापक, धन प्राप्त कराने वाला (२) बसने वाले प्रजाजनों के लिए ऐश्वर्यों का लाभ कराने वाला।

'परापरैता वसुविद् वो अस्तु'

अ. १८.४.४८

वसुविदा- द्वि.व.। धन ऐश्वर्य या ज्ञान को प्राप्त कराने वाले अश्विद्वय या स्त्रीपुरुष।

वसुश्रवाः- (१) शिष्यों द्वारा गुरुवत् आदर के साथ सुनने योग्य, (२) ऐश्वर्यों से यशस्वी अग्नि।

'वसुरग्निर्वसुश्रवाः'

ऋ. ५.२४.२; साम. २.४५८; वाज.सं. ३.२५; १५.४८; २५.४७; तै.सं. १.५.६.३; ४.४.४.८; मै.सं. १.५.३: ६९.११; का.सं. ७.१; श.ब्रा. २.३.४.३१.

वस्तु- (१) वस् (आच्छादन, वसन्त) + तुन् = वस्तु। जिससे आच्छादन किया जाय या जहाँ वास किया जाय या जो आच्छादन करे या वस्तुतः रहे- जिसका अस्तित्व हो वह वस्तु है।

(२) दिन। (३) आच्छादन, वसन, (४) बसना, रहना,

आधुनिक अर्थ - वर्तमान पदार्थ, सत्य, पदार्थ, द्रव्य, धन, सम्पत्ति, उपकरण, जिसमें कोई पदार्थ बनाया जाय। सत् पदार्थ, नाटक की कथा वस्तु, किसी काव्य की कथा वस्तु, योजना, रूप रेखा।

(५) सुखपूर्वक निवास।

'अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववसुविदः
भूरि च्यवन्त वस्तवे'

ऋ. १.४८.२

सुख से निवास करने के लिए (वस्तवे) अश्वों अश्वारोहियों से युक्त सेना और गौ आदि से युक्त सम्पदाएं तथा समस्त उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाली भूमियाँ बहुत अधिक संख्या में प्राप्त की जाँय।

वस्यु- (१) धनी। (२) इन्द्र का विशेषण।

'नहि त्वदिन्द्र वस्य अन्यदस्ति'

ऋ. ५.३१ २
हे धनी इन्द्र (वस्यो इन्द्र) तुझ से बढ़कर कोई देवता नहीं है ।

वसू- द्वि.व. । राष्ट्र या गृह में बसने या औरों को बसाने वाले अश्विद्वय, माता पिता, स्त्रीपुरुष, अध्यापक, उपदेशक, सभापति और सेनापति ।
'ता नो वसू सुगोपा स्यातम्'
ऋ. १.१२०.७

वसूजू- सब जीवों ऐश्वर्यों और लोकों का प्रेरक दाता-इन्द्र ।
'बसवानं वसूजुवम्'
ऋ. ८.९९.८

वसूया- (१) प्राण, प्रजा, ऐश्वर्य उत्तम लोक या निवास प्राप्ति की इच्छा ।
(२) शिष्य बनकर गुरु के अधीन रहने की इच्छा, (३) ब्रह्मचारी बनने की इच्छा ।
'कया मती कुत एतास एते
अर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया'
ऋ. १.१६५.१

वसूयुः- (१) परमेश्वर और आचार्य के अधीन विद्वान, (२) पुत्र कलत्रादि की कामना वाला, (३) लोकों की स्वामिनी शक्ति ।
'नि या देवेषु यतते वसूयुः'
ऋ. १.१८६.११
(४) वसु अर्थात् २४ वर्ष के ब्रह्मचारी युवा पुरुष को चाहने वाली कन्या, (५) अपने बसाने वाले प्रभु और नाना धनों की कामना करने वाली प्रजा ।
'उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः'
ऋ. ७.१.६; तै.सं. ४.३.१३.६
(५) धन की कामना करने वाला -सा.
(६) सर्वनिवासक प्रभु की कामना करने वाला-ज.दे.श.
'सुनीथासो वसूयवः'
नि. ४.१९
सुन्दर स्तुति वाले तथा धनैषी -सा.
सुनीति पर चलने वाले तथा सर्वनियामक प्रभु की कामना करने वाले (वसूयवः) ।
(७) वसु + यु (मतुप् अर्थ में) = वसूयु । धनयुक्त धन वाला, धनी ।
'अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुः'
ऋ. १.५१.१४ नि. ६.३१.
(८) अन्तेवासी ब्रह्मचारी छात्रों की कामना करने वाले ।
'गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम्'
ऋ. ४.४४.१; अ. २०.१४३.१
(९) इच्छार्थक क्यजन्त - वसुय + उ = वसूयु = अथवा वसु + युस् । धन की इच्छा करने वाला ।
'नानाधियो वसूयवः'
ऋ. ९.११२.३; नि. ६.६.
अंगिरस पुत्र की उक्ति है-हम जीविका के लिए अनेक कर्म करते रहे तथा धन कैसे मिले नित्य सोचते रहें ।

वस्ते- वस् (आच्छादित करना) के लट् पु.प्र.व. का रूप । अर्थ- आच्छादित करता है ।
'सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तः'
ऋ. ६.७५.११; वाज.सं. २९.४८; तै.सं. ४.६.६.४; मै.सं. ३.१६.३: १८७.२; नि. ९.१९.
इषु अर्थात् बाण सुन्दर पंख को आच्छादित करता है तथा इसका दांत, मृग के सिंह को जैसा होता है ।

वसोः कबन्धः - बसने वाले अखिल जगत् का शरीर भाग या ज्ञानमय सुखमय, शक्तिमय बन्धन सामर्थ्य ।
'वस्तेः कबन्धमृषभो बिभर्ति'
अ. ९.४.३.

वसोष्पति- वसोः पतिः । (१) प्राणियों के वास अर्थात् जीवन के सम्पादक पदार्थों या वसु अनोवासी शिष्यों का पालक आचार्य, (२) प्राणपालक परमात्मा ।
'वसोष्यते नि रमय'
अ. १.१.२; नि. १०.१८

वस्तोः - (१) वस् + तोसन् (भाव लक्षण में) = वस्तोः । अर्थ-बसने के लिए, (२) स्थान ।
'कुह वस्तोरश्विना'
ऐ अश्विद्वय या स्त्रीपुरुषो, तुम्हारा वासस्थान कहाँ है । (३) आच्छादन ।
प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्याः
वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम्'
ऋ. १०.११०.४; अ. ५.१२.४; वाज.सं. २९.२९; मै.सं. ४.१३.३: २०२.१; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा.

३.६.३.२.
पूर्वदिशा में स्तीर्ण कुश मन्त्र द्वारा या विधिपूर्वक काटा या बिछाया जाता है (प्रदिशा वृज्यते)। इस वेदी रूपी पृथ्वी पर कुश को आच्छादित करने के लिए (अस्या पृथिव्या वस्तोः)......सा.
गृह की पूर्व दिशा में यज्ञग्नि (प्राचीनं बर्हिः) वेदोपदिष्ट विधि के साथ (प्रदिशा) इस पृथ्वी के निवास के लिए (अस्याः पृथिव्याः वस्तोः) पूर्वाह्न में (अह्नाम् अग्रे) स्थापित किया जाता है (वृज्यते) । (४) रहने के लिए ।
'सिंहो न दमे अपंसि वस्तोः '
ऋ. १.१७४.३

वस्यो भूय- (१) अति अधिक ऐश्वर्य वान् होना ।
'वस्यो भूयाय वसुमान् यज्ञो वसु वंशिसीय वसुमान् भूयासं वसुं मयि धेहि'
अ. १६.९.४.

वस्तोः वस्तोः- दिन प्रति दिन ।
'वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि'
अ. १०.४०.१

वह- (१) एक स्थान से स्थानान्तर में भेजना, (२) गति करने की शक्ति (३) विश्वभार ।
'यत्रैष वह आहितः'
अ. ४.११.८
'इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन'
अ. ४.११.७
(४) भार उठाने में समर्थ स्कन्धदेश ।
'इंन्द्र स्वपसा वहेन '
वाज.सं. २५.३; तै.सं. ५.७.१४.१; मै.सं. ३.१५.३ः १७८.८

वहतः- (१) ढोने वाला रथादि पदार्थ (२) दूर तक ले जाने वाला तरंग रूप किरण ।
'स्तभूयमानं वहतो वहन्ति'
ऋ. ३.७.४

वहतु- (१) दहेज,
'पुंस इन्द्रद्रो वहतुः परिष्कृतः'
ऋ. १०.३२.३
(२) रथादि उठाने वाला बैल
(३) शरीर में बल देने वाला घृत दुग्ध आदि,
(४) गाड़ी आदि
गावो यच्छासन् वहतुं न धेनवः ।
ऋ. १०.३२.४
(५) वह् + अतु = वहतु । अर्थ वहन, (६) विवाह ।
'स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व'
ऋ. १०.८५.२०; आप.मं.पा. १.६.४; नि. १२.८
हे सूर्ये, पति के लिए सुन्दर विवाह कर ।
'त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति'
ऋ. १०.१७.१; अ. ३.३१.५; १८.१.५३; नि. १२.११.
विश्वकर्मा अपनी दुहिता सरण्यू का विवाह करते हैं - सा. ।
अन्धकारमय उषा का मध्यम भाग त्वष्टा ने अपनी ज्योति रूपिणी दुहिता का विवाह आदित्य से किया ।
आधुनिक अर्थ - बैल
(७) भार, (८) सृष्टिरूप भार ।

वहतू - द्वि.व. । (१) कार्य या गृहस्थाश्रम का भार धारण करने वाले वर वधू, (२) यजमान पुरोहित ।
'उभा कृण्वन्तौ वहतू मियेधे'
ऋ. ७.१.१७

वहमाना- धारण करती हुई, ढोती हुई ।
'भ्रद्रा नाम वहमाना उषासः'
ऋ. १.१२३.१२
सुन्दर रूप धारण करती हुई उषाएं ।
अथवा,
सुन्दर स्वभाव विनय या ख्याति धारण करती हुई कन्याएं ।

वह्य- (१) रथ आदि । (२) इधर उधर हिला सकने योग्य सेज ।
'रुक्मप्रस्तरणं वह्यम्'
अ. १४.२.३०
(३) दान करने का साधन,
'वह्यं श्रान्ता वधूरिव'
अ. ४.२०.३

वह्यशीवरी- (१) पाल की आदि में सोने वाली, (२) पैरों में विद्यमान नाड़ी ।
'नारीर्या वह्यशीवरीः'
अ. ४.५.३

वहिष्ठ - (१) जलादि वहन करने वाला किरण ।
'वहिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तुम्'
ऋ. ४.१३.४

(२) दूर देश तक गाड़ी को हांककर ले जाने वाला गाड़ीवान्
(३) वायु का विशेषण । वायु भी चीजों को दूर दूर तक ले जाता है ।

वह्नि- (१) सब जगत् को उठाने वाला (२) इन्द्र का विशेषण । (३) जगत् को धारण तथा संचालन करने वाला ।
'तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे'
ऋ. २.२१.२
(४) वह + नि = वह्नि, कुल को बढ़ाने वाली सन्तति पुत्र या पुत्री ।
'यदी मातरो जनयन्त वह्निम्'
ऋ. ३.३१.२; नि. ३.६.
यदि ये माताएं, कुल को बढ़ाने वाली सन्तति (पुत्र या पुत्री) उत्पन्न करती हैं,।
(५) अश्व भी ढोता है ।
'मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिररीयसे'
ऋ. २.३७.३; नि. ८.३
हे द्रविणोदा नामक अग्नि, तेरे अश्व जिनसे तू चलता है तृप्त होवें ।
(६) बैल ।
'उभे धुरौ प्रतिवह्निं युनक्त'
ऋ. १०.१०१.१०
दोनों धुराओं में बैल जोत (सोम रस चुराने के लिए) ।
(७) अपुत्र पिता जो कन्या को अन्य कुल में भेजता है । -सा.
अपुत्र यः पिता कन्याम् अन्य कुलं प्रापयति स वह्निः ।
'शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गात्'
ऋ. ३.३१.१; ऐ.ब्रा. ६.१८.२: १९.४; गो.ब्रा. २.५.१५; ६.१; नि. ३.४.
अपुत्र पिता अपनी कन्या को अन्य कुल में यह कहते हुए देता है कि कन्या से उत्पन्न पुत्र मेरा होगा और वह कन्या के पुत्र को अपनाता है (नप्त्यं गात्) (८) ज्वाला ।
(९) अग्नि । अग्नि देवताओं के पास हवि पहुंचाता है ।
(१०) नेता विद्वान् । (११) अश्व-दुर्ग ।
'तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नयः ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम्'
ऋ. १०.१३८.१
हे इन्द्र, तेरे इन सखारूप अश्वों ने (तव त्य सख्येषु वह्नयः) इसमें जल है ऐसा समझते हुए (ऋत मन्वानाः) मेघ को विदीर्ण किया (वलम् व्यदर्दिरु) - दुर्ग ।
हे सूर्य, तेरे सख्य में विद्वान् नेता विद्वान् सत्य स्वरूप प्रभु का मनन करते हुए (ऋतं मन्वानाः) आन्तरिक शत्रुबल को (वलम्) विदीर्ण करता है (व्यदर्दिरुः) ।
(१२) विवाहिता पुरुष ।
'विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखः'
ऋ. १०.११.६; अ. १८.१.२३.
यह अग्नि सुन्दर कर्म की इच्छा करने वाले यजमान के लिए (स्वपस्यते) देवताओं की प्रार्थना करता है (विवक्ति)-सा. ।
अथवा,
विवाहित पुरुष (वह्निः) सुन्दर वचन बोले (विवक्ति) तथा शुभ कर्म करे (स्वपस्यते) ।
आधुनिक अर्थ - अग्नि, पाचक रस, पित्त, पाचन शक्ति, बुभुक्षा ।

वह्नितम - (१) सर्वोत्तम भार उठाने वाला -अग्नि, परमेश्वर ।
'देवानामसि वह्नितमम्'
वाज.सं. १.८; मै.सं. १.१.५: ३.१; ४.१.५: ६.१२; का.सं. १.४; श.ब्रा. १.१.२.१२.

वहीयस् - ढोकर ले जाने में समर्थ अश्व आदि ।
'दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे'
ऋ. १.१०४.१
रातदिन प्राप्त करने योग्य समीप में ढोकर ले जाने में समर्थ (वहीयसः) ।

वह्नी- द्वि.व.। (१) अग्निवत् तेजस्वी अश्विद्वय, (२) गार्हस्थ्य धर्म को अच्छी प्रकार उठाने में समर्थ स्त्रीपुरुष, (३) विवाहित स्त्रीपुरुष ।
'उप त्या वह्नी गमतो विशं नः'
ऋ. ७.७३.४
(३) रथ के घोड़े, (५) आत्मा के वाहक प्राण अपान वायु ।
'इमौ युनज्मि ते वह्नी'
अ. १८.२.५६; तै.आ. ६.१.१; कौ.सू. ८०.३४.

वह्येशयः- रथ आदि में सोने वाली ।
'प्रेष्ठी शया वह्येशयाः'

ऋ. ७.५५.८; अ. ४.५.३.

व्यंग- वि + अंग । (१) विविध अंग, अवयव, कुल, प्रजा (२) विविध प्रकाश के कण (३) अश्वरथ, पदाति आदि विविध सेनाएं ।

'व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ'

ऋ. ३.७.४

(४) अंगों में विकार दिखाता हुआ, छटपटाता हुआ । (५) काले नाग से काटा हुआ पुरुष -सा. (६) विचित्र शरीर का सर्प -ज. दे.श।

'अयं यो वक्रो विपरुर्व्यंगः'

अ। ७.५६.४

(७) शरीर को विकृत करने वाला । ज्वर

'व्यङ्ग भूरि यावय'

अ. ५.२२.६

व्यचः- (१) कीर्ति, (२) राष्ट्र का प्रसार, (३) विविध शिल्प (४) आदित्य ।

'व्यचश्छब्दः'

वाज.सं. १५.४; तै.सं. ४.३.१२.२; मै.सं. २.८.७: १११.१३; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५.२.३.

(५) व्यापक ।

'अन्यसश्च व्यचसश्च'

अ. १९.६८.१

व्यचस्वती- व्यचस् व्यापनम् तद्वान् व्यचस्वान् । अर्थ है- (१) व्यापनशील या महान् । स्त्रीलिंग में 'व्यचस्वती' रूप है । अर्थ है -व्यापन शीला- व्याप्ति वाली । अंटाने वाली , काफी चौड़ी (२) द्वार रूपी देवता का विशेषण-सा.

(३) अनेक प्रकार के यज्ञों में वर्तमान अग्नि का विशेषण । (४) शाकपूणि ने इसे अग्निज्वाला का विशेषण माना है ।

'व्यचस्वतीरुर्विया विश्रयन्ताम्'

ऋ. १०.११०.५; अ. ५.१२.५; वाज.सं. २९.३०; मै.सं. ४.१३.३: २०२.३; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.१०.

व्याप्तिवाली , काफी चौड़ी (द्वार रूपी देवी) या अग्नि की ज्वालाएं रूपी द्वारा चौड़ी होकर (उर्विया) रहें (विश्रयन्ताम्) ।

(५) व्यक्त रूप वाली ।

'व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि'

वाज.सं. १३.१८

व्यचस्वन्ता- (१) दूर दूर तक फैलने वाले सूर्य चन्द्र, (२) मेघ वायु (३) एक दूसरे के विपरीत विरुद्ध जाते हुए ।

'व्यचस्वन्ता यदि वितन्त सैते'

ऋ. ६.२५.६

व्यच्यमान- विद्यमान ।

'व्यच्यमानं सरिरस्य मध्ये'

वाज.सं. १३.४९; का.सं. १६.१७; श.ब्रा. ७.५.२.३४; तै.आ. ६.६ .१.

व्यचिष्ठ- (१) अति विस्तृत

व्यचिष्ठे बाहुपाय्ये'

ऋ. ५.६६.६

(२) खूब फैलने वाला- अग्नि ।(३) विविध रूप से व्यापक

व्यचिष्ठमन्ने रभसं दृशानम्'

ऋ. २.१०.४; वाज.सं., ११.२३.

व्यजरम् - वि + अजरम् । (१) प्रत्येक पदार्थ को विच्छिन्न कर दूर दूर तक फेंक देने का फैला दे वाला । अग्नि, ज्वाला ।

'दीदियुषो व्यजरम्'

ऋ. ८.२३.४

व्यञ्च्- (१) विविध वस्तुओं को अञ्चित करने वाला-विविध पदार्थ ।

'समुद्रो न व्यचो दधे'

ऋ. १.३०.३

जैसे समुद्र विविध पदार्थों को धारण करता है ।

(२) विविध प्रकार का सत्कार ।

'उरुव्यचा जठरे या वृषस्व'

ऋ. १.१०४.९; अ. २०.८.२

व्यञ्जन- वि + अञ्जन । (१) विशेष चमकने वाला, (२) प्रकाश का साधन, (३) ज्ञान, (४) नाना खाद्य पदार्थ, (५) उत्तम गण ।

'आ नो भर व्यञ्जनम्'

ऋ. ८.७८.२

व्यतिः- (१) विशेष बलवान्, (२) बलयुक्त साधनों वाला ।

'यो व्यतीं रफाणयत्'

ऋ. ८.६९.१३; अ. २०.९२.१०; ऐ.ब्रा. ४.४.४; आश्व.श्रौ.सू. ६.२.९; शां.श्रौ.सू. १८.१९.१०

(३) विविध विषयों में जाने वाला इन्द्रियरूप प्राण ।

(४) विशेषेण प्राप्त बल -दया. (विशेष बल शाली पुरुष)
'चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत्'
ऋ. १.१५५.६
वह ब्रह्मचारी हाथ में रखे चक्रास्त्र के समान (वृत्तं चक्रं न) चक्र व्यूह को तथा विशेष बलशाली पुरुषों को भी कंपा दे । (व्यतीः अवीवियत्) ।

व्यथमाना- (१) चलायमान, (२) तरल पदार्थों से बनी, भूकंपों से कांपती हुई पृथिवी ।
(३) उपद्रव कारियों से पीड़ित ।
'यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहत्'
ऋ. २.१२.२; अ. २०.३४.२

व्यथमाना पृथिवी- (१) जोर से गति करती हुई पृथिवी, (२) शत्रुभय से पीड़ित प्रजा ।

व्यथिः - (१) व्यथादायी ।
'अग्रे मा किष्टे व्यथिरा दधर्षीत्'
ऋ. ४.४.३; वाज.सं. १३.११; तै.सं. १.२.४.२; मै.सं. २.७.१५: ९७.१२. का.सं. १६.१५.

व्यथित- व्यथा, कष्ट, शत्रुओं द्वारा आक्रमण ।
'अवतान्मा व्यथितात्'
वाज.सं. ५.९; श.ब्रा. ३.५.१.३०

व्यदनि- वि + अदन्ति । एकदम खा जाते हैं ।
'मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः'
ऋ. १.१०५.८; १०.३३.३; नि. ४.६.

व्यदर्दिरुः- वि + अदर्दिरुः । विदीर्ण किया ।
'तव त्य इन्द्रं सख्येषु वह्नयः
ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम्'
ऋ. १०.१३८.१
हे इन्द्र, तेरे सख्य में वर्तमान तेरे अश्वों ने मेघ में जल समझ कर मेघ को विदीर्ण किया-दुर्ग । हे सूर्य तेरे सख्य में वर्तमान नेता विद्वान् (वह्नयः) सत्य स्वरूप प्रभु का मनन करते हुए (ऋतं मन्वाना) आन्तरिक शत्रुबल को (बलम्) विदीर्ण किया (व्यदर्दिरु) ।

व्यद्वर- (१) 'विविधम् अदनशीलाः' । खास कर खेती को खा जाने वाला बड़ा जीव ।
'य आरण्या व्यद्वरा'
अ. ६.५०.३

व्यद्वरी- (१) एक दूसरे को खा जाने वाली, (२) भोगप्रिया नारी ।
'क्रव्याद् भूत्वा व्यद्वरी'
अ. ३.२८.२

व्यून्- (१) उपभोग, रक्षण और प्राप्ति करता हुआ ।
'गोमदश्वाद् रथवद् व्यन्तः'
ऋ. ७.२७.५
(२) देखता हुआ ।
'पदं देवस्य नमसा व्यन्तः'
ऋ. ६.१.४; मै.सं. ४.१३.६: २०६.११; का.सं. १८.२०; तै.ब्रा. ३.६.१०.२; नि. ४.१९.
पूज्य अग्नि के पद को भक्ति भाव से देखते हुए .....(३) प्राप्त होता हुआ, (४) ऐश्वर्य की कामना करता हुआ ।

व्यनक्- (१) विविध शक्तियों के रूप में प्रकट होने वाला परमेश्वर, (२) विविध विज्ञानों के प्रकट करने वाले विद्वान् ।
'प्रति श्रोणः स्थाद् व्यनगचष्ट'
ऋ. २.१५.७

व्यनत् - वि + अनत् । सांस लेता हुआ, प्राण वाला, प्राणी ।
'अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि'
ऋ. १०.१२०.२; अ. ५.२.२; २०.१०७.५; साम. २.८३४; ऐ.आ. १.३.४.७

व्यन्तः- (१) पश्यन्तः, जानन्तः (देखते या जानते हुए) 'वि' धातु ज्ञानार्थक है ।
'पदं देवस्य नमसा व्यंन्तः'
ऋ. ६.१.४; मै.सं. ४.१३.६; २०६.११; का.सं. १८.२०; नि. ४.१९
देव या अग्नि के आहवनीय स्थान को देखते या जानते हुए (व्यन्तः) ।

व्यन्तु- (१) कामयन्ताम् (इच्छा करें) कामना करें, खावें पीवें, (२) सायण ने -
'पिवन्तु सवतम् आज्यम्, भक्षयन्तु एतत् हविः ऐसा अर्थ किया है ।
'उतग्नाः व्यनतु देवपत्नीः'
ऋ. ५.४६.८; अ. ७.४९.२; मै.सं. ४.१३.१०; २१३.१०; नि. १२.४६ .
और स्त्रियाँ भी कामना करें या खायें पीयें ।

व्यभिनत् - (१) छिन्न भिन्न किया, (२) कुचल डाले ।
'वि श्रृंगिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः'
ऋ. १.३०.१२

व्यमिमीत- वि + अमिमीत । वर्तमान । अर्थ में लङ् का प्रयोग विशेषेण निर्मिमीते । निवर्तयति, उत्पादयति (विशेष प्रकार से निर्माण करता, उत्पादन करता है) ।
'सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञम्'
ऋ. १०.११०.११; अ. ५.१२.११; वाज.सं. २९.३६; मै.सं. ४.१३.५; २०५ .५; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.४; नि. ८.२१.
अग्नि उत्पन्न होते ही यज्ञ सम्पादित करने लगता है ।

व्ययनम् - वि + अयनम् । विविध लोक या प्राप्तियोग्य पद ।
'य उदानड् व्ययनम्'
ऋ. १०.१९.५; अ. ६.७७.२

व्ययुः- छिन्न भिन्न किया ।
'तं मरुतः क्षुर पविना व्ययुः'
नि. ५.५.
उस वृत्र को मरुतों ने तीक्ष्ण धार वाले पवि से छिन्न भिन्न किया ।

व्यदर्यत्- (१) विविधम् अदर्यति (विविध प्रकार से पीड़ित करता है) । 'अर्द' धातु गत्यर्थक है परन्तु यहाँ पीड़ा देना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । (२) वि + अर्दयत् । विदीर्ण किया ।
यस्य त्रितो व्योजसा
'वृत्रं विपर्वमर्दयत्'
ऋ. १.१८७.१; वाज.सं. ३४.७; का.सं. ४०.८; नि. ९.२५
जिसके प्रभाव से (यस्य ओजसा) तीनों लोकों में अप्रतिहत इन्द्र ने (त्रितः) वृत्र या मेघ को (वृत्रम्) खण्ड खण्ड कर (विपर्वम्) विदीर्ण किया (व्यर्दयत्) ।

व्यल्कशा- वि + अल्कशा । अर्थ (१) विविध शाखायुक्त (२) वेद विद्या ।
'पाकदूर्वा व्यल्कशा'
ऋ. १०.१६.१३; तै.आ. ६.४.१.

व्यश्नुवी- (१) विविध अंगों में व्यापक, (२) वीर्य, (३) वीर्यवत्, बलवान् पुरुष ।
'व्यश्नुविने स्वाहा'
वाज.सं. २२.३२.

व्यश्व- वि + अश्व । (१) विविध विद्याओं में पारङ्गत । (२) जितेन्द्रिय पुरुष ।
'आ नार्यस्य दक्षिणा
व्यश्वां एतु सोमिनः'
ऋ. ८.२४.२९
(३) विशेष या विविध अश्वों या विद्वानों का स्वामी (४) विविध विद्याओं में निष्णात ।
(४) एक वैदिक ऋषि
'यद्वां कक्षीवां उत यद् व्यश्वः'
ऋ. ८.९.१०, अ. २०.१४०.५
(५) विविध अश्व सेना का स्वामी (६) विविध कर्मों का भोक्ता (७) अश्व हित रथ वाला (८) विविध अश्वारोही जनों का स्वामी ।
'याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतम्'
ऋ. १.११२.१५
जिन साधनाओं से अश्वरहित रथवाले असहाय पुरुष को या अश्वारोहियों के स्वामी को या अति विस्तृत राष्ट्र के स्वामी की (पृथिम) सेवा परिचर्या करते हो ।

व्यश्वत् - विनीत अश्व वाला ।
'स्तुहीन्द्रं व्यश्ववत्'
ऋ. ८.२४.२२; अ. २०.६६.१; आ.श्रौ.सू. ७.८.२.

व्यंस - (१) एक दैत्य ।
(२) वि + अंस । विविध अंसों अर्थात् प्रजापीड़क उपायों वाला दुष्ट ।
'यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम्'
ऋ. २.१४.५

व्यंसम् - वि + अंसम् । स्कन्ध से शरीर को आत्मा करना । (२) स्कन्ध को छिन्न भिन्न कर मारना ।
'अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसम्'
ऋ. १.३२.५; मै.सं. ४.१२.३; १८५.९; तै.ब्रा. २.५.४.३;
क्रिया विशेषण के रूप में प्रयुक्त है ।

व्यस्तकेशी- बाल बिखेरी हुई ।
'मा त्वा व्यस्त केश्यः'
अ. ८.१.१९

व्यसृक्षत- वि + असृक्षत । अर्थ है- बिखेरता है ।
'वि हि सोतोरसृक्षत'
ऋ. १०.८६.१; अ. २०.१२६.१; नि. १३.४
आरित्यजव जीवों को सृष्टि के लिए (सोतो) किरणें बिखेरता (व्यसृक्षत) ।

व्र - (१) सब का आवरण करने वाला आकाश।
'व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि'
अ. ११.७.३

व्रज- (१) व्रज् (रहना, इधर उधर घूमना) + अच् = व्रजः। मेघ का विशेषण। अन्तरिक्ष में रहने वाला मेघ। (२) इधर उधर मंडराने वाला मेघ।
'अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः
पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार'
ऋ. ३.३०.१०; नि. ६.२.
(३) गोष्ठ - गौओं का वास स्थान।

व्रजक्षित्- गौ आदि पशुओं के समूह में निवास करने वाला।
'व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा'
वाज.सं. १०.४

व्रज्य- गोशालाओं का अध्यक्ष।
'नमो व्रज्याय च गोष्ठाय च'
वाज.सं. १६.४४

व्रजिनी- (१) वर्तन क्रिया- वर्तन योग्य क्रिया। (२) गमन करने योग्य पद्धति।
'अपा वृत व्रजिनीरुत् स्वर्गात्'
ऋ. ५.४५.१

व्रत- वृ + अतच् = व्रत। व्रतमिति कर्मनाम वृणोति इति सतः (व्रत कर्म को कहते हैं और वह वृत धातु से बना है)। शुभ या अशुभ कर्म कर्त्ता को आवृत करता है, अतः वह व्रत है। (२) जो वारण कर्त्ता है वह व्रत है क्योंकि अन्न रस होकर शोणित रूप से शरीर को आच्छादित करता है।

व्रतचारी- व्रत का आचरण करने वाला ब्राह्मण।
'ब्राह्मण व्रतचारिणः'
अ. ४.१५.१३

व्रतचारिणः - ब.व। कृत बोक् संयमाः - जो मौन व्रत धारण करे (२) कर्म विशेष का अनुष्ठान करने वाले (३) मेढकों का विशेषण।
'ब्राह्मणा व्रतचारिणः'
अ. ४.१५.१३

व्रतति'-
व्रततेरिव गुष्पितम्'
ऋ. ८.४०.६; अ. ७.९०.१
(२) प्र + तन् + क्तिन् = प्रतति = व्रतति। यह शब्द निरुक्त के अनुसार त्रिधातुज है। वृ + शो तन् धातुओं से बना है। लता अवरण करती अन्य पौधे पर शयन करती और फैलती है।

व्रतपति- (१) व्रतों का पालन करने वाला (२) कर्मों का आचार्य
'व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तः'
अ. ७.७४.४

व्रतपा- (१) व्रतों, धर्म नियमों का पालक पुरुष, (२) सूर्य।
'ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि'
ऋ. १.८३.५; अ. २०.२५.५
उसके बाद व्रतों का पालक कान्तिमान सूर्य संसार में प्रकट होता है।

व्रन्द- (१) निन्दित मनुष्य।
(२) धातु होने पर मृदु होना अर्थ है।

व्रन्दति- मृदु भवति, मृदु होता है। 'व्रन्द' धातु मृदु होना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

व्रन्दिन् (व्रन्दी)- (१) व्रन्द (कोमल करना) + इन् = व्रन्दिन्। अर्थ है - कोमल कर्त्ता।
(२) अभ्र को कोमल बनाने वाला -सूर्य।
(३) निन्दित मनुष्यों का संघ बना कर रहने वाला। bandit
'यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषत्'
ऋ. १.५४.४

व्रयस् - (१) त्याग, (२) विघ्न वर्जन का बल।
'आ देवानामोहते वि व्रयो हृदि'
ऋ. २.२३.१६

व्रव- (२) बृहस्पति। (२) वेदज्ञाता विद्वान्।

व्लङ्ग- (१) पैतरा, (२) मारने वाला अस्त्र शस्त्र।
'अभिव्लैङ्गैरपावपः'
ऋ. १.१३३.४

वा - धातु। (१) वायु का बहना।
'वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः'
अ. १२.१.५१
(२) अव्यय। अर्थ-अथवा, विकल्प,
(३) वा इति विचारणार्थे
'हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा
कुवित्सोमस्यापामिति'
ऋ. १०.११९.९; नि. १.४
अभी इस पृथिवी को मैं (हन्त इमां पृथिवीम् अहम्) इस अन्तरिक्ष लोक में या इस द्युलोक में अथवा दाहिने कन्धे पर या साएं कन्धे पर

रख लूं (इह वा निदधानि) क्योंकि (इति) अनेकों बार (कुवित्) सोम रस का मैंने पान किया है (सोमस्य अपाम्)।

वाकू - (१) गौ (२) वाणी, (३) धेनु (४) मेघ (५) गर्जन, (६) विद्युत्, (७) वेद (८) सिनीवाली, (९) पृथ्वी (१०) बुद्धि, (११) राष्ट्र शक्ति (१२) अन्तरिक्ष, (१३) विराट (१४) विश्वकर्मा, (१५) रानी, (१६) ऋग्वेद (१७) अग्नि, (१८) प्रजापति, (१९) परमेश्वर, (२०) वायु, (२१) यज्ञ, (२२) वज्र; (२३) स्त्री।

'त्रैष्टुभेन वाकम्'

अ. ९.१०.२

त्रैष्टुभ्, से वाक् प्राप्त किया जाता है, परिमित तथा ज्ञान किया जाता है, अन्तरिक्ष से वायु परिमित है, प्राण से वायु उत्पन्न होती है, मन के भावों को वाणी परिमित करती है वायु से वाक् या शब्द उत्पन्न होता है, राजा से राष्ट्र शक्ति परिमित है, राष्ट्र शक्ति से पृथ्वी शासित है, और द्यौ से पृथिवी परिमित है।

वाक - पकी फुंसी।

'वाका अपचितामिव'

अ. ६.२५.१-३

वाक् देवी - वाणी।

'देवीं वाचमजनयन्त देवाः'

ऋ. ८.१००.११; तै.ब्रा. २.४.६.१०; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१; नि. ११.२९

माध्यमिक देवों ने वाक् देवी को उत्पन्न किया है।

वाकस्य वक्षणिः - प्रवचन योग्य वेद को धारण प्रवचन करने और मनुष्यों तक पहुंचने वाला- इन्द्र, परमेश्वर।

'इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः'

ऋ. ८.६३.४

वाग्वी - विद्वान्, वाग्मी।

'वाग्वीव मन्त्रं प्रभरस्व वाचम्'

अ. ५.२०.११

वागाम्भृणी- (१) वेदवाणी का प्रदाता परमात्मा, (२) अम्भृण नामक ऋषि की दुहिता वाक् जिसने अपनी आत्मा की स्तुति की। (३) एक मन्त्र के ऋषि भी वागाम्भृणी है।

'अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहम्
आदित्यैरुत विश्वदेवैः
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्मि
अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा'

ऋ. १०.१२५.१; अ. ४.३०.१

मैं ग्यारह रुद्रों से तादात्म्य कर लोक में रमती हूँ, एवं आठ वस्तुओं, बारह आदित्यों, १० विश्वदेवों के साथ तादात्म्य भाव रखती हूँ। मैं ही मित्र और वरुण को धारण करती हूँ। इन्द्र, अग्नि और दोनों अश्विनों को भी धारती हूँ।

वाघत्- वह् + अति = वाघत् (बाहुलक नियम से उपधा की वृद्धि)' अथवा- वह् + णिच् + शतृ = वाहयत् = वाघत्। वहन्ति हवींषि ग्रन्थार्थान् वा (हवि या ग्रन्थों के अर्थों को जो वहन करे वह वह 'वाघत्' है)।

अर्थ - (१) ढोने यो ढोवाने वाला विद्यार्थी या व्यापारी। (२) यज्ञानुष्ठाता, मेधावी (३) व्यापारी (४) सायण के अनुसार 'ऋत्विज्' और सामर्थ्य से तद्वान् अर्थात् ऋभु गण है, परन्तु यास्क इस अर्थ को नहीं मानते हैं।

'विष्ट्वी शमी तरणि त्वेन वाघतः'

ऋ. १.११.४; नि. ११.१६

कर्मों को या यज्ञों को (शमी) कर या व्याप्त कर (विष्टी) क्षिप्रकारिता के साथ (तरणित्वेन) यज्ञानुष्ठता मेधावी या व्यापारी....

(५) स्तुति करने वाला।

'इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः'

ऋ. ३.३७.२; अ. २०.१९.२

(६) ऋत्विज्

'उप ब्रह्माणि वाघतः'

ऋ. १.३.५; अ. २०.८४.२; साम, २.४९७; वाज.सं. २०.८८

(६) ऋत्विज,

(७) वाक् + हन् = वाघत्। वाणी द्वारा दोषों का नाश करने वाला और शास्त्रों और उत्तम उपायों को धारण करने वाला- विद्वान्

'इन्द्र कृणन्तु वाघतः'

ऋ. ३.३७.२; अ. २०.९.२

वाघतः- 'वाघत्' का बहुवचन रूप। विद्वान् ज्ञान धारक, वाग्मी।

'ना न्यस्त्वच्छूर वाघतः'

ऋ. ८.७८.४

वाघतां वयुनम् - (१) मेधावी ऋत्विजों का प्रज्ञानस्वरूप 'वांघतां विमानम्' 'वाघत्' 'वयुन'
(२) विद्वानों से मान्य ।
'विमानमग्निर्वयुनञ्चवाघताम्'
ऋ. ३.३.४
बुद्धिमानों से मान्य (वाघतां विमानम्) और प्रशस्य (वयुनम्) अग्नि या परमेश्वर ।

वाच् - वच् क्विप् = वाच् । वचन, वाणी, (२) ज्ञान, (३) मुख ।
'यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत'
ऋ. १०.७१.२; नि. ४.१०
जिस यज्ञ या सभा में ध्यानवान् या धीमान पुरुष मन या प्रज्ञा से शुद्ध वचन बोलते हैं ।
(४) स्कन्दस्वामी ने 'वाक् इन्द्रिय' अर्थ में भी 'वाच्' शब्द का प्रयोग किया है ।
(५) माध्यमिका वाणी, (५) वाक् स्वरूप परमेश्वर ।
'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि
तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः'
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति ।
तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति'
ऋ. १.१६४.४५; अ. ९.१०.२७; श.ब्रा. ४.१.३.१७; तै.ब्रा. २.८.८.६; नि. १३.९
(९) वेद वाणी के अर्थ में-
'उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचम्'
ऋ. १०.७१.४; नि. १.१९
कोई एक पुरुष पढ़कर तथा मन से पर्यालोचन कर (पश्यन्) वेद की वाणी नहीं समझता (वाचं न ददर्श) ।

वाचः अग्रे- शरीर में वाणी शक्ति अपने के भी पूर्व विराजने वाला आत्मा ।
'अग्रे वाचो अग्रियो गोषुगच्छति'
ऋ. ९.८६.१२; साम. २.३८३.

वाचः अग्रः- वाणी का उत्पत्ति कारण, निदान स्वरूप वाणी से भी पूर्व विद्यमान वाणी का मूल स्वरूप आत्मा ।
'धीती वा ये अनयन् वाचो अग्रम्'
अ. ७.१.१; शां.श्रौ.सू. १५.३.७

वाचः परमं व्योम- (१) वेदवाणी का परम रक्षास्थान ब्रह्मा-महा ज्ञानवान् प्रभु, (२) बुद्धि और वाणी का आश्रय ब्रह्मा ।
'ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम'
ऋ. १.६४.३५; अ. ९.१०.१४; वाज.सं. २३.६२;

वाचमीं खयः- (१) स्तुतिकर्ता ।
'समुद्रो वाचमीं खयः'
ऋ. ९.१०१.६; अ. २०.१३७.६; साम. २.२२४.
(२) उत्तम ज्ञान वाणियों का उपदेष्टा ।
(३) वाचम + ईखयः । वाणी को देने वाला, आज्ञापक ।
'तं गीर्भिर्वाचमीं खयम्'
ऋ. ९.३५.५

वाचः भाग- वाणी या वेदवाणी या परम ब्रह्ममय वेद वाणी का प्राप्त करने योग्य सार ।
'आदिद् वाचो अश्वब्रुवे भागमस्याः'
ऋ. १.१६४.३७; अ. ९.१०.१५

वाचस्पति- (१) वाचः पाता वा पालयिता वा तस्यैषा भवति, (२) प्राणात्मा इन्द्र ।
वाचस्पतये पवस्व वृष्णो
अंशुभ्यां गभस्तिपूतः
वाज.सं. ७.१; मै.सं. १.३.४: ३१.७; श.ब्रा. ४.१.१.९
हे सोम ! प्राणात्मा इन्द्र के लिए (वाचस्पतये) अपने को पवित्र कर (पवस्व), तू आदित्य की रश्मियों से (वृष्णः अंशुभ्याम्) पवित्र है तथा अभिभूत होने से पूर्व भी तू सूर्य की किरणों से पवित्र है (गभस्ति पूतः) ।
'पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम्'
अ. १.१.२
अपने को अपगत प्राण समझ कर पापी प्राणात्मा वाचस्पति के प्रति कहता है- 'हे प्राण (वाचस्पते), सभी इन्द्रियों की वृति के दीपक मन के साथ पुनः आ (दैवेन मनसा पुनः एहि) और आकर हे अन्न और धन के स्वामी (वसोष्पते), मुझ में ही (मयि एव) मेरे इस शरीर को (मम तन्वम्) नियम के साथ भोग (निरामय) अर्थात् इस शरीर को मत छोड़ ।
आधुनिक अर्थ - देवगुण बृहस्पति, वाणी का देवता ।
(३) प्राण ।

'प्राणो वाचस्पतिः श.ब्रा. ६.३.१.१९
"प्रजापतिर्वै वाचस्पतिः '
श.ब्रा.
(५) दश प्राणों का मुख्य होता।
'वाचस्पतिर्होता दशहोतृणाम्'
तै.ब्रा. ३.१२.५.२.
(६) यज्ञ का पति।
'वाग्वैयज्ञः
(७) सब इन्द्रियों में ओत प्रोत वाणी
वाग् इति सर्वे देवाः।
(८) ऊपर के छः प्राणों का होता
वाग् होता षट्होतृणाय्।
तै.ब्रा. ३.१२.४.२.
(९) मन का स्वामी
वाग् इति मनः
जै.ब्रा. ४.२१.११
वाणी मन का प्रकट रूप है। वाणी प्रजापति से गर्भ ग्रहण करती है।
'वाचस्पतिर्बाला
तेषा तन्वो अद्य दधातु मे'
अ. १.१.१

वाचः परमं व्योम- वाणी या वेद ज्ञान का परम आश्रय स्थान।
'पृच्छामि वाचः परमं व्योम'
ऋ. १.१९४.३४; अ. ९.१०.१३; वाज.सं. २३.६१; तै.सं. ७.४.१८.२; का.सं. आ. ४.७; तै.ब्रा. ३.९.५५.

वाचः प्रथमः- मन्त्र वर्णात्मक वाणियों का उत्कृष्ट बल।
'तदद्य वाचः प्रथमं मसीय'
ऋ. १०.५३.४; आश्व.श्रौ.सू. १.२.१; ४.९; आप.श्रौ.सू. २४.१३. ३.
मन्त्र वर्णात्मक वाणियों से उत्कृष्ट बल मैं मानता हूँ।

वाच्यः हेमन्तः- वाणी से उत्पन्न हेमन्त, शरद् काल की चन्द्र ज्योति से बाद तीव्र गर्जन कारी वाणी रूप मेघ और उसके बाद हेमन्त उत्पन्न होता है।
हेमन्तो वाच्यः
वाज.सं. १३.५८; तै.सं. ४.३.२.३; मै.सं. २.७.१९: १०४.१२; का .सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.८

वाचायजीयान् - (१) वाणी के अधिदेवता के रूप में मनुष्य की अपेक्षा अत्यन्त यष्टाअग्नि, (२) वेदवाणी के द्वारा उत्तम ज्ञान प्रदाता परमेश्वर -ज.दे.श.
'मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान्'
ऋ. १०.१२.२; अ. १८.१.३०
(३) वाणी से सम्बन्ध सत्कार करने वाली।

वाचा स्तेन- (१) वाणी द्वारा छलकर चोरी करने वाला।
'वाचास्तेनं शख ऋच्छन्तु मर्मन्'
ऋ. १०.८७.१५; अ. ८.३.१४.

वाचो विसर्जन- वेद आदि वाणियों के विस्तार करने का स्थान।
'अग्नेस्ततूरसि वाचो विसर्जनम्'
वाज.सं. १.१५; तै.सं. १.१.५.२; का.सं. १.५; ३१.४; ३२.७; श.ब्रा. १.१.४.८; तै.ब्रा. ३.२.५.७.

वाज- उत्तम सुखमय लोक, स्वर्ग
वाजो वै स्वर्गो लोकः
तै.ब्रा.
'अनमीवानुत्तरेभि वाजान्'
अ. १२.२.२६
(२) वेगवान् अश्व, (३) यान
'सं वाजेभिः पुरश्चन्द्रैरभिद्युभिः'
ऋ. १.५३.५; अ. २०.२१.५; मै.सं. २.६.६: २०.४; का.सं. १०.१२.
(३) ए.व. (पु.)। ज्ञान सम्पादक, (४) श्रेष्ठ बलवान्-दया. (५) ऋभु -सा.
'प्र वोऽच्छा जुजुषाणा सो अस्थुः
अभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः'
ऋ. ४.३४.३
(३) अन्न, (७) हवि, (८) ऋभुओं के लिए भी 'वाजाः' का प्रयोग हुआ है। (९) बल।
wise शब्द वाज का समानार्थक है।
(१०) विभ्वा और वाज ओंकार वाची प्रणवस्वरूप परमात्मा के पुत्र माने गए हैं।
(११) ऋभु वैश्य, विभ्वा क्षत्रिय और वाज ब्राह्मण का वाचक है।
आधुनिक अर्थ - पंख, पक्ष, बाण का पंख, युद्ध, ध्वनि,
नपुंसक में-माखन, घृत, श्राद्ध में दिया चावल, पिण्ड, भोजन, स्तुति, मन्त्र, ऋचा

अन्न के अर्थ में प्रयोगः
'तव प्रणीत्यश्याम वाजान्'
ऋ. ४.४.१४; तै.सं. १.२.१४.६; मै.सं. ४.११.५: १७४.५; का.सं . ६.११.
तेरी कृपा से हम अन्न खाते हैं । (१२) अन्न निमित्त यज्ञ है ।
हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वा
'आङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन्'
ऋ. १०.१४९.५
हे सविता, जिस प्रकार अङ्गिरस के पुत्र हिरण्यस्तूप ने इस अन्न निमित्त यज्ञ में तुझे आमन्त्रित किया ।

वाजगन्ध्य- (१) वाजेन अन्नेन मिश्रायितव्यम् (अन्न से मिश्रित करने योग्य) । 'गन्ध' धातु अर्दनार्थक है, परन्तु यहां मिश्रण अर्थ में आया है ।
गन्ध + यत् = गन्ध्य । कुछ विद्वान् गृह् + ण्यत् = गन्ध्य कहते हैं । गृह् का गन्ध आदेश हो जाता है ।
अर्थ - (१) अन्नगृह, (२) बल वर्धक, 'वाजाय वलाय गृह्यम्' (जिसे बल के लिए ग्रहण किया जाय) ।
'ते सखायः पुरुरुचम्
यूयं वयं च सूरयः
अश्याम वाजगन्ध्यं
सनेम वाजपस्त्यम्'
ऋ. ९.९८.१२; साम. २.१०३०.
हे स्तोता, तथा ऋत्विज् रूपी मित्रो ! आप और हम मेधावी यजमान साथ हो आगे या सामने शोभते हुए (पुरुरुचम्) इस अन्नगृह को व्याप्त हों (वाजगन्ध्यम् अश्याम)। या, सायण के अनुसार, अन्न मिश्रित सोमरस का पान करें तथा अन्निमिश्रित सोम को सदा परस्पर बांटकर पीयें (वाजपस्त्यम् सनेम) ।
(२) शत्रु से शत्रु को नाश करने के सामर्थ्य से युक्त ।

वाजजहरः- (१) अन्न को पेट में पचाने वाला, (२) ऐश्वर्य को अपने वश कर रोकने वाला ।
'घर्मो न वाजजठरः'
ऋ. ५.१९.४

वाजजित्- संग्राम जीतने वाला ।
'वाजिनो वाजजितो वाजं सरिष्यन्तः'
वाज.सं. ९.९; श.ब्रा. ५.१.४.१५; तै.सं. १.७.८.४; आप.श्रौ. सू. १८.४.१४.
अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा
सरिष्यन्तं वाजजितं सम्मार्ज्मि'
वाज.सं. २.७; श.ब्रा. १.४.४.१५; वै.सू. २.१३.

वाजद्रविणा- ज्ञान को बढ़ाने वाली । वेदवाणी ।
'वाजद्रविणासो गिरः'
ऋ. ८.८४.६; साम. २.९०.१

वाजदा- (द्वि.व.) । (१) अन्न और ऐश्वर्य देने वाले (२) पालने और संग्राम में शत्रुओं को नाश करने वाले-इन्द्रवायू ।
'मदाय वाजदा युवम्'
ऋ. १.१३५.५

वाजदावत् (वाजदावा)- (१) अन्न, ऐश्वर्य या विज्ञान देने वाला -उपदेशक
भूयाम वाजदाव्नम्
ऋ. १.१७.४
हम अन्न ऐश्वर्य या ज्ञान देने वाले उपदेशकों के बीच में रहें ।
(२) नाना ऐश्वर्य देने वाला । इन्द्र परमेश्वर ।
'वाजदावा मघोनाम्'
ऋ. ८.२.३४.

वाजपतिः- ऐश्वर्य का स्वामी ।
'सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम्'
वाज.सं. १८.३४; मै.सं. २.१२.१: १४४.११; का.सं. १८.१३.

वाजपस्त्य - पत + यत् = पस्त्य । अर्थ है-गृह ।
(१) वाजपतनम्, अन्नगृह सोम वा (अन्न रखने का घर) ।
(२) अन्न मिश्रित सोमरस (३) देवराज ने-वाजः अन्नम् पस्त्यं गृहम् , पस्त्यं गृहं, वाजश्च पस्त्यञ्च परमम् एतत् अन्नाद्यम् अस्माकम् इति मन्यमाना । यस्मिन् देवाः पतन्ति तम् । सोम उच्यते ।
अर्थात् वाज अन्न है । पस्त्य गृह है । अतः अन्न और घर समझ जिसमें देव आवे वह सोम रस-ऐसा देवराज ने कहा है ।
(४) बलवर्द्धक, बुद्धि -दया.
(५) ऐश्वर्य से सम्पन्न गृह वाला ।
'सनेम वाजपस्त्यम्'
ऋ. ९.९८.१२; साम. २.१०३०

(५) गृह में अन्न और ऐश्वर्य का संयम करने वाला ।
'अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यः'
ऋ. ६.५८.२; मै.सं. ४.१४.१६; २४.२; तै.ब्रा. २.८.५.४.

वाजप्रमहः- (१) जो विज्ञानों या विद्वानों से पूजा जाय -दया.
(२) ऐश्वर्यवान् राजा (३) विज्ञावान् पुरुषों द्वारा पूजनीय परमेश्वर मा सा ते अस्मत् सुमतिर्वि दसत्
वाज प्रमहः समिषो वरन्त'
ऋ. १.१२१.१५
वह तेरी कृपा से हुई सुमति नष्ट न हो । हे अन्नों और ऐश्वर्यों की उत्तम कोटि को देने वाले तथा विज्ञानियों से पूज्य परमेश्वर (वाजप्रमहः) हमारी समस्त कामनाएं और इष्ट प्रजाएं (समिषः) तुझे एकत्र होकर वरण करें (वरन्त) ।

वाजप्रसूता - (१) सूर्य के गमन से उत्पन्न -उषा ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि
वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम्'
ऋ. १.९२.८

वाजपेय- एक यज्ञ ।
'राजसूयं वाजपेयम्'
अ. ११.७.७

वाजपेशस्- (१) विज्ञान युक्त रूप वाली बुद्धि, (२) अन्न और सुपर्णादि से युक्त धारण शक्ति ।
'कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम्'
ऋ. २.३४.६

वाजम्भरः- (१) अन्न, युद्ध, ऐश्वर्य और ज्ञान धारण करने में समर्थ
त्वद्वाजी वाजम्भरो विहायाः
ऋ. ४.११.४
(२) बल वीर्यधारक मन, (३) आत्मा से पुष्ट होने वाला प्राण या देह ।
'अग्निः सप्ति वाजंभरं ददाति'
ऋ. १०.८०.१

वाजय- बलवान् बनाना ।
'तमिन्द्रं वाजयामसि'
ऋ. ८.९३.७; अ. २०.४७.१; २०.१३७.१२; साम. १.११९; २.५७२; मै.सं. २.१३.६: १५५.७; ४.१०.५: १५५.१३; ४.१२.३: १८५.६; का.सं. ३९.१२;

वाजयन्- (१) स्तुति करता हुआ । दे. 'आत्मन्' ।
'यदिमा वाजयन्नहम्'
ऋ.१०.९७.११; वाज.सं. १२.८५; मै.सं. २.७.१३: ९३.१७
जब मैं इन स्तुतियों ओषधियों की स्तुति करता हुआ ।
(२) अश्व के समान आचरण करने वाला, (३) प्रचुर अन्न उत्पन्न करने में समर्थ ।
'वाजयन्निव नू रथान्'
ऋ. २.८.१

वाजयन्ती धी- (१) सकलानां विद्यानां प्रदायिका बुद्धिः -दया. (२) ज्ञान और ऐश्वर्य की अभिलाषा करने वाली बुद्धि ।
'स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम्'
ऋ. १.१०९.१; तै.ब्रा. ३.६.८.२.
वह मैं आप दोनों को ज्ञान और ऐश्वर्य की अभिलाषा करने वाली बुद्धि को प्राप्त करूं तथा अनुकूल कार्य करूं ।

वाजयु- (१) वेगवान् ।
'रथं देवासो अभिविक्षु वाजयुम्'
ऋ. २.३१.२
(२) संग्राम की कामना करने वाला (३) अन्न को ढो लेना चाहने वाला, (४) वेग से जाने की इच्छा वाला, (४) ऐश्वर्य चाहने वाला ।
'प्र भरामहे वाजयुर्न रथम्'
ऋ. २.२०.१
(६) अन्न, ज्ञान, बल वेग आदि की कामना करने वाला ।
'त्वं न इन्द्र वाजयुः'
ऋ. ७.३१.३; साम. २.६८

वाजरत्ना- (१) ऐश्वर्य, बल वीर्यरूपी धन वाली ।
'सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना'
ऋ. ४.४३.७; अ. २०.१४३.७
(२) वीर्य और ज्ञान से अति रमणीय ।
'कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम्'
ऋ. १०.४२.७; अ. २०.९८.७; मै.सं. ४.१४.५: २२२.४; तै.ब्रा. २.८.२.७
(३) ज्ञान रत्ना, धन रत्ना
(४) अन्न ऐश्वर्य ज्ञान आदि रमणीय पदार्थों

को उत्पन्न करने वाला कर्म ।
'कदा धियः करसि वाजरत्नाः'
ऋ. ६.३५.१

वाजवती- ऐश्वर्य और अन्नादि देने वाली भूमि ।
'राये चनो मिमीतं वाजवत्यै'
ऋ. १.१२०.९

वाजबन्धुः- राष्ट्र में ऐश्वर्य और अन्नादि वेतनों पर बंधा नियुक्त पुरुष ।
'न युष्मे वाजबन्धवः'
ऋ. ८.६८.१९

वाजश्रवाः- (१) बल और ऐश्वर्य को अन्न के समान भोगने वाला, (२) युद्धों में प्रसिद्ध कीर्त्तिमान्
'वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिसः'
ऋ. ३.२.५

वाजसन- (१) वेद ज्ञान रूपी वाज को प्राप्त करने वाला । अथवा (२) दूसरों का ज्ञान प्रदान करने वाल ।

वाजसनिः- (१) ऐश्वर्य ज्ञान, संग्राम आदि का दाता और संविभाग करने वाला - इन्द्र, परमेश्वर ।
'वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरम्'
ऋ. ३.५१.२
(२) बल और धन देने वाला ।
'वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरम्'
ऋ. १०.९१.१५; वाज.सं. २०.७९; मै.सं. ३.११.४: १४६.१२; का.सं. ३८.९; तै.ब्रा. १.४.२.२; आप.श्रौ.सू. १९.३.२.

वाजसनये- 'वाजसन' अर्थात् वेदज्ञान करने का कराने वाले का शिष्य । 'विश्वरूप वाजसन'

वाजसा- अन्नबल; ज्ञान, ऐश्वर्य देने वाली-बुद्धि ।
'अश्वासां वाजसामुत'
ऋ. ६.५३.१०; साम. २.९४.३

वाजसातमा- वाज + सन् + विट् = वाजसा, वाजसा + तमप् + टाप् = वाजसातमा ।
अर्थ - 'वाजानाम् अन्नानाम् सातमा संभक्ततमा, (अन्नों को शुद्ध करने वाली, छांटने वाली) ।
(२) सायण ने इस शब्द का अर्थ यों किया है- वाजं सनोति इति वाजसा तत् अतिशयनिकः तमम् (जो अन्नदान करे वह वाजसा है उसीसे अतिशयार्थक 'तमप्' प्रत्यय लगाकर 'वाजसातप' बना है । 'टाप्' लगाने पर 'वाजसातमा' रूप हुआ ।
अर्थ-अन्नों को अत्यन्त देने वाली ।
(३) द्वि.व.। स्त्रीपुरुष का विशेषण । उत्तम ऐश्वर्य का संगत हो उपभोग करने वाले स्त्री पुरुष ।
'आयजी वाजसातमा
ता ह्युच्चा विजर्भृतः'
ऋ. १.२८.७; नि. ९.३६
(४) अत्यन्त बल को देने वाले इन्द्र और अग्नि, प्राण और अपान, आत्मा और अन्तः करण, परमात्मा और जीवात्मा, राजा और सेनापति, गुरु और शिष्य ।
'इन्द्राग्नी वाजसातमा'
ऋ. ३.१२.४; साम. २.१०५२

वाजसाति - (१) बलवीर्य ।
'बृहते वाजसातये'
अ. १४.२.७२
(२) अन्न-संभजनम्
(अन्नदान, अन्नसंविभाग) ।
'देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः
प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये
याः पार्थिवासो या अयामपि व्रते
ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत'
ऋ. ५.४६.७; अ. ७.४९.१; मै.सं. ४.३.१०; २१३.८; तै.ब्रा. ३.५.१२.१; नि. १२.४५.
जो इन्द्र आदि देवों की पत्नियां हम से हवि या स्तुति की कामना करने वाली हैं (उशतीः) वे हम से हवि या स्तुति स्वीकृत कर हमें रक्षा करें या अन्न दान से प्रहर्षित करें तथा हमारे सन्तानोत्पत्ति के निमित्त (नः तुजवे) अन्नदान या अन्न संविभाग के लिए (वाजसातये) प्रकृष्ट रूप से हमारी रक्षा करें (प्रातन्तु) । वे देवियाँ जो पृथ्वी पर निवास करने वाली (याः प्रार्थिवासः) जो उदक बरसाने में संलग्न अन्तरिक्षों में रहने वाली (याः अपां व्रते) हैं वे सभी सुन्दर आह्वान् सुनाने वालीं हमारे लिए शरण, कल्याण तथा गृह सुख या ऋण दें (शर्म गृहं यच्छत) ।

(३) संग्राम, (४) शक्ति की प्राप्ति ।

'भरेषु वाजसातये'

ऋ. ३.३७.५; अ. २०.१९.५

(५) ज्ञानप्राप्ति, (६) ऐश्वर्य प्राप्ति (७) देह में अन्न को अंग अंग में विभक्त करने की क्रिया, (८) ऐश्वर्य और ज्ञान की प्राप्ति और विभाग ।

'अत्यो न वाजसातये चनोहितः'

ऋ. ३.२.७; वाज.सं. ३३.७५

वाजिन् - (१) विज् (भय और चलना अर्थ में) + णिनि (ताच्छील्य अर्थ में) = वाजिन्, 'विज्' के 'इ' का बहुलमाभीक्ष्ण्ये से 'आ' हो गया है । अर्थ है- वेजनवान् भयवान्, चलनवान्, नित्य चलनशील देखने वाले को भय देने वाला-अश्व ।

'ओविजि' धातु भय और चलन अर्थ में आया है ।

'उतस्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति'

ऋ. ४.४०.४; नि. २.२८

पुनः

'रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरः'

ऋ. ६.७५.६; वाज.सं. २९.४३; तै.सं. ४.६.६.२; मै.सं. ३.१६.३: १८६.३; नि. ९.१६

(२) अन्न वान्, अन्न वाला (३) बहुत अन्न खाने वाला-अश्व, वाज का अर्थ अश्व भी है ।

(४) गतिमान् ।

आधुनिक अर्थ - अश्व, बाण, पक्षी, यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता को मानने वाला ।

(५) वाज + इन् = वाजन् । बलवान् ।

'त्यमू षु वाजिनं देवजूतम्'

ऋ. १०.१७८.१; अ. ७.८५.१; साम. १.३३२; ऐ.ब्रा. ४.२०.२२; २९.१६; ३१.१५; ५.१.२२; ४.२३; ७.९; १२.१८; १६.२९; १८.२५; २०.१२ ; कौ.ब्रा. २५.८; नि. १०.२८

हम उस प्रसिद्ध भयदाता, बलवान् देवों के साथ आए....

वाजिन- (१) अन्न बल और संग्राम का स्वामी ।

'सोमस्य रूपं वाजिनम्'

वाज.सं. १९.२३

(२) ए.व. । विद्वान् ।

'उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुः नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु'

ऋ. १०.७१.५; नि. १.२०

वेदार्थ रूपी अमृत रस को स्थिरता पूर्वक पान करने को स्थिर पीत कहते हैं । ऐसे विद्वान् को विद्वानों के मध्य में भी कोई नहीं हरा सकता ।

(३) वाचः इनः वाजिनः । वाक्पतिः ।

'अरं हितो भवति वाजिनाय'

ऋ. १०.७१.१०; ऐ.ब्रा. १.१३.१४

वाजिनी- (१) अन्नवती, (२) सरस्वती (३) वेदवाणी का विशेषण ।

(४) उषा ।

वाजिनीवत् - सेवाबल से युक्त सेनापति ।

'यमिन्द्रायाबिभर्वाजिनीवते'

अ. १८.३.५४

वाजिनीवती- (१) हवि रूपी अन्न से युक्त, (२) उषा का विशेषण ।

'उषस्तच्चित्रमा भर
अस्मभ्यं वाजिनीवति'

ऋ. १.९२.१३; साम. २.१०८१; वाज.सं. ३४.३३; नि. १२.६

हे हविरूपी अन्न से युक्त उषा, हमारे लिए सुन्दर मनोहर उस धन को दे ।

(३) अन्न समृद्धि वाली, (४) अन्नादि ऐश्वर्य वृद्धि करने वाली (५) उत्तम ज्ञान उत्पन्न करने वाली नाना क्रियाओं से युक्त मंगल क्रियाओं को करने वाली नववधू ।

युक्ष्वा हि वाजिनीवति
अश्वां अद्यारुणां उषः'

ऋ. १.९२.१५

वाजिनीवसु- (१) संग्राम कारिणी सेना को बसाने वाला (२) अन्न, ऐश्वर्य आदि का उत्पादन करने वाली पृथ्वी रूप धन का स्वामी इन्द्र ।

'जठरे वाजिनीवसो'

ऋ. ३.४२.५; अ. २०.२४.५

'अर्वद्भिर्यो हरिभीर्वाजिनीवसुः'

ऋ. १०.९६.८; अ. २०.३१.३

वाजिनीवसू- (१) वेग, बल, ऐश्वर्य और संग्राम करने की शक्ति क्रिया या सेना वाजिनी है । वाजिनी को बसाने या धारण करने वाले स्वामी, (२) वेगवती क्रिया को बसाने वाला शिल्पी-दया.।

'अथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू '
ऋ. २.३७.५; आप.श्रौ.सू. २१.७.१७; मा.श्रौ.सू. ७.२.२.

वाजिनीवान् - (१) प्रशस्तवेदक्रिया युक्तः (२) ज्ञान और अन्न रूप सम्पत्ति का देने वाला पिता या गुरु ।
'जनो यः प्रज्रेभ्यो वाजिनीवान्
अश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः '
ऋ. १.१२२.८
जो स्वामी बलवानों को (पज्रेभ्यः) ज्ञान और अन्न रूप सम्पत्ति का देने वाला है (वाजिनीवान्) और मुझ पुत्र या शिष्य के लिए (मह्यम्) सन्मार्ग पर चलने वाला है (सूरिः) मैं उस इन्द्रियों के स्वामी और शरीर रथ के स्वामी की स्तुति करता हूँ (अश्वावतः रथिनः) (३) ज्ञान कर्म मय बल को भी रखने वाली बुद्धि का स्वामी (४) चिति शक्ति का स्वायी आत्मा ।
'यासामृषभो दूरतो वाजिनीवान् '
अ. ४.३८.५

वाजिनेयः- (१) ज्ञान से युक्त माता पिता या आचार्य का पुत्र (२) बलवती सेना के योग्य ।
'त्वां वाजी हवते वाजिनेयः '
ऋ. ६.२६.२

वाजी- (१) भयदाता,
'आ नो वाज्यभी षाडेतु नव्यः '
ऋ. ७.४.८; नि. ३३.
हमें शत्रुजेता एवं भयदाता नवजात शिशु हो ।
(२) गतिमान् ।
'सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा '
ऋ. ४.३८.१०; तै.सं. १.५.११.४; नि. १०.३१.
सहस्रों सैकड़ो अर्थात् प्रचुर उदकों का दाता वह दधिक्रा देव या मेघ जो गतिवान् एवं अरण शील है ।
(३) अग्नि या वेदवेत्ता का विशेषण ।
'प्र नूनं जातवेदसम्
श्वं हिनोत वाजिनम्
इदं नो बर्हिरासदे '
ऋ. १०.१८८.१
समान जगत् को व्याप्त करने वाले, गतिशील अग्नि या वेदवेत्ता विद्वान्, को कुशासन पर बैठने के लिए प्रेरित करो ।
(४) वाजिनामक देवता ।
'शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु '
ऋ. ७.३८.७; वाज.सं. ९.१६; २१.१०; तै.सं. १.७.८.२; मै.सं. १.११.२: १६२.१०; का.सं. १३.१४; श.ब्रा. ५.१.५.२२; आश्व.श्रौ.सू. २.१६.१४; नि. १२.४४.
वाजि नामक देवता या अश्व हमारे आह्वानो या स्तोत्रों के किए जाने पर कल्याणकारी हों ।

वाणी- (१) वाणवत् शत्रुनाशक सेना (२) उत्तम स्तुति, (३) याचना , (४) प्रार्थना करने वाली प्रजा ।
'इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव '
ऋ. ७.३१.१२; साम. २.११४५

वातीकृतनाशनी- वात के द्वारा उत्पन्न रोगों वो नाश करने वाली । विषाणका नाम की ओषधि- अजश्रृंगी
'पितृणां मूलादुत्थिता
वातीकृतनाशनी '
अ. ६.४४.३

वाजीरासभः- (१) वेगा वाला शब्दकारी संचालक शक्ति, (२) यन्त्राग्नि, (२) अश्व, (४) मुख्य वेगवान् प्राण ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य '
ऋ. १.३४.९
वेगवाले शब्दकारी या यन्त्राग्नि या अश्व के समान संचालक शक्ति का त्रिवृत् रथ से कब योग हुआ ?
अथवा, मुख्य वेगवान् प्राण का देह में कब योग होता है ?

वाट् - (१) राज्य भार वहन करने वाला पद ।
'तस्मै स्वाहा वाट् '
वाज.सं. १८.३८-४३.
(२) मूत्र स्राव का शब्द, (३) बलपूर्वक ।

वाण- (१) सेवनीय, (२) शत्रुओं का नाशक, (३) भोक्ता आत्मा ।
'दुर्मर्ष साकं प्र वदन्ति वाणम् '
ऋ. ९.९७.८
(४) आज्ञा, (५) ऐश्वर्य ।
'दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम् '
ऋ. ४.२४.९

(६) देने और सेवन करने योग्य ऐश्वर्य, (७) शब्दमय ज्ञानमय ज्ञानरस, (८) वाण ।
गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणाम्
रथे कोशे हिरण्यये ।
ऋ. ८.२०.८
वन + धञ् = वाण ।

वाणी- (१) यजुर्वेद की ऋचाएँ ।
'इन्द्रं वाणीरनूषत'
ऋ. १.७.१
हे अध्वर्युवो ! आप भी यजुर्मयी वाणियों से शब्टीः) इन्द्र की ही स्तुति करें ।
(२) वत् (वहना) + इञ् = वाणी । अर्थ -जल ।
सुगान्पथो अकृणोन्निरजेगाः
प्रावन् वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः ।
ऋ. ३.३०.१०; नि. ६.२.
हे इन्द्र, जल के (गाः) निर्गमन के लिए (निरजे) सुगम मार्ग तू ने बनाए (सुगान् पथः अकृणोत्) और मेघ से सुन्दर जल निकाल कर (वाणीः) उन भागों से नीचे की ओर जाते हुए प्राणियों की रक्षा करते हैं (प्रावन्) ।
(३) स्वामी दयानन्द ने वाणी का अर्थ वेद वाणी कर वेद- प्रसार करने का अर्थ किया है ।
वननीया संभजनीया आपः
अथवा,
आपो वा वहनात् वाचो वा वदनात् (जल बहता है और वाच् बोली जाती है) । (४) यास्क ने इस शब्द का अर्थ जल और वाणी दोनों किया है (५) दुर्ग ने केवली 'वाच्' अर्थात् वाणी ही अर्थ किया है और कहा है कि विदीर्ण मेघ से जब जल बहता है तो प्रसन्न हो लोग कहने लगते हैं 'जल बरसा जल बरसा' ।

वाणीची- वाणी ।
'रथे वाणीच्याहिता'
ऋ. ५.७५.४

वात- (१) सर्प की एक ओषधि ।
'वाता पर्जन्योभा'
अ। १०.४.१६
(२) वा (गति और गन्धन अर्थ में) + तन = वात । जो चलता या गन्ध फैलाता है । वायु ।
'मयोभूर्वातो अभि वातूस्राः'
. १०.१६९.१; तै.स. ७.४.१७.१; तै.ब्रा. ३.८.१८.३; आप.श्रौ.सू. २०.१२.२.
(गायों के सामने होकर बहा)
आधुनिक अर्थ- वायु , वायु देवता, शरीर के तीन वायुओं में एक, गठिया रोग ।
(३) गठिया रोग, (४) प्राण

वातचोदित - प्रबल प्राण वेग से प्रेरित-गर्भस्थ, जीव ।

वातगोप- वायु और प्राण से सुरक्षित ।
'उतान्तरिक्षमुरु वातगोपम्'
अ. २.१२.१

वातजा- वात के प्रकोप से उत्पन्न रोग ।
'यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मः'
अ. १.१२.३

वातजूतः- (१) वा युनाजूतः प्राप्त वेगः (वायु के वेग से तीव्र होकर) (२) प्राणों द्वारा वेगवान् आत्मा ।
'वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते'
ऋ. १.५८.४
वायु के वेग से तीव्र होकर अग्नि जैसे तृणों और कोष्ठों में (अतसेषु) विविध प्रकार से फैलता है (वितिष्ठते), उसी प्रकार आत्मा भी प्राणों द्वारा वेगवान् गतिमान पृथिवी आदि लोकों में विविध रूपों को धार कर विविध रूपों में स्थित है ।

वाततेजाः- प्रचण्ड वायु के समान तेजस्वी ।
आशासंशितो वाततेजाः
अ. १०.५.२९

वातपत्नी- (१) जिसका अधिपति वायु है, जो उत्तम शुद्ध वायु से युक्त है- दिशा ।
वातपत्नीरभि सूर्यो विचष्टे'
अ. २.१०.४; तै.ब्रा. २.५.६.२; हि.गृ.सू. २.४.१; आप.मं.पा. २.१२.८.

वातप्रमी- (१) या वायु प्रमिणति -दया. । (२) ज्ञानवायु पुरुष से उपदेश की हुई
(२) ज्ञान तत्व का उपदेष्टा
'वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः'
ऋ. ४.५८.७; वाज.सं. १७.९५; का.सं. ४०.७; आप.श्रौ.सू. १७.१८ .१.
(४) वायु के समान तीव्र गति वाला ।

वातपू- (१) वायु द्वारा प्रजा का पालन या पवित्र करने वाला, (२) वायुवत् प्रजापालक ।

'मधुपूरसि वातपूरसि'

अ. १८.३.३७

वातभ्रजाः, वातभ्रजस् , वातभ्रज, वातव्रजाः - (१) वात अर्थात प्रचण्ड वायु से मथित, (२) गर्भस्थ अपान वायु द्वारा कम्पन करता हुआ-गर्भस्थ शिशु ।

ह्विटनी (Whitney) ने 'वातभ्रजः' पाठ माना है । वेबर ने 'वातव्रजा' और सायण ने 'वातव्रजाः' पाठ माना है ।

'वातभ्रजः' इति ह्विटनी कृतपाठः । वातव्रजा इति वेबर कामितः, 'वातव्रजाः' इति सायणाभिमतः।

'वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्टया'

अ. १.१२.१

वातमाया- प्राण के बल पर गति करने वाला- आत्मा ।

'चित्रश्चिकित्वान् महिषो वातमायाः'

अ. १३.२.४२.

वातरशनाः- प्राण मात्र का भोजन करने वाले मुनि ।

'मुनयो वातरशनाः'

ऋ. १०.१३६.२

वातरंहाः(१) प्राणों या मरुत् के वेग से गतिमान आत्मा, (२) वायु के वेग से जाने वाला रथ ।

'त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः'

ऋ. १.११८.१

(३) वायु के वेग से युक्त अश्व यन्त्रादि ।

'मनोजवा अश्विना वातरंहाः'

ऋ. ५.७७.३

वातस्य अश्वा- 'वातस्य अश्वौ' -वायु के बने दो अश्व-प्राण और अपान ।

'त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा'

ऋ. १०.२२.५

वातस्वनः- प्राणवायु द्वारा समस्त जीवों को प्राण देने वाला अग्नि ।

'हुवे वातस्वनं कविम्'

ऋ. ८.१०२.५; तै.सं. ३.१.११.८; मै.सं. ४.११.२: १६७.३

वातस्वनाः - वायु के समान प्राण के बल पर ध्वनि करने वाला ।

'वातस्वनसः श्येना अस्पृधन्'

ऋ. ७.५६.३

वात्यः- वायु विद्या का ज्ञाता ।

'नमो वात्याय च रेष्म्याय च'

वाज.सं. १६.३९; का.सं. १७.१५.

वाताप्य- (१) प्राण के बल से प्राप्त होने योग्य -सोमरस ।

(२) वेगवान् वायु के वेग से प्राप्त होने वाला अति शीघ्र गामी- अश्वबल ।

(३) वात अर्थात् प्राणों के निरोध द्वारा प्राप्य ब्रह्मतत्व ।

'दीर्घं सुतं वाताप्याय'

ऋ. १०.१९५.१; साम. १.२२८

(४) वात + आप्य । वायु या प्राण के समान प्राप्त करने योग्य, (५) जल वायु के समान सुख और शान्ति देने वाला ।

'पुनानो वाताप्यं विश्वश्चन्द्रम्'

ऋ. ९.९३.५; नि. ६.२८

(६) वातः एतत् आप्यायति । वाताप्यम् उदकं भवति (इसे वायु आप्यपित करता है, वाताप्य का अर्थ उदक है) ।

'नू नो रयिमुप मास्व नृवन्तम्
पुनानो वाताप्यं विश्वश्चन्द्रम्
प्र वन्दितुरिन्दो तार्यायुः
प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्'

ऋ. ९.९३.५

हे इन्द्र, हे सोम (इन्दो) तू सम्पूर्ण पी लिए जाने पर भी (विश्वः पुनानः) हमारे लिए पुत्र पौत्रों से युक्त धन (नृवन्तं रयिम्) शीघ्र (नु) दे या बना (उपमास्व) तथा चयनीय वृष्टि जल (चन्द्रम् वाताप्य) तेरे द्वारा वर्द्धित हो (प्रतारि) अथवा चयनीय या वर्धनीय जल पा द्रवीभूत हो । तू सम्पूर्णतः पूर्ण हो जल पाकर और बढ़कर स्तोता की आयु बढ़ा (वन्दितुः आयुः प्रतारि) तथा इस प्रकार धन बढ़ा (रयिम् उपमास्व) जिससे प्रज्ञा या कर्म से धनी इन्द्र (धिया वसुः) प्रातः काल ही (प्रातः) शीघ्र (मक्षु) आवे (जगम्यात्) ।

अन्य अर्थ - हे जगदुत्पादक प्रभो, हमें पवित्र करते हुए आप (पुनानः) हमारे लिए प्रशस्त मनुष्यों से युक्त धन (नः नृवन्तं रयिम्) और सब के आह्लादक वृष्टि जल का शीघ्र निर्माण कर (विश्वश्चन्द्रम् वाताप्यम् नु उपमास्व) । तथा

तेजस्विन्, अपने भक्त की आयु को बढ़ा। इस आयु वृद्धि के लिए मनुष्य कर्मधारी और ज्ञानधारी होता हुआ (धियावसः) प्रातःकाल शीघ्र ईश्वर की उपासना करे (प्रातः मक्षु जगम्यात्)।

वातापि- वात अर्थात् प्राण से बलवान् होने वाला।

'वातापे पीव इद्भव'

ऋ. १.१८७.८-१०

वातासः- वायु। मरुतों का वाचक। मरुत् शब्द का बहुवचन में ही प्रयोग हुआ है।

'अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्मवक्षसः
वातासो न स्वयुजः सद्यऊतयः
प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः
सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते'

ऋ. १०.७८.२

अग्नि के समस्त (अग्निःन) दीप्तिमान होने से सुन्दर (भ्राजसा युक्तः) रुचिकर छाती वाले) (रुक्मवक्षसः) मरुतों की स्तुति करता हूँ। वे वायु के समान (वातास इव) स्तोताओं को अपने अनुग्रह से युक्त करने वाले (स्वयुजः), शीघ्र चलने वाले (सद्य ऊतयः), प्रकृष्ट ज्ञान वाले (प्रज्ञातारः) प्रशस्त नीतियों से युक्त (सुनीतयः), मुखियों के समान (ज्येष्ठाः न), यज्ञ के लिए प्रयत्न शील यजमान के लिए (ऋतंयते) सुन्दर सुख वाले बन्धुओं के समान (सुशर्माणः न) सौम्य होवें (सोमाःसन्तु)।

वातीकार- वायु की पीड़ा।

'वातीकारस्य वातजेः'

अ. ९.८.२०

वातीकृत- तीव्र वात से उत्पन्न रोग।

'वातीकृतस्य भेषजीम्'

अ. ६.१०९.३;

वातोपधूत- आग से भभका हुआ अग्नि।

'वातोपधूत इषितो वशां अनु'

ऋ. १०.९१.७; मै.सं. ४.११.४: १७३.१

वाध् - पीड़ा।

वाधूय- वधू-सम्बन्ध, विवाह।

'स इद् वधूयमर्हति'

ऋ. १०.८५.३४; . १४.१.२९

वाधूयं वासः- वधू को देने योग्य वस्त्र।

'वाधूयं वासो वध्वश्च वस्त्रम्'

अ. १४.२.४१; ४२.

वानस्पत्य - (१) वनस्पति से पूर्ण जंगल।

'वानस्पत्येषु येऽधि तस्थुः'

अ. १४.२.९

(२) वनस्पति का बना मूसल, (३) मूसल के समान राजकीय तेज से सम्पन्न राजा।

'वानस्पत्य उद्यतो मा जिहिंसीः'

अ. १२.३.१८

(४) वनस्पति, वृक्ष या लकड़ी का बना पदार्थ।

'वनस्पतीन् वानस्पत्यान्'

अ. ८.८.१४; ११.९.२४

वानस्पत्यग्रावा - (१) काठ का बना कूटने का साधन-मूसल (२) सूर्य के व्रत पालक तेजस्वी उपदेष्टाजन।

'वानस्पत्या ग्रावाणो घोषमक्रत'

अ. ३.१०.५

वाना- द्वि.व.। विभाग करते हुए।

'अग्राद्वाना नमसा रातहव्या'

ऋ. ६.६९.६

वापी- (१) बीजवपन, द्वारा खेतों को बोने वाला कृषक।

'वापीनामभिशस्ति पा उ'

अ. १९.२४.६

वापुषः- (१) वपुष् अर्थात् शरीर देने वाला पिता। इसी शब्द से बिगड़ कर आज बापू, बाबू या बाप शब्द बना है।

'पृक्षः कृणोति वापुषः'

ऋ. ५.७५.४

वाम् - (१) युवाम् (तुम दोनों को)। (२) युवयो (तुम दोनों का)।

'इन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति'

ऋ. १.१५५.२; नि. ११.८

हे इन्द्र और विष्णु, आप दोनों के समागम को (वाम्) सोमपीती यजमान (सुतपा) पूजित या वर्णन करता है (उरुष्यति)।

वामः- वन् + मक् (कर्म में) = वाम (न् का अ) अर्थ है (१) वननीय संभजनीय, (२) सेवनीय, (३) धन।

'वामंवामं त आदुरे
देवो ददात्वर्यमा'

ऋ. ४.३०.२४; नि. ६.३१.
हे आदरणीय यजमान ! तूझे सूर्य इष्टधन देवे ।
(२) चमकने वाला, (३) आरोग्यार्थियों का सेवनीय, (४) प्रशंसा ।
'अस्य वामस्य पलितस्य होतुः
तस्या भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः '
ऋ. १.१६४.१; अ. ९.९.१; नि. ४.२६
इस स्वर्ग में चमकने वाले, आरोग्यार्थियों के सेवनीय तथा पालक उस आह्वनीय आदित्य के मध्यम स्थानी सर्वव्यापक भ्राता के समान वायु है ।
अथवा,
इस प्रशस्त पालक तथा ग्रहोपग्रहों के आहर्ता सूर्य का मेघ मध्यवर्ती अशनि दूसरा भाई है ।
(४) प्रशंसनीय
'वंसीमही वामं श्रोमतेभिः '
ऋ. ६.१०.१०

वामदेव- (१) वामः वननीयो देवः । द्योतको वोधो यस्य सः
(२) सुन्दर देव परमेश्वर का उपासक ।
'अवन्तु न कश्यपो वामदेवः '
अ. १८.३.१५
(३) उत्तम रीति से सेवन करने योग्य पदार्थों का दाता, (४) उत्तम ज्ञानों का प्रकाशक या दानी ।
'भुवोऽविता वामदेवस्य धीनाम् '
ऋ. ४.१६.१८

वामदेव्य- (१) जीव द्वारा अधिष्ठित संसार-स्थावर, 'जंगम' (२) पिता वामदेव्यम् पुत्राः पृष्टानि ।
(३) शान्तिर्वामदेव्यम्
(४) प्रजननं वै वामदेव्यम्
श.ब्रा. ५.१.३.१२.
(५) वायुरु प्राणः
श.ब्रा. ९.१.२.३८
(६) पशवः (७) विराट् रूप गौ के चार स्तन कल्पित हैं- बृहत् , रथन्तर, यज्ञायज्ञिय और वामदेव्य। बृहत् (द्यौ) से अन्न, रथन्तर अर्थात् रस तमा पृथिवी है । 'रसतमं हि वै रथन्तरम् इत्याचक्षते परोक्षम् -श.ब्रा.
'इयं वै पृथिवी रथन्तम् '
तीसरा स्तन 'यज्ञायज्ञिय' पशु और अन्नादि खाने वाले जीव हैं जिससे यज्ञ उत्पन्न हुआ ।
वामदेव्य चौथा स्तन है ।
अन्तरिक्षं वै वामदेव्यम्
उससे जलों की वर्षा हुई ।
'अपो वाम देव्यं यज्ञम् '
अ. ८.१० (२) १०

वामन- (१) अति सुन्दर हृदय ग्राही पुरुष, (२) वामन भगवान् ।
'वैष्णवो वामनः '
वाज.सं. २४.१; मै.सं. ३.१३.२: १६८.१३
(३) बौना -छोटे कद का पुरुष ।
'प्रमुदे वामनम् '
वाज.सं. ३०.१०; तै.ब्रा. ३.४.१.६

वामनीतिः- सुखकारक नीति वाला ।
'भवा सुनीतिरुत वामनीतिः '
ऋ. ६.४७.७

वामः पलितः होता- (१) उत्तम आहुति देने वाला वृद्ध पुरुष (२) सेवनीय पालक प्रेरक सबसे अधिक सनातन । एवं सर्वत्र प्रकाश द्वारा व्यापक सूर्य, (३) समस्त विश्व को वमन कर देने या रखने वाला अपने में उगल देने या रचने वाला (वामः) सर्वपालक, व्यापक, संचालक पुण्य पुरुष (पलित) तथा अपने में समस्त विश्व को ले लेने वाला (होता) परमेश्वर (४) सब पदार्थों का सेवन करने वाला ज्ञानवान् या वृद्ध अन्न आदि का भोजन करने वाला देहधारी जीव ।
'अस्य वामस्य पलितस्य होतुः '
ऋ. १.१६४.१; अ. ९.९.१; ऐ.आ. १.५.३.७; ५.३.२.१४; शां.श्रौ.सू. १८.२२.७; नि. ४.२६.

वामभाक्- उत्तम पुत्रों को प्राप्त करने वाला ।
'अया धिया वामभाजः स्याम '
ऋ. ६.७१.६; वाज.सं. ८.६; तै.सं. १.४.२३.१; २.२.१२.२; मै.सं. ४.१२.२: १८०.१४; श.ब्रा. ४.४.१.६: आप.श्रौ.सू. ६.२३.१.
(२) सुन्दर पदार्थों का उपभोक्ता, (३) सुख पूर्वक भोग करने वाला (४) उत्तम कर्म और ऐश्वर्यादि गुणों को धारण करने वाला ।
'सखायस्ते वामभाजः स्याम '
ऋ. ३.५५.२२

वामी - अति सुन्दरी ।

'वामीरिष आ वहतं सुवीराः '

ऋ. ३.५३.१; साम. १.३३८; का.सं. २३.११.

वाय- (१) वि + अण् = वायु । वि का अर्थ पक्षी है ।

'वेः पुत्रः वायः' (वि अर्थात् पक्षी का पुत्र वाय है) । अर्थ हुआ-पक्षिशावक (२) वञ्चित होना ।

'न ता वाजेषु वायतः '

ऋ. ८.३१.६

वायत - (१) विज्ञानवान् । तेज और रक्षा से युक्त वर्ग ।

'पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात् '

ऋ. ७.३३.२

वायव्य - (१) सभी देवताओं के सोमपात्रों का सामान्य नाम, (२) जिन पात्रों में वायु का संचार हो वह वायव्य है, (३) सोम पान करने के लिए पात्र bowl शब्द की वायव्य से समानता विचारणीय है ।

'वायव्यानि पात्राणि '

अ. ९.६(१).१७

(४) वायु के समान तीव्र प्रचण्ड और बलदान ।

'वायव्यः श्वेतः पुच्छे '

वाज.सं. २४.१; मै.सं. ३.१३.२: १६८.१३

(५) सोम और सौत्रामयी यज्ञों में प्रयुक्त वायव्य नामक पात्र । (६) वायुवत् तीव्र वेगवान् सैनिक ।

'वायव्यैर्वायव्यानि आप्नोति '

वाज.सं. १९.२७

(३) वायव्य आदि पात्र ।

'वायव्यानि च मे '

वाज.सं. १८.२१; मै.सं. २.११.५; १४३.८; का.सं. १८.११.

(८) वायव्य दिशा ।

वायस् - (१) पक्षिशावक, चिड़िया का बच्चा ।

(२) पक्षी ।

'वने न वायो न्यधायि चाकन् '

ऋ. ८.१०.२९.१; अ. २०.७६.१; ऐ.ब्रा. ६.१९.१०; ऐ.आ. १.५.२.५; ५.३.२.२; शां.श्रौ.सू. १८.१.६; नि. ६:२८.

हे पोषक या धारक अश्विद्वय, जैसे वन में (वने न) पक्षी द्वारा वृक्ष पर रखा हुआ बच्चा (वायस् न्यधायि) भय या उत्सुकता से देखता हुआ (चाकन्) ।

अथवा,

जैसे इधर उधर दौड़ता हुआ या भोजन की इच्छा करता हुआ पशुपक्षी (चाकन् वायस्) किसी वन में रखा हुआ रहता है (वने न्यधायि) ।

वायस- (१) अति वेग से गमन करने वाला, (२) ज्ञान और बल में सब से महान्

'दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तम् '

ऋ. १.१६४.२२

(२) काग, (३) एक राजा का नाम ।

'यं वायसो यं मात्स्यः '

'अ. १९.३९.९

वाय्या- (१) तन्तु- सन्तान रूप से उत्तम सन्ततिओं को उत्पन्न करने वाली, (२) शिष्य रूप से संततिवत् उत्पन्न बालक को भी वाय्य कहा जाता है ।

'सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते '

ऋ. ५.७९.१-३; साम. १.४२१; २.१०९०-१०९२

वायु- (१) क्रियाशील-परमेश्वर का विशेषण ।

'शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदम् '

ऋ. १०.१०७.४; अ. १८.४.२९

(२) वा (गत्यर्थक) + उण् = वायु (युक् का आगम) । अथवा वी + उण् = वायु (ई की वृद्धि) अथवा इ (गत्यर्थक) + उण् = वायु (व का आगम) । अर्थ- वायु । वायु सदा गतिशील है (३) मध्यम स्थानी देवता । वायुः वातेः वा इते वा स्यात् गतिकर्मणः । एतेः इति स्थौलाष्ठीविः अनर्थकः वकारः तस्यैषा भवति (वायुवा धातु से या इ धातु से बना है-ऐसा स्थौलाष्ठीवि आचार्य का मत है) ।

(३) इन्द्र ।

'नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् '

ऋ. ६.३७.२; नि. १०.३

नहीं तो कहीं इन्द्र का (वायोः) सोमरस (अमृतम्) घट ना जाय (विदस्यत्) ।

'वायुर्वा त्वा मनुर्वा त्वा
गन्धर्वाः सप्तविंशतिः
ते अग्रेऽश्वमयुञ्जन्
ते अस्मिञ्जवमादधुः '

वाज.सं. ९.७; तै.सं. १.७.७.२; मै.सं. १.११.१: १६२.१; का.सं. १३.१४; श.ब्रा. ५.१.४.८

हे अश्व, वायु भी तुझे और मन भी तुझे और ये सत्ताईस गन्धर्व भी तुझे इस रथ में जोतते हैं। वे ही जोतने की कला में विज्ञ हैं। उन्होने ही पूर्वकाल में अश्व जोता और उन्होने ही इसमें गति प्रदान की। अतः हे अग्नि, इस अश्व को वे ही जोतें और रस में गति प्रदान करें। -दुर्ग

वायुकेशाः गन्धर्वाः- (१) वायु में खुले अनावृत केसों वाला वेदवाणी का धारक विद्वान् (२) भूमिधारक शासक या (३) वायुकेश गन्धर्व जिसे मन द्वारा जाता है।

'व्रते गन्धर्वां अपि वायुकेशान्'

ऋ. ३.३८.६

(४) आत्मा में प्राण गण वायु केश हैं। वे व्याप्त आत्मा के केशों के समान हैं। वे प्राण वाणीधारक एवं शरीर धातु होने से गन्धर्व हैं।

(५) वायु में व्यापक केश अर्थात् किरणों वाले सूर्यादि भूमि के धारक होने से गन्धर्व हैं।

(६) जिसका वायु के समान प्रकाश हो-दया.

वायुतेजाः- (१) वायु के समान पराक्रमी।

'अन्तरिक्षसंशितो वायुतेजाः'

अ. १०.५.२६

वाः (वार) - (१) जल जिसे विद्युत ने वरण किया, जिसमें विद्युत ने आश्रय लिया।

द्रोण्यश्वासः ईरते घृतं वाः

ऋ. १०.९९.४

(२) प्रजा जिसे उच्छृंखल देख राजा व्यवस्था द्वारा रोक देता है।

'तस्माद् वार्नाम वो हितम्'

अ. ३.१३.३

'वार्ण त्वा यव्याभिः'

ऋ. ८.९८.८; अ. २०.१००.२; साम. २.६१

(३) रोग निवारण उत्तम जल।

'वार्भ्यः स्वाहा'

वाज सं. २२.२५

वार- वृ + घञ् = वार। अर्थ (१) बाल।

'अश्वं न त्वा वारवन्तम्'

बालयुक्त अश्व के समान तुझ अग्नि को.....

(२) आवरण करने वाला किरण या ज्वाला।

(३) घेरने वाला शत्रु,

(४) आवरण कारी दोष,

(५) घेरने वाला प्रिय शिष्य'

'अत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान्'

ऋ. २.४.४.

(६) आवरण करने वाला प्राकृत जगत्।

'य इन्दुर्वारमाविशत्'

ऋ. ९.३८.५; साम. २.६२७

वारण- (१) हाथी। ण्यन्त वृ + ल्युट् = वारण,' वारयिता

दान मृगो न वारणः

ऋ. ८.३३.८; अ. २०.५३.२; ५७.१२; साम. २.१०४७; कौ.ब्रा. २४.८; शां.श्रौ.सू. ११.१२.४

(२) शत्रुओं को धारण करने वाला।

'वृकश्चिदस्य वारण उरामथिः'

ऋ. ८.६६.८; अ. २०.९७.२; साम. २.१०४२; नि. ५.२१

इस इन्द्र का कुत्ता भी शत्रुओं का वारण करने वाला है और भेड़ों का शिकारी होकर भी (उरामथिः)....-सा.

इस राजा का कुत्ता शत्रुओं का निवारण करने वाला (वारणः) और भेड़ो का हांकने वाला हो-ज.दे.श.।

वारणी- (१) हथिनी, (२) सेना, (३) अपराध रोकने वाला दण्ड।

'उदेणीव वारण्यभिस्कन्दं मृगीव'

अ. ५.१४.११

वारणीकृत्या- (१) अपराधों को रोकने वाली पीड़ा, (२) किसी अनिष्ट को रोकने वाली कृत्या।

वारवत् - (१) बाल से युक्त, (२) अश्व का विशेषण।

'अश्वं न त्वा वारवन्तम्
वन्दध्या अग्निं नमोभिः'

ऋ. १.२७.१; साम १.१७; २.९८४

हे अग्नि, हम तुझे स्तुतियों से (नमोभिः) प्रार्थना करते हैं जैसे बाल वाले अश्व को (वारवन्तम् अश्वं न)। वालाः दंश निवारणार्थीः भवति (केशों से दंश निवारित किए जाते हैं)।

(३) अश्व, (४) अग्नि,

(५) शत्रुओं को धारण करने वाले सेनादि साधनों से युक्त -राजा।

वार्य- अभिलषणीय ऐश्वर्य ।
'विश्वं पुष्यन्ति वार्यम्'
ऋ. १.८१.९; ५.६.६; अ. २०.५६.६

वार्कार्या- (१) जल प्राप्त करने की क्रिया (२) दुःखों को वारण करने वाली वेद विद्या ।
'इमां धियं वार्कार्यां च देवीम्'
ऋ. १.८८.४

वार्षागिराः- (१) वृषस्य उत्तमस्य गीर्भिः निष्पन्नाः पुरुषाः (उत्तम विद्वान् की वाणियों से प्रशंसित पुरुष) -दया. ।
(२) उत्तम विद्वानों की वाणियों के वक्ता विद्वान् -ज.दे.श.
वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः'
ऋ. १.१००.१७
उत्तम विद्वानों की वाणियों से बना विद्वान् (वार्षागिराः) शत्रु को वश करने के उपायों का (राधः) उपदेश करें (अभिगृणन्ति) ।

वारितिः- (१) जलों का स्थान -मेघ (२) शत्रुओं को वारण करने वाली सेना ।
'देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्धयत्'
वाज.सं. २८.२१; तै.ब्रा. २.६.१०.५.

वारः मन्त्रः- (१) वरणीय श्रेष्ठ मन्त्र (२) विचार (३) राष्ट्रचालक मन्त्री गण ।
'मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन्'
ऋ. ७.७.६.

वार्त्रघ्न- विघ्न एवं शत्रुओं का नाशक बल ।
'इन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि'
वाज.सं. १०.८; श.ब्रा. ५.३.५.२७

वार्त्रहत्य- (१) नगरों को घेरने वाले शत्रुओं को हनन करने वाला बल ।
'वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च'
ऋ. ३.३७.१; अ. २०.१९.१; वाज.सं. १८.६८; तै.ब्रा. २.५.६.१
(३) बढ़ते हुए और सत्कर्म से रोकने वाले, विघ्नकारी या नगरों को घेरने वाले, (४) शत्रुओं या दुष्ट पुरुषों का हनन करने वाला ।

वारिती- संकटों और शत्रु के आक्रमणों का निवारण करने वाली सेना ।
'देवं बर्हिर्वारितीनाम्'
वाज.सं. २१.५७; २८.२१; ४४; मै.सं. ३.११.५: १४८.१; ४.१३.८: २१०.१८; २११.२; का.सं. १९.१३;

वार्षिक - वर्षाकाल में होने वाला ज्वर ।
'ग्रैष्मं नाशय वार्षिककम्'
अ. ५.२२.१३

वार्षिकी- वर्षा का जल ।
'शिवा नः सन्तु वार्षिकीः'
अ. १.६.४

वार्षिकौ मासौ- वर्षाऋतु के दो मास
'वार्षिकौ मासौ गोप्तारौ'
अ. १५.४.८

वार्ध्रीनसः- (१) नाक में नकेल लगाने वाला-ऊंट, (२) अपने इन्द्रियों का निग्रह करने वाला ।
'उष्ट्रो घृणीवान् वार्ध्रीनसस्ते मत्यै'
वाज.सं. २४.३९; मै.सं. ३.१४.२०: १७७.१

वार्षीजगती- वर्षा से उत्पन्न जगती ।
'जगती वार्षी'
वाज.सं. १३.५६; तै.सं. ४.३.२.२; मै.सं. २.७.१९: १०४.७; का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.२.

वारुण- वरुण नामक पद का पुरुष ।
'बभ्रुररुणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः'
वाज.सं. २४.२; तै.सं. ५.६.११.१; मै.सं. ३.१३.३: १६९.१; का. सं. (अश्व.) ९.१.

वाल- (१) वार, (२) समस्त रोगों का वारण करने वाला ।
'चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालः'
वाज.सं. १९.८८; मै.सं. ३.११.९: १५४.३; का.सं. ३८.३; तै.ब्रा. २.६.४.४
(३) न. । वृ (वरण करना, स्वीकार करना) + वनिप् = वाल । वृण्वन्ति देवाः तत्र हवींषि (देवता उस दिन हवि ग्रहण करते हैं अतः पर्व का नाम वाल पड़ा) । वालं पर्व वृणोतेः वाल का अर्थ पर्व है, यह वृ धातु से बना है । (४) हैम ने वाल शब्द का अर्थ-
'पर्वप्रस्तारोत्सवयोः
ग्रन्थौ विषुवदादिषु
दर्श प्रतिपत्सन्धौ च
तिथि ग्रन्थ विशेषयोः'
किया है ।

वालाः- अर्थ -केश । वाला देश निवारणार्थ भवन्ति । (दंश निवारण के लिए वाल हैं) ।

वाली - उत्सव मनाने वाली

वावशती - हम्भारव करने वाली ।
'कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत्'
अ. २०.८८.५

वावशान- वश् (कान्त्यर्थक) + शानच् = वावशान, अथवा, वाश् + शानच् = वावशान । उपधा का ह्रस्व व्यत्यय से । अर्थ है-(१) भृशं कामयमानः ।
(बार बार या बहुत कामना करता हुआ) (२) कान्तिमान, (३) शब्दापसान (४) वेदोपदेष्टा विद्वान् -दया. ।
'सप्त स्वसृररुषीर्वावशानः
विद्वान् मध्व उज्जभारा दृशे कम्
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा
इच्छन् वव्रिमविदत् पूषणस्य'
ऋ. १०.५.५
अपने अधिकारों या सब करता अत्यन्त कामना शीघ्र या शब्दायमान (वावशानः) आरोचमान या सुशोभित (अरुषीः) सप्तसंख्यक वहनों या अरणशील ज्वालाओं को (सप्तस्वसृः) मरकर यज्ञ से (मध्वः) ऊपर की ओर ले गए (उज्जभार) अर्थात् अग्नि यज्ञ में अपनी ज्वालाओं से प्रज्वलित हो गए जिससे सभी पद पदार्थों का सुख पूर्वक दर्शन हो सके (कं दृशे) तथा सभी देवताओं से सर्व प्रथम उत्पन्न उस अग्नि ने (पुराजाः) अपनी ज्वालाओं को अन्तरिक्ष में नियमित किया (अन्तरिक्षे अन्तःयेमे) अर्थात् अग्नि सर्वत्र प्रदीप्त हो गया और यजमानों की कामना करता हुआ (इच्छन्) अग्नि ने पार्थिव लोक के रूप को स्पष्ट किया या प्रदान किया (अविदत्) ।
यहाँ आदित्यात्मा अग्नि अभिप्रेत है । सूर्य ही सात किरणों को प्रदीप्त करता है और प्रातः काल उदय होते समय मानों समुद्र से निकलता है (मध्वः उज्जभार) और अन्तरिक्ष में विद्युत रूप में स्थित हो पृथ्वी पर वृष्टि रूप में प्रकट होता है ।
अन्य अर्थ-कान्तिमान या वेदोपदेष्टा (वावशानः) तथा सृष्टि विद्या के ज्ञाता अग्रणी परमेश्वर ने (मध्वः विद्वान्) अप्रकाशमान सात बहनों को (अरुषीः सप्तस्वसृः) अर्थात् स्वयं प्रकाशमान न होने वाले सोम आदि सात ग्रहों को सूर्य के लिए (दृशे) उत्तम रीति से धारण किया है (उज्जभार) । सनातन परमात्मा ने (पुराजाः) इच्छा करते हुए उन सप्तग्रहों को सौरमण्डल के अन्तरिक्ष में यन्त्रित किया (अन्तः अन्तरिक्षे येमे) और उन्हें पोषक सूर्य का प्रकाश प्रदान किया (पूषणस्य वव्रिम् अविदत्) ।

वावशाना- वृश् (इच्छा करना) । (१) बार बार इच्छा करती हुई-दया. । वश् (यङ् लुगन्त में) + शानच् = वावशान । अतवा 'वाश् + शानच् = वावशान' । वावशान + टाप् = वावशाना । (२) कान्तिमाना, (३) शब्दायमाना, (४) वेदोपदेश करने वाली विदुषी, (५) प्यार करती हुई ।
'सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना
निमाति मायुं पयते पयोभिः'
ऋ. १.१६४.२८; अ. ९.१०.६; नि. ११.४२
माध्यमिका वाक् नीचे जाते हुए सूर्य को देख बार बार उसकी कामना करती हुई शब्द करती तथा जल से पूर्ण रहती और लोगों को भी पूर्ण करती है-यास्क ।
चलने वाले रस हरण शील भूलोक रूपी वत्स को प्यार करती हुई शब्द करती है तथा जल रुपी दुग्ध से पृथ्वी को परिपुष्ट करती है । -दया. ।

वावशाना आपः- (१) कामना करने वाले लिंग शरीर, प्राण, वायु जल, (२) सुन्दर जल धाराएं, (३) सकाम प्रजाजन ।
'अहमपो अनयं वावशानाः'
ऋ. ४.२६.२

वावसानः- वस् + अनश - वावसान । आच्छादक मेघ ।
'आजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन्'
ऋ. १.५१.३
संग्राम में (आजौ) आच्छादन करने वाले मेघ के (वावसानस्य) अच्छिन्न मेघ को (अद्रिम्) जिस प्रकार वायु नचाता है (नर्तयन्) ।

वावसाना - द्वि. व. । (१) रात दिन का विशेषण या अश्विद्वय का विशेषण । रहने वाले ।
'वावसाना विवस्वति
सोमस्य पीत्या गिरा
मनुष्वच्छं आ गतम्'

ऋ. १.४६.१३

सूर्य के आधार पर (विवस्वति) रहने वाले (वावसाना) दिन और रात्रि, जल और वायु के उपयोग द्वारा शान्तिदायक तथा शुभप्रद होते हैं। उसी प्रकार विविध शिष्यों के स्वामी या आचार्य के अधीन नित्य नियम से रहने वाले स्त्रीपुरुष कन्या और कुमार दोनों वीर्य के पालन और वेद वाणी के अभ्यास द्वारा (सोमस्य पीत्या गिरा) मननशील ज्ञानी होकर (मनुष्वता) जनता के लिए कल्याण कारी होकर (शंभू) अपने घरों को आवें (आगतम्) ।

वावहिः- (१) सब को अपने में आश्रित रूप में धारण करने वाला आत्मा , परमेश्वर या राजा।

'सप्त पश्यति वावहिः '

ऋ. ९.९.६

वावाता- (१) उत्तम पुण्य सुगन्ध युक्त स्त्री, (२) पति का प्रेम पात्र स्त्री ।

'वावाता च महिषी '

अ. २०.१२८.११; शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.६

(२) नाश करती हुई वाणी या सेना ।

'सं ते वावाता जरतामियं गीः '

ऋ. ४.४.८; तै.सं. १.२.१४.३; मै.सं. ४.११.५: १७३.८; का.सं. ६.११

(३) हिंसक प्रबल शत्रु (४) निरन्तर सांसारिक योगों का सेवन करने वाला जीव ।

'वावातुर्यः पुरन्दरः '

ऋ. ८.१.८

(५) द्वि.व. । (वि.) । वेग से जाने वाले ।

'उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी '

ऋ. ८.४.१४.

वावृजे- (१) बिछाया जाता है-सा. (२) प्रदान किया जाता है-ज.दे.श.

'प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषाम् '

ऋ. ७.३९.२; वाज.सं. ३३.४४; नि. ५.२८

सुन्दर बैठने या आने योग (सुप्रयाः) कुशासन (बर्हिः) बिछाया जाता है (प्रवावृजे) -सा. । शुभागमनयुक्त (सुप्रयाः) वृद्धि (बर्हिः) इन प्रजाओं के लिए (एषाम्) प्रदान की जाती है (प्र वावृजे)-ज.दे.श.

वावृधानः- वृध (यङ् लुङन्त में) + शानच् = वावृधानः । अर्थ (१) बढ़ता हुआ, हृष्ट पुष्ट होता हुआ ।

'ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानः '

ऋ. ३.३४.१; अ. २०.११.१

ब्राह्मणों से संगति करने वाला (ब्रह्मजूतः) तथा शरीर से पुष्टांग (२) मेघ या वृत्र का विशेषण ।

'असूर्ये तमसि वावृधानम् '

ऋ. ५.३२.६

रात के अन्धकार में वृद्धिशील वृत्र या मेघ को पुनः-

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः
स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम्
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास
इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु '

ऋ. १०.८१.६; वाज.सं. १७.२२; साम. २.९३९; तै.सं. ४.६.२.६; मै.सं. २.१०.२: १३३.१७; का.सं. १८.२; २१.१३; नि. १०.२७.

हे विश्वकर्मा ! इस हवि से बढ़ता हुआ (हविषा वावृधानः) अर्थात् विश्व कर्मत्व प्राप्त करता हुआ तू स्वयं पृथ्वी और द्युलोक में व्याप्त हो (यजस्व) और तेरी उपासना से विमुख तेरे सपत्न या समान पतित्व की कामना करने वाले पुरुष तेरी इस महिमा को न समझ सकने के कारण मुग्ध होवें और हमारे सर्वाधार स्वामी मघवा सर्वत्र अप्रतिहत ज्ञान और मेधावी हो ।

वावृध्वान् - सदा वृद्धिशील ।

'वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे '

ऋ. ८.९८.८; अ. २०.१००.२; साम. २.६१

वावृधे- (१) वर्धेथा (तुम बढ़ो) -दुर्ग (२) यास्क ने प्र.पु.ए.व. का ही रूप माना है । सायण का भी यही मत है ।

यह लोट् में यङ् लुङन्त का रूप है ।

वावृधेन्य- नित्य बढ़ने वाला ।

'अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् '

ऋ. ८.२४.१८; अ. २०.६४.६; साम. २.१०३६.

वाश्- धातु । (१) ज्ञानोपदेश ग्रहण करना, मन्त्र पाठ करने वाला ।

'सं विद्युता दधति वाशति त्रितः '

ऋ. ५.५४.२.

वाशः - सं. । (२) कान्ति से युक्त अग्नि (२) कान्तिमान ।

'तव द्रप्सो नीलवान् वाश ऋत्वियः

ऋ. ८.१९.३१; साम. २.११३१
(३) जनों को अपने वश में करने वाले ।
'वाशा स्थ राष्ट्रदाः'
वाज.सं. १०.४; श.ब्रा. ५.३.४.१६

वाश्यमाना- (१) शुद्ध करती हुई ।
'वाश्यमानाभि स्फूर्जति'
अ. १२.५.२०

वाश्र - (१) माता को पुकारने वाला बछड़ा ।
'उत त्वाग्ने ममस्तुतो
वाश्राय प्रतिहर्यते'

वाश्राआपः- छम छम करती हुई जल धाराएं ।
'वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु'
अ. ४.१५.१.

वाश्रासः- ब.व.। वाश्र के प्रथमा बहुवचन में । अर्थ -मेघ
उदीरयन्त वायुभिः ।
'वाश्रासः पृश्निमातरः'
ऋ. ८.७.३

वाशी- (१) वाक् । नि. १.११ (२) समीचीन -सा.
(३) सब जगत् को वश करने वाली, (४) जगत् की सृष्टि करूँ - ऐसी कामना करने वाली,
(५) जगत्स्रष्टा विधाता की शक्ति ।
'प्राची वाशी वा सुन्वते मिमीत इत्'
ऋ. ८.१२.१२.
(७) शस्त्र प्रयोग ।
'ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः'
ऋ. ५.५३.४
(८) वाशीति वाङ् नाम, वाश्यत इति सत्याः (वाशी का अर्थ है- वाक्) । वाक् (शब्द करना) + इञ् (कर्म में) + ङीष् = वाशी।।
अंग्रेजी का voice शब्द यहां विचारणीय है ।
(९) सुन्दर स्तुति-सा.
(१०) वाणी-दया.
(११) बंसुला । वाश् (शब्द करना) + इञ् = वाशि, वाशि + ङीष् = वाशी ।
बंसुला के अर्थ में प्रयोग-
'वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः'
ऋ. १०.१०१.१०; नि. ४.१९
इस सोम को अयः शिलासार भूत बंसुला से काट या व्यापन समर्थ स्तुति में संस्कृत कर ।
(१२) छुरी, चाकू,

वाशीमन्तः- (१) सुन्दर स्तुतियों से युक्त मरुत -सा. (२) वाग्मी पुरुष ।
'ते वाषीमन्त इष्मिणो अभीरवः'
ऋ. १.८७.६; तै.सं. २.१.११.२; ४.२.११.२; मै.सं. ४.११.२: १६८.१; का.सं. ८.१७
वे मरुत् सुन्दर स्तुतियों से युक्त (वाशीमन्तः) हवि या स्तुति के निकट जाने वाले या इच्छा वाले या प्रत्यक्ष रूप से सभी पदार्थों को देखने वाले तथा भय रहित हैं-सा. ।
वे पुरुष वाग्मी (वाशीमन्तः) क्रियाशील, आप्तकाम या तत्व दर्शी (इष्मिणः) एवं निर्भय है -दया. ।

वासतेव- (१) ग्रह में बसने योग्य, उत्तम अतिथि ।
'यज्ञर्तो दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद'
अ. ८.१०.७

वासन्तिक - (१) वसन्तकालीन ।
'वासन्तिकमिव तेजनम्'
अ. २०.१३६.३
(२) प्राणायन अर्थात् वसन्त से उत्पन्न वासन्ती गायत्री ।
(३) सब को बसाने वाले तत्व से उत्पन्न प्राणों की रक्षा करने वाली गायत्री शक्ति ।
'गायत्री वासन्ती'
वाज.सं. १३.५४; तै.सं. ४.३.२.१; मै.सं. २.७.१९: १०३.१५; का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.१.५

वासन्तौ मासौ- वसन्त ऋतु के दो मास ।
'वासन्तौ मासौ गोप्तारौ'
अ. १५.४.२

वासर- (१) द्वि + सृ (चलना) + अच = द्विसर = वेसर (द्वि वा वे) वासर । जो शीत और उष्ण से रात्रि और दिन सदा चलते रहते हैं वे वासर हैं, (२) वि + वासि (वस धातु का ण्यन्त) + अरच् = वाचर । वासर शीत को विनष्ट करते हैं । वसन्त ऋतु में शीत विनष्ट हो जाता है अतः वसन्त ऋतु के दिन वासर कहे जाते हैं । अथवा गमनानि विसृतानि विस्तृतानि सन्ति इति हेतोः वासराणि उच्यन्ते । वसन्त ऋतुओं के दिन विस्तीर्ण होते हैं, अतः वे वासर हैं । 'विस्तीर्ण' से ही पृषोदरादिवत् वासर हो गया है ।
अर्थ है- दिन ।

सोम राजन् प्र ण आयूंषि तारीः
अहानीव सूर्यो वासराणि
ऋ. ८.४८.७; नि. ४.७.
हे सोम, हे स्वामिन्, हमारी आयुओं को उसी प्रकार बढ़ा जैसे सूर्य दिनों को बढ़ाते हैं।
(२) जगत् का आच्छादन करने वाला।

वासरी- (१) दिन भर चर कर पुनः घर पर आई गाय, (२) सब को आच्छादन करने वाली सब को अपने भीतर बसाने वाली पृथ्वी, (३) रस युक्त हरी त्वचा से आच्छादित सोमलता, (४) व्यापक प्रकाश वाले सूर्य की दीप्ति।
'तां वां धेनुं न वासरीम्
अंशुं दुहन्त्यद्रिभिः'

वासव- इन्द्र। 'वसुभिः उपास्यमानः'। (वसुओं से उपास्यमान') - सा.
(२) धन ऐश्वर्य का स्वामी।
'वासवस्य शतक्रतोः'
अ. ६.८२.१

वासः- (१) वस्त्र, (२) शरीर रूप जीव का चोला।
'एतत् त्वा वासः प्रथमं न्वागन्'
अ. १८.२.५७; कौ.सू. ८०.१७
(३) दिन
(४) आच्छादन करने वाला बल।
'दधामि मम वाससा'
अ. ७.३७.१
वेस् (गत्यर्थक) + असुन् = वेसस् = वासस्। अन्धकार
'आद् रात्री वासस्तनुते सिमस्मै'
ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७; मै.सं. ४.१०.२: १४७.२; तै.ब्रा. २.८.७.२; नि. ४.११
तुरत ही (आत्) रात्रि (रात्री) सभी के लिए (सिमस्मै) अन्धकार (वासः) फैलादेतीं है। (तनुते)। वस्त्र के अर्थ में।
'देविं दक्षिणो बृहास्पतये वासः'
अध्यात्म तत्व वेत्ता या पुरोहित को वस्त्र दक्षिणा के साथ दो। (६) वासर दिन

वासः वल्पूली- वास उपसेवायाम् चुरादिः। पल्पूल प्रक्षालनच्छेदनयो पल्पूल लवन पवनयाः।
(१) कपड़ा शुद्ध करने वाली धोबिन, (२) उपसेवनीय अंगों और पदार्थों को भी स्वच्छ रखने वाली स्त्री।
'मेधाय वासः पल्पूलीम्'
वाज.सं. ३०.१२; तै.ब्रा. ३.४.१.७.

वास्तव्य - (१) वास्तुविद्या, (२) गृह निर्माण का ज्ञाता।
'नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च'
वाज.सं. १६.३९; तै.सं. ४.५.७.२; मै.सं. २.९.७: १२६.१; का.सं. १७.१५

वासिता- रजोगन्ध से युक्त गौ।
'अभिक्रन्दन्नृषभो वासितामिव'
अ. ५.२०.२

वासी - बंसुला जिससे लकड़ी छिली जाती है।
'तक्षा हस्तेन वास्या'
अ. १०.६.३.

वास्तु- (नः) वस् + तुन् = वास्तु (वसेस्तुन् णिच्च)। वास्तुः वसतेः निवास कर्मणः। निवासार्थक वस् धातु से 'वास्तु' बना है। अर्थ-(१) जहां वास किया जाता है- गृह (२) अन्तरिक्ष।
अमीवहा वास्तोष्पते
विश्वा रूपाण्याविशन्
सखा सुशेव एधि नः'
ऋ. ७.५५.१; मै.सं. १.५.१३: ८२.१२; कौ.सू. ४३.१३; पा.गृ.सू. ३.४.७; आप.मं.पा. २.१५.२१; नि. १०.१७
'ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै'
ऋ. १.१५४.६; का.सं. ३.३; नि. २.७
हे दम्पति युगल, तुम दोनों के लिए हम प्रसिद्ध सुखदायक निवासस्थान में विचारने की कामना करते हैं।
आधुनिक अर्थ- गृह बनाने का स्थान। गृह।
'अग्ने वास्तून्यनुनिर्दह त्वम्'
अ. ९.२.९
'मैषामग्ने वास्तुभून्मो अपत्यम्'
अ. ७.१०.८.१

वास्तुप- गृहों, महलों एवं राजप्रसादों की रक्षा का विज्ञान जानने वाला।
'नमो वास्तव्याय च
वास्तुपाय च'
वाज.सं. १६.३९

वास्तेयी - वस्ति अर्थात् मूत्राशय में जमा होने

वाला मूत्रजल ।
'आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च'
अ. ११.८.२८

वासोदः- वस्त्र या गृहादि का आश्रय देने वाला ।
'वासोदाः सोम प्र तिरन्त आयुः'
ऋ. १०.१०७.२

वासोवायः- (१) वस्त्र बुनने वाला (२) समस्त प्राणियों के रहने योग्य जगत् पट को बनाने वाला ।
'वासोवायोऽवीनाम्'
ऋ. १०.२६.६

वास्तोष्पतिः- (१) वास्तोः पविः (गृह का स्वामी), (२) अन्तरिक्ष का स्वामी, (३) गृह की रक्षा करने वाला स्वास्थ्य प्रद वायु ।
(४) अन्तरिक्ष का पालक वायु जिस जिस पदार्थ में प्रवेश करता है उसी का रूप धारण करता है । वह वायु ब्रह्म मूहूर्त में बहता है ।
(१) गृह, निवास स्थान आदि का पालक पुरुष, (६) इन्द्र का एक नाम, (७) वास्तु अर्थात् शरीर रूप गृह का स्वामी आत्मा इन्द्र ।
'वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः'
ऋ. ५.४१.८
'वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्'
ऋ. ७.५४.१; तै.सं. ३.४.१०.१; मै.सं. १.५.१३: ८२.१३; आश्व.गृ.सू. २.९.९; शां.गृ.सू. २.१४.५; कौ.सू. ४३.१३; साम.मं.ब्रा. २.६.१; पा.गृ.सू. ३.४.७; आप.मं.पा. २.१५.१८

वाह् - (१) कार्यों को प्रथम ऊपर लेने वाला, (२) हल चलाने वाला बैल
इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन्
ऋ. ३.३०.२०; तै.ब्रा. २.५.४.१.

वाह- वह् + घञ् = वाह । अर्थ (१) प्रवाह (२) अश्व, सवारी ।
'यथायं वाहो अश्विना'
अ. ६.१०२.१.
कद् वाहो अर्वागुण मा मनीषा'
ऋ. १०.२९.३; अ. २०.७६.३

वाहः- 'वाह' का.ब.व.रूप । (१) हल चलाने वाले बैल, (२) इन्द्रियगण (३) अश्व
'शुनं वाहाः शुनं नरः'
ऋ. ४.५७.४; अ. ३.१७.६; तै.आ. ६.६.२

वाहस- (१) प्राप्त कराने वाला ।
'विप्रा ऋतस्य वाहसा'
ऋ. ८.६.२; अ. २०.१३८.२ साम. २.६५९
(२) वाहनों को साथ रखने वाला (३) एक पक्षी
'अतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे'
वाज.सं. २४.३४; मै.सं. ३.१४.१५: १७५.९

वाहस्- (१) पहुचा देने वाला अग्नि, (२) उत्तम उद्देश्यों तक पहुंचा देने वाला नायक
'अभि प्रयांसि वाहसा'
ऋ. ३.११.७; साम. २.९०७; आश्व.श्रौ.सू. ७.८.१.

वाहिष्ठ- (१) सबसे अधिक सुख प्राप्त करने वाला, (२) अत्यन्त भार या उत्तरदायित्वा वाला पद ।
'यद्वाहिष्ठं तदग्नये'
वाज.सं. २६.१२
(३) वोढृतमः - अतिशय वहन करने वाला, (४) आह्वाताओं में उत्तम ।
'वाहिष्ठो वां हवानाम्
स्तोमो दूतो हुवन्नरा'
ऋ. ८.२६.१६; आश्व.श्रौ.सू. ४.१५.२; नि. ५.१.
हे अश्विद्वय, जो आह्वाताओं में उत्तम स्तोम है वही तुम दोनों को (वाम्) बुलाता हुआ (हुवत्) तुम्हें प्रियकर हो ।
अथवा,
हे पुरुषार्थी स्त्री पुरुषो, (नरा) प्रार्थनीय ज्ञान तथा धर्मादिकों का उत्तम प्रापक और अनर्थनिवारक वेद तुम्हें प्रदान किया है ।
(हवानां वाहिष्ठःदूत वाम् स्तोमः हुवत्) । वह सदा तुम्हारे लिए विद्यमान् रहे (युवाभ्यां भूतु) ।

व्याकल्प- विविध प्रकार से समर्थ बनाना ।
'तौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि'
अ. १२.२.३२.

व्याकृ- विविध प्रकार से पुष्ट करना ।
'व्याकरोमि हविषाहमेतौ'
अ. १२.२.३२.

व्याख्यात् - वि + आख्यात् । विख्यापयति, विदर्शयति (दिखलाता या प्रकाशित करता है) ।
'विवाकमाख्यत् सविता वरेण्यः'
वह सविता वरणीय है तथा द्युलोक को दिखलाता तथा प्रकाशित करता है ।

व्याघ्र- वाघ । वि + आङ् + घ्रा + कन् = व्याघ्र ।

व्याघ्रो व्याघ्राणात् व्यादाय हन्ति इति वा अर्थात् व्याघ्र शब्द व्याघ्राण (सूघंना) से बना है या बाघ मुख को फाड़ कर हनन करता है ।

व्याघ्रजम्भन- व्याघ्र को वश में लाना ।
'आथर्वणमसि व्याघ्रजम्भनम्'
अ. ४.३.७

व्याघ्रप्रतीक- व्याघ्रवत् बलवान् ।
'व्याघ्रप्रतीकोऽव बाधस्व शत्रून्'
अ. ४.२३.७

व्याघ्रलोम- व्याघ्र का लोभ ।
'मुखे श्मश्रूणि न्वं व्याघ्रलोम'
वाज.सं. १९.९२; मै.सं. ३.११.९: १५४.१०; का.सं. ३८.३; तै.ब्रा. २.६.४.५.

व्याघ्राह- (१) वह दिन जिस दिन वीर युद्ध में व्याघ्र के समान पराक्रम दिखलाते हैं, (२) व्याघ्रवत् क्रूर दिन -सा.
'व्याघ्रोऽहन्यजनिष्ट वीराः'
अ. ६.११०.३

व्याघ्रौ- चीरने फाड़ने वाले दो दाँत ।
'यौ व्याघ्राववरूढौ
जिघत्सतः पितरं मातरं च'
अ. ६.१४०.१

व्यात्त- वि + आत्त । खुला हुआ ।
'व्यात्तं न सं यमत्'
अ. ६.५६.१; अ. १०.४.८
'अश्विनौ व्यात्तम्'
वाज.सं. ३१.२२; तै.आ. ३.११.२

व्याधी- शिकारी पुरुष ।(व्याधिन्) ।
'नमो बभ्लुशाय व्याधिने'
वाज.सं. १६.१८; तै.सं. ४.५.२.१; मै.सं. २.९.३: १२२.११; का. सं. १७.१२.

व्यान - व्यान नामक वायु ।
'व्यानो यज्ञेन कल्पताम्'
वाज.सं. २२.३३; तै.सं. १.७.९.२; ४.७.१०.२.

व्यानदा- (१) व्यानवायु को देने वाला, (२) व्यापक बल रखने वाला ।
'प्राणदा अपानदा व्यानदाः'
वाज.सं. १७.१५; तै.सं. ४.६.१.४; मै.सं. २.१०१: १३२.१३; श.ब्रा. ९.२.१.१७

व्यानशिः- विविध प्रकार से व्यापने वाला ।
'व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः'
ऋ. ९.८६.५; साम. २.२३८

व्यानशी- वि + आनशी (१) विशेष रूप से व्यापक, (२) सबके हृदय में बसा हुआ, (३) सर्व प्रिय ।
'व्यानशी रोदसी मेहनावान्'
ऋ. ३.४९.३

व्याप्ति- नाना मनोरथों के अनुरूप फल प्राप्त करना ।
'राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिः'
अ. ११.७.२२

व्याम- (१) फैला हुआ हाथ ।
'व्यामेनानुमेयाः'
अ. ६.१३७.२
(२) विशेष रूप से
'यैः समामे बध्यते यैर्व्यामे'
अ. १८.४.७०

व्याम्य- सब के प्रति विशेष रूप से रहने वाले ।
'यः समाम्यो वरुणो यो व्याम्यः'
अ. ४.१६.८

व्यायन- (१) नीचे का स्थान, (२) तामस लोक । (नितरां नीचीनं गमनम्)

व्यार- वि + ऋ के लिट् प्र.पु. एक वचन का रूप ।
अर्थ- (१) इधर उधर विश्लिष्ट हो गया, छिन्न भिन्न हो गया । मेघ के सम्बन्ध में प्रयुक्त ।
'अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः
पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार'
ऋ. ३.३०.१०; नि. ६.२

व्याल - (१) सर्पवत् विष रूप से शरीर में फैल जाने वाला ज्वर ।
'तक्मन व्याल वि गद्'
अ. ५.२२.६
(२) सर्प ।

व्यावः- व्यावृणोत् विवृतान् अकरोत् (विवृत किया फैलाया)।
ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्तात्
वि सीमतः सुरुचो वेन आवः
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः
सतश्च योनिमसतश्च वि वः'
अ. ४.१.१; ५.६.१; साम. १.३२१; वाज.सं. १३.३; तै.सं. ४.२.८.२; मै.सं. २.७.१५: ९६.११; का.सं. १६.१५; कौ.ब्रा. ८.४; श.ब्रा. ७.४.१.१४;

१४.१.३.३; तै.ब्रा. २.८.८.८; तै.आ. १०.१.१०; आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३; शां.श्रौ.सू. ५.९.५.

आदित्य नामक ब्रह्म पूर्व दिशा में उदय लेता हुआ (ब्रह्म प्रथमं पुरस्तात जजानम्) कमनीय और मेधावी है (वेनः)। वह आदित्य अत्यन्त रुचने वाली किरणों को सभी दिशाओं में फैलाता है (ससुरुचः सीमतः विश्रायः)। इस जगत् के (अस्य) अवकाश भूत् (उपमा) अन्तरिक्ष की दिशाओं को (बुध्न्या विष्ठाः) एवं व्यक्त (सतः) तथा अव्यक्त वायु आदि पदार्थों का (असतः च) आविर्भाव किया (योनिम् वि वः)।

व्राः– (१) घेरने वाले जन।

'मृगं न व्रा मृगयन्ते'

ऋ. ८.२.६; नि. ५.३.

(२) वात्याः। वृ + क + जस् = व्राः। वरितारः अन्वेष्टारः मृगादीनाम्। व्रात्यस्थानीयाः लुब्धकादयः 'व्र' का बहुवचन रूप। (मृग आदि फंसाने वाले बहेलिए)।

व्रा – स्त्री -ए.व.। (१) वाणी। (२) या व्रियते सा (प्रकट होने वाली। -दया.

(३) परमेश्वर को वरण करने और उसको संभजन कीर्तन करने वाली वाणी।

'तज्जानतीरभ्यनूषत व्राः'

ऋ. ४.१.१६

व्राज– (१) गन्तव्य गृह -सा.

(२) गुरु गृह।

व्राणा– (१) ब.व.। वि. (१) रुके हुए जल

(२) गौओं का बाड़ा।

'गा न व्राण अवनीरमुञ्चत्'

ऋ. १.६१.१०; अ. २०.३५.१०

जैसे ग्वाला गौओं को बाड़े से मुक्त करता है। उसी प्रकार वीर पुरुष या राजा घिरी हुई भूमियों-भूमिवासिनी प्रजाओं को शत्रु के बन्धन से युक्त करें।

व्रात– (१) व्रताचरण करने वाला (२) शिष्य गण, (३) प्राण।

'अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुः'

ऋ. १.१६३.८; वाज.सं. २९.१९; तै.सं. ४.६.७.३; का.सं. (अश्व.) ६.३.

(४) सैन्य दल, (५) व्रत पालक लोक संघ।

'महाव्रातस्तुविकूर्मिर्ऋघावान्'

ऋ. ३.३०.३

व्रातपति – (१) संघपालक, (२) कुलपति।

'नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः'

वाज.सं. १६.२५; तै.सं. ४.५.४.१; मै.सं. २.९.४: १२३.१६; का.सं. १७.१३.

व्रातं व्रातम् – प्रत्येक सैन्य दल में।

'व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः'

ऋ. ३.२६.६; ५.५३.११

व्रातसाहः– (१) वीर समूहों को भरा पराजय करने में समर्थ।

'सतो वीरा उरवो व्रातसाहाः'

ऋ. ६.७५.९; वाज.सं. २९.४६; तै.सं. ४.६.६.३; मै.सं. ३.१६.३: १८६.१४; का.सं. (अश्व.) ६.१.

(२) शत्रु सैन्य बल को पराजित करने वाला।

व्रात्य – (१) यह शब्द प्रैषवाची या भृत्यवाची है,

(२) मनु ने उपनयन संस्कार से हीन द्विज को व्रात्य कहा है–

सावित्रात् पतिता व्रात्याः

(३) मनुष्यों को हिताकरी।

'गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यम्'

वाज.सं. ३०.८; तै.ब्रा. ३.४.१.५

(४) व्रतों का एकमात्र उपास्य परमेश्वर।

'व्रात्य आसीदीयमानः'

अ. १५.१.१.

(५) जो यज्ञादि क्रिया का अधिकारी नहीं है,

(६) उपनयन आदि संस्कारों से हीन पुरुष- शंकरपाण्डुरंग

(७) महानुभाव देवताओं का प्यारा,

(८) ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों के तेजों का मूल,

(९) देवों का देव- शंकर पाण्डुरंग यह अर्थ- परस्पर विरोधी है।

(१०) विशेष प्रायश्चित के बाद उपनीत होने वाला पुरुष जो अनार्य से आर्य बन जाता था वह व्रात्य है।

(११) आर्यों से बहिष्कृत जत्थे का सरदार जो ब्राह्मणों के शासन से मुक्त और ब्राह्मणों के मार्ग पर न चलने वाला है-ग्रिफिथ।

(१२) उपनयनहीन गुरुमन्त्र से भ्रष्ट द्विजाति -मनु

(१३) ताण्डय ब्राह्मण में व्रात्यस्तोम के पाठ से व्रात्य को शुद्ध कर यज्ञाधिकारी बनाने का

विधान है ।

(१४) व्रात्य नामक सूक्त ।

'व्रात्याभ्यां स्वाहा'

अ. १९.२३.२५

व्रात्यब्रुवः - व्रात्य न होकर भी जो अपने को 'व्रात्य हूँ' ऐसा कहता है ।

'अथ यस्याव्रात्यो व्रात्यब्रुवः'

अ. १५.१३.११.

व्राधत् - (१) विरोधी-दया. (२) बड़ा मनुष्य-ज.दे.श. ।

'स व्राधवो नहुषो दंसुजूतः'

ऋ. १.१२२.१०

वह बड़े बड़े मनुष्यों में भी महान् हो जाता है (बाधता नहुष) जो कि अपनी इन्द्रियों का दमन कर उनके द्वारा प्ररित होता है दंसुजूतः) या विनाश करने वाले वीरों से प्रेरित होता है ।

(३) बढ़ता हुआ, उमड़ता हुआ ।

'स सव्येन यमति व्राधतश्चित्'

ऋ. १.१००.९

वह बढ़ते या उमड़ते हुए बड़े बड़े शत्रुओं को भी (व्राधतः चित्) अपनी बाईं भुजा से (सव्येन) वश करे (यमति) ।

(४) बढ़ता हुआ गुण ।

'नव व्राधतो नवतिं च वक्षयम्'

ऋ. १०.४९.८

व्राज- गोल बांधकर डाका आदि मारना ।

'उदस्थुर्व्राजमत्रिणः'

अ. १.१६.१

व्राधन्तमः- (१) अति शयेन वर्धमानः -दया. (नित्य वृद्धि को प्राप्त होने वाला) ।

'महो व्राधन्तमो दिवि'

ऋ. १.१५०.३

वि - धा. । बुनना, weave

या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे'

अ. १४.१.४५.

(२) विग्रहार्थक अव्यय जैसे विगृह्णाति (विग्रह)

(३) विशेष अर्थ का प्रतिपादक है ।

(४) सं. । पक्षी । विरित शकुन्ति नाम । वि (गत्यर्थक) + डि = वि । 'वेतोः डिच्च' से इण् और डित् होने से वि के इ का लोप ।

(५) गन्ता (चलने वाला) । वि + डि = वि ।

(६) अभीष्ट फलदाता । (७) अभीष्ट फल दायक -यज्ञ का विशेषण । -सा.

'वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वान्'

ऋ. ४.७.८

हे अग्नि, तू अभीष्ट फलदायक यज्ञ के दूत कर्मों को जानता है । स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ अन्यय 'अध्वरस्य इत्यानि वेः' किया है और 'आप यज्ञ के अनर्थ निवारक कर्मों को जानते हैं' ऐसा अर्थ किया है ।

(१) विग्रहार्थक अव्यय- विगृह्णाति (विग्रह करता है) ।

अपगृह्णाति (अपग्रह करता है) ।

पक्षी के अर्थ में 'वि' का प्रयोग- विरिति शकुनिनाम (वि पक्षी का नाम है) । वि + डि = वि (इण् और डित् होने से वि के इ का लोप)।

गन्ता के अर्थ में - वि + डि = वि. ।

बुनना धातु के अर्थ में वि का प्रयोग -

'वयित्र्योऽवयन्'

पंच.ब्रा. १.८.९

हे वस्त्र, तुझे कुविन्द की बेटियों ने (वयित्र्यः) बुना (अवयन्) (८) व्यापक कान्तिमान प्रकाश स्वरूप है ज्योतिर्मय आत्मा, (९) कान्ति मय अग्नि ।

'प्रियं रक्षन्तो निहितं पदं वेः'

ऋ. ३.७.७

(१०) कान्तिमान तेजस्वी ।

'विराभरदिषितः श्येनो अध्वरे'

ऋ. १०.११.४; अ. १८.१.२१.

(११) वेगवान

(१२) संसार के सुखों का भोक्ता ।

'भरद् यदि विरतो वेविजानः'

ऋ. ४.२६.५

(१३) वेगवान् अश्व ।

'यद्वां रथो विभिष्पतात्'

ऋ. १.४६.३; ८.५.२२; साम. २.१०८०

विककर- शिशिर ऋतु में पाए जाने वाला पक्षी विशेष ।

'शिशिराय विककरान्'

वाज.सं. २४.२०; का.सं. (अश्व.) १०.४;

आप.श्रौ.सू. २०.१४.५.

विकट- वि + कटि (गत्यर्थक) + घञ् = विकट। औपमन्यव आचार्य के मत से,
वि + कुट् (कौटिल्य गति) + घञ् = विकट
(१) औपमन्यव आचार्य के मत से विकट का अर्थ है- विकृत गमन, (विकटः विक्रान्तगतिः इति औपमन्यवः)।
(२) विकृताङ्गी। 'कुटितेः वा स्यात् विपरीतस्य विकटितो भवति'। विकुटित या कुब्ज को भी विकट कहते हैं।
आधुनिक अर्थ- भयङ्कर

विकटा - (१) वि + कटि (गत्यर्थक) + घञ् + टाप् = विकटा। अर्थ है। विक्रान्त गति वाला -औपमन्यव।
स्त्रीलिंग में अर्थ है विक्रान्त गति वाली, (२) विकृत अंगों वाली। वि + कुट् + घञ् + टाप् = विकटा।
'अरायि काणे विकटे'
ऋ. १०.१५५.१; नि. ६.३०

विकङ्कती - कंघी।
'अथो विकङ्कतीमुखाः'
अ. ११.१०.३

विकङ्कतीमुख- कंघी के समान मुख वाला त्रिषन्धि नामक बाण।

विकस्त- विकसित।
'उत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम्'
वाज.सं. ११.३९; मै.सं. २.७.४: ७८.७; का.सं. १६.४; श.ब्रा. ६.४.३.४.

विकसुक- विशेष रूप से प्रकाशमान् विराट्, अग्नि।
'संकसुको विकसुकः'
अ. १२.२.१४; मै.सं. ४.१४.१७: २४६.१३

विक्षर- (१) विशेष प्रवाह।
'एषा त्वं कासं प्र पत
समुद्रस्यानु विक्षरम्'
अ. ६.१०५.३
(२) ऋग्वेद कालीन एक देश।

विक्षरन्ति- विविधं क्षरन्ति, प्रवर्षन्ति (विविध प्रकार से क्षरते बरसते हैं)।

विक्रान्ता- विभक्त।
'सोदक्रामत् सान्तरिक्षे
चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत्'
अ. ८.१० (२) १.

विकिरिः- (१) विकिर इषु का पर्याय है -उवट
(२) विविध किरि अर्थात् घात आदि उपद्रव-महीधर।
(३) सूकर के जैसा महीधर सोने वाला या विशिष्ट किरि की निष्ठा करने वाला-दया.।

विकिरिद्रः(१) विकिरीन् इषून् द्रावयति इति विकिरिद्रः-उवट
विकिरि अर्थात् शरों की बौछारों से शत्रुओं को मार भगाने वाला (२) रुद्र।
'विकिरिद्र विलोहित'
वाज.सं. १६.५२
(३) विविधं किरिं घाताद्युपद्रवं द्रायति नाशयति-महीधर
(४) विशेषेण किरिः सूकर इव द्रायति शेते विशिष्टं किरिं द्राति निन्दति वा इति विकिरिद्रः -दया।

विक्लिन्दु- छाजन नामक रोग जो गौ के पैर के स्थान से उत्पन्न होता है।
'विक्लिन्दुर्नाम विन्दति'
अ. १२.४.५

विक्षिणत्क - गुप्त रूप से सब तरफ शत्रुदेश में व्याप जाने वाली।
'नमो विक्षिणत्केभ्यः'
वाज.सं. १६.४६; श.ब्रा. ९.१.१.२३

विक्षिपः- (१) शत्रुओं को तितर बितर करने वाला राजा, (२) मरुत।
'सासह्वाँश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा'
वाज.सं. १७.८६; ३९.७

विक्षिप्- विविध दिशाओं में शत्रुओं पर शस्त्र फेंकने वाला।

विकृत्यमान - विविध रूपों से अंग अंग काटी जाती हुई।
'वैरं विकृत्यमाना'
अ. १२.५.२८

विकृति- वेद संहिता की आठ प्रकार की विकृतियाँ है-जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और धन।

विकृन्त- जंगल आदि काटने वाला।
'विकृन्तानां पतये नमः'

वाज.सं. १६.२१

विकेशः - बालों को विकृत का देने वाला ।

'यस्ते मदोऽवकेशो विकेशः'

अ. ६.३०.२

विकेशी- (१) क्लेश हटाने वाली ।

'यामाहुस्तारकैषा विकेशी'

अ. ५.१७.४; कौ.सू. १२६.९

(२) एक दूसरे के केशों को नोचने वाली ।

'अधा मिथो विकेश्यः'

अ. १.२८.४

विक्लेदीयसी- (१) विदेष रूप से पसीजने वाली, (२) जल छोड़ने वाली गण्डमाला ।

'लवणाद् विक्लेदीयसीः'

. ७.७६.१

विखनस् - विशेषेण खन्यते यः सः विखनाः । (जो विशेष रूप से खना जाय) ।

अर्थ - कुण्ड, अग्नि स्थान, ब्रह्म ।

विखाद - विविध प्रकार से मनुष्यों का नाश करने वाला संग्राम ।

'तं विखादे सस्नि श्रुतं नरम्'

ऋ. १०.३८.४

विगद- (१) संग्राम ।

'प्रतीत्या शत्रून् विगदेषु वृश्च'

ऋ. १०.११६.५

(२) विषय ज्वर ।

'तक्मन् व्याल विगद्'

अ. ५.२२.६

विग्र- (१) विविधं गृणाति अर्थात् इति देवराजः । (विविध अर्थों को जो बताता है वह विग्र है) । विग्रहइति मेधावि नाम -नि. ३.१४

(२) विशेष रूप से गले से नीचे उतारने योग्य खूब चबाया खाद्यान्न (३) विद्वान् पुरुष ।

'ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्यै'

ऋ. ६.६७.७

अंग्रेजी के **vicar** शब्द की 'विग्र' से समानार्थता विचारणीय है ।

विगाम् (१) विविध प्रशंसायुक्त-दया. (२) विशेष गमन या उपाय -ज.दे. श.

(३) पिता, पुत्र और पौत्र तीन रूपों में ब्रह्मचारी का गृहस्थ होने पर व्यापना विगाम है ।

'यः पार्थिवानि त्रिभिरिद् विगामभिः उरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे'

ऋ. १.१५५.४

जो ब्रह्मचारी पृथिवी अर्थात् स्त्री से उत्पन्न सब सन्तानों को उत्तम दीर्घ जीवन धारण कराने के लिए (जीवसे) पिता, पुत्र और पौत्र तीनों रूपों में व्यापता है ।

अथवा,

जो विविध गमन या उपायों से (विगामयिः) अति प्रशंसित जीवन की रक्षा और धारण करने के लिए (जीवसे) पृथिवी के समस्त पदार्थों और जीवों और प्राणियों को अति उत्तम रीति से क्रमण कर जाता है ।

विगाह - (१) युद्ध में पर सैन्यों को मन्थन करने वाला, (२) सर्व व्यापक -अग्नि या परमेश्वर ।

'विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतम्'

ऋ. ३.३.५; का.सं. ७.१२; आप.श्रौ.सू. ५.१०.४; मा.श्रौ.सू. १.५.२.१४.

विग्रीव- (१) ग्रीवा रहित

'विग्रीवां छायया त्वम्'

अ. ४.१८.४

(२) झुकी गर्दनवाला

'विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु'

ऋ. ७.१०७.२४; अ. ८.४.२४

विघनिना- विशेष रूप से आघात करने वाले-इन्द्राग्नी, वायु और विद्युत् या सूर्य और विद्युत् ।

'उग्रा विघनिना मृधः इन्द्राग्नी हवामहे'

ऋ. ६.६०.५; साम. २.२०४; वाज.सं. ३३.६१, का.सं. ४.१५.

विघ्नानः- नाश करता हुआ । विघ्न डालता हुआ ।

'मिथो विघ्नाना उप यन्तु मृत्युम्'

अ. ६.३२.३; अ. ८.८.२१.

विच् - धा. । विवेक करना ।

'कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन्'

ऋ. १०.१०.६; अ. १८.१.७

विचक्रमे - (१) विविध प्रकार से क्रमण करता है । लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग है ।

'इदं विष्णुर्वि चक्रमे'

ऋ. १.२२.१७; अ. ७.२६.४; साम. १.२२२; २.१०१९; वाज.सं. ५.१५; तै.सं. १.२.१३.१; मै.सं.

१.२.९: १८.१७; १.८.९: १३०.१२; ४.१.१२: १६.४; ४.१२.१: १७९.३; का.सं. २.१०; ऐ.ब्रा. १.१७.७; २५.९

आदित्य (विष्णुः) इस विभागों में विभक्त सृष्टि में (इदम्) विविध प्रकार से भ्रमण करता है (विचक्रमे)।

(२) विविध रूप से रचता है।

'इदं विष्णुर्वि चक्रमे
त्रेधा नि दधे पदम्
समूढमस्य पांसुरे'

इस प्रत्यक्ष एवं जानने योग्य जगत् को परमेश्वर विविध प्रकार से रचता है और सबको तीन प्रकार से स्थिर करता है। इस जगत् के भली प्रकार तर्क से जानने योग्य सूक्ष्म रूप को भी (अस्य समूढम्) वह कारण परमाणुओं जो पूर्ण आकाश में (पांसुरे) स्थापित करता है।

विचक्ष्- (१) विशेष रूप से देखना या दिखलाना। (२) नेत्रहीन, (३) सत्य दर्शन।

'तस्मा अक्षी नासत्या विचक्षे'

ऋ. १.११६.१६

उस नेत्रहीन को (विचक्षे) ज्ञान नेत्र प्रदान करे (अक्षी)- ज.दे.श.।

विचक्षण- दूरदर्शी।

'प्र ते बभ्रू विचक्षण
शंसामि गोषणो नपात्'

ऋ. ४.३२.२२

हे दूरदर्शी तथा वेद वाणी को भजने वाला राजन् (वि चक्षण गोषणः) मैं तेरी विद्या धर्म को धारण करने वाली तथा अविद्या तथा अधर्म को हरने वाली अध्यापिका तथा उपदेशिका (ते बभ्रू) प्रशंसा करता हूँ (प्रशंसामि)।

विचक्षते - वि + चक्ष = अनुग्रह करना। अनुग्रह करते हैं।

'त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते'

ऋ. १.१६४.४४; अ. ९.१०.२६; नि. १२.२७.

तीन केश वाले देवता-अग्नि, वायु और आदित्य ऋतु ऋतु के अनुकूल लोक पर अनुग्रह करते हैं।

विचयिष्ठः- खूब अधिक दूर करने वाला-इन्द्र, परमेश्वर।

'पुरु दाशुषे विचयिष्ठो अंहः'

ऋ. ४.२०.९; का.सं. २१.१३

विचरन्ति- विचरण करते हैं।

विचर्षणिः- (१) विशेष रूप से सब का दृष्टा।

'शतक्रतो विचर्षणे'

ऋ. ८.९८.१०; अ. २०.१०८.१

(२) वि + कृष् + अनि = विचर्षणिः। विलेखन स्वभावः कृषकः।

(३) विशेष रूप से सबको आकृष्ट करने वाला- सूर्य।

'हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिः'

ऋ. १.३५.९; वाज.सं. ३४.२५

(४) सर्वद्रष्टा इन्द्र या परमात्मा।

'जेता शत्रून् विचर्षणिः'

ऋ. २.४१.१२; अ. २०.२०.७; ५७.१०; तै.ब्रा. २.५.३.२.

इन्द्र शत्रुओं का विजेता तथा सर्वद्रष्टा है।

विचष्टे- (१) अनुग्राह्यतया विपश्यति (अनुभूत से चारों ओर देखता है)।

'स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे'

ऋ. १०.११४.४; ऐ.आ. ३.१.६.१५; नि. १०.४६.

(२) कहता है या कहा है।

'तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः'

ऋ. १०.३४.१३

ऐसा ही स्वामी सविता ने मुझ से कहा है।

विच्छन्दस् - वेदो में छन्द, अतिच्छन्द और विच्छन्द होते हैं। प्रत्येक सात है- कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, सुकृति, अति कृति, और और उत्कृति।

विच्छन्दा- (१) बिना छन्दप की, स्थावर, (२) त्यागी।

'विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः'

वाज.सं. २३.३४; मै.सं. ३.१२.२१: १६७.६

विचाकशत् - (१) विवेक पूर्ण देखता हुआ।

'अयमेमि विचाकशत्'

ऋ. १०.८६.१९; अ. २०.१२६.१९,

(२) दीप्तिमान्।

'विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति'

ऋ. १.२४.१०; तै.आ. १.११.२

दीप्तिमान् चन्द्रमा रात में आकाश में आते हैं।

विचारिणी - (१) पृथिवी, (२) विचार करने वाली स्त्री, (३) राजसभा।

'स्तोमासत्वा विचारिणि'
ऋ. ५.८४.२

चतयत् - (१) प्रदीप्त करता हुआ -सा. (२) विशेष रूप से चिन्तन करता हुआ-दया.
'जुहुरे वि चितयन्तः'
ऋ. ५.१९.२; नि. ४.१९
हे अग्नि, जो तुझे प्रदीप्त करते हुए (विचितयन्तः) तुझे पुकारते या आह्वान् करते हैं । -सा.
जो मनुष्य अग्रणी परमेश्वर का विशेष रूप से चिन्तन करते हुए (विचितयन्तः) आत्म त्याग करते हैं (जुहुरे) -दया.
(३) विशेष रूप से चेतना करते हुए-जानते हुए ।

विचित्तः- विशेष रूप से संज्ञानवान्
'विष्णुर्विचित्तः शवसाधितिष्ठन्'
अ. १३.२.३१.

विचिन्वत्कः- विविध उपायों से शत्रुओं का विनाश करने में कुशल ।
'नमो विचिन्वत्केभ्यः'
वाज.सं. १६.४६; तै.सं. ४.५.९.२; मै.सं. २.९.९: १२७.४; का.सं. १७.१६; श.ब्रा. ९.१.१२३.

विचिन्वन् - विवेचना करता हुआ ।
'विचिन्वन् दासमार्यम्'
ऋ. १०.८६.१९; अ. २०.१२६.१९

विचिनोति- ढूंढता है ।
'कृतं न श्वघ्नी विचिनोति देवने'
ऋ. १०.४३.५; अ. २०.१७.५; नि. ५.२२.
जैसे परधनहारी, धूर्त या जुआरी (श्वघ्नी) जुए में (देवने) पूर्व पुरुषों का अर्जित धन (कृतम्) ढूंढता है (विचिनोति) ।

विच्युत- विशेष रूप से चलाया हुआ ।
'रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः'
ऋ. २.१७.३

विचृत्- (१) मूल नक्षत्र -सा.
(२) विशेष रूप से परस्पर मिले दो बालक ।
'ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतोर्यमस्य'
अ. ६.११०.२
(३) विमुक्त, बन्धनमुक्त ।
'कृण्वन् संचृतं विचृतमभिष्टये'
ऋ. ९.८४.२
(४) बन्धनादि से मुक्त ।
'विचृताय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७

विचृत्त- (१) गठा हुआ ।
'पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः'
ऋ. २.२७.१६

विचृतौ- (१) विशेष रूप से सम्बद्ध प्राण और अपान वायु, (२) मूल नक्षत्र-सा. ।
'उदगातां भगवती
विचृतौ नाम तारके'
अ. २.८.१; ६.१२१.३
(३) विविध रोगों के विनाशक । प्राण और अपान वायु, (४) देवयान और पितृयान नामक दुःख नाशक पन्थ, (५) अविद्या और विद्या ।

विचेतत् - (१) विशेष दृष्टि या ज्ञान वाला । (२) अच्छे या विशिष्ट ज्ञान से युक्त ।
पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः'
ऋ. १.१६४.१६; अ. ९.९.१५; तै.आ. १.११.४; नि. ५.१; १४.२०
जो अच्छे ज्ञान वाला नहीं है वह अन्धा है ।

विचेताः(१) ज्ञान चेतन से रहित जड़ अग्नि, (२) विशेष चेतनायुक्त (३) विविध ज्ञानों से युक्त ।
'श्रियं वसानो अमृतो विचेताः'
ऋ. २.१०.१
(४) विविध ज्ञानों से युक्त अग्नि परमेश्वर ।
'ऋतावानं विचेतसम्'
ऋ. ४.७.३

विज्- (१) भय देना ।
(२) सं । इतस्ततः चलन पक्षी इधर उधर उड़ने वाली चिड़ियां
(३)भय से उद्विग्न प्राणी ।
'श्वघ्नीव कलुर्विज आमिनाना'
ऋ. १.९२.१०

विज- उद्वेग जनक, सिंह ।
'सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति'
ऋ. २.१२.५; अ. २०.३४.५

विजयुषा, विजयुष् - विजयुषौ । द्वि.बु.,वि. । (१) अश्विना का विशेषण । (२) विजयी होते हुए-स्वा. दया. । (३) सायण ने 'विजयुष' शब्द मानकर रथ के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है ।

'वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेः'
ऋ. १.११७.१६
विजयी होते हुए पहाड़ के शिखर पर जाओ- दया .
रथ से मेघ की ऊंचाई या वृष्टि करने की इच्छा से तुम दोनों अश्विनीकुमार गए - सा.

विजर्जरा- रोगादि कारणों से विशेष जर्जर स्त्री ।
'वत्सराय विजर्जराम्'
वाज.सं. ३०.१५; तै.ब्रा. ३.४.१.११

विजर्भृतः- विह्रियेते (विहार करते हैं या ऊपर उठते हैं । वि + हृ के यङ् लुगन्त कर्मवावाच्य में लट् प्र. पु.द्वि.व का रूप । सायण ने इसे कर्तृवाच्य में माना है और अर्थ किया है-
'उच्चै मुहुः मुहुः विहारं कुरुतः'

विजञ्जपः- जय करने वाला, ऊं' का जप करने वाला-दया. ।

विज्य- 'ज्या' अर्थात् डोरी से रहित धनुष ।
'नित्यं धनुः कपर्दिनः'
वाज.सं. १६.१०; तै.सं. ४.५.१.४; मै.सं. २.९.२: १२२.३; का.सं. १७.११.

विजातः - नाना शक्तियों से प्रादुर्भूत
महान् मही अस्कभायद् वि जातः'
अ. ४.१.४

विजानि - भार्या से रहित राष्ट्र सभा के शासन से रहित ।
'विजानिर्यत्र ब्राह्मणः'
अ. ५.१७.१८

विजामन्- (१) पेट, (२) नाभि के नीचे पेडू । अंग्रेजी का abdomen शब्द इसी विजामन् का भ्रष्ट रूप है ।
'विजाम्नि या अपचितः स्वयंस्रसः'
अ. ७.७६.२
(३) विविध पीड़ा का उत्पत्ति स्थान रूप पेट
'यद् विजामन् परुषि वन्दनं भुवत्'
ऋ. ७.५०.२

विजामाता - योहि गुणैः हीनतया समाप्त जामातृभावो भवति स बहुधनदानेन कन्यापितॄन् आराध्य आत्मानं रोचयति ।
अयोग्य निर्गुण जामाता जो श्वसुर को द्रव्य देकर विवाह करता है-क्रीतापति ।
'अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां
विजामातुरुत वा घा स्यालात्'
ऋ. १.१०९.२; तै.सं. १.१.१४.१; का.सं. ४.१५; नि. ६.९
हे इन्द्राग्नी, या अध्यापक और उपदेशक, मैंने सुना है, तुम क्रीतापति और स्याल से भी जो अपनी बहन को दान देता है तुम बढ़कर दान देने वाले हो ।

विजामिः - विपरीत बन्धु, शत्रु ।
'स नो अजामींरुत वा विजामीन्'
ऋ. १०.६९.१२

विजावती- नाना प्रकार के प्राणियों को जन्म देने वाली-शालाग्रह ।
'विजावति प्रजावति
वि ते पाशांश्चृतामसि'
अ. ९.३.१३,१४

विजावा - विविध सन्तानों और ऐश्वर्यों से प्रसिद्ध ।
'स्यान्नः सुनुस्तन्नयो विजावा'
ऋ. ३.१.२३; साम. १.७६; वाज.सं. १२.५१; तै.सं. ४.२.४.३; मै.सं. २.७.११: ९०.२; का.सं. १६.११; श.ब्रा. ७.१.१.२७; आप.मं.पा. १.७.२

विज्ञान- विशिष्ट ज्ञान ।
'विज्ञानं वासोऽहरुष्णीहं'
अ. १५.२.५

विजृम्भ - विशेष रूप से खुलना ।
'सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भमते'
ऋ. १०.८६.१६; अ. २०.१२६.१६

विजृम्भमाणः- जंभाई लेता हुआ ।
'विजृम्भमाणाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७; मै.सं. ३.१२.३; १६०.१६

विजेन्य- विशेष विजय कराने वाला या दिलाने वाला ।
'यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यम्
दिवोदासाय महि चेति वामवः'
ऋ. १.११९.४
हे अश्विद्वय, या वीर्यवान् स्त्रीपुरुषो, आप दोनों विशेष जय दिलाने वाले प्रयत्न करें (विजेन्यान् यासिष्टम्) । आप लोगों की रक्षा दिवोदास या ज्ञान प्रकाश देने वाले पुरुष के लिए बड़ी भारी समझी जाती हैं ।

विजेष- विजय ।

विजेषकृत् - विजय कर्त्ता ।
'विजेहषकृदिन्द्र इवानवब्रवः'
ऋ. १०.८४.५; अ. ४.३१.५; नि. ६.२९
हे मन्यु, तू परमात्मा की तरह विजय कर्ता है ।

विजेहमानः- विविध प्रकार से प्रयोग करता हुआ
'विजेमानः परशुर्न जिह्वाम्'
ऋ. ६.३.४.

विजोषाः - विशेष प्रेम युक्त ।
'याभिर्बभ्रुं विजोषसम्'
ऋ. ८.२२.१०

विट् द्रविणम् - वैश्यरूप धन ।
'वर्षा ऋतुर्विड् द्रविणम्'
वाज.सं. १०.१२

विततम् - विशेष रूप से तत-फैला हुआ । विस्तीर्ण (रश्मिजाल) ।
'मध्या कर्तोर्विततं सं जभार'
ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७; मै.सं. ४.१०.२: १४७.१; तै.ब्रा. २.८.७.१; नि. ४.११
किए जाते हुए कर्मों के मध्य में ही सूर्य ने अपने विस्तीर्ण रश्मिजाल को खींच लिया ।

वितता - वि + तन् + क्त + टाप् = वितता । तानी हुई । चढ़ाई हुई ।

विततध्वर- जिसका यज्ञ सदा चलता रहता है ।
'विततध्वर आहृतयज्ञक्रतुर्य उपहरति'
अ. ९.६.२७

वितता किरणौ - पीस पीस कर ।
फेंकने वाले चक्की के दो पाटों के समान विस्तृत आकाश और पृथिवी ।
'विततौ किरणौ द्वौ'
अ., २०.१३३.१; गो.ब्रा. २.६,.१३; आश्व.श्रौ.सू. ८.३.१८; शां.श्रौ.सू. १२.२२.१.१; वै.सू. ३२.२१.

वितन्तसाय्यः- विविध प्रकार के शत्रुओं का नाशकारी और राष्ट्र सम्पत्तियाँ
'वितन्तसाय्यो अभवत् समत्सु'
ऋ. ६.१८.६
(२) विशेष रूप से एकाग्रचित्त से ध्यान करने योग्य ।
'यज्ञो वितन्तसाय्यः'
ऋ. ८.६.२२; ६८.११
(३) सब का विजय करने वाला - इन्द्र ।
'भरे वितन्तसाय्य'
ऋ. ६.४५.१३
(४) अति विस्तृत महान् ।

वितर्वोति- फैलाता है ।
'अपो वृणाना वितनोति मायिनी'
ऋ. ५.४८.१
मायायिनी मध्यमावाक् (विद्युत्) जलों को मेघ में ढकती हुई फैलाती है ।

वितरम् - (१) विकीर्णतरम्, विस्तीर्णदपि विस्तीर्णतरम्-(विस्तीर्ण से भी विस्तीर्ण), विविध प्रकार से-सा. (३) अधिक विस्तृत होकर, -ज.दे.श. ।
'व्यु प्रथते वितरं वरीयः'
ऋ. १.१२४.५; १०.११०.४; अ. ५.१२.४; वाज.सं. २९.२९; मै.सं. ४.१३.३: २०२.२; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.२; नि. ८.९
कुश वेदी पर विविध प्रकार से विस्तीर्ण कर (वितरम्) बिछाया जाता है (विप्रथते) । पूर्वाह्न समय में कुश का काटना श्रेयस्कर होता है (वरीयः) ।
अव्युत्तम या प्रभूत यज्ञाग्नि (वरीयः) अधिक विस्तृत होकर (वितरम्) सम्पूर्ण वायुमण्डल में व्याप्त होता है (विप्रथते)
(४) अच्छी प्रकार से, In a better way (5) संज्ञा अर्थ में विशेष रूप से वारक ब्रह्मज्ञान ।
'सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व'
ऋ. ४.१८.११; ८.१००.१२; तै.सं. ३.२.११.३; मै.सं. ४.१२.५: १९२.७
'अच्छी तरह से' के अर्थ में -
'भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ'
ऋ. १.१२३.११
ऐ उषा, तू मंगल देने वाली होकर अन्धकार को खूब दूर कर ।
अथवा,
हे कन्या, तू मंगल आचार वाली होकर खूब अपने उत्तम गुणों को प्रकट कर ।

वितरित्रता- विविधतया अतिशयेन तरितुम् इच्छन्तौ (विविध प्रकार ते वितरण करने की इच्छा करने वाले-स्त्री पुरुष) ।
'समानमर्थं वितरित्रता मिथः'
ऋ. १.१४४.४

परस्पर समान अर्थ या कमनीय पदार्थ को परस्पर वितरण करते हैं ।

वितर्तुर - वि + गृ + अच् (उत्व) = वितर्त । अर्थ- विविध नौका आदि से चलने लायक ।

'अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे
श्रद्धेकमिन्द्र चरतो वितर्तुरम्'

ऋ. १.१०२.२; तै.ब्रा. २.८.९.२

सत्यज्ञान को धारण करने के लिए (श्रद्धे) सूर्य चन्द्रमा दोनों प्रकाश मान होकर नाना प्रकार से आते जाते हुए (वितर्तुरम्) गति कर रहे हैं । (चरतः) ।

वितर्तुराणः- विविध प्रकार से विनाश करता हुआ ।

'वितर्तुराणो अपरेभिरेति'

ऋ. ६.४७.१७

वितस्ता- नञ् + विदग्धा = वितस्ता (नञ् का लोप) । विदग्धा शब्द का तस्ता शब्द से विपर्यय । अथवा 'विवृद्धा' से 'वितस्ता' हुआ ।

वितस्ता उस नदी का नाम है जो अविदग्धा अर्थात् वैदेहक नामक अग्नि से और नदियों के समान विदग्ध नहीं हुई ।

अथवा जो विस्तीर्ण है या जिसका तट अत्यन्त विस्तीर्ण है । व्यास नदी का वैदिक नाम ।

'असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाः
आर्जकीये श्रृणुह्या सुषोमया'

ऋ. १०.७५.५; तै.आ. १०.१.७३; नि. ९.२६

वितस्ता एवं असिक्वी के साथ मरुद्वृधा तथा सुषोमा के साथ आर्जीकीया नदी सुनो ।

(२) विदग्धा, विवृद्धा, महाकूला -नि. ।

शरीर की एक नाड़ी जो देह में ताप तथा दाह धारण करती है और जो बहुत व्यापक हो त्वचा भर में व्याप्त है ।

वित्त- (१) विद् (प्राप्त्यर्थक) + क्त = वित्त । (न.) धन ।

'वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः'

ऋ. १०.३४.१३

हे जुआरी, जुआ छोड़ कर कृषि से प्राप्त धन को बहुत समझता हुआ मग्न रहा ।

'वित्तञ्च मे वित्तिश्च मे'

वाज.सं. १८.१४; तै.सं. ४.७.५.२; मै.सं. २.११.५: १४२.९; का.सं. १८.१०.

वित्तधः - वित्त धारण करने वाला धनाढ्य पुरुष ।

'श्रेयसे वित्तधम्'

वाज.सं. ३०.११; तै.ब्रा. ३.४.१.९

वित्तनानिः - (१) नववधू को प्राप्त करने वाला पुरुष । (२) धन को अपनी स्त्री के समान पालने वाला धनाढ्य पुरुष ।

वित्तम् - जानीतम् (आप सब जानें समझें) विद् (ज्ञानार्थक) के लोट् म. पु. ब.व. में ।

वित्पति- वित्तपति, राजा ।

'यन्त्यवाताय वित्पति'

अ. २०.१३६.३

वित्वक्षणः- (१) विद्युत के जैसा विविध प्रकार से शत्रुओं को छेदन भेदन करने वाला, (२) वि + त्वक् + सनः = वित्वक्षणः । अर्थ- विविध या विशेष वस्त्रादि आवरणों को पहनने वाला, (३) विविध विद्याओं का रहस्य खोल कर बतलाने वाला ।

'वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजः'

ऋ. ५.३४.६

वितारीत् - वितीर्ण करे ।

वित्तायनी - वित्त, धन, ऐश्वर्य आदि भोग्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाली-पृथ्वी ।

'वित्तायनी मेऽसि'

वाज.सं. ५.९; तै.सं. १.२.१२.१; ६.२.७.२; मै.सं. १.२.८: १७.८; ३.८.५: ९९.१५; का.सं. २.९.; श.ब्रा. ३.५.१.२८; आप.श्रौ.सू. ७.३.१४; मा.श्रौ.सू. १.७.३.१५

विताढि- विताड्ढि । अर्थ - विशेष प्रकार से ताड़ित कर ।

'वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व'

ऋ. १०.१८०.२; अ. ७.८४.३; साम. २.१२२३; वाज.सं. १८.७१; तै.सं. १.६.१२.५; मै.सं. ४.१२.३: १८३.१५; का.सं. ८.१६.

हे इन्द्र, शत्रुओं को विशेष प्रकार से ताड़ित कर (विताढि) तथा हिंसक एवं युद्ध करने वालों को (मृधः) विशेष रूप से तिरस्कृत कर (वि नुदस्व) ।

वितिष्ठते - विविध रूपों से स्थित है ।

वित्त- आगे होने वाली प्राप्ति ।

'वित्तञ्च मे वित्तिश्च मे'

वाज.सं. १८.१४; तै.सं. ४.७.५.२; मै.सं. २.११.५: १४२.९; का.सं. १८.१०

वितृतीय- दो दिनों का अन्तर देकर आने वाला ज्वर ।
'तृतीयकं वितृतीयम्'
अ. ५.२२.१३

वित्से- वेत्सि (जानता है) ।

विथुर- (१) व्यथा वाला, व्यथित, पीड़ित ।
'वध्रिर्यथासद् विथुरो न साधुः'
अ. १६.६.११
(२) पीड़ा देने वाला ।
'विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसो'
ऋ. ६.४६.६; अ. २०.८०.२
(३) शिथिल जल ।
'यच्च्यावयथ विथुरेव संहितम्'
ऋ. १.१६८.६
'करन् सुषाहा विथुरं न शवः'
ऋ. १.१८६.२; मै.सं. ४.१४.११: २३२.४; तै.ब्रा. २.८.६.३.
'त्वमेषां विथुरा शवांसि'
ऋ. ६.२५.३
'अतिविद्वा विथुरेणा चिदस्त्रा'
ऋ. ८.९६.२; मै.सं. ३.८.३: ९५.७; का.सं. ९.१९

विथुरा- शीत ज्वर पीड़ित का या -दया. ।
'प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते
भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे'
ऋ. १.८७.३; तै.सं. ४.३.१३.७; मै.सं. ४.११.२: १६८.४

विथुरौ- जीव के व्यथा दायी आत्मा और मन या प्राण ।
'उदस्य श्यावौ विथुरौ'
अ. ७.९५.१.

विद्- ज्ञान । विद् + क्विप् =
विद् शक्ती वा यत् ते चकृमा विदा वा ।
ऋ. १.३१.१८
हे अग्नि, हम जो कुछ भी तेरे निमित्त शक्ति से और ज्ञान से करें.....।
(२) विद्वान् ।
दृढा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे'
ऋ. १.१२७.४
जैसे विद्वान् पुरुषों को लोग आदर पूर्वक अन्नादि देते हैं उसी प्रकार अग्नि या राजा को दृढ़ बलवान् धनैश्वर्य दें ।
(३) वर्तमान ।
'राय आ कुहचिद्विदे'
ऋ. ७.३२.१९; अ. २०.८२.२; साम. २.११४७
(४) प्राप्ति, पाना ।

विदत् - अविदत् । जानता या प्राप्त करता है । लट् के अर्थ में लङ् का प्रयोग ।
'यत् सीमुपह्वरे विदत्'
ऋ. ८.६९.६; अ. २०.२२.६; ९२.३; साम. २.८४.१; तै.ब्रा. २.७.१३.४.
जिसे वह सदा (सीम्) समीप में (उपह्वरे) प्राप्त करता है (विदत्) ।

विदत्र- विद् + अत्रन् = विदत्र । विद् धातु जानना और प्राप्त करना अर्थों में आया है । अर्थ - (१) ज्ञान, (२) धन ।
'अग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः'
ऋ. ७.६.२३
वह आदित्य या अग्रणी परमेश्वर हे मृतात्मा, तुझे सुन्दर ज्ञान या धन वाले देवों के पास या देवलोक में पहुंचावें ।

विदत्रिय- (१) धनवाला, (२) ज्ञानवाला ।

विदथ- जीवन का ज्ञानमय अनुभव ।
'अथ जिर्विर्विदथमा वदासि'
अ. ८.१.६; १४.१.२१.

विदथ्य- (१) ज्ञान परिषद् और संग्राम में कुशल ।
'यः सभेयो विदथ्यः'
अ. २०.१२८.१
(२) ज्ञान, सत्संग, यज्ञ या युद्ध में कुशल
'सादन्यं विदथ्यं सभेयं'
पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै'
ऋ. १.९१.२०, वाज.सं. ३४.२१; मै.सं. ४.१४.१: २१४.३
(३) ज्ञान, सत्संग, यज्ञ आदि के योग्य ज्ञाता,
(४) ज्ञान और संग्राम कार्य में कुशल ।
'इमं महे विदथ्याय शूषम्'
ऋ. ३.५४.१; ऐ.ब्रा. १.२८.४; आश्व.श्रौ.सू. २.१७.७
(५) यज्ञ, संग्राम, यश और श्री के लाभ के योग्य ।
'यस्य क्रतुर्विदथ्यो न सम्राट्'

ऋ. ८.२१.२

विदथा- (१) ज्ञानपूर्वक, (२) बुद्धि के समक्ष ।
'यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागम्
अनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति'
ऋ. १.१६४.२१; अ. ९.९.२२; नि. ३.१२.
जिस मण्डल में या जिस देह में सूर्य की रश्मियाँ या इन्द्रियाँ जल का भाग या विषय रस को लेकर सदा सर्वत्र तपती रहती है या आत्मा को समर्पित करती है ।

विदथ्या- ज्ञान या धन देने में श्रेष्ट ।
'सभावती विदथ्येव सं वाक्'
ऋ. १.१६७.३
(२) संग्राम में हुई

विदद्वसुः- (१) सम्पत्तिवान् ।
'विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून्'
ऋ. ३.३४.१; अ. २०.११.१; नि. ४.१७
सम्पत्तिवान् एवं शत्रुओं को हनन करने वाला इन्द्र या राजा (२) समस्त ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाला प्रभु । (३) लब्धधन (जिसे धन मिला हो या जिसने धन पाया हो) (४) प्राप्त धन । (५) इन्द्र का विशेषण । परमात्मा का ही सब धन है ।
'राधस्तन्नो विदद्वसो
उभयाहस्त्या भर'
ऋ. ५.३९.१; साम. १.३४५; २.५२२; पंच.ब्रा. १४.६.४; नि. ४.४.
हे प्राप्त धन इन्द्र, वह धन तू हमें दोनों हाथों से लाकर दे ।
(६) नाना ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाला।
'तरोभिर्वो विदद्वसुम्'
ऋ. ८.६६.१; साम. १.२३७; २३७; गो.ब्रा. २.४.३; पंच.ब्रा. ११.४.५; १५१०४; ऐ.आ. ५.२.४.२; आश्व.श्रौ.सू. ५.१६.२; ७४.४.

विदधाति- करोति (करता है ।

विदधति - दान करता है ।

बिदलकारी - विरुद्धदल खड़ाकर देने वाली मांस पिण्ड पर गिद्धों के समान आपस में फूट डाल देने वाली नीति ।
'पिशाचेभ्यो बिदलकारीम्'
वाज.सं. ३०.८

विदस्येत् - घट जाय । दे. आसम्नाणासः ।
'नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत्'
ऋ. ६.३७.३; नि. १०.३
नहीं तो कहीं इन्द्र का (वायोः) सोमरस (अमृतम्) न घट जाय (विदस्तेत्) ।

विद् मन् - जानना, ज्ञान प्राप्त करना ।
'कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान्'
ऋ. १.१६४.६

विद्मनापस् - (१) अपने कर्म को जानने वाली-अमावस्या का विशेषण, (२) कुहू, (३), गम्भीर पत्नी ।
'कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसम्
अस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि'
अ. ७.४७.१
इस गृहस्थ यज्ञ में मैं साधुकर्मकारिणी तथा अपने कर्तव्यों को जानने वाली आदरपूर्वक बुलाने के योग्य गृहपत्नी को स्वीकार करता हूँ या अमावास्या को बुलाता हूँ ।
(४) जिसका कर्म विज्ञान से युक्त है ।
तक्षन् रथं सुवृतं विद्मनापसः'
ऋ. १.१११.१; ऐ.ब्रा. ४.३२.५; कौ.ब्रा. २०४.२२.२
(५) समस्त उचित कर्त्तव्यों को जानने वाली राजा की कुहू नामक अन्तरंग सभा ।
तव व्रते कवयो विद्मनामपसः'
ऋ. १.३१.१; वाज.सं. ३४.१२

विद्यत् - (१) विशेषरूप से विद्यमान, (२) विविध खण्डन मण्डन करने वाला, (३) विविध शस्त्र अस्त्र से खण्डन करने वाला ।
'विद्यद्भिर्ग्रावभिः सुतम्'
वाज.सं. २६.४

विदयमानः- (१) विविध प्रकार से हनन करने वाला या करता हुआ, इन्द्र या राजा का विशेषण । दय धातु हनन करना अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है ।
'विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून्'
ऋ. ३.३४.१; २०.११.१; नि. ४.१७
सम्पत्तिमान् तथा शत्रुओं का हनन करने वाला इन्द्र या राजा ।

विद्रध- (१) गिल्टी आदि रोग
विद्रधस्य बलासस्य,
अ. ६.१२७.१
(२) गिल्टियों का सूजन ।

'विसल्यस्य विद्रधस्य'
अ. ९.८.२०
(३) वि + दृभ् (भय, हिंसा) + क = विद्ध । पृषोदरादि शब्दों के समान् ऋ कार् । अर्थ - छेदा हुआ, विद्ध
कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके
'बभ्रू यामेषु शोभते'
ऋ. ४.३२.२३; नि. ४.१५.
हे इन्द्र, दो पीली घोड़ियां यज्ञों में विद्ध पादुकाख्य स्थान में अधिष्ठित नई कन्याओं की तरह सोहती है ।
अथवा,
यह अध्यापिका तथा उपदेशिका (बभ्रू) गढ़ी हुई नवीन पादुकाओं पर (विद्रधे नव द्रुपदे) छोंटी लड़कियों की तरह (अर्भके कनीनिके इव) यम नियमों पर आरूढ़ हो (यामेषु) शोभती हैं । (४) विकुपिताधोभागः (जिसका अधोभाग विकुषित हो) ।

विद्रव- अलग हो ।

विद्रवन्ति- पृथक् पृथक् होकर दौड़ते या भागते हैं ।
'यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति'
ऋ. ६.७५.११
जिस संग्राम में मनुष्य एक साथ हो या पृथक् पृथक् दौड़ते या भागते हैं (संद्रवन्ति च विद्रवन्तिच) ।

विदा - बुद्धि ।
'शरीरमस्य सं विदाम्'
अ. ५.३०.१३

विदानः- (१) ज्ञानवान्, विद्वान् ।
'न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः'
ऋ. १.१६५.९; वाज.सं. ३३.७९; मै.सं. ४.११.३: १६९.७; का.सं. ९.१८.
(२) ठीक ठीक जानता हुआ ।
'विदानो अह्नवाय्यम्'
ऋ. ८.४५.२७

विदाने - द्वि.व. । (१) नाना विद्याओं को जानने वाले स्त्री पुरुष, (२) रात दिन
'उषासानक्ता पुरुधा विदाने'
ऋ. १.१२२.२

विदाय्यः- ज्ञान करने वाला
यन्ता नकिर्विदाय्यः'
ऋ. १०.२२.५

विद्मा, विद्मन् - विद् + मनिन् = विद्मन् । अर्थ - ज्ञान का बल ।
'अग्निर्हि विद्मना निदः
देवो मर्तमुरुष्यति'
ऋ. ६.१४.५.

विद्या- (१) विद् (जानना या प्राप्त करना) + यत् + टाप् = विद्या । अर्थ - (१) ज्ञान देने वाली बात या आत्म, विज्ञान ।
'ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्याम्'
ऋ. १०.७१.११; नि. १.८
एक सर्वज्ञ ब्रह्मा (ब्रह्मा) यज्ञ में तरह तरह के कर्तव्य कर्म के सम्बन्धों में (जाते जाते) ज्ञान देने वाली बात या आत्म विज्ञान कहता है (विद्याम् वदति) ।
(२) पारलौकिक ज्ञान देने वाली विद्या । लौकिक ज्ञान जिसे लोक संग्रह किया जाता है तथा जीविका पार्जन चलता है अविद्या है और पारलौकिक ज्ञान विद्या है ।
(३) शास्त्राभ्यास, (४) सम्यक् तत्व दर्शन ।
'य उ विद्यायां रताः'
वाज.सं. ४०.१२; ईश.उप. ९

विद्वान् वृत्रः- (१) अन्न प्राप्त करने वाला मेघ, (२) विद्वान् तथा विघ्नकारी शत्रु ।
'यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत्
प्र तं जनित्री विदुष उवाच'
ऋ. २.३०.२

विद्वान् - विद् (जानता) + क्वसु = विद्वसु । प्रथमा एक वचन का रूप है - विद्वान् ।
अर्थ-ज्ञाता ।
'तमद्य होतरिषितो यजीयान्
देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान्'
ऋ. १०.११०.९; अ. ५.१२.९; वाज.सं. २९.३४; मै.सं. ४.१३.३: २०२.१२; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.४; नि. ८.१४.

विद्धि- विद् (जानना) के लोट् म.पु. ए.व.का रूप । अर्थ है- जान, समझ, ।
'सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि.'
ऋ. १०.२७.१४;
अतः तू उसके उपकारों को जान ।

विदुक्षः- विदूदुषः विदूषितान् भ्रष्टान् (विदूषितों या भ्रष्टों का।

विदुक्ष् - विदूषित, भ्रष्ट।

विदुष्टरा- द्वि.व.। (१) द्यावापृथिवी।
या स्त्री पुरुष का विशेषण
(२) अति विद्वान्।
'दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टरा'
ऋ. २.३.७

विदुष्टरः- (१) विद्वत्तर। विद्वत् + तरप् = विद्वत्तर= विदुष्टर। - सा.
(२) विद्वानों को तारने वाला-दया.।
दूत ईयसे प्रदिव उराणः
विदुष्टरो दिव आरोधनानि'
ऋ. ४.७.८
हे अग्नि, आप पुराण एवं अल्प हवि को बहुत करने वाले (प्रदिवः उराणः) निकट से स्वर्ग के मार्गों से (दिवः आरोधनानि) देवताओं को हवि देने जाते हैं। (ईयसे) -सा.
अन्य अर्थ-
अनर्थ निवारक (दूतः) सनातन (प्रदिवः) विश्वकर्मा (उराणः) और विद्वानों को तारने वाले (विदुष्टरः) आप द्युलोक को नियम में रखने वाले कर्मों से (दिवः) आरोध नानि)। प्राप्त किए हो (ईयसे)-दया.।
(२) विद्वानों में श्रेष्ठ।
'प्र पाकं शास्सि प्र दिशो विदुष्टरः'
ऋ. १.३१.१४
तू परिपक्व ज्ञान का भली प्रकार उपदेश करता है। (पाकं प्रशास्सि) और विद्वानों में श्रेष्ठ होकर (विदुष्टरः) प्राची आदि दिशाओं तथा नाना विद्याओं के उपदेष्टा आचार्यों पर भी शासन करता है (दिशः प्र)।
(४) अधिक विद्वान्।
'देवान् यक्षि विदुष्टरः'
ऋ. १.१०५.१३
पुनः-
'वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः'
ऋ. २.१६.४

विद्युतः- (१) बाहुओं में पहनने वाले चमकीले आभूषण।
'अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः'
ऋ. ५.५४.११
(२) विशेष चमकने वाले शस्त्र अस्त्र।

विद्युतःज्योतिः - विद्युत् की ज्योंति के तुल्य दीप्ति मात्र जीव।
'विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानम्
मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा'
ऋ. ७.३३.१०

विद्युत्य- विद्युत् के विज्ञान में कुशल।
'नमो मेध्याय च विद्युत्याय च'
वाज.सं. १६.३८; तै.सं. ४.५.७.२; मै.सं. २.९.७: १२५.१३; का.सं. १७.१५

विद्युतस्ताः- (१) विद्युत् + हस्ताः। हाथ में विद्युत रखने वाला मरुत्, (२) विशेष चमकीले शस्त्र या आभूषण हाथ में रखने वाले।

विद्युद्रथ- (१) विद्युत से चलने वाले रथ का स्वामी, (२) विद्युत् के समान रमणीय स्वरूप वाला।
'विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्नि'
ऋ. ३.१४.१
(२) विद्युत् शक्ति से युक्त रथ वाला, (३) विद्युत् के समान वेग से जाने वाला।
'विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तः'
ऋ. ३.५४.१३

विद्युन्मत्- (१) बिजली युक्त मेघ (२) तारयन्त्रादि विद्युत जिसमें रहे- विमान आदि।
'आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कैः'
ऋ. १.८८.१; नि. ११.१४.
हे विद्वान् पुरुषो या मरुतो, विद्युत् वाले मेघों सहित, सूर्य के पालन सामर्थ्यों और गमन वेगों वाले उत्तम किरणों से युक्त ...आओ (३) विशिष्ट दीप्ति युक्त, (४) विद्युत् के सदृश आयुध

विद्युन्महसः- (१) विद्युत् विद्या में जो महान् हो-दया.। (२) विद्युत् की कान्ति से चमकने वाले-वायु।
(३) विशेष द्युति से चमकने वाले।
'विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवः'
ऋ. ५.५४.३; आश्व.श्रौ.सू. २.१३.७,

विदेव- विविध देशों का विजय करने वाला।
'विदेवस्त्वा महानग्नीर्विबाधते'
अ. २०.१३६.१४

विदेश्य - सब देश में विशेष रूप से रहने वाला ।
'यः संदेश्यो वरुणो यो विदेश्यः'
अ. ४.१६.८

विद्रे- विद् (प्राप्त करना) + रक् = विद्र । अर्थ है-प्राप्त करने के लिए -सा.
'विद्रे प्रियास्य मारुतस्य धाम्नः'
ऋ. १.८७.६; तै.सं. २.१.११.२; ४.२.११.२; मै.सं. ४.११.२: १६८.१; का.सं. ८.१७.
प्रिय मरुतों के स्थान की प्राप्ति के लिए (प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः विद्रे) -सा.
मानुषिक प्रिय तेज प्राप्त करते हैं . दया. ।

विद्वेषणः- (१) विरुद्ध आचरण करने वाले पुरुषों का द्वेषी इन्द्र (२) द्वेषभावों से रहित ।
'विद्वेषणं संवननोभयंकरम्'
ऋ. ८.१.२; अ. २०.८५.२; साम. २.७.११

विद्वेषाः - परस्पर के द्वेष से रहित स्त्रीपुरुष ।
'विद्वेषसमनेहसम्'
ऋ. ८.२२.२

विद्योतमान- (१) विविध विद्युतों को उत्पन्न करने वाला मेघ प्रकाशमान, (३) विविध विद्याओं को प्रकाश देने वाला पुरुष ।
'विद्योतमानाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.२६; तै.सं. ७.५.११.१; का.सं. (अश्व) ५.२.

विधक्षत- नाना प्रकार से संतप्त करता हुआ ।
'दधृग् विधक्षन् परीङ्खयाते'
अ. १८.२.५८

विधक्ष्यन् - विपरीत पायादि को दग्ध करना चाहता हुआ ।
'दधृग्विधक्ष्यन् पर्यङ्खयाते'
ऋ. १०.१६.७

विधत्- (१) परिचर्या करता हुआ ।
'सो अस्य विधतो न रोषति'
ऋ. ८.९९.४; अ. २०.५८.२;
वह परमात्मा इस परिचर्या करने वाले भक्त की कामना को भंग नहीं करता ।
(२) विशेष विशेष कार्य या राजसेवा करने वाला पुरुष ।
'होतेव सद्म विधतो वि तारीत्'
ऋ. १.७३.१
होता या सुखप्रद दाता विशेष विशेष कार्य या राज सेवा करने वाले पुरुष को आश्रय अर्थात् रहने का घर देवे (विधतः सद्म वितारीत्) (३) सेवा स्तुति करने वाला (४) कार्य करने वाला (५) मन, प्राण आदि ।
'त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यम्'
ऋ. २.१.५
(६) विविध लोकों को धारण करने वाला,-सूर्य (७) विशेष शिल्प रचना करने वाला पुरुष, (८) विविध विविध रीति से धारण करने वाला-
वर आ सूर्येव विधतो रथं गात्
ऋ. १.१६७.५

विधन् - (१) विशेष उपाय करता हुआ (२) परिचर्या करता हुआ ।
'इयं विधन्तो अपां सधस्थे'
ऋ. २.४.२; १०.४६.२
(२) सेवा करने वाला ।
'सत्योऽविता विधनम्'
ऋ. ८.२.३६

विधनस्- (१) बहुत धनवाला-सा. (२) त्यागी-दया. ।
'गोधायसं विधनसैरदर्दः'
ऋ. १०.६७.७; अ. २०.९१.७; मै.सं. ४.१४.१०: २३०.१०; तै.ब्रा. २.८.५.१.
बृहस्पति ने विशेष धन रखने वाले आङ्गिरसों के साथ गौ, वाणी या जलों के धारण मेघ को विदीर्ण किया ।

विधमा- वह स्त्री जो क्रोध की धोकनी रूप हो, अति चण्डी ।
'गोषेधां विधमामुत'
अ. १.१८.४

विधरणी- लोगों को पृथक् पृथक् स्थापित करने वाली शक्ति ।
कृष्णाद्रं विधरणी निवेष्यः ।
अ. ९.७.४

विधर्ता - वि + धृ + तृच् = विधर्तृ । प्रथमा एक वचन में रूप विधर्ता । अर्थ है- विधारयिता, विशेष रूप से धारण करने वाला, (२) आदित्य का विशेषण, (३) समस्त सृष्टि को अपने अनुग्रह से घायल करने वाला ।
'प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवम'

वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता '
ऋ. ७.४१.२; ३.१६.२; वाज.सं. ३४.३५; तै.ब्रा. २.८.९.७; आप.मं.पा. १.१४.२; नि. १२.१४.
(४) मृत्यु । यह सभी प्राणियों का धारण करने वाला है । (५) विविध उपायों से धारण करने वाला स्वरूप ।
'यस्य द्विता विधर्तरि '
ऋ. ८.७०.२; अ. २०.९२.१७; १०५.५; साम. २.२८४

विधर्म – नाना प्रकार का धारक कर्म
'मूर्धा च मा विधर्मा च मा हासिष्टाम्'
अ. १६.३.२

विधर्मणि ज्योतिः– विशेषधर्म वाले आत्मा में ज्योति रूप से विद्यमान परमेश्वर ।
'कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि '
साम. १.४५८; अ. ७.२२.१.

विधर्मन् – (१) विशेष रूप से धारण करने वाला–अन्तरिक्ष ।
'विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि '
ऋ. १.१६४.३६
(२) विविध धर्मों को धारण करने वाला यज्ञ या उपासना, (३) विविध धर्मों से युक्त शासनकार्य ।
'क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधमीणि '
ऋ. ३.२.३

विधवा– वि + धनव + टाप् = विधवा । विधवना = विधवा = विधावना = विधना अर्थ–(१) गत भर्तृका स्त्री (जिसका पति मर गया हो) । विधवा विधातृका भवति, विधवनात् वा विधावनात् वा इति चर्मशिराः । अपिवा धव इति, मनुष्यनाम, तद्वियोगात् विधवा ।
अर्थात् 'विधवा' धाता पोष्टा या पति से हीन, या भर्ता के मरने से जो विशेष रूप जहां तहां धाती या घूमती फिरती है । यह चर्मशिरा आचार्य का मत है । अथवा धव का अर्थ मनुष्य है या पति है । उससे वियुक्त विधवा है ।
अंग्रेजी का Widow शब्द इसी 'विधवा' शब्द से बना है । जैसे–विधवा, विद्व विडव ।
'कस्ते मातरं विधवामचक्रत् '
ऋ. ४.१८.१२

विधा– राष्ट्र शरीर का विधाता आप्त पुरुष ।
'सजूर्विधाभिः '
वाज.सं. १४.७

विधाता– (१) सृष्टि के आदि में कानून देने वाला ।
'धात्रे विधात्रे समृधे '
अ. ३.१०.१०; १९.३७.४
(२) वि + धा + तृच् = विधातृ । अन्न आदि आजीविका का स्रष्टा –आदित्य,
(३) इन्द्रियों के विषयों का स्रष्टा–आत्मा ।
'धाता विधाता परमोत संदृक् '
ऋ. १०.८२.२; वाज.सं. १७.२६; तै.सं. ४.६.२.१; ५.७.४.३; का.सं. १८.१; नि. १०.२६
सभी जीवों का उत्पादयिता, अन्न आदि आजीविका का स्रष्टा ।
अथवा,
अपनी शक्ति का धाता तथा तद् भोग्य विषयों का विधाता ।
(४) मृत्यु । धाता का विपरीत धाता का अर्थ वायु किया गया है तथा विधाता का मृत्यु (५) एक मध्यमस्थानी देवता जिसे विधि या ब्रह्मा कहते हैं ।

विधु– (१) विशेष प्रकार की पीड़ा ।
'हृदयस्य च यो विधुः '
अ. ९.८.२२.
(२) धोंकनी के समान प्राण धारण करने वाला जीव ।
'विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे '
अ. ९.१०.९; वै.सू. ४०.७; ४१.१२
(३) विविध चेष्टा करने वाला ।
'विधुं दद्राणं समने बहूनाम् '
ऋ. १०.५५.५; साम. १.३२५; २.११३२; मै.सं. ४.९.१२: १३३.१०; ऐ.आ. ५.३.१.२; तै.आ. ४.२०.१; नि. १४.१८

विधूत– (१) शत्रुओं को परास्त कर चुका हुआ, (२) पाप मल से रहित ।
'विधूताय स्वाहा '
वाज.सं. २२.८; तै.सं. ७.१.१९.३; मै.सं. ३.१२.३: १६१.४; का.सं. (अश्व.) १.१०.

विधूचान्– धूनता हुआ ।
'विधून्वानाय स्वाहा '
वाज.सं. २२.८; तै.सं. ७.१.१९.३; मै.सं. ३.१२.३:

१६१.४; का.सं. (अश्व.) १.१०.

विधूपायत्- विविध प्रकार से सन्ताप देता हुआ ।
'तद्वै ततो विधूपायत्'
ऋ. ४.१९.६

विधृति- विशेष रूप से लोकों को धारण पालने करने की शक्ति
विधृतिं नभ्या
वाज.सं. २५.९; मै.सं. ३.१५.८: १८०.१

विधृते- (१) विशेष रूप से प्रकाशमान (२) विविध रूप से जलों को धारण करने वाली द्यावा पृथिवी (३) विभिन्न प्रकार से ज्ञान और भौतिक तेज से प्रकाशित होने वाले जीव और प्रकृति ।

विधेय- परिचरेय (परिचर्या, पूजा करते हैं) । पाणिनियों ने 'विध' धातु को विधान अर्थ में प्रयुक्त किया है । 'धा' धातु दानार्थक है । इन्हीं दोनों धातुओं के लिङ् उत्तमपुरुष ब व. का रूप है ।
'कस्मै देवाय हविषा विधेम'
ऋ. १०.१२१.१-९; अ.४.२.१-८; वाज.सं. १२.१०२; १३.४; २३.१,३; २५.१०-१३; २७.२५, २६; ३२.६,७.
उस प्रजापति को हम हवि से परिचर्या करते हैं ।

विनङ्गृसः- विविध काम्य पदार्थों को ग्रहण करने वाला क्षत्रिय वीर ।
'अन्वस्मै जोषमभरद्विनंगृसः'
ऋ. ९.७२.३

विनद्धा- खुली हुई, बन्धन रहित ।
'विनद्धा गर्दभीव'
अ. १०.१.१४

विनयः- (१) विनीत, विनयशील ।(२) राज्य कर्म को विविध रीति से चलाने में समर्थ ।
'सं संनयः स विनयः पुरोहितः'
ऋ. २.२४.९

विनंशी आन्त्यायन - (१) विविध प्रकार से विनाश को प्राप्त होने वाला, (२) अन्तिम, चरम, निम्न कोटि तक पहुंच राजा, (३) मार्गशीर्ष (५) हिम शीत द्वारा सबका विनाशक, (५) सबके अन्त में स्वयं शेष रह जाने वाला ।
'विनंशिन आन्त्यायनाय स्वाहा'
वाज.सं. ९.२०; १८.२८; श.ब्रा. ५.२.१.२

विनिक्त- (१) विस्तृत, (२) परिशुद्ध, ।

विनिक्ष, विनिक्षे- विविक्षणाय, विहिंसनाय । क्षण् (हिंसार्थक धातु) + ड = क्ष । वि + नि + क्ष = विनिक्ष = विशेष प्रकार से हिंसा करने वाला ।
'विनिक्षाय' के स्थान । में 'विनिक्षे' का प्रयोग आर्ष है । अर्थ- विनाश के लिए ।
'शिशीते श्रृंगे रक्षसे विनिक्षे'
ऋ. ५.२.९; तै.सं. १.२.१४.७; नि. ४.१८.
अग्नि अपनी ज्वालाओं को राक्षसों के विनाश के लिए तीक्ष्ण करता है । जैसे बैल अपने सीगों को -सा.
तेजस्वी पुत्र राक्षसों को मारने के लिए अपने प्रभाव तथा प्रताप को तीक्ष्ण करता है । -दया.

विनिर्हत- जिसमें बहुत लोग मारे जाते हैं ।
'मा घोषा उत् स्थुर्बहुले विनिर्हते'
अ. ७.५२.२.

विनुद्- (१) विशेषतया प्रेरक -दया. (२) विविध प्रेरणा ।
'विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते'
ऋ. २.१३.३

विनुदस्व- भगा दे । वि + नुद् धातु के लोट् म.प्र.ए.व. का रूप ।
'ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व'
ऋ. १०.८४.२; अ. ४.३१.२.
हे मायु, हमें बल देकर (ओजः मिमानः) शत्रुओं को (मृधः) भगा (विनुदस्व) ।

विन्दु- भिद् + उ = विन्दु (भ का व) । जो भेदन करता है वह विन्दु है ।

विन्धे- विन्दामि (जानता हूँ) ।
'न विन्धे अस्य सुष्टुतिम्'
ऋ. १.१७.७; अ. २०.७०.१३; नि. ६.१८.
मैं यह नहीं जान पाता हूँ (न विन्धे) कि इस इन्द्र की स्तुति की समाप्ति कब होती है (अस्य सुष्टुतिम्) ।

विप् - मेधावी पुरुष, विद्वान् ।
'अर्यो विपो जनानाम्'
ऋ. ८.१.४; अ. २०.८५.४
'विपामग्रे महीयुवः'
ऋ. ९.९९.१; साम. १.५५१

विपत्मन् - (१) विशेषण गमनशील-दया.

(२) विविध विद्या एवं विज्ञानों से युक्त ।
'युवमत्यस्याव नक्षथो यत्
विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः'
ऋ. १.१८०.२

विप- (१) मेघों का पिता या मेघों का क्षेप्ता इन्द्र का विशेषण । vapour और 'विप' की समानता विचारणीय है ।
'अस्तृणाद्बर्हणा विपः'
ऋ. ८.६३.७
मेघों का पिता या क्षेप्ता (विपः) उस इन्द्र ने बड़े वज्र से (बर्हणा) मेघों को मारा (अस्तृणात्) ।

विपथवाह- रथ लाने वाला घोड़ा ।
'मातरिश्वा च पवमानश्च विपथवाहौ'
अ. १५.२.७

विपथा- (१) नानामार्ग, (२) नाना मार्गों में चलने वाला रथ ।
'भूतं भविष्यच्च परिष्कन्दौ मनो विपथम्'
अ. १५.२.६

विपथि- (१)विविधाः विरुद्धाः वा पन्थानः यस्य विविध या विरुद्ध मार्गों वाला-दया. ।
(२) विशेष मार्ग वाला ।
'आपथयो विपथयः'
ऋ. ५.५२.१०

विपन्या- विशेष रूप से गुणों का वर्जन करने वाली वाणी ।
'प्र वोचाम विपन्यया'
ऋ. १०.७२.१

विपन्यु- नाना प्रकारसे स्तुति करने वाला ।
'तद् विप्रासो विपन्युवः
जागृवांसः समिन्धते'
ऋ. १.२२.२१; साम. २.१०२३,
उस परमेश्वर के स्वरूप को विविध प्रकार से स्तुति करने वाले जागरूक पुरुष ही प्रकाशित करते हैं ।

विपर्वम् - (क्रि.वि.) । विगत सन्धि बन्धनं कृत्वा (पर्व पर्व अर्थात् गाँठ गांठ काट कर) ।
'यस्य त्रितो व्योजसा
वृत्रं विपर्वमर्दयत्'
ऋ. १.१८७.१; वाज.सं. ३४.७; का.सं. ४०.८; नि. ९.२५
जिसके प्रभाव से तीनों लोकों में अप्रतिहत इन्द्र या परमेश्वर (त्रितः) ने वृत्रासुर या मेघ को खण्ड खण्ड काट कर (विपर्वम्) विदीर्ण किया (व्यर्दयत्) ।

विपरु- (१) सन्धि स्थानों में नाना प्रकार की चेष्टा करने वाला सर्पदष्ट पुरुष-सा. (२) नाना पोरुओं वाला सर्प-ज.दे.श. ।
'अयं यो वक्रो विपरुर्व्यङ्गः'
अ. ७.५६.४

विपश्यत्- विपरीत शत्रुभाव से देखने वाला ।
'सर्वस्मै च विपश्यते'
अ. १९.३२.८

विपश्चित् - (१) ज्ञान और कर्म का संचय करने वाला मेधावी, आत्मा ।
'विपश्चिते पवमानाय गायत'
ऋ. ९.८६.४४; साम. २.९६५; तै.ब्रा. ३.१०.८.१
(२) समस्त ज्ञानों और कर्मों को जानने वाला परमेश्वर ।
'धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे'
ऋ. ८.९८.१; अ. २०.६२.५
(३) सूर्य,
(४) रोहित ।
'विपश्चितं तरणिं भ्राजमानम्'
अ. १३.२.४
(४) विपः + चित् । ब्रह्मवेला, तत्ववेत्ता ज.दे.श.
'ब्रह्मैनद् विद्यात् तपसा विपश्चित्'
अ. ८.९.३
(६) विद्वान् स्तोता -सा.

विपश्चिताम् असुरः - (१) विद्वान् स्तोताओं के मध्य में प्रज्ञावाला -सा.
(२) तत्व वेत्ताओं का प्राण दाता ।
'पिता यज्ञानामसुरो विपश्चिताम्'
ऋ. ३.३.४
यज्ञों का पालयिता (यज्ञानां पिता) तथा विद्वान् श्रोताओं के मध्य में प्रज्ञादाता या तत्व वेत्ताओं का प्राणदाता (विपश्चिताम् असुरः)-अग्नि या परमेश्वर ।

विप्र- (१) जगत् को विशेष प्रकार से विविध पदार्थों से पूर्ण करने वाला-परमेश्वर ।
'इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्'
ऋ. ८.९८.१; अ. २०.६२.५; साम. १.३८८;

२.३७५; पंच.ब्रा. १३.६.३; ऐ.आ. ५.२.५.२; आश्व.श्रौ.सू. ७.८.२; शां.श्रौ.सू. ९.५.९; १२.१२.१२; १८.१३.१०; वै.सू. ४१.१७; नि. ७.२

(२) विविध रूप से कामनाओं को पूर्ण करने वाला-आंजन ।

'विप्रं भेषजमुच्यसे'

अ. १९.४४.१

(३) विविध ऐश्वर्य और ज्ञानों से पूर्ण और अन्यों को पूर्ण करने वाला (४) ब्राह्मण, (५) बुद्धिमान पुरुष ।

'विप्रेभिरस्तु सनिता'

ऋ. १.२७.९; साम. २.७६७

ब्राह्मणों या बुद्धिमान् पुरुषों द्वारा अन्न ऐश्वर्य और ज्ञान समस्त प्रजाओं में विभक्त करने वाला होता (सनिता अस्तु) ।

(६) वि + प्रा (पूरणार्थक) + अच् = विप्र । विविध प्रकार से सत्कामनाओं को पूर्ण करने वाला- विप्र, ऋत्विक् यजमान,।

'मतीनां च साधनं विप्राणां चाधवम्'

ऋ. १०.२६.४; नि. ६.२९

मनोरथों या बुद्धियों के साधक तथा मेधावियों को अपनी गुणवत्ता से आकम्पित करने वाले या ब्राह्मणों के प्रेरक पूषा को.....।

विप्रऋषिः –

अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति

ऋ. १.१६२.७; वाज.सं. २५.३०; तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं. ३.१६.१ : १८२.५; का.सं. (अश्व.) ६.४.

इस अश्व को विप्र ऋषि मोदित करें ।

विप्रमन्मा – विद्वान् मेधावी का मननयोग्य ज्ञान ।

'विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः.'

ऋ. ६.३९.१

विप्रराज्य- विप्रों या विद्वानों का शासक ।

'सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवः
यज्ञेषु विप्रराज्ये'

ऋ. ८.३.४; अ. २०.१०४.२; साम. २.९५८; वाज.सं. ३३.८३.

विप्रजूत- विप्रों द्वारा अर्चित ।

'विप्रजूतः सुतावतः'

ऋ. १.३.५; अ. २०.८४.२; साम. २.४९७; वाज.सं. २०.८८.

विप्रथते- (१) विविधमेव वेद्यां प्रथितं भवति (विविध प्रकार से वेदी पर प्रथित होता है) । अर्थ बिछाया जाता है-सा. ।

(२) सम्पूर्ण वायुमण्डल में व्याप्त होता है ।

'व्यु प्रथते वितरं वरीयः'

ऋ. १.१२४.५; १०.११०.४; अ. ५.१२.४; वाज.स. २९.२९; मै.सं. ४.१३.३; २०२.२; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.२; नि. ८.९

विप्रः न जातवेदाः- (१) ब्राह्मण के समान वेदज्ञ क्षत्रिय -दया. ।

(२) ब्राह्मण के समान जातप्रज्ञ या मेधावी अग्नि-सा.

'अग्नि होतारं मन्ये दास्वन्तम्
वसुं सूनुं सहसो जातवेदसम्'
विप्रं न जातवेसम् ।'

ऋ. १.१२७.१; अ. २०.६७.३; साम. १.४६५; २.११६३; वाज.सं १५.४७; तै.सं. ४.४.४.८; मै.सं. २.१३.८: १५८.३; का.सं. २६.११; ३९.१५

मैं विप्र के अग्रणी वेदज्ञ क्षत्रिय को अग्रणी या राजा मानता हूँ (अग्निं मन्ये) - दया. ।

मैं विप्र के समान मेधावी अग्नि की पूजा करता हूँ (अग्निं मन्ये) -सा.

विप्रवाहसा- द्वि.व.। (१) अश्विद्वय का विशेषण ।

(२) विविध ऐश्वर्यों और विद्याओं से अपने को पूर्ण करने वाले शिष्यों को धारण करने वाले ।

को वामद्य पुरूणाम्
'आ वव्ने मर्त्यानाम्'

ऋ. ५.७४.७

विप्रवीरः- (१) उत्कृष्ट वीर, विप्रों में वीर ।

'भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षाम्'

ऋ. १०.४७.५; मै.सं. ४.१४.८: २२७.१४

विपा- द्वि.व. । (१) विविध प्रकार से पालन करने वाले- मित्रावरुणा ।

'वरुणाय विपा गिरा'

ऋ. ५.६८.१; साम. २.४९३

(२) स्त्री.ए.व.। विशेष रूप से पालन करने वाली वेद वाणी ।

(३) वाक्

(४) विशेष पालकशक्ति ।

'एष देवो विपा कृतः'

ऋ. ९.३.२; साम. २.६१०

विपाका- (१) विविध फलों को पकाने वाली, (२) विविध गुणों से परिपक्व ।
'त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती'
ऋ. १.१६८.७

विपाट्- (१) विपाटनात् वा विपाशनात् वा पाशा अस्यां व्यापश्यन्त वसिष्ठस्य मूमूर्च्छत् तस्मात् विपाठ् उच्यतेनि. (१) विपाशा नाम की नदी जिसे आज व्यास कहते हैं ।
(२) शरीर की नाड़ी जहां विपाटन होता है और जिसके फटने से प्राण देह को त्याग देते हैं ।
'विपाट् छुतुद्री पयसा जवेते'
ऋ. ३.३३.१; नि. ९.३९
विपाशा और शुतुद्रि नदियाँ जल से पूर्ण वेग से बहती हैं ।
(३) अपने तटों को तोड़ती फोड़ती
(४) एक दूसरे के पाशफन्दों , ऋणादि बन्धनों को दूर करने वाले स्त्रीपुरुष
(५) प्रजा बन्धनों को छुड़ाने वाले सेना और सेनापति
(६) देह में उत्तम वसु अर्थात् जीव के पाशों को छिन्न भिन्न करने वाले प्राण, अपान या आत्मा परमात्मा ।

विपाशा- नदी । नदी का नाम विपाशा इस लिए पड़ा कि यह भूमि को तीव्र वेग से काटती है । विपाट् विपाटनात् वा विपाशनात् वा, विप्रापणात् वा । वि + ण्यन्त पट् (भेदनार्थक) + क्विप् = विपाट् ।
अर्थ - (१) इसमें पाशों अर्थात् बन्धनों से मुक्ति मिलती है ।
(२) वि + पाश् + क्विप् = विपाट् । इसमें उदक का प्रवाह होता है ।
(३) वि + पट् + क्विप् = विपाट् । कहा जाता है कि वसिष्ठ ने विश्वामित्र के शाप से पुत्रों के मरण से दुःखी हो अपने को बांधकर उरुञ्जिरा नदी में छोड़ दिया । फिर इस नदी के उग्र प्रवाह के बल से उनके बन्धन खुलने से यह नदी विपाशा कही गई ।

विपाशिन्- वि.न.। वि + पाश + इन् = विपाशिन् ।
अर्थ - (१) बंधनों से मुक्त,
(२) मेघ का विशेषण । जब मेघ बरस कर पृथ्वी पर आ जाता है उस समय वह बन्धन मुक्त हो जाता है ।
(३) विपाशा नदी के तट पर पड़ा हुआ-सा. ।
'एतदस्या अनः शये
सुसंपिष्टं विपाश्या'
ऋ. ४.३०.११; नि. ११.४८
यह उषा का आश्रयभूत मेघ (अनः) वायु से संचूर्णित हो तथा सभी बंधनों से रहित हो (विपाशि) सोया हुआ है (आशये) ।
अथवा,
इस उषा का इन्द्र द्वारा संचूर्णित शकट (अनः) विपाशा नदी के तीर पर (विपाशि) पड़ा हुआ है (आशये) ।

विप्राणाम् आधवः- (१) मेधावियों की गुणवत्ता को आकम्पित करने वाला या ब्राह्मणों का प्रेरक पूषा देव ।

विपिपानः- (१) विशेष रूप से पान करता हुआ ।
'वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात्'
ऋ. ४.१६.३; अ. २०.७७.३
(२) ओषध, रसाना विविधं पानं कर्तुं शीलं यस्य सः-दया. । विविध ओषधादि रस का पालक पुरुष,
(३) विविध विद्याओं के ज्ञान रस को पान करने वाला शिष्य....ज.दे.श. ।
'याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतम्
कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः'
ऋ. १.११२.१५
जिन उपायों से वमन करने वाले और विविध ओषधि रसों के पालक या विविध विद्याओं के ज्ञान रस को पान करने वाले शिष्य की रक्षा करते हो और जिन उपायों से धनराशियों को गिनने में कुशल पुरुष की (कलिम्) तथा धन को अपनी स्त्री के समान पालने वाले धनाढ्य पुरुष की या नववधू को प्राप्त करने वाले पुरुष की (वित्तजानिम्) रक्षा करते हो ।
(४) विशेष रूप से रक्षा करता हुआ,
(५) वि + विपानः । विविध प्रकार से रसों को अपने भीतर पालन करने वाला ।
'श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेः'
ऋ. १.२२.४; साम. २.११४८; ऐ.ब्रा. ५.४.१९

विपिपाना- द्वि.व. । नानाकर्मों से रक्षा करने वाले ।
'विपिपाना शुभस्पती'

ऋ. १०.१३१.४; अ. २०.१२५.४; वाज.सं. १०.३३; का.सं. १७.१९; ३८.९; श.ब्रा. ५.५.४.२५; तै.ब्रा. १.४.२.१; आप.श्रौ.सू. १९.२.१९

विप्रुट् - विशेष पूर्णरूप करने वाला । शरीर का वसा आदि धातु ।
'मरीचीर्विप्रुड्भिः'
वाज.सं. २५.९; मै.सं. ३.१५.८: १८०.१

विप्रुत- विप्रवमाण, चलाई हुई, विचलित ।
'विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तम्
उन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण'
ऋ. १.११६.२४
विप्लव अर्थात् धर्मनाश में प्रवृत्त सन्मार्ग से विचलित राजा को (उदनि प्रवृक्तम् विप्रुतं रेभम्) उसी प्रकार उन्नत करें जैसे सोमरस को यज्ञ पात्र में से स्रुवा से निकाला जाता है ।

विपृक् - (१) पाप से पृथक् रखने वाला पुरुष, (२) विविध विषयों का विवेक करने वाला ।
'विपृच स्थ वि मा पाप्मना पृङ्क्त'
वाज.सं. १९.११; वाज.सं.(का.) १०.१.६; २१.११; का.सं. ३७.१८; श.ब्रा. १२.७.३.२२; तै.ब्रा. १.३.३.६; २.६.१.५; आप.श्रौ.सू. १८.७.१

विपृक्त- (१) स्वरूपेण सम्पर्क रहितः -दया.
(२) विशेष प्रकार से स्नेहवान, और विद्या सम्बन्ध से सम्बद्ध (३) विपरीत मार्ग से दूर रखने वाला ।
'असि सोमेन समया विपृक्तः'
ऋ. १.१६३.३; वाज.सं. २९.१४; तै.सं. ४.६.७.१; का.सं. ४०.६
तू अपने प्रेरणा करने वाले आचार्य और योग्य शिष्य के सदा साथ विशेष प्रकार से स्नेह वान् और उसे विपरीत मार्ग से परे रखने वाला ही....।
(४) संयुक्त ।

विपृक्वत् - विपृक् + वत् । पापदि को दूर करने वाले वीर या विद्वान् पुरुष से युक्त ।
'ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत्'
ऋ. ५.२.३

विपोधा- नाना ज्ञानों और कर्मों को धारण करने वाला ।
'प्रभूर्जयन्त महाँ विपोधाम्'
ऋ. १०.४६.५; साम. १.७४

विभक्ता- (१) नाना प्रकार के ऐश्वर्य का विभाग करने वाला-परमेश्वर । (२) सविता ।
'विभक्तारं हवामहे'
ऋ. १.२२.७; वाज.सं. ३०.४; श.ब्रा. १०.२.६.६
(३) जलों के कणों में विभाग करने वाला सूर्य ।
'विभक्तासि चित्रभानो
सिन्धोरूर्मा उपाक आ'
ऋ. १.२७.६; साम. २.८४८
(४) धन बांटने वाला ।
'भगो विभक्ता शवसावसा गमत्'
ऋ. ५.४६.६

विभजस्व- विभाजन कर, बांट ।
'हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेदः'
ऋ. १०.८४.२; अ. ४.३१.२
हे सेनापति ! तू शत्रुओं को मार कर धन (वेदम्) विभाजित कर (विभजस्व) ।

विभञ्जनुः- शत्रुओं के बल को तोड़ डालने वाला ।
'विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौः'
ऋ. ४.१७.१३

विभजामि - बांटता हूँ ।
'अहं दाशुषे वि भजामि भोजनम्'
ऋ. १०.४८.१
मैं हवि देने वाले यजमान को या दानी को भोजन देता हूँ ।

विभ्वः- सामर्थ्यवान् पुरुष ।
'विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि'
ऋ. ७.४८.२

विभ्वतष्ट- (१) परमेश्वर से उत्पादित
(२) महान् सामर्थ्य से बना हुआ बलवान् पुरुष ।
'यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टम्'
ऋ. ३.४९.१
(३) मेधावियों में तीव्र प्रज्ञा -दया.
(४) मेधावी पुरुषों द्वारा उपदेश, ताड़ना, शिक्षा, विषयादि द्वारा तैयार किया गया, (५) मेधावियों के बीच तीव्र प्रज्ञा युक्त ।
'विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः'
ऋ. ५.५८.४

विभ्वतष्टा- अधिक शक्तिशाली शिल्पियों से बनाई गई - नदी ।
'वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः'

ऋ. ५.४२.१२

विभाती- (१) सूर्य प्रभा से दीप्तिमती उषा, (२) विशेष विद्या और कान्ति से चमकती स्त्री या कन्या ।

'विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत्'

ऋ. १.११३.१५

'अच्छा वो देवी उषसं विभातीम्'

ऋ. ३.६१.५

विभाव- (१) विशेष कान्ति से युक्त अग्नि, (२) आचार्य ।

'स्वर्ण चित्रं वपुषे विभावम्'

ऋ. १.१४८.१; मै.सं. ४.१४.१५: २४.१.१

विभावरी- (१) विशेष तेज से सम्पन्न रात्रि ।

'अहस्तुभ्यं विभावरि'

अ. १९.४८.२; ५०.७

(२) विशेष भा अर्थात् तेज से युक्त, तेजस्विनी उषा

(३) परमेश्वरी शक्ति का विशेषण ।

'कं नक्षसे विभावरि'

ऋ. १.३०.२०

हे तेजस्विनी, तू किस मनुष्य को प्राप्त हो सकती है ? सुखमय परमेश्वर को ही प्राप्त है ।

'महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो'

ऋ. १०.१४०.१; साम. २.११६६; वाज.सं. १२.१०६; तै.सं. ४.२.७.२; मै.सं. २.७.१४: ९५.१२; का.सं. १६.१४; श.ब्रा. ७.३.१.१९

(४) विशेष गुणों से प्रकाशमान स्त्री ।

विभावसु- वि + भा + वसु । (१) अपने विशेष प्रकाश से सबको बसाने और सर्वत्र स्वयं बसने वाला अग्नि ।

(२) व्यापक परमात्मा ।

विभावा- (१) विविध पदार्थों को प्रकाशित करने वाला विशेष कान्ति से प्रकाशमान ।

'विभुर्विभावा सख आ सखीयते'

ऋ. १०.९१.१; अ. १९.५२.२

(२) विशेष दीप्तिमान, परमेश्वर

(३) विविध विद्याओं के प्रकाश से युक्त-दया.

'स्पार्हो युवा वपुष्यो विभावा'

ऋ. ४.१.१२.

(४) विशेष कान्तिमान अग्नि ।

'आद् रोचते वन आ विभावा'

ऋ. १.१४८.४

'त्वं यमयोरभवो विभावा'

ऋ. १०.८.४

विभ्राष्टि- (१) आज्य (हवि) का गिरा हुआ स्वल्प भाग-सा.

(२) तेजस्विता-दया.

'घृतस्य विभ्राष्टिमनुवष्टि शोचिषा आजुह्वानस्य सर्पिषः'

ऋ. १.१२७.१; अ. २०.६७.३; वाज.सं. १५.४७; का.सं. २६.११; ३९.१५.

अग्नि चारों ओर से डाले जाने वाले (आजुह्वानस्य) सर्पणशील (सर्पिषः) घृत के (घृतस्य) विलोपन से दीप्त आज्य के गिरे हुए अल्प भाग को (विभ्राष्टिम्) अपनी ज्वाला से (शोचिषा) खा लेता है (अनुवष्टि) । -सा.

अन्य अर्थ,

जो भली प्रकार तपाकर स्वच्छ किए हुए आहूयमान घृत की दीप्ति से राज्य में तेजस्विता की कामना करता है (विभ्राष्टिम् अनुवष्टि) ।

(३) अग्नि की विविध देदीप्यमान ज्वाला ।

(४) विभ्रंश आज्य का गिरा हुआ स्वल्प भाग -सा.

(५) तेजस्विता -दया.

विभु , विभ्वा- (१) विभु = सर्वव्यापक । विभु + सु = विभ्वा (सौर्डा) । अर्थ-सर्वत्र व्यापक । उषा का विशेषण ।

'चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा'

ऋ. १.११३.१; साम. २.१०९९; नि. २.१९

पूजनीय या चयनीय, सभी पदार्थों का प्रकाशक, सर्वत्र व्यापक उषा काल आया ।

(२) वि + भू + डुन् = विभु । यास्क ने इस शब्द का अर्थ-विभूततमम् ' 'विस्तीर्णतमम् ' किया है । 'ऋभु' 'विम्वा' और 'वाज' ये तीनों ॐ कार वाची प्राजापत्य परमेश्वर के तीन पुत्र हुए ।

विशेषेण भाति इति विभ्वन् । 'ऋभु' वैश्य का, 'विभ्वन् ' क्षत्रिय का तथा वाज ब्राह्मण का वाचक है ।

(३) 'विभ्वन् ' शब्द का प्रथमा एक वचन में 'विभ्वा' रूप है । व्यापक परब्रह्म ।

'रथ इव बृहती विभ्वने कृता'

ऋ. ६.६१.१३

विभ्वासह्– बड़ों बड़ों को पराजित करने वाला ।
'होतर्विभ्वासहं रयिम्'
ऋ. ५.१०.७

विभिन्दती– फोड़ती हुई, शत्रुदल में फूट डालती हुई ।
'विभिन्दती शतशाखा'
अ. ४.१९.५

विभिन्दु– (१) भेद डालने वाला –रथ या रथ सेना ।
(२) विशाल कष्टों को तोड़ने वाला बलवीर्य अथवा,
(३) गृहस्थ के परस्पर रमणसाधन ।
(४) विविध दुःखों और अज्ञानों का नाशक ।
'शिक्षा विभिन्दो अस्मै'
ऋ. ८.२.४१

विभीतकः, विभीदक– वि + भिद् + ण्वल् (कर्म में) = विभीदक । बाहुलक से उपधा इ का दीर्घ । विभीदक से दस्त होता है । यही विभेदन है (विभीदको विभेदनात्) । 'विभीदक्' से ही 'विभीतक' हुआ है (कोष्ठयस्य विभेत्ता) । अर्थ है – (१) हर्रे ।
(२) जुआ, द्यूत ।
'विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान्'
ऋ. १०.३४.१; नि. ९.८
हर्रे मेरे लिए जगाने वाला तथा मन को आच्छादित करने वाला या वश करने वाला है ।
आजकल इसे विभीतक, विभीत, विभीतकी या विभीता भी कहते हैं ।
'विभीतकं स्वादुपाकं कषायं कफपित्तजुत्
उष्णवीर्यं हिमस्वर्शं भेदनं कफनाशनम्'
इसका नाम असवृक्ष भी है, हर्रे के फल को अक्ष भी कहते हैं ।

विभीदक – (१) बहेड़े के वृक्ष से उत्पन्न जुए का गोटा,
(२) विविध प्रकार से शरीर और आत्मा को तोड़ देने वाला विषय ।

विभीदकमन्यु– (१) वह मन्यु –क्रोध जिससे सभी प्राणी भय खाते हैं,
(२) असत्य से भय दिलाने वाला कारण ।
'सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः'
ऋ.७.८६.६

विभीषणः– विशेष रूप से भीषण इन्द्र ।
'इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणः'
ऋ. ५.३४.६

विभ्वी– (१) प्रचुर,
'तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीः'
अ. १८.३.६९; ४.२६; ४३.
(२) राष्ट्र भर में फैली हुई । प्रजा ।

विभुः– (१) सर्वव्यापक, विविध रूपों में सृष्टि कर्ता ।
'विभुर्विभावा सख आ सखीयते'
अ. १९.५२.२
'विभुवे स्वाहा'
वाज.सं. २२.३०; का.सं. ३५.१०; तै.ब्रा. ३.१०.७.१; आप.श्रौ.सू. १४.२५.११.
(४) बलवान्, महान् बली ।
(५) सामर्थ्यवान् ।
'विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि'
ऋ. ७.४८.२

विभुक्रतुः(१) बहुत सामर्थ्यवाला (२) अधिक प्रज्ञावान् ।
'पित्रे मात्रे विभुक्रतुम्'
ऋ. ८.६९.१५; अ.य २०.९२.१२

विभ्युषी– डरती हुई ।
'अयोषा अनसः सरत्
संपिष्टादह विभ्युषी'
ऋ. ४.३०.१०; नि. ११.४७
जब वायु से छिन्न भिन्न होते उषा देखती है तब वायु से डर जाती है ।

विभूतद्युम्न– अत्यधिक तेज, ऐश्वर्य अन्न और यश से सम्पन्न–सूर्य, विष्णु ।
'विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः'
ऋ. १.१५६.१; तै.ब्रा. २.४.३.८.

विभूतराति– प्रचुर दानशील ।
'विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषम्'
ऋ. ८.१९.२; साम. २.१०३८

विभूति– विविध सम्पदा ।
'विभूतिरस्तु सूनृता'
ऋ. १.३०.५; अ. २०.४५.२; साम. २.९.५०
यह उत्तम सत्यज्ञान से पूर्ण विविध सम्पदा है ।

विभृत – विविध द्रव्य धारक वायु ।

विभृतमातरिश्वा - विशेष बल को धारण करने वाला या विविध प्रजाओं का पालक, नली आदि के द्वारा विशेष उपाय से धारण किया जाकर वायु ।

'मथीद् यदीं विभृतो मातरिश्वा
गृहेगृहे श्यतो जेन्यो भूत्'

ऋ. १.७१.४

विशेष बल का धारक या विविध प्रजाओं का पालक पोषक नली आदि द्वारा विशेष उपाय से धारण किया हुआ वायु इस अग्नि को मथता है तब वह घर घर में श्येत होकर प्रकट होता है ।

विभृत्रा- (१) विविध प्रकार से प्रजाओं का भरण पोषण करने में कुशल, (२) विशेष धारण करने वाली ।

विभुमत्- ऐश्वर्य युक्त ।

'विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः'

ऋ. ८.९६.१६; अ. २०.१३७.१०; साम. १.३२६

विभूः- (१) विविध गुणों से युक्त -उदार

'विभूर्मात्रा प्रभूः पित्रा'

वाज.सं. २२.१९; तै.सं. ७.१.१२.१; मै.सं. ३.१२.४: १६१.८: श.ब्रा. १३.१.६.१; ४.२.१५; तै.ब्रा. ३.८.९.१; १७.१; आप.श्रौ.सू. २०.५.९; ११.१; मा.श्रौ.सू. ९.२.१.

विभूतद्युम्ना- प्रभूत ऐश्वर्य वाला परमेश्वर इन्द्र ।

'विभूतद्युम्नश्च्यवनः पुरुष्टुतः'

ऋ. ८.३३.६

विभूप्राण - चतुर्थ प्राण ।

'योऽस्य चतुर्थप्राणो विभूर्नाम'

अ. १५.१५.६

विभूवसुः- विभु + वसु = विभूवसु । अर्थ-बड़े बड़े लोकों में व्यापक ।

'इन्द्रस्य वज्रो वृषभो वृषभो विभूवसुः'

ऋ. ९.९२.७

विभृत्र- (१) विविध उपायों से भरण पोषण किया हुआ ।

(२) विविध रूप में विचारने वाला

(३) विविध पदार्थों को पुष्ट करने वाला- अग्नि ।

(४) विविध विज्ञानों को धारण करने वाला, (५) विविध विद्यार्थियों एवं प्रजाओं का पालक पोषक ।

'उतारुषाह चक्रे विभृत्रः'

ऋ. २.१०.२

(६) भरण पोषण योग्य, (७) विशेष प्रकार से पोसने वाला-दया. (८) विशेष रूप भृति द्वारा रक्षित राज पुरुष ।

'आ पुत्रा न मातरं विभृत्राः'

ऋ. ७.४३.३

विभृत्वा- (१) सर्वत्र विहार करने वाला । (२) प्रजा को विशेष रूप से भरण पोषण करने में समर्थ ।

'चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा'

ऋ. ९.९६.१९; साम. २.५२७

विमद- (१) प्रज्ञान धन रूप आत्मा, (२) मदरहित, अप्रमादी पुरुष ।

'यौ विमदमवथः सप्तवध्रिम्'

अ. ४.२९.४

(३) विशेष आनन्द

'याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुः'

ऋ. १.११२.१९

'ससेन चिद् विमदायावहो वसु'

ऋ. १.५१.३

विविध प्रकार के हर्षों और सुखों को प्राप्त करने के लिए ऐश्वर्य प्राप्त कर ।

विमध्य- विकलमध्यम, आधे से कुछ कम-सा.

'जगाम सूरो अध्वनो विमध्यम्'

ऋ. १०.१७९.२; अ. ७.७२.२

विमन्यवः- विविध प्रकार की बुद्धियाँ ।

'परा हि मे विमन्यवः
पतन्ति वस्यइष्टये
वयो न वसतीरुप'

ऋ. १.२५.४

पक्षी जिस प्रकार अपने रहने की जगहों के प्रति उड़ आते हैं उसी प्रकार हे वरुण, मेरी विविध प्रकार की बुद्धियाँ सब से श्रेष्ठ वास देने वाले सबके शरण रूप तुझे प्राप्त करने के लिए तेरे समीप तक पहुंचती है ।

विमन्युकः- क्रोध रहित ।

'अयं दर्भो विमन्युकः'

अ. ६.४३.१

विमनाः- (१) विभूतमनाः, सर्वप्रज्ञानः

(२) अप्रतिहत प्रज्ञान वाला आदित्य, का

परमात्मा

'सर्वत्र अप्रतिहतं प्रज्ञानं यस्य सः ।

यहाँ 'मनस्' शब्द प्रज्ञान अर्थ में लिया गया है ।

(३) विविध मन्त्रों का स्वामी (४) विशेष संकल्प वाला विश्वकर्मा ।

'विश्वकर्मा विमना आद्विहायाः '

ऋ. १०.८२.२; वाज.सं. १७.२६; मै.सं. २.१०.३: १३४.३; का.सं. १८.१; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१; नि. १०.२६.

विमंहत्- विविध ऐश्वर्य देने वाला ।

'जरितृभ्यो विमंहते '

ऋ. ८.४५.१२

विमहस् – (१) विशेष तेज से सम्पन्न ।

'मरुतो यस्य हि क्षये
पाथा दिवो विमहसः '

ऋ. १.८६.१; अ. २०.१.२; वाज.सं. ८.३१; तै.सं. ४.२.११.२; श.ब्रा. ४.५.२.१७.

(२) वायु,

(३) विद्वान् पुरुष ।

(४) विशेष रीति से आदर सत्कार करने योग्य ।

विमहसः- 'विमहस् ' का ब.व. रूप । अर्थ-विशेष सामर्थ्य वाले मरुत् ।

'विष्वर्धसो विमहसः '

ऋ. ५.८७.४

विमही- (१) विशेष रूप से बड़ी शक्ति (२) विशेष भूमि ।

'इन्द्रमिद् विमहीनाम् '

ऋ. ८.६.४४

विमुच- (१) अन्धकार से युक्त करने वाला पूषा-सा।

(२) विषयादिकों से विमुक्त विद्वान् - ज.दे.श. ।

'एहि वां विमुचो न पात् '

ऋ. ६.५५.१

हे प्रजाओं को अन्धकार से मुक्त करने वाला पूषन्, या विषयादिकों से विमुक्त विद्वान् ,हे सूर्य (नपात्), या कभी पतित न होने वाला, आ ।

विमान- (१) निर्माता ।

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भाः
ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने '

ऋ. १०.१२३.१; वाज.सं. ७.१६; तै.सं. १.४.८.१; मै.सं. १.३.१०:३४.१; का.सं. ४.३; श.ब्रा. ४.२.१.८,१०; नि. १०.३९.

यह वेन नामक मध्यमस्थानीय देव (विद्युत) गर्भ के जरायु के सदृश वेष्टक अर्थात् मेघरूपी जरायु में प्रकाशमान गर्भ सा स्थित (ज्योतिः जरायुः) जल के निर्माता अन्तरिक्ष में (रजसो विमाने) वर्तमान् हो आदित्य की रश्मियों में रहने वाले जलों को (पृश्निगर्भा) वर्षाऋतु में पृथ्वी की ओर प्रेरित करता है (चोदयत) ।

(२) मान्य ।

(३) कर्मों का साधन,

(४) विशेष रूप से मान्य,

(५) पार करने वाला विमान ।

'विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् '

ऋ. ३.३.४

विमिमीते- अत्यर्थं नाना प्रकार निर्मिमीते (नानाप्रकार से निर्माण या सम्पादित करता है) ।

'यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः '

ऋ. १०.७१.११; नि. १.८

और एक अध्वर्यु (त्वः) यज्ञ में क्या क्या होना चाहिए और कैसी किस मात्रा में वेदी बनायी जानी चाहिए (यज्ञस्य मात्राम्) इत्यादि कार्य सम्पादित करता है (विमिमीते) ।

विमुच् – खोल देने योग्य ।

'वि ते मुच्यन्तां विमुचो हि सन्ति '

अ. ६.११२.३

विमृग्वरी- नाना प्रकार से पवित्र करने वाली पृथिवी ।

'विमृग्वरीं पृथिवीमा वदामि '

अ. १२.१.२९

विमृधः – नाना प्रकार से युद्ध करने में समर्थ ।

'ओजस्वान् विमृधो वशी '

अ. ८.५.४.

विमोक – जल धारा बरसाने वाला मेघ ।

'विमोकश्च मार्द्रयविश्च मा हासिष्टाम् '

अ. १६.३.४.

विमोक्ता- दुःखों से मुक्त करने वाला

'क्षेमाय विमोक्तारम् '

वाज.सं. ३०.१४; तै.ब्रा. ३.४.१.१०

विमोचन- अश्वों को रथ से छुड़ाना ।
(२) दुःखों से छुड़ाने वाला -इन्द्र
(३) बन्धनों से छुड़ाने वाला ।
'रास्व रायो वियोचन'
ऋ. ८.४.१६
(४) खोलना, ढीला करना, (५) घोड़े को खोलने का स्थान-अस्तबल ।
(६) यन्त्रीय अश्व का विमोचन-दया.
'यत्रा रथस्य बृहतो निधानम्
विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत्'.
ऋ. ३.५३.६
जहां रथशाला (रथस्य निधानम्) तथा अश्वों का विमानगृह है (दक्षिणावत् वाजिनः विमोचनम्) । -यास्क
जहां विशाल यान के (बृहतः रथस्य) वेगवान् यन्त्राश्व का (वाजिनः) सप्रयोजन (दक्षिणावत्) नियोजन (निधानम्) और विमोचन होता है (विमोचनम्)- दया.

वियत्- (१) दिन, (२) दुष्टों का संयमन ।
'वियच्छन्दः'
वाज.सं. १५.५; तै.सं. ४.३.१२.२; मै.सं. २.८.७: १११.१६; कासं. १७.६; श.ब्रा. ८.५.२.५.

वियन्ता- द्वि.व. । विशेष रूप से बद्ध जीव और शरीर ।
'ता शश्वन्ता विषूचीता वियन्ता'
ऋ. १.१६४.३८; अ. ९.१०.१६; ऐ.आ. २.१.८.१३; नि. १४.२३

वियम- जिसका बन्धन खोल दिया जाय ।
'यत् संयमो न वि यमः'
अ. ४.३.७

वियातः- वि + यात् + श् = वियातः (जो यातना देता है) । यह प्रयोग चारों वेदों में नहीं मिलता ।

वियास- विविध अंगों का श्रम ।
'वियासाय स्वाहा'
वाज.सं. ३९.११; तै.सं. १.४.३५.१; का.सं. (आश्व.) ५.३; तै.आ. ३.२०.१

वियुक्- विशेष रूप से जुड़ी हुई दिव्य शक्तियाँ जिन से आत्मा देह का धारण करता है ।
'वियुग्भिर्वाय इह ता विमुञ्च'
अ. ७.४.१

वियुते- द्वि.व. । वि + यु + क्त = वियुत । द्यौ और पृथिवी दोनों विमिश्रीभूत अर्थात् एक दूसरे से मिले हुए हैं । या वियुक्त हैं । अतः वे 'वियुते' हैं ।
अर्थ - (१) अलग अलग वर्तमान द्यौ और पृथिवी । (२) सूर्य और पृथिवी दया.
'समान्या वियुते दूरे अन्ते'
ऋ. ३.५४.७; नि. ४.२५

वियोता - विविध प्रकार के संकटों से छुड़ाने वाला ।
'वि यदुच्छान् वियोतारो अमूराः'
ऋ. ४.५५.२

विर् (वीः)- (१) व्यापक -दया.
(२) पालक या प्राप्त करने वाला-ज.दे.श. ।
'कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसत्'
ऋ. १.१४३.६
अति विनीत विद्यार्थी हमारे बहुत से उत्तम बचनों के पालक और प्राप्त करने के इच्छुक हों ।

विरदा- विरद्, विलिख, छिन्धि । 'वि + रद' के लोट म.पु.ए.व. का रूप । अर्थ है - विदीर्ण कर, रौंद दे।
'गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चा'
ऋ. १.६१.१२; अ. २०.३५.१२; मै.सं. ४.१२.३; १८३.११; का.सं. ८.१६; नि. ६.२०
हे इन्द्र, तू तिर्यग् गामी वज्र से मेघों को उसी प्रकार विदीर्ण कर (विरदा) जैसे हिंसक पशुओं के जोड़ों को (गोः पर्व न) । -सा.
सूर्य जैसे तिरछी चाल से (तिरश्चा) मेघ के जोड़ो को (गोः पर्व) विदीर्ण करता है उसी प्रकार हे राजन् , तू दुष्टों को विदीर्ण कर ।
(२) दुर्ग ने वर्ण विपर्यय मान कर इसे 'विदर' अर्थात् 'विदारय' अर्थ किया है । 'विरदा' का प्रयोग छान्दस है ।

विरप्शः- महान् विष्णु ।
'मध्वश्चोतन्त्यभितो विरप्शम्'
ऋ. ४५०.३; ७.१०१.४; अ. २०.८८.३

विरप्शिन् - (१) रप् (रप् और लप् धातु व्यक्त वचन के अर्थ में आए हैं ।) + शक = रप्श । अर्थ है, बोलने वाला ।

विविधं रपन्ति इति विरप्शाः (जो विविध प्रकार से बोलता या स्तुति करता है वह वह विरप्श है)।
विरप्श + इनि (मत्वर्थीय) = विरप्शिन्। जिसे अनेकों स्तोता हो वह-इन्द्र।
विविधं रप्शं स्तुतिः यस्य स विरप्शिन्।
(३) विरावणशीलः (जो युद्ध में विशेष प्रकार से भयङ्कर हुंकार करता है) - दुर्ग
(३) भुजा स्फालनेन युद्धार्थं शत्रूणाम् आह्वानकारी (भुजास्फालन द्वारा शत्रुओं का आह्वान करने वाला)-सा.।
(४) दुष्टों को रुलाने वाला-दया.
'महाँ अमत्रो विजने विरप्शी
उग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः
नहां विव्याच पृथिवीं चनैनं
यत् सोमासो हर्यश्वममन्दन्'
ऋ. ३.३६.४; नि. ६.२३.
जो यह इन्द्र अत्यन्त सामर्थ्यवान्, अपरिमित मात्राओं से युक्त (अमत्रः) वेलोपलक्षित युद्ध में (वृजने) स्तोताओं से स्तुत किया जाता हुआ या भुजा स्फालन द्वारा शत्रुओं का आह्वान् करने वाला है (विरप्शी), उसका उग्रबल (उग्रं शवः) एवं घर्षण शील ओज (घृष्णु ओजः) सर्वत्र विस्तृत है (पत्यते), ऐसे इन्द्र को यह विस्तीर्ण भूमि भी व्याप्त नहीं करती (पृथिवी चन न विव्याच अहं) और द्युलोक भी नहीं जब (यत्) जब सोमरस इन्द्र को मत्त करता है (अमन्दन्)।
अन्य अर्थ - पूज्य दुराधर्ष एवं दुष्टों को रुलाने वाला राका (महान् अमत्रः विरप्शी) युद्ध में उग्रबल और इच्छुक पराक्रम प्राप्त करता है। (शवः धृष्णम् ओजः पत्यते) और यतः बलपराक्रम रूपी वीर्य से युक्त राजा को (हर्यश्वम्) सब प्रकार के ऐश्वर्य प्रसन्न रखते हैं (सोमासः अमन्दन्), अतः इसे सम्पूर्ण पृथिवी में स्थित कोई भी नहीं छल सकता (एनं पृथिवीचन न अह विव्याच)।
स्वा. दयानन्द ने हर्यश्व का अर्थ 'बल और पराक्रम से युक्त' किया है।
(५) गुणों और कर्मों में महान् -
रुद्र, मरुत् या सैनिक।
'संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः'
ऋ. १.६४.९
(६) महान् परमेश्वर।
'आसा वह्निं न शोचिषा विरप्शिनम्'
ऋ. १०.११५.३
(७) महान् घर्षणशील
'रुजो वि दृढा धृषता विरप्शिन'
ऋ. ६.२२.६; अ. २०.३६.६
(८) विविध विद्याओं का उपदेश करने वाली वाणी।
'विरप्शी गोमती मही'
ऋ. १.८.८; अ. २०.६०.४; ७१.४
(९) सर्वपदार्थ ज्ञाता।
(१०) अधीनों को विविध रूप से आज्ञा और उपदेश करने वाला।

विरव- विशेष शब्द ज्ञान।
'बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य'
ऋ. १०.६८.८; अ. २०.१६.८; नि. १०.१२

विराट् - (१) वाक् पृथिवी, अन्तरिक्ष, प्रजापति, मृत्यु और साध्यों का अधिराजा-इन नामों से विराट् परमेश्वर का ग्रहण है।
'विराड् वाग् विराट् पृथिवी
विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः
विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव
तस्य भूतं भव्य वशे कृणोतु
स मे भूतं भव्यं वशे'
अ. ९.१०.२४
(२) विविध पदार्थों, नाना सूर्यादि लोकों से प्रकाशमान ब्रह्माण्ड।
'ततो विराडजायत'
वाज.सं. ३१.५; वाज.सं. (का.) ३५.५
(३) विविध गुणों कर्मों से प्रकाशमान सूर्य।
'विराट् सम्राड् विभ्वीः
प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः'
ऋ. १.१८८.५
(४) प्रकाशमान ब्रह्माण्ड रूप महान् शरीर।
'तस्माद्विराउजायत'
ऋ. १०.९०.५; तै.आ. ३.१२.२.

विराट् छन्दः- (१) विराट् छन्दः (२) चालीस वर्षों का अखण्ड ब्रह्मचारी।
'विराट् छन्द इहेन्द्रियम्'

वाज.सं. २१.१९; मै.सं. ३.११.११; १५८.१३; का.सं. ३८.१०; तै.ब्रा. २.६.१८.४.

विराट् वाक्- सदर्थों का प्रकाश करने वाली वाणी-वेदवाणी ।

'यामाहुर्वाचं कवयो विराजम्'

अ. ९.२.५

विराट्सलिल- विराट् अर्थात् नाना रूपों में प्रकट होने वाली प्रकृति रूप सलिल अर्थात् सर्वव्यापक पदार्थ ।

'वत्सौ विराजः सलिलादुदैताम्'

अ. ८.९.१

विराज्- वि + राज् + क्विप् = विराज् । विराजनात् वा विराधनात् वा विप्राणनात् वा विराजनात् सम्पूर्णाक्षरा । विराधनात् ऊनाक्षरा । विप्राणनात् अधिकाक्षरा ।

अर्थात् 'विराज' शब्द 'राज्' धातु से क्विप् प्रत्यय कर बनता है । अथवा 'राध्' से (वि + राध् + क्विप्) बना है । या गत्यर्थक 'प्रु' धातु से (वि + प्रु + क्त + टाप् = विप्रुता) । विप्रुता इव हि सा स्वरूपात (वह अपनेस्वरूप से बढ़ी रहती है) । या विप्राणन से विराज् बना है । प्राणन का अर्थ भी गति ही है ।

यह एक वैदिक छन्द है जो या तो सम्पूर्ण अक्षरों वाला (विराजन) या न्यून अक्षरों वाला (विराधन या विगत ऋद्धि) या अधिक अक्षरों वाला (विप्राणन से) होता है ।

विराजति- (१) उदित होता है ।

'अनु प्रयाणमुषसो वि राजति'

ऋ. ५.८१.२; अ. ७.७३.६; वाज.सं. १२.३; तै.सं. ४.१.१०.४; मै.सं. २.७.८:८४.१५; ३.२.१:१५.३; का.सं. १६.८; श.ब्रा. ६.७.२.४; नि. १२.१३

सविता उषा के उदय लेने के बाद उदय होता है) ।

(२) विशेषेण दीपयति (विशेष प्रकार से दीप्त करता है ।

(३) उत्पन्न करती है ।

(४) प्रकाशित करता है ।

'धियो विश्वा विराजति'

ऋ. १.३.१२; वाज.सं. २०.८६; नि. ११.२७

माध्यमिका वाक् सरस्वती समस्त यज्ञसम्बन्धी तथा कर्म सम्बन्धी ज्ञानों को उत्पन्न करती है । वेदवाणी सम्पूर्ण सत्य विद्याओं को प्रकाशित करती है ।

विराजःवत्सः- विराट् प्रकृति का व्यापक आच्छादक परम शक्तिमान ब्रह्म ।

'वत्सः कामदुघो विराजः'

अ. ८.९.२

विराधन- चूक, विपरीत गमन ।

'यस्या नास्ति विराधनम्'

अ. ११.१०.२७

विराषाट् - (१) वीर पुरुषों को भी पराजित करने में समर्थ (२) सूक्ष्मजलों के समान वायु में स्थित जीव गण को सहने वाला वायुलोक

(३) यम ।

'एका यमस्य भुवने विराषाट्'

ऋ. १.३५.६

तीन द्यौ - सूर्य, अग्नि और विद्युत् या वायु में एक यम अन्तरिक्ष में हैं जो सूक्ष्म रूप में स्थित जीवों को सहता है ।

अथवा,

आकाश, अन्तरिक्ष, और पृथिवी में एक अर्थात् पृथिवी नियन्ता राजा के शासन में है ।

विरिष्ट- विशेष रूप से प्राप्त क्षति, चोट ।

'यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टम्'

अ. ७.५७.१

विरुक्मत् (१) विविध कान्ति वाला मेघ ।

'तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः'

ऋ. १.८५.३

वायु अपने में विविध कान्ति वाले मेघों को (विरुक्ततः) धारण करते हैं ।

(२) विशेष कान्ति से युक्त ।

'स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता'

ऋ. १.१२७.३; साम. २.११६५

विरुक्मान्- विशेष कान्तिमान् ।

'रथो विरुक्मान् मनसा युजानः'

ऋ. ६०.४९.५

विरुद्र- (१) विशेष गर्जन शील मेघ, (२) विविध उपदेशों से युक्त ।

'विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ'

ऋ. १.१८०.८

विरुरुहुः- बढ़ती हैं । लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग हुआ है ।

'व्यूतयो रुरुहरिन्द्र पूर्वी'
ऋ. ६.२४.३
हे इन्द्र ! तेरी पूर्वकाल में की गई रक्षाएं (पूर्वी ऊतयः) बढ़ती हैं (वृक्ष की शाखाओं की तरह (वृक्षस्य वयाः नु) ।

विरुपः- (१) एक वैदिक ऋषि ।
'प्रियमेधवत् अत्रिवत्
जातवेदो विरूपवत्
अङ्गिरस्वत् महिव्रत
प्रस्कण्वस्य श्रुधीहवम्'
ऋ. १०.४५.३
(२) अनेक रूपों वाला ।
(३) वर्ण एवं रूप में भिन्न ।

विरूपाः- ब.व । (१) भिन्न भिन्न कर्मों से नाना रूप वाले ।
'विरूपाः सन्तो बहुधैक रूपाः'
अ. २.३४.४; तै.सं. ३.१.४.२; का.सं. ३०.८; तै.आ. ३.११.११, १२;
(२) विविध रूप की गौएं ।
'विरूपास्तिलवत्सा उपतिष्ठन्तु त्वात्र'
अ. १८.४.३३

विरूपास-ऋषयः- (१) नाना रूप के ऋषि
(२) ऋषि नायादर्शी एवं तत्वदर्शी ही कहलाते हैं ।
'विरूपास इत् ऋषयः'
ऋ. १०.६२.५; नि. ११.१७

विरूपे- (१) भिन्न, रूप वाली रात्रि और उषा ।
(२) प्रकाश अन्धकार से विविध रूपों वाली- उषसा रात दिन ।
'उत स्मयेते तन्वा विरूपे'
ऋ. ३.४.६

विरोके- (१) विविध विशेष रुचि
(२) विशेष प्रकार से दीप्त सूर्य
(३) अभिप्रीत प्रदीपन
'सं दूतो अद्यौत् उषसो विरोके'
ऋ. ३.५.२

विरोकी - (१) विविध दीप्ति और कान्ति से युक्त ।
'अग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः'
ऋ. १०.७८.३

विरोचमान- विशेष तेज से तेजस्वी

विरोहत् - जिसका शरीर विशेष प्रकार से पुष्ट हो रहा है ।
'यथा स्म ते विरोहतः'
अ. ४.४.३

विलायकः- विविध भागों में लाने वाला ।
'मनसोऽसि विलायकः'
वाज.सं. २०.३८

विलिगी- विपरीत रीति से चिपटने वाली जोंक ।
'आलिगी च विलिगी च'
अ. ५.१३.७

विलिष्ट - (१) त्रुटि कमी ।
'अनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्'
वाज.सं. २.२४;८.१४; तै.सं. १.४.४४.२; श.ब्रा. १.९.३.६; ४.४.३.१४; ४.८; तै.आ. २.४.१; शां.श्रौ.सू. ४.११.६
(२) विपरीत, विरोधी,
(३) अनिष्ट जनक ।
'विलिष्टं सूदयन्तु ते'
वाज.सं. २३.४१

विलीढी- कुछ न कुछ सदा चाटने वाली स्त्री ।
'विलीढ्यं ललाम्यम्'
अ. १.१८.४

विलोहित- (१) विलोहित नामक ज्वर ।
'विलोहितो अधिष्ठानात्
शक्नो विन्दति गोपतिम्'
अ. १२.४.४
(२) वह रोग जिसमें विकृत रुधिर बहे
कर्णशूलं विलोहितम्
अ. ९.८.१
(३) विशेष रूप से लाल वस्त्र धारण करने वाला ।
(४) विशेष लोहित रूप से इन्द्रिय विजयी अभ्यासी पुरुष ।
'नीलग्रीवो विलोहितः'
वाज.सं. १६.७; तै.सं. ४.५.१.३; मै.सं. २.९.२: १२१.१; का.सं. १७.११.

विवक्षण- (१) राष्ट्र में विशेष अधिकार पद को धारण करने वाला ।
'विवक्षणा अनेहसः'
ऋ. ८.४५.११
(२) विविध स्कन्धों वाला वृक्ष, (३) विविध प्रकार से कथनोपकथन करने एवं धारण करने

योग्य, (४) विविध लोकों को उठाने वाला ।
'गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे'
ऋ. ८.२१.५; साम. १.४०७;
(५) विशेष रूप से वहन करने योग्य, (६) विशेष वचन योग्य पद या ज्ञान ।
'विवक्षणस्य पीतये'
ऋ. ८.१.२५; ३५.२३; साम. २.७४२

विवक्षसे- ववक्षिथ विवक्षस इत्येते । वक्तेः वा वहतेः वा साभ्यास्सत् (ववक्षिथ' या 'विवक्षसे' ये दोनों 'वत्' या ' वट्' धातु से द्वित्व कर बने हैं) । अर्थ है-तू वहन करने की इच्छा करता है ।
'शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे'
ऋ. १०.२१.१; आश्व.श्रौ.सू. ७.११.१४; १७

विवक्ति- (१) प्रार्थना करता है - सा. (२) सुन्दर वचन बोले ज.दे.श. ।
'विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखः'
ऋ. १०.११.६; अ. १८.१.२३
अग्नि (वह्निः) सुन्दर कर्म की इच्छा करने वाले यजमान के लिए (स्वपस्यते) देवताओं की प्रार्थना करता है (विवक्ति) ।
विवाहित पुरुष (वह्निः) सुन्दर वचन बोले (विवक्ति) तथा शुभ कर्म करें (स्वपस्यते) - ज.दे.श. ।

विवक्षिथ- अर्थ है- बोलने या वहन करने की इच्छा करने हो ।

विवक्वान् - विविध विद्याओं का उपदेष्टा ।
'स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान्'
ऋ. ७.६७.३

विवध- (१) वि + वध । विविध हनन साधन, अस्त्रशस्त्र का संग्रह, (२) अन्तरिक्ष
विवधश्छन्दः
वाज.सं. १५.५; तै.सं. ४.३.१२.२; श.ब्रा. ८.५.२.५.

विबन्धु- विशेष बन्धन करने वाला -परलोक ।
'यत्र ते दत्तं बहुधा विबन्धुषु'
अ. १८.२,५७

विवर- (१) विवर, (२) मुख्यपथ, (३) संग्राम भूमि ।
'अग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः'
ऋ. १.११२.१८
जिन उपायों से आप दोनों सूर्य की किरणों के प्रकाश और जल को प्रकट करने में (गो अर्णसः) सूर्य और विद्युत् के समान अथवा ज्ञान वाणियों का विशद ज्ञान करने कराने के लिए गुरु शिष्य के सामने पृथिवी के ऐश्वर्य को विविध प्रकार से प्राप्त करने के लिए मुख्य पद पर या संग्राम भूमि में आगे बढ़ते हो ।

विवर्तन- (१) घोड़े का लेटना, (२) विविध प्रकार के राजकोष कारबार का स्थान ।
'निक्रमणं निषदनं विवर्तनम्'
ऋ. १.१६२.१४; वाज.सं. २५.३८; तै.सं. ४.६.९.१; मै.सं. ३.१६.१: १८३.२

विवर्तमानः - लोटता ।
'विवर्तमानाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.८; तै.सं. ७.१.१९.३; मै.सं. २.१२.३: १६१.३

विवरुणा- वरुण अर्थात् जल से रहित ओषधि ।
'उन्मञ्चन्तीर्विवरुणाः'
अ. ८.७.१०

विवर्तेते - द्वि.व.। बारी बारी से आते हैं ।
'वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः'
ऋ. ६.९.१; नि. २.२१.
दिन और रात पृथ्वी और द्यौ लोकों के प्रति बारी बारी से अपनी अपनी अनकूलता से ज्ञातव्य प्राप्त कर्मों से (वेद्याभिः) घूमते रहते हैं ।

विववर्थ- विविध प्रकार से दूर करता है ।
'त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ'
ऋ. १.९१.२२; आ.सं. ३.३; वाज.सं. ३४.२२; मै.सं. ४.१४.१: २१४.१०; का.सं. १३.१५; तै.ब्रा. २.८.३.१

विवव्री मिथुना- (१) विपरीत रूप वाले मिथुन नक्षत्र ।
(१) विविध रूप वाले नर नारी के जोड़े ।
'वम्रस्य मन्ये मिथुना विवव्री'
ऋ. १०.९९.५

विवर्तन- (१) विविध प्रकार की चेष्टा करना (२) घोड़ों की नाना प्रकार की चाल ।

विवः- वि + वृ के लङ् म.पु.ए.व. में । व्यवृणोः विवृतवान् असि । अर्थ है-विवर किया, छिद्र किया या मेघों को छिन्न भिन्न किया ।

विवस्वत्- अन्तर्भावित णि वाले । वि + वस् + विच् + मतुप् = विवस्वत् । तमसः विवासन क्रियया (अन्धकार दूर करने से विवस्वत् कलहाए हैं) । अर्थ है-(१) आदित्य ।
'आ दूतो अग्निमभरद् विवस्वतो
वैश्वानरं मातरिश्वापरावतः'
ऋ. ६.८.४; नि. ७.२६
सुदूरवर्ती आदित्य से उस वैश्वानर अग्नि का वायु अपहरण करता है ।

विवस्वत् मनु- (१) विवस्वत् मनु, (२) विविध प्रजाओं का स्वामी मुख्य व्यवस्थापक राजा के पद पर विराजमान है - ज.दे.श. ।
'यथा मनौ विवस्वति'
ऋ. ८.५२.१

विवस्वती- (१) सूर्य की उत्तम प्रभा (२) विविध रस, ऐश्वर्यों और प्रजाजनों से बनी सेना ।
'विवस्वत्या महि चित्रमनीकम्'
ऋ. ३.३०.१३

विवस्वतोजाया- आदित्य की भार्या सरण्यू जो त्वष्टा विश्वामित्र की दुहिता थी और जिस से यम और यमी की उत्पत्ति हुई । पौराणिक कथा के अनुसार आदित्य के समीप से भागकर सरण्यू अपने पिता त्वष्टा के यहां चली गई परन्तु त्वष्टा ने पुनः आदित्य के यहाँ उसे भेज दिया । इस पर सरण्यू बड़वा का रूप धरकर उत्तर कुरू चली गई । आदित्य भी अश्व रूप में पीछा करते उत्तर कुरू जाकर बड़वा रूप धारिणी सरण्यू से मिले । दोनों के संयोग से जो रेत निकला उसे सरण्यू ने नासिका में धारण किया और उसी से नासत्यौ (अश्विनौ) उत्पन्न हुए । (२) आध्यात्मिक अर्थ-आदित्य की जाया रात्रि है जो सूर्योदय होते ही भाग जाती है ।
'महो जाया विवस्वतो ननाश'
ऋ. १०.१७.१; अ. १८.१.५३; नि. १२.११.
महान् आदिय् की जाया अदृश्य हो गई ।

विवस्वान् - (१) विविध वसुलोकों का स्वामी ।
'यमः परोऽवरोः विवस्वान्'
अ. १८.२.३२.

विहुत्- (१) जुहोति स्वीकरोति यया सा- दया. । (जिससे हवन करता या स्वीकार करता है) ।

विव्रत- विविध कर्म ।

विव्रता- द्वि.व.। (१) विविध व्रतों और शीलों का पालन करने वाले, (२) उत्तम व्यवहारों के प्रवर्तक ।

विवाक् - (१) विविध भाषाओं या वाणियों का ज्ञाता, (२) नाना देशवासी ।
'त्वं हीन्द्रावसे विवाचो
हवन्ते चर्षण्यः शूरसातौ'
ऋ. ६.३३.२
(३) विपरीत बोलने वाला ।
'यो वाचा विवाच'
अ. २०.७३.६
(४) विविध प्रकार का वाक् व्यवहार, शास्त्रार्थ ।
'पुरूतमं पुरूणाम्
स्तोतृणां विवाचि'
ऋ. ६.४५.२९
(५) विविध वेदवाणी (६) मिथ्या वाणी या कष्टदायी वचन कहने वाला ।
'बिभेद वलं नुनुदे विवाचः'
ऋ. ३.३४.१०; अ. २०.११.१०; मै.सं. ४.१४.५: २२२.१०
(७) विविध वेदवाणियों से स्तुति करने योग्य इन्द्र ।
'इरज्यन्त पच्छुरुधो विवाचि'
ऋ. ७.७३.२; अ. २०.१२.२.
(८) विपरीत या विधि वाणी बोलने वाला ।
'यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः'
ऋ. १०.२३.५; अ. २०.७३.६
(९) विविध प्रकार की वाणी की आज्ञा (१०) विविध वाणियों के प्रयोग करने का अवसर अर्थात् संग्राम या स्तुति काल ।
'हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि'

विवाचनी- विविध वचनों को बोलने वाली ।
'अहमुग्रा विवाचनी'
ऋ. १०.१५९.२; आप.मं.पा. १.१६.२.

विवाचाः- भिन्न भिन्न भाषाओं एवं वाणियों को बोलने वाला जन समुदाय ।
'जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसम्'
अ. १२.१.४५.

विवावदत्- नाना प्रकार के ज्ञानोपदेश करता हुआ ।

'गोषेति विवावदत्'
अ. ९.४.११.

विवासति- परिचरति (परिचरण करता है)।

विवाससि- परिचरसि, सर्वतः व्याप्नोसि (तू सर्वत्र व्याप्त होता है, परिचरण करता है।

विवासेम- परिचरेम (परिचर्या करें)।

विव्याधी- विशेष रूप से अस्त्रादि से प्रहार करने वाला।
'मा नो विदन् विव्याधिनः'
अ. १.१९.१

विवक्वान् - (१) विविक्त, प्रकटमुक्त-दया. (२) विवेकी।
'प्र मे विविक्वाँ अविदन्ममीषाम्'
ऋ. ३.५७.१

विविच- (१) पदार्थों को पृथक् पृथक् विश्लिष्ट करने वाला- अंग्नि, (२) सत् असत्, अर्थ अनर्थ, धर्म अधर्म का विवेक करने वाला।
'होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम्'
ऋ. ५.८.३; तै.सं. ३.३.११.२; जै.ब्रा. १.६.४; श.ब्रा. १२.४.४.३; मा.श्रौ.सू. ५.१.२.१७

विविड्ढि- वि + धा + हि। अर्थ है -कर, विधान कर या जान।
'जराबोध तद् विविड्ढि'
ऋ. १.२७.१०; साम. १.१५; २.१०१३; आश्व.श्रौ.सू. ९.११.४; नि. १०.८.
हे अग्नि, जो यह स्तुति मुझ से की जा रही है उसे जान।
अथवा,
हे स्तुति से जगाए जाने वाले या हे देवों को होता रूप में होकर जगाने वाले अग्नि (जराबोध), यज्ञानुष्ठान की सिद्धि के लिए देवयजन रूप कर्तव्य को (तत्) कर।

विविध्यन्ती- शत्रुओं को विधने वाली सेना।
'नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमः'
वाज.सं. १६.२४; तै.सं. ४.५.४.१; मै.सं. २.९.३: १२३.१४; का.सं. १७.१३

विविद्वान् - विविध उपायों से प्राप्त करता हुआ।
'महिक्षेत्रं पुरुश्चन्द्रं विविद्वान्'
ऋ. ३.३१.१५; तै.ब्रा. २.७.१३.३.

विविक्ति- विवेक।
'विविक्त्यै क्षत्तारम्'
वाज.सं. ३०.१३

विविञ्चन्ति- पृथक् पृथक् कर देते हैं।
'वि विञ्चन्ति वनस्पतीन्'
ऋ. १.३९.५; तै.ब्रा. २.४.४.३

विविचि- न्यायपूर्वक विवेक करने वाला।
'प्रवीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतम्'
ऋ. ८.५०.६

विवृत्- (१) खुले हृदय की स्त्री (२) विविध दशाओं, प्रजाओं और कार्यों में व्यवहार करने में समर्थ।
'विवृदसि विवृते त्वा'
वाज.सं. १५.९

विवृत्त - (१) पांसे पलटता हुआ।
'विवृत्ताय स्वाहा'
वाज.सं. २२.८; तै.सं. ७.१.१९.३; मै.सं. ३.१२.३: १६१.३
(२) ४८ विभागों का प्रवर्त्तक राजा।
'विवृर्त्तोऽष्टाचत्वा रिंशः'
वाज.सं. १४.२३; तैं.सं. ४.३.८.१; ५.३.४.५; श.ब्रा. ८.४.१. २५.

विवृक्णा- वि + वृश्च + क्त = विवृक्त। वेद में 'त' का 'ण' होने से विवृक्ण्। ब.व. में 'विवृक्णाः'
'स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णा'
ऋ. १.३२.५; मै.सं. ४.१२.३: १८५.१०; तै.ब्रा. २.५.४.३; नि. ६.१७
जैसे कुठार से (कुलिशेन) बिलकुल छिन्न भिन्न (विवृक्णा) वृक्ष की शाखाएं हों (स्कन्धांसि इव)।

विवृश्चत् - छिन्न भिन्न करें।
'विवृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः'
ऋ. १.६१.१०; अ. २०.३५.१०

विवृह- (१) दोष से रहित।
'यमीर्यमस्य विवृहादजामि'
अ। १८.१.१०
(२) धा.। समूल नाश करना।
'वि वृहामो विसल्पकम्'
अ. ६.१२७.३
(३) विवाह कर।
'अन्येन मदाहनो याहि तूयं
तेन वि वृह रथ्येव चक्रा'
ऋ. १०.१०.८; अ. १८.१९; नि. ५.२.

हे बातों से मर्माहित करने वाली यमी, मेरे सिवा किसी अन्य के पास जा और उसके साथ विवाह कर (विवृह)।

विवेद- जानाति (जानता है)।

विवेनः - निरपेक्ष हो।

'आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः'

ऋ. ५.३१.२

हे अश्ववाले इन्द्र, हमारे सम्मुख आ (आ प्रद्रुव)। हम से निरपेक्ष न हो (मा विवेनः)

विवेनतम् - वेन (कामना करना) के लोट् म.पु. द्वि.व. का रूप। अर्थ है-विगत काम हो।

'नासत्या मा वि वेनतम्'

ऋ. ५.७५.७; ७८.१

हे प्रत्यक्षभूत नासत्य देवो, तुम दोनों विगत काम मत हो (मा विवेनतम्)।

विवोचत् - विवक्ष्यति (कहेगा)। भविष्यत् अर्थ में लुङ् का प्रयोग हुआ है। यहाँ अट् का अभाव आर्ष है।

विबोधन- विविध ज्ञानों का साधन-मन, इन्द्रिय आदि।

'अदाद् रायो विबोधनम्'

ऋ. ८.३.२२

विश् - विश् + क्विप् = विश्,। प्र.ए.व में रूप है- विट्।

अर्थ - (१) प्रजा। (२) यज्ञविमुख पुरुष (३) अधर्म द्वारा धनोपार्जन करने वाला व्यापारी।

'चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान्'

ऋ. ६.४७.१६; नि. ६.२२

इन्द्र या परमात्मा यज्ञ विमुख या अधर्म से द्रव्य कमाने वाले पुरुषों को (विशः) दण्ड देता है (चोष्कूयते) तथा यज्ञ करने वाले या विवेक वान् पुरुषों को (मनुष्यान्) पुण्यलोक में पहुंचाता है।

आधुनिक अर्थ - (१) वैश्य, (२) प्रजा, (३) मनुष्य।

विंशति- (१) पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, चार अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) और यह पूर्ण देह।

'साकं पचन्ति विंशतिम्'

ऋ. १०.८६.१४; अ. २०.१२६.१४

(२) सूक्ष्म आभ्यन्तर तत्व और १० बाह्य स्थूल शक्तियाँ (३) २० वैकारिक तत्व।

५ स्थूल भूत, ५ सूक्ष्मभूत, ५ कर्मेन्द्रिय और ५ ज्ञानेन्द्रिय।

'द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च'

अ. ७.४.१; मै.सं. ४.६.२: ७९.६; तै.आ. १.११.८; आश्व.श्रौ.सू. ५.१८.५.

(४) द्विरावृत्ता दश द्विर्दश।

(दो बार आवृत दस बीस है)। विंशतिः द्विर्दशतः (दो बार दस से बीस बना है)।

'द्वि त्रि चतुर्भ्यः सुच्'

पा. ५.४.१८.

से द्वि का द्विः' और 'दश' से 'तसि' प्रत्यय कर 'दशतः' बना है।

'पंचदशतौ वर्गे वा' पा. ५.१.६०

से 'दशत्' निपातन और 'द्वयोः दशतोः विन् शतिश्च' से द्वि का 'वित्' और दस का 'शति' होकर 'विंशति' बना है।

अथवा - द्विदशन् + ति = द्विदशति = विंशति = विंशतिः। अर्थ है-बीस संख्य (५) १० आभ्यन्तर और १० बाह्य प्राण।

संख्या के अर्थ में -

'आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङ्'

ऋ. २.१८.५

(६) प्रकृति के बीस विकार, जिसे मनन शील आत्मा की 'पर्शु' नामक कर्मशक्ति उत्पन्न करती है।

(७) कार्योन्मुख सत्व, रजस्, तमस्, महत्तत्व, अहंकार, पांच स्थूलभूत, पांच सूक्ष्मभूत, चार अन्तःकरण और समष्टि देह में बीस विकार हैं।

विशफ - (१) बिना सुर वाले पशु या बिना चरण वाले जैसे-सर्प आदि।

'कर्शफस्य विशफस्य'

अ. ३.९.१

विशरीक- नाना प्रकार से पीड़ा देने वाला।

'आशरीकं विशरीकम्'

अ. १९.३४.१०

विशल्य - बाणों से रहित तरकस।

विशल्यो बाणवां उत'

वाज.सं. १६.१०

विशस्- विशेष प्रकार का उपदेश ।
पुनः स्तोमो न विशसे'
ऋ. १०.१४३.३

विशंसत- (१) स्तुति करो, उच्चारण करो ।
'मा चिदन्यद् वि शंसत'
ऋ. ८.१.१; अ. २०.८५.१; साम. १.२४२; २.७१०; कौ.ब्रा. २३.१०; पंच.ब्रा. १५.१०.२; ऐ.आ. ५.२.४.२; आश्व.श्रौ.सू. ५.१२.९; २१; ७.४.२; शां.श्रौ.सू. १२.३.२२; १८.८.११; वै.सू. ३१.१८; ४०.११; नि. ७.२.
ऐ मित्रो, परमेश्वर के सिवा और किसी के स्तोत्र का उच्चारण मत करो ।
(३) पूजा करो ।

विससन- (न.) रजस्वला होने के समय शरीर का फटना ।
'आशसनं विशसनम्'
ऋ. १०.८५.३५, अ. १४.१.२८; आप.मं.पा. १.१७.१०
(२) कन्या में पाई जाने वाली विशेष ढिठाई ।

विशस्ता- काल का विभाग करने वाला वर्ष-वत्सर ।
'एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता'
ऋ. १.१६२.१९; वाज.सं. २५.४२; तै.सं. ४.६.९.३; मा.श्रौ.सू. ९.२.४

विश्पतिः- (१) विश् (प्रजा) + पा + डति = विश्पतिः । विशां प्रजानां पालयिता (प्रजाओं का पालक) । मनुष्यों का पालक अग्नि,
(२) जार जो परस्त्री भोग करता है,
(३) प्रजा पालक ।
'रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन्'
ऋ. १०.४.४.
मनुष्यों का पालक होकर अग्नि मानों आहुति रूपिणी युवती का बार बार आस्वाद लेता है । अथवा,
प्रजापालक होते हुए आचार्य ब्रह्म से मिलाने वाली ब्रह्मविद्या का निरन्तर आस्वादन करते हैं ।
(४) प्रजापालयिता सूर्य । दे 'अश्न' ।
अपश्यं विश्पति सप्तपुत्रम्'
प्रजाओं के पालयिता, सर्पण शील रश्मिरूपी पुत्रों से युक्त आदित्य को देखता हूँ ।

विश्पती- द्वि.व. । विश्पति का प्रथम द्विचवन में रूप । अर्थ है-(१) वायु और पूषा (सूर्य) क्योंकि ये दो प्रजापालक हैं ।
'आ विश्पतीव बीरिट इयाते'
ऋ. ७.३९.२; वाज.सं. ३३.४४; नि. ५.२८
अन्तरिक्ष में (बीरिटे) प्रजाजनों के पालक एवं रक्षक के रूप में वायु और पूषा (विश्पती) आते हैं (आ इयाते) ।

विश्पत्नी- (१) प्रजाओं की पालिका, (२) अपने में प्रवेश या संवेश अर्थात् सहवास करने वाले पति की पत्नी-धर्मपत्नी ।
'तस्यै विश्पत्न्यै हविः
सिनीवाल्यै जुहोतन'
ऋ. २.३२.७; अ. ७.४६.२; तै.सं. ३.१.११.४; मै.सं. ४.१२.६: १९५.७; का.सं. १३.१६
(३) सार्वजनिक सभा, (४) पृथिवी, (५) स्त्री, (६) गर्भ में प्रविष्ट प्रजा को भली भांति पालन करने में समर्थ स्त्री, (७) भीतर प्रविष्ट आत्मा या प्राण गण को पालिका या ग्राह्य विषयों तक जाने वाली बुद्धि या चेतना, (८) मन्थन दण्ड का विश्पत्नी नामक काष्ठ ।
'एतां विश्पत्नीमा भराग्निम्'
ऋ. ३.२९.१

विश्पला - विशः प्रजाः पाति अनेन इति विश्पला- प्रजापालिनी सेना विश्पं लाति या सा विश्पला ।
प्रजाओं के पालक को अपने ऊपर प्रभु रूप में स्वीकार करने में विशालसेना ।
'याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यम्
सहस्रमीढ आजावजिन्वतम्'
ऋ. १.११२.१०
जिन उपायों से ऐश्वर्यों के उत्पन्न करने वाली (धनसाम्) कभी न मारी जाने वाली (अथर्व्यम्) प्रजाओं के पालक को अपने ऊपर प्रभु रूप में मानने वाली विशाल सेना या सेनापति को (विश्पलाम्) सहस्त्रों सुखों को प्राप्त कराने वाले संग्राम में (सहस्रमीढे आजौ) तृप्त करते हो (अजिन्वतम्) ।
पुनः-
'युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः'
ऋ. १०.३९.८

विश्पलावसू- (१) प्रजाओं को पालने वाले धन बल से सम्पन्न, (२) प्रजाओं को पालने और बढ़ाने वाले-अश्विद्वय (३) स्त्री पुरुष (४) अध्यापक उपदेशक (५) प्राण, अपान ।

'धियञ्जिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू'

ऋ. १.१८२.१

विश्य- (१) वैश्य, प्रजाजन में उत्तम धनवान् वैश्य

'अथो ये विश्यानां वधाः'

अ. ६.१३.१

(२) प्रजाओं में विद्यमान वैश्य जन ।

'रुचं विश्येषु शूद्रेषु'

वाज.सं. १८.४८; तै.सं. ५.७.६.४; मै.सं. ३.४.८: ५६.४

(३) प्रत्येक प्रजा का हितकारी परमेश्वर ।

'विश आ क्षेति विश्यो विशंविशम्'

ऋ. १०.९१.२

विश्रयन्ताम् - रहें -सा. (२) सेवन करें, ज.दे.श.

'व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्ताम्'

ऋ. १०.११०.५; अ. ५.१२.५; वाज.सं. २९.३०; मै.सं. ४.१३.३; २०.२.३; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.६, नि. ८.१०.

व्याप्ति वाली, काफी चौड़ी द्वार या अग्नि ज्वालाएं या अनेक प्रकार के यज्ञों में वर्तमान अग्नि चौड़ी होकर रहें या हमें सेवन करें । (उर्विया वि श्रयन्ताम्) ।

विश्रयाते- विविध प्रकार से आश्रय लेती है ।

'या न ऊरु उशती विश्रयाते'

ऋ. १०.८५.३७

जो यह कामयमाना कामिनी विविध प्रकार से उरुओं का आश्रय लेती है (उरु विश्रयाते) ।

विश्व- विश्व धातु से सिद्ध । (१) जिसमें सभी प्राणी रहते हैं-विश्व, (२) समस्त प्राणिमात्र ।

'तद् विश्वमुप जीववति'

ऋ. १.१६४.४२; तै.ब्रा. २.४.६.१; तै.आ. १०.११.१

उस जल से समस्त प्राणि मात्र जीता है ।

(३) यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थः'

ऋ. १.१६४.२; अ. ९.९.२; १३.३.१८; नि. ४.२७

जिस काल में समस्त प्राणी अप्राणी मृत्यु प्राप्त करते हैं ।

(४) सम्पूर्ण प्राकृतिक जगत् ।

'विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः'

ऋ. १०.८६.१-२३; अ. २०.१२६.१-२३; का.सं. ८.१७; वै.सू. ३२.१७ ; नि. ११.३८, ३९; १२.९, २८; १३.३,४

इन्द्र सबसे बढ़कर हैं-सा. यह आत्मा सम्पूर्ण प्राकृतिक जगत् से बढ़कर है- ज.दे.श. ।

(५) भूतजात ।

आधुनिक अर्थ - संसार (६) समस्त नगर में प्रवेश करने वाला (७) देह में प्रवेश करने वाला आत्मा ।

'विश्वो ह्यन्यो अरि राजगाम'

ऋ. १०.२८.१; शां.श्रौ.सू. १८.४.७; ५.७

विश्वक- (१) विश्वस्य अनुकम्पकः दया. । सर्व हितकारी ।

(२) समस्त ।

'ता वां विश्वको हवते तनूकृथे'

ऋ. ८.८६.१-३

विश्वकद्रः- (१) कुद्राण + अङ् + टाप् = कद्रा । अर्थ है -कुत्सित गति । श्वभिः सह कद्रा । (कुत्तों के साथ कुत्सित गति या कुत्तों की सी कुत्सित गति) । विविधाः श्वकद्राः यस्य स विश्वकद्रः (वह पुरुष जो कुत्तों का जीवन व्यतीत करता हो) ।

तत् अस्मिन् अस्ति इति । विश्वकद्रः (अर्थात् जिसमें कुत्सित गति और कुत्सिततर गति दोनों हो वह विश्वकद्र' है) ।

(२) कुत्ता । श्वैव विश्वकद्राः

(३) शुनां कद्राः शवकद्राः विविधाः श्वकद्राः यस्य (कुत्तों की गति का नाम 'श्वकद्रा' है, जिसमें कुत्तों की विविध, गतियां वर्त्तमान हो वह ' विश्वकद्रा' है) ।

(४) कुत्तों की जितनी प्रकार की गतियाँ है वे सभी इसमें हैं - कुत्ता । लौकिक अर्थ-

..विश्वकद्रः त्रिषु खले ध्वान्तखेट शुनोः पुमान् ।

(५) अमर कोष में भी कहा है-श्वा विश्वकद्रुः मृगया कुशलः । ' द्रा' धातु कुत्सा गति का द्योतक है ।

'द्राति इति गति कुत्सना'

वीति चकद्र इति श्वगतौ भाष्यते (वि और चन्द्र कुत्तों की गति का पर्याय) है ।

कु + द्रा = कद्रा (कु का कत्) । 'विश्वकं

द्रवति' या ' विश्वं क्रन्दति' (सभी और दौड़ता या सभी का आह्वान् करता है) ।

विश्वकद्राकर्ष- विश्वकद्रम् आकर्षित (कुत्ते को खींचता है) । जो पैर में विकल से मृगया के पीछे चलने वाले श्वा (कुत्ते) को खींचता है । विश्वकद्र + अच् (मतुप् अर्थ में) = विश्वकद्र । अर्थ - खुशामदी । चापलूस या भिखमंगो को विश्वकद्र कहते हैं । उसी को खींचने वाला राजपुरुष विश्वकद्रा कर्ष है ।

विश्वकर्मा- (१) प्रकाश, वृष्टि आदि का कर्त्ता आदित्य, (२) प्रति शरीर में क्षेत्रफल रूप से वर्तमान परमात्मा ।

'विश्वकर्मा विमना आद्विहाया'

ऋ. १०.८२.२; वाज.सं. १७.२६; मै.सं. २.१०.३:१३४.३, आश्व.श्रौ सू. ३.८.१; नि. १०.२६

प्रकाश, वृष्टि आदि का कर्त्ता आदित्य (विश्वकर्मा) अप्रतिहत प्रज्ञान् वाला (विमना) सर्वत्र व्याप्त एवं महान् (आद् विहायाः) ।

अथवा

प्रति शरीर में क्षेत्रज्ञ रूप में विद्यमान परमात्मा (विश्वकर्मा) सर्व प्रज्ञान महान्, पुण्य पाप के फलों का आपयिता (आद्विहायाः) । (३) धाता, (४) विधाता, (५) परमसंद्रष्टा, (६) सर्वप्रामि कर्त्ता प्राणवायु (९) सर्व सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर । आधुनिक अर्थ - विश्वकर्मा नामक देवता ।

(८) सर्वस्य कर्त्ता -

'यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा'

ऋ. १०.८१.२; वाज.सं. १७.१८; मै.सं. २.१०.२: १३३.७

(९) समस्त जगत् का कर्त्ता इन्द्र परमेश्वर ।

'विश्वकर्मा विश्वदेवो महां असि'

ऋ. ८.९८.२

विश्वकर्माऋषिः- (१) सब का द्रष्टा संचालक विश्वकर्मा प्रजापति ।

'विश्वकर्म ऋषिः'

वाज.सं. १३.५८; श.ब्रा. ८.१.२.९

विश्वकृत् - संसार का रचयिता ।

'वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः'

अ. ६.४७.१; मै.सं. १.३.३६:४२.८; का.सं. ३०.६

विश्वकृष्टयः- (१) सब प्रकार की कृषियों को उत्पन्न करने के कारण मरुत् । (२) समस्त विश्व को सद्गुणों से अपनी ओर आकर्षण करने वाले ।

'अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टयः'

ऋ. ३.२६.५; तै.ब्रा. २.७.१२.३

विश्वकृष्टिः- (१) समस्त मनुष्य, प्रजा ।

'अयुञ्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टीः'

ऋ. १.१६९.२

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र, तेरे समस्त मनुष्य प्रजाओं को उत्तम कार्य में प्रेरित करें ।

(२) सब मनुष्यों का हितकारी, सब का नेता, संचालक, समस्त मनुष्यादि प्रजाओं का स्वामी ।

(३) बहुतों से संचालन करने योग्य ।

वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिः'

ऋ. १.५९.७; ३.१.९.१; का.श्रौ.सू. ९.३.२१.

विश्वगूर्त - (१) सर्वस्तुत्य ।

'इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसम्'

ऋ. ८.७०.३; अ. २०.९२.१८; साम. १.२४३; २.५०.५

(२) सबका उपदेष्टा परमेशवर इन्द्र, (३) समस्त ऐश्वर्यों कोअपने वश में कर लेने वाला, (४) सब की स्तुतियों का पात्र ।

'स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः'

ऋ. १.६१.९; अ. २०.३५.९; तै.सं. २.४.१४.२; मै.सं. ४.१२.२: १८१.१२; का.सं. ८.१७

विश्वगूर्ती- सब प्रकार के उद्यम करने में लगे स्त्री पुरुष ।

'स्वसा यद्वां विश्वगूर्ती भराति'

ऋ. १.१८०.२

विश्वगोत्र्य- (१) समस्तजनों का बन्धु, (२) समस्त श्रोत्र या वंश के प्रति एक समान ।

'वानस्पत्यः संभृत उस्त्रियाभिः विश्वागोत्र्यः'

अ. ५.२१.३

विश्व चन्द्रः- समस्त संसार को आह्वाद देने वाला ।

'अहमेता मनवे विश्वचन्द्राः
सुगा अपश्चकार वज्रबाहुः'

ऋ. १.१६५.८; मै.सं. ४.११.३: १६९.६; का.सं. ९.१८; तै.ब्रा. २.८.३.६

विश्वचया- (१) सब प्रकार के रोगों को संचय करने वाली निद्रा आलस्य (२) विश्व का चमन

करने वाला प्रभु ।
'बन्धस्त्वाग्रे विश्वचया.अपश्यत्'
अ. १९.५६.२

विश्वचर्षणिः- (१) समस्त प्रजा का दुष्टा (५) रक्षा के निमित्त सब पर दृष्टि रखने वाला । परमेश्वर या राजा ।
'स वाजं विश्वचर्षणिः
अर्वद्भिरस्तु तरुता'
ऋ. १.२७.९; साम. २.७६७
वह समस्त प्रजाओं का द्रष्टा रक्षार्थ सब पर दृष्टि रखने वाला तुरंग बलों से संग्राम को पार करने वाला ।

विश्वजन्यः(१) समस्त जनों का हितकारी ।
'तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्यः'
ऋ. १०.६७.१; अ. २०.९१.१
(२) विश्व + जन + यत् 'विश्वस्मैं जनाय हितम्' सर्वजनहितकारक सूर्य ।
'उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यम्'
ऋ. ७.७६.१; नि. ११.१०
अमृतत्वसाधक सर्वजनहितकारक (विश्वजन्यम्) सूर्य (ज्योतिः) ऊपर उठता है । (उत् उ) ।
हितकारी के अर्थ में -
'सत्रा मदासस्त विश्वजन्याः'
ऋ. ६.३६.१; ऐ.ब्रा. ५.८.३

विश्वजन्या- (१) समस्त जनों की हितकारिणी वाणी ।
'वसो रास्व सुमतिं विश्वजन्याम्'
ऋ. ३.५७.६
(२) पैदा करने वाली मेघमाला । (३) समस्त ज्ञानों को उत्पन्न करने वाली ।
'त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या
रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः'
ऋ. १.१६९.८; मै.सं. ४.४.१३: २३७.२
पुनः-
'त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्याम्'
ऋ. ७.१००.२; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१

विश्वजनीन - समस्त जनों का हितकारी ।
'राज्ञो विश्वजनीनस्य'
अ. २०.१२७.७; गो.ब्रा. २.६.१२; शां.श्रौ.सू. १२.१७.१.१.
'जनाद् विश्वजनीनात्'
अ. ७.४५.१; कौ.सू. ३६.२५.

विश्वजित्- (१) एक वैदिक यात्रा ।
'विश्वजिच्चाभिजिच्च यः'
अ. ११.७.१२
(२) सर्वविजयी राजा, (३) परमेश्वर,
'विश्वजित् कल्याण्यै मा परि देहि'
अ. ६.१०७.३
(४) समस्त विश्व को जीतने वाला इन्द्र ।
'विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते'
ऋ. २.२१.१; कौ.ब्रा. २५७; २६.१६; शां.श्रौ.सू. १८.१७.३

विश्वतः- (१) सर्वतः सर्वदा ।
'आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतो
अदब्धासो अपरीतास उद्भिदः'
ऋ. १.८९.१; वाज.सं. २५.१४; का.सं. २६.११
(२) सब प्रकार से ।
घहसघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्
पुमान् पुमांसं परि पातु विश्वतः'
ऋ. ६.७५.१४; वाज.सं. २९.५१; तै.सं. ४.६.६.५; मै.सं. ३.१६.३ : १८७.५; का.सं. (अश्व). ६.१; नि. ९.१५.
हस्तघ्न धनुर्धारी को सब प्रकार से रक्षा करे जैसे सभी प्रज्ञानों के ज्ञाता विद्वान् ।
(३) सर्वतः ।
'यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि'
ऋ. १.९४.७
हे अग्नि, तू सर्वतः शोभन दर्शन एवं समान रूप में देखा जाता है ।

विश्वतस्पाणिः(१) जिसके सर्वत्र हाथ है - परमेश्वर, सूर्य ।
'विश्वतस्पाणिरुत विश्वतस्पृथः'
अ. १३.२.२६

विश्वतस्पृथ- सर्वत्र व्याप्त परमेश्वर, सूर्य ।

विश्वतस्पृथु- सब प्रकार से विस्तृत ।
'गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः'
ऋ. ८.९८.४; अ. २०.६४.१; साम. १.३९३; २.५९७

विश्वतुर्- (१) सब शत्रुओं का नाशक (विश्वतूः) (२)सेवकों को शीघ्र से शीघ्र कार्य करने में समर्थ ।

'सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि'
ऋ. १.४८.१६
हे उषा, तू हमें समस्त शत्रुओं के नाशक एवं सेवकों को शीघ्र से शीघ्र कार्य करने में समर्थ धन और प्रकाश तेज प्रभाव से युक्त कर (विश्वतुरा द्युम्नेन)।
(३) सब प्रकार से नाश करने वाला।
'अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि'
ऋ. ८.९९.५; अ. २०.१०५.१; साम. १.३११; २.९८७; वाज.सं. ३३.६६
(४) सब शत्रुवर्ग का नाशक (५) समस्त विश्व का चालक

विश्वतूर्ति- (१) समस्त जनों को अति शीघ्र ले जाने या कार्य करने वाली, (२) स्वयं शीघ्र कार्य करने वाली सरस्वती या अर्द्धाङ्गिनी।
'इडा देवी भारती विश्वतूर्तिः'
ऋ. २.३.८; वाज.सं. २०.४३; मै.सं. ३.११.१: १४०.११; का.सं. ३८.६; तै.ब्रा. २.६.८.४
(३) समस्त कार्यों को बिना विलम्ब अति शीघ्रता से करने में समर्थ।

विश्वतोदावा- (१) सबका संहार करने वाला। या (२) सबको दान करने वाला,
'विश्वतो दावन्विश्वतो न आ भर'
साम. १.४३७; ऐ.आ. ५.२.२.१३; शां.श्रौ.सू. १८.१५.५.

विश्वतोधारः यज्ञः- (१) सब ओर से सबको धारण करने वाला यज्ञ (२) यज्ञस्वरूप प्रभु।

विश्वतोधीः- (१) सर्वतोभावी बुद्धि या प्रतिभा वाला, (२) सर्वगामी कर्म-सामर्थ्य से सम्पन्न।
'विश्वतोधीर्न ऊतये'
ऋ. ८.३४.६

विश्वतोमुख- (१) सब ओर मुख वाला परमेश्वर-सूर्य।
'यो विश्वचर्षणिरुत विश्वतोमुखः'
अ. १३.२.२६; मै.सं. २.१०.२: १३३.८; का.सं. १८.२
(२) सब ओर से प्रकाशमान सूर्य
प्राणेन विश्वतोमुखं सूर्यं देवा अजनयन्'
अ. १९.२७.७
(३) सर्वतोमुख अपामार्ग (चिचि्रा)
(४) सर्वशरीर में व्याप्त होने वाला -प्राण।
'त्वया तद् विश्वतोमुख'
अ. ७.६५.२
(५) सर्वव्यापी तथा अन्तर्यामित्व के कारण सर्वोपदेष्टा - दया.।
'त्वं हि विश्वतोमुख'
ऋ. १.९७.६

विश्वतोवीर्या- सब प्रकार के बलों वाली।
'वीरुद् वो विश्वतोवीर्या'
अ. ६.३२.२

विश्वथा- विश्व + थाल् (स्वार्थ में) = विश्वथा।
(१) विश्वेषामिव, सर्वेषां ऋषीणां ऋषिपुत्राणां वा इव।
(सभी ऋषियों या ऋषि पुत्रों के सदृश), (२) सभी की अनुमति के अनुकूल या सभी प्रजाओं की अनुमति के अनुकूल -दया. (३) सभी ऋषियों के मनोरथों को जैसे पूर्ण किया उसी तरह-सा.
'तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथ'
ऋ. ५.४४.१; वाज.सं. ७.१२; तै.सं. १.४.९.१; मै.सं. १.३.११: ३४.४; का.सं. ४.३; कौ.ब्रा. २४.९; श.ब्रा. ४.२.१.९; नि. ३.१६.
(४) सम्पूर्ण संसार के सदृश, (५) सर्वस्व के तुल्य

विश्वदर्शत- (१) सबका दर्शनीय।
'दर्शं नु विश्वदर्शतं
दर्शं रथमधि क्षमि'
'एता जुषत मे गिरः'
ऋ. १.२५.१८
इस पृथ्वी पर सबके दर्शनीय (विश्वदर्शत) रथ पर चढ़े महारथी महाराजा या सूर्य के समान तेजस्वी परम रसस्वरूप आनन्दमय परमेश्वर को पुनः पुनः दर्शन करने के लिए इन वेदवाणियों का सेवन कर।
(२) विश्व का द्रष्टा, सब को दर्शनीय सूर्य।
'तरणिर्विश्वदर्शतः'
ऋ. १.५०.४; अ. १३.२.१९; २०.४७.१७; आ.सं. ५.९; वाज.सं. ३३.३६; तै.सं. १.४.३१.१; मै.सं. ४.१०.६: १५८.१२; ४.१२.४: १९०.१२; का.सं. १०.१३; तै.आ. ३.१६.१; आश्व.श्रौ.सू. ९.८.३; शां.श्रौ.सू. ३.१८.६; आप.श्रौ.सू. १६.१२.१.

(३) सब प्रकार से और सब के लिए दर्शनीय।
'गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः'
ऋ. १०.१४६.५

विश्वदानीम् - अ.। सदैव निरन्तर।
'अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीम्'
ऋ. १.१६४.४०; अ. ७.७३.११; ९.१०.२०; का.श्रौ.सू २५.१.१९; आप.श्रौ.सू. ९.५.४; १५.१२.३; नि. ११.४४.
'तस्मिन्निन्दुः पवते विश्वदानीम्'
अ. १८.३.५४
'विश्वदानीं सुमनसः स्याम'
ऋ. ६.५२.५

विश्वदाव्यः- समस्त जगत् में वन में अग्नि के समान, कर्मबन्धन के दाहक रूप में विद्यमान-वैश्वानर अग्नि।
'वैश्वानर उत विश्वदाव्यः'
अ. ३.२१.३; का.सं. ४०.३

विश्वदृष्टः- (१) सब की दृष्टि में आने वाला (२) स्वयं सब कुछ देखने वाला।
'अदृष्टा विश्वदृष्टाः'
ऋ. १.१९१.५,६

विश्वदेवः- (१) सब किरणों का स्वामी सूर्य।
'दृढो नक्षत्रो उत विश्वदेवः'
ऋ. ६.६७.६
(२) सब देवों का देव, (३) सब का दाता, (४) सबका प्रकाशक- इन्द्र परमेश्वर।
'विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि'
ऋ. ८.९८.२; २०.६२.६; साम. २.३७६

विश्वदेव्य- (१) पृथिव्यादि विश्वदेवों में हुआ अग्नि-दया.
(२) सब दिव्य पदार्थों में व्यापक,
(३) सब ज्ञानेच्छु विद्यार्थियों के हितकारी आचार्य
(४) सब देवों का आश्रय।
'प्र नः पूषा चरथं विश्वदेव्यः'
ऋ. १०.९२.१३

विश्वदेवनेत्र - (१) ऋतुओं के समान नेता वाला राजपुरुष। (२) विद्वान् प्रजा या प्रजापति को प्रमुख मानने वाला।
'विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात् सद्भ्यः स्वाहा'
वाज.सं. ९.३५; श.ब्रा. ५.२४.५.

विश्वदेववान् - (१) समस्त देवों में युक्त बृहस्पति, (२) समस्त विद्वान् पुरुषों से युक्त वेदज्ञपुरुष।
'बृहस्पतिं ते विश्वदेववन्तमृच्छन्तु'
अ. १९.१८.१०

विश्वदेव्यः- समस्त विजयी, व्यवहार कुशल, अपने चाहने वाले तथा विद्वान् पुरुषों में सर्व श्रेष्ठ और उनका हितकारी (२) विश्वदेवों का
'एषच्छागःपुरो अश्वेन वाजिना'
पूष्णो भागो नीयते विश्वेदेव्यः
ऋ. १.१६२.३; वाज.सं. २५.२६; तै.सं. ४.६.८.१; मै.सं. ३.१६.१ : १८१.११; का.सं. (अश्व.) ६.४.
छाग का अर्थ जयदेव शर्मा ने शत्रुओं का छेदन करने वाला शस्त्रविद्या और युद्ध में निपुण तथा राष्ट्र को भिन्न भिन्न भागों में बांटने वाला किया है। इस शब्द का दूसरा अर्थ बकरा भी है।
(३) समस्त देवों या विद्वानों का हितकारी।
'आसवं विश्वदेव्यम्'
वाज.सं. २२.१४

विश्वदोहस्- (१) समस्त ऐश्वर्यों का दोहन करने वाली, (२) सब के लिए दूध देने वाली गौ।
'धेनूरिव मनवे विश्वदोहसः
जनाय विश्वदोहसः'
ऋ. १.१३०.५
समस्त ऐश्वर्यों को दोहन करने वाली दुधार गौओं के समान मननशील प्रजाजन के लिए सब प्रकार के ऐश्वर्यों को पूर्ण समृद्ध करने वाली गौ।
'धेनुं च विश्वदोहसम्'
ऋ. ६.४८.१३

विश्वध- (१) सब प्रकार से।
'त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्याः'
ऋ. १.१७४.१०
(२) समस्त राष्ट्र को धारण करने वाला इन्द्र, परमेश्वर।
'त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै'
ऋ. १.६३.८
हे समस्त राष्ट्र को या सब को धारण करने वाले (विश्वध) तू इस पृथ्वी पर अपने को अन्न के समान (ऊर्जं न) समर्पित कर (क्षरध्यै)।

विश्वधा- (१) विश्व को धारण करने वाला (२)

आत्मा को धारण करने वाला जीव । विश्व का अर्थ आत्मा भी है ।

'मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे'

ऋ. १.१४१.६

आत्मा को धारण करने वाला जीव (विश्वधा) स्तुति योग्य, (शंसम्) उत्तम मरणशील देह को (मर्तम्) धारण पोषण के लिए (धायसे) प्राप्त करता है ।

विश्वधायः- (१) समस्त विश्व तथा जीवगण का धारक पोषक-परमेश्वर ।

'देवो न यः पृथिवीं विश्वधायाः'

ऋ. १.७३.३

अधारयत् पृथिवीं विश्वधायसम्'

ऋ. २.१७.५

'इमां च नः पृथिवीं विश्वधायाः'

ऋ. ३.५५.२१

विश्वधाया - विश्व की पोषिका समस्त प्रजाओं को धारण करने वाली पृथिवी ।

'अदितिरसि विश्वधाया
विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री'

वाज.सं. १३.१८; तै.सं. ४.२.९.१; मै.सं. २.८.१४: ११७.१६; का.सं. ३९.३; श.ब्रा. ७.४.२.७

विश्वधावीर्य - सब प्रकार के वीर्यवाली ओषधि ।

'तक्मानं विश्वधावीर्य'

अ. ५.२२.३; १९.३९.१०

(२) सब प्रकार के वीर्य को धारण करने वाला वैद्य ।

विश्वधेना- सब को तृप्त करने वाली ।

'प्र वर्तनीररदो विश्वधेनाः'

ऋ. ४.१९.२

विश्वनाम्नी- (१) परमेश्वर को प्राप्त होने वाली चितिशक्ति (२) अनेकनामों वाली गौ। गौ के अनेक नाम कहे गए हैं ।

'संहिता विश्वनाम्नीः'

अ. ७.७५.२

'चित् असि, मनासि, धीरसि,
रन्ती रमतिः, सूनुः, सूवरी,
इत्युच्चैरूपह्वयै सप्तमनुष्य गवीः'

- आप.श्रौ.सू.

इडे रन्तेऽदिते सरस्वति प्रिये प्रेयसि महि विथुते इत्येतानि ते अघ्न्ये नामानि ।

- तै.ब्रा.

'इडे, रन्ते, हव्ये, काम्ये, चन्द्रे, ज्योते, अदिति, सरस्वति, महि, विश्रुति
एता ते अघ्न्ये नामानि'

वाज.सं. श.ब्रा. ४.५.८.१०

विश्वप्स्न्यः- (१) समग्र रूपों में व्याप्त अग्नि आदि तत्व ।

'रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत्'

ऋ. ७.४२.६

(२) विशेष उत्तम रूप वाला ।

'अभियद् वां विश्वप्स्न्यो जिगाति'

ऋ. ७.७१.४

(३) समस्त विश्व का पालन ।

'विश्वप्स्नाय प्रभरन्तभोजनम्'

ऋ. २.१३.२

(४) सब प्रकार का ।

'विश्वप्स्न्यस्य स्पृहयाय्यस्य राजन्'

ऋ. ८.९७.१५

विश्वपिश् - (१) नाना रूपों का ।

'याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन'

ऋ. ७.७५.६

(२) सर्वांगसुन्दर जन (३) संसार का अवयव भूत-मरुत् वायु ।

'आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः'

ऋ. ७.५७.३

विश्वपेशस्- (१) समस्त सुन्दर रूपों से युक्त, (२) नाना रूपों का ।

'सं नो राया बृहता विश्वपेशसा'

ऋ. १.४८.१६

हे उषा के समान सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाली विदुषी स्त्री ! तू हमें बड़े अधिक परिमाण वाले नाना प्रकार के ऐश्वर्यों से हमारी वृद्धि कर ।

विश्वभराः- समस्त विश्व का भरण भोषण करने वाला, अग्नि-परमेश्वर ।

'होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम्'

ऋ. ४.१.१९

विश्वभानु- सब तेजों और प्रकाशों को धारण करने वाला ।

'मरुत्सु विश्वभानुषु'

ऋ. ४.१.३; ८.२७.३

विश्वभ्राट् - समस्त विश्व का प्रकाशक सूर्य ।
'विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृशः'
ऋ. १०.१७०.३; साम. २.८०५; कौ.ब्रा. २५.५.

विश्वं भुवनम् - समस्त प्राणिमात्र ।
'स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे'
ऋ. १०.११४.४; ऐ.आ. ३.१.६.१५; नि. ४६.
वह वायु समस्त प्राणिमात्र को अनुग्रह की दृष्टि से देखता है ।

विश्वभृत- सब का भरण पोषण करने वाला ।
'विश्वभृतस्थ राष्ट्रदा'
वाज.सं. १०.४; श.ब्रा. ५.३.४.२०

विश्वभेषजः- (१) सब रोगों एवं पीड़ाओं की एक मात्र ओषधि शंख ।
'शंखो नो विश्वभेषजः'
अ. ४.१०.३
(२) सब रोगों को नष्ट करने वाला ओषधि कुष्ठ ।
'स कुष्ठो विश्वभेषजः'
अ. १९.३९.५; ८
(३) महौषधि, (४) ब्रह्मचर्य
'अयं नो विश्वभेषजः'
अ. २.४.३

विश्वभेषजी - (१) समस्त कष्टों का निवारण करने वाली ।
'आभारिषं विश्वभेषजीम्'
अ. ६.५२.३
(२) समस्त दुःखों को दूर करने वाला- जल का विशेषण ।
'आपश्च विश्वभेषजीः'
ऋ. १.२३.२०; तै.ब्रा. २.५.८.६; आप.श्रौ.सू ८.८.७.

विश्वभोजः- (१) समस्त विश्व या राष्ट्र का पालन करने वाला ।
'पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजाः'
ऋ. ५.४१.४
(२) समस्त भोग्य पदार्थों का आश्रयभूत -पृथिवी ।
'ध्रुव आरोह पृथिवीं विश्वभोजसम्'
अ. १८.४.६.

विश्वभोजसा - द्वि.व. । समस्त विश्व के पालक -जल और अग्नि तत्व ।
'स योजते अरुषा विश्वभोजसा'
ऋ. ७.१६.२; साम. २.१००; वाज.सं. १५.३३; तै.सं. ४.४.४.४

विश्वभोजाः - (१) समस्त विश्व का पालन करने वाला या सबके भोजन करने योग्य-अन्न ।
'इषं च विश्वभोजसम्'
ऋ. ६.४८.१३
(२) समस्त विश्व को अन्न देने वाला सामर्थ ।

विश्वम्भर- समस्त संसार का भरण भोषण करने वाला-परमात्मा ।
'विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा'
अ. २.१६.५

विश्वभरा- विश्व को भरण पोषण करने में समर्थ ।
'पुरीष्योऽसि विश्वभराः'
वाज.सं. ११.३२; तै.सं. ४.१.३.२; श.ब्रा. ६.४.२.१.

विश्वमनाः- (१) सर्वव्यापक, (२) कामना न करने वाला, (३) विशव में निमग्न मन वाला ।
'दामानं विश्वचर्षणे
अग्नि विश्वमनो गिरा'
ऋ. ८.२३.२

विश्वमिन्वः- यः सर्वं विज्ञानम् इन्वति -व्याप्नोति (विश्वव्यापी अधिकार) । (२) सर्वज्ञानमय ।
'इन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय'
अ. २०.३५.४; ऋ. १.६१.४
(३) सब पदार्थों को प्राप्त कराने वाला (४) सब प्रकार की बाधाओं और बाधक शत्रुओं का नाशक ।
'धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वः'
ऋ. २.४०.६; मै.सं. ४.१४.१: २१५.५; तै.ब्रा. २.८.१.६

विश्वमिन्वा- विश्वं हविः + इन् (व्याप्ति अर्थ में प्रयुक्त) + अण् = विश्वमिन्व । 'हवि' धातु के इ का इत् होने से नुम् ।
(१) सर्वस्य प्रीणयत्र्य (सब को प्रसन्न करने वाली)
(२) सारे जगत् को चलाने वाली गतिशील या सेनादि निवारक यज्ञाग्नि ।
(३) सभी यज्ञों की सामग्रियों के द्वार से होकर जाने देने वाली,
(४) द्वार या अग्नि ज्वाला का विशेषण ।
'देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वाः'

ऋ. १०.११०.५; अ. ५.१२.५; वाज.सं. २९.३०; मै.सं. ४.१३.३; २०.२०२.४; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.१०

यज्ञ मण्डल की द्वार रूपी देवियाँ या अग्नि ज्वालाएं रूपी द्वार, तुम सभी को प्रसन्न करने वाली या सभी यज्ञ की सामग्रियों को द्वार से होकर जाने वाली हो या अनेक गुणों वाली एवं सारे जगत् को चलाने वाली गति शील या रोगादि विनाशक हो ।

विश्वमिन्वे- द्वि.व. । एक वचन में 'विश्वमिन्वा' । अर्थ-(१) समस्त विश्व को अन्नादि से सन्तुष्ट, प्रसन्न एवं तृप्त करने वाले-रोदसी द्यावा पृथिवी, (२) स्त्री पुरुष

आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे

ऋ. ३.३८.८

विश्वमेजय- विश्वम् + एजय । विश्व का संचालक प्रभु ।

'पवस्व विश्वमेजय'

ऋ. ९.३५.२; ६२.२६

विश्वयत्- (१) विविधरूपों में फैलने वाला, (३) विविध प्रकार से शोथ प्रकट करने वाला रोग (३) विषादि पदार्थ (४) विश्व को बनाने वाला प्रधान प्रकृति तत्व ।

'कुलाययद् विश्वयन्मा न आ गन्'

ऋ. ७.५०.१

विश्वरूप- (१) नाना विधरूपः (नाना रूपों वाला) । (२) सर्वरूपः (सभी रूपों वाला) (३) अग्नि, (४) सूर्य

'स ओषधीः पचति विश्वरूपाः'

ऋ. १०.८८.१०; नि. ७.२८

(५) अनेक प्रकार का । (६) सभी जीवों का त्वष्टा सविता नामक मध्यम देव का विशेषण ।

'देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः'

ऋ. ३.५५.१९; १०.१०.५; अ. १८.१.५; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१; शां.श्रौ.सू. १३.४.२; नि. १०.३४.

विश्वरूपः त्वाष्ट्र- (१) देहमय विश्वरूप (२) आत्मा के रूप से युक्त देह ।

'त्वाष्ट्रस्य चिद्विश्वरूपस्य गोनाम्'

ऋ. १०.८.९

विश्वरूप वाज- पूर्ण वेदमय ज्ञान ।

'यदा वाजमसनद्विश्वरूपम्'

ऋ. १०.६७.१०; अ. २०.९१.१०; मै.सं. ४.१२.१: १७८.१

विश्वरूप - (१) समस्त विश्व को रूप देने वाली, ब्रह्माण्ड का कर्ता विश्वरूप परमात्मा (२) नाना रूपों में उत्पन्न सृष्टि ।

'विश्वरूप्यं त्रिसु योजनेषु'

ऋ. १.१६४.९; अ. ९.९.९

विश्वरूपा - (१) नाना प्रकार से सब पदार्थों को बनाने वाली गृहपत्नी ।

'विश्वरूपां सुभगाम्'

अ. ६.५९.३

(२) अनेक रूपों वाली पृथिवी-दया. ।

(३) सब प्रकार की प्रजा ।

(४) सब संसार के पदार्थों को प्रकट करने वाली वेदवाणी ।

'बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत'

ऋ. १.१६१.६

(५) सभी प्रकार के प्राणी ।

'ताव विश्वरूपाः पशवो वदन्ति'

ऋ. ८.१००.११; तै.ब्रा. २.४.६.१०; पा.गृ.सू. १.१९.२; नि. ११.२९

उस वाणी को सभी प्रकार के जीव बोलते हैं ।

(६) जो विश्व में दर्शनीय व्यक्ति है ।

'ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपाः'

अ. २.३४.४; ३.१०.६; तै.आ. ३.११.११, १२; आश्व.श्रौ.सू. २.२.१७; आप.श्रौ.सू. ६.५.७; मा.श्रौसू. १.६.१.१५; साम.मं.ब्रा. २.२.१४; हि.गृ.सू. २.१७.२

(७) सब प्रकार से सब अंगों में रूपवती कन्या ।

'कन्यानां विश्वरूपाणाम्'

अ. २.३०.४

विश्वव्यचा- (१) संसार में फैला हुआ (२) जगत् प्रसिद्ध ।

'विश्वव्यचा घृतपृष्ठो भविष्यन्'

अ. १२.३.१९; ५३.

(३) सर्वव्यापक आकाश ।

'विश्वव्यचाश्चमौंषधयः'

अ. ९.७.१५

(४) समस्त विश्व में फैलने वाला अधिकारी ।

'अयं पश्चाद् विश्वव्यचाः'

वाज.सं. १३.५६; १५.१७; तै.सं. ४.३.२.२; ४.३.१; ५.२.१०.४; मै.सं. २.७.१९: १०४.६; का.सं. १६.१९; २०.९; श.ब्रा. ८.१.२.१; ४.२; ६.१.१८.

विश्ववारः- (१) विश्वं वृणीते संभाजयति (संसार को अनेक प्रकार सिद्ध करने वाला परमेश्वर)। (२) सबसे वरण करने योग्य।

'तं त्वां वयं विश्ववरा
आ शास्महे पुरुहूत'

ऋ. १.३०.१०

(३) सर्वस्पृहणीय (४) सब दुःखों को वारण करने वाला महान् विद्या धन।

'अस्मे प्रयन्धि मघवन् ऋजीषिन्'
'इन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः'

ऋ. ३.३६.१०; पा.गृ.सू. १.१८.५;

हे धनवाला, सोमरस वाला या सरल स्वभाव वाला विद्वान् या इन्द्र, सर्वस्पृहणीय प्रचुर धन या सब दुःखों को दूर करने वाले महान् विद्याधन को हमें दें।

(५) सबसे वरण करने योग्य (६) सब कष्टों का वारक -अग्नि या परमेश्वर।

'समक्तुभिरज्यते विश्ववारः'

ऋ. ३.१७.१; तै.ब्रा. १.२.१.१०; आप.श्रौ.सू. ५.६.३

विश्ववारा - (१) सभी उत्तम गुणों से अलङ्कृत पत्नी।

'तेना नो यज्ञं पिपृहि विश्ववारे'

अ. ७.२०.४; ७९.१

(२) सब कष्टों को कारण करने वाली युद्ध कारिणी शक्ति

विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो'

ऋ. ६.२२.११; अ. २०.३६.११

(३) समस्त गुणों से सम्पन्न शुभांगी।

(४) सब में वारण करने या सेवन करने योग्य-उषा

(५) सब उत्तम पदार्थों में या सुखों को चाहने वाली स्त्री।

विश्वविद्- (१) जगत् के सब पदार्थों का ज्ञाता। (२) सब पदार्थों का ज्ञान कराने वाला।

'त्वं समुद्रो असि विश्ववित् कवे'

ऋ. ९.८६.२९

विश्वविद् वाक् - समस्त संसार का ज्ञान कराने वाली वाणी।

विश्ववेदस्- (१) विश्व का धन, (२) सर्वधन, (३) सर्वज्ञ, (४) अग्नि।

'यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसम्'

ऋ. १.१४३.४

जिस विश्वधन अग्नि को भृगओं ने प्रेरित किया।

(५) समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों का स्वामी।

'स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः'

ऋ. १.८९.७; साम. २.१२२५; वाज.सं. २५.१९; मै.सं. ४.९.२७: १४०.१; का.सं. ३५.१; तै.आ. १.१.१; २१.३; १०.१.९; आप.श्रौ.सू. १४.१६.१.

विश्वशम्भुः - (१) विश्व का कल्याण करने वाला अग्नि।

'अग्निं च विश्वशंभुवम्
आपश्च विश्वभेषजीः'

ऋ. १.२३.२०

वह सोम ही जलों में समस्त जगत को सुख शान्ति देने वाले अग्नि को भी जलों के भीतर बतलाता है और जलों को ही समस्त दुःखों को दूर करने वाला बतलाता है।

(२) सब का कल्याण करने वाला।

'विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा'

ऋ. १०.८१.७; वाज.सं. ८.४५; १७.२३; तै.सं. ४.६.२.६; मै.सं. २.१०.२; १३३.१९; का.सं. १८.२; २१.१३, ३०.५; शा.ब्रा. ४.६. .५.

विश्वशम्भुना- द्वि.व.। विश्व का कल्याण करने वाले द्यावा पृथिवी या पति पत्नी।

'तेहि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवा'

ऋ. १.१६०.१; ऐ.ब्रा. ४.१०.११; ३२.४; कौ.ब्रा. १९.९; २०.३; २१.२.२२.२; २५.९; आश्व.श्रौ.सू. ६.५.१८; शां.श्रौ.सू. १८.२२.५

विश्वशम्भू- सबके लिए सुखशान्ति, का उत्पन्न स्थान।

'वैश्वानरो विश्कृद् विश्वशंभूः'

अ. ६.४७.१; का.सं. ३०.६

विश्वश्चन्द्रः- (१) सर्वाह्लादक, (२) सर्वचयनीय, (३) वर्धनीय जल का विशेषण होकर आया है।

विश्वश्चन्द्रा- (१) सबको आह्लादित करने वाली,

(२) सब प्रकार के धन सुस्वादि से समृद्ध विद्या या प्रजा ।
'प्र सध्रीचीरसृजद् विश्वश्चन्द्राः'
ऋ. ३.३१.१६

विश्वशारदः- (१) समस्त आयु भार लगा हुआ दुःख, रोग या शत्रु ।
'तक्मानं विश्वशारदम्'
अ. ९.८.६; १९-३४.१०
(२) सब वर्षों या ऋतुओं में होने वाला ज्वर ।

विश्वश्रुष्टिः- (१) श्रु + क्तिन् = श्रुष्टि । विश्वाः = श्रुष्टयः त्वरिता गतयः यस्य सः ।
(२) सब श्रवण योग्य उपदेशों का जानने वाला, (३) समस्त राज्य कार्यों का कर्त्ता, (४) समस्त अन्न धन आदि का स्वामी ।
'विश्वश्रुष्टिः सखीयते'
ऋ. १.१२८.१
समस्त श्रवण योग्य उपदेशों का जानने वाला विद्यार्थी को अपना सखा या मित्र बना लेता है ।
अथवा,
समस्त राज्य कार्यों का कर्त्ता समस्त अन्न या धन आदि का स्वामी होकर सबका मित्र होना चाहे ।

विश्वस्यदूतः- (१) सभी का दूत- अग्नि । अग्नि देवताओं का हवि पहुंचाता है अतः वह विश्व दूत है ।
(२) विश्व का उपदेशक-
'प्रिय चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं
विश्वस्य दूतममृतम्'
ऋ. ७.१६.१; साम. १.४५.; २.९९; वाज.सं. १५.३२; तै.सं. ४.४.४.४; मै.सं. २.१३.८:१५७.४; का.सं. ३९.१५
प्रिय अत्यन्त चेतना वाले, पर्याप्त बुद्धि वाले, यज्ञ को सुशोभित करने वाले, सभी के दूत एवं अमर धर्म, वाले अग्नि को आमन्त्रित करता हूँ ।
अथवा,
हितकर, आर्य, हिंसा रहित शुभकर्म करने वाले संसार को अनर्थों से बचाने वाले विश्व के उपदेशक को (विश्वस्यदूतम्) स्वीकार करता हूँ ।

विश्वस्य भुवनस्य राजा- (१) सम्पूर्ण भूतजात या उदक का राजा, वरुण या परमात्मा ।
'तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा
यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम'
ऋ. ५.८५.३; नि. १०.४
समस्त भूतजात, या उदक के राजा वरुण ने मेघ को रोदसी और अन्तरिक्ष में पसार दिया जैसे पटाने वाला भूमि को तरह तरह से यव बोने के लिए सींचता है (वृष्टः यवं न भूम व्युनत्ति) ।

विश्वसामा- (१) समस्त विश्व में समान रूप से व्यापक-सूर्य, (२) सबके प्रति समान रूप से न्यायी राजा ।
'संहितो विश्वसामा सूर्यः'
वाज.सं. १८.३९; तै.सं. ३.४.७.१; मै.सं. २.१२.२; १४५.३; का.सं. १८.१४; श.ब्रा. ९.४.१.८.
(२) समस्त सामों, गायनों को जानने वाला, (३) समस्त पुरुषों द्वारा किए प्रार्थना वचनों को स्वीकार करने वाला । (३) सबके प्रति प्रिय मधुर वचनों का प्रयोग करने वाला ।
'प्र विश्वसामन् अत्रिवत्'
ऋ. ५.२२.१

विश्वसुविद् - (१) समस्त उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाली -भूमि ।

विश्वसू- समस्त धनों को धारण और उत्पन्न करने वाली पृथिवी ।
'विश्वस्वं मातरमोषधीनाम्'
अ. १२.१.१७

विश्वसौभगः- (१) समस्त ऐश्वर्यों से युक्त ।
'त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः'
ऋ. १.१५७.३; साम. २.१११०
'अधा नो विश्वसौभग
हिरण्यवाशीमत्तम
धनानि सुषणा कृधि'
ऋ. १.४२.६
हे समस्त श्रेष्ठ सुखप्रद ऐश्वर्यों के स्वामी ! हे सब से अधिक हित और प्रिय वाणी बोलने वाले परमेश्वर या सुन्दर सुवर्ण और लोहादि धातु से बने शास्त्रों से सम्पन्न राजन् या उत्तम वाणी से युक्त विद्वान्, तू हमें सुख और शान्ति प्रदान करने वाले धन और ऐश्वर्य प्रदान कर (सुषणा धनानि कृधि) ।

विश्वह- नित्य, प्रतिदिन ।

'वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः'

ऋ. २.१२.१५; अ. २०.३४.१८

'सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम'

ऋ. ७.२१.९

विशाखा- शाखाओं से रहित या नाना शाखाओं वाली ओषधि ।

'अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखाः'

अ. ८.७.४

विशाखे- द्वि.व.। विशाखा नक्षत्र ।

'राधो विशाखे सुहवानुराधा'

अ. १९.७.३

विशाल- (१) वस्त्र, (२) तम्बू, (३) यह लोक ।

'विशालं छन्दः'

वाज.सं. १५.५; १४.९; तै.सं. ४.३.५.१; १२.३; मै.सं. २.८.२: १०८.४; २.८.७:११२.३; का.सं. १७.२,६;श.ब्रा. ८.२.४.२; ५.२.६

'सद्यः काव्यानि वडधत्त विश्वा'

ऋ. १.९६.१; मै.सं. ४.१०.६; १५७.१२

शीघ्र अनेक विज्ञानों को (विश्वा काव्यानि) यथार्थ रूप से (वट्) धारण करता है (अधत्त) ।

विश्वागोत्राः- (१) समस्त गोत्र अर्थात् नाना बीज, (२) परमात्मा के उत्पादक शक्ति के अंकुर जो बीजों के समान गौ अर्थात् भूमि में सुरक्षित रहते हैं ।

'विश्वायद् गोत्रा सहसा परीवृता'

ऋ. २.१७.१

विश्वाङ्ग्य- समस्त शरीर में पीड़ा उत्पन्न करने वाला ।

'विश्वाङ्ग्यं विसल्यकम्'

अ. ९.८.५

विश्वातन्वः- सम्पूर्ण अंग ।

'विश्वा अपश्यद्बहुधा ते अग्ने
जातवेदस्तन्वो देव एकः'

ऋ. १०.५१.१

हे जातप्रज्ञ अग्नि (जातवेदः अग्ने), तेरे सम्पूर्ण अंग बहुत प्रकार से दीख पड़ते हैं (बहुधः), किन्तु एक प्रजापति ने ही तुझे देखा (एकः देवः अपश्यत्) ।

अथवा

हे विद्युत् अग्नि ! (जातवेदः अग्ने) तेरे सम्पूर्ण अंगों को (विश्वातन्वः) कोई बड़ा वैज्ञानिक (एकः देवः) अनेक साधनों से (बहुधा) देखता है (अपश्यत्) ।

विश्वाद्- (१) सब पदार्थों का भक्षक-अग्नि (२) समस्त पदार्थों को अपने भीतर लेने वाला-अग्नि परमेश्वर ।

'अग्निष्टत् विश्वाद् अगदं कृणोतु'

ऋ. १०.१६.६; अ. १८.३.५५; तै.आ. ६.४.२.

(३) अ. । सब प्रकार से (४) प्रलय काल में सब को ग्रस्त करने वाला ।

'यो देवो विश्वात्'

अ. ३.२१.४

'विश्वादं पुरुवेपसम्'

ऋ. ८.४४.२६

विश्वाप्सु- (१) समानं रूपं गुणा यस्य स (२) समस्त रूपों से युक्त अग्नि । (३) समस्त ज्ञानों और कर्मों और नाना रूप पदार्थों को जानने वाला आचार्य ।

'होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम्'

ऋ. १.१४८.१; मै.सं. ४.१४.१५: २४०.१४

विश्वाभू- (१) सर्वस्य भावयितृ (सबका भावयिता) (२) सबको उत्पन्न करने वाला । इन्द्र या परमेश्वर । (३) सब में व्यापक ।

'विश्वानराय विश्वाभुवे'

ऋ. १०.५०.१

सब के नेता तथा सब को उत्पन्न करने वाले इन्द्र या परमात्मा को....

(३) सर्वप्रकार विभूतियुक्तः (सब प्रकार की विभूतियों से युक्त) ।

विश्व + भू = विश्वाभू (दीर्घ छान्दस है) ।

विश्वाभूता- (१) समस्त नक्षत्र ।

(२) पंचभूत ।

'अन्तरिक्षेण पतति विश्वाभूतावचाकशत्'

अ. ६.८०.१

विश्वायु- (१) सर्वायु (२) परिणतवयः (वृद्ध)

(३) अप्रतिहत बुद्धि

(४) समस्त मनुष्य वर्ग

(५) समस्त संसार का जीवन स्वरूप परमेश्वर ।

'स भदना उदियर्ति प्रजावतीः
विश्वायुर्विश्वाः सुभरा अहर्दिवि'

ऋ. ९.८६.४१;
वह सर्वायु, परिमत वय या अप्रतिहत बुद्धि यजमान या समस्त मनुष्य वर्ग (विश्वायुः) सन्तान रूपी फल देने वाली या सृष्टि रचना विषयक तेरी स्तुतियों का उच्चारण करता है ।
(५) सबको आयु दीर्घ जीवन देने वाला सूर्य, (६) सर्व मनुष्यों का स्वामी, (७) सबके जीवन का रक्षक ।
'आयुः विश्वायुः परिपातु त्वा'
अ. १८.२.५५

विश्वावसु- समस्त जनों का स्वामी ।
'उत्तिष्ठेतो विश्वावसो'
अ. १४.२.३३; श.ब्रा. १४.९.४.१८;

विश्व्या- (१) विश्व + यत् + टाप् । विश्वसम्बन्धी, (२) विश्वतः ।(३) सर्वतः ।
'मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत्'
ऋ. २.४२.१; वि. ९.४.
(४) सर्वसाधरण से आने वाला ।

विश्वेत् - सभी । 'विष्णु' ।
'विश्वेत् ता विष्णुराभरत्'
ऋ. ८.७७.१०
इन्द्र उन सभी धनों को लाया ।

विश्वाच्- (१) विविध गति वाला शत्रुमण्डल,
'जातं विश्वाचो अहतं विषेण'
ऋ. १.११७.१६
आप दोनों सब तरफ फैली शत्रु सेना के रखे पदार्थों के विष के समान घातक और दूषक पदार्थ से विविध दिशाओं में फैले प्रजाजन को बचाते हो और बच्चे तक को अपने व्यापक राज्य प्रबन्ध से व्याप्त करते हो ।
अथवा,
विविध देशों में व्याप्त अन्धकार के प्रभाव को व्यापक तेज से विनष्ट करते हो ।
(२) विश्व + अञ्च + क्विप् = विश्वाञ्च । विविधगति युक्त विश्वाञ्च् नामक राक्षस ।
(३) विषयगति युक्त दस्यु मण्डल (४) चारों ओर दौड़ने वाला मेघ ।
'जातं विश्वाचो अहतं विषेण'
ऋ. १.११७.१६
विविध गतियुक्त विश्वाञ्च् नामक राक्षस के अपत्य को तुम दोनों ने विष देकर मारा ।
विविधगतियुक्त दस्युमण्डल के अन्न पानादि को विष से नष्ट करो ।
चतुर्दिक् मंडराने वाले मेघ के जल से समस्त प्राणि वर्ग को सुख प्राप्त कराओ ।

विश्वाची- (१) या विश्वम् अञ्चति ।
(२) समस्त जनों की बनी सभा ।
'आ विश्वाची विद्यामनक्तु'
ऋ. ७.४३.३
(३) समस्त जनों को विषय में बांधने वाली व्यवस्था,
(४) एक अप्सरा ।
'विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापः'
वाज.सं. १५.१८; तै.सं. ४.४.३.२; मै.सं. २.८.१०:११५-३, का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.१९

विश्वानरः- (१) विश्वे एनं नराः नयन्ति (इस कर्म करने वाले अग्नि का सभी उपयोग करते हैं) । विश्व + नर + अप् (कर्म में) ।
(२) अपि वा विश्वानर एवस्यात् (अथवा कोई विश्वानर ही हो) ।
(३) विश्वानि भूतानि प्रतिऋतः गतः प्रविष्टः (जो समस्त प्राणियों में प्रविष्ट हो) ।
(४) विश्वान् जन्तून् अरः (समस्त प्राणियों में गत) । विश्वान् + ऋ + अच् = विश्वानर (छान्दस नियम से उपपद् विभक्ति का लोप नहीं हुआ है) ।
अर्थ - (१) प्राण, (२) सर्वसञ्चालक धनञ्जय, (३) सब का नेता ।
'विश्वेषां वरः विश्वानरः'
(४) सूर्य ।
'विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः'
ऋ. ८.६८.४, साम १.३६४; नि. १२.२१
मैं स्वज्योति प्रकाशित (अनानतस्य) बल के पति या रक्षा करने वाले सूर्य को बुलाता हूँ ।
(५) मध्याह्नोत्तर कालीन आदित्य
'विश्वानरः सविता देवो अश्रेत्'
ऋ. ७.७६.१; नि. ११.१०
'विश्वानराय विश्वाभुवे'
ऋ. १०.५०.१
(६) समस्त मनुष्यों से बना हुआ ।
'विश्वानरस्य वस्पतिम्'
ऋ. ८.६८.४; साम. १.३६४, ऐ.ब्रा. ४.३१.६;

५.१८.१०; कौ.ब्रा. २०.३; आश्व.श्रौ.सू. ७.६.४; नि. १२.२१.

विश्वान्न- (१) सब प्रकार का अन्न।
'विश्वान्नं बिभ्रती शाले'
अ. ९.३१६

विश्वाप्रवत् - समस्त अधोलोक।
'विश्वा रोधांसि प्रवतिश्च पूर्वीः
द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन् रेजत क्षाः'
ऋ.४.२२.४

विश्वामित्र- (१) सबका स्नेही, (२) आत्मा का स्नेही
'विश्वामित्रेभिरध्यते अजस्रः'
ऋ. ३.१.२१

विश्वामित्राः- सबके मित्र लोग।
'विश्वामित्रा अरासत'
ऋ. ३.५३.१३

विश्वामित्रऋषिः- शरीर का श्रोत्र (२) विश्वामित्र ऋषि।
'विश्वामित्र ऋषिः'
वाज.सं. १३.५७; मै.सं. २.७.१९; १०४.११; का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.६;

विश्वापुष् - (१) समस्त विश्वास का पोषण। करने वाला (२) सब को पुष्ट करने वाला ऐश्वर्य।
'पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुसं रयिम्'
ऋ. १.१६२.२२; वाज.सं. २५.४५; तै.सं. ४.६.९.४

विश्वायु पोषस् - समस्त प्राणियों के जीवन और आयुओं की वृद्धि और पुष्टि करने वाला।
'आ नो अग्ने सुचेतुना
रयिं विश्वायुपोषसम्
मार्डीकं धेहि जीवसे'
ऋ. १.७९.९; साम. २.८७६; मै.सं. ४.१०.६; १५६.२; का.सं. २.१४; तै.ब्रा. २.४.५.३; आ.श्रौ.सू. ८.१४.२४.
हे अग्नि या परमेश्वर। तू हमें ज्ञान, विज्ञान के साथ (सुचेतुना) समस्त प्राणियों के जीवनों और आयु की वृद्धि और पुष्टि करने वाले तथा सबको सुख देने वाले (मार्डीकम्) ऐश्वर्य (रयिम्) दे (धेहि)।

विश्वायुवेपाः- विश्व + आयु + वेपाः (१) समस्त मनुष्यों को कंपाने वाला विद्वान् पुरुष (२) समस्त मनुष्यों को चलाने वाला-अग्नि, परमेश्वर
'अग्निं विश्वायुवेपसम्'
ऋ. ८.४३.२५

विश्वापसुः- (१) विश्व में व्यापक (२) विश्वरूप धन का स्वामी (३) जगत् का आच्छादक, (४) सबको बसाने वाला।
(५) प्रवेश योग्य गृहस्थ में बसने वाला वर।
'विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीडे'
ऋ. १०.८५.२१;

विश्ववारा- (१) सब ओर से सुरक्षित शाला-मकान।
'शालाया विश्ववारायाः'
अ. ९.३.१

विशिक्षु- (१ विविध विद्याओं को सिखाने वाला, (२) सूर्य विधि उपायों से दण्ड द्वारा दमन करने वाला।
'त्व विशिक्षुरसि यज्ञमातनिः'
ऋ. २.१.१०

विशिखः- वि + शिख। (२) विषम प्रयोग करने वाला पुरुष।
'सहस्रधामन् विशिखान्'
अ. ४.१८.४
(२) चूड़ाकर्म के उपरान्त मुण्डित बालक, (३) विशेष तीक्ष्ण शिखा वाला बाण।
'कुमारा विशिखा इव'
ऋ. ६.७५.१७; साम. २.१२१६; वाज.सं. १७.४८; तै.सं. ४.६.४.५.

विशिशिप्र- प्रजाओं में विद्यमान ज्ञानी, तेजस्वी सुमुन सौम्य पुरुष।
'यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय'
ऋ. ५.४५.६

विशिष- नाना प्रकार से विशेष रूप से कही हुई आज्ञा।
'संशिषो विशिषश्च याः'
अ. ११.८.२७

विश्रिता - (१) विविधैः आप्तैः श्रिता सेविता। (विविध विद्वानों से सेविता। वाणी का विशेषण)।
'बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीः'
ऋ. १.११७.१

आप का दान प्रजा की सुख वृद्धि करने वाला हो और वाणी विविध विद्वानों द्वारा सेवित करने योग्य हो ।

विश्रित– विविध प्रकार और रूपों में स्थित (जल) ।
प्रतिगृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः '
ऋ. १.५५.२
सूर्य विविध प्रकार और रूपों में स्थिति जलों को (विश्रिता) नाना रोकने वाले कारणों या किरणों द्वारा (वरीमभिः) अथवा अत्यधिक शक्तिशाली किरणों से अपने में ले लेता है (प्रतिगृभ्णाति) ।

विश्रृंगी– (१) विशिष्ट शिखायुक्त दीप्तिमान मेघ–सा.
(२) विशिष्ट रूप से सिर उठाए हुआ शत्रु–दया.
'वि श्रृंगिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः
ऋ. १.३३.१२; नि. ६.१९
इन्द्र ने विशिष्ट शिखर युक्त दीप्तिमान् मेघ को छिन्न भिन्न किया । –सा.
राजा विशेष सिर उठाए शत्रु को कुचल डाले–दया. ।

विश्वेअमृताः – समस्त अमृतजीवगण ।
'धिया यद् विश्वे अमृता अकृण्वन्'
ऋ. ४.१.१०

विश्वेत् – विश्व + इत् । सभी ।
'विश्वेत् ता वां सवनेषु प्रवाच्या'
हे अश्विद्वय, तुम्हारे वे सभी कर्म (वाम् ता विश्वेत्) यज्ञों में प्रवचनीय हैं (प्रवाच्याः) ।

विश्वेदेवाः– ब.व. । (१) विश्वदेव अर्थात् सभी देवगण –सा. (२) सूर्य की किरणें –दया.
'विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त'
ऋ. ७.३३.११; नि. ५.१४
विश्वदेव या सूर्य की किरणों ने तुझे स्खलित वीर्य या जल का कलश या अन्तरिक्ष में रखा ।
'सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः'
ऋ. ७.३९.४
विश्वेदेव यज्ञों में समानस्थान पर आते हैं । (सधस्थ अभिसन्ति) ।
(३) विद्वज्जन–दया.

विष् – (१) करणार्थक धातु, (२) व्यापनार्थक धातु ।

विष– (१) व्याप्त होने योग्य समस्त प्रकृति के परमाणुओं में व्याप्त परमेश्वर (२) सेवा करता हुआ ।
'ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः'
ऋ. १०.१०९.५; अ. ५.१७.५

विषक्त– वि + सच् + क्त । अकेला, एकान्त में ।
'त्सरन् विषक्तं बिल आससाद्'
अ. १२.३.१३

विषक्ता– (१) विस्तृत, (२) हिंसाशील, (३) राजद्रोही (४) विपरीत हुई पृथिवी, राष्ट्रभूमि या सेवा ।

विषगिरिः– विष की खान, संखिया आदि की खान ।
'वध्रिर्विषगिरिः कृतः'
अ. ४.६.७

विषण– सर्वव्यापक परमात्मा । विष् (व्यापना) + नु = विष्णु । अथवा –पद क्रमणेन भुवनत्रयं वेवेष्टि व्याप्नोति स विष्णुः ।
(जो पद क्रमण से तीनों भुवनों में व्याप्त होता है वह विष्णु है) ।

विषदूषण– विष निवारण का उपाय ।
'सचित्ता विषदूषणम्'
अ. ६.१००.१

विषदूषणी– विषों का नाश करने वाली ।
'उग्रा या विषदूषणीः'
अ। ८.७.१०

विषदूषणी वाक् – विष को दूर करने वाली वाणी ।
'वाचं विषस्यदूषणीं
तामितो निरवादिषम्'
अ. ४.६.२

विषधान– (१) विष रखने का स्थान ।
'यस्ते विषधानः'
अ. २.३२.६

विषपुष्प– विष का पुष्ट प्रबल अंश ।
'विषस्य पुष्पमक्षन्'
ऋ. १.१९१.१२

विषम्– (न) (क) वि + स्ना + ड = विष (ण का लोप) । स्नाति अनेन विशेषण (इससे विशेष प्रकार से स्नान करते हैं) ।
(ख) वि + सच् (सेचन और सेवन अर्थों में) ।

+ ड = विप । तत् हि स्नानपानावगाहनार्थिभिः सेव्यते (जल स्नान, पान एवं अवगाहन करने वालों के द्वारा सेवन किया जाता है । अतः यह विष कहलाया । (ग) दुर्ग ने-'सर्वत्र हि अति शयेन यत् सक्तम्' (जो सर्वत्र अतिशय रूप से सक्त है) - ऐसी व्युत्पत्ति की है ।

अर्थ है-(१) उदक,जल (२) विष -यास्क,

'जातं विष्वाचो अहतं विषेण'

ऋ. १.११७.१६

विषवती- विराट् का एक रूप ।

'सर्पा उपह्वयन्त विषवत्येहीति'

अ ८.१०.(५) १३

विषस्यपात्रम् - पान करने कका आधार यह देह

'केशी विषस्य पात्रेण
यद्रुद्रेणापिबत् सह'

ऋ. १०.१३६.७

विष्कन्ध- (१) ऐसे पशु जिनके कन्धे विशेष रूप से उठे हुए हों ।

'वध्रि विष्कन्धम्'

अ. ३.९.२

(२) षड्यन्त्र, (३) सेना बल ।

'नैनं विष्कन्धमश्नुते'

अ. ४.९.५

(३) विशेष सेना का दस्ता ।

'इदं विष्कन्धं सहते'

अ. १.१६.३

(४) सेना का पृथक् पृथक् निवेश या रास्ता ।

(५) कन्धों की फूटन ।

'विष्कन्धं येन सासहे'

अ. १९.३४.५

(६) रक्त शोषण रोग

'विष्कन्धादभिशोचनात्'

अ. २.४.२

विष्कन्धदूषण- (१) प्रबल शत्रुओं या हिंसक जीवों को वश करने में समर्थ (२) एक मणि- ताबीज यन्त्र ।

'मणिं विष्कन्धदूषणम्'

अ. २.४.१; . ३.१०.६

(३) विष्कन्ध (स्कन्ध की पीड़ा) नामक रोग का नाशक जङ्गिड़ नामक ओषधि,

(४) शत्रुओं की छावनियों का नाशक ।

'अग्रे विष्कन्धदूषणम्'

अ. १९.३५.१

(५) शरीर का रस सोखने वाले रोग को हटाने वाला वीर्य ।

विष्कभ्नन् - विविध उपायों से थामता और दृढ़ करता हुआ ।

'विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री'

ऋ. ३.३१.१२

विष्टःचमसः- परसास हुआ थाल ।

'भद्रासि रात्रो चमसो न विष्टः'

अ. १९.४९.८

विष्टप् - (१) सूर्य ।

'नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः'

अ. १८.४.४.

(२) विशेष तप अर्थात् तेज ।

'अयं ब्रध्नस्य विष्टपि'

अ. १३.१.१६

(३) वि + ष्टभ् (प्रतिबन्ध अर्थ में) + क्विप् = विष्टप् । भ् का प् व्यत्य द्वारा । आदित्य । 'विष्टप् आदित्यो भवति' (विष्टप् आदित्य है । क्योंकि वह पृथ्वी और अन्तरिक्ष के रसों में आविष्ट है या वहां की ज्योति में आविष्ट है या वहां की ज्योति में अभिमुख हो प्रविष्ट है) । (आविष्टो रसान् आविष्टो भासं ज्योतिषाम्) । अथवा यही दीप्ति से आविष्ट है (आविष्टो भासा इति वा) ।

वि + विश् + क्विप् = विष्टप् (बाहुलक नियम से) । जो आविष्ट हो वह विष्टप् है ।

विष्टप- (१) विशेष ताप, (२) विशेष तापकारी बल,

(३) तेजस्वी पद ।

'ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारम्'

वाज.सं. ३०.१२

(४) ताप दुःखादि से रहित सुखयुक्त ।

'उद्यद्ब्रध्नस्य विष्टपम्'
गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।

ऋ. ८.६९.७

विशेष तापकारी के अर्थ में -

'न्यर्बुदस्य विष्टपम्
वर्ष्माणं बृहतस्तिर'

ऋ. ८.३२.३

आप का दान प्रजा की सुख वृद्धि करने वाला हो और वाणी विविध विद्वानों द्वारा सेवित करने योग्य हो।

विश्रित- विविध प्रकार और रूपों में स्थित (जल)।
'प्रतिगृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः'
ऋ. १.५५.२
सूर्य विविध प्रकार और रूपों में स्थिति जलों को (विश्रिता) नाना रोकने वाले कारणों या किरणों द्वारा (वरीमभिः) अथवा अत्यधिक शक्तिशाली किरणों से अपने में ले लेता है (प्रतिगृभ्णाति)।

विश्रृंगी- (१) विशिष्ट शिखायुक्त दीप्तिमान मेघ-सा.
(२) विशिष्ट रूप से सिर उठाए हुआ शत्रु-दया.
'वि श्रृंगिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः'
ऋ. १.३३.१२; नि. ६.१९
इन्द्र ने विशिष्ट शिखर युक्त दीप्तिमान् मेघ को छिन्न भिन्न किया। -सा.
राजा विशेष सिर उठाए शत्रु को कुचल डाले-दया.।

विश्वेअमृताः - समस्त अमृतजीवगण।
'धिया यद् विश्वे अमृता अकृण्वन्'
ऋ. ४.१.१०

विश्वेत् - विश्व + इत्। सभी।
'विश्वेत् ता वां सवनेषु प्रवाच्या'
हे अश्विद्वय, तुम्हारे वे सभी कर्म (वाम् ता विश्वेत्) यज्ञों में प्रवचनीय हैं (प्रवाच्याः)।

विश्वेदेवाः- ब.व.। (१) विश्वदेव अर्थात् सभी देवगण -सा. (२) सूर्य की किरणें -दया.
'विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त'
ऋ. ७.३३.११; नि. ५.१४
विश्वदेव या सूर्य की किरणों ने तुझे स्खलित वीर्य या जल की कलश या अन्तरिक्ष में रखा।
'सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः'
ऋ. ७.३९.४
विश्वेदेव यज्ञों में समानस्थान पर आते हैं। (सधस्थ अभिसन्ति)।
(३) विद्वज्जन-दया.

विष् - (१) करणार्थक धातु, (२) व्यापनार्थक धातु।

विष- (१) व्याप्त होने योग्य समस्त प्रकृति के परमाणुओं में व्याप्त परमेश्वर (२) सेवा करता हुआ।
'ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः'
ऋ. १०.१०९.५; अ. ५.१७.५

विषक्त- वि + सच् + क्त। अकेला, एकान्त में।
'त्सरन् विषक्तं बिल आससाद्'
अ. १२.३.१३

विषक्ता- (१) विस्तृत, (२) हिंसाशील, (३) राजद्रोही (४) विपरीत हुई पृथिवी, राष्ट्रभूमि या सेवा।

विषगिरिः- विष की खान, संखिया आदि की खान।
'वध्रिर्विषगिरिः कृतः'
अ. ४.६.७

विषण- सर्वव्यापक परमात्मा। विष् (व्यापना) + नु = विष्णु। अथवा -पद क्रमणेन भुवनत्रयं वेवेष्टि व्याप्नोति स विष्णुः।
(जो पद क्रमण से तीनों भुवनों में व्याप्त होता है वह विष्णु है)।

विषदूषण- विष निवारण का उपाय।
'सचित्ता विषदूषणम्'
अ. ६.१००.१

विषदूषणी- विषों का नाश करने वाली।
'उग्रा या विषदूषणीः'
अ। ८.७.१०

विषदूषणी वाक् - विष को दूर करने वाली वाणी।
'वाचं विषस्यदूषणीं
तामितो निरवादिषम्'
अ. ४.६.२

विषधान- (१) विष रखने का स्थान।
'यस्ते विषधानः'
अ. २.३२.६

विषपुष्प- विष का पुष्ट प्रबल अंश।
'विषस्य पुष्पमक्षन्'
ऋ. १.१९१.१२

विषम्- (न) (क) वि + स्ना + ड = विष (ण का लोप)। स्नाति अनेन विशेषण (इससे विशेष प्रकार से स्नान करते हैं)।
(ख) वि + सच् (सेचन और सेवन अर्थों में)।

+ ड = विष । तत् हि स्नानपानावगाहनार्थिभिः सेव्यते (जल स्नान, पान एवं अवगाहन करने वालों के द्वारा सेवन किया जाता है । अतः यह विष कहलाया । (ग) दुर्ग ने-'सर्वत्र हि अति शयेन यत् सक्तम्' (जो सर्वत्र अतिशय रूप से सक्त है) - ऐसी व्युत्पत्ति की है ।

अर्थ है-(१) उदक,जल (२) विष -यास्क,

'जातं विष्वाचो अहतं विषेण'

ऋ. १.११७.१६

विषवती- विराट् का एक रूप ।

'सर्पा उपह्वयन्त विषवत्येहीति'

अ ८.१०.(५) १३

विषस्यपात्रम् - पान करने कका आधार यह देह

'केशी विषस्य पात्रेण
यद्रुद्रेणापिबत् सह'

ऋ. १०.१३६.७

विष्कन्ध- (१) ऐसे पशु जिनके कन्धे विशेष रूप से उठे हुए हों ।

'वध्रि विष्कन्धम्'

अ. ३.९.२

(२) षड्यन्त्र, (३) सेना बल ।

'नैनं विष्कन्धमश्नुते'

अ. ४.९.५

(३) विशेष सेना का दस्ता ।

'इदं विष्कन्धं सहते'

अ. १.१६.३

(४) सेना का पृथक् पृथक् निवेश या रास्ता ।

(५) कन्धों की फूटन ।

'विष्कन्धं येन सासहे'

अ. १९.३४.५

(६) रक्त शोषण रोग

'विष्कन्धादभिशोचनात्'

अ. २.४.२

विष्कन्धदूषण- (१) प्रबल शत्रुओं या हिंसक जीवों को वश करने में समर्थ (२) एक मणि- ताबीज यन्त्र ।

'मणिं विंष्कन्धदूषणम्'

अ. २.४.१; . ३.१०.६

(३) विष्कन्ध (स्कन्ध की पीड़ा) नामक रोग का नाशक जङ्गिड़ नामक ओषधि,

(४) शत्रुओं की छावनियों का नाशक ।

'अग्रे विष्कन्धदूषणम्'

अ. १९.३५.१

(५) शरीर का रस सोखने वाले रोग को हटाने वाला वीर्य ।

विष्कभ्नन् - विविध उपायों से थामता और दृढ़ करता हुआ ।

'विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री'

ऋ. ३.३१.१२

विष्टःचमसः- परसास हुआ थाल ।

'भद्रासि रात्रो चमसो न विष्टः'

अ. १९.४९.८

विष्टप् - (१) सूर्य ।

'नाकस्य पृष्ठे अधि विष्टपि श्रिताः'

अ. १८.४.४.

(२) विशेष तप अर्थात् तेज ।

'अयं ब्रध्नस्य विष्टपि'

अ. १३.१.१६

(३) वि + ष्टभ् (प्रतिबन्ध अर्थ में) + क्विप् = विष्टप् । भ् का प् व्यत्य द्वारा । आदित्य । 'विष्टप् आदित्यो भवति' (विष्टप् आदित्य है । क्योंकि वह पृथ्वी और अन्तरिक्ष के रसों में आविष्ट है या वहां की ज्योति में आविष्ट है या वहां की ज्योति में अभिमुख हो प्रविष्ट है) । (आविष्टो रसान् आविष्टो भासं ज्योतिषाम्) । अथवा यही दीप्ति से आविष्ट है (आविष्टो भासा इति वा) ।

वि + विश् + क्विप् = विष्टप् (बाहुलक नियम से) । जो आविष्ट हो वह विष्टप् है ।

विष्टप- (१) विशेष ताप, (२) विशेष तापकारी बल,

(३) तेजस्वी पद ।

'ब्रध्नस्य विष्टपायाभिषेक्तारम्'

वाज.सं. ३०.१२

(४) ताप दुःखादि से रहित सुखयुक्त ।

'उद्यद्ब्रध्नस्य विष्टपम्'
गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।

ऋ. ८.६९.७

विशेष तापकारी के अर्थ में -

'न्यर्बुदस्य विष्टपम्
वर्ष्माणं बृहतस्तिर'

ऋ. ८.३२.३

विष्टप गृह - (१) विविध तपस्याओं से युक्त (२) आविष्ट या उपविष्ट पुरुष की रक्षा करने वाले त्रिविध तापादि रहित शरण ।
'उद् यद् ब्रध्नस्य विष्टपं
गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
अ. २०.९२.४

विष्टपा - वितपा, तप-रहित या संताप रहित ।
'इमानि त्रीणि विष्टपा'
ऋ. ८.९१.५; जै.ब्रा. १.२२१

विष्टम्भ - विशेष स्तम्भ, आश्रय ।
'विष्टम्भो धरुणो दिवः'
ऋ. ९.२.५
(२) विष्टम्भन, (२) यज्ञ आदि प्रतिबन्धन योग, (३) विविध उपायों से धनों का स्तम्भन, संग्रह करने वाला विभाग ।
'विष्टम्भेन वृष्टया वृष्टिं जिन्व'
वाज.सं. १५.६

विष्टम्भनी - विविध उपायों से प्रजाओं को वश करने वाली राजशक्ति या परमेश्वरी शक्ति ।
'अन्तरिक्षस्य धर्त्री विष्टम्भनीं
दिशामधिपत्नीं भुवनानाम्'
वाज.सं. १४.५

विष्टम्भाः - स्तम्भन करने वाले आत्मा के नवकोश ।
'विष्टम्भा नवधा हिताः'
अ. १३.३.१०

विष्पट् - विविध उपायों से बाधक ।
'अभिह्रुतामसिं हि देव विष्पट्'
ऋ. १.१.८९.६

विष्पर्धस् - (१) परस्पर स्पर्धा या द्वेष से रहित, (२) नाना स्पर्धा वाला, (३) एक दूसरे से बढ़कर रहने की अभिलाषा वाला ।
'विष्पर्धसो नारां न शंसैः'
ऋ. १.१७३.१०

विष्पुलिंग्क - विष खा जाने वाले छोटे पक्षियों की जातियां ।
'त्रिःसप्त विष्पुलिंगकाः'
ऋ. १.१९१.१२

विष्यतु - बरसावे ।
'त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु'
ऋ. १.१४२.१०; नि. ६.२१.
वैद्युताग्नि हमारे पालन पोषग के लिए जल बरसावे ।

विष्यध्वम् - वियुक्त करो, छोड़ो ।
'ऋतस्य योगे विष्यध्वमूधः'
ऋ. ७.२६.१
सोम रखने के यज्ञपात्ररूपी ऊध को यज्ञ के शकट में वियुक्त करो । -सा.
यज्ञ के सम्बन्ध में अज्ञानता को छोड़ो-ज.दे.श.

विष्यन्दमानः - विशेष रूप से वेग से गमन करता हुआ ।
'पौष्णो विष्यन्दमाने'
वाज.सं. ३९.५

विष्यस्व - विवृतकर, चौड़ा करा मुंह खोलने के अर्थ में प्रयुक्त ।
वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने
ऋ. १.१०१.१०; नि. ६.१७
हे इन्द्र, तू अपनी हनू या नासिका (शिप्रे) तथा उपजिह्विका (धेने) को विवृत कर ।

विष्वक् - (१) सर्वतः सब प्रकार से ।
'घनेव विष्वग्वि जह्यराणम्'
ऋ. १.३६.१६
आघात करने वाले कच्चे घंड़े आदि या हथौड़े से लोहे को पीटा जाता है । उसी प्रकार प्रदान शील कृपणों का सब प्रकार से (विष्वक्) विनाश कर (विजहि) ।
(२) सब ओर
'असंदितो वि सृज विष्वगुल्फाः'
ऋ. ४.४.२.
'वज्रिन् विष्वग्यथा वृह'
ऋ. ८.४५.८

विष्वद्रयक् - सब ओर से जाने वाला ।
'मा ते मनो विष्वद्रयग्वि चारीत्'
ऋ. ७.२५.१; तै.सं. १.७.१३.२; मै.सं. ४.१२.३: १८६.३, का.सं. ८.१६

विषा - विषैली लता ।
'विषा विषातक्यसि'
अ. ७.११३.८

विषाणका - एक ओषधि ।
अजश्रृंगी, प्रावर्तकी, श्रृंगी, वृश्चिकाली, सावला और रोहिणी ।
अजश्रृंगी और आवर्तकी हृदय रोग, वातरोग

और रक्तार्ष परगुण कारी है ।
'विषाणका नाम वा असि'
अ. ६.४४.३

विषरणा - वि + साना (सुपाम् आत्वम्) विषाणा । अर्थ मुक्त करता हुआ, बन्धन छुड़ाता हुआ ।
'विषाणा पाशान् वि ष्याध्यस्मत्'
अ. ६.१२१.१

विषाणन - सींग
'स क्षेत्रियं विषाणया'
अ. ३.७.१; आप.श्रौ.सू. १३.७.१६

विषाणी - (१) ऋग्वेद के जनों में एक ।
ऋ. ७.१८.७-८ में वसिष्ठ ने पक्थ, भलान, अलिन, विषाणी और शिव का उल्लेख किया है ।
(२) सींग वाला, (२) हाथ में सींग के समान शस्त्र रखने वाला ।
'आलिनासो विषाणिनः शिवासः'
ऋ. ७.१८.७

विषातकी- हृदय के द्वेष रूप विष से पर्वत को आंतकित करने वाली ।
'विषा विषातक्यसि'
अ. ७.११३.२

विषासहिः - (१) विशेष रूप से शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ ।
अभ्यासाक्षि विषासहिः
ऋ. १०.१५९.१; आप.मं.पा. १.१६.१
विषासहिं सहमानम्
अ. १७.१.१-५; कौ.सू. ९९.३
(२) विशेष रूप से विजय करने वाला ।
'आशामाशां विषासहिः'
अ. १२.१.५४
(३) नाना प्रकार के शत्रुओं के आक्रमणों एवं दैवी विपत्तियों को सहने में समर्थ ।
'अभिराष्ट्रो विषासहिः'
ऋ. १०.१७४.५; अ. १.२९.६
(४) विषासहि नाम का सूक्त (अथर्व वेद का काण्ड १७) ।
'विषासह्यै स्वाहा'
अ. १९.२३.२७

विषासही - विविध प्रकार से शत्रुओं को पराजित करने वाला ।
'तीणो राजा विषाहिः'
अ. १९.३३.४

विष्टान्त - विश् + क्त + अन्त = विष्टान्त । जिसका अन्त एक दूसरे में प्रविष्ट हो, गूंथा हुआ हो ।
'नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता'
ऋ. १०.९३.१३

विष्टारपंक्ति - (१) प्रजोत्पादन, (२) प्रजापालन, (३) दिशाएं ।
'विष्टार पंक्तिश्छन्दः'
वाज.सं. १५.४

विष्ठा - सब लोकों को विशेष रूप से स्थिति देने वाली ।
'स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः'
अ. ४.१.१,५.६.१,साम. १.३२१, वाज.सं. १३.३; मै.सं. २.७.१५: ९६.१२, का.सं. १६.१५: ३८.१४; श.ब्रा. ७.४.१.१४, आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३; शां.श्रौ.सू. ५.९.५
(२) विशेष आश्रय ।
'कत्यस्य विष्ठाः क्रत्यक्षराणि'
वाज.सं. २३.५७, श.ब्रा. १३.५.२.१९
(३) नाना प्रकार से व्यापक आत्मा ।
'अया विष्ठा जनयन् कर्वराणि'
अ. ७.३.१; तै.सं. १.७.१२.२; मै.सं. १.१०.३: १४३.१०; का.सं. ९.६: १४.३; ३३.४; ३६.१३

विष्टारी - (१) सर्वत्र विस्तृत, (२) ब्रह्माण्ड रूप में विराट् देह कर फैला हुआ यज्ञमय प्रजापति ।
विष्टारी जातस्तपसोऽधियज्ञः'
अ. ४.३४.१

विष्टारी ओदन - (१) महान् विश्वव्यापी प्रजापति, (२) भात
'विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति'
अ. ४.३४.३,४

विष्णापू - विष्लृ + नक् = विष्ण, आप्लृ + ऊ = आपू । विष्णु + आपू = विष्णापू । अर्थ है-(१) विद्वान् का बोध, (२) व्यापक ज्ञान शील विद्वानों से प्राप्त होने वाला ज्ञान, (३) व्यापक परमेश्वर तक पहुंचाने वाला ज्ञान ।

विषित - वि + सित । (१) सभी बन्धनों से रहित- प्रभु
'तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः'
ऋ. १०.२७.१४

(२) खुलकर मूत्र के निकलने योग्य वास्तिबिल (मूत्र कोष्ठ का छिद्र) ।
'विषितं ते वस्तिबिलम्'
अ. १.३.८

विषित अर्ध - (१) सूर्य और ब्रह्माण्ड पहले अपने विषितरूप में थे अर्थात् ये पृथक् पृथक् पिण्ड और लोकों में नहीं बंटे थे । (२) अव्यक्त रूप
'पूर्वेअर्धे विषिते ससंनु'
अ. ४.१.६

विषितस्तुका - (१) विविध प्रकार से किरणों को बांधती हुई सूर्य की किरण, (१) विविध प्रकार से अपने केशों को बांधती हुई, (३) विविधता सिता बद्धा स्तुका स्तुतिः यया (विविध प्रकार से स्तुति को बांधने वाली ।
'विषितस्तुका रोदसी नृमणाः'
ऋ. १.१६७.५

विषितस्तुप - (१) विशेषण सितः बद्धस्तूपः रश्मीनां समुच्छ्वयो यस्य सः (जिस की रश्मियां विशेष प्रकार से बंधी हों । सूर्य का विशेषण) । (२) नाना स्तुत्य गुणों को प्रकट करता हुआ ।
'पुरस्ताद् विषितस्तुपः'
अ. ६.६०.१

विषितो - वि + सि + क्त = विषित ।
द्वि.व. में रूप 'विषिते' । विषित + टाप् = विषिता, बन्धनसुक्ता । घोड़ियों के विशेषण के रूप में प्रयुक्त ।
'अश्वे इव विषितो हासमाने'
ऋ. ३.३३.१; नि. ९.३९
विपाशा और शुतुद्रि नदियां इस प्रकार पर्वत से निकल कर बहती है जैसे वाजिशाला से छूटी दो हिनहिनाती हुई घोड़ियां ।

विष्टि - वेतन ।
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः
समानेन योजनेना परावतः'
ऋ. १.९२.३; साम. २.११०७
कर्म करने वाले अधीनभृत्यों को (अपसः) जिस प्रकार वेतनों द्वारा सत्कार करते हैं, उसी प्रकार समान योग द्वारा अर्थात् गुण, शरीर, बल और विद्या आदि में समान पुरुष के साथ संयुक्त करने से ही दूर देश से प्राप्त करने योग्य स्त्रियों का सत्कार करें ।

विष्ठित - (१) विविध रूप से व्याप्त ब्रह्म
'यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्'
ऋ. १०.११४.८; ऐ.आ. १.३.८.९
(२) वि + स्था + क्त = विस्थित = विष्ठित । विशेषेण स्थितम् (विशेष प्रकार से स्थित) ।
अर्थ - (१) स्थावर जगत्,
'पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितां जगत्'
ऋ. ६.४७.२९; वाज.सं. २९.५५, तै.सं. ४.६.६.६; मै.सं. ३.१६.३: १.८७.८; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. ९.१३
हे दुन्दुभ, तेरे शब्द को स्थावर और जंगम जगत् बहुत प्रकार से जान जाय ।
(३) विशेष मान आदर पूर्वक स्थित ।

विष्ठिर् - (१) यः विशेषेण तरति-ऋतुः-दया ।

विष्टिर - विशेष प्रकार से या विविध प्रकार से विस्तृत करने वाला । सम्यक् विस्तारक ।
'स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति'
ऋ. १.१४०.७

विष्पित - (१) विप्राप्त = विष्पित । अर्थ - (१) विप्राप्त या इधर- उधर विस्तीर्ण या जो सर्वत्र प्राप्त हो (२) अथवा व्याप्त्यर्थक विष् + क्त = विष्पित (प का आगम) दुःख । दुःख भी विविध प्रकार से व्याप्त होता है ।
इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याः
चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति
पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन्'
ऋ. ७.६०.७
ये मित्र और वरुण द्युलोक से आकर आदरवान् (दिवः आनिमिषा) प्राणियों के पाप पुण्य जानते हुए (चिकित्वांस) अचेतयमान प्राणी को (अचेतसम्) कर्मानुसार पृथिवी लोक से (पृथिव्याः) इस लोक में लाते हैं (नयन्ति) । इसी से कहता हूं कि इस प्रकृष्ट गमन अर्थात् मृत्यु के उपस्थित होने पर (प्रव्राजे) यदि संसार सागर से पार करने योग्य हमारा कर्म है (गाधं नः अस्ति) तो वह कर्म इस ससार मार्ग से विप्राप्त पुरुष को नदी के ऐसा उस पर ले जाय (नद्याः चित् पारं पर्षत्) ।
अन्य अर्थ- ये मित्र वरुण तथा अर्यमा विद्वान्

(इमे चिकित्वांसः) द्युलोक तथा पृथिवी लोक की विद्या को निरन्तर अशिक्षिता विद्यार्थी को प्राप्त कराते हैं (दिवः पृथिव्याः अनिमिषा अचेतसं नयन्ति) । और जैसे नदी मार्ग पर जहां नदी का गाधस्थान होता है, जहां जल थोड़ा होता है, वहां मनुष्यों को पार निकाल दिय जाता है । उसी प्रकार से हमारी जीवन यात्रा के मार्ग में (प्रव्राजेचित् नद्याः गाधम् अस्ति) हमें ये विद्वान् इस दुःख से पार उतारें (नः अस्य विस्पितस्य पारं पर्यत् ।

(३) दूर दूर तक फैला हुआ ।

विष्टी - द्वि.व.। एक दूसरे में प्रेम पूर्वक आविष्ट स्त्री पुरुष , सुसंगत एवं अनुकूल बनाते हैं ।

'ऋभवो विष्ट्यक्रत'

ऋ. १.२०.४

ऋभु या सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले तेजस्वी विद्वान् स्त्री पुरुष एक दूसरे में प्रेमपूर्वक आविष्ट सुसंगत एवं अनुकूल बनाते हैं ।

विष्टीमी - (क) वि + स्तीम + इन् = विष्टीमी । (ख) वि + ष्टि + मा + इन् = विष्टिमिन् । 'विविधा: स्तीमाः आर्द्रीभूताः पदार्थाः यस्मिन् अथवा विष्टीयिनम् विष्टीः कर्माणि वेतनानि वा मिनोति माति मन्यते विवेचयति वा, शब्दयति वा स विष्टीमी ।'

अर्थ - (१) विशेष दयालुता के भावों से युक्त पुरुष, (२) विशेष प्रजा के विविध कर्मों का विवेचक न्यायाधीश ।

'प्र विष्टीमिनमाविषुः'

अ. २०.१३६.४; वाज.सं. २३.२९; शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.१

विष्ट्री - विष्ट्वा । क्त्वा प्रत्यय करने पर ई का आगम हुआ है । अर्थ है-(१) व्याप्य । व्याप्त होकर, कर के ।

विष्ट्री शमी तरणित्वे वाघतः'

ऋ. १.११०.४; नि. ११.१६

कर्मों या यज्ञों को (शमी) क्षिप्रकारिता के साथ (तरणित्वेन) करने वाले मेधावी यज्ञानुष्ठाता या ढोने वाले या व्यापारी (वाघतः) ।

यास्क ने 'विष्ट्वी' का अर्थ कृत्वा (कर के) ही माना है । सायण ने भी इसे 'कृत्वा' अर्थ में लेते हुए कहा है विष्ट्वी- यद्यपि एतत् कर्म नाम तथाप्यत्र क्रिया पर व्याप्य- कृत्वा इत्यर्थः । (यद्यपि विष्ट्वी कर्म का वाचक है तथापि यहां पर क्रिया अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और इस का अर्थ व्याप्त होकर या करके है) ।

विषुः - (१) प्रजाओं में घुसकर अधर्माचरण करने वाला, (२) अधर्म से धर्मात्मा को दुःख देने वाला ।

विषुण - विषम, सब ओर फैला अतिविषम व्यवहार ।

'द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तम्'

ऋ. ८.९६.१४; अ. २०.१३७.८

विषुणक् - (सम्बोधन में) प्रजा में अधर्म से घुस कर रहने वाले पुरुष का नाशक परमेश्वर-विषुणक्

धनोरधि विषुणक् ते व्यापन्

ऋ. १.३३.४

हे प्रजाओं में घुसकर अधर्म से रहने वाले पुरुष का नाशक, वे अयज्ञशील परधनहारी मृत्यु प्राप्त करें ।

विषुणः - (१) सब ओर से जाने में समर्थपरमेश्वर या आत्मा ।

'बभ्रुरेको विषुणः सुनरो युवा'

ऋ. ८.२९.१, ऐ.ब्रा. ५.२१.१३

(२) विस्तृत मैदान, (३) सब तरफ ।

'द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तम्'

ऋ. ८.९६.१४; अ. २०.१३७.८

(४) विविध विद्याओं से सम्पन्न ।

सखायस्ते विषुणा अग्न एते'

ऋ. ५.१२.५

(५) विस्तृत, फैला हुआ, (६) विरोधी ।

'स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोः'

ऋ. ७.२१.५; नि. ४.१९

जो विघ्नकारी जीवों को रोकने वाला हो वही यज्ञ में आवे ।

असुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः

ऋ. ५.३४.६

(७) 'विषम' से ही 'विषुण' प्रषोदरादिवत् हो गया है । अर्थ है-विषम ।

(८) विघ्नकर्त्ता ।

(९) यज्ञविध्वंसक,

(१०) व्यापक,

(११) सामर्थ्यवान् ।
'घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः'
ऋ. ४.६.६, तै.सं. ४.३.१३.१.

विषुरूप - (१) विषमरूपः (२) नाना रूपः (विषम रूपों वाला या नाना रूपों वाला सूर्य) (३) सूर्य की विषुवत् रेखा के सिद्धान्त से उत्तरायण और दक्षिणायन गति के कारण विषम रूप वाला सूर्य-दुर्ग ।
'अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा
सप्त होता विषुरूपेषु जन्मसु'
ऋ. १०.६४.५; नि. ११.३३.

विषुरूपा - (१) रूपवती, (२) बहुत प्रजा आदि से सम्पन्न स्त्री ।
'सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति'
ऋ. १०.१०.२; अ. १८.१.२.३४

विषुरूपे - द्वि.व. । (१) तम और प्रकाश से विपरीत रूप वाली दिन और रात्रि, (२) भिन्न भिन्न स्वभाव की या विशेष सुन्दर रूपवान् पति पत्नी ।
'विषुरूपे अहनी सं चरेते'
ऋ. १.१२३.७

विषुरूपे अहनी - नाना रूपों में दिन रात का होना ।
'विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि'
ऋ. ६.५८.१; साम. १.७५; तै.सं. ४.१.११.३; मै.सं. ४.१०.३; १५०.४; का.सं. ४.१५; नि. १२.१७
हे पूषन्, तू नाना रूपों में दिनरात होता है जैसे द्युलोक प्रकाश और अप्रकाश के भेद से दो प्रकार का होता है ।

विष्टुतिः - (१) विष्टुति नामक ऋचाएं जिससे विशेष स्तुति की जाती हैं , (२) आदरणीय पुरुषों की विशेष स्तुति ।
'ग्रहै स्तोमाश्च विष्टुतीः'
वाज.सं. १९.२८

विष्ण - विषन् + नक् = विष्ण । अर्थ - विद्याव्यापी । विद्वान् ।

विष्णु - सर्वतः रश्मिभिः प्रविष्टो भवति । रश्मियों से सर्वथः प्रविष्ट रहता है अतः आदित्य विष्णु है ।
(२) वि + अश् या विष धातु से विष्णु शब्द बना है ।
(३) मध्याह्नकालीन आदित्य
(४) इन्द्र का विशेषण,
(५) व्यापन शील परमात्मा,
(६) उत्तम गुणों का प्राप्त किया हुआ ।
'विश्ववेत्ता विष्णुराभरत्'
ऋ. ८.७७.१०; मै.सं. ३.८.३: ९५.१३
व्यापनशील इन्द्र उन सभी धनों को लाया ।
आदित्य के अर्थ में प्रयोग-
'इदं विष्णुर्वि चक्रमे'
ऋ. १.२२.१७; अ.७.२६.४; साम. १.२२२; २.१०.९; वाज.सं. ५.१५.
यह आदित्य इस सृष्टि में जो विभाग में विभक्त है (इदम्) विविध प्रकार से क्रमण करते हैं (विचक्रमे) ।
(७) व्यापक राष्ट्र
विष्णों, श्नप्त्रे रथः विष्णोः स्यूरसि
वाज.सं. ५.२१,तै.सं. १.२.१३.३; का.सं. २.१०.२५.८; श.ब्रा. ३.५.३.२५; का.श्रौ.सू. ८.४.२१; आप.श्रौ.सू. ११..८.१.५; मा.श्रौ.सू. २.२.२.३२
(८) राज्य शासन रूप यज्ञ, (९) व्यापक राज्य का व्यवस्था, (१०) यज्ञ ।
'अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा'
वाज.सं. ५.१; मै.सं. १.२.६: १६.३, ३.७.९: ८८.८,का.सं. २.८.८; श.ब्रा. ३.४.१.९
(११) व्यापक तेज, (१२) व्यापक सामर्थ्य
(१३) सर्वव्यापक आकाश, (१४) आत्मा, वीर्य,
(१४) श्रोत्र
'पातु नो विष्णुरुत द्यौः'
अ. ६.३.१.
(१४) व्यापक जल ।
'विष्णोः शर्मासि'
वाज.सं. ४.१०,तै.सं. १.२.२.२; मै.सं. १.२.१: १०.३, १.२.२.: १०.१७; ३.६.६:६८.३; का.सं. २.३,२३.३, श.ब्रा. ३.२.१.१७, मा.श्रौ.सू. २.१.१.३१, २.५.

विष्णुना सुतम् - व्यापक पर परमेश्वर के संग प्राप्त ब्रह्मानन्द रस ।
'सोममपिबत् विष्णुना सुतं यथावशात्'
अ. २०.९५.२

विष्णुवन्ता - विष्णु या व्यापक सामर्थ्यों से युक्त अश्विद्वय या स्त्री पुरुष

'अंगिरस्वन्ता उतविष्णुवन्ता'
ऋ. ८.३५.१४

विस्फुरन्ती - विस्फुरन्त्यौ (विस्फुरित होती हुई)। वि + स्फुर + शतृ + ङीष्, = विष्फुरन्ती। द्विवचन में 'औङ्' के स्थान मे 'वाच्छन्दसि' विकल्प से पूर्व सवर्ण होता है।

विषूचिका - (१) विविध प्रकार की सूचना करने वाली संस्था (२) विविध ज्ञानों को देने वाली।
या व्याघ्रं विषूचिका
उभौ वृकं च रक्षति
वाज.सं. १९.१०, मै.सं. ३.११.७:१५०.१४; का.सं. ३७.१८; श.ब्रा. १२.७.३.२१. तै.ब्रा. २.६.१.५

विषूची - () विविध गतियों वाली (२) सब तरफ जाने और व्यापने वाली शक्तियां।
'स सध्रीचीः स विषूचीर्वसावः'
ऋ. १.१६४.३१; १०.१७७.३; अ. ९.१०.११; वाज.सं. ३७.१७; मै.सं. ४.९.६: १२६.४; श.ब्रा. १४.१.४.१०; ऐ.आ. २.१.६.९; तै.आ. ४.७.१; ५.६.५; नि. १४.३.
(३) सब पदार्थों में व्यापक आकाश।
'सध्रीचीना पथ्या सा विषूची'
ऋ. ३.५५.१५
(४) विपरीत अराजक दिशा से जाने वाली।
'असुन्वामिन्द्र संसदं'
विसूचीं व्यनाशयः'
ऋ. ८.१४.१५; अ. २०.२९.५

विषूचीन - (१) नाना प्रकार की पीड़ाएं देने वाला दुष्ट पुरुष।
'विषूचीनान् वि नाशय'
अ. ८.६.१०
(२) नाना प्रकार का कष्ट देने वाला रोग।
'विषूचीनमनीनशत्'
अ. ३.७१; अपा.श्रौ.सू. १३.७.१६

निषूचीना - (१) नाना प्रकार की गति करने वाले जीव और देह
'ता शश्वना विषूचीना वियन्ता'
ऋ.१.१६४.३८ अ. ९.१०.१६; ऐ.आ. २.१.८.१३; नि. १४.२३

विषूचुः - धन के लिए एक दूसरे का विरोधी।
'सखा सखायमतरद् विषूचोः'
ऋ. ७.१८.६

विषूवत् - (१) फैलने वाला, (२) स्वंय उत्पन्न और विविध पदार्थों को उत्पन्न करने वाला।
'विषूवता पर एनावरेण'
ऋ. १.१६४.४३; अ. ९.१०.२५
(२) विषुः व्याप्तिः यस्य सः अर्थ- व्याप्ति वाला, फैल जाने वाला।
'स्वादोरित्था विषूवतः
मध्वः पिबन्ति गौर्यः'
ऋ. १.८४.१०; अ. २०.१०९.१; मै.सं. २३८.५
सूर्य की किरणें (गौर्यः) स्वादिष्ट एवं सूक्ष्म होकर ऊपर फैलने वाली वाष्पमय जल को (विषूवतः) पान कर लेती हैं (पिबन्ति)।
(३) व्याप्त तेज वाला सूर्य, (४) विस्तृत राज्य वाला राजा।

विषूवती - शिखरवाली शाला-मकान।
'सहस्राक्षं विषूवति'
अ. ९.३.८.

विषूवान् - 'विषुवान्' अर्थात् 'गवाम् अपन' मासों के दोनों के छः मासों के दोनों पूर्व और उत्तर पक्षों के बीच में एक विशस्तोम नामक सोम याग।
उपहव्यं विषूवन्तम्'
अ. ११.७.१५

विषूवृत् - (१) नाना प्रकार से देह में घूमने वाला (२) विषुवत् वृत्त पर अतिक्रमण करने वाला -सूर्य
को अस्मिन् आपोव्यदधात् विषूवृतः'
अ. १०.२.११
(३) सब प्रकार से नाश करने वाला।
'विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः'
ऋ. १०.४३.३; अ. २०.१७.३

विषूवृत - (१) सर्वत्र वर्तने वाला, (२) विशेष रूप से विविध सुखों को उत्पन्न करने वाला होकर आने वाला-रथ या संवत्सर (३) समस्त योनियों और लोकों में विद्यमान या अद्भुत रूप से और विविध रूपों के सुखों को देने वाला या विविध रूप से सुख पूर्वक-वर्तन या चेष्टा करने वाला देह।
'विषूवृतं मनसा युज्यमानम्'
ऋ. २.४०.३; मै.सं. ४.१४.१; २१५.२; तै.ब्रा. २.८.१.५.

• **विष्णोःक्रमः** - परमेश्वर के चरण चिन्हों पर चलने वाला ।
'विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंशितोऽग्नितेजाः'
अ. १०.५.२४

विष्णोःपत्नी - (१) व्यापक सार्वभौम राजा की या हृदय में व्यापक प्रियतम पति की पालिका राजसभा
(२) 'ना विष्णु, पृथिवीपतिः' वेद राजा को विष्णु कहता है ।
'विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि'
अ. ७.४६.३

विष्णोःशर्म - व्यापक जल का आश्रय पृथिवी
'विष्णोः शर्मासि'
वाज.सं. ४.१०

विस - विस् + क = विस । अर्थ है - मृणाल, कमल की डंठल । विस् धातु भेदन कर्म या वृद्धि करना अर्थ में आया है (विसं विष्य तेः भेदन कर्मणः वृद्धि कर्मणः वा) ।
विस् धातु प्रेरण्यर्थक भी है, परन्तु धातुओं की अनेकार्थता के कारण यहां भेदन अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है।
मृणाल की डंठल सदा बढ़ती है ।
मृणाले तु विसं विशम् ।
आधुनिक अर्थ- कमल के रेशे । कमल को रेशे वाली डंठल ।

विसखा - विस + खा । कमल का मूल उखाड़ने वाला ।
'इयं शुष्मेभि र्बिसिखा इवारुजात्'
ऋ. ६.६१.२; मै.सं. ४.१४.७; २२६.९; का.सं. ४.१६.; तै.ब्रा. ८.२.८. नि. २.२४

विसर्ग - (१) विविध प्रकार का सर्ग जल- (२) विविध प्रकार के अध्याय, काण्ड
'तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम्'
ऋ. ७.१०३.९

विसर्जन - वि + सर्जन । विशेष निर्माण, विशेष स्थान ।
'अवतस्य विसर्जने'
ऋ. ८.७२.११

विसर्पक-विसल्पक - त्वचा पर फैलने वाला विसर्प नामक कुष्ठ रोग ।
'विसल्पकस्योषधे'
अ. ६.१२७.१

विसर्मा - विनाशशील ।
'विसर्मा कृणुहि वित्तमेषाम्'
ऋ. ५.४२.९

विसल्प - नाना प्रकार का फैलने वाला रोग ।
'विसल्पस्य विद्रधस्य'
अ. ९.८.२०

विसल्यक - (१) विसर्पक, विशेष रूप से फैलने वाला, एक्जिमा आदि रोग ।
'अङ्गभेदो विसल्यकः'
अ. १९.४४.२
(२) नाना प्रकार से रंगने वाला टीसने वाला कान का दर्द ।
'कर्णशूलं विसल्यकम्'
अ. ९.८.२

विसस्रे - विस्रंसयति, विवृणोति प्रकाशयति, (विशेषरूप से स्पष्ट करती है) ।
'उतोत्वस्मै तन्वं वि सस्रे'
ऋ. १०.७१.४; नि. १.१९
किसी को यह वेदवाणी, वाणी के शरीर आत्मा तत्व का भाव को विशेष रूप से स्पष्ट कर देती है (विसस्रे) ।

विष्पर्धत् - (१) विविध प्रकार की स्पर्धा करने वाला, (२) नाना ऐश्वर्यों का इच्छुकजीव।
उत स्तुषे विष्पर्धसो रथानाम्'
ऋ. ८.२३.२

विष्पर्धसः - ब.व. । विशेष स्पर्धा से युक्त -मरुत् ।
'विष्पर्धसो विमहसः'
ऋ. ५.८७.४

विष्पर्धाः - (१) विविध वास्तुनिर्माण (२) यह लोक ।
'विष्पर्धाश्छन्दः'
वाज.सं. १५.५; तै.सं. ४.३.१२.३; मै.सं. २.८.७: ११२.३; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५.२.६.

विस्रस् - (१) विविध प्रकार का नाशकारी विष ।
'खृगलेव विस्रसः पातमस्मान्'
ऋ. २.३९.४
(२) शिथिल
'ते मा रक्षन्तु विस्रसश्चरित्रात्'
ऋ. ८.४८.५

विस्रसः – ब.व. । विविध दिशाओं से आने वाले ।
'अरसाः सप्त विस्रसः'
अ. १९.३४.३

विस्रस्त – विनाश प्राप्त भाग ।
'सं ते मांसस्य विस्रस्तम्'
अ. ४.१२.३.

विसान – विशेष रूप से भोगने योग्य पद ।
'विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते'
ऋ. ५.४४.११ .

विसार – (१) दूर करना, (२) विविध दिशाओं में फैलना या आक्रमण करना ।
'हिरण्यकेशो रजसो विसारे'
ऋ. १.७८.१; तै.सं. ३.१.११.४; ऐ.ब्रा. ७.९.४, आश्व.श्रौ.सू. २.१३.७, आप.श्रौ.सू. १९.२७.१०

विष्ठित् – विविध प्रकार से स्थित ।
'रजांस्यनु विष्ठिताः'
ऋ. १.१८७.७

विस्फुरन्ती – द्वि.व. । विस्फुरन्त्यौ (छटकती हुई) धनुष की कोटियों का विशेषण ।
'आर्त्नी इमे विस्फुरनती अमित्रान्'
ऋ. ६.७५.४; वाज.सं. २९.४१; तै.सं. ४.६.६.२; मै.सं. ३.१६.३: १८५.१७; का.सं.(अश्व.) ६.१ नि. ९.४०
ये धनुष की कोटियां छटकती हुई शत्रुओं का नाश करें ।

विस्रुह् – वि + स्रव् + क्विप् = विस्रव । व का हा और धातु का दीर्घ बन कर विस्रुह बना है । अर्थ है- जल । 'विस्रुहः आपो भवन्ति विस्रवणात्' (विस्रुह का अर्थ जल है विस्रवण के कारण) ।
वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा
सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना
तस्येदु विश्वा भुवनादि मूर्धनि
वया इव रुरुहः सप्त विस्रुहः'
ऋ. ६.७.६
नित्य वैश्वानर अग्नि के कर्म से (अमृतस्य वैश्वानरस्य केतुना) तथा दर्शन या तेज से (चक्षसा) द्युलोक से भी जो समुच्छ्रित स्थान अर्थात् नक्षत्र या मेघ बने हैं (दिवः सानूनि विमितानि) तथा उसी वैश्वानर अग्नि के ऊपर विराजमान धूम के मेघ के रूप में परिणत होने पर (तस्य इत् ऊ मूर्धानि) समस्त भूत एवं भावमितृ जल रहते हैं (विश्व भुवनानि अधि) अथवा वैश्वानरात्मक पर ब्रह्म के ऊपर सभी भूत जात बसते हैं । तथा शाखाओं के सदृश सर्पणशील या सात जल नदी रूप में बहते हैं (वयाः सप्त विस्रुहः विरुरुहुः) । अग्नि से ही आहुति द्वारा सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है ।
अन्य अर्थ – अमर तथा सर्व व्यापक परमेश्वर के (अमृतस्य वैश्वा नरस्य) प्रताप और सामर्थ से (चक्षसा केतुना) द्युलोक के उच्चस्थान निर्मित हैं (दिवः सानूनि विमितानि) और उसी के अधिष्ठातृत्व में (तस्य इत उ मूर्धनि) सब लोग अधिष्ठित हैं (भुवनानि अधि) और उसी के प्रताप से संर्पणशील जल (सप्त विस्रुहः) नदियों के रूप में विश्व की शाखाओं की तरह (वयाः इव) चारों ओर दिशाओं में प्रादुर्भूत हैं ।

विस्रुहा – (१) यः रोगान् हन्ति (रोग हरने वाला)-दया.
(२) रोग की तरह शत्रुओं का नाशक
'मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः'
ऋ. ५.४४.३

विसृजस्व – खोल, चौड़ाकर ।
'विसृजस्वधेने'
हे इन्द्र, सोमपान के निमित्त अपनी उपजिह्विका या लोल को (धेने) विवृत कर ।

विसृत् – (१) विविध भागों या प्रकारों से चलने वाली सेना या प्रजा,
(२) विविध छोटा नाला ।
'अतर्पयो विसृत उब्जा ऊर्मीन्'
ऋ. ४.१९.५

विसृप् – योद्धाओं को नाना चालों से युक्त –युद्ध
'पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्'
वाज.सं. १.२८; तै.सं. १.१.९.३; का.सं. १.९; २५.५; श.ब्रा. १.२.५,९; तै.ब्रा. ३.२.९.१३.

विसृष्टधेना – (१) नाना शासनाज्ञा से युक्त पृथिवी, (२) विविध उत्तम वाणी बोलने वाली स्त्री ।
(३) विविध विद्यायुक्त वाणी
'विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिः'
ऋ. ७.२४.२

विसृष्टरातिः – (१) जिससे विविध दान दिया हो-

दया. (२) जो संसार में विद्या आदि का दान देता है ।

'विसृष्टरातिर्याति बाढसृत्वा'

ऋ. १.१२२.१०

जो विद्या आदि का दान करता है (विसृष्ट राति) और जो उत्तम कर्मों का करने वाला होकर (बाढ़ सृत्वा) या प्रशस्त बल से चलने वाला होकर विचरता है (याति) ।

विहरति - (१) भोग करता है, (२) पृथक् करता है ।

'यस्त ऊरू विहरति'

ऋ. १०.१६२.४; अ. २०.९६.१४

विहरन् - (१) दूर करता हुआ, (२) विचरता हुआ ।

'वहिष्ठोभिर्विहरन् यासि तन्तुम्'

ऋ. ४.१३.४; का.सं. ११.१३; आश्व.श्रौ.सू. २.१३.७; आप.श्रौ.सू. १६.११.१२

'ये पाकशंसं विहरन्त एवैः'

ऋ. ७.१०४.९; अ. ८.४.९.

विहल्ह - (१) नाना प्रकार के सर्वत्र व्यापक -परमेश्वर । (२) सर्षप का पिता ।

'विहल्हो नाम ते पिता'

अ. ६.१६.२

विहव - (१) विविध उपदेश प्रदान से युक्त स्वाध्याय काल- (२) विशेष रूप से आह्वान करने का संग्राम काल

'वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणाः'

ऋ. ३.८.१०

विहव्य - विशेष हवनीय या आद से स्तुति करने योग्य ।

'राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीत्'

अ. २.६.४, वाज.सं. २७.५; तै.सं. ४.१.७.२; मै.सं. २.१५.५: १४९.३, का.सं. १८.१६

विह्वयन्ते - आह्वान करते हैं ।

विहव्यज्ञ - हव्य रहित यज्ञ ।

'अस्ति नु तस्मादोजीयो यद् विहव्येनेजिरे'

अ. ७.५.४.

विह्वयामहे - विविध प्रकार से (हम) स्तुति करते हैं ।

वाघद्भिर्विह्वयामहे'

ऋ. १.३६.१३; साम. १.५७, वाज.सं. ११.४२, तै.सं. ४.१.४.२; का.सं. १५.१२; १६.४; मै.सं. २.७.४: ७८.१४; ऐ.ब्रा. २.२.१७; श.ब्रा. ६.४.३.१०; तै.ब्रा. ३.६.१.२.

विहायस् - प्रबल या महान् नि-

'ये ते मदा आहनसो विहायसः'

ऋ. ९.७५.५; नि. ४.१५.

हे सोम, जो तेरे शत्रुओं को मारने वाले (आहनसः) प्रबल या महान् रस हैं (विहायसःमदाः) -सा.

हे जगदुत्पादक प्रभो, जो आपके उपदेशक (आहनसः) महान् आनन्दप्रद वेद हैं । (विहायसः मदाः) ।-ज.दे.श.

आधुनिक अर्थ - आकाश, वातावरण ।

विहायाः - (१) विशेष विशेष विविध विद्याओं का दान करने वाला, (२) विरक्त, सर्वत्यागी, (३) आकाशवत् व्यापक परमेश्वर ।

'ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः'

ऋ. ३.३६.२, तै.ब्रा. २.४.३.१२.

(४) आकाशवत् व्यापक ।

'येभिर्विहाया अभवद्विचक्षणः'

अ. १०.९२.१५

विहुत्मति - (१) प्रजा का विशेषण । जिसमें 'विहुत्मति' अर्थात् विशेषता से होम करने वाला विचारशील मनुष्य हो-दया (२) विविध ग्राह्य पदार्थों से सम्पन्न और सुसमृद्ध प्रजा ।

'उतो विहुत्मतीनां
विशां ववर्जुषीणाम्'

ऋ. १.१३४.६

तू विविध ग्राह्य पदार्थों से सम्पन्न और सब दोषों से रहित प्रजाओं का भी पालन और उपभोग करने में समर्थ है ।

विह्नु - कुटिल मार्गी सर्प ।

'विह्नुत आन्त्रैः'

वाज.सं. २५.७; मै.सं. ३.१५.९: १८०.४

विह्रुत - (१) विपरीत रूप से मुड़ा हुआ, (२) विच्छिन्न

'इष्टकर्त्ता विह्रुतं पुनः'

ऋ. ८.१.१२; २०.२६, का.सं.सू. २५.३०

(३) कुटिलभाव

विहृदय - विरुद्ध हृदयता ।

विहृदयं वैमनस्यम्'

अ. ५.२.१.१

वी - (१) खाना ।

'वीहि स्वामाहुतिं जुषाणो मनसा'

अ. ६.८३.४

(२) सन्तति उत्पन्न करना ।

प्रवीयमाना चरति'

अ. १२.४.३७

'वीतं पातं पयस उस्त्रियायाः'

(गाय का दूध खाओ और पियो) ।

'वीहि शरा पुरोजाशम्'

(३) सं. । विविध बलों या स्वामी, (४) तेजस्वी, (५) रक्षक (६) वीर

'ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः'

ऋ. ६.२४.२

वीक्षित - विशेष रूप से साक्षात् किए हुआ ।

वीक्षिताय स्वाहा

वाज. सं. २२.८

वीची - वि + अञ्च् + ङीष् = वीची । अर्थ है- (१) विज्ञान, (२) विश्चय ।

वीडयति - वील और व्रील धातु संस्तम्भ अर्थात् दृढ़ीकरण अर्थ में है । वील तिश्चं व्रीऽयतिश्च संसम्भकर्मणि ।

'तद् देवानां देवतमाय कर्त्वम्
अश्रथ्नन् दृढ़ाव्रदन्त वीडिता
उद् गा आयदभिनद् ब्रह्मण वलम्
अगूहत् तमो व्यचक्षयत् स्वः'

ऋ. २.२४.३

इन्द्रादि देवों में देवतम अर्थात् अत्यन्त दानादि गुणों से युक्त बृहस्पति का वह कर्तव्य कर्म (देवानाम् आय तत् कर्त्वम्) जिसने दृढ़ मेघ में वलों के या असुरों के सामर्थ्य को विश्लिष्ट या पराभूत किया (दृढ़ा अश्रथ्नन्) तथा जिससे सस्तम्भित, सन्नद्ध या दर्पित असुर कुल मृदुबल गए (व्रीडिता अवदन्त) तथा उस बृहस्पति ने वल नामक असुर से चुराई गायों को (गाः), या दुर्ग के मत से, जलों को देवों के प्रति मोड़ा (उदानता) और आत्मीय यन्त्र से (ब्रह्मणा) वल नामक असुर या मेघ को छिन्नभिन्न किया (वलम् अभिनत्) । उस के उपरान्त वल के द्वारा उत्पादित अन्धकार को विद्युत् से अदृश्य कर दिया (तमः अगृहत्) और सूर्य को (स्वः दिखलाया (व्यचक्षयत्) ।

वीड़स्व - दृढ़ीभाव (दृढ़ हो) । 'वीड' धातु स्तुति तथा दृढ़ करना अर्थ में प्रयुक्त है ।

'अरिषण्यन् वीडयस्वा वनस्पते'

ऋ. २.३७.३; नि. ८.३

हे वनस्पते, हिंसा की कामना न करता हुआ तू अपने को दृढ़ कर आज भी किसी कार्य के लिए वीड़ा उठाना, का प्रयोग किया जाता है ।

वीड्वंग - वीडु + अंग । स्थिर दृढ़ शरीर वाला ।

'स्थिरोभाव वीड्वंगः'

वाज.सं. ११.४४, तै.सं. ४.१.४.२, ५.१.५.४, मै.सं. २.७.४: ७९.१; ३.१.६: ७.१५; का.सं. १६.४; १९.५; श.ब्रा. ६.४.४.३; आप.श्रौ.सू. १६.३.१०,

वीडित - (१) विविध प्रजाओं से प्रशंसित - इन्द्र, (२) दृढ़ीभूत इन्द्र ।

'अक्षवीडो वीडितवीडयस्व'

ऋ. ३.५३.१९

(३) वीर्यवान् । बलवान् ।

'रध्रचोदः श्रथनो वीडितस्पृथुः'

ऋ. २.२१.४

'अच्युता चिद् वीड़ित खोजः'

ऋ. ६.२२.६, अ. २०.३६.६

(४) सेना बल

वीड्वी - शक्तिशाली ।

'वीड्वीर्यामान्नवर्द्धनयन्'

वाज.सं. २८.१३; तै.ब्रा. २.६.१०.१.

वीडु - (१) विर्यवान् -इन्द्र ।

'अक्ष वीडो वीडित वीडयस्व'

ऋ. ३.५३.१९

(२) २ बलवान्स दर्पित शत्रु ।

'वीडोश्चिदिन्द्रो या असुन्वतो वधो'
'मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे'

ऋ. १.१०१.४

जो इन्द्र दर्पित शत्रु तथा यज्ञ विरोधी का हन्ता है उस मरुतों से युक्त इन्द्र को अथवा सखा बनाने के लिए हम आह्वान् करते हैं ।

वीडुजम्भः - बलवान् हिंसाकारी सैन्य बल से युक्त ।

वीडुद्वेषाः - बलवान् शत्रुओं को भी दबाने वाला ।

'वीडुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः'

ऋ. २.२४.१३

वीडुपत्मन् – (१) वलेन पतनशीलः (वेग से गिरने वाला) – दया. (२) बलवान् चक्रों या पैरों वाला रथ–ज.दे.श. ।
वीडुपत्मभिराशुहेमभिर्वा
देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
ऋ. १.११६.२
हे अश्विनो, सेना के नासिका या मुख्य स्थान पर स्थित भी असत्य न देखने वाले चक्षुओं के समान अध्यक्ष पुरुषो, आप दोनों बलवान् चक्रों या पैरों वाले (वीडुपत्तभिः) शीघ्र गतिशील रथों से (आशुहेमभिः)
युद्ध विजिनीषु पुरुषों की वेगवती सेनाओं से शत्रुसेनाओं को छिन्न भिन्न करते हो (देवानां जूतिभिः शाशदाना) ।

वीडुपाणिः – (१) बलवान् हाथों वाला (२) बलवान् सैन्य बल को अधीन करने वाला ।
'यत्र वाजी तनयो वीडुपाणिः'
ऋ. ७.१.१४; तै.ब्रा. २.५.३.३

वीडुहरः – बलवानों का संहारक ।
वीडुहरास्तप उग्रं मयोभूः'
ऋ. १०.१०९.१; अ. ५.१७.१

वीडुहराः – परमात्मा के वीर्य या शक्ति को धारण करने वाले तीन तत्व–सूर्य, वायु और जल ।
'वीडुहरास्तप उग्रो मयोभूः
आपो देवीः प्रथमजा ऋतेन'
ऋ. १०.१०९.१; अ. ५.१७.१

वीडुहर्षी – (१) वीर्य के मद से अतिप्रसन्न, (२) गर्वीला वीर ।
'उग्रस्य चिद् दमिता वीडुहर्षिणः'
ऋ. २.२३.११

वीणावाद – वीणा बजाने वाला
महसे वीणावादम् ।
वाज.सं. ३०.१९; तै.सं. ३.४.१.१३

वीत – प्राप्त ।

वीततम – (१) अत्यन्त कामना युक्त, (२) खूब ज्ञान प्रकाशक, सुन्दर खूब ज्ञान प्रकाशक, सुन्दर ग्राह्य ज्ञान ।
'इमो अग्ने वीततमानि हव्या'
ऋ. ७.१.१८; तै.सं. ४.३.१३.६; मै.सं. ४.१०.१: १४३.६; का.सं. ३५.२; ऐ.ब्रा. १.६.५.

वीतपृष्ठ – (१)वीता व्याप्ताः पृष्टाः विद्या सिद्धान्ताः येन (जिसमें विद्या के सिद्धान्त व्याप्त हो) (२) यज्ञोपवीतधारी ।
'देवानामाशा उपवीत पृष्ठः'
ऋ. १.१६२.७; वाज.सं. २५.३०; तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं. ३.१६.१ : १८२.४; का.सं. (अश्व) ६.४.

वीतपृष्ठाः हरतिः – कान्ति युक्त रूप वाली जल रहने वाली मेघ मालाएं वायु या किरणें, (२) घोड़े ।
'अयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः'
ऋ. ५.४५.१०
(३) कमनीय स्वरूप वाले ज्ञानप्राप्त पुरुष, (४) कर्म करने में कुशल विद्यार्थिनी कन्याएं, यज्ञोपवीत धारी ब्रह्मचारी

वीतम् – अश्नीतम् (तुम खाओ) ।

वीतम् पातम् – खांओ पीओ ।
'वीतं पातं पयस उस्त्रियायाः'
ऋ. १.१५३.४; अ. ७.७३.५; आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४; शां.श्रौ.सू. ५.१०.१८, नि. ४.१९
आप दोनों उपदेशक और अध्यापक, दुग्ध के बने खीर आदि पदार्थों का भोजन करें । (उस्त्रियायाः पयसः) –दया. ।
आप दोनों (मित्र और वरुण) गाय का दही खाओ और पीओ । सा–

वीतवारः – चमकते हुए बालों वाला, अंग्रेजी के white शब्द का 'वीत' शब्द से चमकता अर्थ में मिलान करें ।
'वीतवारास आशवः'
ऋ. ८.४६.२३

वीताम् – पिवेताम् (पीवें), कामयेताम् ।
'वसुवने वसुधेयस्य वीताम्'
वाज.सं. २८.१४–१७,३७–४०
जो जोषयित्री देवियां विशेष धन से संम्पादित का अंश पीवें ।

वीतराधा – (१) कान्ति, तेज, एवं रक्षण–सामर्थ्य से सम्पन्न
(२) शक्ति का धनी
(३) शक्ति से कार्य सिद्ध करने में समर्थ ।
'ईशानं वीतिराधसम्'
ऋ. ९.६२.२९

वीतहव्य – पवित्र अन्न प्राप्त करने वाला प्राप्त ।
'त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यम्'

ऋ. ७.१९.३; अ. २०.३७.३

वीतिः – (१) वी + क्तिन् = वीति । अर्थ –भोजन, पान,

'पत्नीवन्तः सुतां इमे
उशन्तो यन्ति वीतये'

ऋ. ८.९३.२२; नि. ५.१८

वीतिहोत्रः – (१) उत्तम गुणों से व्याप्त विद्याओं, रक्षाओं और तेजों को स्वयं धारण करने या कराने वाला, (२) अग्नि

अग्न इडा समिध्यसे
वीतिहोत्रो अमर्त्यः'

ऋ. ३.२४.२

वीथः – (क्रः) (१) तुम पसन्द करते हो–सा. (२) शामिल होते हो –दया.

'उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरम्'

ऋ. १.१५१.७

उसी शोभनयज्ञ यजमान को उपलक्षित कर (तम् उप) तुम प्राप्त करते हो (गच्छथः अह) तथा उसके यज्ञ को पसन्द करते हो (अध्वरं वीथः) –सा. ।

उसके पास आप दोनों अध्यापक तथा उपदेशक जाते हैं (अह तम् उपगच्छथः) और उसके यज्ञ में शामिल होते हैं (अध्वरं वीथः) –दया.

वीध्य – (१) विविध प्रकाशों के विज्ञान में कुशल ।

'नमो वीध्राय चातप्याय च'

वाज.सं. १६.३८; का.सं. १७.१५; मै.सं. २.९.७: १२५.१४

वीध्र – (१) विशेषेण इन्ध्यते दीप्यते तद् वीध्रम् –स्वभाव शुद्धः द्यौः, विविधम् इन्धते (२) आकाश, (३) स्वभावतः शुद्ध आत्माकाश ।

'वीध्रे सूर्यमिव सर्पन्तम्'

अ. ४.२०.७

वीरः – (१) वि + ईर + अच = वीर । विविध प्रकार से गति या संचालन उत्पन्न करने वाला विद्युत् । (२) वीर ।

क्वस्य वीरः को अपश्यदिन्द्रम्

ऋ. ५.३०.१; कौ.ब्रा. २१.३; २४.५; २६.१२

(३) विविध लोकों पदार्थों को विविध रूप से चलाने वाला परमेश्वर ।

'सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यम्'

ऋ. २.१३.११

(४) वि + ईर (णिजन्त) + अच् = वीर, णि का लोप । ईर् धातु क्षेप, गति और कम्पन अर्थों में प्रयुक्त होता है ।

वीरः वीरयति अमित्रान् (वीर शत्रुओं को विविध प्रकार से 'ईरयति' अर्थात् प्रेरित करता, कंपाता या मारता है . अतः वह वीर है) ।

(५) गत्यर्थक वि + रक् = वीर । गच्छत्येव असौ अभिमुखं शत्रून् (यह शत्रुओं का सामना करता है) ।

(६) विक्रान्त्यर्थक वीर + अच् = वीर । वीर विक्रान्त होकर पराक्रमी बनता है । अतः वह वीर कहलाया ।

(७) पुत्र ।

'अधा स वीरैर्दशभिर्वियूयाः'

ऋ. ७.१०४.१५; अ. ८.४.१५; नि. ७.३.

और वह दशा वीरों से वियुक्त हो ।

वीरक – वीर्ययुक्त पुरुष ।

असौ य एषि वीरकः'

ऋ. ८.९१.२; तै.ब्रा. १.२२०

वीरकुक्षिः – वीर पुत्र को गर्भ में धारण करने वाली स्त्री ।

'अग्निर्नारीं वीर कुक्षि पुरंधिम्'

ऋ. १०.८०.१

वीरघ्नी – वीर पुरुष गामिनी

'वीरघ्नी भव मेखले'

अ. ६.१३३.२

वीरपस्त्य – (१) जिसके घर में वीर हो–दया. (२) पुत्र तुल्य प्रजाओं का पालक ।

'नृमणा वीरपस्त्यः'

ऋ. ५.५०.४

वीरपेशाः – (१) वीरस्त्य, अग्नि ।

'अग्निर्दाद् द्रविणं वीरपेशाः'

ऋ. १०.८०.४; तै.सं. २.२.१२.६.

(२) वीरों का स्वरूप या वीरों के योग्य सुवर्ण आदि धन ।

'त्वदेति द्रविणं वीरपेशाः'

ऋ. ४.११.३; का.सं. २१.१४

वीरपोष– वीर पुरुषों या पुत्रों की सम्पत्ति,

'गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि'

अ. १३.१.१२; मा.श्रौ.सू. ३.१.२८

वीरयध्वम् - (१) पराक्रम दिखायें, (२) वीर पुत्र दें ।
'विश्वे देवास इह वीरयध्वम्'
ऋ. १०.१२८.५; अ. ५.३.६; तै.सं. ४.७.१४.२; श.ब्रा. १.७.४.२२ ; आप.मं.पा. २.९.६
ऐ विश्वदेवो, आप हमारे अंग भाव बनकर धनादि दान में पराक्रम दिखायें या हमें वीर पुत्र दें (विश्वे देवासः इह वीर यध्वम्) ।

वीरया- वीराः । वीर ।
'प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वाम्'
ऋ. ७.९०.१; वाज.सं. ३३.७०; ऐ.ब्रा. ५.२०.८; कौ.ब्रा. २६.८.

वीरयुः- (१) वीरों का स्वामी ।
'वीरयुः शवसस्पते'
ऋ. ९.३६.६
(२) वीरों को चाहने वाला ।
'एवा ह्यसि वीरयुः'
ऋ. ८.९२.२८; अ. २०.६०.१; साम. १.२३२; १७४; कौ.ब्रा. २३.२; पंच.ब्रा. ११.११.३; आश्व.श्रौ.सू. ७.८.२; शां.श्रौ.सू. १०.६.१४; १२.११.१; वै.सू. ३१.२६; ४०.१४; ४१.७; ८.१६; ४२.१.

वीरवक्षण- (१) वीर पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य, (२) वीरों के द्वारा धारण ।
'ता अत्नत वयुनं वीर वक्षणम्'
ऋ. ५.४८.२

वीरवाद्- (१) वीरों को पीठ पर ले जाने वाला- अश्व, पुत्रों के लालन पालन का भार उठाने वाले स्त्री पुरुष ।
'ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहः'
ऋ. ७.४२.२

वीरवाः- वीरों का स्वामी ।
त्वया वीरेण वीरवः
ऋ. ९.३५.३

वीरशुष्मा - (१) जिसमें वीर योद्धाओं का बल हो (२) पुरुषों तथा शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ सेना ।
'सं देव्या प्रमत्या वीर शुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि'
ऋ. १.५३.५; अ. २०.२१.५; मै.सं. २.२.६: २०.५; का.सं. १०.१२
विजय करने वाली (देव्या) उत्कृष्ट ज्ञानवान् विद्याओं को प्रमुख करने वाली एवं शत्रुओं को अच्छी प्रकार थामने वाली (प्रमत्या) पुरुषों तथा शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ बल से युक्त (वीर शुष्मया) भूमि और सेनापति की आज्ञा को ही मुख्य लक्ष्य रखने वाला (गो अग्रया) और अश्वों और अश्वारोही वीरों तथा शीघ्रगामी यान वाली सेना से (अश्वावत्या) प्रबल होकर हम भली प्रकार शत्रुओं से संग्राम करें ।
गृहस्थ पक्ष में - उत्तम बुद्धि वाली स्त्री, वीर्यवान् पति या पुत्र के बल से युक्त उत्तम वाणी तथा गौ आदि पशु सम्पदा का पालन करने वाली अश्वादि पशुओं के उपभोग जानने वाली स्त्री के सहित गृहस्थ कर्म सम्पन्न करें ।

वीरहा- पुत्रों और वीर्यवान् पुरुषों को नाश करने वाला ।
'नारकाय वीरहणम्'
वाज.सं. ३०.४ तै.बरा. ३.४.१.१

वीर्य- (१) उत्पादक सामर्थ्य ।
'साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः'
ऋ. २.२२.३; साम २.८३७
(२) वि + ईर् + यत् = वीर्य । जों विशेष प्रकार से गति दे ।
(न) वीरता का कर्म ।
'याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय'
ऋ. १०.३०.४; अ. १४.१.३७; नि. १०.१९
जिनका पान कर इन्द्र वीर कर्मों के लिए बलवान् होते हैं ।
आधुनिक अर्थ- बल, शक्ति , साहस, वीरता, ओज, दृढ़ता साहस, प्रभाव, उत्पादक वीर्य सौन्दर्य, गौरव ।

वीर्यवत्तरः - औरों से अधिक बलवान् ।
'इहैधि वीर्यवत्तरः'
अ. १८.४.३८

वीर्त्सा- वि + ईर्त्सा । (१) विशेष ऋद्धि को प्राप्त करने की इच्छा प्रलोभन या लालच
'नमो वीर्त्साया असमृद्धये'
अ. ५.७.१

वीर्यावत्- बलवान् ।
'ब्रह्मणा वीर्यावता'
अ. ४.३७.११; १०.१.१४, तै.आ. १.९.७

वीर्यावती- (१) वीर्यवाली पत्नी, (२) अपनी शान्ति की रक्षा करने वाली जितेन्द्रिय पत्नी।
'एवा कामस्य विच्छिन्नं सं धेहि वीर्यावति'
अ. ६.१३९.५
(३) बल वाली।
'वीरुधां वीर्यावती'
अ. ४.३७.५

वीर्यवान् - वीर्यवान् पुरुष।
'याभिरिन्द्रो ववृधे वीर्यावान्'
अ. १४.१.३७

वीरिद्- वेञ् (तन्तु सन्तान अर्थ में तथा गति अर्थ में) + इन् = वि। डित् होने से टि का लोप होने से 'वि' रह गया।
गत्यर्थक 'वय' धातु से असुन् प्रत्यय कर वयस् (पक्षी) का ही 'वि' हो जाता है। (पृषोदरादिवत्)।
तुदादि में 'इल' धातु का गति और क्षेपण अर्थों में पाठ है, परन्तु यास्क ने ईर् धातु को भी गत्यर्थक माना है। र् ल् की समानता है। अतः इर + इटक = इरीट (कित होने से गुण नहीं हुआ)।
अथवा 'भांसि नक्षत्राणि इरन्ति अस्मिन् (इसमें नक्षत्र चलते हैं, अतः 'वीरिट' कहलाया)।
भास् + क्विप् = वि (पृषो-दरादिवत्)। अर्थ है-नक्षत्र।

वारिणी- (१) वीर पुरुष को वरण करने वाली स्त्री।
'उताहमस्मि वीरिणी'
ऋ. १०.८६.९, अ. २०.१२६.९
(२) इन्द्र पानी, इन्द्राणी, -सा. (३) वीरांगना।
(४) वीर्यवान्। आत्मारूप वीर पति वाली (५) वीर्यवान्, प्राणरूप पुत्रवाली।

वीरुत् - (१) विशेष रूप से नित्य बढ़ने वाली लता (२) ब्रह्मविद्या, (३) वीर्य को जन्म देने वाली स्त्री
'इयं वीरुन्मधुजाता'
अ. १.३४.१; ७.५६.२
(४) विविध प्रकार की रोग पीड़ाओं को रोकने वाली ओषधि।
'वीरुधः पारयिष्णवः'
ऋ. १०.९७.३
(५) वि + रुह् + क्विप् = वीरुध्। 'व्रि' का 'वी' और ह का ध्। अथवा - वि + रुह् + वु = विरुह्। विरह् का ही वीरुध् हो गया।
अथवा वि + रुध् + क्विप् = वीरुध्। यह अनेकानेक रोगों को रोकती है।
(२) विविधं रोहन्ति (विविध रूप से उपजाता है।
ओषधीः प्रति मोदध्वं
पुष्पवतीः प्रसूवरीः।
अश्वा इव सजित्वंरीः
वीरुधः पारयिष्णवः'
ऋ. १०.९७.३
हे ओषधियों, (ओषधीः) हमारे प्रति या इस रुग्ध के प्रति प्रसन्न हो (प्रतिमोदध्वम्) तुम पुरुषों से युक्त (पुष्पवतीः) फलों से युक्त (प्रसूवरीः), बड़वा के समान (अश्वाः इव) एकत्र हो रोगों के जीतने वाली (सजित्वरीः) पुरुषों को रोगों से पार लगाने वाली ओषधियां हों (पारयिष्णवः) वीरुधः।
आधुनिक अर्थ - फैलाने वाली लता, लता प्रतानिनो वीरुत्।
शाखा, अंकुर, काटे जाने पर उपजने वाला पौधा, लता जड़ी बूटी
(७) विशेष रूप से रोकने वाली वीरुध् लता, (८) बढ़ते हुए शत्रुओं को विशेष रूप से रोकने वाला।
'अपामग्निर्वीरुधां राजयसूयम्'
अ. १९.३३.१
(९) लताओं पर लगने वाली फूल, (१०) विशेष रूप से बीज को जन्म देने वाला। पुरुष।

वीरुधां पञ्चराद्यानि - लताओं एवं ओषधियों की पांच श्रेणियां-दर्भ, भांग, यव, सहपान, ओषधि
पञ्चराज्यानि वीरुधाम्
सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः।
अ. ११.६.१५

वीरुधां राजा - ओषधियों का राजा सोम।
'अश्वत्था दर्भो वीरुधाम्
सोमो राजामृतं हविः'
अ. ८.७.२०

वीरेण्यः- वीरों का नायक-सेनापति।
'वीरेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्तिः'

ऋ. १०.१०४.१०

वीहि- वी (भक्षणार्थक) के लोट् म.प्र. ए.व.का रूप । अर्थ है- भक्षण । (ख)

इमां ब्रह्म ब्रह्मवाहः
क्रियन्त आवर्हिः सीद
वीहि शूर पुरोडाशम् ।

३.४१.३; अ. २०.२३.३; का.सं. २६.१२; तै.ब्रा. २.४.६.२.

यज्ञ कहता है कि इन्द्र, ये ऋक् यजुः साम के स्वर सौष्ठव से युक्त या अन्न या हवि वहन करने में समर्थ स्तोत्र किए जाते हैं (इमा ब्रह्मवाहः ब्रह्म क्रियन्ते) । अतः आसन पर आकर बैठें (बर्हिः आसीद) ।

हे समर्थ इन्द्र (शूर), हमारे दिए इस पुरोडाशम् नामक हवि को (पुरोडाशम्) खा (व्रीहि) ।

व्रीहि- धान्य । साठी चावल आदि

'व्रीह्यश्च मे यवाश्च मे"

वाज.सं. १८.१२

व्युच्छान् - बिताते हैं ।

'अधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान्'

ऋ. ७.१८.२१

और उन विद्वानों के साथ होने से उत्तम दिन बीतते हैं (व्युच्छान्) ।

व्युत- (१) निवारण, खुला, विस्तृत, विविध तन्तु सन्तानों से बना हुआ ।

'उरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः'

ऋ. ३.५४.९

(२) विशेष रूप से बुना हुआ वस्त्र ।

इसी 'व्युत' का अपभ्रंश बेल बूटा किया हुआ वस्त्र है ।

'स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना'

ऋ. १.१२२.२

वह कवच को योद्धा के समान (स्तरीःन) विशेष रूप से बने हुए वस्त्र को (व्युतम्) पहनता हुआ (वसाना)....

व्युद्यते- वि + उद्यते । खूब खींची जाती है ।

'आदिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते'

ऋ. १.१६४.४७; अ. ६.२२.१; ९.१०.२२; मै.सं. ४.१२.५:१९३.८; का .सं. ११.१३; नि. ७.७.२४

तब जल से पृथिवी खूब सिक्त हो जाता है ।

व्युनत्ति- वि + उनत्ति = व्युनत्ति । अर्थ-तरह तरह से पटाता है या विशेष रीति से पढ़ाता है ।

'यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम'

ऋ. ५.८५.३; नि. १०.४

जैसे पटाने वाला (वृष्टिः) यव बोने के लिए वृष्टि भूमि को (भूम) तरह तरह से पटाता है (व्युनत्ति) ।

व्युन्दन- (१) पृथिवी को गीला करने वाला ।

'अदित्यै व्युन्दमसि'

वाज.सं. २.२; श.ब्रा. १.३.३.४

व्यमृकेश - विशेष रूप से केश कटा कर रखने वाला संन्यासी ।

'नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च'

वाज.सं. १६.२९, तै.सं. ४.५.५.१

व्युब्ज- विशेषरूप से प्रकाशित करना ।

'मित्रः प्रातर्व्यब्जतु'

अ. ९.३.१८

वुरीत- चाहो ।

'विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम्'

ऋ. ५.५०.१; वाज.सं. ४.८; ११.६७; २२.२१, तै.सं. १.२.२.१; ४.१.९.१; ६.१.२.५; मै.सं. १.२.२:१०.१५; २.७.७:८२.१०; ३.६.५:६५.९, का.सं. २.२; १६.७; श.ब्रा. ३.१.४.१८; ६.६.१.२१.

वुवुधानः- (१) जागता हुआ, (२) निरन्तर बहुत ज्ञान करता हुआ ।

व्युष्टि- (१) विविधा वसतिः -दया.

'व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम्'

ऋ. १.१७१.५

(२) विविध वशकारिणी शक्ति

को अस्या धाम कतिधा व्युष्टीः

अ. ८.९.१०

(३) वि + उछी + क्ति = व्युष्टिः । अथवा, वि + उश् + क्तिन् = व्युष्टिः । अर्थ है-उच्छेद, पूर्णरूप से विनाश ।

'हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टौ
अयः स्थूण मुदिता सूर्यस्य'

ऋ. ५.६२.८

हे मित्र और वरुण, तुम दोनों उषा के उच्छेद काल में तथा सूर्य के उदय काल में (उषसः व्युष्टौ सूर्यस्य उदितौ) हिरण्यमय लोहे के स्थूण वाले रथ पर चढ़ते हो (हिरण्यरूपम् अपः स्थूणम्) ।

(४) प्रादुर्भाव, (५) विभाग ।
'आ व ऋञ्जस ऊर्जा व्युष्टिपु'
ऋ. १०.७६.१; नि. ६.२१.
हे पत्थरो, तुम्हें अन्नवती या सारवती उषाओं के विभागों में चारों ओर से अलङ्कृत करता हूँ -सा. ।
हे मनुष्यों, बलदायिनी उषाओं के प्रादुर्भूत होने पर हृदय मन्दिर को सजाने के लिए (ऋञ्जसे)
(६) विशेष पादभावों को दहन करने की शक्ति ।
'व्युष्ट्यै स्वाहा'
वाज.सं. . २२.३४; तै.सं. ७.२.२०.१; मै.सं. ३.१२.१५: १६४.१४; का.सं. (अश्व.) २.१०; तै.ब्रा.३.१.६.३; ८.१६.४; १८.६; आप. श्रौ.सू. २०.१२.१०; मा.श्रौ.सू. ९.२.२.

व्यूर्णवती- अन्धकार को दूर करती हुई उषा ।
'व्यूर्णवती दिवो अन्ताँ अबोधि'
ऋ. १.९२.११
उषारात्रि को अन्धकार दूर करती हुई (व्यूर्णवती) आकाश के दूर दूर भागों को (अन्तान्) या प्रकाशित कर देती हैं (अबोधि) ।

वृक- (१) वृ + कक् = वृक (सुवृभूशुषि मुषिभ्यः कक्) अर्थ है- स्पष्ट ज्योतिष्क होने से स्पष्ट ।
(२) अथवा विकृतज्योतिः विक्रान्तज्योति से ही वृक हो गया है । विकृत या विक्रान्त का वृक हो गया है । ज्योति का लोप हो गया है ।
(३) वृजीधातु वर्जन और आवरण अर्थों में आया है । वृङ् धातु संभजनार्थक है । इन दोनों धातुओं से वृक वना है ।
(४) भेड़िया-सा. (५) आदित्य-यास्क और दया. ।
आदित्योऽपि वृकउच्यते यदा वृक्ते (आदित्य का भी वृक नाम है क्योंकि वह अन्धकार को विनष्ट करता है या जगत् को आकाश द्वारा आवृत्त करता है या उदकों को संभक्त करता है अर्थात् रश्मियों से खींच लेता है) ।
(५) कुत्ते, सियार,
'अधैनं वृका रभासासो अद्युः'
ऋ. १०.९५.१४; श.ब्रा. ११.५.१.८
इसे कुत्ते सियार वेगवान् हो खायें । (६) लाङ्गल हल । विकर्तनात् । स हि भूमिं विकृन्तति (हल भूमि को काटता है) ।
यवं वृकेणाश्विना वपन्ता'
ऋ. १.११७.२१, नि. ६.२६
हे राजा और राज पुरुषों, या अश्विनी कुमारो जैसे कृषक हल से यव होते हैं उसी प्रकार तुम दोनों.....।
(६) चन्द्रमा । वृकः चन्द्रमा भवति विहत ज्योतिष्को वा ।
'अरुणो मा सकृद् वृकः
पथा यन्तं ददर्श हि'
ऋ. १.१०५.१८; नि. ५.२१
आरोचन मासों तथा अर्द्धमासों का कर्ता चन्द्रमा आकाशमार्ग ऐसे जाते हुए नक्षत्र को देखता है ।
(८) कुत्ता । श्वाऽपि वृक उच्यते । विविध मसौ कृन्तति (कुत्ता भी, वृक है क्योंकि यह अनेकों भेड़ आदि को काटता है) । वि + कृद् + = वृक ।
'वृकश्चिदस्य वारण उरामथिः'
ऋ. ८.६६.८; अ. २०.९७.२; साम. २.१०.४२, नि. ५.२१
इस इन्द्र का कुत्ता भी शत्रुओं का वारयिता है । (अस्य वृकः चित् वारणः) जो भेड़ो का शिकारी होकर भी (उरामथिः) - सा. । इस राजा का कुत्ता शत्रुओं को निवारण करने वाला भेड़ों को रोकने वाला हो (वारणः उरामथिः) ।
(९) चोर .दया.।
'जम्भयन्तोऽहिवृकं रक्षांसि'
ऋ. १.३८.७; वाज.सं. ९.१६; २१.१०; तै.सं. १.७.८.२; मै.सं. १.११.२:१६२.११; का.सं. १३.१४; श.ब्रा. ६.१.५.२२; नि. १२.४४
हनन करने वाले शत्रु या सर्प चोर तथा राक्षसों को मारते हुए ।
आधुनिक अर्थ- वृक (पकड़ना) + अच् = वृक, भेड़िया, श्रृंगाल, काक, उल्लूपक्षी, लुटेरा, क्षत्रिय, अनेक सुगंधित द्रव्यों का मिश्रण, (१०) वृकासुर नामक राक्षस, एक वृक्ष, जठराग्नि ।
(१०) वज्र । वृकइति व्रज नाम विकर्त्तनात्
'एवा वृक आदाने इत्युपलक्षणकः'
वृणकृर्वा पृषोदरादि त्वात
वृणोतेर्वा औणोदिकः कः

वृजो वर्जने (अदाक्षिः) इत्यतः औणादिकः कः नकारमकार लोपश्च ।
यद्वा वृणक्तेः वधकर्मणः । विपूर्वक कस्य कृन्ततेर्वा पृषोदरादित्वात् निपातनम् ।
'दाना मृगो न वारणः'
ऋ. ८.३३.८; अ. २०.५३.२; ५७.१२; साम. २.१०४७; कौ.ब्रा. २४. ८; शां.श्रौ.सू. ११.१२.४
श्व अपि वृक उच्यते विकर्तनात् आदित्योऽपि वृक उच्यतचे यदा वृङ्क्‍े। - नि .

वृकताति- (१) वज्रवत् कठोर, (२) भेड़िए या चोर के समान प्रजाघातक ।
'यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यः'
ऋ. २.३४.९

वृकद्वार्स्- (१) छिन्नभिन्न द्वार, (२) विशेष तेजस्वी द्वार पर खड़ा, (३) शास्त्रबल के मुख व्यूह द्वारों पर स्थित वीर ।
'वृकद्वरसो असुरस्य वीरान्'
ऋ. २.३०.४

वृक्क- (१) गुर्दा जिससे मूत्र स्रवता हो ।
'दिवं वृक्काभ्याम्'
वाज.सं. २५.८; मै.सं. ३.१५.७:१७९.१३
(२) रोगों को दूर करने वाला
(३) शत्रु वर्जक राजा
'पीवो वृक्क उदारथिः'
ऋ. १.१८७.१०; का.सं. ४०.८

वृक्णः- (१) बन्धनों को काटने वाला (२) शत्रुओं और कण्टकों का छेदन करने वाला ।
'ये वृक्णासो अधि क्षमि'
ऋ. ३.८.७
(३) वि. । तोड़ा हुआ ।
'संवत्सरे वृक्णमपि रोहति'
अ. ८.१०.(३).२

वृक्तबर्हिः - (१) ऋत्विक्, (२) शिल्प ।
'नासत्या वृक्तबर्हिषः'
ऋ. १.३.३; वाज.सं. ३३.५८

वृक्तबर्हिषः- (१) कुशकाशादि को बढ़ाने वाली जल धाराएं, (२) यज्ञ कर्त्ता जिनके यज्ञ में कुशासन बिछा रहता है । (३) प्रजाओं की वृद्धि करने वाले राजा ।
'आपो नं वृक्तबर्हिषः'
ऋ. ८.३३.१. अ. २०.५२.१, ५७.१४, साम. १.२६१.२.२१४.
(४) घास आदि से रहित स्वच्छ जल ।

वृक्ष- (१) वृक्ष के समान शरणप्रद (२) धनाढ्य, (३) शरणयोग्य वृक्ष नामक अधिकारी ।
'नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः'
वाज.सं. १६.१७,४०; तै.सं. ४.५.२.१; ८.१. मै.सं. २.९.३; १२२. ९; २.९.७; १२६.४,
(४) धनुष् ।
'वृक्षे वृक्षे नियता मीमयद्गौः'
ऋ. १०.२७.२२; नि. २.६.
प्रत्येक धनुष में निबद्ध मौर्वी (वृक्षे वृक्षे नियता गौः) इन्द्र की भुजा से आकृष्ट हो शब्द करती है (मीमयत्) (४) पृथ्वी में जड़ जमाकर रहने वाला वृक्ष ।
'ते वृक्षाः सहतिष्ठन्ति'
अ. २०.१३१.११
(६) वृत्वा सां तिष्ठन्ति-नि.
'अग्रे वृक्षस्य क्रीड़तः'
वाज.सं. २३.२५; वाज.सं. (का.) २५.२७; श.ब्रा. १३.५.२.५; आश्व.श्रौ.सू. १०.८.१०.११; शां.श्रौ.सू १६.४.१.
(७) वृश्च (छेदना) + सक् = वृक्ष । वृक्षो व्रश्चनात् (छेदन करने से यह कहा गया क्योंकि इन्धनादि के लिए वृक्ष काटा जाता है) । अर्थ-वृक्ष । धनुष के अर्थ में व्युत्पत्ति - 'वृत्वा क्षां तिष्ठति, (धनुष् राष्ट्रभूमि को वरण कर स्थित होता है) । वृ + क्षा ।
पेड़ (तरु) के अर्थ में प्रयोग -
वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसः'
ऋ. ५.८३.२; नि. १०.११
मेघ वृक्षों एवं राक्षसों का वध करते हैं ।
(८) मेघ ।
अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं
मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।'
ऋ. ५.५४.६
हे वृष्टि के विधाता मरुतों (वेधसः मरुत) आप लोगों का गण या बल (शर्धः) शोभता है (अभ्राजि) जिससे (यत्) जलयुक्त मेघ को (अर्णसम्वृक्षम्) निरुदक करते हो (मोषथा) ।

वृक्षकेश- (१) पर्वत जिसके वृक्ष ही केश हैं, (२) लम्बी जटा धारण करने वाला जटिल, (३)

वृक्षवत् काटने योग्य केशों को अन्त कर देने वाला ज्ञान वृद्ध गुरुजन ।

'द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः'

ऋ. ५.४१.११

वृक्षसर्मी- (१) वृक्षों पर सरकने वाला जीव ।

'यावतीर्वघावृक्ष सर्प्यो बभूवुः'

अ. ९.२.२२

वृक्षाः - (१) पेड़ (२) भूमि को वश कर बैठे हुए भूपति ।

'वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः'

ऋ. ८.४.२१

वृक्ति- (१) स्तुति-सा. (२) शुद्धि -दया.

वृक्षि- क्रि । काटो, वञ्चित करो ।

'यजाम देवान् यदि शक्नवाम
मा ज्यायसः शंसमावृक्षि देवाः'

ऋ. १.२०.१३; आप.श्रौ.सू. २४.१३.३.

हे श्रेष्ठ देवो, हम कम पढ़े लिखे भी देवगणों की प्रार्थना करते हैं । इस प्रकार हम स्तुति कर्ताओं को यज्ञ बल से आप वञ्चित न करें ।

वृकी- वृक् (आदान अर्थ में) + क = वृक, अथवा वृ (आवरण करना) + क = वृक, अथवा कृत् (संशव्यनार्थक) + उ= वृक । वृद्धं कीर्तियति (जोर से बोलता है) इति वृद्धकः = वृक । वृक + ङीष् = वृकी । अर्थ है- श्रृगाली सियारिन । 'वृद्धवाशिन्यपि वृकी उच्यते (उच्च शब्दों में स्वर करने वाली भी वृकी कही जाती है) ।

'शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानम्
ऋज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष
आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वम्'

ऋ. १.११६.१६; नि. ५.१.

वृषागिर का पुत्र ऋज्राश्व नामक राजर्षि थे । उनके समीप अश्विद्वय के वाहनभूत गर्दभ वृकी होकर खड़ा था । उसने इसके आहरण के लिए एक सौ एक पौरजनों के भेड़ों को काटकर उसे दिया । इस प्रकार पौरजनों के अहित में प्रवृत्त पुत्र को देख पिता ने शाप द्वारा नेत्रहीन कर दिया । उससे स्तुत हो अश्वनीद्वय ने यह विचार कर कि उनके ही वाहन के लिए उसने आखें खोईं इसे आंखें दीं । इसी का इसमें वर्णन है ।

ऋज्राश्व नामक राजर्षि ने शत संख्यक भेड़ों को (शतं मेषान्) वृकी के लिए दिया (वृक्ये) इस प्रकार देते देख (तं चक्षदानम्) उस ऋजाश्व को (ऋज्राश्वम्) पिता ने कुपित हो शाप से अन्धा बना दिया (पिता अन्धं चकार) । हे दर्शनीय अश्विनीद्वय वैद्यो, (दस्रौ नासत्या भिषजौ) उन पिता के शाप से द्रष्टव्य पदार्थों के प्रति गतिहीन (अनर्वन्) आंखों को (अक्षी) उस नेत्रहीन ऋज्राश्व को (विचक्षे तस्मै) उन दोनों ने पुनः दिया (आधत्तम्) ।

अन्य अर्थ - भेड़िनी के लिए अनेक भेड़ों को देने वाले (वृक्ये शतं मेषान् चक्षदानम्) इस सधे हुए घोड़े वाले शिकारी को (ऋज्राश्वम्) पालक राज्य नजरबन्द करे (पिता अन्धं चकार) । सर्वदा सत्यभाषी (नासत्या) अज्ञान नाशक (दस्रा) तथा अध्यात्म रोगों के चिकित्सक अध्यापक एवं उपदेशक (भिषजा) कारागार में पड़े उस कैदी को (तस्मै) सत्य दर्शन के लिए ज्ञान नेत्र प्रदान करा (विचक्षे अक्षी आधत्तम्) जिससे वह ऐसी हिंसा करने वाला न रहे । (अनर्वन्) ।

वृक्कौ - शरीर के दो गुर्दे

स्थाम्नि वृक्कावतिष्ठिपम्'

अ. ७.९६.१

वृचया - (१) विवेचनकारिणी विद्या, (२) छेदन भेदन करने की शिल्प विद्या ।

वृचीवत्- (१) अज्ञाननाशक विद्या वाला शिष्य, (२) प्रजोच्छेदक शक्ति से युक्त दुष्ट पुरुष, (३) अविद्य को छेदन करने वाली इच्छा से युक्त विद्यार्थी ।

'वृचीवता यत् हरि यूपीपायाम्'

ऋ. ६.१.२७.४

(४) शत्रुच्छेदक शस्त्र वाला ।

'वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः'

ऋ. ६.२७.६

वृजध्यै- वर्जन करने के लिए ।

'परियत् ते महिमानं वृजध्यै'

ऋ. ३.३१.१७

वृजन- मार्ग ।

'जरयन्ती वृजनं पद्वदीयते'

ऋ. १.४८.५

(२) वर्जन योग्य, (३) हिंसक ।
'मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यः'
ऋ. ७.३२.२७; अ. २०.७८.२; साम. २.८०७; पंच.ब्रा. ४.७.५.
(४) पाप निवारक बल, (५) पाप से निवृत्त करने वाला श्रेयोमार्ग-ज्ञान ।
'वृजनेन वृजिनान् संपिपेष'
ऋ. ३.३४.६; अ. २०.११.६

वृजन्य- बल
'धर्मा भुवद् वृजन्यस्य राजा'
ऋ. ९.९७.२३

वृजनी- (१) बलवती शक्ति ।
(२) वृजनेन बलेन इति सायणः ऋग्वेदभाष्ये, बल कारिणी भिरिति अथर्व भाष्ये (सायण ने ऋग्वेद में 'वृजनी' का अर्थ ' वृजन से' किया और अथर्व वेद में 'कारिणी' अर्थ किया है) ।
'अरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम'
अ. ७.४०.७
(३) बाह्य वाधाओं को वर्जन करने वाली गर्भाशय की नाड़ी, (४) दिशा, (५) आपः (६) कारण परमाणु जिनमें हिरण्य गर्भ विराट् आश्रित रहता है ।
'अतिष्ठद् गर्भो वृजनीषु अन्तः'
ऋ. १.१६४.९; अ. ९.९.९
गर्भाशय की नाड़ियों में गर्भ स्थिति रहता है या दिशाओं के बीच अन्तरिक्ष में मेघ जल से गर्भित होकर ठहरता है या प्रकृति की परमेश्वरी शक्ति पर संयुक्त होने के बाद हिरण्यगर्भ विराट् कारण परमाणुओं में आश्रित होता है । (७) जल, (८) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु (९) आदित्य की रश्मि

वृज्यते - वृज् (निवास करना, बसना) का कर्मवाच्य लट प्र.पु.ए.व. में । स्थापित किया जाता है ।
(२) बिछाया जाता है ।
'वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम्'
ऋ. १०.११०.४; अ. ५.१२.४; वाज.सं. २९.२९; मै.सं. ४.१३.३: २०२.१, का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.२, नि. ८.९
दिन के पूर्वाह्ण में (अह्नाम् अग्रे) इस वेदी के आच्छादन के लिए (अस्याः वस्तोः) कुश बिछाया जाता है (वृज्यते)- सा. । इस पृथ्वी के निवास के लिए पूर्वार्द्ध में (अह्नाम् अग्रे) यज्ञाग्नि स्थापित किया जाता है (वृज्यते) ज.दे.श. ।

वृज्या- वर्जने योग्य पीड़ा ।
'परि णो हेती रुद्रास वृज्याः'
ऋ. २.३३.१४

वृजिन- (१) पापाचारी
वृजिनेन वृजिनान् सं पिपेष
ऋ.३.३४.६; अ. २०.११.६
(३) त्याग देने योग्य पाप या पापी
न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति'
ऋ. ७.१०४.१३; अ. ८.४.१३
'ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति'
ऋ. ४.२३.८; नि. १०.४१
मध्यम ऋत देने की स्तुति उदक दान द्वारा अकाल नष्ट करती हुई वर्जनीय अयशस्कर पापों का विनाश करती है (वृजिनानि हन्ति) ।
आधुनिक अर्थ -दुष्ट, कुटिल, वक्र, बाल, घुंघराला बाल, पाप, विपत्ति ।

वृजिनवर्तनिः- (१) 'वृजिनं वर्तनिः यस्य' समवाय या संघ से बने युद्ध में जाने योग्य मार्ग से जाने वाला वीर पुरुष, (२) काम क्रोधादि के संघ में फंस कर पाप मार्ग से जाने वाला पुरुष ।
'त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं
सक्मन् पिपर्षि विदथे विचर्षणे'
ऋ. १.३१.६

वृञ्जस् - नाश
'मरुत्वन्तं न वृञ्जसे'
ऋ. ८.७६.१

वृणानः- सबसे उत्कृष्ट रूप में वरुण या स्वीकार करता हुआ ।
'वृणानो दैव्यं वचः'
अ. ७.१०५.१

वृत्- (१) गुरु को घेकर बैठने वाली शिष्य पंक्ति, (२) घेरने वाली सेना ।
'अयं वृत्तश्चातयते समीचीः'
ऋ. ४.१७.९
(३) व्यवहार
'कया शचिष्ठया वृत्ता'
ऋ. ४.३१.१; अ,. २०.१२४.१; साम. १.१६९; २.३२, वाज.सं. २७.३९ ; ३६.४; तै.सं. ४.२.११.२;

मै.सं. २.१३.९: १५९.५; ४.९.२७: १३९.१२; का.सं. ३९.१२ तै.आ. ४.३२.३; आप.श्रौ.सू. १७.७.८.

वृत- (१) यज्ञ के लिए वरण किया हुआ ।
'यद्देवापिः शन्तनवेपुरोहितो
होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत्'
ऋ. १०.९८.७; नि. २.१२.
(२) आवरण कारी, (३) आत्मा को घेरने वाला तामस आवरण
'वयं जयेमत्वया युजा वृतम्'
ऋ. १.१०२.४; अ. ७.५०.४

वृतञ्चय- (१) विद्यमान धन का संचय करने वाला । (२) ऋत सत्य का एक मात्र पुञ्ज, (३) सत्य मय या बढ़ते शत्रु की लक्ष्मी को फूल के समान चुन लेने वाला ।
वृतञ्चयः सहुरिर्विक्ष्वारितः
ऋ. २.२१.३

वृत्र- वृञ् (वारणार्थक), वृतु (रहना) या वृधझ् (बढ़ना) + क्त्र = वृत्र । वृत्रं वृणोतेः वा वर्ततेः वा वर्धतेः वा अर्थात् वृत्र शब्द का वारणार्थक वृवर्तनार्थक वृत् या वर्धनार्थक वृध धातु से बना है । मेदिनी कोष में-
'वृत्रो रिपौ घने ध्वान्ते'
शैलभेदे च दानदे ।
ऐसा लिखा है ।
वस्तुतः वृत्र के अनेकों अर्थ किए गए हैं और इस शब्द को लेकर विद्वानों में बहुत मतभेद भी है । निरुक्तकार कहते हैं-
'यत् अवृणोत् तत् वृत्रस्य वृत्रत्वम् इति विज्ञायते, यत् अवर्धत इति वृत्रस्य वृत्रत्वम् इति विज्ञायते ।
अर्थात् वृत्र ने अन्तरिक्ष या उदक को अपनी महत्ता से घेर लिया । पर इन्द्र से मारे जाने पर वृत्र अर्थात् मेघ वृष्टि रूप में निकलकर वर्तमान् हुआ या यह अत्यन्त बढ़ गया यही इसकी वृत्र-ता है ।
अर्थ - (१) वृत्र नामक असुर, (२) मेघ,
'तत्को वृत्रः? मेघ इति नैरुक्ता । त्वाष्ट्रोऽसुर इति ऐतिहासिकाः ।
'वृत्रस्य निण्यं वि चररन्त्यापः'
ऋ. १.३२.१०; नि. २.१६.

(३) नदियों की परिधि जो पानी को घेर रहती है ।
अपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम् । (४) जलों का द्वार बन्द करने वाला जल प्रवाह रोकने वाला ।
'अपां बिलमपिहितं मदासीत्
वृत्रं जघन्वां अप तद् ववार'
ऋ. १.३२.११; नि. २.१७.
जलों का घर जो बन्द था उसे जल प्रवाह निरोधक वृत्र को इन्द्र ने मारा और बन्द द्वारा को खोल दिया ।
(५) दुष्टजन, (६) विघ्नकर्ता ।
'अस्मा इदु प्रभरा तु तूजानः ।
वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः'
ऋ. १.६१.१२; अ. २०.३५.१२; मै.सं. ४.१२.३: १८३.१०; का.सं. ८ .१६; नि. ६.२०.
हे राजन् या इन्द्र, इस वृत्र या मेघ या दुष्ट जन पर वज्र या खड्ग शीघ्र से चला, क्योंकि तू आशुकारी अनेक गुणसम्पन्न् (क्रियेधाः) तथा सर्व समर्थ या भूमपति (ईशानः) है ।
(६) अपां त ज्योतिषां च मिश्रीभावकर्मणः वर्ष कर्म जायते, तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णाः भवन्ति (मेघों में उदर स्थित जल तथा विद्युत के मिश्रीभाव कर्म से वर्षा होती है । मरुतों से आविष्ट विद्युत ही इन्द्र है) । विद्युत के संयोग से उत्पीड़ित होकर मेघ से जल निकलता है। इस क्रिया की कल्पना युद्ध से की गई है । यह वस्तुतः युद्ध नहीं है । इन्द्र का कोई शत्रु भी नहीं है । कहा भी है-
'अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे'
ऋ. १०.१३३, २. अ. २०.९५.३; साम. २.११५.२; नि. १.१६.
(७) अहिवत्तु खलु मन्त्र वर्णा ब्राह्मण वादाश्च भी मेघ का नाम है । उदक मध्य स्थानी देवता है । ब्राह्मण गन्थों में वृत्र नामक असुर की उद्भावना की गई है ।
(८) विवृद्धया शरीरस्य स्रोतांसि निवारया ञ्चकार, (शरीर के विस्तार से जल के स्रोतों को वृत्र ने इन्द्र के साथ जलक्रीड़ा करते समय रोकदिया) ।
तस्मिन् हते प्रसस्यन्दिर आपः (वृत्र के इन्द्र द्वारा मारे जाने पर जल वह चले) ।

(९) शत्रु ।
ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याय
विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि
वाजो अस्मां अवतु वाजसातौ ।
इन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम्'
ऋ. ७.४८.२; का.सं. २३.११
हे ऋभुओ, हम आप महती दीप्ति वालों के साथ (वयं ऋभुभिः) हो स्वयं महती दीप्ति वाले बन जाते हैं (ऋभुः) तथा आप महान् बल वालों के साथ स्वयं महान् बल वाले बन जाते हैं (विभुभिः विभ्वः) । आप लोगों के बल से (व. शवसा) शत्रुओं की शक्ति को हम पराभूत करते हैं (शंवासि अभि स्याम्) तथा वज्र नामक ऋभुदेव (वाजः) संग्राम में (वाजसातौ) हमारी रक्षा करें (अस्मान् अवहु) और हम इन्द्र से युक्त हों (इन्द्रेण युजः) । वृत्र अर्थात् शत्रु को हनें अर्थात् मारें (वृत्रं तरुषेम) ।
अन्य अर्थ - सत्य से प्रकाशित विद्वानों द्वारा (ऋभुभिः) सत्यवक्ता हम तुम झूठों पर विजय प्राप्त करें (ऋभुः वः अभिस्याम) । बलवानों द्वारा (विभ्वः) हमं बलवान् (बिम्वः) पराक्रम से (शवसा) शत्रुओं के पराक्रम को मन्द करें । ज्ञानी पुरुष (वाजः) संसार रूपी संग्राम में (वाजसातौ) हमारी रक्षा करें (अस्मान् अवन्तु) और परमेश्वर के साथ युक्त हो (इन्द्रेण युजा) हम पाप को नष्ट करें (वृत्रं तरुषेम)-ज.दे.श. ।
(१०) पाप. (११) जल ।
आधुनिक अर्थ- इन्द्र से मारे गए एक अक्षर का नाम, अंधेरा, मेघ, शत्रु, ध्वनि, पहाड़ ।
स्वामी दयानन्द ने वृत्र का अर्थ मेघ माना है । जल और विद्युत के मिलने से वृष्टि होती है । विद्युत रूपी वज्र का मेघ पर प्रहार ही वर्षा का कारण है । ऐतिहासिकों के असुर अर्थ को स्वामी जी नहीं मानते हैं । कहीं कहीं वत्रहा का अर्थ शत्रुओं का नाश करने वाला ही किया गया है ।

वृत्रखाद- (१) मेघों को स्थिर करने वाला सूर्य, (२) बढ़ते शत्रु को अपने बाधक बल से उसे खा जाने वाला ।
(३) मेघ को किरणों से छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य ।
'वृत्रखादो वलंरुजः'
ऋ.३.४५.२; साम. २.१०६९

वृत्रताः वृत्रः - (१) संसार को अत्यन्त आवृत करने वाला मेघ । (२) वृत्र नामक असुर ।
'अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसम्'
ऋ. १.३२.५; मै.सं. ४.१२.३: १८५.९, तै.ब्रा. २.५.४.३.
इन्द्र ने संसार को अत्यन्त आवृत्त करने वाले मेघ को या वृत्र नामक असुर को छिन्नस्कन्ध कर (व्यंसन्) मार डाला ।
(३) अत्यन्त पापी-दया. ।
जब राजा अत्यन्त पापी को बहुत वध करने वाले खड्ग से गर्दन काट देता है । दया.

वृत्रतूर्य - (१) मेघों का आघात (२) जलों का वेगवत् प्रवाह (३) शत्रुओं और विघ्नों का नाश करने का कार्य ।
'प्रेम ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ'
ऋ. ८.३७.१; ऐ.ब्रा. ५.८.१; कौ.ब्रा. २३.२; श.ब्रा. १३.५.१. १०
(४) वृत्र या शत्रु के नाशकारी संग्राम का अवसर ।
'अन्विन्द्रं वृत्र तूर्ये'
ऋं. ८.७.२४
(५) वृत्र का नाश, (६) विघ्न का नाश (७) संग्राम जहां शत्रुओं का वध होता है ।
'भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये'
ऋ. २.२६.२; ८.१९.२०; साम. २.९१०; वाज.सं. १५.३९; आप.श्रौ. सू. १४.३३.६; मा.श्रौ.सू. ६.२.२.
'श्रुष्ठी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये'
ऋ. ६.१३.१; आ.श्रौ.सू. ५.२३.९
(८) वृत्र या घेरा डालने वाले को वध करने वाला संग्राम ।
'युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये'
वाज.सं. १.१३, तै.सं. १.१.५.१; मै.सं. १.१.४:२.१३, का.सं. १.११; श.ब्रा. १.१.३.८; तै.ब्रा. ३.२.५.४, ३.६.१.
(९) मेघ और अन्धकार आदि आवरणकारी पदार्थों को नष्ट करने का कार्य (१०) मेघों को हिंसित करने वाला संग्राम
'त आदित्या आ गता सर्वतातये
भूत देवा वृत्रतूर्येषु शम्भुवः'

ऋ. १.१०६.२;

हे सूर्य के किरण अथवा अखण्ड अविनाशी अग्नि आदि तत्व दिव्य शक्ति और तेज संयुक्त एवं बल देने वाले होकर, मेघ और अन्धकार आदि आवरणकारी पदार्थों के नाश के कार्यों में सब सुखजनक और शान्ति जनक हो ।

वृत्रतमुचि- ज्ञान का आवरणकारी अमोच्य वासनारूप बन्धन ।

'अहं च वृत्रं नमुचिमुताहन्'

ऋ. ७.१९.५; अ. २०.३७.५

वृत्रपुत्रा- जिसका वृत्र अर्थात् मेघ पुत्र हो - पृथिवी या अन्तरिक्ष ।

'नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रा'

ऋ. १.३२.९

जब अन्तरिक्ष को ढंक लेने वाले मेघ को पुत्र के समान उत्पन्न करने वाली अन्तरिक्ष भूमि भी जल को नीचे गिरा देती है ....।

वृत्रहणा- (१) वृत्र अर्थात् मेघ पर प्रहार करने वाले विद्युत और सूर्य (२) शत्रु प्रहार करने वाले इन्द्र और अग्नि, (३) (द्वि.व.) अज्ञान को हनन करने वाले इन्द्र और अग्नि, प्राण- अपान, आत्मा और अन्तः करण, परमात्मा और जीवात्मा, राजा सेनापति, गुरु शिष्य ।

'तोशा वृत्रहणा हुवे'

ऋ. ३.१२.४; साम. २.१०५२; गो.ब्रा. २.३.१५; आश्व.श्रौ.सू. ५ .१०.२८

वृत्रहन्तमः- (१) शत्रुओं को खूब दण्डित करने वाला ।

'य इन्द्र वृत्रहन्तमः'

ऋ. ८.४६.८; ९२.१७

(२) नगर को रोकने के वाले शत्रुओं को मारने वालों में सर्वश्रेष्ठ (३) विघ्नानाशकों में सर्वश्रेष्ठ (४) इन्द्र (४) अज्ञाननाशक, परमेश्वर ।

'बृहदिन्द्राय गायत
मरुतो वृत्रहन्तमम् ।

ऋ. ८.८९.१; साम. १.२५८, वाज.सं. २०.३०; तै.ब्रा. २.५.८.४; वै.सू. ३०.१६.

वृत्रहा- आवरण कारी प्रकृतिमय सलिल को गति देने वाला ।

'जनुषः परि वृत्रहा'

ऋ. ८.६६९; अ. २०.९७.३

वृता- वरण की गई सहचरी स्त्री

समान्या वृतया विश्वया रजः

ऋ. ५.४८.२

वृत्रा- (१) वृद्धिशील महान् ब्रह्माण्ड, (२) मेघस्थ जल, (३) चक्रगति से विवर्तनशील सूर्यदि लोक और नीहार मण्डल (४) विघ्न बाधा ।

'एको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः'

३.३०.४

वृद्धवयः- दीर्घजीवी ।

'उपक्षेति वृद्धवयाः सुवीरः'

ऋ. २.२७.१३; तै.सं. २.१.११.४; मै.सं. ४.१४.१४: २३९.५

वृत्रहत्य - वृत्र या विघ्न या ज्ञान के विघ्न रूप वृत्र का नाश करने में समर्थ बल ।

'वृत्रहत्येन वृत्रहा'

अ. १८.१.३८

वृत्रहथ- (१) वृत्र या विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों का हनन करने वाला, अज्ञानों का नाशक ज्ञान ।

'ईशे वृत्रहथानाम्'

ऋ. ३.१६.१; साम. १.६०

वृत्रहन् - वृत्र + हन् + क्विप् = वृत्रहन् (१) वृत्र असुर को मारने वाला इन्द्र, (२) चारों ओर से आंच्छादित करने वाले विघ्न को दूर करने वाला परमात्मा, (३) मेघ को वितीर्ण कर वर्षा बरसाने वाला ।

'एको दृढ़मवदो वृत्रहा सन्'

ऋ. ३.३०.५

वृत्रहा इन्द्रः - मेघों को आघात करने वाला सूर्य या विद्युत् ।

'आ वृत्रहेन्द्रचर्षणिप्राः'

ऋ. १.१८६.६

वृत्वी- वृत्वा (घेर कर)

अपो वृत्वीं रजसो बुध्नमाशयत्'

ऋ. १.५२.६

'मेघ या वृत्र जलों को अपने भीतर घेर कर या थामकर (वृत्वी) आकाश के (रजसः) ऊपर के तल में (बुध्नम्) फैल जाता है (आशयत्) ।

वृथक् - (१) नाना प्रकार का ।

'यतन्ते वृथगग्नयः'

ऋ. ८.४३.४; वाज.सं. ३३.२

(२) पृथक् , अलग अलग

वृथगग्नयः- पृथक्-पृथक् जीव ।
'एतेत्ये वृथग्नग्नयेः '
ऋ. ८.४३.५

वृथा- अनायास
'त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवे
अच्छा समुद्रमसृजो रथां इव '
ऋ. १.१३०.५
मेघ जिस प्रकार अनायास ही नदियों को समुद्र की ओर बढ़ा देता है (नद्यः समुद्रं वृथा), उसी प्रकार हे इन्द्र, तू भी गमन करने के लिए (सर्तवे) रथों के समान संग्राम करने वाले वीर पुरुषों को भी तैयार कर ।

वृथाषाट्- (१) अनायास ही शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ इन्द्र या सेनापति ।

वृद्धमहाः- वृद्धों का आदर करने वाला ।
'कृत ब्रह्मेन्द्रा वृद्धमहाः'
ऋ. ६.२०.३

वृद्धश्रवाः- (१) वृद्धंश्रवः अन्नं वा सृष्टौ यस्य (सृष्टि में जिसका विस्तृत यश या अन्न हो) - परमेश्वर इन्द्र (२) बढ़े हुए बहुत अधिक ज्ञान और अन्नादि सम्पत्ति का स्वामी ।
'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः '
ऋ. १.८९.६; साम. २.१२२५; वाज.सं. २५.१९; मै.सं. ४.९.२७: १४०.१; का.सं. ३५.१; तै.आ. १.१.१; २१.३.१०.१.९; आप.श्रौ.सू. १४.१६.१; मा.श्रौ.सू. ४.३.४.३.
(३) बहुत अधिक ज्ञान, यश और धन से युक्त आचार्य , राजा, परमेश्वर ।

वृद्धशोचिः- (१) अति तेजस्वी पुरुष, (२) अग्नि ।
'सख्ये वृद्धशोचिषः '
ऋ. ५.१६.३

वृद्धसेना- जिनका सैन्यबल खूब बढ़ा हो ।
'उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः '
ऋ. १.१८६.८

वृद्धायु- (१) अपनी वृद्धि चाहने वाला, (२) महान् को चाहने वाला, (३) दीर्घायु
'वृद्धायुमनु वृद्धयो
जुष्टा भवन्तु जुष्टयः '
१.१०.१२; वाज.सं. ५.२९, तै.सं. १.३.१.२; मै.सं. १.२.११:२१ .५; का.सं. २.१२; श.ब्रा. ३.६.१.२४; आप.मं.पा. १.२.६.
वृद्धि को प्राप्त होने वाली (वृद्धयः) सेवन करने योग्य वाणियां तुझ महान् को ही लक्ष्य कर चाहने वाले को (वृद्धायुम्) अति प्रीतिकर हो (जुष्टम्) ।

वृद्धि- (१) उन्नति, बढ़ोत्तरी ।
'वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे
वाज.सं. १८.४; तै.सं. ४.७.२.१; मै.सं. २.११.२: १४१.२; का. सं. १८.७.
(२) वृद्धि को प्राप्त होने वाली वाणी ।

व्यृद्धि- (१) वि + ऋद्धि । अर्थ -ऋद्धि अर्थात् सम्पत्ति का नाश ।
'व्यृद्ध्या अपगल्भम् '
वाज.सं. ३०.१७; तै.ब्रा. ३.४.१.१४.
(२) घोर असमर्थता
'सेदिरुग्रा व्यृद्धिः '
अ. ८.८.९

वृध्- (१) बढ़ाने वाला ।
इमं नरो मरुतः सश्चता वृधम् '
ऋ. ३.१६.२
(२) वृद्धि ।
'अस्माकमिद् वृधे भव '
ऋ. १.७९.११
'वृधे च नो भवतं वाजसातौ '
ऋ. १.३४.१२; ११२.२४, वाज.सं. ३४.२९.
हे अश्विनो या स्त्रीपुरुषों, तुम दोनों हम लोगों के बीच में ज्ञान प्राप्ति, बलप्राप्ति और ऐश्वर्य प्राप्ति के कार्य में हमें बढ़ाने के लिए सदा तत्पर रहो ।

वृधः- बढ़ाने वाला ।
'असुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः '
ऋ. ५.३४.६
'असि दभ्रस्य चिद्वृधः '
ऋ. १.८१.२; अ. २०.५६.२; साम. २.३५३
'यूयं हि ष्ठा नमस इद् वृधासः '
ऋ. १.१७१.२

वृधस्नू- (द्वि.व) शरीर की वृद्धि करने वाले प्राण अपान वायु

वृधसानः- वृद्धि को प्राप्त होता हुआ ।
'कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने '
ऋ. ४.३.६; मै.सं. ४.११.४: १७२.१३; का.सं. ७.१६.

वृधसाना- (स्त्री) । (१) वर्धमान प्रजा -दया. (२) बढ़ती हुई नाना लोकों की प्रजा ।

वृधानः- (१) सबसे बढ़ा, (२) समस्त जगत् को बढ़ाने वाला- विष्णु
'परोमात्रया तन्वा वृधानः'
ऋ. ७.९९.१; मै.सं. ४.१४.५: २२१.५, तै.ब्रा. २.८.३.२; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१

वृधीकः- बढ़ाने वाला ।
'नकीं वृधीक इन्द्र ते'
ऋ. ८.७८.४

वृन्त- गर्भाधानी का मूल
'वृन्तादभि प्रसपतिः'
अ. ८.६.२२

वृन्द- वृङ् (संभजन करना) + दन् = वृन्द या वुन्द (वृ का वुन) । ब और व के अभेद से बुन्द भी हो गया । अथवा भिद् + दन + बुन्द ।
अथवा भी और 'भास्' + दन = बुन्द ।
वृन्दं बुन्देन व्याख्यातम् (वृन्द की व्याख्या बुन्द से ही हो गई) वृन्दारक की व्याख्या भी वही है ।
अर्थ है- (१) संघ, शत्रु का विदारंण करता है ।
आधुनिक अर्थ- समूह, यूथ, प्रचुर संख्या, ढेरी, वृन्दा नामक वन जो मथुरा में है ।

वृन्दारक- वृङ् (संभजन करना), भिद् (भेदन करना), भास् (चमकना) + दत् = वृन्द, वृन्द + आरक = वृन्दारक । अर्थ है - संघ ।
वृन्दारक और वृन्दारिका का भी यही अर्थ है ।
आधुनिक अर्थ- बहुत महान्, विख्यात्, सर्वोत्तम आनन्ददायक, आकर्षक, सुन्दर, माननीय, वृन्दारक देवता, किसी का प्रधान, सर्वोपरि ।

वृन्दारका - संघ ।

वृन्दारिका - संघ ।

वृश्च - टूटना
'समूलो यश्च वृश्चते'
अ. ६.१३६.३

वृश्चत् वनः - वनों को काट डालने में समर्थ अग्नि या परशु आदि ।
'वृश्चद्वनं कृष्णयायं रुशन्तम्'
ऋ. ६.६.१

वृश्चिक - बिच्छू
'वृश्चिकस्यारसं विषम्'
ऋ. १.१९१.१६
बिच्छू का विष निर्बल है ।

वृषकर्मा- (१) प्रजाओं पर सुखो तथा शत्रुओं पर अस्त्र शस्त्रों की वर्षा करने वाला, (२) जल वर्षा करने वाला इन्द्र ।
'वृत्रं यद् वज्रिन् वृषकर्मन्नुभ्नाः'
ऋ. १.६३.४
(३) धाराएं बरसाने वाला मेघ ।
'स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः
पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः'
ऋ. १.१३०.१०

वृषखादयः- ब.व.। मरुतों, रुद्रों या वीदों का विशेषण । अर्थ । बलवद्धक अन्न जल खाने वाले ।
'अनन्तशुष्मा वृषखादयो नराः'
ऋ. १.६४.१०

वृषगणाः- (१) बलवान् जन, (२) बलवान् प्राणगण ।
'अमादस्तं वृषगणा अथासुः'
ऋ. ९.९७.८; साम. २.४६७.

वृषच्युत- (१) मेघ से गिरा जल, (२) बलवान् सर्वप्रबन्धन वृत्तिदाता पुरुष से प्रेरित ।
'वृषच्युता मदासो गातुमाशत'
ऋ. ९.६९.७

वृषजूति- (१) मेघों को लाने वाला, (२) बैलों को उत्तम रीति से जोतने वाला ।
'वृषजूतिर्हि जज्ञिये'
ऋ. ५.३५.३

वृषण- (१) कामानां वर्षिता, (२) विष्णु के विशेषण के रूप में प्रयोग ।
(३) उत्तम गुणों वाला ।

वृषणत्वच्- (१) बरसाने वाला, समस्त पृथिवी को आच्छाद करने वाला वातावरण, (२) जल छिड़कने वाला चमड़े का मशक, (३) वर्षणशील मेघ
'दस्मोहि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचम्'
ऋ. १.१२९.३
हे इन्द्र, तू ही निश्चय से दर्शनीय, सर्वद्रष्टा, अथवा शत्रुओं का नाशक है (दस्मः हि स्म) जिस प्रकार कई पुरुष चमड़े की बनी मशक

को भरता है और जिस प्रकार वायु सूर्य किरणों से खीचे हुए जल से समस्त पृथिवी को आच्छादन करने वाले शीत मेघ को पूर्ण करता और बरसा देता है ।

वृषणश्व- बलवान् अश्व वाला -रथ
'वृषणश्वेन मरुतो वृषप्सुना'
ऋ. ८.२०.१०
(२) वृषणो वृष्टि हेतवो यानगमयितारो वा अश्वाः यस्य (जिसे वृष्टिदाता यानगमयिता अश्व हो) ।
(३) वेगवान् बलवान् अश्वों का स्वामी, (४) शिल्पविद्या की इच्छा करने वाला ।
'मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो'
ऋ. १.५१.१३

वृषण्यन्ती- काम से प्रेरित युवती ।
'वृषण्यन्तीव कन्यला'
अ. ५.५.३

वृषण्वत् रथ- शस्त्र वर्षण करने में समर्थ रथ या रथारोही महारथी ।
'वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथम्'
ऋ. १.१००.१६
मुख्य मुख्य केन्द्र स्थानों पर (धूर्षु) शस्त्र वर्षण करने में समर्थ बलवान् रथारोही महारथी को (वृषण्वन्तं रथम्) धारण करती हुई (बिभ्रती) सेना ।

वृषणा- द्वि.व । वृषणौ । (१) एक दूसरे को बांधने वाले अखण्डित तपस्वी ब्रह्मचर्य के पालक स्त्री पुरुष ।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयः ।
ऋ. २.१६.५
(२) अश्विद्वय का विशेषण ।
(३) मनोरथ बरसाने वाले अश्विद्वय -सा.
(४) बलवान् ।
राजा और राज पुरुष -दया.
'प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वाम्'
ऋ. १.११७.८
हे मनोरथ बरसाने वाले अश्विद्वय, तुम्हारा वह कृत्य सचमुच प्रशंसनीय है-सा.
हे बलवान् राजा या राजपुरुषो, तुम्हारा वह कृत्य सचमुच प्रशंसनीय है ।-दया.

वृषत्व- काम्यपदार्थ, सुंख, विद्या धन आदि का वर्षण कर्म
'त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा'
ऋ. १.९१.२; मै.सं. ४.१४.१:२१.४७ तै.ब्रा. २.४.३.८; ऐ.आ. १.२.१.८.

वृषदञ्जयः- (१) वृषद् + अञ्जयः । बरसते मेघों से प्रकट होने या मेघों के साथ आने वाले मरुत् । (२) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले, (३) प्रबन्ध कारक विशेष स्वरूप का पोशाक पहनने वाले ।
'प्रति वो वृषदञ्जयः'
ऋ. ८.२०.९

वृषधूत- ज्ञानरूप जल का सेचन करने वाले गुरु द्वारा अज्ञान रहित किया गया ।
'इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः'
ऋ. ३.३६.२; ४३.७; तै.ब्रा. २.४.३.१२.

वृषन्तमः- सब से अधिक जल वर्षण् करने वाला (२) मरुत्वान् इन्द्र ।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैः'
ऋ. १.१००.२
वह अपने सखा रूप प्रकाशों से हो सब से अधिक जल वर्षण करने वाला है ।

वृषनाभिः - सुदृढ़चक्र नाभिवाला
रथेन वृषनाथिना
ऋ. ८.२०.१०

वृषपर्वा- वर्षणशील मेघ के समान शिष्यों को पूर्ण और पालन करने वाला गुरु ।
'ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः'
ऋ. ३.३६.२; तै.ब्रा. २.४.३.१२

वृषप्रभर्मा- (१) इन्द्र, (२) बलवान् प्रबन्धकर्त्ता और शस्त्र वर्षी वीर पुरुषों का भारण पोषण करने वाला, (३) जो वर्षण शील मेघ को नित्य भरण पोषण करता है । सूर्य-दया. ।
वृष प्रभर्मा दानवस्य भामम्
ऋ. ५.३२.४

वृषप्रयावा - (१) बलवान् पुरुषों या अश्वों के साथ भ्रमण करने वाला (२) राष्ट्रपति या सेनापति ।
'हव्या वृसप्रयाव्णे'
ऋ. ८.२०.९

वृषप्सुः- वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट शरीर वाला ।
'महि त्वेषा अमवन्तो वृष प्सवः'
ऋ. ८.२०.७

वृषभः- वृष (सेचनार्थक) + अभच् (ऋषि वृषिभ्यां कित्) =वृषभ । अथवा वृह् (उद् यमन अर्थ में) + अभच् = वृषभ (बाहुलक नियम से ह का ष) । यास्क ने वृह् धातु को वर्षणार्थक माना है ।

अर्थ है- (१) गौ । निरुक्तकार ने कहा है-

'वृषभ प्रजां वर्षति इति वा,
अति वृहति रेत इति वा (तद् वृष कर्मणा । वर्षणात् वृषभः - तस्य एषा भवति ।'

अर्थात् प्रजोत्पत्ति के निमित्त योनि में रेत बरसाता है । या योनि में सिक्त रेत में अपने को बढ़ाता है । इसी से वृष (बरसाता) कर्म से वृषभ हुआ ।

(२) बलवान् पुरुष ।

'उपर्बृहि वृषभाय बाहुम्'
'अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्'

ऋ. १०.१०.१०; अ. १८.१.११; नि. ४.२०

हे सुभगे, तू मेरे सिवा किसी अन्य पति की कामना कर और इसी के लिए अपने बाहु का तकिया बना ।

(३) बरसाने वाला वृष्टिकर्त्ता मेघ, (४) श्रेष्ठ ।

'अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वम्
बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कै '

ऋ. १.१९०.१; नि. ६.२३.

स्वतन्त्र श्रेष्ठ, सुन्दर वाणी वाले वेदज्ञ विद्वान् को अन्नों से पोषण कर ।

स्वतन्त्र बरसाने वाले, सुन्दर जिह्वा का स्तुति वाले बृहस्पति को स्तुतियों से बढ़ा-सा. ।

(४) वैश्वानर अग्नि,

(५) विद्युत् जो वर्षा बरसाती है ।

'प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचम्'

ऋ. १.५९.६; नि. ७.२३.

वर्षा बरसाने वाले वैश्वानर अग्नि या विद्युत् का वर्णन करता हूँ ।

आधुनिक अर्थ - साँढ; कोई पुरुष पशु, सर्वश्रेष्ठ, वृष राशि, हाथी का काठ ।

वृषभरः उत्तम बलयुक्त

'उक्थशुष्मान् वृषभरान् त्स्वप्रसः '

ऋ. १०.६३.३; मै.सं. ४.१२.१: १७७.८

वृषभस्यनीडः- वृष्टि अन्नादि का दाता- सूर्य, (२) सूर्य का परम मूल ।

'आयोयुवानो वृषभस्य नीडे '

ऋ. ४.१.११

वृषभान्न - (१) सुखों को देने वाला अन्न, (२) सुख पूर्वक परमेश्वर का आनन्द रूप अन्न ।

'वृषभान्नाय वृषभाय पातवे '

ऋ. २.१६.५

वृषमणाः- वृषेषु शूरवीरेषु मनः यस्य (जिस का शूरवीरों में मन हो) -दया. (२) शूरवीरों के समान उदार मन वाला

(३) शूरवीरों की व्यवस्था जानने वाला-उनकी वृद्धि में दत्त चित्त ।

'यद्ध शूर वृषमणः पराचैः
वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथापाट् '

ऋ. १.६३.४

वृषव्रातासः - ब.व. । (१) वर्षणशील मेघ के समूहों से युक्त वायुगण (२) शस्त्रास्त्र बरसाने वाले मनुष्य ।

'वृषव्रातासः प्रपृतीरयुग्ध्वम् '

ऋ. १.८५.४

वर्षणशील मेघ के समूहों में युक्त होकर वायु वर्षणशील मेघ मालाओं को (पृषतीः) एकत्र करते है ।

वृषस्तुभ् - सर्व सुखदाता की स्तुति करने वाला ।

'वृषा पर्जन्यो वृषणो वृषस्तुभः ' .

ऋ. १०.६६.६

वृष्ण्य - (१) पुरुषों में होने वाला उत्पादक बल, (२) बल

'विश्वतः सोम वृष्ण्यम् '

ऋ. १.९१.१६; ९.३१.४ वाज.सं. १२.११२, तै.सं. ३.२.५.३; ४.२.७.४; मै. सं. २.७.१४: ९६.६; का.सं. १६.१४; पंच.ब्रा. १.५.८: - श.ब्रा. ७.३.१.४६, कौ.सू. ६८.१०.

पुरुष में होने वाला उत्पादक बल प्राप्त हो ।

'प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज '

ऋ. १.१०२.४; अ. ७.५०.४

वृष्णः अशुः - आदित्य की रश्मि ।

वाचस्पतये पवस्व वृष्णो
अशुभ्यां गभस्तिपूतः '

वाज.सं. ७.१; मै.सं. १.३.४: ३१.७; श.ब्रा. ४.१.१.९.

वृषण्वसू - (१) इन्द्र और बृहस्पति (२) राजा और

सेनापति जो धन ऐश्वर्य का वर्षण करते हैं। (३) बलवानों का वास देने वाले, (४) परमेश्वर और विद्वान् आचार्यों।

'अस्मिन् यज्ञे मन्दसानां वृष्ण्वसू'

ऋ. ४.५०.१०; अ. २०.१३.१, गो.ब्रा. २.४.१६

(५) अश्विद्वय का विशेषण, (६) वीर्य से चक पुरुष और पुरुष को अपने आश्रय पर बसाने वाला स्त्री।

'तच्छ्रवथो वृषण्वसू
अत्रिर्वामा विवासति'

ऋ. ५.७४.१

(७) उत्तम प्रबन्ध से युक्त कल पुर्जों को धारने वाले, (८) वृषण अर्थात् अण्डकोषों से युक्त बलवान् घोड़े।

वृषणा - द्वि.व.। (१) अश्विद्वय या स्त्रीपुरुष का विशेषण (२) बलवान् वीर्य के सेचक स्त्री पुरुष (३) बलवान्

वृषण्वान् - (१) मेघ के समान शस्त्रवर्षी (२) वीरों का स्वामी, (३) बलवान् वीर्यवान्

'प्रतीचश्चिद् योधीयान् वृषण्वान्'

ऋ. १.१७३.५

(४) बलवान प्राणों का स्वामनी, (५) बैल वाला।

'रथो वृषण्वान् मदता मनीषिणः'

ऋ. १.१८२.१

(६) बरसाने वाला, (७) वृष्टिदाता वायु।

'ममत्तु वातो अपां वृषण्वान्'

ऋ. १.१२२.३; तै.सं. २.१.११.१; का.सं. २३.११.

वृषदती - बैल के समान दांतों वाली अर्थात् खाते रहने वाली स्त्री।

'रिश्यदीं वृषदीम्'

अ. १.१८.४

वृषदेश - (१) तीक्ष्ण प्रकृति वाला विडाल (२) वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट दिखाई देने वाला।

'उलो हलिक्ष्णो वृषदंशस्ते धात्रे'

वाज.सं. २४.३१, मै.सं. ३.१४.१२: १७४.११

वृषन्धि - बलवान् पुरुषों को धारण करने वाला चतुर बल

'वृषा वृषन्धि चतुरश्रिमस्यन्'

ऋ. ४.२२.२

वृषपत्नी - (१) सुखों की वर्षा करने वाले जीवात्मा की पत्नी रूप प्राण शक्तियाँ।

'वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे'

ऋ. ८.१५.६; अ. २०.६१.३; साम. २.२३२

वृषपाण - (१) ये वृषन्ति पोषयन्ति ते वृषाः सोमादयः पदर्थाः तेषां पानम् (सोमादि पदार्थों का पान) पोषण करने से सोम वृष कह गया है।

- दया.

(२) बलकारी ऐश्वर्यों, रसों या पदार्थों का पान

'आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि'

ऋ. १.५१.१२

(३) वर्षा का जल ही जिस का पान हो-उद्भिद् का विशेषण-दया. (४) वीर्योत्पादक पान योग्य रस-सोमरस (५) वीर्यवर्धक रस .पान करने वाला।

वृषन्निद्र वृषपाणास इन्दवः
इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदः'

ऋ. १.१३९.६

वृषपाणि - (१) शकट में लगा बैल, (२) बलवान् शस्त्रवर्षी जो हाथों में धनुष लिए हों। (३) मेघवत् वर्ण।

'तीव्रान् घोषान् कृण्वते वृषपाणयः
अश्वा रथेभिः सह वाजयन्त'

ऋ. ६.७५.७; वाज.सं. २९.४४, तै.सं ४.६.६.३, मै.सं. ३.१६.३: १८६.५, का.सं. (अश्व.) ६.१.

वृषमणाः - (१) वृषमना, वीर्य सेचन अर्थात् पुत्रोत्पादन करने में चित्त देने वाला, गृहस्थ बनाने का अभिलाषी, पुत्रैषणावान् (२) बरसाने वाला वायु-पर्जन्य

'सचायदीं वृषमणा अहंयुः'

ऋ. १.१६७.७

वृषमण्यु - (१) सुखपूर्वक परमेश्वर को मानने वाले।

'समानमेकं वृषमण्यवः पृथक्'

ऋ. १.१३१.२; अ. २०.७२.१

वृषमन्यु - (१) सब ऐश्वर्यों का वर्षक मानता हुआ, (३) महावृषण के समान क्रोध से प्रतिस्पर्धा शील वीर पुरुष

वृषरथ - (१) बैलगाड़ी, (२) बलवान् अश्वों से युक्त रथ, (३) वर्षणकारी मेघों में गमन करने वाला मरुत् (४) मेघ रूप रथ वाला मरुत् (४)

आनन्दवर्धक मेघ में रमण करने वाला-इन्द्र । आचार्य विद्वान् ।

'ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः'

ऋ. १.१७७.२

वृषरश्मि – (१) प्रबन्ध करने में समर्थ रश्मियों या नगरों वाला उत्तम प्रबन्धक (२) नियम मर्यादाओं से सम्पन्न (३) बलवान् शस्त्रास्त्र वर्षण कुशल रथ आदि सैन्यों का स्वामी ।

'वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः'

ऋ. ६.४४.१९

वृषलः – (१) मूढ़, (२) अधार्मिक, (३) शूद्र ।

'सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद'

ऋ. १०.३४.११

(४) वृष + अशील = वृषल । जो धार्मिक स्वभाव का न होकर कामी हो, (५) बैल के स्वभाव का नीच या कामी पुरुष । मनु का निर्वचन इस प्रकार है –

वृषो हि भगवान् धर्मः
तस्य यः कुरुते ह्यलम्
वृषलं तं विदुर्देवाः
तस्माद् धर्मं त लोपयेत् ।

धर्मच्युत ही वृषल है ।

वृषव्रत – प्रबन्ध के योग्य व्रत में नियुक्त पुरुष

'एष वृषा वृषव्रतः'

ऋ. ९.६२.११

वृषशिप्र – (१) बरसने मेघ के स्वरूप वाला जलप्रद मेघ, (२) बलवान् प्रमुख नेता वाला ।

'दासस्यचिद् वृषशिप्रस्य मायाः'

वृषसवः – (१) बलवान् प्राणों द्वारा उत्पन्न

'प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन्'

ऋ. १०.४२.८; अ. २०.८९.८

(२) बलवान् पुरुषों और अश्वों का संचालक ।

वृषसेनः – बलवान् हृष्ट पुष्ट सेना से युक्त ।

'वृषसेनोऽसि राष्ट्रदाः'

वाज.सं. १०.२; श.ब्रा. ५.३.४.६

वृष्णः अश्वस्यरेतः – सर्वव्यापक सूर्य के समान सब उत्पादक भूमियों के भोक्ता परमेश्वर का उत्पादक वीर्य जिससे सब कुछ उत्पन्न होता है-सर्वोत्पादक सर्व सर्व प्रेरक सूर्य ।

(२) अन्नादि ओषधि वर्ग उस सूर्य का सार रूप है ।

अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः

ऋ. १.१६४.३५; अ. ९.१०.१४; वाज.सं. २३.६२, ला.श्रौ.सू. ९.१०.१४

वृष्ण्य – (१) बल ।

'सं पुंसामिन्द्र वृष्ण्यम्'

अ. ४.४.४.

(२) बलवान् ।

'महां असि महिष वृष्ण्येभिः'

ऋ. ३.४६.२

वृषा – (१) वीर्य सेचन में समर्थ ओषधि विशेष-वृषमेधा, मुस्ता (मोथा) ऋषभ, एन्द्री, दधिमुखी, वासा, मूसाकानी या आखुपर्णी, धान्या माष, विदारिका, बालिका और आमलकी आदि ओषधियां वृषा के वर्ग में ली गई है । ये वीर्यवर्धक हैं ।

'वृषा शुष्मेण वाजिना'

अ. ४.४.२

वृषाकपायी – वृषाकपि + ङीष् = वृषाकपायी । निगम कहता है – 'सविता सूर्यं प्रायच्छत् सोमाय राज्ञे प्रजापतये वा' – ऐसा ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है ।

(१) सविता ने चन्द्रमा को अपनी ज्योति दी सूर्यास्त के बाद आदित्य ही वृषाकपि कहे जाते हैं और इनकी ज्योति जो चन्द्रमा की ज्योत्स्ना है वृषाकपायी है, (२) आदित्य उषा को प्रजापति के लिए देता है । (३) उदयकालीन आदित्य की प्रभा सूर्या है ।

आधुनिक अर्थ – लक्ष्मी, गौरी, शची, अग्नि की स्त्री स्वाहा, उषा, सूर्य की स्त्री सूर्या ।

(३) आनन्द रस के वर्षण से हृदय को रोमाञ्चित करने वाले साधक पुरुष की जननी-सत्व भूमि प्रकृति ।

'वृषाकपायि रेवति'

ऋ. १०.८६.१३; अ. २०.१२६.१३; नि. १२.९

वृषाकपि – (१) वृष्टि करने वाला या जगत् को संचालन करने वाला ।

'यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा'

ऋ. १०.८६.१; अ. २०.१२६.१; शां.श्रौ.सू. १२.१३.२; वै.सू. ३२.१७, नि. १३.४.

(२) आदित्य,

'पुनरेहि वृषाकपे'

ऋ. १०.८६.२१; अ. २०.१२६.२१; नि. १२.२८
हे आदित्य, तू पु आः अर्थात् उदय ले ।
(३) वृष् (बरसाना) + कप् (गमनार्थक) + इन् = वृषाकपि । यह द्विधातुज शब्द पृषोदरादिवत् सिद्ध है । अर्थ है -इन्द्र । आदित्य का ही वाचक इन्द्र या वृषाकपि शब्द हुआ । अस्त होता हुआ आदित्य वृषाकपि है ।
'यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन'
ऋ. १०.८६.२२; अ. २०.१२६.२२; नि. १३.३.
हे भगवन् वृषाकपे, इन्द्र, आदित्य, जब तू उत्तर से प्रदक्षिणा करता हुआ अस्त हो जाता है ।
(४) एक वैदिक ऋषि, (५) इन्द्र का मित्र ।
'नाहमिन्द्राणि रारण
सख्युर्वृषाकपेर्ऋते'
ऋ. १०.८६.१२; अ. २०.१२६.१२; तै.सं. १.७.१३.२, का.सं. ८.१७; नि. ११.३९
(६) धर्मश्रेष्ठ । महाभारत में भी लिखा है-
'कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च
धर्मञ्च वृष उच्यते ।
तस्मात् वृषाकपिं प्राह
काश्यपो मां प्रजापति ।
अथ यत् रश्मिभिः अभिप्रकम्पयन् एति तत् वृषाकपिः भवति (अर्थात् आदित्य ही जब अपनी रश्मियों को उप संहत कर लोगों को कंपाते हुए अस्त होते हैं तब तुषार गिरता है - अतः वे वृषाकपि कहे गए हैं) ।
सायण ने 'वर्षकत्वात् अभीष्ट देशगमतात् च वृषाकपिः' ऐसा कहा है ।
पुनरेति वृषाकपे
सुविता कल्पया वहे
य एष स्वप्नंशनः
अस्तमेषि यथा पुनः
विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः
ऋ.१०.८६.२१
हे वृषाकपि, जो यह उदय लेकर सभी की निद्रा होने वाला आदित्य है वह तू ही फिर कृप्त मार्ग से अस्त होता है जो तू सम्पूर्ण जगत् का स्वामी और सब से बढ़ चढ कर है वह तू पुनः उदय ले जिससे हम प्रवृत्त शुभकर्म को तेरं हेतु करें ।
आधुनिक अर्थ , सूर्य विष्णु, इन्द्र, आदित्य ।
(७) प्राणों के ऊपर सुखों का वर्षण करने वाला तथा उनमें कम्पन या स्पन्द रूप से स्फूर्ति उत्पन्न करने वाला आत्मा, (८) प्राण, (९) जीव, (१०) सेनापति ।

वृषाक्ष, वृषाक्षु - (१) बलवान् इन्द्रियों वाला (२) भूमि को घेर कर व्यापने वाला वृक्ष ।
'त्वं वृषाक्षुं मघवन्'
अ. २०.१२.१३; शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.१

वृषायुध - बलवान् से लड़ने वाला
'वृषायुधो न वध्नयो निरष्टाः'
ऋ. १.३३.६
जैसे बलवान् से लड़ने वाले नपुंसक बलहीन पुरुष (वध्नयः) परास्त हो जाते हैं (निरष्टाः) ।

वृषाहरिणः - नर हरिण ।
'अनु त्वा हरिणो वृषा'
अ. ३.७.२

वृष्णाः - वृष्टि के कारण स्वरूप सूर्य की किरणें
'या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे'
ऋ. १.८४.१०; अ. २०.१०९.१; साम. १.४०९; मै.सं. ४.१४.१४: २३८.६
सूर्य के साथ ही रहने वाली (रायावरीः) एवं वृष्टि के कारणभूत (वृष्णा) सूर्य की किरणें सूर्य की शोभा के लिए (शोभसे) प्रकाशित होती हैं ।

वृष्ण्यावत् - वर्षा कर्म वाला मेघ ।
'उतानागा ईषते वृष्ण्यावतः'
ऋ. ५.८३.२; नि. १०.११
मेघ से अनपराधी भी भागते हैं ।

वृष्ण्यावान् - (१) समस्त बलवीर्यों से युक्त ।
'यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्'
ऋ. ६.२२.१, अ. २०.३६.१
(२) वीर्य संचय में समर्थ पुरुष
'वृषासि वृष्ण्यावान्'
अ. ५.२५.८; कौ.सू. ४०.१४

वृष्टि - वृष् + क्तिन् = वृष्टि । (१) जल पटाने वाला कृषक ।
'यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम'
ऋ. ५.८५.३; नि. १०.४
जैसे बरसने वाला (वृष्टिः) यव बोने के लिए भूमि को (यवं भूत न) तरह तरह से पटाता है (व्युनत्ति) ।
'आविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम्'

ऋ. १.११६.१२
जैसे घोर शब्द कारी विद्युत् वृष्टि को प्रकट करती है ।

वृष्टिद्यावा – (१) जलवृष्टि और दीप्ति से युक्त वायु और विद्युत् ।
'वृष्टिद्यावा रीत्याणा'
ऋ. ५.६८.५

वृष्टिवनिः – (१) सुखप्रद ऐश्वर्य विभूति, (२) जल वृष्टि का अंश
'देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणः'
ऋ. १०.९८.६; नि. २.१२.
(३) वृष्टि प्रदान करने वाला
'स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये'
वाज.सं. ३८.६; श.ब्रा. १४.२.१.२१
(४) वृष्टि + वन (याचना) इन् (छन्दसि वन सन रक्षिमयाम) = वृष्टिवनिः । अर्थ है – वृष्टि का याचक (६) वृष्टि का इच्छुक ।
यद्देवपिः शन्तनवे पुरोहितः
होत्राय वृतः .कृपयन्नदीधेत्
ऋ. १०.९८.७, नि. २.१२

वृष्टिहव्य – (१) हव्य या अन्नादि ग्राह्य पदार्थों की वृष्टि करने वाला प्रभु, (२) ऋषि रूप स्तुत वृष्टि हव्य ऋषि
'इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य पुत्राः'
ऋ. १०.११५.९

वृद्धन्ता – स्वयं बढ़ने और दूसरों को बढ़ाने वाले स्त्री पुरुष, मातापिता, अध्यापक उपदेशक, अश्विद्वय

वेट् – (१) मान सत्कार, (२) उच्च आसन अधिष्ठात् पद, (३) उच्च पद का अधिकार ।
'नृषदे वेट्'
वाज.सं. १७.१२; तै.सं. ४.६.१.३,५.४.५.१, मै.सं. २.१०.१: १३२.३; का.सं. १७.१७; २१.७; श.ब्रा. ९.२.१.८,९; आप.श्रौ.सू. १७.१३.६.

व्येती – (१) विशेष रूप से श्वेत प्रकाशवाली उषा, (२) हरिणी के समान विशेष रूप से उत्तम चक्षु वाली स्त्री ।
'एषा व्येनी भवति द्विबर्हाः'
ऋ. ५.८०.४

वेणु – वीणा नामक वादन यन्त्र ।
'शतं वेणूञ्शतं शुनः
ऋ. ८.५५.३

वेतस – वयति तन्तून् सन्तनोति इति ।
वेतसः प्रजननाङ्गम्'
– दया. ।
'उप ज्मनुप वेतसेऽव तर नदीष्वा'
वाज.सं. १७.६; तै.सं. ४.५.१.१; मै.सं. २.१०.१: १३१.९; का.सं. १७.१७; श.ब्रा.९.१.२.२७

वेतसुः – (१) वेतस दण्ड के समान उद्धत ।
'अहं पितेव वेतसूं रभिष्टये'
ऋ. १०.४९.४
(२) राज्य को वश में करने के लिए शासन दण्ड
'स वेतसुं दशमायं दशोणिम्'
ऋ. ६.२०.८
(३) वेदकालीन एक देश

वेत्तवे – प्राप्त करने के लिए
'प्रतिकामाय वेत्तवे'
अ. २.३६.७

वेति – गच्छति (जाता है) । 'वी' धातु गत्यर्थक है ।

वेपी – क्रिया शक्ति से युक्त ।
'इन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नूगीः'
ऋ. ६.२२.५; अ. २०.३६.५

वेद – (१) धन
तेषां नो वेद आ भर
ऋ. १.८१.९; अ. २०.३६.६
(२) वेद, (३) पुरुष, (४) दर्भमुष्टि ।
वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्ति
अ. ७.२८.१
(५) विद् (प्राप्त करना, जानना) + अच् = वेद
वेदेन वै देवाः असुराणां वित्तं वेद्यमविन्दन्त । तद् वेदस्य वेदत्वम् (वेद से देवों ने असुरों का प्राप्य धन प्राप्त किया है अतः यह वेद है) । अर्थ – ज्ञान, धन । (६) वेदिदेवोभ्यो विलायत
तां वेदेनान्वविन्दन्
वेदनेवेदिं विविदुः पृथिवीम्'
का.सं. ३१.१४; तै.ब्रा. ३.३.९.१०; आप.श्रौ.सू. २.१.३; मा.श्रौ.सू. १.२.४.५.
(देवों से वेदि छिप गई । उसे वेद से प्राप्त किया) ।
(७) आयुरस्मिन् विद्यतेऽनने वा आयुर्विन्दति

इत्यायुवेदः सुश्रुत सू. १.१४
(८) आयुर्वेदयति इति आयुर्वेदः चरक ३०.२०
(९) विदन्ति जानन्ति, विद्यन्ते भवन्ति, विचारयन्ति सर्वे मनुष्या सर्वाः सत्यविद्याः यै र्येषु वा ते वेदाः -दया.
विद् धातु ज्ञान, सत्ता, लाभ, विचारण आदि धातुओं से कारण और अधिकरण अर्थ में अच् प्रत्यय कर वेद सिद्ध किया गया है ।
(१०) विद् (जानना) धातु के लट् प्र.पु. ए.व. में रूप । अर्थ-जानता है ।
'य ईं चकार न सो अस्य वेद'
ऋ. १.१६४.३२; अ. ९.१०.१०; नि. २.८
जो यह गर्भ करता है वह इसका तत्व नहीं जानता (न सो अस्य वेद) ।

वेदन - (१) धन ।
'यस्या गृधद्वेदने वाज्यक्षः'
ऋ. १०.३४.४

वेदन्त - दुःख ।
'शत्रूयतामधरा वेदनाकः'
ऋ. १.३३.१५
शत्रुवत् आचरण करने वालों को निकृष्ट कोटि की वेदना है ।

वेदयाता - वेदमय ज्ञानों को भी उत्पन्न करने वाली परमेश्वरी शक्ति
स्तुतामया वरदा वेदमाता
अ. १९.७१.१

वेदस् - विद्या आदि धन ।
'पूषा नो यथा वेदस्तमसद् वृधे'
ऋ. १.८९.५; वाज.सं. २५.१८
वह सब पोषक पूषा हमारे धनों और ऐश्वर्यों की वृद्धि के लिए हो (वेदसां वृधे असत्) ।

वेदसस्परि - ज्ञान और धन प्राप्ति के काल तक ।
'विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि'
ऋ. २.१७.६

वेद्य - वेद एव वेद्याः । स्वार्थे यत् । विदन्ति वा येभ्यः अन्येजनाः वेद यन्ति वा अन्यान् ते वेदाः त एव वेद्याः । वेद्यम् एषामस्ति इति वा ।
अर्थ - (१) विद्वान् (२) वेदसम्बन्धी
अहस्ता यद् अपदी वर्धतक्षाः
'शचीभिर्वेद्यानाम्
ऋ. १०.२२.१४
(३) ज्ञान को धारण करने और कराने में उत्तम ।
'प्र वेधसे कवये वेद्याय'
ऋ. ५.१५.१
(४) ज्ञान करने योग्य परमेश्वर
'श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय'
अ. १९.३.४.

वेद्या - विद् (सत्ता अर्थ में) + यत् + टाप् = वेद्या ।
(१) जिस वाणी से हाँ हाँ के द्वारा अस्तित्व को कहा जाता है, (२) खुशामदी बात, चापलूसी ।
'न वन्दनाः शविष्ठ वेद्याभिः'
ऋ. ७.२१.५
(३) अनुकूलता से ज्ञातव्य या सहज प्रवृत्ति
'वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः'
ऋ. ६.९.१०; नि. २.२१.
दिन और रात, द्यौ और पृथिवी (रजसी) के प्रति अपनी अपनी प्रवृत्तियों से घूमते रहते हैं ।

वेदिः - (१) सब पदार्थों को प्राप्त कराने वाली देवी ।
'स्वर्यद् वेदिं सुदृशीकमर्कैः'
ऋ. ४.१६.४; अ. २०.७७.४
(२) यज्ञ की वेदि
'स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम्'
ऋ. २.३.४
(३) सब सुखों को प्राप्त कराने वाली विदुषी स्त्री या भूमि ।
'अव वेदिं होत्राभिर्यजेत्'
ऋ. ७.६०.९
(४) विद् (प्राप्त करना) सन्तान प्राप्त करने का साधन रूप स्त्री ।
'योषा वै वेदिः वृषा अग्नि'
श. १.२.५.१२
'परिस्तृणीहि परिधेहि वेदिम्'
अ. ७.९९.१
(४) ज्ञानमय और सबको प्राप्त करने वाली, (६) सत्ता स्वरूप प्रभु शक्ति, (७) परमेश्वरी शक्ति
'इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्याः'
ऋ. १.१६४.३५; अ. ९.१०.१४ वाज.सं. २३.६२; श.ब्रा. १३.५.२.२१. आश्व.श्रौ.सू. १०.९.३; ला.श्रौ.सू. ९.१०.१४.

वेदिषद् - (१) वेदि या भूमि रूप वेदी में प्रतिष्ठित।
'होता वेदिषदतिथिर्दुरोणषद्'
ऋ. ४.४०.५; वाज.सं. १०.२४, १२.१४; वाज.सं. (का.) ११.७.४; १३.१.१५; तै.सं. १.८.१५.२, ४.२.१.५, मै.सं २.६.१२: ७१.१४; का.सं. १५.८; १६.८; ऐ.ब्रा. ४.२०.५; श.ब्रा. ५.४.३.२२; ६.७ .३.११; तै.आ. १०.१०.२; नि. १४.२९
(२) सर्वव्यापक ईश्वर।
'इदा हि ते वेविषतः पुराजाः'
ऋ. ६.२१.५
(३) यज्ञ भूमि में विद्यमान्।
'अपहता असुरा रक्षासिं वेदिषदः'
वाज.सं. २.२९
(४) वेदी में स्थिर होने वाला अग्नि (५) सब पदार्थों का लाभ कराने वाली पृथ्वी पर राजा रूप से विराजने वाला।
'वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते'
ऋ. १.१४०.१; कौ.ब्रा. २५.९

वेदिष्ठः- (१) सबसे अधिक दयालु (२) वेदनावान् (३) सबसे बढ़कर दाता
'यो वेदिष्ठो अव्यथिषु'
ऋ. ८.२.२४

वेदीयान् - (१) प्राप्त करता हुआ।
'गौराद् वेदीयां अपवानमिन्द्रः'
ऋ. ७.९८.१; अ. २०.८७.१
(२) ज्ञानवान् तेजस्वी, (३) ऐश्वर्यवन्, (४) बलशाली।

वेदुमय - ज्ञानमय पुरुष।
'इरावेदुमयं दत'
अ. २०.१३०.१६

वेधस् - विश्व का विधाता इन्द्र परमेश्वर।
'अषाढ़ाय सहमानाय वेधसे'
ऋ. २.२१.२; ७.४६.१; तै.ब्रा. २.८.६.८; ३.१.२.२; नि. १०.६.

वेधसः - ब.व.। (१) कर्ता, कर्मयोगी (२) मेधावी, (३) विद्वान् पुरुष।
'सप्तिं मृजन्ति वेधसः'
ऋ. ९.२९.२; साम., २.१११६
(४) देह का कार्य करने वाले इन्द्रियगण, (५) गृहकार्य सम्पादन करने वाले भृत्य गण, (६) यज्ञ कार्य करने वाले ऋत्विक् गण।
'दस्रा मदन्ति वेधसः'
अ. ७.७३.२

वेधस्तमः - (१) सबसे अधिक बुद्धिमान् एवं कर्म करने तथा विधान् या निर्माण कार्य में कुशल, (२) अग्नि।
'अग्नि र्वेधस्तम ऋषिः'
ऋ. ६.१४.२
'अग्ने वेधस्तम प्रियम्'
ऋ. १.७५.२

वेदसा - द्विं.व.। विद्वान् स्त्री पुरुष, अश्विद्वय।
'असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीः'
ऋ. १.१८१.७

वेधाः, वेधस् - विध् + असुन् = वेधस्। अर्थ- (१) विधान कर्ता, (२) सृष्टि कर्ता, रुद्र का विशेषण
(३) वृष्टि के विधाता। मरुद्गण (४) बींधने वाले दया.-सा.
'अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं
मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः'
ऋ. ५.५४.६
हे वृष्टि के विधाता मरुतो, (वेधसः मरुतः) आप लोगों का गणनाबल (शर्धः) शोभता है (अभ्राजि) जिससे (यत्) जल युक्त मेघ को (अर्णस वृक्षम्) निरुदक करते हो (मोषथा) -सा.
हे विद्वान् मनुष्यो, (मरुतः) तुम्हारा उत्साह (शर्धः) प्रदीप्त होता है (अभ्राजि) जो कि तुम (यत्) जैसे बींधने वाले छोटे छोटे कृमि (वेधसः कपनाः) वृक्ष को धीरे धीरे हर लेते हैं (वृक्षम् इव) एवं शब्द-सागर वेद को (अर्णरुम्) धीरे धीरे ग्रहण कर लेते हो (मोषथा)- दया.।
आधुनिक अर्थ - विधाता, सृष्टिकर्ता, ब्रह्मा, दक्ष प्रजापति विष्णु, शिव, सूर्य, अर्क नामक पौधा, विद्वान्।

वेनः - (१) ज्ञानी, विचारवान्।
'समुद्रा दूर्मिमुदियर्ति वेन'
ऋ. १०.१२३.२; ऐ.ब्रा. १.२२.८; आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४
(२) तेजस्वी, (३) रक्षक।
'अभि वेना अनूषत'

ऋ. ९.६४.२१
(३) कान्त्यर्थक वेन धातु से 'थ' प्रत्यय कर सिद्ध ।
अर्थ-विद्युत्
(४) कान्त मध्यम स्थानीय देव
'अथं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भाः'
ऋ. १०.१२३.१; वाज.सं. ७.१६; तै.सं. १.४.८.१; मै.सं. १.३.१०: ३४.१; का.सं. ४.३; ऐ.ब्रा. १.२०.२: ३.३०.३; कौ.ब्रा. ८.५; शं.ब्रा. ४.२.१.८; आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३; ५.१८.५; नि. १०.३९
यह वेन नामक कान्त मध्यमस्थानी देव (अयं वेनः) आदित्य कीं रश्मियों से रहने वाले जलों को (पृश्निगर्भा) पृथ्वी की और प्रेरित करता है (चोदयत्) ।
(४) समान वायु । यह नाभिस्थान में रहता है और अन्नरस का परिपाक करता है । समान वायु पाचन करने के कारण प्रिय है अतः यह वेन है ।
(५) प्रिय, (६) विद्वान् मेधावी ज्ञानवान् के अर्थ में -
'वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सत्'
वाज.सं. ३२.८
(७) (धा.) । कमना करना । (८) बजना
'हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा'
ऋ. १०.१२३.६; अ. १८.३.६६; साम १.३२०; २.११९६, तै.ब्रा. २.५.८.५; तै.आ. ६.३.१.
नाना कामना करने वाला ।

वेनत् - नाना कामना करने वाला ।
विदा कामस्य वेनतः'
ऋ. १.८६.८; साम. २.९४४

वेनम् - कामना करता हुआ ।

वेनन्ता - द्वि.व. । 'वेनृ' धातु बजाना अर्थ में है । वादित्रवादकौ (बाजा बजाने वाले) । (२) कामा करते हुए ।
तदित् समानमाशाते
वेनन्ता न प्र युच्छतः
धृतव्रताय दाशुषे ।
ऋ. १.२५.६
समस्त व्रतों नियमों की बागडोर को धारण करने वाले दानशील स्वामी को प्रसन्न करने के लिए उसकी अभिलाषा के अनुसार गान वाद्य को समान रूप से प्रयोग करते हैं और प्रमाद नहीं करते ।

वेन्य - (१) सबसे चाहने योग्य ।
'इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनः'
ऋ. २.१४.१०
(२) काम करने वाला ।
'उत स्तवसे वेन्यस्यार्कै'
ऋ. १०.१४८.५

व्येनसा - वि + एनसा । द्वि न. ।
अपराधों से रहित शुद्ध चरित्र वाले वर वधू ।
'मादुष्कृतौ व्येनसा
अघ्न्यौ शूनमातरम्'
ऋ. ३.३३.१३

वेना - (१) वेगवती गति, (२) क्रान्ति, (३) कामना । (४) कामनाशील ब्रह्मचारिणी कन्या ।
'गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा'
ऋ. १.५६.२
जैसे कामनाशील ब्रह्मचारिणी स्त्रियां (वेना) विवाह के समय बड़े साहस से (तेजसा) शिला खण्ड पर पैर रख देती हैं (गिरिम् अधरोह) ।

वेनी - चाहती हुई ।
'तस्य वेनीरनुव्रतम्'
ऋ. ८.४१.३

वेपते - वेप (कांपना) के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ है-कांपता हूँ या कांपे ।
'असुरो वेपते मती'
असुर यज्ञ कर्म में प्रकम्पित हृदय में होकर रहे-सा.
अथवा,
बुद्धिमान् गृहस्थ (असुरः) मनन द्वारा (मती) पापादिकों से कांपें (वेपते) । - ज.दे.श ।

वेपथुः - संचलन ।
'महान्वेग एजथुर्वेपथुष्टे'
अ. १२.१.१८

वेपस् - गति , वेग,
'न वेपसा तन्यता
इन्द्रं वृत्रो वि षीभयत्'
ऋ. १.८०.१२
न वेग और न गर्जन से ही वृत्र या मेघ इन्द्र या विद्युत को डरा सकता है ।

वेपिष्ठ - (१) कम्पनशील, (२) सबसे उत्तम वेदमन्त्र उपदेशादि का उच्चारण करता हुआ, (३) शत्रुओं को कंपा देने वाला ।
'वेपिष्ठो अंगिरसां यद्ध विप्रः
मधु च्छन्दो भनति रेभ इष्टौ'
ऋ. ६.११.३

वेपी -सत्कर्म सहित और भक्तिभाव से कांपती हुई
'इन्द्र वेपी वक्वरी यस्य नू गीः'
ऋ. ६.२२.५; अ. २०.३६.५

वेय - (१) तसर के साथ मिलाकर बुनने वाला पदार्थ, (२) पुत्र

वेविजानः - (१) कंपाता हुआ, (२) उद्विग्न होता हुआ ।
'भरद् यदि विरतो वेविजानः'
ऋ. ४.२६.५
(३) सर्वत्र व्यापता हुआ
'स मध्व आयुवते वेविजान इत्'
ऋ. ९.७७.२

वेविदानः - (१) निरन्तर ज्ञान-सम्पादन करने वाला ।
(२) प्राप्त करता हुआ
'ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः'
ऋ. ३.५४.४

वेविषाणाः - विश् धातु से सम्पन्न । (१) विलीन प्राय जाल का विशेषण, -सा. (२) फैले हुए-'तृत्सवः' का विशेषण -ज.दे.श. ।
इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणाः
आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः ।
ऋ. ७.१८.१५; नि. ७.२.
ये मेघ या असुर इन्द्र से विदीर्ण या छिन्न भिन्न होकर (इन्द्रेण तृत्सवः) या युद्ध के लिए संगत होकर भी जल के सदृश के लिए संगत होकर भी जल के सदृश विलीन प्राय हो नीचे होकर चलने लगे ।
(वेविषाणाः आपो न नीचीः अध वन्त) -सा. ये सारे राष्ट्र में फैले हुए दुष्ट हिंसक क्षत्रिय (ऐते वेविषाणाः तृत्सवः) राजा के साथ मिलकर (इन्द्रेण) जो राजद्रोही हैं उन्हें (दुर्मित्रासः) फेंके हुए जल की तरह (सृष्टा आपः न) नीचे पहुंचा दे (नीचीः अधवन्त) ।

वेश - (१) पड़ोसी ।
'मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः'
ऋ. ४.३.१३.
(२) सबके प्रवेश योग्य सभा स्थान, गृह या राष्ट्र में आने वाला वैश्य वर्ग या निकट वर्ती पड़ोसी ।
'वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा'
ऋ. ५.८५.७
(३) प्रवेश करने वाला
(५) अन्तः प्रविष्ट आत्मा
'अहं वेशं नम्रमापवेऽकरम्'
ऋ. १०.४९.५

वेशन्ता - बावड़ी, तालाब ।
'अप्रपाणा च वेशन्ता'
अ. २०.१२८.८, शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.३.

वेशन्ती - जल से भरा तालाब ।
'वर्त्रं वेशन्त्या इव'
अ. १.३.७

वेश्य - विश् + मनिन् = वेश्मं । अर्थ है - गृह
'भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्यं
ऋ. १०.१०७.१० नि. ७.३
दाता के लिए ही पुष्करिणी के सदृश गृह मिलता है ।
(२) वेश अर्थात् उत्तम पद पर या देह में प्रविष्ट।
'शततमं वेश्यं सर्वताता'
ऋ. ४.२६.३

वेश्यः - (१) कीटों के प्रवेश करने का स्थान ।
'हतासो अस्य वेशसः'
अ. २.३५.५; ५.३२.१२.
(२) सेवक, (३) अन्तंरग पुरुष, (४) भीतरी आश्रय स्थान (५) मुख्य जीव

वेश्या - भीतर दुर्ग आदि में भी प्रवेश करने वाली सूची व्यूह आदि के आकार की तीक्ष्ण सेना ।
'अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चपिण्डः'
ऋ. ७.१८.१७

व्रेशिः - आवृत स्थानपर शमन करने वाली प्रजा ।
'व्रेशीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि ।
वाज.सं. ८.४८, श.ब्रा. ११.५.९.८,

वेषण - सेवन, प्राप्ति ।
'अव स्म यस्य वेषणे
स्वेदं पथिषु जुह्वति'
ऋ. ५.७.५

वेषत् - (१) व्याप्त करता या होता हुआ वायु, (२) सर्वत्र सुख सौभाग्य द्वारा व्याप्त ।
प्रेवद् वेषद् वातो न सूरिः
ऋ. १.१८०.६

वेषन्ती - (१) हृदय में व्यापने वाली पत्नी (२) राष्ट्र भर में फैली हुई प्रजा (३) व्यापक सत्य वाली वेदवाणी ।
'एवैरन्यस्य पीपयंत वाजैः
वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः '
ऋ. १.१८१.६

वेष्य - व्यापक शक्ति ।
'विष्णोर्वेष्योऽसि '
वाज.सं. १.३०, श.ब्रा. १.३.१.१७

वेसर - (१) अहः, दिनम् । (२) सूत कातने का एक यन्त्र, (२) आधुनिक खच्चर, (४) दुराग्रही वेद में वासः शब्द 'तमः' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

वेहत् - (१) जिस गौ को बच्चा नहीं होता है वह वेहत् है, वन्ध्या गौ
वेहतं मा मन्यमानः
अ. १२.४.३७
(२) विशेष रूप से या विशेष विशेष साधनों से शत्रुओं का नाशक पुरुष ।
'इन्द्राय स्वपस्याय वेहत् '
वाज.सं. २४.१; मै.सं. ३.१३.१२:१६८.१३
(३) दुष्टों के षड्यन्त्रों को भी गर्भ में ही विविध उपायों से नाश करने वाली राजा की नीति ।
'वशा वेहद् वयो दधुः '
वाज.सं. २१.२१; मै.सं. ३.११.११: १५९.१९ ; का.सं. ३८.१०, तै. ब्रा. २.६.१८.४
(४) गर्भघातिनी गौ
ऋषभश्च मे वेहच्च मे '
वाज.सं. १८.२७, तै.सं. ४.७.१०.१; का.सं. १८.१२.

वैकङ्कत - (१) वज्र, (२) विराट् यज्ञ, (३) प्राण, प्रजापति यां प्रथमाहुतिमुज्जुहोत् स हुत्वा यत्र न्यमृष्ट ततो विकङ्कतः समभवत् ।
वज्रो वै विकङ्कतः '
श.ब्रा.

वैकर्ण - (१) विविध कानों वाला, (२) राज सभा के दो पक्ष वैकर्ण से कहे जाते हैं । (३) विविध कर्णों में हुआ-दया.
'वैकर्ण्ययोर्जनान् राजान्यस्तः .
ऋ. ७.१८.११

वैकुण्ठ - (१) परमात्मा का परम पद (२) ऋग्वेद दशम मण्डल के ४२ वें सूक्त का ऋषि । परमात्मा उस परम पद में कुण्ठित गति से विगत होता है । उस विकुण्ठ नामक परम पदों में स्थित होने से परमात्मा वैकुण्ठ कहलाता है ।

वैखानस - (१) 'विखननात् वैखानसः' । व्युदुह्य अग्नि तस्मिन् अग्निस्थाने यः उत्पन्नः स विखननात् वैखानसः अभूत्, (अग्नि को विखनन कर उस स्थान में उत्पन्न होने से वैखानस हुए । जैसे भरण से भारद्वाज) (२) विखनसं तपसा प्राप्नोति इति वैखानसः वाणप्रस्थः ।
यह कल्पद्रुम का निर्वचन है । (३) स्वा. दयानन्द ने विखनस् का अर्थ ब्रह्म किया है, क्योंकि ब्रह्म हिरण्मय पात्र से ढंके रहने के कारण विशेष प्रयत्न से खोजा जाता है ।

वैतरणः - विशेष रूप से पार उतारने वाला ।
'स द्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा '
ऋ. १०.६१.१७

वैतस - (१) बंत की सी वृत्ति, (२) प्रबल के सामने विनय से झुकने और दुर्बल को देखकर सिर उठा देने वाला नायक
'दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन '
ऋ. १०.९५.४
(३) न नाश होने वाला ज्ञानमय प्रकाश
(४) वेतसो वितस्तं भवति अर्थात्, वेतस वितस्त या विततन या वितस्तिमित होता है । अर्थ है-पुरुष लिंग, शिश्नदण्ड । लिंग स्त्री के अनुस्मरण के पूर्व उपक्षीणतर रहता है । वितस्त से ही वैतस बना है ।
त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेन
उत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि
पुरूरवोऽनु ते केतमायं
राजा मे वीर तन्वस्तदासीः '
ऋ. १०.९५.५
पुरूरवा के यह कहने पर कि - जामत, ठहर-उर्वशी ने कहा- हे पुरूरवा, तू ने तीन

रात, या सायण के अनुसार तीन बार मुझे शिश्नदण्ड से ताड़ित किया (पुरूरव त्रिः स्म माह्नः वैतसेन श्नथयः) और मेरे मन में जो कुछ लालसा थी वह सब तू ने सपत्नियों के साथ पूरा किया है (उतस्म मे अव्यत्यै पृणासि)। अतः मैं तेरी हूँ और तेरे घर पर (केतम्) चित्त से अनकूल हो अनुगमन किया (अनुआयम्)। तथा, हे वीर, उस समय तू (वीर तदा) मेरे शरीर का राजा बना रहा (मे तन्वः राजा आसीः) पर अब तू वैसा अनुरक्त नहीं है इसी से मैं जा रही हूँ।

वैतहव्य – (१) दान योग्य पदार्थों का स्वंय भोक्ता, (२) असुर
वैतहव्याः पराभवन् ।
अ. ५.१८.१०, १९.१

वैदथिन – (१) संग्राम, (२) धन तथा ज्ञान को प्राप्त करने वाला
'अरन्धयो वैदथिनाय पिप्नुम्'
ऋ. ५.२९.११
(२) यज्ञवान्, (३) विज्ञानवान् (४) ऐश्वर्य वान्।
'ऋजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः'
ऋ. ४.१६.१३

वैद्युत – विद्युत से उत्पन्न या उत्पन्न होने वाला।
'शबला वैद्युताः'
वाज.सं. २४.१०, मै.सं. ३.१३.११:१७०.१०, आप.श्रौ.सू. २०.१४.६

वैन्यः – (१) विद्वानों का हितकारी, (२) कान्तियुक्त आत्मा।
'पृथ्वी यद्वां वैन्यः सादनेषु'
ऋ. ८.९.१०; अ. २०.१४०.५
(३) तेजस्वी, (४) यश का इच्छुक

वैन्यपृथ्वी – नाना काम्य पदार्थों का स्वामी, (२) महान् राजा
'तां पृथ्वी वैन्योऽधोक्'
अ. ८.१०.११

वैवश्व – (१) विगत इन्द्रियरूप अश्वों वाला (२) जितेन्द्रिय, पुरुष, (३) साधारण पुरुष, (४) अश्वरहित पदाति।
'वैयश्व दशमं नवम्'
ऋ. ८.२४.२३; अ. २०.६६.२

वैयाघ्र – (१) नाना प्रकार का गन्ध देने वाला।
वैयाघ्रो मणिर्वीरुधाम्'
अ. ८.७.१४
(१) व्याघ्र के स्वभाव वाला पुरुष
'व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे'
अ. ४.८.४

वैयाघ्रमणि – (१) विविध विशेषण वा आघ्रीय त इति व्याघ्रः। स एव वैयाघ्रः। स चासौ मणिश्चेति (नाना प्रकार का गन्ध देने वाला रोगस्तम्भन गुटिका या जड़ी)।
(२) तपेदिक, सिरदर्द आदि रोगों में निरन्तर सूंघने के लिए विशेष ओषधि रसों की शीशी या पापों का प्रयोग (३) प्लेग आदि के समय फिनाइल आदि गोलियों को जेब में रखने आदि का प्रयोग किया जाता है। पूर्वकाल में ऐसी औषधियों को कपड़े में बांधकर गले या बाजू में बांध लिया जाता है।
'वैयाघ्रो मणिर्वीरुधाम्'
अ. ८.७.१४

वैरदेय – (१) कलह का कार्य, (२) वीर्य (वैर) द्वारा पुत्रोत्पत्ति का कार्य
'स वैरदेय इत् समः'
ऋ. ५.६१.८

व्यैरयत् – (१) विविध प्रकार से कंपा देता है।
'वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत् पुरः'
ऋ. १.५१.११
अपने बल को बढ़ाकर (दृंहिता) राष्ट्र के शोषण करने वाले शत्रु के गढों या दुर्गों को (शुष्णस्य पुरः) विविध प्रकार से कंपा देता है (वि ऐरयत्)।

वैरहत्य – वैर के कारण हत्या करने का कार्य
'वैरहत्याय पिशुनम्'
वाज.सं. ३०.१३, तै.ब्रा. ३.४.१.७

वैराज – (१) एक विंशस्तोम से उत्पन्न वैराज नामक साम, (२) विविध तेजों से राजवान् शरीर, (३) एक विंशराजा से उत्पन्न विविध राष्ट्र के कार्य
एक विंशद् वैराजम् .
वाज.सं. १३.५७, तै.सं. ४.३.२.२, मै:सं. २.७.१९: १०४.१०, का.सं. १६.१९, श.ब्रा. ८.१.२.५
(४) प्रजापति

'तं वैरूपं च वैराजं च'
अ. १५.२.१८
वैराजाः देवाः - (१) प्रतीची के देवता (२) विशेष प्रकार से प्रकाश मान देव या विद्वान्।
'वैराजा नाम देवाः'
अ। ३.२६.३
वैरूप - (१) वाक् (२) पशु (३) दिशा
'तं वैरूपं च वैराजं च'
अ. १५.२.१८
(४) विविधरूपों, रूचि एवं कान्ति वाला, (५) नाना विद्याकलाओं में निपुण विद्वान्।
'यम वैरूपैरिह मादयस्व'
ऋ. १०.१४.५; अ. १८.१.५९; तै.सं. २.६.१२.६; मै.सं. ४.१४.१६. २४२.१४
'विश्वेभ्यो देवेभ्यो जागतेभ्यः सप्तदशेभ्यो' वैरूपेभ्यो द्वादशकपालः'
वाज.स. २९.६०; तै.सं. ७.५.१४.१; मै.सं. ३.१५.१०: १८०.९ का.सं. (अश्व.) ५.१०.
(६) विविध जीव सृष्टि, (७) वैरूप नामक पृष्ठ, (८) राज्य की विविध रचना
'सप्तदशात् वैरूपम्'
वाज.सं. १३.५६, तै.सं. ४.३.२.२, मै.सं. २.७:१९: १०४.८ का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.२
वैरूपं साम - (१) विविध प्रकार की प्रजा का विविध बल, (२) घोष
'वैरूपं साम प्रतिष्ठित्यै'
वाज.सं. १५.१२; तै.सं. ४.४२.२; मै.सं. २.८.९: ११३.१७; का.सं. १७.८; श.ब्रा. ८.६.१.७.
वैल - (१) गिरने का स्थान, (२) गढ़ा (३) कूप अंग्रेजी का well शब्द वैल का ही अपभ्रंश है।
वैलस्थान - (१) गिरने या पराजित होने का स्थान, (२) बिल या गढ़ावाला स्थान, कूप।
वैलस्थानं परितृढा अशेरन्'
ऋ. १.१३३.१
गिरने या पराजित होने के स्थान पर ही या गढ़ो या कूपों में ही (वैलस्थानम्) वे मारे गए लोग (तृढाः) भूमिपर सोयें (अशेरन्)।
वैलस्थानक - बड़े भारी गढ़ो में युक्त ऊंचे नीचे खड़ो से भरा स्थान है
(२) बिल के समान बना कैदखाना।
'वैलस्थानके अर्मके'
ऋ. १.१३३.३
जिस प्रकार पीड़ादायी व्यक्तियों को दुःखदायी छोटे से बिल के समान बने कैदखाने में डाल दिया जाता है।
व्यैलब - नाना प्रकार के शब्द करने वाला
'भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः'
अ. १२.१.४१
वैदिदश्वि - (१) विददश्व का अपत्य (२) विददश्व का अर्थ है-
'यः अश्वान् विन्दति'।
अतः 'वैददश्वि' का अर्थ है अश्वों या इन्द्रियों को अपने वश में करने वाला जितेन्द्रिय।
'वैददश्विर्यथाददत्'
ऋ. ५.६१.१०
वैवस्वतः - विवस्वान् का पुत्र-यम
वैवस्वतं संगमनं जनानाम्
यमं राजानं हविषा दुवस्य'
ऋ. १०.१४.१; अ. १८.१.४९, ३.१३, मै.सं. ४.१४.१६: २४३.७; तै.आ. ६.१.१; नि. १०.२०
प्राणियों को अपने कर्मानुसार स्वर्ग नरक पहुंचाने वाले यम राजा को हवि से पूज।
वैवस्वत - (१) विवस्वान् सूर्य से उत्पन्न काल, (२) यम-सा.
'वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतान्'
अ. ८.२.११.
वैवस्वतमनु - (१) वैवस्वत मनु, (२) विविध प्रकार से प्रजाओं को बसाने वाला मनीषी पुरुष ज.दे.श.
तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत्
अ. ८.१० (४) १०
वैबाधप्रणुत्त - विविध पीड़ाओं से विनष्ट
'न वैशाधप्रेणुत्तानाम्'
अ. ३.६.७
वैशन्त - (१) राष्ट्र में प्रविष्ट, (२) प्रजा का हितकारी।
'तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम्'
ऋ. ७.३३.२
(३) ताल तलैयाओं का अध्यक्ष
'नमो नादेयाय च वैशन्ताय च'
वाज.सं. १६.३७.

वैशन्ता - छोटे छोटे ताल तलैया ।
'वैशन्ताभ्यो बैन्दम्'
वाज.सं. ३०.१६

वैश्य - (१) वैश्यवर्ण
'मरुद्भ्यो वैश्यम्'
वाज.सं. ३०.५; तै.ब्रा. ३.४.१.१.

वैश्वकर्मण - (१) विश्वकर्मा रूप से उत्पन्न मन ।
'तस्य मनो वैश्वकर्मणम्'
वाज.सं. १३.५५; तै.सं. ४.३.२.१; मै.सं. २.७.१.९: १०.४.३, का.सं. १६.१९: श.ब्रा. ८.१.८.८
(२) अग्नि, (३) विश्वकर्मा राज्य के उत्तम कर्मों के प्रवर्थक राजा पद पर विराजमान ।
'तदग्निर्वैश्वकर्मणः'
वाज.सं. १८.६४,६५, तै.सं. ५.७.७.२,३; का.सं. ४०.१३, श.ब्रा. ९.५.१.४९,५०
(४) विश्वकर्मा के अधीन
'बहुरूपा वैश्वकर्मणाः'
वाज.सं. २४.१७; मै.सं. ३.१३.१५:१७१.१०; आप.श्रौ.सू. २०.१४. १२.

वैश्वदेव -- समस्त दिव्य शक्तियों में सूक्ष्म रूप से विद्यमान् आत्मा
'वैश्वदेवमसि'
वाज.सं. ४.१८; ५.३०, मै.सं. १.१.११: ६.१४. १.२.४:१३.३, श.ब्रा. ३.२.४.१४, ६.१.२६, शां.श्रौ.सू. ४.८.२; ला.श्रौ.सू २.३.७, का.श्रौ.सू. ८.६.१४.

वैश्वदेवाग्निमारुते - (१) किरण मार्ग और वायु सम्बन्धी व्याख्यान (२) वैश्वदेव और अग्निमारुत
'वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै'
वाज.सं. १५.१४, श.ब्रा. ८.६.१.९

वैश्वदेवी - (१) समस्त शासकों और विद्वानों की महासभा, (२) समस्त स्त्रियों में अधिक विद्या सम्पन्न विदुषी आचार्याणी, (३) वेदवाणी
वैश्वदेवी पुनती देव्यागात्
ऋ.खि. ९.८६.२; वाज.सं. १९.४४, मै.सं. ३.११.१०:१५६.५, का.सं. ३८.२, तै.ब्रा. १.४.८.२.
(४) समस्त देवों या विद्वान् पुरुषों के उपयोग की ओषधि ।
'ह्वयामि ते वीरुधो वैश्वदेवीः'
अ. ८.७.४
(५) विश्वदेव + अण् = वैश्वदेव । वैश्वदेव + ङीष् = वैश्वदेवी ।
'वैश्वदेवीं सूनृतामारभध्वम्'
नि. ६.१२.
सत्यवाणी बोलना शुरु करो ।

वैश्वव्यचसं चक्षुः - सूर्य का बना हुआ व्यापक परमेश्वर का चक्षु
'तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसम्'
वाज.सं. १३.५६, तै.सं. ४.३.२.२. मै.सं. २.७.१९:१०४.६, का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.२.

वैशालेय तक्षक - विषवती विराट् का वत्स
'तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीत्'
ऋ. ८.१० (५) १४

वैश्वानर - (१) विश्वान् नरान् नयति (सभी नरों को सभी प्रवृत्तियों में यह ले जाती है । अतः वैश्वानर कहलाया) ।
(२) नरति नयति इतिनरः (ले जाता है । अतः नर हुआ) । नृ + अच् = नर । विश्वेषां नरः विश्वानरः (नरे संज्ञायाम्-पा. ६ .३.१२९ से पूर्व पद का दीर्घ) । कर्म अर्थ में भी बाहुलक से अच् प्रत्यय होता है ।
(३) अथवा 'विश्वेनराः एंन नयन्ति' (अग्नि को सभी नर सभी कर्मों में प्रयुक्त करते हैं । अतः अग्नि वैश्वानर कहलाया) । कर्म में नृ + अप् = नर ।
(४) अपि वा विश्वानर एवस्यात् प्रत्यृतः सर्वाणि भूतानिः तस्य वैश्वानरः (विश्वानर ही वैश्वानर है) । विश्वानर सभी नरों में गत या व्याप्त है अतः विश्वानर कहलाया है । (५) अयमेयाग्निः विश्वानरः इति शाकपूणिः (शाकपूणि के मत से यह पार्थिव अग्नि ही वैश्वानर है न कि मध्यम या सूर्य ।)
(६) विश्वानरौ एते उत्तरे ज्योतिषी वैश्वानरीऽयं ताभ्यां जायते (मध्यम और उत्तम अग्नि विश्वानर है और वैश्वानर अग्नि वह है जो इन इन दोनों अग्नियों से उत्पन्न होता है ।) निरुक्त ।
(७) अथापि वैश्वानरीयो द्वादश-कपालोभवति । एतस्य हि द्वादश विधं कर्म । अथापि ब्राह्मणं भवति । असौ वा आदित्योऽग्निः वैश्वानर इति ।

(अर्थात् वैश्वानरीय सर्वत्र बारह कपालों वाला होता है। प्रत्येक कपाल मास का द्योतक है। बारह महीनों में बारह प्रकार के कर्म किए जाते हैं। अतः वैश्वानर अग्नि सूर्य का वाचक है। ब्राह्मण ग्रन्थों का उदाहरण यही बतलाता है।)

(८) निवित् आकृति विशिष्ट यन्त्र है। यह निवित्त सौर्य वैश्वानरी कहलाता है। इससे ज्ञात होता है कि वैश्वानर सूर्य ही है न कि पार्थिव अग्नि या माध्यमिक वैद्युताग्नि है (अथापि निवित् सौर्य वैश्वानदी भवति)।

(९) छान्दोभिक् सूक्त भी सौर्य वैश्वानरी कहलाता है (अर्थात् छन्दोभिकं सूक्तं सौर्यवैश्वानर भवति।)

'दिवि पृष्टो अरोचताग्निर्वैश्वानरो बृहत्
क्ष्मया वृधान ओजसा चनो हितो
ज्योतिषा बाधते तमः'

वाज.सं. ३३.९२

द्युलोक में स्थित हो सूर्य शोभता है। वह कारण भूत पृथ्वी के द्वारा बढ़ता हुआ अपने प्रकाश से अन्धकार नष्ट करता है तथा बल तेज और वर्षा द्वारा अन्न उपजाने के लिए हित हो (ओजसा चनो हितः)।

(१०) हविष्यानीय सूक्त का नाम भी सौर्य वैश्वानर सूक्त है। इससे भी वैश्वानर सूर्य का ही द्योदक हुआ.(अथापि हविष्यानीयं सूक्तं सौर्य वैश्वानरं भवति)।

'विश्वस्मा अग्निनं भुवनाय देवाः
वैश्वानरं केतुमह्नामकुर्वन्'

ऋ. १०.८८.१२

इन्द्रादि देवों ने समस्त भुवन के लिए वैश्वानर अग्नि नामक देव को दिनों का प्रज्ञापक अर्थात् कर्त्ता बनाया।

शाकपूणि ने जो वैश्वानर अग्नि को पार्थिव अग्नि माना है उसका कारण निम्नलिखित है-

'कथं वा अयम् एब्राभ्यां जायते इति। यत्र वैद्युतं शरणमभिहन्ति यावदनुपत्तो भवति। मध्यम धर्मैव तावत् भवति, उदकेन्धनं शरीरो पशमनः। उपांदीयमान एव अयं संमध्यते उदको शमनः शरीर दीप्तिः'।

अर्थात् वैद्युत अग्नि घर जलाता है और तब तक मनुष्यों के द्वारा स्पृष्ट नहीं होता जब तक वह मध्यम स्थानी है। वह मध्यमस्थानी अग्नि पार्थिव होकर उदक या काष्ठ से उपशान्त होता है। अतः यह पार्थिव अग्नि मध्यमस्थानी विश्वानर से होकर वैश्वानर कहलाया। ये उत्तर ज्योति विद्युत और सूर्य विश्वानर हैं और पार्थिव अग्नि वैश्वानर है। विश्वानर का अपत्य वैश्वानर यह पार्थिव अग्नि है।

यह वैश्वानर अग्नि आदित्य से निम्नलिखित प्रकार से उत्पन्न होता है-

'उदीत्रि प्रथम समावृत आदित्ये, कं सं वा मणिं वा परिमृज्य प्रतिस्वरे यत्र शुष्कगोमयम् असं स्पर्शयन् धारयति तत् प्रदीप्यते सोऽयम् एव सम्पद्यते'।

अर्थात् उत्तर दिशा में आदित्य के आने पर रांगा और ताम्बे से कांस तथा सूर्यकान्त मणि के प्रतिशोधन के बाद प्रतितप्त करने पर जिस किसी शुद्ध स्थान में गोबर या करसी रहता है उसे ही छूकर दीप्त कर देता है। उस गोबर से उत्पन्न होकर वही अग्नि पार्थिव कहलाता है। इसी प्रकार आदित्य से कांस या मणि में और कांसे या मणि से गोबर में प्रकट हो अग्नि वैश्वानर कहलाया। अतः शाकपूणि के अनुसार विश्वानर का अर्थ आदित्य और विद्युत अग्नि है और वैश्वानर का अर्थ पार्थिव अग्नि है।

वैश्वानरस्य सुमनौ स्याम
राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे
वैश्वानरौ यतते सूर्येण'

ऋ. १.९८.१

हे दीप्यमान तथा सभी के लिए आश्रयणीय या सर्वजनहितकारी अग्नि (राजा युवनानाम् अभि श्रीः वैश्वानरः), यहां उत्पन्न होकर (इह जातः) इस सम्पूर्ण वस्तु जगत् को प्रकाशित करता है (इदं विश्वं विचष्टे) और सूर्य के साथ संगत होता है (सूर्येण सह युतः) अर्थात् सूर्य के सदृश ताप और प्रकाश देता है। हम उस अग्नि की कल्याणी विद्या में वर्तमान (हो वैश्वानरस्य सुमनौ स्याम) अथवा उस अग्नि की स्तुति में हों।

यदि सूर्य वैश्वानर होता तो अन्य उत्तमोतम

सूक्त जो भग, भूषण, विष्णु, सूर्य और विश्वे देवा के नाम से विख्यात हैं, उन में विशेषण रूप से भी तो वैश्वानर शब्द का प्रयोग होता परन्तु ऐसा हुआ नहीं ! (अथ यानि एतानि औत्तमिकानि सूक्तानि भागानि वा सावित्राणि वा सौर्याणि वा पौष्णानि वा वैष्णवानि वा वैश्वदेवानि वा तेषु वैश्वानरीयाः प्रवादाः अभविष्यन्) ।

अग्नि ही वैश्वानर है, इसके अन्य भी प्रमाण हैं, यथा –

(१) आग्नेयेष्वेत सूक्तेषु वैश्वानरीयाः प्रवादाः भवन्ति । अग्निकर्मणा च एवं स्तौति इति । वहसि इति दहसि इति पचसि इति (अर्थात् वैश्वानर का कर्म वहन करना, पकाना तथा जलाना कहा गया है) ।

(२) वर्षा का कर्म वैश्वानर का बताया गया है । अतएव उसे माध्यमिक देव क्यों न माना जाय इस पर कहा गया है कि पार्थिव अग्नि भी वर्षा देता है । जैसे –

'समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति
दिवं जिन्वन्त्यग्नयः '

ऋ. १. १६४.५१

यह प्रसिद्ध उदक एक रूप का है । ग्रीष्म कालीन दिनों में (अहोभि) रश्मियों द्वारा ऊपर भी जाता है (उत् च एति) तथा वर्षा के दिनों में वह जल नीचे भी आता है (अव च) । रसों को लेने वाले मेघ (पर्जन्या) वर्षा देते हुए भूमि को प्रसन्न करते हैं तथा आहवनीय अग्नि आहुति से हुई वर्षा द्वारा आदित्य आदि द्युलोक में रहने वाले देवों को प्रसन्न करता है । अर्थात् पृथिवी लोक से अग्नि ऊपर हवि को जल रूप में भेजता और मेघ ऊपर से नीचे पुनः जल बरसाता है ।

(११) परमेश्वर –दया, । परमेश्वर ही सभी नरों का नायक है । (१२) अग्नि या विद्युत यन्त्र यानों में प्रयुक्त होकर मनुष्य को यत्र तत्र ले जाता है । (१३) राजा भी नेता है अतः वैश्वानर है । (१४) विद्वान् भी मनुष्यों का नेता होने से वैश्वानर है । (१४) सूर्य भी पृथ्वी आदि लोकों को चालाता है, अतः वैश्वानर है ।

(१६) यास्क ने वैश्वानर शब्द को विद्युत् का ही पर्याय माना है । (१७) ब्राह्मण ग्रन्थों में वैश्वानर को ही पृथिवी संवत्सर और ब्राह्मण कहते हैं ।

पृथ्वी वैश्वानरः संवत्सरो विश्वानरः

(१८) निर्वचन का होना, एक वाक्य में भिन्न विभक्ति से व्यपदिष्ट किया जाना, औत्तमिक सूक्तों में वैश्वानर शब्द का अप्रयोग, आदित्य कर्मों से स्तुति का न पाया जाना, आग्नेय सूक्तों में वैश्वानर का प्रयुक्त होना और अग्नि कर्म से स्तुति का पाया जाना वैश्वानर शब्द को अग्नि सिद्ध करता है ।

(१९) सर्वहितकारी जज, मजिस्ट्रेट धमध्यिक्ष ।

'वैश्वानराय प्रति वेदयामि '

अ. ६.११९.२

(२०) समस्त पुरुषों का हिताकारी, (२१) समस्त पुरुषों में व्यापक विराट्

'वैश्वानरो विश्वकृद् विश्वशंभूः '

अ. ६.४७.१; का.सं. ३०.६

वैश्वानरः अग्निः – (१) सर्वजन हितकारी विद्युत्–दया. (२) वर्षा बरसाने वाला वैश्वानर अग्नि –सा.

(३) वृत्रासुर या मेघ को मारने वाला ।

'वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वान् '

ऋ. १.५९.६; नि. ७.२३

सर्वजनहितकारी विद्युत् के अनावृष्टि रूपी दस्यु का नाश करती हुई मेघ को विदीर्ण करती है । –दया.

'वैश्वानर अग्नि ने रस सुखाने वाले या राक्षसों को मारा' ।

वैश्वानर अर्णव – समस्त नरों या असत्य का महासागर

'मुञ्चामि त्वा वैश्वानरादर्णवात् '

अ. १.१०.४

वैश्वानरज्येष्ठाः – समस्त लोकों में व्यापक ब्रह्म जिनमें सबसे श्रेष्ठ हैं वे अग्नि ।

'वैश्वानर ज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यः '

अ. ३.२१.६

वैश्वानरी सूनृता – ईश्वर सम्बन्धी वाणी, वेद ।

'वैश्वानरीं सूनृतामा रभध्वम् '

अ. ६.६२.२

वैष्टप - (१) तीन विशेष रूप से तपने तपाने वाले या सर्वथा ताप रहित शान्तिपूर्ण लोक, (२) आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।
'त्रीन् ब्रध्नांस्त्रीन् वैष्टपान्'
अ. १९.२७.४

वैष्णव - (१) राष्ट्ररूपी यज्ञ से सम्बन्ध करने वाला, (२) विष्णु सम्बन्धी
'वैष्णवमसि विष्णवे त्वा'
वाज.सं. ५.२१, तै.सं. १.२.१३.३, मै.सं. १.२.९:१९.११,
(३) वैष्णव, (४) सर्वव्यापक सामर्थ्यवान् पद
'वैष्णवो वामनः'
वाज.सं. २४.१; मै.सं. ३.१३.२: १६८.१३

वैष्णवी - (१) वैष्णवी शक्ति (१) परस्पर संगति कारिणी राष्ट्रनीति रूप विशाल वाणी
'रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीम्'
वाज.सं. ५.२३, मै.सं. १.२.१०:१९.१७, ३.८.८:१०६.१०, का.सं. २.११; २५.९; श.ब्रा. ३.५.४.८.

वैष्णव्यौ - स्त्री पुरुष दोनों प्रकार की प्रजाएं।
'पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ'
वाज.सं. १.१२; १०.६; श.ब्रा. १.१.३.१,५.३.५.१५, तै.ब्रा. ३.७.४.११, शां.गृ.सू. १.८.१४, गो.गृ.सू. १.७.२२.

वोचच् - ब्रूहि (बोल)।

वोचे - ह्वयामि, ब्रवीमि पुकारता हूं, कहता हूँ वरदान मांगता हूँ।
'पुरु त्वा दाश्वान् वोचे'
ऋ. १.१५०.१, नि. ५.७
हे अग्नि, मैं दाता तुझे बहुत पुकारता या तुझ से वरदान मांगता हूँ।

वोचेयम् - वेदयम् (बोलूं)

वोढा - ढोने वाला।

व्योदन - (१) अन्त, (२) विशेष, दयार्द्र भाव से पूर्ण रसवत् सुख।
अस्य वृष्णो व्योदन
उरु क्रमिष्ट जीवसे
ऋ. ८.६३.९

व्योमन् - (१) विविध ज्ञानों का रक्षा स्थान।
'महो ज्योतिषः परमे व्योमन्'
ऋ. ४.५०.४; अ. २०.८८.४; मै.सं. ४.१२.१: १७७.४; का.सं. ११.१३, तै.ब्रा. २.८.२.७
(२) अधिकरण एकवचन का रूप। व्योमनि अन्तरिक्ष में व्योमन् + ङि = व्योमन् (ङि विभक्ति का लोप)।
(३) वि + ओमन् = व्योमन्। आकाश।
'अष्टापदी नवपदी बभूवुषी
सहस्राक्षरा परमे व्योमन्'
ऋ. १.१६४.१; अ. ९.१०.२१, १३.१.४२, तै.ब्रा. २.४.६.११, तै.आ. १.९.४; नि. ११.४०
(४) व्यक्त (वि +अवन्। दुर्ग ने इसकी व्याख्या यों की है-
"विभक्तानां भूतानां यत् परमम् अवनम् एकम् सर्वभावानाम् अविभक्त एक आत्मा यः तदात्मना एव भूतानां सलिलनिर्माण द्वारेण सर्वमिदं निर्मिमीत इति".
(विभक्त भूतों या भावों का एक आत्मा रूप अन्तरिक्ष जिसमें सलित का निर्माण कर सब कुछ सिरजता है)।
(५) ओम-प्रणयः। विविधं शब्द जातम् अस्मिन् ओतम् इति व्योमन् (जिसमें विविध शब्द जात ओत प्रोत है)। वि + ओमन् = व्योमन्।
'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति
य इत् तद् विदुस्त इमे समासते'
ऋ. १.१६४.३९;
आधियज्ञ, आधिदैव और आध्यात्म अर्थों में क्रमशः ऋच् का अर्थ ओम, आदित्य और आत्मा है। शाकपूणि ने ऋच् का अर्थ ओम् किया है।
ऋचाओं के प्रणव रूप ओम् अक्षर में जो सर्वत्र ऋचाओं में व्याप्त है और जिसमें सभी देवता वास करते हैं। जैसे 'अ' में पृथिवी, अग्नि ऋग्वेद और पृथ्वीलोक निवासीः 'उ' में अन्तरिक्ष, वायु, यजुर्वेद तथा लोक-निवासी और 'म' में द्यौः, आदित्य, सामवेद तथा द्यु लोक निवासी रहते हैं। ऊंकार एवेदं सर्वम्। जो ओम् अक्षर को इस विभूति से युक्त नहीं समझ पाता वह इन मंत्रों से क्या कर सकता है। जो इस अक्षर को जानते हैं, इस परिज्ञान

से युक्त रहते हैं और आत्मज्ञ होते हैं ।

मन्त्रों में देवता वास करते हैं । और मंत्र वर्णों में और वर्ण प्रणव में । अतः प्रणव ही सर्व देवमय हुआ ।

शाकपूणि के पुत्र के मत से आदित्य ही ऋच हैं, क्योंकि ऋच् वही है जो अर्चनीय है । आदित्य की रश्मियाँ ही देवता हैं । उसी प्रकार ऋच् के अक्षर हैं ।

आध्यात्म अर्थ में ऋच् शरीर हैं, क्योंकि शरीर से ही इन्द्रियों की अर्चना की जाती है । इन्द्रियाँ ही देवता है जो इस शरीर रूपी ऋच् में अधिष्ठित हैं ।

व्योमसद् - विमानादि के द्वारा आकाशादि के अधिकार में स्थित ।

'अप्सुषदं त्वा घृतसदं व्योमसदम्'

वाज.सं. ९.२.; श.ब्रा. ५.१.२.५

व्योषा - वि + ओषा । नाना प्रकार से हल के तड़पाने वाली-काम वाण ।

प्राचीनपक्षा व्योषा

अ. ३.२५.३.

श

शक - शकाः सचन्ते समवायेन वर्तनों, शक्नुवन्ति इति वा ।

अर्थ - (१) मधुकक्षिका, (२) मधु, (३) समवाय बनाकर रहने वाला शक्तिशाली पुरुष ।

बैलगाड़ी का नाम शकट

'आरण्योऽजो नकुलः शका ते पौष्णाः'

वाज.सं. २४.३२; तै.सं. ५.५.१२.१; मै.सं. ३.१४.१३:१७५.३;

शकट - (१) सनैः + तक = शतक - शकत् - शकट । (२) शब्द + तक =शकट

अर्थ है-बैलगाड़ी

शकट शकृदितं भवति

शनकै तकति इति वा

शब्देन तकति इति वा

बैलगाड़ी का नाम शकट

इसलिए पड़ा कि वह बैल के गोवर से युक्त रहता है । या इसलिए कि वह 'शनकैः' धीरे धीरे चलता है । अथवा इस लिए कि वह शब्द करता हुआ चलता है ।

कहीं शकृत् अट भी पाठ है ।

आधुनिक अर्थ -गाड़ी, बैल गाड़ी, सेना की एक प्रकार की पंक्ति, एक गाड़ी, बोझ, कृष्ण द्वारा मारा गया एक असुर, तिनिश नामक राक्षस का नाम

शकटी - गाड़ी ।

'शकटीरिव सर्जति'

ऋ. १०.१४६.३; तै.ब्रा. २.५.५.७

शकधूम - शकस्य शकृतः सम्बन्धी धूम यस्मिन् अग्नौ स शकधूमः अग्निः ।तद् अभेदात् ब्राह्मणस्य अभिधीयते ।

(१) अपनी शक्ति से सबको कंपाने वाला पुरुष । (२) सायण के मत से वह अग्नि शकधूम है जिसमें शकृत् (गोवर) सम्बन्धी धूम हो ।

'शकधूमं नक्षत्राणि यद् राजानम् अकुर्वत'

अ. ६.१२८.१

शकधूमजः - (१) शक्तिमान् (२) तामसः (३) बड़बड़ाने वाला ।

'खलजाः शकधूमजाः'

अ. ८.६.१५

शकन् - (१) मल, विष्ठा

'विलोहितो अधिष्ठानात्

शक्नो विन्दति गोपतिम्'

अ. १२.४.४.

(२) लीद (३) शक्ति, अधिक सामर्थ्य ।

'अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना

धूपयामि देवयजने पृथिव्याः'

वाज सं. ३७.९, श.ब्रा. १४.१.२.२०

'स इच्छक्ना संज्ञायते'

अ. २०.१२९.१२

शकपिण्ड - (१) शरीरस्थ विष्ठा का पिण्ड, (३) शक्तिमान पिण्ड, (३) शक्ति का संघ

'कूश्मान् शकपिण्डैः'

वाज.सं २५.७, वाज.सं. (का.) २७.१०; मै.सं. ३.१५.९. ?/ २.६

शकपूत - (१) शकपूत नामक एक वैदिक ऋषि, (२) शक्ति से अभिषिक्त-पुरुष

अस्मिन् स्वे तच्छकपूत एनः'

ऋ. १०.१३२.५

शकमय – शक्तिमान्

'शकमयं धूममारादपश्यम्'

ऋ. १.१६४.४३, अ. ९.१०.२५

शकम्भर – शक्ति को धारण करने वाला बलदान पुरुष

शकम्भरस्य मुष्टिहा

अ. ५.२२.४

शकमय धूम– (१) शक्तिमय संसार को गति देने वाला परमेश्वर ।

शंकर – (१) कल्याण करने वाला (२) शंकर शिव ।

'नमः शंकराय च मयस्कराय च'

वाज.सं. १६.४१, तै.सं. ४.५.८.१, मै.सं. २.९.७: १२६.५; का.सं. १७.१५

शकल्येषि – न. वि. । शकल्य + इषि । शरीर के रग रग में व्याप्त होकर थर थर पैदा करने वाला ज्वर

'शकल्येषि यदि वा ते जनित्रम्'

अ. १.२५.२

शकबलि – शक्तिशाली पुरुष

शकबलिः

अ. २०.१३१.१३

शक्म – शक्ति से करने योग्य

'मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्मधीरः'

ऋ. २.३८.४

शुक्रवर्चाः, शुक्रवर्चस् – बल और तेज वाला अग्नि

'पावक वर्चाः शुक्रवर्चाः'

ऋ. १०.१४०.२, साम. २.११६७, वाज.सं. १२.१०७, तै.सं. ४.२.७.३, मै.सं. २.७.१४: ९५.१४, का.सं. १६.१४, श.ब्रा. ७.३.१.३०.

शका – मक्खी

'इहो शकेव पुष्यत'

अ. ३.१४.३

शक्राः – द्वि.व. । (१) शक्ति मान् स्त्री पुरुष, (२) अश्विद्वय

'अर्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा'

ऋ. २.३९.३

शक्रः, शक्राः – (१) शक्तिशाली आत्मा (२) इन्द्र, (३) शक्तिशाली राजा ।

'शक्राः' शक्तिशाली योगीजन के अर्थ में आया है ।

'यच्छक्रा वाचमारुहन्'

अ. २०.४९.१

सायण ने 'शक्र' का अर्थ इन्द्र किया है । और स्वा. दयान्द ने शक्तिशाली ।

अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति

ऋ. ५.३४.३; नि. ६.१९

इन्द्र सनातन धर्म से दूर, आत्ममण्डन परायण, विषयोपभोग परायण धर्मरहिता अनेक उपायों से अपने धन को पढ़ाने वाले को बार बार नष्ट करते हैं ।

शक्वरिः – शक्तिशालिनी सेना

'अङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञेय कल्पन्ताम्'

वाज.सं. १८.२२

शक्वरी – शक् + क्वनिप् (करण में) + ङीष् = शक्वरी । 'वनो रेच' पा-४ .१.७ से ङीष् और र का आर ।

'शक्वर्यः ऋचः शक्नोतेः

अर्थ– (१) शक्वरी नाम्नी ऋचा जिससे शक्ति बढ़ती है । 'तत् यत् आभिः वृत्रं अशकत् हन्तुम् तत् शक्वरीणां शक्वरीत्वम् इति विज्ञायते । अर्थात् ऋचाओं से स्तुत हो इन्द्र ने वृत्र को मारा यही शक्वरी का शक्वरीत्व है ।

(२) शक्तिशाली मन्त्र या ऋचा,।

'गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु'

ऋ. १०.७१.११; नि. १.८.

एक (त्वः) उद्गाता शक्तिशाली मन्त्रों में (शक्वरीषु) देवताओं का गुण गान करता है (गायत्रं गायति) ।

शक्वा – शक्तिशाली ।

'शाक्वराय शक्वने'

शक्ति – शक् + क्तिन् = शक्ति । अर्थ – कर्म

'स्तोभेन हि दिवि देवासो अग्निमजीजनत् शक्तिभी रोदिसिप्राम्' ।

आधुनिक अर्थ – शक्ति, योग्यता बल, राजकीय शक्तिः, काव्यशक्ति, देवी का एक नाम, अस्त्र भेद, बर्छा, भाला, हेतु या कारण में फल उत्पन्न करने की शक्ति, शब्द की अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना शक्ति ।

शक्ति कानना – शक्त की खान ।

शक्तिका ननास्वचम् ।

अ. २०.१३६.५

शकुन - शक्नोति उन्नेतुम् आत्मानम् । शक्नोति नदितुम् इति वा, शर्वतः शंकरोऽस्तु इति वा । शक् + उनि = शकुनि । अर्थ- (१) पक्षी

'पर्णेभिः शकुनानाम्'

ऋ. ९.११२.२

(पक्षियों के पंखों से ....)

(क) शक् (सकना) + उनि = शकुनि

शकुनि अपने को ऊपर उठा सकता है या शब्द कर सकता है या चल सकता है या कल्याण कारी होता है ।

(ख) शक् + क्विप् = शक्, शक् + उत् + नी + इन् = शकुनि (उत् के त् का लोप) ।

(ग) नद या नक धातु से भी 'शकुनि' शब्द सिद्ध होता है ।

(घ) अथवा पृषोदरादिवत् 'शकर' से ही शकुनि बना है ।

'सुमंगलश्च शकुने भवासि'

ऋ. २.४२.१, नि. ९.४

आधुनिक अर्थ- पक्षी, गृध्र, चील, मुर्गा, गान्धार के राजा, सुबल का पुत्र तथा धृतराष्ट्र की स्त्री गान्धारी का भ्राता ।

(२) शक्तिशाली, (३) विद्या प्रदान करने में समर्थ, (४) पक्षीवत् दूर-दूर शक्ति तक भ्रमण करने वाला विद्वान्, (५) ऊपर उठाने में उपदेश करने में और शत्रुनाश करने में समर्थ (६) शकुनि नामक पक्षी ।

(७) एक शक्तिशाली पक्षी

'कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै'

वाज.सं. २४.४०, मै.सं. ३.१४.२१:१७७.५

शकुनिसाद - (१) पक्षी का पैर जमा कर बैठना, (२) शक्तिशाली पुरुष के समान और जमाकर बैठना की शक्ति, (३) पक्षियों को पकड़ने का साधन जाल

बृहस्पति शकुनि सादेन

वाज.सं. २५.३; तै.सं. ५.७.१४.१; मै.सं. ३.१५.३:१७८.८; का.सं. (अश्व.) १३.४.

शकुन्तिका - (१) पंख वाली चिड़ियां (२) कपिञ्जली

'इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम्'

ऋ. १.१९१.११

(३) शक्नोति इति शकुनः-शकुन्तः-शकुन्ति-शकुनिः दया.

शक्ति सम्पन्न प्रजा (४) प्रजोत्पत्ति में समर्थ स्त्री

'यकासकौ शकुन्तिका'

वाज.सं. २३.२२; श.ब्रा. १३.२.९.६; ५.२.४.

शंकु - शंकु, खूंटी, ।

'तस्मिन् साकं त्रिशता न शंकवः
अर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः'

ऋ. १.१६४.४८; नि. ४.२७

उस काल में चक्र में एक साथ ही वर्ष के ३६० दिनों के रूप में खूंटियाँ ठोकी गई हैं जो दिन और रात चल और अचल दोनों हैं । दिन रात अस्थायी होने से चलनशील और एक के बाद दूसरे के नियमित रूप से आने से अचल हैं ।

शकुन - शकुनि नामक मछली

गोशफे शकुलाविव'

अ. २०.१३६.१; वाज.सं. २३.२८, शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.२, ला.श्रौ.सू. ९.१०.५.

(२) खुर का खण्ड ।

शकृत् - गोमय (गोबर)

शकृद् दासी समस्यति

अ. १२.४.९

शंख - (१) सुख का अभिलाषी या कल्याण-स्वरूप आत्मा (शम् + ख), (२) शंख

शंखेनामीवानमतिम्

अ. ४.१०.३

शंखध्मः - शंख बजाने वाले ।

'अवरस्पराय शंखध्मम्'

वाज.सं. ३०.१९, तै.ब्रा. ३.४.१.१३.

शग्धि - (तू) करने में समर्थ है ।

शग्धि पूर्धि प्र यंसि च
शिशीहि प्रास्युदरम्'

ऋ. १.४२.९

शग्मः - सुखकारक

शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः'

ऋ. ७.६०.५

'तत्रा रथमुप शग्मं सदेम'

ऋ. ६.७५.८; वाज.सं. २९.४५, तै.सं. ४.६.६.३, का.सं. (अश्व.) ६.१.

'पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः'

ऋ. १.१३०.१०

शग्मा - द्वि .व. । (१) प्राण अपान का विशेषण, (२) शक्ति युक्त,
'शग्मा वक्षतः सखायम्'
ऋ. ८.२.२७

शग्म्य - (१) सुख निमित्त, सुखपरक, सुखी-सा ।
'सं शग्म्येन मनसा दधन्वे'
ऋ. ३.३१.१, नि. ३.४.
अपुत्र पिता अपनी पुत्री को दायाद को विवाह में देता हुआ, यह सोचकर कि उस कन्या के पुत्र से वह पुत्रवान् होगा सुखी मन से अपने मन को आश्वासन करता है (संदधन्वे) ।
शम् कल्याण या सुख का वाचक है । निरुक्त कार ने शग्म्य की व्युत्पत्ति नहीं की है । सम्भवतः शम् कल्याणं गमयति यत् तत् शग्म्यम् (जो सुख प्राप्त करता है) ।
(२) सबको शान्ति सुख पहुंचाने वाला, (३) अग्नि, परमेश्वर
'त्वं वातैररुणैर्यासि शंगयः'
ऋ. २.१.६, तै.सं. १.३.१४.१, तै.ब्रा. ३.१.१.२.१.

शङ्गयी - शम् + गयी । (१) शान्तिदायक, प्राणों या गृह तक में शान्तिदायक, (२) शान्ति का गृह
'इडावतीं शङ्गयीं जीरदानुम्'
ऋ. ९.९७.१७

शङ्गु - गौओं के लिये कल्याण और सुख को प्राप्त करने वाला
'नमः शङ्गवे च पशुपतये च'
वाज.सं. १६.४०, तै.सं. ४.५.८.१, मै.सं. २.९.७: १२६.२, का.स. १७.१५.

शचिष्ठः - (१) सबसे अधिक बुद्धि, शक्ति और वाणी से युक्त, ज्ञानमय (२) सर्वशक्तिमान् वाक्यस्वरूप इन्द्र-परमेश्वर ।
'कया तच्छण्वे शच्या शचिष्ठः'
ऋ. ४.२०.९; का.सं. २१.१३

शचिष्ठा - (१) अति शक्तिशालिनी (२) प्रज्ञा
'कया शचिष्ठया वृता'
ऋ. ४.३१.१, अ. २०.१२४.१, साम. १.१६९; २.३२ वाज.सं. २७.३९; २६.४, तै.सं. ४.२.११.२, मै.सं. २.१३.९: १५९.५; ४.९.२७:१३९; १२, का.सं. ३९.१२, तै.आ. ४.३२.३; आप.श्रौ.सू. १७.७.८.

शची - (१) कर्म, (२) वाक्, (३) स्तुति,
शची कर्म नाम है ।
'विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिः'
ऋ. १.१६४.४४; नि. १२.२६
तीन केशी - अग्नि, वायु और आदित्य में एक आदित्य वर्षा आदि कर्मों के द्वारा (शचीभिः) संसार का उपकार करता है (अभिचष्टे) ।
स्तुति के अर्थ में -
हविर्भिरेके स्वरितः सचन्ते
सुन्वन्त एके सवनेषु सोमान् ।
शचीर्मदन्त उत दक्षिणाभिः
नेजिह्मायन्त्यो नरके पताम
ऋ. १०.१२७.१; नि. १.११
नारद के द्वारा वञ्चना करने के निमित्त विप्रलम्भित असुरपत्नियां कहती हैं - कुछ लोग हवियों या यज्ञों के द्वारा स्वर्ग जाते हैं, कुछ लोग यज्ञों में सोम का अभिषवण कर, कुछ स्तुतियों से (शचीः) देवों को तृप्त कर (मदन्तः) और दक्षिणा द्वारा । हम तो पतियों की सेवा कर ही स्वर्ग जाती हैं । नहीं तो कुटिल गामिनी हो नरक में चली जायं ।
आधुनिक अर्थ- इन्द्राणी ।

शचीपतिः - (१) समस्त शक्तियों का स्वामी सूर्य, (२) शचीपति इन्द्र ।
'वृत्रस्येव शचीपतिः'
अ. ६.१३४.१, १३५.१

शचीवत् - (१) उत्तम बुद्धि, उत्तम कर्म या उत्तम वाणी वाला-इन्द्र या परमेश्वर
(२) शची अर्थात् इन्द्राणी से युक्त इन्द्र-सा.
'शचीव इन्द्र पुरुकृद् द्युमत्तम'
ऋ. १.५३.३; अ. २०.२१.३
(३) शची + वतुप् । कर्मिष्ट, कर्मवान् , शक्तिमान् अग्नि का विशेषण ।
तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः'
स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य'
ऋ. ३.२१.४; मै.सं. ४.१३.५: २०४.१४, का.सं. १६.२१, ऐ.ब्रा. २.१४, तै.ब्रा. ३.६.७.२,
हे अग्ने, तेरे लिए भेद और घृत के कुण्ड टपक रहे हैं ।

शचीवसु - शक्ति का धनी
स त्वं नो वर्ध प्रयसा शचीवसो'

ऋ. ८.६०.१२

शचीवसू - (१) उत्तम बुद्धि और उत्तम कर्म को अपने भीतर और शिष्यों के भीतर बसाने वाले, (२) ज्ञान और कर्म के धनी स्त्री पुरुष अश्विद्वय ।

'अयं वामद्रेऽवसे शचीवसू '

ऋ. ७.७४.१; साम. १.३०४, २.१०३.

शचीवाः - (१) शचीपति, (२) वाणियों का स्वामी इन्द्र ।

'शिप्रिन्नृषीवः शचीवः '

ऋ. ८.२.२८

शण - (प्र) । (१) अन्न, (२) सन, सनई ।

'शणश्चमा जङ्गिश्च '

अ. २.४.५.

शण्ड - (१) बल, (२) प्रजनन, (३) काम ।

'उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वेषते '

वाज.सं. ७.१२.

शण्डिक - शत्रु, (२) शत्रुसेना -दया.
(३) शान्ति को भंग करने वाली सेना ।

'इन्द्रोहन्ति वृषभं शण्डिकानाम् '

ऋ. २.३०.८

शत - (न) । (१) सौ वर्ष का जीवन

शताय स्वाहा

वाज.सं. २२.३४, तै.सं. ७.२.११.१, १२.१, १३.१, १४.१, १५.१, १६.१, १७.१, १८.१, १९.१, २०.१, मै.सं. ३.१२.१५:१६४.१२, का.सं. २.१-१०, तै.ब्रा. ३.८.१५.३, १६.२.

(२) दश दशन् = शद् = शत (दशदशतः शतम्) दशशब्द के नित्य अर्थ में निपातन द्वारा 'शत ' होता है । अर्थ है - एक सौ

जीवाति शरदः शतम्

ऋ. १०.८५.३९; अ. १४.२.२; ६३; नि. ४.२५

सौ शरद् या वर्ष जीवें, शत का ही बिगड़ा रूप सौ है । लैटिन में शत का ही cent हो गया है । फारसी में इसका रूप 'सद' हो गया है ।

शतम् एकञ्च मेषान् - (१) एक सौ एक वर्ष मेष राशि का योग करना सूर्य का एक वर्ष भोगना कहा गया है । इसी कारण १०१ मेष का १०१ वर्ष ग्रहण किया गया है ।

- ज.दे.श.

(२) १०१ भेड़ों को

जारः कनीन इव चक्षदानः
ऋज्राश्वः शतमेकं मेषान्

ऋ. १.११७.१८

ऋज्र अर्थात् धर्ममार्ग पर चलने वाला (ऋज्राश्वः) इन्द्रियों का स्वामी जितेन्द्रिय राजा सदा सूर्य के समान देदीप्यमान होकर १०१ वर्षों तक प्रकाशमान होकर प्रजा को भरण पोषण के लिए आज्ञा दें जिस प्रकार जरावस्था तक पहुंचने वाला युवा जितेन्द्रिय होकर युवती कन्या का १०१ वर्ष तक सुखपूर्वक भरण पोषण करता है ।

शतं कंसाः - सैकड़ो कांस के बर्तन या कांस के बर्तन के समान शिष्य

'शतं कंसाः शतं दोग्धारः '

अ. १०.१०.५

शतक्रतुः - (१) सौ यज्ञों का कर्ता इन्द्र, (२) अनेक कर्मों का कर्ता-परमात्मा -दया.

'ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत
उद् वंशमिव येमिरे ।'

ऋ. १.१०.१, साम. १.३४२, २.६९४, तै.सं. १.६.१२.३, कौ.ब्रा. २४.७, नि. ५.५

(३) प्रचुर ज्ञान वाला विद्या प्रदाता उपदेशक दया.

'स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी '

ऋ. १.१०५.८, १०.३३.३, नि. ४.६.

शतक्रतू - द्वि व. । (१) अश्विद्वय का विशेषण, (२) सैकड़ो कर्मों और प्रज्ञाओं से युक्त

शतकाण्ड - (१) बहुत से काण्ड या पोरुओं से युक्त दर्भ, (२) सैकड़ो बाणों से युक्त (३) अभिलाषणीय पदार्थों से सम्पन्न ।

'शतकाण्डो दुश्च्यवनः '

अ. १९.३२.१

शचचक्रः - सौ वर्ष की आयु करने वाला वीर्यरूप सोम

शतचक्रं योऽ ह्यो वर्तनिः

ऋ. १०.१४४.४

शतग्विन् - सैकड़ो गौओं या बाणों से युक्त

'रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् '

ऋ. १.१५९.५

आ न इन्द्रो शतग्विनम् '

ऋ. ९.६५.१७, ६७.६

शततमः दिवोदासः- सौवें वर्ष में वर्तमान् प्रकाशदाता सूर्य के समान तेजस्वी ।
(२) सौवां प्रकाशदाता
शततमं वेश्यं सर्वताता
दिवोदासमतिथिग्वं यदावम्
ऋ. ४.२६.३

शततेजा- सैकड़ो तेजों से युक्त
'इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजाः
वाज.सं. १.२४, तै.सं. १.१.९.१, मै.सं. १.१.१०:५.१२, का.सं. १.९; ३१.८. श.ब्रा. १.२.४.६, तै.ब्रा. ३.२.९.१.

शतदन्- सैकड़ो दातों वाला कंघी
कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः '
अ. १४.२.६८

शतद्वसु- (१) जिसमें असंख्य वसु या ऐश्वर्य हो- रथः -दया. (२) सैकड़ों ऐश्वर्यों वाला (३) सौ वर्षों तक वास करने योग्य शरीर ।
'सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुम् '
ऋ. १.११९.१
सहस्र ध्वजाओं से युक्त, सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों से युक्त पूर्ण, सैकड़ो ऐश्वर्य वाले रथ को, अथवा
सैकड़ो ज्ञानतन्तुओं से युक्त नाना भोग योग्य सामर्थ्यों या भोक्ता आत्मा और इन्द्रियां से सम्पन्न (वनिनम्) एक सौ वर्ष तक वास करने योग्य शरीर...

शतदातु - सैकड़ो की संख्या में दान देने वाला ।
'आ तू न इन्दो शतदात्वश्वयम् '
ऋ. ९.७२.९
(२) बहुत ऐश्वर्य देने वाला (४) बहुत ऐश्वर्यों का स्वामी
'तदातु वीरं शतदायमुकश्यम्
ऋ. २.३२.४; अ. ७.४७.१; ४८.१.; तै.सं. ३.३.११.५, मै.सं. ४.१२.६: १९५.१; का.सं. १३.१६, साम. मं.ब्रा. १.५.६, आप.मं. ११.१०, नि. ११.३१.
बहुत धन पैदा करने वाला (शत दायम्) वीर और प्रशंसनीय पुत्र (वीरम् उक्थ्यम् ददातु) ।

शतदुरः- सैकड़ों द्वारों वाला प्रभु
'अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदः '
ऋ. १०.९९.३
(२) सैकड़ों दरवाजों वाला भवन, (३) भूलभूलैया वाला गढ़ या व्यूह
(४) सैकड़ो आवरणों वाला मेघावयव ।

शतं दोग्धारः - सैकड़ो वशाज्ञान को दोहने वाले गुरुजन
'शतं कंसाः शतं दोग्धारः '
अ. १०.१०.५

शतधन्य- सैकड़ों धनों से युक्त ऐश्वर्य ।
'शतधन्यं चम्वोः सुतस्य '
ऋ. ४.१८.३

शतधार- (१) सैकड़ो धाराओं से बरसने वाला-मेघ, (२) सैकड़ो वेद वाणियों से सम्पन्न ।
'शतधारमुत्समक्षीयमाणम् '
ऋ. ३.२६.९
(३) सैकड़ो का परिपोषक परमेश्वर ।
'शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदम् '
ऋ. १०.१०७.४; अ. १८.४.२९

शतधार ओदन- (१) सैकड़ों जीवों की रक्षा करने वाला ।
(२) पतिपत्नी का ब्रह्मचर्य पालन द्वारा वीर्य रक्षा करते हुए रहना ।
'यं वां पिता पचति यं च माता
रिप्रान्निर्मुक्त्यै शमलाच्च वाचः
स ओदनः शतधारः स्वर्ग
उभे व्याप नभसी महित्वा ।
अ. १२.३.५.

शतनीय- (१) अनेक प्रकार के विषय भोगों की ओर ले जाने वाला (२) सहस्त्रों चित्तों तथा ज्ञानी पुरुषों का स्वामी
'सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा '
ऋ. १.१००.१२
(३) शत वर्षों में व्यतीत करने योग्य जीवन शतैः प्राप्तव्य -दया. (सैकड़ो से पाने वाले योग्य)
'जयावेदत्र शतनीथमाजिम् '
ऋ. १.१७९.३

शतपत्रः- (१) शतदलकमल, (२) शतदल कमल के समान उज्ज्वल निस्संग (३) सैकड़ों ऐश्वर्यों से पूर्ण बृहस्पति
'स हि शुचिः शतमत्रः स शुन्ध्युः '
ऋ. ७.९७.७

शतपत्रिका- अनेक पत्तों वाली

शतपद् - (१) शतं नमनशीलाः पाद वेगाः यस्मिन् (जिसमें गमनशील सैकड़ो चरणों का वेग हो)- दया. ।
(२) सौ वर्ष जीने वाला ।
'त्रिभी रथैः शतपद्भिः षडश्वैः '
ऋ. १.११६.४
छः अश्वों अर्थात् यन्त्र वाले सैकड़ो परों की गति वाले तीन प्रकार के रथों से .....।
अथवा, मन सहित पंच इन्द्रियों वाले , सौ वर्ष जीने वाले, शैशव, यौवन और नई बुढ़ौती रूपी रथों से ...

शतपर्वा- (१) सैकड़ो पोरुओं वाला ।
'वज्रेण शतपर्वणा '
ऋ. १.८०.६; ८.६.६, ७६.२, ८९.३, अ८.५.१५, १२.५.६६, २०.१०७.३, साम. १.२५७, २.१००२, वाज.सं. ३३.९६.
(२) जिस वज्र या अस्त्र में असंख्यात पर्व हो, (३) जिसमें असंख्य कर्म हो, (४) सैकड़ो अंगों वाला शस्त्रास्त्र, बल ।
'अधि सानौ नि जिघ्नते
वज्रेण शतपर्वणा '
ऋ. १.८०.६

शतपर्वा वज्र- (१) सैकड़ो पर्वों वाला, अपरिमित बल वाला, सैकड़ो टुकड़ो वाला वज्र, (२) शत्रुबल का निवारक साधन, (३) सेना बल यहां वज्र सेना का वाचक है -ज.दे.श. ।

शतपवित्राः - (१) सैकड़ों रश्मियों से पवित्र-आपः (जल) (२) सैकड़ो उत्तम संस्कारों से पवित्राचरण वाली ।
'शतपवित्राः स्वधयामदन्तीः '
ऋ. ७.४७.३; नि. ५.६
(३) सैकड़ों प्रकार से पवित्र करने वाले जल
'शतं आपः शतपवित्रा भवन्तु '
अ. १४.१.४०, आप.मं.पा. १.१.१०
(४) बहुत जलों वाली नदी, पवित्र का अर्थ जल भी है ।
बहुत जलों वाली (शतपवित्राः) स्वकार्यभूत अन्न से (स्वधया) मानवों को मत्त करती हुई (मदंन्तीः) नदियां....

शतभिषक् - शतभिषा नामक नक्षत्र ।
'आमेमहच्छतभिषग्वरीय '
अ. १९.७.५

शतभुजिः- सैकड़ों का पालक या पालिका ।
'पूर्भवा शतभुजिः '
ऋ. ७.१५.१४.

शतभुजिन् - (१) असंख्य सुखों का -दया. (२) सैकड़ों को पालने वाला ।
'शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात् '
ऋ. १.१६६.८

शतम् अक्षराणि - (१) जीवन के सौ वर्ष, (२) सैकड़ो दिनरात संवत्सर के अक्षर तत्व हैं ।
'षडस्य विष्ठाः शतमक्षराणि '
वाज.सं. २३.५८, श.ब्रा. १३.५.३.१९

शतमश्वाः - सौ व्यापन शील हृदयगत नाड़ियां
'शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः '
अ. १३.२.६,७

शंतमा- अतिसुखकारिणी ।
'भुवदग्ने शंतमा का मनीषा '
ऋ. १.७६.१, का.सं. ३९.१४

शतमानम् - सौ वर्ष की आयु
इन्द्रस्य रूपं शतमानमायुः '
वाज.सं. १९.९३, मै.सं. ३.११.९:१५४.१४, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा. २.६.४.६,

शतमूति - शतम् + ऊति । (१) अनेकों की रक्षा करने वाला, (२) अनेक प्रकार की सेना आदि रक्षा के साधनों से सम्पन्न इन्द्र, राजा या सेनापति ।
'प्रावद् विश्वेषु शतमूतिराजिषु '
ऋ. १.१३०.८
वह अनेक प्रकार के रक्षा साधनों से सम्पन्न सब शत्रुओं को उखाड़ देने वाले संग्रामों में अच्छी प्रकार रक्षा करें (प्रावत्) ।

शतयाजम् - सैकड़ों यज्ञ ।
'शतयाजं स यजते '
अ. ९.४.१८

शतयातुः- (१) एक ऋषि, (२) सैकड़ों वीरों को साथ लेकर चलने वाला,
(३) सैकड़ों को दण्डित करने वाला ।
(४) सब दुर्गुणों का नाशक (५) बहुतों को नष्ट करने वाला (६) पराशर का विशेषण । पराशर ने रक्षोघ्न यज्ञ किया था ऐसा कहा गया है ।

(७) अथवा-पराशर के पिता शक्ति ही शतयातु कह गए ।
'प्र ये गृहादममदुस्त्वाया
पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः '
ऋ. ७.१८.२१.
हे इन्द्र, वसिष्ठ का नाती पराशर, पराशर का पिता शतयातु शक्ति और वसिष्ठ आदि ऋषि जो तेरे साथ (त्वाया) घर पर घर जा (गृहात्) सोम पीकर या यज्ञों में अत्यन्त प्रसन्न हुए ।
अन्य अर्थ,
हे राजन्, ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी का पुत्र (पराशरः) सब दुर्गुणों का नाशक (शतयातुः) और आदित्य ब्रह्मचारी (वसिष्ठः) यदि तेरी नीति के कारण (त्वाया) गृहस्थाश्रम को पाकर (गृहात्) अत्यन्त प्रसन्न हुए (य अममदुः) ।

शतयामा- (१) सैकड़ों पुरुष से चलने योग्य ।
'सोमः कलशे शतयामना पथा'
ऋ. ९.८६.१६; अ. १८.४.६०; साम. १.५५७; २.५०२
(२) सैकड़ों प्रकार से जाने योग्य, (३) सौ वर्षों तक भोगने योग्य ।

शतयोनि- (१) अपरिमित सैकड़ों पदार्थों का कारण और आश्रय, (२) अनेक कार्यों का कारण भूत परमेश्वर ।
'सहस्रपाच्छतयोनिर्वयोधाः'
अ. ७.४१.२
(३) सैकड़ों आश्रयस्थानों का स्वामी वरुण (४) शत वरुण
शतयोनिरेव वरुणाः
श.ब्रा. १२.९.१.१४
जिसके अधीन सौ प्रजा के स्वयं नेता हों ।

शतदा- द्वि.व. । शत + रा । (१) सैकड़ों धन देने वाले स्त्री पुरुष-अश्विद्वय ।
(२) सुखं शीतलकरम्
(जल से भी बढ़कर शीतलतर होता है) ।
नीम्बू का नाम 'सन्तरा' है जो 'शतरा' का ही अर्थ रखता है ।

शतर्चाः- शत + अर्चस् (१) सैकड़ों दीप्तियुक्त पदार्थों से पूर्ण -पृथिवी
'वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा'
ऋ. ७.१००.३; मै.सं. ४.१४.५: २२१.९ तै.ब्रा. २.४३.५

शतरुद्रिय- (१) सैकड़ों रुद्र नामक पदाधिकारियों द्वारा प्राप्त करने योग्य (२) रुद्रों के निमित्त लेने योग्य, (३) सैकड़ों दुष्टों को रुलाने वाले वीर सेनापति के अधीन, (४) सेनापति पद के योग्य, (५) सैकड़ों प्राणों के स्वरूप में प्रकट, (६) सैकड़ो ज्ञानस्तुतियों को देने वाला
'शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानाम्'
वाज.सं. २१.४३.

शतवत् - सौ सौ शिष्यों वाला
'एते वदन्ति शतवत् सहस्रवत्'
ऋ. १०.९४.२

शतवत् सहस्रम् - (१) सौ गुणा एक सहस्र-एक लक्ष
'तेन सूभर्वं शतवत् सहस्रम्
गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय'
ऋ. १०.१०२.५; नि. ९.२३.
उस वृषभ से सुन्दर एक लक्ष गाएं मैं मुद्गल ने संग्राम में जीता ।-सा.
उस वृषभ से सात्विकान्नभोजी जितेन्द्रिय राजा ने (मुद्गलः) युद्ध में (प्रधने) लक्ष गाएं तथा प्रजाभक्षक पर धनापहारक शत्रुराजा को जीता ।
(२) एक सहस्र और एक सौ, एक सौ से युक्त सहस्र, ग्यारह सौ ।

शतवधा- सैकड़ो प्रकार से वध करने वाली ।
'मेनिः शतवधा हि सा'
अ. १२.५.१६

शतवल्शः- (१) सौ अंकुरों वाला बांस आदि काटने पर सैकड़ों शाखाओं में फूटने वाला वट आदि ।
'वनस्पते शतवल्शो वि रोह'
ऋ. ३.८.११, तै.सं. १.३.५.१, ६.३.३.३. मै.सं. १.२.१४; २३.९; का.सं. ३.२.; २६.३; तै.ब्रा. १.२.१.५, आप.श्रौ.सू. ५.२.४, ७.२.८, मा.श्रौ.सू. १.८.१.१२.

शतवल्शा- सैकड़ों शाखा वाली
त्वं शमि शतवल्शा वि रोह'
अ. ६.३०.२

शतव्रजा- (१) सैकड़ों मार्गों से जाने वाली-नदी (२) जलधारा (३) सैकड़ो अर्थों का अवगम कराने वाली वाणी ।

'शतव्रजा रिपुणा नावचक्षे'

ऋ. ४.५८.५; वाज.सं. १७.९३, का.सं. ४०.७; आप.श्रौ.सू. १७.१८.१.

(४) सैकड़ों कार्यों को चलाने वाली राजाज्ञा।

शतव्रध्न- सैकड़ों आश्रमों और बन्धन मर्यादाओं वाला

'शतव्रध्न इषुस्तव'

ऋ. ८.७७.७

शतवाजा- सैकड़ों अन्न, बल, ज्ञान वेगादि से युक्त इच्छाशक्ति, प्रेरणा, सेना या अन्न।

शतवार- (१) सैकड़ों शत्रुओं का वारण करने में समर्थ सेनापति, (२) एक ओषधि जिसे आज कदाचित् शतावर या शतावरी कहते हैं, (३) एकमणि

शतवारो अनीनशत्

अ. १९.३६.१,३

इस ओषधि के मूल से पीड़ा, काण्ड से राजयक्ष्मा और कुष्ट आदि त्वचा रोग दूर होते हैं। यह गन्ध या वायु द्वारा लग जाने वाली बीमारियों को और कुत्तों द्वारा फैल जाने वाले रोगों को भी दूर करती है।

शतवाही- सहस्रों कार्य करने में समर्थ

'नास्य जाया शतवाही'

अ. ५.१७.१२.

शतावान्- सैकड़ों ऐश्वर्यों और सैकड़ों वीरों का स्वामी।-इन्द्र

'वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा'

ऋ. ६.४७.९

शतविचक्षण - (१) सैकड़ों गुण दिखाने वाली ओषधि।

'बह्वीः शतविचक्षणाः'

ऋ. १०.९७.१८; अ. ६.९६.१, वाज.सं. १२.९२, ऐ.ब्रा. ८.२७.५; साम.मं.ब्रा. २.८.३,

(२) सैकड़ों रोगों से दूर करने में जिस औषधि का वर्णन हो।

शतवृष्ण्य- अपरिमित बलों से युक्त।

'पर्जन्यं शतवृष्ण्यम्'

अ. १.३.१.

शतशारदः- (१) सौ वर्षों का जीवन।

'अस्पार्षमेनं शतशारदाय'

ऋ. १०.१६१.२; अ. ३.११.२; २०.९६.७

(२) सौ वर्ष जीवन देने वाली औषधि

'तन्म ऋतं पातु शतशारदाय'

ऋ. ७.१०१.६

'सहस्राक्षेण शतशारदेन'

ऋ. १०.१६१.३; अ.२०.९६.८

'दीर्घायुत्वाय शतशारदाय'

अ. १.३५.१; ३.५.४;४.१०.७; ५.२८.१; ६.११०.२; ८.५.२१; १२.२.६ ; १४.२.७५; १८.४.५३; मै.सं. २.३.४; ३१.१० का.सं. ४०.३

शतं शरदः- एवै शरद् ऋतु अर्थात् सौ वर्ष। ऋग्वैदिककाल में शरत् शब्द ही वर्ष का द्योतक था क्योंकि शरद् से ही वर्ष का अन्त समझा जाता था। पीछे वर्षा ऋतु वर्ष का अन्त समझा जाने लगा।

'अस्मे शतं शरदो जीवसे धाः'

ऋ. ३.३६.१०

शतशल्या - सैकड़ों फल वाला वाण, (२) सैकड़ो व्याधियों वाला शरीर।

'शतशल्यामपब्रवत्'

अ. ६.५७.१

शतशाखा- (१) सैकड़ों शाखा वाला अपामार्ग ओषधि (२) शत्रुनाशक अपा मार्ग विधान।

'विभिन्दती शतशाखा'

अ. ४.१९.५

शतं - सप्त च धामानि - (१) १०७ स्थान, (२) शरीर के १०७ मर्मस्थान (३) ओषधियों के १०७ नाम

'मनै नु बभ्रूणामह
शतं धामानि सप्त च'

ऋ. १०.९७.१; वाज.सं. १२.७५, तै.सं. ४.२.६.१, मै.सं. २.७.१३ :९३.२; का.सं. १३.१६; १६.१३, श.ब्रा. ७.२.४.२६; नि.९.२८.

मैं पीली ओषधि के १०७ नाम या शरीर के १०७ मर्म स्थान को जानता हूँ।

शतस्वी- (१) सैकड़ों धनों का स्वामी, (२) सैकड़ों को अपना बन्धु बनाने वाला।

'युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी'

ऋ. ७.५८.४

शतसाः- (१) सैकड़ों सुखों का दाता।

'गोषाः शतसा न रंहिः'

ऋ. १०.९५.३

(३) सैकड़ों ज्ञान देने वाला ।
'इदं वचः शतसाः संसहस्रम्'
ऋ. ७.८.६
(३) सैकड़ों अर्थात् प्रचुर उदकों का दाता दधिक्रा नामक देवता या मेघ का विशेषण ।
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा
पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि'
ऋ. ४.३८.१०; तै.सं. १.५.११.४, नि. १०.३१.
जो दधिक्रा देव या मेघ सहस्रों सैकड़ों उदकों का दाता है, जो गतिमान एवं अरणशील है, हमारी स्तुतियों का जल संभक्त करें ।

शतसा- (१) शतसानिनी, बहुविधा, सैकड़ों प्रकार का । शत + सन् + विट् (शील अर्थ में) + आ = शतसा ।
सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिः'
ऋ. १०.१७८.३; ऐ.ब्रा. ४.२०.३१, नि. १०.२९,
इस तार्क्ष्य की अनेकों प्रकार की गति है ।

शतसेय- (१) शतसंख्या से परिमित आयु की पूर्ति, (२) सैकड़ों ऐश्वर्यों की प्राप्ति
'इमां धियं शतसेयाय देवीम्'
ऋ. ३.१८.३; ३.१५.३,

शतहस्त- (१) सैकड़ों हाथों वाला (२) सैकड़ों श्रमीजनों का स्वमी ।
'शतहस्त समाहर'
अ. ३.२४.५

शतहायन- सौ वर्षों की आयु वाला ।
'जरसा शतहायनः'
अ. ८.२.८

शतामघः- सहस्रों ऐश्वर्य वाला ।
'सहस्रोतिः शतामघः'
ऋ. ९.६२.१४

शतं हिमाः - (१) सौ हिमऋतु, सौ वर्ष
'शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम'
अ। १२.२.२८, नि. ६.१२.

शतहिमा- स्त्री । सौ वर्षों की आयु वाली ।
'तवमिडा शतहिमासि दक्षसे'
ऋ. २.१.११

शतात्मा- (१) सौ वर्षों तक जीने वाला
शतात्मा चन जीवति ।
ऋ. १०.३३.९
(२) सैकड़ों स्थानों में व्याप्त सूर्य, (३) सैकड़ों प्रजाजनों और भृत्यों को आत्मा के समान प्रिय ।
'सूरो न रुरुक्वान् शतात्मा'
ऋ. १.१४९.३, साम. २.११२४.

शतानीक - (१) सैकड़ो बलों और सेनाओं का स्वामी ।
'शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया'
ऋ. ८.४९.२; अ. २०.५१.२; साम. २.१६२
(२) सैकड़ो अनीक बल सामर्थ्यों और आयु के शत वर्षों तक जीने वाला शरीर
'शतानीकाय सुमनस्यामानाः'
अ. १.३५.१; वाज.सं. ३४.५२.

शतामघः- सैकड़ों ऐश्वयों वाला इन्द्र परमेश्वर
'न शताय शतामघ'
ऋ. ८.१.५; साम. १.२९१.
'सहस्रोते शतामघ'
ऋ. ८.३४.७
सैकड़ों प्रकार की दुर्गति ।
'शतापाष्ठां नि गिरति'
अ. ५.१८.७

शतारित्रा- (१)सैकड़ों अरित्रों से युक्त जलयान, (२) संकट से पार जाने के सैकड़ों उपायों से युक्त नाव या धर्मसभा ।
'शतारित्रां स्वस्तये'
अ. १७.१.२५,२६, वाज.सं. २१.७, तै.सं. १.५.११.५, का.सं. २.३ , साम.मं.ब्रा. २.५.१४

शतारित्रा नौः - (१) सौ अरित्रों वाली नौका, (२) सैकड़ों प्राणियों को त्राण करने और समस्त संसार को प्रेरणा और संचालन करने में समर्थ ईश्वरीय शक्ति ।
(३) शतवर्षजीवी शरीर ।
'यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तम्
शतारित्रां नावमातस्थिवांसम्'
ऋ. १.११६.४
विद्यावान् शिल्पवान् पुरुष या अश्विद्वय सैकड़ों चक्षुओं वाली अथवा अनेक चक्षुओं वाली नाव पर बैठे हुए ऐश्वर्य भोक्ता स्वामी तथा ऐश्वर्य को घर लाते हैं ।
अन्य अर्थ,
शतवर्षजीवी देह पर बैठे हुए कर्मफल भोक्ता आत्मा को प्राण और अपान (अश्विना) या गुरु और परमेश्वर परमशरण मोक्ष तक पहुंचाते हैं

(अस्तम्) ।
शतावय - सैकड़ों अवि-अर्थात् भेड़ों का धन ।
'उत गव्यं शतावयम्'
ऋ. ५.६१.५
शताश्रि- (१) सैकड़ों पर आश्रित (२) सैकड़ों का नाश करने वाला अस्त्र
'सहस्रभृष्टिं ववृतच्छताश्रिम्'
ऋ. ६.१७.१०
शताश्व- (१) सौ घोड़ों से युक्त ।
'स्थूरं राधः शताश्वम्'
ऋ. ८.४.४९; नि. ६.२२.
स्थूल से घोड़ो से युक्त धन को ....
(२) सैकड़ों घोड़े -सा.
(३) प्रचुर पराक्रम-दया.
(४) वीर्य
शतिनी- (१) सैकड़ों उत्तम कार्यों वाली शक्ति, (२) जिस क्रिया में सैकड़ों गतियां हो ।
शत्रि - दुःखों का नाश करने वाला ।
'शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः'
ऋ. ५.३४.९
शत्रु- शातयति इति शत्रुः (रुशातिभ्यां क्रुन्) । (क) शात + क्रुन् = शत्रु । बाहुलक नियम से सिद्ध (ख) अथवा, शम् + क्रुन् = शत्रु,
(ग) शद् + क्रुन् = शत्रु । अर्थ है - शमयिता, शातयिता, दुःख देने वाला शत्रु ।
'किं मां निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः'
ऋ. १०.४८.७; नि. ३.१०
सभी असमर्थ या ईश्वर में विश्वास न करने वाले शत्रु क्या निन्दा कर सकते हैं ।
शत्रुतूर्य- शत्रु का नाश ।
'शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्'
ऋ. ६.२२.१०, अ. २०.३६.१०
शत्रूयत् -. (१) शत्रु + कयच् + शतृ = शत्रूयत् । शत्रुत्वं कामयमानः (शत्रुत्व की कामना करता हुआ) ।(२) शत्रुवत् आचरण करने वाला ।
'शत्रुयतामधरा वेदनाकः'
ऋ. १.३३.१५
शत्रुवत् आचरण करने वालों के लिए निकृष्ट कोटि की पीड़ा (अधरा वेदना) ।
शतोति- (१) शत + ऊति । सैकड़ों दीप्तियुक्त बिम्ब, (२) सैकड़ों रक्षा साधनों से या उत्तम भोगों से युक्त
रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम्'
ऋ. ६.६३.५
शतौदना - (१) प्रजापतिवर्गा ओदना-
श.ब्रा. १३.३.६.७
(२) सैकड़ों वीर्य वाली और शत्रुओं का नाश करने वाली शक्ति
(३) जिस शक्ति में सैकड़ों प्रजापालक पुरुष विद्यमान हो , वह साम्राज्य शक्ति शतौदना है ।
(४) यह पृथ्वी शतौदना गौ है ।
'अथैष गोसवः स्वराज्यो यज्ञः
तै.ब्रा.
स्वराज्य प्राप्त करने का विशाल यज्ञ गोसव या 'गोमेध है ।
'इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना'
अ. १०.९.१
शन्तनु- (१) एक वैदिक राजा (२) शान्ति का विस्तार । शम् + तनु ।
'यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितः'
ऋ. १०.९८.७, नि. २.१२.
'शन्तनुः कनीयान् अभिषेचयाञ्चके ' अर्थात् कनिष्ठ भ्राता होते हुए भी शन्तनु ने अपने को अभिषिक्त किया । देवापि ने तप कर ब्राह्मणत्व प्राप्त किया (देवापिः तपः प्रतिपदे) । व्युत्पत्ति-शं तनोऽस्तु इति वा,, शम् अस्मै तन्वा अस्तु इति वा । अर्थात् , शरीर का कल्याण हो- ऐसा आशीर्वाद दिया जाता है । या ऐसी कामना की जाती है ।
(३) शन्तनु नामक वैदिक राजा जिसके पुरोहित देवापि ने वृष्टि कामयज्ञ होता का काम किया था-सा. । (४) राष्ट्र के लिए शान्ति की इच्छा रखने वाला राजा । ज.दे.श.- दे 'अदीधेत्' ।
'यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितो
होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत्'
ऋ. १०.९८.७
शन्तमः- (१) अत्यन्त कल्याण कारक ।
'त आ गता वसा शंतमेन'
ऋ. १०.१५.४, अ. १८.१.५१, वाज.सं: १९.५५, तै.सं. २.६.१२.२, मै.सं. ४.१०.६:१५६.१३; का.सं. २१.१४.
वे आप अत्यन्त कल्याण कारक रक्षण के साथ

आवें ।
(२) अति शान्तिदायक
'आ शंतम शन्तनाभिरभिष्टिभिः'
ऋ. ८.५३.५; ऋ.खि.७.३४.५; साम. १.२८२.

शन्तमा- शान्तिकारी ।
'अच्छा मही बृहती शंतमा गीः'
ऋ. ५.४३.८

शन्ताति- शान्ति देने वाला उपाय ।
'आ त्वागमं शन्तातिभिः'
ऋ. १०.१३७.४; अ. ४.१३.५

शन्ताती- शम् + तातित् = शन्ताति । (१) सुखकर्ता (द्वि.व.) - अश्विद्वय का विशेषण (३) शान्ति और सुख देने वाले ।
'याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे'
ऋ. १.११२.२०

शन्तिवा - (१) शान्ति कारिणी कल्याण कारिणी ।
'वाचं वदतु शन्तिवाम्'
अ. ३.३०.२
(२) शान्ति सम्पन्न पृथिवी
'शन्तिवा सुरभिः स्थोना'
अ. १२.१.५९

शपति- स्पृशति (छूता है) । शप् धातु स्पर्श करना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

शपथयावनी - ओषधि के अंशों के सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम पथ अर्थात् उनका सूक्ष्म गति या प्रवेश कर मिलना (२) रोगी के आक्रोश कष्ट और चीत्कारों को दूर करने वाली ।
'सत्यजितं शपथयावनीम्'
अ. ४.१७.२.

शपथयोपनी - निन्दायुक्त वचनों का मूल नाश करने वाली
'वीरच्छपथयोपनी'
अ. २.७.१

शपथ्य - (१) वह रोग जिसमें मनुष्य बकझक करे, अटपट बोले ।
'मुञ्चन्तु मा शपथ्यात्'
ऋ. १०.९७.१६; अ. ६.९६.२; ७.११२.२, ११.६.७; वाज.सं. १२.९०
(२) दूसरे के प्रति दुर्वचन बोलने से उत्पन्न ।

शपथीयत्- पर निन्दा कारी
'शपथः शपथीयते'
अ. ५.१४.५; १०.१०.५

शपन - कुवचन ।
'या शशाप शपनेन'
अ. १.२८.३; ४.१७.३.

शप्ता- शाप देने वाला, कठोर वचन बोलने वाला
शप्तारमत्र नो जहि
अ. ६.३७.२

शफ- (१) खुर, (२) अश्व, (३) आक्रोश, आह्वान् (४) ललकारने वाला सैन्य (५) समवेत शब्दों या वर्णों से बना पद
'ये पत्वभिः शफानाम्'
ऋ. ५.६.७
(६) आठवां भाग
'यथा कलां यथा शफम्'
ऋ. ८.४७.१७; अ.६.४६.३
(७) शम् फणति इति शफः । शम् + फण् + ड = शफ । अर्थ - कल्याणप्रद व्यवहार -दया. ।
(८) शान्ति दायक आदेश करने वाला ज्ञान वचन
इमा शफानां सनितुर्निधाना
ऋ. १.१६३.५; वाज.सं. २९.१६, तै.सं. ४.६.७.२; का.सं. ४०.६
ये तुझे शान्ति का ज्ञान प्रदान करने तथा तेरी सेवा करने योग्य उपास्य गुरु के (सनितुः) कल्याणकारी वचनों के निधान हैं ।

शफच्युत- (१) खुर से निकली धूलि ।
'शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्याम्'
ऋ. १.३३.१४
अश्वों के खुरों से उठा धूलि पटल आकाश में फैल जाय तो.....

शफवत् - खुरों वाला जीव ।
'पद्वद् विवेद शफवन्नमे गोः'
ऋ. ३.३९.६

शफारुज् - (१) निन्दा और कुत्सित वचनों से पीड़ा देने वाला ।
'शफारुजं येन पश्यसि यातुधानम्'
ऋ. १०.८.७.१२. अ. ८.३.२१.९
(२) खुरों से चोट पहुंचाने वाला
येनारुजासि मघवञ्शफारुजः'
ऋ. १०.४४.९, अ. २०.९४.९

(३) शफारुज् प्रजाजनों को गालियों और निन्दा वचनों से पीड़ित करने वाला ।
'शफारुजो येन पश्यसि यातुधानान्'
अ. ८.३.२१.

शफौ- (१) दो खुर (२) सुर के समान परस्पर मिलकर रहने तथा वेग से जाने वाले स्त्री पुरुष-अश्विद्वय
'शफाविव जर्भुराणा तरोभिः'
ऋ. २.३९.३

शबल- (१) बल को प्राप्त करने वाला तीव्र गतिमान यन्त्र ।
'शबला वैद्युताः'
वाज.सं. २४.१०; मै.सं. ३.१३.११: १७०.१०; आप.श्रौ.सू. २०.१४.६
(२) कच्चा पक्का
'आमे सुपक्वे शबले विपक्वे'
अ. ५.२९.६

शब्दिनः- शब्द करने वाले दुःखदायी कारण ।
महान्तो ये च शब्दिनः'
अ. १९.३६.३

शम् - (१) शान्तिदायक
'शमापो अभयं कृतम्'
(२) शम् + क्विप् = शम् । सुख । (३) सुखकर (४) कल्याण
'मन्यासै शं च नस्कृधि'
वाज. ३४.८; तै.सं. ३.३.११.४; मै.सं. ३.१६.४:१८९.१०; का.सं. १३.१६, आश्व. श्रौ.सू. ४.१२.२; शां.श्रौ.सू. ९.२७.२; नि. ११:३० ।
और हमारा कल्याण कर ।
आधुनिक अर्थ- शम् धातु का अर्थ शान्त होना, रुक जाना, समाप्त हो जाना है । प्रेरणार्थक होने पर नाश करना, शान्त करना, रोकना, पराजित करना, बुलाना, प्यास बुझाना, अव्यय होने पर कल्याण; सुख, स्वास्थ्य, मंगल कामना करने में प्रयुक्त ।

शंताति- कल्याणकारी ।
'तदाञ्ज नत्वं शंताते'
अ. १९.४४.१

शंभविष्ठ- (१) सबसे अधिक शान्ति सुख देने वाला ।
'यः शंसते स्तुवते शंभविष्ठः'
ऋ. ५.४२.७
उत स्तुतो मघवा शंभविष्ठः'
ऋ. १.१७१.३

शंभविष्ठा- द्वि.व. । शान्ति एवं कल्याण उत्पन्न करने वाले स्त्री पुरुष या अश्विद्वय ।
'हस्ताविव तन्वे शम्भविष्ठा'
ऋ. २.३९.५

शमल- (१) मालिन, (२) कलंक जनक घृणित कार्य ।
'यद् दुष्कृतं यच्छमलम्'
अ. ७.६५.२, १४.२.६६
'यद् रिप्रं शमलम्'
अ. १२.२.४०

शमः - (१) शान्ति तपस्विजन (२) शान्ति ।

शमः वृषभः- (१) शान्तिदायक जल को बरसाने वाला मेघ (२) अत्याचार आदि शमन करने वाला पुरुष

शम्नाति - हिनस्ति (हिंसा करता है । शम् धातु हिंसार्थक भी है ।

शम्बः- (१) शान्ति का साधन तप, (२) शत्रुशमन करने का साधन
'उग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन'
ऋ. १०.४२.७; अ. २०.८९.७; मै.सं. ४.१४.५;२२२.३, तै.ब्रा. २.८.२.७; नि. ५.२४.
(३) जाल-रश्मि । 'शम्ब' (संबन्धन अर्थ में) + अच् = शम्ब । जिससे मछुआ मछली आदि फंसाते है - जाल
'शम्बीव नावमुदकेषु धीरः'
अ. ९.२.६

शम्भवः - प्रजाओं को शान्ति प्राप्त कराने वाली ।
'नमः शम्भवाय च मयोभवाय च'
वाज.सं. १६.४१

शम्भविष्ठा- द्वि.व. । (१) कल्याण करने में समर्थ स्त्री पुरुष-अश्विद्वय, (२) अति सुखकारक ।
'प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा'
ऋ. ५.७६.२, साम. २.११०३

शम्भु- (१) सुख कारक ।
(२) शिव का एक नाम

शम्भू - (१) प्रजाओं को शान्ति सुख देने का उपाय, (२) उद्यान तड़ाग आदि का विशेषण (३) द्यौ, द्युलोक

शम्भूश्छन्दः
वाज.सं. १५.४, तै.सं. ४.३.१२.२, मै.सं. २.८.७:१११.१३, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.५.२.३,

शम्य- (१) शान्त गुणों से युक्त, (२) शम दम से सम्पन्न आप्त पुरुष
'उद्व ऊर्मिः शम्या हन्तु'
ऋ. ३.३३.१३, अ. १४.२.१६

शम्या- स्त्री । (१) काष्ठ दण्ड, लकड़ी का दंडा ।
'ते ते भिनद्मि शम्यया'
अ. ६.१३८.४
(२) शत्रुओं को शमन करने वाली राजशक्ति
'शम्या ह नाम दधिषे'
अ. १९.४९.७
(३) शान्ति युक्त वाणी ।
'शम्यया परि धावति'
अ. २०.१३६.१०; शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.५
(४) कर्म कुशल स्त्री

शम्ब- (क) शम् + वन् = शम्ब । (ख) शात् + वन् + शम्ब (पृषोदरादिवत्) । अर्थ (१) वज्र । शम्ब इति वज्रनाम शमयतेर्वा शातयते र्वा (शम्ब वज्र का वाचक है जो 'शमु' या 'शात' धातु से 'वन्' प्रत्यय कर बना है । वज्र शत्रु को परास्त करता या कष्ट देता है ।
'आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरम्
उग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र
कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम्'
ऋ. १०.४२.७; अ. २.८९.७; मै.सं. ४.१४.५: २२२.४; तै.ब्रा. २०.८.२.७.
हे बहुतों से आहूत इन्द्र, तेरा जो उग्र वज्र है (यः उग्रः शम्बः) उस वज्र से शत्रु को हमारे निकट से दूर भगा (तेन शत्रुम् आरात् दूरम् अपबाधस्व) और हमारे लिए यव एवं पशुओं के रूप में धन दे (अस्मे यवमत् गोमत् धेहि) तथा मुझ स्तोता या आस्तिक के लिए (जरित्रे) ज्ञान रत्नविद्या प्रदान कीजिए (वाजरत्नां धियं कृधि)।
आज भी 'bomb' शब्द का प्रयोग 'शम्ब' के अर्थ में होता है ।

शम्बर- (१) विद्वानों में करने योग्य ज्ञान राशि, वेद या ब्रह्मचर्य, (२) चन्द्रमा, (३) जल, (४) अच्छी प्रकार से गोपनीय ज्ञान राशि, (५) वेद, (६) ब्रह्मज्ञान मय आवरक शब्द ब्रह्म
यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तम्
चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्'
ऋ. २.१२.११, अ. २०.३४.११
जो चालीसवें वर्ष के बाद पालन शक्ति एवं पूर्णज्ञान से युक्त विद्वानों में करने योग्य ज्ञानराशि वेद को या ब्रह्मचर्य के पूर्णबल को प्राप्त कराता है । -ज.दे.श.
जो चन्द्रमा को चालीसवें वर्ष में पुनः उसी स्थान में कर देता है ।
(७) संवर + अच् = शम्बर । मेघ ।
'अधूनोत् काष्ठा अवशम्बरं भेत्'
ऋ. १.५९.६; नि. ७.२३.
विद्युत् या वैश्वानर अग्नि के जलों को प्रवाहित किया और मेघ को विदीर्ण किया ।
'संवर' धातु वारणार्थक है ।
(८) चन्द्रमा, (९) शम्बर नाम्नी पहाड़ी जाति, (१०) जल को वर्षा के रूप में बरसाने से रोक रखने वाला बाधक पदार्थ, (११) ब्रह्मचर्य का पूर्णबल, (१२) शान्तिप्रदान करने वाला सबके वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ स्वरूप, (१३) शत्रुगण और प्रजावर्ग को शमन करने वाला । शान्तिदायक बल ।
'यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तम्'
ऋ. २.१२.११, अ. २०.३४.११
सूर्य जैसे पर्ववाले मासों में वर्तमान चन्द्रमा को चालीसवें वर्ष में पुनः पूर्व स्थान में ही पाता है ।
(१४) शम्ब + अरन् = शम्बर
(१५) शस्त्र अस्त्रधारी प्रबल सुसंबद्ध सुदृढ़ शत्रु,
(१६) आत्मा को घेर लेने वाला
'यः शम्बरं यो अहन् पिप्रुमव्रतम्'
ऋ. १.१०१.२
जो इन्द्र राजा या आचार्य मेघ, सुदृढ़ शत्रु तथा आत्मा को घेर लेने वाले आवरण को नष्ट करता, जो पेट तथा अव्रती को नष्ट करता है....(पिप्रुम् अव्रतम् अहन्) ।

शम्बरहत्य - (१) शान्ति सुख के नाशक दुष्ट पुरुषों को नष्ट करने का कार्य,

(२) शम्बर को नष्ट करने का कार्य
(३) युद्ध जिसमें बल की हत्या होती है ।

शमि - (१) कार्य
'व्यानट् तुर्वणे शमि'
ऋ. ८.४५.२७
(२) काम करने वाला, (३) शान्तिदायक

शमित - शम् + इत । महान् सुख शान्ति प्रदान करने वाला ।
'शमिताय स्वाहा'
अ. १९.४२.२

शमिता - (१) कल्याण करने वाला
अधिग्रुश्चापापश्च उभौ देवानां शमितारौ ।
तै.ब्रा. ३.६.६.४
मृत्युस्तदभवद् धाता शमितोग्रो विशांपतिः'
तै.ब्रा. ३.१२.९.६
(अध्यक्ष, निष्पाप राजा, प्रजापालक, दुष्टों को दण्ड देने वाला पृथ्वी के शमिता हैं- जो विभाग कर प्रजा को बांटते और खेती करते हैं ।) ।
'ये ते देवि शमितारः
पक्तारो ये च ते जनाः'
अ. १०.९.७
(२) तीन अग्नियों में एक-दक्षिणाग्नि का वाचक । अन्य दो अग्नि हैं-गार्हपत्य और आहवनीय । गार्हपत्य को वनस्पति और अग्नि देव भी कहते हैं ।
'वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः
स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन'
ऋ. १०.११०.८, अ. ५.१२.१२; वाज.सं. २९.३५; मै.सं. ४.१३.३: २०२.१४; का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि: ८.१७.
गार्हपत्य अग्नि (वनस्पतिः) दक्षिणाग्नि (शमिता) और आहवनीय अग्नि (देवः अग्निः) मिष्ट और घृतके साथ (मधुना घृतेन) हवि का आस्वादन करावे (हव्यं स्वदन्तु) ।

शमितारा - (१) दो शान्तिपूर्ण कार्य करने वाले बाहु ।
सोमस्य या शमितरा सुहस्ता'
ऋ. ५.४३.४

शमी - (१) कर्म, (२) उत्तम कर्म निष्ठा वाला
आ त्वा शमी शशमानस्य शक्तिः
ऋ. ४.२२.८
त्वां भ्रात्राय शम्या शम्या तनूरुचम्'
अ. २.१.९
(३) सेमल का पेड़, (४) शत्रुओं को शमन करने वाली शक्ति (५) शान्त उद्वेगरहित धीर स्त्री ।
'शमीमश्वत्थ आरूढ़'
अ. ६.११.१
(६) शम् + इन् + ङीष् = शमी । शम्यन्ति अनमा अनिष्टानि (इससे अनिष्ट शान्त होते हैं । अतः यह शमी है,) यज्ञ, (७) व्यापार कर्म ।
'विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतः'
ऋ. १.११०.४; नि. ११.१६
कर्मों, यज्ञों या व्यापार कर्मो को क्षिप्र कारिता से कर मेधावी, यज्ञ धिष्ठाता या व्यापारी वर्ग.... (वाघतः), अथवा ज्ञान विज्ञान से युक्त वाणी को धारण करने वाले, शान्तिदायक कर्मों का आचरण करने वाले, (शमी) सत्यज्ञान से सूर्यवत प्रकाशित होने वाले ।
(८) शान्तिदायक साधना
'शमीभिर्यज्ञमाशत'
ऋ. १.२०.२
वे शान्तिदायक साधनाओं से सर्वोपास्य परमेश्वर के स्वरूप को (यज्ञम्) प्राप्त करते हैं (आशत) । आधुनिक अर्थ-शमी वृक्ष, सेमल का पेड़ ।
(९) शान्तिदायक कर्मों का आचरण करने वाला ।
(१०) शान्ति युक्त साधना ।
इच्छाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया'
ऋ. १.८३.४; अ. २०.२५.४
(११) शमी वृक्ष जिसकी लकड़ी से अग्ग उत्पन्न होती है ।

शमीध्वम् - शमयध्व । म् 'संज्ञायतं (वध करो) ।
'अध्रिगो शमीध्वं सुशमि
शमीध्वं शमीध्वमध्रिगो'
मै.सं. ४.१३.४:२०४.३, का.सं. १६.२१, ऐ.ब्रा. २.७.११, तै. ब्रा. ३.६६.४, आश्व.श्रौ.सू. ३.३.१, शां.श्रौ.सू. ५.१७.१०, कौ.सू. ६९.६, नि. ५.११.

शमीनहुषी - कर्मों द्वारा बद्ध स्त्री पुरुष ।
'धिया शमीनहुषी अस्य बोधताम्'
ऋ. १०.९२.१२

शम्बी - शम्ब (संवन्धन अर्थ में) + इनि + शम्बिन्। केवट, धीवर, मल्लाह, मछुआ।
'शम्बीव नावमुदकेषु धीरः'
अ. ९.२.६

शय - (१) सोया हुआ।
शयो इह इव
अ. २०.१३१.१६
(२) शी (सोना) + अच् = शय। सोने का स्थान, सेज,
(३) आश्रम,
(४) अग्नि रखने का स्थान।
'शये वव्रिश्चरति जिह्वायदन्'
ऋ. १०.४.४.
वरण किए हुए आप (वव्रिः) वाणी द्वारा शिक्षा देते हुए (जिह्वया दन्) आश्रम में (शये) विचर रहे हैं (चरति) ज.दे.श.।
आहवनीय अग्नि नाम का तेरा विशेषात्मा (वव्रिः) हस्तपरिमित स्थान में (शये) हवियों को खाता हुआ जाता रहता है।

शर्यात् - (१) एक वैदिक राजा, (२) हिंसक पुरुषों पर चढ़ाई करने वाला, (३) शरों और शस्त्रा स्त्रों सहित चढ़ाई करने वाला सेना पति -ज.दे.श.।
'याभिः शर्यातमवथो महाधने'
ऋ. १.११२.१७
जिन साधनों से संग्राम में शर्यात को या हिंसक पुरुषों पर चढ़ाई करने वाले की रक्षा करते हो।

शयते - शेते (सोता) 'शी' धातु के लट् पु पु. ए.व. में 'शयते' रूप होता है।
'अहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः'
ऋ. १.३६.५
छिन्न बाहु मेघ या वृत्रासुर (अहिः) जल रूप में पृथ्वी के निकट सम्पर्क में आ (पृथिव्याः उपपृक्)पृथ्वी पर सोता है (शयते)।

शयथ - (सं.)। सुखपूर्वक शयन
'पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित्'
ऋ. ६.१८.८

शयाण्डकः - शयन से सुख कराने वाला
'शार्गः पृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः'
वाज.सं. २८.३३, मै.सं. ३.१४.१४: १७५.६

शया - (१) अव्यक्त रूप में व्यापक दिशा, (२) शान्त जलादि पदार्थ, (३) सोती हुई पत्नी (४) प्रसुप्त या शान्तभाव से विद्यमान प्रजा, (५) प्रसुप्त अव्यक्त प्रकृति विकार।
'शये शयासु प्रयुतो वनानु'
ऋ. ३.५५.४

शमानः - (१) सोया हुआ पड़ा हुआ
'त्यं चिदित्था कत्पयं शयानम्'
ऋ. ५.३२.६; नि. ६.३
इस प्रकार से या अन्तरिक्ष में (इत्था) सुखकर जल वाले मेघ में पड़े हुए या सोए हुए वृत्र को भारा -सा.
सुखकारी जल देने वाले मेघ को (कत्पयम्) जो अन्तरिक्ष में पड़ा हुआ है (इत्था शयानम्) सूर्य छिन्न भिन्न कर देना चाहिए। -दया.।

शयानः दानुः - (१) सोता हुआ दानु (२) मर्मच्छेदी हृदय में अव्यक्त रूप से रहने वाला अज्ञान (३) छिपा भीतरी और बाहरी शत्रु।
'दानुं शयानं स जनास इन्द्र'
ऋ. २.१२.११, अ. २०.३४.११

शंयु - (१) शान्ति वचन, (२) प्रजा सुख कारक शान्ति कर्म
'शंयुना पत्नी संयाजान्'
वाज.सं. १९.२९
(३) शम् + यु = शंयु। कल्याण की कामना करने वाला।
'अथा नः शं योररपो दधात'
ऋ. १०.१५.४; वाज.सं. १९.५५, मै.सं. ४.१०.६: १५६.१३; का.सं. २१.१४, नि. ४.२१.
और हमारे लिए आप कल्याण कारी का पापाभाव्र या धर्मनिष्ठा दें।
(४) बृहस्पति के पुत्र शंयु ऋषि (५) सदाचारी शान्त विद्वान् - दया.।
'तच्छं योरावृणीमहे
गातुं यज्ञाय गातुं यज्ञपतये'
ऋ.खि.१०.१९१.१५, तै.सं. २.६.१०.३, मै.सं. ४.१३.१०:२१२.१४, श.ब्रा. १.९.१.२७, तै.ब्रा. ३.५.११.१, तै.आ. १.९.७; ३.१, नि. ४.२१.
हम उस सदाचारी शान्त विद्वान् के अपने यज्ञ में आने को और यज्ञपति के समीप पधारने की याचना करते हैं-दया.।
हम शंयु के निकट यह प्रार्थना करते हैं कि यज्ञ

का देवों के प्रति गमन हो (गातुं यज्ञाय) और यजमान का देवों के प्रति गमन हो (गातुं यज्ञपतये)।

शयु - (१) शिशु

'दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गाम्'

ऋ. ६.६२.७

(२) शान्ति चाहने वाला

(२) शिशुवत् अज्ञानी

अपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना

ऋ. १०.३९.१३

शीङ् (शयन करना) + उ = शेयु। सब के भीतर प्रसुप्त सत्ता रूप से विद्यमान परमेश्वर (५) जगत् को प्रलय में शान्त प्रसुप्त रूप से सुला देने वाला (६) शत्रुओं को समर में सुलाने वाला।

'द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे'

ऋ. १.३१.२

(७) सुख से सोने वाला, (८) सब को शान्ति दायक सुख से शयन कराने वाला राजा।

'याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये
याभिः पुरा मनवे गातुमीपथुः'

जिन साधनाओं से सुख से सोने वाले प्रजाजन को या सबको शान्तिदायकसुख से शयन कराने वाले राजा को (शयुम्) विविध दुःखों से रहित मननशील पुरुष और पति राजा को (अत्रये मनवे) जाने के मार्ग, विज्ञान भूमि आदि प्राप्त कराते हो (मातुम् ईषयुः)।

शंयु - सुखंयुः। शम् + युस् = शंयुः। शम् सुख का वाचक है। अर्थ है - सुख चाहने वाला। शम् का अर्थ सुख और यु का अर्थ दुःख से मुक्ति देने वाला या भय को दूर करने वाला किया गया है।

शयुत्रा - शयु + त्रा = शयुत्रा। शीङ् + उ= शयु। (१) साथ सोने वाला, (२) यजमान -सा. (३) परम प्रिय साथी, मित्र संगी -ज.दे.श.

'को वा शयुत्रा विधवेव देवरम्
मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ'

ऋ. १०.४०.२, नि. ३.१५.

हे स्त्री पुरुषो, या अश्विद्वय, जैसे विधवा देवर से और स्त्री पति से मिल सन्तान उत्पन्न करती है उस तरह कौन यजमान वेदी पर पूजा करने के लिए तुम्हें सम्मुख करता है ?

अथवा,

उसी तरह तुम्हारा, परमप्रिय मित्र कौन है, जिससे मिल तुम धार्मिक सामाजिक या व्यावहारिक कृत्य करते हो।

(४) सोते हुओं के रक्षक अश्विद्वय या युवा स्त्री पुरुष का राष्ट्र के सम्मुख पालक,

(५) सोने का स्थान,

(६) आश्रम, आश्रय-ज.दे.श.।

'दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा'

ऋ. १.११७.१२

ज्ञान विज्ञान युक्त, सूर्य के समान प्रकाशमान मेधावी परमेश्वर के रचे वेद में ज्ञान को अथवा तेजोमय वीर्य, ब्रह्मचर्य को कभी नष्ट न करते हुए (दिवो नपाता) बलवान् वीर्य-सेचन में समर्थ युवा स्त्री पुरुषों (वृषणा), आप दोनों किस शयन स्थान पर या आश्रय में (शयुत्रा) अथवा, न्याय प्रकाश और राजसभा को स्थिर रखने वाले (दिवो नपाता) राष्ट्र के प्रमुख पालक किस आश्रय पर...

शये - शेते (सोता है)।

शंयोः - शम् (रोगों का शमन) + क्विप् = शम्, यु (पृथक् भाव में) डोसि -योस। शम् + योस् = शंयोस्। अर्थ है। (१) भयों को दूर करने वाला, कल्याणकारी, भयहारी।

'शमनं रोगाणां यावनं भयानाम्'

शर - (१) शरनामक ओषधि, (२) शत्रुघातकं बाण, शर के दो भेद हैं- एक पतला और दूसरा मोटा।

'शरद्वयं स्यात् मधुरं सतिक्तं
कोष्णं कफभ्रान्ति मदा पहानि
बलं च वीर्यं च करोति नित्यं
निषेदितं वातकरञ्च किञ्चित्'

अनुस्फुरं शरमर्चन्त्यृभुम्'

अ. १.२.३

(३) सरकण्डे के समान विषैला जीव, (४) सरकण्डा।

'शरासः कुशरासः'

ऋ. १.१९१.३

(५) शृ (हिंसार्थक) + अच् = शर। अर्थ बाण या कोई हिंसक अस्त्र।

शरण - (१) शत्रु नाशक साधन (२) अस्त्र और शस्त्र

'अस्मान् वरूचीः शरणैरवन्तु'

ऋ. ३.६२.३

(३) शृ + ल्युट् = शरणे ।

'विलं हि विदारितं भवति (विल विदारित होता है) ।(४) गृह-सा.

'तोदस्येव शरण आ महस्य'

ऋ. १.१५०.१, साम. १.९७; नि. ५.७

हे अग्ने, जैसे महान् भूखंड के बिल में चारों ओर से जल आकर भी बिल को नहीं भाता उसी प्रकार अनेक यजमानों के हवियों से भी तू नहीं ऊबता ।

गृह में अर्थ में 'शरण' शब्द के प्रयोग के लिए देखें 'कृति' ।

आधुनिक अर्थ - रक्षा, साहाय्य, शरणं आश्रय, गृह, चोट पहुंचाना, मारना, बध करना ।

शरणा - द्वि.व. । 'शरणौ' का वैदिक रूप । (१) इन्द्र के बाहुओं का विशेषण । (१) रक्षक, आश्रय देने वाले

ऋष्वात इन्द्र स्थविरस्य बाहू
उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ।

ऋ. ६.४७.८; तै.ब्रा. २.७.१३.४; नि. ७.६.

हे इन्द्र या राजन, तुझ महान् वृद्ध या ज्ञानवयोवृद्ध के (ते स्थविरस्य) दर्शनीय (ऋष्वा) बृहत् (बृहन्ता) रक्षक या आश्रय देने वाले (शरणा) बाहुओं की हम सेवा या उप स्थान करते या उन्हें हम प्राप्त करें ।(३) शरण + टाप् = शरणा । अर्थ - गृह ।

'महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र'

ऋ. ८.९०.६, साम. २.७६२, नि. ५.२२.

हे इन्द्र, तेरा अन्तरिक्ष रूपी गृह (मही इव ते शरणा) यश के समान है (कृत्तिः इव) ।

शरणि - (१) पीड़ा थकान

'इमामग्ने शरणिं मीमृषो नः'

ऋ. १.३१.१६, अ. ३.१५.४, ला.श्रौ.सू. ३.२.७; आश्व.श्रौ.सू. १.२३.२५.

(२) हिंसा और क्रोध के भाव उत्पन्न करने वाली वाणी ।

'विते हनव्यां शरणिम्'

अ. ६.४३.३

(३) व्रत लोक रूपिणी हिंसा, (४) मरणरूपिणी संसृति, -सा. (५) मृत्यु-सा.

'इमामग्ने शरणिं मीमृषो नः'

हे अग्नि, हमारी इस व्रतलोप रूपिणी हिंसा या मारण रूपिणी संसृति को (नः इमां शरणिम्) तू क्षमा कर या, मार्जन कर (मीमृषः) । -सा. हे ज्ञान रूप परमेश्वर (अग्ने), आप हमारी इस मृत्यु को परि मार्जित करें -दया.

(६) शृ + अनि = शरणि । अविद्यादिदोष-हिंसिका विद्या या विद्या नाशिनी अविद्या ।

(७) हिंसा भावना ।

'इमामग्ने शरणिं मीमृषो नः'

हे परमेश्वर, हमारे नाश करने वाली इस वर्तमान अविद्या या हिंसा भावना को दूर कर ।

शरद् - शृ (हिंसार्थक) + अदि = शरद् । शरत् श्रृता अस्याम् ओषधयो भवन्ति शीर्णा आप इति वा (अर्थात् शरत् काल में ओषधियाँ पकती हैं या वर्षाकाल का प्रचुर जल शरत् काल में सुख या विशीर्ण हो जाता है अतः यह शरद् है) निरुक्त ।

अर्थ - (१) शरद् ऋतु, (२) वर्ष । वेदों में शरद् ऋतु से ही वर्ष का बोध होता है । आर्यों के शीतप्रधान देश में रहने का यह सूचक है ।

'दीर्घायुरस्या यः पतिः
जीवाति शरदः शतम्'

ऋ. १०.८५.३९, अ. १४.२.२; आप.मं.पा. १.५.४, नि. ४.२५.

इसका जो पति है दीर्घायु हो और सौ वर्ष जीवे ।

शरत् स्त्री वत्सरेऽप्यृतौ
- मेदिनी कोष

आधुनिक अर्थ - (१) शरद ऋतु जिसमें आश्विन और कार्तिक परिगणित है । (२) वर्षा

शरद्वान् - (१) जिसमें शरद् ऋतुएं हों- सूर्यमण्डल, -दया. (२) प्रति ऋतु का स्वामी (३) शरद आदि उत्तम रमण योग्य ऋतुओं का स्वामी (४) सौ वर्ष जीने वाला-शरद्वान् वृषभ अर्थात् आत्मा ।

'प्र वां शरद्वान् वृषभो न निष्षाट्'

ऋ. १.१८१.६

शरभ - हिंसक पशु, व्याघ्र आदि ।

'शरभमारण्यमनु ते दिशामि'
वाज.सं. ९ ;.५१, तै.सं. ४.२.१०४, मै.सं. २.७.१७:१०३.३, का.सं. १६.१७, श.ब्रा. ७.५.२.३६.
(२) एक वैदिक ऋषि, (३) सुख
'अपावृणोः शरभाय ऋषि बन्धवे'
ऋ. ८.१००.६
(४) व्याघ्र
'शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः'
अ. ९.५.९

शरव्या - (१) बाण बनाने की क्रिया, (२) लक्ष्य पर पहुंचने की क्रिया ।
'कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै'
वाज.सं. २४.४०, मै.सं. ३.१४.२१:१७७.५
(३) बाणों की प्राप्ति
'शरव्यायै इषुकारम्'
वाज.सं. ३०.७; तै.ब्रा. ३.४.१.३.
(४) बाण के तुल्य पीड़ा जनक
'मन्योर्मनसः शरव्या जायते या'
ऋ. १०.८७.१३; अ. ८.३.१२; १०.५०.४८
(४) दूर तक बाण फेंकने में कुशल सेना ।
'शरव्ये ब्रह्मसंशिते'
ऋ. ६.७५.१६; अ. ३.१९.८; साम. २.१२१३, वाज.सं. १७.४५.
(६) तीक्ष्ण बाण के समान क्रोध की ज्वाला

शर्कु - हिंसक स्वभाव वाला ।
'पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं'
अ. ८.६.२.

शर्कोट - कर्कोट नामक भयंकर महानाग ।
'अरसस्य शर्कोटस्य'
अ. ७.५६.५; कौ.सू. १३९.८

शर्ध - (१) शत्रुनाशकारी शस्त्रास्त्रों का धारक, (२) बलस्वरूप (३) अग्नि का विशेषण ।
'त्वं नरां शर्ध असि पुरूवसुः'
ऋ. २.१.५
(४) बल की वृद्धि ।

शर्धत् - (१) कुत्सित निन्दित वाणी बोलने वाला, (२) निन्दित कर्म करने वाला ।
'यः शर्धते नानु ददाति शृध्याम्'
ऋ. २.१२.१०, अ. २०.३४.१०
(३) विनाश करने वाला पुरुष, (४) (क्रिया) - उत्सहताम् (साहस करें, उत्साह करें) ।

शर्धन् - उत्साह करता हुआ ।
'प्र राये यन्तु शर्धन्तो अर्यः'
ऋ. ७.३४.१८

शर्ध - (धा) । उत्साह करना, साहस करना ।

शर्धनीति - (१) बल अर्थात् सेना बल का अग्रणी होकर ले चलने वाला, (२) इन्द्र ।
'इन्द्रो वृत्रमवृणोच्छर्धनीतिः'
ऋ. ३.३४.३, अ. २०.११.३, वाज.सं. ३३.२६.
शत्रु हिंसक बल का प्रयोग करने वाला ।

शर्धम् - उत्साह कर । शर्धत् उत्सहतामिति निरुक्ते ।
'अग्ने शर्ध महते सौभगाय'
ऋ. ५.२८.३, अ. ७.७३.१०; वाज.सं. ३३.१२, मै.सं. ४.११.१:१५९. ५; का.सं. २.१५, तै.ब्रा. २.४.१.१; ५ २.४; आश्व.श्रौ.सू. २. ११.९: १८.१७: आप.श्रौ.सू. ३.१५.५.

शर्धस् - (१) बल गुण, (३) उत्साह
'अभ्राजि शर्धोमरुते यदर्णसम्'
ऋ. ५.५४.६
हे मरुतो, तुम्हारा बल, गुण या उत्साह शोभता है ।

शर्धस्तर - अत्यन्त बलशाली ।

शर्ध्य - (१) बलपूर्वक धारण करने योग्य गृहस्थ धर्म (२) बल पूर्वक संग्राम करने योग्य रथ ।

शर्म - (१) कल्याण । यच्छानः शर्म सप्रथः । हे पृथ्वी , हमें सब ओर चौड़ी बन कर कल्याण दे ।(२) घर, आश्रय
'बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि'
ऋ. १०.१६७.३; नि. ११.१२
और सूर्य तथा चतुर्दशीयुक्त पूर्णिमा के आश्रय में रहकर .. ..ज.दे.श. ।
बृहस्पति एवं अनुमति के यहां गृह में वर्तमान -सा. ।

शर्मदर्त् - (१) कल्याणप्रद - दया. (२) सायण ने 'दर्त् का अर्थ ' दीर्ण किया' ऐसा किया है ।

शर्मन् - शृ + मनिन् = शर्मन् । अर्थ-(१) शरण, (२) सुख ।
'शर्मन् , शब्द का ही बिगड़ा रूप **German** है । मनु ने ब्राह्मणों के लिए शर्मन् की उपाधि विहित की है । .

शर्मयन्ती – सुख देने वाली
परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।
ऋ. ९.४१.६

शर्मरिणा – परब्रह्म में शरीर प्राप्त करने वाले ब्रह्मज्ञानी ।
'त्वमिन्द्र शर्मरिणाः'
अ. २०.१३५.११, गो.ब्रा. २.६.१४, शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.४; आश्व.श्रौ.सू. ८.३.२७, कौ.सू. ३२.३०

शर्मसदः – (१) देह रूप गृहों में रहने वाले जीव ।
'पुरः सदः शर्मसदो न वीराः'
ऋ. १.७३.३; ३.५५.२१.

शर्मसद् – एक ही शरण या आश्रम में रहने वाला ।
'पुरःसदःसर्म शदो न वीराः'

शर्य – (१) शत्रुहिंसक (२) बाणादि अस्त्र शस्त्रों को चलाने में कुशल सैनिक–
(३) हिंसितुं ताड़यितुम् अर्हः यन्त्रः (हिंसा करने में समर्थ यन्त्र) –दया.
'शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरम्'
ऋ. १.११९.१०
शत्रुहिंसक बाणदि शस्त्रास्त्रों को चलाने में कुशल (शर्यैः) वीर योद्धाओं से सूर्य के सम्मान तेजस्वी (अभिद्युम्) संग्रामों में पराजित न होने वाले सैन्य वर्ग को ।

शर्यणा – (१) उत्तम सेना ।
'सुषोमे शर्यणावति'
ऋ. ८.७.२९
(२) चेतना ।
'तद् विदच्छर्यणावति'
ऋ. १.८४.१४, अ. २०.४१.२, साम. २.२६४, तै.ब्रा. १.५.८.१.
(३) अन्तरिक्ष ।

शर्यणावत्– (१) शर अर्थात् बाण धनुषादि शस्त्रास्त्र में कुशल जनों से समृद्ध जनपद, (२) शरकाण्ड (सरकण्डा, सिर की) वाली भूमि जिसमें सोमलता उत्पन्न होती है ।
अयं ते शर्यणावति
सुषोमायामधि प्रियः'
ऋ. ८.६४.११
(३) पापादि को नाश करने वाली बुद्धि से युक्त पुरुष (४) सब संकटों को दूर करने वाला शक्तिमान् प्रभु
'उतेन्द्र शर्यणावति'
ऋ. ८.६.३९
(४) चेतना सम्पन्न मस्तक या हृदय, (६) आकाश

शर्यणा – (१) बाणों द्वारा मारने वाला धनुर्धर (२) शर्य अर्थात् बाणों से मारने योग्य दुष्ट पुरुषों का नाश करने वाला अग्नि ।
'आदेदिशानः शर्यहेव शुरुधः'
ऋ. ९.७०.५
'य उग्र इव शर्यहा'
ऋ. ६.१६.३९; साम. २.१०५७, तै.सं. २.६.११.४, ऐ.ब्रा. १.२५.८ ; आश्व.श्रौ.सू. ४.८.८.

शरारु – (१) व्याघ्र के समान हिंसाकारी मृत्यु
'शरारुरभि मन्यते'
ऋ. १०.८६.९; अ. २०.१२६.९; नि. ६.३१.
(२) सब विघ्न बाधाओं का नाश करने वाला आत्मा ।
(३) शृ + आरु (ताच्छील्य अर्थ में) = शरारु । अर्थ– संशिशरिषुः संशर्तुमिच्छन्, शरीरं तित्पक्षिषुः (शरीरत्याग करने का इच्छुक) (४) मारने की इच्छा करने वाला ।
निरुक्त में संशिशीषु से ही 'शरारु' शब्द का बनना माना गया है। (४) मूर्ख, (६) मृत्यून्मुख (६) शोख, शरूर, (८) मारने की इच्छा रखने वाला ।
'अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते'
इन्द्रपत्नी कहती है– यह मूर्ख मृत्युन्मुख नहुष मुझे अबला समझ रहा है –सा.
मुझे मारने की इच्छा रखने वाला मनुष्य मुझे अवीरा समझता है । ज.दे.श.

शर्या – (क) शृ + यत् = शर्य, शर्य + टाप् = शर्या, (ख) अथवा सृज्–सर्जा–शर्या । अर्थ – (१) बाण, बाण सरकन्डे का बना हुआ होता है ।
(२) शर्या – अंगुलयस्ते भवन्ति । सृजन्ति कर्माणि (शर्या अंगुलियां का नाम है,) अंगुलियां कर्मों को करती हैं) ।
शर्या बाण को भी कहते हैं क्योंकि इससे हिंसा करते हैं ।
(३) सींक, । सिरकी ।
'न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम्'

ऋ. १०.१७८.३; ऐ.ब्रा. ४.२०.३१; नि. १०.२९
धनुष से छूटी तथा अपने लक्ष्य की ओर जाती हुई सिरकी को जैसे (युवतिं शर्याम् न) कोई रोक नहीं सकता (न स्म वरन्ते)।
(३) इषु या बाण के अर्थ में प्रयोगः-
अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथ
उत्सं न कं चिज्जनपानमक्षितम्'
शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः'
ऋ. ९.११०.५; साम. २.८५७
हे अभिसवन करने वालो, (अभि) उस सोम का मन्त्र तथा ग्रावा से बार बार अभिहनन कर (हि श्रवसा अभि ततर्दिथ) जैसे कोई धनुष धारण करता हुआ (भरमाणः) हाथों में अवस्थित बाणों से किसी को मारे (गभस्त्योः शर्यभिः न) और इस प्रकार सोम को तैयार करते हुए आप रात में पर्युषित मन्त्रपूत जल से आप्यायित कर नित्य प्रति जहाँ से जल निकाला जाता हो ऐसे किसी जनपान अर्थात् पनघट या पतनशाला की भांति
(उत्सं न काञ्चि जनपानम्) अक्षीण अर्थात् प्रचुर रूप में प्रस्तुत कर (अक्षितम्)।
अन्य अर्थ-जैसे कोई परोपकारी सज्जन किसी न सूखने वाले कूप को (जनपानम्) मनुष्यों के जलपानार्थ बनाता है एवं हे जगदुत्पादक पावक प्रभो, निश्चय ही (हि) आप प्रभूत अन्न के निमित्त से (अभभिश्रवसा) मेघ का निर्माण करते हो (उत्सम् अभिततर्दिथ) और जैसे परोपकारी सज्जन बाहुओं की अंगुलियों से (गर्भस्त्योः शर्याभिः) तृषार्त को जल देता है वैसे आप सूर्य के रश्मि बाणों से वृष्टि द्वारा जल देते हो।
(४) वायु ताड़नाख्या क्रिया -दया.
'अंस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून्'
ऋ. १.१४८.४
(५) सर्वदुःखहिंसक- इन्द्र या राजा।

शर्व - (१) भुक्त अन्न को सूक्ष्म सूक्ष्म अणु कर सर्वत्र अंगों में पहुंचाने वाला जाठर बल (२) महादेव शिव का एक नाम
'शर्वस्य वनिष्ठुः'
वाज.सं. ३९.९.
(३) हिंसाकारी, (४) रुद्र का नाम।
'शर्वा अधः क्षमा चराः'
वाज.सं. १६.५७, तै.सं. ४.५.११.१, मै.सं. २.९.९:१२८.१३, का.सं. १७.१६
बभ्रुः शर्वोऽस्ता नीलशिखण्डः'
अ. ६.९३.१
(५) धनुर्धारी शर्व, शिव का एक पर्याय।
'शर्वभिष्वासमनुष्ठातारम्'
अ. १५-१ (५)-४

शर्वरी - (१) महान् प्रलय काल।
'अह्नां रात्रीणामतिशर्वरिषु'
अ. ७.८०.४

शर्वा- हिंसक पुरुष।
'तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः'
अ. ८.३.५.

शर्दिः - (१) शरण देने वाला, (२) बलवान्।
'शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः'
अ. १८.३.१६

शरीतु - विनाश।
'इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोः'
ऋ. ३.५३.१७

शरीर - शृ + ईरन्। = शरीर।शरीरं श्रृणातेः शम्नातेः वा' (शरीर हिंसार्थक 'श्रृ' धातु या विनाशार्थक 'शमु' धातु से बना है)।
शरीर विनाशशील तथा नित्य शीर्ष होने वाला है।
अर्थ - (१)शरीर, (२) जीवात्मा।
(३) मेघ-दया.। मेघ का भी शरीर नष्ट हो जाता है।

शरु - (१) नारवे।
'वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः'
ऋ. ६.२७.६
(२) हिंसक, (३) शिकारी।
'अध यदेषां सुदिने न शरुः'
ऋ. १.१८६.९
(४) बाण, (५) शासनदण्ड (६) नाश करने वाला। प्रायश्चित्त (७) पश्चाताप (८) शासन वज्र।
'अमन्यमानाञ्छर्वाजघान्'
ऋ. २.१२.१०; अ. २०.३४.१०
(९) शस्त्र
'यं देवा शरुमस्यथ'
अ. ६.६५.२

(१०) शत्रुओं को सन्ताप देने वाली, जलाने वाली, हिंसा करने वाली शक्ति, (११) बाण, धार या शस्त्र ।

'मरुत ऋञ्जती शरुः '

ऋ. १.१७२.२

(११) शृ (हिंसार्थक) + उ = शरु । अस्त्र, खड्गादि आयुध, हिंसा

शरुध् - जल । शृ (झरना) धातु से सिद्ध ।

'ऋतस्य हि क्षुरुधः सन्ति पूर्वीः '

ऋ. ४.२३.८; आश्व.श्रौ.सू. ९.७.३६; नि. ६.१६; १०.४१

मध्यम ऋतदेव के ही पूर्व कालीन जल हैं ।

शरुमत् - शृ + उ = शरु; शरु + मतुप् = शरुमत् । अर्थ - आयुधवान् हिंसा, खड्गादि आयुध से युक्त ।

'धुनिः शिमीवाञ्छमाँ ऋजीषी '

ऋ. १०.८९.५; तै.सं. २.२.१२.३; तै.आ. १०.१.९; नि. ५.१२.

शल् - (१) शरीरान्तर्गामी आत्मा, (२) शरीर के शीर्ण होने पर आप ही निकल जाने वाला आत्मा । यह शब्द अंग्रेजी के soul का पूर्व रूप है ।

'शलित्यपक्रान्तः '

अ. २०.१३५.१

शल्मलिः - (१) सेमर का वृक्ष, (२) राजा की कीर्त्ति फैलाने वाला अधिकारी ।

'शल्मलिर्वृद्ध्या '

वाज.सं. २३.१३, तै.सं. ७.४.१२.१, श.ब्रा. १३.२.७.४.

(३) 'शल्मलिः सुशरा भवति शरवान् वा ' (अर्थात् शल्मलि कोमल होने से सुहिंस्य या काटने योग्य होता है या यह स्वयं अपने कांटो से चढ़ने वाले को कांटे चुभाकर हिंसा करता है) । शृ (हिंसार्थक) से 'शल्मलि' बना है । (ख) शन्नमल-अपगत मल-शल्मल-शल्मलि जिसमें तनिक भी मल न हो वह शल्मलि है । (३) शल्मलि या सेमर की लकड़ी का बनाया रथ ।

'सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपम् '

ऋ. १०.८५.२०; साम.मं.ब्रा. १.३.११; आप.मं.ब्रा. १.६.४; नि. १२.८.

(४) शाल्मलि वर्ग का वृक्ष ।

'यच्छमलौ भवति यन्नदीषु '

ऋ. ७.५०.३

शल्य - (१) पत्र या साहिल का कांटा ।

'शल्याद् विषं निरवोचम् '

अ. ४.६.५

(२) काँटा, (३) सूई ।

'शल्य इव कुल्मलं यथा '

अ. २.३०.३

(४) दुःख

'तासो शल्यमसिस्रसन् '

अ. ७.१०७.१

शल्यक - कांटेदार-जंगली चूहा, साहिल, ।

'ह्रिये शल्यकः '

वाज.सं. २४.३५; मै.सं. ३.१४.१६:१७६.२

शलालका - सलाई, शलाका, मापदण्ड ।

'इयत्तिका शलालका '

अ. २०.१३०.२०

शलुन - (१) वेगवान् (२) शरीर में प्रवेश कर जाने वाला रोग कीटाणु ।

'अल्गण्डून् हन्मि महता वधेन '

अ. २.३१.३

शव - (१) कम्बोज देश का एक गत्यर्थक धातु । संज्ञा होने पर शव का अर्थ -(२) उदक, (३) बल (४) आर्यावति में शव का अर्थ मुर्दा है क्योंकि शव गत या गया हुआ है ।

शबल - दिन ।

'अहर्वै शवलः-कौ. सू.

'श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितो '

अ. ८.१.९

शवस् - (१) बल रूप से शरीर में रहने वाला आत्मा ।

'तस्मिछवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते '

अ. ११.८.३४

(२) बल ।

'यं भद्रेण शवसा चोदयासि '

ऋ. १.९४.१५; नि. ११.२४

जिस यजमान को कल्याण कारक बल से प्रेरित करता है ।

शाबास, शाबसी आदि फारसी शब्दों का भी मूल शबस् ही है ।

शवसःनपात् - बलवीर्य का पतन या स्खलन न होने देने वाला ब्रह्मचारी विद्वान् ।
'युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः'
ऋ. १.१६१.१४

शवसस्पतिः - (१) बल का पालक,
(१) इन्द्र या परमात्मा का वाचक ।
'आत्मा रम्भं न जिव्रयः
रम्भा शवसस्पते'
ऋ. ८.४५.२०; नि. ३.२१.
हे बल के पालक इन्द्र, हम तेरा आश्रय उसी प्रकार लेते हैं जैसे वृद्ध पुरुष लकुटी का ।

शवसानः - बलशाली, इन्द्र ।
'न यस्य ते शवसान'
ऋ. ८.६८.८
(२) बलवृद्धि का इच्छुक ।
'आङ्गूष्यं शवसानाय साम'
ऋ. १.६२.२, वाज.सं. ३४.१७
(३) बलशाली उपाय
'स व्राधतः शवसानेभिरस्य'
ऋ. १०.९९.९
(४) अधिक बल वाला, अपने को बलवान मानने वाला-इन्द्र
शवस् उदक और बल का वाचक है । बलमिव आचरन् । बल के समान आचरन करता हुआ इस अर्थ में आचरणार्थ क्विप् प्रत्यय कर लट् में शानच प्रत्यय लगाकर 'शवसान्' बना है । = शवसान ।
आज कल शवसान का अर्थ श्मसान है ।

शवसाना - बलपूर्वक ऐश्वर्य का भोग करने वाले - 'इन्द्राग्नी'
'ता सनसी शवसाना हि भूतम्'
ऋ. ७.९३.२.

शवसी - (१) बलवती सेना ।
'प्रति त्वा शवसी वदत्'
ऋ. ८.४५.५.
(२) बलवान्
'ब्रह्म यत् पासि शवसिन्नृषीणाम्'
ऋ. ७.२८.२

शेवार - सुख की प्राप्ति ।
'शेवारे वार्या पुरु
देवो मर्ताय दाशुषे'
ऋ. ८.१.२२.

शविष्ठः- (१) सर्वशक्तिमान् पराक्रमी ।
'धिया शविष्ठ आ गमत्'
ऋ. ८.६१.१; अ. २०.११३.१, साम. १.२९०; २.५८.३
(२) शवस् + इष्ठन् = शविष्ठ ।
'भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठ'
ऋ. १.१६५.७; मै.सं. ४.११.३:१६९.४, का.सं. ९.१८
हे बलिष्ठ इन्द्र, हम मरुतों ने तुझ से भी बढ़कर कार्य किए हैं ।
अथवा,
हे पराक्रमी राजा, हम प्रजाजन आप के सहयोग से हम पुरुषार्थ द्वारा जो भी कामना करते हैं पूर्ण करते हैं ।
'तना च ये मघवानः शविष्ठा'
ऋ. १.७७.४
अद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठाम्'
ऋ. ६.२२.२, अ. २०.३६.२

शवीरा - शु (गत्यर्थक) + ईरन् = शवीरः । शवीर + टाप् = शवीरा । अर्थ -(१) देशान्तर प्रापिका गति ।
अथवा - बलेन ईर्यते या सा शवीरा सैकड़ो वीर पुरुषों से पूर्ण ।
'आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया'
गोमद् दस्रा हिरण्यवत्'
ऋ. १.३०.१७
हे सूर्य और पृथ्वी, आकाश और पृथिवी, दिन रात्रि, प्राण अपान या राष्ट्र में वाचक शक्ति और अधिकार वाले, दुःखों और दरिद्रता के नाश करने वाले आप दोनों अश्वों वाली अश्वारोहियों से बनी सैकड़ों वीर पुरुषों से पूर्ण, इच्छानुकूल प्रेरित सेना से (अश्वावत्या शवीर या इषा) सर्वत्र प्रयाण करो जिससे राष्ट्र गवादि पशु और उत्तम भूमि वाला और सुवर्ण आदि धनों से युक्त हो ।
(२) शव (गत्यर्थक) + अन् + टाप् = शवीरा । वेगवती ।
'नरा शवीरया धिया'
ऋ. १.३.२

शश - (१) शशक, (२) सबको क्षीण करने वाला

काल ।
'शश आस्कन्दमर्षति '
वाज.सं. २३.५६
(३) चंचल चित्तवाला ।
'कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै '
वाज.सं. २४.३८; मै.सं. ३.१४.१९:१७६.१०
'यत्र प्रापादि शश उल्कुषीमान् '
अ. ५.१७.४

शशमान - (१) ऊंची गति करने वाला ।
'यः शंसन्तं यः शसमानमूती '
ऋ. २.१२.१४; २०.३; अ. २०.३४.१५.
(२) स्तुति करता हुआ -सा.
(३) सत्कार करता हुआ -दया.
'यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति '
ऋ. १.१५१.७; नि. ६.८.
हे मित्रावरुण, जो यजमान तुम्हारी स्तुति करता हआ तुम्हें हवि आदि देता हो (दाशति) -सा.। हे अध्यापक तथा उपदेशक, जो बुद्धिमान दाता (कविः होता) और पञ्च महायज्ञों को करता हैं और आप का सत्कार करता है और आप का सत्कार करता हुआ (शशमानः) भोग्यादि पदार्थ देता है- दया. ।
(४) धर्म मर्यादा को लांघ कर चलने वाला,
(५) लुप्त गति अर्थात् सब धर्मों को लांघकर संन्यास मार्ग से जाने वाला
(६) शम का नित्य अभ्यासी, तपः साधना से युक्त ।
'ये अग्रवः शशमानाः परेयुः '
अ. १८.२.४७

शशयः - (१) खशयः, आकाश में व्यापक मेघ ।
'दिवो न प्रीताः शशयं दुदुह्रे '
ऋ. ३.५७.२
(२) अति प्रशंसनीय ।
'महि स्थूरं शशयं राधो अह्वयं '
ऋ. ८.५४.८
(३) सुख की नीद सुलाने वाला ।
'यस्ते स्तनः शशये मयोभूः '
ऋ. १.१६४.४९; वाज.सं. ३८.५; मै.सं. ४.९.७:१२७.७; ४.१४.३: २१९.८; ऐ.ब्रा. १.२२.२, श.ब्रा. १४.२.१.१५;९.४.२८; तै.आ. ४.८.२; आश्व.श्रौ.सू. ३.७.६; ४.७.४.

शशया - (१) व्यापक दिशा, (२) निश्चित रहकर शयन करने वाली कन्या ।
'सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः'
ऋ. ३.५५.१६

शशयानः - (१) शिश्यान, सुप्तइव स्थितः (सुप्त पड़ा हुआ) (२) तपस्या करता हुआ ।
'संवत्सरं शशयानाः
ब्राह्मणा व्रतचारिणः '
ऋ. ७.१०३.१, अ. ४.१५.१३, नि. ९.६
एक वर्ष तक सुप्त पड़े हुए या तपस्या करते हुए (संवत्सर शशयाना) सदा बोलने में समर्थ होंने पर भी (ब्राह्मणाः) बोली पर संयम रखने वाले (व्रतचारिणः) ।

शशयुः - (१) शान्तिदायक, (२) अति गूढ़ रहस्यमय
'यस्ते स्तनः शशयुर्योमयोभूः '
अ. ७.११.१
(३) सोया हुआ ।
'नीचा यच्छशयुर्मृगः '
अ. ४.३.६

शश्रमाणा - निरन्तर श्रमशील स्त्री, गृहपत्नी या गृहपति ।
'पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा '
ऋ. १.१७९.१

शश्रमाणः - (१) श्रम करने वाला । उद्योगी पुरुष ।
'न शश्रमाणो बिभीवान् '
ऋ. १०.१०५.३
'इध्मं यस्ते जभरच्छश्रमाणः '
ऋ. ४.१२.२.

शश्वचैः - (१) आलिंगन करने के लिए, (२) सहयोग के लिए
'मर्यायेव कन्या शश्वचै ते '
ऋ. ३.३३.१०

शश्वान् - (१) सनातन या चिरकाल से एक ही दशा में रहने वाला पुरुष ।
'अति वायो ससतो याहि शश्वतः '
ऋ. १.१३५.७
(२) अनादि कारण ।
'यच्छिद्धि शश्वता तना
देवंदेवं यजामहे
त्वे इद् धूयते हविः '

ऋ. १.२६.६
जब कभी अन्नादि विस्तृत भेद ज्ञान से विद्वान् या देवता का सत्कार करते हैं तो वह सत्कार हे परमेश्वर तुम में हवि के समान आहूत होता है ।
(२) शश्वत् इति विचिकित्सार्थीयो भाषायाम् (लोकभाषा में शश्वत् विचिकित्सा अर्थ में आया है) । वेद में इसका प्रयोग अन्य अर्थों में पाया जाता है ।
(३) 'एवम्' के पहले या पीछे भी शश्वत् का प्रयोग होता है । जैसे 'शश्वदेवम्' एवं 'शश्वत्' ....शश्वत् स्यात् आत्म प्रश्ने च मंगले
'पुराकल्पे सदार्थे च पुनरर्थे च दृश्यते'
- मेदिनी कोश ।
(४) दीर्घायु ।
'अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन्'
वाज.सं. ३.३६.१०; पा.गृ.सू. १.१८.५
हे हनूवाले इन्द्र, हमारे लिए आप दीर्घजीवी (शश्वत) वीर पुत्र दें ।
(५) प्रचुर, बहुत ।
'अहं धनानि सं जयामि शश्वतः'
ऋ. १०.४८.१; ऐ.ब्रा. ५.२१.६
मैं इन्द्र शत्रुओं के प्रचुर धनों को (शश्वतः धनानि) एक साथ जीतता हूँ (संजयामि) ।
आधुनिक अर्थ - सदा, पुनः पुनः ।

शश्वत्कृत्रः - (१) शश्वत्कर्त्ता - सा. ।
'शश्वत् कृत्व ईड्याय प्र जभ्रुः'
ऋ. ३.५४.१, ऐ.ब्रा. १.२८.६

शश्वती - (१) अनन्त काल तक रहने वाली -उषा का विशेषण ।

शश्वती आपः - (१) चिरकाल से बहने वाले जल, (२) कर्म बन्धन ।
'त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपः'
ऋ. ७.३२.२७; अ.२०.७९.२; साम. २.८०.७, पंच.ब्रा. ४.७.६.

शश्वरीनारी - सदातनी नर अर्थात् आत्मा की सहयोगिनी बुद्धि ।
'शश्वती नार्यभिचक्ष्याह'
ऋ. ८.१.३४

शश्वतीमाता - (१) निरन्तर बहने वाला जल, (२) निरन्तर स्थायी माता, (३) नित्य जगत् -निर्माण करने वाली शक्ति-प्रकृति ।
'तं शश्वतीषु मातृषु
वन आ वीतमश्रितम्'
ऋ. ४.७.६

शश्वत्तमा - शाश्वतिकतमा-बार बार आने वाली-उषा ।
'अग्रसन्न ससतो बोधयन्ती
शश्वत्तमागात् पुनरेयुषीणाम्'
ऋ. १.१२४.४; नि. ४.१६.
अन्न बांटने वाली गृहस्वामिनी की तरह सोने वालों को जगाती और चर कर नित्य लौटने वाली गौ आदि के लिए बार बार आने वाली उषा है ।

शश्वन्ता - द्वि.व. (वि.) । परस्पर सदा साथ रहने वाले आत्मा और मनोमय सूक्ष्म देह ।
'ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता'
ऋ. १.१६४.३८; अ. ९.१०.१६; ऐ.आ. २.१.८.१३. नि . १४.२३.
परस्पर सदा साथ रहने वाले (शश्वन्ता) और सभी लोकों में साथ हो जाने वाले (विषूचीना) आत्मा और मनोमय सूक्ष्म देह विविध लोकों को प्राप्त करते हैं ।

शश्वान् - नित्य नियम पूर्वक कार्य करने वाला ।
'शश्वां अपो विकृतं हित्व्यागात्'
ऋ. २.३८.६

शशीयसी - अतिशयेन दुःख प्लावयन्ती (समस्त संकटों से पार करने वाली स्त्री) -दया.
'उत त्वा स्त्री शशीयती'
ऋ. ५.६१.६

शष्प - (१) शष्पते हन्यत इति शष्पम् वालतृणं कान्तिक्षयो वा - दया. (२) नया उगा धान्य, (३) शत्रुहनन का साधन
दीक्षायै रूपं शष्पाणि .
वाज.सं. १९.१३

शष्प्य - घास तृण आदि पर गुजर करने वाला ।
'नमः शष्प्याय च फेन्याय च'
वाज.सं. १६.४२, तै.सं. ४.५.८.२.

शष्पिञ्जरः - (१) सूखे घास के समान शत्रु को जलाने वाली दीप्ति से युक्त तेजस्वी पुरुष, (२) रुद्र का नाम, (३) घास या चराने का प्रबन्धकर्ता ।

'नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते'
वाज.सं. १६.१७; का.सं. १७.१२.

शस् - (१) शासन, अनुशासन ।
इषमश्याम वसवः शसा गोः'
ऋ. ५.४१.१८

शस् - (१) स्तुति कर्ता, (२) प्रशंसा कर्ता, महिमा गाने वाला । शस् + क्विप् = शस् ।
'यजाम देवान यदि शक्नवाम
मा ज्यायसः शंसमा वृक्षिदेवाः'
ऋ. १.२७.१३; आप.श्रौ.स. २४.१३.३.
अर्भक, महत्, आशाः, ज्यायसः आदि भेद देवों के किए गए हैं । स्वा. दयानन्द ने देव का अर्थ विद्वान् माना है ।

शंस - (१) शास्त्र वक्ता, (२) प्रशंसनीय परमेश्वर ।
'शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तुः
ऋ. ७.३५.२, अ. १९.१०.२
(३) प्रशंस्त उपदेश ।

शंसत - गुणगान करो ।
'मुहुरुक्था च शंसत'
ऋ. ८.१.१; अ. २०.८५.१, साम. १.२४२, २.७१०.
परमात्मा या इन्द्र प्रशस्त गुण, कर्म का बार बार गान करो (मुहुः उक्था च शंसत) ।

शंसन् - स्तुति या ज्ञानोपदेश करने वाला ।
'यः शंसन्तं यः शसमानमूती'
ऋ. २.१२.१४; २०.३. अ.२०.३४.१५

शंसय - विख्यात् कर ।

शंसपा - शंशपा नामक वृक्ष ।
'भगेन मा शांशपेन'
अ. ६.१२९.१

शसनं - न. । (१) शासन कार्य ।
'उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा'
ऋ. १.१६३.१२, वाज.सं. २९.२३, तै.सं. ४.६.७.४, क.सं.(अश्ब.) ६.३; श.ब्रा. १३.५.१.१७,१८, आश्व.श्रौ.सू. १०.८.७

शंसम् - (१) शान्तिदायक मेघ आदि, (२) उपदेश करने योग्य उत्तम वेद वचन ।
'पुरू यच्छंसममृतास आवत'.
ऋ. १.१६६.१३

शस्मन् - (१) शस् + मतुप् = शस्मत् । अर्थ- 'स्तवनीय, प्रशंसनीय -दया.
(२) शासन करने के लिए ।
'अधायि शस्मन्तसमयन्त आ दिशः'
ऋ. १.११९.२
जिस प्रकार रथ पर चढ़ते ही सभी दिशाएं या दूर देश भी प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार शासन करने के निमित्त उपदेशक गुरुजन भली प्रकार प्राप्त हों ।

शसमानः - (१) ऊंची गति करने वाला ।
'यः शंसन्तं यः शसमानमूती'
ऋ. २.१२.१४; २०.३; अ. २०.३४.१५.
(२)वि. । शसमानः स्तुवत् (शंसा या स्तुति करता हुआ) ।
(३) शंस् + चानश् = शस्यमान (अनुनासिक का लोप) । इन्द्र या राजा का खड्गधारी ।
'धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषी'
ऋ. १०.८९.५; तै.सं. २.२.१२.३; तै.आ. १०.१.९; नि. ५.१२.

शस्त - अनुशासित ।
'अथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम्'
ऋ. ३.५३.३

शस्त्र - (१) स्तुतियुक्त मन्त्र (२) शस्त्रधारी पुरुष ।
'प्रणवैः शस्त्राणां रूपम्'
वाज.सं. १९.२५

शस्यमान - (१) कहा जाता हुआ-सा.
(२) प्रशंसनीय -दया.
'प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय'
ऋ. ४.४.१५; तै.सं. १.२.१४.६; मै.सं. ४.११.५:१७४.७; का.सं. ६.११.
हे अग्नि, तू हमारे कहे स्तोत्रों को स्वीकृत कर-सा. ।
हे राजन्, हमारे प्रशंसनीय कार्यों को आप स्वीकार करें । - दया. ।

शस्यमाना - सखियों के द्वारा पति के गुणों के सम्बन्ध में कही जाती हुई कन्या ।
'वि जागृविर्विदथे शस्यमाना'
ऋ. ३.३९.२

शंसा - (१) प्रशंसनीय कामना, (२) स्तुति ।
'सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु'
ऋ. ७.२५.३
हे इन्द्र, नाना प्रकार की प्रशंसनीय कामनाएं हों या आए हुए आप के लिए सहस्रों स्तुतियाँ हो

तथा धन हो ।

(३) द्वि.व. । द्यावापृथिवी या माता पिता का विशेषण । अर्थ-स्तुति योग्य ।

'उभा शंसा नर्या मामविष्टाम्'

ऋ. १.१८५.९

शंस्ता - (१) सात ऋषिजों में एक प्रशस्ता नामक ऋत्विज् (२) उत्तम प्रशंसक (३) सन्मार्ग का उपदेष्टा ।

'ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः'

ऋ. १.१६२.५; वाज.सं. २५.२८; तै.सं. ४.६.८.२; मै.सं. ३.१६.१: १८२.६; का.सं. (अश्व.) ६.४.

शस्तोक्थ - विद्वान् वेदों का ज्ञाता ।

'यस्ते अश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य त इष्टयजुष स्तुतस्तोयस्य शस्तोक्थस्य'

वाज.सं. ८.१२, श.ब्रा. ४.४.३.११,

श्नम्नन्ते - दूर करते हैं, हिंसा करते हैं ।

'देवासो मन्युं दासस्य श्नम्नम्'

ऋ. १.१०४.२

देवगण या दानशील अन्नादि के दाता विद्वान् (देवासः) अपने अधीन सेवक जन के (दासस्य) क्रोध या उद्वेग् को (मन्युम्) सदा दूर करते रहें (श्नम्नन्ते)।

श्नथन - दुष्टों को शिथिल करने वाला । इन्द्र का विशेषण ।

'रध्रचोदः श्नथनो वीडितस्पृथुः'

. २.२१.४

श्नथयः - अताड़यः (ताड़ित किया) ।

श्नथ - (१) ताड़ित करना (२) शिथिल करना । ..'श्नथयः' (३) चूर्ण करना

श्नथिता - (१) शिथिल करने वाला ।

'इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः'

ऋ. १.५७.२, अ. २०.१५.२.

(२) सब पदार्थों को चूर्ण करने वाला

श्नप्तर - मुख्य भाग ।

'विष्णोः श्नप्तरे स्थः'

वाज. ५.२१; का.सं. २.१०; श.ब्रा. ३.५.३.२४; का.श्रौ.सू. ८.४.१९; आप.श्रौ.सू. ११.८.४

श्मन् - 'श्म शरीरम्' (श्म शरीर का वाचक है) । अर्थ 'शरीर' ।

श्मशा - शु अश्नुत इति वा, श्म अश्नुत इति वा ।

(क) श्म + अश् + टाप् = श्मशा । (शकन्धु के ऐसा) ।

(ख) अश् (व्याप्त्यर्थक) + अच् = अश, शु (आशु) + अश = श्वस = श्मस् । उ का व और व का म पृषोदरादिवत् ।

अर्थ - (१) कुल्या, (२) शरीर की नाड़ी, (३) नदी, क्योंकि यह शीघ्र फैल जाती है । (४) नहर (शु + अशूङ्) ।

'कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आ
अव श्मशा रुधद्वाः
दीर्घं सुतं वाताप्याय'

ऋ. १०.१०५.१

हे इन्द्र, यह मेरा स्तोत्र सर्वतोभाव से (आ) कामना करते हुए इस यजमान के निमित्त (हर्यते) तीन बार अभिसुत सोम रस के प्रति (दीर्घं सुतम्) पीने के लिये रोकेगा (अवारुधत्) जैसे नदी जल को या शरीर की नाड़ी शरीर का रस रोकती है (श्मशा वा) ।

अन्य अर्थ - हे सर्ववासक परमेश्वर (वसो), आप वेदाध्ययन की कामना करने वाले मुझको (स्तोत्रं हर्यते) जैसे शरीर गत नाड़ी (श्मशा) रुधिर को रोकती है (वाः अवारुधत्) एवं वीर्य को रोकने की शक्ति प्रदान करेंगे जिससे दीर्घायु पुत्र (दीर्घं सुतम्) प्राणादि वायुगणों से बढ़ा हुआ होता है (वाताप्याय) ।

अन्य अर्थ - हे राजन् ,जब कभी जल रुक जाये (वाः अवारुधत्) अनावृष्टि हो जाये तब वेद प्रेमी (स्तोत्रं हर्यते) पुत्रवत् महान् प्रजावर्ग को (दीर्घं सुतम्) जल प्रदान करने के लिए (वाताप्याय) नहर खुदवाये (श्मशा) ।

श्मशान - श्मशानम् श्मशयनम् (श्म के शमन के स्थान) । श्म का अर्थ शरीर है । श्मशयन से ही श्मशान बना है ।

श्मश्रु - श्म + श्रि । (१) दाढ़ी मूंछ का बाल ।

'आदित्याँ श्मश्रुभिः'

वाज.सं. २५.१

'मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम'

वाज.सं. १९.९२, मै.सं. ३.११.९:१५४.१०. का.सं. ३८.३; तै.ब्रा. २.६.४.५.

(३) श्मश्रि-श्मश्रु । श्मनि श्रितं भवति । (लोम शरीर में श्रित रहता है) । श्म का अर्थ शरीर

है। अर्थ है- लोम, रोम, रोआं।

(४) जीव, श्मशु शरीररेषु श्रूयन्त इति श्मश्रवः जीवाः

श्मश्रुश्रितः - (१) श्मसु शरीरेषु श्रूयन्त इति श्मश्रवो जीवाः (शरीरों में विद्यमान जीवों या मूछों वाले वीर पुरुषों में आश्रय करने योग्य) (२) जीवों का वीर पुरुषों द्वारा सेवित, (३) युद्ध कालों में आश्रय करने योग्य।

'यो अस्ति श्मश्रुषु श्रितः'

ऋ. ८.३३.६

श्मसि - उश्मसि- (हम सदा कामना किया करें)।

'उत वः शंसमुशिजामिव श्मसि'

ऋ. २.३१.६

श्रत् - (१) सत्य, (२) विद्वान्।

श्रत्तम - विद्वानों में श्रेष्ठ। श्रत् + तम। श्रत् का अर्थ सत्य तथा विद्वान् है।

श्रथ्नानः - बांधता हुआ।

'स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान्'

अ. १४.१.५७

श्नथित - शिथिलीकृत, ढीला, शिथिल, लिपटा, हुआ,

'अवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः'

ऋ. १.११६.२४

प्रजाओं के बीच अपने कार्यों मे शिथिल हुए राष्ट्र को जल में बहती हुई नाव के समान.... अथवा,

जरायु से बंधे, गर्भगत जलों में लिपटे बालक को...

श्रद्धा - credo लैटिन प्रति रूप-श्रध् (विश्वास या प्रतीति करना) धातु से निष्पन्न-डा. फतहसिंह।

श्रध् धातु डा. फतह सिंह के मत से 'शिरस् + धा' से बना है। अतः श्रद्धा का अर्थ है प्रतीति मात्र में मानसिक और दैहिक दोनों प्रकार से अपने मस्तक को रखना।

सद्ध (नीचे को ओर जाने वाली), श्रृद्ध (निष्कासिता)।

(३) देवताओं के अस्तित्व और मानव जीवन में उनके सक्रिय हस्तक्षेपों पर विश्वास।

(४) यजुर्वेद संहिता १९-७७ में श्रद्धा को सत्य और अश्रद्धा को असत्य कहा गया है। (५) भाग्य की परम विधात्री शक्ति (ऋ.१०.१५१.१)।

(५) श्रत् + धा। सत्यज्ञान धारण करने का सामर्थ्य।

'स मे श्रद्धां च मेधां च'

अ. १९.६४.१, शां.गृ.सू. २०.१०.३

(६) श्रत् + धान। श्रद्धा श्रद्धानात् जिसमें श्रत् अर्थात् सत्य हो-जो सत्य का आधान हो वह श्रद्धा है। धर्म, अर्थ काम और मोक्ष में अविपर्यय बुद्धि ही श्रद्धा है।

(७) श्रत् + धा। सत्य को धारण करने वाली बुद्धि।

'श्रद्धाया दुहिता तपसोऽधिजाता'

अ. ६.१३३.४

श्रद्दधानः - (१) सत्यस्वरूप को धारण करने वाला -परमेश्वर।

'स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः'

ऋ. १.१०३.३

(२) श्रद्धावान्, (३) सत्य को धारण करने वाला।

'एतं लोकं श्रद्दधानाः सचन्ते'

अ. ६.१२२.३; १२.३.७

श्रद्धामनस्यः - (१) सत्य धारण से युक्त चित्त वाला (२) श्रद्धालु पुरुष।

'श्रद्धामनस्या श्रृणुते दभीतये'

ऋ. १०.११३.९

श्रद्धामनाः - (१) सत्य को धारण करने की इच्छा वाला (२) श्रद्धा से युक्त मन वाला।

'श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम्'

ऋ. २.२६.३; तै.सं. २.३.१४.४; मै.सं. ४.१४.१०: २३१.३; तै. ब्रा. २.८.५.३

श्रद्धेय - (१) सत्य रूप से धारण करने योग्य, (२) श्रद्धा योग्य।

'श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि'

ऋ. १०.१२५.४; अ. ४.३०.४

श्रमयुः - परिश्रमी, तपस्वी।

'श्रमयुवः पदव्यो धियन्धाः
तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः'

ऋ. १.७२.२

श्रव - बाजा आदि बजाने वाला।

'नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च'

वाज.सं. १६.३४, तै.सं. ४.५.६.१, मै.सं. २.९.६:

१२५.७; का.सं. १७.१४

श्रवण - (पु.) । (१) श्रवण नामक नक्षत्र ।

'श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम्'

अ. १९.७.४

(२) (न.) । धन, (३) यश

'सा नो ददातु श्रवणं पितॄणाम्'

मै.सं. ४.१२.६: १९५.९; आश्व.श्रौ.सू. १.१०.८; शा.श्रौ.सू. ९ .२८.३; नि. ११.३३

वह कुहू अर्थात् अमावास्या या गम्भीर गृहपत्नी हमें पितरों का एवं कुल क्रमागत् ऐश्वर्य एवं यश का दान करें ।

श्रवणीयपार - अध्ययन करने योग्य ऋग्वेद को समाप्त कर देना ही 'श्रवणीय पार' कहा जाता है ।

श्रवत् - सुन ले ।

'आ घा गमद् यदि श्रवत्'

ऋ. १.३०.८, अ. २०.२६.२; साम. २.९५.

वह यदि सुन ले तो अवश्य आवे ।

श्रवयन् - श्रवण करने या कराने की इच्छा करता हुआ ।

श्रवस् - न. । श्रु (सुनना) + असुन् = श्रवस् ।

(क) श्रूयते हि अन्नं वर्ण्यमानम् (अन्न का वर्णन सुना जाता है) ।

(ख) अथवा, श्रूयते लोके ख्यायते अनेन इति श्रवस् (लोक में मनुष्य इससे ख्यात होता है अतः यह श्रवस् है) ।

अर्थ - (१) अन्न, (२) धन, (३) कीर्ति, यश जो सुना जाता है ।

'उताभये पुरुहूत श्रवोभिः'

ऋ. ३.३०.५

(४) प्रख्यात आत्मा ।

'पदं देवस्य नमसा व्यन्तः
श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम्'

ऋ. ६.१.४, मै.सं. ४.१३.६: २०६.११, का.सं. १८.२०; तै.ब्रा. ३.६.१०.२.

जो पूज्य अग्नि के अमृत पद को देखते हुए सर्वप्रसिद्ध परमात्मा की इच्छा रखने वाले (श्रवस्यवः) उस प्रख्यात आत्मा को प्राप्त करते हैं (श्रवः आपन्) ।

(५) श्रवण शक्ति-सा. (६) विद्या श्रवण, ज्ञान-दया.

'प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वां
यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम्'

ऋ. १.११७.८

हे मनोरथ बरसाने वाले अश्विद्वय, तुम दोनों का वह कृत्य सचमुच प्रशंसनीय जब नार्षद् ऋषि को तुम दोनों ने श्रवण शक्ति दी ।-सा. हे बलवान् राजा तथा राजपुरुष, आप के जो वर्णनीय विद्याश्रवण और कर्म हैं उस ज्ञान और कर्म की शिक्षा राज कर्मचारियों के पुत्रों को विशेषतया दें ।

(७) नया पुराना अन्न,

(८) सोमरस ।

'अभि श्रव ऋज्यन्तो वहेयुः'

ऋ. ६.३७.३; नि. १०.३

नया पुराना अन्न या सोमरस (श्रवः) लावें (अभिवहेयुः) । धन के अर्थ में प्रयोग-

'श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम्'

ऋ. ४.३८.५; नि. ४.२४

ऐसे इन्द्र की हम धन एवं पशुओं के यूथ का लक्ष्य कर प्रार्थना करते हैं ।-सा.

जिस राजा की पशुतुल्य कीर्ति या धन को या पशुतुल्य कर्मचारी वर्ग या सैनिक वर्ग को कोसते हैं-सा।....दया.

श्रवस्कामः - श्रवणीय अभिलाषा और संकल्प वाला-इन्द्र; परमेश्वर ।

'श्रवस्कामं पुरुत्मानम्'

ऋ. ८.२.३८

श्रवस्य - (१) श्रवणीय राज्य कार्य सुनने के लिए सभासद् ।

'एकं च यो विंशतिश्च श्रवस्य'

ऋ. ७.१८.११

(२) श्रुति अर्थात् वेदज्ञान से युक्त ।

'उदुब्रह्माण्यैरत श्रवस्या'

ऋ. ७.२३.१; अ. २०.१२.१; साम. १.३३०; ऐ.ब्रा. ६.१८.३; २०.७ कौब्रा. २९.६; गो.ब्रा. २.४.२; ६.१.२; ऐ.आ. ५.२.२.३; वै.सू. २२.१३.

कर्म । श्रु + असुन् = श्रवस् । श्रवस् + यत् = श्रवस्य ।

'अकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा'

ऋ. १०.४४.६; अ. २०.९४.६; नि. ५.२५.

जिसने श्रवणीय दुस्कर कर्म किए ।

(५) श्रवण करने योग्य,
(६) शब्दकारी,
(७) वेदज्ञान में कुशल विद्वान् ।

श्रवस्यत् - श्रवस् + शतृ = श्रवस्यत् (१) अन्न धन की इच्छा करता हुआ -सा.
'श्रवस्यतामजाश्व'
ऋ. १.१३८.४; नि. ४.२५.
हे अजाश्व, तू हमें अन्न धन देने की इच्छा कर ।
(२) धनवान् ।

श्रवस्युः - (१) अन्न को उत्तम बनाने वाला-अग्नि ।
'मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी'
ऋ. २.१०.१
(२) यज्ञ समृद्धि का अभिलाषी ।
'अहूमहि श्रवस्यवः'
ऋ. ६.४५.१०; ८.२४.१८; अ. २०.६४.६; साम. २.१०३६.
(३) श्रु + असुन् = श्रवस्, श्रवस् + कपच् = श्रवस्थ, श्रवस्य + उ = श्रवस्यु । अन्न तथा यश की इच्छा करने वाला, यश का इच्छुक ।
'पदं देवस्य नमसा व्यन्तः
श्रवस्यवःश्रव आपन्नमृक्तम्'
त्र. ६.१.४; मै.सं. ४.१३.६:२०६.११; का.सं. १८.२०; तै.ब्रा. ३.६.१०.२.
जो पूज्य अग्नि के अमृत पद को भक्ति भाव से देखते हुए सर्व प्रसिद्ध परमात्मा की इच्छा रखने वाले उस प्रख्यात् आत्मा को प्राप्त करते हैं ।
(३) अन्न देने वाला मेघ, ।
'रथं मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे'
ऋ. ५.५६.८; नि. ११.५०
हम मारुत रूपी रथ वाले या मरुतों से युक्त, गतिशील एवं अन्न दाता मेघ को (श्रवस्युम् मारुतं रथम्) शीघ्र (नु) बुलाते हैं । (आहुवामहे) ।

श्रवाय्य- (१) श्रवण करने योग्य ।
'रयिं सोम श्रवाय्यम्'
ऋ. ९.६३.२३, साम. २.५८६
(२) स्तुत्य, कहने सुनने लायक । (३) आश्चर्यकारी, ।
'वाजो अस्ति श्रवाय्यः'
ऋ. १.२७.८; साम. २.७६६
इसका बलवीर्य जगत् में कहने सुनने लायक प्रशंसनीय अथवा आश्चर्यकारी है ।
'सनः पृथु श्रवाय्यम्
अच्छा देव विवासिसि'
ऋ. ६.१६.१२; साम. २.१२; तै.ब्रा. ३.५.२.२.

श्रविष्ठ - (१) श्रुतिवान्, (२) ब्रह्मज्ञानवान्, (३) ऐश्वर्यवान्, (४) विश्रुतयोगी पुरुष ।
'वर्षिष्ठमरुहन्त श्रविष्ठाः'
अ. १९.३९.२

श्लक्ष्ण - चिकना पदार्थ ।
'अवश्लक्ष्णमिव भ्रंशत्'
अ. २०.१३३.६; शां.श्रौ.सू. १२.२२.१.६

श्लक्ष्णा - स्नेहवाली ।
'श्लाक्ष्णायां श्लक्ष्णिकायाम्'
अ. २०.१३३.५; शां.श्रौ.सू. १२.२२.१.५.

श्लक्ष्णिका -घृतादि के स्पर्श से स्निग्ध स्त्री,

श्वकिष्किन् ,श्वकिष्की - कुत्तों की चाल चलने वाला ।
'अरायांश्वकिष्किणः'
अ. ८.६.६
'श्वघ्नी व कृत्नुर्विज आमिनाना'
ऋ. १.९२.१०
कुत्तों की सहायता से मृगों को मारनेवाला व्याधिनी या कुकुर आदि पशुओं को मारने वाली भेड़ियों के समान (श्वघ्नी इव) पोरू पोरू काटने वाली (कृत्नुः) भय से व्यथित प्राणियों को (विजः) कालक्रम से विनाश करती हुई (आमिनाना). ..।
(३) जुआखोर, (४) कुत्ते का शिकारी ।
'श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमादत्'
ऋ. २.१२.४; अ. २०.३४.४
(५) अपना द्रव्य नष्ट करने वाला, (६) अपने आश्रित जन को मारने वाला, (७) अपने भविष्य को नाश करने वाला जुआखोर ।
'श्वघ्नीय निवता चरन्'
ऋ. ८.४५.३८
(८) स्व + हन् + मिनि (भूत अर्थ में) = श्वघ्नी = श्वघ्नी । हन् की उपधा का लोप, ह् का घ और 'स' काश् व्यत्यय । अर्थ है- परधनहारी, धूर्त, जुआरी ।

'कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने'

ऋ. १०.४३.५; अ. २०.१७.५; नि. ५.२२.

जैसे परधनहारी, धूर्त या जुआरी जुए में (देवने) पूर्व पुरुषों का अर्जित धन ढूंढता है (कृतं वि चिनोति)।

'कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले'

अ. ७.५०.६

(९) अपने भविष्य का नाश करने वाला।

श्वञ्च - धा.। उत्साह उत्पन्न करना, प्राप्त करना, ले जाना।

'उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु'

ऋ. १०.१८.१२; अ. १८.३.५०

श्वन् - (१) शु + अप् + कनिन् = श्वन्, (२) शव (गत्यर्थक) + कनिन् = श्वन्। अर्थ है- (१) कुत्ता। कुत्ता बहुत चलता है। आशु या शु समानार्थक है। (ग) श्वस् (वधार्थक) + कनिन् श्वन् (कुत्ता शिकारी होता है।

'श्वाकक इति कुत्सायाम्'

(श्वा और काक शब्द कुत्सा का द्योतक है)। जो कुत्तों सा आचरण करता है वह भी श्वा कहलाता है।

श्वन्वती - (१) कुत्तों के समान स्वामिभक्त सेना।

'श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे'

अ. ११.९.१५

(२) कुत्ते के दोष गुण, कर्म और स्वभाव वाली स्त्री, (३) कुत्ते द्वारा फैलने वाला रोग।

'शतं च शश्वन्वतीनाम'

अ. १९.३६.६

(४) कुत्तों को साथ लिए आने वाली मांस भक्षिणी स्त्री। (५) श्वन्वती नाम्नी अप्सराएं।

श्वनिः - कुत्तों को साधने वाला-सिखलाने वाला।

'नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः'

वाज.सं. १६.२७; मै.सं. २.९.५: १२४.७; का.सं. १७.१३.

श्वनी - कुत्ता पालने वाला शिकारी।

'अन्तकाय श्वनिनम्'

वाज.सं. ३०.७; तै.ब्रा. ३.४.१.३.

श्वः - () आने वाला कल।

'श्वश्च सर्वतातये'

ऋ. ६.५६.६

'अद्य जीवानि मा श्वः'

अ. ५.१८.२

(२) श्वः उपाशंसनीयः कालः (श्वः के लिए प्राणी अभिप्राय वश आशंसा करता है)। -आगामी दिन।

'न नूनमस्ति नो श्वः'

ऋ. १.१७०.१; नि. १.६

श्वःश्वः - भविष्य में।

'भूयो भूयः श्वः श्वः'

अ. १०.६.५-१७

श्वपद् - कुत्ते के से नखों वाला मांसाहारी जन्तु।

'व्याघ्रः श्वपदामिव'

अ. ८.५.११; १९.३९.४

श्वभ्रा - गढ़ा।

'परिश्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम्'

ऋ. २.२७.५

श्वयातुः - (१) कुत्ते के समान चाल चलने वाला, (२) पागल कुत्ते के समान अन्यों को निष्प्रयोजन काटने वाला, (३) परुषभाषी, गुर्राकर डराने वाली।

'एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातवः'

ऋ. ७.१०४.२०; अ. ८.४.२०

(४) कुत्तों को साथ लिए चलने वाला, (५) टुकड़खोर, (६) पागल कुत्तों के समान प्रजा को फाड़ खाने वाला प्रजापीड़क।

श्ववर्त - (१) कल तक वर्तमान (२) एक दिन तक जीने वाला कीट।

'ऊबध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयम्'

अ. ९.४.१६

श्वशुरः - (१) शूरवीर नायक।

'सा वसु दधती श्वसुराय'

ऋ. १०.९५.४

(२) शु आशु अश्नोति आप्नोति इति श्वसुरः। (क) शु + अश् + हरन् = श्वसुर (शावशेराप्तौ) (ख) सु + आशित = श्वसुरः (ग) सुखेन शीघ्रं वा प्राप्यत इति श्वशुरः।

अतिशीघ्र, सर्वप्रथम प्राप्त होने वाला नायक

'ममेदह श्वशुरो ना जगाम'

ऋ. १०.२८.१

(३) स्त्री या पति का पिता।

श्वसथ – श्वास।
'वृत्रस्यत्वा श्वसथादीषमाणाः'
ऋ. ८.९६.७; साम. १.३२४, ऐ.ब्रा. ३.२०.१; तै.ब्रा. २.८.३.५; शां.श्रौ.सू. १३.१२.३.४,

श्वसन् – (१) सांस लेता हुआ।
'धीरमधीरा झपति श्वसन्तम्'
ऋ. १.१७९.४
काम से अधीर लोपामुद्रा अपने धीर पर श्वांस लेते हुए पति को चित्त से पान करती या देखती है।

श्वसन – (१) श्वस् + युच् = श्वसन्। पुं.। अर्थ – (१) वायु,।
'श्वसनः स्पर्शनः वायुः'
– अमरकोष
(२) वायु का स्थान अन्तरिक्ष

श्वसीवान् – समस्त प्राणियों को प्राण देने वाले पवन से युक्त
'अध श्वसीवान् वृषभो दमूनाः'
ऋ. १.१४०.१०
और वर्षणशील मेघस्थ
(वृषभः) विद्युत् रूप अग्नि (दमूनाः) समस्त प्राणियों को प्राण देने वाले पवन से युक्त होकर (श्वसीवान्)।
अथवा,
बड़ा साँढ़ (वृषभः) महा प्राण से युक्त होकर (श्वसीयान्)।
अथवा,
स्वयं दात्तचित्त जितेन्द्रिय राजा शत्रुओं के दमन में दत्त चित्त होकर (दमूनाः)

शाक – शक्तिशाली।
'शाक्मना शाको अरुणः सुपर्णः'
ऋ. १०.५५.६; साम. २.११३३; शां.श्रौ.सू. १८.१.७.

शाक्मना – (१) अपनी ही शक्ति से सर्वं शक्तिमान्। (२) महती शक्ति

शाक्वर – (१) शक्तिशालियों के ऊपर विराजने वाला विष्णु, (२) राजा।
'तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वन ओजिष्ठाय'
वाज.सं. ५.५.
(३) त्रिनव स्तोम से उत्पन्न शाक्वर और रैवत नामक दो पृष्ठ, (४) शक्तिशाली राष्ट्र।
'त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्यां शाक्वर रैवते'
वाज.सं. १३.५८, तै.सं. ४.३.२.३, मै.सं. २.१७.१९: १०४.१४; का.सं. ४.१६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.८.
(४) शक्तिशाली।
'शाक्वरा वृषभा ये स्वराजः'
अ. ९.१.९
'पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो
राजन्य अमिक्षाव्रतो वैश्यः'
(६) शक्वरी का अर्थ ऋचा है। अतः शाक्वर का अर्थ है।– ऋचा सम्बन्धी ज्ञान, वैदिक ज्ञान-दया.

शाकल – ऋग्वेद के आठ स्थानों में एक।

शाकिन्, शाकी – शक्तिमान्।
'शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरम्'
ऋ. ३.५१.२
क्रीड़ी च शाकी चोज्रेषी
वाज.सं. १७.८५
'शाकी भव यजमानस्य चोदिता'
ऋ. १.५१.८
तू यजमान या कर देने वाले या तेरा आदरमान करने वाले राष्ट्रवासी जन का आज्ञापन होकर शक्तिमान् होकर (शाकी भव) रह।

शाखा – 'खे शेते' (आकाश में सोती है अतः शाखा है) (१) डाली।
'पक्वा शाखा न दाशुषे'
ऋ. १.८.८, अ. २०.६०.५, ७१.४
(२) 'खेशयाः' से पृषोदरादिषत् शाखा बना है।
(३) शक् + ण (कर्त्ता में) = शाखा (क् का ख्)। शक्नोतेः वा (शक् धातु से भी शाखा शब्द बनता है)।
(२) पुत्र पौत्रादि की परम्परा।

शांखायन – ऋग्वेद के आठ स्थानों में एक।

शाङ्कुर – (१) कील के समान सबके दिल में चुभने वाला, (२) पुरुष लिंग से युक्त।
'शंकुर एव शांकुः –सा.
'शांकुरस्य नितोदिनः'
अ. ७.९०.३

शाचिगुः – (१) शक्तिशाली बैलों, अश्वों, धनुषों और वाणियों वाला– इन्द्र, राजा, विद्वान, परमेश्वर।
'शाचिगो शाचिपूजन'

अयं रणाय ते सुतः'

ऋ. ८.१७.१२; अ. २०.५.६, साम. २.७६

(२) शक्तिशाली पृथ्वी आदि लोकों का स्वामी इन्द्र (३) शक्ति से गमन करने वाला।

(४) शची के बुलाने पर या सोमादि यज्ञ में बुलाने पर आने वाला इन्द्र -सा.

(५) बुद्धि पूर्वक वाणी वाला ज.दे.श.।

शाचिपूजन – (१) व्यक्तवाणी द्वारा पूजने योग्य। (२) यज्ञ में बुलाकर पूजे जाने वाला-सा. (३) विद्या का सत्कार करने वाला-ज.दे.श.

(४) शक्तिशाली पुरुषों से भी पूजने योग्य इन्द्र (५) शक्ति द्वारा पूजनीय।

शाची – शाचाः शक्तयो अस्य शन्ति इति शाची (१) शक्ति से शक्तिमान्।

'शाचिन् यव्ये गव्य एतदन्नमत्त'

वाज.सं. २३.८

शांड – (क) शं ददाति इति शांडः (ख) स्यति अन्तं करोति वा शत्रूणाम्। शां + ड = शांड।

अर्थ – (१) प्रजा को शान्तिदायक (२) शत्रुओं को अन्त करने में वीर समर्थ पुरुष

'शांडो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन्'

ऋ. ६.६३.९

शाण्डदूर्वा – बड़ी दूब।

'शाण्डदूर्वा व्यल्कशा'

अ. १८.३.६

शातपन्ता – (१) सैकड़ों व्यवहारों को करने वाले स्त्री पुरुष, (२) अश्विद्वय।

'मित्रेव ऋता शतरा शातपान्ता'

ऋ. १०.१०६.५

शातवनेय – (१) शतानि असंख्यातानि, वनयः संभक्तयः येषां ते शतवनयः तैः निवृतम् जगत् (संस्वर जिस में सैकड़ो संविभाग है)। (२) बहुत से सहायकों से चलाने योग्य सैकड़ो ऐश्वर्यों के स्वामियों से पूर्ण राष्ट्र या जगत्।

'शातवनेये शतिनीभिरग्निः
पुराणीथे जरते सूनृतावान्'

ऋ. १.५९.७

वह सैकड़ों उत्तम कार्यों वाली शक्तियों से युक्त (शक्तिनीभिः) ज्ञानवान् अग्रणी (अग्निः) शुभ सत्य वाणी तथा ज्ञान और अन्नसम्पदा से सम्पन्न (सूनृतावान्) बहुत से सहायकों से लाए जाने योग्य सैकड़ों ऐश्वर्यों के स्वामियों से पूर्ण राष्ट्र और जगत् में (शान्तिवनेये) स्तुति किया जाता है।

शाद – (१) काटने की क्रिया, (२) छेदनकारी शास्त्रबल।

'शादं दद्भिः'

वाज.सं. २५.१; मै.सं. ३.१५.१: १७७.७; का.सं. (अश्व.) १३.१; श.ब्रा. १३.३.४.१.

शान्तमः – शन्तमः। अत्यन्त कल्याण कारक।

'त आ गतावसा शंतमेन'

ऋ. १०.१५.४. अ. १८.१.५१, वाज.सं. १९.५५; तै.सं. २.६.१२.२; मै.सं. ४.१०.६: १५६.१३; का.सं. २१.१४

वे आप अत्यन्त कल्याण कारक रक्षण के साथ आवें।

शाप – (१) जल, (२) ललकारता हुआ शत्रु।

'प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति'

ऋ. १०.२८.४

(३) शाप, आक्रोशवचन

'शापं सिन्धूनामकृशष्णोदशस्तीः'

ऋ. ७.१८.५

शाबल्या – शबल वर्ण अर्थात् मलिन कार्य करने वाली जाति।

'यादसे शाबल्याम्'

वाज.सं. ३०.२०

शाम्बंर वसु – मेघ से बरसा जल।

'शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म'

ऋ. ६.४७.२२

शामुल्य – शरीरस्थ मल, शमन करने योग्य मानस दुर्भाव या मलिनता।

'परादेहि शामुल्यम्'

ऋ. १०.८५.२९; १४.१.२५,

श्याम – (१) श्याम लोह।

'श्यामञ्च मे लोहञ्च मे'

वाज.सं. १८.१३, तै.सं. ४.७.५.१, का.सं. १८.१०

(२) रात

'रात्रिः श्यामः'

कौ.सू. २.९.

(३) श्यैङ् (गत्यर्थक) + मक् = श्याम। ऐ का आ। 'श्यामं श्यापतेः' अर्थात् श्याम शब्द सम्पर्क से उत्पन्न होता है।

श्यामा - (१) सरूपा नाम्नी ओषधि जो कुष्ठ की उत्तम ओषधि है । गुडूची, कस्तूरी, नील पुनर्नवा, नीलिनी पिफली, रोचना, वट पत्री और हरिद्रा श्यामा वर्ग की हैं ।
'श्यामा सरुपङ्करणी'
अ. १.२४.४

श्यामाक - सावाँ- चावल ।
'श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे'
वाज.सं. १८.१२; तै.सं. ४.७.४.२; मै.सं. २.११.४: १४२.३
'यथा श्यामाकः प्रपतन्'
अ. १९.५०.४
'श्यामाकं पक्वं पीलु च'
अ. २०.१३५.१२, शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.५.

श्याम्बु - (१) जल सहित नदी, (२) समुद्र और मेघ से उत्पन्न कुष्ठ नामक औषधि
'त्रिः शाम्बुभ्यो अंगिरेभ्यः'
अ. १९.३९.५

श्रायाः - (१) सिंहनाद सुनाने वाले, (२) स्थिरता से सब का आधार भूत, (३) गुणों से प्रसिद्ध ।
'श्राया रथेषु धन्वसु'
ऋ. ५.५३.४

श्याव - (१) श्याम रंग ।
अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वम्'
ऋ. १०.६८.११; अ. २०.१६.११
(२) श्यैङ् (गत्यर्थक) + अण् = श्याव । कुष्ठ रोग के कारण कपिश रंग (३) श्याम नामक ऋषि या राजा जिसे अश्विनी कुमारों ने कुष्ठ रोग से मुक्त किया था -सा.
(४) प्रापक -दया.
'युवं श्यावाय रुशतीमदत्तम्'
ऋ. १.११७.८
हे अश्विनीकुमारो, तुम दोनों ने कुष्ठ रोग से कपिश वर्ण वाले श्याम नामक ऋषि या राजा को ज्वलित रूपश्री या दीप्तवर्णा स्त्री दी-सा. । हे राजा तथा राजपुरुषों, आप उत्तम निवास के प्रापक विद्वान् को लक्ष्मी प्रदान करें । (रुशतीम् अदत्तम्) । (३) सूर्य किरण रूपी अश्व निघंटु

श्यावक - (१) गतिमान, (२) वैश्य का स्वभाव ।
'यद् वा रुमे रुशमे श्यावके कृपे'
ऋ. ८.४.२, अ. २०.१२०.२; साम २.५८२.
(३) विद्वान्
'शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपम्'
ऋ. ८.३.१२.
(४) इधर उधर जाने वाला व्यापारी -वैश्य

श्यावदत् - काले मलिन दाँतों वाला ।
'श्यावदता कुनखिना'
अ. ७.६५.३

श्यावा - (१) जमुनी रंग के किरण
(२) अश्व का जोड़ा
श्यावा रथं वहतो रोहिता नः
ऋ. २.१०.२
(३) ब.व. । समस्त लोकों में पहुंचने वाले, (४) प्राप्त होने वाले किरण (५) ज्ञान करने योग्य ।
'वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन्'
ऋ. १.३५.५; तै.ब्रा. २.८.६.२
समस्त लोकों में पहुंचने वाले, श्वेत किरणों वाले सूर्य विविध रूप से प्रकाशित होते हैं । अथवा
ज्ञान करने योग्य (श्यावाः) शुद्ध विशद ज्ञान कराने वाले छन्दों के चरणों से युक्त (शितिपादः) परमात्मा मनुष्यों के विविध ज्ञानों का प्रकाश करते हैं ।

श्यावाश्वः - (१) श्याम वर्ण शिखा वाला अश्व, (२) श्यावश्वों का स्वामी
'प्र श्यावाश्व धृष्णुया ।
अर्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः'
ऋ. ५.२१.१
(३) ज्ञानवान आत्मा वाला (४) श्याव वर्ण अश्व वाला
(५) प्रदीप्त किरणों वाला सूर्य
'श्यावाश्वस्ते सवित्स्तोममानशे'
ऋ. ५.८१.५
(६) एक वैदिक ऋषि, (७) बलवान्, दृढ़ जितेन्द्रिय पुरुष, (८) श्यावरंग के अश्व वाला
'श्यावाश्वस्य सुन्वतस्तथा श्रृणु'
ऋ. ८.३६.७
(९) श्याव अश्व वाला-रुद्र (१०) दिन और रात्रि रूप दो अश्वों वाला
'श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तम्'
अ. ११.२.१८
(११) ज्ञान में सिद्ध अश्व अर्थात् इन्द्रियों वाला

कुशल पुरुष (१२) मन ।
'यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वम्'
अ. ४.२९.४
(१३) दानशील इन्द्रियों से सम्पन्न ।
'श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः'
अ. १८.३.१५

श्याव्या - (१) अज्ञानयुक्त प्रजा (२) सम्पन्न समृद्ध सेना (३) रात्रि का अन्धकार ।
'यमङ्क्ूयन्तमानयन्नभूरं श्याव्याभ्यः'
ऋ. ६.१५.१७

श्यावी - (१) कृष्णवर्ण की रात्रि (२) तपोमयी राजसभा से संवलित प्रकृति (३) पृथिवी ।
'श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ'
ऋ. ३.५५.११
(४) काले लाल रंग की गौ
'दश श्यावीनां शता'
ऋ. ८.४६.२२
(५) अल्पकृष्ण वर्णा, कुछ अन्धकार की अंधियाली लिए हुई ।
'स्वसारः श्यावीमरुषीमजुस्रन्
चित्रमुच्छन्ती मुषसं न गावः'
ऋ. १.७१ १
किरणें जिस प्रकार अन्धकार के आवरण को दूर करती हुई कुछ कुछ अन्धकार से अंधियारी और कुछ कुछ ललाई लिए हुए उषा काल को प्राप्त होती है, उसी प्रकार स्वयं अपने बल से आगे बढ़ने वाली भूमियां तथा उस पर रहने वाली प्रजाएं (स्वसारः) या विद्वान् जन ज्ञान से सम्पन्न आगे बढ़ने वाले, कान्तिमात्र, तेजस्वी संग्रह करने योग्य अद्भुत ऐश्वर्य को प्रकट करने वाले शत्रुओं को जला डालने वाले राजा या विद्वत्सभा को प्राप्त हो ।

शारद - शरद् काल में होने वाला ज्वर ।
'सदन्दिमुत शारदम्'
अ. ५.२२.१३

शारदी - (१) वर्ष । सायण ने शरद् शब्द को वर्ष का वाचक मान शारदी का अर्थ वर्ष किया है ।
(२) शरद् आदि छः ऋतुओं के अनकूल-दया.
'सप्त यत पुरः शर्म शारदीर्दत्'
ऋ. १.१७४.२; ६.२०.१०
विस्तृत प्रयत्नसाध्य नगरियों को (सप्त यत्पुरः) कल्याणपद (शर्मदत्) बनाया । दया. ।
सात वर्षों तक (सप्तशारदीः)
मेघ के पुरों को (पुरः) प्रजाओं के कल्याण लिए (शर्म) दीर्ण किया (दर्त) स्व. ।

शारदीपुर् - (१) शरद् या वर्षों द्वारा मापी जाने वाली देह रूपी पुरी, (३) युद्ध
यात्रा काल में खड़ी की गई शत्रुओं की गढ़ी ।
(४) शरद् ऋतु में सुख देने वाला स्थान ।
'सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दत'
ऋ. १.१७४.२; ६.२०.१०
(४) शरद् काल में वायुमण्डल में पूर्ण होने वाली जल- धाराए, (६) शरद् अर्थात् युद्ध यात्रा काल में उपयोगी नगर ।
'पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः'
ऋ. १.१३१.४, अ. २०.७५.२
जिस प्रकार सूर्य शरद काल में वायु मण्डल में पूर्ण होने में वाली जल-धाराओं को जल वर्षा रूप में नीचे बरसाता है (शारदीः पुरः अवातिरः) ।
अथवा,
जब तू शरद अर्थात् युद्ध यात्रा के समय के उपयोगी नगरियों को नीचे गिरा देता है ।

शारदौ मासौ - शरदृतु के दो मास-आश्विन् और कार्तिक ।
'शारदौ मासो गोप्तारौ'
अ. १५.४.११.

शारदी अनुष्टप - शरद् ऋतु से उत्पन्न अनुष्टुप छन्द जो छन्दों में सर्वप्रिय है ।
'अनुष्टुप शारदी'
वाज.सं. १३.५७; तै.सं. ४.३.२.२; मै.सं. २.७.१९: १०.१०; का. सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.५.

शारिः - सारिका, मैनी ।
'सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक्'
वाज.सं. २४.३३, तै.सं. ५.५.१२.१; मै.सं. ३.१४.१४: १७५.६; कां.सं. (अश्व.) ७.२

शारिशाका - मधुमक्षिका ।
'शारिशाकेव पुष्यत'
अ. ३.१४.५

शारी - (१) शरों की गति दया. (२) बाणों की पंक्ति ।

(३) शरधारी,
(४) शत्रुहन्ता सेना ।
'याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये'
ऋ. १.११२.१६
जिन साधनाओं से बाणों की पंक्तियों या शूरधारी या शत्रुहन्ता सेनाओं को (शारीः) किरणों से ओतप्रोत सूर्य या प्रजाओं के शासन मर्यादाओं को बांधने वाले शासक पुरुष की रक्षा करते हो और शत्रुओं की तरफ चलाते हो (आजतम्) ।

शार्ग - (१) सारग- सार पदार्थों तक पहुंचने वाला (२) शारग- शर-समूहों के सहित जाने वाला । (३) शार्ङ्ग- श्रृंग के बने या उनके समान हिंसाकारी धनुष आदि शास्त्रों को धारण करने वाला शस्त्रधर ।
'शार्गः सृजयः श्याण्डकस्ते मैत्राः'
वाज.सं. २४.३३, मै.सं. ३.१४.१४: १७५.६

शार्दूल - सिंह ।
'शार्दूलाभ रोहित्'
वाज.सं. २४.३०; मै.सं. ३.१४.११: १७४.८

शार्यात - (१) शृ + ण्यत् + अत + अच् = शार्यात । यो वीरसमूहं शरितुं हिंसितुं योग्यान् निरन्तम् अतति (जो हिंसा करने योग्य वीर समूह के पास निरन्तर जाता है वह शार्यात है) ।
'शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे'
ऋ. १.५१.१२.
(२) शरों, शत्रुहिंसक शस्त्रों के द्वारा प्रयाण करने योग्य संग्राम आदि का अवसर ।
'यथा शार्याते अपिबः सुतस्य'
ऋ. ३.५१.७; वाज.सं. ७.३५; तै.सं. १.४.१८.१; मै.सं. १.३.१९: ३७.५; का.सं. ४.८; श.ब्रा. ४.३.३.१३.

शाला - (क) शल (गत्यर्थ) + णिच् + अच = शाल ।
(ख) शृ + घञ् + ल (छान्दस) = शाल ।
अर्थ - (१) आवारा गर्द (२) इधर उधर घूमने वाला (३) हिंसक ।
'ये शालाः परिनृत्यन्ति'
अ. ८.६.१०
(४) गृह, भवन ।
'इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालाम्'
अ. ३.१२.१; पा.गृ.सू. ३.४.४; हि.गृ.सू. १.२७.२
शालाया देव्या द्वारम्'
अ. १४.१.६३

शालापति - गृहपति ।
'शालापतये च कृण्मः'
अ. ९.३.१२

शालुड - अर्थ-लुच्चा, व्यभिचारी '
तुण्डेलमुत शालुडम् ।
अ. ८.६.१७

श्वा - (१) गतिशील प्राण, (२) कुत्ता ।
'मुग्धा देवा उत शुनायजन्त'
अ. ७.५.५.

श्वात्रः - अति क्षिप्रकारी ।
'श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवः'
ऋ. १०.४६.७; वाज.सं. ३३.१; तै.ब्रा. २.७.१२.१.

श्वात्रम् - (१) शीघ्र ।
श्वात्रमर्का अनूषत'
ऋ. ८.६३.५
(२) आशु + अत + रक् = श्वात्र । आशु का वर्ण विपर्यय । श्वात्रयिति क्षिप्रनाम । आशु अतनं भवति' अर्थ-क्षिप्र , जो शीघ्र चला जाता है (अतति) ।
'श्वात्रमग्निरकृणोज्ञातवेदाः'
ऋ. १०.८८.४; नि. ५.३.
(३) धन, (४) आशुयावी, आशु गामी ।

श्वात्रभाक् - (१) धनादि से समृद्ध
'श्वाभाजा वयसा सचते सदा
ऋ. ८.४९; साम १.२७७

श्वात्र्य - (१) शुद्ध, ।
'त्वां गिरः श्वात्र्य आ ह्वयन्ति'
ऋ. १०.१६०.२; अ. २०.९६.२
(२) उत्तम धन सम्पन्न (२) उत्तम धन-सम्पन्न ।
'प्रायोगेव श्वत्र्या शासुरेथः'
ऋ. १०.१०६.२
(३) शीघ्र अपने अभिप्राय को बतलाने वाली वाणी ।

श्वान्तः- (१) महान् आत्मा ।
'अनु श्वान्तस्य कस्य चित् परेयुः'
ऋ. १०.६१.२१
(२) शान्त परिपक्व ज्ञान वाला-
आचार्य, (३) स्वान्त अर्थात् समीप आया हुआ

शिष्य, (४) श्रान्त ।
'अभिश्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे'
ऋ. १.१४५.४

श्वाना - द्वि.व. । (१) दाएं बाएं चलने वाले दो कुत्ते, (२) दो कुत्तों के समान रक्षकवत् स्त्रीपुरुष । (३) अश्विद्वय ।
'श्वानेव नो अरिषण्या तनूनाम्'
ऋ. २.३९.४

श्वापदः - (१) कुत्ते के समान पंजे वाला,
(२) कुत्ता, (३) गीदड़,
(४) सिल्ली,
(५) सिंह व्याघ्र जन्तु ।
'पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः'
ऋ. १०.१६.६; अ. १८.३.५५; तै.आ. ६.४.२.

श्वावित् - (१) साहिल, (२) केवल विषय रस के लिए भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने वाला जीव ।
'श्वावित् कुरु पिशङ्गिला'
वाज.सं. २३.५६
साहिल के अर्थ में-
'श्वाविद्धौमी'
वाज.सं. २४.३३; मै.सं.. ३.१४.१४: १७५.६

शाशदाना - द्वि.व. । (१) छिन्न भिन्न करने वाले अश्विद्वय ।
'देवानां वा जूतिभिः शाशदना'
ऋ. १.११६.२
विजिगीषू पुरुषों की वेगवती सेनाओं से या देवों की सेनाओं से शत्रु सेनाओं को छिन्न भिन्न करने वाले (शाशदाना) अश्विद्वय या सेनाध्यक्षो ।
(२) स्त्री. ए.व.। अपना स्वरूप प्रकट करती हुई स्त्री या उषा ।
'कन्येव तन्वा शाशदाना'
ऋ. १.१२३.१०
(३) नाश करने वाली स्त्री ।
'उत स्त्रियं मायया शाशदानाम्'
ऋ. ७.१०४.२४; अ. ८.४.२४

शाशद्रे - तीक्ष्ण होकर कार्य करते हैं ।
'मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः'
ऋ. १.१४१.९

शांशप- शंशमा नामक वृक्ष के समान वृद्धिशाली ।
'भगेन मा शांशपेन'
अ. ६.१२९.१

शाश्वसत् - निरन्तर सांस लेने वाला -अश्व ।

शास् - (१) शासन करने वाला, (२) शास्त्र ।
'शासामुग्रो मन्यमानो जिघंसति'
ऋ. २.२३.१२; का.सं. ४.१६

शासः - (१) शास भारद्वाज नामक वैदिक ऋषि (२) विश्व का शासक इन्द्र ।
'शास इत्था महां असि'
ऋ. १०.१५२.१; अ. १.२०.४; शां.श्रौ.सू. १८.१८.४; शां.गृ.सू. ४ .६.५; ६.५.६
(३) आज्ञा, हूकूमत ।
'रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति'
ऋ. १.५४.७

शासत् - (१) प्रशास्ति, ज्ञापयति (शासन करता है, जनाता है) । शास् + शतृ = शासत् ,
(२) शासन करता हुआ, कहता हुआ ।
'शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गात्'
ऋ. ३.३१.१; ऐ.ब्रा. ६.१८.२; १९.४; गो.ब्रा. २.५.१५; ६.१; नि . ३.४.
अपनी कन्या को विवाह में देने वाला अपुत्र पिता (वह्निः) यह कहता हुआ कन्यादान करता है (शासत्) कि कन्या से उत्पन्न पुत्र उसका होगा और वह पुत्री से उत्पन्न पुत्र को अपनाता है (दुहितुः नप्त्यम् गात्) ।

शासदान - शाशदानः, शाशदयमानः पुनः पुनः असुरान् तत् पुराणिना शातयन् (पुनः पुनः, असुरों को या उनेक पुरों को नष्ट करता हुआ) । 'शद्लृ' धातु शादनार्थक है । इसी से कर्मवाच्य में यङ्लुगन्त प्रत्यय कर लट् अर्थ में शाशस्य-मान' हुआ है । वेद में इसी का 'शाशदान' रूप मिलता है ।
(२) बार बार दमन करता हुआ -दया.
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्
वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
'सं वज्रेणासृद् वृत्रमिन्द्रः
प्र स्वां मतिमितरच्छाशदानः'
ऋ. १.३३.१३; मै.सं. ४.१४.१३; २३७.१३; तै.ब्रा. २.८.४.४
इस इन्द्र का साधक वज्र (सिध्मः). शत्रुओं को लक्षित कर गया था (शत्रून् अभि अज़िगात्) ।

इस इन्द्र के इस श्रेष्ठ या वर्षा बरसाने वाले वज्र से (तिग्मने वृषभेण) वृत्रासुर या मेघ के पुरों को विविध प्रकार से नष्ट किया (पुरः वि अभेत्) तब उस इन्द्र ने अपने वज्र से उस वृत्र या मेघ को संसृष्ट किया (वज्रेण वृत्रं समसृजत्) । वह मेघ बार बार भेदित किंए जाने पर या तंग किए जाने पर या सताए जाने पर (शाशदानः) जल न देने का अपना विचार त्यागा (स्वां मति प्रातिरत्) ।

सायण ने इसका अर्थ यों किया है- इन्द्र ने वज्र को संयोजित कर बार बार सताते हुए वृत्र को हिंसित कर अपनी मति को हर्ष से प्रवर्द्धित किया ।

स्वा. दयानन्द का अर्थ-इस राजा का सधा हुआ सैन्य समूह (सिध्मः) शत्रुओं पर आक्रमण करता है, तीक्ष्ण पराक्रम से (तिग्मेन वृषभेण) शत्रुदुर्गों को (पुरः) तोड़ता है (वि अभेत्) और वज्र से पापी शत्रु को संयुक्त करता है (वज्रेण वृत्रं समसृमत्) एवं बार बार शत्रु का दमन करता हुआ (शाशदानाः) अपनी रीति नीति को फैलाता है (स्वां मतिं प्रतिरत्) (३) काटने वाला ।

'सा क्षाम तान् बहुभिः शाशदानाम्'

ऋ. ७.९८.४; अ. २०.८७.४

(४) बार बार भिद्यमान । शश धातु भेदनार्थक है ।

इन दिनों भी 'मैं 'शाशत्' सह रहा हूँ का प्रयोग प्रचलित है । शासन शब्द बहुत प्रकार की यातना अभिप्रेत है ।

शाशनी इडा - (१) मानव गण को शिक्षा देने वाली वेद विद्या ।

'इडामकृण्वन् मनुषस्य शासनीम्'

ऋ. १.३१.११

वे ही स्तुति करने वाली या स्तुति करने योग्य वेद विद्या को (इडाम्) मननशील मानव गण को शिक्षा करने वाली बतलाते हैं ।

शास्य - (१) शासन करने योग्य (२) 'शास' अर्थात् शास्त्र आदि धारण करने में कुशल ।

'अभिपित्वे मनवे शास्यो भूः'

ऋ. १.१८९.७

शासृ - शासक, परमेश्वर ।

'अस्य शासुरुभयासः सचन्ते'

ऋ. १.६०.२

इस शासक परमेश्वर की शरण में धनी और गरीब दोनों जाते हैं ।

श्रात - परिपक्व, पका ।

'यदि श्रातं जुहोतन'

ऋ. १.१७९.१; अ. ७.७२.१; आप.श्रौ.सू. १३.३.४; मा.श्रौ.सू. ४ .५.४

श्रान्तसदौ - द्वि.व. । थककर बैठे हुए ।

'गावौ श्रान्तसदाविव'

अ. ७.९५.२

श्रायन्तः - श्रिञ् + शतृ = श्रायत् (इ की वृद्धि) । श्रायत् + जस् = श्रायन्तः । अर्थ है- समन्तात् आश्रिताः (चारों ओर से आश्रित) । 'श्रियन्त' का श्रापन्तः' समाश्रित ।

'श्रायन्त इव सूर्यम्
विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत'

ऋ. ८.९९.३; अ. २०.५८.१; साम. १.२६७; २.६६९; वाज.सं. ३३.४१; नि. ६.८

जैसे सूर्य में समाश्रित रश्मियाँ सूर्य को भजती हैं, उसी प्रकार इन्द्र अर्थात् परमेश्वर के सभी धनों को भजो ।

श्रावक - ऋग्वेद के चार पाद हैं- चर्चा, श्रावक, चर्चक, और श्रवणीय । अध्ययन और उच्चारण मात्र चर्चा है । अध्येता शिष्य चर्चक है, अध्यापक गुरु श्वखक है और श्रावण करने योग्य वेद को समाप्त करना श्रवणीय पाद है ।

शिंक् - (१) बछड़े की ध्वनि, (२) गर्जन ।

'अयं स शिंक्ते येन गौरभीवृता'

ऋ. १.१६४.२९; अ. ९.१०.७; नि. २.९.

शिक्य - मकान में बांधे जाने वाला छीका सिकहर ।

'यानि तेऽन्तः शिक्यानि'

अ. ९.३.६

'स एति शिक्याकृतः'

अ. १३.४.८

शिक्याकृत - छींका का सिकहर में रखा हुआ ।

शिक्वः - चतुर ।

'यत् त्वा शिक्वः परावधीत्'

अ. १०.६.३

शिक्वन् - शीकृ + क्वनिप् । (१) सेचन करने

वाला, (२) सेवन करने योग्य ।
'स शुक्रेभिः शिक्वभीरेवदस्मे'
ऋ. २.३५.४
(३) कीलक, बन्धन आदि, shackle, (४) जीव की उत्पत्ति के लिए निषेक आदि संस्कार भी शिक्वन् है ।
'रथो न यातः शिक्वभिः कृतः द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते'
ऋ. १.१४१.८.
जिस प्रकार रथ या विमान रज्जुओं और कीलक के बन्धनों से तैयार किया जाकर अपने ही अंगों से आकाश और भूमि पर गमन करता है उसी प्रकार यह जीवात्मा भी निषेक आदि संस्कारों द्वारा उत्पन्न और संस्कृत होकर इस पृथ्वी पर आता और कर चरण आदि अवयवों और योग-साधन के प्राणयाम आदि उपायों से तेजोमय कमनीय परमेश्वर को प्राप्त करता है ।

शिक्वस् – (१) दीप्तियुक्त अग्नि, (२) प्रकाशमान, शक्तिशाली ।
'वना वृश्चन्ति शिक्वसः'
ऋ. ६.२.९, तै.सं. ३.१.११.६

शिक्वाः – (१) बलवान् ।
'रुद्रं वोचन्त शिक्वसः'
ऋ. ५.५२.१६

शिक्ष – (१) समर्थ ।
'दातुं चेच्छिक्षान् स स्वर्ग एष'
अ. ६.१२२.२; तै.आ. २.६.२
(२) धातु दान करना ।
'सहस्रेणेव शिक्षति'
ऋ. ८.४९.१; अ. २०.५१.१; साम. १.२३५, २.१६१

शिक्षति – देता है । शिक्ष (देगा) । के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप ।
'यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन'
ऋ. ३.५९.२; तै.सं. ३.४.११.५; मै.सं. ४.१०.२: १४६.१३; का.सं . २३.१२; नि. २.१३.
हे आदित्य, वह अन्नवान् होता है जो तुझे (ते) निर्वपण प्रोक्षण आदि कर्म से चरु या हवि आदि देता है ।

शिक्षा – शिक्ष धातु के लोट म.पु. ए.व. का रूप । अर्थ है–शिक्षा पूर्ण कर, या सिखा ।
'शिक्षा स्तोतृभ्यो मातिधग् भगो नः'
ऋ. २.११.२१, नि. १.७
हे इन्द्र, हम स्तोताओं के मनोरथ पूर्ण कर (स्तोतृभ्यः शिक्षा), हमें छोड़ औरों को धन न दे या हमें देने के बाद जो रिक्त रहे उसे आप को दे तथा हमें ऐश्वर्य दे (मातिधक् नः भगः) ।

शिक्षानरः – (१) सब मनुष्यों का शिक्षक, दण्डनायक –इन्द्र, परमेश्वर ।
'शिक्षानरः समिथेषु प्रहावान्'
ऋ. ४.२०.८
(२) समस्त मनुष्यों को अभिमत दान देने वाला ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शणः'
ऋ. १.५३.२; अ. २०.२०.२
तू शिक्षा देने वाले नायक आचार्य के समान आदिगुरु है । तू काम अर्थात् सत् संकल्पों को कृशन करने वाला यथोचित विवेकी है ।

शिक्षु – (१) दानशील –इन्द्र ।
'शिक्षो शिक्षासि दाशुषे'
ऋ. ८.५२.८
(२) शिक्षा प्राप्त करने वाला ।
'उत शिक्षः स्वपत्यस्य शिक्षोः'
ऋ. ३.१९.३; तै.सं. १.३.१४.६; मै.सं. ४.१४.१५: २४०.९

शिखण्डिनः – (१) मोर आदि पक्षी (२) चूड़ामणि या काकमाची के पौधे यथा चूड़ीमणि वीर्योष्णा विषबैषम्य जन्तुघ्नी रोगग्राम भयाय ।
'महावृक्षाः शिखण्डिनः'
अ. ४.३७.४

शिखण्डी – (१) शिखण्ड धारण करने वाला रुद्र (२) सेनापति ।
'सहस्रघ्निं शतवाधं शिखण्डिन्'
ऋ. ११.२.१२

शिखा – चोटी ।
'केशा न शीर्षन्यशसे श्रिये शिखा'
वाज.सं. १९.९२; मै.सं. ३.११.९: १५४.११; का.सं. ३८.३; तै. ब्रा. २.६.४.६

शिखी – (१) ब्रह्मज्ञान को प्राप्त करने वाला ब्रह्मचारी ।
'शिखिभ्यः स्वाहा'
अ. १९.२२.१५

शिप्रुः – शिज् (अव्यक्त शब्द बोलना) + रुक् =

शिग्रु । अर्थ – (१) अव्यक्त शब्द करने वाला, (२) अन्यों को न पता चलने वाले संकेत शब्द (code Language) बोलने वाला ।
(३) अस्पष्ट भाषा भाषी,
(४) विदेशी ।
'अजासश्च शिग्रवे यक्षवश्च'
ऋ. ७.१८.१९

शिङ्क्ते – शिजि (अव्यक्त ध्वनि) के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ अव्यक्त शब्द करता है ।
'योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वन्'
ऋ. ६.७५.३; वाज.सं. २९.४०; तै.सं. ४.६.६.१; मै.सं. ३.१६.३: १८५.१५; का.सं. (अश्व.) ६.१, नि. ९.१८.
स्त्री की तरह अव्यक्त शब्द करती है ।

शिङ्गि – प्राप्त करने योग्य, कीत्ति जनक पदार्थ ।
'शिङ्गीनि कोश्याभ्याम्'
वाज.सं. ३९.८

शिञ्जार – (१) मधुर शब्द कहने वाला वाद्य (बाजा) (२) गान-प्रिय कवि, (३) उत्तम उपदेष्टा ।
'अत्रं शिञ्जारमश्विना'
ऋ. ८.५.२५

शिताम – (१) शिताम पद से बाहु, यकृत, योनि और मेदस् का बोध होता है । यह अदन्त शब्द है ।
'दोः शितामः भवति' दोः'
शितामः अर्थात् बाहु है ।
(२) योनिः शितामं इति शाकपूणिः (शाकपूणि के मत से योनि ही शिताम् है) । योनि का तात्पर्य है-गुद । गुद पुरीष से व्याप्त रहता है (विषितो भवति) ।
(३) श्यामतो यकृत् इति तौटिकिः (तौटिकि के मत से यकृत् श्याम है और श्यामतः से ही शिताम बन गया है । अतः शितामत् यकृत् का वाचक है) । (४) शिति मांसतः भेदस्त इति गालवः (गालव के मत से शिवामत् शितिमांस अर्थात् श्वेत मांस से निकला है । मेदस् का मांस श्वेत रंग का होता है । 'शितिमां सतः' से ही शितामत हो गया है ।
'छागस्य हविष आत्ताम्
पार्श्वतः श्रोणितः शितामतः'
वाज.सं. २१.४३

शिवामतः – शिताम + तसिल् = शितामतः । अर्थ बहुप्रदेश से ।

शिति – शो (तनू करणार्थक) + क्तिन् = शिति (शो के ओ' का इ) । अर्थ है – मेदस् -मेदा । मेदा में ही विवेक रहता है और उसी के तेज से मेदा स्वच्छ रहता है । अतः शिति शब्द मेदा का वाचक हुआ है ।
आधुनिक अर्थ – स्वच्छ, कृष्णवर्ण, देवदार वृक्ष ।

शितिकक्ष – कक्ष, अर्थात् कांख या बगल में श्वेत चिह्न वाला (२) श्वेत कोख वाला कीट ।
'शितिकक्षोऽञ्जिसक्थः'
वाज.सं. २४.४

शितिकण्ठः – श्वेत कण्ठ वाला-रुद्र ।
'नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च'
वाज.सं. १६.२८; तै.सं. ४.५.५.१; मै.सं. २.९.५: १२४.१०

शितिङ्गः – तेजस्वी ।
'अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गः'
अ. ११.५.१२

शितिपदी – श्वेत स्वरूप वाली विद्युत् शक्ति ।
'शितिपदी संपततु
अमुत्राणाममूः सिचः'
अ. ११.१०.२०

शितिपाद् – (१) श्वेत् चरण, श्वेताश्व, शुक्लस्वरूप, उज्ज्वलरूप, तीक्ष्ण प्रकृति सेना का पालक, (२) ज्ञान या प्रकाश का पालक आत्मा
'दत्तः शितिपात् स्वधा'
अ. ३.२९.१

शितिपादः – (१) श्वेत किरणों वाला सूर्य- (२) शुद्ध ज्ञान कराने वाले छन्दों के चरणों से युक्त परमात्मा
(३) जिसके अंश शुद्ध हो-किरण ।

शितिपृष्ठ – (१) पीत पर श्वेत वस्त्र वाला ।
'उन्नत शितिबाहुः
शिति पृष्ठस्त ऐन्द्राबार्हस्पत्याः'
वाज.सं. २४.७; तै.सं. ५.६.१४.१, मै.सं. ३.१३.८: १७०.३; का. सं. (अश्व.) ९.४.

(२) सूक्ष्म प्रश्न करने वाला ।-दया.
(३) तीक्ष्ण स्पर्श वाला अग्नि ।
(४) नीलपृष्ठ-सूर्य
(५) ज्ञानमय स्वरूप परमेश्वर ।
'प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेः'
ऋ. ३.७.१

शितिभ्रू - भ्रुवों पर श्वेतचिह्न वाला पुरुष ।
'शितिभ्रुवो वसूनाम्'
वाज.सं. २४.६; मै.सं. ३.१३.७: १७०.१

शितिरन्ध्रः - श्वेत चिटकनों वाला ।
'शितिरन्ध्रोऽन्यतः शितिरन्ध्रः समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः'
वाज.सं. २४.२; तै.सं. ५.६.१३.१; मै.सं. ३.१३.३: १६९.३; का.सं. (अश्व.) ९.३.

शितिबाहुः - बाहु भाग पर श्वेत पात्र पहनने वाला ।
'शितिबाहुरन्यतः शितिबाहुः समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः'
वाज.सं. २४.२

शिथिर - शिथिल ।
'सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देव'
ऋ. ५.८५.८
'जानुभ्यामूर्ध्वं शिथिरं कबन्धम्'
अ. १०.२.३

शिथिरां - (१) काम करने में शिथिल (२) अल्प शक्ति वाला ।
'अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत्'
ऋ. ६.५८.२, मै.सं. ४.१४.१६: २४४.३, तै.ब्रा. २.८.५.४

शिप्र - (१) उष्णीष (पगड़ी) -सा. । आशा भी शफा पगड़ी के लिये प्रकट होता है ।
'पीत्वी शिप्रे अवेपयः'
ऋ. ८.७६.१०; साम. २.३३८; अ. २०.४२.३; वाज.सं. ८.३९; तै.सं. १.४.३०.१; श.ब्रा. ४.५.४.१०

शिप्रा - (१) सुवर्ण या लोहे की बनी सिर पर रखने की पगड़ी ।
'शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः'
ऋ. ५.५४.११,
(२) लोह आदि का बना शिर बचाने का टोप, टोपी
'शिप्राः शीर्षन् हिरण्ययीः'
ऋ. ८.७.२५
(३) हनू या नासिका शिप्रे हनू नासिके वा । सृपी (गत्यर्थक) + रक् = सृप्र, सर्प, सर्पिस, । यास्क के मत से शिप्र भी इसी प्रकार बना है । सृ का शि बाहुलक नियम से बना है ।
'वि ष्यस्य शिप्रे वि सृजस्व धेने'
ऋ. १.१०१.१०; नि. ६.१७
हे इन्द्र, अपने हनू या नासिका को विस्तृत कर ।

शिप्रिणीवान् - शक्ति का स्वामी इन्द्र ।
'वनोति शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान्'
ऋ. १०.१०५.५

शिपिविष्टः विष्णुः - समस्त पशुओं में व्यापक रूप से अथवा शक्ति रूप से किरणों से तेजरूप से विद्यमान् तेजस्वी (२) सर्वोत्पादक प्रभु ।
'विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.२०; मै.सं. ३.१२.५: १६२.५; शां.ब्रा. १२.६.१.१२; १३.१.८.८

शिपिविष्ट - शिपि + विष्ट = शिपिविष्ट । अर्थ-(१) रश्मियों से आविष्ट विष्णुदेव -सा.
'प्र यद् ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि'
ऋ. ७.१००.६ साम. २.९७५; तै.सं. २.२.१२.५; मै.सं. ४.१०.१: १४४.४, नि. ५.८.
(२) तेजः स्वरूप विष्णु-परमेश्वर (३) रश्मियों से घिरा आदित्य -दया.
'प्र तत् ते अद्य शिपिविष्ट नाम अर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।'
ऋ. ७.१००.५
हे रश्मियों से आविष्ट विष्णु देव (शिपिविष्ट), तेरा वह शिपिविष्ट नाम श्रेष्ठ है (तत् ते नाम अर्यः) यह स्मरण कर तथा तेरे प्रज्ञानों या गुणों को जानता हुआ मैं (वयुनानि विद्वान्) आज तेरी स्तुति करता हूँ । (अद्य प्रशंसामि) ।- सा.
हे तेजः स्वरूप विष्णु परमेश्वर, विज्ञानों को जानता हुआ वाचस्पति आज में तो उस प्रसिद्ध नाम ॐ को जपता हूँ ।
-दया.
(४) शेप के समान तेज से निर्वेष्टित विष्णु, (५) आचार्य औपमन्यव के मत से शिपिविष्ट नाम निन्दित अर्थ का वाचक है । जैसे सम्पूर्ण शरीर में वीर्य व्याप्त है उसी प्रकार निःशेषतम

वेष्टित परमेश्वर है।
शेप + निर् + वेष्ट = शेप । शेप इ वेष्ट = शिपिविष्ट । शेप का कुत्सितार्थ पुरुषलिंग है। यास्क ने शिपि का अर्थ रश्मि किया है और शिपिविष्ट का अर्थ 'रश्मियों के साथ सर्वत्र प्रविष्ट ' किया है । शिपिभिः आविष्टः शिपि विष्टः ।
'नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च'
वाज.सं. १६.२९; तै.सं. ४.५.५.१; मै.सं. २.९.५: १२४.११; का.सं. १७.१४
(६) स्वा-दयानन्द ने शिपिविष्ट का अर्थ 'शिपिषु पशुषु पालकत्वेन विष्टाय वैश्य प्रभृतये ' ऐसा किया है। अर्थात् शिपि का अर्थ पशु (पशु धातु के वर्ण-विपर्यय से और शिपिविष्ट का अर्थ वैश्य हुआ)। अंग्रेजी का sheep शब्द भेड़ी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।
(७) पशुओं में लगा हुआ धनाढ्य वैश्य ।

शिपि - (१) पश् धातु के वर्ण विपर्यप से शिपि हुआ है - दया. अर्थ-पशु (२) रश्मि-सा. (३) तेज-दया. ।
(४) वैश्य -दया.
'शिपिषु पशुषु पालकत्वेन
विष्टः शिपिविष्टः ' ।
रश्मिवाची गो शब्द भी गत्यर्थक धातु से बना है ।
(५) उपस्थेन्द्रिय, पुरुष-लिंग सृप् (गत्यर्थक) से 'शिपि' शब्द बनाया जा सकता है ।
(६) यज्ञ, पशु ।
'पशवो वै शिपिः
यज्ञो वै शिपिः '
श.ब्रा.

शिपिविलुक - एक प्रकार का गो कीट । मूलभाग जघन भाग से वसा को पकड़ने वाला ।
'एजत्वाः शिपविलुकाः '
ऋ. ५.२३.७

शिप्रिणी - (१) ज्ञान से युक्त स्त्री
अस्माकं शिप्रिणीनाम्
'सोमपाः सोमपाव्नाम्'
ऋ. १.३०.११

शिप्री, शिप्रिन् - शिप्र + इन् = शिप्रिन् । प्रथमा ए.व. में शिप्री । शिप्र का अर्थ-(१) सुन्दर मुख, मुकुट, उष्णीष, दाढ़ आदि है। अतः 'शिप्रिन्' का अर्थ उष्णीषी (मुकुट वाला या पगड़ी वाली) हुआ। सायण ने इसका अर्थ इन्द्र किया है ।
(२) जयदेव शर्मा ने इस शब्द को राजा का विशेषण माना है ।
'शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे'
ऋ. ७.२५.३
हे सुन्दर मुख वाले या मुकुटधारी राजन्, या हे उष्णीषी इन्द्र (शिप्रिन्) कल्याणकारी दान करने वाले यजमान के प्रति या (सायण के अनुसार) सुदास् राजा के प्रति मेरी सैकड़ों रक्षाएं या रक्षा करने की क्रियाएं हों ।
(३) शिप्र का अर्थ हनू भी है और इन्द्र के विशेषण के रूप में इस का प्रयोग हुआ है ।
'अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन्'
ऋ. ३.३६.१०; पा.गृ.सू. १.१८.५
(४) प्रशस्त कपोल और नाक वाला (५) सुमुख-दया.

शिफा - शिञ् (निशान अर्थ में) + फक् + टाप् = शिफा। अर्थ है। (१) नदी (२) कलह वृत्ति
'हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः '
ऋ. १.१०४.३
वे दोनों स्त्रियां नदी की ढाल में या कलह वृत्ति के नीच व्यवहार में पड़कर (शिफायाः प्रवणे) नष्ट हो जाती है (हते स्याताम्) ।

शिभ्र - (१) गर्व, (२) श्वेत वर्ण-सा. ।
'म्लापयामि भ्रजः शिभ्रम्'
अ. ७.९०.२

शिम्बलम् - (१) सेमर का वृक्ष शाखा पुष्प या पत्र ।
'शिम्बलं चिद् वि वृश्चति'
ऋ. ३.५३.२२

शिम्बाता - एक दूसरे को सुख प्राप्त कराने वाले-अश्विद्वय,
(२) स्त्री पुरुष ।
'वंसगेव पूषर्या शिम्बाता'
ऋ. १०.१०६.५

शिमी - (१) कर्म, (२) प्रहार ।
'त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोः'
ऋ. १.१५५.२; आश्व.श्रौ.सू. ६.७.९: नि. ११.८

हे इन्द्र तथा विष्णु ! इष्ट प्रदान करने वाले या प्रहरणादि कर्म वाले आप दोनों के (शिमीवतोः) इस प्रकार (इत्था) प्रदीप्त समागन करे (त्वेषम् समरणम्) ।

शिमीवत् – (१) क्रियाशक्ति से युक्त

'शिमीवतो भामिनो दुर्हणायून्'

ऋ. १.८४.१६; अ. १८.१.६; साम. १.३४१; तै.सं. ४.२.११.३; मै. सं. ३.१६.४: १९०.४; नि. १४.२५

(२) शिमी + वतुप् = शिमीवत् । शिमी का अर्थ है- क्रम या प्रहार । अतः शिमीवत् का अर्थ है – इष्ट प्रदान कर्म वाला या प्रहरणादि कर्म वाला । इस शब्द का प्रयोग द्विवचन में इन्द्र और विष्णु के विशेषण के रूप में किया गया है ।

'त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोः'

'इन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति'

ऋ. १.१५५.२

हे इन्द्र तथा विष्णु ! इष्ट प्रदान कर्म वाले आप दोनों के (शिमीवतोः वाम्) इस प्रकार प्रदीप्त समागम को (इत्था त्वेषं समरणम्) हुतशिष्ट सोमपीती यजमान (सुतपा) पूजित या वर्णन करता है (उरुष्यति) ।

(३) शम् + इन् = शिमिन् , अथवा शक + इन् = शिमिन् । शिमि +ङीष् = शिमी । इससे अनिष्ट शान्त होता है या इससे अभिमत सिद्ध कर सकते हैं ।

शिमि + वतुप् = शिमीवत् । अर्थ है-कर्मवत् कर्मठ

'धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषी'

ऋ. १०.८९.५, तै.सं. २.२.१२.३; तै.आ. १०.१.९, नि. ५.१२.

शिम्यु – लुक छिप कर प्राणियों के प्राणों को नष्ट करने वाला हत्यारा ।

'दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैः
हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत्'

ऋ. १.१००.१८

सर्व दुःख हिंसक (शर्वा) इन्द्र या राजा (पुरुहूत) पृथिवी पर प्रजा को नाश करने वाले दुष्ट पुरुषों को (दस्यून्) तथा लुक छिपकर प्राणियों के प्राणों को नष्ट करने वाले हत्यारों को (शिम्यून्) आक्रमणों से (एवैः) अच्छी प्रकार नष्ट कर दें (निर्वहीत्) ।

शिरस् – (१) शी + असुन् = शिरस् । श्रृ + असुन् = शिरस् । अनुशयन्त सर्वाणि इन्द्रियाणि यत् तत् (जिसमें सभी इन्द्रियां स्थित है अर्थात् सिर) ।

(२) शीर्ष

(३) आदित्य । यह प्राणियों में अनुप्रविष्ट होकर स्थित है (अनुशेते सर्वाणि भूतानि इति शिरः) ।

शिरिणा – (१) रात्रि (२) शत्रु-पीड़ित प्रजा ।

'शिरिणायां चित् अक्तुना महोभिः'

ऋ. २.१०.३

शिरिम्बिठ – शिरिम्बिठो मेघः । शीर्यते विठे । विठम् अन्तरिक्षम् ।

(१) अर्थात् शिरिम्बिठ मेघ का नाम है, क्योंकि मेघ अन्तरिक्ष में शीर्ण होता है ।

(२) भरद्वाज का पुत्र भारद्वाज भी शिरिम्बिठ है (अपि वा शिरिम्बिठो भारद्वाजः) ।

'भारद्वाज ने अलक्ष्मी से युक्त हो, भर मुंह पानी में खड़ा 'अरापि काणे..'

मन्त्र जपकर अपनी दरिद्रता दूर की थी ।

'शिरिम्बिठस्य सत्वभिः
तेभिष्ट्वा चातयामसि'

ऋ. १०.१५५.१; नि. ६.३०

दरिद्रता से पीड़ित हो दरिद्रता दूर करने के लिए मन्त्र जाप द्वारा कहते हैं ।

हे दरिद्रते ! तुझे शिरिम्बिठ ऋषि के उन प्रसिद्ध जलरूपी सत्वों से हम नष्ट कर देंगे ।

आर्यसमाजी विद्वान् शिरिम्बिठ का अर्थ मेघ मानते हैं । मेघ से ही दुर्भिक्ष दूर किया जाता है ।

(३) राजा । वीरिट या विठ का दूसरा अर्थ गण है ।

विठस्य शत्रुगणस्य शिरिः हननं येन स शिरिम्बिठः राजा

शत्रुगण का राजा द्वारा हनन किया जाता है । राजा प्रभूत अन्न का धारण करता है । अतः उसे भरद्वाज भी कहा गया है ।

शिरिम्बिठ भारद्वाज – (१) एक वैदिक ऋक्,

(२) आकाश मे छिन्न भिन्न हो जाने वाला मेघ भी शिरिम्बिठ है ।

शिला – चट्टान ।

'*शिलाभूमिरश्मा*'
अ. १२.१.२६

शिव – (१) कल्याणकारी प्रभु, (२) शिव ।
'*समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः*'
अ. ८.९.२२
(३) शिष् + व (नामकरण प्रत्यय) = शिव । व ष में स्थिति हो जाता है अर्थात् ष का लोप हो जाता है । अर्थ है – सुख । शेव का अर्थ भी सुख है । शेव इति सुखन्तम् ।
शिष्यतेः वकारः नाम करणोऽनास्थान्तरो पलिङ्गी विभाषितगण शिवम् इति अपि अस्य भवति – निरुक्त
आधुनिक अर्थ – कल्याण, शिव देवता ।
(४) ऋग्वेद के जनों में एक ।
'*आ पक्थासो भलानसो भनन्ताऽलिनासो विषाणिनः शिवासः*'
ऋ. ७.१८.७
में वसिष्ठ ने पक्थ, भलान, अलिग, पिषाणी और शिव नामक जनों का उल्लेख किया है । शिव देश सिन्धु के इस पार झेलम से पश्चिम था । इसके नाम का अभिलेख शोर कोट में मिला है । सुदास के प्रतिद्विन्द्वी दश राजाओं में शिवि एक था ।
सुदास के शत्रुओं में शिम्यु, शिवि, मत्स्य, वैकर्ण, कवष, देवक, मन्यमान चापमान कवि, सतुक, उचथ, श्रत, वृद्ध, मन्यु, पृथु ।

शिवतम – (१) अतिशय कल्याण कारी ।
'*मीढुष्टम शिवतम*'
वाज.सं. १६.५१; वाज.सं. (का.) १७.८.५; तै.सं. ४.५.१०.४; मै.सं. २.९.९: १२७.१५; का.सं. १७.१६.
'*ते शिवतमा असाम*'
ऋ. १.५३.११
तेरे हम अत्यन्त कल्याणकारी होवें ।

शिवतमा – कल्याणकारिणी ।
'*तां पूषन् शिवतमामेरयस्व*'
ऋ. १०.८५.३७; अ. १४.२.३८
हे पूषन् , कल्याणकारिणी इस योनि को बीज–ग्रहण के लिए सुपुष्ट करो ।

शिवतरः – अधिक मंगलकारी ।
'*नमः शिवाय च शिवतराय च*'
वाज.सं. १६.४१; तै.सं. ४.५.८.१; मै.सं. २.९.७; १२६.५; का.. १७.१५

शिवशंकल्प – शुभ कल्याणमय संकल्प वाला –मन
'*तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु*'
वाज.सं. ३४.१–६

शिवाः – (१) कल्याणकारी मानस प्रवृत्तियाँ ।
'*शिवा अस्मभ्यं जातवेदो नियच्छ*'
अ. ७.११५.३
(२) कल्याण कारिणी विद्युत् या कर्ममनी,

शिवाभिमर्शन – वैद्य का हाथ जिसका स्पर्श भी कल्याण कारक है ।
'*अयं शिवाभिमर्शनः*'
ऋ. १०.९०.१२; अ. ४.१३.६

शिशय – (१) श्रुति तीक्ष्ण करने वाला,
(२) उत्तम शासक
'*शिशीहि मां शिशयं त्वा श्रृंणोमि*'
ऋ. १०.४२.३; अ. २०.८९.३
(३) अति सूक्ष्मरूप से विद्यमान ।

शिश्न (श्ना) – हिंसार्थक श्नथ् + घञ् = शिश्न थ का लोप श का द्वित्व) ।
शिश्नं श्नथतेः ? (अर्थात् हिंसार्थक श्नथ धातु से शिश्न शब्द बना है) ।
शिश्न से स्त्री योनि का हनन किया जाता है, अतः शिश्न पुरुष लिंग का वाचक हुआ । अर्थ है– प्रजनन लिंग ।
'*भगं योनिः द्वयोः शिश्नो मेढ्रोमेहनशेपसी*'
(२) आस्वात् सूत्रे अन्न के रस से लिपटा हुआ सूत्र)
(३) घी लगी पूंछ, मैला सूत्र ।
'*मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः*'
ऋ. १.१०५.८; १०.३३.३; नि० ४.६.
मुझे मानसिक चिन्ताएं या कामनाएं उसी प्रकार से खा रही हैं जैसे मूस मैले सूत्र, घी लगी पूंछ या अपना जननेन्द्रिय.. .

शिश्नदेव – (प्र.) शिश्नं देवः यस्य (जो विलासिता एवं विषय वासनाओं को ही सब कुछ समझता है) ।
विलासी, विषयी, अब्रह्मचारी, व्यसन शील,
'*मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः*'
ऋ. ७.२१.५; नि. ४.१९

जो कथित मनुष्य रूप धारी विलासी एवं अब्रह्मचारी व्यसनी जीव हैं वे हमारे यज्ञ में न आवें ।

(२) शिश्ने न प्रकीर्णाभिः स्त्रीभिः साकं दीव्यन्ति क्रीड़न्ति इति शिश्नदेवाः (जो अनेकों स्त्रियों से शिश्न द्वारा रण करते हैं वे शिश्न देव हैं ।) ।

शिश्रथः – क्रि. । शिथिल कर दें ।

'राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि'

ऋ. १.२४.१४; तै.सं. १.५.११.३; मै.सं. ४.१०.४: १५३.११; ४.१४.१७: २४६.८; का.सं. ४०.११

हे वरुण परमेश्वर, मेरे किए पापों को तप द्वारा शिथिल कर दें ।

शिश्वरी – शिशुवाली माता ।

'वत्सं सं शिश्वरीरिव'

ऋ. ८.६९.११; ९.६१.१४; अ. २०.९२.८ साम. २.६८.६

जैसे शिशु वाली माताएं अपने बच्चे को बढ़ाती हैं ।

शिशानः – अति तीक्ष्ण ।

'आशुः शिशानो वृषभो न भीमः'

ऋ. १०.१०३.१; अ. १९.१३.२; साम. २.११९९, वाज.सं. १७.३३; तै .सं. ४.६.४.१, वाज.सं. १७.३३.तै.सं. ४.६.४.१, मै.सं. २.१०. ४; १३५.९; का.सं. १८.५; श.ब्रा. ९.२.३.६

शिशिर – 'शृ' अथवा 'शम्' (हिंसार्थक) + किरच् = शिशिर (निपातन से) । इस ऋतु में पकी ओषधियों को दावाग्नि नष्ट करता है अतः यह शिशिर कहलाया ।

यह छः ऋतुओं में एक है । माघ और फाल्गुन मिला कर शिशिर होता है ।

निरुक्त में कहा है-शिशिरं जीवनाय (शिशिर जीवन के निमित्त है । इस ऋतु में हेमन्त का शीत कम हो जाता है ।

कुछ विद्वानों का मत है कि इस ऋतु में धान्य आदि अन्नों की प्रचुरता रहती है अतः यह शिशिर है ।

निष्ट त्क्राः सश्चिन्नरो
भूरितोका वृकादिव ।
विभ्यस्यन्तो ववाशिरे
शिशिरं जीव नायकम्

नि. १.१०

यह ऋचा कहां की है ठीक नहीं कहा जा सकता है । शीत से संतप्त वस्त्रहीन तथा बहुत सन्ततिवाले दरिद्र पुरुष की यह उक्ति है ।

वस्त्रहीन (निष्ट्वत्क्रासः) एवं बहुत पुत्र वाले (भूरितोका) कोई मनुष्य (चित् इत् नरः) भेड़िया के सदृश, भयानक रीति से भयभीत (वृकादिव विभ्भस्यन्तः) जीवन के लिए (जीवनाय) बार बार शिशिर ऋतु की कामना करते हैं ।

'कम्' का प्रयोग पादपूरण के लिए है ।

हेमन्त की बर्फीली रातों के बाद शिशिर में होने वाले सुख की कल्पना विचारणीय है ।

शिश्लिक्ष – धा. । स्नेह उत्पन्न करना ।

'अशिश्लिक्षुं शिश्लिक्षते'

अ. २०.१३४.६

शिशीति – दान देता है ।

'शिञ' निशाने । 'शिशीति' दानकर्मा ।

शिम् धातु दानार्थक है ।

शिशीते – तीक्ष्ण करता है । 'शो' धातु तनूकरण अर्थ में आता है । व्यत्यय से शप् का 'श्लु' 'ओ' का 'इ' आत्मने पद ।

'शिशीते श्रृंगे रक्षसे विनिक्षे'

ऋ. ५.२.९; अ. ८.३.२४; तै.सं. १.२.१४.७; का.सं. २.१५; नि. ४.१८

जैसे बैल तटों को ढाहता हुआ अपने सींगों को तेज करता है उसी प्रकार अग्नि राक्षसों के विनाश के लिए (रक्षसे विनिक्षे) अपनी दुस्तर्ण ज्वालाओं को तीक्ष्ण बनाता है । – सा.

तेजस्वी पुत्र राक्षसों को मारने के लिए अपने प्रभाव एवं प्रताप को तीक्ष्ण करता है ।–दया.

शिशीही – प्रतिष्ठापद, देहि (प्रतिष्ठापित कर दे) ।

शिञ्' (दानार्थक) के लट् म पु. ए.व. रूप ।

विद्मा सखित्वमुत शूरभोज्यम्
'आ ते ता वज्रिन्नीमहे
उतो समस्मिन्नाशिशीहि
नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति'

ऋ. ८.२१.८

हे शत्रुओं को नष्ट करने वाले इन्द्र, आप के सख्य भाव को हम जानते हैं और आपके धन को भी हम जानते हैं (उत उ भोज्यम्) । अतः हे वज्रधारी इन्द्र (वज्रिन्), हम तेरे उस धन

और सख्य की याचना करते हैं (ते ता आ ईमहे) और हे सबको बसाने वाले इन्द्र (उतो वसो) और हे सुन्दर हनु वाले (सुशिप्र) हमें जो युक्त सभी पुरुषों में प्रतिष्ठापित कर (गोमति वाजे आशिशीहि) ।

शिशु - (१) सर्व व्यापक प्रभु
शिशुं रिहन्ति मतयः पनिप्नतम्'
ऋ. ९.८५.११; ८६.३१
(२) प्रशंसनीय,
(३) शासन कुशल पुरुष ।
'शिशुं मृजन्ति आयवो न वासे'
ऋ. ५.४३.१३
(४) बालक । शश + उ = शिशु । शिशु प्रशंसनीय होता है । अतः शिशु है ।
अर्थ -नवजात बालक
(५) अथवा दानार्थक शीशी + इ = शिशु । शिशु को माता की गोद में रखने के लिए दिया जाता है ।
(६) पृथ्वी पर पड़ने वाला जल ।

शिशुकः, शुशुक- इस नाम वाला मृग, हिरनौटा
'आशुङ्गः शिशुको यथा'
अ. ६.१४.३

शिशुमती - (१) गौ, (२) घोड़ी, (३) स्त्री ।
'वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या'
ऋ. २.४३.२
(४) पृथ्वी पर पड़ने वाले जल की धारा,
(५) बालकों से युक्त माता, (६) प्रजावती स्त्री,
(७) अश्वों से युक्त सेना ।
'अवास्या शिशुमतीरदीदे'
ऋ. १.१४०.१०
जलधाराओं को गिराकर (शिशुमती अवास्य) स्वयं चमकता है (अदीदेः) ।
अथवा वृषभ गौवों पर पकड़कर (शिशुमतीः अवास्य) उनको प्रजावती करता है और उनके बीच सुशोभित होता है ।
अथवा,
शत्रुसेनाओं को अपने नीचे कर (अवास्य) बालकों से युक्त प्रजाओं या अश्वों से युक्त सेनाओं को (शिशुमतीः) प्रकाशित कर (अदीदेः) ।

शिशुमन्तः सखायः - भीतर अन्तः करण में व्यापक परमेश्वर रूप शिशु से युक्त -भक्त ।
अचिक्रदञ्छिशुमन्तः सखाय,
ऋ. ८.१००.५

शिंशु - (१) धर्मोल्लंघयिता,
(२) दुष्ट, (३) दुःख ।

शिशुमारः - (१) धर्मोल्लंघिनः शत्रून् मारयति येन स रथः (जिस से धर्मोल्लघंन करने वाले शत्रुओं को मारते हैं वह रथ) - दया ।
(२) दुष्ट शत्रुओं का नाश करने वाला-ज.दे.श. ।
(३) दुःखों का नाशक
'रेवदुवाह सचनो रथो वाम्
वृषभश्च शिशुमारश्च युक्ता ।'
ऋ. १.११६.१८
तब तुम दोनों को (वाम्) परस्पर आश्रित रथ (सचनः) मेघ के समान समस्त सुखों का वर्षण करने वाला (वृषभः).और दुष्ट शत्रुओं का नाश करने वाला (शिशुमारः) होकर संयुक्त हुए आप दोनों को (युक्ता) धारण करता है ।
अथवा,
तब तक एक दूसरे के सब अंगों से पूर्ण (सचनः) गृहस्थ रूप रमण का साधन रथ एक दूसरे से विवाह बन्धन में बंधे हुए आप दोनों को (युक्ता) धारण कर वह गृहस्थ रूप रथ सुखों का वर्षक और दुःखों का नाशक हो (वृषभः शिशु मारः) ।
(४) घड़ियाल, मगर
'समुद्राय शिशुमारानालभते'
वाज.सं. २४.२१; मै.सं. ३.१४.२; १७३.१
शिंशुमारा अजगरा पुरीकयाः'
अ. ११.२.२५

शिशू - (१) स्वच्छ, निष्कपट व्यवहार वाले वर वधू ।
'शिशू क्रीड़न्तौ परियातो अध्वरम्'
ऋ. १०.८५.१८; अ. ७.८१.१ मै.सं. ४.१२.२:१८१.३
(२) अन्तरिक्ष में रमने वाले सूर्य और चन्द्र ।

शिशूल - बच्चा
'शिशूला न क्रीड़यः सुमातरः'
ऋ. १०.७८.६

शिंशपा - सीसम वृक्षः (२) सीमसम के समान दृढ़ रथसेना ।

'ओजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम्'
ऋ. ३.५३.१९
(३) अति निन्दाजनक वचन (४) शिशुओं को पालन करने वाले माता पिता और आचार्य।
(५) तीनों वेद विद्याएं (६) वाणी, कर्म और मन (६) परम सुप्त सत्ता को पालन करने वाली तीन अनादि शक्तियाँ।
'यत्रामूस्तिस्रः शिंशपाः'
अ. २०.१२९.७; शां.श्रौ.सू. १२.१८.७

शिष्ट – (१) शिष्ट विद्वान्, सुसंस्कृत।
'शीष्टेषु चित्ते मदिरासो अंशवः'
ऋ. ८.५३.४
(२) शिक्षित, शासित।
'इन्द्रेण दत्तो वरुणेन शिष्टः'
अ. २.२९.४; ३.५.४.
(३) मन और इन्द्रियों को वश करने वाला विद्वान्।
'शिष्टाः पत्नीभिर्वहतेह युक्ताः'
अ. ५.२६.४

श्रितः – (१) सब से सेवा करने योग्य (२) सबको आश्रय देने वाला
(३) जिसको आश्रय दिया जाना।
नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितः
यः पृणानि स ह देवेषु गच्छति'
ऋ. १.१२५.५
जो पुरुष अन्यों को धन, अन्न तथा ज्ञान से परिपूर्ण करता है और सबको प्रसन्न और सुखी करता है वह सबसे सेवा करने योग्य और सब को आश्रय देने वाले होने से आश्रय किया जाता है। वह सूर्य के समान जहाँ जरा भी दुःख और क्लेश नहीं होता ऐसे लोक या परमानन्द स्वरूप परमेश्वर के आश्रय पर विराजता है।

श्रिता – आश्रित, लगी हुई, (२) मेघ में व्याप्त विद्युत रूपी माध्यमिका वाक् का विशेषण।
'मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता'
ऋ. १.१६४.२९; अ. ९.१०.७; जै.ब्रा. २.२६०; नि. २.९.
विद्युत् मेघ में व्याप्त हो जब तक वर्षा होती रहती है। मेघ या जल बनाती है।

श्रियस् – (न)। (१) सेवन –सा. (२) सुख सेवन –दया.
'श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे'
ऋ. १.८७.६; तै.सं. २.१.११.२; ४.२.११.२; मै.सं. ४.११.२: १६७. १५; का.सं. ८.१७
प्राणियों के सेवन के लिए (श्रियसे) वे मरुत् जल बरसाना चाहते हैं (कम् संमिमिक्षिरे)। –सा.।
सुख भोगने वाले विद्वान् पुरुष सुख सेवन के लिए दीप्तिमान् विद्युत् आदि पदार्थों से (भानुभिः) सुख सेवन की कामना करते हैं। (संमिमिक्षिरे)– दया.।

श्वित्न्य – श्वेतवर्ग युक्त तेजस्वी चरित्रवान्।
'सनत् क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः'
ऋ. १.१००.१८
तेजस्वी, चरित्रवान् श्वेत वर्ण के मित्र वर्गों से मिलकर भूमि के क्षेत्र का अच्छी प्रकार विभाग करें (सनत्)।

श्वित्र – कौड़िया नामक सर्प।
'पैद्वः श्वित्रमुतासितम्'
अ. १०.४.५

श्वित्रा – (१) वर्ण कर्त्री भूमि, (२) श्वेत वर्ण का यश या धन देने वाली वसुन्धरा।

श्वित्यङ् – (१) वृद्धि को प्राप्त, उन्नत।
'श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दाः'
ऋ. ७.३३.१

श्वित्यञ्चः – ब.व.। श्विति + अञ्च, उज्ज्वल यश या समृद्धि को प्राप्त।
'श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनः'
ऋ. ७.८३.८

श्वित्र्य – 'श्वित्रा' का अर्थ भूमि है अतः 'श्वित्र्य' का अर्थ हुआ – (१) भूमि का आवरण (२) पृथ्वी का हितकारी
'क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम्'
ऋ. १.३३.१५
हे परमेश्वर, जिस प्रकार खेत को जोतने के लिए (क्षेत्रजुषे) कृषक पृथ्वी के हितकारी बैल को (श्वित्र्य गाम्) खेत में चलाता है और सूर्य जिस प्रकार खेतों में अन्न उपजाने के लिए भूमि के हितकारी किरणों को फेंकता है उसी प्रकार तू रण क्षेत्रों में विजय के लिए भूमि के हितजनक प्रबन्ध और शासन में समर्थ नर पुंगव को भेज।

श्विति – श्वेत वर्ण।

शिवतीच् – शुद्ध, स्वच्छ, उज्ज्वल, वेष कान्ति रूप को धारण करने वाला।
'प्र बभ्रवे वृषभाय शिवतीचे'
ऋ. २.३३.८

शिवतीचि – (१) श्वेतपदार्थ चान्दी-रजत, मुक्ता आदि का संचय करने वाला, (२) यश या शुभ चरित्र का संचय करने वाला।
'शिवतीचय श्वात्रासो भुरण्यवः'
ऋ. १०.४६.७; वाज.सं. ३३.१; तै.ब्रा. २.७.१२.१

शिवतीची – (१) या शिवतिं श्वेतवर्णम् अञ्चति -दया।
उषा, (२) शुद्ध पवित्र कर्म करती हुई स्त्री।

शीकायत् – (१) सेचन करता हुआ, फुहार छोड़ता हुआ, फुहार छोड़ता हुआ मेघ (२) सुखकारी।धन, धान्य, उपकार और सद्वतन से प्रजा पर सुख सेचन करता हुआ।
'शीकायते स्वाहा'
वाज.सं. २२.२६; तै.ब्रा. ७.५.११.२; का.सं. (अश्व.) (श्वेत वर्ण से युक्त-उज्ज्वल)

शीध्र – शीघ्र कार्य करने में चतुर
नमः शीघ्राय च शीभ्याय च
वाज. सं. १६.३१; तै.सं. ४.५.५.२.

शीत – (१) शीत ज्वर
'नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने'
अ. ७.११६.१
(२) शीत काल, (३) बड़ा हुआ।
(४) शीड़ श्यङ् वृद्धौ। वृद्धिकारी।
'शीते वाते पुनन्निव'
वाज.सं. २३.२६; २७.तै.सं. ७.४.१९.२; मै.सं. ३.१३.१: १६८.२; का.सं. (अश्व.) ४.८; श.ब्रा. १३.२.९.५; तै.ब्रा. ३.९.७.२; आश्व.श्रौ.सू. १०.८.१२; १३ शां.श्रौ.सू १६.४.२; वै.सू. ३६. ३१; ला.श्रौ.सू. ९.१०.३,४

शीतःवातः – (१) शीतल वायु, (२) बढ़ता हुआ वात
(३) वृद्धि कारी पवित्र पदार्थ
(४) परिपुष्ट ऐश्वर्य।

शीतह्रदा – शीतल तालाबों से युक्त शाला, घर
'शीतह्रदा हि नो भुवः'
ऋ. खि. १०.१४२.१, अ. ६.१०६.३

शीतिका – () शीतगुण वाली एक।
'शीतिके शीतिकावति'
ऋ. १०.१६.१४; अ. १८.३.६०; तै.आ. ६.४.१; आश्व.गृ.सू. ४.५.४.
(२) शीतल स्वभाव वाली

शीतिकालीन – (१) शीतगुण वाली लता से युक्त भूमि।
(२) शान्ति दायक प्राणियों से युक्त,
(३) शीतल वचन बोलने वाली।

शीन – न.। वनस्पतियों और प्राणियों की वृद्धि करने वाली शीलतला।
'शीनं वसया'
वाज.सं. २५.९; मै.सं. ३.१५.८: १८०.२

शीभम् – अ.। शीघ्र, शीघ्र ही।
'शीभं समवल्गत'
अ. ३.१३.२.
'शीभं राजन् सुपथा याह्यर्वाङ्'
ऋ. १०.४४.२; अ. २०.९४.२
'प्रकृते ध्वनयो यन्तुशीभम्'
अ. ५.२०.७
(३) अति शीघ्रता से
'यत् प्राङ् प्रत्यङ् स्वधयायासि शीभम्'
अ. १३.२.३.
'आ वक्षणाः पृणाध्वं यात शीभम्'
ऋ. ३.३३.१२

शीभ्य – चुस्ती से करने योग्य कर्म में कुशल।
'नमः शीघ्राय च शीभ्याय च'
वाज.सं. १६.३१

शीभम् – शीघ्र।
'प्र यात शीभमाशुभिः'
ऋ. १.३७.१४
हे वीरो और विद्वान् पुरुषो, आप लोग बड़े शीघ्र जाने वाले यान आदि साधनों से शीघ्र ही जाओ।

शीपाल – शैवाल, सेवार।
'उद्नः शीपालमिव वात आजत्'
ऋ. १०.६८.५; अ. २०.१६.५

शीपाला – शैवाल (सेवार) से युक्त शान्त गम्भीर नदी।
'मधु परुष्णी शीपाला'
अ. ६.१२.३

शीर – (१) विद्युत् रूपेण सर्वत्र शयानः-दया.

(विद्युत् रुप से सर्वत्र सोता हुआ ।)
(२) सुप्त के समान अति शान्त,
(३) व्यापक परमेश्वर
(४) शीङ् + रक् = शरीर, अथवा -अश् + रक् = शीर (अश् का शी बाहुलक नियम से) ।
अर्थ - अनुशायी, आशी, सब भूतों में अवस्थित
(५) सभी प्राणियों में प्रविष्ट हो सोने वाला-अग्नि-सा.
(६) सभी के हृदयों में अवस्थित परमात्मा -दया.
'शीरं पावकशोचिषम्'
ऋ. ३.९.८; ८.४३.३१; १०२.११; नि. ४.१४.
उन सभी प्राणियों में प्रविष्ट हो सोने वाले (शीरम्) तथा पवित्र करने वाली दीप्ति के धारक अग्नि या परमात्मा को .. ।
आधुनिक अर्थ - एक बड़ा सर्प

शीरशोचिष - (१) सुप्त ज्योति वाला अग्नि, (२) दीप्तिमान अग्नि
गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
ऋ. ८.७१.१४, . २०.१०३.१; साम. १.४९
'अच्छा नः शीरशोचिषम्'
ऋ. ८.७१.१०; साम. २.९०४; आश्व. श्रौ.सू. ४.१३.७; ८.१२.६; शां.श्रौ.सू. १०.१२.१६; १४.५५.२
(३) व्यापक प्रकाश वाला
(३) शील स्वभाव से तेजोमय

शीर्ष - सिर ।
'परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्र
अयज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः'
ऋ. १.३३.५
हे इन्द्र, वे अयज्ञशील असंगठित पुरुष यज्ञशील संगठित पुरुषों के साथ स्पर्धा करते हुए सदा तुझ से अपने सिर अवश्य फेर लेते हैं ।

शीर्षक्ति - (१) सिर का रोग
'मुञ्च शीर्षक्त्या उत कास एनम्'
अ. १.१२.३
(२) सिर में व्यापक
'शीर्षक्तिं शीर्षामयम्'
अ. ९.८.१
'शीर्षक्तिमुपबर्हणे'
अ. १२.२.१९,२०

शीर्षण्य - शिरोभाग में उत्पन्न होने वाला दाद खाज और पीनस रोगों का उत्पादक क्रिमि ।
'अन्वान्त्रयं शीर्षण्यम्'
अ. २.३१.४
(२) सिर में स्थित
'यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्कात्'
ऋ. १०.१६३.१; अ. २.३३.१; २०.९६.१७; पा.गृ.सू. ३.६.२; आप.मं .पा. १.१७.१
(३) सिर सम्बन्धी ।
'सर्वं शीर्षण्यं ते रोगम्'
अ. ९.८.१-५

शीर्षण्वती - सिरों वाली ।
'शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी'
अ. १०.१.२.

शीर्षतः जातः - (१) सिर से उत्पन्न बालक, (२) सिरोभाग में प्रकट होने वाला आत्मा ।
'शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम्'
ऋ. १०.८८.१६

शीर्षन् - (१) सिर (२) विचार ।
'आ शीर्ष्णः शमोप्यात्'
अ. १.१४.३
(३) शिरः स्थानीय रश्मिजाल '
'शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम्'
ऋ. १०.२७.१३
आदित्य अपने शिर स्थानीय रश्मि जाल से (शीष्णा) ताप निवारक वृष्टि जल या उत्तम जल को (वरूथम्) समस्त संसार के शिरपर (शिरः) बरसाता है (प्रतिदधौ) या रखता है ।
(४) सूर्य ।
'शीर्ष्णा शीर्ष्णोपवाच्यः'
ऋ. १.१३२.२

शीर्षण्या रशना - (१) घोड़े के सिर पर बंधी रस्सी या चर्मपिट्टी
या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
ऋ. १.१६२.८; वाज.सं. २५.३१, तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं.३.१६.१; १८२.१०; का.सं. ६.४
(२) अश्व सैन्य के मुख्य सर्वत्र राष्ट्र में व्यापक सर्जन कारिणी व्यवस्था ।

शीर्षलोक - सिर का रोग ।
'शीर्षलोकं तृतीयकम्'
अ. १९.३९.१०

शीर्षामय – (न.) । शिर का रोग ।

शील – शील, स्वभाव, रहने की प्रक्रिया ।

'शीलाञ्जनीकारीम्'

वाज.सं. ३०.१४; तै.ब्रा. ३.४.१.१०

श्री – (१) सबको आश्रय देने वाली परमेश्वरी शक्ति ।

'शीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ'

वाज.सं. ३१.२२; वाज.सं. (का.) ३५.२२.

(२) वरिपक्व करना ।

'सोमं श्रीणान्ति पृश्नयः'

ऋ. १.८४.११; ८.६९.३; अ. २०.१०९.२; साम. २.३५६; वाज.सं. १२. ५५; तै.सं. ४.२.४.४; ५.५.६.३; मै.सं. २.८.१; १०६.५; ३.२.८: २८.१५; ४.१२.४: १९०.२; का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.७.३.२१; तै. ब्रा.३.११.६.२.

(३) रथ जिस पर आश्रय लिया जाता है, (२) कान्ति, (४) विद्या रूपी लक्ष्मी या धन रुपी लक्ष्मी ।

'युवोः श्रियं परि योषा वृणीत
सूरो दुहिता परितक्म्यायाम्'

ऋ. ७.६९.४; मै.सं. ४.१४.१०: २३०.५;तै.ब्रा. २.८.७.८

हे अश्विनीद्वय तुम्हारे रथ या कान्ति सूर्य की उषा नाम्नी दुहिता (सूरः दुहिता) तुममें अपने को मिश्रित करती हुई (योषा) युद्ध रात्रि के बाद (परितक्म्यायाम्) सब प्रकार से भजती है (परिवृणीत) -सा. ।

हे अध्यापक या उपदेशक, आप की विद्या लक्ष्मी तथा धर्मलक्ष्मी को (युवोः श्रियम्) अविद्यान्धकार के समय (परितक्म्यायाम्) स्त्री पुत्र और पुत्रियां सभी ग्रहण करें (योषा, सूरः, दुहिता पृरिवृणीत) । -ज.दे.श. ।

श्रीणन् – परिपक्व करता हुआ ।

'श्रीणन्नुप स्थाद दिवं भुरण्युः'

ऋ. १.६८.१

जिस प्रकार सूर्य सबका पालक पोषक होकर ओषधियों को परिपक्व करता है....।

श्रीणानः – आश्रय लेता हुआ

अन्तः पवित्र
उपरि श्रीणानः'

ऋ. ८.१०१.९; वाज.सं. ३३.८५

श्रीणीत – श्री धातु मिश्रण अर्थ में भी गृहीत है । अर्थ है – मिलाओ ।

'गोभिः श्रीणीत मत्सरम्'

ऋ. ९.४६.४; नि. २.५

हे ऋत्विजो, दूध से (गोभिः) सोमरस (मत्सरम्) मिलाओ (श्रीणीत) ।

शु – (१) आशु (शीघ्र), क्षिप्र । अंग्रेजी का Soon शब्द 'शु' से बना मालूम होता है ।

आशु इति च शुति च क्षिप्रनामनी भवतः (आश और शु दोनों क्षिप्र के वाचक हैं) ।

शुक् – (१) सन्ताप कारी क्रोध ।

'यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु'

वाज.सं. १३.४७-५१; मै.सं. २.७.१; १०२.१२,१४, १७; १०३.१.४; २. १०.१: १३१.४; ३.३.५: ३७.१३; का.सं. १६.१७; १७.१७; २१.७; श.ब्रा. ७.५.२.३२-३६; ९.१.२.१२, शां.श्रौ.सू. ८.१२.११.

(२) शुच् (दीप्त्यर्थक) + क्विप् = शुक् । दे. 'आशुशुक्षणि' (आशु शुक्षणि का अर्थ-

(१) अति शीघ्रं क्षणोषि शत्रून (शत्रुओं को अति शीघ्र नष्ट करता है) ।

(२) आशु शुचा क्षणोषि (शीघ्र ही दीप्ति से नष्ट करते हो) ।

(३) जो दीप्ति से शीघ्र नष्ट कर देता है ।

(४) आशु शुचा सनोति (जो शीघ्र दीप्ति संभक्त करता है) । आशु + शुच् + सन् + इन् = आशु शुक्षणि- अग्नि ।

शुक – (१) सुग्गा, तोता ।

'शुकेषु मे हिरमाणं
रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषु मे
हरिमाणं नि दध्मसि'

ऋ. १.५०.१२ अ.१.२२.४

हम अपनी देह के सुख और बल को अपहरण करने वाले रोग को (हरिमाणम्) तोते के समान किए गए नाना वृक्षों से युक्त प्रदेशों में भ्रमण आदि कार्यों द्वारा (शुकेषु) और शरीर को पोषण करने वाली लेप करने योग्य ओषधियों द्वारा (रोपणाकासु) उन ओषधियों के बल पर वश में करें और दुःख पीड़ा को हरने और स्वतः द्रवरूप एवं देह के मलों को बहाकर निकाल देने वाले

पदार्थों के बल से भी (हारिद्रवेषु) अपने शरीर के रोगों को दूर करें।

शुक, रोपणाका और हारिद्रव ये ओषधियों के विशेष वर्ग हैं।

शुकबभ्रु - हरा भूरा, हरे भरे, रंग की पोशाकवाला।

'बभ्रुरणबभ्रुः शुकबभ्रुस्ते वारुणाः'

वाज.सं. २४.२; तै.सं. ५.६.११.१; मै.सं. ३.१३.३: का.सं. (अश्व) ९.१.

शुक्र - (१) ज्येष्ठ मास।

'उपयामगृहीतोऽसि शुक्राय'

वाज.सं. ७.३०

(२) शुच् + रक् = शुक्र, अर्थ-घृत।

'शुक्रा गृष्णीत मन्थिना

ऋ. ९.४६.४

ऐ ऋत्विजो, मथनी से (मन्थिना) घृत निका लो (शुक्रा गृष्णीत)।

(३) लोकहित रंग

(४) वीर्य।

शुक्रदुघ - (१) जल दोहक संघ (२) श्वेत कान्ति का यश या धन दुहने, वाला राजा

'मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोः'

ऋ. ६.३५.५

शुक्रयः - वीर्य रक्षा करने वाला ब्रह्मचारी।

'तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यः'

वाज.सं. ६.२७

शुक्रपिश - (१) तेजस्वी रूप वाली शोभा।

'अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने'

ऋ. १०.११०.६; अ. ५.१२.६, वाज.सं. २९.३१; मै.सं. ४.१३.३: २०२.६; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.११.

(२) शुच् + क्रन् = शुक्र; अथवा - शुच् + क्विप् = शुक्। शुक् + रक् = शुक्र। अर्थ है- तेजस्वी ज्वाला युक्त।

पेश इति रूप नाम।

पिश् (अवभव अर्थ में) + असुन् = पेशस्। अर्थ है जो विकसित है।

शुक्रपिश् का अर्थ हुआ शुक्र रूप वाली, सुन्दर रूप वाली, पिश् रूप या चेहरा का वाचक है। शुक्ररूपिर्णा शोभा स्थापित करती हुई या शुभ्रवर्ण्य लक्ष्मी को धारण करती हुई।

शुक्रपूतपाः- शुद्ध पवित्र रीति से प्राप्त ऐश्वर्य का पालक सूर्य।

'दानाय शुक्रपूतपाः'

ऋ. ८.४६.२६

शुक्रवर्णा - (१) शुद्ध वर्ण वाली, (२) विशुद्ध अक्षरोच्चारण से युक्त, (३) शुद्ध ज्ञान स्वरूप निर्मल, प्रज्ञा, वाणी या कर्म (४) शुद्ध वर्णा स्त्री

'शुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम्'

ऋ. १.१४३.७; तै.ब्रा. १.२.१.१३; आप.श्रौ.सू. ५.६.३

शुक्रवासाः - (१) शुक्र प्रकाश को धारण करती हुई उषा।

(२) उज्ज्वल वस्त्र धारण करती हुई युवती,

(३) शुद्ध वीर्य धारण करने वाली।

'व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः'

ऋ. १.११३.७

शुक्रशोचिष्, शुक्रशोचीः - (१) शीघ्र वेग का उत्पादक तेज से युक्त अग्नि,

(२) वीर्य -रक्षा के तेज से तेजस्वी।

'रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषम्'

ऋ. २.२.३

शुक्रःवसानः - (१) शुद्धकान्ति युक्त वस्त्र धारण करता हुआ। (२) सूक्ष्म जलों को धारण करने वाला मेघ, (३) पुण्य कर्मों को धारण करने वाला ब्रह्मचारी।

'शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः'

ऋ. ३.८.९

शुक्रसद्मा - (१) जल या तेज का आश्रय (२) ओस और प्रकाश फैला देने वाली उषा, (३) उत्तम गृह बनाकर रहने वाली।

'शुक्रसद्मनामुषसामनीके'

ऋ. ६.४७.५

शुक्रा - (१) शुद्ध अन्तः करण वाली शुद्धाचार युक्त।

'प्र शुक्रैतु देवी मनीषा'

ऋ. ७.३४.१; मै.सं. ४.९.१४: १३४.११; ऐ.ब्रा. ५.५.१०:कौ.ब्रा. २२.९; पंच.ब्रा. १.२.९; ६.६.१०; तै.आ. ४. १७.१

(२) कान्तिमती उषा या कुलांगना

'शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची'

ऋ. १.१२३.९
श्वेतवर्ण से युक्त उज्ज्वल (श्वितीची) कान्तिमती उषा (शुक्रा) काले अन्धकार के बीच से प्रकट होती है (कृष्णात् अजनिष्ट) ।
अथवा,
स्वयं शुद्ध पवित्र कर्म करती हुई कान्तिमती स्त्री चाहे वह हीन कर्म करने वाले कुल से भी उत्पन्न हुई हो तो....

शुक्रौ - (१) वीर्य और रज, (२) शुद्ध चित्त और कान्ति युक्त वर कन्या ।
'शुक्रावनड्वाहावस्ताम्'
ऋ. १०.८५.१०; अ. १४.१.१०

शुक्लपिंगाक्ष - श्वेत पीला सूर्यरूप चक्षु ।
'अह्ने शुक्लं पिंगाक्षम्'
वाज.सं. ३०.२१; तै.ब्रा. ३.४.१.१७

शुक्लानि - श्वेत कुष्ठ के चिह्न ।
'परा शुक्लानि पातय'
अ. १.२३.२.

शुक्वन् - शुक् + वनिप = शुक्वन् । अर्थ- शक्तिशाली ।

शग्मा - उत्तम सुख करने हारी ।
'शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः'
अ. १४.२.१७

शुङ्ग - ओषधि का सरकना फूटना ।
प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेक शुङ्गाः
अ. ८.७.४

शुचः - कान्तिमान् आत्मा ।
'शुचायाश्च शुचस्य च'
ऋ. १०.२६.६

शुचत् - पवित्र । शुच् + शतृ = शुचत् ।
प्र॰मातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन्
कुमारो न वीरुधः सर्प दुर्वीः
ससं न पक्वमविदच्छुचन्तम्
रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः'
ऋ. १०.७९.३
इस पृथ्वी का अग्नि सभी जीवों की निर्मात्री पृथ्वी की (मातुः) बहुत लताओं (उर्वी वीरुधः) तथा उनके प्रकृष्ट मूत की भावना करता हुआ (प्रतरं गुह्यम् इच्छन्) उन्हें जलाने जाता है (प्रसर्यत्) । जैसे बच्चा माता का स्तन पान करने के निमित्त हाथों को स्तनों की ओर बढ़ाता है (कुमारो न) उसी भूमि के निर्झर प्रदेश में (रिपः उपस्थे) । बार बार लताओं का आस्वादन करते हुए (रिरिह्वांसम्) एवं भीतर रहकर भी दीप्त होते देखा (अन्तः शुचन्तम् अविदत्) जैसे आठ महीनों तक सोते हुए विद्युत को वर्षाऋतु में पक्व होकर चमकते हुए हम देखते हैं (पक्वं ससं न) ।
अन्य अर्थ - हृष्टपुष्ट अग्नि स्वरूप तेजस्वी बच्चे (कुमारः) माता के प्रकृष्ट स्तन्यपान करने की कामना करता हुआ (यातुः प्रतरं गुह्यं इच्छन्) पृथ्वी जन्य (ऊर्वीः) अन्नों को ओषधियों के समीप (वीरुधः) नहीं जाता (नप्रोप सर्पत्) एवं माता की गोद में (रिपः उपस्थे) दूध पीते हुए बच्चों को (अन्तः रिरिह्वांसम्) पिता प्रकटित विद्युत् की तरह शोभायमान पाता है (पक्वं ससं न शुचन्तम् अविदत्) ।

शुचन्तिः - पवित्र कारक ।
'याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदम्
तप्तं घर्ममोम्यावन्तमन्त्रये'
ऋ. १.११२.६
जिन उपायों से प्रजाजनों के हृदयों को और नगरों को निवास भूमि को शुद्ध करने और प्रकाश से जगमगा देने वाले जनों को (शुचन्तिम्) ऐश्वर्यों को दान देने वाले उत्तम समरके अध्यक्ष को (धनसाम् सुसंसदम्) सन्तप्त पुरुष या ऐश्वर्यवान् पुरुष को (तप्तम्) सुरिक्षित करते हो ।

शुचन् - सत्य न्याय का कार्य व्यवहारों में पवित्र शुद्ध एवं ईमानदार ।
'अद्रिं रुजेम धनिन्नं शुचन्तः'
ऋ. ४.२.१५

शुचमानः - शुच् + शानच् = शुचमान । अर्थ । दीप्यमान चमकता हुआ ।
'ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द'
कर्णा बुधानः शुचमान आयोः'
ऋ. ४.२३.८; नि. १०.४१
ऋतदेव का अत्यन्त महान् श्लोक अर्थात् स्तुति वाणी बोधित करता तथा चमकता हुआ (शुचमानः) मनुष्य के बधिर कानों को भी छेद डालती है (आयोः बधिरा कर्णा आततर्द) ।

शुचयत् - प्रज्ज्वलित, पवित्र ।

'युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरंगैः'
ऋ. १०.४.६
प्रज्ज्वलित अंगों या पवित्र इन्द्रियों से अरणियों में जुटे ज्वालाओं या रथ रूपी शरीर को उसकी पूर्ति के लिए संयुक्त करें ।

शुचा - अत्यन्त शुद्ध, सत्वगुण से युक्त, कान्तिमती प्रकृति ।
'शुचायाश्च शुचस्य च'
ऋ. १०.२६.६

शुचि - (१) आषाढ़ मास ।
'उपयामगृहीतोऽसि शुचये त्वा'
वाज.सं. ७.३०
(२) शुच् + इन् = शुचि-अग्नि, (३) आदित्य, (४) दीप्त (५) पवित्र ।
'त्वं नृणां नृपते जायसे शुचि'
ऋ. २.१.१; वाज.सं. ११.२७; तै.सं. ४.१.२.५; मै.सं. २.७.२: ७६.१०; तै.सं. (आंध्र) १०.७६; नि. ६.१.
हे यष्टाओं के पालक अग्नि, तू मनुष्यों के द्वारा दीप्त रूप से उत्पन्न किया जाता है ।
आधुनिक अर्थ -
शुचिर्ग्रीष्माग्नि श्रृंगारे आषाढे शुद्ध मन्त्रिणि ज्येष्ठे च पुंसि धवले शुद्धेऽनुपहते त्रिषु - मेदिनीकोष
(६) निष्पाप । नैरुक्तों ने 'निषिक्त मस्मात् पापकम् (इस से पाप निकाल रखा है) - ऐसा अर्थ किया है ।
(७) आशु तुन्ना इव द्रवति इति वा (यह शीघ्र ही विद्वान् के सदृश द्रवती है) ।

शुचि ऊधः - (१) पवित्र कान्तिमान् प्रभात, (२) पवित्रस्तन मण्डल ।
'शुच्यूधो अतृणन्न गवाम्'
ऋ. ४.१.१९

शुचिक्रन्द - शुद्ध निर्दोष वचन कहने वाला ।
'शुचिक्रन्दं यजतं पस्त्यानाम्'
ऋ. ७.९७.५; का.सं. १७.१८.

शुचिजन्मा - शुद्ध जन्म वाला जीवात्मा, (२) अग्नि ।

शुचिजिह्व - (१) पवित्र सत्य वाणी बोलने वाला, (२) अग्नि ।
'सहस्रंभरः शुचिजिह्वो अग्निः'
ऋ. २.९.१; वाज.सं. ११.३६; तै.सं. ३.५.११.२; ४.१.३.३; मै.सं . २.७.३: ७७.१४; का.सं. १६.३; ऐ.ब्रा. १.२८.३५; श.ब्रा. ६.४ .२.७

शुचिदन् - (१) शुद्ध स्वच्छ दांतों से शुशोभित ।
'हिरिश्मश्रुः शुचिदन्'
ऋ. ५.७.७
'सं यो वनो युवते शुचिदन्'
ऋ. ७.४.२

शुचिप्रतीक - (१) शुद्धपवित्र स्वरूप वाला । शोभनमुख, (२) सौम्य शिष्य (३) पवित्र प्रतीति देने वाला । -दया.
अग्नि या शिष्य का विशेषण ।
'शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे'
ऋ. १.१४३.६
उस शुद्ध पवित्र स्वरूप सौम्य शिष्य को आचार्य इस प्रज्ञा और कर्म से (अपा धिया) उपदेश करें (गृणे) ।

शुचियाः - शुद्ध चरित्रवान् निष्पाप, निर्दोष, निरपराध एवं ईमान दार की रक्षा करने वाला...वायु ।
'आ वायो भूष शुचिया उप नः'
ऋ. ७.९२.१; वाज.सं. ७.७; तै.सं. १.४.४.१: ३.४.२.१, मै.सं. १.३.६: ३२.९; का.सं. ४.२; १३.११,१२; ऐ.ब्रा. ५.१६.११; कौ.ब्रा. २६.१५; श.ब्रा. ४.१.३.१८; आश्व.श्रौ.सू. २.२०.४; ३.८.१; ८.९.२

शुचिपेशस् - (१) शुद्धि पवित्र स्वरूप वाला (२) शुद्ध कान्तिमय तेज को धारण करने वाली ज्वाला या बुद्धि ।
'ऊर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम्'
ऋ. १.१४४.१

शुभिभ्राजा - पवित्र निष्कलंक आचार के प्रकाश से सुशोभित कुमारी या स्त्री ।
'शुचिभ्राजा उषसो नवेदाः'
ऋ. १.७९.१; तै.सं. ३.१.११.४

शुचिबन्धुः - (१) शुद्ध पवित्र नियम बन्धनादि से युक्त, (२) तेज से अन्यों को सतमर्यादाओं में बांधने वाला ।
'महिव्रतः शुचिबन्धुः पावकः'
ऋ. ९.९७.७; साम. १.५२४, २.४६६

शुचिव्रता - (१) पवित्रव्रत के पालक, (२) देह में

सदा युक्त बनाए रखने वाले प्राण, अपान ।
'दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता'
ऋ. १.१८२.१

शुचिव्रते - द्वि.व. । (१) द्यावापृथिवी का विशेषण (२) सुन्दर कर्मों वाली ।
'घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते'
ऋ. ६.७०.२
सुन्दर निर्मित, सुन्दर कर्मों वाली द्यावापृथिवी लोकहित के लिए जल देती है ।

शुचिषत् - (१) शुद्ध ब्रह्म में विद्यमान् योगी, (२) पवित्रस्थान में बैठा हुआ ।
'सोममद्भ्यो व्यपिबत्
छंदसा हंसः शुचिषत्'
वाज.सं. १९.७४; कौ.ब्रा. ३८.१; तै.ब्रा. २.६.६.१.
(३) शुद्ध आचरण और व्यवहार में विराजमान ।
'हंसः शुचिषद् वसुरन्तरिक्षसत्'
ऋ. ४.४०.५; वाज.सं. १०.२४; १२.१४; तै.सं. १.८.१५.२; ४.२.१. ५; मै.सं. २.६.१२: ७१.१४; ३.२.१: १६.१; ४.४.६: ५७.३; का.सं. १५.३; १६.८; ऐ.ब्रा. ४.२०.५; श.ब्रा. ५.४.३.२२; ६.७.३.११; तै.आ. १०.१०.२: ५०.१

शुचिष्मः - (१) शुद्ध व्यवहार वाला (२) शुद्ध कान्ति वाला ।
'ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः'
ऋ. ६.६.४

शुण्ठाकर्ण - शुष्क काष्ठ से बने अथवा छोटे उपकरण वाला ।
'प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः'
वाज.सं. २४.४

शुतुद्रिः - (१) अति वेग से बहती हुई नदी, (२) शुतुद्रि नाम की नदी
(३) एक दूसरे के शोकों को दूर करने वाले,
(४) अति शीघ्र एक दूसरे के प्रेम से द्रवित या कष्टों से व्यथित होने वाले स्त्रीपुरुष,
(५) शीघ्र वेग से जाने वाले सेना और सेनापति शुतुद्रि, शुद्राविणीं, क्षिप्र द्राविणी तुन्नेव द्रवति, आशुशुक् द्राविणी वा । शु शीघ्रं नुदति व्यथयति तुद्यते व्यथिता भवति इति वा ।
(६) शोक मृत्यु भयादि दूर करने वाले प्राण और अपान या आत्मा और परमात्मा
'विपाट् छुतुद्री पयसा जवेते'
ऋ. ३.३३.१; नि. ९.३९
शुतुद्रि शब्द क्षिप्रदविणी से बना है । (७) सतलज नदी
'शुतुद्रि स्तोमं सचता पुरुष्ण्या'
ऋ. १०.७५.५; तै.आ. १०.१.१३; नि. ९.२६

शुतुद्री - शुद्राविणी, क्षिप्रद्रविणी, आशुतुन्ना इव द्रवति नि (१) एक नदी सतलज
(२) शरीर की एक नाड़ी जो वेग से गति करती चलती है ।

शुद् - (१) प्रजा को पीड़ा देने वाला अल्प बल का पुरुष, क्षुद्र ।
'रोदन्तं शुद्धमुद्धरेत्'
अ. २०.१३६.१६

शुद्ध - शुद्ध ।
'इन्द्र शुद्धो हि नो रयिम्'
ऋ. ८.९५.९; साम, २.७५४

श्नुष्टि - श्नुसु अदन आदाने इत्येके (श्नुसु धातु भोजन करना अर्थ में है) । श्नुस् + क्तिन् = श्लुष्टि है । अर्थ - भोग की प्राप्ति
आरभस्वेमाममृतस्य श्नुष्टिम् ।
अ. ८.२.१

श्रुति - (१) उपदेश श्रवण, (२) लोक वृत्त का श्रवण -वहां क्या हो रहा है ।
(३) कहां कहां हो रहा है इसकी जानकारी ।
'संसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्व'
वाज.सं. १५.७
(४) गुरूपदेश द्वारा प्राप्त वेदज्ञान (५) श्रवण शक्ति ।
'मत्यै श्रुताय चक्षसे'
अ. ६.४१.१

श्रुतऋषिः - (१) ज्ञानदर्शी गुरु, (२) शिष्यों द्वारा श्रवण करने योग्य, (३) ऋषिजनों की प्रार्थनाओं का श्रवण करने वाला ।
'श्रुतऋषिमुग्रमभियातिषाहम्'
ऋ. १०.४७.३; मै.सं. ४.१४.८: २२७.८

श्रुतम् - श्रृणुताम्, । श्रु (सुनना) के म.प्र. द्वि.व.का रूप ।
'माध्वी मम श्रुतं हवम्'
ऋ. ५.७५.१-९; साम. १.४१८; २.१०९३-५

हे मधु एवं सोम मिश्रित पेय पीने वाले (माध्वी) अश्विद्वय, तुम हमारी पुकार (हवम्) सुनो (श्रुतम्)।

श्रुतः - प्रसिद्ध, ख्यात्, इन्द्र का विशेषण।
'इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य
स्तवे वज्र्यृचीषम'
ऋ. १०.२२.२
ऋचा के समान गुणों वाला (ऋचीषमः) वज्रहस्त इन्द्र (वज्री) सभी दिशाओं में विख्यात (श्रुतः) इस यज्ञ में हमसे स्तुत किए जाते हैं (स्तुवे)।

श्रुतरथ - (१) प्रसिद्ध महारथी, इन्द्र।
'यूने समस्मै क्षितयो नमन्ताम्
श्रुतरथाय मरुतो दुवोया'
ऋ. ५.३६.६
(२) गुरूपदेश रूप रथ,
(३) गुरूपदेश से श्रवण करने योग्य
(४) रमणीय।

श्रुतर्य - श्रुत + अर्य = श्रुतर्य (शकन्धु शब्द के जैसा पर रूप)। (१) श्रुतानि अर्याणि विज्ञान शास्त्राणि येन सः (जिसने विज्ञान शास्त्रों को सुना समझा हो)।
(२)वेदोपदेश का स्वामी
(३) वाणी का स्वामी
(४) श्रोत्र का स्वामी।
'याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतम्'
ऋ. १.११२.९
जिन शक्तियों से तुम दोनों विज्ञान शास्त्रों के सुनने जानने वाले अतिविद्वान् या कुंत्स को या गुरु भाव से श्रवण करने योग्य वेदोपदेश के स्वामी, वाणी के स्वामी, श्रोत्र के स्वामी, शरीर के नायक अन्य प्राणों के स्वामी आत्मा को सब प्रकार से रक्षा करते हो (नर्यम् आवतम्)।

श्रुतर्वा -श्रुत + अर्वा = श्रुतर्वा। शकन्धुवत् पर रूप। अर्थ-प्रसिद्ध अश्वारोही जन।
'यस्य श्रुतर्वा बृहन्'
ऋ. ८.७४.४

श्रुतवित् - गुरु से उपदिष्ट ज्ञान को जानने वाला।
'बाहुवृक्तः श्रुतवित् तर्यो वः सचा'
ऋ. ५.४४.१२

श्रुतस्य प्रियाः - ब्रह्मवेद ज्ञान के प्यारे।
'प्रियाःश्रुतस्य रूप भूयास्म'
अ. ७.६१.१

श्रुत्कर्ण - (१) अभ्यर्थना करने वाले के वचनों को श्रवण करने वाला,
(२) गुरुओं द्वारा बहुश्रुत कर्णों वाला, (३) बहुत विद्वानों को अपने अधीन रखने वाला।
'श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिः'
ऋ. १.४४.३; साम. १.५०, वाज.सं. ३३.१५; तै.ब्रा. २.७.१२.५
(४) विद्वानों का उपदेश सदा कानों में धारण करने वाला।
'श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमम्'
ऋ. १.४५.७
(५) श्रवण करने वाले सावधान कानों वाला।
'श्रवच्छुत्कर्ण ईयते वसूनाम्'
ऋ. ७.३२.५
(६) प्रार्थनाओं को सुनने वाला परमेश्वर
'श्रुत्कर्णाय कवये वेद्याय'
अ. १९.३.४; का.सं. ३५.१; आप.श्रौ.सू. १४.१७.१
(७) कान से सुनने वाला।

श्रुतसेन - शूरता में विख्यात सेना वाला।
'नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च'
वाज.सं. १६.३५; तै.सं. ४.५.६.२; मै.सं. २.९.६; १२५.२; का.सं. १७.१४; मा.श्रौ.सू. ११.७.१.

श्रुत्य - (१) वेदार्थ ज्ञान में निष्ठ।
'अग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिष्ठाम्'
ऋ. १०.८०.१
(२) श्रवणीय, कीर्त्तियोग्य, वेदवर्णित।
'अपत्य साचं श्रुत्यं दिवेदिवे'
ऋ. २.३०.११
'त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि'
ऋ. १.३६.१२
तू श्रवण करने योग्य अति, अद्भुद युद्ध और ऐश्वर्य का राजा है।
(३) कीर्तिजनक
'यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र'
ऋ. १.१६५.११; मै.सं. ४.११.३; १६९.१२; का.सं. ९.१८.
(४) प्रसिद्ध,
(५) श्रवण या गुरूपदेश द्वारा प्राप्त करने योग्य,
(६) वेद ज्ञानमय ऐश्वर्य

श्रुतामघः - (१) श्रुतमघ, जो उत्तम धन से प्रसिद्ध हो

'उद्घेदभि श्रुतामघम्'

ऋ. ८.९३.१; अ. २०.७.१; साम. १.१२५; २.८००; गो.ब्रा. २.३.१४; ऐ.आ. ५:२.३.२; आश्व.श्रौ.सू. ९.११.१५; शां.श्रौ.सू. १८.२.२; वै.सू. २१.२; ३३.२

श्रुति - श्रवण द्वारा प्राप्त करने योग्य वेद

'इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद'

ऋ. १०.१११.३; कौ.ब्रा. २५.४;५;६

श्रुधी - सुनें।

'तेषां पाहि श्रुधी हवम्'

ऋ. १.२.१; मा.श्रौ.सू. २.३.१.१६; नि. १०.२

हमारा आह्वान् सुनें तथा उन सोम रसों में अपना भाग पीयें।

श्रुधीयत् - अन्न, वृत्ति, रोजगार, चाहने वाला

'श्रुधीयतश्चिद् यतथो महित्वा'

ऋ. ६.६७.३; मै.सं. ४.१४.१०:२३१.६

शुद्धवालः - शुद्ध श्वेत बालों वाला

'शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनाः'

वाज.सं. २४.३; तै.सं. ५.६.१३.१:१६९.५; का.सं. (अश्व.) ९.३

शुन - शु (अन्तरिक्ष) में जो चलता है वह शुन है। (शौ नयति गच्छति इति शुनः)। अर्थ है-वायु,

'अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे'

ऋ. ४.१८.१३

(२) सुख स्वरूप, (३) कुत्ते के समान लोभी आत्मा, (४) 'शुन' का अर्थ है कुत्ते का

शुनम् - अ.। सुखपूर्वक

'शुनं वाहाः शुनं नरः'

ऋ. ४.५७.४; अ. ३.१७.६

शुन्ध्यु - (१) शुद्ध आचारवान्

'ऊर्णा वसत शुन्ध्यवः'

ऋ. ५.५२.९

(२) विमतियों का शोधन करने वाला, (३) शोध लगाने वाला

'अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव'

ऋ. ८.२४.२४; अ. २०.६६.३; साम. १.३९६

(४) प्रवर्तक, गति देने वाला, चलाने वाला

'अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः'

ऋ. १.५०.९; अ. १३.२.२४; अ. २०.४७.२१; आ.सं. ५.१३; का.सं. ९.१९;११.१; तै.ब्रा. २.४.५.४

(५) शुन्ध् (शौध कर्म में) + क्यु = शुन्ध्यु। शुन्ध्युः आदित्यो भवति। तमांसि शोध यति। शोधनात् अर्थात् शोधन करने से शुन्ध्यु। सूर्य अन्धकार का शोधन करता है।

(६) शकुनि नामक एक श्वेत रंग का पक्षी-सा. अमर कोष में-

'तेषां शिशेषा हारीतो
मृदुः कारण्डवः प्लवः'
शकुरिरपि शुन्ध्यु रुच्यते'

(७) जल।

आपोऽपि शुन्धव एव उच्यन्ते शोधनात् एव (ज़ल भी शोधन करने से ही शन्ध्यु है)।

(८) शुद्ध

शुनःशेपः - शुनः विज्ञानवतः इव शेपः विद्या स्पर्शः यस्य सः (अत्यन्त ज्ञान वाले विद्याव्यवहार के लिए प्राप्त विद्वान्)।

'शुनः शेपो यमह्वद् गृभीतः,
सो अस्मान् राजो वरुणो मुमोक्तु'

ऋ. १.२४.१३

सुखार्थी और उत्तम विद्वान् (शुनः शेपः) बन्धन में बन्धकर (गृभीतः) जिस परमेश्वर का स्मरण करता है (यम् अह्वत्) वह प्रकाशमान, सूर्य के समान तेजस्वी, सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर हम बद्धजीवों को अन्धकार से मुक्त करें।

(२) सुख को प्राप्त करने वाला

'शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्रात्'

ऋ. ५.२.७; ७.१७.१; शां.श्रौ.सू. १५.२३

शुनहोत्र - (१) सुख देने वाला स्थान और कार्य

'अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम'

ऋ. २.१८.६

(२) विद्वान् वृद्धों का दान-दया.

(३) विज्ञान और सुखों का देने वाला विज्ञान वृद्ध और धन सम्पन्न पुरुष

'शुनहोत्रेषु मत्सरः'

ऋ. २.४१.१४

शुनासीरा - द्वि.व.। (१) वायु और आदित्य, (२)प्राण और अपान
'शुना सीरेह स्म मे जुषेथाम्'
अ. ३.१७.७

शुनासीरीय - (१) शुनाक्षीर का, (२) कृषि विभाग का
'उक्ता सञ्चारा एताः शुनासीरीयाः'
वाज.सं. २४.१९

शुनासीरौ - (१) सुखस्वामिभृत्यौ कृषीवलौ -दया. (२) शुन-सुखप्रद अन्नादि पदार्थ और सीर (हुत) का स्वामी क्षेत्रपति और भृत्य (३) भर्तव्य स्त्रीपुत्र सेवकादिजन, (४) सूर्यवायु (५) सुखपूर्वक हल चलाने वाले कृषक स्त्री पुरुष
'शुनासीराविमां वाचं जुषेथाम्'
ऋ. ४.५७.५; तै.आ. ६.६.२; आश्व.श्रौ.सू. २.२०.४; नि. ९.४१

शुनी - (१) शुनी, (२)प्रभा,
(३) वेदवाणी,
(४) चितिशक्ति
'शुन्याश्च चतुरक्ष्याः'
अ. ४.२०.७

शुनेषित - सुख से प्राप्त होने वाला
'अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितम्'
ऋ. ८.४६.२८

शुप्ति - (१) शयन, (२) भोगविलास
'स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत'
ऋ. १. ५१. ५
जो सब कुछ अपने भोग विलास में ही या सोने में ही (शुप्तौ) फूंक देते हैं (अनुह्वत)।

शुभ् -शुभ, कल्याण
'नरः शभेव पन्थाम्'
ऋ. १.१२७.६
जिस प्रकार लोग अपने कल्याण के लिए मार्ग ग्रहण करते हैं।

शुभ - (१) सुन्दर, (२) जल
'रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखम्
शूरो न मित्रावरुणा गविष्ठिषु
रजांसि चित्रा वि चरन्ति तन्यवो
दिवैः सम्राजा पयसा न उक्षतम्'
ऋ. ५.६३.५
हे मित्रा वरुण वायुओ, हिरण्य समान सूर्य की रश्मियां जल प्राप्ति के लिए (शुभे) शूर कारीगर की तरह (शूरः न) तुम्हें सुखकारक मेघ रथ के रूप में प्रयुक्त करती हैं (सुखं रथं युयुजे) । उन सूर्य-रश्मियों के मेल होने पर (गविष्ठिषु) उत्तम जल और द्विजलियां (चित्रारजांसि तन्यवः) इधर उधर विचरती हैं (विचरन्ति) तथा जल रूप में दृश्यमान मित्रावरुण वायु (सम्राजा) अन्तरिक्ष के जल के द्वारा (दिवः पयसा) हमेव सींचते हो (नः उक्षतम्) ।

शुन पृष्ठः - (१) सुखप्रद पीठ वाला अश्व, (२) समस्त सुखों का आश्रय
'अश्वो न वाजी सुन पृष्ठो अस्थात्'
ऋ. ७.७०.१

शुभयत् - शोभायमान। अग्नि-ज्वाला के विशेषण के रूप में प्रयुक्त।
'अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः'
ऋ. ५.६०.८; ऐ.ब्रा. ३.३८.१३; कौ.ब्रा. १६.९; आश्व.श्रौ.सू. ५.२०.८
हे सर्वजनहितकारी वैश्वानर अग्नि (वैश्वानर अग्नि) तू परिमित चमकने वाली (मरुद्भिः) शोभायमान (शुभयद्भिः) तथा प्रशस्त (ऋक्वभिः) ज्वालाओं से सोमरस पी।

शुभंयः -शुभ कल्याण कारी मार्ग में चलने या चलाने वाला
'कद् वाताय प्रतवसे शुभंये'
ऋ. ४.३.६; मै.सं. ४.११.४:१७२.१३; का.सं. ७.१६

शुभंयात् - शुभ धर्मानुकूल मार्ग पर चलने वाला
'शुभंयातामनुरथा अवृत्सत्'
ऋ. ५.५५.१-९; तै.सं. २.४.८.२; का.सं. ११.९;३०.४

शुभंयाया - (१) जलवृष्टि करने वाला वायु-मारुत, (२) शुभ धर्म मार्ग पर चलने वाला,(३) जल के आश्रय पर गति करने वाला प्राण
'शुभंयावाप्रतिष्कुतः'
ऋ. ५.६१.१३

शुभंयावानः - (१) शुभस्य प्रापकाः मरुतः (उत्तम सुख प्राप्त कराने वाले वायुगण)।

'शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः '
ऋ. १.८९.७; वाज.सं. २५.२०; का.सं. ३५.१; आप.श्रौ.सू. १४.१६ .१
(२) शुभ कल्याण मार्ग पर गमन करने वाले,
(३) प्रजा के कल्याण के लिए गमन करने वाले

शुभंयुः -शोभन गुणों को धारण करने वाला
'शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन् '
ऋ. १०.७८.७

शुभस्पती - (१) शुभः + पती । उत्तम व्रतों कर्मों के पालक एवं शोभायुक्त पतिपत्नी (२) अश्विद्वय
'अस्मां अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती '
ऋ. ८.२२.४
(३) शोभा के स्वामी वर और वधू
'यदयातं शुभस्पती '
ऋ. १०.८५.१५; अ. १४.१.१५
'विपिपाना शुभस्पती '
ऋ. १०.१३१.४; अ. २०.१२५.४; वाज.सं. १०.३३; का.सं. १७.१९; ३८.९; श.ब्रा. ५.५४.२५; तै.ब्रा. १.४.२.१; आप.श्रौ.सू.१९.२ .१९.
(३) शुभगुणों के प्रकाश को पालने वाले
'द्रवत्पाणी शुभस्पती '
ऋ. १.३.१
(४) शुभगुणों और आभरणों के धारक स्त्री पुरुष ।
'त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती '
ऋ. १.३४.६
(५) शोभा युक्त पदार्थों के स्वामी-प्रतिपत्नी
'सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती '
अ. १४.२.६

शुभ्रखादयः - (१) शुभ दीप्ति वाले मरुद्गण, वायु, गण, (२) स्वच्छ भोजन और स्वच्छ खड्ग आदिवाले
'प्र धन्वान्यैरयत् शुभ्रखादयः '
ऋ. ८.२०.४

शुभ्रयामा - (१) शुभ्र शुक्ल पक्ष की रात्रि,
(२) भासमान चमकते प्रहरों वाला दिन या उषा
(३) अर्थों को भासित करने वाले विस्तार या पद सन्निवेश से युक्त वाणी,
(४) शुद्ध प्रकाशित पुण्यमय निर्दोष नियम प्रबन्ध से युक्त पृथिवी, (५) भासमान अलंकृत वधू
'आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामा '
ऋ. ३.५८.१

शुभ्रयावाना - शुभ्र, शुद्ध, शोभायुक्त, शिष्टसम्पन्न, पवित्र मार्ग से जाने वाले जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष या अश्विद्वय
'वहेथे शुभ्रयावाना '
ऋ. ८.२६.१९

शुभ्रशस्तनः - सबसे अधिक शोभायमान
'शुभ्रोभिन शुभ्रशस्तमः'
ऋ. ९.६६.२६; साम. २.६६१

शुभ्र - वि. । शुभ् + रक् = शुभ्र । अर्थ -(१) सुन्दर धन प्राप्त कराने वाला, (२) कल्याण युक्त
'उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः '
ऋ. ७.३९.३; नि. १२.४३
जो शुभ धनों को देने वाले देवता विस्तृत अन्तरिक्ष में वर्तमान हैं ।

शुभानः - (१) शुभ मंगल कामना करने वाला हितैषी पुरुष
'सं पृच्छसे समराणः शुभानैः '
ऋ. १.१६५.३; वाज.सं. ३३.२७; मै.सं. ४.११.३:१६८.११; का.सं. ९.१८
(२) शुभवचन-दया. (३) उत्तम उपाय
हमें उत्तम उपायों से उपदेश कर ।

शुभ्रिः - (१) पदार्थों का भासन कराने वाली
'ता अर्षन्ति शुभ्रियः '
अ. २०.४८.२
(२) शोभन सुखप्रद, उत्तम ऐश्वर्य
'गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ'
ऋ. १.२९.१-७; अ. २०.७४.१-७; का.सं. १०.१२; तै.ब्रा. २.४.४.८
हे अधिक ऐश्वर्य वान, (तुवीमघ) आप हमें वाणी पशु, इन्द्रिय, भूमि और अश्व आदि वेग से जाने वाले साधनों और हजारों शोभा जनक सुखप्रद पदार्थों में विख्यात और सम्पन्न करें ।

शुम्भ् - (१) प्रकट करना,

'गिरः शुम्भाभि कण्ववत्'
ऋ. ८.६.११; अ. २०.११५.२; साम. २.८५१
(२) वर्णन करना
'इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे'
ऋ. ८.७०.२; अ. २०.९२.१७; १०५.५; साम. २.२८४

शुम्भति - शोभा पाता है, शोभित करता है ।
'दाता राधांसि शुम्भति'
ऋ. १.२२.८

शुम्भनी - द्वि.व.। शोभादायक द्यावा पृथिवी का विशेषण
'शुम्भनी द्यावापृथिवी'
अ. ७.११२.१; १४.२.४५

शुम्भमाना - शुम्भ + शानच् + टाप् = शुम्भमाना । अर्थ है-अभिनव यौवना ।
'भोजायास्ते कन्या शुम्भमाना'
ऋ. १०.१०७.१०
राजा या दानी के लिए (भोजाय) अभिनवयौवना (शुम्भमाना) कन्या मिलती है (कन्या आस्ते) ।
(२) शुशोभिषमाणा शोभयितुम् इच्छान्त्य (शोभने की इच्छा करती हुई-स्त्री) ।
'पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः'
ऋ. १०.११०.५; अ. ५.१२.५; वाज.सं. २९.३०; मै.सं. ४.१३.३; २०२.२; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.१०
जैसे शोभायमान स्त्रियां पतियों के लिए मैथुनार्थ...

शुरुध् - शु + रुध् + क्विप् (१) अज्ञान को शीघ्र रोकने वाली (२) शत्रु को शीघ्र रोकने वाली सेना,
(३) शीघ्र क्षुधा को निवारण करने वाला अन्त
'ऋजस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वी'
ऋ. ४.२३.८; आश्व.श्रौ.सू. ९.७.३६
(४) शीघ्र गतिशील प्राणों को रोकने वाला योगी
'इरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि'
ऋ. ७.२३.२; अ. २०.१२.२
(५) शुच् + रुध् + क्विप् = शुग्रुध् = शुरुध् । अर्थ = गड़ा हुआ धन
(६) आप् (जल) । शुरुध आपो भवन्ति शुचं संरुधन्ति (शुरुध् जल का नाम है क्योंकि जल शुच् अर्थात् ताप को रोकता है या दीप्ति या शोक को रोकता है) ।
'स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्राः'
धियं धियं सीषधाति प्र पूषा'
ऋ. ६.४९.२; वाज.सं. ३४.४२; तै.सं. १.१.१४.२; नि. १२.१८
यह पूषा धन या अभिपूजित आगमन वाले धनों को देता हुआ हमारे प्रत्येक कर्म को प्रसाधित करे ।
(७) दुःखदायी क्षुधा पीड़ा आदि रोकने वाला अन्नादि औषधि
(८) प्राप्तव्य सुख
'व्यानुषक् रुछुधो जीवसे धाः'
ऋ. १.७२.७
प्रजाओं के जीवन धारण करने के लिए ओषधियों अन्नों और उपायों को

शुल्क - ऐश्वर्य की वृद्धि
'महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विषे'
ऋ. ७.८२.६

शुशुक्वानः, सुशुक्वानः - (१) उत्तम रीति से शुद्ध कान्ति युक्त
'सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत्'
ऋ. ५.८७.३
'उत प्रिये सदन आ शशुक्वान्'
ऋ. १.१८९.७
(२) शुच् + क्वसु । देदीप्यमान-यास्क
(३) शुचि या तेजस्वी- दया.
'अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वान्'
ऋ. १.१६९.३
जैसे देदीप्यमान् अग्नि अनुपक्षीण काष्ठ की ओर जाता है - यास्क
हे विद्वन्, आप अन्न जल प्राप्ति के लिए अत्यन्त शुचि या तेजस्वी हो । -दया.
(४) सभी पदार्थों को प्रकाशित करने वाले सूर्य का प्रकाश
(५) ज्ञान प्रकाश का प्रकाशक आचार्य
'शुक्रः शुशुक्वां उषो न जारः'

ऋ. १.६९.१
शुद्ध कान्तिमान प्रभात बेला को अपने उदय और प्रवेश से जीर्ण करने तथा समाप्त करने वाले सूर्य के समान निरन्तर तेजस्वी सब पदार्थों को यथार्थ रूप से प्रकाशित करने वाला विद्वान्-पुरुष ।

शुशुक्वन् - अति देदीप्यमान, अति प्रकाशमान ।
'तत् तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनम्'
ऋ. १.१३२.३

शुशुलूक - छोटा उल्लू

शुशुलूकयातुः - (१) छोटे उल्लू के समान चाल चलने वाला
(२) अप्रत्यक्ष में कर्णकटु बोलने वाला
'उलूकयातुं शुशूलूकयातुम्'
ऋ. ७.१०४.२२; अ. ८.४.२२
(३) छोटे उल्लू के समान अतिकर्कश बोलकर डराने वाला,
(४) गरीबों का उत्पीडक

शुश्रूषमाणः - सेवा करता हुआ
'शुश्रूषमाणाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.८; तै.सं. ७.१.१९.२; मै.सं. ३.१२.३.१६१.४; का.सं. (अश्व). १.१०

शुषण् - सूखता हुआ
'अस्येदेव शवसा शुषन्तम्'
ऋ. १.६१.१०; अ. २०.३५.१०

शुष्क - सूखा, बलदायक,
'आर्द्रादा शुष्कं मधुमद् दुदोहिथ'
ऋ. २.१३.६

शुष्ककण्ठ - सूखा कण्ठ
'अपः शुष्ककण्ठेन'
वाज.सं. २४.२; मै.सं. ३.१५.२:१७.८.६

शुष्क्य - शुष्क पदार्थों से व्यवहार करने वाला
'नामः शुष्क्याय च हरित्याय च'
वाज.सं. १६.४५; तै.सं. ४.५.९.१; मै.सं. २.९.८:१२६.१२; का.सं. १७.१५

शुष्कास्या - शुष्क मुखड़ा वाली कामिनी
'शुष्कास्याभि सर्प मा'
अ. ३.२५.४
'अथो शुष्कास्या चर'
अ. ६.१३९.२,४

शुष्ण - (१) एक दैत्य-सा.(२) प्रजा का रक्त शोषण करने वाला
'यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम्'
ऋ. २.१४.५
(३) प्राणों का शोषण करने वाला
(४) क्षुत् पिपासा आदि कष्ट
'यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णम्'
अ. २०.३४.१७
(५) रसानां शोषयिता (रसों का शोषक)- आदित्य ।
बलवान् ।
'वि श्रृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः'
ऋ. १.३३.१२; नि. ६.१९
'विशिष्ट शिखर युक्त तथा दीप्तिमान् (विश्रृङ्गिणम्) एवं बलवान् मेघ को (शुष्णम्) इन्द्र ने छिन्न भिन्न किया (अभिनत्) । -सा. ऊंचा सिर उठाए हुए (वि-श्रृङ्गिणम्) बलवान् शत्रु को (शुष्णम्) राजा कुचले (व्यभिनत्) ।

शुभ्रशस्तम - अतिशुभ्रस्वरूप
'शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः'
ऋ. ९.६६.२६; साम. २.६६१

शुष्मः - (१) शरीर को सुखा देने वाला बालक का रोग
'यो अभ्रजा वातजा यश्च शुष्मः'
अ. १.१२.३
(२) शुष् (शोषण करना) + मन् = शुष्म । अर्थ है-शोषण । स्कन्द स्वामी ने 'शुष् + मनिन्' का ही बाहुलक नियम से इन का लोप कर शुष्म होना बतलाया है । माधव ने शुषि (प्रीणनार्थक) से 'शुष्म' की व्युत्पत्ति की है ।
(३) बल समर्थ्य ।
'यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेताम्'
ऋ. २.१२.१; अ. २०.३४.१; तै.सं. १.७.१३.२; मै.सं. ४.१२.३: १८६.५; का.सं. ८.१६; नि. ३.२१; १०.१०
जिसके सामर्थ्य से द्यौ पृथ्वी डर गए या कांप उठे ।
'इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्
सानु गिरीमां तविषेभिरूर्मिभिः'

ऋ. ६.६१.२; मै.सं. ४.१४.७; २२६.९; का.सं. ४.१६; तै.ब्रा. २. ८.२.८; नि. २.२४

यह सरस्वती नदी अपनी महती बलवती ऊर्मियों से पहाड़ो की चोटी को कमल खनने की तरह काटती है ।

शुष्णहत्य – (१) प्रजा के धनों और प्राणों को अत्याचारों द्वारा शोषण करने वाले दुष्टों के विनाश का अवसर

(२) संग्राम जिसमें बल की हत्या होती है-दया.

'त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथ'

ऋ. १.५१.६

तू प्रजा के धनों और प्राणों को अत्याचारों द्वारा शोषण और रक्त शोषण करने वाले दुष्टों के विनाश करने के अवसरों में (शुष्ण हत्येषु) या संग्राम में वज्र (कुत्सम्) धारण कर ।

शुष्मा – (१) बलकारी औषध, (२) बला

'उच्छुष्मौषधीनाम्'

अ. ४.४.४

शुष्मिन्तमः – (१) शोषणकारी तीव्र ताप से युक्त पदार्थों में सबसे श्रेष्ठ-अग्नि (२) सबसे अधिक तीव्र ताप वाला

'शुष्मिन्तमो हि ते मदः'

ऋ. १.१२७.९; १७५.५

(३) शत्रुओं का सबसे अधिक शोषण करने वाला, (४) अति बलशाली

'शुष्मिन्तमं न ऊतये'

ऋ. ३.३७.८; अ. २०.२०.१; ५७.४; आश्व.श्रौ.सू. ७.४.३; वै.सू. २७.२५; ३१.२२.

शुष्मी – (१) बलवान्

'शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे'

ऋ. ७.२३.५; अ. २०.१२.५

(२) बलिष्ठ सेना वाला,

(३) इन्द्र का एक विशेषण

'शुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा'

ऋ. ५.४.४०; अ. २०.१२.७; तै.सं. १.७.१३.४

'स वाजस्य श्वसः शुष्मिणस्पतिः'

ऋ. १.१४५.१

श्रुष्टि – (१) शीघ्रता

'श्रुष्टिं चकुर्भृगवो द्रुह्यवश्च'

ऋ. ७.१८.६

'गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नः'

ऋ. १०.१०१.३; वाज.सं. १२.६८; तै.सं. ४.२.५.६; मै.सं. २.७.१२:९१.१६; का.सं. १६.१२; श.ब्रा. ७.२.२.५

स्तुति द्वारा जिसकी हम याचना करते हैं वे ओषधियां शीघ्र (श्रुष्टिः) पल भर से युक्त (सभरा) हों । (२) श्रुष्टी इति क्षिप्र नाम, आशु + अष्टि । अश् (व्याप्त्यर्थक) + क्तिन् + ङीष्, अथवा शु + अष्टी = श्वष्टी = श्रुष्टि (श्व के व का स) । शु का अर्थ क्षिप्र और अष्टी का अर्थ व्यापन है ।

(३) सुख ।

(४) क्षिप्रकारी ।

(५) श्रवण योग्य उपदेश,

(६) राज्य कार्य,

(७) अन्नधन ।

(८) अन्न आदि

(९) श्रवण करमे योग्य ज्ञान

'अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या'

ऋ. १.१६६.१३

(१०) श्रुति

'यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति'

ऋ. १.१७८.१

(११) अ.। शीघ्र ।

(१२) पक्व अन्न

(१३) सुखकारी समृद्धि

'अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै'

ऋ. २.१४.९

श्रुष्टिमत् – अन्न, समृद्धि और सुख सामग्री से युक्त

'कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम्'

ऋ. १.९३.१२

श्रुष्टी – अतिशीघ्र, अविलम्ब

'श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः'

ऋ. २.३.९; तै.सं. ३.१.११.२; मै.सं. ४.१४.८: २२७.१

'श्रुष्टी भगं नासत्या पुरन्धिम्'

ऋ. ७.३९.४; नि ६.१३.

भग, अश्विनी कुमारों तथा इन्द्र को अविलम्ब

पूज ।

श्रुष्टीवत् - यथार्थ विद्या का सेवन करने वाला विद्वान्

'श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः'

ऋ. १.४५.२

हे अग्नि या ज्ञानयुक्त राजन्, विविध प्रकार से शास्त्रों के ज्ञाता (विचेतसः) विद्या के दाता विद्वान् (श्रुष्टीवान्तः) भक्तिपूर्वक दान देने वाले यजमान या शिष्य के लिए ही उत्तम विद्या आदि को प्राप्त करें ।

श्रुष्टीवा - (१) दूत, (२) श्रुतिवचनों का ज्ञाता, (३) वसिष्ठ का विशेषण

'श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि'

ऋ. ७.७३.३

श्रुष्टीवरी - सुखदायिनी ।

'श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः'

ऋ. १०.३०.११; नि. ६.२२.

हे सोममिश्रित जल (अरयः) तुम ऋत्विजों से उत्सिक्त होकर हमारे लिए सुखकारक बनो (अस्मभ्यं श्रुष्टीवरीः भूतन)-सा.।

हे आप्त देवियो, हमार लिए सुख कारिणी बनो (श्रुष्टीवरीः भूतन) ।

श्रुष्टीवान् - (१) व्याप्ति वाले चरु से युक्त जन, (२) व्याप्ति वाले, रमण करने वाले आकाश विद्युत् आदि दिव्य पदार्थ, (३) अतिशीघ्र कार्य करने वाले सेवक जन

'अध स्मा ते परि चरन्त्यजर
श्रुष्टीवानो नाजर,'

ऋ. १.१२७.९

शूकार - शीघ्रकारी

'शूकाराय स्वाहा'

वाज.सं. २२.८; तै.सं. ७..१.१३.१; मै.सं. ३.१२.३:१६१.१; का.सं. (आश्व.) १.४.

शूकृतः - (१) शीघ्रता करने वाला

'शूकृताय स्वाहा'

वाज.सं. २२.८; तै.सं. ७.१.१३.१; मै.सं. ३.१२.३:१६१.१; का.सं. (अश्व.) १.४.

(२) शीघ्रता से कार्य करने वाला, (३) अविवेक से कुपथ पर पैर रखने वाला

'यत्ते सादे महसा शूकृतस्य'

ऋ. १.१६२.१७; वाज.सं. २५.४०; तै.सं. ४.६.९.२; का.सं. (अश्व) .६.५.

(४) शीघ्र निष्पादित -दया.

शूघनः - तीव्र गतिवाली धारा से युक्त

'सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासः'

ऋ. ४.५८.७; वाज.सं. १७.९५; का.सं. ४०..७; आप.श्रौ.सू. १७. १८.१

शूघना - वेग से निकलती हुई

'सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासः'

शूद्र - (१) शूद्रवर्ण, (२) शीघ्रता से द्रुत गति से जाने वाला, (३) श्रम शील पुरुष

'तपसे शूद्रम्'

वाज.सं. ३०.५; तै.ब्रा. ३.४.१.१

शूद्रकृता - (१) शूद्रों की बनी सेना-ज.दे.श. (२) शूद्रों द्वारा की गई कृपा

'शूद्रकृता राजकृता'

अ. १०.१.३

शून - (१) शून्य, निस्सार

(२) बड़ा दुःख

'मा शूने भूम सूर्यस्य संदृशि'

ऋ. १०.३७.६

(३) सुख युक्त, सम्पन्न,

(४) शून्यगृह

'मा शूने अग्ने नि षदाम नृणाम्'

ऋ. ७.१.११

'भूरिदाव्न आविदं शूनमापेः'

ऋ. २.२७.१७; २८.११; २९.७

(४) उन्नति, वर्धन, बढ़ती (५) सुख सेवादि कार्य

'मा सोम्यस्य शंभुवः
शूने भूम कदाचन'

ऋ. १.१०५.३

हम हितकारी शान्तिकारी गुरु के मुख से सुख सेवादि कार्य में कभी आलस्य न करें ।

(६) सुख

'अघ्न्यौ शूनमारताम्'

ऋ. ३.३३.१३

शून्यैषी - गृह को शून्य करना चाहने वाली

'शून्यैषी निर्ऋते याजगन्ध'
अ. १४.२.१९

शूर - शु (गत्यर्थक) + क्रनि = शूर (शु के उ का दीर्घ)।
शूरः शवतेः गतिकर्मणः (शूर शब्द गत्यर्थक 'शु' धातु से बना है)।
अर्थ है- (१) शूरण, (२) आदित्य, (३) विक्रम शील
आधुनिक अर्थ - वीर, योद्धा, सिंह, भल्लूक, सूर्य, शालवृक्ष, श्रीकृष्ण के पितामह का नाम।

शूरगामः - शूरवीर समूहों का स्वामी
'शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान्'
ऋ. ९.९०.३; साम. २.७५९

शूरणासः - शूरण का बहुवचन। (१) 'शूरण' का अर्थ आदित्य है।(२) विक्रमशील।

शूरपत्नी - (१) शूरवीर पुरुषों को पालन करने वाली,
(२) शूरपति वाली सेना
'अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीः'
ऋ. १.१७४.३.

शूरपुत्रा - शूरवीर उत्पन्न करने वाली -पृथिवी
'हुवे देवीमदितिं शूरपुत्राम्'
अ. ३.८.२

शूरसाति - (१) शूरवीरों से प्राप्त करने योग्य संग्राम
'नरश्चिद् वां समिथे शूरसातौ'
ऋ. ३.५४.४
(२) वीर पुरुषों के विभाग करने योग्य संग्राम
'संयद् विशोऽयन्त शूरसातौ'
ऋ. ६.२६.१
(३) शूरों से सुख पूर्वक भोगने योग्य युद्ध भूमि
'यः शूरसाता परितक्म्ये धने'
ऋ. १.३१.६
पुनः-
'तमूतयो रणयञ्छूरसातौ'
ऋ. १.१००.७
रक्षा करने वाले वीरों पुरुष या रक्षा, उत्तम ज्ञान, तेज आदि सद्गुण (ऊतयः) उस वीर पुरुष को शूरवीरों के योग्य संग्राम में (शूरसातौ) हर्षित करते हैं (रणयन्)।
(४) शूरवीर पुरुषों की प्राप्ति
'वयं धनां शूरसाता भजेमहि'
ऋ. १.१५७.२; साम. २.११०९

शूर्त - विमर्दित, दण्डित
'त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम्'
ऋ. १.१७४.६
सन्तानों या मनुष्य प्रजा के इस धन को जिसके वे स्वामी नहीं हैं उठाते हुए वे विमर्दित या दण्डित किए जांए।

शूर्प - (१) शूप
'शूर्पं पवित्रः'
अ. ९.६ (१).१६
(२) षो (प्रक्षेपणार्थक) + श = स्य। स्यति प्रक्षिपति तुषान् इति स्यम।
शूर्यम् अशनपवनम्'
(भोजन को फटककर पवित्र करने वाला सूप)।
अशु (भोजन करना) + पूञ् = शूर्प (पृषोदरादिवत्)। अथवा हिंसार्थक शृ + तृ = सूर्प (बाहुलक नियम से)। ऋकार, उ तथा दीर्घ शूर्प शरमय होता है।
'वर्षवृद्धमुपयच्छ शूर्पम्'
अ. १२.३.१९

शूल - न.। पीड़ा जनक शूल
'अभिशूलं निहतस्यावधावति'
ऋ. १.१६२.११; वाज.सं. २५.३४; तै.सं. ४.६.८.४; मै.सं. ३.१६.१:१८२.१६; का.सं. (अश्व.) ६.५.
(२) पीड़ा देने वाला शत्रु (३) हल आदि

शूशुजानः - (१) चमकता हुआ
'जेष्यामीति तन्वा शूशुजानः'
ऋ. १०.३४.६
(२) बढ़ता हुआ
'अदेवयून् तन्वा शूशुजानान्'
ऋ. १०.२७.२

शूशुवत् - यो ज्ञापयति वर्धयति वा (वृद्धि करने वाला)।
'स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनः'.
ऋ. १.५४.७

शूशुवान् - (१) बल में बढ़ने वाला
'त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसम्'

ऋ. ४.१६.१३

(२) समस्त सुखों का दाता महापुरुष

'सहस्त्रिणं शतिनं शूशुवांसम्'

ऋ. १.६४.१५

(३) राष्ट्र को व्यापने वाला पुरुष -इन्द्र

'अषाढेन शवसा शुशुवांसम्'

(४) सदा बढ़ने वाला, फैलने बढ़ने वाला,

'ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसः'

ऋ. १.१६७.९

शूशुवानः - वृद्धि को प्राप्त होता हुआ।

'हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः'

ऋ. ७.२०.२

शूष - (१) सुख, (२) बल

'उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः'

ऋ. ५.४१.७

(२) उत्पन्न संसार, (३) ऐश्वर्य, (४) राष्ट्र रूप ऐश्वर्य (५) राष्ट्र शक्ति।

'शूषस्य धूरि धीमहि'

ऋ. १.१३१.२; अ. २०.७२.१

(६) बल, सत्व

'इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः'

ऋ. ३.४९.२

अतिसमर्थ बहु सत्वयुक्त बलों से ...।

(७) सुख का स्तुति।

'सास्माकेभिरेतरी न शूषैः

'अग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः'

ऋ. ६.१२.४.

जातधन या जातप्रज्ञ अग्नि हमारे सुख कारक स्तोत्रों में (अस्माकेभिः शूषैः) हमारे यज्ञ (दमे) अतिथि या याचक के सदृश (एतरी न) स्तुत किए जाते हैं (आ स्तवे)।

शूष्य - शूष् + यत् = शूष्य। बलयुक्त।

'अर्चा दिवे बृहते शुष्यं वचः'

ऋ. १.५४.३

श्रृंग - (१) अज श्रृंगी नामक ओषधि, (२)सींग

'अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मलात्'

अ. ४.६.५

(३) काम वासना

'श्रृंग उत्पन्न

अ. २०.१३०.१३

(४) सींगा नामक एक बाजा

(५) अज्ञान नाशक ज्ञान, (६) मूल कारण

'श्रृंगं धमन्त आसते'

अ. २०.१२९.१०; शां.श्रौ.सू. १२.१८.९

सींग के अर्थ में -

'शिशीते श्रृंगे रक्षसे निनिक्षे'

ऋ. ५.२.९; अ. ८.३.२४; तै.सं. १.२.१४.७; का.सं. २.१५; नि. ४ .१८

(७) श्रिञ् + गन् = श्रृंग, श्रृ (हिंसार्थक) + गम् + डट् = श्रृंग, शयु (हिंसार्थक) + ग = श्रृंग (अ क ऋ व्यत्य से)।

श्रृंग से हिंसा करते हैं या श्रृंग सिर पर श्रित रहता है। इसे द्विधातुक भी माना गया है।

'शरणाय उद्दतम् इतिवा'

'शिरसो निर्गतम् इति वा'

अर्थात् श्रृंग हिंसा के लिए निकला है या रक्षा के लिए सिर से निकला है।

(८) शिरस् (मस्तक या आदित्य) + गम् + ड = श्रृंग। शिरस् का श्रृं और म का आगम।

अर्थ - आदित्य से निकलने वाला तेजस्।

(९) देवराज ने श्रृंगाणि' का अर्थ 'तेजांसि' माना है।

आधुनिक अर्थ - शिखर, सींग, भवन का सिरा-ऊंचाई, चन्द्रमा का श्रृंग, सींगा नामक बाजा, प्रेम की परम सीमा, चिन्ह

श्रृंगवृषः नपात् - हिंसाकारी बाणों की वर्षा करने वाला, प्रबल सेना को न गिरने वाला

'यस्ते श्रृंगवृषो नपात्'

ऋ. ८.१७.१३; अ. २०.५.७; साम. २.७७; तै.ब्रा. २.४.५.१.

श्रृंगवृष - लोक संहारक तथा सरल सुखों का वर्षक।

श्रृंगा - द्वि.व.। (१) दो सींग, (२) दो गिरि शिखर, (३) गिरि शिखरों के समान दो स्त्री पुरुष वरवधू या अश्विद्वय

'श्रृंगेव नः प्रथमा गन्तुमर्वाक्'

ऋ. २.३९.२

श्रृंगी - (१) हिंसाकारी सेना दल, (२) सींग वाला

पशु,
(३) शिखा युक्त,
(४) दीप्तिमान् मेघ का विशेषण
(५) ऊंचा शिर उठाने वाला शत्रु
'वि श्रृंगिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः'
ऋ. १.३३.१२; नि. ६.१९.

श्रृण्वत् - (१) सदा सुनता हुआ-मृत्यु का विशेषण ।
'चक्षुष्मते श्रृण्वते ब्रवीमि'
ऋ. १०.१८.१;अ. १२.२.२१; वाज.सं. ३५.७; श.ब्रा. १३.८.३.४; तै.ब्रा. ३.७.१४.५;तै.ब्रा. ३.७.१४.५; तै.आ. ३.१५.२; ६.७.३; तै.आ. (आ.) १०.४६; आप.श्रौ.सू. २१.१; नि. ११.६.
हे मृत्यु ! तुम आंख वाले, सदा सुनने वाले से कहता हूँ ।

श्रृणाति - (१) हिनस्ति (हिंसा करता है) । श्रृ धातु हिंसार्थक है, (२) शान्त होता है, (३) ठंढा होता है । (४) शीर्ष करता है ।
'यदस्य मन्युरधिनीयमानः
श्रृणानति वीडु रुजति स्थिराणि'
ऋ. १०.८९.६
जो इस इन्द्र का परमात्मा का मन्यु अभिमानियों पर आकर शान्त होता या उन्हें शीर्ण करता है ।
(५) श्रृण्वन्तु (सुने) । लोट् के अर्थ में लङ् का प्रयोग ।

श्रृण्वन् - (१) प्रजाओं की पुकार सुनने वाला
'श्रृण्वन्तमुग्रमूतये समस्तु'
ऋ. ३.३०.२२; अ. २०.११.११; साम. १.३२९; का.सं. २१.१४; तै. ब्रा. २.४.४.३.
(२) श्रृ + शतृ । सुनता हुआ
'उत त्वः शृण्वन् न श्रृणोत्येनाम्'
ऋ. १०.७१.४; नि. १.१९
कोई इस वाणी को (त्वः एनाम्) सुनता हुआ भी (श्रृण्वन्) नहीं सुनता (न श्रृणोति) ।
(३) श्रृण्वन्तु (सुने) । लोट् के अर्थ में लङ् का प्रयोग ।

श्रृण्वे - सुनता हूँ ।
'श्रृण्वेवीर उग्रमुग्रं दमायन्'
ऋ. ६.४७.१६
सुनता हूं, इन्द्र वीर है क्योंकि वह शत्रु के प्रति उग्र शत्रुओं का दमन करने वाला है (दमायन्) ।

श्रृणोतु - सुने ।
'तिग्मायुधाय भरता श्रृणोतु नः'
ऋ. ७.४६.१; तै.ब्रा. २.८.६.८; नि. १०.६
तिग्म आयुधवाले रुद्र को स्तुतियां अर्पित करो और वे हमारी स्तुतियां सुनें ।

श्रृत - श्रृ + क्त । (१) परिपक्व अन्न
'हविषा श्रृतेन'
वाज.सं. १९.८९
(२) पकाया हुआ दुग्धादि

श्रृतपाः - (१) परिपक्व फल का पान या भोग करने वाला
दर्शन्वत्र शृतपाँ अनिन्द्रान्'
ऋ. १०.२७.६
(२) परिपक्व दुग्धादि उत्तम पदार्थों को पीने वाला
'अर्धं वीरस्य श्रृतपा मनिन्द्रम्'
ऋ. ७.१८.१६

श्रृतपाक - (१) श्रृतश्चासौ पाकश्च । अति संस्कार द्योतनार्थम् द्विरुक्तिः । (जो खूब पकाया या सिद्ध किया गया है) ।
'उत मेधं श्रृतपाकं पचन्तु'
ऋ. १.१६२.१०; वाज.सं. २५.३३; तै.सं. ४.६.८.४; मै.सं. ३.१६.१; १८२.१३
(२) अत्यन्त अधिक सन्ताप

श्रृतात्वक् - शीर्ण करने वाली आग्नेय त्वचा-अग्नि जिससे मृतात्मा का दाह संस्कार किया जाता है ।
'श्रृतमजं श्रृतया प्रोर्णुहि त्वचा'
अ. ४.१४.९;

श्रृध्या - (१) निन्दित वाणी, शब्दकुत्सा
'यः शर्धते नानुददाति श्रृध्याम्'
ऋ. २.१२.१०; अ. २०.३४.१०.
(२) सहनशील, (३) सहायता

शेकुः - शक्नुवन्ति (सकते हैं) । लट् (वर्तमान) अर्थ में लिट् का प्रयोग अर्थ है ।
'धीरा इत् शेकुः धरुणेषु आरभम्'
ऋ. ९.७३.३; तै.आ. १.११.१; नि. १२.३२.

बुद्धिमान् पुरुष जल बरसने पर कृषि कार्य या वैदिक कर्म का प्रारम्भ कर सकते हैं ।

शेप - (१) कामसम्बन्धी मद (२) दुराचार करने का बल (३) पुरुष लिंग

'यथा शेपो अपायातै'

अ. ७.९०.३

(४) शप् (स्पर्श करना) + घञ् = शेप

शेपः शपतेः स्पृशति कर्मणः (इससे स्त्री योनि का स्पर्श किया जाता है अतः यह शेप है)। शप् धातु आक्रोश अर्थात् शाप देने के अर्थ में भी आया है, परन्तु यास्क ने स्पर्श अर्थ में भी इसका ग्रहण किया है । अर्थ है- जननेन्द्रिय ।

'यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम्'

ऋ. १०.८५.३७; अ. १४.२.३८; नि. ३.२१.

जिस योनि में हम कामुक हो जननेन्द्रिय क्षिप्त करते हैं ।

(५) सूर्य की किरणें

'शेपति हिनस्तिः दुःखम् इति शेपः' (जो दुःख को नष्ट करता है वह शेप है) ।

शेपहर्षणी - (१) प्रजातन्त्र इन्द्रिय में हर्ष अर्थात् पुष्टि उत्पन्न करने वाली ओषधि (२) ज्ञानवान् आत्मा को जागृत करने वाली कर्मदाहक ज्ञान वाली ।

'ओषधिं शेपहर्षणीम्'

अ. ४.४.१

शेरभ - (१) हत्यारा पुरुष, (२) हिंसा का भाव

'शेरभक शेरभ पुनर्वो यन्तु यातवः'

अ. २.२४.१

शेवधि - (१) धरोहर, धातीः

'यथा शेवधिर्निहितः'

अ. १२.४.१४

(२) निधि, भण्डार

'विद्याह वै ब्राह्मणमाजगाम
गोपाय मां शेवधिष्टेऽहमस्मि ।
असूयकाया नृजवेऽयताय
न मा ब्रूयाः वीर्यवती तथा स्याम्'

- विद्यासूक्त ।

विद्या ने ब्राह्मण उपदेशक या आचार्य से यों कहा-हे ब्राह्मण, अनधिकारीजन को मुझे न दे । मेरी रक्षा कर मैं तेरी निधि हूं । मेरे प्रति या तेरे प्रति असूया करने वाले तथा जो शिष्य शिष्ट एवं ऋजु स्वभाव का न हो या जो असंयत एवं ब्रह्मचारी न हो उसे मुझे न देना क्योंकि निर्बल हो जाऊंगी । अन्यथा मैं बलवती बनी रहूंगी ।

शेवधिया - निधि की रक्षा करने वाला

'दासः शेवधिया अरिः'

ऋ. ८.५१.९; साम. २.९५९; वाज.सं. ३३.८२.

शेवल - शयन करने वाले बालक पर आवरण करने वाला जरायु

'अवैतु पृश्निः शेवलम्'

अ. १.११.४;

शेव्य - (१) सुखयितुं योग्यः (२) सुखदाता विष्णु, परमेश्वर

'भवा मित्रो न शेव्यः घृतासुतिः'

ऋ. १.१५६.१; तै.ब्रा. २.४.३.८; आश्व.श्रौ.सू. ८.१२.७;

शेवा - अति सुख एवं कल्याणमयी

'युष्माकं सख्ये अहमस्मि शेवा'

अ. ८.९.२२

शेवृध् - सुखों को बढ़ाने वाला

'यस्मिन् रायः शेवृधासः'

ऋ. ३.१६.२

शेवृधः - (१) 'शेवृध्' का बहुवचन । सुख बढ़ाने वाले-मरुतों का विशेषण ।

'जिगाति शेवृधो नृभिः'

ऋ. ५.८७.४

(२) एक वचन में 'शेवृध' का अर्थ है-हिंसा के कार्य सबसे आगे बढ़ने वाला,

(३) लोभ

'शेवृधक शेवृध'

अ. २.२४.२

(४) शान्तिमय प्रभु में शक्ति से बढ़ने वाला

'स शेवृधो जात आ हर्म्येषु'

ऋ. १०.४६.३

शेवृधक - (१) हिंसा के कार्य में सब से आगे बढ़ने वाला, घातक

(२) सर्प के स्वभाव वाला (३) लोभ

'शेवृधक शेवृध'

अ. २.२४.२

श्येत - (१) श्वेत वर्ण का
'श्येतः श्येताक्षः'
वाज.सं. २४.३; तै.सं. ५.६.११.१;
(२) शुद्ध चरित्र वाला
'यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे'
ऋ. ७.४.३.
(३) प्राप्त (४) श्वेत
'गृहे गृहे श्येतो जेन्यो भूत्'
ऋ. १.७१.४
गृह गृह में श्वेत शुभ्र वर्ण का होकर प्रकट होता-प्रकाशित होता है।
अथवा,
घर घर में प्राप्त हो विजय का हेतु बनता है।

श्येताक्षः - आंख पर श्वेत वर्ण वाला
'श्येतः श्येताक्षः ते रुद्राय पशुपतये'
वाज.सं. २४.३; मै.सं. ३.१३.४:१६९.५

श्येन - (१) ज्ञान स्वरूप प्रभु, (२) बाज, (३) बाज के समान वीर पुरुष
'अधा मे श्येनो मध्वाजभार'
ऋ. ४.१८.१३
(४) शंसनीयगतिः सूर्यः
'श्येनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः'
अ. ७.४१.२
(५) श्येन शंसनीयः गच्छति (श्येन द्रुत गति से चलता है)। श्यङ् (गत्यर्थक) + इनच् = श्येन। श्येन नामक पक्षी (६) इन्द्र भी शंसनीय गति वाला है।
'आदाय श्येनो अभरत् सोमम्'
ऋ. ४.२६.७; नि. ११.२.
इन्द्र ने सोम लेकर पान किया।

श्येनपत्वा - (१) श्येनवत् पत्वा (श्येन के समान गिरन वाला)।
पत् + वनिप् = पत्वन्
(२) ज्ञानकर्ता, (३) गतिमान् आत्मा
'आ वां रथो अश्विना श्येन पत्वा'
आप दोनों का वह रथ बाज के समान वेग से जाने वाला है (श्येनपत्वा)।

श्येनभृत - (१) उत्तम आचारवान् (२) निष्ठ गुरुओं द्वारा पालित
'अथा भर श्येन भृत प्रयांसि'
ऋ. ९.८७.६

श्येनस्य पुत्रः - (१) श्येन का पुत्र (२) प्रशंसनीय गुरु का पुत्र
'श्येनस्य पुत्र आभरत्'
ऋ. १०.१४४.४

श्येनाभृत - (१) बाज के द्वारा लाया हुआ, (२) बाज के समान आक्रमण द्वारा बलपूर्वक प्राप्त
'सोमः श्येनाभृतः सुतः'
ऋ. १.८०.२

श्येनी - (१) श्वेत वर्ण की गौ
'एनीः श्येनीः सरूपाः विरूपाः'
अ. १८.४.३३
(२) श्वेत फुंसी वाली स्फोट
(३) अत्यन्त शुभ्रा श्येन वर्णा
'एन्येका श्येन्येका कृष्णैका'
अ. ६.८३.२

श्येनीपती - (१) विविध वर्णों की स्वामिनी प्रकृति
'श्येनीपती सा'
अ. २०.१२९.१९

श्येनीवर्तनी - (१) काले रंग का मार्ग जो आग लगने से बन जाता है, (२) बुद्धिमती माता जो बालक के पीछे-पीछे चलती हुई (३) वेग से जाने वाली सेना और सदा उसके अनुकूल जलने वाली और वार्ता वृत्ति से जीवन व्यतीत करने वाली वैश्य प्रजा।
'श्येनी सचते वर्तनीरह'
ऋ. १.१४०.९

श्रेणि - श्रिञ् (सेवार्थक) + नि = श्रेणि। श्रेणि + ङीष् - श्रेणी श्रेणिः श्रयतेः समाश्रिताः भवन्ति (श्रेणि शब्द श्रि धातु से बना है, जो समाश्रित है वही श्रेणि है)।
श्रेणि + ङीष् = श्रेणी। अर्थ है-पंक्ति।

श्रेणिदन् - (१) प्रजाओं या सेनाओं के पंक्तिबद्ध दलों को वेतन, भृति या अन्नादि देने वाला
'भ्राजते श्रेणिदन्'
ऋ. १०.२०.३

श्रेणिशः - पंक्तिबद्ध।

पंक्ति बांधकर ।
'हंसा इव श्रेणिशो यतानाः'
ऋ. १.१६३..१०; ३.२.९; वाज.सं. २९.२१; तै.सं. ४.६.७.४; नि. ४.१३.

श्रेयः - कल्याण कारी, मुक्ति का सुख
'श्रेयश्च मे वसीयश्च मे'
वाज.सं. १८.८

श्रेयस्कर - कल्याण कर्त्ता, प्रजा का कल्याण कर्ता
'बहुकार श्रेयस्कर'
वाज.सं. १०.२८; श.ब्रा. ५.४.४.१४

श्रेयःकेतः - श्रेय श्रेष्ठ पद का ज्ञान कराने वाला
'श्रेयः केतो वसुजित् सहीयान्'
अ. ५.२०.१०

श्रेष्ठतमा - सबसे उत्तम-उषा या स्त्री
'इहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ'
ऋ. १.११३.१२

श्रेष्ठवर्चाः - सर्वोत्तम तेज से युक्त
'ते हि श्रेष्ठवर्चसः त उ नः'
ऋ. ६.५१.१०

श्रेष्ठा - सबसे उत्तम ।
'स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा'
ऋ. १०.६२.१६; ऐ.ब्रा. १.९.७; नि. ११.४६.
अन्तरिक्षों में स्थित स्वस्ति नाम्नी देवता जो देवगोपा या मेघ का वाचक है अन्तरिक्ष में सबसे उत्तम देवता है ।

श्वेत - (१) करवीर, (२) अश्वक्षुरक नामक ओषधि जो सर्पविष को दूर करती है ।
'अवश्वेतपदा जहि'
अ. १०.४.३.
(३) श्वित् + घञ् = श्वेत (४) सततं गन्तुं प्रवृद्धः
(५) अति अधिक वेग से आक्रमण करने वाला सैनिक

श्वेतअश्व - (१) श्वेत घोड़ा, (२) अतिबलशाली मार्गगामी साधन,
(३) शुक्र व्यापक अनादि सिद्ध आनन्दमय ब्रह्म ।

श्वेतता - (१) दीप्ति (२) उषा का विशेषण

श्वेतना - श्वेत करना, उज्ज्वल करना
'उत त्या मे यशसा श्वेतनायै
व्यन्ता यान्तौशिजो हुवध्यै'
ऋ. १.१२२.४
जो दोनों माता पिता या गुरु और गुरु पत्नी ज्ञान से (यशसा) जगत् को उज्ज्वल करने के लिए (श्वेतनायै) भोजन ग्रहण करते (व्यन्ता) और जलपान करते हैं (पान्ता) उन दोनों का भी मैं औशिज-उशिज या तेजस्वी पिता का पुत्र या गुरु का शिष्य (औशिज) अत्यन्त अधिक आदर करता हूँ (हुवध्यै) ।

श्वेतयावरी - (१) हिमाच्छादित पर्वत से चलने वाली नदी, (२) श्वेत शुल्क विशुद्ध प्रभु से आने या उस तक पहुंचा देने वाली वेदवाणी, (३) सदाचार मार्ग से जाने वाली स्त्री
'उत स्या श्वेतयावरी
वाहिष्ठा वां नदीनाम्'
ऋ. ८.२६.१८

श्वेता - अति गतिशील घोड़ी
'ये त्वा श्वेता अजैश्रवसः'
अ. २०.१२८.१६

श्वेत्या - (क) ण्यन्त श्विता (वर्णार्थक) + यत् = श्वेत्या, (ख) श्वित् + घञ् = श्वेत, श्वेत + यत् + टाप् = श्वेत्या ।
अर्थ - (१) श्वेतवर्णा वाली उषा का विशेषण।
'रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागात्'
ऋ. १.११३.२; साम. २.११००; नि. २.२०
श्वेतवर्णा दीप्ता एवं सूर्या रूपी वत्स वाली उषा आई ।
(२) शरीर की वह नाड़ी जिससे दुग्धवत् रस पाकाशय से छाती में आकर रक्त में मिलता है ।
'सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या'
ऋ. १०.७५.६

शेष - (१) छोटा से छोटा पदार्थ (२) शासन करने वाला
'वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषः'
ऋ. ६.२७.५
(३) शिष् + अच् = शेष । अपत्य, सन्तान, पिता की मृत्यु के बाद पुत्र ही शेष रह जाता

है ।

आधुनिक अर्थ - जो शेष हो, फल, अन्न, निष्कर्ष, मृत्यु, शेषनाग, जूठा अन्न

शेषण - वशीकरण

'यो अक्षाणां ग्लहनं शेषणञ्च'

अ. ७.१०९.५

शेषस् - (१) पुत्र,

'मा शेषसा मा तनसा'

ऋ. ५.७०.४

(२) धन

'स्व जन्मना शेषसा वावृधानम्'

ऋ. ७.१.१२.

श्यैतं साम - पशु

'तं श्यैतं च नौधसं च'

शैप्या - वीर्य ।

'अमुष्मै शैप्यावते'

अ. ७.११३.१

शैप्यावत् - शैप्या + वतुप् । (१) भोगसाधन युक्त, (२) वीर्यवान् पति

शैलूष - नर जो नाना भाव विकारों को दर्शाता हुआ गाता है ।

'गीताय शैलूनषम्'

वाज.सं. ३०.६; तै.ब्रा. ३.४.१.२०

शैशिरौमासौ - शिशिर ऋतु के दो मास

'शैशिरौ मासौ गोप्तारौ'

अ. १५.१ (४).१७

श्वैत्रेय - (१) श्वेत वर्ण के यश का इच्छुक राजा (२) सूर्य (३) मेघ

'उच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ'

ऋ. १.३३.१४

और श्वेतवर्ण के यश या धन देने वाली वसुन्धरा का इच्छुक राजा (श्वैत्रेयः) शत्रु के नेता गणों को पराजित करने के लिए (नृषाह्याय) खड़ा रहे ।

तो भी सूर्य या मेघ (श्वैत्रेयः) मनुष्यों को हित के लिए (नृषाह्याय) आकाश में विराजता है ।

शोक - (१) एक अंग विशेष में तापकारी ज्वर

'यदि शोको यदि वाभिशोकः'

अ. १.२५.३

(२) शुच् + अच् = शोक । अर्थ -शोक ।

'अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैः'

ऋ. १०.१०३.१२; अ. ३.२.५; साम. २.१२११; वाज.सं. १७.४४; नि. ९.३३.

(३) दुःख पीड़ा ।

शोच् - (१) तेज

'शोचा शोचिष्ठ दीदिहि विशेमयः'

ऋ. ८.६०.६

शोचत् - शुद्ध विचार करने वाला

'शोचते स्वाहा'

वाज.सं. ३९.११

शोचति - दीप्यति (चमकता है) । शुच् दीप्त्यर्थक धातु है ।

शोचिष् - शुच् (दीप्त्यर्थक) + इषच् = शोचिष् । अर्थ-दीप्ति, ज्वाला ।

'घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषा'

ऋ. १.१२७.१; अ. २०.६७.३; वाज.सं. १५.४७; का.सं. २६.११; ३९.१५

अग्नि अपनी ज्वाला से घृत से दीप्त आज्य के गिरे अल्पभाग को भी खा जाता है । -सा.

राजा घृत की दीप्ति से राज्य में तेजस्विता की कामना करता है (विभ्राष्टिम् अनुवष्टि) ।

शोचिष्केशः - (१) दीप्तिमय केशों या किरणों से युक्त अग्नि (२) दीप्ति युक्त तेजस्वी स्वरूप से युक्त

'शोचिष्केशो घृतनिर्णिक् पावकः'

ऋ. ३.१७.१; तै.ब्रा. १.२.१.११; आप.श्रौ.सू. ५.६.३

(३) शोचीषि केशाः रश्मयः दीप्तयः यस्य स सूर्य (सूर्य जिसकी रश्मियां ही केश या दीप्ति है) ।

शोचिष्ठः - (१) शुचि + इष्ठ = शोचिष्ठ । अत्यन्त दीप्तिमान् - अग्नि ।

'तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः'

ऋ. ५.२४.४; साम. २.४५९; वाज.सं. ३.२६; १५.४८; २५.४७; तै.सं. १.५.६.३; ४.४.४.८; मै.सं. १.५.३:६९.१०; का.सं. ७.१; श.ब्रा. २.३.४.३१; मा.श्रौ.सू. ६.२.२; कौ.सू. ६८.३१

(२) शुद्ध स्वरूप-दया.

शोचिष्मान् - (१) ज्वालाओं से युक्त अग्नि, (२)

तेजस्वी
'अग्निः शोचिष्माँ अतसा न्युष्णन्'
ऋ. २.४.७

शोण - (१) लाल रंग का, (२) अतिगति शील
'उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः'
ऋ. ५.३३.९
(३) तीव्र, (४) बुद्धिमान्,
'शोणा धृष्णू नृवाहसा'
ऋ. १.६.२; अ. २०.२६.५; ४७.११; ६९.१०; साम. २.८१९; वाज.सं. २३.६; तै.सं. ७.४.२०.१; मै.सं. ३.१६.३;१८५.७; तै.ब्रा. ३.९.४.३;

शोभस् - शोभा
'या इन्द्रेण सयावरीः
वृष्णा मदन्ति शोभसे'
ऋ. १.८४.१०; अ. २०.१०९.१; साम. १.४०९; मै.सं. ४.१४.१४:२३८.६
सूर्य के साथ रहने वाली किरणें (सयावरीः) जो वर्षा बरसाने वाली है, सूर्य की शोभा के लिए (शोभसे) प्रकाशित होती है।

शोभिष्ठ - शुभ् (शोभन्त) + इष्ठ = शोभिष्ठ।
(१) अत्यन्त शोभायमान, (२) सूर्य का विशेषण।
'विश्वेषां त्मना शोभिष्ठम्'
ऋ. ८.३.२१.
(सभी धनों में अत्यन्त शोभायमान)।

शोशुचत् - देदीप्यमान, चमकता हुआ
'अद्यौदुषाः शोशुचता रथेन'
ऋ. १.१२३.७

शोशुचानः - देदीप्यमान। यङन्त शुच् + शानच् = शोशुचाना

श्च्योयतति - स्रवति (स्रवता है, चूता है)।

श्रोण - (१) चरण आदि से हीन (२) श्रवण शील, (३) सहुश्रुत
'प्रान्धं श्रोणं च तारिषद्विवक्षसे'
ऋ. १०.२५.११
(४) श्रोता
'प्रेमन्धः ख्यन्निः श्रोणोभूत्'
ऋ. ८.७९.२
(४) बधिर, बहरा,
(५) उपदेश विहीन पुरुष
'प्रान्धं श्रोणः श्रावयन् सास्युक्थ्यः'
ऋ. २.१३.१२
(६) शोण, कान्तिमान, तेजस्वी (७) श्रोता -दया. (८) सबकी प्रार्थना सुनने वाला,
(९) श्रवणशील, बहुश्रुत
'प्रति श्रोण स्थाद् व्यनगचष्ट'
ऋ. २.१५.७
(१०) बधिर पुरुष।

श्रोणा - (१) श्रवण करने योग्य, (२) श्रवणीय प्रसिद्ध गुणों से युक्त (३) उत्तम भूमि (४) सूखी या सेचने योग्य पृथ्वी
'श्रोणामेक उदकं गाम वाजति'
ऋ. १.१६१.१०

श्रोणि - (१) कटिभाग।
'अंसौ ग्रीवाश्च श्रोणी'
वाज.सं. २०.८
(२) नितम्ब, चूतड़
'यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदात्'
ऋ. १०.१६३.४; अ. २०.९६.२०

श्रोणितः - श्रोणि + तसिल् = श्रोणितः
(१) कटिप्रदेश से
'छागस्य हविष आत्ताम् पार्श्वतः'
'श्रोणितः शितामतः'
वाज.सं. २१.४३
हे अश्विद्वय, छाग की हवि पंजरी से (पार्श्वतः) कटिप्रदेश से (श्रोणितः) और बाहुप्रदेश से (शितामतः) खावें।

श्रोणीप्रतोदी - स्त्रियों के संग दुर्व्यवहार करने वाला
'स्त्रीणां श्रोणिप्रतोदिनः'
अ. ८.६.१३

श्रोत्र - (१) कान से सुनने योग्य ब्रह्म ज्ञान, (२) कान
'सह श्रोत्रेण वर्चसा बलेन'
अ. १८.२.५९;६०,
(३) श्रवण शक्ति
श्रोत्रं कर्णयोः
अ. १९.६०.१; वै.सू. ३.१४

श्रोत्रपाः - श्रोत्रों का पालक

'चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे'
वाज.सं. २०.३४

श्रोता - श्रृणुत (सुनो)। बहुलं छन्दसि से शप् का लोप हो गया है। दीर्घ छान्दस है।

श्रोत्रिय - वेद का विद्वान् ब्राह्मण
'एष वा अतिथिर्यच्छ्रोत्रियः'
अ. ९.६ (२) ७

श्रोतु - (१) श्रृणोतु (सोवे) (२) श्रवण
'श्रोतु नः श्रोतिरातिः सुश्रोतुः
सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः।
ऋ. १.१२२.६
हमारे वचनों को उत्तम श्रवणशील पुरुष अर्थात् पिता, गुरु या उपदेशक (सु श्रोतुः) और कान देकर सुनने वाली उपदेशिका (श्रोतिरातिः) सुने (श्रोतु) जैसे जलों से (अद्भिः) सिन्धु उत्तम खेतों को सींच देता है उसी प्रकार हमारे हृदय क्षेत्रों को उपदेशामृत से सींचिए।

श्रोतुराति - (१) कान देकर सुनने वाली उपदेशिका-जं.दे.पा.
(२) श्रवणं रातिः दानं यस्य सः-दया.

श्रोमत - (१) उत्तम पुरुषों से श्रवण करने योग्य वचन, (२) श्रवणीय
'वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः
ऋ. ६.१९.१०
'केनो नु कं श्रोमतेन शुश्रुवे'
ऋ. ८.६६.९; अ. २०.९७.३
(३) प्रशंसा कीर्ति युक्त, (४) कीर्ति
'उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम्'
ऋ. १.१८२.७
(५) श्रवण करने योग्य आश्चर्यजनक कार्य। यह शब्द 'श्रु' धातु से बना है।
(६) श्रवणीय यशों से युक्त (धन)-सा.।
(७) श्रवणीयतम उपदेश-दया.।
'वंसीमहि वामं श्रोतमेभिः'
ऋ. ६.१९.१०
हम सुन्दर याचनीय या संभनीय एवं श्रवणीय गुणों से युक्त धन परस्पर बांटते हैं-सा.।
हम श्रवणीयतम उपदेशों के द्वारा (श्रोतमेभिः) प्रशंसनीय कर्म का सेवन करें (वामं वंसीमहि) - दया.

श्रोषमाण - उत्तम उपदेश, आज्ञा या ज्ञान श्रवण करता हुआ।
'वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणाः'
ऋ. ३.८.१०

श्लोक - (१) समस्त पदार्थों का दर्शन कराने वाला ज्ञानमय वेद।
'वि श्लोक एति पथ्येव सूरिः'
अ. १८.३.३९
(२) स्तुति वचन।
'ऋतस्य श्लोको बधिराततर्द'
ऋ. ४.२३.८; नि. १०.४१.
ऋतदेव का स्तुतिवचन बहरे कानों को छेद देता है।
(३) श्रु (सुनना) + कन् = श्लोक (गुण और र् का ल्) अर्थ है-स्तुति प्रशंसा गति जो श्रवणीय होता है।
'श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः'
ऋ. १०.९४.१; नि. ९.९
हे ऋत्विजो, इन्द्र के लिए श्रवणीय घोष आप करें।

श्लोककृत् - कीर्ति बढ़ाने वाला।
'श्लोककृन्मित्रतूर्याय स्वर्धी'
अ. ५.२०.७

श्लोकयन्त्र - श्लोक अर्थात् वेदमय ज्ञान से अपनों को नियन्त्रित और व्यवस्थित करने वाला
'श्लोकयन्त्रासो रभसस्य मन्तवः'
ऋ. ९.७३.६

श्लोक्य - वेद मन्त्रों तथा शास्त्र की व्याख्या करने में कुशल
'नमः श्लोक्याय चावसान्याय च'
वाज.सं. १६.३३; तै.सं. ४.५.६.१; का.सं. १७.१४

श्लकी - (१) स्तुति योग्य
'द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः'
ऋ. ८.९३.८; अ. २०.४७.२; १३७.१३; साम. २.५७२; मै.सं. २.१३.६ :१५५.१०; का.सं. ३९.१२; तै.ब्रा. १.८.३.
(२) कीर्तिमान

श्लोणा - लंगड़ी लूली गौ

'श्लोणया काटमर्दति'
अ. १२.४.३.

शौचद्रथः - (१) कान्ति युक्त रथ वाला सूर्य, (२) तेजस्वी, शुद्ध आत्मा वाला, (३) रमणीय
'या सुनीथे शौचद्रथे'
ऋ. ५.७९.२; साम. २.१०९१

शौरदेव्यः - शूर और विजिगीषु
'कर्णगृह्या मघवा शौरदेव्यः'
ऋ. ८.७०.१५

शौष्कल - (१) शोषण करने वाला, (२) सुखा डालने वाले उपायों में विज्ञ पुरुष।
'नड्वलाभ्यः शौष्कलम्'
वाज.सं. ३०.१६; तै.ब्रा. ३.४.१.१२.

शौष्कास्य - मुख का सूख जाना
'शौष्कास्यमनु वताम्'
अ. ११.९.२१

श्रौषट् - (१) हविर्दात्री-दया.। (२) श्रवण, (३) वेद का श्रवण-ज. दे.श.।
'अस्तु श्रौषट् पुरो अग्नि धिया दधे'
ऋ. १.१३९.१; साम. १.४६१
वेद का श्रवण हो। मैं अपने आगे कर्म और प्रज्ञा या धारण क्रिया से सहित अग्नि से या ज्ञानवान् ज्ञानमार्ग में आगे से चलने वाले आचार्य को उपदेष्टा आचार्य के रूप में स्थापित करूं।

श्रौत्रीशरद् - संवत्सर रूपी प्रजा पति का शरद् ऋतु ही श्रौत्र है अतः यह श्रौत्री शरद है।
'शरच्छौत्री'
वाज.सं. १३.५७; तै.सं. ४.३.२.२; मै.सं. २.७.१९; १०४.९; का.सं. १६.१९;श.ब्रा. ८.१.२.५

ष

षट् - षह् (मर्षण अर्थ में) + क्विप् = षट्। षट् पञ्च को अभिभूत कर आता है अतः वह षट् है।
अर्थ -छः।
'देवी षडुर्वीरुरु कृणोत'
ऋ. १०.१२८.५;
ऐ छः उर्वी देवियो, आप से हम धन आदि जो कुछ मांगें उसे आप विस्तीर्ण करें (नः उरु कृणोत)।

षट् उर्वी - (१) छः बड़ी शक्तियां (२) पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन आत्मा की छः बड़ी शक्तियां हैं।
(३) छः महान् दिव्य शक्तियां -द्यौ, पृथिवी, दिन, रात्रि, जल और ओषधि।
'दुह्रामुर्वीर्यथाबलम्'
अ. ३.२०.९
(४) छः विशाल चराचर लोक सृष्टि, (५) प्रकृति की छः विकृतियां, (६) छः बड़ी प्रजा संस्थाएं या राजा प्रकृतियां, (७) प्रकृति के पांच भूत, पांच विकृति और महत्तत्व, (८) पांच इन्द्रियां तन्मात्रा और मानस पक्ष की (९) राजा के स्व पक्ष की षट् प्रकृतियां, (१०) षट् गुण, (११) द्वादशः राजचक्र स्वपक्ष, पर पक्ष के छःछः सुहृदादि।
'अयं षडुर्वीरमिमीत धीरः'
ऋ. ६.४७.३
(१२) छः बड़ी शक्तियां -द्यौ, पृथिवी, आप, ओषधि-गण, उर्क, सूनृतावाणी अर्थात् सूर्य, भूमि जल, वनस्पति, अन्न और वाणी
'षडुर्वीरेकमिद् बृहत्'
ऋ. १०.१४.१६; अ. १८.२.६; का.सं. ४०.११; तै.आ. ६.५.३; आप.श्रौ.सू. १७.२१.८

षट् उर्वी देवीः - छःउर्वी देवियां, द्यौ, पृथिवी, अहः, रात्रि, अपः और औषधियां।
ऐ छः उर्वी देवियो, आप से हम जो कुछ भी मांगे उसे विस्तृत करें।
'देवीः षडुर्वीरुरु नः कृणोत'
ऋ. १०.१२८.५

षट् ऋषयः - (१) ज्ञानद्रष्टा कान, आंख और नाक के दो प्राण जो देवज कहलाते हैं। (२) छः ऋतुएं दो मासों की बनती हैं
'षडिद् यमा ऋषयो देवजा इति
ऋ. १.१६४.१५; अ. ९.९.१६; तै.आ. १.३.१; नि. १४.१९
(३) छः ऋषि

'षट् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे'
अ. ८.९.७

षट् त्रिंशत् चत्वारि – छत्तीस और चार अर्थात् चालीस मास।
वैदिक ज्योति में तीन वर्षों का भी गुण माना गया है। इस युग के छत्तीस मास होते हैं। सौर वर्ष के बराबर चान्द्र मासों को करने के लिए एक युग में लगभग चार चान्द्र मास और शामिल किए जाते हैं और तब चालीस मास होते हैं।
'षट् त्रिंशाश्च चतुरः कल्पयन्तः'
ऋ. १०.११४.६

षटपक्षा – छः पक्षों या कमरों वाली शाखा
'षट्पक्षा या निमीयते'
ऋ. ९.३.२१.

षट् याद् – छः चरणों वाला अग्नि
अग्निः षट् पादः तस्य पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः एव ओषधि वनस्पतय इमानि भूतानि पादाः
गो.ब्रा. ५.२.९
अग्नि षट्पाद है। इसके चरण पृथिवी, द्यौ, अन्तरिक्ष, ओषधि, वनस्पतियां और भूत हैं।
'द्विपाद्ध षट्पदो भूयो वि चक्रमे'
अ. १३.२.२७

षट् भाराः – (१) सबके भार अर्थात् पालक पोषक ऋतु, (२) विषयों को हरण करने और ज्ञानों के धारण साधन पात्र–इन्द्रियां और मन
'षड् भारां एको अचरन् बिभर्ति'
ऋ. ३.५६.२

षट् भूताः – छः भूत अर्थात् सत् पदार्थ
'षड् जाता भूता प्रथमजर्तस्य'
अ. ८.९.१६

षड् यमाः – (१) दो दो मासों बने ऋतु (२) छः जोड़े प्राण
'षडिद् यमा ऋषयो देवजा इति'
ऋ. १.१६४.१५; अ. ९.९.१६; तै.आ. १.३.१; नि. १४.१९
दो दो मास के बने ऋतुओं को ऋषि रूप से उत्पन्न बताते हैं (देवजा)।
(३) दो कान, दो नाक, दो आंखें, दो रसना और वाणी, दो हाथ और दो पांव भी छः यम हैं।

षट्योगः – (१) छः प्राणों के साथ योग करने वाला
'षड्योगं सीरमनु साम साम'
अ. ८.९.१६
(२) शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और मुमुक्षत्व
'षड् योगेभिरचर्कृषुः'
अ. ६.९१.१.

षट्रजांसि – (१) छः लोक, (२) मुख्य प्राण के सिवा छः गौण प्राण; (३) छः ऋतु
'वि. यस्तस्तम्भ षडिमा रजांसि'
ऋ. १.१६४.६; अ. ९.९.७
(४) तीन भूमि और तीन द्यौ (५) पांच इन्द्रिय और मन, (६) संवत्सर की छः ऋतुएं
(७) सत्य लोक को छोड़ भू आदि छः लोक

षड् रात्र – छः दिनों में समाप्त होने वाला यज्ञ
'षड्रात्रश्चोभयः सह'
अ. ११.६.११.

षट् विष्ठाः – (१) अध्यात्म यज्ञ के छः आश्रय–पांच प्राण और मन या आत्मा, (२) छः ऋतुएं संवत्सर के छः आश्रय हैं, (३) राष्ट्र के छः अमात्य
'षडस्य विष्ठाः शतमक्षराणि'
वाज.सं. २३.५८; वाज.सं. (का.) २३.५८; श.ब्रा. १३.५.२.१९

षट् विष्टिरः – (१) छः ऋतुएं, (२) छः विस्तृत दिशाएं, (३) द्यौ, पृथिवी, दिनरात्रि, आपः और औषधि (४) छः अमात्य
'षडस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृशः'
ऋ. २.१३.१०

षडक्ष – (१) छः ऋतु रूप (२) आंखों वाला संवत्सर (३) मन सहित छः इन्द्रियों वाला देह
'षडक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत्'
ऋ. १०.९९.६

षडक्षर – (१) सूर्य के छः अक्षय बल, (२) राजा के छः सामर्थ्य–सन्धि, विग्रह, यान, आसन संश्रय और द्वैधीभाव

षड्द्यावापृथिवी - छः प्रकार की द्यावापृथिवी ।
'षडाहुर्द्यावापृथिवीः षडुर्वीः '
अ. ८.९.१६

षडर - षट् + अर = षडर । छः ऋतुओं को संवत्सर के छः अर माने गए हैं और इसी रूप में संवत्सर की स्तुति की गई है । अतः ' षडर शब्द संवत्सर का वाचक हुआ ।

अर का अर्थ है चक्र का अर (spokes)
'पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं
दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं
सप्त चक्रे षडर आहुरर्पितम् '
ऋ. १.१६४.१२; अ. ९.९.१२; प्रश्न.उप. १.११.

हेमन्त और शिशिर को एक मानकर पांच ऋतु रूप पांच चरणों से युक्त (पञ्चपादम्) सबके पालक या उत्पादक (पितरम्) बारह महीनों की बारह आकृतियां रखने वाले (द्वादशाकृतिम्) जलयुक्त (पुरीषिणम्) संवत्सर को द्युलोक के परम अन्तरिक्ष रूपी स्थान में (दिवः परे अर्धे) स्थित आदित्य के निमित्त अर्पित कहा गया है (अर्पितम् आहुः) । पुनः ये ऊपर जो और सात सप्तर्षि हैं (अथ इमे अन्ये सप्त) या सप्त चक्र युक्त आदित्य हैं उस सर्वभूतों के द्रष्टा आदित्य को (विचक्षणम्) संवत्सर नामक छः अरों वाले चक्र में (षडरे चक्रे) अर्पित समझते हैं (अर्पितम् आहुः) । अर्थात् कुछ लोग आदित्य को दक्षिणायन उत्तरायण गतियों के कारण कालाधीन होने से संवत्सर के अधीन मानते हैं और कुछ संवत्सर को ही आदित्य के अधीन मानते हैं (अन्ये पुनः) ।

अन्य अर्थ - पांच ऋतुओं वाले पांच पादों से युक्त (पंच पादम्) बारह मासों के कारण बारह आकृतियों से युक्त (द्वादशाकृति) दिन के पिता संवत्सर को (दिवः पितरम्) दूसरे अर्ध भाग में (परे अर्धे) जल उत्पन्न करने वाला कहते हैं (पुरीषिणम् आहुः) और ये दूसरे विद्वान् (अथ इमे अन्ये) सब प्राणियों को आराम देने वाले (उपरे) अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र रूपी सात चक्रों वाले (सप्त चक्रं) तथा छः ऋतुओं के कारण छः अरों वाले संवत्सर में (षडरे) मनुष्य का निवास बतलाते हैं (विवक्षणम् अर्पितम् आहुः) ।

षडश्वाः - (१) पांच चक्षु आदि इन्द्रियां और छठा मन, (२) छः अश्व सैन्य के सेनापति ।
'षडश्वां आतिथिग्व
इन्द्रोते वधूमतः '
ऋ. ८.६८.१७

षडशीतय - (१) - छः अस्सी अर्थात् ४८० प्रलय में बचे रहने वाले दिव्य गुण पदार्थ, (२) सौर मण्डल में विचरने वाले ग्रह, उपग्रह धूमकेतु, तथा राशिचक्र के मुख्य नक्षत्र और ताराएं
'यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः '
अ. ११.३.२१.

षडह - षट् + अह । समस्त ब्रह्माण्ड, पुरुष देह
'षडु सामानि षडहं वहन्ति '
अ. ८.९.१६

षडुर्वी - (१) छः प्रकार की विशाल पृथिवी
'यडाहुर्दावापृथिवीः षडुर्वी '
अ. ८.९.१६
(२) छः बड़ी दिशाएं
'महयं षडुर्वीर्घृतमा वहन्तु '
अ. ९. २.११.

षड्वृषः - (१) छः प्राणों से युक्त आत्मा
'यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि '
अ. ५.१६.६

षण् - (धा.) । दान, देना, विभाग करना

षष्ठ - (१) षस् (वस्ति स्वपने) + क्त = षष्ठ (अर्थ-सर्वव्यापक, लीन, सर्वव्यापक निगूढ़ शक्ति)
'षष्ठात् पञ्चाधिनिर्मिता '
अ. ८.९.४
(२) छठा

षष्ठम् अहः - देवायतनं वैषष्टमहः-कौ. ब्रा. २३.५
'प्रजापत्यं वै षष्ठमहः-कौ.ब्रा. '
पुरुषो वै षष्ठमहः । अन्नं षष्ठमहः - कौ.ब्रा.
'षष्ठं अहः । देवों का प्राणों का, विद्वानों का मुक्तजीवों का आयतन अर्थात् आश्रय स्थान है । वह प्रजापति का रूप है । वह पुरुष परम

पुरुष है । वह सबका अन्त परम चरण धाम है । अर्थात् प्रलय काल में वही शेष है ।

'उदितो यन्त्यभि षष्ठमह्नः'

अ. ८.९.६

षष्टिः सहस्रानवतिः – छः हजार नब्बे पुरुषों का बना चक्रव्यूह

'षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम्'

अ. २०.१२७.१; आश्व.श्रौ.सू. ८.३.१०

षष्टि – साठ

'आ षष्ट्या सप्त्या सोमपेयम्'

ऋ. २.१८.५

षिञ् – धा.। बान्धना, भोजनकरना अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है । 'असिन्वत्' जिसका अर्थ -अच्छी तरह से नहीं खाता हुआ या 'बिना संचूर्ण किए' किया गया है ।

ष्कुञ् – व्युदसन (तंग करना, छकाना) ।

ष्टुक – ष्ट्यै (संघात अर्थ में) + हुक = ष्टुक । अर्थ है- (१) केशों के संघात -यास्क (२) जांघ -जांघ में भी मांस का संघात रहता है । stock शब्द का ष्टुक से साम्य विचारणीय है ।

ष्नु – प्रस्रवण अर्थ में । अंग्रेजी का snow शब्द 'ष्नु' धातु से ही निर्मित है, snow ((बर्फ) भी स्रवता है ।

षोड़शकला – इहैवान्तः शरीरे सोम्य

'स पुरुषो यस्मिन् एताः
षोड़श कलाः प्रभवन्ति-प्रश्नोपनिषद्'

(१) शरीर की सोलह कलाएं-प्राण, श्रद्धा, खं, वायु, ज्योति, आपः, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म , लोक और नाम । 'परिद्रष्टा आत्मा की ये १६ कलाएं उसके आश्रय पर हैं और उसी में लीन हो जाती हैं ।'

'इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः'

अ. ३.२९.१

षोड़शाक्षर – (१) ब्रह्मचारिणी का सोलह वर्षों का अखण्ड ब्रह्म चर्य, (२) राजा के सोलह सदस्य, (३) वेदवाणी की सोलह शक्तियां, (४) ब्रह्मशक्ति की सोलह कलाएं

'षाडेशाक्षरेण षोड़शं स्तोममुदजयत्'

वाज.सं. ९.३४

षोडशी – (१) षोडश नामक स्तोत्र वाला षोडशी याग

'षोडशी सप्तरात्रश्च'

अ. ११.७.११

(२) 'षोडशिन्' के प्रथम पुरुष एक वचन में रूप । सोलहों एकवचन में रूप । सोलहों कलाओं से सम्पन्न, (३) सोलहों पदाधिकारियों रूपी शक्तियों से युक्त राजा, (५) १६ महामात्यों से युक्त राजा

'इन्द्राय त्वा षोडाशिने'

वाज.सं. ८.३३

षोडशी सम्राट की पारिभाषा-

'यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति
य आविवेश भुवनानि विश्वा,
प्रजापतिः प्रजया संरराणः
त्रीणिं ज्योतींषि सचते स षोडशी'

वाज.सं. ८.३६; ३२.३; तै.ब्रा. ३.७.९.५; आप.श्रौ.सू. १४.२.१३

(७) सोलहों कलाओं से युक्त

(८) सोलह अमात्यों या राजाओं से युक्त राजपरिषद्

'षोडशी शर्म यच्छतु'

वाज.सं. २६.१०; वाज.सं. (का.) २८.११; तै.सं. १.४.४१.१; तै.आ. १०.१.१०; महा. ना.उप. २०.११. वाज.सं. २६.१०;

(९) प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और लोक ये १६ अंश और कलाएं समष्टि रूप से परमात्माओं और व्यष्टि रूप में जीवात्मा में विद्यमान होने से षोडशी हैं ।

षोढायुक्ता पञ्चपञ्चा – (१) छः छः लग कर भी पांच पांच हो जाने वाले,

(२) मन सहित पांच ज्ञानेन्द्रियां छः है किन्तु पांच ज्ञानेन्द्रियां ही ज्ञान करने के लिए हैं,

(३) छः ऋतु हैं, परन्तु हेमन्त शिखिर मिला देने से पांच ही रह जाते हैं,

(४) जोड़े जोड़े इन्द्रियां और पांच प्राण ।

'षोढा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति'

ऋ. ३.५५.१८

स

स - सर्वनाम । .अर्थ -स्व, अपना
'ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन् ऊधन् '
ऋ. १.१५२.६
अन्न के प्रिय दुग्धाभिलाषी बालक को (ब्रह्मप्रियम्),अपने स्तन पर (सत्मिन्, ऊधन्) उसको हृष्ट पुष्ट करती हैं (पीपयन्) ।

स्फ्य - सं. । शकट का स्थान space
'खलः पात्रं स्फ्या वंसावीषे अनूक्ये '.
अ. ११.३.९

स्म - (अ) । (१) प्रायः
'यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम् '
ऋ. २.१२.५; अ. २०.३४.५
(२) खलु, एक अव्यय (३) लट् लकार में 'स्म' जोड़ने पर अर्थ भूत काल में हो जाता है ।
(४) शीघ्र-दया.।

स्य - धा.। अर्थ- खोलना
'ईशानो वि ष्या दृतिम् '
अ. ७.१८.१; मै.सं. १.३.२६:३९.१२; का.सं. ११.९

स्व - सं.। धन
'काणया दीयते स्वम् '
अ. १२.४.३
(२) सर्वनाम । अपना
अरेपसा तन्वा नामभिः स्वैः । पाप रहित यथा संकल्प अपने अनेक नामों से तुम दोनों (अश्विद्वय) धन्य हुए ।
(३) श्रि + व = स्व । स्वं पुनः आश्रितं भवति (धन स्वामी के अभिमुख संगत होता है) । अर्थ-धन,
'आसिञ्च स्वजठरे मध्व ऊर्मिम् '
ऋ. ३.४७.१; वाज.सं. ७.३८; वाज.सं. (का.) २८.१०; तै.सं. १.४.१९.१; मै.सं. १.३.२२: ३८.२; का.सं. ४.९; नि. ४.८
तू अपने पेट में सोम रस का संघात आसिञ्चित कर ।

संकल्पकुल्मला - नाना संकल्प विकल्प में चिपकी हुई
'इषुं संकल्पकुल्मलाम् '
अ. ३.२५.२

स्वक्, स्वञ्च् - (१) अपने लिए ।
'शक्तिकानना स्वचम्
अ. २०.१३६.५
(२) उत्तम पूजा के योग्य
'रोहितास ऋज्वञ्चः स्वञ्चः '
ऋ. ४.६.९

स्रक्त्य - गतिशील, आगे बढ़ने वाला
'स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि '
अ. २.११.२

सक्मन् - यः सचति (जो सभी पदार्थों को सम्बद्ध करता है) । सच् + मनिन = सक्मन् । अर्थ परमेश्वर, अग्नि

सक्म्य - सचति संयुनक्ति यस्मिन् तत् सक्म तत्रभवम् सक्म्यम् '
- दया
(१) अन्न, (२) समवाय, (३) संगठन
'आ नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः'
ऋ. ३.३८.७

स्रक् - माला
'स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु '
ऋ. ५.५३.४

स्रक्व - (१) सर्जन करने योग्य देह (२) विराट् जगत्
'स्रक्वे द्रप्सस्य धमतः समस्वरन् '
ऋ. ९.७३.१; ऐ.ब्रा. १.२०.१; कौ.ब्रा. ८.५
(३) सृज् + व = स्रक्व । सृजन करने वाला, (४) देहावयव का घटक पदार्थ अन्न, फल आदि
'उप स्रक्वेषु बप्सतः '
ऋ. ८.७२.१५; साम. २.८३२
(१) प्राप्त उत्तम गृह-दया. (२) होंठ-ज.दे.।
(३) बना हुआ नगर
'उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप '
ऋ. ७.५५.२

सक्षणिः - (१) रचने वाला, (२) व्यापक
'उतस्य देवो भुवनस्य सक्षणिः '
ऋ. २.३१.४
(३) जीत लेने वाला

सक्षणी - द्वि.व.। एक साथ रहने वाले स्त्रीपुरुष
'प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी'
ऋ. ८.२२.१५

स्वक्षत्र - (१) जहां अपना ही बल है दूसरे के बल का भरोसा नहीं है। (२) स्वकीय क्षात्र तेज
'कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे
स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम्'
ऋ. ५.४८.१
हम सुख दायक, प्रियधाम, स्वकीय क्षात्र तेज, स्वकीय महान् यश के लिए उस नीति को समझें। दया.
हम सुखकारक प्रिय तथा जहां अपना ही बल है, दूसरे के बल का भरोसा नहीं उसके लिए जहां अपना ही यश है उस महान् विश्वे देव के स्थान के लिए याचना करते हैं।-सा.
(३) स्वयं ज्योति-सा.। जैसे-'स्वक्षत्रं मनः'

स्वक्षत्रम् - स्वयं बलसम्पन्न
'स्वक्षंत्र ते धृषन्मनः'
ऋ. ५.३५.४

सका - सा - (वह) चिड़िया
'सका जघास ते विषम्'
ऋ. १.१९१.११

स्रक्ति - (१) सृज्यमाना सेना-दया. (२) मालाओं के समान लम्बी और राष्ट्र को घेरने वाली शत्रु सेना
'अव स्रक्तीर्वेश्या वृश्चदिन्द्रः'
ऋ. ७.१८.१७

सक्थि - (१) जंघा, (२) समवाय शक्ति, संघ शक्ति
'भसन्मे अम्ब सक्थि मे'
ऋ. १०.८६.७; अ. २०.१२६.७
'सक्थ्या देदिश्यते नारी'
अ. २०.१३६.४
(३) सच् (सेचन एवं सेवन करना) + क्थिन् = सक्थि, जंघा।
सक्थिः सचते। आसक्तो अस्मिन् काय। सक्थि में ही यह काया आसक्त है।

सक्षित् - एक ही स्थान पर रहने वाला
'वि यद् रोहन्ति सक्षितः'
ऋ. ६.४४.६

सक्षितौ - द्वि.व.। साथ रहनें वाले माता-पिता या द्यावा पृथिवी।

सक्तु - (क) सच् + तुन् = सक्तु। जो सूक्ष्म होने के कारण सूक्त या संश्लिष्ट हो जाय एक दूसरे से सट जाय-वह सत्तू है और इसी से कठिनता से पाया जाता है (दुर्धावो भवति)।
(ख) प्रदीप ने षच् (सेचनार्थक) + तन् से सक्तु की व्युत्पत्ति की है। (ग) कस् (गति, शासन) + तन् = सक्तु (वर्ण विपर्यय से)। कंसतेः वा विपरीतस्य। सत्तू जल में घोलते ही विकसित हो जाता, बढ़ जाता है (विकसितो भवति)।
'सक्तुमिव तितउना पुनन्तः
यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत'
ऋ. १०.७१.२; नि. ४.१०
जिस प्रकार चलनी से सत्तू पवित्र करते हैं उसी प्रकार प्रकार जिसे यज्ञ या सभा में ध्यानवान् या धीमान् पुरुष प्रज्ञा या मन से शुद्ध वचन बोलते हैं।

सक्तुश्रीः - प्राप्त हुए अन्नादि पदार्थों (सक्तु) से मित्रवर्ग का आश्रय लेने वाला राजा (२) सत्तू की श्री वाला
'शुक्रः क्षीरश्रीर्मन्थी सक्तुश्रीः'
वाज.सं. ८.५७

सकृत् - अ.। एकबार
'सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो'
सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि'
ऋ. २.१६.८
पुनः-
'सकृद्ध द्यौरजायत'
ऋ. ६.४८.२२

सकृत्सू - (१) एक ही बार बहुत अन्नादि उत्पन्न करने में समर्थ,
(२) एक ही बार समस्त ज्ञान प्रकट करने वाला
'सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीम्'
ऋ. १०.७४.४; वाज.सं. ३३.२८

स्वःकेशी - आदित्य नामक केशी। आदित्य, अग्नि और वायु का भी नाम है।
'केशी विश्वं स्वर्दृशे'

ऋ. १०.१३६.१; नि. १२.२६
यह आदित्य केशी सब कुछ देखता है ।

संक्रोश - (१) एक दूसरे के प्रति बोला हुआ शब्द
(२) लम्बा लम्बा आह्वान, दीर्घ शब्द
'संक्रोशैः प्राणान्'
वाज.सं. २५.२

सख्यम् - सखि + यत् = सख्य । मित्रता ।
'देवानां सख्यमुप सेदिमा वयम्'
ऋ. १.८९.२; वाज.सं. २५.१५; मै.सं. ४.१४.२; २१७.९; नि. १२.३९
हम देवों की मित्रता प्राप्त करें । 'देवानाम् सख्यम्' का अर्थ 'देवानाम् सख्यम यत्र' अर्थात् रमणीय या देवलोक भी किया गया है ।

सखा - समानख्यानः सखा । समानेषु शास्त्रेषु कृतश्रमाः लब्ध-ज्ञानाः च (समान ख्यान वाले अर्थात् जिन्होंने समान शास्त्रों में श्रमकिया हो और ज्ञान प्राप्त किया हो वे सखा है) । अर्थ है-
(१) मित्र
'अत्रा सखायः सख्यानि जानते
प्रियं सखायं परिषस्वजाना'
ऋ. ६.७५.३; वाज.सं. २९.४०; तै.सं. ४.६.६.१; मै.सं ३.१६.३: १८५.१४; का.सं.(अश्व.) ६.१; नि. ९.१८
प्रिय सखा सदृश पति का आलिंगन करती हुई । ऋत्विज् । वेदों में ऋत्विज् के अर्थ में भी सखि शब्द का प्रयोग किय गया है ।
'हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु
यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः'
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिः
ओहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे'
ऋ. १०.७१.८
समान बुद्धि वाले ऋत्विज् (सखायः) जो मन्त्रों के अर्थ का तत्व समझने वाले हैं (ब्राह्मणाः) वे मन से भी दूर रहने वाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थों को जानने में (तष्टेषु मनसो जवेषु) हृदय से या बुद्धि द्वारा (हृदा) जिस प्रकार (यत्) परस्पर यंजन करते या संगति करते हैं (संयजन्ते) ऐसे ब्राह्मण मंत्र के अर्थ के व्याख्यान में निश्च (अत्र अह) उस अविद्वान् का अपनी विद्याओं या प्रवृत्ति से त्याग देते हैं (वेद्याभिः तं विजहुः) और उन में जो ब्रह्म ज्ञानी या निरुक्त शास्त्र के ज्ञाता हैं (ओह ब्राह्मणः) वे यथाकाम वेद के अर्थों में विचरण करते या प्रवृत्त होते हैं (विचरन्ति) ।
'ओह ब्राह्मणः' का अर्थ उह्यमान गुह्य विद्या का ज्ञाता है ।

सखायः - सखा रूप ऋत्विज् जो यज्ञ कराते हैं ।
'आ शेकुरित् सधमारं सखायः'
ऋ. ८.४.१३
इस मदान्वित् करने वाले यज्ञ को सखा रूप ऋत्विज् करते हैं ।

सख्या - मित्रों का सत्संग
'कदा भवन्ति सख्या गृहे ते'
ऋ. ४.३.४

सखित्व - मित्रता
'ईडे सखित्वं सुमतिं निकामः'
ऋ. ३.१.१५

सखित्वन - मित्रता
'सखित्वनाय वावशुः'
ऋ. ६.५१.१४

सखिवान् विष्णुः - (१) मित्रजनों से युक्त राजा, (२) शिष्य रूप मित्रों से युक्त आचार्य (३) उपासक रूप सुहृदों से युक्त परमेश्वर
'व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते'
ऋ. १.१५६.४; ऐ.ब्रा. १.३०.१८; कौ.ब्रा. ९.६

सखिविद् - मित्रों को प्राप्त कराने वाला
'सखिविदं सत्राजितम्'
वाज.सं. ११.८; तै.सं. ४.१.१.३; का.सं. १५.११; श.ब्रा. ६.३. १.२०.

सखीयत् - (१) मित्र का अभिलाषी आत्मा
'विभुर्विभावा सख आ सखीयते'
अ. १९.५२.२

सखीवन् - मित्र बनाने की इच्छा करता हुआ
'अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्'
ऋ. ३.३१.७

सगण - अपने सहकारी साथियों के सहित
'उरुक्षयाः सगणा मानुषासः'

अ. ७.७७.३

सगर्भ्य – सहोदर भाई

'अनु भ्राता सगर्भ्यः'

वाज.सं. ४.२०; ६.९; तै.सं. १.२.४.२; मै.सं. १.२.४:१३.६;१.२ .१५:२४.१५; ४.१३.४: २०३.९; का.सं. २.५; ३.५; १६.२१; ऐ.ब्रा. २.६.१२; श.ब्रा. ३.२.४.२०: ७.४.५; तै.ब्रा. ३.६.६.१; आश्व. श्रौ.सू. ३.३.१

स्वगा – (१) अपने हितैषी को प्राप्त होने वाला, (२) अनायास प्राप्त होने वाला

'स्वगेदं देवेभ्यो नमः'

वाज.सं. १८.५७; मै.सं. २.१२.३:१४७.४; का.सं. १८.१८

स्वगाकार – (१) स्वयं गान करने योग्य शंयुवाक नामक स्वस्ति वाचनकर्ता, (२) संवत्सर संवत्सरः स्वगाकारः

तै.ब्रा. २.१. ५

(३) राष्ट्र के समस्त ऐश्वर्य को सूर्यवत् दौरा लगाकर अपनाने वाला राजा

स्वगूर्ताः – (१) (ब.व.) । अर्थ (१) अपने बल से प्रेरित द्यावापृथिवी, (२) नाड़ियां और प्राणगण, (२) अपने सहयोगी बन्धु बान्धव मित्र जनों से उद्योगशील होकर

'द्यावा क्षामा सिन्धववश्च स्वगूर्ताः'

ऋ. १.१४०.१३.

(४) गुरी (उद्यमन अर्थ में) + क्त = गूर्त (निपातन से) । स्वयंगामिनी नदी का विशेषण ।

'उतेम वर्धन्नद्यः स्वगूर्ताः'

ऋ. १०.९५.७; नि. १०.४७

और इस पुरूरवा को स्वयं गामिनी नदियों ने घेर लिया ।

स्वगोपाः – (१) स्वयं अपने सामर्थ्य से रक्षित –गौ

'व्यथिरव्यथीः कृणुत स्वगोपा'

ऋ. १०.३१.१०

संक्रन्दनः – शत्रुओं को ललकारने वाला

'संक्रन्दमोऽनिमिष एक वीरः'

ऋ. १०.१०३.१; अ. १९.१३.२; साम. २.११९९; वाज.सं. १७.३३; तै.सं. ४.६.४.१; मै.सं. २.१०.४:१३५.१०; का.सं. १८.५

संकर्षन्ती – खींचती हुई, मचमचाती हुई

'संकर्षन्ती करूकरम्'

अ. ११.९.८

संकसुक – (१) नाश करने वाला लोभी जीव

'आरात् संकसुकाच्चर'

अ. ८.१.१२

(२) उत्तम शासक, (३) अग्नि, (४) दुष्टों का सन्तापक

'समिन्धते संकसुकं स्वस्तये'

अ. १२.२.११

संक्रम – सब तरफ फैल जाने में समर्थ

'संक्रमोऽसि संक्रमाय त्वा'

वाज.सं. १५.९; पंच.ब्रा० १.१०.१२; वै.सू. २७.२७

सङ्का – (१) संघ बनाकर रहने वाले

'इषुधिः संकाः पृतनाश्च सर्वाः'

ऋ. ६.७५.५; वाज.सं. २९.४२; तै.सं. ४.६.६.२; मै.सं. ३.१६.३; १८६.२; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. ९.१४

(२) समं सह कामन्ति शब्दायन्त इति सङ्का । संभूव शब्द कारिणः (एकत्र हो शब्द करने वाला)।

सम् + कै + क = सङ्क । यास्क के मत से सच् + कृ + ड, अथवा सम् + कृ + ड = संका । जहां योद्धा बिखरे रहते हैं या पदार्थ बिखरे रहते हैं । सम् + कृ + ड = संक ।

३) दुर्ग ने इसे संग्राम का विशेषण माना है ।

(४) साथ ही शब्द करने वाला –सा.

(५) युद्ध–दया.

'इषुधिः सङ्का पृतनाश्च सर्वाः
पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः'

ऋ. ६.७५.५

यह तूणीर (इषुधिः) पीठ में बांधे जाकर (पृष्ठे निनद्धः) बाणों को प्रेरित करता हुआ (सङ्काः) सभी सेनाओं को जीतता हुआ (सर्वाः च पृतनाः)–सा.।

पीठ पर बंधा हुआ, बाणों को छोड़ता हुआ (सङ्काः) और सेनाओं को (पृतनाः) को जीतता हुआ–दया.।

संक्रोशमाना – बड़े प्रकट शब्दों से पुकारती हुई
ऋतावरीरिव संक्रोशमानाः
ऋ. ४.१८.६

संख्याताः स्तोकाः – संख्या में परिमित जलबिन्दु या आप्तजन
संख्याता स्तोकाः पृथिवी सचन्ते
अ. १२.३.२८

सङ्गः- (१) संग्राम काल।
अभीके चिदुलोककृत् सङ्गे समत्सु वृत्रहा।
ऋ. १०.१३३.१; अ. २०.९५.२; साम. २.११५१; तै.सं. १.७.१३.५; मै.सं. ४.१२.४:१८९.८; तै.ब्रा. २.५.८.२
सामने आए संग्राम काल में (अभीके सङ्गे) तथा युद्धों में (समत्सु) अभिपूजित लोक कर्त्ता या स्थान कर्त्ता इन्द्र (लोककृत्) वृत्र का वध करने वाला होगा (वृत्रहा उ)।
(२) साथ, (३) मुकाबला (४) परस्पर मिलन

सङ्ग्राम – (१) संगमनात् वा संगरणात् वा संगतौ ग्रामौ इति वा (जहां योद्धा परस्पर संगत होते हैं या जहां शूरवीर ललकारते या स्पर्धा की ध्वनि करते हैं या इतरेतर पर विजय प्राप्त करने के लिए जहां मनुष्यों का ग्राम अर्थात् समूह जुटता है)। पृषोदरादिवत् सिद्ध।
संगम-संग्राम इसमें योद्धा एकत्रित होते हैं।
अथवा-सम् + गृ (शब्द करना) से संग्राम हुआ। संग्राम में कोलाहल होता है, अथवा 'संगत ग्राम' = संग्राम – इसमें दो ग्राम -दो देश या दो दल एकत्रित होते हैं।

सग्धिः – (१) सहजग्धि – सग्धि। पुत्र पौत्रों के साथ भोजन।
'इसमूर्जमन्या वक्षत्सग्धिं समीतमन्या'
वाज.सं. २८.१६; मै.सं. ४.१३.८;२१०.४; का.सं. १९.१३; तै.ब्रा. २.६.१०.३; ३.६.१३.१; नि.९.४.३
अन्न का निष्पादन करने वाली देवियाँ द्यौ और पृथिवी हैं (ऊर्जाहुती देव्यौ)। उन दोनों में एक (अन्या) अन्न रस तथा क्षीर आदि लाती है (अन्याइषम् ऊर्जम् आवक्षत्) और एक पुत्र पौत्रों के साथ भोजन (सग्धिम्) और बन्धु वर्गों के साथ दुग्धादि का पान लाती है (सपीतिम्)......।
(२) सहभोज, एक साथ मिल कर भोजन करना
सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे
वाज.सं. १८.९; तै.सं. ४.७.४.१; मै.सं. २.११.४:१४१.१७; का.सं. १८.९

स्वग्निः (स्वग्नयः) – (१) उत्तम गुणों से युक्त अग्नि को धारण करने वाली सूर्य की किरणें, (२) उत्तम अग्नि से युक्त पृथिवी आदि दिव्य पदार्थ वरण करने योग्य श्रेष्ठजन, (३) प्रतापी राजा स्वरूप अग्नि या नेताओं से युक्त विजिगीषु वीर पुरुष
स्वग्नयो हि वार्यं
देवासो दधिरे च नः
स्वग्नयो मनामहे।
ऋ. १.२६.८

संगच्छमाने – द्वि.व.। (१) द्यावापृथिवी का विशेषण, (२) एक दूसरे से सदा मिली हुई
संगच्छमाने युवती समन्ते
ऋ. १.१८५.५

संगथ – (१) संग्राम
भवा वाजस्य संगथे
ऋ. १.९१.१६; ९,३१,४; वाज.सं. १२.११२; तै.सं. ३.२.५.३; ४.२.७.४; मै.सं. २.७.१४:९६.७; का.सं. १६.१४; पंच.ब्रा. १.५.८; श.ब्रा. ७.३.१.४६; कौ.सू. ६८.१०
हे सोम, ऐश्वर्य और अन्नादि की प्राप्ति में (वाजस्य संगथे) सहायक हो (भव)।
आ ये वामस्य संगथे रयीणाम्
ऋ. २.३८.१०; मै.सं. ४.१४.६: २२४.३; तै.ब्रा. २.८.६.३
(४) संगम
सगथे च नदीनाम्
ऋ. ८.६.२८; साम. १.१४३; वाज.सं. २६.१५

संगम – (१) एकत्र होने का अवसर (२) यज्ञ आदि
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति संगमे
ऋ. १०.१०७.४; अ.१८.४.२९
(३) दो वस्तुओं के मिलने का स्थान।
इममपां संगमे सूर्यस्य
शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति'
ऋ. १०.१२३.१
इस 'वेन नामक मध्यम स्थानीय देव अर्थात् विद्युत् को (इमम्) अन्तरिक्ष, जलों तथा सूर्य के संगम स्थान में (अपां सूर्यस्य संगमे) मेधावी विप्र प्रज्ञापूर्ण स्तुतियों से (मतिभिः) शिशु के सदृश स्तुति करते हैं (शिशुं न रिहन्ति)।

(३) अन्तरिक्ष । यहीं पर अप् तथा सूर्य का समागम स्थान है ।
(४) संग्राम
त्वया वयं तान् वनुयाम संगमे
ऋ. १०.३८.३

संगमनः - (१) सब को एक साथ मिलाने वाला
रायो बुध्नः संगमनो वसूनाम्
ऋ. १.९६.६; १०.१३९.३
जो समस्त ऐश्वर्यों का आश्रय, समस्त वास करने वाले जीवों और राष्ट्रवासियों को एक साथ मिलाने वाला है ।
(२) सम्यक् प्रकार से पहुंचाने वाला (३) यम का विशेषण ।
यम प्राणियों को अपने कर्मानुसार स्वर्ग नरक पहुंचाता है ।
वैवस्वतं संगमनं जनानाम्
ऋ. १०.१४.१; अ. १८.१.४९; 3.13; मै.सं. ४.१४.१६: २४३.७: तै.आ. ६.१.१; नि. १०.२०.

संगमनी - स्त्री. । (१) प्राप्त कराने वाली
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्
ऋ. १०.१२५.३; अ. ४.३०.२

संगर - (१) प्रतिज्ञा ।
यद्दृणं संगरो देवतासु
अ. ६.११९.२

संगव - (१) संगच्छन्ति गावो यस्मिन् सायंकाले (गौवों का दोहन काल) (२) किरणों के प्राप्त होने का सायं काल
उता यातं संगवे प्रातरह्नः
ऋ. ५.७६.३
(३) मध्याह्न और प्रातः काल के बीच का सूर्य
संगवः प्र स्तौति
अ. ९.६ (५) ४

संग्रहणी - द्वि.व. । विशेषण ।
उत्तम रीति से धारण किए हुए
संग्रहणी बभूवथुः
अ. १९.५८.३

संग्रहीता - कर आदि का संग्रह करने वाला तहसीलदार
संग्रहीतृभ्यश्च वो नमः
वाज.सं. १६.२६; तै.सं. ४.५.४.२; मै.सं. २.९.४: 1२४.२; का.सं. १७.१३

स्वङ्गा - सु + अंगा । उत्तम (अंगों वाले) स्त्री पुरुष वर्ग (२) घोड़े
हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा
ऋ. ३.४३.४

संगीः - उत्तम वाणी, आज्ञा, प्रतिज्ञा
सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरम्
ऋ. ९.८६.१६; अ. १८.४.६०; साम. १.५५७; २.५०२

स्वंगुरा - सुन्दर अंगुलियों वाली
किं सुबाहो स्वङ्गुरे
ऋ. १०.८६.८; अ. २०.१२६.८

स्वंगुरी - सु + अंगुरीः ।
(१) सुन्दर अङ्गुलियों वाला (२) सुन्दर साधनों वाला (३) उत्तम प्रकाश वान् किरणों से संयुक्त सूर्य, (४) कुशल शिल्पी
यत् पृथिव्या वरिमन्ना स्वंगुरिः
ऋ. ४.५४.४
(५) सुन्दर अंगों वाला (६) अवयव अवयव में दीप्तिवाली प्रकृति ।
या सुबाहुः स्वंगुरिः
ऋ. २.३२.७; अ. ७.४६.२; का.सं. १३.१६

संगृ - प्रतिज्ञा करना
अदास्यन्नग्न उत संगृणामि
अ. ६.११९.१

संगृभ्णाः - संगृह्णासि, परस्परम् अधरोत्तर भावेन संयोजितं करोषि (तू संग्रह या संगृहीत करता है) ।
संग्रह किया, धारण किया ।
यत् संगृभ्णा मघवन् काशिरित् ते
ऋ. ३.३०.५; नि. ६.१; ७.६
हे मघवन् जो तू ने द्यौ तथा पृथ्वी को धारण किया है यह स्पष्ट ही तेरी मुट्ठी की महानता का द्योतक है ।

संगृभीता - संग्रह करने वाला
स. दक्षिणे संगृभीता कृतानि
ऋ. १.१००.९
वह दाहिने हाथ से युद्ध में प्राप्त ऐश्वर्यों को अच्छी प्रकार संग्रह करने वाला हो ।

संघात - शत्रु-समूह
त्वया वयं संघातं संघातं जेष्म
वाज.सं. १.१६; मै.सं. १.१.६:३.१४; ४:१.६: ८.१३; श.ब्रा. १.१.४.१८

संचरेण्य - सम् + चर + एण्य = संचरेण्य । अभिसंचारी अभितः संचरणशील ।

संचिकित्वान् - (१) सम्यक् प्रकार से द्युलोक एवं अन्तरिक्ष को जानने वाला-अग्नि-सा. । सर्वज्ञ परमात्मा-दया.

उभे अन्ता रोदसी संचिकित्वान्

ऋ. ४.७.८

अग्नि, तू द्यौ और पृथिवी तथा अन्तरिक्ष का सम्यक् ज्ञाता है-सा. । हे परमात्मा, तू द्यौ और पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष का ज्ञाता है अतः सर्वज्ञ है-दया.।

संजग्मानः - (१) संगमन करता हुआ, साथ साथ चलता हुआ (२) संगत

इन्द्रेण सं हि दृक्षसे
संजग्मानो अबिभ्युषा
मन्दू समानवर्चसाः

ऋ. १.६.७; अ.२०.४०.१; ७०.३; साम. २.२००; नि. ४.१२

संजभार - उपसंहरति (उप संहरण करता है) खींच लेता है । यहां पर लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग हुआ है ।

(२) खींच लिया ।

मध्या कर्तोर्विततं सं जभार

ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७; मै.सं. ४.१०.२: १४७.१; तै.ब्रा. २.८.७.१; नि. ४.११

सूर्य ने किए जाते हुए कर्मों के मध्य में अपने विस्तृत रश्मि जात को खींच लिया ।

संजय - जय लाभ करने में समर्थ

ओजस्वान् संजयो मणिः

अ. ८.५.१६

संजयामि - एक ही साथ सम्यक् प्रकार से जीतता हूं ।

अहं धनानि सं जयामिशश्वतः

ऋ १०.४८.१; ऐ.ब्रा. ५.२१.६

मैं इन्द्र शत्रुओं के प्रचुर धनों को (शश्वतः धनानि) एक ही साथ सम्यक् प्रकार से जीतता हूं (सं जयामि) ।

संजानानः - (१) अच्छी प्रकार जानने वाला ।

(२) सम्यक् ज्ञान से सम्पन्न

संजानानाः संमनसः सयोनयः

अ. ७.१९.१

संजग्मानः - संगति लाभ करता हुआ

संजग्मानो अबिभ्युषा

ऋ. १.६.७; अ. २०.४०.१; ७०.३; साम. २.२००; नि. ४.१२.

संजामाना - परस्पर प्रेमभाव से सत्संग करने वाली -प्रजा

संज्ञान - मेल मिलाप, उत्तम सम्मति, एकमति

संज्ञानं नः स्वेभिः

अ. ७.५२..१

संज्ञानम् - (१) जीवों का सम्यक् ज्ञान को प्राप्त करना

संज्ञानं यत् परायणम्

ऋ. १०.१९.४

(२) समस्त प्रजा को ज्ञान देने वाला ।

संज्ञानमसि कामधरणम्

वाज.सं. १२.४६; तै.सं. ४.२.४.१; मै.सं. २..७.११: ८९.६; का.सं. १६.११; श.ब्रा. ७.१.१.८; तै.ब्रा. १.२.१.१७

(३) सम्यक् सत्य यथार्थ ज्ञान

संज्ञानमस्तु मेऽमुना

वाज.सं. २६.१; वाज.सं. (का.) २८.२

(४) ज्ञान की अच्छी प्रकार से प्राप्ति, (५) भली प्रकार काम चेष्टा को जगाना -दया.

संज्ञानाय स्मर कारीम्

वाज.सं. ३०.९; तै.ब्रा. ३.४.१.६

संजिगीवान् - अच्छी प्रकार विजय करने वाला

पुरो विश्वाः सौभगा संजिगीवान्

ऋ. ३.१५.४

संजितः - विजय करने वाला

इन्द्रो वृत्रस्य संजितो धनानाम्

ऋ. ५.४२.५

संजीव - भली प्रकार जीवनप्रद जीवन को और भी अधिक बढ़ाने में समर्थ

संजीवास्थ सं जीव्यासम्

अ. १९.६९.१

सच - सेवा करना, रखना, सचना सींचना

अग्निं सचन्ता विद्युतो न शुक्राः

ऋ. ३.१.१४

सचः - (१) आश्रित

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचां

ऋ. १०.२३.४; अ. २०.७३.५

(२) मनुष्यों का संघ
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ
अन्यैरेनान् कन्यानामभिः स्परत्
ऋ. १.१६.१.५
अन्य अन्य प्रकार के शत्रुपक्षों को दबाने के साधनों को भी (अन्या नामानि) करते हैं (कृण्वते) और प्रजापालक राजा की शक्ति या उत्तम राज्य व्यवस्थापक सभा (कन्या) नाना वश करने के उपायों से (नाना नामभिः) इन संघ बनाकर मिले हुए मनुष्यों को (सचान्) पाले पोसें, प्रसन्न करें और आगे बढ़ावें (स्मरंत्) ।

संचक्ष् - (१) अच्छी प्रकार उपदेश करना, अच्छी प्रकार देखना । ज्ञान करना, सम् + चक्ष् + क्विप्
महि शविष्ठ नस्कृधि संचक्षे भुजे अस्यै
ऋ. १.१२७.११
हे बलवानों में सबसे अधिक बलवान् (शविष्ठ), तू अच्छी प्रकार से उपदेश करने, देखने, और ज्ञान करने के लिए (संचक्षे) इस प्रजा को (अस्यै) पालन और भोग करने के लिए हमें...

सचत - सेवध्वम् (सेवन करो) । 'सच् ' धातु सेवन या सेचन अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

सचंते - सेवा करता है । 'सच' धातु सेवा करना या सेचना अर्थ में प्रयुक्त है ।

सचथ - सं. । अर्थ - (१) सेवा -ज.दे.श. (२) प्राप्त सम्बन्ध - दया. । जिससे सम्बन्ध हो गया हो ।
आ यो विवाय सचथाय दैव्यः
ऋ. १.१५६.५

सचन - (१) परस्पर आश्रित, (२) एक दूसरे के सब अंगों से पूर्ण पतिपत्नी, (३) सर्वैः सेनाङ्गैं रथाङ्गैः समवेतः

सचथ्य - सचथे भवः- दया. । समवाय का उत्तम नेता
सचेमहि सचथ्यैः
ऋ. ५.५०.२

सचनस्यमाना - सम्पर्क में रखना चाहती हुई
माता बिभर्ति सचनस्यमाना
ऋ. १०.४.३

सचनाः - (१) चनसा अन्नादिसमृद्धिसंहितः (चना, अन्न आदि समृद्धि से युक्त)
अग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना
महोरायः सुचेतुना
ऋ. १.१२७.११
(२) सच् + ल्युट् + टाप् = सचना । अर्थ -आसक्ति, प्रेम ।

सचनावान् - सचना + वतुप् ।
आसक्ति और प्रेम से युक्त स्त्री पुरुष या गृहस्थ रूपी रथ
सचनावन्तं सुमतिभिः सोभरे
ऋ. ८.२२.२

सचन्ताम् - सेवन्ताम् (सेवन करें) ।

सचन्ते - (१) प्राप्त करते हैं । 'सच्' धातु का 'प्राप्त करना' अर्थ में भी प्रयोग हुआ है ।
हविर्भिरिके स्वरितः सचन्ते
ऋ.खि. १०.१०६.१; नि. १.११
कुछ इस भूलोक से हवि आदि द्वारा स्वर्ग प्राप्त करते हैं ।
(२) सेवन्ते (सेवा करते हैं) 'सच धातु सेवार्थक भी है । हिन्दी में 'सचना' किसी वस्तु को यत्नपूर्वक रखने का नाम है ।
यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते
ऋ. १.५९.६; नि. ७.२३
जिस वैश्वानर अग्नि या विद्युत् को वर्षा चाहने वाले सेवते हैं ।

सचमानः - सुसम्बद्ध
तवोतिभिः सचमाना अरिष्टाः
ऋ. ५.४२.८

सचस्व - (१) कार्यकर ।
सचस्व नः स्वस्तये
ऋ. १.१.९; वाज.सं. ३.२४; तै.सं. १.५.६.२; मै.सं. १.५.३: ६९.८; का.सं. ७.१.८; श.ब्रा. २.३.४.३०; तै.आ. ६.१२.१; नि. ३.२१.
(२) सेवस्व (सेवा कर) ।

सच्छन्दा - (१) छन्द, गति और क्रिया वाली वाणी (२) विशेष साधननिष्ट
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः
वाज.सं. २३.३४

सचा - साथ ।
अधा चिदिन्द्र मे सचा

ऋ. ८.९२.२९; अ. २०.६०.२; साम. २.१७५
यदिन्निन्द्रं वृषणं सचा सुते
सखायं कृणवामहै
ऋ. ८.६१.११
जिस कारण से यहां हम मनोरथ पूर्ण करने वाले तथा वर्षा बिरसाने वाले इन्द्र को सोमरस तैयार होने पर इस रस के साथ सखा बनाते हैं।

सचानः – मिलता हुआ।
हन्नृजीविन् विष्णुना सचानः
ऋ. ६.२०.२

सचाभुवा – (१) सदा एक दूसरे के साथ रहने वाले अश्विद्वय–स्त्री पुरुष।
सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा
ऋ. १.३४.११; १५७.४; वाज.सं. ३४.४७
(२) द्वि.व.। 'सचाभूः' का द्वि.वचन 'सचाभुवा' है। अर्थ है–साथ साथ उत्पन्न (३) द्यावापृथिवी का विशेषण, (४) अनुकूल दिन का विशेषण ज.दे.श.।

सचाभूः – (१) परस्पर साथमिल कर उत्पन्न होने वाला, (२) अन्तरात्मा के साथ सदा अनुभूत होने वाला नित्य सुखरूप, (३) सदा साथ विद्यमान रहने वाला।
आविष्करिक्रद् वृषणं सचाभुवम्
ऋ. १.१३१.३; अ. २०.७२.२; ७५.१
(४) समवाय बनाकर रहने वाला
आ विष्णोः सचाभुवः
ऋ. ८.३१.१०

सचावहै – सेवावहे (हम दोनों सेवा करते हैं)। 'सच्' (सेवानार्थक धातु) के लृट् उत्तम पुरुष द्वि.व. का रूप।

सचिविद् – साथी को पहचानने वाला मित्र
यस्तित्याज सचिविदं सखायम्
ऋ. १०.७१.६; ऐ.आ. ३.२.४.३; तै.आ. १.३.१; २.१५.१.

सचेतसा द्यावापृथिवी – (१) समान चित्त वाले द्यौ और पृथिवी (२) समान चित्त वाले शास्य और शासक वर्ग
तमस्य द्यावा पृथिवी सचेतसा
विश्वेभिर्देवैरनु शुष्ममावतम्
ऋ. १०.११३.१; ऐ.ब्रा. ५.१८.१६; कौ.ब्रा. २६.१२

सचेताः – (१) ज्ञानवान्, (२) तत् समान चित्त वाला
सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति
ऋ. ८.५८.१

सचेते – सन्तुष्ट करते हैं।
'सचेते अनह्वाम्'
ऋ. २.४१.६; साम. २.२६२
दोनों जल बरसाने वाले अदिति के पुत्र अकुटिल यजमान को दान से तृप्त करते हैं।

संजया – उत्तम जय करने वाली
उताहमस्मि संजया
ऋ. १०.१५९.३; आप.मं.पा. १.१६.३

संजुर्भुराणः – पालन करता हुआ
संजर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभम्
ऋ. ५.४४.५

स्वज – स्व + ज। स्वतः उत्पन्न, स्वयम्भू, (२) स्वयं अपने अमित सामर्थ्य से बना
उदीच्यै त्वा दिशे सोमायाधिपतये
स्वजाय रक्षित्रेऽशन्या इषुमत्यै
अ. १२.३.५८
(३) सूर्य की एक जाति
उभयोः स्वजस्य च
अ. १०.४.१०
स्वज इवाभिष्ठितो दश
अ. ५.१४.१०
पुनः स्वम्भू के अर्थ में–
स्वजो रक्षिता
अ. ३.२७.४; मै.सं. २.१३.२१: १६७.३; आप.मं.पा. २.१७.१६

सजात – (१) एक वंश, पद, समाज या कुल में उत्पन्न (२) अपने गोत्र का (३) समान बलवान
सजातो यश्च निष्ट्यः
अ. ३.३.६

सजातवनिः – सजात अर्थात् अपने समान वीर्यवान् पुरुषों को वृत्ति देने वाला।
ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि
संजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय
वाज.सं. १.१७

सजात्यम् – (१) समान + जाति + ष्यञ् = सजात्य। अर्थ–समान जाति का होना
आस्ति हि वः सजात्यं रिशादसः
ऋ. ८.२७.१०; नि. ६.१४
आप लोगों की समान जाति है।

(२) पुत्र के समान

युष्ये इद् वो ष्मसि सजात्ये

ऋ. ८.१८.१९

स्वजा - (१) अपने ही से उत्पन्न या प्रकट होने वाली, उषा, (२) अपने सामर्थ्य से प्रकट होने वाली, अपने प्रभु को स्वयं चुनने वाली प्रजा

अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्राम्

ऋ. १.१२१.२

महान् शक्तिवाला सूर्य (महिषः) जिस प्रकार अपने ही से उत्पन्न या प्रकट होने वाली वरण करने योग्य कन्या के समान (व्राम्) उषा को (स्वजाम्) प्रकाशित करता है। और उसके बाद स्वयं भी प्रकाशित होता है (अनुचक्षत)। इसी प्रकार पृथ्वी के विशाल राज्य का भोक्ता नृपति भी अपने सामर्थ्य या प्रभुत्व से प्रकट होने वाला अपने प्रभु को स्वयं चुनने वाली प्रजा को अपने अनुकूल देखें (अनुचक्षत)।

(३) पु.,ब.व.। मरुतों का विशेषण, स्वयं बल, ऐश्वर्य और आत्मसामर्थ्य से संसार में प्रकट एवं प्रसिद्ध मरुत् या सैनिक।

वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवसः

ऋ. १.१६८.२

सजित्वरी - (१) एकत्र ही रोगों को जीतने वाली औषधि।

अश्वर इव सजित्वरीः
वीरुधः पारयिष्णवः

ऋ. १०.९७.३;

हे ओषधियो, उत्तम सैनिकों के साथ हो घोड़ियों के सदृश तुम एकत्र हो रोगों को जीतने वाली तथा पुरुषों को रोगों से पार लगाने वाली हो।

(२) जीतने वाली

सजित्वा-(सजित्वन्) - (१) समस्त शत्रुओं को जीतने वाला

सजित्वानं सदासहम्

ऋ. १.८.१; अ. २०.७०.१७; साम. १.१२९; तै.सं. ३.४.११.३; मै. सं. ४.१२.३:१८४.१३; का.सं. ८.१७; तै.ब्रा. ३.५.७.४.

सजित्वान् - जि + क्वनिप् = जित्वान्। सदा शत्रुओं पर विजय करने वाला।

सजित्वाना - द्वि.व.। (१) समान रूप से जितेन्द्रिय-इन्द्राग्नी (२) विजयशील वीरों से युक्त।

सजित्वाना पराजिता

ऋ. ३.१२.४; साम. २.१०५२

(३) प्राण, अपान, (४) आत्मा और अन्तःकरण, (५) परमात्मा और जीवात्मा, (६) राजा और सेनापति, (७) गुरु और शिष्य

सजूः - (१) जीवमात्र की सहायक समान रूप से सबको प्रेरणा देने वाली ईश्वरीय शक्ति।

सजूर्नाव स्ववशसं सचायोः

ऋ. १०.१०५.९

(२) सहजोषणा, सहजुषमाणः (साथ आनन्द लेता हुआ) (३) प्रसन्नता पूर्वक।

स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैः
दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून्

ऋ. ६.४७.२९; अ. ६.१२६.१; वाज.सं. २९.५५; तै.सं. ४.६.६.६; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. ९.१३

हे दुन्दुभि, इन्द्र तथा देवों के साथ प्रसन्नतापूर्वक दूर से दूर शत्रुओं को भगा दे।

(४) संयुक्त।

(५) साथ में प्रीतिपूर्वक रहने वाला

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः

वाज.सं. १४.७; तै.सं. ४.३.४.३; मै.सं. २.८.१:१०७.९; १०,११,१२; का.सं. १७.१; श.ब्रा. ८.२.२.८; आश्व.गृ.सू. २.२.४; कौ.सू. ७४.१५.

स्वजेन्य - स्वयं उत्पन्न किया गया, स्व बाहुबल से विजित

अभीमह स्वजेन्यम्
भूमा पृष्ठेव रुरुहुः

ऋ. ५.७.५

सजोषसः, सजोषस् - सहप्रीयमाणः, समान प्रीतिः सजोषा (समान प्रेम रखने वाला)। बहुवचन में 'सजोषसः' रूप है। अर्थ समान प्रेम रखने वाले मरुद्गण -सा.।(२) सबके साथ मित्रवत् रहने वाले मनुष्य - दया.।

अधं स्मा नो अरमतिं सजोषसः
चक्षुरिव यन्त मनु नेषथा सुगम्

ऋ. ५.५४.६

और हे हममें समान स्नेह रखने वाले मरुत् (सजोषसः), आप इस लोक से उस लोक में जाते हुए (यन्तम्) पर्याप्त मति यजमान को (अरमतिम्) शोभनमार्ग बताओ (सुगम्

अनुनेषथाः) जैसे आंखें राह बतलाने में अनुग्रह करती हैं (चक्षुःइव)-सा. ।
अन्य अर्थ-और हे मनुष्यो, वेदाध्ययन के बाद, सबके मित्र बनें (सजोषसः) विद्या के लिए प्राप्त हुए हमारे उद्योगी पुत्रों को (यन्तम् अरमतिम्) चक्षु के समान सुमार्गदर्शक ज्ञान बताइए । -दया.

सञ्चर - (१) भृत्य, अनुचर
उक्ताः संचराः
वाज.सं. २४.१५;१७,१९

संचरण - (१) चलना, समान पद पर आचरण करना (२) साथ मिलकर धर्मानुष्ठान करना (३) भ्रमण, यात्रा, परदेश गमन
समुद्रं न संचरने सनिष्यवः
ऋ. १.५६.२; ऋ. ४.५५.६
जैसे उत्तम रीति से भोगने योग्य ऐश्वर्य को चाहने वाले धनाभिलाषी जन (सनिष्यवः) परदेश में जाने के लिए (संचरणे) समुद्र का आश्रय लेते हैं (समुद्रं न) ।

सञ्चरणी - (१) अच्छी प्रकार चलने योग्य मार्ग, (२) सुख से खाने योग्य
गवामिव स्रुतयः सञ्चरणीः
ऋ. ६.२४.४

स्वञ्चाः - (१) उत्तम रीति से पूजनीय
आजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वाञ्चाः
ऋ. ५.३७.१; नि. ५.७
(२) सु + अञ्च् + असुन् = सु अञ्चनः । अर्थ है-
सुगमन, सुन्दर गमन वाला । 'अञ्च्' धातु गमनार्थक है । (३) भली प्रकार ले जाने वाला

सञ्चरेण्यम् - संचारि, संचरणः शील, संचरण करने वाली । अभि + सम् + चर + एण्य = अभिसंचरेण्य ।

सञ्जित - विजय प्राप्त करने वाला पुरुष
घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम्
ऋ. ३.३०.२२;अ. २०.११.११;साम. १.३२९;का.सं. २१.१४; तै. ब्रा. २.४.४.३

सञ्चृत - (१) प्रकाश से युक्त, (२) बद्ध जीव
कृण्वन् त्सञ्चृतं विचृतमभिष्टये
ऋ. ९.८४.२

स्पट् - 'स्पश्' के प्र पु.ए.व. का रूप । अर्थ-(१) प्रकाशित करता हुआ
विश्वा इदुस्राः स्पडुदेति सूर्यः
ऋ. १०.३५.८
(२) सर्वद्रष्टा, सर्वाध्यक्ष
प्र वः स्पडक्रन् त्सुविताय
ऋ. ५.५९.१; कौ.ब्रा. २१.३
इन्द्रः स्पडुत वृत्रहा
ऋ. ८.९१.१५

सत् - (१) बलवान् पुरुष, (२) पदार्थ
सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूः
ऋ. ३.३१.८
(३) जो है, वर्तमान है, वह सत् है ।
असतः सदजायत
ऋ. १०.७२.३
(४) सन्त
नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा
ऋ. १०.६७.१०; अ. २०.९१.१०; मै.सं. ४.१२.१: १७.८.२
(५) दान करने वाला
अनुद्रे चिद्यो धृषता वरं सते
ऋ. १०.११५.६
(६) व्यक्त संसार, (७) निरन्तर एक रस रहने वाला विद्यमान सत्
(८) व्यक्त महत् तत्व
असति सत् प्रतिष्ठितम्
अ. १७.१.१९
(९) राज्य की सदाचार व्यवस्था ।
सदुत्तरेण
वाज.सं. २५.२; तै.सं. ५.७.१२.१; मै.सं. ३.१५.२: १७८.३; का.शं.(अश्व.) १३.२
(१०) संसद् राजसभा
मुखं सदस्य शिर इत् सतेन
वाज.सं. १९.८८; मै.सं. ३.११.९; १५४.२; का.सं. ३८.३; तै. ब्रा. २.६.४.४

सत - (१) बेंत का बना पात्र, (२) संभाग करना, न्यायपूर्वक सब को उचित भाग देना ।
सतेन द्रोणकलशम्
वाज.सं. १९.२७
(३) तिरः सतः इति प्राप्तस्य
तिरः तीर्णः भवति । सतः संसृतं भवति ।
(अर्थात् तिर और सत् प्राप्त अर्थ के वाचक

हैं) ।

'तिर' का अर्थ तीर्ण' और 'सत' का अर्थ 'संसृत' है । जो एक होकर चलता है वह संसृत है । सम् + सृ + क्त = संसृत ।

अर्थ-प्राप्तात् दूरात् प्रदेशात् (दूर प्रदेश से) ।

सतः असतश्च योनिः - (१) व्यक्त जगत् और अव्यक्त मूलकारण का आश्रय स्थान आकाश, (२) सत् और असत् का आश्रय सामान्य प्रजा

सतश्च योनिमसतश्च वि वः

अ. ४.१.१;५.६.१ साम. १.३२१; वाज.सं. १३.३; तै.सं. ४.२.८.२; मै.सं. २.७.१५:९६.१२; का.सं. १६.१५, ३८.१४; श.ब्रा. ७.४.१.१४; तै.ब्रा. २.८.८.९; तै.आ. १०.१.१०; आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३. शां.श्रौ.सू. ५.९.५

सतःराजा - (१) सत् अर्थात् व्यक्त संसार का शासक-परमेश्वर, (२) वरुण

सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा

ऋ. ७.८७.६

सत्तः - (१) आसन पर बैठा हुआ । विराजमान सद् + क्त = सत्त ।

सत्तो होता न ऋत्वियः

ऋ. ३.४१.२; अ. २०.२३.२

स नः सत्तो मनुष्वदा
देवान् यक्षि विदुष्टरः

ऋ. १.१०५.१३

तू उच्च आसन पर विराज कर और उनके अज्ञान आदि दोनों को नष्ट करने में समर्थ और अधिक विद्वान् होकर (विदुष्टरः) मननशीलन शिष्यों और विद्वानों से युक्त होकर (मनुष्वत्) हम में से धन देने में समर्थ तथा ज्ञान के जिज्ञासु शिष्य जनों को सब प्रकार से ज्ञानों का लाभ करा ।

(२) स्थिर, गृहपति

हुवे देवानां जनिमानि सत्तः

ऋ. ७.४२.२

सत्पती - द्वि.व. । (१) सत् स्वरूप आत्मा के पालक प्राण अपान, (२) अश्विद्वय

माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती

अ. ७.७३.४; आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४; शां.श्रौ.सू. ५.१०.२१.

सत्पति - (१) सज्जनों या सत् का पालक, (२) इन्द्र या परमात्मा का विशेषण ।

तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते

ऋ. ८.६८.१; साम. १.३५४; २.११२१

हे बलवत्तम, सज्जनों के पालक इन्द्र, हम अनेकों कर्म करने वाले तथा दुःख के नाशक तेरी शरण में आते हैं ।

सत्य - (१) सत्य स्वरूप परमात्मा,

यच्चिद्धि सत्य सोमपाः
अनाशस्ता इव स्मसि ।

ऋ. १.२९१; अ. २०.७४.१

हे सत्यस्वरूप, चूंकि हम अकुशल हैं ।.....

(२) बलवान् ।

सैनं सश्चद् देवो देवं
सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः

ऋ. २.२२.१-३; अ. २०.९५.१; साम. १.४५७; २.८३६-८३८; तै.ब्रा. २.५.८.१०

(३) सत्यभाषी, (४) सज्जनों का हितैषी

सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान्

ऋ. १.१५२.२

(५) तत् यत् सस्यं त्रयी सा विद्या

श. ब्रा.

(६) सत्यं वा ऋतम्

श. ब्रा.

(७) यो वैधर्मः सत्यं वै तत् ।

सत्यं वदन्तमाहुः धर्मं वदतीति ।

श. ब्रा.

(८) एतत् खलु वै व्रतस्य सृपं यत् सत्यम् ।

श. ब्रा.

(९) एकं ह वै देवा व्रतंचरन्ति सत्यमेव

श. ब्रा.

तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन

वाज.सं. २०.१२; का.सं. ३८.४; श.ब्रा. १२.८.३.३०; तै.ब्रा. २.६.५.७.

(१०) सत् + यत् = सत्य । सच्चा, जो वस्तुतः वर्तमान है ।

(११) सत्सु तायते सत्प्रभवं भवति इति वा (जो सत् में ही विस्तारित किया जाता है या जो सत् से उत्पन्न होता है-वह सत्य है) ।

सत् का अर्थ है-'जो है' या 'सज्जन'। सत्य वही पदार्थ है जिसका अस्तित्व है । जो नहीं है जिसका अस्तित्व ही नहीं है वह है असत्य ।

सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य

ऋ. १०.११७.६; तै.ब्रा. २.८.८.३
(१२) सात्विक बल वीर्य
इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यम्
पुरोडाशेन सविता जजान ।
वाज.सं. १९.८५; मै.सं. ३.११.९:१५३.११; का.सं. ३८.३; तै.ब्रा. २.६.४.३

सत्यतर – (१) अधिक सत्याचरण शील (२) ईमानदार, (२) सत्य के बल से तरने वाला या सत्य के बल से दूसरों को तराने वाला ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति
ऋ. ३.४.१०
(३) सज्जनों का बहुत अधिक हितकारी-परमेश्वर, अग्नि ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्य
अग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व
ऋ. १.७६.५

सत्यतातिः – (१) सत्य + ताति । सत्य न्याय का विस्तार करने वाला ।
उभा शंसा सूदय सत्यताते
ऋ. ४.४.१४; तै.सं. १.२.१४.६; मै.सं. ४.११.५: १७४.६; का.सं. ६.११.
(२) यज्ञ को जानने वाला अग्नि ।
हे यज्ञ को जानने वाले अग्नि, तू निकट या दूर के या सामने तथा पीठ पीछे निन्दा करने वाले शत्रुओं की हत्या कर ।
(३) सत्य प्रचारक राजा-दया. (४) यज्ञकर्ता-सा.

सत्यधर्मन (सत्यधर्मा) – (१) सत्य धर्म मे निष्ठ
वयं देवस्य धीमहि
सुमतिं सत्यधर्मणः
मै.सं. ४.१२.६: १९५.१३; शां.श्रौ.सू. ९.२८.३; शां.गृ.सू. १ .२२.७; नि. ११.११
(२) सत्य धर्म को पालन करने वाला
ऋतधीतस्य आ गत
सत्य धर्माणो अध्वरम्
ऋ. ५.५१.२
(३) सत्यधर्मों, व्रतों और नियमों का पालक
देव इव सविता सत्यधर्मा
ऋ. १०.३४.८; १३९.३; अ. १०.८.४२; वाज.सं. १२.६६; तै.सं. ४.२.५.५; मै.सं. २.७.१२:९१.८; का.सं. १६.१२; श.ब्रा. ७.२.१.२०

सत्यध्वृत – सत्य का विनाशक
सत्यध्वृतं वृजिनायन्तमाभुम्
ऋ. १०.२७.१

सत्यगिर्वाहस् – (१) सत्य गिरा का प्रापक-दया. (२) सत्य वाणी को धारण करने वाला-परमात्मा
सत्यगिर्वाहसं भुजे
ऋ. १.१२७.८
सभी ऐश्वर्यों को भोगने और अपनी रक्षा के लिए सत्यवाणी को धारण करने वाले तुझे प्राप्त करते हैं ।

सत्यमत् – सत्य, ज्ञान और व्यक्त जगत् में रमण करने वाला इन्द्र परमेश्वर ।
यो भूत् सोमैः सत्यमद्वा
ऋ. ८.२.३७

सत्यमन्त्रः – (१) सत्य विचारों से युक्त यथार्थ विचारक
युवाना पितरा पुनः
सत्यमन्त्रा ऋजूयवः
ऋभवो विष्ट्यक्रत ।
ऋ. १.२०.४;
सत्य विचारों से युक्त ऋजु धर्ममार्ग पर चलने वाले, सत्यज्ञान प्रकाशित होने वाले तेजस्वी विद्वान् पुरुष, युवा गृहस्थ, स्वधर्म में परस्पर संगत माता पिता स्त्रीपुरुषों को एक दूसरे में प्रेमपूर्वक आविष्ट सुसंगत एवं अनुकूल बनाते हैं । (२) सत्य मननशील पुरुष, सत्यज्ञानी
सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम्
ऋ. ७.७६.४

सत्यमन्मा – (१) सत्य ज्ञान और सत्यचित्त वाला
देवो न यः सविता सत्यमन्मा
ऋ. १.७३.२; ९.९७.४८
(२) सत्य अर्थ का प्रकाशक सत्य, (३) यथार्थ ज्ञान का दाता (४) सज्जनों का हित चिन्तक

सत्ययज् – सज्जनों के उचित सत्य आचार एवं सत्य न्याय को देने वाला आचार्य -प्रभु
होतारं सत्ययजं रोदस्योः
उत्तानहस्तो नमसा विवासेत्
ऋ. ६.१६.४६

सत्ययोनिः – (१) मेघ का उत्पादक सूर्य (२) सत्य न्याय का आश्रय राजा

भुवः सम्राडिन्द्रः सत्ययोनिः
ऋ. ४.१९.२

सत्यराध – (१) सत्य ऐश्वर्य युक्त, (२) सत्य आराधना से युक्त
त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः
ऋ. १.१०१.८

सत्यराधाः (सत्यराधस्) – सत्यरूपी धन का स्वामी
इन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः
ऋ. १०.२९.७; अ. २०.९६.७
(२) सत्यन्यायरूप धन का धनी इन्द्र ।
स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः.
ऋ. ४.२४.२
(३) सत्य पदार्थों में विद्यमान प्रकृति ।
(४) सत्य ज्ञान वेद का धनी, (५) प्रकृति और वेद को वश करने वाला भाग परमेश्वर ।
भग प्रणेतर्भग सत्यराधः
ऋ. ७.४१.३; अ. ३.१६.३; वाज.सं. ३४.३६; तै.ब्रा. २.५.५.२; 8 .९.८; आप.मं.पा. १.१४.३;

सत्यवाक् – (१) सत्यवक्ता, (२) सत्यवेद वाणी का ज्ञाता
तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम्
ऋ. १.१२६.९

सत्यशवसः – सत्यज्ञान और नित्य बल से युक्त
शशमानस्य वा नरः
स्वेदस्य सत्यशवसः ।
विदा कामस्य वेनतः ।
ऋ. १.८६.८; साम. २.९४४
हे नायकपुरुषो, हे सत्य ज्ञान और नित्य बल से युक्त पुरुषो, पसीना बहाने वाले परिश्रमी सत्य हीन का उपदेश करने वाले, नाना उत्तम कामना करने वाले पुरुष के उत्तम संकल्प को जानें ।

सत्यश्रवसी – सात्विक अन्न और सात्विक सत्य ज्ञान और यश से युक्त उषा ।
सत्य श्रवसि वाय्ये
सुजाते अश्वसूनृते
ऋ. ५.७९.१; साम. १.४२१; २.१०९०-१०९२

सत्यशुष्म – (१) सत्य और न्याय के बल से बलवान्, सच्चा बलवान् ।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मः
ऋ. ३.३०.२१; वाज.सं. (का.) २८.१४
(२) सत्य स्वरूप बल वाला
प्र त्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्मम्
ऋ. १०.४४.३; अ. २०.९४.३
(३) अश्विनर बल वाला
सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि
ऋ. १.१५.१५
सत्य बल वाले, सज्जनों के हितकारी बल वाले परमेश्वर के लिए यहं नमस्कार कहा जाता है ।
(४) सत्य के बल से युक्त
सत्य शुष्माय तवसे मतिं भरे
ऋ. १.५७.१; अ. २०.१५.१
(५) सत्य और न्याय ही जिस का बल है वह राजा ।
सत्य शुष्माय सुनवाम सोमम्
ऋ. १.१०३.६

सत्यसत्वा, सत्यसत्वन् – (१) सत्य पालक बलवान् पुरुषों का स्वामी (२) सत्य अन्तःकरण और बल वाला
स सत्यसत्वन् महते रणाय
ऋ. ६.३१.५

सत्यसव – (१) सत्य की आज्ञा देने वाला
(२) सत्यभाषी । (३) सत्यैश्वर्ययुक्त
सत्यसवं संवितारम्
ऋ. ५.८२.७; तै.सं. ३.४.११.२; मै.सं. ४.१२.६: १९६.१५
ये सवितु सत्यसवस्य विश्वे
ऋ. १०.३६.१३; मै.सं. ४.१४४.११:२३२.८; तै.ब्रां. २.८.६.४
(४) जिसकी आज्ञा सत्य हो-सविता, परमेश्वर
(५) जिसकी सृष्टि सत्य हो
अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः क विक्रतुम्
अ. ७.१४.१; साम. १.४६४; वाज.सं. ४.२५; मै.सं. १.२.५:१४.४; का.सं. २.६; कौ.ब्रा. २३.८; २७.२; श.ब्रा. ३.३.२.१२; आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३; शां.श्रौ.सू. ५.९.७

सत्यसवाः – (१) सत्य को उत्पन्न करने वाली वाणी
तस्यास्ते सत्य सवसः प्रसवे
तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा
वाज.सं. ४.१८; मै.सं. १.२.४:१३.२; ३.७.५: ८१.१०; का.सं. २.५; २४.३; श.ब्रा. ३.२.४.१२

(२) सत्य आज्ञा वालला
देवस्याहं सवितुः सवे सत्यसवस
इन्द्रस्योत्तमं नाकं रुहेयम्
वाज.सं. ९.१०; श.ब्रा. ५.१.५.३

सत्यस्यसूनुः - सत्य का प्रेरक, उत्पादक या उपदेशक इन्द्र, परमेश्वर
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् .
ऋ. ८.६९.४; अ. २०.२२.४; ९२.१; साम. १.१६८; २.८३९

सत्र, सत्रा - (१) उपासकों की रक्षा करने वाला यज्ञ, (२) ज्ञान यज्ञ ।
सत्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमानाः
अ. १७.१.१४
(३) नित्य, सत्यार्थ प्रतिपादक
सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा
ऋ. १.७२.१; तै.सं. २.२.१२.२
जो अग्रणी या अग्नि समस्त जलों के समान जीवनप्रद अन्नों के समान सुखप्रद अमृत ज्ञानों को (विश्वा अमृतानि) और नित्य सत्यार्थ प्रतिपादक वेद मन्त्रों को अपने आत्मा में प्रकाशित करता हुआ सब ऐश्वर्यों और ज्ञानों का ईश्वर बनता है ।
(४) सत्य, वट् , श्रत, सत्रा आदि निपातन से सिद्ध सत्य के पर्यायवाची हैं ।
'सतां त्राणं यत्र तत् सत्रम्'
(यहां सज्जनों या सत् का त्राण रक्षा हो वह सत्र है) ।
(५) सतत, सदा-सा.
(६) सत्यज्ञान -सत्य -दया.
इन दिनों इसका प्रयोग वर्ष के अर्थ में भी किया जाता है ।
(७) जीवन, (८), यन्त्र,
तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ
वाज.सं. ३४.५५; नि. १२.३७
आदित्य के अस्त हो जाने पर या जीव के सो जाने पर अन्न दान करने वाले या शरीर में रहने वाला सदा क्रिया शील वायु और आदित्य या प्राज्ञ आत्मा और तैजस प्राण जागते हैं या अन्न पचाते हैं ।
सत्र का आधुनिक अर्थ-(१) वह यज्ञ जो १३ से १०० दिनों तक होता रहे । यज्ञ,दान, पुण्य, घंर, धन, जंगल, तालाब, शरणार्थियों के रहने का स्थान ।

सत्ररुट् - परस्पर की रक्षा करने घाले संघों में सर्वोपरि विराजमान
सत्राडस्यभिमातिहा
वाज.सं. ५.२४; श.ब्रा. ३.५.४.१५

सत्रसद् - सत्र अर्थात् यज्ञ या सभा में बैठने वाला
तान् वौ अस्मै सत्रसदः कृणोभि
अ. १.३०.४

सत्रसद्य - एक प्रकार का यज्ञ
यावत् सत्रसद्येनेष्ट्वा
अ. ९.६(४).६

सत्रसदौ - सत्तां त्राणम् सत्रम् तत्र सद् कृतावस्थानः जीवितदाता । (द्वि.व.) । सत्र + सद् + क्विप् = सत्रसद् । द्विवचन में सत्रसदौ ।
अर्थ-(१) जीवन दान देने वाले, (२) यज्ञ में रहने वाले वायु और आदित्य नामक देव
(३) आत्मा और तैजस प्राण
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः
तत्रजागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ ।
वाज.सं. ३४.५५. नि. १२.३७
सूर्य के अस्त हो जाने या जीव के सो जाने पर जीवन दान देने वाले या यज्ञ में रहने वाले वायु और आदित्य या प्राज्ञ आत्मा और तैजस प्राण जागते या अन्न पचाते रहते हैं ।
(४) आदित्य मण्डल में स्थित अधिष्ठाता पुरुष, (४) चिन्मात्र में स्थित प्राज्ञ आत्मा (६) तैजस प्राण वायु- दुर्ग (७) सदा साथ रहने वाले-प्राण अपान वायु

सत्रस्य ऋद्धिः - परस्पर एकत्र हुए, राजा प्रजा जनों का समृद्धि रूप राजा
सत्रस्य ऋद्धिरसि
वाज.सं. ८.५२

सत्ता - सद् + तृच् । (१) बैठने वाला, (२) विराजने वाला
सत्ता नि योना कलशेषु सीदति
ऋ. ९.८६.६; साम. २.२३७
(३) विद्यमानता, अस्तित्व
द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुः
ऋ. ३.१७.५; नि. ५.३
जिसका अस्तित्व दो रूप में है- अन्तरिक्ष में

विदयुत् रूप में और द्युलोक में सूर्य रूप में और जो सोम या अन्न से (स्वधया) सभी जीवों का कल्याणकारी है (शम्भुः)-सा. ।
जिस परमेश्वर की सत्ता सभी के भीतर और बाहर दोनों प्रकार से है (द्विता च सत्ता) तथा जो पृथ्वी द्वारा (स्वधया) सुख पहुंचाने वाला है (शम्भुः) ।

सत्या - (१) सत्य व्यवहार करने वाली सन्तानों के प्रति सदव्यवहार में कुशल स्त्री या कुमारी ।
यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः
ऋ. १.७९.१; तै.सं. ३.१.११.५

सत्या आशिर - सत्य आश्रय योग्य ज्ञानरस ।
सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि
ऋ. ९.७०.१

सत्रा - (१) सचमुच, साथ साथ
सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः
ऋ. ४.२१.७
(२) सत्य व्यवहार से युक्त ईमानदार
सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे
ऋ. ४.१७.६
(३) एक ही साथ । अव्यय
सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि
ऋ. ८.९७.१३; अ. २०.५५.१; तै.ब्रा. २.५.८.९
(४) निश्चय से
सत्रा देव महाँ असि
ऋ. ८.१०१.१२; अ. २०.५८.४; साम. २.११३९; वाज.सं. ३३.४०
(५) सदा
सत्रा दधिरे शवांसि
ऋ. ८.२.३०

सत्राकरः - (१) सत्यकर्ता -दया. (२) सत्य सत्य न्याययुक्त आचरण करने वाला, (३) न्यायाधीश
सत्राकरो यजमानस्य शंसः
ऋ. १.१७८.४

सत्राहा - सत्ताहन् शब्द का प्रथमैकवचन में रूप ।
(१) सत्य न्याय से असत्य अन्याय चरण को नष्ट करने वाला, (२) इन्द्र (३) सत्य बल से शत्रुओं को परास्त करने वाला
सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिद्रम्
ऋ. ४.१७.८; साम. १.३३५; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१

सत्राङ् - (१) सत्र + अञ्च + क्विप् = सत्राञ्च ।
अर्थ -सत्यनिष्ठ ।
प्र यः सत्राचा मनसा यजाते
ऋ. ७.१००.१;
(२) एक साथ संगत
प्रयस्वन्तो न सत्राच आ गत
ऋ. १०.७७.४
(३) सत्य से युक्त
इन्द्रं सत्राचा मनसा
ऋ. ८.२.३७

सत्राची - (१) सत्य की विवेचना करने वाली विवेकी बुद्धि
सत्राच्या मघवा सोमपीतये
धिया शविष्ठ आ गमत्
ऋ. ८.६१.१; अ. २०.११३.१
(२) सत्यमात्र को ग्रहण करने वाली बुद्धि, (३) सदा विद्यमान् धारण शक्ति, (४) सत्य से युक्त (५) एक साथ मिलकर प्राप्त करने योग्य
सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः
ऋ. ७.५६.१८

सत्राजित् - (१) निरन्तर सत्य के बल से सबको जीतने वाला अपने अधीन करने वाला (२) सत्यमय, सत्य गुण कर्म स्वभाव वाला इन्द्र परमेश्वर
सत्राजिते नृजित उर्वराजिते
ऋ. २.२१.१
(३) सदा विजयशील एक ही साथ सबको विजय करने में समर्थ
सत्राजिदगोह्यः
ऋ. ८.९८.४; अ. २०.६४.१; साम. १.३९३; २.५९७
(४) सत्य बल से सबको विजय करने वाला, (५) सत्य की उन्नति करने वाला
सत्राजितं धनाविदम्
वाज.सं. ११.८
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयः
ऋ. ८.३.१५; अ. २०.१०.१; ५९.१; साम. १.२५१; २.७१२; मै.सं. १.३.३९:४६.६; आप.श्रौ.सू.१३.२१.३
(६) समस्त सत् पदार्थों पर विजय प्राप्त करने वाला
सत्राजिदुग्र पौंस्यम्
साम. १.२३१

सत्रादावा (सत्रादावन्) - (१) समस्त अभिलाषा

योग्य फलों को एक साथ देने में समर्थ

सत्रादावन्नपा वृधि

ऋ. १.७.६; अ. २०.७०.१२; साम. २.९७१

(२) सत्र + दा + वतुप् = सत्रादावन्। सतत दानशील इन्द्र- सा. (३) सत्य ज्ञान प्रदाता ईश्वर-दया. (४) वृष्टि का दाता

स नो वृषन्नमुं चरुम्

सत्रादावन्नपा वृधिः

ऋ. १.७.६

हे वर्षाप्रद इन्द्र, या सुखप्रद या सत्य ज्ञान प्रदाता ईश्वर, तू हमारे लिए अन्तरिक्ष में इस दीख पड़ने वाले मेघ को या सत्य ज्ञान के इस ढक्कन को खोल।

सत्राषाट् (सत्रासाह्) - (१) बहुत से सत्रों अर्थात् यज्ञों का कर्ता इन्द्र, (२) सत्य व्यवहार से विजय करने वाला

शूरः सत्राषाड् जनुमेष षाढः

ऋ. ७.२०.३

(३) सबको सहन करने वाला इन्द्र

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदाम्

ऋ. ३.३४.८; अ. २०.११.८

(४) सत्य के बल से और सत्योद्वेग से शत्रुओं को पराजित करने वाला (५) एक ही साथ विद्यमान समस्त कष्टों और शत्रुओं को पराजित करने वाला

(६) सत्राणि सहयन्ते येन (जो सत्य का सहन करता है)- (७) ऐश्वर्य का विशेषण

आ नो अग्ने रयिं भर

सत्रासहं वरेण्यम्।

ऋ. १.७९.८; साम. २.८७५; मै.सं. ४.१२.४: १८९.११; का.सं. १०.१२

(८) सत्य से विजय शाली-इन्द्र, परमेश्वर

सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत

ऋ. २.२१.२

(९) सत्य के बल पर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला

सत्रासाहमभिमाति हनं स्तुहि

ऋ. ३.५१.३; मै.सं. ४.१२.३:१८४.२

सत्राह - सत्य के बल पर या शत्रुसंघ को भी नष्ट करने वाला

सत्राहमिन्द्र पौंस्यम्

ऋ. ५.३५.४

सत्राहा (सत्राहन्) - (१) सब दिन, (२) सत्य बल से शत्रुओं का नाश करने में समर्थ इन्द्र

यः सत्राहा विचर्षणिः

ऋ. ६.४६.३; साम. १.२८६; कौ.ब्रा. २५.६; ऐ.आ. ५.२.४.२; आश्व.श्रौ.सू. ७.४.४; शां.श्रौ.सू. ११.१३:३१; १८.८.८

(३) सत्राहन् शब्द का प्रथमा ए.व. में रूप, (४) सत्य न्याय से असत्य अन्याय चरण को नष्ट करने वाला, (५) इन्द्र

सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रम्

ऋ. ४.१७.८; साम. १.३३५; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१

सत्व, सत्वन् - (१) सत्व से युक्त-जीव

इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः

ऋ. ३.४९.२

सत्वनः - (१) बलवत् प्रहार, (३) प्रबल वीर

आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रम्

ऋ. ५.३७४

सत्वा - (१) सत् पदार्थों का स्वामी

सत्य सत्वा पुरुयामः सहस्वान्

ऋ. ६.२२.१; अ. २०.३६.१

(२) वीर्यवान्, वीर

जयन्तु सत्वानो मम

अ. ६.६५.३

सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः

ऋ. १.६४.२

बलवान्, मेघ के समान,

ज्ञानजलों के वर्षक (द्रप्सिनः)भयानक या शान्तिदायक रूप वाले (घोर वर्पसः)...

(३) सत्वगुण से युक्त परमात्मा

तमु ष्टुहीन्द्र यो ह सत्वा

ऋ. १.१७३.५

बलवान् के अर्थ में

इनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः

ऋ. ७.२०.५

स्मत् - अ.। अच्छी प्रकार से, प्रशंसनीय रूप में

उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा

स्मत् सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः

ऋ. १.१८६.६

(२) प्रशस्त, खूब,

अभि न इडा यूथस्य माता

स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु
ऋ. ५.४१.१९; नि. ११.४९
मेघ समूह की निर्मात्री (यूथस्य माता) रूपवती विद्युत् उर्वशी नाम से प्रसिद्ध जो माध्यमिका देवी इडा है (उर्वशी इडा) वह हमें (सा नः) जलों से (नदीभिः) खूब सन्तुष्ट करे (स्मत् अभिगृणातु) (३) शोभायुक्त । (विशेषण) । अंग्रेजी नाम Smutts की इससे समानता विचारणीय है ।

स्मत्पुरन्धिः – सर्वोत्तम बहुत ज्ञानों को धारण करने और बहुतों का भरण पोषण करने में समर्थ
स्मत्पुरन्धिर्न आ गहि
ऋ. ८.३४.६; आश्व.श्रौ.सू. ६.१४.१८

स्वतवसः – ब.व.। अथवा एक वचन में स्वतवाः रूप है । अर्थ है । (१) अपने पराक्रम पर खड़े होने वाले स्वतः बलवान् वायु गण

स्रज् – फूल,
माला वृक्षादिव स्रजं कृत्वा
अ.८.६.२६

स्वतवाः –स्वयं बलरूप परमेश्वर
मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन
ऋ. ६.२२.६; अ. २०.३६.६

स्वतवान् – अपने बल से बलशाली-अग्नि, परमेश्वर
भुवस्तस्य स्वतवां पायुरग्ने
ऋ. ४.२.६

सती – (१) प्रकृति के परमाणुओं में घनीभाव उत्पन्न करने वाली शक्तियाँ जो सत् या बल रूप से विद्यमान है, (२) सूर्य के रश्मि जल को अपने गर्भ में धारण करने से स्त्री रूप है ।
स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः
पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः
ऋ.१.१६४.१६; अ. ९.९.१५; तै.आ. १.११.४; नि. ५१;१४.२०
(३) सत्य विद्या को जानने वाली स्त्री ।

सतीन – (१) उदक ।
अथो सतीनकंकतः
ऋ. १.१९१.१

सतीनकंकत – जल धार के समान कुटिल चाल से चलने वाला विषैला जीव
अथो सतीन कंकतः
ऋ. १.१९१.१

सतीनमन्युः – (१) जलवत् शान्तिदायक (२) ज्ञान से सम्पन्न
सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिम्
ऋ. १०.११२.८

सतीनसत्वा –(१) यः सतीनं सादयति (जल को एकत्र करने वाला सूर्य लोक) दया. (२) मेघस्थ जलों से युक्त सूर्य का विद्युत् -ज.दे.श
स यो वृषा वष्ण्येभिः समोकाः
महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट्
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु
मरुत्वान् नो भवत्विन्द्र ऊती ।
ऋ. १.१००.१
वायुगण से युक्त सूर्य या विद्युत् (मरुत्वान्) वर्षण करने वाले मेघस्थ जलों से संयुक्त होकर (वृष्ण्येभिः समोका) जल वर्षाने वाला होता है (वृषा) और वह आकाश और पृथिवी पर अच्छी प्रकार प्रकाश करता है । वह जलों में व्यापक होकर (सतीनसत्वा) भरण पोषण करने वाले अन्न, वायु जल आदि पदार्थों में (भरेषु) प्रकाश और ताप रूप से प्राप्त करने योग्य होकर (हव्यः) हमारी जीवन रक्षा के लिए (ऊती) समर्थ होता है ।

सतोवीरः – (१) सत्यबल से सम्पन्न वीर,
सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः
ऋ. ६.७५.९; वाज.सं. २९.४६; तै.सं. ४.६.६.३; मै.सं. ३.१६.३: १८६.१४; का.सं. (आश्व.) ६.१
(२) विद्यमान सेना के बीच में विद्यमान अतिविस्तृत बलवान् वीर पुरुषों से युक्त

सत्योक्तिः – सत्यवचन
सामा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतः
ऋ. १०.३७.२

सत्यौजाः – सत्य बलवाला न्यायाधीश
तान सत्यौजाः प्र दहतु
अ. ४.३६.१

सदः – अतिथियों के बैठने के लिए शाला का भाग-बैठक-खाना
सदो देवानामसि देवि शाले
अ. ९.३.७

सद् – (१) शरण, आश्रय
त्वां ह्यग्ने सदमित् समन्यवः

ऋ. ४.१.१

(२) संवत्सर, (३) शरीर

सद्दयोनिः - सभाभवन में न्यायासन पर विराजने वाला

सादद्योनिं दम आ दीदिवांसम्

ऋ. ५.४३.१२; मै.सं. ४.१४.४:२१९.१२; तै.ब्रा. २.५.५.४

सदन - (१) घर, (२) रहने का स्थान

गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः

ऋ. १.५३.१; अ. २०.२१.१

सूर्य के प्रकाश में विविध ऐश्वर्य एवं ईश्वर की परिचर्या करने वाले पुरुष के घर में या एकत्र मिलकर बैठने के स्थान में (विवस्वतः सदने) परमेश्वर या ऐश्वर्य के लिए उत्तम वेदवाणी को धारण करें।

सद् + ल्युट् = सदन (जिसमें रहा जाय)।

ओको नाच्छा सदनं जानती गात्

ऋ. १.१०४.५

अपना घर समझती हुई (सदनं जानती) चलती जाती है (गात्) -सा.

राष्ट्र को अपना घर समझती हुई प्राप्त होती है।

(३) (नः)-सहस्थानम्, एकत्र निवास भूमि (रहने के स्थान)।

औरगु कृष्णा सदनान्यस्याः

ऋ. १.११३.२; साम. २.११००; नि. २.२०

इस उषा को काली रात ने स्थान दिए।

(४) उदक। सद् + युच् = सदनम्।

आधुनिक अर्थ- गृह'

सदना सद् - सदन + आसद् = सदनासद्। आसन पर विराजने वाला।

देवाय़ सदनासदे

ऋ. ९.९८.१०

सदन्तु - सीदन्तु, प्राप्नुवन्तु (प्राप्त करें, रहें, बैंठें)।

सदन्दिः - निरन्तर चढ़े रहने वाला ज्वर।

सदन्दिर्यश्च हायनः

अ. १९.३९.१०

सदन्दिमुत शारदम्

अ. ५.२२.१३

सदनी - सबको शरण देने वाली सर्वाश्रय, सर्वव्यापक

अपिप्राणी च सदनी च भूयाः

ऋ. १.१८६.११

सदम् - अ.। सदा

इयं च गीः सदमिद्वर्धनी भूत्

ऋ. १०.४.७

कामी हि वीरः सदमस्य पीतिम्

जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि।

ऋ. २.१४.१

तेजस्वी इन्द्र कामना वान् है। इस वर्षा बरसाने वाले इन्द्र के लिए सदा अन्न रस का पान अर्पित करो क्योंकि वह इसे चाहता है।

सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्

वाज.सं. ३४.५५; नि. १२.३७

सात सूर्य की रश्मियाँ या देह की इन्द्रियां सूर्य की उदक दान द्वारा प्रमादरहित ही सदा शरीर की रक्षा करती है।

सदमित् - सदम् + इत्। सदा ही, सदैव।

देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्

अप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे।

ऋ. १.८९.१; वाज.सं. २५.१४; का.सं. २६.११; नि, ४.१९

समध्वराय सदमिन्महेय

ऋ. ७.२.३

सदश्वः - उत्तम अश्वों का स्वामी

युष्मत् सदश्वो मरुतः सुवीरः

ऋ. ५.५८.४

सदः - बैठने की साज

पृष्ठे सदो न सोर्यमः

ऋ. ५.६१.२

सदस् - (१) संसार, (२) यज्ञ का उदर, (३) प्रजापति का उदर, (४) पृथ्वी, (४) इन्द्र (५) इन्द्र विषयक

उदर मेवास्य यज्ञस्य सदः

श. ब्रा.

प्रजापतेर्वा एतदुदर यत्सदः

तै. ब्रा.

तस्मात् सदसि ऋक्सामाभ्यां कुर्वन्ति

ऐन्द्रे हि सदः

श. ब्रा.

तस्यपृथ्वी सदः

तै.ब्रा.

(६) यज्ञ में बनाए जाने वाला बांस आदि का

गृह
सदो हविर्धानान्यवे तत् कल्पयन्ति
अ. ९.६(१).७
(७) सद् (रहना) + असुन् = सदस्। घर, गृह भवन
'दिवः सदांसि बृहती वितिष्ठसे'
हे रात्रि, दूर रहती हुई भी तू स्वर्ग लोक के भवनों में भी व्याप्त हो जाती है।
(८) आसन
स्योनमिन्द्र ते सदः
वाज.सं. २१.५७; मै.सं. ३.११.५: १४८.२; तै.ब्रा. २.६.१४.६

सदःसदः – (१) घर घर, (२) प्रत्येक यज्ञगृह।
'सदः सदो वरिवस्यात उद्भिदा' दोनों द्यौ और पृथिवी घर घर या सभी यज्ञ गृहों को उदभेदक धन से पूर्ण करें (उद्भिदा वरिवस्यातः)।
हमारे दोनों दिन रात अपने आविर्भाव से (उद्भिदा) हमारे प्रत्येक गृह को परिपूजित करे (सदः सदः वरिवस्यातः)।

सदस्पती – द्वि.व.। (१) इन्द्र और अग्नि का विशेषण (२) वायु, सूर्य, विद्युत्, अग्नि, विद्युत् मेघ, वीर्यवान्, अधिकारी पुरुष, वायु अग्नि का भी यह विशेषण है।
(२) सभापति, (३) गुणों के आश्रयभूत सदस् अर्थात् पदार्थों के पालक।
ता महान्ता सदस्पती
इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम्
ऋ. १.२१.५
वे दोनों वीर्यवान् अधिकारी पुरुष इन्द्र और अग्नि महान् पद पराक्रम और वीर्य वाले राजसभा के पालक, सभापति के तुल्य होकर, दुष्ट राक्षस पुरुषों को झुका दें (उब्जतम्)।

सदसस्पतिः – (१) विद्वानों की एकत्र विचारार्थ बैठने की सभा का पालक, (न्याय सभा का या धर्म –सभा का नेता या सभापति, (३) ब्रह्माण्ड का पालक
सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्
सनिं मेधामयासिषम्।
ऋ. १.१८६; ऋ. खि. १०.१५१.७; साम. १.१७१; वाज.सं. ३२.१३; तै .आ. १०.१.४; महा.ना.उप. २.८; आप. मं.पा. १.९.८; हि.गृ.सू. १.८.१६
अद्भुत आश्चर्यकारी, ऐश्वर्यवान्, राजवर्ग और वैश्य वर्ग के प्रिय लगने वाले, सब प्रजा के इच्छानुकूल, वेतन पुरस्कार आदि देने वाले विद्वान् की एकत्र विचारार्थ बैठने की सभा के पालक, न्यायसभा या धर्म सभा के नेता सभापति को मैं धारण.वती उत्तम बुद्धि प्राप्त करने के लिए प्राप्त करूँ।
जीव के प्रिय लोकसमूह, ब्रह्माण्ड के पालक, सबके कर्म फलों के दाता परमेश्वर को मैं बुद्धि प्राप्त करने के लिए प्राप्त होऊं।

सद्मनी – द्वि.व.। (१) द्यावापृथिवी का विशेषण (२) समस्त लोकों और जनों को आश्रय देने वाली द्यावापृथिवी (२) घर के समान सब को शरण में रखने वाले माता पिता
उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन
ऋ. १.१८५.६

सद्म मखस् – जिसमें प्राणी स्थित होते और जगत् प्राप्त होते हैं–परमेश्वर

सद्मबर्हिः – (१) जिसका स्थान उत्तम हो (२) उत्तम वेग या बल से बहने वाली नदी, (३) उत्तम आसन पर विराजने वाला विद्वान्
आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः
ऋ. १.५२.४
जिसे राजसभा भवन में उत्तम आसन पर विराजमान पुरुष सब प्रकार से पूर्ण करते हैं।
अथवा,
उत्तम वेग और बल से बहने वाली नदियाँ जिस प्रकार समुद्र को सब तरह से पूर्ण करती हैं।

सद्यः – तत्क्षण, शीघ्र।
सद्यः काव्यानि बडधत्त विश्वा
ऋ. १.९६.१; मै.सं. ४.१०.६; १५७.१२
पुरातन के सदृश अग्नि ने सभी पितरों तथा देवों को दिए जाने वाले कव्य और हव्य को (विश्वा) सत्य ही (वट्) धारण किया (अधत्त) –सा.।
विद्वान् शीघ्र अनेक विज्ञानों को (विश्व काव्यानि) यथार्थ रूप से (वट्) धारण करता है (अधत्त)–दया.।

सद्य ऊतयः – (१) शीघ्र चलने वाले (२) शीघ्र रक्षा करने वाले मरुद्गण या व्यापारिवर्ग
वातासो न स्वयुजः सद्यऊतयः

ऋ. १०.७८.२
वायु के समान अपने अनुग्रह से या धन से स्तोताओं को युक्त करने वाले (स्वयुजः) तथा शीघ्र चलनें वाले या रक्षा करने वाले-मरुद्गण।

सद्यश्चित् - (१) सद्योऽपि (सभी उपयुक्त काल में) (२) आज भी, (३) सर्वदा
(४) सभी उपयुक्त अवसर पर
सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः
सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान।
ऋ. १०.१७८.३; ऐ.ब्रा. ४.२०.३०; नि. १०.२९
जो तार्क्ष्य सभी उपयुक्त अवसर पर (सद्यश्चित्) बल से (शवसा) पांच प्रकार के मनुष्यों के निमित्त जल विस्तीर्ण करते हैं (जल कृष्टीः अपः ततान)।
(५) शीघ्र ही, सहज ही
सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ
ऋ. ७.१९.९; अ. २०.३७.९

सद्यस्क्री - एक प्रकार का सोमयज्ञ
सद्यः क्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः
अ. ११.७.१०

सदा - सर्वदा।
यूयं पात स्वस्तिभिः सदानः
ऋ. ७.१.२०
हे देवो, आप आशीर्वादों से सदा हमारी रक्षा करें।
अथवा,
आप सभी विद्वान् स्वस्तिवाचनों से सदा हमारी रक्षा करें।
ज.दे.श.

सदानः - स + दान। दानी के दिए दान से अलंकृत भिक्षु या ब्राह्मण
सहस्रदान उत वा सदानः
ऋ. ७.३३.१२

सदान्वा - वि.। सदा + न्वा। (१) सदा नो नो-नहीं नहीं करने वाली। दरिद्रता देवी या दुर्भिक्षाधिदेवता का विशेषण।
अरायि काणे विकटे
गिरिं गच्छ सदान्वे।
ऋ. १०.१५५.१; नि. ६.३०.
हे दुर्भिक्षाधिदेवेते, हे कुत्सितदर्शने, हे विकृताङ्गि, हे सदा नहीं नहीं करने वाली, तू पर्वत पर चली जा।
(२) दुर्भिक्षा देवी (३) नो नो शब्दकारिका, मा देहि इति कथयन्ती, सदा नोनुवा सदान्वा, नोनुवाका न्वा,
सदा + नु (यङन्त) + अच् + टाप् = सदान्वा।
(४) सदा कलह और शोर गुल या रोना आदि मचाने वाली आपत्ति
नश्यतेतः सदान्वाः
अ. २.१४.५,६

सदान्वा चातन - सदान्वा + चातन। (१) निरन्तर रुलाने और कष्ट देने वाली आपत्ति को दूर करने वाला बल
सदान्वाक्षयणमसि सदान्वा चातनं मे दाः स्वाहा
अ. २.१८.५

सदान्वा क्षयण - निरन्तर रुलाने और कष्ट देने वाली आपत्तियों का नाशक
सदान्वा क्षयणमसि
अ. २.१८.५

सदापृणः - सदा प्रजा को तृप्त करने वाला
सदापृणो यजतो विद्विषो वधीत्
ऋ. ५.४४.१२

सदावा (सदावन्) - सदा रक्षा करने वाला -परमेश्वर
सदावन् भागमीमहे
ऋ. १.२८.३; तै.सं. ३.५.११.३; मै.सं. ४.१०.३: १४८.२; का.सं. १५.१२
हे सदा सब की रक्षा करने वाले भजन और सेवा कार्य योग्य। तुझ से हम याचना करें।

सदावृध - (१) सदा बढ़ाने वाला
ऊती सदावृधः सखा
ऋ. ४.३१.१; अ. २०.१२४.१; साम. १.१६९; २.३२; वाज.सं. २७.३९; ३६.४; तै.सं. ४.२.११.२; मै.सं. २.१३.९: १५९.४; ४.९.२७: १३९.११; का.सं. ३९.१२; तै.आ. ४.४२.३. आप.श्रौ.सू. १७.७.८.
(२) प्रजाओं को सदा बढ़ाने वाला - इन्द्र
रथादधि त्वा जरिता सदावृधः
ऋ. ५.३६.३
(३) नित्य वृद्धि शील
एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः
ऋ. ८.२४.१६; अ. २०.६४.४; साम. १.३८५; २.१०३४

सदावृध् – (१) सदा बढ़ने वाला प्रभु (२) सदाशक्ति का रूप बढ़ाने वाला
यश्चकार सदावृधम्
ऋ. ८.७०.३:अ. २०.९२.१८; साम. १.२४३; २.५०५
तमिद् वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम्
ऋ. ८.१३.१८

सदासः – (१) स + दासः । नौकरों से युक्त, (२) सदा + सः । सदा ऐश्वर्य भोक्ता या दानशील ।
धिया स्याम रथ्यः सदासाः
ऋ. ४.१६.२१; ५६.४

सदासा – सदा सेवन करने योग्य
धाता रयिं विदस्यं सदासम्
ऋ. ७.३९.६

सदावृधा – प्रजाजनों या बालक को पुष्ट करने वाली अदिति, पृथ्वी, माता
अदितिः पात्वं हसः सदावृधा
ऋ. ८.१८.६

सदासहः – सदा शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ
सजित्वानं सदासहम्
ऋ. १.८.१; अ. २०.७०.१७; साम. १.१२९; तै.सं. ३.४.११.४; मै. सं. ४.१२.३: १८४.१३; का.सं. ८.१७; तै.ब्रा. ३.५.७.४
(२) दुष्टों का सदैव हानि हानिकारक, (३) दुःखों का सहन- हेतु ।

स्मदभीशू – द्वि.व. । शोभायुक्त अंगुलियों, धर्म मर्यादाओं- व्यवस्थाओं से युक्त मित्रावरुण या स्त्रीपुरुष
स्मदभीशू कशावन्ता
ऋ. ८.२५.२४

स्वदन्ति – स्वाद लेते हैं, आस्वादित करते हैं ।
स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या
ऋ. ७.२.२; वाज.सं. २९.२७; का.सं. ३७.४; ८.७
देवता सौमिक और हविमय दोनों हव्यों को आस्वादित करते हैं ।

स्वदावा – उत्तम अन्न या कर्मफल का दावा
यं ते स्वदावन् स्वदन्ति गूर्तयः
ऋ. ८.५०.५

स्मद्रातिषाक् – स्मत् + राति + साच् । उत्तम दान या कर आदि देने वाला
स्मद्रातिषाचो अग्नयः
ऋ. ८.२८.२

स्मदिष्टः – स्मत् + इष्ट । (१) उत्तम अभिप्राय वाला, (२) उत्तम आचारण वाला, (३) एक साथ समान इष्ट, (४) योगी या एक साथ उत्तम लक्ष्य रखकर कार्य करने वाला
परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टाः
उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके ।
ऋ. ७.८७.३

स्मद्दिष्टि – (१) कल्याण मार्ग का उपदेश करने वाला, (२) शोभन वाणी और इच्छा वाला आत्मा
स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरः
ऋ. ३.४५.५
(३) उत्तम दर्शन वाला
स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके
ऋ. ७.१८.२३
(४) उत्तम ज्ञान वाला
शांडो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन्
ऋ. ६.६३.९

स्मदूघ्नी –स्मत् + ऊध्नी । अच्छे बड़े स्तन मण्डल वाली गौ
ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः
स्मदूघ्नी पीपयन्त द्युभक्ताः ।
ऋ. १.७३.६
जिस प्रकार अच्छे बछड़ो को अति प्रेम से चाहती हुई (वावशानाः) अच्छे बड़े स्तनों वाली (स्मदूध्नीः) तेजोयुक्त स्वच्छ अन्न खाने वाली (द्युभक्ताः) गौएं (धेनवः) दूध का पान करती हैं (पीपयन्त) ।

सदृक्षः – एक समान । बहुवचन में सदृक्षासः
सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन
वाज.सं. १७.८४; तै.सं. ४.६.५.६; मै.सं. २.११.१: १४०.५; का.सं. १८.६

सदृङ् – सबको एक समान दीखने वाला अग्नि ।
सदृङ् च प्रतिसदृङ् च
वाज.सं. १७.८१; मै.सं. २.११.१: १४०.४; का.सं. १८.६.

समोकसा – एक ही स्थान पर घर बनाकर रहने वाले ।

सद्योअर्थः – (१) शीघ्र गामी पृथिव्यादि अर्थ –दया. (२) विद्युत् रूप में देशान्तर में जाने वाला पदार्थ अग्नि ।

सद्योवृध् - शीघ्र बढ़ने वाला या बढ़ाने वाला।
सद्योवृधं विभ्वं रोदस्योः
ऋ. ३.३१.१३

सधनाजित् - समस्त धन ऐश्वर्य को जीतने वाला
गोजितं संधनाजितम्
अ. १७.१.१-५

सधनित्व - (१) ऐश्वर्यवान् पुरुषों से युक्त राज्य पद, (२) धन- सम्पन्न पुरुषों के समान उत्तम पद
देवो मर्तस्य सधनित्वमाप
ऋ. ४.१.९

सधनी - (१) समान धन से धनी
त्वया वयं सधन्यस्त्वोताः
ऋ. ४.४.१४; तै.सं. १.२.१४.५; मै.सं. ४.११.५: १७४.५; का.सं. ६.११.
(२) धन + इ (मतुप् अर्थ में)। समान प्रकार से धनी।
हे अग्निदेव, तेरी कृपा से हम समान रूप से धनी हैं।

सधमाः - एक समान स्थान या पद पर रहने वाला
आ योऽनयत् सधमा आर्यस्य
गव्या तृत्सुभ्यो अजगन् युधानॄन्
ऋ. ७.१८.७

सधमात् - हर्षों में हर्षित होने वाला
इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः
ऋ. ४.२१.१; वाज.सं. २०.४७

सधमादः -सहमदनः (जहां एकत्र हो ऋत्विक् तथा यजमान मत्त या मुदित होते हैं)। यज्ञ के विशेषण के रूप में इसका प्रयोग हुआ है।
(१) मदान्वित करने वाला यज्ञ
आ शेकुरित् सधमादं सखायः
ऋ. १०.८८.१७; नि. ७.३०
इस मदान्वि करने वाले यज्ञ को सखारूप ऋत्विज् करते हैं।
(२) एक साथ मिलकर होने वाला हर्ष विनोद या उत्सव का अवसर
विश्वेत् ता ते सधमादेषु चाकन
ऋ. १.५१.८
तेरे उन नाना प्रकार के समस्त कर्मों और अद्भुत व्यवहारों के एक साथ मिलकर होने वाले हर्ष दिला दे और उत्सवों के अवसरों पर मैं प्रसिद्धि चाहता हूँ।
पुनः -
हर्यन् यज्ञं सधमादे दशोणिम्
ऋ. १०.९६.१२; अ. २०.३२.२
(३) मुक्तात्माओं का ब्रह्म के साथ परमानन्द का अनुभव करना
तृतीये नाके सधमादं मदेम
अ. ६.१२२.४
(४) साथ साथ अनुभव करने की समाहित दशा।
हरीं सखाया सधमाद आशू
ऋ. ३.३५.४; अ. २०.८६.१
पुनः -
आरात्ताच्चित् सधमादं न आ गहि
ऋ. ७.३२.१

सधमाद्यः - (१) सत्संग से आनन्द प्राप्त करने वाला
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे
ऋ. ८.३.१; साम. १.२३९; २.७७१
(२) एक साथ मिलकर हर्ष मनाने का अवसर
कदा त उक्था सधमाद्यानि
ऋ. ४.३.४
(३) सबके साथ मिलकर प्रसन्न होने वाला
तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे
ऋ. ८.५४.५

सधमाद्या - द्वि.व.। सधमाद्यौ। अर्थ साथ ही मत्त या प्रसन्न -इन्द्र के अश्व-सा.
(२) साथ रहकर आनन्द देने वाले। (३) साथ रहकर आनन्द देने वाले राजा के दो गुण- ज.दे.श.।
इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपीतये।
हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभि स्वर
ऋ. ८.१३.२७
हे इन्द्र, इस कर्म में इन दोनों अश्वों की (त्या हरी) जिन्हें ऋजीष और धानरूपी धन मिलते हैं (प्रतद्वसू) और जो साथ ही मत्त या प्रसन्न रहते हैं (सहमाद्या) रथ में जोतते हुए (युजानः) सोमपान करने के लिए (सोमपीतये)।
हे राजन्, साथ रहकर आनन्द देने वाले (सधमाद्या) और धनों को प्राप्त करने वाले (प्रतद्वसू) इन पालक तथा संहारक गुणों से अपने को युद्ध करता हुआ तू (हरी युजानः)

शान्ति रक्षण के लिए (सोमपीतये)।

सधस्तुति - (१) एक समान एक साथ वर्णन करने योग्य

ये मे पञ्चशतं ददुः
अश्वानां सधस्तुति
ऋ. ५.१८.५; तै.ब्रा. २.७.५.२

(२) सत्यगुण वर्णन वाली स्तुति

(३) एक साथ मिलकर प्रार्थना, सामूहिक प्रार्थना

सधस्तुतिमजमीढासो अग्मन्
ऋ. ४.४४.६; अ. २०.१४३.६

आ त्वद्य सधस्तुतिम्
वावातुः सख्युरा गहि।
ऋ. ८.१.१६

सधस्थ - (१) संघ

तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे
अ. ७.९७.३; वाज.सं. ८.१९; तै.सं. १.४.४४.२; मै.सं. १.३.३८: ४४.१२; का.सं. ४.१२; श.ब्रा. ४.४.४.११

(२) सूर्य की किरणों का एकत्र होने वाला केन्द्र,

(३) राजसभा

यदेदयुक्त हरितः सधस्थात्
ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७; मै.सं. ४.१०.२: १४७.२; तै.ब्रा. २.८.७.२; नि. ४.११

(४) एकत्र बैठने के लिए भवन

महत् सधस्थं महती बभूविथ
अ. १२.१.१८

एतं सधस्थाः परि वो ददामि
अ. ६.१२३.१; वाज.सं. १८.५९

(६) कारण रूप प्रकृति जिसमें समस्त प्राकृतिक जगत् एक समान होकर कारण रूप से एक साथ रहते हैं।

यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थम्
ऋ. १.१५४.१

(७) सह + स्था + क = सधस्थ। 'घञ के अर्थ में 'क' का विधान हुआ है और सह का सध हो गया है। अर्थ-यज्ञ स्थान।

उश्मसि त्वा सधस्थ आ
ऋ. ८.४५.२०

हे इन्द्र, हम यज्ञ में तुझे देखने या स्तवन करने की कामना करते हैं।

(८) भूलोक, (९) रथ।

यदेदयुक्त हरितः सधस्थात्
ऋ. १.११५.४

जभी सूर्य रस हरने वाली रश्मियों या अश्वों को इस लोक से या रथ से हटाकर अन्य लोक में फैलाते हैं।

(१०) समान स्थान।

सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः
ऋ. ७.३९.४

विश्वे देव यज्ञों में समान स्थान पर आते हैं।

(११) सहस्थान, एक स्थान, सहस्थिति एकत्र होने का स्थान, एकत्र होना।

सधस्थात् - साथ रहने के कारण

हवामहे परमात् सधस्थात्
अ. ७.६३.१

सध्रक - एक साथ

प्र जीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक्
ऋ. २.१७.३

स्वधया - (१) स्वभावतः (२) आत्म-धारण करने की शक्ति

आनीदवातं स्वधया तदेकम्
ऋ. १०.१२९.२; तै.ब्रा. २.८.९.४

उस प्रलय काल की स्थिति में वह एक सत् ब्रह्म बिना वायु के (अवातम्) स्वभावतः (स्वधया) प्राण धारण कर रहा था (आनीत्)

स्वधयागभीतः - (१) स्वयं धारण किए गए कर्मबन्धन या कर्म फल से बद्धजीव

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतः
ऋ. १.१६४.१६; अ. ९.१०.१६ ऐ.आ. २.१.८.११; नि. १४.२३

(२) अन्न जल में बने शरीर तथा अपने किए कर्मों के फल से बंधा जीव।

यह जीव अन्न और जल से बने इस शरीर तथा अपने किए कर्मों के फल से बद्ध होकर ही नीचे अर्थात् उच्च योनियों में जाता है और उसी प्रकार उत्कृष्ट योनियों में जाता है।

स्वधया शंभुः - सोम, अन्न या पृथ्वी से सबका कल्याण करने वाला परमेश्वर,

द्विता च सत्ता स्वधया च शंभुः
ऋ. ३.१७.५; नि. ५.३

जिसका अस्तित्व दो प्रकार से है-अन्तरिक्ष में

विद्युत और द्युलोक में सूर्य रूप में और जो सोम या अन्न से सबका कल्याणकारी है।-सा.
जिस परमेश्वर की सत्ता बाह्य और भीतर दोनों है (द्विता सत्ता) और जो पृथिवी में सबका कल्याण कारी है-दया.

स्वध्वर - (१) सु + अध्वर = स्वध्वर। यज्ञ को शोभन बनाने वाला अग्नि- सा.
(२) हिंसारहित शुभ कर्म करने वाला विद्वान् उपदेशक-दया.।
प्रियं चेतिष्ठरतिं स्वध्वरम्
मैं प्रिय पर्याप्त बुद्धि वाले, अत्यन्त चेतनावान् एवं यज्ञ को शोभन बनाने वाले अग्नि का आमन्त्रण करता हूँ-सा.।
मैं हितकर, चेतानेवाले आर्य एवं हिंसा रहित शुभकर्म करने वाले उपदेशक को स्वीकार करता हूँ।
(३) राज्य को भली भाँति चलाने वाला-दया.।

स्वध्वरावा - सु + अध्वरावा। उत्तम अध्वर या अहिंसक व्यवहार वाला
उदुतिष्ठ स्वध्वरावा
वाज.सं. ११.४१

स्वधा - (१) स्वयं धारण किया हुआ कर्मबन्धन या कर्मफल
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतः
ऋ. १.१६४.३८; अ. ९.१०.१६; ऐ.आ. २.१.८.११; नि. १४.२३
(२) श्राद्ध में मृतात्मा को दिया हुआ पिण्ड-सा.।
(३) कर्मों से प्राप्त आत्म शक्ति-ज.दे.श.।
मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते
ऋ. १०.१५.१४; अ. १८.२.३५
(४) अन्नमयी शरीर धाराण करने में समर्थ विराट् प्रकृति
ऊर्ज एहि स्वध एहि
अ. ८.१०.११
(५) अपना स्वार्थ
ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः
ऋ. ७.१०४.९; अ. ८.४.९
(६) प्रकृति
स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्
ऋ. १०.१२९.५; वाज.सं. ३३.७४.; तै.ब्रा. २.८.९.५
(७) स्वस्मिन् धीयत इति शरीर को धारण करने वाला, पोसने वाला- अन्न। स्व + धा।
पिबा सोममनुष्वधं मदाय
ऋ. ३.४७.१; वाज.सं. ७.३८; वाज.सं. (का.) २८.१०; तै.सं. १.४.१९.१; मै.सं. १.३.२२: ३८.१; का.सं. ४.८; नि. ४.८.
हे इन्द्र, तू अन्न खाने आदि आनन्द के लिए सोमरस पी।
(८) अन्न हवि या पुरोडाश आदि भी स्वधा है।
धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्ते
ऋ. १०.८८.१; नि. ७.२५
धारण पोषण या अविच्छेद के लिए सुखद अग्नि को अन्न, हवि या पुरोडाश से (स्वधया) बढ़ाते हैं।
(९) पृथ्वी। (१०) स्वभाव।

स्वधाकार - (१) स्वधारूप में दिया गया अन्न।
स्वधाकारेणन्नादेनं
अ. १५.१४.१४
(२) स्वधारूप अन्न का प्रदान करना (३) पितरों दिया पिण्ड दान
स्वधाकारेण पितृभ्यः
अ. १२.४.३२

स्वधाप्राणा - आत्मा धारण शक्तिरूप प्राण वाली वंशा
स्वधाप्राणा महीलुका
अ. १०.१०.६

स्वधापति - अन्न और धन धारण करने वाले बल का स्वामी-इन्द्र
अस्ति स्वधापते मदः
ऋ. ६.४४.१-३; साम. १.३५१

स्वधायी - (१) स्वधा को स्वीकार करने वाला पितृगण, (२) अन्न, जल या शरीर के पोषण योग्य वेतना स्वीकार करने वाला राष्ट्र और प्रजा का पालक पुरुष-दया.।
पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः
वाज.सं. १९.३६; का.सं. ३८.२; श.ब्रा. १२.८.१.७; तै.ब्रा. २ .६.३.२; आप.श्रौ.सू. १.९.९; १९.८.१४

स्वधावती - (१) अन्न युक्त, (२) सूर्यचन्द्र की शक्ति से युक्त दिनरात
तिलमिश्राः स्वधावतीः

अ. १८.३.६९; ४.२६,४३

स्वधावन् - (१) अन्नादि ऐश्वर्य का स्वामी । अग्नि ।

रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि ते

ऋ. १.३६.१२

हे अन्नादि ऐश्वर्य के स्वामी, तू हमें सर्व प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान कर ।

(२) अन्नमय । स्वधा का अर्थ अन्न है । यह शब्द पूषा का विशेषण है ।

विश्वा हि माया अवसि स्वधावः

ऋ. ६.५८.१; साम १.७५; तै.सं. ४.१.११.३; मै.सं. ४.१०३:१५०.५ ; का.सं. ४.१५; तै.आ. १.२.४; ४.५.७; नि. १२.१७

हे अन्नमय पूषन् , जितनी प्रज्ञाएं हैं सभी को तू ही देता या पालता है ।

स्वधावा - (१) अनादि समृद्धि, धनैश्वर्य और अपने शरीर को धारण पोषण अन्न और ऐश्वर्य का स्वामी इन्द्र राजा

अनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त

ऋ. ५.३२.१०

स्वधावः - देह को धारण करने की शक्ति से युक्त आत्मा

बहोरग्न उपलस्य स्वधावः

ऋ. १०.१४२.३

स्वधवान् - (१) शरीरों को धारण करने वाले समष्टि चैतन्य का स्वामी -सा. ।

(२) अन्न और बल का स्वामी इन्द्र

इन्द्र स्वधावो मत्स्वेह

ऋ. ३.४१.८; अ. २०.२३.८

समस्त जगतों के धारण पालन और पोषण कारिणी शक्ति का स्वामी-परमेश्वर

त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान्

ऋ. १०.३१.८

(३) स्व + धा + क्वसु । आत्मा को धारण करने वाली स्नेह मयी शक्ति का स्वामी

(४) अन्न, (५) स्वयं ब्रह्माण्ड की धारक शक्ति-समष्टि चैतन्य ।

देव स्वधावोऽमृतस्य नाम

ऋ. ३.२०.३; तै.सं. ३.१.११.६; मै.सं. २.१३.११; १६२.३

(६) जलमय मेघ, (७) अन्न समृद्धि का स्वामी

भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम्

ऋ. १.१७३.६

(८) स्वधा + वतुप् = स्वधावान्

बलवान् अन्नवान् परमात्मा का विशेषण ।

कदा ते मर्ता अमृतस्य धाम

इयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ।

ऋ. ६.२१.३

हे बलवान् , तुझ अमर के धाम में इच्छुक, मनुष्य कभी हिंसा नहीं करते ।

(९) स्वधा अर्थात् अमृत को प्राप्त कर स्वयं सबका पोषक परमेश्वर

कविर्देवो न दभायत् स्वधावान्

अ. ४.१.७

(१०) ऐश्वर्य धारण करने वाली शक्ति का स्वामी (११) अन्न पति

यं ते स्वधावन् स्वदयन्ति धेनवः

ऋ. ८.४९.५६

स्वधावरी - द्वि.व.। (१) रोदसी का विशेषण, (२) जल और अन्न से युक्त द्यावा पृथिवी (३) स्त्री पुरुष (४) राजा प्रजा

महां उतासि यस्य ते

अनु स्वधावरी सहः

ऋ. ७.३१.७

सधिः - (१) समान रूप से स्थिति

अप्स्वग्ने सधिष्टव

ऋ. ८.४३.९; वाज.सं. १२.३६; तै.सं. ४.२.३.२; मै.सं. २.७.१०: ८८.६; ४.१०.४: १५३.६; का.सं. १६.१०; ऐ.ब्रा. ७.७.२; श.ब्रा. ६.८.२.४; १२.४.४.४; आश्व.श्रौ.सू. २.१३.४; ३.१३.१२; मा.श्रौ.सू. ५.१.३.२५

(२) निवास स्थान, (३) स्थिति

स्वधिति - (१) स्वयं अपने को धारण करने की शक्ति (२) वज्र

स्वधितिस्ते पिता

वाज.सं. ३.६३; शां.गृ.सू. १.२८.१४; आप.मं.पा. २.७.३.

(३) स्वधा धारण करने वाला पितर

(४) अपने स्व को धारण करने वाली शस्त्रशक्ति

न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीते

ऋ. ५.३२.१०

(५) स्वतः धारण करने वाली आत्म शक्ति

(६) चमकती धारवाली कुल्हाड़ी, (७) स्वयं अपने को या 'स्व' धन सम्पत्ति को धारण करने वाली प्रजा
प्र स्वधितीव रीयते
ऋ. ५.७.८
(८) शलाका
लोहितेन स्वधितिना
मिथुनं कर्णयोः कृधि
अ. ६.१४१.२; साम.मं.ब्रा. १.८.७;
(९) क्षुर (छुरा)।
ओषधे त्रायस्व
स्वधिते मैनं हिंसीः
वाज.सं. ४.१; ५.४२; ६.१५; श.ब्रा. ३.१.२.७; ६.४.१०; ८.२.१२
ऐ ओषधि, यजमन की रक्षा कर। ऐ छूरा, इस कुश को या यजमान को हिंसित न कर।
(१०) वज्र आदि शस्त्रास्त्र बल
वद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्रमस्ति
ऋ. १.१६२.९; वाज.सं. २५.३२; तै.सं. ४.६.८.४

सध्रीः - (१) एक स्थान पर (२) सहवासिनी।
सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयः
ऋ. २.१३.२

सध्रीची - (१) सहयोगी
संध्रीचीरिन्द्र ताः कृत्वा
अ. १९.८.६
(२) साथ रहने वाली और साथ ही प्रकट होने वाली शक्ति
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसानः
ऋ. १.१६४.३१; १०.१७७.३; अ. ९.१०.११; वाज.सं. ३७.१७; मै.सं ४.९.६:१२६.४; श.ब्रा. १४.१.४.१०; ऐ.आ. २.१.६.९; तै.आ. ४. ७.१; ५.६.५; नि. १४.३

सध्रीचीन - (१) समान रूप से ही स्थान पर एकत्र
सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि
अ. ३.३०.५,७
(२) साथ चलने वाला, (३) सहज
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र
ऋ. १.३३.११; मै.सं. ४.१४.१२; २३५.८; तै.ब्रा. २.८.३.४
हे इन्द्र, सूर्य या वायु, तू अपने सहज...से उस मेघ को ....।

सप्रचीनाः - ब.व.। (१) साथ वर्तमान (२) पञ्चोक्षण का विशेषण (२) पांच प्राण साथ विराजमन हैं। उसी प्रकार (३) पांच वर्ष बरसाने वाले मेघ, अग्नि, वायु, विद्युत् और सूर्य प्रकाश भी सध्रीचीन हैं।

सधुरा - (१) एक ही प्रकार का भार उठाते हुए, (२) समान रूप से एक ही केन्द्र में बद्ध
संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः
अ. ३.३०.५

स्वधृतिः - स्व + धृति। अपनी पूर्णधृति -धारण शक्ति
'इह स्वधृतिः स्वाहा
वाज.सं. २२.१९

सन - न.। (१) संविभावग युक्त वस्तु, (२) ऐश्वर्य, (३) देने योग्य जल या अन्न।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते
ऋ. १.९५.१०
सूर्य समस्त देने योग्य जलों य अन्नों को परिपाक योग्य औषधि वनस्पतियों के बीच में धारण पोषण करता है।
(४) धन आदि विभाग योग्य पदार्थ।
किं सनेन वसव आप्येन
ऋ. २.२९.३

सनकः - (१) सनन्ति सेवन्ते पर पदर्थान् ये ते सनकाः (दूसरे के पदार्थ भोगने वाले) (२) अधर्म से औरों के पदर्थ भोगने वाले।
अयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः
ऋ. १.३३.४

सनकः - (१) सनातन मूल कारण (२) सनातन त्रिकाल
प्र सप्त होता सनकादरोचत
ऋ. ३.२९.१४

सनकात् - सनतन से
सनकात् प्रेद्धो नमसोपवाक्यः
ऋ. १०.६९.१२

सनजाः - (१) सनातन प्रभु
पतिदिवः सनजा अप्रतीतः
ऋ. १०.१११.३
(२) दान देने के बाद दूसरे की स्त्री हो जाने वाली कन्या (३) सनातन परम पुरुष से उत्पन्न वेदवाणी।
सेयमस्मे सनजा पित्र्या धीः

ऋ. ३.३९.२

सनजा - द्वि.व.। (१) चिरकाल से विद्यमान प्राण अपन, (२) आकश और भूमि, (३) राजा और प्रजा (४) स्त्री. ए.व.। या सनातनात् जायते (चिरकाल से उत्पन्न) ।

द्विता विवव्रे सनजा सनीडे

ऋ. १.६२.७

मुख्य प्राण जिस प्रकार अन्नों द्वार एक आश्रय पर रहने वाले (सनीडे) चिरकाल से विद्यमान् (सनजा) प्राण और अपान दोनों को प्रकट करता है ।

अथवा,

मुख्य स्थान पर स्थित सूर्य किरणों से समान आश्रय वाली सदा से विद्यमान् आकाश और भूमि दोनों को विशेष रूप से व्यावती हैं ।

सनत् - (१) (अ.) । सदा, (२) क्रि. । भोग करें । (३) (सं) । सबको बढ़ाने वाला ।

सनली - (१) प्राणशक्ति ।

एषा सनत्नी सनमेव जाता

अ. १०.८.३०

सनद्रयिः - (१) ऐश्वर्य को देने वाला उदार पुरुष

परि युक्षः सनद्रयिः

ऋ. ९.५२.१

सनद्वानः - ऐश्वर्य प्राप्त

सनद्वाजः परि स्रव

ऋ. ९.६२.२३; साम. २.४१२

सनयः - (१) पुराण, (२) वृद्ध

युवं च्यवानं सनयं यथा रथम्
पुनर्यावानं चरथय तक्षथुः

ऋ. १०.३९.४

हे अश्विनीद्वय, या राजा और राज पुरुषों, तुम दोनों ने वृद्ध च्यवन ऋषि को या वृद्ध उपदेशक को उसी प्रकार युवा बना दिया या बनाते हो जैसे शिल्पी जीर्णरथ को ।

सनया - (१) पुरानी (लकड़ी)

कूचिज्ञायते सनयासु नव्यः

ऋ. १०.४.५

(२) क्रि.। सनोति (विभाग करता है, प्राप्त करत है) ।

सनवित्त - (१) सनात् वित्तः (सनातन से जाना हुआ) (२) सनातन से वेद से जाना हुआ ।

(३) सनतान वेगेन लब्ध -दया.

सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा

ऋ. ७.४२.२

(४) अनादि काल से प्राप्त

इदं ते पात्रं सनवित्तमिन्द्र

ऋ. १०.११२.६; शां.श्रौ.सू. ९.१४.३

सनश्रुत - (१) सदा काल से विख्यात, (२) वेद द्वारा कीर्ततित

आ तिष्ठति मघवा सनश्रुतः

ऋ. १०.२३.३; अ. २०.७३.४

(३) सन अर्थात् सत्यासत्य विवेकी पुरुषों से शास्त्रज्ञान का श्रवण करने वाला, (४) इन्द्र, परमेश्वर

पुरोडाशं सनश्रुत

ऋ. ३.५२.४

(४) सनातनानि शस्त्राणि श्रृणोति (सनातन शास्त्रों को सुनने वाला) दया.

(६) अग्नि, (७) सनातन से प्रसिद्ध एवं श्रमण मनन किया गया-परमेश्वर ।

अग्निं सुनूं सनश्रुतम् ।

ऋ. ३.११.४

(८) सनातन काल से श्रवणयोग्य (९) सनातन ज्ञान या वेद का बहुश्रुत विद्वान् (१०) सन् अर्थात् दान के कारण प्रसिद्ध-इन्द्र ।

गाथान्यं सनश्रुतम्

ऋ. ८.९२.२; सम. २.६४

(१२) तप और सनातन वेद में बहुश्रुत ।

सन्तति - (१) वंश का विस्तार करने वाला

उग्रो वां ककुहो ययिः
श्रृण्वे यामेषु सन्तनिः

ऋ. ५.७३.७

सन्तनि - (१) उत्तम कर्य कुशल, (२) सम्यक् प्रकार बढ़ाने वाला

पवमानः सन्तनिः प्रघ्नतामिव

ऋ. ९.६९.२

सन्तपन्ति - सन्ताप देते हैं ।

सं मा तपन्त्यभितः
सपत्नीरिव पर्शवः

ऋ. १.१०५.८; १०.३३.२; नि. ४.६

सपत्नियों की तरह मुझे ये विपत्तियाँ या सायण

के अनुसार कुएं के ईंट (पर्शवः) मुझे सन्तप्त कर रहे हैं ।

संतरम् – क्रि.वि.। खूब अच्छी तरह से
रुरुशतं चित् सन्तरं सं शिशाधि
ऋ.

सन्तरुत्र – दुःखों से भली प्रकार तारने वाला
अस्मे रयिं बहुलं सन्तरुत्रम्
ऋ. ३.१.१९; मै.सं. ४.१४.१५:२४.२.३

सन्तवीतवत् – (१) सन्तनोति (करता है, सम्पादन करता है। चलता है)। 'ततीत्वत्' धातु निपातन से सिद्ध है और सम्' उपसर्ग है । सम् + तवीत्वत् । धातु छः प्रकार के होते हैं प्रकृत्यन्त, सन्नन्त, यङन्त, यङ् लुगन्त, ण्यन्त तथा ण्यन्त सन्नन्त ।
(२) सायण ने इसका अर्थ प्रबद्ध बलवान् सन् (अत्यन्त बलवान्) किया है ।

सनस्थानः – संग्राम में अच्छी प्रकर स्थिर होकर युद्ध करने वाला ।
संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके
ऋ. १०.४२.४; अ. २०.८९.४

सन्तस्थाने – सम् + तस्थाने । अच्छी प्रकार स्थित द्यावापृथिवी ।
सन्तस्थाने अजरे इत ऊती
ऋ. १०.३१.७

सन्त्य – (१) विवेक, प्रीतिपूर्वक विभाग, दान और वर्तमन् व्यवहार में कुशल पुरुष
विप्रेभिर्विप्र सन्त्य
ऋ. ५.५१.३
(२) सन् + ति = सन्ति, सन्ति + यत् = सन्त्य, सन्तौ सनने । क्रिया से विभागे भवः स सन्त्यः अग्निः ।

अर्थ – अग्नि, (३) दान करने या पदार्थों का संविभाग करने में कुशल पुरुष
गार्हपत्येन सन्त्य
ऋतुना यज्ञनीरसि
ऋ. १.१५.१२
हे दान करने और उत्तम विद्या ऐश्वर्य आदि पदार्थों को विभाग या प्रदान करने में कुशल पुरुष तू गृहपति के पालन करने योग्य ऋतु से ही यज्ञ को सम्पादक करने वाले प्रमुख के लिए उत्तम व्यवहारों को सम्पादन कर और उत्तम विद्वानों को सुसंगत कर ।
(४) सत्यासत्यविवेकी श्रेष्ठ पुरुष
अग्ने विप्राय सन्त्य
ऋ. ३.२१.३; मै.सं. ४.१३.५:२०४.१२; का.सं. १६.२१; तै.ब्रा. ३.६.७.२; ऐ.ब्रा. २.१२.१२.

सन्यस् – धनों का परस्पर संविभाग करने वाले जनों के बीच न्यायानुकूल व्यवस्था करना
नव्यं कृणोसि सन्यसे पुराजान्
ऋ. ३.३१.१९

संददस्वान् – प्रदान करता हुआ
संददस्वान् रयिमस्मासु दीदिहि
ऋ. २.२.६; कौ.ब्रा. १९.९

संदधन्वे – संधान करता है, अर्थात् अपने को आश्वस्त करता है ।
संशग्म्येन मनसा दधन्वे
ऋ. ३.३१.१; नि. ३.४
अपुत्र पिता सुखीमन से (शग्म्येन मनसा) अपने को आश्वस्त करता है (संदधन्वे) ।

संदंश – कैंची के आकार से शाला में लगायी लकड़ी
संदंशानं पलदानाम्
अ. ९.३.५

संद्रव – इकट्ठा होना ।

संद्रवन्ति – साथ दौड़ते हैं । 'द्रु' धातु दौड़ने के अर्थ में प्रयुक्त है । 'द्रु' से ही 'दौड़ना' शब्द निकला है ।
यत्रानरः सं च वि च द्रवन्ति
ऋ. ६.७५.११; वाज.सं. २९.४८; तै.सं. ४.६.६.४; मै.सं. ३.१६.३ :१८७.३; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. ९.१९
जिस संग्राम में मनुष्य एक साथ हो पृथक् भागते हैं ।

संधनाजित् – (१) उत्तम विभूति और ऐश्वर्यों को वश में करने वाला
वसुजिति गोजिति संधनाजिति
अ. १३.१.३७
(२) समस्त धनों को विजय करने वाला
गव्यन्नभि रुव सन्धनाजित्
अ. ५.२०.३

सन्नत – एक दूसरे के अनुकूल
अग्निश्च पृथिवी च सन्नते ते मे सं नमतामदः

वाज.सं. २६.१

सनता – द्वि.व., वि. । अच्छे विनययुक्त स्त्री पुरुष ।
साध्वपांसि सनता न उक्षिते
ऋ. २.३.६

संनति – उत्तम भक्ति भाव
सूनृत संनतिः क्षेमः
अ. ११.७.१३

सन्नद्धा – सम् + नह् + क्त + टाप् = सन्नद्धा । सम्यक् प्रकर से बांधी हुई । 'इषु' का विशेषण ।
गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूत
ऋ. ६.७५.११; वाज.सं. २९.४८; तै.सं. ४.६.६.४; मै.सं. ३.१६.३ : १८७.२; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. २.५; ९.१९
इषु (बाण) स्नायु श्लेष्या या ज्या से (गोभिः) सन्नद्ध है ।

सन्नय – सत् । + नय = सन्नय । (१) उत्तम रीति वाला, (२) उत्तम मार्ग से प्रजा को ले जाने वाला
स सन्नयः स विनयः पुरोहितः
ऋ. २.२४.९

सन्नहन् – सन्नद्ध करता हुआ । नाभि शब्द सन्नहन से बना है (नाभिः सन्नहनात्) क्योंकि नाभि गर्भ को सन्नद्ध करता है ।

सन्यस् – सभी वासनाओं य बन्धनों को त्यागना
नव्यं दंसिष्ठ सन्यसे
ऋ. ८.२४.२६

स्कन्द – व्यापन
द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्याम्
अ. १८.४.२८; वाज.सं. १३.५; तै.सं. ३.१.८.३; ४.२.८.२; ९.५; मै.सं. २.५.१०:६१.१४; ३.२.६; २३.१५४.८.९: ११८.१०; क.सं. १३.९; १६.१५; ३५.८; श.ब्रा. ७.४.१.२०; तै.आ. ६.६.१.

स्कन्ध – स्कन्धावार छावनी
मरुतां स्कन्धाः
वाज.सं. २५.६; मै.सं. ३.१५.६:१७९.७

स्कन्धस् – स्कन्दिर् (गति और शोषण अर्थ में) + घञ् (कर्म में = स्कन्ध (द् क ध् पृषोदरदिवत्) । स्कन्धो वृक्षस्य समास्कन्नो भवति । अयमपि इतरः स्कन्ध । एतस्मादेव, आस्कन्नं काये (स्कन्ध वृक्ष में समाश्रित हो रहता है) । कन्धा अर्थ में प्रयुक्त स्कन्ध भी स्कन्दि धातु से ही बना है । क्योंकि वह भी शरीर में आश्लिष्ट रहत है । वेद में स्कन्ध शब्द के अन्त में स् पाया जाता है ।
अर्थ – (१) वृक्ष की शाखा, (२) कन्धा,
स्कन्धांसीव कुलिशेन विवृक्णा
ऋ. १.३२.५; मै.सं. ४.१२.३; १८५.१०; तै.ब्रा. २.५.४.३; नि. ६. १७
जैसे कुठार से बिलकुल छिन्न भिन्न वृक्ष की शाखाएं हों ।

स्कन्ध्या – कन्धे के चारों ओर निकलने वाली गण्डमाला
संयन्ति स्कन्ध्या अभि
अ. ६.२५.३

स्कन्न – स्कद् + क्त । अर्थ– (१) स्खलित हुआ, (२) परिणत हुआ,
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन
ऋ. ७.३३.११; नि. ५.१४
(३) प्रवाहित
यस्ते द्रप्सः स्कन्नो यस्ते अंशुः
ऋ. १०.१७.१३
(४) प्रदत्तः दिया हुआ

स्तन – (१) स्तन, (२) मधुर शब्दमय उपदेश
यस्ते स्तनः शशयुर्यो मयोभूः
ऋ. १.१६४.४९; अ. ७.११.१; वाज.सं. ३८.५; मै.सं. ४.९.७:१२७.७; ४.१४.३: २१९.८; ऐ.ब्रा. १.२२.२; १४.२.१.१५; ९.४.२८; तै.आ. ४.८.२; आश्व.श्रौ.सू. ३.७.६; ४.७.४
(३) ष्टन वन शब्दे । भ्वादि । माता का स्तन ।

स्तनथुः – गर्जन
सिंहस्य स्तनथोर्यथा
ऋ. ५.२१.६

स्तनयन् – गर्जता हुआ मेघ
स्तनयते स्वाहा
वाज.सं. २२.२६; तै.सं. ७.५.११.१; का.सं. (अश्व.) ५.२

स्तनयदमाः – (१) गरजते मेघ के सथ रहने वाले मरुद्गण, (२) अपने गृहों को उत्तम शब्दों से गुंजाने वाले विद्वान् ।
स्तनयदमा रभसा उदोजसः
ऋ. ५.५४.३

स्तनयन् – (१) गर्जन करता हुआ (२) माता के

स्तनों को उभाड़ता हुआ गर्भस्थ शिशु
वातभ्रजा स्तनयन्नेति वृष्ट्या
अ. १.१२.१

स्तनाभ्रज् - स्तनों के द्वारा बच्चों को पालने वाली गौ या माता।

स्पन्दन - (१) गति, चलना, (२) गोन्द, (३) किञ्चित् चलन
ओजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम्
ऋ. ३.५३.१९

स्पन्दना - लात मारने वाली गौ
स्थालीं गौरिव स्पन्दना
अ. ८.६.१७

स्पन्दयध्यै - आगे बढ़ने के लिए
दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै
ऋ. ४.२२.७

स्यन्द्र - जल
सद्यो यः स्यन्द्रो विसितो धवीयान्
ऋ. ६.१२.५
(२) चलनशील जंगम (३) गौ आदि पशु, (४) व्यय होने वाला धन (५) अश्वादि सैन्य
धनं न स्यन्द्रं बहुलं यो अस्मै
ऋ. १०.४२.५; अ. २०.८९.५
(६) शनैः शनैः आगे बढ़ने वाला, (७) धीरता युक्त गति वाला
ते स्यन्द्रासो नो क्षणो
अति ष्कन्दन्ति शर्वरीः
ऋ. ५.५२.३

स्यन्द्रा - द्वि.व.वि.। अश्विद्वय या स्त्री पुरुष का विशेषण (२) आगे बढ़ने में समर्थ स्त्री पुरुष

स्यन्द्रासः - ब.व.। प्रेरित करने वाले मरुत्
प्र स्यन्द्रासो धुनीनाम्
ऋ. ५.८७.३

स्यन्दमना - प्रवाह से या नदी रूप में बहने वाला जल
स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा
वाज.सं. २२.२५; तै.सं. ७.४.१३.१; का.सं. (अश्व.) ४.२.

स्यन्न - स्युद् + क्त + प् = स्यन्न। वेगवान्।
स्यन्न अश्वा इवध्वनो विमोचने
ऋ. ५.५३.७

स्वतवाः (स्वतवस्) - स्वयं बलवान्
मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः
ऋ. १.१५९.२
स्तुतियोग्य और सबको अपनाने वाले स्नेहों से (हवीमभिः) स्वयं बलवान् (स्वतवः) और प्रति पूज्य मानता हूँ (महि)।

स्वन् - (१) ध्वनि
यदि क्रोशमनु ष्वणि
ऋ. ६.४६.१४
(२) शब्दमय वेद
अव्ये जीरवधिष्वणि
ऋ. ९.६६.९

स्वनः - (१) सु + अनः = स्वनः। अर्थ-उत्तम चेतना या प्राण शक्ति का स्वामी आत्मा
दिवि स्वनो यतते भूम्यो परि
ऋ. १०.७५.३
(३) स्वन् + अच् = स्वनः।
अर्थ - शब्द
न यो वराय मरुतामिव स्वनः
ऋ. १.१४३.५

स्वनय - (१) स्वयं अपनी आज्ञा से चलने वाला, (२) अपनी स्वायत्तनीति से शासन करने वाला सेनापति या राजा
उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ताः
वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः
ऋ. १.१२६.३
स्वयं सबको अपनी आज्ञा से चलाने वाले सेनापति या राजा से (स्वनयेन) दिए हुए राष्ट्र को वहन करने वाली शक्तियों से युक्त (वधूयन्तः) दशों प्रकार के उत्तम बन्धुओं से युक्त (वधूमन्तः) रथों के समान अतिवेग से जाने वाले (श्यावा) रमण करने के सधन (रथासः) मुझे प्राप्त हों।

सनर - सन् + अरन् + सनर। संभज्यमान- परस्पर बांट लेने योग्य स्थावर धन।
द्रविणोदाः सनरस्य प्र यांसत्
ऋ. १.९६.८
वह ऐश्वर्यों का दाता परस्पर बंटने योग्य स्थावर धन हमें दे।

सना - (१) उत्तम भोगों को देने और भोगने वाली स्त्री।
सना अत्र युवतयः सयोनीः

ऋ. ३.१.६

(२) सनातन से चले आए धर्म

सना ता त इन्द्र नव्या आगुः

ऋ. १.१७४.८

नए विद्वान् तुझे वे अनेकानेक सनातन से चले आए प्रजापालनकारी धर्मों का उपदेश करें।

सनाजू - (१) सनातन काल से चला आता हुआ जीव (२) जीव सनातन जूः वेगः यस्य सः।

अनु यत् पूर्वा अरुहत् सनाजुवः।
नि नव्यसीष्वरासु धावते।

ऋ. १.१४१.५

जो जीव सनातन काल से चला आया (सनाजुवः) पूर्व की माताओं को प्राप्त होकर (पूर्वाः) जिस प्रकार बीज रूप में स्थित होकर अनुकूल स्थिति में जन्म को प्राप्त होता है (अनु अरुहत्) उसी प्रकार अवरा और अव की माताओं में भी नियम पूर्वक जन्म को प्राप्त होता है (निधावते)।

सनात् - (१) चिरन्त न।

सनादेव शीर्यते सनाभिः

ऋ. १.१६४.१३; अ. ९.९.११

वह चिरन्तन अक्ष (सनात् एव) समान नाभि या सदा एक सी नाभि वाला होने के कारण कभी शीर्ण नहीं होता (न शीर्यते) (२) पुराण पुरुष

अनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि

ऋ. ८.२१.१३; अ. २०.११४.१; साम. १.३९९; २.७३९

(३) अव्यय। अर्थ सदा, सनातन काल से

सनाद् राजभ्यो जुह्वा जुहोमि

ऋ. २.२७.१; वाज.सं. ३४.५४; का.सं. ११.१२; नि. १२.३६

सनाभिः - (१) समान नाभि से उत्पन्न, सगोत्र

सन्तभिर्यश्च निष्ट्यः

ऋ. १०.१३३.५; अ. ६.६.३

(२) समान जन्म वाला, (३) सम्बन्धी

(४) सदा एक सी नाभिवाला

सनादेव न शीर्यते सनाभिः

ऋ. १.१६४.१३; अ. ९.९.११

(५) एक गर्भ से उत्पन्न, ज्ञाति

(६) स्वजातीय

मेमं सनाभिरुत वान्यनाभिः

अ. १.३०.१

(६) समान बन्धुता में बंधा हुआ

रथानां न येऽरा. सनाभयः

ऋ. १०.७८.४

सनायु - (१) सनातनस्य कर्मणः कर्ता इव य आचरति सः (सनातम कर्मों के कर्ता के समान आचरण करने वाला -दया.)।

(२) सनातन से चला आता हुआ अनादि सिद्ध वेद के ज्ञान और कर्मों को करने वाला

सनायु वो नमसा नव्यो अर्कैः

सनातन से चलते आए, अनादि सिद्ध वेद के ज्ञान और कर्मों को करने वाले नर स्तुति करने योग्य है।

सन्ताय्यमान - अच्छी प्रकार से विस्मृत किया गया, फैलाता हुआ

मैत्रः शरसि संताय्यमाने

वाज.सं. ३९.५

संदान - न.। (१) बन्धन, उत्तम बंधन

संदानं वो बृहस्पतिः

अ. ६.१०३.१

(२) घोड़े के पग आदि में बांधने के लिए उत्तम बन्धन आगाड़ पछाड़ (३) दान आदि करने का धन वैभव और दण्ड बल

यद् वाजिनो दाम संदानमर्वतः

ऋ. १.१६२.८; वाज.सं. २५.३१; तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं. ३.१६.१ : १८२.१०; का.सं. (आश्व.) ६.४.

(४) उत्तम दान करने का नियन (४) दण्ड-भय,

(६) शिरो वेष्टन, मुकुट

संधा - (१) समस्त अंगों को जोड़ने वाली शक्ति,

(२) संधा नाम की ईश्वरी शक्ति

तत् संधा समदधान्मही

अ. ११.८.१५

संधाता - (१) मिलाने वाला, जोड़ने वाला

संधाता संधिं मघवा पुरूवसुः

ऋ. ८.१.१२; अ. १४.२.४७; साम. १.२४४; मै.सं. ४.९.१२: १३४.१; पंच.ब्रा. ९.१०.१; तै.आ. ४.२०.१; का.श्रौ.सू. २५.५.३०; आप.मं.पा. १.७.१.

(२) सन्धि करा देने वाला

सनि - ऐश्वर्य

तं सचन्ते सनयस्तं धनानि

ऋ. १.१००.१३

उसी को सब ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। और उसी को सब प्रकार के धन
(२) धनप्राप्ति
स नः सनिं मधुमतीं कृणोतु
अ. १९.३१.१४
(३) योग्य ज्ञान और उचित श्रमानुसार वेतन पुरस्कार देने वाला, (४) कर्म फलों का दाता-परमेश्वर। अंग्रेजी का सूर्यवाचक sun शब्द भी सन् धातु से बना हुआ है। sun भी ऐश्वर्य दाता है।
(५) स्त्री। सन् (प्राप्त करना) + इ = सनि। अर्थ-लाभ, प्राप्ति।
गर्तारुगिव सनये धनानाम्
ऋ. १.१२४.७; नि. ३.५
जैसे पति के कुल का धन पाने के लिए दक्षिणात्य स्त्री गर्तनामक अक्ष निर्वापन स्थान पर चढ़ती है।

सनित्र - परम श्रेष्ठ दान
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व
ऋ. ९.९७.२९

सनित्व - दान देने योग्य
वाजो विप्रेभिः सनित्वः
ऋ. ८.८१.८

सनिता - षण् + तृन् = सनित्। 'सनोति ददाति अस्यै इति सनिता ग्रहीता'।
इसके लिए भाग देते हैं अतः यह सनिता अर्थात् भाग का ग्रहण करने वाला है। अर्थ-(१) बहनोई, (२) धन का भागी पुत्र,
चकार गर्भं सनितुर्निधानम्
ऋ. ३.३१.२; नि. ३.६
पालते पोसते बहनोई के गर्भ धारण योग्य लड़की को बनावे।
(३) बांटने वाला, विभाग करने वाला -परमेश्वर।
विप्रेभिरस्तु सनिता
ऋ. १.२७.९; साम. २.७६७
वह विप्रों द्वारा धन ऐश्वर्य का प्रजाओं में विभाग करने वाला है।

सनितिः - (१) प्राप्ति।
नरस्तोकस्य सवितौ
ऋ. १.८.६; अ. २०.७१.२
(२) योग, संविभाग, (३) लाभ (४) विद्या की शिक्षा
जो पुत्र पौत्रादि सन्तानों को प्राप्त करने में गृहस्थ बनकर रहते हैं।

सनितुः निधानम् - उपभोक्ता अर्थात् पति के लिए गर्भधारण करने योग्य कन्या
चकार गर्भं सनितुर्निधानम्
ऋ. ३.३१.२

सनिष्ठा - उत्तम विभाजक, दानशील
स नो वृषन् सनिष्ठया
ऋ. ८.९२.१५

सनिष्णतः - क्रि.। भोग करो, दान करो
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत
श्रवष्यन्तः सनिष्णतः।
ऋ. १.३१.५; अ. २०.७५.३
वे एक से बढ़कर एक या पृथक् पृथक अपनी समस्त समृद्धि को भोग करें एवं अन्न तथा ऐश्वर्य की वृद्धि की कामना करते हुए दान भी करें।

सनिष्यदा आपः - विशेष वेग से बहने वाली जल धाराएं
शं ते सनिष्यदा आपः
अ. १९.२.१

सनिष्यन् - (१) जाने वाला, (२) सेवन करने की इच्छा वाला, (३) ज्ञान देने का इच्छुक विद्वान्
अत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे
ऋ. ३.२.३

सनिष्यु - (१) विभक्त करने वाली, (२) सुख ऐश्वर्य चाहने वाली
समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः
ऋ. १.५६.२; ४.५५.६
(३) उत्तम रीति से भोग से योग्य ऐश्वर्य को चाहने वाला।
(४) प्राप्त करने का इच्छुक
स्वः सनिष्यवः पृथक्
ऋ. १.१३१.२; अ. २०.७२.११
(५) दान देने की कामना वाला (६) ऐश्वर्य वेतन आदि का इच्छुक
इन्द्रं सनिष्युरूतये
ऋ. ८.६.४४
(७) स्वयं भोगने की कामना वाला

(८) वृत्ति देने वाला
मेधसाता सनिष्यतः
ऋ. ७.९४.६; साम. २.१५२; तै.सं. १.७.८.२

सनिस्रस – (१) पराक्रमी, (२) विक्रम से शत्रु पर चढ़ाई करने में चतुर
सनिस्रसो नामासि
अ. ५.६.४

सनिस्रसाक्षः – योगी जिसके अक्ष अर्थात् इन्द्रियों के वेग शान्त हो गए हैं ।
नमः सनिस्रसाक्षेभ्यः
अ. २.८.५

सन्दित – (१) बल से खण्डित्त, (२) थका मांदा, श्रान्त,
रथीरश्वं न सन्दितम्
ऋ. १.२५.३
जिस प्रकार रथी बल से खंडित थके मांदे अश्व को पुचकारता है ।
(३) अच्छी प्रकार से शत्रुओं को काटने वाला, (४) न्यायपूर्वक विभाग करने वाला
बृहज्जालेन संदिताः
अ. ८.८.४
संदिताय स्वाहा
वाज.सं. २२.७; तै.सं. ७.१.१९.१; मै.सं. ३.१२.३:१६०.१४, का.सं. (अश्व.) १.१०
(५) बाधा गया, काटा गया ।-सा.
(६) तेजस्विता में बढ़ने वाला शत्रुबल-ज.दे.श.

सन्धि – (१) सन्धि कराने वाला अधिकारी, (२) सन्धानक्रिया
सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व
वाज.सं. १५.६; मै.सं. २.८.८:११२.६
(३) जोड़, मेल, सुलह
सन्धाता सन्धि मघवा पुरूवसुः
ऋ. ८.१.१२; अ. १४.२.४७; साम. १.२४४; पंच.ब्रा. ९.१०.१; का. श्रौ. २५.५.३०
(४) पर स्त्री गमन, (५) पर राष्ट्र से सन्धि
सन्धये जारम्
वाज.सं. ३०.९; तै.ब्रा. ३.४.१.४

स्वनिनः – मेघ के समान बरसने वाले मरुद्गण
ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः
ऋ. ३.२६.५; तै.ब्रा. २.७.१२.४

संदृश् – (१) निष्पक्षपात, (२) उत्तम शासक
ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्
वाज.सं. ३६.१९

सनीड – (१) समान आश्रम वाला, (२) समीप ।
(३) समानः नीडः सनीडः । एक ही आश्रम में जुड़ा हुआ

सनीडाः पितरः – (१) एक ही आश्रय स्थान में रहने वाले पितर
तत् ते संगत्य पितरः सनीडाः
अ. १८.२.२६
(२) समान लोक में रहने वाले पितर

स्वनीक – (१) सु + अनीक । सुन्दरा मुख वाला, सुमधुरभाषी (२) अग्नि
अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैः
ऋ. ६.१५.१६; तै.सं. ३.५.११.२; मै.सं. ४.१०.४:१५२.४; का.सं. १५.१२; ऐ.ब्रा. १.२८.२६; को.ब्रा. ९.२.
(३) उत्तम सैन्य का स्वामी
त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे
ऋ. २.१.८

संनी – तय हो जाना, निःशेष हो जाना
यथर्णं संनयन्ति
अ. ६.४६.३; अ. १९.५७.१

सनुतः – अ. । (१) सदा,
आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु
ऋ. ६.४७.१३; १०.७७.६; १३१.७; अ.७.९२.१, २०.१२५.७; वाज.सं. २०.५२; तै.सं. १.७.१३.५; मै.सं. ४.१२.५:१९१.७; का.सं. ८.१६: नि. ६.७
इन्द्र शत्रुओं को सदा दूर ही रखें पृथक् या नष्ट करें ।
(२) अन्तर्हित । इस दशा में 'सनुतः' सनुतत् शब्द के द्वितीया बहुवचन का यह रूप है ।
(३) कार्य और दल से
सनुतर्धेहि तं ततः
ऋ. ८.९७.३
सदा के लिए अर्थ में
यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत
ऋ. २.२९.२
देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः
ऋ. ६.५१.२

सनुत् – एक वचन । अन्तर्हित

सनुत्यः – (१) निश्चित रूप से छिपा हुआ ।

यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने
ऋ. ६.५.४; का.सं. ३५.१४ ; ऐ.ब्रा. १.१९.७; को.ब्रा. ८.४; आश्व. श्रो.सू ४.६.३; आप.श्रौ.सू. १४.२९.३;
यो नः सनुत्य उत वा जिघ्नलुः
ऋ. २.३०.९
(२) चिरस्थायी
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य
वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम्
ऋ. ६.६२.१०

सनुत्री - उत्तम फलदायक
सिध्रा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीः
ऋ. १०.७.४
(२) यथा योग्य भोजन, मान आदर का वितरण करने वाली कुल वधू
जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री
ऋ. १.१२३.२
ऐश्वर्य अन्न एवं संग्राम को विजय करती हुई (वाजं जयन्ती) तथा यथा योग्य भोजन, मान और आदर का वितरण करती हुई (सनुत्री) कुलवधू या उषा......

संदृक् - (१) संद्रष्टा, सम्यक् प्रविभागेन द्रष्टा (सम्यक् प्रकार से सब कुछ देखने वाला आदित्य) (२) विश्वकर्मा ।
(३) सम् + दृश् + क्विप्
धाता विधाता परमोत संदृक्
ऋ. १०.८२.२; वाज.सं. १७.२६;तै.सं. ४.६.२.१; ५.७.४.३; का.सं . १८.१; नि. १०.२६

संदृक्षसे - सम्यक् दृश्यसे (अच्छी तरह दीख पड़ता है। यहाँ 'यक्' का अभाव है और बाहुलक से 'सप्' हुआ है । तथा श् का क् और पुनः क् स् का क्ष हो गया है ।

सन्दशि - सम्यक् दर्शनाम् (सम्यक् दर्शन के लिए) । यहां निमित्त अर्थ में सप्तमी है ।

संदृष्टि - (१) सम्यक् दृष्टि, (२) अपने प्रकाश से स्पष्ट दिखलाने वाला गुण
संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः
ऋ. २.४.४
(३) सम्यक् दर्शन ।
भद्रायान्ते रणयन्त संदृष्टौ
ऋ. ६.१.४; मै.सं. ४.१३.६: २०६.१२; का.सं. १८.२०; तै.ब्रा. ३.६.१०.२
वे स्तुत्य अग्नि या परमात्मा के सम्यक् दर्शन के लिए (भद्रायां संदृष्टौ) अपने को रमाते हैं (रणयन्त) ।
(४) सम्यक् दर्शन, यथार्थ तत्व ज्ञान
रण्वः सन्दृष्टौ वितुमां इव क्षयः
ऋ. १.१४४.७; १०.६४.११
यथार्थ तत्व ज्ञान में (संदृष्टौ) रमण करने वाला (रण्वः) होकर अन्न से भरापूरा गृह के समान (पितुमान क्षयः इव) सुख से आश्रय योग्य है । पुनः -
भद्राणां ते रणयन्ति संदृष्टौ
ऋ. ६.१.४, मै.सं. ४.१३.६: २०६.१२, का.सं. १८.२०, तै.ब्रा. ३.६.१०.२
वे भद्र संदर्शन में रमण करते हैं । अर्थात् उन्हें अभद्र के दर्शन नहीं होते ।

सनेमं - सम्भजेमहि । (सम्भाग करें, परस्पर बांटे) ।

सनेमि - (१) पुरातन (२) शीघ्र
सनेम्यस्मद् युयवन्नमीवाः
ऋ. ७.३८.७; वाज.सं. ९.१६; २१.१०; तै.सं. १.७.८.२; मै.सं. १.११.२: १६२.११; का.सं. १३.१४; श.ब्रा. ५.१.५.२२ नि. १२.४४
पुरातन रोगों को (सनेमि अमीवाः) हम से (अस्मद्) दूर करें (युयवन्) ।
अथक,
रोगों को (अमीवाः) हम से (अस्मत्) शीघ्र (सनेमि) दूर करें (युयवन्) ।
(३) पहले से संगृहीत
(४) सनातन पुरातन-दया. ।
अम्यक् सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे
सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति
ऋ. १.१६९.३
हे इन्द्र, वह तेरी प्रसिद्ध वज्रनाम की शक्ति जब मेघ के पास जाती है । तो मरुत भी हमारे लिए चिरसंचित जल बरसाने लगते हैं-यास्क।
हे विद्वान् , हमें आत्म ज्ञान देने वाली विद्या प्राप्त हो जिससे मनुष्य सनातन अजन्मा परमेश्वर को जानते हैं ।-दया.
यास्क ने इसका अर्थ 'शीघ्र' किया है । 'सनेमि अमीवाः युयवन्' का अर्थ उन्होंने यों दिया है- 'पुराने रोगों को हटावें या दोनों को शीघ्र

हटावे' ।

सनेरू – द्वि.व. । ग्रहण करने वाले

घर्मेव मधु जठरे सनेरू

ऋ. १०.१०६.८

संदेश्यः – (१) सब देश में सर्वत्र समान भाव से रहने वाला

यः संदेश्यो वरुणो यो विदेश्यः

अ. ४.१६.८

(२) जिसका देह रूप देश जीर्ण हो गया है, (३) जो आत्म ज्ञान का उत्तम रूप से उपदेश करता है ।

नमः संदेश्येभ्यः

अ. २.८.५

संदेश्यैनस – बड़ों के प्रति किया गया ताना, मजाक आदि पाप

संदेश्यादभिनिष्कृतात्

अ. १०.१.१२

सनोजा – अनादि, अजन्मा

सनोजा अनपच्युतः

ऋ. १०.२६.८

संतोदिनौ – मरणकाल में समस्त शरीर में व्यथा उत्पन्न करने वाले मन और जीव

अथो संतोदिनावुत

अ. ७.९५.३

स्तनौ – (१) दोनों स्तन

स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः

ऋ. २.३९.६

सप – सपति स्पृशति सुखपतीति सपः ।

अर्थ है- शप, पुरुषेन्द्रिय

सपःसपतेः स्पृशति कर्मणः (सप स्पर्शार्थक सप धातु से बना है) ।

सप से स्त्री भग का स्पर्श किया जाता है ।

वस्तुतः स्पर्श से सुखातिशय लक्षित है ।

सपत्नः – (१) शत्रु ।

यः सपत्नो योऽसपत्नः

अ. १.१९.४

(२) बराबर प्रभुत्व आदि रखने वाला शत्रु

सपत्नो यः पृतन्यति

अ. ६.७५.१; तै.ब्रा. ३.३.११.३; आप.श्रौ.सू. ३.१४.२.

सपत्न कर्शनः – शत्रुओं को जीतने वाला

अथो सपत्नकर्शनः

अ. ८.५.१२

सपत्न सपण – परायों के पदार्थों पर अपना प्रभुत्व चाहने वाले दुष्टों का विनाशक परमेश्वर

सपत्न क्षपणमसि

अ. २.१८.२

(२) शत्रुओं का नाशक

सपत्न क्षयणो मणिः

अ. १.२९.४

सपत्नक्षित् – शत्रुओं का नाशक

अनिशिताऽसि सपत्नक्षित्

वाज.सं. १.२९

सपत्नघ्नी – शत्रुओं का नाश करने वाली

असपत्ना सपत्नघ्नी

ऋ. १०.१५९.५; आप.मं.पा. १.१६.५

सपत्नचातन – शत्रुनाशकारी बल

सपत्नक्षयणमसि सपत्न चातनं मे दाः स्वाहा

अ. २.१८.२

सपत्नदम्भन – (१) शत्रुओं को मारने वाला, शत्रु नाशक

व्यग्ने सपत्नदम्भनम्

वाज.सं. ३.१८; तै.सं. १.१.१०.२; ५.५.४; ३.५.६.१; मै.सं. १.५ .२:६७.१४ च का.सं. ६.९; श.ब्रा. २.३.४.२१.

सपत्नदम्भानमणि – शत्रुनाशक यन्त्र, ताबीज

सपत्नदम्भनं मणिम्

अ. १०.६.२९

सपत्नसाही – शत्रुओं का नाश करने वाली

सिंह्यसि सपत्नसाही

वाज.सं. ५.१०; का.सं. २.९; २५.६; श.ब्रा. ३.५.१.३३;३६

सपति – (१) सप् धातु स्पर्श अर्थ में आया है । 'षप्' समवाये अर्थात 'षप्' धातु समवाय, सम्बन्ध या स्पर्श अर्थों में आया है ।

सपत्नी – समानी पत्नी, सपत्नी, सौत ।

संमा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शतः

ऋ. १.१०५.८; १०,३३,२; नि. ४.६

स्नपनी – स्नान करने योग्य जल

आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्तु

अ. १४.१.३९; आप.मं.पा. १.१.७.

सपत्नी – समान रूप से पति पत्नी होकर रहने

वाले

वृष्णे सपत्नी शुचये सुबन्धू

ऋ. ३.१.१०

सपन्ता – द्वि.व. । प्राप्त करते हुए ।

ऋतमृतेन सपन्ता

ऋ. ५.६८.४; साम. २.८१.१६.

सपर्यतः – अभिनन्दित करते हैं । पूजा करते हैं ।

श्रवो नृम्णं च रोदती सपर्यतः

ऋ. १०.५०.१; वाज.सं. ३३.२३; नि. ११.९

जिस इन्द्र का यश, सैन्यबल कौ द्यौ और पृथिवी (रोदसी) अभिनन्दित करती है ।

सपर्य – सेवा करना ।

सपर्यन् – पूजयन् । 'सपर' धातु पूजनार्थक है । सपर् + शतृ = सपर्यन् (यक् प्रत्यय) ।

हे पुत्रोत्पादन समर्थ रेतस् को धारण करने वाले जामाता की पूजा करता हुआ (सपर्यन्) कन्या का पिता.....

सपर्युः – उत्तम सपर्या, सेवा या प्रतिष्ठा चाहने वाला

सपर्येम सपर्यवः

ऋ. २.६.३

सपर्यू – द्वि.च. । दो उत्तम सेवक या स्त्रीपुरुष ।

आ ते सपर्यू जवसे युनज्मि

ऋ. ३.५०.२

सपर्येण्यः – पूजा, उपासना, सत्कार सेवा करने के योग्य

सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्वग्निः

ऋ. ६.१.६; मै.सं. ४.१३.६:२०६.१५; का.सं. १८.२०; तै.ब्रा. ३.६.१०.३

सप्तर्षि – (१) सात प्राण–दो कान (गौतम् और भरद्वाज) दो चक्षु (विश्वामित्र और जमदग्नि), दो नासिका (वसिष्ठ और कश्यप) और मुख (अत्रि)

तदासत ऋषयः सप्त साकम्

अ. १०.८.९

सप्तन (सप्त) – सप्लृ + क्त = सप्त । सप्त सप्ता संख्या (सप्त प्रवृद्ध या उपरिगत संख्या है) ।

अर्थ – (१) सात अंक, (२) सूर्य की सात किरणें जिन्हें सूर्य के अश्व भी कहे जाते हैं । (३) सप्त ऋषिः (४) सप्तस्तोत्र

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रम्

ऋ. १.१६४.२; अ. ९.९.२.; १३.३.१८; तै.आ. ३.११.८; नि. ४.२७

एक चक्र वाले रथ रूपी सूर्य में सात किरण रूपी अश्व जुड़ते हैं । लैटिन में sept सप्त का वाचक है और फारसी में 'हप्त' इसी सप्त का अपभ्रंश है ।

सप्तअर्धगर्भाः – (१) ज्ञान या सर्पण करने वाले या व्यापने वाले किरण जो अर्ध अर्थात् समृद्धतम जलांश को अपने भीतर ग्रहण करते हैं । (२) अपने से अधिक शक्तिमान परमेश्वर के बल ऐश्वर्य के भीतर धारण करने वाले सातो तत्व–महत् , अहंकार और पांच सूक्ष्मभूत

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतः

विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि

ऋ. १.१६४.३६; अ. ९.१०.१७; नि. १४.२१

सप्तअश्वाः – (१) शब्दों का भोग करने वाला सात सर्पण शील प्राण, (२) सूर्य की सात किरणें ।

सप्तचक्रं सप्तवहन्त्यश्वः

ऋ. १.१६४.३; अ. ९.९.३

सप्त आदित्याः – (१) सात–ऋतु (२) सात सूर्य, (३) भूमि के सात रक्षक, (४) राजा के सात सचिव

देवा आदित्या ये सप्त

ऋ. ९.११४.३; तै.आ. १.७.५

सप्त आपः – (१) सर्पणशील, (२) शरण में प्राप्त प्रजाएं

अस्मा आपो मातरः सप्त तस्थुः ।

ऋ. ८.९६.१

सप्तऋषयः – ऋषि शब्द का अर्थ रश्मि भी है । निरुक्त में सप्त ऋषीन् ' का अर्थ सप्त ऋषीणानि ज्योतींषि (सात ज्योतियों को) किया है । ऋषी (गत्यर्थक) + कीनन् = ऋषीया । ज्योतिस् रस का आकर्षण करता है । रसाकर्षण भी एक प्रकार की गति ही है ।

अर्थ – (१) सूर्य की सात रश्मियां–आधिभौतिक अर्थ (२) शरीर की सात इन्द्रियाँ आध्यात्मिक अर्थ

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे

वाज.सं. ३४.५५; नि. १२.३७

सातर श्मियां सूर्य के शरीर में निहित हैं ।

अत्रासत ऋषयः सप्त साकम्

नि. १२.३८
(३) सात प्रसिद्ध ऋषि जिन्हें सप्तर्षि कहते हैं। ये ऋषि हैं- गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप और अत्रि।
(४) मन सहित ज्ञानेन्द्रिय और बुद्धि भी सप्त ऋषि है।
(५) शतपथ ब्राह्मण ने दो कान, दो आंख, दो
नाक और जिह्वा को
कर्मेन्द्रिय है। ज्ञान को
से भरद्वाज है, विश्वा
हैं जिससे ज्योति चम
प्राणसंचार का मार्ग न
का अर्थ नाक है। प्र
नासिका है और दूसर
मुख अत्रि है (अत्रि इ
(४) त्वक् चक्षुः श्रव
लक्षणाः इति महीधरः
महीधर के अनुसार
श्रवण, रसना, घ्राण,
(५) विषयों को
ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और ब
(६) षडिन्द्रियाणि मन
(७) सर्पणशील दूर त
दृष्टि या अस्त्रशस्त्र
(८) सात प्रकार के अ
(९) सात प्रकार के द
(१०) सात प्राणों की स
समानां सप्त ऋषयः
ऋ. ८.२८.५

सप्तऋषिवान् - सप्तऋषियों
विश्वकर्माणं ते सप्तऋ
अ. १९.१८.७

सप्त ऋषीन् परः - सातों
अतिक्रमण कर उनसे भी परे- विश्वकर्मा प्रभु
यत्रा सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः
ऋ. १०.८२.२; वाज.सं. १७.२६; मै.सं. २.१०.३: १३४.४; नि. १०. २६

सप्तऋषीन् पर एकः - (१) सात या गति शील रश्मियों से परे एक आदित्य, (२) इन्द्रियों से परे क्षेत्रज्ञ आत्मा।
यत्रा सप्तऋषीन् पर एकमाहुः

सप्तकारवः - (१) सात क्रियाशील प्राण, (२) सूर्य की सात किरण
दिव इत्था जीजवत् सप्त कारून्
ऋ. ४.१६.३; अ. २०.७७.३
काली कराली च मनो जवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा
स्फुलिंगिनी विश्वरुची च देवी
तजिह्वा
र्द शीर्षाणि
के सात
हाथी, गधा, अश्व और
श्वरूपाः
तरस्तु
म.मं.ब्रा. २.२.१४; हि.गृ.सू.
ऋषि, (२) सात रश्मियों
आत्मा
धाम्
गृध्र, (२) विषयों की
इन्द्रियगण
वयम्
, विषयों तक गति करने
देह, (२) अयन, ऋतु.
और मुहूर्तरूप काल के
वाः
ऋ. १.१६४.३; अ.९.९.३
(३) सात ऋतुरूपी चक्रों से युक्त (४) सात धातुओं के चक्र अर्थात् उत्पन्न होंने और बदलते रहने की क्रिया से युक्त देह।
सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम्
ऋ. २.४०.३; मै.सं. ४.१४.१: २१५.१; तै.ब्रा. २.८.१.५
(४) सूर्य के साथ ग्रह

वाले
वृष्णे सपत्नी शुचये सुबन्धू
ऋ. ३.१.१०

सपन्ता – द्वि.व. । प्राप्त करते हुए ।
ऋतमृतेन सपन्ता
ऋ. ५.६८.४; साम. २.८१.१६.

सपर्यतः – अभिनन्दित करते हैं । पूजा करते हैं ।
श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः
ऋ. १०.५०.१; वाज.स
जिस इन्द्र का यश
पृथिवी (रोदसी) अ

सपर्य – सेवा करना ।

सपर्यन् – पूजयन् । 'सप
+ शतृ = सपर्यन् (
हे पुत्रोत्पादन समर्थ
जामाता की पूजा क
का पिता.....

सपर्युः – उत्तम सपर्या,
वाला
सपर्येम सपर्यवः
ऋ. २.६.३

सपर्यू – द्वि.च. । दो उत्त
आ ते सपर्यू जवसे
ऋ. ३.५०.२

सपर्येण्यः – पूजा, उपास
योग्य
सपर्येण्यः स प्रियो वि
ऋ. ६.१.६; मै.सं. ४.१३.
तै.ब्रा. ३.६.१०.३

सप्तर्षि – (१) सात प्राण
भरद्वाज) दो चक्ष
जमदग्नि),दो नासि
कश्यप)और मुख (अ
तदासत ऋषयः सप्त
अ. १०.८.९

सप्तन (सप्त) – सप्लृ + क्त = सप्त । सप्त सप्ता संख्या (सप्त प्रवृद्ध या उपरिगत संख्या है) ।

अर्थ – (१) सात अंक, (२) सूर्य की सात किरणें जिन्हें सूर्य के अश्व भी कहे जाते हैं । (३) सप्त ऋषिः (४) सप्तस्तोत्र
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रम्
ऋ. १.१६४.२; अ. ९.९.२.; १३.३.१८; तै.आ. ३.११.८; नि. ४.२७
एक चक्र वाले रथ रूपी सूर्य में सात किरण रूपी अश्व जुड़ते हैं । लैटिन में sept सप्त का वाचक है और फारसी में 'हप्ल' इसी सप्त का अपभ्रंश है ।

सप्तअर्धगर्भाः – (१) ज्ञान या सर्पण करने वाले या व्यापने वाले किरण जो अर्ध अर्थात् समृद्धतम
भीतर ग्रहण करते हैं । (२)
क्तिमान परमेश्वर के बल
रण करने वाले सातो तत्व-
र पांच सूक्ष्मभूत
रेतः
शा विधर्मणि
.१०.१७; नि. १४.२१
ों का भोग करने वाला सात
२) सूर्य की सात किरणें ।
श्वः
९.३
सात-ऋतु (२) सात सूर्य,
रक्षक, (४) राजा के सात
म
१.७.५
शील, (२) शरण में प्राप्त
सप्त तस्थुः ।
का अर्थ रश्मि भी है ।
' का अर्थ सप्त ऋषीणानि
तयों को) किया है । ऋषी
= ऋषीया । ज्योतिस् रस
है । रसाकर्षण भी एक
।

अर्थ – (१) सूर्य की सात रश्मियां-आधिभौतिक अर्थ (२) शरीर की सात इन्द्रियाँ आध्यात्मिक अर्थ
सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे
वाज.सं. ३४.५५; नि. १२.३७
सातर श्मियां सूर्य के शरीर में निहित हैं ।
अत्रासत ऋषयः सप्त साकम्

नि. १२.३८

(३) सात प्रसिद्ध ऋषि जिन्हें सप्तर्षि कहते हैं। ये ऋषि हैं- गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप और अत्रि।

(४) मन सहित ज्ञानेन्द्रिय और बुद्धि भी सप्त ऋषि है।

(५) शतपथ ब्राह्मण ने दो कान, दो आंख, दो नाक और जिह्वा को सप्तर्षि कहा है। गौतम कर्मेन्द्रिय है। ज्ञान को भली भांति धारण करने से भरद्वाज है, विश्वामित्र चक्षु, जम दग्नि, नेत्र हैं जिससे ज्योति चमकती है। दूसरी आंख प्राणसंचार का मार्ग नासिका है। अतः वसिष्ठ का अर्थ नाक है। प्राण के संचार का मार्ग नासिका है और दूसरी नासिका कश्यप है। मुख अत्रि है (अत्रि इति अत्रिः)।

(४) त्वक् चक्षुः श्रवण रसन घ्राण मनो बुद्धि लक्षणाः इति महीधरः।

महीधर के अनुसार सपृर्षि है-त्वक्, चक्षु, श्रवण, रसना, घ्राण, मन और बुद्धि।

(५) विषयों को दिखलाने वाले पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि

(६) षडिन्द्रियाणि मनः सप्त भाजि-उवट

(७) सर्पणशील दूर तक वेग से जाने वाली दृष्टि या अस्त्रशस्त्र

(८) सात प्रकार के आयुध

(९) सात प्रकार के दर्शन

(१०)सात प्राणों की सात प्रकार की शक्तियाँ

सप्तानां सप्त ऋषयः

ऋ. ८.२८.५

सप्तऋषिवान् - सप्तऋषियों से युक्त विश्वकर्मा

विश्वकर्माणं ते सप्तऋषिः वन्तमृच्छन्तु

अ. १९.१८.७

सप्त ऋषीन् परः - सातों दर्शनकारी इन्द्रियों को अतिक्रमण कर उनसे भी परे- विश्वकर्मा प्रभु

यत्रा सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः

ऋ. १०.८२.२; वाज.सं. १७.२६; मै.सं. २.१०.३ः १३४.४; नि. १०. २६

सप्तऋषीन् पर एकः - (१) सात या गति शील रश्मियों से परे एक आदित्य, (२) इन्द्रियों से परे क्षेत्रज्ञ आत्मा।

यत्रा सप्तऋषीन् पर एकमाहुः

सप्तकारवः - (१) सात क्रियाशील प्राण, (२) सूर्य की सात किरण

दिव इत्था जीजवत् सप्त कारून्

ऋ. ४.१६.३; अ. २०.७७.३

काली कराली च मनो जवा च
सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा
स्फुलिंगिनी विश्वरुची च देवी
निलायमाणा इति सप्तजिह्वा

मुण्डक

सप्तखानि - सात इन्द्रियाँ

कः सप्तखानि वि ततर्द शीर्षाणि

अ. १०.२.६

सप्त ग्राम्या पशवः - गाँव के सात पशु-गौ, बकरी, भेड़, हाथी, गधा, अश्व और ऊंट।

ये ग्राम्याः पशवो विश्वरूपाः
तेषां सप्तानां मयि रन्तिरस्तु

अ. ३.१०.६;

आप.श्रौ.सू. ६.५.७; साम.मं.ब्रा. २.२.१४; हि.गृ.सू. २.१७.२

सप्तगुः - (१) एक वैदिक ऋषि, (२) सात रश्मियों या सात प्राणों वाला आत्मा

प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधाम्

ऋ. १०.४७.६

सप्तगृध्राः - (१) सात गृध्र, (२) विषयों की आकांक्षा करने वाले इन्द्रियगण

सप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम्

अ. ८.९.१८

सप्तचक्र - (१) सर्पणशील, विषयों तक गति करने वाले इन्द्रियों से युक्त देह, (२) अयन, ऋतु. मास, पक्ष, अहोरात्र और मुहूर्तरूप काल के सात चक्र

सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः

ऋ. १.१६४.३; अ.९.९.३

(३) सात ऋतुरूपी चक्रों से युक्त (४) सात धातुओं के चक्र अर्थात् उत्पन्न होने और बदलते रहने की क्रिया से युक्त देह।

सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम्

ऋ. २.४०.३; मै.सं. ४.१४.१ः २१५.१; तै.ब्रा. २.८.१.५

(४) सूर्य के साथ ग्रह

(५) सात मूर्धन्य प्राणों का चक्र या समूह
प्रथमे अन्य उपरे विचक्षणम्
(६) मूल अधिष्ठान, नाभि, मणिपुर, आज्ञा, सोम, सहस्र दलवाला सात चक्र
(७) मन सहित छः इन्द्रिय रूप सात अरों से युक्त शरीर

सप्तचक्राः - (१) सात या सर्पणशील चक्र या (२) गतिशील कर्ता रूप जीव, (३) निरन्तर लौटकर आने वाली सात ऋतुएं
सप्त चक्रान् वहति काल एषः
अ. १९.५३.२

सप्तजाताः - (१) सात प्रकार के उत्पात (२) सामने की दिशा में जहाँ शत्रु हो उस दिशा को छोड़ शेष सात दिशाओं में सात महास्त्रों की योजना
सप्त जातान् न्यर्बुदे
उदाराणां समीक्षयन्
अ. ११.९.६

सप्तजामयः - (१) सात बन्धुजन, (२) समवाय या संघ बुनाकर रहने वाले
होतारः सप्तजामयः
ऋ. ९.१०.७

सप्ततन्तवः - (१) सात तन्तु, (२) देह के घटक साथ धातु, (३) सात सोम और पाक यज्ञ (४) सात प्राणमय तन्तु-सात प्राण, (५) सात प्राकृतिक विकार - पंचभूत महान् और अहंकार ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्
ऋ. १.१६४.५; अ. ९.९.६

सप्तति - सत्तर
आ षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम्
ऋ. २.१८.५

सप्ततिश्चसप्त - (१) सतहत्तर नाड़ियाँ या तन्तु केन्द्र
अधीन्वत्र सप्ततिं च सप्त च
ऋ. १०.९३.१५

सप्ततन्तुः - (१) सात छन्दों या शीर्षण्य प्राणों से करने योग्य यज्ञ
पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम्
ऋ. १०.५२.४; १२४.१
(२) सात प्राणों या
देह धारक सात धातुओं वाला शरीर

सप्तथः - (१) सर्वव्यापक (२) षट् विकारों से अतिरिक्त सातवाँ प्रभु
भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः
ऋ. १०.९९.२
(३) सातवां
(४) मुख्य प्राण

सप्तथी - (१) आगे बढ़ने वाली (२) छः मनसहित ज्ञानेन्द्रियों के बीच सातवीं वाणी (३) सरस्वती नदी
सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता
ऋ. ७.३६६

सप्तदश - (१) शुक्रग्रह से उत्पन्न सप्तदश स्तोम, (२) सप्तदश अंगों वाला राज्य और उस पर स्थित राजा (३) सप्त दश नामक आत्मा
शुक्रात् सप्तदशः
वाज.सं. १३.५६

सप्तदशाक्षर - (१) सोलह कलाएं तथा सत्रहवीं ब्रह्मकला (२) राजा के सोलह अमात्य और अपनी मति (३) प्रजापति की सत्रह शक्तियाँ
प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण
सप्तदशं स्तोममुदजयत्
वाज.सं. ९.३४; तै.सं. १.७.११.२; श.ब्रा. ५.२.२.१७

सप्तदानवः - (१) सात सर्पणशील दानव या मेघ-सा.
(२) सातज्ञान प्रदाता इन्द्रियाँ-ज.दे.श.
आ दर्षते शवसा सप्त दानून्
ऋ. १०.१२०.६; अ. २०.१०७.९; नि. ११.२१.
जो परमात्मा इन्द्र बल से सात सर्पण शील दानवों या मेघों को मारता या विदीर्ण करता है । -सा. ।
जो परमात्मा बल से सात ज्ञान प्रदाता इन्द्रियों को (सप्तदानून्) पराभूत करता है (आदर्षते) ।

सप्तद्याव - सूर्य की सात किरणें
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारुन्
ऋ. ४.१६.३; अ. २०.७७.३

सप्तदिशः - (१) सात दिशाएं, (२) सात आदेश करने वाले
सप्त दिशो नाना सूर्याः
ऋ. ९.११४.३; तै.आ. १.७.४

सप्तदीक्षाः - (१) सात दीक्षाएं-नियत कर्म या ज्ञान-साधन के सामर्थ्य
सप्त च्छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः

अ. ८.९.१७

सप्तद्युम्नानि - (१) फैलाने वाले धन और यश, (२) सात प्रकार के धन, (३) सात प्रकार के शारीरिक तेज

सप्तद्युम्नान्येषाम्

ऋ. ८.२८.५

सप्तदेवीः आपः - (१) सर्पणशील निरन्तर गति करने वाली तेजोमय प्रकाशमय, ज्ञानस्वभाव प्राप्त करने योग्य ज्ञान धाराएं।

(२) सात ज्ञान धाराएं (३) सात शीर्षण्य प्राण

आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीः

अ. ७.११२.१; १४.२.४५

सप्तदोहाः - (१) सात उदर पूर्ति करने वाले अन्न, (२) सर्पणस्वभाव वाले गतिमान् अन्न प्रदाता जीवन के पूरक सूर्य, पर्जन्य पृथ्वी, अन्न वायु, आदि

(३) सात अन्न-अन्न, हुत और अहुत, दुग्ध, मन, वाणी, और प्राण। हुत अहुत दोनों देवों के लिए दुग्ध, पशु और मनुष्यों के लिए, मन, वाणी और प्राण आत्मा के लिए।

सप्तधातु - (१) रक्त, मेदस, मांस, अस्थि, वसा, मज्जा और शुक्र-इन सातों से धारण करने योग्य सारस्वती -वाणी।

(२) सात छन्दों से धारण करने योग्य वेदवाणी।

त्रिषधस्था सप्तधातुः

ऋ. ६.६१.१२

सप्तधाम - (१) सृष्टि के सात मूल कारण पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, विराट् परमाणु और प्रकृति।

(२) राजा के पक्ष में स्वामी अमात्य, सुहृत, दुर्ग राष्ट्र. कोष और बल

अतो देवा अवन्तु नः
यतो विष्णुर्विचक्रमे
पृथिव्याः सप्त धामभिः।

ऋ. १.२२.१६;

सप्तधामानि - (१) सातों जगत के धारक सामर्थ्य, लोक, या प्राण

यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम्

ऋ. ९.१०२.२; साम. २.३६४.

सप्रधीतयः - (१) सात छन्दोमयी वेद की वाणियां

(२) सात प्रकृतियाँ

हिन्वन्ति सप्त धीतय

ऋ. ९.८.४; साम. २.५३१

सप्तधेनवः - (१) सात रस पान कराने वाली सात इन्द्रियाँ

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे

ऋ. ९.७०.१; साम. १.५६०; २.७७३

(२) सात छन्दोमयी वाणियाँ

सप्तनामा - (१) सप्तस्तुतिः सप्तपुत्र इत्येवमादीनि सप्तसंख्याकानि नामानि स्तुतयो यस्य भवन्ति (सात स्तुतियों वाला, सात पुत्रों वाला आदि जिनके सात नाम या स्तुतियाँ हैं वे सप्तनामा आदित्य हैं)।

(२) सात रश्मियों के मेल से बनी हुई एक श्वेत रश्मि जो सूर्य को खींचती हैं-दया. (३) सात रश्मियाँ इसके लिए रसों को झुकाती हैं। (सप्तास्मै रश्मयो रसान् अभिसन्नामयन्ति)।

(४) सप्तर्षि या सूर्य की सात किरणें मानों सूर्य की स्तुति करती हैं। सप्तन् + नम् (णिजन्त) + कनिन् = सप्तनामन्।

(५) (एकः अश्वः) सात किरणों से युक्त सात नामों वाला सूर्यरूपी अश्व।

एको अश्वो वहति सप्तनामा

ऋ. १.१६४.२; अ. ९.९.२; १३.३.१८; तै.आ. ३.११.९: नि. ४.२७

यही एक आदित्य सात किरणों के कारण सात नामों से चलते हैं।

सात रश्मियों के मेल से बनी एक श्वेत रश्मि ही सूर्य को खींचती हैं। - दया.

(६) सातों नामों को धारण करने वाला सर्पणशील ऋतुओं को नमाने वाला संवत्सर (७) समस्त सर्पणशील प्राणों का नमन करने वाला-आत्मा (८) परमेश्वर

सप्तनामाअश्वः - (१) सात यन्त्रों को झुकाने या अपने अधीन चलाने वाला, (२) सात प्राण रूप अश्वों के नामों वाला एक आत्मा (३) सात ग्रहों को धारण करने वाला व्यापक सूर्य, (४) पुत्रों के प्रति माता के समान अमृत रस पान करने के लिए झुकाने वाला सप्तनामा परमेश्वर (५) मलमास सहित सात ऋतुओं को नमाने वाला या परिणाम रूप से उत्पन्न करने वाला

प्रजापति

सप्तपद - (१) सातवां पद । (२) सखा होने के सात डेग (३) इष्, ऊर्ज, रायस्पोष, मायो भव्य, प्रजा, ऋतु और सख्यभाव-पारस्कर गृह्यसूत्र

मध्वः पीत्वा सचेवहि

त्रिः सप्त सख्युः पदे ।

ऋ. ८.६९.७; २०.९२.४

सप्तपदः सखा - (१) सात डेग चलकर बना मित्र, (२) सात शीर्षण्य प्राणों रूप ज्ञान साधनों द्वारा ज्ञान करने योग्य

युज्यो मे सप्तपदः सखास्मि

अ. ५.११.९

सप्तपदी - (१) सर्पणशील चरण वाली अन्तरिक्षस्थ गौ रूप मेघ (२) जनों से बसी भूमि

ऊर्जं सप्तपदीमरिः

ऋ. ८.७२.१६

सप्तपरावतः - (१) सात अधस्तन प्राण

सप्त विद्यात् परावतः

अ. १०.१०.२; गो.ब्रा. १.२.१६

सप्तपरिधयः - (१) आत्मा, चेतन की सात परिधियाँ (२) ब्रह्मा की सात परिधियां । ब्रह्माण्ड में जितने लोक हैं उनके ऊपर सात सात आवरण हैं । जैसे समुद्र, त्रसरेणु, मेघमण्डल अथवा वहां का वायु, वृष्टि जल । उसके ऊपर वायु, अत्यन्त सूक्ष्म धनञ्जय वायु और सूत्रात्मा वायु । (३) यज्ञ की सात परिधियाँ-ऐहिक आहवनीय की तीन, उत्तरवेदी की तीन और आदित्य

सप्तास्यासन् परिधयः

ऋ. १०.९०.१५; अ. १९.६.१५; वाज.सं. ३.१२.३

(४) सात परिधियाँ (५) सात छन्द (६) धारण सामर्थ्य (७) साथ शीर्षण्य प्राण (८) शरीर की सात धातुएं (९) घेरने वाले सात पदार्थ

सप्तप्रदिशः - (१) सातों लोक

वाजो नः सप्त प्रदिशः

वाज.सं. १८.३२; तै.सं. ४.७.१२.१; मै.सं. २.१२.१: १४४.६; का.सं. १८.१३

(२) सात प्रकृतियाँ (३) सात अमात्य,

सप्त प्रवत आ दिवम्

ऋ. ९.५४.२; सम. २.१०६

(४) अधीनस्थ नीचे की सात प्रकृतियाँ

सप्त प्रति प्रवत आशयानम्

ऋ. ४.१९.३

(५) सात उपरिचर प्राण

यो विद्यात् सप्त प्रवतः

अ. १०.१०.२; गो.ब्रा. १.२.१६

सप्त प्राणाः - (१) सात प्राण जो मूर्ध स्थान से रहते हैं ।

सप्त प्राणानष्टौ मन्यः

अ. २.१२.७

सप्तप्रियासः - (१) सात प्रकृति विकृति जो परमेश्वर के बल से सृष्टि उत्पन्न करते हैं । (२) पांच प्राण, मन और वाक-दया. । (४) सात प्रिय प्रकृति वाले अमात्य ।

सप्त प्रियासोऽजनयन्त वृष्णे

अ. ४.१.१२

सप्तपुत्रः - (१) सर्पणशील रश्मिरूपी पुत्रों से युक्त आदित्य

अत्रापश्यं विश्पतिं सप्त पुत्रम्

ऋ. १.१६४.१; अ. ९.९.१; नि. ४.२१.

प्रजाओं के पालक के रूप सर्पणशील रश्मि रूप पुत्रों से युक्त आदित्य को देखा ।

(२) सर्पणशील पुम् अर्थात् जीवों और लोकों का त्राण करने वाला-परमेश्वर

(३) सर्पणशील लोकों का प्रजापति (४) सात रश्मियों से युक्त

(५) सात मरुद्गणों से युक्त (६) सात ग्रहों या लोकों से युक्त (७) सातों प्रकार के तत्वों से उत्पन्न प्रजापालक का सूर्य -दया.

(८) सप्तरश्मिरूप पुत्रों वाला सूर्य- आदित्य

(९) स्वामी दयान्द ने सप्तविधैः तत्वै जातम् लिखते हुए सूर्य की उत्पत्ति सात तत्वों से मानी है ।

(१०) अथवा सप्तम पुत्र होने से सूर्य 'सप्तपुत्र' कहलाता है । (११) सोम, मंगल आदि वारों में आदित्य सातवां वार है ।

(१२) अथवा सूर्य की रश्मियाँ सप्त अर्थात् सर्पणशील हैं, अतः यह सप्तपुत्र हैं ।

(१३) सर्पणशील पुम् अर्थात् जीवों और लोगों का त्राण करना, (१४) सर्पणशील लोकों का प्रजापति

(१५) सात मरुद्गणों, रश्मियों या लोकों से युक्त

सप्तपुत्रः विश्पतिः - (१) सात पुत्रों वाला प्रजा का

स्वामी, शिरोगत सात मूर्धन्य प्राणों को धारण करने वाला और शरीर के भीतर प्रविष्ट सब अंगों का पालन करने वाला आत्मा, (३) सबमें व्याप्त अग्नितत्व एवं सर्पणशील रश्मियों को पुत्रवत् उत्पन्न करने वाला प्रजा पालक सूर्य, (४) सप्त प्राणों का पिता प्रजापति परमेश्वर

अत्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम्

ऋ. १.१६४.१; अ. ९.९.१; नि. ४.२१.

सप्तपुत्रासः – (१) सात ग्रहों के रूप में अखण्ड प्रकृति के सात तत्व

सप्तभिः पुत्रैरदिविः

उपप्रैत् पूर्व्यं युगम्

ऋ. १०.७२.९; तै.आ. १.१३.३

(२) सात सर्पणशील प्राणगण

सप्त क्षरानी शिशवे मरुत्वते

पित्रे पुत्रासो अप्यवी वृतन्नृतानि

ऋ. १०.१३.५; अ. ७.५७.२

सप्तपुरः – (१) विस्तृत नगरियाँ –दया.

(२) विस्तृत मेघ–सा. ।

सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्त्

ऋ. १.१७४.२; ६.२०.१०

यतः तू सात वर्षों तक (सप्त शारदीः मेघ से पुरों को (पुरः) मनुष्यों की कल्याण–कामना से दीर्घ करता है (दर्त्)–सा.।

शरद् आदि छः ऋतुओं के अनुकूल (शारदीः) विस्तृत प्रयत्न साध्य नगरियों को (सप्तयत् पुरः) सुखप्रद (शर्म दर्त्) बनाइये–दया. ।

सप्तपृक्षासः – (१) देश से देशान्तर में भ्रमण करने वाले प्रेम–संपर्क के योग्य विद्वान् पुरुष (२) जल वर्षा करने वाले मेघ

सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति

ऋ. ३.४.७

सप्तमधूनि – (१) सातमधु, (२) सात शीर्षण्य प्राण

मधूनि सप्त ऋतवो ह सप्त

अ. ८.९.१८

(२) शासन कारिणी ब्रह्मशक्ति के सात मधु हैं– ब्राह्मण, राजा, धेनु, अनड्वा, व्रीहि, यव और मधु ।

यो वै कशायाः सप्त मधूनि

वेद मधुमान् भवति

ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चा नड्वाँश्च

व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम् ।

अ. ९.१.२२

सप्तमर्यादाः – (१) वेद में निर्दिष्ट सात पाप जैसे स्तेय (चोरी), तल्यारोहण (पर स्त्रीगमन या गुरु पत्नी गमन), ब्रह्महत्या, भ्रूण हत्या, सुरापान, दुष्कृत पुनः पुनः करना तथा उसे छिपाना,

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुः

ऋ. १०.५.६; अ. ५.१.६; नि. ६.२७

(२) मर्य + अद = मर्याद् । मनुष्य को खा जाने वाला या नाश करने वाला पदार्थ (३) सात मर्यादाएं

पानमक्षाः स्त्रिये मृगया दण्डः

पारुष्यमन्य दूषणम् इति सप्त मर्यादाः ।

यद्वा,

स्तेयं गुरुतल्यारोहण ब्रह्महत्या सुरापानम् ।

दुष्कृत कर्मणः पुनः पुनः सेवनम् पातके अनतोद्यमिति– निरुक्त

सप्तमाता – (१) सर्पणशील अनेक जन्तुओं की माता पृथिवी, (२) सात पदार्थों का निर्माण करने वाली दक्षिणी

ते दक्षिणां दुहते सप्तमातरम्

ऋ. १०.१०७.४

सप्तमाता दक्षिणा – (१) सातों प्रकार के अन्नों वाली, (२) सात निर्मात्री पदार्थों वाली अथवा (३) सात धातुओं वाली दक्षिणा रूप पृथिवी ।

ते दुहते दक्षिणां सप्तमातरम्

अ. १८.४.२९

सप्तमातृसिन्धु – पृथिवी, अग्नि, वायु, सूर्य, विद्युत, उदक, आकाश आदि सात सूक्ष्म तत्वों से उत्पन्न होने वाली नदी

त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिः

ऋ. १.३४.८

हे सूर्य या वायु या चन्द्रमा, रथी सारथि के समान तुम दोनों सात सूक्ष्म तत्वों से उत्पन्न होने वाले नदियों के समान निरन्तर ।

सप्तमानुषः – (१) अग्नि, (२) जीवन रूप से मनुष्य के सात प्राणों में विद्यमान अग्नितत्व (३) सात मननशील विद्वानों के बीच स्वयं आठवां होकर रहने वाला तेजस्वी अग्रणी राजा

यो अग्निः सप्तमानुषः

ऋ. ८.३९.८

सप्तमेधाः - अन्नं मेधः । मेधाये त्यन्नायेत्येतत्- श.ब्रा.
अर्थ- सात अन्न ।
अन्न, हुत, प्रहुत, मन, वाक् और प्राण ये सात मेध या अन्न हैं, क्योंकि इन्हें प्रजापति ने अपनी मेधा से उत्पन्न किया ।
सप्त मेधान् पशवः पर्यगृह्णन्
अ. १२.३.१६

सप्तयह्वीः - (१) सात बड़ी पूज्य माताएं माता, माता की बहन, बड़ी बहन, पिता की बड़ी बहन, भाई की स्त्री, पिता के बड़े और छोटे भाइयों की स्त्री ये मातृ तुल्य हैं ।
(२) सर्पणशील जलधारा (३) बड़ी बड़ी शक्तियाँ (४) राष्ट्र की सात प्रकृतियां-स्वामी, अमात्य, सुहृत, कोश, राष्ट्र दुर्ग और सैन्य (५) प्रकृति का विकार करने वाली सातों महती शक्तियाँ (६) सातों छन्दोमयी वाणियाँ
अवर्धयन् सुभगं सप्त यह्वीः
श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा
ऋ. ३.१.४

सप्तयह्वीः हरितः - (१) सात महती दिशाएं, (२) सात महती अन्धकार नाशक किरणें, (३) सात पुत्र वत् सात मनुष्य प्रजाएं-चार आश्रम और तीन वर्णों या चार वर्ण और तीन आश्रम सात प्रकृति हैं ।
(४) राजनीति की सात प्रकृतियां, (५) सात दिशाओं या द्वीपों के वासी प्रजागण
तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः
ऋ. ४.१३.३

सप्तरत्न - सात प्रकार के रत्न
दमे दमे सप्त रत्ना दधाना
ऋ. ६.७४.१; अ. ७.२९.१; तै.सं. १.८.२२.१; मै.सं. ४.१०.१: १४२.६; ४.११.२: १६५.१०; का.स ४.१६; ११.१२; शां.श्रौ.सू. २.४.३

सप्तरत्ना - (१) गौ पशु आदि घर में रहने वाले पशु-सा.
(२) सात रमण करने योग्य शक्तियां
(३) सात प्रकार की उत्तम प्रकाश युक्त किरणें, (४) सात प्रकार की ज्वालाएं, (५) सात प्रकार के रमणीय रत्न-अन्न आदि, (६) ऐश्वर्य आदि सात रत्न
दमे दमे सप्त रत्ना दधानः
ऋ. ५.१.५; तै.सं. ४.१.३.४; मै.सं. २.७.३: ७७.१८; का.सं. १६.३

सप्तरश्मया - (१) सूर्य की सात रश्मियाँ (२) शरीर गत सातः प्राण
अमी ये सप्त रश्मयः
तत्रा मे नाभिरातता
ऋ. १.१०५.९
ये जो सात निरन्तर गति करने वाले दीपक या सूर्य किरणों के समान फैलने वाले और अश्व के रासों के समान देह को वश करने वाले सात प्राण हैं उनके आश्रय पर मेरी नाभि देह का केन्द्र स्थान व्याप्त है (नाभिः आतता) ।
सप्त सूर्यस्य रश्मयः
अ. ७.१०७.१
(३) सात लगामों से युक्त (४) ऋतु रूप सात रस्सों वाला काल, (५) शरीर के घटक सात धातुओं वाला, (६) शिरोभाग (७) ज्ञान मय परमेश्वर के सात छन्द
कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः
अ. १९.५३.१
(८) सात बन्धनों से बद्ध शरीर
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्
ऋ. १०.८.८
(९) रथ जिसमें सात चमकने वाले दीपक हों (१०) वश करने की सात रस्सियों वाला रथ (११) सात वश करने के साधन (१२) मूर्धागत सात प्राणों से युक्त सात रश्मियां (१३) सप्तलोकों का शासक परमेश्वर

सप्तर्तवः - (१) सात ऋतु, (२) सात शीर्षण्य प्राण
मधूनि सप्तर्तवो ह सप्त
अ. ८.९.१८

सप्तर्षयः - (१) सात ऋषि-विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ और कश्यप (२) अध्यात्मा शिरो भाग में विद्यमान दो कान दोनों भरद्वाज, दोनों आंखें विश्वामित्र और जमदग्नि, दोनों नासिकाएं वसिष्ठ और कश्यप और वाक् अत्रि हैं ।
तथा सप्तऋषयो विदुः
अ. ४.११.९

सप्तरात्र - (१) सात दिनों में समाप्त होने वाला यज्ञ

षोडशी सप्तरात्रश्च

अ. ११.७.११

सप्तवध्रिः – (१) सातों प्राणों को शिथिल या दमन करने वाला-विद्वान्

प्र सप्तवध्रिराशसा

धारामग्ने रशायत

ऋ. ८.७३.९

(२) सातों को निर्बल कर अपने वश करने वाला जीव

ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये

ऋ. १०.३९.९

(३) योद्धा जिसके अश्व सर्पणशील हों, रथी पुरुष (४) सात घोड़ों अर्थात् इन्द्रियों का वशी, अविकलांग, स्वस्थ, नीरोग (५) सप्त प्राण वाला आत्मा

यौ विमदमवथः सप्तवध्रिम्

अ. ४.२९.४

(६) हत सप्तेन्द्रिय, (७) सात ज्ञान मार्गों में बंधा हुआ, अर्थात् , आंख, कान, मुख, नाक इन सातों द्वारों को वश करने वाला।

(८) सातों इन्द्रियों पर वश करने वाला विद्यार्थी(९) गर्भ में आने वाला बीज रूप जीव जिसके सातों प्राण निर्बल, प्रसुप्त रूप में रहते हैं (१०) सातों उच्छृंखल इन्द्रयों को दमन कर विनीत एवं शान्त होकर रहने वाला

सप्तवध्रिं च मुञ्चतम्

ऋ. ५.७८.५

भीताय नाधमानाय

ऋषये सप्तवध्रये ।

ऋ. ५.७८.६

सप्तबह्वीः – (१) आत्मा को वहन करने वाली सात प्राण शक्तियाँ

शतमश्वा यदि वा सप्त बह्वीः

अ. १३.२.६

सप्तवाणी – (१) सात मुख्य छन्द-गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती , पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती । इसी प्रकार सात प्रतिच्छन्द और सात विच्छन्द गिने जाते हैं ।

वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदा क्षरेण मिमते सप्त वाणीः

अ. ९.१०.२

(२) चार वर्ण और सूर्य के तीन आश्रमों से युक्त सेवने वाली प्रजाएं, (३) पति के समीप जाकर विषय सेवन करती हुई स्त्री

एकं गर्भं दधिरे सप्त वाणीः

ऋ. ३.१.६

सप्तविप्राः – (१) उद्गाताओं के सिवा ९२ ऋत्विजों में सात होता का कार्य करने वाले, (२) सात या सर्पणशील निरन्तर गति करने वाले और शरीर को विविध प्रकार से पूर्ण करने वाले सात प्राण या देहस्थ सात धातु गण

अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः

ऋ. ३.७.७

(३) सरणशील किरणें, (४) राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाले सात विद्वान् (५) सात विद्वान् मन्त्रद्रष्टा (६) सात मुखस्थ इन्द्रियां

उपेमग्मन्नृषयः सप्त विप्राः

ऋ. ९.९२.२

(७) सात प्रकार के या फैलने वाले नगद व्यापी किरणें

अधा मातुरुषसः सप्त विप्राः

ऋ. ४.२.१५

सप्तविप्रासः – आत्मा की उपासना करने वाले सात प्राण, (२) परमात्मा के उपासक परम मेधावी ज्ञानमार्ग से परमात्मा के प्रति सर्पण शील

सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः

ऋ. ६.२२.२; अ. २०.३६.२

(३) देह में सात प्राणों के समान बुद्धिमान् पुरुष

सप्तविंशतिः गन्धर्वाः – (१) सत्ताईस गन्धर्व-प्राण, इन्द्रियाँ और स्थूल सूक्ष्म भूत, (२) शरीर धारक सत्ताईस तत्व (३) वायु, चन्द्रमा तथा भूमि के धारक २७ नक्षत्र, (४) महाराष्ट्र धारण करने वाली तीनों प्रजाओं के सत्ताईस सदस्य ।

गन्धर्वाः सप्तविंशतिः

वाज.सं. ९.७;तै.सं. १.७.७.२; मै.सं. १.११.१: १६२.१; का.सं. १३.१४; श.ब्रा. ५.१.४.८

सप्तविस्रसः – विविध दिशाओं से आने वाले सात शत्रु

अरसाः सप्त विस्रसः

अ. १९.३४.३

सप्तविस्रुहः – (१) सात प्रवाह (२) सात विकृतियाँ (३) सात प्रकार के विसरण शील जीव सर्ग,

(४) सात प्रकृति विकार, (५) सिर के सखावत् सात प्राण (६) सात छन्दोमयी वाणियाँ
वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः
ऋ. ६.७.६

सप्तबुध्न - सात मूल वाला
या सप्तबुध्नमर्णवम्
ऋ. ८.४०.५

सप्तवृष - सात प्राणों से युक्त आत्मा
यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि
अ. ५.१६.७

सप्तशतं धामानि - सप्तशतं पुरुषस्य मर्मणां तेषु एता दधतीति- नि ९.२८ (१) शरीर के सात सौ मर्म स्थान, (२) ओषधियों के ७०० धाम, (३) शतधाम, सौ वर्ष हैं और साथ धाम सात देहगत प्राण हैं ।
मनै नु बभ्रूणामहं
शतं धामानि सप्त च
ऋ. १०.९७.१; वाज.सं. १२.७५; तै.सं. ४.२.६.१; मै.सं. २.७.१३: ९३.२; का.सं. १३.१६; १६.१३; श.ब्रा. ७.२.४.२६; नि. ९.२८

सप्त शतानि विंशतिश्च - सात सौ बीस रात दिन के जोड़े जो एक संवत्सर में बीतते हैं ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र
सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः
ऋ. १.१६४.११: अ. ९.९.१३
हे आदित्य, तेरे इस चक्र में मिथुनीभूत सात सौ बीस पुत्र हैं ।

सप्त शाकिनः - सात शक्तिशाली नायक गण ।
सप्त मे सप्त शाकिनः
एकमेका शता ददुः ।
ऋ. ५.५२.१७

सप्तशारदी - (१) वर्ष की सात ऋतुएं (२) शत्रुओं की हिंसाकारिणी पुरियाँ ।
सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्त्
ऋ. १.१७४.२; ६.२०.१०
(३) सात वर्षों तक -सा. (४) स्वा. दयानन्द ने शारदी का अर्थ भिन्न प्रकार से किया है । शरद् आदि छः ऋतुओं के अनुकूल (५) शरद् से वर्ष का बोध होने से सायण ने शारदी को वर्ष का वाचक माना है ।

सप्तशीर्षा - (१) सात विभागों में विभक्त वायु, (२) सात मुख्य अंगों से युक्त पूज्य (३) सात शीर्षण्य प्राणों से युक्त प्राण
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः
ऋ. ३.५.५.; आ.सं. ३.१३

सप्त शिवा - (१) सप्तविधा कल्याण कारिणी-दया. (२) सातों प्राणों या शिरों गत सातों इन्द्रियों में कल्याण युक्त रूप और शक्ति को धारण करने वाली
द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु
ऋ. १.१४१.२
जीवात्मा की तीन दशाओं में पहला जीवात्मा स्वरूप और दूसरा सातों प्राणों और शिरोगत सातों इन्द्रियों में कल्याण युक्त रूप और शक्ति को धारण करने वाली माताओं के बीच गर्भ रूप से रहता है ।

सप्तश्रियः - (१) व्यापक सम्पदाएं (२) सात प्रकार की शोभाएं
सप्तो अधि श्रियो धिरे
ऋ. ८.२८.५

सप्तशीर्ष्णीधीः - (१) सात मुख्य छन्दों से युक्त, वेदरूपी, ज्ञान शक्ति (२) शिरोगत सात प्राण, अपान आदि शिर वाली
इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता नः
ऋ. १०.६७.१; अ. २०.९१.१; वै.सू. ३३.२१

सप्तशुन्ध्युवः - (१) शुद्ध ज्ञान कराने वाली, (२) कुमार्ग पर न गिराने वाली रश्मियाँ इन्द्रियाँ
अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः
ऋ. १.५०.९; अ. १३.२.२४; २०.४७.२१; आ.सं. ५.१३; ९.१९; ११.१; तै.ब्रा. २.४.५.४
(३) प्रवर्तक गति देने वाली या चलने वाली सात शक्तियाँ (४) जल को न गिरने देने वाली और पदार्थों को शोधन करने वाली सूर्य की साथ किरणें, (५) शरीर की सात प्राण वृत्तियां

सप्तसतीः - (१) बलवती सात वृत्तियाँ या प्रवृतियाँ (२) राष्ट्रपक्ष में 'सप्तसतीः' स्वामी, अमात्य, सुहृद्, राष्ट्र, दुर्ग, कोष और बल हैं ।
वीडौ सतीरभि धीरा अतृन्दन्
ऋ. ३.३१.५

सप्त सप्त त्रेधा - (१) इक्कीस रूप वाले प्राण
प्र सप्त सप्त त्रेधा हि चक्रमुः
ऋ. १०.७५.१

सप्तसप्तती: अंशवः - व्यापक परमेश्वर से उत्पन्न सूक्ष्म तत्व
त्रिः सप्त समिधः कृताः
ऋ. १०.९०.१५; अ. १९.६.१५; वाज.सं. ३१.१५; तै.आ. ३.१२.३.

सप्तसमिधः - (१) सात समिधाएं, (२) सात शीर्षण्य प्राण
सप्त होमाः समिधो ह सप्त
अ. ८.९.१८

सप्त संसदः - ब. व.। (१) साथ बैठने वाले सात सचिव (२) सात प्राणगण।
रणन्ति सप्त संसदः
ऋ. ८.९२.२०; अ. २०.११०.२; साम. २. ७३
(३) सात संसत् हैं, जैसे अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौः, आपः और वरुण। इन्हीं के आश्रय पर समस्त लोक विराजते हैं।
सप्त संसदो अष्टमी भूत साधनी
वाज.सं. २६.१; वाज.सं. (का.) २८.१
(४) राजा की सात राष्ट्र संस्थाएं (७) सात संसद, (८) शरीर के सात धातुः।

सप्तस्वसा - (१) सप्त स्वसारो यस्य सः (जिसे सात बहनें हो वह, सात बहनों वाला) (२) वरुण का विशेषण।
यः सिन्धूनामुपोदये
सप्त स्वसा स मध्यमः
ऋ. ८.४१.२; नि. १०.५
जो वरुण नदियों में बाढ़ आने पर सात बहन वाले हो जाते हैं और जिनकी स्तुति सात स्वरों में मध्यम स्वर से की जाती है।
(३) सात बहनें, (४) सात ज्वालाएं, (५) सोम आदि सात ग्रह।
(६) सूर्य की शरणशील सात रश्मियाँ
सात स्वसा सात नदियों का द्योतक है। सात बहनों की परम्परा अतिप्राचीन है। (७) पांच प्राण, मन और बुद्धि इन सात मुखों में स्थित सरस्वती, (८) अन्तरिक्ष में विचरने वाली एवं उत्तम ज्ञान से पूर्ण वाणी, (९) वेद वाणी से सप्त स्वसा है।
सप्तस्वसा सुजुष्टा
सरस्वती सोम्या भूत्।
ऋ. ६.६१.१०; साम. २.८११; तै.ब्रा. २.४.६.१
(१०) स्वतः सरण करने वाली-ब्रह्मानन्द रस से भी भरी दो आंख, दो नाक, दो कान और एक रसना-सात ज्ञान धारक ऋषियों के बीच आठवीं भागनी के समान वाणी (११) सात छन्दों वाली वेद वाणी सरस्वती

सप्तस्वसारः - (१) सात अपने बल से चलने वाले कला पुञ्ज, (२) सात बहनों के समान सात शक्तियाँ मात्राएं जो शरीर में आत्मा के बल से चलती हैं, (३) परमेश्वर के विराट् रूप संसार के रथ में पञ्चभूत महत और अहंकार रूप जो सात अश्व हैं उनमें विद्यमान शक्तियाँ, (५) सात ग्रह, (६) सात ऋतु (मलमास के साथ), (७) संवत्सर के अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिनरात और मुहूर्त नामक काल के सात अवयव
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते
ऋ. १.१६४.३; अ. ९.९.३
(८) आत्मा के बल पर रमण करने वाले सात प्राण

सप्तसिन्धवः - (१) गतिशील महान्, शक्तियाँ, (२) भूत, महत् और अंहकार (३) ब्रह्माण्ड में सात वायुएं (४) शिरोगत सात प्राण।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवः
ऋ. १०.४३.३; अ. १२.१७.३
(४) सात नदियाँ, (६) सात ऊर्ध्व प्राण-इन्द्र, आत्मा, मन, दक्षिण, अक्षिगत प्राण वाक् और वीर्य, (७) सात गतिशील प्रवहण आदि लोक संचालक वेग
अपां नपात् सिन्धवः सप्त पातन
अ. ६.३.१.
(८) प्रवाहित होने वाले स्थूल सूक्ष्म जल-दया.। पृथिव्यां मध्ये स्थितानाम् एकोनपञ्चाशत् क्रोश् पर्यन्ते अन्तरिक्षे स्थूल सूक्ष्म लघुगुरुत्व रूपेण स्थितानामपां सप्तसिन्धु इति संज्ञा -दया. (ऋ.)।
पृथिवीमारभ्य द्वादश क्रोश पर्यन्तं गुरुत्व लघुत्व भूतानां सप्तविधानाम् अपाम्
अवयवाः - दया. (यजुर्वेद)। (९) बड़े बड़े जलाशय, नदी, कूप, तडाग और समीप मध्य और दूर देश में रहने वाले तीन जलाशय मिलकर सप्त सिन्धु हैं।

सप्त सूर्याः – (१) सूर्य के समान तेजस्वी सात प्राण, (२) सात भुवन
'यस्मिन् सूर्या अर्पिताः सप्त साकम्'
अ. १३.३.१०; का.सं. ३७.९; तै.ब्रा. २.७.१५.३; तै.आ. १.७.१

सप्तहरितः – (१) सूर्य की सात किरणें (२)हरण करने वाली सात प्राण वृत्तियाँ
'वहन्ति यं हरितः सप्त बह्वीः'
अ. १३.२.४
(३) सूर्य के सात अश्व–सा. (४) सप्तविधाः किरणाः दया. (५) सात तत्व, (६) आत्मा के सात प्राण, (७) परमेश्वर पांच महाभूत और महान् अहंकार नाम सात विकार (८) राजा के राज्य के धारण करने वाले सात जन (९) सूर्य को धारण करने वाली सात किरणें
'सप्त त्वा हरितो रथे
वहन्ति देव सूर्य
शोचिष्केशं विचक्षण '
ऋ. १.५०.८; आ.सं. ५.१४; अ. १३.२.२३; २०.४७.२०; तै.सं. २.४.१४.४; का.सं. ९.१९
(१०) पंचभूत, महत्तत्व और अहंकार रूप सात शक्तियाँ जो सूर्य को धारण करती हैं ।

सप्तहस्तासः – (१) यज्ञ के सात हाथ सात छन्द ही हैं- गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती । (२) सायण के मत से सूर्य के साथ हाथ सात ऋतु हैं । वसन्तादि छः पृथक् पृथक् और सातवां मलमास
(३) शाब्दिकों के मत से शब्द ब्रह्म के सात हाथ हैं सात विपत्तियाँ
'चत्वारि श्रृंगा त्रयो अस्य पादाः
द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।'
ऋ. ४.५८.३; वाज.सं. १९.४७; मै.सं. १.६.२.: ८७.१७; का.सं. ४०.७; गो.ब्रा. १.२.१६; तै.आ. १०.१०.२; महा.ना.उप. १०.१; आप.श्रौ.सू. ५.१७.४; नि. १३.७

सप्तहा – सूर्य की सात किरणों को गति देने वाला
'अहं सप्तहा नहुषो नहुष्टरः'
ऋ. १०.४९.२८

सप्तहोता, सप्तहोतृ – (१) सप्त अस्मै रश्मयः रसान् अभिसन्नमयन्ति (जिसके पास भूमि में स्थित रसों को सात रश्मियां पहंचाती हैं, अर्थात् दक्ष सूर्य) ।
(२) भूस्थान रसान् अस्मै प्रयच्छति (पृथ्वी के रसों को इसे देता है) ।
(३) अथवा-'एनं सप्त ऋषयः आह्वयन्ति (इन्हें सात ऋषि आह्वान करते या प्रणाम करते हैं)'।
(४)अथवा सात किरणों वाला –सूर्य, आदित्य
'अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा
सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु ।'
ऋ. १०.६४.५; नि. ११.२३
(५) सायण के अनुसार, 'मलिम्लुचां हस्पतिसहिताः सप्तर्तवो यस्य होतारः भवन्ति तादृशः' ।
अर्थात् मलिम्लुच और अंहस्पति के साथ सात ऋतुएं जिसके होता हैं वह आदित्य ।
सात रश्मियां सूर्य के लिए रसों को झुकाती हैं अथवा सात ऋतुएं सूर्य का स्तवन करती हैं । अंहस्पति (मलमास) को मिलाकर सूर्य १३ मास या सात ऋतुओं के उत्पन्न करता है । जैसा यजुर्वेद २२-३१ में बताया गया है ।
(६) हूयते अर्चति कर्मणा इदं रूपम् ।-सा.
(७) अथवा जिसे सप्तर्षि स्तुति करते हैं वह सूर्य ।
(८) सिर में स्थित सात प्राण ही पुरुष रूप यज्ञ के सात होता हैं ।
(९) सूर्य की सात रश्मियां (१०) छः अमात्य और राजा ।
'सप्तहोतार ऋतुशो यजन्ति '
वाज.सं. २३.५८
(११) यज्ञ के सात होता (१२) प्रकाश देने वाली सूर्य ही सात रश्मियाँ (१२) सात या सर्पण शीलसंसार को धारण करने वाले प्रवहण आदि सात तत्व ।(१३) ज्ञान देने वाले सात छन्द (१४) शिरोगत सात ग्राहक द्वार
'अञ्जानः सप्त होतृभिः हविष्यते'
ऋ. ३.१०.४

सप्तहोत्राः – (१) सात आनन्द कारी दिशाएं, (२) सात प्राण
'द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः'
ऋ. १०.१७.११; अ. १८.४.२८; वाज.सं. १३.५; तै.सं. ३.१.८.३; ४. २.८.३; ९.6; मै.सं. २.५.१०: ६१.१५; का.सं. १३.९; १६.१५; ३५.८; श.ब्रा. ७.४.१.२०

(३) सबको अपने भीतर समा लेने वाली सात दिशाएं

सप्तहोत्राणि – (१) सातों प्रकार के ग्रहण करने योग्य और दान करने योग्य पदार्थ, (२) यज्ञ के सात होत्र आदि कर्म, (३) राष्ट्र की सात प्रकृतियाँ (४) देहगत सात प्राण (५) सर्पणशील प्राण

'सप्त होत्राणि मनसा वृणानाः'

ऋ. ३.४.५

सप्तहोमाः – (१) सात होम, (२) सात शीर्षण्य प्राण

'सप्त होमाः समिधो ह सप्तः'

अ. ८.९.१८

सप्त्य – सर्पण करने योग्य, प्राप्य

'तद्वरुणस्य सप्त्यम्'

ऋ. ८.४१.४

सप्रथ – (१) विशाल

'त्वं वर्मासि सप्रथः'

ऋ. ७.३१.६; अ. २०.१८.६

(२) वैदिक भारद्वाज नामक वैदिक ऋषि

'प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नाम'

ऋ. १०.१८१.१; आ.सं. २.५.; ऐ.ब्रा. १.२१.२

सप्रथस्तमः – (१) अति विस्तृत

'शर्मन् त्स्याम तव सप्रथस्तमे'

ऋ. १.९४.१३

(२) अति विस्तृत आकाश, काल, दिशा आदि पदार्थों के साथ उनके समान ही व्यापक परमेश्वर।

(३) अति विस्तार युक्त

'वयं मित्रस्यावसि
स्याम सप्रथमस्तमे'

ऋ. ५.६५.५

पुनः–

'जुषस्व स प्रथस्तमं
वचो देवप्सरस्तमम्।
हव्या जुह्वान आसनि'

ऋ. १.७५.१

हे अग्नि, या विद्वन्, तू मुख में (आसनि) उत्तम भोजन करने योग्य अन्नों को (हव्या) खाता हुआ (जुह्वानः) देवों या विद्वानों को बहुत अधिक प्रसन्न करने वाले या ग्राह्य (देवप्सरस्तमम्)। अति विस्तृत (सप्रथस्तमम्) ज्ञानयुक्त वाणी का सेवन कर।

अथवा,

मुख्य पद पर विराज कर ग्रहण करने योग्य अन्नों को और ऐश्वर्यों को स्वयं लेता और अन्यों को देता हुआ। विद्वानों के प्रिय उत्तम वचन का सेवन कर।

सप्रथाः – सर्वतः पृथुः सप्रथाः (जो सर्वतः विस्तीर्ण हो सर्वतः का 'स' हो गया है। सर्वतः + प्रथ् + असुन = सप्रथाः)।

अर्थ है–विस्तृत, चौड़ा 'यच्छा नः शर्म सप्रथाः' हे पृथ्वी, चौड़ा वन हमें कल्याण दे।

पुनः–

'त्वमग्ने सप्रथा असिं
जुष्टो होता वरेण्यः।
त्वया यज्ञं वि तन्वते'

ऋ. ५.१३.४; साम. २.७५७; मै.सं. ४.१०२: १४६.२; का.सं. २.१४; कौ.ब्रा. २६.१०; तै.ब्रा. २.४.१.६; आप.श्रौ.सू. ६.३१.४

हे अग्नि, तू ही चारों और विस्तीर्ण है। तू आसेवित हो देवों का आह्वान् करने वाला तथा सर्वथा वारणीय है। तेरे ही द्वारा यजमान विविध प्रकार के यज्ञ को विस्तारित करते हैं।

(३) अति विस्तृत शक्ति से युक्त, (३) अति विस्तृत यश से युक्त

'सं त्वमग्नि वैश्वानरं
सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः'

वाज.सं. २२.३; मै.सं. ३.१२.१: १६०.१; श.ब्रा. १३.१.२.३.

सप्सरः – सप् + सर = सप्सर। गन्ता। वायु का विशेषण।

'ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वम्'

ऋ. १.१६८.९

सप्ता – द्वि.व.। दो अश्व

'सप्ती चिद् घा मदच्युता'

ऋ. ८.३३.१८

सप्ताक्षर – (१) प्राणगण के सात अक्षय बल, (२) प्राण के सात शीर्षण्य प्राण

'मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान्
पशूनुदजयंस्तानुज्जेषम्'

वाज.सं. ९.३२; तै.सं. १.७.११.१

सप्ताज्यानि – (१) सात आज्य, (२) सात शीर्षण्य प्राण

'सप्ताज्यानि परि भूतमायन् ताः'

अ. ८.९.१८

सप्तापः - सप्त + आपः ।

(१) सूर्य की सात रश्मियाँ जो सूर्य में ही आप या व्याप्त रहती हैं, (२) शरीर की सात इन्द्रियाँ (३) सात जल धाराएं नदियाँ (४) सात प्राण गण

'सप्तापो देवीः सुरणां अमृक्ताः'

ऋ. १०.१०४.८

सप्तार्धगर्भा - सप्त + अर्ध + गर्भाः

(१) सात या सर्पण स्वभाव, गतिशील अर्धगर्भ अर्थात् परम उत्कृष्ट परमेश्वर की शक्ति को अपने भीतर धारण किए हुए प्रकृति के विकार भूत अहंकार महत् और पञ्चतन्मात्राएं, (२) सात प्राण

'सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतः'

ऋ. १.१६४.३६; अ. ९.१०.१७; नि. १४.२१

सप्ताश्वः (१)वेगवान् अश्वों से युक्त, (२) सात किरणों से युक्त सूर्य, (३) सात प्राणों से युक्त आत्मा

'आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः'

ऋ. ५.४५.९

सप्तास्यः - सात मुख वाला इन्द्रियगण

'अप व्राजमूर्णुथः सप्तास्यम्'

ऋ. १०.४०.८

(२) सात छन्दों रूप सात अश्वों वाला-बृहस्पति ।

'सप्तास्यस्तु विजातो रवेण'

ऋ. ४.५०.४; अ. २०.८८.४; मै.सं. ४.१२.१: १७७.१५; का.सं. ११. १३; तै.ब्रा. २.८.२.७

(३) सर्पणशील मुखों वाला (४) सात मुखों वाला सूर्य

'सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः'

ऋ. ९.१११.१; साम. १.४६३; २.९४०

स्थपति - (१) गृहादि निर्माता, (२) तक्षक राज आदि (३) रोग कीटाणुओं के रहने निवास बनाने वाला जन्तु

'नमो रोहिताय स्तपतये'

वाज.सं. १६.१९; तै.सं. ४.५.२.१; मै.सं. २.९.३: १२२.१४; का.सं. १७.१२

'उतैषां स्थपतिर्हतः'

अ. २.३२.४; ५.२३.११

सपन् - एक स्थान में एकत्रित होता हुआ

'वि ये चृतन्त्यृता सपन्तः'

ऋ. १.६७.८

जो परस्पर एक स्थान पर संगत हो सत्य तथा विशेष रूप से या विविध प्रकार से खोलते हैं ।

स्रप - धा. । एक स्थान में एकत्रित होना ।

स्वपत् - अस्तम् उपगच्छत् (सोता हुआ या अस्त होता हुआ) ।

स्वप - (धा.) । सोना, अस्त होना ।

स्वपत्य - (१) सु + अपत्य । सुन्दर अपत्य अर्थात् सन्तान से युक्त ।

'कृधि पतिं स्वपत्य रायः'

ऋ. २.९.५

(२) उत्तम अविनाशी नीचे न गिरने वाला श्रेष्ठ यश, कर्म या उत्तम फल

(३) उत्तम सन्तान

'बर्हिर्वा यत् स्वपत्याय वृज्यते ।'

ऋ. १.८३.६; अ. २०.२५.६

जिस प्रकार उत्तम अविनाशी नीचे न गिरने वाले श्रेष्ठ, यज्ञ कर्म या उत्तम फल को प्राप्त करने के लिए कुछ घास काट ली जाती है । या उत्तम सन्तान के लिए यह समस्त भूलोक और उसमें रहने वाले प्रजाजन त्यागे जाते हैं, अर्थात् उत्तम सन्तति के मा बाप अपना सर्वस्व त्यागते हैं ।

(४) उत्तम सन्तान या उत्तराधिकारी से युक्त

'क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः'

ऋ. २.४.८

स्वपतिः - (१) समस्त धनों के स्वामी (२) अपना स्वयं स्वामी-

'आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय'

ऋ. १०.४४.१; अ. २०.९४.१; वै.सू. ३३.२०

(३) अपना पति स्वयं वरण करने वाली

'अपत्तिः स्वपतिं स्त्रियम्

स्वपनः - स्वय + ल्युट् = स्वपन । और सोना ।

'अभूत्यै स्वपनम्'

वाज.सं. ३०.१७; तै.ब्रा. ३.४.१.१४

स्वपस् - सु + अपस् = स्वपस् । अर्थ है-सुन्दर कर्म ।

स्वपसः – सु + अपसः । सुन्दर कर्मों को सम्पन्न करने वाली तीन देवियाँ (१) सूर्य की किरण (भारती) तथा (३) मध्यमस्थानीय विद्युत् (सरस्वती) ।
'तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं स्योनम् सरस्वती स्वपसः सदन्तुः ।'
ऋ. १०.११०.८; अ. ५.१२.८; वाज.सं. २९.३३; मै.सं. ४.१३.३: २०२..१०; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.४; नि. ८.१३.
सुन्दर कर्मों को सम्पन्न करने वाली अग्नि, मध्यमस्थानी विद्युत् तथा सूर्य की किरण (भारती) हमारे यज्ञ में आस्थित हों ।

स्वपस्तमः – सु + अपस्तमः (१) उत्तम जलों का कर्मों को उत्पन्न करने वाला –सूर्य ।
'इन्द्रस्थ कर्ता स्वपस्तमो भूत् '
ऋ. ४.१७.४
(२) जिसका कर्म अत्यन्त शोभन हो, (३) अत्यधिक क्रिया सामर्थ्य से युक्त वज्र का विशेषण ।
'अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद् वज्रम् स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय'
ऋ. १.६१.६; अ. २०.३५.६

स्वपस्या – (१) उत्तम कर्म करने की इच्छा, (२) उत्तम परोपकार भावना
'निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः'
ऋ. १.१६१.११
(३) सु + अप + असुन् + यक् (स्वार्थ में) टाप् = स्वपस्या । वर्षा की क्रिया ।

स्वपस्य – (१) उत्तम कर्म करने वाला
'इन्द्राय स्वपस्याय वेहत् '
वाज.सं. २४.१; मै.सं. ३.१३.१२: १६८.१३

स्वपस्यत् – सु + अपस्यत् = स्वपस्यत् । सुन्दर कर्म करने की इच्छा करने वाला यजमान । अपस् का अर्थ कर्म है । उसी से अपस्पति नाम धातु हुआ है । अपस्पति का अर्थ है कर्म करना चाहता है ।

स्वपस्यते – स्वपस्यत् के चतुर्थी एकवचन का रूप है– 'स्वपस्यते' अर्थ है– (१) शुभकर्म करने की इच्छा करने वाले के लिए ।
(२) सुन्दर कर्म करें ज.दे.श.।

स्वपस्यमानः – (१) नाना उत्तम कर्मों को भरने वाला, (२) सूर्य या पुत्र का विशेषण
'सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः'
ऋ. १.६२.९

स्वप्नः – (१) शयन, सोना, (२) सु + अप्रः = स्वप्रः । उत्तम रूप वाला , (३) कर्मवान्, महान् परमेश्वर
'स्वप्रश्चनेदनृततस्य प्रयोता'
ऋ. ७.८६.६
(४) शयन, (५) आलस्य, (६) उत्तम कर्म का आचरण
'स्वप्नेनाभ्युप्या चमुरिं धुनिं च '
ऋ. २.१५.९; आश्व.श्रौ.सू. ९.८.४

स्वप्ननंशनः – स्वप्रान् नाशयति उदयेन इति (जो उदय लेकर स्वप्न नष्ट करता है)। (१) सूर्य (२) निद्रा नाशक आदित्य का विशेषण ।
(३) वृषाकीय आदित्य
'य एष स्वप्ननंशनः'
ऋ. १०.८६.२१; अ. २०.१२६.२१; नि. १२.२८
जो यह नींद नाशने वाला वृषा कपि या आदित्य हैं । (४) निन्द्रा से लुप्त हो जाने वाला जीवात्मा
'य एष स्वप्रनंशनः अस्तमेषि पथा पुनः'
ऋ. १०.८६.२१
स्वप्न, निद्रा, प्रमाद या मृत्यु को दूर करने वाला ।

स्वप्नमुख – (१) स्वप्र से उत्पन्न होने वाला, (२) स्वप्र में सहायक कुविचार
'परा स्वप्रमुखाः शुचः'
अ. ७.१००.१

स्वप्रेदुःस्वप्रयम् – सोते समय का बुरा स्वप्र
'जाग्रद् दुष्वप्न्यं स्वप्ने दुष्वप्न्यम् '
अ. १६.६.९

स्वपाः – सु + अपस् = स्वपस् । अर्थ – (१) उत्तम ज्ञान या कर्म वाला बुद्धिमान् कुशल पुरुष, (२) स्व + पा = स्व पा– अर्थात् स्वयं अपने आत्मा का रक्षक, (३) सुकर्मा
'रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषु'
ऋ. १.१३०.६

स्वप्राभिकरण – निद्रावृत्ति को अभिमुख करना
'स्वप्न स्वप्नाभिकरणेन '

अ. ४.५.७

स्वभ्यक्त - सु + अभि + अक्त । अच्छी तरह से तैलादि लगाया हुआ ।

'य आक्ताक्षः स्वभ्यक्तः'

अ. २०.१२८.७; शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.२

सपित्व - (१) समान व्यवहार और विज्ञान -दया. (२)समान पद, आदर, सत्कार (३) समान रूप से अन्नादि खाद्य फल ।

'येभिः सपित्वं पितरो न आसन्'

ऋ. १.१०९.७; तै.ब्रा. ३.६.११.१; आप.मं.पा. २.३.२

सप्ति - (१) सातों प्राणों का स्वामी आत्मा

'सप्तिं मृजन्ति वेधसः'

ऋ. ९.२९.२; साम. २.१११६

(२) वेग से आगे बढ़ने वाला (३) समवाय बनाने में कुशल पुरुष (४) व्यापक परमात्मा (५) सात मूर्धागत प्राण- दो नाक, दो आंख दो कान और वाणी

(६) राष्ट्र में व्यापक (७) युद्ध में संर्पणशील

'अनु त्वा सप्ते प्रदिश सचन्ताम्'

वाज.सं. २९.२; तै.सं. ५.१.११.१; मै.सं. ३.१६.२; १८४.१; का.सं. (अश्व.) ६.२.

(८) शत्रु का पीछा करने वाला

(९) राष्ट्र के सातों अंगों का स्वामी, (१०) राष्ट्र में समवाय बना कर रहने में समर्थ

'सप्तिरसि वाज्यसि'

वाज.सं. २२.१९; तै.सं. १.७.८.१: ; ७.१.१२.१; मै.सं. ३.१२.४:१६१.९; का.सं. (आश्व) १.३, पंच-ब्रा. १.७.१; श.ब्रा. १३.१.६.१; तै.ब्रा. १.३.६.४; आप मं.पा. २.२१.२५

(११) अश्व, (१२) प्रकृति की सातों विकृतियों का स्वमी परमेश्वर-अग्नि

'सप्तिं न वाजयामसि'

ऋ. ८.४३.२५

वेगवान् के अर्थ में

'सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिम्'

ऋ. ३.२२.१; का. सं. १६.११

(१४) सरण, सर्पर्ण शील, सरण करने वाली चलने वाली

स्वपिति - सोता है ।

'स्वपिति सस्ति इति द्वौ स्वपितिकर्माणौ ।'

(स्वप् और सस् ये दो धातु सोना युर्थ में प्रयुक्त हैं) ।

स्वपिवातः - सु + अपि + वात । (१) उत्तम रीति से शत्रुओं या प्रचण्ड वेगयुक्त आक्रमण से युक्त करने वाला

'सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा'

ऋ. ७.४६.३; नि. १०.७

(२) स्वाप्त वचन, (३) वातावरण में आविष्ट, (४) वातावरण को धारण करने वाला (५) रुद्र का विशेषण ।

'सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा
मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः'

ऋ. ७.४६.३

हे स्वाप्त वचन, या वातावरण में आविष्ट या वातावरण को धारण करने वाले रुद्र (स्वपिवात), तेरी सहस्रों ओषधियाँ (ते सहस्र भेषजाः) हमारे पुत्र पुत्री रूपी सन्तानों में (नः तोकेषु तनयेषु) हिंसा न करें (मा रीरिषुः) ।

(६) जिसकी आज्ञा अतिक्रमणीय न हों-यास्क

(७) यह शब्द रुद्र के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है । रुद्र विद्युदात्मा है । यह सब रोगों का कर्त्ता और हर्ता समझा जाता है ।

(८) स्वपि का अर्थ सोने वाला, वात का अर्थ वायु है । रुद्र में भी वायु विराजमान है, अर्थात् जिसमें वायु विराजमान है । वह रुद्र है । वातावरण में भी रोग के कीटाणु रहते हैं । अतः उस वातावरण का देवता भी विद्युतात्मा रुद्र है । रोग की उत्पत्ति अन्न तथा वायु से ही होती है ।

(९) रुद्र सूर्य का भी वाचक है अतः रुद्र रोगों का नाशक भी है । आज भी हम धूप को 'रौदा' कहते हैं । यह रौद्र का बिगड़ा रूप है ।

(१०) शिव की एक संज्ञा रुद्र है । अतः स्वपिवात' शिव का भी वाचक है ।

सपीति - (१) बन्धुवर्गों के साथ दुग्धादि का पान करना (२) सपानम् (पान के सहित) दुग्ध आदि पेय पदार्थों से युक्त ।

सप्तीवान् - उत्तम अश्वों का स्वामी ।

'सप्तीवन्ता सपर्यवः'

ऋ. ७.९४.१०

स्वपू - स्वपू धातु से सम्पन्न । अर्थ है-शयानः दया-। (१) अपने साथ सोने वाली (३) स्वभू

अपने उत्पन्न होने योग्य भूमि, (४)अपना शस्त्र
'अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त '
ऋ. ७.५६.३

सबन्धु – (१) सम्बन्ध से बन्धु हुआ है। जो सम्बन्ध कराता या बन्धन कराता है वह बन्धु है।
'सदृशः बन्धुः सबन्धुः
(जो समान रूप से बन्धु है वह सबन्धु है)।

सब्व – सप् + व। 'सप्' समवाय अर्थ में प्रयुक्त है।
'समवायं संघं कृत्वा'
स्थितम्।
(१) पक्वाशयगत मूल, (२) राजा विपरीत संघ या षडयन्त्र बनाकर बैठने वाला।
'ऊवध्यं वातं सब्वं तदारात् '
वाज.सं. १९.८४; मै.सं. ३.११.९: १५३.१०; का.सं. ३८.३; तै.ब्रा. २.६.४.२.

स्तब्ध – (१) स्तम्भित, चुपचाप स्तम्भ के समान स्थित (२) पुरुष का विशेषण।
'वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः'
तै.आ. १०.१०.३; महा.ना.उप. १०.४; नि. २.३.
वह एक पुरुष वृक्ष की तरह द्युलोक में स्तब्ध खड़ा है।

स्वब्दी – (१) गरजता मेघ या वृषभ
'इन्द्र स्वब्दीव वंसगः'
ऋ. ८.३३.२; अ. २०.५२.२; ५७.१५; साम. २.२१५
(२) उत्तम जल देने वाला मेघ

सभराः – (१) समान भार वाला, समान वस्तु को धारण करने वाला
'मिचश्च सम्मितश्च सभराः'
वाज.सं. १७.८१ ; तै.सं. १.८.१३.२; ४.६.५.५; मै.सं. २.११.१ :१४०.४; का.सं. १८.६
(२) फल के भार से युक्त औषधियां या व्रीहि
(३) हरी भरी
'गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नः।
नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात्'
ऋ. १.१०१.३; वाज.सं. १२.६८; तै.सं. ४.२.५.६; मै.सं. २.७.१२:९१.१६; का.सं. १६.१२; श.ब्रा. ७.२.२.५
स्तुति द्वारा जिसकी हम याचना करते हैं (गिरा) वे ओषधिगण शीघ्र फलभार से युक्त हो जांय (श्रुष्टिः सभरा असन्) तथाप का अन्न (पक्वम्) हंसुआ या अंकुश से भी निकटतम आ जाय (सृण्यः इत् नेदीय एयात्।)।

सभरसः – (१) मरुतों का विशेषण। 'सभरस्' शब्द का बहुवचन (२) समान भरण पोषण करने वाले, (३) समान रूप से पालन पोषण करते हुए, (४) समान होकर बुद्धादि करते हुए
'यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः'
ऋ. ५.५४.१०

स्वभ्यस – स्वयं भयङ्कर दीखने वाला सैनिक
'स्वभ्यसा ये चोद्द्यसाः'
अ. ११.९.१७

सभा – जिसमें सभ्य जन बैठते हैं वह सभा है।
'यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये'
वाज.सं. ३.४५; २०.१७; तै.सं. १.८.३.१; मै.सं. १.१०.२: १४१.१४; का.सं. ९.४; ३८.५ ; श.ब्रा. २.५.२.२५; १२.९.२.३; तै. ब्रा. २.६.६.२

सभागि – (धा.)। धन का बांटना
'यत् सभागयति दक्षिणाः'
अ. ९.६.५४

सभाचर – (१) धर्म सभा में कुशल पुरुष
'धर्माय सभाचरम्।'
वाज.सं. ३०.६; तै.ब्रा. ३.४.१.२.

स्वभानुः – अपनी दीप्ति से चमकने वाला
'ये अञ्जिसु ये वाशीषु स्वभानवः'
ऋ. ५.५३.४

सभावती – स + भा + वतुप + ङीष् = सभावती।
(१) समान कान्ति वाली स्त्री, (२) सभा में एक साथ बैठने वाली ज्ञानवती स्त्री
'सभावती विदथ्येव सं वाक्'
ऋ. १.१६७.३

सभावान् – (१) सभा का स्वामी
'दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् '
ऋ. ४.२.५; तै.सं. १.६.६.४; ३.१.११.१; मै.सं. १.४.३:५१.३; १.४.८:५६.९; का.सं. ५.६; ३२.६

सभास्थाणु – सभी के बीच में स्थित मुख्य पदाधिकारी
'आस्कन्दाय सभास्थाणुम्'
वाज.सं. ३०.१८

सम्भ्रियमाणः – प्रजाओं से पालन पोषण किया जाता हुआ राजा
'विष्णुः सम्भ्रियमाणः'

वाज.सं. ८.५७

स्कभित - स्थापित, धारित

स्कभीयान् - सब से अधिक संसार भर को थामने वाला इन्द्र, परमेश्वर

'चास्कम्भ चित् कम्भनेन स्कभीयान् '

ऋ. १०.१११.५

स्वभीशुः - सु + अभीशुः ।(१) सुप्रबद्ध नियमव्यवस्था से सम्पन्न, (२) देह के संचालक ज्ञानतन्तुओं की स्वामिनी

'स्वभीशुः कशावती'

ऋ. ८.६८.१८

संभूति - (१) मरुत् आदि विकार मयी सृष्टि, (२) आत्मा का कर्मानुसार पुनर्जन्म

'य उ सम्भूत्यां रताः'

वाज.सं. ४०.९; श.ब्रा. १४.७.२.१३; बृह. आ. उप. ४.४.१३; ईश. उप.१२

'सम्भूतिं च विनाशं च
यस्तद्वेदोभयं सह'

वाज.सं. ४०.११; ईश.उप. १४

(३) विकास-विनोबा भावे। उन्होंने 'असम्भूति' का अर्थ 'निरोधं एवं 'सम्भूति ' का विकास किया है। आत्म ज्ञान के लिए निरोध और विकास दोनों आवश्यक हैं।

स्वभूति - (१) स्वयं ऐश्वर्यवान् वायु (२) जगत् रूप अपनी विभूति से युक्त ईश्वर

'एकया च दशभिश्च स्वभूते '

वाज.सं. २७.३३; मै.सं. ४.६.२: ७९.६; श.ब्रा. ४.४.१.१५; तै. आ. १.११.८; आश्व.श्रौ.सू. ५.१८.५; शा.श्रौ.सू. ८.३.१०

स्तभूयन् - स्थिर करने की इच्छा करता हुआ

'निः यस्त्यासु त्रित स्तभूयन्'

ऋ. १०.४६.६

स्तभूयमान - स्तम्भन करने और थाम लेने वाला

'स्तभूयमानं वहतो वहन्ति'

ऋ. ३.७.४

स्वभूत्योजस् - जिसकी भूति और पराक्रम स्वकीय हो- परमात्मा

'स्वभूत्यो जा अवसे धृषन्मनः'

ऋ. १.५२.१२

सबके संकल्प विकल्प करने वाले चित्तों को अपने ज्ञानविवेक और अद्भुत अज्ञेय रचना से घर्षण या पराजित करने वाले परमेश्वर (धृषन्मनः) तू स्वतः बिना के सहयोग से अपने प्रचुर ऐश्वर्य और पराक्रम से सम्पन्न होकर।

सभृतिः - 'समान भृतिः सभृतिः' (एक समान भरण पोषण या वेतन पाने वाला भृत्य आदि जन)।

'आयत् सद्म सभृतयः पृणान्ति'

ऋ. ६.६७.७

सभेय - (१) सभा में कुशल, दक्ष

'सादन्यं विदथ्यं सभेयम् '

१.९१.२०; वाज.सं ३४.२१; मै.सं. ४.१४.१: २१४ भ ३; तै.ब्रा. २.८.३.१

'सभेयोयुवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् '

वाज.सं. २२.२२; तै.स. ७.५.१८.१; मै.सं. ३.१२.६; १६२.९; श.ब्रा. १३.१.९.९; तै.ब्रा. ३.८.१३.३.

'यः सभेयो विथ्यः'

अ. २०.१२८.१; गो.ब्रा. २.६.१२; शां.श्रौ.सू. १२.२०.२.१

(२) सभा में उत्तम पद पर स्थित

'सभेयो विप्रो भरते मती धना '

ऋ. २.२४.१३

(३) सभा में प्रशंसनीय, उत्तम वक्ता

'सादन्यं विदथ्यं सभेयम्
पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै'

ऋ. १.९१.२०; वाज.सं. ३४.२१; मै.सं. ४.१४.१: २१४.३

सम् - एक उपसर्ग। अर्थ- सम्यक् अच्छी तरह से।

सम - (१) समस्थल

'पर्वतेषु समेषु च '

अ. ८.७.१७

(२) समम् इति परिग्रहार्थीयं सर्वनाम अनुदात्तम् (सम् शब्द परिग्रह शब्द वाला सर्वनाम है। और अनुदात्त है)।

(३) सर्व, सभी।

'नभन्तामन्यके समे'

ऋ. ८.३९.१;४०.११; ४१.१-१०; ४२.४-६, तै.सं. ३.२.११.३; नि. ५.२३; १०.५

और सभी शत्रु नष्ट हो जांय।

(४) सह (साथ)

'साकं सत्रा समं सह'

'सर्प अर्थ में प्रयोग-

'उरुष्याणो अघायतः समस्मात्'

ऋ. ५.२४.३; वाज.सं. ३.२६; मै.सं. १.५.३;६९.१२; का.सं. ७.१; श.ब्रा. २.३.४.३१; आप.श्रौ.सू. ६.१७.८: नि. ५.२३.

हे अग्नि ! हमें (नः) सभी परोपकारियों से (समस्मात् अधायतः) हमारे निकट आकर बचा (उरुष्य) ।

समक्त - सम् + अञ्ज + क्त = समुक्त । अर्थ- विक्याते

'ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ताः'

ऋ. १०.६२.१; ऐ.ब्रा. ५.१३.१२; को.ब्रा. २३.८

(२) भली प्रकार से सुशोभित

'व्रतेन त्वं व्रतपते समक्तः'

अ. ७.७४.४

समकृण्वन् - रचना की ।

समग्र - सम् + अग्र = समग्र । (१) सब प्रकार से और सब कामों में सब पदार्थों के आगे, (२) सबके पूर्व विद्यमान (३) सबका कारण स्वरूप, (४) सब का अग्रणी नेता ।

'समग्रोऽसि समन्तः'

अ. ७.८१.४

समङ्काः - रोगों का उपलक्षण, सहयोगी लक्षण

'अङ्कान् समङ्कान् हविषा विधेम'

अ. १.१२.२

समजति - (१) संभजन करता है,

'समर्यो गा अजतियस्य वष्टि'

ऋ. १.३३.३

इन्द्र सम्पूर्ण जगत् का स्वामी है (अर्यः) जिसके राज्य में सभी जल चाहते हैं (यास्य वष्टि) अतः वह मेघों को विदीर्ण करता है (गा समजति) ।

समञ्जन् - (१) सम्मुख करता हुआ -सा.

(२) अभिव्यक्त करता हुआ

'उपावसृज त्मनया समञ्जने
देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि'

ऋ. १०.११०.१०; अ. ५.१२.१०; वाज.सं. २९.३५; मै.सं. ४.१३.३; २०२.१३; का.स. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.४; नि. ८.१७

(३) सम् + अञ्ज + शतृ = समञ्जत् । प्र.ए.व. 'समञ्जन्' ।

'गोभिर्वपावान् मधुना समञ्जन्'

वाज.सं. २०.३७; मै.सं. ३.११.१: १३९.१५; का.सं. ३८.६; तै.ब्रा. २.६.८.१

समञ्जन - सम् + अञ्ज + ल्युट् । (१) एक दूसरे के प्रति निःसंकोच व्यवहार, (२) चित्त के भावों का सत्य रूप से प्रकाशन, (३) परस्पर मिलन

अनीकं नौ समञ्जन'

अ. ७.३६.१

समञ्जन्ति - समश्नवन्ति (भोजन करते हैं -खाते हैं या प्राप्त करते हैं) ।

'कमप्यूहे यत्समञ्जन्ति देवाः'

ऋ. ८.१.१२.

जिस अन्न को देवता लोग या आर्य जन (देवाः) खाते या प्राप्त करते हैं (समञ्जन्ति) ।

प्रकरण वश यहां 'अञ्ज' धातु का अर्थ 'भोजन करना' किया गया है ।

समतस् - वश अधिकार

'अयमु ते समतसि'

ऋ. १.३०.४; अ. २०.४५.१; साम. १.१८३; २.९४९; वै.सू. ३९.९; ४१.१३; नि. १.१०

हे परमेश्वर या राजन्, यह समस्त लोक तो ही अधिकार में है ।

समद् - (१) सम् + अद् (भक्षण करना) + क्विप् = समद् । अर्थ है- (१) नाशक शत्रु सेना (२) सम् + मद = समद । अभिमानी शत्रु सेना (३) दुर्ग ने अनेक शस्त्र संघात संङ्कटान् अनेक वीर पुरुष कीर्णान् संग्रामान् -ऐसा अर्थ किया है ।

(४) युद्ध ।

'अश्वान् समत्सु चोदय'

ऋ. ६.७५.१५; वाज.सं. २९.५०; तै.सं. १.७.८.१; ४.६.६.५;

घोड़ो को संग्रामों में प्रेरित कर ।

'यद्वर्मी याति समदामुपस्थे'

ऋ. ६.७५.१; वाज.सं. २९.३८; तै.सं. ४.६.६.१; मै.सं. ३.१६.३: १८५.१०; का.सं. (अश्व.).६.१

संमदन्ति - सुख पूर्वक रहती है ।

'तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति'

ऋ. १०.८२.२; वाज.सं. १७.२६; तै.सं. ४.६.२.१; मै.सं. २.१०.२ :१३४.४; नि. १०.२६

उन जीवों के इष्ट गति शील या सात रश्मियाँ जल के साथ (इषा) सुखपूर्वक रहती है । (संमदन्ति) ।

समद्वा – (१) मद उत्तेजना या हर्ष से युक्त पुरुषों को प्राप्त करने वाला इन्द्र ।
'युध्मो अनर्वा खजकृत् समद्वा'
ऋ. ७.२०.३
(२) उत्तम अन्न का भोक्ता
'स युध्मः सत्वा खजकृत् समद्वा'
ऋ. ६.१८.२; का.सं. ८.१७

समध्यमः – जिसकी स्तुति सात स्वरों में मध्यम स्वर में ही की जाती है ।
'यः सिन्धूनामुपोदये सप्तस्वसा स मध्यमः'
ऋ. ८.४१.२
जो वरुण नदियों की बाढ़ आने पर सात बहन वाले हो जाते तथा जिसकी स्तुति सात स्वरों में मध्यम स्वर से की जाती है ।

समन् – संग्राम ।

समन – (१) समान चित्त वाला
'जुष्टा वरेषु समनेषु वल्गुः'
अ. २.३६.१
(२) (न.) युद्ध ।
'ज्या इयं समने पारयन्ती'
ऋ. ६.७५.३; वाज.सं. २९.४०; तै.सं. ४.६.६.२; मै.सं. ३.१६.३: १८५.१५; का.सं.(अश्व.) ६.१; नि. ९.१८
धनुर्धारी को युद्ध में जिताने वाली यह क्या है ।

समनगा – समनम् अवधारिकं स्थानं गच्छन्ती–दया.
(१) संग्राम में जाने वाली सेना (२) स्वयंम्वर में जाने वाली कन्या

समनगा – समनं गच्छति इति समनगः (संग्राम में जाने वाला) ।
'समनगा अशुचज्ञातवेदाः'
ऋ. ७.९.४

समनसा – समान चित्त वाले स्त्री पुरुष
आ जह्नावीं समनसोप वाजैः
'त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम्'
ऋ. १.११६.१९
एक दूसरे के समान चित्त वाले होकर अपने सेवन करने योग्य ऐश्वर्य को धारण करने वाले (भागं दधतीम्) शत्रुओं या हथियार छोड़ने वाले सेनापति की या वेतन भृति आदि देने वाले राजा की सेना को देखने भालने के लिए वेगवान् अश्वों और भक्तों के सहित (वाजैः) दिन में तीन बार आओ ।

समनसः – विश्वे देवाः– मन के सहित इन्द्रियगण या प्राण
'विश्वेदेवः समनसः सकेताः'
ऋ. ६.९.५

समन्त – (१) सम्मिलित
'घर्मा समनता त्रिवृतं व्यापतुः'
ऋ. १०.११४.१
(२) सब प्रकार से समस्त संसार को प्रलय काल में अन्त अर्थात् अपने भीतर प्रलीन करने वाला परमेश्वर ।
(३) सबसे पिछला या सबसे उत्कृष्ट
'समग्रः समन्तो भूयासम्
गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैधनेन'
अ. ७.८१.४
(४) सर्वाङ्ग सुदृढ़
'अग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम्'
ऋ. ५.१.११

समन्तम् – चारों तरफ
'इन्द्रस्य तत्र बाहू समन्तं परि ददमः'
अ. ६.९९.२

समन्तशितिरन्ध्रः– सारे शरीर पर श्वेत चिटकन वाला वस्त्र पहनने वाला
'शितिरन्ध्रोऽन्यतः शितिरन्ध्रः
समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः'
वाज.सं. २४.२; तै.सं. ५.६.१३.१; मै.सं. ३.१३.३: १६९.३; का.सं. (अश्व.) ९.३.

समन्त शितिबाहु – समस्त बाहुओं पर श्वेत वस्त्र पहनने वाला
'शितिबाहुरन्यतः शितिबाहुः
समन्तशितिबाहुस्ते बार्हस्पत्याः'
वाज.सं. २४.२; मै.सं. ३.१३.२; १६९.२

समना – (१) समानमनस्काः (समान मन वाली स्त्रियां)–एक ही पति के प्रति समान भाव से मन रखने वाली दो स्त्रियां (२) समान
'तमूषु समना गिरा'
ऋ. ८.४१.२; नि. १०.५
मैं उसी समान वाणी से स्तुति करता हूँ ।
(३) द्वि.व.। समान पति वाली दो स्त्रियां
'ते आचरन्ती समने व योषा'

ऋ. ६.७५.४; वाज.सं. २९.४१; तै.सं. ४.६.६.२; मै.सं. ३.१६.३: १८५.१६; का.सं.(अश्व.) ६.१; नि. ९.४०

जो धनुष की कोटियों समान पति वाली दो स्त्रियों की तरह (समनेव योषा) धनुष खींचने वाले की ओर आचरण करती रहती हैं (४) युद्ध भूमि ।

'चिश्चा कृणोति समनावगत्य'

ऋ. ६.७५.५; वाज.सं. २९.४२; तै.सं. ४.६.६२; मै.सं. ३.१६.३: १८६.१; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. ९.१४

युद्ध में जाकर (समना अवगत्य) चिश् चिश् शब्द करता है ।

(५) समन्ता मनन करने से या समान मन वाला होने से मन्त्री समन्त है । -दया. (६) सम्यक् प्रकार से मनन करने वाला ।

(७) समनानि = समन्त ।

यह शब्द नित्य बहुवचन और नपुंसक है ।

समन्त - सम् + अन्ता । शुभ परिणाम वाला

'उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः'

अ. ४.३४.५-७

समन्ते - द्वि.व. ।(१) द्यावापृथिवी का विशेषण ।

(२) सीमान्त भाग से मिले हुए

(३) उत्तम परिणाम या उद्देश्य को धारण करने वाले स्त्री पुरुष ।

'संगच्छमाने युवती समन्ते'

ऋ. १.१८५.५

समन्य - (१) संग्राम योग्य, (२) सभा भवन आदि के उपयुक्त

सम्पद् - (१) सम् + पद् + क्विप् । अच्छी प्रकार से समस्त पदार्थों का ज्ञान करने और प्राप्त करने वाला, (२) सम्पत्ति, (३) सम्पत्ति रूपा स्त्री

सम्परसि सम्पदे त्वा'

वाज.सं. १५.८; का.सं. ३९.६; आप.श्रौ.सू. १६.३१.१

सम्प्रति - (१) यास्क के अनुसार 'साम्प्रतम्' का ही विकृत रूप सम्प्रति है । अमरकोश में कहा है ।

'एतर्हि सम्प्रतीदानी मधुना साम्प्रतं तथा'

(२) निरुक्त में इसे लुप्तनाम करण कहा है । क्योंकि जिस सुप् प्रत्यय से यह बना है वह लुप्त हो जाता है ।

अर्थ - अधुना, अभी, इस समय ।

संप्रश्नः - (१) प्रश्न करने योग्य, (२) जिज्ञासा करने योग्य विश्वकर्मा प्रभु

'तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या'

ऋ. १०.८२.३; अ. २.१.३; वाज.सं. १७.२७; तै.सं. ४.६.२.२; मै.सं. २.१०.३; १३४.१०; का.सं. १८.१

संमद - सम् + मद् = संमद् । अर्थ है । मदयुक्त, सहृष्ट ।

समद - सम् + अद् अथवा सम् + मद् = समद् ।

(१) मदयुक्त

समदो वातेः, संमदोवा मदतेः । समद्यो संमद भक्षणार्थक अद् धातु से बना है ।

(२) मत्त सेना ।

'धन्वना तीव्राः समदो जयेम'

ऋ. ६.७५.२; वाज.सं. २९.३९; तै.सं. ४.६.६.१; मै.सं. ३.१६.३: १८५.१२; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. ९.१७

धनुष से अत्यन्त सेना जीतते हैं (तीव्रा समदः जयेम) (३) युद्ध

'संगे समत्सु वृत्रहा'

ऋ. १०.१३३.१; अ. २०.९५.२; साम. २.११५१; तै.सं. १.७.१३.५; मै.सं. ४.१२.४:१८९.८; तै.ब्रा. २.५.८.२

संग्राम काल में तथा युद्धो में इन्द्र वृत्र का वध करने वाला है ।

समध्वर - सम् + अध्वर । (१) उत्तम हिंसा रहित यज्ञ करने वाला

'अस्मै भीमाय नमसा समध्वरे'

ऋ. १.५७.३; अ. २०.१५.३

समनम् - सम् + अनम् । (१) समष्टि प्राण शक्ति को धारण करने की क्रिया

'समनं वाव गच्छति

ऋ. १०.८६.१०; अ. २०.१२६.१०

(२) संग्राम, (३) नदियों का संगम

'ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः'

ऋ. २.१६.७

(३) समनम् संभजनात् सम्माननात् सम्मान (४) पति-संगमन

'अन्याः समनमायति'

अ. ६.६०.२

समनप् - सम् + अनप् । (१) अच्छी प्रकार बांधने वाला

'अरज्ञौ दस्यून् समनब्दभीतये'
ऋ. २.१३.९

समनसा - द्वि.व. । समान चित्त वाले पति पत्नी
'अर्वाग् रथं समनसा नि यच्छतम्
ऋ. १.९२.१६; ७.७४.२; साम. २.१०४, १०८४
समान चित्त वाले वरवधू, तुम और हमारा अतिथ्य स्वीकार करो ।

सम्भरण - (१) अच्छी प्रकार पालन पोषण, (२) समूह
'आ नो भरं सम्भरणं वसूनाम्'
ऋ. ७.२५.२
(३) समस्त प्रजाओं का भरण पोषण करने वाला राजा
'सम्भरणस्त्रियो विंशः '
वाज.सं. १४.२३; तै.सं. ४.३.८.१; ५.३.३.४; मै.सं. २.८.४:१०९.५; का.सं. १७.४; २०.१३; श.ब्रा. ८.४.१.१७.

सम्भरेते - (१) जलाते हैं, (२) खाते हैं ।
'नाना हनू विभृते संभरेते '
ऋ. १०.७९.१.
वैश्वानर अग्नि की हवन करने वाली ज्वालाएं नाना रूप में रहकर भी एकत्र हो हवि या लकड़ियों को जलाती हैं । -सा.
बच्चे के दोनों जबड़े दुग्ध पान करते हैं ।- दया.

संभल - संभलकः समादाता इति सायणः (१) उत्तम रीति से आदान करने वाला योग्य पात्र या उत्तम विद्वान् प्रवक्ता
(२) भला उत्तम विद्वान्
'आ नो अग्ने सुमतिं संभलो गमेत्'
अ. २.३६.१

सम्भव - (१) उत्पत्तिः (२) कार्य जगत्
'अन्यदेवाहुः सम्भवात्'
वाज.सं. ४०.१०; ईश.उप.१३

सम्भ्रियमाण - नाना ऐश्वर्यों से पुष्ट किया जाता हुआ
'प्रजापतिः सम्भ्रियमाणः'
वाज.सं. ३९.५; का.श्रौ.सू. २६.७.५०

सभृताश्व - संभृत + अश्व ।
अश्वों या इन्द्रियगण को अच्छी प्रकार-नष्ट करने वाला
'सम्भृतेः संभृताश्वः'
ऋ. ८.३४.१२

संमनाः - एकचित्त
'संजानानाः संमनसः सयोनयः'
अ. ७.१९.१

समपृच्यन्त - संयुक्त रहते हैं ।
'संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः'
ऋ. १.११०.४; नि. ११.१६
ऋभुगण या वैश्य वर्षभर व्यापारिक कर्मों से (धीतिभिः) युक्त रहते हैं (समपृच्यन्त) ।

सममानः - अधिक मान पाता हुआ
'न यन्मित्रैः सममान एति'
अ. १२.३.४८

समया - अ. । (१) बीच में,
'समया विश्वमा रजः'
ऋ. ७.६६.१५
(२) निकट, समीप
'अक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते'
ऋ. १.१६६.९
(३) सदा
'असि सोमेन समया विपृक्तः'
ऋ. १.१६३.३; वाज.सं. २९.१४; तै.सं. ४.६.७.१; का.सं. ४०.६
(४) समय समय पर यथा समय, बीच बीच में
'वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः'
ऋ. १.५६.६
तू समय समय पर वृत्र को या बढ़ते हुए शत्रु को विविध उपायों से आघात कर ।

समरण - सम् + अरण । (१) उत्तम ज्ञान, (२) सत्संग, (३) सम्यक् प्रापण
'त्वेषमित्था समरणम् शिमीवतोः'
ऋ. १.१५५.२; आश्व.श्रौ.सू. ६.७.९; नि. ११.८
(४) समागम ।
हे इन्द्र और विष्णु, इष्ट प्रदान कर्म वाले या प्रहरणादि अर्थ वाले आप दोनों के (शिमीवतोः) इस प्रकार (इत्था) समागम को (समरणम्) ।

समर्य - (१) अन्य मनुष्यों का सत्संग
'वयं श्वो वोचेमहि समर्ये'
ऋ. १.१६७.१०
(२) मरने मारने वालों के एकत्र होने का स्थान संग्राम
'यदा समर्यं व्यचेदृघावा'

ऋ. ४.२४.८
(३) मनुष्यों के एकत्र होने का स्थान
'इन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ'
ऋ. ७.२३.१; अ. २०.१२.१; साम. १.३३०
(४) स + मर + यत् । मृत्यु को साथ होने वाला संग्राम ।
'मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये'
ऋ. १०.२७.२४
इस मृत्यु के साथ होने वाले संग्राम में होने वाले इस आदित्य के ऐसे उपकार को मत भूत (मा स्म अपगूहः) ।

समर्यजित् – संग्राम, जीतने वाला
'समर्यजिद् वाजो अस्माँ अविष्टु'
ऋ. १.११६.५
संग्रामों का विजेता पुरुष (समर्यजित्) बलवान् होकर हमारी रक्षा करें (अस्मान् अविष्टु) ।

समर्यत् – युद्ध करने की इच्छा करता हुआ
'समर्यता मनसा सूर्यः कविः'
ऋ. ५.४४.७

समराणः – सम् + अराणः । सम्यक् प्राप्नुवन् (अच्छी तरह मिलता हुआ) ।
'सं पृच्छसे समराणः शुभानैः'
ऋ. १.१६५.३; वाज.सं. ३३.२७; मै.सं. ४.११.३: १६८.११; का.सं. ९.१८
तू हमसे मिलता हुआ अच्छी प्रकार कुशल आदि प्रश्न किया करता है ।
(२) ठीक रास्ते पर जाता हुआ

समवर्तत – समजायत (उत्पन्न हुआ) ।
'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे'
ऋ. १०.१२१.१; अ. ४.२.७; वाज.सं. १३.४; २३.१;२५.१०
सृष्टि के पूर्व परमात्मा से हिरण्य गर्भ उत्पन्न हुआ ।

समव्यत् – (१) समनात्सीत्, समवेष्टयत् (समेट दिया) ।
'पुनः समव्यद विततं वयन्ती'
ऋ. २.३८.४; नि. ४.११
जैसे कोई स्त्री कपड़ा बुनती हुई सूर्यास्त होने पर पुनः उसे तान देती है, उसी प्रकार यह रात्रि अन्धकार समेटती है ।

समवावशीताम् – सम् + अव + अवशीताम् । सम्यक रूप से स्तुत किये गए । अश्विनी कुमारों के सम्बन्ध में प्रयुक्त
'इहहे जाता समवावशीताम्'
ऋ. १.१८१.४; नि. १२.३
हे अश्विनी कुमारो, तुम दोनों इसी प्रकार द्युस्थान में उषा और रात्रि के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए और सम्यक् प्रकार से स्तुत हुए ।
(२) संस्तयेथ (पुरुष व्यव्यय आर्ष है) । स्तुत किए जाते हैं ।

समह – (१)आदर सत्कार से युक्त विद्वान् (२) महान् शक्ति वाला प्रभु
'अयं समह मा तनु
उह्याते जनाँ अनु
सोमपेयं सुखो रथः'
ऋ. १.१२०.११
हे आदर सत्कार से युक्त विद्वन् (समह) या महान् शक्ति वाला प्रभु, यह सुख दायक या वेग से जाने वाला या इन्द्रिय सत्व युक्त रथ या शरीर है । यह अन्य जनों तक पहुंचाया जाता है...
(३) उत्तम पूज्य । स + मह (४) सम + अह । अवश्य
'क्रत्वः समह दीनता
प्रतीपं जगमा शुचे ।'
ऋ. ७.८९.३
(४) पूजा सत्कार योग्य गण
'सुदेवः समहासति'
ऋ. ५.५३.१५
'भूरिभिः समह ऋषिभिः'
ऋ. ८.७०.२४
(६) एक ही साथ
'सिन्धौ समह संगमः'
अ. ६.२४.१

सम्पतिता – संयुक्त
'अश्वस्यास्त्रः सम्पतिता'
अ. ५.५.९

संपत्नी – उत्तम गृहपत्नी
'संपत्नी प्रति भूषेह देवान्'
अ. १४.२.२५

सम्पश्यमान – सम्यक् प्रकार से साक्षात्कार करता हुआ

'संपश्यमाना अमदन्नभिस्वम्'
ऋ. ३.३१.१०
सम्यञ्चा - सम्यञ्चौ। अच्छी प्रकार जीवन-निर्वाह करने वाले माता-पिता
'सम्यञ्चा बर्हिराशाते'
ऋ. ८.३१.६
सम्बाध - पीड़ा, विपत्ति
'पुरा सम्बाधादभ्या ववृत्स्व नः'
ऋ. २.१६.८
सम्बन्धु - बन्धु जिससे बन्धन हो- सम्बन्ध हो।
'बन्धुः बन्धनात्'
संभक्ता - सींची हुई
'मधोः संभक्ता अमृतस्य भक्षः'
अ. ८.७.१२
संभल - (१) उत्तम मधुर भाषण करने वाला, मधुरभाषी
'चारु संभलो वदतु वाचमेताम्'
अ. १४.१.३१
'तत् संभलस्य कम्बले'
अ. १४.२.६६
सम्मदन्ति - सम्मोदन्ते, सुखं निवसन्ति (आनन्द करते हैं) (२) सुख पूर्वक निवास करते हैं।
स्कम्भ - (१) स्तम्भ -दया. (२) मण्डल-सा.
'आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीडे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ'
ऋ. १०.५.६; अ. ५.१.६.
मर्यादा का उल्लंघन नहीं करने वाला, सूर्य मण्डल में स्थित , आदित्यान्तर नारायण के स्थान में जो अविनाशी स्थान है वहां निवास करता है।
अथवा
जीवन के स्तम्भ (आयोः स्कम्भः) उत्तम शान्ति के धाम और जहां अनेक मार्गों की सृष्टि न हो ऐसे सर्वाधार परमेश्वर में तथा धारक शक्तियों में स्थित होता है।
(३) ब्रह्म
'महस्कम्भस्य मिमानो अङ्गम्'
अ. १०.७.२
'स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः
अ. १०.७.२९
'स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम्'
अ. १०.७.३०
स्कम्भदेष्णः - (१) स्तम्भन दाता, (२) युद्धादि में अपने सैन्य और प्रजा के बीच में स्तम्भन, बल, दृढ़ता आदि गुणों और प्रबन्ध बल देने वाला (३) स्कम्भ नाम सर्वाधार परमेश्वर के ज्ञान का उप देश करने वाला
'प्रस्कम्भदेष्ण अनवभ्रराधसः'
ऋ. १.१६६.७
स्कम्भन - (१) खम्भे के समान आश्रयप्रद उपाय, साधन, (२) थामने का साधन
'अजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे'
ऋ. १.१६०.४
'उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेन'
ऋ. ६.७२.२
'विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री'
ऋ. ३.३१.१२
स्कम्भनी - आश्रयभूत
'दिवः स्कम्भनीरसि'
वाज.सं. १.१९
स्कम्भसर्जनी - द्वि. व.। श्रेष्ठ राजा की आधारभूत दो राजसभाएं-राज नियम निर्मात्री (Legislative) और संचालिका (Executive)
वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थः'
वाज.सं. ४.३६; श.ब्रा. ३.३.४.२५
स्तम्ब - (१) झुण्ड
'स्तम्बे ये कुर्वते ज्योतिः'
अ. ८.६.१४
स्तम्बज - जंगली
'स्तम्बज उत तुण्डिकः'
अ. ८.६.४
स्थपति - कीटों के निवास स्थान का पालक या निर्माता
'उतैषां स्थपतिर्हतः'
अ. २.३२.४; अ. ५.२३.११
स्यम - वितर्क करना, अनुमान करना, कल्पना, करना
Seen धातु 'स्यम' का ही रूपान्तर है।
समा - (१) प्रजा (२) पदार्थ
'शाश्वतीभ्यः समाभ्यः'
वाज.सं. ४०.८; तै.ब्रा. ३.३.११.४; ११.४; ईश.उप. ८.

(३) चान्द्र वर्ष
'समाः सवत्सरान् मासान्'
अ. ३.१०.९; ११.६.१७
(४) संवत्सर, वर्ष
'संवत्सरो वत्सरोऽब्दो
हायनोऽस्त्री शरत्समाः -अमर कोष
*'यत् त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः
वायुः सोमस्य रक्षिता
समानां मास आकृतिः'*
ऋ. १०.८५.५
हे सोमदेव, जब मुझे ऋत्विक् या यजमान तीनों सवनों के समय ओषधि रूप में पीने लगते हैं (यत् त्वा प्रपिबन्तिः), तब तू और बढ़ने लगता है (ततः पुनः आ प्यासे)। तुझ सोम का वायु रक्षक होता है क्योंकि काष्ठमय पात्र में सोम नहीं सूखता तथा हे सोम (मासः) तू संवत्सरो का (समानाम्) आकर्ता अर्थात् व्यवच्छेदक है (आकृतिः)।
'वसन्ते वसन्ते ज्योतिषा यजते'
(प्रतिवसन्त ऋतु में सोम से यज्ञ करें)।
आधुनिक अर्थ- वर्ष। पाणिनि ने इस का प्रयोग एक वचन में किया है पर प्रायः बहुवचन में ही इसका प्रयोग होता है।
(५) साथ

समान - (१) सबके प्रति या सबके लिए समान परमेश्वर या अग्नि
'तमिदर्भ हविष्या समानमित्'
ऋ. १०.९१.८
(२) सममेव मानं यस्य तत्
समानम्। समानं सम्माने मात्रं भवति।
(जिसका मान तुल्य है वह समान है)।
अथवा- 'सहमानेन वर्तत इति समानः'।
सह का स आदेश
अर्थ-आदित्य -सा.
(३) समान गुण कर्मों वाला पति-दया.
*'तमिन्वे समाना समानम्
अभि क्रत्वा पुनती धीतिरश्याः'*
ऋ. ४.५.७
'समानो यज्ञेन कल्पनां स्वाहा'
वाज.सं. २२.३३
(४) समान नामक वायु

समान जन्मा - सदशजन्म या स्वभाववाला
'समानजन्मा क्रतुरस्ति वः शिवः'
अ. ८.९.२२; मै.सं. २.१३.१०: १६०.१६

समान दक्षः - समान रूप से दक्ष, बल शाली
'समानदक्षा अवसे हवन्ते'
ऋ. ७.२६.२; तै.सं. १.४.४६.२;

समान योजना - (१) समान गुण, वय, शरीर वाले पति पत्नी का विवाह।
*'अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः
समानेन योजनेना परावतः'*
ऋ. १.९२.३; साम. २.११०७
(२) (वि.)। एक सा बना हुआ रथ, अश्विद्वय के रथ का विशेषण।
(३) समान नामक प्राण से युक्त रथ रूपी शरीर।
*'समान योजनो हि वां
रथा दस्त्रावमर्त्यः'*
ऋ. १.३०.१८
हे दुःखों के नाशक (दस्त्रा), तुम दोनों शरीर में प्राण और अपान के समान राष्ट्र के संचालकों तुम दोनों का रथ एक जैसा बना हुआ है (समान योजनः) और बिना मनुष्य के चलने वाला है (अमर्त्यः)। हे वेगवान् साधनों से जाने वालो (अश्विना), वह रथ अन्तरिक्ष और समुद्र में भी जाता है।
प्राणापान पक्ष में-हे कर्म श्रम की बाधा के नाशक प्राण अपान, हे अश्व अर्थात् व्यापक भोक्ता आत्मा को धारण करने वाले, तुम्हारा रथ रूप देह जब तक नामक प्राण से युक्त रहता है तब तक कभी नाश को प्राप्त नहीं होता।

समान लोकः - समान लोक प्राप्त करने वाला पति पत्नी
'समानलोको भवति पुनर्भुवापरः पतिः'
अ. ९.५.२८

समानबन्धू - समान बन्धनः समान बन्धुः (जिसका बन्धन समान हो वह समानबन्धु है)। द्विवचन में समानबन्धू। अर्थ- उषा और रात्रि का विशेषण। उषा और रात्रि के सूर्य समान रूप से बन्धु है। दे. 'अनूची'
'समानबन्धू अमृते अनूची'
जिन उषा और रात्रि के सूर्य समान रूप से बन्धु

हैं जो कभी मरने वाली नहीं है और जो एक दूसरे का अनुसरण करने वाली है ।

समानवर्चसा - (१) द्वि.व.वि.। समान दीप्ति या बल से युक्त इन्द्र और मरुत ।

(२) समान तेज वाले जीव और परमात्मा

'मन्दू समानवर्चसा'

ऋ. १.६.७; अ. २०.४०.१; ७०.३; साम. २.२००; नि. ४.१२

समाना - स्त्री.वि.। (१) समान गुणकर्मवाली कन्या,-दया.

(२) अनुरूप

'तमिन्नेव समाना समानम्
अभि क्रत्वा पुनती धीतिरश्याः'

ऋ. ४.५.७

हे यजमान तू उसी (तत् इत्) सभी के लिए एकरूप (समानम्) आदित्य को उनके अनुरूप स्तुति से (समाना धीति) तथा पवित्र करने वाले कर्म या ज्ञान से पुनीती क्रत्वा) शीघ्र ही प्राप्त कर (न्वेव अभ्यश्याः)

उसी समान गुण कर्मों वाले पति के (तम् नु समानम्) समान गुण कर्मों वाली कन्या तू (समाना) कर्म से अपने आप को पवित्र करती हुई (धीती) प्राप्त कर (अभ्यश्याः) ।

समान्या - द्वि. व. । समान + यत् + टाप् = समान्या । अर्थ है-समान्या ।

(१) द्यावापृथिवी का पर्याय (२) तुल्य पृथ्वी और द्यौ-सा.

(३) समान वृष्टि करने वाले सूर्य और पृथ्वी-दया.

'समान्या वियुते दूरेअन्ते'

ऋ. ३.५४.७; ४.२५

(४) जिसका मान तुल्य हो वह समान है । या जो मान के साथ है वह समान है (सह मानेन वर्तते) ।

'समानं सम्मानमात्रं भवति'

सामान्या द्विता - समान रूप से आदर मान करने योग्य युगल भाव

'अध द्विता समान्या'

ऋ. ८.८३.८

समापः - (१) जल के पास मिले हुए तण्डुल

'एतैस्तण्डुलैर्भवता समापः'

अ. १२.३.२९

समाप्ति - सर्व कर्म की समाप्ति

'राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिः'

अ. ११.७.२२

समाम्यः - सबके प्रति समान भाव से रहने वाला

'यः समाम्यो वरुणो यो व्याम्यः'

अ.४.१६.८

समाम - समान रूप से

'यैः समामे बाध्यते यैर्व्यामे'

अ. १८.४.७०

समाम्नाय - सम् + आ + म्ना + घञ् = समाम्नाय (युक् का आगम) । अर्थ-(१) समुदाय, (२) गों से देवपत्नी तक के वैदिक शब्दों का समाम्नाय (३) सम्यक् प्रकार से मर्यादा के साथ इसका व्यवहार किया जाता है अतः यह समाम्नाय है ।

आधुनिक अर्थ-जो परम्परा से आ रहा है या अभ्यास किया जाता है । परम्परा से शब्द समुदाय का संग्रह, परम्परा, आवृत्ति, अध्ययन, गणना, योग संग्रह जैसे-अक्षर समाम्नाय (४ जो समान्मात है वह समाम्नाय कहलाता है ।

समानो राजा - (१) समान भाव से सर्वत्र प्रकाशित होने वाला-सूर्य, (२) नाना पदार्थों में विद्यमान् प्रकाशमान अग्नि, (३) समस्त प्रजाओं से एक सा व्यवहार करने वाला राजा ।

'समानो राजा विभृतः पुरुत्रा'

ऋ. ३.५५.४

समाराणे - द्वि.व. वि. । (१) परस्पर सुसंगत होकर एक दूसरे को समान भाव से सम्प्रदान करते हुए (२) विपाशा और शुतुद्रि नदी, (३) स्त्री पुरुष

'समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने'

ऋ.३.३३.२

समाशिर् - सम् + आ + श्री + असुन् । सम्यक् अभितः श्रीयन्ते सेव्यन्ते सद्गुणैः ये तं समाशिरः'

(१) जो सम्यक प्रकार से पकाया जाय तथा सेवन किया जाय, (२) आश्रय या सेवन करने योग्य

'शतं वायः शुचीनां
सहस्रं वा समाशिराम्'

'एदु निम्नं न रीयते ।'
ऋ. १.३०.२
जिस प्रकार जल नीचे की ओर बह जाता है उसी प्रकार जो विद्वान् शुद्ध पवित्र करने वाले सहस्रों साधनों कर्मों और पदार्थों के प्रति और आश्रय या सेवन करने योग्य हजारों पदार्थों के प्रति झुकता ही है वह उनको प्राप्त कर उनका ज्ञान करता है ।

सम्पात मन्त्र – वेद मन्त्र का ही एक पर्याय । सम्पात क्रिया काण्ड का द्योतक है । यह मन्त्रों द्वारा किए कर्म काण्ड का संकेत है । कर्मकाण्ड के नाम से मन्त्रों का नाम सम्पात मन्त्र हुआ
'तान् वा एतान् सम्पातान्
विश्वामित्रः प्रथममपश्यत्
तान् विश्वामित्रेण इष्टान् वामदेवो असृजत ।'
गो.ब्रा. ६.१
सम्पातों को विश्वामित्र ने प्रथम देखा और फिर उनको वामदेव ने देखा ।

संपादि – फलदायक
'मा तत् सं पादि यदसौ जुहोति'
अ. ७.७०.२

सम्पारण – उत्तम रीति से पालन करने वाला
'इन्द्र सम्पारणं वसु'
ऋ. ३.४५.४

संभार – (१) शरीर रचना के योग्य पदार्थ उपादान
'ये संभारान् समभरन्'
अ. ११.८.१३
(२) यज्ञोपयोगी पदार्थ
'परूंषि यस्य संभाराः'
अ. ९.६ (१) १

सम्राजा – द्वि.व.। सम्राजौ । (संदीप्त दो जल बरसाने वाले) । 'आदित्य'
'ता सम्राजा घृतासुती'
ऋ. १.१३६.१; २.४१.६; साम. २.२६२
ये दोनों संदीप्त जल बसाने वाले

सम्राट् – (१) अच्छी प्रकार प्रकाश करने वाला–सूर्य
(२) समान भाव से सर्वत्र प्रकाश मान परमेश्वर ।
'सम्राजेनमः'
अ. १७.१.२२; २३.
(३) सम् + राज् + क्विप् = सम्राट ।
'सम्राजन्मध्वराणाम्'
ऋ. १.२७.१
अहिंसामय यज्ञों के सम्राट् स्वरूप अग्नि या परमेश्वर को । (४) जो सम्यक् प्रकार से राजता हो ।

समिति – राजसभा
'सा देवताता समितिर्बभूव'
ऋ. १.९५.८
वही देवसभा या सभा बन जाती है ।

समिथः – संग्राम ।
'अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनाम्'
ऋ. ३.१.१२; नि. ६.१७
महती शत्रु सेनाओं से संग्राम में दुर्ग के समान रोकने या धारण पोषण करने वाला ।
आधुनिक अर्थ–युद्ध, अग्नि

समिद्धः – संदीप्त अग्नि । सम् + इध् + क्त = समिद्ध । जिस अग्नि को इन्धन देकर संदीप्त किया जाता है ।
'समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे'
ऋ. १०.११०.१; अ. ५.१२.१; वाज.सं. २९.२५; मै.सं. ४.१३.३: २०.१.८; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.१; मा.श्रौ.सू. ५.२.८; नि. ८.५.
हे अग्ने, आज तू संदीप्त होकर मनुष्य के घर में ।
'समिद्धो अञ्जन् कृदरं मतीनाम्'
वाज.सं. २९.१; तै.सं. ५.१.११.१; मै.सं. ३.१६.२: १८३.१२; का.सं. (अश्व.) ६.२; श.ब्रा. १३.२.२.१४; तै.ब्रा. ३.९.४.८; आप.श्रौ.सू. २०.१७.३, मा.श्रौ.सू. ९.२.५; नि. ३.२०
हे अग्निदेव, तू समिद्ध होकर (समिद्धः) बुद्धियों या देवताओं के निवास स्थान को (मतीनां कृदरम्) घृतादि हवि को पहुंचाता हुआ (अञ्जन्) ।

समिद्धः मित्रः – (१) खूब प्रदीप्त अग्नि मित्र है, (२) ज्ञानी विद्वान् पुरुष मित्र है (३) अति दीप्त प्रकाश वान् परमेश्वर परम मित्र है–पालक । तत्वों का मापक और पालक है ।
'मित्रो अग्निर्भवति यत्समिद्धः'
ऋ. ३.५.४

समिध् – स्त्री. । सम् + इध् + क्विप् = समिध् ।

(१) सम्यक् प्रकार से प्रज्वलित करने वाली या करती हुई, (२) इन्धन ।

'घृतस्य धाराः समिधो नसन्त'

ऋ. ४.५८.८; वाज.सं. १७.९६; का.सं. ४०.७; आप.श्रौ.सू. १७.१८.१; नि. ७.१७

(३) शूल रहित नीति -दया.

'अया ते अग्ने समिधा विधेम
प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय '

ऋ. ४.४.१५; तै.सं. १.२.१४.६; मै.सं. ४.११.५: १७४.७; कासं. ६.११.

हे शत्रुहन्ता राजन्, आपकी इस छल रहित नीति से हम जिन जिस प्रशंसनीय कार्यों को करें उन्हें आप स्वीकार करें ।

(४) सायण ने 'समिध्' का अर्थ इन्धन या आहुति ही किया है ।

समिधानः - (१) प्रदीप्त अग्नि, (२) ज्योतिर्मय सूर्य

'उषा उच्छन्ती समिधाने अग्नौ'

ऋ. १.१२४.१

(३) सम् + इध् + शानच् । प्रज्वलित करता हुआ

'त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठः'

ऋ. ७.९.६

हे भगवन् अग्ने, वसिष्ठ ने तुझे संदीप्त कर.. यास्क ।

हे अग्ने, तुझे वसिष्ठ प्रदीप्त करते हैं-सा. ।

हे हमारे नायक विद्वान् , विद्या ज्योति को प्रदीप्त करता हुआ धनाढ्य मनुष्य-...ज.दे.श. ।

संमिमिक्षिरे - कामना करते हैं ।

'श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे'

ऋ. १.८७.६; तै.सं. २.१.११.२; ४.२.११.२; मै.सं. ४.११.२:१६७. १५; का.सं. ८.१७

मरुत् सेवन के लिए (श्रियसे) वृष्टि जल बरसाना चाहते हैं (सं संमिमिक्षिरे) .....सा. ।

सुख भोगने वाले सुख सेवनार्थ (श्रियसे) दीप्त पदार्थों से सुख सेवन की कामना करते हैं । (भानुभिः कं संमिमिक्षिरे)-दया. ।

समिष् - (१) सम् + इष् । उत्तम अन्न से सम्पन्न पृथ्वी

'इन्द्रस्य समिषो महीः'

ऋ. ८.५०.२; अ. २०.५१.४

(२) उत्तम अन्न-सम्पन्न इन्द्र

समिषण्य - सम् + इषण्य । (१) अच्छी प्रकार प्रदान कर प्रेरित कर, (२) सन्मार्ग पर भलीप्रकार चला

'समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य'

ऋ. ३.५०.३

समिष्ट यजुष - (१) यज्ञ में सुसंगत हो यज्ञ करना । (२) राष्ट्र में समस्त विद्वानों और शास्त्रों को परस्पर सुसंगत कर उन्हें योग्य वेतनादि देना ।

'समिष्ट यजुषा संस्थाम्'

वाज.सं. १९.२९

संपिणक् - संपिण्ढि, संचूर्णय, सम् + पिष् (सीसना) + श्नम् + हि = संपिणक् (हि का लोप, प का क) ।

अर्थ-(क) चूर्ण चूर्ण कर दे (२) छिन्न भिन्न कर,

'अहस्तमिन्द्र संपिण्डक् कुणारुम्'

ऋ. ३.३०.८; वाज.सं. १८.६९; नि. ६.१.

हे इन्द्र, मेघ को (कुणारुम्) बिना हाथ का कर (अहस्तम्) चूर्ण चूर्ण कर दे-सा. ।

हे निर्वाचित् राजन् , इन्द्र जैसे मेघ को उसी प्रकार तू दुष्ट जन को चूर चूर कर दे ।- दया.

संपिवते - संगच्छते (त्जाता है) ।

'यमः देवैः संपिवते'(सूर्य रश्मियों के साथ अस्त होता है) ।

संपिष्ट - (१) खूब पीसा हुआ, ठोंका हुआ, दुरुस्त किया हुआ

'स संपिष्टो अपायति'

अ. ४.३.५; ६.६.२; १९.४९.१०

(२) सम्यक् प्रकार से पीटा हुआ (३) छिन्न भिन्न

'अपोषा अनसः सरत् संपिष्टादह बिभ्युषी ।'

ऋ. ४.३०.१०; नि. ११.४७

उषा मेघ को वायु से छिन्न भिन्न होते देख वायु से डर जाती है ।

संप्रिया - अत्यन्त प्रियतमा

'संप्रिया पत्याविराधयन्ती'

अ. २.३६.४

संमिता - उत्तम ज्ञान युक्त

'उतेव प्रभ्वीरुत संमितासः'

अ. १२.३.२७

सम्मिश्रासः - परस्पर अच्छी प्रकार सम्मिलित

'सम्मिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः'
ऋ. १.६४.१०

स्तम्बिनी – झुण्डों वाली
'प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुङ्गाः'
अ. ८.७.४

समीक – रण, संग्राम
'वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके'
ऋ. ७.२१.९
'तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके'
ऋ. ४.२४.३
'संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके'
ऋ. १०.४२.४; अ. २०.८९.४
'इन्द्रं समीके वनिनो हवामहे'
ऋ. ८.३.५; अ. २०.११८.३; साम. १.२४९; २.९३७

समीची – (१) एक साथ आक्रमण करने वाली सेना, (२) समान भाव से प्राप्त होने वाली
'अपं वृतश्चातयति समीचीः'
ऋ. ४.१७.९
(३) उत्तम, (४) एक दूसरे के अनुरूप माता पिता
'मही दस्मस्य मातरा समीची'
ऋ. ३.१.७
(५) परस्पर संगत द्यौ और पृथिवी, (६) परस्पर संगत स्त्री पुरुष ।
(६) द्वि.व.। द्यावापृथिवी या स्त्री पुरुष का विशेषण । अर्थ परस्पर मिलती हुई
'तन्तुं ततं संवयन्ती समीची'
ऋ. २.३.६
(८) एक साथ आदर की हुई आती हुई
'दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः'
ऋ. ३.२९.१३; का.सं. ३८.१३; तै.ब्रा. १.२.१.१०; आप.श्रौ.सू. ५.११.६

समीचीन – (१) सम्यक् दृष्टि वाला, (२) समदर्शी, (३) तत्वज्ञानी
'समीचीनास ऋभवः समस्वरन्'
ऋ. ८.३.७; अ. २०.९९.१

समीजमानः – सम् + ईजमानः । (१) सबसे संगत, (२) सबको उत्तम दान करता हुआ
'यूथेवाप्सु समीजमान ऊती'
ऋ. ६.२९.५

समीषन्ती – खूब जलाती हुई
'ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः'
अ. १२.५.५४

समुक्षित – सम् + उक्षित । अच्छी प्रकार से अभिषिक्त
'उत् तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम्'
ऋ. ५.५६.५

समुद्र – (१) मेघ ।
'अश्वमिवाधुक्षद् धुनिमन्तरिक्षम्
अतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम्'
ऋ. १०.१४९.१; नि. १०.३२
जैसे धूलि धूसरित घोड़े को सवार झाड़ता है उसी प्रकार अगम्य अहिंसित अन्तरिक्ष में टिके मेघ को सविता झाड़कर प्रवाहित करता है।
(२) आदित्य ।
'महः समुद्रं वरुणस्तिरो दधे'
ऋ. ९.७३.३; तै.आ. १.११.१; नि. १२.३२
महान् विद्युत् नामी वरुण आदित्य को (समुद्रम्) मेघ जाल से तिरोहित कर देते हैं (तिरोदधे) ।
(३) अन्तरिक्ष ।
'एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश'
ऋ. १०.११४.४; ऐ.आ. ३.१.६.१५; नि. १०.४६
एक अद्वितीय वह वायु नित्य अन्तरिक्ष में रहता है ।
(४) (क) सम् + उत् + द्रु + ड = समुद्र (द्रु के उ का लोप) । 'ड' प्रत्यय अपादान अर्थ में हुआ है । 'समुद् द्रवन्ति अस्मात् आपः' (इस से जल सम्यक् प्रकार से उद् द्रवित होते हैं ऊपर उठते हैं) । सूर्य की रश्मियाँ समुद्रीय जल को ऊपर वाष्प रूप में उठाती हैं अतः यह समुद्र है ।
(ख) सम् + उद्र = समुद्र । समुदको भवति (समुद्र में उदक संहित होता है) ।
(ग) सम् + उद् + रक् = समुद्र । संमोदन्ते अस्मिन् भूतानि (समुद्र में अनेकों जीव अथाह जन या प्रमुदित होते हैं) ।
पृषोदरादिवत् सम् के म का लोप ।
(घ) सम् + उदक + र (मत्वर्थीय) = समुद्र । वर्षा ऋतु में समुद्र में जल एकत्र हो जाता है ।
(ङ) सम् + उन्द् (क्लेदनार्थक) + रक् = समुद्र (उन्द् के न् का लोप) । समुन्नति इति वा (समुद्र से प्रसूत जल द्वारा सब कुछ संक्लिन्त हो जाता

है)। वर्षा से भुवन को समुद्र क्लिन्न करता है ।
'स उत्तरस्या दधरं समुद्रम्
अपो दिव्य असृज द्रवष्या अभि, '
ऋ. १०.९८.५; नि. २.११
उस देवापि ऋषि ने ऊपर के समुद्र से नीचे के समुद्र में दिव्य वर्षा जल बर साए ।
'मेघ' के अर्थ में प्रयोग के लिए देखें 'अधि'।
'तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति'
अ. १.१६४.४२; अ. ९.१०.२१; १३.१.४२; शां.श्रौ.सू. १८.२२.७; नि. ११.४१
उस गौरी वाक् या विद्युत से मेघ बरसते हैं । अन्तरिक्ष के अर्थ में प्रयोग-वेद में आया है । समुद्र अन्तरिक्ष का पर्याय वाची है ।
निरुक्त में कहा है:-
तत्र समुद्रमित्येतत् पार्थिवेन समुद्रेण सन्दिहयते (अन्तरिक्ष का वाचक 'समुद्र' पार्थिव समुद्र भी समझा जाता है) ।
(५) हृदय ।
आधुनिक अर्थ-मुहर, मुहर दिया हुआ जैसे-समुद्रो लेखः । समुद्र शिव का विशेषण है ।
(६) समुद्र से व्यापार । (७) मुक्ता रत्न आदि की प्राप्ति . (८) मन
'समुद्रश्छन्दः
वाज.सं. १५.४; श.ब्रा. ८.५.२.४

समुद्रज्येष्ठाः - (१) समुद्रः ज्येष्ठो यासां ता आपः-दया.
(२) एक साथ ऊपर उठने वाले, उत्तम मे योगों में स्थित आपः अर्थात् जल
'समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात् '
ऋ. ७.४९.१

समुद्रव्यचस् - (१) समुद्र या अन्तरिक्ष में जिसकी व्याप्ति हो-सर्वव्यापी ईश्वर, (२) नौकादि विजय गुणसाधनों में व्याप्त शूरवीर ।
'इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्
समुद्रव्यचसं गिरः '
ऋ. १.११.१; साम. १.३४३; २.१७७; वाज.सं. १२.५६; १७.६१; तै.सं. ४.६.३.४; मै.सं. २.१०.५: १३७.९; का.सं. १८.३; ३६.१५; ३७.९; श.ब्रा. ८.७.३.७; तै.ब्रा. २.७.१५.५; १६.३
समुद्र के समान अति अति विस्तृत अथवा आकाश और अन्तरिक्ष में भी व्यापक...परमेश्वर को ही सब वेद वाणियां बढ़ाती हैं ।
समुद्र में भी नौकादि से जाने वाले विजेता को ही सब स्तुतियां बढ़ाती हैं ।

समुद्रवासाः - (१) महान् अन्तरिक्ष में व्यापक प्रभु, (२) समुद्र को वस्त्र के समान धारण करने वाला-अग्नि (३) समुद्र के गर्भ में विद्यमान बड़वानल (४) जगत् भर को समुद्रवत् आच्छादित करने वाला
'अग्निं समुद्रवाससम्'
ऋ. ८.१०२.४,५,६; साम. १.१८; तै.सं. ३.१.११.८; मै.सं. ४.११. २:१६६.१६; १६७.२.४; का.सं. ४०.१४

समुद्राः - ब.व.। (१) ब्रह्म शक्ति से निकलने वाले अक्षय भण्डार (२) प्रकृति के अक्षय कोष (३) पांचों भूत रूप पांच अक्षय कोष
'तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति'
ऋ. १.१६४.४२; अ. ९.१०.२१; १३.१.४२; शां.श्रौ.सू. १८.२२.७; नि. ११.४१

समुद्रार्थाः (१) वे जल नदी से होकर समुद्र में जाने वाले हैं, (२) समुद्र अर्थात् आकाश से आने वाले जल
'समुद्रार्था याः शुचयः पावकाः'
ऋ. ७४९.२

समुद्रिय गल्गुलु - समुद्र के तट पर उत्पन्न होने वाला गूगल
'यद वाप्यसि समुद्रियम्'
अ. १९.३८.२

समुद्रियं धाम - आत्मा से उत्पन्न होने वाला तेज
'तेषां हि धाम गभिषक् समुद्रियम्'
अ. ७.७.१

समुद्रिया अप्सासः - महान् आकाश या अन्तरिक्ष में विद्यमान् व्यापक शक्तियाँ
'समुद्रिया अप्सरासो मनीषिणम्'
ऋ. ९.७८.३

समुद्री - समुद्र सम्बन्धी ।
'दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः'
ऋ. १०.६५.१३; नि. १२.३०
सिन्धुनदी तथा समुद्र के जल (समुद्रियः आपः) ।

समुद्रौ - (१) जलसमुद्र और आकाश समुद्र (२)

पूर्व और पश्चिम का समुद्र।
'उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी'
अ. ४.१६.३

संभुज - (१) उत्तम रीति से भोग और पालन करना, (२) उत्तम रीति से भोजन करना
'त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुजम्
त्वमंशो विदथे देव भाजयुः।'
ऋ. २.१.४

समुब्जिता - ढंकी हुई
'वरुणेन समुब्जिताम्'
अ. ९.३.१८

समुब्ध - (१) सम्पूर्ण अंगों से समुन्नत, सर्वांगपुरुष
'कुमारं माता युवतिः समुब्धम्'
ऋ. ५.२.१

समुष्पला - सम् + उत्तफला। (१) स्त्री पुरुष दोनों के सहवास की रक्षा वाली, (२) सम्यक् उत्पकला-सा. (३) पीत वर्ण की ओषधि जिसमें वशीकरण का गुण है।
'संवननी समुष्पला'
अ. ६.१३९.३

समूह - (१) धान्य को उत्तम रीति से संग्रह करने वाली शक्ति, (२) क्षेत्रों से धान्य संग्रह करना
'उपोहश्च समूहश्च
क्षत्तारौ ते प्रजापते'
अ. ३.२४.७

समूढ - (१) भली प्रकार तर्क से जानने योग्य -सूक्ष्म रूप
'समूढमस्य पांसुरे'
ऋ. १.२२.१७; अ. ७.२६.४; साम. १.२२२; २.१०१९; वाज.सं. ५.१५; वाज.सं. (का.) ५.५.२;तै.सं. १.२.१३.१; मै.सं. १.२.९:१८.१८ ; ४.१.१२: १६.५; का.सं. २.१०; श.ब्रा. ३.५.३.१३; नि. १२.१९
इस जगत् को भली प्रकार तर्क से जानने योग्य सूक्ष्म रूप को भी वह कारण परमाणुओं से पूर्ण आकाश में स्थापित करता है।
(२) अन्तर्हित।

सम्पृक् - सम्पर्क करने वाला
'संपृच स्थ स मा भद्रेण पृंक्त'
वाज.सं. १९.११; वाज.सं.(का.) १०.१.६; श.ब्रा. १२.७.३.२२; तै.ब्रा. १.३.३.६; २.६.१.५; आप.श्रौ.सू. १८.७.१; मा.श्रौ.सू. ७.१.३

संपृच् - (१) सत्संग करने योग्य पुरुष (२) संयुक्त
'द्रुहोरिपः सम्पृचः पाहि सूरीन्'
ऋ. २.३५.६

संपृञ्चानः - संयुक्त होता हुआ, संगत होकर
'संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः'
ऋ. १.९५.८
अन्तरिक्ष में किरणों और जलों से युक्त होकर सूर्य....

संभृतक्रतुः - (१) समस्त कर्मों और क्रिया करने कराने वाली शक्तियों को अपने में एकत्र धारण करने वाला परमेश्वर, (२) समस्त क्रतु अर्थात् कर्ताजीवों को अच्छी प्रकार भरण पोषण करने वाला
'जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतो
इन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः'
ऋ. १.५२.८
हे समस्त कर्मों और क्रिया करने कराने वाली शक्तियों को अपने में एकत्र धारण करने वाले परमेश्वर (संभृत क्रतो), जिस प्रकार सर्वसाधारण जनों के उपकार के लिए जलों को (मनुषे अपः) पृथ्वी पर डालता हुआ (गातुयन्) सूर्य या विद्युत् किरणों या वेगवान् आघातों से (हरिभिः)वृत्र या मेघ को आघात करता हैं (जघन्वान्)।

संभृतश्री - (१) समस्त शोभाओं को धारण करने वाली, (२) एकत्र प्राप्त समस्त विकृत पदार्थों पञ्चभूतों का आश्रयभूत प्रकृतिरूप में ब्रह्म शक्ति, राष्ट्र शक्ति को धारण करने वाली महिमा।
'अश्वक्षभा सुहवा संभृतश्रीः'
अ. १९.४९.१

संमृजन्ति - सम् + मृज् के लट् प्र पु. बहुवचन का रूप। अर्थ है-अलंकृत करते हैं।
'भोजायाश्वं संमृजन्त्याशुम्'
ऋ. १०.१०७.१०
राजा या दानी के लिए (भोजाय) शीघ्रगामी अश्व (आशुम् अश्वम्) अलंकृत करते हैं (संमृजन्ति)।

समृतः - (१) सम् + ऋत। सर्वत्र व्याप्त -सूर्य।
दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम्'

ऋ. ४.१३.५
(२) एकत्र हुआ
'दभ्रेभिश्चित् समृता हंसि भूयसः'
ऋ. १.३१.६
जो मारने में कुशल छोटे छोटे वीर पुरुषों के द्वारा भी एकत्र होकर युद्ध में आए बहुत से शत्रुओं को भी मार देता है।

समृति - सम् + ऋति। (१) एक साथ मिल कर हुई संगति, (२) सम्मति
'रास्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषाम्'
ऋ. ७.६०.१०
(३) संयोग, (४) रण
'वीडु चिद् यस्य समृतौ'
ऋ. १.१२७.३; साम. २.११६५
(५) एकत्र होने का स्थान सभा आदि
'वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजः'
ऋ. ५.३४.६
(६) सम्प्राप्ति (७) संगम, (८) समागम, (९) लेखा जोखा

समृते - परस्पर सत्य व्यवहार से सम्बद्ध- आकाश और पृथ्वी
'अन्तर्मही समृते धायसे धुः'
ऋ. ३.३८.३

समृध् - सबको सम्पन्न करने वाला
'धात्रे विधात्रे समृधे'
अ. ३.१०.१०; १९.३७.४

समृध्यताम् - समृद्ध हो, फूले फले, रिद्धि सिद्धि से युक्त हो। पति पत्नी को आशीर्वाद के रूप में कहा गया है।
'इह प्रियं प्रजया ते समृध्यताम्'
हे वधू, इस गृह में सन्तति में युक्त तेरा मंगल बढ़े।

समे - 'सम' सर्वनाम का प्र.ब.व. में रूप। अर्थ है सभी
'नगन्तामन्यके समे'५५७०
ऋ. ८.३९.१-४०.११; ४१.१-१०;४२.४-६; तै.सं. ३.२.११.३; नि. ५.२३; १०.५

समेति - एकत्र होता है। अपने अपने कार्य में लग जाता है।
'इतीदं विश्वं भुवनं समेति'
ऋ. १०.१७.१; अ. ३.३१.५; नि. १२.११.
सरण्यू और आदित्य का विवाह देखने समस्त भूतजात एकत्र होता है (समेति)-सा।
उषा के मध्यम भाग में ज्योति रूपिणी दुहिता का विवाह जब आदित्य से किया तो सभी भूतजात अपने अपने कर्म में लग गए।

समेद्धा - चमकाने और बढ़ाने वाला
'शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः'
ऋ. ६.४८.८; तै.आ. ४.७.५.

समोकसः - अपने बल, पराक्रम और ऐश्वर्य से एक समान या का उत्तम स्थान के रहने वाले
'विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः'
ऋ. १.६४.१०

समोकसा - द्वि.व.। (१) समान पदाधिकार वाले (२) समान गृह वाले
'यद्वा वायुना भवथः समोकसा'
ऋ. ८.९.१२; अ. २०.१४१.२
(३) एक ही गृह में रहने वाले पति पत्नी
'समाने योना मिथुना समोकसा'
ऋ. १.१४४.४

समोकाः - सम् + ओकस्। अर्थ -(१) जिसमें सम्यक् निवास स्थान हो-दया. (२) संयुक्त

समोह - सम् + ओह। (१) संग्राम
'समोहे वा य आशत'
ऋ. १.८.६; अ. २०.७१.२
जो नेता पुरुष संग्राम में लगे रहते हैं।

संयत् - (१) अच्छी प्रकार से रक्षा (२) रात्रि
'संयच्छन्दः'
वाज.सं. १५.५; तै.सं. ४.३.१२.२; मै.सं. २.८.७:१११.१६; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५.२.५

संयत् ऋतु - (१) संयम के लिए उपयोगी शरद ऋतु अजपञ्चौदन
'यो वै संयन्तं नामर्तुं वेद'
अ. ९.५.३३

संयद्वसु - (१) समस्त ऐश्वर्य को एकत्र एक काल में धारण करने वाला परमेश्वर (२) वसुओं या वास शील प्रजाओं का संयमन करने वाला
'संयद्वसुरायद्वसुः'
अ. १३.४.५४
'अयपुतरात् संयद्वसुः'
वाज.सं. १५.१८; तै.सं. ४.४.३.२; मै.सं.

२.८.१०:११५.२; का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.१९

संयती – द्वि.व. । (१) उत्तम मार्ग में यत्नशील स्त्री पुरुष(२) पश्चात्तापकारी स्त्री पुरुष, (३) परस्पर मिलने वाले आकाश पृथिवी, (४) युद्ध में संयत, सुसज्जित दोनों ओर की सेनाएं

'यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते'

ऋ. २.१२.८; अ. २०.३४.८

(५) बांधने वाली-बन्धनों में डालने वाली शक्ति

'संयतीसंयतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते'

अ. ९.४.३३

(६) समान रूप से सुव्यवस्थित, निमयबद्ध

संयद्वीर – संयमशील वीरों या पुत्रों से युक्त

'अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तम्'

अ. २.४.८

संयमः – अच्छी प्रकार बांधा हुआ

'यत् संयमो न वियमः'

अ. ४.३.७

संस्वज् – आलिंगन करना

'पितेव पुत्रान् अभि सं स्वजस्व नः'

अ. १२.३.१२.

स्मयमाना – ईषत् हास्य करती हुई विद्युत्, या कामनी

'शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात्'

ऋ. १.७९.२; तै.सं. ३.१.११.५; मै.सं. ४.१२.५: १९३.१०; का.सं. ११.१३

(२) मुस्कुराती हुई । स्मय + शानच् + टाप् = स्मयमाना । मुस्कुराती हुई । अंग्रेजी का smile धातु का 'स्मय' धातु से सम्बन्ध विचारणीय है ।

'अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम्'

ऋ. ४.५८.८; वाज.सं. १७.९६; का.सं. ४०.७; आप.श्रौ.सू. १७.१८.१; नि. ७.१७

स्वयं गातुः – स्वयं अपने बल से व्यापने वाला परमेश्वर

'स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम्'

ऋ. ४.१८.१०

स्वयतः – (१) अपने आप संयत, (२) उत्तम रीति से बंधा हुआ जितेन्द्रिय (३) अश्वगण सवार

'प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन्'

ऋ. १.१६६.४

स्वयम् – स्वयं, खुद ।

'स्वयं तो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम्'

ऋ. १.१२९.६; नि. १०.४२

वह इन्द्र स्वयं हमारे निन्दकों तथा दुष्ट बुद्धि वाले को वधों से जीते ।

स्वयंजाः – स्वयं उत्पन्न होने वाले जन

'खनित्रिमा उतवा याः स्वयंजाः'

ऋ. ७.४९.२

स्वयशस्तर – स्वजन, धन, कीर्ति को अधिक बढ़ाने वाला

'सुनीती स्वयशस्तरम्'

ऋ. ८.६०.११; साम. १.४३.

स्वयशाः – (१) स्वयं यशोरूप ईश्वरीय शक्ति

'सजूर्नावं स्वयशसं सचायोः'

ऋ. १०.१०५.९

(२) धन और यश से सम्पन्न

'अदब्धासः स्वयशसः'

ऋ. ८.६७.१३

(३) अपनी प्रजाओं से कीर्ति कामना वाला पुरुष

(४) अपने यश से यशस्वी सूर्य

(५) जहां पर अपना ही यश है वह स्थान ।

'कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम्'

ऋ. ५.४८.१

(६) स्वयं यशस्वी (७) पराश्रयी न होकर यशस्वी है ।

(८) अपने ही वश में रहने वाला अग्नि का विशेषण

'जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे'

ऋ. १.९५.५, मै.सं. ४.१४.८, २२७.४, तै.ब्रा. २.८.७.४, आप.श्रौ.सू. १६.७.४, नि. ८.१५

अपने ही स्थान में अपने वश में रहने वाला अग्नि कुटिल इन्धनों या मनुष्यों के ऊपर सीधे होकर जाता है ।

स्वयं स्रस् – स्वयं जल बहाने वाली गण्डमाला

'विजाम्नि या अपचितः स्वयंस्रसः'

अ. ७.७६.२

सयावरी – (१) नित्यगमन करने वाली

'या इन्द्रेण सयावरीः'
ऋ. १.८४.१०; अ. २०.१०९.१; साम. १.४०९; मै.सं. ४.१४.१४: २३८.६
(२) साथ साथ रहने वाली किरणें
(३) स + यावरी। स्वयं प्रयाण करने वाली
'भुवद्वाणी सयावरी'
ऋ. ७.३१.८

सयावा – (१) साथ जाने वाला सहयोगी
'श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिः
देवैरग्ने सयावभिः'
ऋ. १.४४.१३; साम. १.५०; वाज.सं. ३३.१५; तै.ब्रा. २.७.१२.५.
हे कानों से अच्छी तरह सुनने वाला अग्नि या विद्वान्, तू राज्य कार्यों को वहन करने वाले व्यवहारज्ञों (वह्निभिः) एवं सहयोगियों (सयावभिः) के साथ प्रजा के धर्म व्यवहारों को श्रमण कर।
(२) एक साथ मार्ग में आगे बढ़ने वाला
'जातं विश्वं सयावभिः'
ऋ. १०.२२.११

संयास – मिलकर अंगों का एकत्र यत्न करना
'संयासाय स्वाहा'
वाज.सं. ३९.११; तैसं. १.४.३५.१; का.सं.(अश्व.) ५.६; तै.आ. ३.२०.१

स्वयावा – (१) अपने ही सामर्थ्य से संसार को चलाने वाला
'श्रुधि स्वयावन् सिन्धो पूर्वचित्तये'
ऋ. ८.२५.१२

सयुज्वा – सब के साथ स्पर्श करने वाला
'सूरो न सयुग्वभिः'
ऋ. ९.१११.१; साम. १.४६३; २.९४०

सयुजा – (१) एकत्र रहने वाले ईश्वर और ज़ीव अथवा जीव और मन
'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'
ऋ. १.१६४.२०; अ. ९.९.२०; मुण्डक उप. ३.११; नि. १४.३०.

स्वयुक् – (१) स्वयं समाहित होकर योग करने वाला (२) आत्मा के सम, समाहित या स्थिर हुआ प्राण
'उदुस्त्रिया असृजत स्युग्भिः'
ऋ. १०.६७.८; अ. २०.९१.८

स्वयुक्ति – (१) अपनी युक्ति (२) तत्व शक्तियों को भोजन करने की शक्ति, (३) प्रेरक शक्ति
'ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः'
ऋ. १.५०.९; अ. १३.२.२४; २०.४७.२१; आ.सं. ५.१३; का.सं. ९.१९; तै.ब्रा. २.४.५.४.
सूर्य अपनी प्रेरक शक्तियों से ही उन सात किरणों के सहित सर्वत्र व्यापता है।

स्वयुग्व – (१) अपनी रश्मि (२) अपना समाहित प्राण, (३) अपना नियुक्त पुरुष
'सूरो न स्युग्वभिः'
ऋ. ९.१११.१; साम. १.४६३; २.९४०

स्वयुजः – (१) स्तोताओं को अपने अनुसार से युक्त करने वाले मरुतों का विशेषण
(२) धन से युक्त करने वाले व्यापारी गण
'वातासो न स्वयुजः सद्यौतयः'
ऋ. १०.७८.२
वायु के समान स्तोताओं को अपने अनुग्रह या धन से युक्त करने वाले (स्वयुजः) मरुद्गण...।

स्वयुक्ताः – वि.। अपने ही बल से प्रेरित मरुद्गण, (२) धनैश्वर्य, (३) आत्मा से प्रेरित प्राणगण
'अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुः'
ऋ. १.१६८.४

स्वयु – (१) स्वेच्छा चारी, (२) स्वयं प्रयाण करने वाला, (३) धन की कामना करने वाला, (४) धन का स्वामी, (५) स्वयम्भू आत्मा
'स्वयुरिन्द्र स्वराऽसि'
ऋ. ३.४५.५

सयूथ्यः – (१) एक श्रेणी का मित्र
'अनु सखा स यूथ्यः'
वाज.सं. ४.२०; ६.९; तै.सं. १.२.४.२; का.सं. २.५; ३.५; १६.२१; मै.सं. १.२.४:१३.६; १.२.१५: २४.१२; ४.१३.४:२०३.९; ऐ.ब्रा .२.६.१२; श.ब्रा. ३.२.४.२०; ७.४.५; तै.ब्रा. ३.६.६१; आश्व.श्रौ.सू. ३.३.१; साम.मं.ब्रा. २.२.९

सयोनीःयुवतयः – (१) एक ही गृह में रहने वाली युवतियाँ (२) अंग, आदि में समान बल युक्त स्त्रियाँ
'सन्त अत्र युवतयः सयोनीः'
ऋ. ३.१.६

सयोनी – द्वि.। समान बन्धु, (२) मिथुना का विशेषण

'जामी सयोनी मिथुना समोकसा'
ऋ. १.१५९.४
(२) एक समान गृह में रहने वाली आपः अर्थात् प्रकृति के परमाणु
'अपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः'
ऋ. १०.३०.१०

सयोषाः - (१) प्रेम के साथ -सा. । एक साथ सेवनीय (३) अग्नि का विशेषण-ज.दे.श।
'आयाह्यग्ने वसुभिः जो सयोषाः
हे अग्ने, तू वसुदेवताओं के साथ प्रेम के साथ आ-सा. । हे यज्ञाग्नि तू गृहस्थों से एक साथ सेवनीय है-आ. ज.दे.श।

सर - सृ + अच् । अर्थ-व्यापार, चेष्टा
'ऋतस्य सामन् सरमारपत्नी'
वाज.सं. २२.२; तै.सं. ४.१.२.१; ११.१; मै.सं. ३.१२.१:१५९.१४; का.सं.(अश्व.) १.२; तै.ब्रा. ३.८.३.४

सरजन् - प्रकाशित करने वाला
'महिव्रतं न सरजन्तमध्वनः'
ऋ. १०.११५.३

सरट् - (१) वेग से आगे बढ़ने वाला वीर (२) युद्ध में विजय करने वाला सैनिक
'मधु प्रियं भरथो यत् सरड्भ्यः'
ऋ. १.११२.२१
जिन उपायों से वेग से आगे बढ़ने वाले वीरों को मधुमक्षिकाओं को मधु के समान उनको स्थिर रूप से बांधे रखने वाले प्रिय अन्न प्रदान करते हो...।

सरण्यन् - (१) सबके जाने योग्य उत्तम मार्ग के समान सबका चारा होता हुआ, (२) उत्तम ज्ञान को प्राप्त होता हुआ
'महान् महीभिरूतिभिः सरण्यन्'
ऋ. ३.१.१९; ३१.१८; मै.सं. ४.१४.५:२४२.२
(३) प्राप्त होता हुआ

सरण्युः - (१) विचरने वाला, (२) परिव्राजक
'सरत् सरण्युः कारवे जरण्युः'
ऋ. १०.६१.२३
(३) सरण शील, आगे बढ़ने का इच्छुक
'सरण्युभिरणो अर्णा सिसर्षि'
ऋ. ३.३२.५
(४) सृ + अन्युच
वेग से जाने वाली किरण
(२) सभी शास्त्रों में विज्ञानगति वाला विद्वान्
'सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र
वलं रवेण दरये दशग्वैः'
ऋ. १.६२.४

सरण्यूः - (१) सर्वव्यापक चित्ति शक्ति
'अजहादुद्वा मिथुना सरण्यूः'
ऋ. १०.१७.२; अ. १८.२.३३; नि. १२.१०
(२) सरणशील विकृति दशा को प्राप्त प्रकृति
(३) सरण्यू सरपात (सरण्यू शब्द सरण से हुआ है)-दुर्ग ।(४) देवराज के मत से प्रभाव करने वाली उषा अपने को सूर्य के निकट ले जाती है । और यह सरण्यू कहलाती है ।
(५) जब प्रभाभूतों से चली जाती है तब छाया या रात्रि को सरण्यू कहते हैं । (६) वृषाकपायी सान्ध्य सूर्य प्रभा के बाद उषा के पूर्वतक का काल सरण्यू है ।
(७) सृ + अन्यत्र + ऊङ् = सरण्यू अथवा सृ + घ = सरः सर + नी + ऊक्, = सरण्यू (सरणेन आत्मानं सूर्यं प्रति नयति) ।
(८) अर्द्ध रात्रि के पूर्व सरण्यू के दो रूप हैं -अन्धकार और निस्तब्धता ।
(९) यास्क ने 'जायाविवस्वतः' का अर्थ 'रात्रि रादित्यस्य' किया है । अतः सरण्यू शब्द छाया या रात्रि का वाचक है ।
(१०) नैरुक्त अन्धकार को माध्यम और निस्तब्धता को माध्यमिक वाक् कहते हैं ।
(११) त्वष्टा की पत्री जिसे त्वाष्ट्री कहते हैं-सरण्यू है-सा.
सरण्यू का विवाह विवस्वत से हुआ था पर विवस्वान् का तेज सहन नहीं कर सकने के कारण वह घोड़ी रूप धारण कर उत्तर कुरु में तपस्या करने लगी और अपने पिता के घर पर अपने रूप की एक सवर्णा कन्या को छोड़ दिया । विवस्वान् उसे ढूंढते ढूंढते उत्तर कुरु पहुंचे और अश्व का रूप धारण कर बड़वा रूपधारिणी सरण्यू में संभोग किया । सरण्यू ने वीर्य को नासिका में धारण किया जिससे नासत्य अश्विनी कुमार उत्पन्न हुए । उधर सवर्णा से विवस्वान् ने संभोग कर आठवें मनु सावर्णि को उत्पन्न किया ।

(१२) अमृत स्वरूपा पूर्वकालीन सरण्यू जिसे ईश्वरीय नियम ने मनुष्यों से छिपा दिया ।
'अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः '
ऋ. १०.१७.२; अ. १८.२.३३; नि. १२.१०
इस प्रकार दो सरण्यू है-पूर्व कालीन और उत्तरकालीन सायण के अनुसार सरण्यू और सर्वर्णा
(१३) ऐतिहासिक अन्धकार और निस्तब्धता को ही यम और यमी मानते हैं । यम और यमी का अर्थ दिन रात करना भूल है ।
सरण्यू से यम यमी और अश्विद्वय उत्पन्न हुए हैं । ये अश्विद्वय ही अहोरात्र हैं । यम अन्धकार और यमी निस्तब्धता है । इसी को ऐतिहासिकों ने कथा का रूप दिया है और सरण्यू को त्वष्टा की पुत्री या त्वाष्ट्री कहा है ।

सरथ - (१) रथवान्, (२) देहवान्, (३) आत्मवान् (४) रथारोही, (५) महारथी, (६) शासक (७) रसयुक्त
'यासद् राया सरथं यं जुनासि'
ऋ. १.७१.६
तू जिस रथवान् देहवान् या आत्मावान् पुरुष या रसयुक्त पुरुष को सन्मार्ग पर चलाता है वह ऐश्वर्य से युक्त हो जाता है ।

सरथम् - (१) एक समान रथ पर
'यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विनाः
ऋ. ८.९.१२; अ. २०.१४१.२
(२) रथ पर एक साथ होना,
'यासि कुत्सेन सरथमवस्युः '
ऋ. ४.१६.११
हे इन्दु, तू कुत्स की रक्षा करने के उत्सुक कुत्स के साथ एक रथ पर आरूढ़ है -सा. ।
हे राजन, तू आत्म-संरक्षण चाहता हुआ (अवस्युः) वेदज्ञ ब्राह्मण के साथ (कुत्सेन) एक रथ पर आरूढ़ हो जाता है (सरथं यासि)-दया. ।

सरयस् - (१) सराणि सृतानि अयांसि पायानि येन-दया.
(२) पापयुक्त (३) कर्मफल को छोड़ देने वाला कर्मबन्धन से रहित पुरुष
'अरमयः सरपसस्तराय कम् '
ऋ. २.१३.१२

सरमा - (१) यागति मानं पदार्थं मिनाति सा सरमा-दया. । जो गति मान पदार्थ को नापती है । सर + मा
(२) वेग से ध्वनि करने वाली विद्युत्, (३) वेग से जाने वाले वीरपुरुषों की बनी सेना
'विदद् यदी सरमा रुग्णमद्रेः '
ऋ. ३.३१.६; वाज.सं. ३३.५९; मै.सं. ४.६.४:८३.१०; का.सं. २७.९; तै.ब्रा. २.५.८.१०; आप.श्रौ.सू. १२.१५.६
(४) एक देह से दूसरे देह में सरण करने वाली जीवरूप चेतना (५) वेग से जाने वाली चित्त वृत्ति (६) सृ (गत्यर्थक) + अम + टाप् = सरमा । यमाविद्याधर्मबोधं मिर्मीते । सर + मा + क = सरमा । अर्थ-माना
'विदत् सरमा तनयाय धासिम्
ऋ. १.६२.३
(५) इन्द्र की कुत्ती
(५) वेदवाणी-
'किमिच्छन्ती सरमा प्रेद मानट् '
ऋ. १०.१०८.१; नि. ११.२५
किस इच्छा से सरमा नाम की कुत्ती यहां आई ?
यह वेद वाणी किस इच्छा से यहां आई ?
(६) माध्यमिका वाक् (अन्तरिक्ष की वाणी या ध्वनि) ।
'देवशुनी' शब्द के अर्थ पर पण्डितो में विवाद है । ऋग्वेद का १०-१०८ सूक्त सरमा पणिसूक्त कहलाता है । इसमें असुर पणियों तथा सरमा देव शुनियों का संवाद है । सायण ने सरमा का अर्थ देवों की कुत्ती ही माना है । आर्य समाजी व्याख्याता इसका अर्थ वेदवाणी बतलाते हैं । वेदवाणी देवों के पास ही रहती है अतः यह देवशुनी है ।
शुनी शब्द 'शिव' (गत्यर्थक) धातु से सिद्ध है । स्वामिभक्त कुत्ते की तरह वेदवाणी भी देवों की रक्षा करती है । सरमा की दो सन्ततियां है जिनका वर्णन ऋ. १०.१४.१० में है ।
'अति द्रव सारमेयौ श्वानौ
चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा '
ऋ. १०.१४.१०
हे श्रेष्ठ मनुष्यों, तुम साधु मार्ग से चारों तरफ आंखें और चित्र विचित्र विद्या तथा कर्म इन

दोनों वेदवाणी जन्म साथियों को पितृयान की ओर साथ ले जाओ ।

वृ. आ. ४.४२ में भी कहा है-

विद्याकर्मणी समत्वारभेते मरने पर विद्या और कर्म मनुष्य के साथ जाते हैं ।

मनु ने भी वेदाध्यायन और कर्म को काम्य बताया है ।

'काम्यो हि वेदाधि गमः
कर्मयोगश्च क्षेमदः '

महाभारत के महाप्रास्थानिक पर्व में (३-१७) धर्म को श्वन् कहा है ।

अतः श्वन् साथी का वाचक हुआ ।

पाणि सूक्त में कृपण बनियों से गाय छीनने का आदेश है और यज्ञविरोधी सूदखोरों से गाय छीनने की बात है ।

(७) स + रमा = सरमा । साथ रमण करने वाली स्त्री (८) समान रूप से विद्वानों को आनन्दित करने वाली वाणी (९) एकत्र रमाने अर्थात् युद्धक्रीड़ा करने वाली सेना

'विदद् यदी सरमा रुग्णमद्रेः'

ऋ. ३.३१.६; वाज.सं. ३३.५९; मै.सं. ४.६.४; ८३.१०; का.सं. २७.९

सरयः - स + रय । धारा प्रवाह से जाने वाली

'देवीरापो मातरः सूदयित्न्वः'

ऋ. १०.६४.९

सरयुः - नदी, नहर

'मा वः परिष्ठात् सरयुः पुरीषिणी'

ऋ. ५.५३.९

सरराणः - रमण करता हुआ

'प्रजापतिः प्रजया संरराणः'

अ. २.३४.४

सरवः- (१) सुखदायक (२) रमण या आनन्द करने योग्य रथ (३) इन्द्रियों से सुख के युक्त शरीर

सरश्मि - (१) किरणों से युक्त (२) राष्ट्र को वश करने के लिए साधनों से युक्त

'तवायं भागः ऋत्वियः
सरश्मिः सूर्ये सचा'

ऋ. १.१३५.३

तेरा ऋतु अनुकूल भाग सेवन करने के योग्य अंश है जो सूर्य में विद्यमान किरणों के समान राष्ट्र को वश करने के साधनों सहित तुझे प्राप्त है ।

सरस् - (१) सृ + असुन् = सरस् । सरति इति । सरः (जो चलता है वह सरस् अर्थात् उदक है)। (२) सोमरस रखने का पात्र (३) पात्रस्थ सोमरस (४) तालाब

वेद में सोम पात्र के अर्थ में भी प्रयोग है ।

त्रिशत् सोमस्य काणुका सरांसि (सोमरस से पूर्ण तीस पात्र)

(५) मद्यपान पात्र को भी सरस् कहते हैं ।

चषकोऽ स्त्री पानपात्रं सरकोऽपि-अमरकोष

सरकः शीघ्र पानेक्षु शीघ्रको मध्यमा जने

(५) नैरुक्तों के अनुसार त्रिशतं सरांसि का अर्थ है अपर पक्ष के तीस अहोरात्र और पूर्वपक्ष के तीस ।

अंशु का अर्थ सोम भी है । चन्द्रमा की रश्मि सोम ही है ।

(६) उदक

'पयः सरः भेषजम् '

नि. १.१२

अतः चन्द्रमा की रश्मियों में जो उदक है वही सरस है । चन्द्रमा में १५ दिनों में जो उदक होता है उसे ही सूर्य या इन्द्र रश्मियों से पीता है ।

सरस्य - तालाबों के बनाये या प्रबन्ध में लगा पुरुष

'नमः कुल्याय च सरस्याय च नमः'

वाज.सं. १६.३७

सरस्वत् - सृ + असुन् = सरस, सरस् + वतुप् = सरस्वत् । अर्थ है-(१) उदकवान्, जलवाला, (२) माध्यमिक देव, अन्तरिक्ष का देव मेघ (३) शीतल समीर जिसमें जल का सम्पर्क रहता है ।

'ये ते सरस्व ऊर्मयो
मधुमन्तो घृतश्चुतः
तेभिर्नोऽविताभव'

ऋ. ७.९६.५

हे भगवन् सरस्वन्, जो तेरी उदक युक्त या उदक चलाने वाली ऊर्मियां हैं (ये ते मधुमन्तः घृतश्चुतः ऊर्मयः)उन ऊर्मियों अर्थात् मेघों से तू हमारा रक्षक बन (तेभिः न अविता भव), यही हमारी आशा है । (४) प्रशस्त ज्ञान का अगाध सागर

'सरस्वते शुकः परुषवाक '

वाज.सं. २४.३३; तै.सं. ५.५.१२.१; मै.सं. ३.१४.१४:१७५.७

सरस्वती - (१) सरस्वती नाम की नदी (२) शरीर की एक नाड़ी जिसे सुषुम्ना कहते हैं। क्योंकि इसमें प्रशस्त ज्ञान-सुख का उद्भव होता है। (३) विद्यादेवी, (४) वाणी (५) ऋग्वेद और सामवेद सरस्वती के दो स्रोत कहे गए हैं। ज्ञानमय वज्र (६) पुष्टिकर देवी, (८) आत्मा में बल उत्पन्न करने वाली

वाग्वै सरस्वती

श.ब्रा. ५.५.४.१६

'योषा वै सरस्वती पूषा वृषा'

श.ब्रा.

'ऋक्सामे वै सारस्वतावुत्सौ'

तै.ब्रा. १.४.४.९

'सरस्वतीति तद् द्वितीयं वज्र रूपम्'

कौ.ब्रा. १२.२

(९) समस्त रस प्रदान करने वाली पुष्टि की स्वामिनी स्त्री वा समिति

'आन्ने धनं सरस्वती'

अ. १९.३१.१०

(१०) स्त्री

'योषा वै सरस्वती'

श.ब्रा.

पुनः -

'सरस्वति या सरथं ययाथ'

ऋ. १०.१७.८; अ. १८.१.४३; ४.४७;

(११) सृ (गत्यर्थक) + असुन् = सरस्। सरन्ति सर्वा विद्याः येन तत् सरस्।

सरस् + वतुप् + ङीष् = सरस्वती। माध्यमिका वाक् -सा.

'महो अर्णः सरस्वती
प्रचेतयति केतुना।
धियो विश्वा विराजति'

ऋ. १.३.१२; वाज.सं. २०.८६; नि. ११.२७

महान् माध्यमिका वाक् सरस्वती अपनी प्रज्ञा से जल राशि बरसाती है तथा समस्त यज्ञ या कर्म सम्बन्धी ज्ञानों को उत्पन्न करती है।

वेदवाणी कर्म तथा ज्ञान योग से महान् शब्द सागर को बतलाती और सम्पूर्ण सत्यविद्याओं को प्रसारित करती है।

'सरस्वती स्वपसः सदन्तु

ऋ. १०.११०.८, वाज.सं. २९.३३, मै.सं. ४.१३.३: २०२.१०, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१३.

सुन्दर कर्मों को सम्पादित करने वाली तीन देवियाँ जिनमें मध्यमस्थानीय विद्युत् (सरस्वती) एक है हमारे यज्ञ में आस्थित हों।

अथवा-

सरसः प्रशंसिता ज्ञानादयो गुणा
विद्यन्त यस्याः सा सरस्वती सर्वविद्या
प्रापिका वाक्।

सरस्वती नदी के अर्थ में

'इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति'

ऋ. १०.७५.५; तै.आ. १०.१.१३; नि. ९.२६

'पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः
सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः'

ऋ. ६.६१.२; मै.सं. ४.१४.७:२२६.१०; का.सं. ४.१६; नि. २.२४.

उस पार अवार को तोड़ने वाली (पारावतीघ्नीम्)। सरस्वती नदी का (सरस्वतीम्) सुप्रवृत्त कर्मों या स्तोत्रों से (सुवृक्तिभिः धीतिभिः) परिचारित करें (आविवासेम)।

सरस्वतीकृत - विद्वत्सभाद्वारा निश्चित

'सरस्वती कृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतरग'

वाज.सं. २०.३५

सरस्वान् - (१) रस सागर ईश्वर समुद्र के समान समस्त ज्ञान आदि कर्मों का विशाल स्वामी

'तं सरस्वन्तमवसे हवामहे'

अ. ७.४०.१; तै.सं. ३.१.११.३; मै.सं. ४.१०.१:१४२.१४; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१; शां.श्रौ.सू. ६.११.८

(२) जलों से पूर्ण, (३) उत्तम ज्ञान और कर्म का भण्डार

'सरस्वन्तमवसे जोहवीमि'

ऋ. १.१६४.५२; का.सं. १९.१४

(४) आनन्द रस का सागर रूप परमात्मा

सर्ग - (१) जल, (२) सृष्टि, (३) सन्तति, (४) सूर्य, (५) परमेश्वर

'सर्गो न यो देवयतामसर्जि

ऋ. १.१९०.२

(६) युद्ध
'वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः'
ऋ. ४.३.१२
(७) समिति, (८) संघ, (९) रचना, (१०) राज्य-संविधान
'शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम्'
ऋ. ७.१८.११

सर्गरतशः - (१) शुभ्रवर्ण का जल, (२) वेगवान् छोड़ा गया अश्व
'सर्गो न तक्ति एतशः'
ऋ. ९.१६.१

सर्गतक्त प्रसव - (१) जलों के द्वारा सुप्रसन्न -वेगयुक्त गमन (२) सृष्टि नियम से विकसित उत्तम सन्तान उत्पन्न करने का कार्य (३) जलसंकोचक
'न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः'
ऋ. ३.३३.४

सर्ग प्रतक्तः - (१) यः सर्गम् उदकम् प्रतनक्ति संकोचयति सः (जो जल को संकुचित करता है)
(२) जल को अपने भीतर दबाव से रखने वाला जल समूह (३) सृष्टि से जाना गया परमेश्वर
'अत्यो न अज्मन्त्सर्गप्रतक्तः
सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते'
ऋ. १.६५.६
वेग से शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में अश्व के समान छूटते ही शत्रु के पास पहुंचाने वाला अथवा जल को अपने भीतर दबाव में रखने वाला जल समूह के ही समान ईश्वर भी सृष्टि से जाना जाकर (सर्गप्रतक्तः) अगाध सागर के समान (सिन्धुः न) सर्जनशक्ति का अक्षय भण्डार हैं (क्षोदः)

सर्तवे - सृ + तवे । आगे बढ़ने के लिए

सर्प - (१) प्रगतिशील तत्व (२) सर्पणस्वभाव गतिमान् लोक, (३) राजाओं के प्रति जाने वाले प्रजाओं में फैले हुए गुप्त रूप से गतिशील चर, (४) सर्पस्वभाव वाला दुष्टपुरुष (५) सर्प
'इमे वै लोकाः सर्पाः ये वैसु
लोकेषु नाष्ट्रा, यो व्यध्वरो
या शिमिदा-तदेव एतत्सर्वं शमयति ।'
श.ब्रा. ७.४.१.२७
'नमोऽस्तुसर्पेभ्यः
ये के च पृथिवीमनु'
वाज.सं. १३.६; तै.सं. ४.२.८.३; मै.सं. २.७.१५:९७.१; का.सं. १६.१५.श.ब्रा. ७.४.१.२८;

सर्पदेवजन - (१) सर्व अर्थात् राष्ट्र में गुप्त चर कार्य करने वाला और 'देवजन' अर्थात् विजय प्राप्ति के लिए सैनिक
'सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदम्'
वाज.सं. ३०.८; तै.ब्रा. ३.४.१.५

सर्म - सृ धातु से सम्पन्न । अर्थ है- निकलना, भाग निकलना
'अपः सर्माय चोदयन्'
ऋ. १.८०.५
जल धाराओं के निकलने के लिए प्रेरित करता हुआ....

सर्वम् - सर्वम् ससृनम् (जो एक में संगत होता है वह सर्व है) अर्थ -सब कुछ ।
(२) सम्पूर्ण, समस्त स + वन = सर्व
'सर्वं तदस्तु ते घृतम'
ऋ. ८.१०२.२१; अ. ७.१०१.१; १९.६४.३; वाज.सं. ११.७३; ७४; तै.सं. ४.१.१०.१;
हे अग्नि ! वह काष्ठ आदि सभी तेरे लिए घृत हो ।

सर्व - प्र. । (१) अग्नि । अग्नि के आठ नामों में एक सर्व भी है ।
'सर्वं प्रदक्षिणं कृणु'
अ. २.३६.६

सर्वक - सब का सब
'बहिर्बालिति सर्वकम्'
अ. १.३.६-९

सर्वकेशक - (१) रोग कीट जिसके समस्त शरीर में रोम हो, (२) सर्वाङ्ग सुन्दर केश बनाए हुआ कुमार
'कुमारः सर्वकेशकः'
अ. ४.३७.११

सर्वगणः - (१) समस्त भृत्य और बन्धुजनों सहित
'सर्व आपः सर्वगणो अशीय'
अ. १६.१(४) ६
(२) सर्वनामा-सभी नामों से सम्बोधित होने वाला
(३) अत्रि का विशेषण, अपने सभी गणों के

साथ अत्रि ऋषि ।

सर्वगणं स्वस्ति - (१) सर्वगण का अर्थ है सर्वनामा-सभी नामों से सम्बोधित होने वाला अत्रि के विशेषण के रूप में आया है जैसे 'सर्वगणम् अत्रिम्' सभी नामों से पुकारे जाने वाले अत्रि को)

समस्त प्रजावर्ग के कल्याण के निमित्त-

'ऋजीषे अत्रिमश्विनावतीतम्

उन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ।'

ऋ. १.११६.८; नि. ६.३६.

सूर्य और पृथ्वी ने पृथ्वी के नीचे की आग को वर्षा द्वारा ऊपर लाया, बीजों को समस्त प्रजावर्ग के कल्याण जमाया । सायण के अनुसार अश्विनी कुमारों ने गण के साथ अवाङ् मुख अत्रि ऋषि को अग्निगृह से निकाल कर कल्याण किया ।

सर्वजन्मा - सब प्रकार से उत्पन्न होने वाला संसार

'यो अस्य सर्वजन्मनः ईशे सर्वस्य चेष्ठतः'

अ. ११.४.२४

सर्वज्यानि - सर्वनाश

'सर्वज्यानिं जीयते'

अ. ११.३.५५

(२) सभी प्राणियों का नाश करने वाली

'सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती'

अ. १२.५.[illegible]

सर्वताता - (१) सर्वत्र जगत् में

'शततमं वेश्यं सर्वताता'

ऋ. ४.२६.३

(२) सर्वहितकारी

'यक्षत् राजन् त्सर्वतातेव नु द्यौः'

ऋ. ६.१२.२

(३) सर्वोपास्य, सर्वप्रद प्रभु

'सर्वताता ये कृपणन्त रत्नम्'

ऋ. १०.७४.३

(४) सर्वासु कर्मततिषु, सर्वाः ततयः येषु यागादिषु' वर्ण की व्यापत्ति से 'तति' में उभयत्र आत्व हुआ है । 'सुपां सुलुक्' से ङि का 'डा' आदेश । अर्थ है- सभी कर्मों में

सर्वताति - (१) सब प्रकार का उत्तम ऐश्वर्य

'अस्मभ्यम् आसुव सर्वतातिम्'

(२) सभी कर्मों का विस्तार

'यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽ

नागास्त्वमदिते सर्वताता'

ऋ. १.९४.१५; नि. ११.२४

सबर्दुघा - (१) आनन्द सुख से पूर्ण करने वाली युवति

(२) जलों एवं रसों को दोहन करने वाली दिशा

'सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः'

ऋ. ३.५५.१६

(३) सर्वपोषक दूध देने वाली

(४) समस्त प्रजा को समान रूप से भरण पोषण करने वाली भूमिमाता

'शुचियत् ते रेक्ण आयजन्त

सर्वदुघा याः पय उस्रियाणाः'

ऋ. १.१२१.५; १०.६१.११

सर्वधाः - समस्त प्राणियों का धारक पोषक-सोम

'मदेषु सर्वधा असि'

ऋ. ९.१८.१-७; साम. १.४७५; ४४३; ४४४,४४५

सर्वपरु - समस्त पोरुओं वाला

'सर्वाङ्ग एव सर्वपरु'

अ. ११.३.३२

सर्वमेध - मिधृ मेधृ संगमेच (मिधृ और मेधृ धातु संगम अर्थ में प्रयुक्त हुआ है) ।

हिंसा और मेघ अर्थों में भी यह प्रयुक्त होता है ।

मेधृ + घञ् = मेघ

'संगच्छते अनेन सर्वं तत् गच्छन्ति

अत्र देवताः हविः ग्रहीतुं दक्षिणार्थं वा'

(मेघ से ही सब कुछ संगत है अथवा इस मेघ में सभी दक्षिणा लेने आते हैं या इस से पाप नष्ट करते हैं) ।

मेघ का अर्थ है यज्ञ अतः सर्वमेघ का अर्थ है- जिसमें सर्वस्व दे दे-समर्पण कर दें ।

'सर्वार्थं हुत्वाऽत्मानं सर्वमेव

भवति-स एष सर्वस्य विदुषः सर्वः सर्वहुत यज्ञः

सर्वभावाय सम्पदयते दर्शनात्'

(२) कुछ कहते हैं-'सर्वमेधो निरुढ-संज्ञः अप्रहीनः अस्ति ।

अर्थात् निरूढ नाम से ख्यात् सर्वमेधे अर्हगण साध्य है ।

(३) 'विश्वकर्मा ह यौवनः सर्वमेघे सर्वाणि भूतानि जुहावं चकार, स आत्मानमपि अन्ततो

जुहवाञ्चकार
(अर्थात् भुवन के पुत्र विश्वकर्मा नामक ऋषि ने सर्वमेध में सब कुछ बनकर स्वयं अपने को भी हवन कर दिया)।

सर्वरथा - द्वि.व.। सभी रमणयोग्य देहों में विद्यमान प्राण-अपान वायु
'सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च'
ऋ. १०.१६०.१; अ. २०.९६.१;

सर्ववित् - राष्ट्र परराष्ट्र सब का ज्ञान करने वाली परिषद्
'सर्वविद् द्विपाञ्च सर्वं नो रक्ष'
अ. ६.१०७.४

सर्ववीराः - (१) पूर्ण वीर होकर (२) वीर पुत्र पौत्रों के साथ
'अभिष्याम वृजने सर्ववीराः'
ऋ. १.१०५.१९; का.सं. १२.१४
हम पूर्ण वीर हों संसार-संग्राम में आन्तर एवं बाह्य शत्रुओं को जीतें।
वीर पुत्र पौत्रों के साथ हम संग्राम में शत्रुओं को पराजित करें।

सर्वशासः - यः सर्वं राज्यं शासति सर्वशासक
'सुयन्तुभिः सर्वशासैः अभीशुभिः'
ऋ. ५.४४.४

सर्वशुद्धवालः - समस्त श्वेत बालों वाला
'शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनाः'
वाज.सं. २४.३; तैसं. ५.६.१३.१; मै.सं. ३.१३.४; १६९.५

सर्वसेन - (१) इन (सूर्य) से मुक्त जगत् का स्वामी, (२) सब तरफ धावा करने वाली सेनाओं का स्वामी
'निसर्वसेन इषुधीरसक्त'
ऋ. १.३३.३
हे समस्त सेनाओं का स्वामी, राजा जब बाणों से भरे तर्कशों को बांध लेता है....
(३) सभी प्रकार की सेनाओं से युक्त राजा, बहुत सेनाओं से युक्त

सर्वहायाः - जीवन के सौ वर्ष रहने वाला
'तवैव सन् सर्वहायाः इहास्तु'
अ. ८.२.७

सर्वहुत् यज्ञ - सर्वप्रद और सर्वोपास्य परमेश्वर
'तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे'
ऋ. १०.९०.८,९; अ. १९.६.१३,१४; वाज.सं. ३१.६,७; तै.आ. ३.१२.४.

स्परणी - सिलाची, लाक्षा, लाख का दूसरा नाम
'स्परणी नाम वा असि'
अ. ५.५.३

स्वर्णरः - ब.व.। (१) मरुतों का विशेषण (२) सब के सुख, तेज या पराक्रम के मार्ग में आगे आने वाले-मरुत
'यन्मरुतः सभरसः स्वर्णसः'
ऋ. ५.५४.१०

स्पर्धमान - स्पर्धा करता हुआ, सामना या मुकाबला करता हुआ।
'अयज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः'
ऋ. १.३३.५

स्मर - परस्पर स्त्री पुरुषों को एक दूसरे को स्मरण करने वाला सरज प्रेम
'अप्सरसामयं स्मरः'
अ. ६.१३०.१.

स्मरकारी - (१) स्मरण, अनुचिन्तन, पुनः पन ध्यान मनन करने वाली क्रिया
(२) काम जगाने वाली इती
'संज्ञानाय स्मरकादीम्'
वाज.सं. ३०.९

स्पर् - पालना, पोसना, प्रसन्न करना, आगे बढ़ाना अंग्रेजी का spur धातु इसी स्पर् से हुआ है।

स्वगा - स्वतन्त्रता, यथेच्छापूर्वक
'स्वगा त्वा देवेभ्यः प्रजापतये'
वाज.सं. २२.४; मै.सं. ३.१२.१:१६०.२; श.ब्रा. १३.१.२-३

स्वर् - (क) सु + ऋ + विच् = स्वर् (ख) सु + अरणः = स्वरणः (ग) सु + ईरण, (घ) सु + ऋ + ल्यु = स्वरणा
(१) सुख से जाने वाला स्वरण है।
सुखेन, तमांसि ईरयति इति स्वर् (सुख से अन्धकार से दूर करता है)(घ) सु + ईर् + विच् = स्वर् (ईर् के ई का व्यत्यय से अ)।
(ङ) स्वृतो रसान्
अर्थ-(१) द्युलोक, (२) आदित्य
'हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रितुः कृपा स्वः'

अ. ७.१४.२; साम. १.४६४; वाज.सं. ४.२५; तै.सं. १.२.६.१; मै.सं. १.३.१५: १४.६; का.सं. २.६; श.ब्रा. ३.३.२.१२; आश्व.श्रौ.स. ४.६.३; शां.श्रौ.सू. ५.९.७

हिरण्यपाणि सविता अपने सामर्थ्य से द्युलोक स्वा या अपने सामर्थ्य से आदित्य नाम है।

सुखेन अरणः (सुखपूर्वक चलाने वाला)।

सु + ऋ + विप् + स्वर। सुष्ठु तमांसि ईरयति (सम्यक् प्रकार से अंधेरा दूर करता है)। सु + ईर् = स्वर् (ई का व्यत्यय से अ)।

सु + ऋतः = स्वृतः। सुष्ठु भौमान् आन्तरिक्षान् च रसान् आदातुं ऋतः गतः (पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष के रसों को लेने के लिए गया)।

अथवा –

'ज्योतिषां ग्रह नक्षत्रादीनां
भासम् आदातुं सुष्ठुऋतः गतः'

ग्रहों की ज्योति लेने के लिए गया, दीप्ति से सर्वत्र व्याप्त (भासा सुऋतः = स्वर्)।

(३) प्रकाश

स्वरङ्कृत – सु + अरम् + कृत। (१) सुन्दर पूर्ण किया हुआ यज्ञ (२) उत्तम रीति से सुशोभित (३) खूब क्रिया कुशल, (४) सुअभ्यस्त (५) प्रजापालक राजा या उत्तम राष्ट्र। (६) उत्तम रीति से सुसज्जित; सुशोभित

'तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन'

ऋ. १.१६२.५; वाज.सं. २५.२८; तै.सं. ४.६.८.२०; मै.सं. ३.१६.१; १८२.७

स्वरत् – स्वरतु (पाले पोसे, आगे बढ़ावें, प्रसन्न करें)।

स्वरःतीर्थः – स्वयं प्रकाशवान् मार्ग पंच ज्ञानेन्द्रियों को प्रेरित करते हैं।

'तीर्थे सिन्धोरधिस्वरे'

ऋ. ८.७२.७

स्तर्य – (१) बिछावन (२) नौकादियानेषु साधुः (नौका आदि यानों में कुशल)

स्वर – प्र। (१) ध्वनि

(२) ब.व.। सात स्वर जैसे क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द और अतिमन्द्र (३) अथवा अ, आ आदि स्वर।

(३) स्वृ (शब्द करना तथा उपताप अर्थों में) + अच् = स्वर

स्वरण – (१) शब्दार्थ सम्बन्ध का उद्देष्टा।

(२) स्वरण। सुयशस्वी, (३) ज्ञानवान् (४) प्रकाश वान् (५) तेजस्वी

'सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते'

ऋ. १.१८.१

स्वरवः – समस्त सूर्य। ए.व. में 'स्वरु'

'यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे'

अ. ४.२४.४

स्वर्क – सु + अर्क। उत्तम ज्ञान वान्, (२) पूज्य, (३) मनन शील, (४) श्रेष्ठ

'संवत्सरीणा मरुतः स्वर्काः'

अ. ७.७७.३

(५) उत्तम अर्चनीय या परमेश्वर

'स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु'

अ. २०.२.४

(६) सुन्दर अन्न वाला, (७) सुन्दर अर्चा (स्तुति) वाला (८) सुन्दर अर्चि (दीप्ति) वाला 'वाजी' का विशेषण।

'देवाताता मितद्रवः स्वर्काः'

ऋ. ७.३८.७; वाज.सं. ९.१६; २१.१०; तै.सं. १.७.८.२; मै.सं. १.११.२: १६२.१०; का.सं. १३.१४; श.ब्रा. ५.१.५.२२; नि. १२.४४

इस यज्ञ में (देवताता) मित मार्ग वाले या शोभनगति वाले या सुन्दर अन्न, अर्चा या दीप्ति वाले वाजि नामक देवता या अश्व (९) सुन्दर गमन वाला, स्वञ्चन सूपूजितः, स्वर्चनः। अञ्च्धातु, गत्यर्थक और अर्च पूजार्थक है।

(१०) अथवा–'अनुपरत विद्युत्संपातः' सुन्दर अर्चियों से युक्त

'आ विद्युन्मद्भिः मरुतः स्वर्कैः
रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः'

ऋ. १.८८.१; नि. ११.१४

हे मरुतों! तू अपनी विशिष्ट दीप्ति युक्त गतियों से (विद्युन्मद्भिः अर्कैः) गरजते हुए अकाल के नाशक अशन पतन मेघों के साथ आओ (ऋष्टिमद्भिः अश्वपर्णैः आयात)।

अथवा

विद्युत् की तरह आयुध युक्त अश्व वाहन वाले रथों से आओ।

स्वर्ग – स्वर् + ग। (१) सुख देने वाला पदार्थ (२) आनन्द मय मोक्ष, (३) सुखार्थ पुरुषार्थ

'स्वर्गाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.३४; तै.सं. ७.१.१७.१; २.२०.१; ४.२१.१; मै.सं. ३.१२.१५: १६४.१४;

स्वर्ग्य - स्वर्गसुख, परमसुख
'स्वर्ग्या शक्त्या'
वाज.सं. ११.२

स्वर्णर - स्वर् + नर, (१) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष
'स्तीर्णं बर्हिः स्वर्णरे'
ऋ. ५.१८.४
(२) सुख के मार्ग में और सुख से उद्देश्य तक ले जाने वाला अग्नि
(३) सुखप्रद आनन्दमय परम पुरुष, (४) अग्नि
'समिधानं सुप्रयासं स्वर्णरं'
ऋ. २.२.१
'स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान्'
ऋ. ४.२१.३; कौ.ब्रा. २२.१
(५) सुख प्रापक, (६) अति वेगवान्

स्वर्थ - (१) आकाश से गिरने योग्य जल
(२) अनर्थ साधनों से रहित, (३) उत्तम पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष
(४) शत्रुओं का सन्ताप और शब्द करने वाला सेना नायक
'य ई जजान स्वर्यं सुवज्रम्'
ऋ. ४.१७.८
'अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनस
भारं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम्'
हे आत्मन्! तू हमें उत्तम ऐश्वर्य के समान उत्तम पुरुषार्थ और इन्द्रिय और मन को दमन करने वाले धैर्य विद्यादि को धारण करने वाले, क्रिया कुशल, सेवन करने योग्य ऐश्वर्य युक्त स्वरूप को प्रदान करता है (पपृचासि) (३) गरजता हुआ मेघ, (४) शब्दकारी, (५) संन्ताप कारी
'अश्मानं चित् स्वर्यं पर्वतं गिरिम्'
ऋ. ५.५६.४
(६) ताप और प्रकाश की उत्पन्न करने वाला सूर्य (७) शब्दकारी विद्युत्

स्वदृश् - (१) सूर्य के समान द्रष्टा
'ईशान मस्य जगतः स्वर्दृशम्'
ऋ. ७.३२.२२; अ. २०.१२१.१; साम. १.२३३; ३०; वाज.सं. २७.३५; मै.सं. २.१३.९; १५८.१५; का.सं. ३९.१२;
(२) परम ज्ञान मय परमेश्वर या परम सुख का दर्शन
(३) स्वर् + दृश् + क्विप् = स्वर्दश्। सूर्य की किरण
'तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशे
वसु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम्'
ऋ. २.२४.४; नि. १०.१३
उसी मेघ को सूर्य की सभी रश्मियां पीती हैं और वर्षा काल में आकाश में उठते मेघ को मिलाकर बहुत जल देती हैं।
(४) सूर्य के समान दीख पड़ने वाला
(५) सर्वद्रष्टा इन्द्र (६) सुखकर दर्शन, (६) सुख दिखलाने वाला
'ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशम्'
ऋ. ७३२.२२; अ. २०.१२१.१; साम. १.२३३; २.३०; वाज.सं. २७.३५; मै.सं. २.१३.९; १५८.१५; का.सं. ३९.१२

स्वर्यन्तः - स्वर् गच्छन्तः। स्वर्ग को जाते हुए (स्वर + इ + शतृ जस् = स्वर्यन्तेः। (स्वर्यते) के प्र.ब.व का रूप।
'स्वर्यन्तो नापेक्षन्त
आ द्यां रोहन्ति रोदसी।
यज्ञं विश्वतोधारं
सुविद्वांसो वितेनिरे'
अ. ४.१४.४; वाज.सं. १७.६८; तै.सं. ४.६.५.२; मै.सं. २.१०.६; का.सं. १८.४; श.ब्रा. ९.२.३.२७
यज्ञ तथा देवों का तत्व समझने वाले विद्वान् (सुविद्वान्) सर्वत्र अप्रतिहत गति वाले यज्ञ को करते हैं (ये विश्वतो धारं यज्ञं वितेनिरे), जो जब स्वर्ग जाते हैं (द्याम् आरोहन्ति) तब स्वर्ग जाते हुए (स्वर्यान्तः) द्यौ पृथिवी की अपेक्षा नहीं करते-इनकी ओर नहीं देखते (न अपेक्षन्ते)।

स्वर्यन्ता - द्वि.व.। सुखों को प्राप्त होते हुए मिथुन
'स्वर्यन्ता समूहसि'
ऋ. १.१३१.३; अ. २०.७२.२; ७५.१

स्वर्यम् - (१) नाशकारी, शब्द करने वाला
'उत्तक्षतं स्वर्यंपर्वतेभ्यः'
ऋ. ७.१०४.४; अ. ८.४.४

सर्वत ज्योतिः - (१) निःश्रेयस् को देने वाला ज्ञान-प्रकाश (२) आदित्य के समान प्रकाश

वाला स्वर्ग लोक

'स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति'

ऋ. ६.४७.८; कौ.ब्रा. २५.७; तै.ब्रा. २.७.१३.३

निःश्रेयस के देने वाले ज्ञान प्रकाश को (सर्वत् ज्योतिः) तथा अभय रूपी कल्याण को (अभयं स्वस्ति) हमें पहुंचा।

अथवा,

आदित्य के समान ज्योति वाले स्वर्ग लोक को अभय कल्याण के लिए हमें पहुंचा -

स्वर्वती - (१) सुख साधनों से समृद्ध (२) पति को सुख देने वाली स्त्री

'अजातशत्रुमाजरा स्वर्वती'

ऋ. ५.३४.१

(३) प्रकाशयुक्त उषा या वेदवाणी

'उषा उवास मनवे स्वर्वती'

ऋ. १०.११.३; अ. १८.१.२०

(४) सुख देने वाली, सुखमयी

'सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती'

ऋ. १.१६८.७

'स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह
चित्रा अभीके अभवन्नभीष्टयः'

ऋ. १.११९.८

इस विद्वान् तपस्वी पुरुष से ही तुम दोनों को सुखदायिनी आश्चर्यजनक ज्ञान, उपाय और अभीष्ट सिद्धियाँ भी प्राप्त हों।

स्वः सातिः - (१) सुख और ऐश्वर्य की प्राप्ति, (३) सुख का संविभाग

'स्वर्षाता हवीमभिः'

ऋ. १.१३१.६; अ. २०.७२.३

स्तुति ग्रहण और उन ज्ञानों और कर्मों द्वारा सुख और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए

सरा - (१) बहने वाली (२) सिलाची, लाक्षानामक ओषधि

'सरा पतत्रिणी भूत्वा'

अ. ५.५.९

सर्वाङ्ग - समस्त अंगों से युक्त आत्मा

'सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः'

ऋ. १०.१६१.५; अ. ८.१.२०; २०.९६.१०

स्वराज्य - (१) स्वायत्त राज्य शासन

'वस्वीरनु स्वराज्यम'

ऋ. १.८४.१०-१२; अ. २०.१०९.१-३; साम. १.४०९: २.३५६,३५७; मै.सं. ४.१२.४: १९०.१.३, ४.१४.१४: २३८.६, का.सं. ८.१७ का.सं. ८.१७

(२) अपना राज्य पद, (३) आत्मा के प्रकाश स्वरूप का साक्षा त्कार, (४) स्वतः प्रकाशक परमेश्वर का परमस्वरूप

'अर्चन्ननु स्वराज्यम्'

ऋ. १.८०.१-१६; साम. १.४१०; ४१२,४१३; नि. १२.३४.

स्वराट् - (१) स्वयं प्रकाश ब्रह्म

'विराट् स्वराजमभ्येति पश्चात्'

अ. ८.९.९

(२) स्वयं राजते-परामात्मा

'इदं नमो वृषभाय स्वराजे'

ऋ. १.५१.१५

(३) अपनी दीप्ति से चमकने वाला

'यं नुनकिः पृतनासु स्वराजं
द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम्'

ऋ. ३.४९.२

स्वरातिः - (१) समान रूप से दानशील (२) निष्पक्षपात

'विश्वे साकं सरातयः'

ऋ. ८.२७.१४; वाज.सं. ३३.९४

संराधयन्तः - समान कार्य का साधन करते हुए

'संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः'

अ. ३.३०.५

स्वराटपर्जन्यः - (१) स्व प्रकाशस्वरूप सब रसों का दाता, (२) सर्वोत्पादक प्रभु। तृप्' धातु से पर्जन्य शब्द हुआ है। जन्य = तर्पयिता, परः जेता जनयिता वा, प्रार्जयिता वा रसानाम्

'इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे'

ऋ. ७.१०१.५; का.सं. २०.१५; तै.आ. १.२९.१

स्वर्गाः लोकाः - सुखमय लोक

'स्वर्गाःलोका अमृतेनविष्ठाः'

अ. १८.४.४

स्वर्भानुः - स्वर् + भानु। सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होने वाला

'यत्वा सूर्य स्वर्भानुः तमसा विध्यदासुरः'

ऋ. ५.४०.५

स्वर्भानोः मायाः - (१) प्रताप से चमकने वाले शत्रु की मात्रा (२) सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित चन्द्रमादि पिण्ड की माया, (३) राहु की माया

(४) केवल सुख की प्रतीति करने वाले राग मोह की माया
'स्वर्भानोरप माया अघुक्षत्'
ऋ. ५.४०.८

स्ववान् – (१) सुखमय लोकों का स्वामी
'यो अस्कृधोयुरजरः स्ववान्'
ऋ. ६.२२.३; अ. २०.३६.३; नि. ६.३
(२) स्वर् + वतुप् = स्वर्वत् ।
बलवान् (३) आनन्दमय परमात्मा का विशेषण ।
'यो अस्कृधोयुरजरः स्ववान्'
ऋ. ६.२२.३; अ. २०.३६.३; नि. ६.३
जो पुत्र दीर्घायु अजर और बलवान हो
जो परमात्मा अविनाशी, अजर एवं आनन्दमय है ।

स्वर्षा – (१) स्वर् + सन् । सुख और ज्ञानोपदेश देने वाला
'अस्मा इदुत्युमुपमं स्वर्षाम्'
ऋ. १.६१.३; अ. २०.३५.३
(२) सुखों को देने वाला
(३) तेज या प्रकाश को देने वाला–सूर्य
'दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षाम्'
ऋ. १०.८.६; वाज.सं. १३.१५; १५.२३; तै.सं. ४.४.४.१; मै.सं. २.७.१५: ९८.३; का.सं. १६.१५
(४) शत्रुतापकारी अस्त्रों तथा प्रजा के सुखों का दाता
'हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः'
ऋ. ७.९७.७; मै.सं. ४.१४.४; २१९.१३; का.सं. १७.१८; तै.ब्रा. ५.५.५; ८.४.१.
(५) परम सुख का प्रदाता परमेश्वर
'इन्द्रः स्वर्षाः जनयन्नहानि'
ऋ. ३.३४.४; अ. २०.११.४; ११.४; तै.ब्रा. २.४.३.६

स्वर्षाता – सुख प्रदान करने वाला
'स्वर्षाता हवीमभिः'
ऋ. १.१३१.६; अ. २०.७२.३

संरिणीथः – सुसंगत करो ।

सरिर – (१) सलिल, (२) महान् आकाश
'अश्वं जज्ञान सरिरस्य मध्ये'
वाज.सं. १३.४२; तै.सं. ४.२.१०.१; मै.सं. २.७.१७; १०२.२; का.सं. १६.१७; श.ब्रा. ७.५.२.१८
(३) वाग्
'सरिरं छन्दः'
वाज.सं. १५.४; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५.२.४
(४) समस्त प्राणियो में एक साथ और एक समान चेष्टा करने वाला– वायु
'सरिराय त्वा वाताय स्वाहा'
वाज.सं. ३८.७; श.ब्रा. १४.२.२.३
(५) वायुस्थ या मध्यस्थ जल
'सरिराय स्वाहा'
वाज.सं. २२.२५

सरिष्यन् – (१) दौड़ता या चलता हुआ (२) आक्रमण करने की इच्छा करता हुआ
'अरंस्त पर्वतश्चित् सरिष्यन्'
ऋ. २.११.७

सर्पिरासुतिः – (१) जनों से अभिषिक्त (२) श्रेष्ठ अन्नों का भोक्ता (३) घृत का भोक्ता अग्नि
'आ यस्ते सर्पिरासुते'
ऋ. ५.७.९
(४) घृत से सींचा जाकर बढ़ने वाला –अग्नि,
(५) घृत दुग्ध आदि सारवान् पदार्थों का आसेचन-सेवन करने वाला
'द्रवन्नः सर्पिरासुतिः'
ऋ. २.७.६; वाज.सं. ११.७०; तै.सं. ४.१.९.२; मै.सं. २.७.७:८३.१; ३.१.९:१२.४; का.सं. १६.७; श.ब्रा. ६.६.२.१४; आप.श्रौ.सू. १६.९.६; मा.श्रौ.सू. ६.१.३.
(६) सर्पिः + आसुतिः । घृत युक्त अन्न द्वारा सत्कार योग्य
'मित्रं न सर्पिरासुतिम्'
ऋ. ८.७४.२; साम. २.९१५

सर्पिरासुती – द्वि.व. । सर्पिः + आसुती । (१) घृत से आसेचन योग्य दो अग्नि (२) सर्पणशील सूर्यादि लोकों का उत्पादक प्रभु और प्राणों का संचालक जीव
'दिवि सम्राजा सर्पिरासुती'
ऋ. ८.२९.९

स्वरिः – स्तु + अरिः । (१) उत्तम प्रबल शत्रुवान् (२) शक्तिशाली
'स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय'
ऋ. १.६१.९; अ. २०.३५.९; तै.सं. २.४.१४.२; मै.सं. ४.१२.२:१८१.१२; का.सं. ८.१७
(३) उत्तम = शत्रुओं का पराजय करने वाला,
(४) उत्तम स्वामी ।

स्वरिता - (१) उत्तम वचन बोलने वाला
'मन्द्रा सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः'
ऋ. १.१६६.११
स्वर्जित् - (१) सुखमय राष्ट्र या स्वर्ग का विजेता
'स्वर्जितं गोजितम्'
अ. १७.१.१
(२) सुख में सब को जीतने वाला
(३) सबसे अधिक सुखप्रद आनन्दमय इन्द्र परमेश्वर
'विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते'
ऋ. २.२१.१; कौ.ब्रा. २५.७.१; २६.१६; शां.श्रौ.सू. १८.१७.३
स्वर्विद् - (१) सुखमय सर्वोत्पादक परमेश्वर, (२) योगी
'स्वर्विदो रोहितस्य
अ. १३.१.४८
(३) ज्ञान और प्रकाश को प्राप्त करने वाला
'भद्रमिच्छन्तः ऋषयः स्वर्विदः'
अ. १७.४१.१
(४) सुखदायक
'त्वं सु मेषं महया स्वर्विदम्'
ऋ. १.५२.१; साम. १.३३७; ऐ.ब्रा. ५.१६.१७; कौ.ब्रा. २५.३; २६.९.
उस सुखकारक वर्षा देने वाले मेघ या इन्द्र को अच्छी तरह पूज, अथवा
शत्रु का मुकाबला करने योग्य राजा को....
(५) सुख को प्राप्त करने और कराने वाला-परमेश्वर
'शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदम्'
ऋ. १०.१०७.४; अ. १८.४.२९
(६) स्वर् + विद् + क्विप् = स्वर्विद्। आदित्य को जानने वाला या आदित्य को प्राप्त होने वाला अग्नि
(७) सूर्य की तरह वर्तमान अग्नि
'हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि
दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ'
ऋ. १०.८८.१; ऐ.ब्रा. ५.८.११; कौ.ब्रा. २३.३; नि. ७.२५
स्वर्ग को छूने वाले, सूर्य को जानने वाले या प्राप्त करने वाले या सूर्य की तरह वर्तमान अग्नि में प्रिय (जुष्टम्) पीने योग्य स्वच्छ हवि को (८) सूर्य की तरह दीख पड़ने वाला इन्द्र
(९) सुख पहुंचाने वाला -राजा
'ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम्'
ऋ. ५.४४.१; वाज.सं. ७.१२; तै.सं. १.४.९.१; का.सं. ४.३; श.ब्रा. ४.२.१.९;
ज्येष्ठ का श्रेष्ठ कुशासन पर बैठने वाले एवं सूर्य के समान दीख पड़ने वाले इन्द्र को....
आयु से बद्ध, राजसिंहासन पर बैठने वाले एवं सुख पहुंचाने वाले राजा को....
सरी - (१) उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों का स्वामी (२) शत्रुपर प्रयाण करने वाला
'अहेडमान उरुशंस सरी भव
वाजेवाजे सरी भव'
ऋ. १.१३८.३
सरीमन् - वेग से चलना
'वातस्य सर्गो अभवत् सरीमणि'
ऋ. ३.२९.११
सरीसृप - (१) गर्भाशय में गति करता हुआ वीर्य-कीटाणु
'निषत्त्सुं यः सरीसृपम्'
ऋ. १०.१६२.३; अ. २०.९६.१३;
(२) सरकता या हिलता डोलता हुआ-गर्भ
(३) सर्प आदि रेंगने वाला जन्तु
'सरीसृपेभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२९; तै.सं. १.८.१३.३; मै.सं. ३.१२.१० :१६३.१२; का.सं. १५.३
सरीसृपाणि - सदा गतिशील नक्षत्र
'सरीसृपाणि भुवने जवानि'
अ. १९.७.१
स्तरी - (१) गौ
'अधोगिन्द्रः स्तर्यो दंसुपत्नीः'
ऋ. ४.१९.७
(२) छिपाने वाला
'कदा चन स्तरीरसि
नेन्द्र सश्चसि दाशुषे'
ऋ. ८.५१.७; साम. १.३००; वाज.सं. ३.३४; ८.२; तै.सं. १.४.२२.१ ; ५.६.४; मै.सं. १.३.२६; ३९.१
(३) नौका आदि यान (४) कवच ।
'स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना'
ऋ. १.१२२.२
(५) धूमवत्, सर्वाच्छादक व्यापक प्रकृति

'स्तरीर्यत् सूत सद्यो अज्यमाना'
ऋ. १०.३१.१०
(६) सुरक्षिता, (७) शत्रुहिंसक (८) देश की रक्षा करने वाली सेना
'आपश्चित् पिप्युः स्तर्यो न गावः'
ऋ. ७.२३.४, अ. २०.१२.४
(९) पृथ्वी
(१०) न प्रसवने वाली गौ, (११) मेघ का एक रूप, (१२) सर्वरक्षक ईश्वर का एक रूप।
'स्तरी त्वद् भवति सूत उ त्वद्'
ऋ. ७.१०१.३

स्तरीमा – स्तरीमन् के प्रथमा ए व. का रूप।
'अद्वेषो अद्य बर्हिषः स्तरीमणि'
ऋ. १०.३५.९

स्वरी – गूंजने वाली वेदवाणी
'नाम स्वरीणां सदने गुहायत्'
अ. २०.१६.७

स्वर्दी – (१) उत्तम रीति से सुसम्पन्न (२) स्पर्धालु
'श्लोककृत् मित्रतूर्याय स्वर्धी'
अ. ५.२०.७

स्वर्मीढः – (१) संग्राम
'स्वर्मीढेषु यं नरः'
ऋ. ८.६८.५
(२) सुखं मिह्यते यस्मिन्
(३) सुखों और ऐश्वर्यों से सींच कर बढ़ाने वाला–संग्राम
'स्वर्मीढेषु आजिषु'
ऋ. १.१३०.८
सुखों और ऐश्वर्यों से खींचकर बढ़ाने वाले संग्रामों में.. ...

सरु – आकाश
'सरौ पर्णमिवादधत्'
अ. ५.२५.१

संरुध् – उन्नति के कार्य में आगे बढ़ने से रोकने वाला, विघ्नकारी, बाधक
'अजैषमुतं संरुधम्'
अ. ७.५०.५

स्वरु – (१) आदित्य
'स्वरुं न पेशो विदथेषु अञ्जन्
चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत्'
ऋ. १.९२.५
जिस प्रकार प्रकाशमान सूर्य को उषा प्रकट कर देती है उसी प्रकार ज्ञान–सत्संगों में जहाँ अनेक विद्वान् एकत्र हों वहाँ अपने रूप के समान ही (पेशः) वाक् पटुता भी कन्या प्रकट करे। सूर्य की दुहिता उषा अन्धकार को जीतने वाले भानु का आश्रय लेती है उसी प्रकार कन्या, तेजस्वी ब्रह्मचारी पति का आश्रय ले।
(२) सूर्य के समान तेजस्वी, (३) विद्योपदेश से युक्त
'तेदेवासः स्वरवः तस्थिवांसः'
ऋ. ३.८.६; तै.ब्रा. २.४.७.११; आप.श्रौ.सू. ७.२८.२
(४) शत्रुओं को पीड़ा देने वाला (५) उत्तम उपदेश देने वाला
'शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः'
ऋ. ३.८.९
(६) यूप का कटा भाग, (७) ताप दायक, (८) शत्रुसन्तापक
'यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति'
ऋ. १.१६२.९; वाज.सं. २५.३२; तै.सं. ४.६.८.४; मै.सं. ३.१६.१; १८२.१४.
(९) शत्रु को सन्ताप देने वाला शब्द
ऋ. ८.४५.२; साम. २.६८९; वाज.सं. ३३.२४.

स्वर्यु – सुख की कामना करने वाला
'स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्राः'
ऋ. ३.३०.२; तै.सं. २.५.४.१

सरूपकृत् – त्वचा का समान रूप बना देने वाली सरुपा नामक ओषधि
'सरूपकृत् त्वमोषधे,'
अ. १.२४.३

सरूपङ्करणी – उत्तम रूप और समान त्वचा बना देने वाली सरूपा नामक ओषधि
'श्यामा सरूपङ्करणी'
अ. १.२४.४

सरूपाः – (१) समान रूप की गौएं
'एनीः श्येनीः सरूपाः विरूपाः'
अ. १८.४.३३

सरूपा – (१) कुष्ट रोग की एक ओषधि जो शरीर को समान रूप वाली बना देती है।
पित्ता, हल्दी, मार्ङ्गी, कर्षिकी, शालिपर्णी और लाशा (लाह) कृमिनाशक और व्रण नाशक है।

(२) समान रूप, गुण और कीर्तिवाली स्त्री
'सरूपा धात्रे'
वाज.सं. २४.५;९; मै.सं. ३.१३.६: १६९.१२; ३.१३.१०: १७०.९

स्वर्जेष् - (१) सुखेन जयशील (२) ज्ञान और सुख को प्राप्त करना
'स्वर्जिषे भरं आप्तस्य वक्मनि'
ऋ. १.१३२.२
ज्ञान और सुख की प्राप्ति के लिए (स्वर्जुषे) पूर्ण ज्ञानी और अन्यों का ज्ञान से भरने वाले विद्वान् के (आप्तस्य) आत्मा को पोषण करने वाले या अज्ञान को नाश करने वाले (भरे) प्रवचन या उपदेश में (वक्मनि) रहकर

संरोचते - संदीप्यते । सम्यक् प्रकार से रुचता या या चमकता है ।

स्वरोचिः - (१)अपने ही प्रकाश से प्रकाश मान-सूर्य या राजा (२) परमेश्वर
'श्रियो वसानः चरति स्वरोचिः'
ऋ. ३.३८.४; वाज.सं. ३३.२२; का.सं. ३७.९

स्वरोचिषः - स्वयं कान्तिमान-मरुत्
'येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः'
ऋ. ५.८७.५

सलक्ष्मा - (१) समान लक्षण वाली स्त्री
'सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति'
ऋ. १०.१०.२; १२.६; अ. १८.१.२,३४; वाज.सं. ६.२०; मै.सं. १.२.१७:२७.९; का.सं. ३.७; श.ब्रा. ३.८.३.३७

सललूक - सम् + यङ्लुन्त लभ् + क्त = सलुब्ध, सम्मूढ़, अप्रतिपक्ष, लाचार, पापी ।
'संलुब्ध' का ही 'सललूक' हो गया है
(ख) यङ्लुन्त सृ + ऊक् = सररूक = सललूक ।
'सललूकं संलुब्धं भवति पापकम्-इति नैरुक्ताः सररूके वा स्यात् सर्तेः अभ्यासात् ।
पापी सदा चंचलमति वाला होता है ।
(२) सम्यक् लुब्ध
(३) भागता हुआ अति लोभी पापी पुरुष
'आकीवतः सललूकं चकर्थ'
ऋ. ३.३०.१७; नि. ६.३

संलिखित - खूब अच्छी तरह शिला पर लिखा हुआ लेख
'अजैषं त्वा संलिखितम्'
अ. ७.५०.५

सलिल - न. (१) प्रधान कारण तत्व (२) महान् आकाश
'यद्देवा अदः सलिले
सुसंरब्धा अतिष्ठत'
ऋ. १०.७२.६
(३) सल (गत्यर्थक) + इलच् = सलिल । जल
(४) सृष्टि के पूर्व जगत् का रूप-जल
(४) सद्धावेलीनम् सलिलम्
(६) सलिल चलता है,
'गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती'
ऋ. १.१६४.४१; अ. ९.१०.२१; अ. ९.१०.२१; तै.ब्रा. २.४.६.११; ऐ.आ. १.५.३.८; तै.आ. १.९.४; नि. ११.४०
माध्यमिका वाक् गौरी ने जल का निर्माण करती हुई यह सब कुछ बनाया ।
(७) अन्तरिक्ष
'समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्'
ऋ. ७.४९.१

सलिलसधस्थ - जल के समान शान्त परम शरण -प्रभु
'ओकः कृणुष्व सलिले सधस्थे'
अ. १८.३.८

सलिलानि - जगत् के कारण स्वरूप प्रकृति के सूक्ष्म आपः स्वरूप परमाणु
'गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती'

स्वल्पिका - बहुत थोड़ी
'यदल्पिका स्वल्पिका'
अ. २०.१३६.३

सवः - सु + अच् = सव । अर्थ है- । (१) प्रसव उत्पत्ति, जन्म (२) सोमयज्ञ-
'सूयन्ते सोमाः एषु'
(इन में सोम रस चुलाए जाते हैं) ।
(३) शिक्षणालय-
(४) ब्रह्म यज्ञ से वेदाध्ययन भी एक यज्ञ है
'यो मे सहस्रममिमीत सवान्'
ऋ. १.१२६.१; निं. ९.१०
जिस राजा ने सहस्त्रों सोम यज्ञ या शिक्षणालय मेरे लिए सम्पन्न किया ।
(५) जो उत्पन्न किया जाता है ।

'श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्तः'
ऋ. १.१६४.२६; अ. ७.७३.७; ९.१०.४; नि. ११.४३
सविता हमारे लिए सव सवों में उत्तम सव उत्पन्न करने वाला है
(६) कृषि यज्ञ । कृषि द्वारा अन्नों पार्जन भी सब ही है ।
(७) उदक ।
'सूयते अभिसूयते सोमादि
अनेन इति सवः उदकम्'
(इससे सोमादि तैयार किया जाता है) ।
सु + अप् (करण अर्थ में) = सव ।

सवन – (१) यज्ञ (२) राष्ट्र का स्थान
'विश्वेत् ता वां सवनेषु प्रवाच्याः'
ऋ. १०.३९.४
हे अश्विद्वय ! तुम्हारे वे सभी कर्म (ता विश्वेत्) यज्ञों में (सवनेषु) प्रवचनीय हैं (प्रवाच्या)।
'स्थिराय वृष्णेः सवनाकृतेमा'
ऋ. ३.३०.२; वाज.सं. ३४.१९.
(३) सु + ल्युट् = सवन
'ये आजग्मुः सवनमिदं जुषाणाः'
जो देवता इस यज्ञ में प्रेम के साथ आवें ।

सवना – ब.व.। स्थान जहां सोम रस बनाया जाता है ।
'एता विश्वा सवना तूतुमा कृषे
ऋ. १०.५०.६; नि. ५.२५.
हे इन्द्र, इन सभी स्थानों को शीघ्र ही निकट आकर निवर्तित कर (तु नुम् आकृषे) ।

सबन्धू – द्वि.व.। (१) समान रूप से एक दूसरे को प्रेम पाश में बांधने वाले पति पत्नी
'वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू'
ऋ. ३.१.१०

सवयसा – द्वि.व.। समान वय वाले स्त्रीपुरुष माता पिता या पति पत्नी
'युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः'
ऋ. १.१४४.३
समान वय वाले स्त्री पुरुष जब मिलते हैं तब यह शरीर उत्पन्न होता है ।

सवर्या सरण्यू – (१) त्वष्टा की पुत्री सरण्यू जब अपने पति विवस्वान् का तेज नहीं सह सकने के कारण उत्तरकुरु में तपस्या करने चली गई हो अपने पिता त्वष्टा के घर वह अपने ही रूप रंग की सर्वर्ण कन्या छोड़ गई जिसे सवर्णा सरण्यू कहते हैं,
(२) उत्तर कालीन सरण्यू । ईश्वरीय नियमों से पूर्वकालीन सरण्यू को मनुष्यों से छिपा कर तत्स्वरूपा सरण्यू बना त्वष्टा को प्रदान किया ।
'कृत्वी सवर्णामदद्ुर्विस्वते'
ऋ. १०.१७.२; अ. १८.२.३३; नि. १२.१०

सबर्दुघा – स + वर् + दुघा = सवर्दुघा । वर्वति येन ज्ञानेन तद् वर, समानं वर् दोग्धि प्रपूरयति यया सा सवद्रुघा'
वर्व (गत्यर्थक धातु) + क्विप् = वर् ; दुह् = कम् = दुध (ह का घ)
(१) सब ज्ञान को पूर्ण करने वाली वेद वाणी
(२)सुख दायक अन्न शरीर का दोहन करने वाली गौ या भूमि
'आ सखायः सबर्दुघाम्'
ऋ. ६.४८.११
(३) उत्तम गौ रस देने वाली गौ
'तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम्'
ऋ. १.२०.३
वे दुग्धादि रस देने वाली गाय और अमृत मोक्ष ज्ञान से पूर्ण करने वाली वेदवाणी का उपदेश देते हैं ।

सबर्दुघे – (१) जल रस का दोहन करने वाले, (२) समान भर से एक दूसरे का वरण कर एक दूसरे की कामनाओं को पूर्ण करने वाले स्त्रीपुरुष
'सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू'
ऋ. ३.६.४
(२) द्वि.व. । द्यावापृथिवी, क्षीरवत् रसों का दोहन करती हुई
'सर्वदुघे धापयेते समीची'
ऋ. ३.५५.१२

सव्य – (१) वाम हस्त, (२) बायां
'यदस्य सव्यमक्षि
असौ स चन्द्रमाः
स सव्येन यमति व्राधतश्चित्'
ऋ. १.१००.९

सव्यष्ठाः – रथ में बैठने वाला साथी
'इन्द्रः सव्यष्ठाः'
अ. ८.८.२३

संवत्सरः – (१) समस्त प्राणियों के निवास का

एक मात्र आश्रय
'संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती'
अ. १९.५८.१
(२) पंचयुगी के पांच वर्षों मे पहला संवत्सर है,
(३) अग्नि,
'अग्निर्वासंवत्सरः'
तै.ब्रा. १.४.१०.१
'संवत्सराय कृणुत वृहन्नमः'
अ. ६.५५.३; तै.सं. ५.७.२.४
(४) संवसन्ते अस्मिन् भूतानि (इसमें सभी प्राणी संवास करते हैं ।
अथवा,
ऋतुः संवत्सरो ग्रीष्मो वर्षा हेमन्त इति (ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त से युक्त संवत्सर है)
सम् + वस् + सर = संवत्सर (वस् के स् का त्) ।
अर्थ-एक वर्ष
'संवत्सरं शशयाना'
ऋ. ७.१०३.१; अ. ४.१५.१३; नि. ९.६
एक वर्ष तक सोते या तपस्या करते हुए (५) संवत्सर का अर्थ चार वर्ष भी है ।
'संवत्सराय पलिक्नीम्'
वाज.सं. ३.१५;तै.ब्रा. ३.४.१.११
(५) जिसके साथ समस्त प्राणी बसते हैं ।
(६) जिस सभी प्रेम से अभिवादन और स्तुति करते हैं-अग्नि, परमेश्वर
'संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसि'
वाज.सं. २७.४५

संवत्सरस्य दंष्ट्रा - (१) संवत्सर के दाढ़-दिन और रात में आने वाले भयोत्पादक अवसर
'संवत्सरस्य ये दंष्ट्राः'
अ. ११.६.२२

संवत्सरस्य पत्नी - उत्तम रीति से वत्स बालकों को अन्नादि से पुष्ट करने वाले पति के गृह की पत्नी।
'संवत्सरस्य या पत्नी
सानो अस्तु सुमंगली'
अ. ३.१०.२

संवत्सरस्य प्रतिमा - यजमान गृहपति का दूसरा रूप या मूर्ति गृहपत्नी धर्मपत्नी
'संवत्सरस्य प्रतिमाम्'
अ. ३.१०.३; तै.सं. ५.७.२.१; का.सं. ४०.२; आप.श्रौ.सू. १७.९.३

संवत्सराः - सं + वत्सराः ।(१) अच्छी प्रकार प्रजाओं को बसाकर स्वयं उनमें रमण करने वाले प्रजा पालक नर पति (२) प्रभव आदि संवत्सर
'संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या'
अ. २.६.१; वाज.सं. २७.१; तै.सं. ४.१.७.१; मै.सं. २.१२.५; १४८.११; का.सं. १८.१६; श.ब्रा. ६.२.१.२६

संवत्सरीण - (१) एक वर्ष के लिए नियुक्त, (२) वर्ष वर्ष पर होने वाला ।
'संवत्सरीणा मरुतः स्वर्काः'
अ. ७.७७.३; तै.सं. ४.३.१३.४;

संवनन - (१) परस्पर एक दूसरे को स्वीकार करने का उपाय
'हृदि संवननं कृतम्'
अ. ६.९.३
(२) सज्जन पुरुषों का सेवनीय
'विद्वेषणं संवननोभयङ्करम्'
ऋ. ८.१.२, अ. २०.८५.२; साम. २.७.११
(३) अच्छी प्रकार से सेवा या भक्ति करने योग्य
(४) समान रूप से द्रव्य भाग का दान
'एकश्नुष्टीन् संवननेन सर्वान्'
अ. ३.३०.७

संवनमी - (१) स्त्री पुरुषों का परस्पर वरण कराने वाली ओषधि, (२) वशीकरण वाली ओषधि
'संवननी समुष्पला'
अ. ६.१३९.३

संवयन्ती - (१) बनाती हुई, बुनती हुई
'तन्तुं तत संवयन्ती समीची'
ऋ. २.३.६
(२) अवरण करती हुई
'तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती'
वाज.सं. २०.४१

संवरण - (१) आच्छादित गूढ़ आवरण-पूर्ण स्थान
'यो नो महान् संवरणेषु वह्निः'
ऋ. ४.२१.६
(२) संवरण नामक वैदिक ऋषि, (३) मिलकर वरण किया गया राजा, (४) वरण करने वाला

प्रजाजन
'मह्वारायः संवरणस्य ऋषे'
ऋ. ५.३३.१०
(५) न. । जल ।
'अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः । समुद्रं न संवरणान्यग्मन् मन्दी मदाय तोशते ।'
ऋ. ९.१०७.९
सोम सभी गात्रों से निकलकर उसी प्रकार स्रवता है जैसे जल सिमट कर समुद्र में आते हैं । दुही हुई गौओं से भी दूध गिरता रहता है जैसे जल चारों ओर से समुद्र को प्राप्त होते हैं ।
(६) पु. । रक्षास्थान, प्रकोट
'यदा महः संवरणाद् व्यस्थात्'
ऋ. ७.३.२; साम. २.५७; वाज.सं. १५.६२; तै.सं. ४.४.३.३; मै.सं. २.८.१४:११८.९; का.सं. १७.१०
(७) वरण करना
'शिवोः अग्ने संवरणे भवा नः'
अ. २.६.३; वाज.सं. २७.३; तै.सं. ४.१.७.१; मै.सं. २.१२.५: १४८.१५; का.सं. १८.१६

संवर्ग – (१) सबको अपने साथ मिलाए रखने वाला
'संवर्ग यत् मघवा सूर्यं जयत्'
ऋ. १०.४३.५; अ. २०.१७.५
(२) सम्यक् प्रकार से वृष्टि देने वाला (३) दुर्गुणों को हटाने वाला
'संवर्ग मन्मघवा सूर्यं जयत्'
ऋ. १०.४३.५; अ. २०.१७.५
जब सम्यक् प्रकार से पृष्टि देने वाले मेघ को (संवर्गम् सूर्यम्) इन्द्र जीतता है (जयत्)
अथवा
जिस तेज से धनपति परमेश्वर (यत् मघवा) सूर्य को (सूर्यम्) जीता हुआ है (जयत्) दुर्गुणों को हटाने वाले उस तेज का (संवर्गम्)....

संवर्तः – (१) सम्यक् दृष्टि से देख वाला, (२) सम्यक् व्यवहार वाला
'यथा संवर्ते अमदो यथा कृशे'
ऋ. ८.५४.२

संवसन – (१) एक साथ मिलकर बैठने का स्थान, (२) सत्संग'
'पनस्युवः संवसनेष्व क्रयः'
ऋ. ९.८६.१७

संवसन् – एकत्र, एक गृह या देश में रहने वाला
'अमावस्ये संवसन्तों महित्वा'
अ. ७.७९.१; तै.सं. ३.५.११;

संवसाना – (१) एक साथ निवास करती हुई (२) एक स्थान पर एकत्र-स्वसारः बहनें या अपने शासन में पढ़ने वाली प्रजाएं ।
'द्विर्यं पञ्च जीजनत् संवसानाः'
ऋ. ४.६.८

संवसु – (१) एकत्र सेना या संस्था बनाकर संगठित होकर छावनी सेना दल या संस्था में रहने वाला
'संवसव इति वो नामधेयम्'
अ. ७.१०९.६
(२) प्रत्येक पदार्थ को अच्छी तरह से आच्छादित करने वाला अग्नि तत्व, (३) अच्छी प्रकार से रहने वाला (४) उत्तम रीति से ऐश्वर्य का स्वामी
'अग्निर्देवेषु संवसुः'
ऋ. ८.३९.७

स्तवत् – (१) स्तौति (स्तुति करता है) । लेट में तिप् के इ का लोप और अट् का आगम ।
(२) स्तुवन्ति (स्तुति करते हैं)
'य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत् तेष्वृतावृधा'
ऋ. ६.५९.४, नि. ५.२२.
हे सत्य या यज्ञ को बढ़ाने वाले इन्द्र और अग्नि (ऋतावृधा इन्द्राग्नी) जो यजमान सोमरस चुलाकर तेरी स्तुति करते हैं (ते स्तवत्) ।

स्रवत् – बहती हुई नदी
'समुद्रं न स्रवतः आविशन्ति'
ऋ. ३.४६.४

स्रवन्ती – (१) शरीर अन्न रस और रुधिर को वहन करने वाली नाड़ी
'हिराभिः स्रवन्तीः'
वाज.सं. २५.८; मै.सं. ३.१५.७: १७९.१३
(२) चूने या झरने वाला जल
'स्रवन्तीभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२.५

सवृधः – ब.व. । ए.व. में रूप है – सवृध । (१) समान रूप से बरतने वाली आप प्रकृति के परमाणु ।
'अपो वन्दस्व सवृधः समयोनीः'

ऋ. १०.३०.१०

स्ववृजः - स्वयमेव अपने सामर्थ्य से सब बन्धनों को काटने वाला

'स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रुवान्'

ऋ. १०.३८.५; तै.ब्रा. १.२२८

सवाचसः - ब.व.। समान वचन वाले, एक वाणी बोलने वाली

'ये ते के च सभासदः

ते मे सन्तु सवाचसः'

अ. ७.१२.२.

सवात्य - (१) प्राण, (२) तीव्र वायु के समान तेजी से भागने वाला, हवा से बात करने वाला पुरुष या यान् आदि

सबाधः - (१) शत्रुपीड़क उपायों में कुशल

'सबाधसश्च रातये'

ऋ. ५.१०.६

(२) नाना प्रकार के विघ्न बाधाओं से युक्त, (३) विद्या विलोडन, अनुशीलन, ऊहापोह से युक्त

'कथा सबाधः शशमानो अस्य'

ऋ. ४.२३.४

(४) ब.व.। एक साथ शत्रुओं को पीड़ित करने वाले सैनिक, (५) एक साथ मेघों को लाने वाले वायुगण

'समित् सबाधः शवसाहिमन्यवः'

ऋ. १.६४.८

सबाध् - (१) लोकपीड़ाओं से दुःखी जन, (२) प्रतिपक्ष भावना का अभ्यासी

'इन्द्र सबाध इह सोमपीतये'

ऋ. १०.१०१.१२; अ. २०.१३७.२

सवासिनौ - सव + आसिनौ, 'स + वासना (१) एक ही सव अर्थात् व्रत में निष्ठ स्त्री पुरुष (२) समान रूप से वस्त्र धारण करने वाले

'सवासिनौ पिबतां मन्थमेतम्'

अ. २.२९.६

सवासिनौ देवौ - एक निवास स्थान आकाश में रहने वाले सूर्य और चन्द्र

'देवौ सवसिनाविव'

अ. ३.२९.६

सव्या - (१) बाई ओर, उत्तर दिशा

'न दक्षिणा विचिकिते न सव्या'

ऋ. २.२७.११; तै.सं. २.१.११.५; मै.सं. ४.१४.१४: २३८.१४; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१

(२) वाम भाग में रहने वाली अर्धांगिनी, (३) ऐश्वर्य सम्पन्न शासन योग्य

'सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा'

ऋ. ८.४.८; साम. २.९५६

संवाक् - (१) संगत वाणी, (२) जयध्वनि

'एषा वः सा सत्या संवागभूत्'

वाज.सं. ९.१२; श.ब्रा. ५.१.५.१२

संबाध - पीड़ा

'स्वप्नं संबाध तन्द्रयः'

अ. १०.२.९

स्तवानः - (१) स्तुति का पात्र

'स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः'

ऋ. १.५१.९

स्तुति पात्र होकर (स्तवानः) राष्ट्र की अच्छी प्रकार उपचय वृद्धि करने वाले बल्मीक के समान गुप्त सुरंगों से युक्त दुर्गों को रचकर या उसके समान संचयशील प्रचुर कोशवान् होकर (वंम्रः) तेजस्विता से बैठने वाले शत्रुबल को भी विविध उपायों से नाश कर (संदिहः विजघान)।

(२) स्तुति किया जाता हुआ

'यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः'

ऋ. १.३१.८; मैसं. ४.११.१:१६१.१

हे अग्नि परमेश्वर, स्तुत किया जाकर तू तुझे यशस्वी एवं कार्यकर्ता बना।

(३) सब के द्वारा स्तुत, प्रशंसा पत्र

'तिरस्तवान विश्पते'

ऋ. ३.४०.३; अ. २०.६.३

स्ववान् - सु + अव (रक्षा करना) = असुन्। स्ववान् इति पदपाठः। (१) धनवान्

(२) वहवः स्वे विध्यन्ते यस्य

सः स्वावान्

बहुत सहायकों से युक्त। स्व + वतुप् = स्ववत् -स्ववान्।

(३) परन्तु 'सुमृडीक' 'सुत्रामा' आदि शब्दों में सु के प्रयोग से 'स्ववान्' का प्रयोग भी उसी प्रकार 'सु + अवान्' हो सकता है।

(४) ह्विटनी (Whitney) ने Well saving well aiding अर्थ किया है। उनके अनुसार 'सु +

अव + असुव से स्ववान् बना है ।
'सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम्'
ऋ. ५.८.२
'ईडे अग्निं स्ववसे नमोभिः'
ऋ. ५.६०.१;अ. ७.५०.३;मै.सं. ४.१४.११;२३२.१३; तै.ब्रा. २.७.१२.४; आश्व.श्रौ.सू. २.१३.२.
'स्वायुधं स्ववसं सुनीथं'
ऋ. १०.४७.२; मै.सं. ४.१४.८: २२७.११
'स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रः अस्मे'
ऋ. ६.४७.१३;१०.१३१.७;अ. ७.२९.१;२०.१२५.७; वाज.सं. २०.४२; तै.सं. १.७.१३.५; का.सं. ८.१६
(५) धनैश्वर्मयुक्त, (६) आत्म सामर्थ्य से युक्त, (७) आत्मवान्, जितेनन्द्रिय
'सुकृत् सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा'
ऋ. ३.५४.१२
'स इत् सुदानुः स्ववाँ ऋतावा'
ऋ. ६.६८.५
(८) स्व + वतुप् = स्ववत्। धनवान् या अपने अधिकार में रहने वाला ।

स्ववाः - सु + अवस् । देहों और जन्तुओं की आग्नेयादि अस्त्रों से रक्षा करने वाला-अग्नि

सविता - सविता सर्वस्य प्रसविता आदित्योंऽपि सविता उच्यते । सु + तृच् = सवितृ ।
(१) जगत् प्रेरक, जगतत्स्रष्टा सूर्य, (२) इन्द्र या परमात्मा
सविता से सूर्य का ही बोध होता है ।
'देवोऽनयत् सविता सुपाणिः'
ऋ. ३.३३.६; नि. २.२६
'सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णात्'
ऋ. १०.१४९.१; नि. १०.३२
सविता ने वृष्ट्यादि साध्यों तथा वायवीय पाशों से पृथ्वी को स्थिर किया (२) त्वष्टा देव भी सविता ही है ।
'देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः'
ऋ. ३.५५.१०: १०.१०.५;अ. १८.१.५; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१; शां.श्रौ.सू. १३.४.२; नि. १०.३४
(३) उदय से पूर्व का आदित्य (४) प्रसविता, पिता, पालक (५) वैश्वानर अग्नि (प्रकृति अग्नि से भिन्न)
होतृजयः तु अनग्निः वैश्वानरीयो भवति । देव सवितः एतं त्वां वृणुते अग्निं होत्राय सह पित्रा वैश्वानरेण । इममेव अग्निं सवितारम् आह सर्वस्य प्रसवितारम् । मध्यमं वा उत्तमं वां पितरम् । यस्तु सूक्तं भजते तस्मै हविः निरूप्यते । अयमेव सोऽग्निः वैश्वानरः ।
याज्ञिकपक्ष वाले पार्थिव अग्नि को ही वैश्वानर अग्नि मानते हैं । परन्तु आचार्य पक्ष वाले सूर्य को जिसके लिए सूक्त हैं वही वैश्वानर अग्नि है ।
(६) वायु, सर्वप्रेरक वायु। (प्रेरणार्थक) + तृच् = सवितृ
(७) राष्ट्र का समाहर्ता नामक अधिकारी
'घधाता रातिः सवितेदं जुषन्ताम्'
अ. ३.८.२; ७.१७.४; वाज.सं. ८.१७; तै.सं. १.४.४४.१; मै.सं. १.३.३८; ४४.४; का.सं. ४.१२; १३.९,१०; श.ब्रा. ४.४.४.९

संवित् - (१) मनोभावना, (२)पारमार्थिक प्राप्ति
'कस्चित् तत्र यजमानस्य संवित्'
ऋ. ८.५८.१
(३) उत्तम दृढ़ प्रतिज्ञा, (४) वेदादि का ज्ञान
'संविच्च मे ज्ञात्रं च मे'
वाज.सं. १८.७
(५) भोगादि सुख ।

संविद् - () मति
'अधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम्'
ऋ. १०.१०.१४; अ. १८.१.१६; नि. ११.३४
(२) समान बल वाला पर राष्ट्र का राजा
'अर्यम्ण उत संविदः'
अ. ३.५.५

संविद्य - साथ रहने वाला
'तथा वशायाः संविद्यम्'
अ. १२.४.४

संविदानः - (१) सत् मन्त्रणा करता हुआ
'तैष्टे रोहितः संविदानः'
अ. १३.१.३५
(२) परस्पर मिलकर विचार करता हुआ
'विश्वै स्तद् देवैः सह संविदानः'
अ. १९.४०.१

संविदाना - (१) एकमत हुई प्रजा
'तास्त्वा सर्वा संविदानाः'
अ. ३.४.७
(२) पति से संमन्त्रणा करने वाली स्त्री

अपां नप्त्रा संविदानास एताः'
ऋ. १०.३०.१४
संविदाने - द्वि.व. । (१) परस्पर एकमत सभा और समिति
'प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने'
अ. ७.१२.१
(२) परस्पर संवाद करती हुई ।
'अप शत्रून् विध्यतां संविदाने'
ऋ. ६.७५.४; वाज.सं. २९.४१; तै.सं. ४.६.६. २.; का.सं. (अश्व.) ६.१; नि. ९.४
परस्पर संवाद करती हुई सी ये धनुष की डोरियाँ शत्रुओं को विनष्ट करें ।
संविव्य - सब को अच्छी प्रकार से वशकर
'सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा'
ऋ. १.१७३.६
स्थविर - (१) युद्ध में स्थिर (२) पुराना अनुभवी
'बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः'
ऋ. १०.१०३.५; अ. १९.१३.५; साम. २.१२०३; वाज.सं. १७.३७; तै.सं. ४.६.४.२; मै.सं. २.१०.४; १३६.१; का.सं. १८.५
(३) नित्य कूटस्थ (४) सदा स्थिर, (५) अविनाश
'स्थविरः पयस्वान्'
अ. ९.४.३
(५) महान् या वृद्ध, (६) ज्ञान वयोवृद्ध
'ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू'
ऋ. ६.४७.८; तै.ब्रा. २.७.१३.४; नि. ७.६
हे इन्द्र या राजन् ! तुझ महान् वृद्ध या ज्ञान वयो वृद्ध के दर्शनीय हाथों की (ऋष्वा वाहू) सेवा करें या प्रचार करें ।
(७) चिरन्तन, स्थूल ।
'महत्तत् उल्वं स्थविरं तदासीत्'
ऋ. १०.५१.१; नि. ६.३५
हे अग्नि या विद्युत्, तेरा वह जरायु या आवरण बड़ा तथा चिरन्तन या स्थूल था (विद्युत् के पक्ष में है) ।
स्थविरागीः - स्थिर अनुभवयुक्त वाणी
'असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीः'
ऋ. १०.१८१.७
स्रवितवे - (१) संसार चलाने के लिए (२) अपने बढ़ने के लिए
'प्र सदमित् स्रवितवे दधन्युः'
ऋ. ४.३.१२
स्रवितवै - (१) बहने के लिए (२) सन्मार्ग पर चलने के लिए
'त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः'
ऋ. ७.२१.३
स्वविद्युतः - ब.व. । स्वयं विशेष दीप्ति युक्त
'स्वविद्युतः प्रस्पन्द्रासो धुनीनाम्'
ऋ. ५.८७.३
सवीमन् - (१) सृष्टजगत्
'अदीद्युतत् सवीमनि'
अ. ७.१४.(१५) २
(२) षु (प्रसव और ऐश्वर्य में) + इमनिच् = सवीमन् । अर्थ है- शासन
(३) जगत्, सृष्टि
'ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि
हिरण्य पाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात् स्वः'
अ. ७.१४.२; साम. १.४६४; वाज.सं. ४.२५; तै.सं. १.२.६.१; मै.सं. १.२.५: १४.६; का.सं. २.६; श.ब्रा. ३.३.२.१२; आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३; शां.श्रौ.सू. ५.९.७
जिस सविता की स्वयं सर्वताता की ज्योति सबसे ऊपर देदीप्यमान हो रही है और जिसके शासन में सब लोक लोकान्तर वर्तमान हैं, उसी तेजस्वी हाथ वाले सुकर्मा परमेश्वर ने अपनी कृपा से द्युलोक का निर्माण किया है ।
(अन्य अर्थ)
जिसने हिरण्यपाणि हो समस्त जगत् को निर्मित किया और जो सुकर्मा और अपने ही सामर्थ्य से आदित्य नामक है ।
पुनः -
'देवस्य वयं सवितुः सवीमनि
श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो
निवेशने प्रसवे चासि भूमनः'
ऋ. ६.७१.२
सभी पदार्थों को उत्पन्न करने वाले सविता के अभ्यनुज्ञान या शासन में तथा धन के दान में हम सदा समर्थ हों । हे सविता, जो तू इस समस्त मनुष्यादि द्विपदों तथा चतुष्पदों की स्थिति में (निवेशने) तथा सृष्टि में (प्रसवे)

कारणभूत हैं (भूमनः असि) ऐसे तुझ आदित्य के अंगभूत हैं ।
(४) अभ्यनुज्ञान, (५) प्रसव
अंग्रेजी का sway शब्द भी सवीमन् का शासन अर्थ में समानार्थक है

संवृक्त – (१) विघ्नों को दूर करने वाला (२) शत्रुओं का वारक
'संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः'
ऋ. २.१२.३; अ. २०.३४.३; मै.सं. ४.१४.५: २२२.१२
(३) दूर करने वाला, (४) अच्छी तरह शत्रुओं को परास्त करने वाला
(५) अन्धकार को दूर करने वाला

सवृत् – (१) समान बर्ताव करने वाली स्त्री
'सवृदसि सवृते त्वा'
वाज.सं. १५.९; का.सं. १७.७; ३७.१७; पंच.ब्रा. १.१०.९

संवृत – (१) विवाह के लिए वरा हुआ पुरुष, (२) विवाह के लिए वरा जाना
'उभा संवृतमिच्छतः
अ. ८.६.४

सवदेसा – द्वि.व. । समान ज्ञान और ऐश्वर्य वाले –अग्नि और वायु (अग्निषोमा) ।
(२) मंत्री और राजा
'अग्नीषोमाः सवेदसा सहूति वनंत गिरः ।
ऋ. १.९३.९; तै.सं. २.३.१४.१; मै.सं. ४.१०.१:१४४.१२; का.सं. ४.१६; तै.ब्रा. ३.५.७.२; कौ.सू. ५.१.
समान ज्ञान और ऐश्वर्य वाले, एवं समान रूप से चरु को ग्रहण करने वाले अग्नि और वायु स्तुति वाणियों का सेवन करते हैं ।

सवेदाः – समान ज्ञान और ऐश्वर्य से सम्पन्न
'ते ते यक्ष्मं सवेदसः'
अ. १२.२.१४

संवेविदानः – अच्छी प्रकार लाभ करता हुआ
'सं भस्मना वायुना वेविदानः'
ऋ. ५.१९.५

संवेशन – (१) सर्वश्रेष्ठ शय्या,
(२) सबको आश्रय देने वाला प्रभु
'संवेशने तन्वश्चारुरेधि
ऋ. १०.५६.१; अ. १८.३.७

संवेशपतिः – (१) गृहस्वामी, (२) उत्तम दीप्ति सं बसने वाले पृथ्वी आदि लोकों का पालक
'अग्नये संवेशपतये स्वाहा'
वाज.सं. २.२०

संवेशयन् – (१) आच्छादित करता हुआ (३) बसाता हुआ
'संवेशयन् पृथिवीमुस्रियाभिः'
अ. ३.८.१

संवेश्य – बसने योग्य राष्ट्र
'बृहद् राष्ट्र संवेश्यं दधातु'
अ. ३.८.१

स्तवे –स्तूयते (स्तुत किया जाता है) ।
'स्तवे वज्र्यृचीषमः'
ऋ. १०.२२.२; नि. ६.२३
इस यज्ञ में हम लोगों से आज विख्यात इन्द्र स्तुत किए जाते हैं ।

सश्चत् – (१) विज्ञानवान् (२) विघ्न बाधा
'अति नः सश्चतो नय
ऋ. १.४२.७
हमें विघ्न बाधाओं से पार कर । (३) सर्वत्र व्यापक प्रभु
'क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते'
ऋ. २.१६.४
(४) प्राप्त, शरणागत
'पर्षन् नो अति सश्चतो अरिष्टान्
ऋ. ७.९७.४; का.सं. १७.१८

सश्वत् – सनातन जगत्
'नि काव्या वेधसः शश्वतस्कः'
ऋ. १.७२.१; तै.सं. २.२.१२.१
जो पुरुष सनातन जगत् के विधाता, ज्ञानवान् परमेश्वर के विज्ञान और कर्म के प्रतिपादक वेदमन्त्रों को अथवा सृष्टि नियमों का अच्छी प्रकार अभ्यास करता है (नि.कः) ।

संशम्य – शम्य का अर्थ सायण ने सुख किया है और 'शम्येन सन्दधन्वे' अर्थ 'सुखपूर्वक संभोग किया'- ऐसा किया है अतः 'संशम्य' का अर्थ हुआ–सम्यक् सुख

संशर – अच्छी प्रकार वाणों का प्रयोग
'संशराय प्रच्छिदम्'
वाज.सं. ३०.१७; तै.ब्रा. ३.४.१.१४

स्थश् – स्था + शस् = स्थश् । बहुत से ठहरने

वाला-दया.
'स्थशो जन्मानि सविता व्याकः'
ऋ. २.३८.८

स्पश् - स्पश् (to spy)--गुप्तचर का कार्य करना । +क्विप् = स्पश् । (१) चर, जासूस, भेदिया ।
'न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते
देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।'
ऋ. १०.१०.८; अ. १८.१.९
हे यमी, जो ये देवताओं के चर अर्थात् जासूस इस लोक में चलते हैं वे न कभी विराम लेते हैं, और न सोते हैं ।
(२) ग्रहण करने योग्य पदार्थ
'स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्षु '
ऋ. ७.६१.३

स्वश्चन्द्रः - (१) अपने आह्लादकारक प्रकाश से युक्त-सुवर्ण
'चन्द्रमिति हिरण्यनाम'
(२) स्वयं स्वभाव से आह्लादकारक
'बृहत् स्वश्चन्द्रमभवद् यदुक्थ्यम्
अकृणवत भियसा रोहणं दिवः'
ऋ. १.५२.९
जो सांसारिक दुःखों से भय खाकर (भियसा) उस महान् स्वयं स्वभाव से आह्लाादकारक (स्वश्चन्द्रम्) उत्तम ज्ञान-सम्पन्न (अभवत्) स्तुति योग्य ब्रह्म की स्तुति करते हैं (उक्थ्यम् अकृण्वत) तब वे आकाश के बीच उदय होने वाले (दिवः रोहणाम्) सूर्य के समान देदीप्यमान परमेश्वर को...।

स्वश्चनाः - स्वः + चनाः ।
ज्ञान प्रकाश देने वाली
'क्षिप्रः कविः काव्येन स्वर्चनाः'
ऋ. ९.८४.५

स्वश्व - सु + अश्व । सुन्दर अश्ववाला, सुन्दर, अश्वारोही
नकिः स्वश्व आनशे '
ऋ. १.८४.६; साम. २.३००
हे इन्द्र, तुझ से बढ़कर सुन्दर अश्वारोही कोई नहीं है ।

स्वश्व्य - सु + अश्व + यत् = स्वश्व्य । अर्थ- उत्तम रीति से विद्या आदि में व्यापक (२) उत्तम अश्व के समान, (३) उत्तम तरंग बल
'सुवीर्यं मरुत या स्वश्व्यं
दधीत यो व आचके ।'
ऋ. १.४०.२
जो तुझे विद्या आदि हिताकारी ऐश्वर्य के लिए चाहता है उसे तू उत्तम रीति से विद्या आदि में व्यापक उत्तम वीर्य अथवा उत्तम अश्व के समान बलवान् पुष्ट करने वाले ब्रह्म चर्य बल को धारण करो ।
(४) सुन्दर अश्वों से युक्त

संशाय - क्रि । सम्यक् प्रकार से तेज कर ।
'सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मम्'
ऋ. १०.१८०.२; अ. ७.८४.३; साम. २.१२२३; वाज.सं. १८.७१; तै.सं. १.६.१२.५; मै.सं. ४.१२.३: १८३.१५; का.सं. ८.१६
हे इन्द्र, तू क्षरणशील तेज वज्र को (तिग्मं पविम्) सम्यक् प्रकार से तेजकर...

स्वश्वा - (१) सबको बांधने वाली शक्ति -आत्मा
'स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासाः'
ऋ. १०.७५.८

संशित - खूब तीक्ष्ण, तेज,
'संशितं मे ब्रह्म संशितं वीर्यं बलम्'
अ. ३.१९.१; वाज.सं. ११.८१; तै.सं. ४.१.१०.३; मै.सं. २.७.७: ८४.६; का.सं. १६.७; श.ब्रा. ६.६.३; तै.आ. २.५.२

संशिश्वरी - उत्तम शिशुओं वाली गौ
'वत्सं संशिश्वरीरिव '
ऋ. ८.६९.११; ९.६१.१४; अ. २०.९२.८; साम. २.६८६
(२) शिशु वाली माता
(३) बछड़े को देखकर रंभाती हुई गौ

संशिशानः, संशिशानाः - (१) मारता काटता हुआ
'तिग्मेषव आयुधा संशिशानाः'
ऋ. १०.८४.१; अ. ४.३१.१; तै.ब्रा. २.४.१.१०; नि. १०.३०
तीक्ष्ण बाणधारी योद्धा आयुधों से मारते काटते...
(२) संशिश्यमानाः (तीक्ष्ण आयुधों को तीक्ष्णतर करते हुए)

संशिष् - अपने से छोटे और निम्न पुरुषों के प्रति आज्ञा, समान पुरुषों के प्रति आज्ञा
'संशिषो विशिषश्च याः'

अ. ११.८.२७

संशूरणासः - सम् + शूर + युच् = सं शूरण (यु का अना अर्थ-(१) विक्रमशील (सूर्य के घोड़ो का विशेषण) (२) अत्यन्त वेगवान् सूर्य की रश्मियां, -दया.

एक वचन में रूप है- 'संशूरणः'।

संश्रेषी - परस्पर संघात करने वाला -राष्ट्र

'बिभ्रत् संश्रेषिणेऽजयत्

अ. ८.५.१४

स्वष्ट्र - उत्तम अश्वादि साधनों से युक्त

'नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम्'

ऋ. १०.४२.५; अ. २०.८९.५

(२) सुन्दर अश्वों वाला

सस् - सोना

'सस्तु माता सस्तु पिता'

ऋ. ७.५५.५

ससः - (१) विद्युत्।

'संस न पक्वमविदच्छुचन्तम्'

ऋ. १०.७९.३; नि. ५.३

जैसे आठ महीनों तक सोती हुई विद्युत् को वर्षाऋतु में पक्व होकर चमकते हुए हम देखते हैं।

(२) षस् + अच् = सस। स्वप्नशील, जिसका स्वभाव स्वप्नशील है। माध्यमिक ज्योति या मेघ में छिपी विद्युत् का एक नाम।

स्वप्नम् एतत् माध्यमिक ज्योतिः अनित्यदर्शनम्

(३) निश्चल- सा. (४) सोता हुआ -दया.

'ससस्य चर्मन्नधिचारु पृश्नेः
अग्रे रूप आरुपितं जबारु।'

ऋ. ४.५.७

जिस आदित्य का दीप्तिमान मण्डल (चारु जबारु) सृष्टि के आदि में या पूर्व दिशा में (अग्रे) पृथ्वी के निकट से (रुपः) निश्चल द्युलोक के ऊपर (ससस्य पृश्नेः अधि) चलने निमित्त (चर्मन्) आरूपित हुआ (आरुपितम्)-सा.

जिस सोते हुए पति के भी शरीर पर (ससस्य इत चर्मन् अधि) सुन्दर ऊर्ध्वरितस्व स्थापित हो (चारु जबारु आरुपितम्) जैसे द्युलोक में आरोपकर्ता परमात्मा का (रुपः) आदित्य मण्डल आरोपित है (पृश्नेः अग्रे रुपः) उसी प्रकार वीर्य पति के शरीर में आरुपित है।

(४) ऊपर उठता हुआ सूर्य (६) शयन करता हुआ पति

ससत् - (१) सोने वाला

'नू चिद्धि रात्रं ससतामिवाविदन्'

ऋ. १.५३.१

(२) सोता हुआ

'अति वायो ससतो याहि शश्वतः'

ऋ. १.१३५.७

हे वायु के समान प्राणप्रद विद्वन्, तू सोने वाले आलसी पुरुषों से आगे बढ़ उनको अपने अधीन कर। और तू सनातन से या चिरकाल से एक ही दशा में रहने वाले पुरुषों से आगे बढ़ उनसे उन्नति कर।

(३) सस् + शतृ = ससत्।

'अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती'

ऋ. १.१२४.४, नि. ४.१६

(४) आलसी

सोते हुए आलसी लोगों के धन ऐश्वर्य के सुखों को जैसे लोग हर लेते हैं।

ससर्ज - सृजति (सृष्टि करता है)। लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग।

ससर्परी - (१) सर्वत्र व्यापने वाली उषा।

'ससर्परी रमतिं बाधमाना'

ऋ. ३.५३.१५

(२) सुख और ज्ञान प्राप्त कराने वाली, (३) सर्वत्र व्यापक या शिष्य परम्परा से एक दूसरे को प्राप्त होने वाली विद्या।

'ससर्परीरभरत् तूयमेभ्यः
अधि श्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषुः'

ऋ. ३.५३.१६

ससवान् - (१) धारण करने वाला

'ससवांसं स्वरपश्च देवीः'

ऋ. ३.३४.८; अ. २०.११.८

(२) अच्छी प्रकार विभक्त करता हुआ

'ससवान् सन् स्तूयसे जातवेदः'

ऋ. ३.२२.१; वाज.सं. १२.४७; तै.सं. ४.२.४.२; मै.सं. २.७.११: ८९.१०; का.सं. १६.११; श.ब्रा. ७.१.१.२२

(३) अन्न आदि से लदा हुआ पशु

'पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान्'

ऋ. ७.८७.२
(४) उत्तम अन्न का स्वामी
'ससवान् स्तौलाभिर्धौतरीभिः'
ऋ. ६.४४.७
(४) शयन करने वाला
'ससवांसो वि शृण्विरे'
ऋ. ४.८.६; ८.५४.६; का.सं. १२.१५

सस्वः - (१) अन्तर्हित, छिपा हुआ (२) सस्वर, (३) परम सुखयुक्त, (४) तेजोमय, (५) वाङ्मय
'अवाचचक्षं पदमस्य सस्वः'
ऋ. ५.३०.२
(६) समानः स्वर् यस्य
एक सधान तेज शब्द या ऐश्वर्यादि रखने वाला।
'सस्वश्चिद्धि तन्वः शुम्भमानाः'
ऋ. ७.५९.७

सस्वर्ताः - (१)अन्तर्हित, छिपा हुआ।
'यत् सस्वर्ता जिहीडिरे यदाविः
अव तदेन ईमहे तुराणाम्'
ऋ. ७.५८.५
जिस छिपे (यत् सस्वर्ता) और जिस प्रकट प्रकट पाप से लोग लज्जित होते हैं (जिहीडिरे) उस पाप को (तत् एनः) शीघ्रगामी मरुतों के (तुराणाम्) अनुग्रह से दूर करते हैं। अतः हम उनकी प्रार्थना करते हैं (ईमहे)।
स्वामी दयानन्द ने 'अव ईमहे' का ही अर्थ 'दूर करते हैं' किया है।

सस्वश्चित् - सस्वः + चित्। अर्थ है- गुप्त
'सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषाम्'
ऋ. ७.६०.१०

स्वसर - (१) दिन की समाप्ति
'अभिवत्सं न स्वसरेषु धेनवः'
ऋ. ८.८८.१; अ. २०.९.१; ४९.४; साम. १.२३६; २.३५, वाज.सं. २६.११; पंच.ब्रा. ११.४.३
(२) दिन, (३) अपने में व्यापक प्रभु
'अरेपसः सचेतसः स्वसरे मन्युमत्तमाश्चिते गोः'
अ. ७.२२.२; साम. १.४५८; आप.श्रौ.सू. २१.९.१५. मा.श्रौ.सू. ७.२.३.
(४) स्वयं चलने वाला यान
(५) अपने अपने कार्य में प्रवृत्त कराने वाला दिन
'आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम्।'
ऋ. १.३४.७
जैसे आत्मा एक शरीर से दूसरे शरीर में, वायु एक स्थान से दूसरे स्थान में जाता है, उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो, स्वयं गमन करने वाले रथों से दिन रात जाओ।
दिन के अर्थ में प्रयोग के लिए देखें -
'उस्रा इव स्वसराणि'
ऋ. १.४.८
(६) आश्रयस्थान
'प्र यद्वयो स्वसराणि अच्छा'
ऋ. २.१९.२
(७) देह रूप घट, (८) सोम रस का बर्तन, (९) स्वयं सरण करने योग्य इन्द्रिय
'प्रति स्वसरमुप यातु पीतये'
ऋ. ६.६८.१०; अ. ७.५८.१
(१०) गोशाला
'अग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः'
ऋ. २.२.२
(११) दिनों का पूर्व भाग
'अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनवः'
ऋ. ८.८८.१; अ. २०.९.१; ४९.४; साम. १.२३६; २.३५; वाज.सं. २६.११ पंच.ब्रा. ११.४.३.

स्वसरस्य पत्नी - (१) स्वयं आप से आप निकलने वाले सूत की रक्षित्री-तकली, (२) सुख संचारित करने या स्वयं अभिलाषायुक्त होकर प्राप्त होने वाले पुरुष की पत्नी, (३) स्वयं काल गति से चलने वाले या उत्तम प्रकार से अन्धकार को दूर करने वाले दिन की स्वामिनी उषा, (४) उत्तम शस्त्रप्रक्षेप्ता पुरुष या धनुष आदि शस्त्रास्त्रों की पालिका (५) अपने संचालक नायक की पत्नी
'अव स्यूमेव चिन्वती मघोनी
उषा याति स्वसरस्य पत्नी,'
ऋ. ३.६१.४

स्वस्तकौ - सु + अस्त + क। उत्तम गृह से सम्पन्न वर वधू
'क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः
मोदमानौ स्वे गृहे'
ऋ. १०.८५.४२; अ. १४.१.२२; नि. १.१६.

स्वस्रा कासिका - भगिनी के समान कफ के साथ

स्वयं आ जाने वाली खांसी
'स्वस्रा कासिकया सह'
अ. ५.२२.१२

ससार – चली गई ।
'ससार सीं परावतः'
ऋ. ४.३०.११; नि. ११.४८
दूरवर्ती मेघ से (परावतः) उषा दूर चली गई (सीं संसार) ।

सस्थावाना – (१) समान बल से युद्धार्थ खड़े दो राष्ट्र (२) समान बल से स्थिर सूर्य, पृथ्वी आदि लोक
'सस्थावाना यवयसि
त्वमेक इच्छचीपत'
ऋ. ८.३७.४

सस्नाणः – (१) सब पदार्थों के गुण दोषों को प्राप्त करता हुआ-दया. (२) गति करता हुआ, (३) व्यापता हुआ, (४) प्रजाओं और आश्रित जनों में प्रविष्ट (५) गर्भाशय में प्रवेश करता हुआ जीव
'प्र यः सस्नाणः शिश्रीत योनौ'
ऋ. १.१४९.२

स्वसारः –ब. व. । एक वचन में 'स्वसा'।
(१) बहनें (२) बहनों के समान परस्पर प्रेम करने वाली, (३) 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य को प्राप्त करने वाली प्रजाएं,
(४) 'स्व' अर्थात् आत्मा की ओर जाने वाली 'प्रजाएं या चित्तवृत्तियां
स्वसारो या इदं ययुः'
ऋ. २.५.५
अपने पतिः पालक को स्वयं अपनी इच्छा से प्राप्त करने एवं स्वयं वरण करने वाली स्त्रियां,
(६) धन प्राप्ति के लिए शत्रुओं पर आक्रमण करने वाली सेनाएं या भुजाएं
(७) परमेश्वर के आत्म सामर्थ्य से चलने वाली जगत् की महान् शक्तियाँ
'स्वसारो मातरिभ्वरीररिप्राः'
ऋ. १०.१२०.९; अ. २०.१०७.१२

स्वसा – सु । अस् + ऋत् = स्वसृ । बहन मर्यादा पूर्वक रहती है ।
सु + नञ् + सृ = स्वस । वह सगोत्र से सम्बन्ध नहीं करती । वह अपने भाई आदिकों में स्थित रहती है और विवाहोपरान्त भी प्रेम रखती है ।
स्व + सद् + ऋन् = स्वसृ । अर्थ-बहन .
स्व + सृ (सरण करना) । स्वयं सचारिणी या भगिणी ।

स्वसारा – स्वसृ का द्वि-व-रूप ।
'स्वसारौ' का वैदिक रूप है स्वसारा ।
'स्वसृ' की व्यत्पत्ति के लिए देखें 'स्वसा'।
सु + असा = स्वसा ।
सुखेन अस्यते क्षिण्यते परेभ्या अर्प्यते (जो सुख से दूसरों को अर्पित की जाती है) ।
अर्थ – (१) दो बहनें, (२) दो बहनों के तुल्य द्यौ और पृथिवी –सा.।
(३) स्वकीय परिधि में घूमने वाले सूर्य और पृथ्वी –दया.
'उत स्वसारा युवती भवन्ती'
ऋ. ३.५४.७
दो बहनों के समान युवतियों सी द्यौ और पृथ्वी –सा. । स्वकीय परिधियों में घूमने वाली सामने तथा पीछे होते सूर्य और पृथिवी –दया. ।
स्वेषु मित्रादि स्वजन वर्गेषु तदधीना या सीदति सा स्वजा (जो पिता आदि के अधीन हो रहती है वह स्वसा है) ।
स्व + सद् + ड्रन् = स्वसृ (डित् होने से सद के अद् का लोप) ।
अंग्रेजी का Sister शब्द 'स्वसृ' से ही बना है ।
(४) द्यावापृथिवी का विशेषण (५) स्वयं एक दूसरे को प्राप्त होने वाली
'स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थ'
ऋ. १.१८५.५

सस्निः – (१) जिसमें सोत हो – सा.
(२) सब-सुखों का ढोने वाला रथ, (३) शुद्ध, संग-दोष से रहित ।
'प्राता रथो नवो योजि सस्निः'
ऋ. ५.१८.१
(४) शुद्ध पवित्र आचार वाला
'बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा'
ऋ. २.२३.१०
(५) नित्य पवित्र सोम
'सस्निर्यो अनुमाद्यः'
ऋ. ९.२४.४; साम. २.३१५
(६) 'ष्णा' (शौच और वेष्टन अर्थ में) + क्निन्

= सस्नि (ष्णा का लिट् की तरह द्वित्व) ।
सस्नातः अद्भिः परिवेष्टितः
(स्नात, जल से परिवेष्टित) ।
मेघ । मेघ जल से परिस्नुत रहता है ।
'सस्निमविन्दच्चरणे नदीनाम्
अपावृणोद्दुरो अश्मव्रजानाम् ।
प्रासां गन्धर्वो अमृतानि वोचत्
इन्द्रो दक्षं परि जानादहीनाम् '
ऋ. १०.१३९.६
इन्द्र ने जलों के संचरण स्थान अर्थात् अन्तरिक्ष में (नदीनां चरणे) जल से परिस्नुत मेघ को पाया (सस्निम् अविन्दत्) और पाकर जिसमें विद्युत् होता है ऐसे मेघों को मेघों के निवास स्थान जलों के द्वारों को (अश्मा व्रजानाम् दुरः) उद्घाटित किया (अपावृणोत्) या पर्वतों के बीच बहती हुई नदियों के अमरण साधक जल को (अमृतानि) गोव्रज का धारण करने वाला विश्वावसु रूप में वर्तमान इन्द्र कहते हैं (गन्धर्वः इन्द्रः प्रवोचत्) तथा जल दान में दक्ष मेघ (दक्षम्) मेघों के बीच में सर्वतो भाव से जान जाता या पहचान लेता है (अहीनां परिजानात्) ।
आर्यसमाजी विद्वान् इन्द्र का अर्थ तत्ववेत्ता तथा 'अहीनां पक्षः' का अर्थ 'जल का बल ' करते हैं ।
(७) अति पवित्र और अन्यों को पवित्र करने वाला
'सस्निं वाजेषु दुष्टरम् '
ऋ. ५.३५.१
(८) निष्णात स्नातक
'तं विखादे सस्निमद्य श्रुतं नरम् '
ऋ. १०.३८.४
(९) शुद्ध करने वाला सूर्य
'अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि '
ऋ. १०.१२०.३; अ. ५.२.२; २०.१०७.५; साम. २.८३४; ऐ.आ. १.३.४.७ .

स्वस्ति - सु + अस्ति = स्वस्ति । अर्थ -(१) कल्याण, (२) अविनाश । अस्ति पद अभिपूजित है ।
स्वस्ति इति अविनासि
नाभ अस्तिः अभिपूजितः
(३) जो सुन्दर या सुष्टु हो
(४) अन्तरिक्ष का देवता -सा.
(५) अन्तरिक्षस्थ मेघ
'स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा '
ऋ. १०.६३.१६; ऐ.ब्रा. १.९.७; नि. ११.४६.
स्वस्ति ही प्रकृष्ट पथ या अन्तरिक्ष में श्रेष्ठ देवता है ।
(६) अविनाशी (७) स्पृहणीयः
(८) आदरणीय
'सचस्वा नः स्वस्तये
ऋ. १.१.९; वाज.सं. ३.२४,, तै.सं. १.५.६.२; मै.सं. १.५.३:६९.८.
हमारे कल्याण के लिए अनुकूल कार्यकर ।
(९) कल्याण कारिणी सम्पत्ति, (१०) नाशकारी गोली को दूर फेंकने में समर्थ गोला
'आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिम् '
ऋ. ६.२२.१०; अ. २०.३६.१०

स्वस्ति गव्यूतिः - निष्कण्टक मार्ग वाला ।
'स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कृण्वन् '
वाज.सं. ११.१५; तै.सं. ४.१.२.२; मै.सं. २.७.२:७५.८; ३.१.३: ४.१०; का.सं. १६.१; श.ब्रा. ६.३.२.८.

स्वस्तिगा - (१) सुख से चलने योग्य (२) कल्याण मय उद्देश्य को जाने वाला (३) कल्याणकारी सुख क्षयक भूमि वाला
'स्वस्तिगामनेहसम् '
ऋ. ६.५१.१६; ८.६९.१६; अ. २०.९२.१३; वाज.सं. ४.२९; तै.सं. १.२.९.१; तै.सं. १.२.९.१; मै.सं. १.२.५:१४.१; का.सं. २.६; श.ब्रा. ३.३.३.१५.
(४) कुशल, सुख एवं शान्ति दायक वाणी से युक्त
(५) कल्याण प्राप्त करने वाला

स्वास्तिवाट् - (१) सुख पूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाला (२) कल्याणमय कर्मफल प्राप्त करने वाला देह ।
'स्वस्तिवाहं रथमित् कृणुध्वम् '
ऋ. १०.१०१.७
(३) स्वस्ति + वह् + णिच् = स्वस्तिवाह् ।
आराम से ले चलने वाला रथ ।
(३) अविनाश वाहक, (४) अभिपूजित वाहन,
(५) सुखवाहक, दुर्ग

स्वास्तिवाहनम् - कल्याण दायक
'सुगं स्वस्ति वाहनम्'
अ. १४.२.८

सस्ति -सीति (सोता है) । सस् धातु शयनार्थक है । लट् प्र.पु. ए .व. का रूप है ।
स्वपिति सस्त इतिद्वौ स्वपिति कर्मणौ (सयवार्थक धातु दो हैं -सस् और स्वप्) ।
'स्वपि' का ही Sleep हुआ है ।

सस्नितमः - सर्वोत्तम शुद्ध करने वाला
'देवानामसि वह्नितमं सस्नितमम्
पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्'
वाज.सं. १.८; मै.सं. १.१.५:३.१; ४.१.५: ६.१२; का.सं. १.४; श.ब्रा. १.१.२.१२

सस्मिन् - उसमें । 'तस्मिन्'
'शेषन् नु त इन्द्र सस्मिन् योनौ'
ऋ. १.१७४.४

सस्निः - (१) अच्छी प्रकार वश किया हुआ, (२) अच्छी प्रकार से दृढ़ , (३) जितेन्द्रिय (४) ऐश्वर्य, (५) ऐश्वर्य को उत्तम रीति से प्राप्त करने में समर्थ, (६) शुद्धस्वरूप ।
'रथो न सस्निरभिवक्षि वाजम्'
ऋ. ३.१५.५

सस्नी - द्वि.व.। (१) इन्द्राग्नी, (२) निष्णात, शुद्ध, (३) अन्यों को भी पवित्र करने वाले
'सस्नी वाजेषु कर्मसु'
ऋ. ८.३८.१; साम. २.४२३

सस्रुषी - (१) निरन्तर बहने वाली जलधारा
'दिवा नक्तं च सस्रुषीः'
अ. ६.२३.१

स्वंसुः - सु + असुः = स्वसु, स्व + सु = स्वस (१) उत्तम प्राणवान्, (२) सुख जनक प्राणवत् प्रिय, (३) सुख से शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ, (४) 'स्व' अर्थात् धनैश्वर्य को उत्पन्न करने में समर्थ, (५) स्वसृ शब्द के षष्ठी एक वचन में रूप स्वसुः । अर्थ है- स्वयं शरण में आई प्रजा का (६) सूर्य की बहन उषा का
'स्वसुर्यो जार उच्यते'
ऋ. ६.५५.४

स्वसुःजारः - (१) रात्रि या उषा को नष्ट करने वाला सूर्य (२) भगिनी के तुल्य प्रजा को सन्मार्ग मे चलाने वाला
'स्वसुर्जारः शृणोतु नः'
ऋ. ६.५५.५

सस्रुत् - समान रूप से प्रवाहित होती हुई जलधारा ।
'ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः'
ऋ. १.१४१.१

ससृजानः - (१) उत्पन्न, (२) स्वयं सृजन करता हुआ-अग्नि
'वि भा अकः ससृजानः पृथिव्याम्'
ऋ. ७.८.२
(३) छूटा हुआ, उन्मुक्त (४) तैयार होता हुआ
'अत्यासो न ससृजानास आजौ'
ऋ. ९.९७.२०

ससृमाणः - वेग से जाने वाला
'न्येतशं रीरव्यत ससृमाणम्'
ऋ. ४.१७.१४

ससृवान् - (१) व्यापने वाला, व्यापक (२) आगे बढ़ने वाला
'ससृवांसमिव त्मना
अग्निमित्था तिरोहितम्'
ऋ. ३.९.५
(३) जाने वाला, ससरने वाला
'तिरः पवित्रं ससृवांस आशवः'
ऋ. ८.१.१५

स्वसृत् - स्वयं अपने बल से आगे बढ़ने वाला
'स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गणः'
ऋ. १.८७.४
वायु या वीर नायक अपने बल से आगे बढ़ने वाला (स्वसृत्), मेघ रूप अश्वों वाला या मृग के समान वेगवान् अश्वों वाला,
जवान हृष्ट पुष्ट

स्वसृतः - ब.व.। ए.व. में 'स्वसृत्' (१) वायुओं का विशेषण । (२) अपने ही बल से चलने वाले वायु (३) अपने बल से आगे बढ़ने वाले सैनिक
'मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतः'
ऋ. १.६४.११
वीर्य बल के बर्द्धक पूजा के योग्य अपने बल पराक्रम से आगे बढ़ने वाले, स्थिर पदार्थों को भी कंपाने वाले वायु या वीर पुरुष

स्वसेतवः - (१) स्वयं बद्ध जल धाराएं (२) अपने

ही बांधों से बंधी, (३) स्वयं अपने आप को नियम मर्यादा में बांध रखने वाली, (४) धन वेतनादि में या स्वजनों के सम्बन्धों से बद्ध

'त्वामापः परिस्रुतः
परियन्ति स्वसेतवः'

ऋ. ८.३९.१०

स्वसेतुः – (१) जगत् के पार उतारने के लिए स्वयं सेतु रूप

'अपश्च विप्रस्तरति स्वसेतुः '

ऋ. १०.६१.१६

सस्रोतसः – ब.व.। (१) समान रूप से स्रोत अर्थात् प्रवाह रूपी नदियां , (२) समान ज्ञान प्रवाह वाली (३) एक समान मन रूप स्रोत से बहने वाली पांच प्रकार की वृत्तियाँ

'पञ्च नद्यः सरस्वतीम्
अपि यन्ति सस्रोतसः ।'

वाज.सं. ३४.११

स्वःदक्षः – (१) अपना कर्म, (२) स्वयं स्वस्वरूप कर्म कर्ता आत्मा (३) अपना कुशल बन्धु

'न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा '

ऋ. ७.८६.६

संसचावहे – संसेवाहे (परस्पर सेवा करते हैं) । (१) हम दोनों परस्पर एक दूसरे की सेवा करते हैं ।(२) हम दोनों भली प्रकार धर्म सेवन करें

'आ घृणे संसचावहे '

ऋ. ६.५५.१; नि. ५.९.

हे आगत दीप्त सूर्य !अथवा हे ज्ञान से प्रकाशित विद्वन् , आ हम दोनों एक दूसरे की सेवा या भलीप्रकार धर्म सेवन करें ।

कहा भी है ।

अग्नौ प्रास्ता हुतिः सम्यक् आदित्यमुप तिष्ठते ।
आदित्यात् जायते वृष्टिः
वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः । '

संसत् – (१) सभा, (२) सभा के समान सब का पालक सूर्य, अग्नि (३) सम्यक् प्रकार से गृह में स्थापित अग्नि, (४) सम्यक् प्रकार से स्थित सूर्य

'सदा एवः पितुमतीव संसद् '

ऋ. ४.१.८

सभा के अर्थ में –

'अस्याः सर्वस्याः संसदः '

अ. ७.१२.३

'असुन्वामिन्द्र संसदं
विषूचीं व्यनाशयत् '

ऋ. ८.१४.१५; अ. २०.२९.५

संसन्न – सम् + सद् + क्त । अच्छी प्रकार राज सभा में विराजमान ।

'वैश्वदेवः संसन्नः '

वाज.सं. ३९.५

संसमकम् – ठीक अनुपात में

'अङ्गेनाङ्गं संसमकं कृणोतु '

अ. ६.७२.१

संसर्प – (१) सत्संगति, (२) दूर जाने वाला गुप्तचर

'संसर्पेण श्रुवाय श्रुतं जिन्व '

वाज.सं. १५.७

(२) शत्रुओं में जाकर गुप्तरूप से भेद लेने वाला

'संसर्पाय स्वाहा '

वाज.सं. २२.३०; मै.सं. ३.१२.११; १६३.१६; का.सं. ३५.१०; तै.ब्रा. ३.१०.७.१

संसहस्रम् – सहस्रों अपरिचित ऐश्वर्यों और ज्ञानों को देने वाला

'इदं वचः शतसाःसंसहस्रम् '

ऋ. ७.८.६

संस्कन्ध – सेना का संयुक्त सेना बल

'संस्कन्धमोज ओजसा '

अ. १९.३४.५

संस्थ – (१) भली प्रकार हृदय में स्थित हो जाना, (२) रथ

'यस्य संस्थे न वृण्वते '

ऋ. १.५.४ अ. २०.६९.२; शां.श्रौ.सू. ९.१६.२

(३) उत्तम रूप से स्थित होने योग्य संसार,

संस्था – (१) यज्ञ-सम्बन्धी विधानों का समवाय (२) राष्ट्र में राजसभा आदि संस्था या व्यवस्था

'समिष्ठ यजुषा संस्थाम् '

वाज.सं. १९.२९

संस्पर्श –स्पर्श

'संस्पर्शेऽद्रुक्षणमस्तुते '

अ. ८.२.१६

संस्मयमाना – मुस्कुराती हुई

'संस्मयमाना युवतिः पुरस्तात्
आविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती '

ऋ. १.१२३.१०

संस्रव - (१) अच्छी तरह एक साथ बहना, प्रवाह, (२) प्रवाह से चलने वाले ज्ञान, ऐश्वर्य बल का प्रवाह

'सत्यमुग्रस्य बृहतः
सं स्रवन्ति संस्रवाः'

ऋ. ९.११३.५

संस्रवभागाः - उत्तम ऐश्वर्य का भागी

'संस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः'

वाज.सं. २.१८

संस्फान - अन्न को बढ़ाने वाला

संस्रावणाः - मिल कर कार्य करने वाले

'इहैव हवमायात
म इह संस्रावणाः'

अ. १.१५.२

संस्रावण - समस्त ऐश्वर्यों को भली प्रकार लाने वाला उपाय या यज्ञ

'इमं संस्रावणा उत'

अ. १९.१.२

संस्राव्य - (१) उत्तम रीति से प्राप्त करने वाला, (२) प्रेरणा और वशीकरण का उपाय, (३) योगाभ्यास

'संस्राव्येण हविषा जुहोमि'

अ. १.१५.१; २.२६.३; १९.१.१,२,३

(४) प्रजा के प्रत्येक जन से आई हुई हवि या कर

संस्राव्यं हविः - धन, ऐश्वर्य और सुख लाने वाला हवि या प्रयत्न ।

'संस्राव्येण हविषा जुहोमि'

अ. १९.१.१,२,३

संसिचः - (१) दिव्य गुण वाले सूक्ष्म तत्व जो शरीर रचना के योग्य समस्त पदार्थों को एकत्र करते हैं (२) संसिच् नामक देवगण

'संसिचा नाम ते देवाः
ये संभारान् समभरन्'

अ. ११.८.१३

संस्तिरः - (१) सम्यक् अच्छादक - (२) अपने राज्य को भली भांति विस्तृत करने वाला

'स सं स्तिरो विष्टिरः सं गृभायति'

ऋ. १.१४०.७

संस्थित यज्ञ - (१) समाप्त हुआ जीवन रूप यज्ञ, (२) मृत शरीर

'हुतोऽयं संस्थितो यज्ञः'

अ. १८.४.१५

संस्तुप् - (१) वाक्, (२) विद्याओं का पठन

'संस्तुप् छन्दः'

वाज.सं. १५.५; मै.सं. २.८.७: ११२.२; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.५२.५.

संसृजस्व - पति के साथ शरीर को एक कर दो, पति के साथ ऐकात्म्य स्थापित करो ।

'एना पत्या तन्वं संसृजस्व'

ऋ. १०.८५.२७; नि. ३.२१

इस पति के साथ अपने शरीर को मिलाओ- ऐकात्म्य स्थापित करो ।

संस्पृश् - (१) तीक्ष्ण कष्ट देने वाला चुभने वाला कष्ट दायी कारण

'दिवः संस्पृशस्पाहि'

वाज.सं. ३७.१३; श.ब्रा. १४.१.३.२९

संसृष्ट - (१) साथ मिलकर काम करने में समर्थ, (२) खूब सधा हुआ साथी

'क्रीड़िभ्यः संसृष्टान्'

वाज.सं. २४.१६

संसृष्टजित् - (१) परस्पर संघ बना कर लड़ने वालों को जीतने वाला

'संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्धी'

ऋ. १०.१०३.३; अ. १९.१३.४; साम. २.१२०.१; वाज.सं. १७.३५; तै.सं. ४.६.४.१; मै.सं. २.१०.४:१३५.१४; का.सं. १८.५.

(२) भली प्रकार परस्पर दलबद्ध सेनाओं को जीतने वाला

संस्कृत - सम् + कृत । सज्जित, संस्कारयुक्त, तत्पर

'रणाय संस्कृतः'

अ. २०.५३.३

संस्कृतत्र - (१) मांस पाचक पुरुष, (२) रचना संस्कार को प्राप्त संसार का पालक, (३) सब संचार का परिपाक करने वाला दण्डधर यम

'नं संस्कृतत्रमुपयन्ति ता अभि'

ऋ. ६.२८.४; अ. ४.२१.४; का.सं. १३.१६; तै.ब्रा. २.४.६.९

(४) शुद्ध संस्कृत ज्ञान की रक्षा करने वाला विद्वान्

स्वरङ्कृता - सु + अरंकृता । खूब आभूषित

'अभ्यक्ताक्ता स्वरंकृता'

अ. १०.१.२५

सह – (१) जल। (२) साथ, (३) धा.–पराजित करना

सह गोपाः – गोपाल के साथ चरती हुई गाएं

'अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः'

ऋ. १०.२७.८

सहच्छन्दाः – (१) एक साथ चाल चलने वाला, (२) एक साथ गुरु के अधीन वेदपाठ करने वाला

'सहस्तोमाः सहच्छन्दसः आवृतः'

ऋ. १०.१३०.७; वाज.सं. ३४.४९.

सहचार – साथ चलना

'वायुर्येषां सहचारं जुजोष'

अ. २.२६.१

सहजन्या – (१) एक अप्सरा का नाम, (२) जन समुदाय की संघ शक्ति,

(३) पृथिवी

'मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ'

वाज.सं. १५.१६; तै.सं. ४.४.३.१; मै.सं. २.८.१०: ११४.१७; का .सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.१७

सहजानुष – जिसका जन्म एक साथ हुआ हो–यमज बालक

'मा नः पात्रा भेत् सहजानुषाणि'

ऋ. १.१०४.८

हे परमेश्वर, हमारे सहोदर, जन्म से एक साथ उत्पन्न, कच्चे पात्रों के समान रूप वाले, असमर्थ पालन करने योग्य बच्चों को मत विनष्ट कर।

सहदानु – (१) जल का दाता। (२) उदक दाता मेघ (३) दानव या दुष्टों को संग देने वाला–

'सहदानुं पुरूहूत क्षियन्तम्'

ऋ. ३.३०.८; वाज.सं. १८.६९; श.ब्रा. ९.५.२.४; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१.

हे इन्द्र! तू उदक दाता एव अन्तरिक्ष में रहने वाले मेघ को

हे निर्वाचित, राजन् (पुरूहूत इन्द्र) तू जैसे उदक दाता अन्तरिक्ष निवासी मेघ को सूर्य नष्ट करता है वैसे दुष्ट जनों के संसर्ग में रहने वाले (सहदानुम्) नष्ट कर...।

(३) दानेन सह वर्तमानः

(४) जल सहित

(५) व्रत खण्ड वाले कुकर्मों से युक्त,

(६) अपने बल से प्रजाओं का खण्डन या नाश करने वाला,

(७) अपने सहवासी का नाशक

सहदेवः – (१) देवों के साथ रहने वाला इन्द्र, (२) युद्धार्थी सैनिकों के साथ रहने वाला

'ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः
सहदेवो भयमानः सुराधाः'

ऋ. १.१००.१७

सहन्तमः – (१) सब को पराजित करने वाला, (२) सबसे बढ़कर पराजित करने वाला

'त्वमग्ने सहसा सहन्तमः'

ऋ. १.१२७.९

सहन्त्यः – (१) सहनशील।

'नकिरस्य सहन्त्य
पर्येता कयस्यचित्'

ऋ. १.२७.८; साम. २.७६६

हे सहनशील! इस ज्ञानवान्, युद्ध विद्याकुशल सेनापति का सामना करने वाला (पर्येता) कोई नहीं है (नकिः)।

(२) शत्रुओं का पराजयकारी

'त्वमसि प्रशस्यः विदथेषु सहन्त्य'

ऋ. ८.११.२

(३) बलवान्

'शर्मयच्छ सहन्त्य'

ऋ. ६.१६.३३; तै.सं. ३.१.१०.३

सहपत्नी – सहधर्मचारिणी,

'पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु'

अ. १४.१.५८

सहप्रमाः – (१) एक साथ प्रयाण करने वाला

(२) एक साथ समान रूप से यथार्थ ज्ञान करने वाला

'सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्या'

ऋ. १०.१३०.७ वाज.सं. ३४.४९

(३) परिमाणों के सहित–सप्तर्षि या सप्त शीर्षण्य प्राण

सहभक्षाः – एक साथ भोजन करने वाले

'आयुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम'

अ. ६.४७.१; तै.सं. ३.१.९.१; मै.सं. १.३.३६; ४२.९; का.सं. ३०.६

सहभूति – विभूति सम्पन्न सेना नायक

'सहो बिभर्षि सहभूत उत्तरम्'
अ. ४.३१.६
सहमानः – 'सह' धातु का अर्थ पराजित करना है। सह + शानच् = सहमान। अर्थ है – (१) शत्रुओं को पराजित करने वाला
'अषाढाय सहमानाय वेधसे'
ऋ. ७.४६.१; तै.ब्रा. २.८.६.८;३.१.२.२; नि. १०.६
किसी से अभिभूत न होने वाले (अषाढाय) शत्रुओं को पराजित करने वाले (सहमानाय) देदीप्यमान् या दानशील विधाता (वेधसे) रुद्र को हम स्तुतियां अर्पित करें।
(२) सबको सहन करने वाला
(३) सबको नष्ट करने वाला–इन्द्र, परमेश्वर
(४) शत्रुओं को निरन्तर दबाने वाला
'त्वमसि सहमानः'
अ. १९.३२.५
सहमाना – (१) रोग को रोकने में प्रबल
'सहमानेयं प्रथमा'
अ। २.२५.२
(२) बलवती, रोगनाशक, पाप नाशक ओषधि
(३) सहदेवी नामक ओषधि
'त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीम्'
अ. ८.२.६
सहमूरः – (१) मारने वाले शस्त्रास्त्रों को साधने वाला
'अनु दह सहमूरान् क्रव्यादः'
ऋ. १०.८७.१९; साम. १.८०;
(२) मूढ़ो का स्वामी
(३) सहमूल या विनाश के कारण सहित
'सहमूराननु दह क्रव्यादः'
अ. ५.२९.१; ८.३.१८
सहमूलम् – क्रि.वि.। मूल के सहित
'उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र'
ऋ. ३.३०.१७; नि. ६.३
सहर्षभा – (१) सह + ऋषभा।
ऋषभ अर्थात् सांढ़ के साथ गौ,
(२)सूर्य के साथ किरण,
(३) आत्मा के साथ
'सहर्षभाः सहवत्सा उदेत'
आ. सं. ४.१२
सहवत्सा – बछड़े के साथ गौ
'दानुः शये सहवत्सा न धेनुः'
ऋ. १.३२.९
बछड़े के सहित गौ के समान वह खण्डित वृत्र (दानुः) अन्तरिक्ष रूपी माता के नीचे ही पड़ा रहता है (शये)।
'सहर्षभाः सहवत्सा उदेत'
आ. सं. ४.१२
सहवसु – (१) बसने वाले प्राणियों और लोकों के साथ विद्यमान,
(२) बसाने वाले–जीवन देने वाले पदार्थों के साथ विद्यमान,
(३) धनाढ्य पुरुष
'यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे'
ऋ. २.१३.८
सहवाहः – ब.व.। (१) एक साथ चलने या ढोने वाला–अश्व या अश्वारोही (२) एक साथ मिलकर संसार यात्रा करने वाले, (३) एक साथ विश्व को धारण करने वाले सूर्यादि लोक
'बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति'
ऋ. ७.९७.६; का.सं. १७.१८
सहवाह् – ए.व.। सहवाढ्। (१) एक साथ मिलकर ढोने वाला, चलने वाला, एक साथ मिलकर लोकों का धारण करने वाला
सहवीरः – वीर पुत्रों से युक्त धन
'धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे'
ऋ. १०.४०.१३; आप.मं.पा. १.६.१२
सहशय्यः – स्त्री पुरुष का सहवास
सहशेय्य – (१) पति पत्नी का एक साथ शयन
'समाने योनौ सहशेय्याय'
ऋ. १०.१०.७; अ. १८.१.८
सहसंभला – पति के साथ सदा सुमधुर भाषण करने वाली
'स्योनं ते अस्तुं सहसंभलायै'
अ. १४.१.१९
सहस्तोमाः – ऋचा समूहों के सहित सप्तर्षि या सप्त शीर्षण्य प्राण
'सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः'
ऋ. १०.१३०.७; वाज.सं. ३४.४९;
सहस् – मार्गशीर्ष, अग्रहायण, अगहन का महीना
'उपयामगृहीतोऽसि सहसे त्वा'
वाज.सं. ७.३०

सहसस्पुत्र – (१) इन्द्रियों और दुष्ट मानस भावों को दमन करने वाले विद्वान् पुरुष का पुत्र, (२) बल के द्वारा युवा पुरुषों का रक्षक
(३) ब्रह्मणस्पति या वेदज्ञान का प्रति पालक विद्वान्
'त्वामिद्धि सहस्पुत्र मर्त्य '
ऋ. १.४०.२
(४) अग्नि । अग्नि को संघर्ष कर अर्थात् बल से उत्पन्न किया जाता है ।

सहसःमहुः – शक्ति के रूप में प्रकट होने वाला परमेश्वर या अग्नि ।

सहसः सूनुः – (१) बल का पुत्र-सा. (२) बलस्वरूप परमेश्वर-दया
'स्वयं सूनो सहसो यानि दधिषे'
ऋ. १०.५०.६; नि. ५.२५
जिन स्थानों को हे बल के पुत्र या बलस्वरूप परमेश्वर, तू स्वयं धारण करता है ।
(३) साहसी वीर का पुत्र -दया.
(४) अग्नि-सा.
'वसुं सूनुं सहसो जातवेदसम् '
ऋ. १.१२७.१; अ. २०.६७.३; वाज.सं. १५.४७; मै.सं. २.१३.८:१५८.२; का.सं. २६.११; ३९.१५

सहस्य – सहस् + यत् । (१) बलशाली
'स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यः'
ऋ. २.२.११
(२) शक्तिमय पिण्ड-सूर्य
'तेना सहस्येना वयम् '
ऋ. ७.५५.७; अ. ४.५.१
(३) पौषमास
'सहस्याय त्वा '
वाज.सं. ७.३०, मै.सं. १.३.१६:३६.१०; का.सं. ४.७; श.ब्रा. ४ .३.१.१८
(४) बल से उत्पन्न
'विप्रं सहस्य धीमहि'
ऋ. १०.८७.२२; अ. ७.७१.१; ८.३.२२; वाज.सं. ११.२६; तै.सं. १. ५.६.४; ४.१.२.५; मै.सं. २.७.२: ७६.८; का.सं. १६.२; ३८.१२

सहसो यहुः– (१) बल का पुत्र अग्नि
'अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः'
ऋ. १.७९.४; साम. १.९९; २.९११; वाज.सं. १५.३५; तै.सं. ४.४.४.५; मै.सं. २.१३.८:१५७.९; ४.१२.५:१९१.८; का.सं. ३९.१५; आप.श्रौ.सू. १४.३३.६; मा.श्रौ.सू. ५.२.५.११.
हे बल का पुत्र अग्नि ! (सहसो यहो) जातवेद जो तू गौओं से भुक्त अन्न का (गोमतः वाजस्य) स्वामी है (ईशानः) अतः हमें महान् धन दे (महिश्रवः अस्मे धेहि) ।

सहस्रम् – सहस् (बल) + र = सहस्र । यह संख्या बलवान होती है । एक सहस्र, एक हजार ।
'सहस्रं सवां अयुतञ्च साकम् '
ऋ. ४.२६.७; नि. ११.२
सहस्रों यज्ञ सोमरस और दक्षिण से युक्त करते हैं ।

सहस्रः – (१) बलशाली आत्मा (२) शत्रु पराजय कारी बलवान् पुरुष
'किं स ऋधक् कृणवद् यं सहस्रम्
मासो जभार शरदश्च पूर्वीः '
ऋ. ४.१८.४
(३) बल का उत्पादक
'अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः '
अ. २०.१०४.२
(४) बलवान् सर्व शक्तिमान् परमेश्वर
'अयं सहस्रमा नो दृशे
कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्मणि '
अ. ७.२२.१

सहस्रऋष्टि – हजारों भालों या घातक शस्त्रों से सुसज्जित
'सहस्र ऋष्टिः सपत्नान् प्रमृणन् पाहि वज्रः '
अ. १९.६६.१

सहस्र काण्ड – (१) सहस्रों प्रकार के विभागों से सम्पन्न ईश्वरीय ज्ञान
'तेन सहस्र काण्डेन
परि णः पाहि विश्वतः '
अ. २.७.३
(२) सहस्रों बाणों से युक्त कुश नामक घात
'त्वया सहस्रकाण्डेन '
अ. १९.३२.३

सहस्रकुणपा – हजारों लाशों वाली शत्रु सेना
'सहस्रकुणपा शेताम् '
अ. ११.१०.२५

सहस्रकेतु – (१) सहस्रों ध्वजाओं से युक्त रथ, (२)

सहस्रों ज्ञान तन्तुओं से युक्त शरीर

सहस्रचक्षाः - (१) अत्यन्त, प्रकाश वाला तेजस्वी सूर्य, (२) अनेक, चक्षुवाला-वरुण

सहस्रचक्षाः - (१) अनन्तप्रकाश वाला तेजस्वी सूर्य (२) अनेक चक्षुवाला वरुण ।

'आ चष्ट आसां पाथो नदीनाम्
वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः',

ऋ. ७.३४.१०; नि. ६.७

अनेक चक्षु वाले (सहस्रचक्षाः) उद्गूर्ण या ओजस्वी (उग्रः) वरुण इन नदियों का जल (आसां नदीनां पाथस्) देखता है (आचष्टे)-सा. ।

जैसे अनन्त प्रकाशवाले (सहस्र चक्षाः) सूर्य इन नदियों का जल खींचकर फिर उन्हीं में बरसाते हैं उसी प्रकार राजा ....।

(३) सहस्रों नेत्र वाला प्रभु, इन्द्र, (४) सूर्य (४) सहस्रों आज्ञावचन कहने वाला

सहस्रचेताः - सहस्रों विज्ञानों को जानने वाला ।

सहस्रजित् - सहस्रों को वश में करने वाला

'देवो देवैः सहस्रजित्'

ऋ. १.१८८.१

सहस्रणीतिः - (१) सहस्रों बलवान् नीतियों या नेत्रों वाला

'सहस्रणीतिर्यतिः परायतीः'

ऋ. ९.७१.७

(२) हजारों को उत्तम मार्ग पर ले जाने वाला

'सहस्रणीथाः कवयः'

ऋ. १०.१५४.५; अ. १८.२.१८

सहस्रदक्षिणः - (१) हजारों को दक्षिण दिशा में बैठा कर उपदेश देने वाला आचार्य कर देने वाला शरीर

'स्तवै सहस्रदक्षिणे'

ऋ. १०.३३.५

(३) हजारों का दान देने वाला

'इहो सहस्रदक्षिणः'

अ. २०.१२७.१२; का.सं. ३५.३; ऐ.ब्रा. ८.११.५; शां.श्रौ.सू. ८.११.१५; १२.१५.१.३; ला.श्रौ.सू. ३.३.२; आप.श्रौ.सू. ९.१७.१; साम.मं.ब्रा. १.३.१३; पा.गृ.सू. १.८.१०; आप.मं.पा. १.९.१; हि.गृ.सू. १.२२.९.

'ये वा सहस्रदक्षिणाः'

अ. १८.२.१६

सहस्रदातु - सहस्रों की संख्या में दान देने वाला

'सहस्रदातु पशुमद्धिरण्यवत्'

ऋ. ९.७२.९

सहस्रदानः - सहस्रों का दान देने वाला, परमैश्वर्य वाला स्वामी

'सहस्रदान उत वा सदानः'

ऋ. ७.३३.१२

सहस्रदाना - सहस्रों का देने वाला

'सहस्रदाना पुरुहूत रातिः'

ऋ. ३.३०.७

सहस्रद्वारः गृहः - (१) सहस्रों द्वार वाला घर (२) जगत् सहस्रों द्वारा वाला गृह है, (३) राष्ट्र जो सहस्र द्वार विशाल गृहवत् है ।

'सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते'

ऋ. ७.८८.५

सहस्रदावन् - सहस्रों ऐश्वर्यों एवं सुखों का दाता परमेश्वर

'इन्द्रः सहस्रदाव्नाम्'

ऋ. १.१७.५

सहस्रधारः - (१) सामर्थ्यवाला प्रखर मंत्र । 'सहस्' का अर्थ बल है और सहस्र का अर्थ बलवान् या बलदायक है ।

'तेन सहस्रधारेण
पावमान्यः पुनन्तु माम्'

ऋ.खि. ९.६७.४; साम. २.६५.२; तै.ब्रा. १.४.८.६

वैसे ही सामर्थ्य वाले प्रखर मंत्र से (सहस्र धारेण) पवमान देवता वाली ऋचाएं (पावमान्यः) हमें पवित्र करें ।

(२) सहस्रों धारा वाला सोम (३) सहस्रों वाणियों का राजा

'सहस्र धारो अत्यविः'

ऋ. ९.१३.१; साम. २.५३७

(४) दश सहस्र ऋचाओं से युक्त ऋग्वेद,

(५) सहस्रों धारक शक्तियों से युक्त व्यापक परम पावन प्रभु

'सहस्रधारे वितते पवित्र आ'

ऋ. ९.७३.७

(७) सहस्रों विद्याओं को धारण करने वाली,

(८) हजारों ज्ञान धाराओं का वर्षक

'सहस्रधारः पवते'

ऋ. ९.१०१.६; अ. २०.१३७.६; साम. २.२२४

सहस्रधारा - (१) सहस्रों धाराओं को बहाने वाली भूमि ।

'सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षम्'

ऋ. १०.७४.४; वाज.सं. ३३.२८

(२) सहस्र लोकों या समस्त विश्व को धारण करने वाली

'सहस्रधारां महिषो भगाय'

अ. ७.१५.१

सहस्रनाम्नी - सहस्रों नाम वाली, बलप्रद स्वरूप वाली

'ध्रुवाः सहस्रनाम्नीः'

अ. ८.७.८

सहस्रनिर्णिज् - बहुत प्रकार का बनाया रथ

'अतः सहस्रनिर्णिजा
रथेना यातमश्विना'

ऋ. ८.८.११;१४

सहस्रधारः नाकः - (१) सहस्रों लोकों को धारण करने वाला, (२) जगत् का धारक आकाश

'सहस्रधारेऽव ते समस्वरन्
दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतः'

ऋ. ९.७३.४; का.सं. ३८.१४; आप.श्रौ.सू. १६.१८.७

सहस्रपर्णः - (१) सहस्रों शीघ्र गामी बाणों, रथों विमानों वाला, (२) सहस्रों पर्णों वाला दर्भ ।

'सहस्रपर्ण उत्तिरः'

अ. १९.३२.१

सहस्रपर्णी - सहस्र पत्तों वाली ओषधि

'तया सहस्रपर्ण्या हृदयं शोषयामि ते'

अ. ६.१३९.१

सहस्र प्रधन - अनेक प्रकृष्ट धनों को दिलाने वाला युद्ध

'इन्द्र वाजेषु नोऽव
सहस्रप्रधनेषु च ।'

ऋ. १.७.४; अ. २०.७०.१०; साम. २.१४८; आ.सं. २.४; मै.सं. २. १३.६; १५५.५; का.सं. ३९.१२; तै.ब्रा. १.५.८.२.

सहस्रपात् - असंख्य पैरों वाला परमेश्वर

'सहस्राक्षः सहस्रपात्'

ऋ. १०.९०.१; अ. १९.६.१; वाज.सं. ३१.१; आ.सं. ४.३; श.ब्रा. १३.६.२.१२; तै.आ. ३.१२.१.

सहस्रपाथाः - (१) अनेक प्रकार के अन्नों वाला (२) अनेक किरणों के जल पीने वाला, (३) जिसे अमित अन्नादि हो (४) सहस्रों जल का पालक

'सहस्रपाथा अक्षरा समेति'

ऋ. ७.१.१४; तै.ब्रा. २.५.३.३

सहास्रपद - सहस्रपादों से युक्त-ब्रह्म

'अध द्युक्षं सचेवहि
सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम्'

अ. २०.९२.१३

सहस्रप्राणः - सहस्रगुणा जीवन शक्ति से युक्त

'सहस्रप्राणः शतयोनिर्वयोधाः'

अ. १९.४६.७

सहस्रपृष्ठः - सहस्रों पीठों वाला, हजारों प्रकार के कार्य भारों को उठाने वाला

'सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके'

अ. ११.१.१९

सहस्रपोष - (१) असंख्य समृद्धियाँ

'सहस्रपोषं सुभगे रराण'

ऋ. २.३२.५; तै.सं. ३.३.११.५; ५.११; मै.सं. ४.१२.६: १९५.३; का.सं. १३.१६; सा.मं.ब्रा. १.५.४; आप.मं.पा. २.११.११

(२) सहस्रों प्रकार की औषधि

'एवा सहस्रपोषाय
कृणुतं लक्ष्माश्विना'

अ. ६.१४१.३

सहस्रपोष्य - सहस्रों को पोसने वाला धन

'कदा स्तोत्रे सहस्रपोष्यं दाः'

ऋ. ६.३५.१

सहस्रभर्णाः - सहस्रों का पालक पोषक

'अथो सहस्रभर्णसम्'

ऋ. ९.६०.२

सहस्रभृष्टिः - (१) जिसमें सहस्रों पीड़ा या दाह हो-खड्ग

'सहस्रभृष्टिरायत'

ऋ. १.८०.१२

(२) हजारों को भून डालने में समर्थ

'इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः
सहस्रभृष्टिः शततेजाः'

वाज.सं. १.२४; तै.सं. १.१.९.१; मै.सं. १.१.१०: ५.१२; का.सं. १.९; ३१.८;

(३) हजारों को एक ही बार में भून डालने वाला वज्र
'सहस्रभृष्टि ववृतच्छताश्रिम् '
ऋ. ६.१७.१०

सहस्रम्भर – सहस्रों का भरण पोषण करने में समर्थ अग्नि
'सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः '
ऋ. २.९.१; वाज.सं. ११.३६; तै.सं. ३.५.११.२; ४.१.३.३; मै.सं. २.७.३:७७.१४; का.सं. १६.३; ऐ.ब्रा. १.२८.३५; श.ब्रा. ६.४.२.७.

सहस्रमानवः – सहस्रों मननशील विद्वानों से उपासित
'अयं सहस्रमानवो दृशः
कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म '
साम १.४५८; आप.श्रौ.सू. २१.९.१५; मा.श्रौ.सू ७.२.३

सहस्रमूलः – सहस्रों ब्रह्माण्डों या समस्त जगत् का मूल आधार या कारण–परमेश्वर ।
'सहस्रमूलः पुरुशाको अत्रिः '
अ. १३.३.१५

सहस्रभृष्टिवध – हजारों जनों और जीवों को आग में भून देने वाला–वध
'सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् '
ऋ. ५.३४.२

सहस्रमीढ़ – सहस्रों सुखों या ऐश्वर्यों को देने वाला संग्राम ।

सहस्रमुष्कः – सहस्रों को पुष्ट करने वाला–इन्द्र, परमेश्वर ।
'सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते '
ऋ. ६.४६.३

सहस्रवत् – सहस्रों शिष्यों वाला आचार्य ।
'एते वदन्ति शतवत् सहस्रवत् '
ऋ. १०.९४.२

सहस्रवल्शः– (१) सहस्रों अंकुरों या शास्त्र ज्ञानों से युक्त (२) सहस्रों शाखाओं वाला
'सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति '
ऋ. ७.३३.९
(३) सहस्र अंकुरों वाला पौधा
(४) सहस्रों शाखाओं में फूटने वाला आदि वृक्ष
'सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम '
ऋ. ३.८.११; वाज.सं. ५.४३; तै.सं. १.१.२.१; ३.५.९; १.६.३.३.३; मै.सं. १.१.२:२.१; १.२.१४: २३.९; ४.१.२: १३; का.सं. १.३; ३.२; २६.३; ३१.१; श.ब्रा. ३.६.४.१६; तै.ब्रा. ३.२.२.६; आप.श्रौ.सू. १.४.९; मा.श्रौ.सू. १.१.१.३९: ८.१.१३

सहस्रवाजा – सहस्रों बल, ज्ञान, अन्न या सेना से युक्त इच्छा शक्ति, प्रेरणा सेना या अन्न ।
'इषा सहस्रवाजया '
ऋ. ८.९२.१०; साम. १.२१५

सहस्रवाहुः – सहस्रों बाहु वाला, बलवान् बाहुबल
'अपिबत् क्रदुवः सुतम्
इन्द्रः सहस्रबाह्वे '
ऋ. ८.४५.२६; साम. १.१३१.

सहस्रवीर – सहस्रों बलवान् वीरों से युक्त
'सहस्रवीरमस्तृणन् '
ऋ. १.१८८.४

सहस्रवीर्य – सहस्रं सहस्वत् –नि.
(१) हजारों उपाय, (२) अपरिमिति सामर्थ्यप्रद विधियां,
(३) बलयुक्त सहनशील वीर्य रक्षा और ब्रह्मचर्य के उपाय
'इमं सहस्र वीर्येण मृत्योरुत पारयामसि '
अ. ८.१.१८
(४) अक्षयवीर्य प्राप्त कराने वाला–जङ्गिड़ यन्त्र
(५) ब्रह्मचर्य बल
(६) ओषधि को सहस्रगुण शक्तिवाला करना
'चक्रे सहस्रवीर्यं
सर्वस्मा ओषधे त्वा '
अ. ४.१७.१

सहस्रशीर्षा – हजारों शिरों वाला पुरुष,
'सहस्रशीर्ष पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् '
ऋ. १०.९०.१; आ.सं. ४.३; वाज.सं. ३१.१; श.ब्रा. १३.६.२.१२; तै.आ. ३.१२.१

सहस्रश्रृंग – सहस्र किरणों वाला सूर्य ।
'सहस्रश्रृंगो वृषभः
यः समुद्रादुदाचरत् '
ऋ. ७.५५.७; अ. ४.५.१
'सहस्रश्रृंगो वृषभस्तदोजाः '
ऋ. ५.१.८
'सहस्रश्रृंगो वृषभो जातवेदाः '
अ. १३.१.१२; का.सं. ३५.१८; आश्व.श्रौ.सू.

१.१२.३७; आप.श्रौ.सू. ९.३.१;

सहस्रशोकाः - (१) सहस्रों को सन्तापकारी, (२) सहस्रों दीप्तियों से युक्त

'सहस्रशोका अभवद्धरिंभरः'

ऋ. १०.९६.४; अ. २०.३०.४

(३) सहस्रों दीप्तियों का स्वामी इन्द्र परमेश्वर

सहस्रस्तरीः - (१) सहस्रों के मूल्य के वस्त्र को धारण करने वाला (२) आच्छादन करने वाली या घेरने वाली सहस्रों प्रजाओं वाली सहस्रों प्रजाओं या सेनाओं को धारण करने वाला।

'सहस्रस्तरीः शतनीथ ऋभ्वा'

ऋ. १०.६९.७

सहस्रसा - (१) अनेकों प्रकारों का।

'सहस्रसा शतसा अस्य रंहिः'

ऋ. १०.१७८.३; ऐ.ब्रा. ४.२०.३१; नि. १०.२९

इस ताक्ष्‍र्य की गति (अस्य रंहिः) अनेकों प्रकार की है (सहस्रासा शतसा)।

(२) सहस्र + सन् + विट् = सहस्रसा।

बह्वीः विद्याः सनोति

इति सहस्रसा (अनेक विद्याओं का ज्ञाता।

'कृधी सहस्रसामृषिम्'

ऋ. १.१०.११

(३) सहस्रों को देने और विभाग करने वाला

'अग्ने सहस्रसा असि'

ऋ. १.१८८.३

(४) सहस्र सुखों का दाता

'सहस्रसामग्निवेशिं गृणीते'

ऋ. ५.३४.९

सहस्रसाः - सहस्र + षण् (दानार्थक) + क्विप् = सहस्रसा। अनुनासिक का आ।

सहस्राणाम् उदकानाम्

दाता प्रदाता

(१) सहस्रों उदकों का दाता। दधिक्रा देव या मेघ का विशेषण।

'सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा
पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि'

ऋ. ४.३८.१०

वह दधिक्रा देव या मेघ जो सहस्रों सैकड़ो उदकों का दाता है, जो गतिमान् एवं अरण कुशल है, हमारी इन स्तुतियों को मधुयुक्त या जल युक्त कर।

सहस्रसातमः - सहस्र + सम् + विट् = सहस्रसा।

सहस्रसा + तमप् = सहस्रसातमम।

'अस्मे धेहि श्रवो बृहत्
द्युम्नं सहस्रसातमम्'

ऋ. १.९.८; अ. २०.७१.१४

(१) सहस्रों ऐश्वर्यों का दाता।

'वाजी सहस्रसातमः'

ऋ. १.१७५.१; साम. २.७८२; मै.सं. ४.१२.५: १९१.१६

सहस्रसातमा - (१) सहस्रों प्रकार के पदार्थों को देने वाली

'इह सहस्र सातमाभव'

अ. ३.२८.४

सहस्रसावः - सहस्रों प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने का स्थान -संग्राम।

'सहस्रसावे प्रतिरन्त आयुः'

ऋ. ३.५३.७; ७.१०३.१०

सहस्रस्थूण - (१) सहस्रों खम्भों वाला घर, सभा भवन, आश्रय स्थान, (२) सर्व प्रबल स्तम्भ से युक्त परमेश्वर

'सहस्रस्थूण आसाते'

ऋ. २.४१.५; साम. २.२६१

'सहस्रस्थूणं बिभृथः सहद्वौ'

ऋ. ५.६२.६

सहस्रसा ऋषिः - सहस्रों अपरिमित मंत्रों का ज्ञान देने वाला मन्त्र द्रष्टा।

'पयः सहस्रसामृषिम्'

ऋ. ९.५४.१; साम. २.१०५; वाज.सं. ३.१६; तै.सं. १.५.५.१; मै.सं. १.५.१:६६.१; का.सं. ६.९; श.ब्रा. २.३.४.१५

सहस्रस्तुका - सहस्रों संघों को अपने भीतर मिलाए हुई राजसभा

'सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी'

अ. ७.४६.३

सहस्रसूक्त - पुरुष सूक्त जिस में पुरुष रूप परमेश्वर का वर्णन किया गया है।

'पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा'

अ. १९.२२.१९

सहस्रहः - सहस्रों पुरुषों का नाश करने वाला

'अयं होमः सहस्रहः'

अ. ८.८.१७

सहस्रहस्त – हजारों हाथों या श्रमीजनों का स्वामी
'सहस्रहस्त सं किर'
अ. ३.२४.५

सहस्व – सह (पराजित करना) के लोट् म.पु. ए.व. का रूप। अर्थ है पराजित कर।
'अग्निरिव त्विषितः सहस्व'
ऋ. १०.८४.२; अ. ४.३१.२; नि. १.१७
हे मन्यु, अग्नि के समान ज्वलित हो शत्रुओं को पराजित कर।

सहस्वती – सब रोगों को आक्रमण को दबाने वाली ओषधि।
'त्रायमाणां सहमानां सहस्वतीम्'
अ. ८.२.६

सहसा – बलवान्
'प्र वो देवं चित् सहसानमग्निम्'
ऋ. ७.७.१

सहसा जायमानः – बल से अर्थात् मन्थन द्वारा उत्पादित अग्नि, संघर्षण शक्ति से उत्पन्न।
'स प्रत्नथा सहसा जायमानः'
ऋ. १.९६.१; मै.सं. ४.१०.६: १५७.१२; ऐ.ब्रा. ५.१५.८; आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२४;
वह अग्नि पुरातन के सदृश (प्रत्न था) बल से, संघर्षण से या मन्थन से उत्पन्न किया है।

सहसानः – (१) शत्रुओं पर विजय करता हुआ, (२) शत्रु-पराजय कारी पुरुष।
'मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ'
ऋ. १.१८९.८

सहसामा – सह + सामन्। सामवेद के साथ।
'विदुर्देवा सहसामानर्कम्'
ऋ. १०.११४.१

सहसावत् – अति बलवान्

सहसावान् – (१) बलवान् शक्तिशाली
'इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नः'
ऋ. ३.१.२२.
पुनः –
'माते अस्यां सहसावन् परिष्टौ'
ऋ. ७ १९.७; अ. २०.३७.७; तै.सं. १.६.१२.५; मै.सं. ४.१२.३: १८३.२; आश्व. श्रौ.सू. २.१०.४

सहस्राक्षः – (१) सहस्र आंखों वाला
'सहस्राक्षो विचर्षणिः
अग्नी रक्षांसि सेधति'
ऋ. १.७९.१२
सहस्र आंखों वाला अग्नि या परमेश्वर राक्षसों या विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को दूर करे।
(२) रुद्र, (३) सहस्रों पर दृष्टि रखने वाला
'सहस्राक्षाय मीढुषे'
वाज.सं. १६.८; वाज.सं. (का.) १७.११.८; तै.सं. ४.५.१.३; मै.सं. २.९.२:१२१.१४; का.सं. १७.११;
'सहस्राक्षः सहस्रपात्'
ऋ. १०.९०.१; आ.सं. ४.३; अ. १९.६.१; वाज.सं. ३१.१; श.ब्रा. १३.६.२.१२; तै.आ. ३.१२.१.
(४) असंख्य आंखों वाला परमेश्वर, (५) हजारों का क्षय करने वाला काल
'सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः'
अ. १९.५३.१
(६) हजारों धुराओं से युक्त काल, (७) कालात्मक शक्ति में दिन रात पक्ष है और सारा वर्ष आदि अक्ष है।

सहस्राक्षरा – सहस्र + अक्षर + टाप् = सहस्राक्षरा
(१) सहस्र जलों वाली। माध्यमिका वाक् गौरी का विशेषण।
(२) बहूदका
'सहस्राक्षरा परमे व्योमन्'
ऋ. १.१६४.४१; तै.ब्रा. २.४.६.११; तै.आ. १.९.४; नि. ११.४०.
उत्कृष्ट अन्तरिक्ष में बहूदका होकर....
(३) अपरिमित व्याप्तियुक्ता; बहु व्यापनशीला उदकवती,
सहस्र शब्द अपरिमित का बोधक है। अक्षर का अर्थ वेद में उदक है।
सहस्राणि उदकानि स्थाः सा सहस्राक्षरा (जिसमें अपरिमित उदक हो वह)।
(४) सहस्राक्षरा
– सहस्र या बलमयी, शक्तिमयी अक्षरा अर्थात् अविनाशिनी ब्रह्मशक्ति सहस्रों पृथक् रूपों में या विश्व के रूपों में प्रादुर्भूत होने वाली ब्रह्मशक्ति,
(५) नाना रूप होकर परम व्योम हृदय देश या मूलाधार में सहस्राक्षरा होकर विराजने वाली वाणी।
'सहस्राक्षरा भुवनस्य पंक्तिः'
अ. ९.१०.२१

'एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।'
गी.७.६

सहस्रामघ - सहस्रों धनों से सम्पन्न
'सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम्'
ऋ. ७.८८.१

सहस्रार्घः - (१) सहस्रों पुरुषों और राजाओं से सहस्रों प्रकार से सम्मान प्राप्त करने वाला (२) दर्भ
'सहस्रार्घः शतकाण्डः पयस्वान्'
अ. १९.३३.१
(३) सहस्रगुणा मूल्य
'सहस्रार्घमिडो अत्र भागय'
ऋ. १०.१७.९; अ. १८.१.४३; ४.४७

सहस्राह्ण्य - हजारों दिन
'सहस्राह्ण्यं वितवावरस्य पक्षौ'
अ. १०.८.१८; १३.२.३८; ३.१४

सहस्राह्न्यम् - हजारों दिनों या युगों से

सहस्रिणी ऊती - सहस्रों पुरुषों से बनी या सहस्रों ऐश्वर्यों को देने वाली सेना रूपी रक्षा ।
'आ घा गमद् यदि श्रवत्
सहस्रिणीभिरूतिभिः'
ऋ. १.३०.८
यदि वह सुन ले तो सहस्रों पुरुषों से बनी या सहस्रों ऐश्वर्यों को देने वाली सेना रूपी रक्षा के साथ आ जांय ।

सहस्रियासः - ब.व.। मरुतों का विशेषण । अर्थ- (१) संख्या में सहस्रों, (२) बलवान् आत्मा वाले मरुत् या सैनिक
'सहस्रियासो अपां नोर्मयः'
ऋ. १.१६८.२

सहसी - बलवान्
'भद्रं ते अग्ने सहसिन्नीकम्'
ऋ. ४.१.१.१; तै.सं. ४.३.१३.१

सहस्रवान् - (१) सहनशील, बलवान्
'नूनं विदन् मापरं सहस्वः'
ऋ. १.१८९.४
(४) शत्रुओं को पराजित करने वाला ।
'अहमस्मि सहस्वान्'
अ. १९.३२.५

सहस्रिणी - (१) सहस्रों सुखों को देने वाली
'दधत् सहस्रिणीरिषः'
ऋ. १.१८८.२
(२) सहस्रों वेद मन्त्रों से युक्त वेदवाणी
'उपाक्षरा सहस्रिणी'
ऋ. ७.१५.९
(३) सैकड़ो हस्तों से भी, (४) हजारों वीर पुरुषों से बनी सेना ।
'सहस्रिणीभिरुप याहि वीतये'
ऋ. १.१३५.३
(५) सहस्रों पुरुषों या ऐश्वर्यों को लाने वाली ।
'सहस्रिणीभिरूतिभिः'
ऋ. १.३०.८; १०.१३४.४; अ. २०.२६.२; साम. २.९५.

सहस्रिन् - सहस्रों सुखों को देने वाला पदार्थ या दानी पुरुष
'दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणः'
ऋ. २.२.७; तै.सं. २.२.१२.६; मै.सं. ४.१२.२: १८०.७

सहसूक्तवाकः - (१) उत्तम वेद के सूक्तों का अध्ययन करने वाले विद्वानों से युक्त यज्ञ
'एष ते यज्ञो यज्ञयते सहसूक्तवाकः सुवीरः'
अ. ७.९७.६; वाज.सं. ८.२१; तै.सं. १.४.४४.३; ६.६.२.२; मै.सं. १.३.३८: ४४.१६; का.सं. ४.१२; श.ब्रा. ४.४.४.१४.

सहस्कृत् - सब बलों का उत्पादक
'इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतम्'
ऋ. ८.९९.८

सहस्कृत - (१) बलवान् बनाया गया
'अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः'
ऋ. ८.३.४; अ. २०.१०४.२; साम. २.९५८; वाज.सं. ३३.८३
(२) बल और साधना से साक्षात् करने योग्य अग्नि
'प्रयस्वन्तः सहस्कृत'
ऋ. ६.१६.३७; साम. २.१०५५; मै.सं. ४.११.२: - १६३.६; का.सं. ४०.१४

सहस्तोमः - (१) अपने दल के साथ रहने वाला, (२) एक साथ वेद स्तुतियों का प्रवचन करने वाला
'सहस्तोमाः सहच्छन्दस आवृतः'
ऋ. १०.१३०.७; वाज.सं. ३४.४९

सहयस् - सह + असुन् = सहस् । सहस् + मतुप् + ईयस् = सह्यस् (मतुप् का लोप) । अर्थ- अति बलवान्

सहावन् - सहस् + वनिप् = सहावन् (स् का वेद में आ) । अर्थ है -(१) बलवान्
(२) सोढा
'सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा'
ऋ. ३.४९.३
'एकः कृष्टीनामभवत् सहावा'
ऋ. ६.१८.२; का.सं. ८.१७

सहावान् - (१) शत्रुपराजयकारी बलवाला
'सहावाँ इन्द्र सानसिः'
ऋ. १.१७५.२; साम. २.७८३
(२) सुखदुःख शीत उष्णादि को भली भांति सहने वाला
'शूरग्राम सर्ववीरः सहावान्'
ऋ. ९.९०.३; साम. २.७५९
(३) शत्रु विजय कारी बल से सम्पन्न
'सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः'
ऋ. १०.१०३.५; अ. ८.५.२; १९.१३.५; साम. २.१२०.३; वाज.सं. १७.३७; तै.सं. ४.६.४.२; मै.सं. २.१०.४:१३६.२: का.सं. १८.५

सहासः - ब.व.। (१) मरुतों का विशेषण, (२) शत्रुविजयी तपस्वी वीर पुरुष
'अनु विश्वे मरुतो ये सहासः'
ऋ. ७.३४.२४

सहिष्ठः - बहुत बलशाली
'सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य'
ऋ. ६.१८.४

सहीयस् - (१) अति बलवान् (२) सहनशील
'त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन्'
ऋ. १.१७१.६

सहीयसी - अति सहनशील उषा
'सा व्युच्छ सहीयसी'
ऋ. ५.७९.२

सहीवान् - (१) शत्रुओं को अभिभूत करने वाला, (२) तेजस्वी ।

सहुरिः - पु. । (१) सहन शक्ति देने वाला (२) शत्रुओं का सहनशील मन्यु
'प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि'
ऋ. १०.८४.५; अ. ४.३१.५
हे सहनशक्ति देने वाले या शत्रुओं के सहनशील मन्यु, हम तेरे प्रिय नाम की दुहाई देते हैं ।

सह्यु - सहनशील
'न प्रतिष्ठितः पुरुमायस्य सह्योः'
ऋ. ६.१८.१२

सहूती - समान रूप से हवि ग्रहण करने वाले अग्नि और वायु (अग्नीषोम)

सहोजा - सहस् + जा १ बल से प्रसिद्ध ।
'नू चित् सहोजा अमृतो नितुन्दते'
ऋ. १.५८.१; कौ.ब्रा. २२.२; आश्व.श्रौ.सू. ४.१३.७;
कभी न मरने वाला जीव जीवन के बाधक कारणों को पराजित करने वाले सहन शील बल को उत्पन्न करता है ।

सहोजित् - (१) सबके बलों का विजेता
'अभिवीरो अभिपत्वा सहोजित्'
ऋ. १०.१०३.५; अ. १९.१३.५; साम. २.१२०३; वाज.सं. १७.३७; तै.सं. ४.६.४.२; मै.सं. २.१०.४: १३६.३; का.सं. १८.५.
(२) अपने बल से शत्रुओं को जीतने वाला
'सहमानं सहोजितं स्वर्जितम्'
अ. १७.१.१.१-५

सहोत्र - सम्यक् प्रकार से प्रदत्त परमेश्वरीय बीज
'संहोत्रं स्म पुरा नारी'
ऋ. १०.८६.१०

सहोदाः - (१) शत्रु पराजय कारी बल देने वाला
'उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः'
ऋ. १.१७१.५
(२) सब को बल देने वाला, (३) अपने बल से सब की रक्षा करने वाला
(३) दुर्बलों को बल देने वाला
'सत्रासाहं वरेण्यं सहोदाम्'
ऋ. ३.३४.८; अ. २०.११.८

सहोभरिः - (१) यः बलं विभर्ति -दया.
(२) बल सैन्य द्वारा राष्ट्र का पालक
'अरिष्टंगातुः स होता सहोभरिः'
ऋ. ५.४४.३

सहोवृध् - (१) बल को बढ़ाने वाला (२) बल से बढ़ने वाला (३) अग्नि का विशेषण
'जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधम्'
ऋ. १.३६.२

(४) जो बल बढ़ाता या बल से बढ़ता है-दया. ।(५) शत्रुओं को परास्त करने वाले बल को बढ़ाने वाला
'हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् '
ऋ. ३.१०.९

स्वहोता - (१) स्वयं प्राण अपांन रूप, अश्विद्वय को आदान प्रदान करने वाला -आत्मा ।
(२) अध्वर्यु
'तप्तो वां घर्मो नक्षतु स्वहोता'
अ. ७.७३.५

संस्थ - आश्रय
'संस्थे यदग्न ईयसे रथीणाम् '
ऋ. ५.३.८

संहनुः - (१) जबड़ो को पकड़ने वाला रोग, (२) मिले हुए होठों वाला जम्भ
'मा त्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदत्'
अ. ८.१.१६
(३) खूब मजबूत
'तेन संहनु कृण्मसि'
अ. ५.२८.१३; १९.३७.४

संहानः - बिस्तर त्यागता हुआ
'संहानाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७; मै.सं. ३.१२.३:१६१.२

संहित - (१) सर्वत्र समान भाव से व्यापक, (२) सब के लिए हितकारी
'यच्च्यावयथ विथुरेव संहितम् '
ऋ. १.१६८.६
(३) मिले रंग की पोशाक पहनने वाला
'ऐन्द्राग्नः संहितः'
वाज.सं. २९.५८; तै.सं. ५.५.२२.१; का.सं. (अश्व.). ८.१
(४) समस्त पृथिवी जल आदि भूतों में अपनी किरणों से व्याप्त होकर उन्हें परस्पर मिलाने. वाला, दिनरात को सन्ध्या द्वारा मिलाने वाला सूर्य, (५) समस्त विद्वान् पुरुषों शासकों और राज्यांगों को परस्पर मिलाने वाला राजा
'संहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वः'
वाज.सं. १८.३९; तै.सं. ३.४.७.१; मै.सं. २.१२.२: १४५.३; का.सं. १८.१४; श.ब्रा. ९.४.१.१२.

संहिता - (१) सम् + धा + क्त + टाप् = संहिता । जो अत्यन्त सन्निकट हो वह संहिता है (परः सन्निकर्षः संहिता) ।
(२) ऋग्वेद प्रातिशाख्य में 'पद प्रकृतिः संहिता' कहा गया है और पदों का सन्धि द्वारा एक हो जाना संहिता है, और उन की विकृति का नाम पद है ।
(३) कुछ विद्वान् संहिता उसे कहते हैं जिसकी प्रकृति पद है अर्थात् जब दो पदों के मिलने से विकृति संहिता का रूप धारण करती है ।
वेद की प्रति शाखा के पद ही प्रकृति हैं और उनकी सन्धि संहिता है (पद प्रकृतीनि सर्व चरणानां पार्षदानि) ।
(४) एक ही स्थान पर रहने वाली गौ, गौएं एकत्र हा करती हैं अतः वह संहिता है, (१) परमेश्वर से भलीप्रकार संगत हो जाने वाली चितिशक्ति ।
'संहिता विश्वनाम्नीः'
अ. ७.७५.२

संहितान्त - जिसके शिरोभाग खूब अच्छी प्रकार मिलाए गए हैं ।
'चतुष्टयं युज्यते संहितान्तम् '
अ. १०.२.३

सहीयसी - बल शालिनी ओषधि
'अपक्रीताः सहीयसी'
अ. ८.७.११

संहोत्राः - एक साथ मिलकर एक दूसरे को ग्रहण करने वाला सर्गमय यज्ञ ।
'संहोत्रं स्म पुरा नारी'
ऋ. १०.८६.१०; अ. २०.१२६.१०

स्था - (१) स्थावर ।
'यत् स्था जंगच्च रेजते'
ऋ. १.८०.१४
जब स्थावर और जंगम सभी कांपते हैं ।
(२) स्था + विच् + स्था ।
'स पतत्रीत्वरं स्था जगद् यत् श्वात्रमग्निरकृणोजातवेदाः'
ऋ. १०.८८.४; नि. ५.३
जिस जात देश अग्नि के पक्षी सरीसृप आदि एवं स्थावर जगत् को शीघ्र ही बना डाला ।

स्या - वह । त्यद् शब्द के स्त्रीलिंग प्रथम एकवचन में ।
'प्रति यत् स्या नीथादर्शि दस्योः'

ऋ. १.१०४.५.
'वह स्तुति' -सा.
वह न्याय -प्राप्त राजा- दयाः ।

साकम् - (अ.) । एक ही साथ ।
'यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः
श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः'
ऋ. १०.९४.१
जब दृढ पर्वत और शीघ्र करने वाले ग्रावा एक साथ इन्द्र के लिए श्रवणीय घोष करते हैं तो हे ऋत्विजो, आप भी स्तुतिरूप वचन बोलें ।
साकं सत्रा समं सह' - अमरकोष
'सहस्रं सवां अयुतं च साकम्'
ऋ. ४.२६.७; नि. ११.२
सोम और दक्षिणा युक्त सहस्रों यज्ञ करते हैं ।

साकंजाः - (१) एक साथ उत्पन्न ऋतुएं ।
'साकंजानां सप्तथमाहुरेकजम्'
ऋ. १.१६४.१५; अ. ९.९.१६; तै.आ. १.३.१; नि. १४.१९.
एक साथ उत्पन्न वसन्तादि ऋतुओं में से सातवें को (सप्तहथम्) एक अधिक मास से ही उत्पन्न हुआ बतलाते हैं ।
(२) एक साथ उत्पन्न हुए प्राण ।

साकंजानां सप्तथः - (१) एक साथ उत्पन्न हुए प्राणों में सातवां एकज प्राण (२) मुखगत प्राण एकज है । कान, आंख, और नाक के प्राण जोड़-जोड़े हैं ।
(३) एक साथ उत्पन्न ऋतुओं में छः जोड़े हैं और सातवां मलमास होंने से एकज है ।

साकं युजा - द्वि.व. । सदा साथ मिलकर रहने वाले अश्विद्वय, स्त्रीपुरुष ।
'साकंयुजा शकुनस्येव पक्षा'
ऋ. १०.१०६.३

साक्षति - (१) आप्नोति (प्राप्त करता है) । 'साक्ष' नैरुक्त धातु है ।(२) अभिभवति (अभिभूत करता है) ऐसा अर्थ भी किया जाता है ।
'प्रतिमानानि भूरि प्रसाक्षते'
प्रचुर असुर बलों से अभिभूत करता या अनेकों असुरों के स्थानों को अधिकृत करता है ।

स्राक्त्यमणि - स्रक्ति या तिलक के वृक्ष की मणि । (ताबीज) । -सा., ग्रिफिथ ।
'स्रक्त्योऽषि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि'
अ. २.११.२
(२) प्रत्यभि-चरण अर्थात् शत्रु के प्रति धावा करने वाला पुरुष ।
प्रति तम् अभि चर योऽस्मान्
द्वेष्टि यं वयं द्विष्यः ।
(३) सूरि । विद्वान् शरीर रक्षक (४) वीर्यवान्, सपत्नहा, महस्वाम्, वाजी, उग्र आदि ।
'स्राक्त्येन मणिना
ऋषिणेव मनीषिणा ।
अजैषं सर्वाः पृतनाः
वि मृधो हन्मि रक्षसः'
अ. ८.५.८
(५) वीरों को प्राप्त होने योग्य मणि -पदक ।
(६) समस्त सेना के वीच तिलक योग्य सेनापति-ज.दे.श. (७) माला आदि से सुशोभित करने योग्य ।
'अयं स्राक्त्यो मणिः
प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।'
अ. ८.५.४

स्वाङ्कृत - (१) अपने सामर्थ्य से वनाया गया-राजा (२) सारभूत ।
'स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य
इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यः'
वाज.सं. ७.३,६; मै.सं. १.३.४:३१.८; श.ब्रा. ४.१.१.२२.

साची - (१) सुन्दर, (२) सदा सहाय योग्य, (३) सर्वाश्रय योग्य (४) सखा, (५) संघ शक्ति
'आ साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः'
ऋ. १.१४०.३
सुन्दर सदा सहाय योग्य (साच्यम्) रक्षण करने योग्य बालक को (कुपयम्) पिता को बढ़ाने वाले शिशु को लक्ष्य कर ।
अथवा,
सर्वाश्रय योग्य (साच्यम्) सबके बालक (कुपयम्) मेघ को बढ़ाने वाले सूर्य को (पितुः वर्धनम्) लक्ष्य कर ।
अथवा,
सखा या संघ शक्ति के
आश्रय (साच्यम्) राष्ट्र रक्षक को लक्ष्य कर ।

साढ - पराजित
'वाचा साढः परस्तराम्'

अ. ५.३०.९

साठा – शत्रु का पराजय करने वाला
'मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साढा'
ऋ. ७.५६.२३

स्थाणु – (१) परब्रह्म
'तां स्थाणावध्या सृजामि'
अ. १४.२४.८
(२) वृक्ष
'स्थाणुं पथिष्टामप दुर्मतिं हतम् ।'
ऋ. १०.४०.१३; अ. १४.२.६; आप.मं.पा. १.६.१२.
(३) स्था + णु । जो सदा स्थिर रहे ।
(४) खूंटा । (५) छाया रहित स्थान–Whitney
'शुष्के स्थाणावपायति'
अ. १९.४९.१०

सात – (१) सन् + क्त = सात । दिया हुआ दान ।
'इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनः'
ऋ. २.२४.१०
(२) भोग किया हुआ सुखादि ।
'सुमङ्गलं सिनवदस्तु सातम्'
ऋ. १०.१०२.११

सातहा – (१) सात अर्थात् लाभ-लेनदेन में प्रतिबन्धक, (२) प्राप्त धन का नाशक ।
'अग्ने सातघ्नो देवान् हविषा नि षेध'
अ. ३.१५.५
(३) प्रजापीड़क, (४) क्रीड़ा जुआ आदि में धन नष्ट करने वाला ।

स्वातत – सु + आङ् + तन् + क्त = स्वातत । सुन्दर रीति से खींचा हुआ या ताना हुआ ।
'इन्द्रो बुन्दं स्वाततम्'
ऋ. ८.७७.६; नि. ६.३४
इन्द्र ने भली भांति खींचे या ताने वज्र को जोड़ा ।

सात्मत्व – सम्पूर्ण सफलता प्राप्त करना ।
'यज्ञस्य सात्मत्वाय'
अ. ९.६.३८

साता – (१) देने वाला
'तोकस्य साता तनूनाम्'
ऋ. ९.६६.१८
(२) दानशील
'न यस्य सातुर्जनितोरवारि'
ऋ. ४.६.७

सात्रासाह – सदाविजयी
'सात्रासाहस्याहं मन्योः'
अ. ५.१३.६

स्थात् – स्थावर पदार्थ
'गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम्'
ऋ. १.७०.३
जो परमेश्वर या अग्नि स्थावर अचेतन पदार्थों के भीतर व्यापक और उनको वश में करने वाला है और जो विचरने वाले, जंगम पदार्थों के बीच व्यापक और उन को भी वश करने वाला है ।

स्थात्र – (१) स्थित कारण, (२) सूर्य का धारण सामर्थ्य (३) स्थाता आत्मा का धारण सामर्थ्य ।

स्थाता – (१) स्थिर रहने वाला, (२) युद्ध में स्थिर रहने वाला
'प्र यद् दिवो हरिवः स्थातरुग्र'
ऋ. १.३३.५
हे अश्वहस्ती एवं वीर पुरुषों की सेनाओं के स्वामी (हरिवः), हे शत्रुओं के कंपाने वाले (उग्र), हे युद्ध भूमि में स्थिर रहने वाले, (स्थातः) जैसे आकाश में वायु मेघों को उड़ा देता है (दिवः प्रायत्) ।

स्नात्वा – (१) स्ना + त्वन् (अर्हअर्थ में) = स्नात्वा । अर्थ है – प्रस्नेय अर्थात् प्रकर्ष के साथ स्नान करने योग्य ।
(२) स्थावर
'स्थातुश्चरथमक्तून् व्यूर्णोत्'
ऋ. १.६८.१
जिस प्रकार सूर्य स्थावर एवं जंगम जगत् को प्रकाशित या व्यक्त करता है ।
(३) स्थिर नित्य आत्मा (४) सूर्य
'स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः'
ऋ. १.१६४.१५; अ. ९.९.१६; तै.आ. १.३.१; नि. १४.१९

स्थातां गर्भः – स्थावर या अचेतन पदार्थों में व्यापक और उनको वश में करने वाला अग्नि या परमेश्वर ।

स्थातारा – द्वि.व. । 'स्थातृ' शब्द का प्र. द्वि.व. । एक स्थान पर रहने वाले स्त्री पुरुष-गृहस्थ ।

'वृष्णः स्थानारा मनसो जवीयान्'
ऋ. १.१८१.३

सातिः – (१) सेवन योग्य सम्पन्न
'उत सातीरहर्विदा'
ऋ. ८.५.९
(२) सुख, (३) लाभ, (४) प्राप्ति।
'अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवः'
ऋ. १.१३८.४; नि. ४.२५
इसकी प्राप्ति के लिए सम्यक् प्रकार से हम लोगों के पास आ।
अथवा,
इस सुख लाभ के लिए सम्यक् प्रकार से हम लोगों के पास आ या समीप वर्तमान रहिए।

स्फाति – (१) प्रचुर वृद्धि
'तेषां नः स्फातिमा यज'
ऋ. १.१८८.९
'पशूनां सर्वेषां स्फातिम्'
अ. १९.३१.१
(२) समृद्धि, प्रतिष्ठा plenty
'इह स्फातिं समावह
अ. ३.२४.३,५
(३) शरीर की वृद्धि
'यश्च स्फातिं जिहीर्षति'
अ. २.२५.३

स्फातिमत्तमा – सबसे अधिक अन्न को समृद्ध करने वाली
'तासां या स्फातिमत्तमा'
अ. ३.२४.६

स्वाति – एक नक्षत्र
'हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु'
अ. १९.७.३

साद – (१) अवसाद, (२) पथभ्रष्ट (३) आलस्य में पैर रख देना
'यत् ते सादे महसा शूकृतस्य'
ऋ. १.१६२.१७; वाज.सं. २५.४०; तै.सं. ४.६.९.२; का.सं. (अश्व.) ६.५.
जब शीघ्र कारी या अधिक वश बिना विचारे शीघ्रता से कार्य कर डालने वाले (शूकृतस्य) तेरे अवसाद या पथभ्रष्ट होने या आलस्य में पड़ जाने पर (सादे).....
(४) कार्य-भ्रष्ट होना

सादन – (१) आसन, (२) पद।
'द्युक्षं मित्रस्य सादनम्'
ऋ. १.१३६.२
(३) विराजने के योग्य स्थान
'आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्'
ऋ. २.२३.१; तै.सं. २.३.१४.३; का.सं. १०.१३
(४) आश्रय
'ताभ्यां यमस्य सादनम्'
अ. १८.२.५६
(५) घर
'तत्र यमः सादना ते कृणोतु'
अ. १८.३.५२
'पृथी यद् वां वैन्यः सादनेषु'
ऋ. ८.९.१०; अ. २०.१४०.५

सादनस्पृक् – (१) गृह आदि प्रदान करने वाला, (२) घर में आया हुआ
'मा नो निर्भाग् वसुनः सादनस्पृशः'
ऋ. ९.७२.८

सादन्य – (१) सदन + यत् = सादन्य। सदनं गृहम् अर्हति इति (घर बनाने योग्य सामग्री)। –दया.
(२) गृह बसा कर रहने वाला
'सादन्यं विदथ्यं सभेयम्
पितृश्रवणं यो ददाशस्मै'
ऋ. १.९१.२०; वाज.सं. ३४.२१; मै.सं. ४.१४.१: २१४.३; तै.ब्रा. २.८.३.१.
ऐश्वर्यवान् राजा (सोम) घर बनाने योग्य सामग्री या गृह बसा कर रहने वाला उत्तम गृहस्थ, ज्ञान, सत्संग, यज्ञ और संग्राम में कुशल तथा सभा में उत्तम वक्ता (सभेयम्) मा बाप के समान प्रजा की प्रार्थनाओं को सुनने वाला अधिकारी प्रदा करता है।
(३) उत्तम गृहों, राज सभाओं या उत्तम पदों पर विराजने योग्य

स्वादनम् – अन्नों को स्वादु बनाने वाला-अग्नि।
'प्र स्वादनं पितूनाम्'
ऋ. ५.७.६

स्वाद्मन् (स्वादमा) – (१) सुखपूर्वक भोजन
'स्वाद्मन् भवन्तु पीतये मधूनि'
ऋ. १०.२९.६; अ. २.७६.६
(२) मधुरता, (३) उत्तम योजन
'स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्'

ऋ. २.२१.६; पा.गृ.सू. १.१८.६
(४) रसों का स्वाद लेने वाला
'प्रः स्वाद्‌मानो रसानाम्'
ऋ. १.१८७.५; का.सं. ४०.८

सादी - (१) घुड़सवार सैनिक
'असादा ये च सादिनः'
अ. ११.१०.२४

स्वादु - (१) आनन्द देने वाला (२) स्वयं अपने आत्मा द्वारा स्वीकारने और अनुभव करने योग्य
'स्वादो पितो मधो पितो'
ऋ. १.१८७.२; का.सं. ४०.८
(३) स्वादिष्ट ।
'स्वादोरित्था विषूवतः'
ऋ. १.८४.१०; अ. २०.१०९.१; साम. १.४०९; २.३५५; मै.सं. ४.१४.१४: २३८.५; ऐ.ब्रा. ५.७.५; पंच.ब्रा. १३.४.१६; आश्व.श्रौ.सू. ७.४.४; १२.१५; शां.श्रौ.सू. १८.१७.५; वै.सू. ३९.१९; ४१.६ .
(४) देहादि संघात से प्राप्तव्य सुखोपभोग (५) पुत्र
पुत्रो ह स्वादुः-श.ब्रा.
(६) पति या पत्नी
मिथुनं वै स्वादु-श.ब्रा.
(७) प्रजा
प्रजा स्वादु-श.ब्रा.
'स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा सम्'
ऋ. १०.१२०.३; अ. ५.२.३; २०.१०७.६; साम. २.८३५; तै.सं. ३.५.१०.१; सै.आ. १.३.४.१२; ५.१.६.२; मा.श्रौ.सू. ७.२.७.

स्वादुक्षद्मा - (१) स्वादु क्षद्म वाला (२) स्वादयुक्त पुष्टि कारक जल अन्न खाने वाला
'स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृत्'
ऋ. १.३१.१५
जो अपने घर या देह स्वादयुक्त अन्न जल खाता अपने को सुखी करता हुआ (स्योनकृत्).....।

स्वादुषंसद् - उत्तम सुखजनक अन्न ऐश्वेर्यादि भोग करने के लिए उत्तम पदों पर विराजने वाला ।
'स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः'
ऋ. ६.७५.९; वाज.सं. २९.४६; तै.सं. ४.६.६.३; मै.सं. ३.१६.३: १८६.१३; का.सं. (अश्व.) ६.१; आप.श्रौ.सू. २०.१६.११.

स्वादुषंसदः - ब.व.। (१) सुख से एक स्थान से खड़े (२) रसवान् उत्तम पदार्थों का सब मिलकर आनन्द प्राप्त करने वाले ।

स्वादुसंमुदः - (१) सुखकारी मिष्टान्न आदि पदार्थों में एक साथ आनन्द लेने वाले ।
'सखायः स्वादु संमुदः'
अ. ७.६०.४; आप.श्रौ.सू. ६.२७.३; हि.गृ.सू. १.२९.१

साध - (१) साधन, (२) साधन काल
'ग्राव्णां योगे मन्मनः साध ईमहे'
ऋ. १०.३५.९

साधन् - (१) साधता हुआ
'राजा ससाद विदथानि साधन्'
ऋ. ३.१.१८
(२) साधते या मानते हैं-सा. (३) सिद्ध करते हुए-दया.
'आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्'
ऋ. १.९६.१; मै.सं. ४.१०.६:१५७.१३
विद्युत रूप में वर्तमान अग्नि को मेघ में स्थित जल (आपः) और माध्यमिका वाक् (धिषणा) मित्र रूप से साधते या मानते हैं । - सा. ।
पदार्थ विद्या द्वारा (धिषणा) जल और वायु को (आपः च मित्रं च) सिद्ध करते हुए (साधन्)....दया. ।

साधन - साधन, साधना

साध्य - (१) प्रजा के पांच भेद-वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव और साध्य (२) योग्य साधन शील पुरुषा
'साध्येभ्यः कुलङ्गान्'
वाज.सं. २४.२७; मै.सं. ३.१४.९: १७४.४
(३) साधना करने वाला (४) मुक्तिपथ का अभ्यासी साधक
'मयि देवा उभये साध्याश्च'
अ. ७.७९.२
(५) बनाने योग्य चर्म (६) वश करने योग्य उद्दण्ड पुरुष
'साध्येभ्यश्चर्मम्नम्'
वाज.सं. ३०.१५; वाज.सं. (का.) ३४.१५; मै.सं. ३.१४.९:१७४.४

साध्याः - (१) देव बनने वाले, (२) विश्व की रचना करने वाले प्राण रूप ऋषि साध्य कहे गए हैं, (३) द्युलोकवासी सप्तर्षि, (४) विश्वे

देव, (५) प्राण, (६) रश्मियां (७) विराट के साधक उपासक

'यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः'

ऋ. १.१६४.५०; १०.९०.१६; अ. ७.५.१; वाज.सं. ३१.१६; तै.सं. ३.५.११.५;मै.सं. ४.१०.३:१४९.१; का.सं. १५.१२;ऐ.ब्रा. १.१६. ३७; श.ब्रा. १.२.२.३; तै.आ. ३.१२.७; नि. १२.४१.

जिस विराट् रूपी नाक में (यत्र) पुरातन विराट् के उपास एवं साधक देव रहते हैं या विश्व की रचना करने वाले प्राण, द्युलोक वासी सप्तर्षि विश्वेदेव या रश्मियाँ रहती हैं ।

(८) साध् + ण्यत् = साध्य । 'साध्याः देवाः साधनात् ' (साध्य का अर्थ है देव) निरुक्तकार देव शब्द को रश्मि का पर्याय मानते हैं । रश्मियों में भी दीप्ति होती है ।

'विश्वेदेवाः ' रश्मियाँ ही हैं । रश्मियां रस का आहरण आदि व्यापार करती हैं (रसाहरणादिकं व्यापारं साध्नुवन्ति) ।

साध्यन्त आराध्यन्त इति देवाः (जिनकी साधना और आराधना की जाती है वे साध्य अर्थात् देव हैं) ।

(१०) ते हि सर्वमिदं साधयन्ति यत्

'अन्येव असाधितम् तन् ते
साधयन्ति इति साध्या उच्यन्ते'

(अर्थात् जो औरों के असाध्य कर्म हैं उन्हें भी जो कर पाते हैं, वे साध्य अर्थात् देव हैं)-

(११) विश्व की सृष्टि करने वाले प्राण ही साध्य हैं । (प्राणाः वै सप्त ऋषयः साध्याः विश्वसृजः)

(१२) विश्वसृज् नामक द्वादश ऋषि ही साध्य हैं ऐसा ऐतिहासिक पक्ष वालों का मत है ।

'आदित्याः द्वादश प्रोक्ताः
विश्वे देवा दश स्मृताः ।
वसव श्चाष्ट संख्याताः
षट्त्रिंशत् सविता मताः
आभास्वराः चतुःयष्टिः
वालाः पञ्चासदूनकाः
महाराजिक नामानो
द्वेशते विंशतिस्तथा
साध्या द्वादश विख्याता
रुद्रा एकादशा स्मृताः'

कोश में इन साध्यों की गणना सङ्घचारी गणदेवता शब्द से की गई है ।

'यज्ञेन यज्ञमयजन् देवाः'

ऋ. १.१६४.५०; १०.९०.१६; अ. ७.५.१; वाज.सं. ३१.१६; तै.सं. ३.५. ११.५; मै.सं. ४.१०.३; १४८.१६; का.सं. १५.१२; ऐ.ब्रा. १.१६.३५; कौ.ब्रा. ८.२; श.ब्रा. १०.२.२.३. तै.आ. ३.१२.७; आश्व.श्रौ.सू. २.१६.७; नि. १२.४१.

आधुनिक अर्थ - करणीय, व्यवहार्य, सिद्ध करने योग्य, अनुमेय , पराजेय, आराम होने योग्य नन्द्य, एक प्रकार के द्युस्थानीय देवगण । देवता । Predicate of a preposition, Major term of a Syllogism..

साध्याः ऋषयः - योगाभ्यासी ऋषि गण

'साध्या ऋषयश्च ये'

ऋ. १०.९०.७; अ. १०.१०.३०; ३१; १९.६.११, वाज.सं. ३१.९; तै.आ. ३.१२.४

साध्वर्या - (१) उत्तम स्वामिनी होने योग्य वाली, (२) साधुरीति से ज्ञान करने योग्य, (३) उत्तम स्वामी वाली वेदवाणी

'साध्वर्या अतिथिनीरिषिरा'

ऋ. १०.६८.३; अ. २०.१६.३

साधारण - (१) बहुतों में भी साधारण, (२) समान रूप से सबके प्रति निष्पक्ष होकर सबका भरण पोषण करने वाला इन्द्र, परमेश्वर

'इन्द्र साधारणस्त्वम्'

ऋ. ४.३२.१३; ८.६५.७

साधिपतिक - (१) अधिपति आत्मा या मन के सहित शरीर में विद्यमान प्राण (२) राष्ट्र में अपने अधिपति के सहित

'स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः'

वाज.सं. ३९.१; श.ब्रा. १४.३.२.२;

साधिष्ठ - (१) अत्यन्त साधा हुआ, उत्तम, (२) अधिष्ठान के सहित (३) साधु + इष्ट । सबसे उत्तम कार्य -साधक ।

'वि साधिष्ठेभिः पथिभिः रजो मम'

ऋ. १.५८.१

एक ही आश्रय आकाश में विद्यमान मार्गों सहित लोगों को बनाने वाले, विविध वसु अर्थात् जीवों के आश्रय लोगों के स्वामी परमेश्वर के अधीन रहता और विविध कर्मों को करता है ।

अथवा,
राजा अति उत्तम मार्गों से या व्यवस्थाओं से लोगों को बनाता है और चलाता है ।
'यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर'
ऋ. ५.३५.१

स्वाधी - सु + आधी । (१) सुन्दर आधी वाला, (२) उत्तम रीति से अग्नि विद्युत् की रक्षा करने में समर्थ पुरुष
(३) उत्तम रीति से प्रजा के पालन पोषण में कुशल पुरुष
'स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन्'
ऋ. १.१५१.१; तै.ब्रा. २.८.७.६
उत्तम रीति से अग्नि विद्युत् की रक्षा करने में कुशल पुरुष (स्वाध्यः) इसे प्राप्त करने के निमित्त (विदथे) विद्युत् को जलों में से भी उत्पन्न कर लेते हैं (अप्सु जीजयन्) ।
अथवा,
उत्तम रीति से प्रजा के पालन पोषण करने में समर्थ पुरुष (स्वाध्यः) संग्राम और ज्ञान लाभ के लिए (विदथे) प्रजाओं के बीच (अप्सु) प्रकट करते हैं (जीजनन्) ।
(४) सुप्रज्ञ नेता या यजमान
'इन्धान एवं जरते स्वाधीः'
ऋ. १०.४५.१; वाज.सं. १२.१८; तै.सं. १.३.१४.५;४.२.२.१; मै.सं. २.७.९: ८६.६; का.सं. १६.९; श.ब्रा. ६.७.४.३; नि. ४.२४
इस अग्नि को प्रदीप्त करता हुआ सुप्रज्ञ नेता या यजमान (इन्धानः स्वाधीः) स्तुति करता है (जरते) ।
(५) सुष्ठु समन्तात् धीयते येन सः
उत्तम रीति से प्रजाओं का पालक पोषक तथा धारकअग्नि
(६) अग्रणी पुरुष
'भुवत् स्वाधी होंता हव्यवाट्'
ऋ. १.६७.२,
(७) सुखपर्वक उत्तम रीति से जगत् को प्रकृति में अव्यय बीज का आधान करने वाला प्रभु
'स्वाधीर्देवाः सविता'
ऋ. ५.८२.८
(६) सुखों को अपने में धारण करने वाला स्वस्थ, नीरोग
'इन्धान एनं जरते स्वाधीः'
ऋ. १०.४५.१

साधु - साध् + उण् = साधु । साधयिता स्तोमानाम् शत्रुसंघा तानां वा (स्तोमों या शत्रु संघातों का साधयिता) । अर्थ-(१) बाण का विशेषण, शत्रुओं का साधक बाण
'साधुर्बुन्दो हिरण्ययः'
ऋ. ८.७७.११; नि. ६.३३.
बाण सोने का बना और शत्रुओं का साधक है । (२) साधयिता, (३) साधक (४) उत्तम,(५) साधनकुशल
'या सानुनि पर्वतानामदाभ्यः
महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना'
ऋ. १.१५५.१

साधुकर्मा - उत्तम कर्म करने वाला
'महस्तस्थतुरर्वतेव साधुकर्मा'
ऋ. १०.८१.७; वाज.सं. ८.४५; १७.२३; तै.सं. ४.६.२.६; मै.सं. २.१०.२; १३३.१९; का.सं. १८.२; २१.१३; ३०.५; श.ब्रा. ४.६.४.५ .

साधुकृण्वन् - यः साधु करोति (जो सुन्दर कर्म करता है ।
'बृबदुक्थं हवामहे सृप्रक-
रस्नमूतये साधु कृण्वंन्तमवसे'
ऋ. ८.३२.१०;
हम अदीर्घ बाहुवाले (सृप्र करस्नम्) एवं सुन्दर कर्म करने वाले (साधु कृण्वन्तम्) बृहदुक्थ को रक्षा के लिए बुलाते हैं ।

साधु देविनी - उत्तम रूप से प्रकाशमान ज्योतिष्मती प्रज्ञा
'अप्सरां साधु देविनीम्'
अ. ४.३८.१,२

साधुया - साधु, सच्चरित्र
'लोकं कृणोतु साधुया'
वाज.सं. २३.४३

सानसिः - सधा हुआ, वेगवान्,
'वारं वाजीव सानसिः'
ऋ. ९.१००.४
(२) ऐश्वर्य का विभाग करने वाला
'सहावाँ इन्द्र सानसिः'
ऋ. १.१७५.२; साम. २.७८३
(३) सबके सेवा करने योग्य, सबको सुख देने

वाला
'अवो देवस्य सानसि'
ऋ. ३.५९.६; वाज.सं. ११.६२.
(४) सन् + असि = सा नसि । अर्थ है -संभजनीय
(५) सनातन से चला आता हुआ सबके सेवन योग्य
'वोचेम ब्रह्म सानसि'
ऋ. १.७५.२
हम सनातन से चले आते, सब के सेवन योग्य वेदज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्ति का उपदेश दें।
(६) सबको सब प्रकार से ऐश्वर्य पदाधिकार और भूमि आदि देने वाला
'सखाय इन्द्र सानसिम्'
ऋ. ८.२१.२; अ. २०.१४.२; ६२.२; साम. २.५९.
(६) सेवनीय, उपास्य, (८) न्याय पूर्वक ऐश्वर्य का विभाजक
'सखाय इन्द्र सानसिम्'
ऋ. ८.२१.२; अ. २०.१४.२; ६२.२; साम. २.५९.

सानसी - द्वि.व.। (१) सबके सेवनीय सब के शरणीय, (२) सब को दान देने वाले
'ता सानसी शवशाना हि भूतम्'
ऋ. ७.९३.२

सान्तपनः - (१) उत्तम तप करने वाला, (२) जिस विद्वान् ब्राह्मण के गर्भाधान से लेकर उपनयन समावर्तनादि तक संस्कार हो चुके हो और अग्निहोत्र ब्रह्मचर्यादि ठीक से पालन किए हो वह सान्तपन है।
एष हवै सान्तपनो ऽग्निः यत् ब्राह्मणः । यस्य गर्भाधान पुरुवन सीमन्तोन्नमन जातकर्मनामकरण निष्क्रमणान्न प्राशनगोदान चूड़ाकरणोपनयनप्लावनाग्निहोत्र व्रत चर्यादीप्ति कृतानि भवन्ति स सान्तपनः । - गो.ब्रा.
'सान्तपना इदं हविः मरुतस्ताज्जुजुष्टन'
ऋ. ७.५९.९; अ. ७.७७.१; तै.सं. ४.१३.३; मै.सं. ४.१०.५; १५४.७; का.सं. २१.१३.
(२) उत्तम तपस्या शील, (३) सान्तपन अग्नि जो ब्राह्मण रूप है
एष वै सान्तपनो अग्निः यद् ब्राह्मणः
गो.ब्रा.
(४) शत्रुओं को तपाने वाला
'मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः सवात्यान्'
वाज.सं २४.१६; मै.सं. ३.१३.१४; १७१.६; आप.श्रौ.सू. २.१४.१०
(५) प्रजा के धर्म कर्म का संस्कार करने वाला
'सान्तपनश्च गृहमेधी च'
वाज.सं. १७.८५; आप.श्रौ.सू. १७.१६.१८

सान्ह - एक याग
'सान्हातिरात्राबुच्छिष्टे'
अ. ११.७.१२

स्थान - तन्त्र ऋग्वेदस्य अष्टौ स्थानानि भवन्ति (ऋग्वेद के आठ स्थान हैं)। ये हैं-शकाल, वाष्कल, एतरेय ब्राह्मण, एतरेयारण्यक, शांखायन, मण्डूक, कौषीतकि ब्राह्मण और कौषीतकि आरण्यक,

स्वानः - (१) उपदेश करता हुआ
'तमा नि षीद स्वानो नार्वा'
अ. १.१०४.१
ज्ञान का उपदेश करता हुआ (स्वानः) विद्वान् ज्ञानी पुरुष (अर्वा) जिस प्रकार अपने आसन पर विराजता है।
(२) उपदेश पूर्ण वचन, आज्ञावचन
'उत स्वानासो दिविषन्त्वग्नेः'
ऋ. ५.२.१०; तै.सं. १.२.१४.७
(३) प्रजा का उपदेष्टा
'स्वान भ्राजाङ्घारे'
वाज.सं. ४.२७; तै.सं. १.२.७.१; श.ब्रा. ३.३.३.११.
(४) योगी, मुक्तपुरुष,
'इन्द्रे स्वावास इन्दवः'
ऋ. ८.३.६; अ. २०.११८.४; साम. २.९३८,

सानु - सन् + ञुण् = सानु,
अथवा 'षो (अन्त करना) + नु = सानु,
अर्थ है- पर्वत शिखर -
'यत् सानोः सानुमारुहद्'
ऋ. १.१०.२; माम. २.६९५
'गिरीणामुपसानुपु'
अ. १०.४.१४
'सानुभ्यः जम्भकम्'
वाज.सं. ३०.१६; तै.ब्रा. ३.४.१.१२
(२) सृ + ल्युट् = सरण,
समुच्छ्रितं भवति, । समु = सानु । यह ऊपर

की तरफ प्रेरित होता है -उठता है अतः सानु है।

(३)समुच्छ्रितानि (समुच्छ्रित जंघे शिखर, ऊंचाई, चोटी, जंघा)

'विजयुषा ययथुः सान्वद्रेः'

ऋ. १.११७.१६

विजय करते हुए या विजय रथ से पहाड़ के शिखर पर जाओ या मेघ की ऊंचाई पर वृष्टि बरसाने जाओ।

'इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्
सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः'

ऋ. ६.६१.२; मै.सं. ४.१४.७: २२६.४; का.सं. ४.१६; तै.ब्रा. २.८.२.८; नि. २.२४.

यह सरस्वती नदी अपनी महती बलवती ऊर्मियों से पहाड़ों की चोटी कमल खनने वाले की तरह काटते हैं।

आधुनिक अर्थ-शिखर, पर्वत शिखर की समतल भूमि, अङ्कुर, जंगल, पथ, ढालुई भूमि, कोई स्थान बिन्दु, आंधी का झोंक, विद्वान्, सूर्य

'आ जङ्घन्ति सान्वेषाम्'

ऋ. ६.७५.१३; वाज.सं. २९.५०; तै.सं. ४.६.६.५; मै.सं. ३.१६.३ ; १८७.६; नि. ९.२०

इन घोड़ो के उठे जानु के ऊपर मारते हैं।

सानुक - (१) साथी संगी के साथ (२) पर्वत शिखरों पर विचरने वाला-हिंसंक पशु, डाकू

'अरातीवा मर्तः सानुको वृकः'

ऋ. २.२३.७

सानुषक् - सदा अनुकूलता

'अर्केषु सानुषक् असत्'

ऋ. १.१७६.५

साप्त - (१) मैत्री भाव का

'अश्याम तत् साप्तमाशुषाणाः'

(२) सप्त वर्गों से उत्पन्न सप्त वर्ग - ब्रह्मचारी गृहस्थ, वाणप्रस्थ, सन्यासी के विशिष्ट कर्म, यज्ञानुष्ठान, विद्वत् सत्कार, संगति करण और दान

'ते नो रत्नानि धत्त न
त्रिरा साप्तानि सुन्वते'

ऋ. १.२०.७; ऐ.ब्रा. ५.२१.१२;

वे विद्वान् पुरुष सवन ऐश्वर्य, राज्याभिषेक और यज्ञ उपासना करने वालों के लिए २१ प्रकार के सुख से स्मरण करने योग्य पदार्थों को उत्तम उपदेशयुक्त क्रियाओं द्वारा एक एक करके धारण करें या करायें।

(३) सातों प्राणों या सातों विकारों का स्वामी-इन्द्र, जीव, परमेश्वर,

'आदित् साप्तस्य चर्किरन्'

ऋ. ८.५५.५

साप्यः - (१) संघ का हितैषी

'प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भूत्'

ऋ. १०.४८.९

(२) सन्धिपूर्वक समवाय बनाकर रहने वाला

'प्रावन् नमीं साप्यं ससन्तम्'

ऋ. ६.२०.६

स्वापिः - सु + अपिः। उत्तम बन्धु

'आ स्वापे स्वापिभिः'

ऋ. ८.५३.५; साम. १.२८२; ऐ.ब्रा. ३.१६.१.२

स्वाभू - (१) सु + आभू। सुष्ठु समन्तात् परोकारे भवति यः

(जो सब तरह से परोपकार रत हो)।

(२) अपना अपना व्यापार करने में कुशल पुरुष

'प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः'

ऋ. १.१५१.२

(३) सब ओर से सुख पूर्वक आप से आप अनायास उत्पन्न होने वाला

'अग्नी राये स्वाभुवम्'

ऋ. ५.६.३; साम. २.१०८८; का.सं. ३९.१३; तै.ब्रा. ३.११.६४; आप.श्रौ.सू. १६.३५.५

(४) उत्तम रूप से समृद्ध और सामर्थ्यवान्

'स्वाभुवो जरणामश्नवन्त'

ऋ. ७.३०.४

साम - स्य + मनिन् = साम।

स्यन्ति खण्डयन्ति दुःखानि

येन तत् साम

जो दुःखों को खण्डित कर देता है।

(२) षोड़शकल प्रजापति, (३) सर्वलोकमय आदित्य, (४) परमेश्वर, (५) सर्वोपास्य पुरुष, (६) ऋक् और सामवेद (७) प्राण, वाक् प्राण (८) स्वर्ग, (९) देवों का अन्न (ज्ञान), (१०) क्षत्रबल, साम्राज्य, (११) सत्, मनः, प्राण, (१२) विद्वानों का ब्रह्म, (१३) ज्ञानमय उपासना का

(सामवेद)
'अर्केण साम'
ऋ. १.१६४.२४; अ. ९.१०.२
अर्क से साम का मनन किया जाता है, अन्न से प्राण और मन प्राप्त किया जाता है। आदित्य से क्षात्रबल की उपमा है।
आदित्य से ब्रह्म की उपमा है, जीव का आत्मा से षोड़श कल प्रजापति का परिज्ञान किया जाता है। प्राण से वाणी उत्पन्न होती है, आत्मा से परम पद या परमात्मा प्राप्त होता है, ऋग्वेद से सामवेद होता है।
(१३) (सामन्) सबके लिए समान रूप से आदर योग्य, (१४) सबके प्रति समान व्यवहार करने वाला श्रेष्ठ पुरुष, (१५) जिसे सब आदर से मिलकर बनावे या करें, (१६) सब मिलकर चलें (१७) जो सब के बराबर है, (१८) जिसमें सब समान हो (१९) प्रजा और उसका अर्म, सहवर्ती राजा दोनों मिल कर जो संवाद करते हैं वह साम है।
'स्तुषे पज्राय साम्ने'
ऋ. ८.४.१७
'साम्ना समानयन् तत् साम्नः सामत्वम्'
तै.ब्रा: २.२.८.७
'समेत्य साम प्राजनतम् तत्-
साम्नः सामत्वम् -जौ उप.ब्रा.
तत् यत् संयन्ति तस्मात् साम'
जै.उप.ब्रा.
'स मा उ ह वा अस्मिन् छन्दांसि'
सम्यात् -
'तद् यदेष सर्वैः लोकौः'
समः तस्मात् एष एव सामः'
जै.उप.ब्रा.
'साम इति छन्दोगाः उपासते।
एतस्मिन् हि इदं सर्वं समानम्'
श. ब्रा.
'यो वै भवति, यः श्रेष्ठतामश्नुते
सः सामन् भवति। असामान्य इति ह निन्दन्ति
ऐ.ब्रा.
'तत् यत् सा च अमश्च तत्
साम अभवत्-जै.उप.ब्रा.'
यद्वै तत्सा च अमश्च सम वदति तत् साम अभवत्
गो.ब्रा. ३.२०

सामं घर्म - (१) समासु भवः सामः (संवत्सर में हुआ पदार्थ साम है (२) संवत्सर में आने वाला घर्म (ग्रीष्म)। दे. 'गिर्वणस्'
'घर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिः'
ऋ. ८.८९.७; साम. २.७८१; का.सं. ८.१६; तै.सं. १.६.१२.२.
संवत्सर में आने वाले घर्म दिनों की तरह तपश्चरण करो।

सामतेजाः - सामवेद के समान तेज़स्वी।
'विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा
ऋक्संशितः सामतेजाः'
अ. १०.५.३०

सामंनस्यः - एकचित्त वाला
'सहृदयं सामंनस्यम्'
अ. ३.३०..१

सामना - (१) सम स्थलवाली (२) एक समान गति से जाने वाली, (३) साम वचनों से युक्त, (४) समान, मन, वाला, (५) सामयुक्त प्रतीति पूर्वक वचन कहने वाला
(६) समावस्था को प्राप्त प्रकृति
'नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिम्'
ऋ. ३.३०.९

सामभृत् - सामवेद धारण करने वाला
'उक्थ भृतं सामभृतं बिभर्ति'
ऋ. ७.३३.१४

सामविप्रः - (१) सामों में बुद्धिमान् सामों को जानने वाला विद्वान् ब्राह्मण, (२) साम उपाय द्वारा राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करने में समर्थ
'यूयमृषिमवथ सामविप्रम्'
ऋ. ५.५४.१४

साम साम - प्राण ही सहायक है।
'षड्योगं सीरमनु सामसाम'
अ. ८.९.१६

साम्नः मेडिः - ऋचा के अक्षरों को परस्पर मिलाने वाला 'स्तोम' (२) साम सम्बन्धी स्वर-सम्मेलन रूप वाक्
'साम्नो मेडिश्च तन्मयि'
अ. ११.७.५

स्तामा - अहाता
'मा मे सख्युः स्तामानमपि'

अ. ५.१३.५

स्थामन् - (१) ठीक स्थान

'स्थाम्नि वृक्षावतिष्ठिपन् '

अ. ७.९६.१

'यदा स्थाम जिघांसति'

अ. १२.४.२९; ३०

(२) गढ़ा

'तिष्ठा वृक्ष इव स्थाम्नि '

अ. ४.७.५

स्थामविष्णुः - गतिशील

'अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः'

ऋ. १०.९४.११

स्राम - त्रुटि

'उत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः'

ऋ. १.११७.१९

हे स्त्री पुरुषो, आप बुद्धिमान् होकर (धिष्ण्या) सुसंगत करें (संरिणीथः)।

(२) लंगड़ा

'स्रामो भविष्यसीत्येनमाह '

अ. ११.३.४५

(३) व्याधि

'उत मा स्रामाद् यवयन्त्विदवः'

ऋ. ८.४८.५

(४) जिसकी आंखों से सदा जल बहता हो।

'द्वार्भ्यः स्रामम् '

वाज.सं. ३०.१०; तै.ब्रा. ३.४.१.६

सामानि - (१) 'सभी' धातु परिणाम अर्थ में आया है। सामानि का अर्थ है-परिणाम

'बृहतः परिसामानि '

अ. ८.९४.४

(२) अपनी शक्तियों सहित, मिश्रित, (३) परस्पर एक दूसरे के सहायक

'षड्ड सामानि षडहं वहन्ति'

अ. ८.९.१६

(४) देवाः सोमं साम्ना

'समानयन्। तत् साम्नः'

सामत्वम्' तै.ब्रा. २.२.८.७

स प्रजापतिः हैवं षोड़ेशधा आत्मानं विकृत्य सार्धं समैत्। तत् यत् सार्धं समैत् तत् साम्नः सामत्वम्

तै.ब्रा.

'तत्यत् संयन्ति तस्मात्'

साम जै.ब्रा.

'तद् यदेष सर्वैर्लोकैः समः

तस्मात् साम जै.ब्रा.

सा च अपश्चेति तत्साम् अभवत

जै.ब्रा.

'साम हि नष्ट्राणां रक्षसा मप हन्ता'

श. ब्रा.

क्षत्र वैः साम

श. ब्रा.

'सामहि सत्याशीः'

सामित्य - (१) समिति में प्रधान, समाज में प्रतिष्ठा-प्राप्त

'यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद'

अ. ८.१०.११

(२) साथ मिलना,

(३) सदस्यता,

(४) प्रतिनिधित्व

'स मा रोहैः सामित्यै रोहयतु'

अ. १३.१.१३.

सामिधेनी - (१) यज्ञ में समिधा आधान की जो ऋचा है वह सामधेनी है, (२) सेना का विशेष अधिकारी

'वज्रो वै सामिधेन्य'

कौ.ब्रा.

'छन्दोभिः सामिधेनीः'

वाज.सं. १९.२०

सायक - (१) बाण, (२) अस्त्र शस्त्र

'वज्रं हिन्वन्ति सायकम् '

ऋ. १.८४.११; अ. २०.१०९.२; साम. २.३५६; मै.सं. ४.१२.४: १९०.३

स्त्यायति - लज्जते (लजाता है)। 'स्त्यै ' धातु अपत्रपण अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है।

स्तायन् - गुप्त रूप से अपने को छिपाता हुआ

'य स्तायन्मन्यते चरम्'

स्तायुः - छल कर अर्थ ग्रहण करने वाला

'स्तायूनां पतये नमः'

वाज.सं. १६.२१; तै.सं. ४.५.३.१; मै.सं. २.९.३: का.सं. १७.१२

स्वायुज् - स्व + आ + युज् + क्विप्। (१) उत्तम रीति से हल में स्वयं आ जुतने वाला बैल, (२)

उत्तम पुरुषों के साथ योग चाहने वाला गमन योग्य सुभगा कन्या
'स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत'
ऋ. १.९२.२; साम. २.११०६
स्वायुधासः – अपने शस्त्र बल धारण करने वाले
'स्वायुधास इष्मिणः'
ऋ. ५.८७.५
सारः – दृढ भाग।
सारङ्ग – (१) चित्र वर्ण वाला या खाकी रंग का कीट
'क्रिमिं सारङ्गमर्जुनम्'
अ. २.३२.२; अ. ५.२३.९
(२) श्याम शरीर वाला या सान कर चलने वाला
सारघ – (१) सरघा अर्थात् मधुमक्षिका द्वारा संगृहीत मधु
'अश्विना सारघेण मा'
अ. ६.६९.२; ९.१.१९
(२) सारवान् अमृत जीव
'मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवः'
ऋ. ८.४.८; साम. २.९५६
सारघा – द्वि.व. एक वचन में 'सारघ'। (१) सार ग्रहण करने वाली मधुमक्षिकाएं (२) नीचे की ओर द्वार वाले छत्ते में सार ग्रहण करने वाली मधुमक्षिकाएं।
'सारघेव गवि नीचीनबारे'
ऋ. १०.१०६.१०
सारथिः – रथ हांकने वाला, रथ वाहक
'चन्द्रमाः सारथिः'
अ. ८.८.२३
'रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरः'
ऋ. वाज.सं. २९.४३; तै.सं. ४.६.६.२; मै.सं. ३.१६.३:१८६.३; का.सं. (अश्व.) ६.१.नि. ९.१६
सारमेय – (१) साराणां निर्माता –दया.
सारवान्, बलवान्, बल युक्त एवं बहुमूल्य पदार्थों का मान प्रतिमान करने वाला या उनसे जाने आने योग्य,
(२) सरमा से उत्पन्न
'यदर्जुन सारमेय
दतः पिशङ्ग यच्छसे'
ऋ. ७.५५.२
सारमेयौ श्वानौ – (१) सरमा नाम्नी कुत्ती से उत्पन्न दो श्वान्
(२) वेग से जाने वाली सूर्य की प्रभा या कान्ति ही सरमा है, उसी से उत्पन्न अति वेगवान् दिन रात 'सारमेयौ श्वानौ' हैं।
(३) जीव से उत्पन्न वेग युक्त प्राण और अपान
'अति द्रव सारमेयौ श्वानौ'
ऋ. १०.१४.१०; अ. १८.२.११; तै.आ. ६.३.१; आश्व.गृ.सू. ४.३.२१.
सारस्वत – (१) सरस्वती वेदवाणी का अभ्यास करने वाला विद्वान् (२) विवाहित पति
'सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक्
तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं सदन्तु'
ऋ. ३.४.८
(३) सरस्वत्या कुशलः –दया.
विज्ञान युक्त वाणी का विद्वान्
सारस्वतं वीर्यम् – सरस्वती वेद वाणी अर्थात् समस्त ज्ञानी विद्वानों का संयुक्त बल
'सारस्वतं वीर्यम्
वाज.सं. १९.८; का.सं. ३७.१८; तै.ब्रा. २.६.१.५; आप.श्रौ.सू. १९.७.५
सरस्वती – (१) आज्ञा पहुंचाने के कार्य में लगायी जाने वाली स्त्री
'फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी
ताः सारस्वत्यः'
वाज.सं. २४.४;
(२) सरस्वती देवता की (३) सरस्वती नामक विद्वानों की प्रतिस्पर्द्धा वाली सभा
'सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोः'
वाज.सं. २४.१, मै.सं. ३.१३.२: १६८.११
(४) सरस्वती नामक सभा का विद्वान् पुरुष
'सारस्वती मेषी'
वाज.सं. २९.५८,५९; तै.सं. ५.५.२२.१; मै.सं. ३.१३.२:१६८.११; का.सं. (अश्व) ८.१,३
सारस्वतौ उत्सौ – सरस्वती अर्थात् वेदवाणी के दो निकास–उद्गम स्थान–मन और वाणी या अध्यापक और उपदेशक
'मनोवा सरस्वान् वाक् सरस्वती
एतौ सारस्वतौ उत्सौ'
श.ब्रा.
'सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम्'

वाज.सं. १३.३५; मै.सं. १.८.८: १२७.१६; श.ब्रा. ७.५.१.३१; तै.ब्रा. १.४.४.९; आश्व.श्रौ.सू. ३.१२.२३; आप.श्रौ.सू. ५.११.६; ९.९.१; मा.श्रौ.सू. ३.३.१

सार्ञ्जयः – नाना न्याययुक्त राज्य कार्यों को करने में समर्थ पुरुषों का राजा ।
'भरद्वाजान् सार्ञ्जयो अभ्ययष्ट '
ऋ. ६.४७.२५

स्वार – (१) ताप, (२)गर्जन
'घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टम् '
ऋ. २.११.७;

स्थारश्मानः – (१) स्थिर किरणों के समान, (२) स्थिर स्वायत्त बागडोर वाले
'स्थारश्मानो हिरण्ययाः
स्वायुधास इष्मिणः '
ऋ. ५.८७.५

स्पार्ह – स्पृहणीय। स्पृह् (aspire) धातु से सम्पन्न।
'स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि '
ऋ ७ २.२३.९, नि. ३.११

स्पार्हराधाः – अभिलषणीय धनों का स्वामी
'मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः '
ऋ. ४.१६.१६

स्पार्हवीर – (१) वीर पुरुषों से अभिलाषा करने योग्य
(३) जिसमें अभिकांक्षित वीर हों ।
'यूयं रयिं मरुता स्पार्हवीरम् '
ऋ. ५.५४.१४

स्वार – (१) क्षात्र बल अर्थात् त्रिष्टुप् से उत्पन्न स्वर समूह –
(२) स्वयं राजमान राजागण
'त्रिष्टुभः स्वारम् '
वाज.सं. १३.५५; मै.सं. २.७.१९:१०४.४; का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.१.८

सारा – (१) सबसे अधिक सारवाली, बलप्रदा, ओषधि
'सार ऋषभाणाम् '
अ. ४.४.४

स्वराज्यम् –स्वराज्य, अपना राज्य,
'अर्चन्ननु स्वराज्यम् '
ऋ. १.८०.१-१६; साम. १.४१०, ४१२,४१३; नि. १२.३४

इन्द्र वृत्त आदि असुरों को मारकर अपना आधिपत्य प्रकट करते तथा शास्त्रीय रीति से अपना राज्य चलाते हैं ।

स्यालः – कास्यात् सूर्यात लाजान् आवपति विवाह काले इति स्यालः (विवाह काल में जो रूप से लावा गिरता है वह स्याल अर्थात् साला है), यह निरुक्त कारों का मत है ।
स्य + अल् (आपवन अर्थ में) + अच् = स्याल (म का ल पृषोदरादिवत्,)
(२) साले के मुख से कन्या के मुख की कल्पना की जाती है । निदान वेत्ताओं के मत से स्यम (वितर्क अर्थ में) + अच् = स्याल (म का ल पृषोदरादिवत्)।
साले के मुख से ही कन्या के मुख की कल्पना की जाती है । अतः वह स्याल है।
(३) अथवा 'स्यालः आसन्नः संयोगेन इति नैदानाः यह साला सम्बन्ध से ही समीप होता है ।
(४) सद् + ण्यत् = स्याद् = स्थात् = स्याल
'अश्रावं हि भूरिदावत्तरा वाम्
विजामातुरुत वा घा स्यालात् '
ऋ. १.१०९.२; तै.सं. १.१.१४.१; का.सं. ४.१५; नि. ६.९
हे इन्द्राग्नी या अध्यापक तथा उपदेशक, मैंने सुना है कि तुम क्रीतापति दामाद और स्याले से भी बढ़कर दान देने वाले हो ।

सालावृक – (१) कुत्ते के समान स्वामिभक्ति और 'साल ' के प्रकोट पर रहने वाला अस्त्रधर वीर
'त्वमिन्द्र सालावृकान् सहस्रम् '
ऋ. १०.७३.३
(१) जंगली कुत्ता या भेड़िया
'सालावृकाणां हृदयान्येता '
ऋ. १०.९५.१५; श.ब्रा. ११.५.१.९
(३) कुक्कुर
'इन्द्रः सालावृकां इव '
अ. २.२७.५

स्थाली – (१) हांडी, कंटियां, दूध दूहने का बर्तन
'स्थालीं गौरिव स्पन्दना '
अ. ८.६.१७
(२) स्थाली नामक यज्ञपान
(३) स्थापन क्रिया

'स्थालीभि स्थालीराप्नोति'
वाज.सं. १९.२७

स्थालीपाक – हंडिया में पकाई रसोई
'स्थाली पाको विलीयते'
अ. २०.१३४.३; शां.श्रौ.सू. १२.२३.१

सावर्ण्य – चारों वर्णों से समान रूप से वरण करने योग्य
'सा वर्ण्यस्य दक्षिणा
वि सिन्धुरिव प प्रथे'
ऋ. १०.६२.९

सामवर्णि – समान रूप से वरण करने योग्य
'सावर्णेर्देवाः प्रतिरन्त्वायुः'
ऋ. १०.६२.११

स्तावाः – (१) दक्षिणा जो सुपात्र में दी जाकर यज्ञ और यज्ञ कर्त्ता की स्तुति का कारण है।
(२) स्तुति योग्य
'तस्य दक्षिणा अप्सरस स्तावा नाम'
वाज.सं. १८.४२; तै.सं. ३.४.७.१; मै.सं. २.१२.२: १४५.६; का.सं. १८.१४; श.ब्रा. ९.४.१.११

स्वावसु – (१) स्ववसु अपने देह या आत्मा के भीतर रहने वाला प्रभु (२) अपने धन को स्तोताओं को देने वाला
अग्नि–सा.
'ईडे अग्नि स्वावसुं नमोभिः'
ऋ. ५.६०.१; अ. ७.५०.३; मै.सं. ४.१४.११: २३२.१३; तै.ब्रा. २.७.१२.४; आश्व.श्रौ.सू. २.१३.२

स्नाव – स्नायु
'स्नावभ्यः स्वाहा'
वाज सं. ३९.१०; तै.सं. ७.३.१६.२: ४.२१.१; ५.१२.२; का.सं. (अश्व.) ३.६; ४.१०; ५.३

सावित्र – (१) सन्तानोत्पादक धर्म से युक्त पुत्रोत्पादक पिता
(२) सविता का उपासक (३) परमेश्वर का उपासक
'सावित्रोऽसि चनोधा'
वाज.सं. ८.७; मै.सं. १.३.२७: ३९.१५; श.ब्रा. ४.४.१.६
(४) सविता पद के सम्बन्ध का पुरुष
'शितिरन्धोऽन्यन्तः शितिरन्धः
समन्तशितिरन्ध्रस्ते सावित्राः'
वाज.सं. २४.२; तै.सं. ५.६.१३.१; मै.सं. ३.१३.३:१६९.३ का.सं. (अश्व.) ९.३
(५) सविता, सर्व प्रेरक के सविता के समान ज्ञानी, आचार्य पद के योग्य
'कृकवाकुः सावित्रः'
वाज.सं. २४.३५; तै.सं. ५.५.१८.१; मै.सं. ३.१४.१५:१७५.९; का.सं. (अश्व.) ७.८

सावित्री – (१) सूर्य की पुत्री सूर्या–सा.
(२) प्रकाश उत्पन्न करने वाली प्रभा
'येन सूर्या सावित्रीम्'
अ. ६.८२.८
(३) गायत्री मन्त्र भी सावित्री है।

साविषत् – सुनोतु, ददातु, उत्पन्न करें। सु (उत्पन्न करना) के लुङ् प्र.पु.ए.व.का रूप या लोट् म.पु. ए.व. में प्रयुक्त
'श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नः'
ऋ. १.१६४.२६; अ. ७.७३.७, ९.१०.४; नि. ११.४३
सविताहमारे लिए सभी सवों में उत्तम सव (जल) उत्पन्न करें (साविषत्)।

स्वावसु – (१) स्वेषु यो वसति,
स्वान् वा वासयति सूर्यः
(२) अपनों में रहने और अपनों को बसाने वाला
'अस्माकं शर्म वन वत् स्वावसुः'
ऋ. ५.४४.७

स्थाविरी – स्थिरः
'प्रान्तर्ऋषयः स्थाविरी रसृक्षत'
ऋ. ९.८६.४; साम. २.२३६

स्वावृक् – सुखप्रद
'स्वावृक् देवस्यामतं यदी गोः'
ऋ. १०.१२.३; अ. १८.१.३२

स्वावेशः – (१) सु + आवेशः। उत्तम रीति से समस्त विश्व में व्यापक –बृहस्पति
(२) सुखपूर्वक राष्ट्र में प्रविष्ट
'बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः'
ऋ. ७.९७.७; मै.सं. ४.१४.४; २२०.१; का.सं. १७.१८; तै.ब्रा. २ .५.५.५
(३) उत्तम भावों और बर्तावों वाला, (४) स्व + आवेशः। अपने ही घर के समान बर्तने वाला
'अस्मान् त्स्वावेशो अनमी वो भवा नः'
ऋ. ७.५४.१; तै.सं. ३.४.१०.१; मै.सं. १.५.१३: ८२.१३.

स्वावेशा - सु + आवेश । अर्थ है ।

(१) सुखपूर्वक उपचरण करने योग्य या सुखपूर्वक उपचरणीय (२) स्वस्ति नामक अन्तरिक्षस्थ देवता का विशेषण, (३) देवगोपा को मेघ मानकर मेघ को स्वस्ति नामक देवता मानस्वस्ति को ही स्वावेशा कहा गया है, यह आर्यसमाजी व्याख्याकारों का मत है ।

(३) उत्तम निवासक -मेघ

'स्वावेशा भवतु देवगोपा'

ऋ. १०.६३.१६; नि. ११.४६

वह रक्षिका देवी (देवगोपा) सुख पूर्वक उपचरणीय है (स्वावेशा) । वह देवों की रक्षा करें (देवगोपा भवतु) ।

सुख प्रदाता या भूमि रक्षक या देव भावों का रक्षक या यज्ञकर्ता देव जनों से रक्षणीय (देवगोपा) मेघ हमारा उत्तम निवासक हो (स्वावेशा भवतु) ।

साशन - स + अशन । खाने वाला चेतन जीव

'साशनाशनेऽअभि'

ऋ. १०.९०.४; वाज.सं. ३१.४; तै.आ. ३.१२.२.

स्वाशित - सु + आशित । राष्ट्र को सुखपूर्वक प्राप्त

'स्वाशितः पुनरस्तं जगायात्'

ऋ. १०.२८.१

स्वाशीः - सुन्दर आशाजनक

'स्वाशिष भरमायाहि सोमिनः'

ऋ. १०.४४.५; अ. २०.९४.५

स्वाशु - (१)सु + आशु । उत्तम गतिवाला, तीव्रगामी

'स्वाशुरश्वः सुयामी'

अ. २०.१२८.(६) ११; शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.६

'तीक्ष्णश्रृंगाः स्वाशवः'

अ. १९.५०.२

सासहानः - (१) सब शत्रुओं को पराजित करता हुआ

'सासहानो अवातिरः'

ऋ. १.१३१.४; अ. २०.७५.२

(२) पुनःपुनः दयन करने वाला

'सासहानं सहीयांसम्'

अ. १७.१.१; २.३;४;५

सासहान् - सह् + क्वसु । अर्थ है तिरस्कर्ता, पराजयकर्ता

सासहिः - (१) शत्रु को पराजित करने वाला, (२) सबसे बड़ा सहनशील सत्यस्वरूप

'निष्टमा शत्रुं पृतनासु सासहिः'

ऋ. २.२३.११

(३) यङन्त सह + कि = सासहि । अत्यन्त सहनशील ।

स्वासः - (१) सु + आस । सुन्दर मुख वाला ।

(२) स्व + आस । अपना मुख

'शुक्रं स्वासं परशुं न तिग्मम्'

ऋ. ४.७.८

स्वासचः - स्व + आसचः । अपना सहयोगी

'सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचान्'

ऋ. १०.२३.४; अ. २०.७३.५.

स्वासद् - सु + आ + सद् + क्विप् उत्तम स्थितिवाला

'स्वासदसि सूषा'

अ. १६.४(१).२

स्वासस्थ - सु + आसस्थ । उत्तम रीति से स्थित, बैठा, जमा हुआ

'स्वासस्थमिन्द्रेणासन्नम्'

वाज.सं. २८.२१; तै.ब्रा. २.६.१०.६

स्वासस्था - सु + आस + स्था उत्तम आदर पूर्वक वाणी

'स्वासस्थां देवेभ्यः'

वाज.सं. २.२

स्वासस्थे - शुभ आसन पर विराजमान

'स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः'

ऋ. १०.१३.२; अ. १८.३.३९; ऐ.ब्रा. १.२९.७; तै.आ. ६.५.१.

सासह्वानः - (१) पराजय करने वाला

'सासह्वांसं युधामित्रान्'

ऋ. ८.१६.१०; अ. २०.४६.१

(२) बरबार पराजित करने में समर्थ-राजा

'सासह्वाँश्चाभियुग्वा च च विक्षिपः स्वाहा'

वाज.सं. ३९.७

सास्रेधन्ती - विनाश करती हुई बला

'सास्रेधन्ती विनश्यतु'

ऋ. ८.२७.१८

साहदेव्य कुमारः - (१) देव, विद्वान् या वि जिगीपु सैनिकों को साथ रखने वाला नायक, (२)

विद्याभिलाषी या विद्वान् गुरुओं के सहित रहने वाले विद्यार्थियों में उत्तम (३) कुत्सित आचरण के लिए दण्ड देने वाला गुरु, (४) विद्यादाता गुरु के साथ रहने वाला

'बोधद्यन्मा हरिभ्याम्
कुमारः साहदेव्यः '

ऋ. ४.१५.७

साहन्त्य – सबको अपने वश में करने वाला नियामक

'येन सोम साहन्त्य'

अ. ६.७.२

साहस्र – (१) सहस्रों शिरों, बाहुओं, पादों, चक्षुओं एवं अनन्त सामर्थ्यों से युक्त

'साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् '

अ. ९.४.१

(२) सहस्रों फलों को देने वाला हवि

'साहस्रं शत धारमुत्सम् '

अ. १८.४.३५

साहस्रपोष – (१) सहस्रों प्रकार का पोषण कार्य

'साहस्रे पोपे अपि नः कृणोतु'

अ. ९.४.२

स्वाहय – (१) स्वाहा करने योग्य (२) स्वागत करने योग्य (३) उत्तम रीति से स्तुति अर्चा करने योग्य ।

'महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः '

साहान् – पराजित करने वाला ।

(२) सर्वविजयी

'येषां शुष्मः पृतनासु साहान् '

ऋ. ६.६८.७

स्वाहा – सु + आहा । (१) सुख्याति, महान् कीर्ति, महिमा (२) स्वागत

'शमिताय स्वाहा '

अ. १९.४२.२

'स्वाहेभ्यो दुराहामीभ्यः '

अ. ८.८.२४, कौ.सू. १६.१९

(३) हवन करने के समय देवता के नाम से 'स्वाहा ' कहा गया है । स्वा-दयानन्द ने इसका अर्थ 'स्वागत ' किया है । जैसे ' ऊं प्रजापतये स्वाहा ' का अर्थ उनके अनुसार 'यज्ञ के प्रजा पति का स्वागत है ' –ऐसा हुआ ।

(४) वेदोक्त आज्ञा के अनुसार भी उन्होंने इसका अर्थ किया है । दे. 'अयास '

'प्रजानन् यज्ञमुप याहि विद्वान् स्वाहाः '

वाज.सं. ८.२०; वाज.सं.(का.) ९.३.६; तै.सं. १.४.४४.२; श.ब्रा. ४.४. ४.१२

हे ब्रह्मचारी, गृहस्थ धर्म को समझता हुआ वेदोक्त आज्ञा के अनुसार गृहस्थ-यज्ञ को कर । –दया.

हे अग्नि, तू यज्ञ कर्म का ज्ञाता है अतः यज्ञ में आ । तेरे लिए स्वाहा या स्वागत है।

(५) ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार 'स्वा वाक् आहं' से ही स्वाहा हुआ है । लिखा भी है–

'तं स्वा वाक् अभ्यवदत् जुहु ईध '

इति तत् स्वाहाकारस्य जन्म ।'

अर्थात् स्वावाक् ने उसे 'जुहुधि' ऐसा कहा और इसी से स्वाहाकार का जन्म हुआ । स्वा + आह + घञ् + सु = स्वाहा ।

सत्यभाषण या सत्यवक्ता में वागिन्द्रिय अपनी हृदयस्थ वाणी कहती है ।

(६) 'स्वं प्राह ' से स्वाहा बना । 'स्वम् ' का अर्थ ' आत्मीयम् ' है । अतः इसका 'अर्थ आत्मीयं प्राह' (आत्मीय को कहा) ऐसा हुआ । 'स्व' शब्द पुल्लिंग में रहने से ज्ञाति और आत्मा का वाचक हुआ। तीनों लिंगों में रहने में आत्मीय (अपना) का वाचक और स्त्रीलिंग छोड़ अन्य लिंगों में धन का वाचक है। अपने पदार्थ को ही अपना समझना, दूसरे के पदार्थ को ग्रहण नहीं करना ।

(७) अथवा सुष्ठु प्रकार से हुत हवि से अग्नि में हव्य देता है (स्वाहुतं जुहोति) । अतः इस हवन क्रिया का द्योतक 'स्वाहा ' शब्द है । सु + आ + हु + ड + सु = स्वाहा । 'आ ' का अर्थ आहुत या गृहीत् है ।

(८)सुभाषित वचन भी स्वाहा है ।

(९) हव्य अर्पित करते समय 'तुभ्यम् इदम् ' –ऐसा कहा जाता है । यह कहना सुन्दर है अतः 'सु + आह = स्वाह; स्वाह + टा = स्वाहा,

(१०) अथवा सु + आह + घञ् = 'स्वाह' और 'सुपां सुलोपः ' से सभी विभक्तियों के स्थान में 'आ ' आदेश ।

(११) प्रियवक्ता या कल्याण वक्ता भी इसका अर्थ है ।

स्वाहाकार - अग्नि में आहुति रूप से अर्पित
'स्वाहाकारेणान्नादेनान्नमत्तिः'
अ. १५.१४.१६

स्वाहाकृत - (१) स्वयं अपनी शक्ति से इन्द्रियों में प्रविष्ट आत्मा (२) स्वाहा द्वारा, देवोंतक पहुंचाया यज्ञ
'स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञः'
अ. ७.७३.३
(३) उत्तम स्तुति से युक्त (४) उत्तम यश, कीर्त्ति से सम्पन्न, (५) सत्य वाणी से विश्वास योग्य
'स त्वमग्निं वैश्वानरं
सप्रथसं गच्छ स्वाहाकृतः'
वाज.सं. २२.३; मै.सं. ३.१२.१: :१६०.१; श.ब्रा. १३.१.२.३
(५) उत्तम रीति से आहुति किया (५) उत्तम वचनों से प्रशंसित
'स्वाहाकृतस्य तृम्पतम्'
ऋ. ८.३५.२४

स्वाहाकृतं हविः - स्वाहाकार पूर्वक मंत्र द्वारा अर्पित हवि ।
'स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः'
ऋ. १०.११०.११; अ. ५.१२.११; वाज.सं. २९.३६; तै.सं. ३.१.४.४; मै.सं. ४.१३.५: २०५.६; का.सं. १६.२०; ऐ.ब्रा. २.१३.५; तै.ब्रा. ३.६.३.४; आप.श्रौ.सू. १४.३०.५; नि. ८.२१
देवता स्वाहाकार पूर्वक मंत्र द्वारा अर्पित हवि पीवें ।

स्वाहाकृति - (१) जो यज्ञ के लिए आहुत हो स्वाहा-स्वाहा कहकर संस्कृत हो वही स्वाहाकृति है ।
(२) स्वाहा-स्वाहा का अनुकीर्त्तन (३) प्रतिष्ठा प्रतिष्ठा यै स्वाहा कृतयः -ऐ.ब्रा.
(४) उत्तम वचन बोलने वाला (५) स्वाहा करने वाली
'स्वाहाकृतीनां स्वाहा'
वाज.सं. २८.११

स्वाहाकृती - (१) स्वाहा कार और स्तुति
(२) उत्तम वचन भाषण हव्यादि
'स्वाहा कृतीषु रोचते'
ऋ. १.१८८.११

स्तिः - (१) संघ बनाकर रहने वाला
'उत त्रायस्व गृणत उत स्तीन्'
ऋ. १०.१४८.४
(२) संहत, मिलित
'उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन्'
ऋ. ७.१९.११

सिकत्य - (१) बालू का विज्ञान जानने वाला
'नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च'
वाज.सं. १६.४३; तै.सं. ४.५.८.२; का.सं. १७.१५

सिकता - (१) कस् (सिकस्ना) + क्त = कसिता = सिकता = बालू (२) सेचन द्रव्य, बालू, (३) बालू के समान रुक्ष पदार्थ
'पांसूनक्षेभ्यः सिकता अपश्च'
ऋ. ७.१०९.२

सिकतावली - (१) रजोधर्म की नाड़ी (२) उम्र में बड़ी स्त्री
'परि वः सिकतावती'
अ. १.१७.४

स्रिक - (१) तेजस्वी ।
'ये त्वा देवो स्रिकं मन्यमानाः
पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः'
ऋ. १.१९०.५
धनी होते हुये भी भोगप्रधान पापों से जीर्ण एवं पापरत जो तुझ कल्याण कारी एवं तेजस्वी को अपमानित करते हुए (ये पज्राः पापाः त्वा भद्रं स्रिकं मन्यमानाः) अपने ही लिये जीते हैं और परोपकार में धर्न नहीं लगाते (उपजीवन्ति)

सिक्त - (१) सींचा हुआ । (सिञ्च् + क्त)
'कोशेन सिक्तमवतं न वंसगः'
ऋ. १.१३०.२
मेघ से सींचे जलाशय को प्यासा बैल जलपान करता है।

स्फिग्य - (१) प्रजोत्पादन योग्य अर्द्धांगिनी
(२) प्रतिकार योग्य प्रजाजन
'सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा'
ऋ. ८.४.८; साम. २.९५६

सिच् - (१) सेंक, (२) वस्त्र, (३) वीर्य
'सेचन द्वारा उत्पत्ति'
(४) राज्याभिषेक
(५) वस्त्र पाना
'पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे ते'
ऋ. ३.५३.२

(६) वस्त्र
'मातापुत्रं यथा सिचा '
ऋ. १०.१८.११; अ. १८.२.५०; ३.५०; तै.आ. ६.७.१.
(७) वस्त्र की कियारी
'ये अन्ता यावती सिचः '
अ. १४.२.५१
(८) सेनापङ्क्ति
'अमित्राणाममू सिचः '
अ. ११.९.१८; १०.२०
(९) वस्त्रांचल, आंचल
(१०) अभिषेक क्रिया

सिचौ - द्वि.व.। जल बरसाने वाले वायु और मेघ
'उद् यंयमीति सवितेव बाहू
उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् '
ऋ. १.९५.७
सूर्य जिस प्रकार वृष्टि करने वाले वायु और मेघ दोनों को अपने वश करता हुआ ऊपर उठाता और नियम में रखता है, उसी प्रकार जो नेता सेना नायक भयङ्कर होकर दोनों की शस्त्र वर्षणकारी सेनाओं को दो बाहुओं के समान युद्ध के लिए उद्यत करता है ।

सिञ्चत - उत्सिञ्चत (उत्सिक्त करो) ।

सित - (१) कष्टों, अज्ञानों, या दुःखों से घिरा हुआ,
(२) बंधा हुआ
(३) शुल्क, उज्ज्वल ।
'सितमिति वर्णनाम '
अवदातः सितो गौरः '
-अभिधान कोष

स्वित- (१) सुख से गुजरने वाला जीवन
'शरद् वर्षाः स्विते नो दधात '
अ. ६.५५.२
(२) उत्तम मार्ग
'स्विते मा धाः '
वाज.सं. ५.५; गो.ब्रा. २.२.३, श.ब्रा. ३.४.२.१४; आश्व.श्रौ.सू. ४.५.३; वै.सू. १३.१८

स्वित्- अव्यय । निश्चयार्थक । ही
'अस्ति स्विन्नु वीर्यं तत् त इन्द्र
न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः '
ऋ. ६.१८.३

स्विद् - अ. । निश्चयार्थक, ही
'अरिरग्ने तव स्विदा '
ऋ. १.१५०.१; साम. १.९७; नि. ५.७
हे अग्ने, तेरा ही सेवक मैं...

सिध्मः - (१) सिध् (गत्यर्थक) + मक् = सिध्म ।
वेगवान् प्रहार
'अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्'
ऋ. १.३३.१३; मै.सं. ४.१४.१३:२३७.१३; तै.ब्रा. २.८.४.४
इस विद्युत् का सब तरफ जाने वाला वेगवान् प्रहार छिन्न भिन्न करने योग्य मेघों तक पहुंचता है ।
(२) शत्रुओं का साधयिता या साधक वज्र ।
'अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्'
ऋ. १.३३.१३.
इस इन्द्र का शत्रुओं का साधयिता या साधक वज्र (सिध्मः) शत्रुओं को लक्षित कर गया (शत्रून अभि अजिगात्) ।
(३) सधा हुआ - दया. (४) साधक -सा.
(५) तीव्र वेग से जाने वाला साधन
'सिध्मास्तारकाः '
वाज.सं. २४.१०; मै.सं. ३.१३.११: १७०.११; आप.श्रौ.सू. २०.१४ .६

सिध्मल - (१) त्वचा रोग का रोगी (२) सुख-साधक पदार्थों से युक्त पुरुष
'विश्वेभ्यो भूतेभ्यः सिध्मलम् '
वाज.सं. ३०.१७

सिध्र - (१) जाने वाला पथिक
'दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा'
ऋ. १.१७३.११
(२) सिध् (सिद्ध करना) साधना) + रक् = सिध्र । साधक ।
'सिध्रमद्य दिविस्पृशम् '
ऋ. १.१४२.८; २.४१.२०; तै.सं. ४.१.११.४; मै.सं. ४.१०.३:१५० .१४; आप.श्रौ.सू. १७.७.४; नि. ९.३८
स्वर्गादि के साधक (सिध्रम्) तथा देवों के लोक में, पहुंचाने वाले यज्ञ को (दिविस्पृशम्) ।

स्त्रिध्र - (१) दुःखजनक पाप,
'पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्त्रिधः '
'अवयाता सदमिद् दुर्मतीनाम्'
ऋ. १.१२९.११
हे इन्द्र, तू ही दुःख जनक पाप से बचा (स्त्रिधः) । तू दुष्ट जनों को सदा ही (सदमित्)

नीचे गिरा देने वाला है ।
(२) हिंसक ।
'तितिर्वांसो अति स्रिधः'
ऋ. १.३६.७
(३) निन्दित आचार विचार वाला
'अति निहो अति स्रिधः'
अ. २.६.५; वाज.सं. २७.६; तै.सं. ४.१.७.२; मै.सं. २.१.७.७; मै.सं. २.१२.५:१४९.४; का.सं. १८.१६

स्रिधत् - नष्ट हो । स्रिध्' नष्ट होना अर्थ में आया है ।
'मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः'
ऋ. ७.३४.१७; नि. १०.४५
इस यज्ञ की कामना वाले यजमान का यज्ञ विनष्ट हो ।

स्विध्मा - सु + इध् + मविन् = स्विध्मन् । प्र.ए. में स्विध्मा । (१) उत्तम दीप्ति वाला सूर्य, (२) जिससे सुन्दर सुख का प्रकाश होता है-दया. । दे. 'वनधिति' ।

सिनम् - (१) अन्न, (२) उत्तम राज्य प्रबन्ध ।
'यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत्'
ऋ. २.३०.२
(३) सिञ् (बन्धनार्थक) + म्नक् = सिन । सिनम् अन्नम् भवति सिन अन्न को कहते हैं, क्योंकि अन्न जीवों को बांधता है-धारण करता है (सिनाति भूतानि) ।
'इमा उ वां भृमयो मन्यमानाः
युवावते न तुज्या अभूवन्
क्व त्यदिन्द्रावरुणा यशो वाम्
येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः'
हे इन्द्र और वरुण, भ्रमणशील तथा स्तुति करती हुई (भृमयः मन्यमानाः) आप दोनों की (वाम् इमाः) यजमानों को अभिमत अर्थ देने में समर्थ न हुई (तुज्यः न अभूवन्) । इसी से कहता हूं कि आप दोनों का यह यश या ख्याति कहां है (त्यत् वाम् यशः क्व) जिससे तुम इन स्तुतियों से स्तुत होकर समान ख्यान यजमान को (सखिभ्यः) पहले अन्न देते थे (सिनम् भरथः स्म) ।
स्वा-दयानन्द का अर्थ-हे दीप्यमान प्रधानमन्त्री तथा निर्वाचित राजा, ये तुम्हें मानने वाली तुम्हारी भ्रमणशील प्रजाएं (उ इमाः मन्यमानाः भृमयः) यौवन वाले तथा प्रबल शत्रु के लिए (युवायते) हिंसनीय न हो (तुज्याः न अभूवन्) । तुम्हारा वह यश कहा है (वाम् त्यत् यशः क्व) जिस से मित्रों के लिए (सखिभ्यः) अन्न लाते थे (सिनं भरथः स्म्) ।
(४) परस्पर प्रेम बांधने वाला बल और अन्न ।
'येन स्मां सिनं भरथः सखिभ्यः'
ऋ. ३.६२.१; नि. ५.५.
(५) नाना व्यवस्थाओं में बांधने वाला परमेश्वर
(६) वृत्ति अर्थ या अन्न से बांधने वाला स्वामी ।
'रथं न तष्टेव तत्सिनाय'
ऋ. १.६१.४; अ. २०.३५.४
(७) हृदय का प्रेमी आनन्द मय, रसमय

सिन्धवः - (१) जल धाराएं, (२) नदियां, (३) बन्धन में बंधे जीवगण
'ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति'
ऋ. २.२८.४

सिनीवाली - सिनीवाली कुहू इति देवपत्न्य इति वैरुक्ताः अमावास्या इति याज्ञिकाः या पूर्वा अमावस्या सा सिनीवाली । या उत्तरा सा कुह इति विज्ञायते । (१) अर्थात् सिनी वाली कुहु है या (२) देवपत्नियां हैं यह नैरुक्तों का मत है (३) याज्ञिक इसे अमावस्या बताते हैं। पहली अमावास्या दृष्टेन्दु है और उसे 'सिनीवाली' कहते हैं और जो दूसरी है वह कुहू कहलाती है (नष्टेन्दुकला) । (४) अमर कोष में भी कहा है -
'सा दृष्टेन्दु सिनीवाली
सा नष्टेनदुकला कुहूः'
चतुर्दशी का अन्तिम प्रहर और अमावस्या के आठ प्रहर-यही नव प्रहर, चन्द्रमा के क्षप का काल है। उनमें प्रथम दो प्रहरों में चन्द्रमा की सूक्ष्मता और अन्तिम दो प्रहरों में सम्पूर्णतः क्षय हो जाता है । इसी से अमावस्या का प्रथम प्रहर सिनीवाली और अन्तिम दो प्रहर कुहू तथा बीच के प्रहर 'दर्श' कहलाते हैं । अतः अमावस्या के तीन भाग हैं -
प्रथम प्रहर-सिनीवाली
बीच के प्रहर - दर्श । अन्तिम दो प्रहर -कुहू
(६) प्रथम प्रहर में चन्द्रमा सूक्ष्मरूप से द्रष्टव्य

है उसे सायण ने दृष्ट चन्द्रा अमावस्या कहा है। (७) ऋतु गम्या पत्नी-दया. । दे. 'दिदिड्ढि

'सिनीवालि पृथुष्टुके '

ऋ. २.३२.६; अ. ७.४६.१; वाज.सं. ३४.१०; तै.सं. ३.१.११.३; मै .सं. ४.१२.६:१९५.४; का.सं. १३.१६; वै.सू. १.१४; साम.मं. ब्रा. २.६.२; नि. ११.३२

हे दृष्टचन्द्रा अमावस्या, हे विस्तीर्ण केश कलाप वाली या विस्तीर्ण जंघों वाली या विस्तीर्ण केश कलाप वाली या अत्यन्त पूजनीय (पृथुष्टुके) ऋतुगम्या स्त्री (सिनीवालि)-दया.

(८) सिनी का अर्थ अन्त है और 'वाल ' का अर्थ पर्व, गांठ, ग्रन्थि, गिरह ।

(सिनम् अन्नं भवति सिनाति भूतानि । वालं पर्व वृणोतेः तस्मिन् अन्नवती वालिनी वा । वालेन इव अस्याम् अणुत्वात् चन्द्रमसः सेवितव्यः भवति इति वा ।)

इस अमावास्या के प्रथम प्रहर में अणु के सदृश्य दृश्यमान चन्द्रमा रहते हैं अतः वह सिनीवाली है ।

(९) सिञ् (बन्धनार्थक) + नक् = स्विन्, सिन + ई = सिनी (न के अ का लोप) । अर्थ-अन्नवती । चन्द्रमा की रश्मियों से ही अन्न का गर्भ सम्भव होता है ।

वाल पर्व को या उत्सव तिथि को या सन्धि समय को कहते हैं । अमरकोष में-

तिथि भेदे क्षणे पर्वे और हैम कोष में-

'पर्व प्रस्तारोत्सवयोः
पन्यौ विषुवदादिपु
दर्श प्रतिपत्सिन्धौच
तिथिग्रन्थविशेषयोः '

ऐसा आया है ।

(१०) वृ + वनिप् = पर्वन् (वाहुलक से) । उस पर्व में यह अन्नवती होती है अतः यह सिनीवाली कहलायी ।

'वाले सिनी ' - इस समास में 'राजदन्त ' के समान 'सिनीवाली ' रूप हो गया । ङीप् प्रत्यय जोड़ा गया है ।

अथवा सिनी च असौ वाली च इति सिनी वाली (यह अन्न वाली भी है और बालवाली भी है) ।

(११) अथवा यह औपमिक नाम है- बाल अर्थात् केश के सदृश अति सूक्ष्म होने के कारण यह सेवितव्य है । चन्द्रमा अत्यन्त सूक्ष्म होता है ।

(१२) अथवा वालेन इव सीव्यते इति सिनी वाली (पृषोदरादिवत्) (१३) उत्सव में प्रशस्त अन्न बनाने वाली द्विजपत्नी । सिनी का अर्थ है - प्रशस्त अन्न वाली (प्रशस्त अन्नवती वाले उत्सवे या सा सिनीवाली) ।

(१४) अथवा इस पत्नी में बाल की तरह सूक्ष्म इडा नाड़ी सेवनीय होती है । जब पत्नी की इडा नाड़ी में प्राण संचार कर रहे हों उस समय गर्भाधान करने से अवश्य सन्तान होती है ।

(१५) एकमात्र सन्तानोत्पत्ति के लिए जिससे संभोग किया जाता है उस देव-पत्नी को सिनीवाली कहते हैं ।

सेवनीया-सेवनी-सेनी-सिनी ।

(१६) ऋतुकालभवा नारी पञ्चमेऽह्नि यदा भवेत्

'सूर्यचन्द्रमसोर्योगे सेवनात् पुत्रसंभवः '

शिवस्वरोदय - २८६

'ऋत्वारम्भे रविः पुंसाम्
स्त्रीणां चैव सुधाकरः
उभयोः संगमे प्राप्ते
वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात्

शिवस्वरोदय-२९१ '

(१७) समस्त प्राणियों को अपने में बांधने वाली और सब को चेतना रूप से वरण करने वाली प्राणशक्ति

सिनीवाली अन्न के बल पर सब इन्द्रियों को बांधती हैं ।

'सिनीवाली नयत्वाग्रमेषाम् '

अ. २.२६.२

(१८) बन्धन में बान्धने वाली और पुरुष को वरुण करने वाली स्त्री ।

'गर्भ धेहि सिनीवालि'

ऋ. १०.१८४.२; अ. ५.२५.३; श.ब्रा. १४.९.४.२०; बृह.आ.उप. ६.४.२०; साम.मं.ब्रा. १.४.७; गो.गृ.सू. २.५.९; आप.मं.पा. १.१२.२; पा.गृ.सू. १.१३.

(१९) अन्न प्रदान करने वाली स्त्री, गौ या पृथिवी

'सिनीवाल्युयावहत् '

अ. १९.३१.१०

सिन्धु - स्यन्दू (स्यन्द्) + उ = सिन्धु (स्य के य का सम्प्रसारण से इ और 'न्द' के द् का ध्) । स्यन्दति इति सिन्धुः । सिन्धुः स्रवणात् (स्रवणार्थक स्यन्द धातु से सिन्धु बना है) । विश्व कोश में भी लिखा है-

'शिन्धुः समुद्रे नद्याञ्च
नदे देशे भदानयोः'

अर्थ (२) नदी, स्रोत, सिन्धु नामक नदी, (३) शतन्दु (सजलज) - सा. । दे- 'अच्छ'

'प्रसिन्धुमच्छा बृहती मनीषा
अवस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः'

ऋ. ३.३३.५; नि. २.२५

मैं कुशिक का पुत्र (विश्वामित्र) बड़ी महत्वाकांक्षा से प्रेरित हो अपनी रक्षा का इच्छुक शतद्रु के समक्ष जोर देकर बुलाता हूँ।

'सुदेवो असि वरुण
यस्य ते सप्तसिन्धवः
अनुक्षरन्ति काकुदं
सूर्म्यं सुषिरामिव ।'

ऋ. ८.६९.१२

हे वरुण, तू शोभन देव है जिस तेरे तालु से (यस्य काकुदम् अनु) सात नदियां या स्रोत या प्रथमा आदि सात विभक्तियां बहती हैं (सप्त सिन्धवः क्षरन्ति) जैसे सुन्दर छिद्र वाले लोहे की नली से होकर जल बहता है (सुषिराम् सूर्म्यम् इव) ।

सूर्मि - (१) कल्याणोर्मि -यास्क (२) सुन्दर ऊर्मि वाला स्रोत

नगरोदक - निस्सरण मार्गदुर्ग (३) स्थूण अयस् (लोह्रा) जैसे सूर्मि स्थूणायः

(४) रश्मि-जाल-सा । उक्त ऋचा का अन्य अर्थ है-अज्ञान नाशक विद्वन् (वरुण), तू सुदेव है जिसके तालु में सात शब्द नदियों के रूप में स्थित विभक्तियां। जैसे सुछिद्र नाली में जल सुगमतया बड़े प्रवाह से बहता है (सुषिरां सूर्म्यम् इव अव क्षरन्ति) एवं निरन्तर धारा रूप में प्रवाहित हो रही है ।

पतञ्जलि का अर्थ जो महाभाष्य में दिया गया है-

हे वरुण, तू सत्य देव है जिस के तालु में सात विभक्तियां हैं । सुछिद्र लौह प्रतिमा में जलती हुई आग चारों तरफ के छिद्रों से प्रकाशित होती हैं वैसे ही प्रकाशमान हो रही हैं ।

(४) जल । जल स्यन्दमान है ।

(५) राजा के विचलित होने से प्रजाएं भी विचलित हो जाती हैं अतः वे सिन्धु हैं ।

'ता वो नामानि सिन्धवः'

अ. ३.१३.१; तै.सं. ५.६.१.२; मै.सं. २.१३.१:१५२.८; का.सं. ३९.२;

(६) सबको अपने साथ बांधने वाला, (७) सब के पापों को दूर करने वाला-सब को प्रेरित करने वाला प्रभु, (८) जिसमें समस्त प्राण आकर लय हो जाते हैं वह आत्मा ।

'अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरः'

ऋ. १०.७५.४

(९) गतिशील पदार्थ, (१०) प्राण, (११) सबका बन्धक आदित्य

'तद् यद् एतैरिदं सर्वं सितं तस्मात् सिन्धवः'

जै.उप. १.२९.९

'प्राणो वै सिन्धुश्छन्दः'

श.ब्रा.

'जगता सिन्धुं दिव्यस्कभायत्'

ऋ. १.१६४.२५; अ. ९.१०.३

(१२) स्यन्दन शील यज्ञ-सागर

(१३) सबका आश्रय भूत परमेश्वर

'सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणम्'

ऋ. ९.८६.४३; अ. १८.३.१८; साम. १.५६४; २.९६४

(१४) नदी नहर का निर्माण, विरोध एवं उदक द्वारा गमनागमन

'सिन्धुश्छन्दः'

वाज.सं. १५.४; तै.सं. ४.३.१२.२; मै.सं. २.८.७:१११.१३; का.सं. १७.६; श.ब्रा. ८.४.२.४

सिन्धुपती - द्वि.व. । (१) मित्रावरुण (२) वेग से जाने वाले अश्वों, समुद्र, प्रजाजनों, सैन्यों या प्राणों के पालक ।

'सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक्'

ऋ. ७.६४.२

सिन्धुपत्नी - निरन्तर प्रवाह को पालने वाली सदा बहार नदी

'सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः'

अ. ६.२४.३

सिन्धुमातरः - मेघों के समान जल बनाने वाले मरुत् या मानव
'ग्रावाणो न सूरयः सिन्धु मातरः'
ऋ. १०.७८.६

सिन्धुमातरा - (द्वि.व.) । (१) जिन की उत्पत्ति सिन्धु या आकाश से हुई हो, (२) सूर्य और चन्द्रमा, (३) अश्विद्वय । दे. 'मनोतरा'
(४) देह की सभी रक्तवाहिनी नाड़ियों या प्राणों को प्रवाहित करने वाले-उन्हें ठीक से संचालित करने वाले प्राण अपान
'या दस्रा सिन्धुमातरा'
ऋ. १.४६.२; साम. २.१०७९

सिन्धुमाता - (१) प्रवाह में बहते जलों को अपने भीतर लेने वाली (२) सिन्धुनदी
'सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता'
ऋ. ७.३६.६

सिन्धुराज्ञी - निरन्तर प्रवाह से शोभने वाली नदी
'सिन्धुपत्नीः सिन्धुराज्ञीः'
अ. ६.२४.३

सिन्धवाहसा - (१) प्रवाह से बहने वाली नदी के द्वारा अपनी नौका को ले जाने वाले केवट (२) सिन्धुवत् प्रवाह से ज्ञान प्रदाता गुरु
'सुषुम्ना सिन्धुवाहसा'
ऋ. ५.७५.२; साम. २.१०९४

सिन्धुसृत्य - शरीर की नाड़ियों को गति शील करने योग्य
'पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः'
अ. १०.२.११

सिन्धूनाम् अग्ने - (१) देह में बहने वाली

सिन्धूनाम् अग्ने - (१) देह में बहने वाली रक्त धाराओं के भी पूर्व विराजने वाला - आत्मा
'अग्ने सिन्धूनां पवमानो अर्षति'
ऋ. ९.८६.१२; साम. २.३८३

सिन्धूनां प्राणः - निरन्तर विषयों में बहने वाले इन्द्रियों का मुख्य प्राणरूप आत्मा
'प्राणः सिन्धूनाँ कलशाँ अचिक्रदत्'
अ. १८.४.५८

स्तिपा - (१) स्तिपाः स्तिपा पालकाः उपस्थिसान् पालयति इति वा (जल की रक्षा करता है या उपस्थित जल के पीने वालों का जो पालन करता है वह स्तिपा है)- यास्क
(२) सायण ने इसका, अर्थ-'पस्त्यपाः स्तिपाः'(गृह का पालन करने वाला) किया है। 'पस्त्य' का अर्थ गृह है । अमर कोष में भी कहा है ।
'निशान्त पस्त्य सदनं
भवनागार मन्दिरम्'
(३) अथवा - 'उपस्थितान् ज्योतिष्टोमादि यज्ञान् पालयति इति उपस्थितपाः (जो उपस्थित ज्योतिष्टोमादि यज्ञों का पालन करता है वह 'उपस्थित पाः') है । उपस्थितपाः से ही 'स्तिपाः' बन गया है ।
(४) समुद्र, (५) न्याय के लिए उपस्थितों का रक्षक
'यं त्वा पूर्वमीडितो वध्र्यश्वः
समीधे अग्ने स इदं जुषस्व
स नः स्तिपा उत भवा तनूपा
दात्रं रक्षस्व यदिदं ते अस्मे'
ऋ. १०.६९.४
हे अग्नि, स्तोता या सभी महर्षियों से स्तुत मेरे पिता वध्र्यश्व ने (ईडितः वध्र्यश्वः) जो पहले तुझे सम्यक् प्रकार से हवियों द्वारा दीप्त किया (पूर्व यं त्वो समीधे) वह तू मुझ से दीप्त किए जाकर इस स्तोत्र या हवि का आस्वादन कर (स इदं जुषस्व) और तू कूप के सदृश हमारा अंगरक्षक बन (नःस्तिपा उत तनूपाः) तथा प्रदेय धन या हवि की रक्षा कर (दात्रं रक्षस्व) जो तेरा अपना बन कर रखा हुआ है (यत् इद् ते अस्मे)।
अन्य अर्थ - हे राजन्, जिस तुझ को पूजित जितेन्द्रिय गुरु ने ब्रह्मचर्याश्रम में विद्या से प्रकाशित किया है (पूर्वम् समीधे) वह तू इस राष्ट्र का सेवन कर (स इदं जुषस्व) और वह तू समुद्रादिक की तरह पालन करने वाले या न्याय के लिए उपस्थितों का रक्षक (स नः स्तिपाः) और हमारे शरीरों की रक्षा करने के लिए हो (उत तनूपाः) ।
(६) घरों का पालक ।
(७) द्वि.व.। ष्टयै (संघात अर्थ में) से 'स्ति' शब्द बना है । स्तीन पाति इति स्तिपाः ।
मित्रावरुण विशेषण
(८) संघों की रक्षा करने वाले

'ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितृणाम् '
ऋ. ७.६६.३

सिम - सर्वनाम । सिमशब्दः सर्व पर्यायः सिम शब्द सर्व का पर्याय है । अर्थ है-सब, सभी । दे- 'आत '
'आद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै'
ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७; मै.सं. ४.१०.२: १४७.२;तै.ब्रा. २.८.७.२;नि. ४.११
तुरत (आत्) रात्रि (रात्री) सभी के लिए (सिमस्मै) अन्धकार फैला देती है (वासः तनुते) ।
(२) सर्वसाधारण, सब कोई
'तमित् पृच्छन्ति
न सिमो वि पृच्छति'
ऋ. १.१४५.२
(३) प्रजाओं को प्रबन्ध व्यवस्थाओं द्वारा और शत्रुओं को वध, बन्धन, सन्धि आदि से बांधने वाला-परमेश्वर, इन्द्र, राजा । दे. 'गोजिता '
(४) सर्वश्रेष्ठ
'सिमा पुरू नृषूतो असि'
ऋ. ८.४.१,अ. २०.१२०.१, साम. .१.२७९, २.५८१

स्रिम - सृ + मन् । सरणशील, लफंगा, लु छिपकर भागने वाला
'ककुभाः करुमाः स्रिमाः
अ. ८.६.१०

सिमा - (१) विवाह बन्धन में बद्ध स्त्री, (२) बद्ध
'सिमाः शम्यन्तु शम्यन्तीः'
वाज.सं. २३.३७

स्तिय - (१) अप्, (२) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु
'नेता सिन्धूनां वृषभस्तियानाम्'
ऋ. ७.५.२

स्तिया - स्त्यै (शब्द करना और संघात) + विच् = स्त्या = स्तिया (ऐ का अ) और इ का आगम) ।
अर्थ - (१) आप् जल स्तिया आपो भवन्ति स्त्यायनात् (हिम रूप में संहित होने से जल का नाम 'स्तिया' पड़ा) ।
(२) संघीभूत -सा.
संघीभूत जल या और पदार्थ भी हो सकता है ।
'वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्याः
वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम्
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय
स्वादू रसो मधुपेयो वराय'
ऋ. ६.४४.२१
हे इन्द्र, तू द्युलोक का हवियों से या जल से सिञ्चन करने वाला है और पृथ्वी के मनोरंजनों को बरसाने वाला है । इसी प्रकार तू स्यन्दन शील नदियों का वर्षाद्वारा पूरयिता है तथा संघीभूत या जमे हुए जल को बरसाने वाला है ।
(दिवः वृषा असि, पृथिव्याः वृषभः, सिन्धूनां वृषा, स्तियानां वृषभः) हे कामाभि वर्षक इन्द्र, तुझ श्रेष्ठ बरसाने वाले के निमित्त (ते वराय वृष्णे) स्वादिष्ट रसपूर्ण मधु के सदृश मेघ यह सोमरस पुनः पुनः बढ़ता है (स्वादुरसः मधुपेयः इन्दुः पीपाय) ।
अन्य अर्थ- हे विद्वन्, तू सूर्य का वर्षक है, पृथ्वी का वर्षक है, नदी तथा समुद्रों का वर्षक है और जलों का वर्षक है । (स्तियानां वृषभः) । हे वृष्टि कर्ता, तुझ बलवान् और श्रेष्ठ के लिए (ते वृष्णे वराय) स्वादु और मधु समान पेय ऐश्वर्यरस सदा बढ़ता है ।
पृथिवी आदि की विद्या जानने वाला तथा उनका उपयोग करने वाले ऐश्वर्य शाली होता है ।
(३) संघ बनाकर रहने वाली सेना
ऋ. ६.४४.२१

स्थिर - (१) स्थिर, स्थायी रूप से विद्यमान
'य आरितः कर्मणि कर्मणि स्थिरः'
ऋ. १.१०१.४; नि. ५.१५
(२) स्थिर रखा हुआ
'स्थिरा चिदन्ना निरिणा त्योजसा'
ऋ. १.१२७.४
जैसे आग पर रखे अन्नों को अग्नि अपने तेज से उबाल डालता है ।
(३) कठोरचेता, (४) मेघ वृन्द
दे. 'द्यावापृथिवीः '
'शृणाति वीडु रुजति स्थिराणि'
ऋ. १०.८९.६
परमात्मा या इन्द्र का मन्यु
कठोर चेताओं मेघों को भग्न करता है ।

स्थिरति - स्थिर होता है । 'स्थिर' धातु नैरुक्त है ।

स्थिर – नैरुक्त धातु । अर्थ है-स्थिर होना । जैसे-स्थिरति

स्थिरधन्वा – स्थिर + धनुष् + अनङ् = स्थिरधन्वन् । प्र. ए.व. में स्थिरधन्वा रूप है । अर्थ-स्थिर धनुष वाला (२) रुद्र का विशेषण, दे. 'आयुध '

'इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः '

ऋ. ७.४६.१; तै.ब्रा. २.६.८; नि. १०.६.

स्थिरधन्वा रुद्र के लिए इन स्तुतियों को अर्पित कर ।

(२) दृढ़ धनुष वाला

स्थिरपीत – (१) पीतं मधुयस्य हृदये स्थितं भवति स स्थिरपीतः (जिसके हृदय में पिया हुआ मधु स्थिर रहे वह स्थिर पति है) ।

(२) चौदेह विद्यास्थानों में कुशल एवं वेद रूपी वाणी के संख्य में स्थिरतापूर्वक वेदोंक्तार्थरूपी अमृत का पान करने वाला विद्वान् । दे. 'अयुष्या

'उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुः
नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु '

ऋ. १०.७१.५; नि. १.२०

जो स्थिरपीत विद्वान् है उसे विद्वानों की सभा में भी कोई नहीं हरा सकता ।

सिरा – (१) नदी की धारा, (२) शरीर की सिरा

'त्वं वृत्रमाशयानं सिरासु
महो वज्रेण सिष्वपो वराहुम् '

ऋ. १.१२१.११

तू चारों तरफ फैले हुए (आशयानम्) और अपने को घेरने वाले वृत्र या मेघ को बड़े भारी अन्धकार नाशक प्रकाश या विद्युत् से नदी धाराओं में सुला देता है (सिरासु सिष्वपः) ।

स्थिराः – धर्म और लोक यात्रा में स्थिर चित्त

'स्थिरा चिज्जनीर्वहते सभागाः '

ऋ. १.१६७.७

सिरी – (१) हल आदि स्थूल साधन (२) नस नाड़ियों का बन्धन

'सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः '

ऋ. १०.७१.९

सिलाची – लाख, लाह, लाक्षा नामक ओषधि

'सिलाची नाम वा असि '

अ. ५.५.१

सिलाञ्जाला – सिल । अञ्ज + आला, कण कण परमाणु में व्यापक, जगत् के व्यक्त करने में समर्थ ब्रह्मशक्ति- ज.दे.श.

(२) सस्य विशेष की मञ्जरी-सा.

'सिलाञ्जालास्युत्तराः '

अ. ६.१६.४

सिलिक् मध्यमः – (१) शीर्षमध्यमः संलग्नमध्यमः । दया.(२) कृश पेट वाला, (३) अपने बीच मुखिया को रखने वाला, (४) योगी जिसका मध्यम भाग कृश होता गया हो ।

(४) मध्ये निविडः-सा. (६) संश्लिष्टोदर, निरुद्र –उवट

(७) कृशोदर-महीधर

सिलिकमध्यमासः – सिलिक मध्यमाः संसृत मध्यमाः शीर्षमध्यमाः (जिनके मध्यम भाग संसृत या संश्लिष्ट हो)।

निरुक्त 'शीर्षमध्यमाः से ही 'सिलिकमध्यमाः ' का होना मानता है ।

अर्थ – (१) सायण ने सिलिक का अर्थ संश्लिष्ट अर्थात् एक से एक सटा हुआ माना है । यहां सिलिकमध्यमासः सूर्य के घोड़ों के विशेषण के रूप में प्रयुक्त है ।

सूर्य के चार घोड़ों में मध्यम के तीन एक से एक सटे हैं- ' सिलिक ' है-सा.

(२) चारों तरफ से मिलने वाली । दे-'अज्म '

(३) स्वा. दयानन्द ने इसे सूर्य की रश्मियों का विशेषण माना है । सूर्य की रश्मियों के मध्यम प्रदेश क्रमशः संसृत या सरके हुए होते हैं ।

(४) 'शीर्ष मध्यमाः ' (जिनके मध्यम में शीर्ष सा सूर्य हो) से ही ' सिलिक मध्यमासः ' हो गया है । आदित्य रश्मियों का मध्यय है या सभी प्राणियों में आदित्य अनुप्रविष्ट है । शीर्ष-शीर्षक-सिलिक अथवा सृत-सृतक, सिलिक ।

(५) आत्मा (Soul)। आत्मा सभी प्राणियों में अनुप्रविष्ट है ।

स्थिविमन्तः – स्थिर स्थिति वाले सात प्राण और वाक्

'नव पश्चातात् स्थिविमन्त आयन्'

ऋ. १०.२७.१५

सिवीमन् - समीमन् । अर्थ-(१) प्रसव, (२) अभ्यनुज्ञान ।दे. ' सवीमनि '

स्थिवी - (१) स्थिर पृथिवी, (२) स्थिर, स्थायी, जितेन्द्रिय पुरुष ,
'निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः '
ऋ. १०.६८.३; अ. २०.१६.३

सिषक्तु - सेवताम् (सेवा करे) । 'षच् ' (सेवन करना, सेचण करना अर्थ में पाणिनि ने प्रयुक्त किया है ।
निरुक्त ने 'सिषक्तु सचते' इति सेवमानस्य ('सिषक्तु' और 'सचते' का अर्थ 'सेवा करना ') किया है । यहां 'षच् ' धातु का द्वित्व वैदिक है ।
अर्थ- (१) सेवा करना, (२) सिक्त करे । दे. 'इडां
'सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः '
ऋ. ५.४१.२०; नि. ११.४९
हमारे अन्नों की पुष्टि के लिए जल दे ।
'यो रेवान् यो अमीवहा
वसुवित् पुष्टि वर्धनः
स नः सिषक्तु यस्तुरः ।'
ऋ. १.१८.२; वाज.सं. ३.२.९; मै.सं. १.५.४:७०.१६; का.सं. ७.२ ; श.ब्रा. २.३.४.३५; आप.श्रौ.सू. ६.१७.१२;
हे ब्रह्मणस्पति, जो धनवान् है (यः रेवान्), जो तेरा रोग भगाने वाला है (अमीवहा) जो अपूर्व धन का भी लब्धा है (वसुवित्) और जो पुष्टि, स्वास्थ्य, या धन को बढ़ाने वाला है (पुष्टिवर्धनः) और जो किसी कार्य को शीघ्र सम्पन्न करने वाला है (यः तुरः) वह हमें सेवे (स नः सिषक्तु) ।

सिष्वदत् - उत्तम स्वादयुक्त बनावे
'अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् '
ऋ. १.१८८.१०

सिषासत् - (१) सेवा करने की इच्छा करता हुआ
'सिषासन्तो वनामहे'
ऋ. ८.९५.६; ९.६१.११; आ. सं. १.८; साम. २.२८; २३५; वाज.सं. २६.१८

सिषासत् - (१) भजन सेवन की इच्छा वाला
'शग्धि वाजाय प्रथमं सिषासते '
ऋ. ८.३.११

सिषासन् - (१) प्राप्त, होता हुआ, (२) भजन या सेवन करता हुआ
'सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुम् '
ऋ. १.१४६.४
(३) विभाग करने की इच्छा करता हुआ, (९) ऐश्वर्येच्छुक
'याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतम्
ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ।'
ऋ. १.११२.५
जिन ज्ञान रक्षा आदि उपायों से ज्ञानवान् और ऐश्वर्य के इच्छुक बुद्धिमान् पुरुष को या कण्व को आगे बढ़ाते हो उन उपायों से हमें भी प्राप्त होओ ।

सिषासन्ती - (१) समस्त ऐश्वर्यों का सेवन करती हुई कुलवधू या उषा
'सिषासन्ती द्योतना शश्वदागात् '
ऋ. १.१२३.४
(२) संभजन या सेवन करने की इच्छा करने वाली प्रजा

सिषासुः - (१) संभजनेच्छुक । (२) भजन करने वाला । भक्तगण, (३) शरणर्थी (४) ऐश्वर्य का इच्छुक ।
दे- 'अवस्यु '।

स्विष्ट - सु + इष्ट । (१) सुव्यवस्थित, सुचालित -यज्ञ
'स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् '
ऋ. १.१६२.५; वाज.सं. २५.२८; तै.सं. ४.६.८.२; मै.सं. ३.१६.१ :१८२.७; का.सं. (अश्व.) ६.४
(२) उत्तम आदर पद को प्राप्त
'स्विष्टा देवाः आज्य पाः '
वाज.सं. २१.५८; मै.सं. ३.११.५:१४८.६; तै.ब्रा. २.६.१४.६

स्विष्टकृत् - (१) क्षत्रं वै स्विष्ट कृत्
श.ब्रा. १२.८.३.१९
(२) सुव्यवस्थित राष्ट्र के संचालन की न्यूनाधिकता को पूर्ण करने वाला सर्वाश्रय क्षत्रपति
(२) यज्ञ की न्यूनाधिकता को पूर्ण करने वाला अग्नि
'होता यक्षदग्निं स्विष्टकृतम् '
वाज.सं. २१.४७

'तपः स्विष्टकृत्'
श.ब्रा. ११.२.७.१८
'अयमेवावाङ्प्राणः स्विष्टकृत्'
श. ११.१.६.३०
'वास्तु स्विष्ट कृत्'
श.ब्रा. १.७.३.१८
'प्रतिष्ठा वै स्विष्टकृत्'
ऐ.ब्रा. २.१०
'यद्वै यज्ञस्या न्यूनातिरित्कम्। तत् स्विष्टम्।'
श.ब्रा. ११.२.३.९
क्षत्रं वै स्विष्टकृत्। क्षत्रेणैव एनम् एतत् अभिषिञ्चति। सोमो वै वनस्पतिरग्निः स्विष्टकृत्। अग्नीषोमाभ्यामेवैनयेतत् परिगृह्याभिषिञ्चति। तस्मात् ये जैते विद्यः ये च न, त आहुः
'क्षत्रियो वाव क्षत्रियस्याभिषेक्ता।'
श.ब्रा.
(३) उत्तम यज्ञों या परिमित कार्यों का कर्त्ता
'देवो अग्निः स्विष्टकृत्'
वाज.सं. २१.५८;२८.२२;४५; मै.सं. ३.११.५: १४८.३; ४.१०.३: १५१. ६;४.१३.८: २११.३;का.सं. १९.१३; २०.१५;श.ब्रा. २.२.३.२५; तै.ब्रा. २.६.१०.६: १४.६: २०.५: ३.५.९.१;६.१३.१: १४.३; आश्व.श्रौ.सू. १.८.७; शां.श्रौ.सू. १.१३.३.

सिषासुः – सबको आरोग्य देना चाहती हुई
'सिषासवः सिषासथ'
अ. ६.२१.३

सिष्विदानः – (१) सब से स्नेह करता हुआ, (२) सबको बन्धन से छुड़ाता हुआ
'यस्त इध्मं जभरत् सिष्विदानः'
ऋ. ४.२.६; तै.आ. ६.२.१.

स्विष्टि – उत्तम पुण्य कार्य
'स्विष्टि नस्तां कृणवद् विश्वकर्मा'
अ. २.३५.१; तै.सं. ३.२.८.३; मै.सं. २.३.८:३६.१७

स्विषुः – उत्तम बाणों वाला
'तमुष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा'
ऋ. ५.४२.११

सिष्णुः – (१) प्रत्याहुत, घृत से सेचने योग्य, (२) यज्ञ द्वारा
जगत् में वर्षा द्वारा सेचण करने वाला–अग्नि
'इन्धानः सिष्णवा ददे'
ऋ. ८.१९.३१; साम. २.११७३

(३) आनन्द रस से हृदय को सेचन करने में समर्थ

सिसिचुः – सिञ्चन्ति (सींचते हैं) लट् अर्थ में लिट् का प्रयोग है। दे. 'अश्मास्य'

सिंह – निरुक्तकार ने लिखा है-
'सिंहोव्याघ्र इति पूजायाम्'
अर्थात् पुरुष व्याघ्र, पुरुष सिंह–ऐसा प्रयोग पुरुष की वीरता सूचित करने के लिए किया जाता है। अतएव सिंह और व्याघ्र शब्दों का प्रयोग पूजा अर्थ में होता है।

व्युत्पत्ति - (क) हिंस् + कन् = सिंह (वर्णविपर्यय से)। अर्थ है हिंसा करने वाला मारने वाला।
(ख) सम् + हन् + कन् = संह = सिंह (उपसर्ग में इत्व)। यह इकट्ठा करके मारता है।
(ग) 'संहाय हन्ति इति सिंहः' (संगमन कर मारता है अतः सिंह है)।
सिंहः संहननात् हिंसेर्वा स्यात् विपरीतस्य संपूर्वस्य वा हन्तेः, संहाय हन्ति इति वा (अर्थात् सिंह शब्द अभिभव अर्थ वाले सह धातु से या 'हिंस्' धातु को विपरीत कर देने से या सम् पूर्वक हन् धातु से बना है)।
(२) शक्तिशाली, (३) अग्नि का विशेषण।
'उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात्
प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते'
ऋ. १.९५.५; मै.सं. ४.१४.८: २२७.५; तै.ब्रा. २.८.७.५; नि. ८.१५
इस शक्तिशाली अग्नि की ओर सेवाभाव से बढ़े (सिंह प्रतीची प्रतिजोषयेते) या अन्तरिक्ष और पृथ्वी के निवासी उत्पन्न अग्नि से डर गए अतः सेवाभाव से उस शक्तिशाली अग्नि की ओर बढ़े।
(४) सिंह नामक पशु

सिंहप्रतीकः – सिंह के समान शूरवीर
'सिंहप्रतीको विशो अद्धि सर्वाः'
अ. ४.२२.७

सिंह्य – (१) सिंह के तुल्य शत्रु (२) सिंह का दल –दया.
'सिंह्यं चित् पेत्वेना जघान'
ऋ. ७.१८.१७

सिंही – (१) शत्रुओं पर विजय करने वाली (२) सैनिक शिक्षा

'सिंह्यसि सपत्नसाही'
वाज.सं. ५.१०; का.सं. २.९; २५.६; श.ब्रा. ३.५.१.३३,३६

स्त्री - स्त्यै, ष्टै शब्द संघातयोः स्यातयेर्डट्। स्त्यै + डट् + ङीष् = स्त्री। (१) संघात बनाकर रहने वाली प्रबल सेना
'स्त्रिया अशास्यं मनः'
ऋ. ८.३३.१७
(२) स्त्यै (लजाना) + ड्रट् + ङीष् = स्त्री (डित् प्रत्ययान्त होने से य का लोप हो जाता है और ए का लोप)।
(लज्जन्ते हि ताः नित्यं स्वैरेष्वपि पुंभ्यः)।
अर्थात् स्त्रियां पुरुषों से और स्वच्छन्दता से भी लजाती हैं। अथवा...स्यायेते संघी
भवतः शुक्रशोणिते अस्याम् इति स्त्री (स्त्री में शुक्र और शोणित संघीभूत होते हैं अतः यह स्त्री है)।
(३) सूर्य-रश्मि -सा.
दे. 'अन्ध'।
'स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः'
ऋ. १.१६४.१६; अ. ९.९.१५; तै.आ. १.११.४; नि. १४.२०.
मेरी ये रश्मिरूपी स्त्रियां हैं। वृष्टि जल देने के कारण उन्हें ही पुरुष कहते हैं-सा.।
जो सत्य विद्या को जानने वाली स्त्रियाँ हैं कवि लोग उन्हें पुरुष बतलाते हैं-दया.।

स्त्रीकृता - (१) स्त्रियों की बनी सेना, (२) स्त्रियों द्वारा की गई कृत्या
'स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता'
अ. १०.१.३

सीचापू - एक प्रकार का पक्षी
'रात्र्यै सीचापूः'
वाज.सं. २४.२५; मै.सं. ३.१४.६:१७३.९

सीता - (१) हल का अग्रभाग-फाल या फार, (२) प्रेमपाश में बद्ध शुभगुणों से युक्त
'सीते वन्दामहे त्वा'
ऋ. ४.५७.६; अ. ३.१७.८; तै.आ. ६.६.२;कौ.सू. २०.१०
(३) कृषि से उत्पन्न कर (४) शरीर मन और आत्मा इन तीनों को एक सूत्र में बांधने वाली प्राण शक्ति चेतना।
'इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु'
ऋ. ४.५७.७; अ. ३.१७.४; कौ.सू. १३७.१९
(५) जोती भूमि
'घृतेन सीता मधुना समज्यताम्'
वाज.सं. १२.७०; मै.सं. २.७.१२:९२.७ का.सं. १६:१२; श.ब्रा. ७.२.२.१०.

सीदत् - (१) ताप से तप्त, तलता हुआ, भुंजाता हुआ, (२) बैठा हुआ
'उत्थापय सीदतो बुध्न एनान्'
अ. १२.३.३०

स्त्रीभाग - (१) स्त्री सेवी, (२) व्यभिचारी
'स्त्रीभागान् पिङ्गो गन्धर्वान्'
अ. ८.६.१९

सीम् - (१) सूर्य, (२) (अ.) चारों तरफ
'आ सीमरोहत् सुयमा भवन्तीः'
ऋ. ३.७.३
(३) 'ही' के अर्थ में प्रयुक्त एक वैदिक अव्यय।
'यत् सीमुप श्रवद् गिरः'
ऋ. ६.४५.२३; अ. २०.७८.२; साम. २.१०.१७
(४) परिग्रहार्थीय, (५) सर्वतः, चारों ओर से।
दे. 'अन्' 'नयत्सीं' शिश्नथद्वृषा'
जल बरसाने वाला मध्यम वायु (वृषा) मेघ को सर्वतः (सीम्) हटा देता है।
पुनः, दे. 'व्यावः'
(६) दूर। दे. आशये'
'ससारं सीं परावतः'
दूरवर्ती मेघ से (परावतः) उषा दूर चली गई (सीं ससार)। (७) पद पूरण के लिए भी इस का प्रयोग होता है।
'प्र सीमादित्यो असृजद् विधर्ता
ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते
वयो न पप्तू रघुया परिज्मन्।'
ऋ. २.२८.४
विशेष प्रकार से रसों, रश्मियों या सम्पूर्ण जगत् का विधता आदित्य ने सर्वतः रश्मियों को रचा। वे रश्मियां पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष से जल ले वरुण के मण्डल को (सिन्धवः ऋतं वरुणस्य यन्ति)। ऐसा करने पर भी वे नहीं थकतीं और न इस कार्य को वे छोड़ती ही हैं। ये पक्षी के सदृश शीघ्र गति से उड़ती हुई सम्पूर्ण जगत्

की परिक्रमा करती हैं ।

सीमतः – सीमातः, मर्यादातः, सीम्नः (सीमा से, मर्यादा से) ।
परिग्रहार्थक सीम् से 'तसिल्' प्रत्यय करने से 'सीम्' में अ का उपबन्ध अनर्थक है । सीमन् का अर्थ सीमा है ।
निरुक्त में कहा है–
'अपि वा सीम् इत्येतत् अनर्थकम् उपबन्धम् आददात् पंचमी कर्माणं सीम्नः सीमतः मर्यादातः ।
सीमा इति परिग्रहार्थीयः वा पदपूरणो वा । सीम्
(१) परिग्रहण अर्थ वाला है या (२) पद पूरणार्थक है ।
'सर्वतः' अर्थ में प्रयोग के लिए देखें 'व्यावः'।
'सुरुचः सीमतः व्यावः'
(सुन्दर किरणों को सर्वतः विस्मृत करता है) ।
(३) समस्त लोकों के बीच में
'वि सीमतः सुरुचो वेन आवः'
अ. ४.१.१;५.६.१; साम. १.३२१; वाज.सं. १३.३; तै.सं. ४.२.८.२ ; मै.सं. २.७.१५: ९६.११;का.सं. १६.१५; ३८.१४: श.ब्रा. ७.४.१.१४; तै.ब्रा. २.८.८.८; तै.आ. १०.१.१०; आप.श्रौ.सू. ४.६.३; शां.श्रौ.सू. ५.९.५; नि. १.७.

सीमान् – सिर का ऊपरी भाग
'यः सीमानं विरुजन्ति'
अ. ९.८.१३

सीमन्त – सिर
'जिनतो वज्र त्वं सीमन्ताम्'
अ. ६.१३४.३

सीमहि – बांधते हैं । दे. 'मृडीक'।
'गीर्भिर्वरुण सीमहि'
ऋ. १.२५.३
हे वायु, तुम सुख के लिए तेरे मन को स्तुतिवाणियों से बांधते हैं ।

सीमा – षिञ् (बन्धनार्थक) + मिन् = सीमन् । सिनोति बध्नाति देशौ एतावानेव अयम् इति एवं सा सीमा (इतना ही यह है–इस प्रकार यह दो देशों को बांधती है अतः यह सीमा है) ।
अर्थ – (१) सीमा, मर्यादा, विषीव्यति देशाविति (सीमा मर्यादा को कहते हैं क्योंकि यह दो देशों को विभक्त करती है) ।

स्तीमा – (१) आर्द्र, गीला या तरो ताजा रखने वाला जल या (२) रुधिर
'अप्सु स्तीमासु वृद्धासु'
अ. ११.८.३४

सीमिका, सीमिक – स्यम (गत्यर्थक) + किकन् + टाप् । सीमिकाः स्यमन्त्यों हि ताः नित्यमेव गच्छन्ति (वे सदा शब्द करती हुई चलती हैं) ।
अर्थ – (१) चीटियों का घर (२) एकप्रकार का वृक्ष, (३) चींटी
पंजाबी भाषा में चींटी को स्योंक कहते हैं ।

सीर – (१) शरीर ।
'सरें ह्येतत् सीरम्
इरामेव अस्मिन् एव्द् दधाति'
श.ब्रा. ७.२.२.२
'इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतु'
तै.ब्रा. २.४.८.७
(२) सृ + ईरन् = सीरन् । आदित्य
'सीर आदित्यः सरणात्'
(३) हल । दे. 'इत्'
'युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वम्'
ऋ. १०.१०१.३;अ. ३.१७.२;वाज.सं. १२.६८;तै.सं. ४.२.५.५; मै.सं. २.७.१२:९१.१५; का.सं. १६.१२; श.ब्रा. ७.२.२.५
हे देवो, हलों को जोतो (सीरा युनक्त), युगों अर्थात् जुआठों को विस्मृत करो (वितनु ध्वम्) ।
आधुनिक अर्थ– (१) हल, सूर्य, अर्क

सीरपतिः – हल का स्वामी
'इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः'
अ. ६.३०.१; का.सं. १३.१५; तै.ब्रा. २.४.८.७; आप.श्रौ.सू.६. ३०.२०;मा.श्रौ.सू. १.६.४.२४;साम. मं.ब्रा. २.१.१६; पा.गृ.सू. ३.१.६.

स्तीर्ण – (१) प्रकाश से आच्छादित (२) बिछाया हुआ
'स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ'
ऋ. ४.६.४:६.५२.१७

सीरा – (१) नाड़ी
'सीराः पतत्रिणीः स्थन'
ऋ. १०.९७.९; वाज.सं. १२.८३
(२) नदी, (३) रक्त धारा

'सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या '

ऋ. ४.१९.८

सीलमावती – उत्तम सेवनीय ऐश्वर्य की स्वामिनी–आत्मा

'ऊर्णावती युवतिः सीलमावती '

ऋ. १०.७५.८

सीव्यतु – सीए । अंग्रेजी में sew सीना अर्थ में आया है । दे. 'उक् थ्य '

'सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया '

ऋ. २.३२.४; अ. ७.४८.१; तै.सं. ३.३.११.५; मै.सं. ४.१२.६.१९५.१; का.सं. १३.१६; साम.मं.ब्रा. १.५.३; आप.मं.पा. २.११.१०; नि. ११.३१

राका अनिच्छिन्न सूई से सन्तति रूपी वस्त्र को (अपः) सीए (सीव्यतु) ।

सीषती – बांधती हुई

'सानः कृतानि सीषती '

अ. ४.३८.३

सीषधाति – साधयतु (साधन करे) । यह लेट् का रूप है ।

सीस – नः । (१) सीसा, (२) सीसे की बनी सामग्री ।

'इदं सीसं भागधेयं त एहि'

अ. १२.२.१.

(३) सब बन्धनों को काटने वाला

'सीसे मृड्ढ्वं नडे मृड्ढ्वम् '

अ. १२.२.१९

'सीसायाध्याह वरुणः '

अ. १.१६.२

'सीसञ्च मे त्रपु च मे'

वाज.सं. १८.१३; मै.सं. २.११.५:142.6; का.सं. १८.१०

स्त्रीसख – (१) अपनी स्त्री के साथ मित्र रूप में रहने वाला पति

'आनन्दाय स्त्रीसख्यम् '

वाज.सं. ३०.६; तै.ब्रा. ३.४.१.२

सीसा – (१) प्रेम को बांधने वाली स्त्री (२) संधियों या वेतनों से बंधी

'रजता हरिणीः सीसा '

वाज.सं. २३.३७; तै.सं. ५.२.११.१; मै.सं. ३.१२.२१:१६७.७; का.सं. (अश्व.) १०.५.

स्त्रीहिती – (१) स्नेहकारिणी

'यः स्त्रीहितीषु पूर्व्यः
संजग्मा नासु कृष्टिषु ।
अरक्षद् दाशुषे गयम् । '

ऋ. १.७४.२

जो ईश्वर स्नेह करने वाली (स्त्रीहितीषु) अतएव प्रेम भाव से संसक्त करने वाली (संजग्मानासु). प्रजागणों में (कृष्टिषु) सदा पूर्व उत्पन्न सुशिक्षित विद्वानों द्वारा अपने से आगे बढ़ने वालों के प्रति साक्षात् उपदेश करने योग्य है और जो अन्यों को विद्या आदि का दान करने वाले तथा अपने आप को ईश्वर के प्रति समर्पण करने वाले उपासक के धनैश्वर्य और प्राण जीवन की रक्षा करते हैं (गयम् अरक्षत्) ।

सु – अति सु इति अभिभूजितार्थे (अति और सु अभि पूजित अर्थ में आता है) ।

दे. 'अज ', 'अस्म', 'अंधः ' । अर्थ– (१) सुन्दर, (२) स्तुति । दे. 'दोहत् '

'अभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् '

ऋ. १.१६४.२६; अ. ७.७३.७;९.१०.४; नि. ११.४३

इसी से (तत्) यह स्तुति (उ सु) करता हूँ (प्रवोचम्) । (३) सम्यक् प्रकार से । दे. 'अज', साति

'अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवः '

ऋ. १.१३८.४; नि. ४.२५

स्नु – (१) अभिषिक्त (२) बहने वाला । snow शब्द से 'स्नु ' की समता विचारणीय है ।

ये पातयन्ते अज्मभि

'गिरीणां स्नुभिरेषाम् । '

ऋ. ८.४६.१८

(३) गमनशीन यान, (४) साधन

'अधि यदपां स्नुभिश्चराव '

ऋ. ७.८८.३

सुकम् – (१) अच्छी प्रकार

'तिष्ठते यता सुकम् '

ऋ. १.१९१.६; अ. १.१७.४

(२) सु + क । उत्तम सुख देने वाला कर्म, (३) शुक नामक वृक्ष जो पाण्डु रोग की एक ओषधि है– शिरीष, स्थौणेपक, तालीश, जम्बू, गन्धक, चक्रमर्दा, स्योनाक, अर्क, दाडिम, शिग्रु और क्षीरी, वृक्ष शुकवर्ण में आए हैं ।

शिरीष

'वर्ण्यः कुष्ठ कण्डुघ्नः
त्वग्दोष श्वास कासहा ।'
स्थोणेवक, कटुतिक्त पित्तप्रकोपशमन, बलपुष्टि कारक ।

सुकपर्दा – (१) उत्तम कर्म वाली
'सिनीवाली सुकपर्दा'
वाज.सं. ११.५६; तै.सं. ४.१.५.३; मै.सं. २.७.५:८०.९; का.सं. १६.५; श.ब्रा. ६.५.१.१०

स्तुक – (१) स्त्यै + डुक = स्तुके । अर्थ है–संघात । दे. 'पृथुष्टुका'
(२) यास्क ने 'स्तुक्' धातु को संघातार्थक माना है । परन्तु यह शब्द केशसमूह के लिए प्रयुक्त होता है ।
(३) जंघा में भी मांस का अधिक भाग होने से स्तुक नाम पड़ा है ।
अंग्रेजी का stock शब्द 'स्तुक' से ही बना है ।
(४) केशभार, (५) स्तुति, (६) काम ।

सुक्रतु – (१) सबसे उत्तम कृति, (२) प्रज्ञा, (३) संकल्प, काम
'आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते'
ऋ. १.३१.३
हे तेजस्विन्, तू विधि प्रजाओं और लोकों में व्यापक और उनको बसाने धारण करने वाले सूर्य की ज्योति के भी पूर्व सबसे उत्तम कृति, प्रज्ञा या संकल्प रूप में प्रकट होता है ।
(४) सुन्दर यज्ञों का कर्त्ता (५) सुन्दर कर्मों का कर्त्ता (६) इन्द्र ।
'त्वया दृढानि सुक्रतो रजांसि'
ऋ. ६.३०.३
हे इन्द्र, तू ने लोकों को दृढ़ किया ।
(७) सुन्दर प्रज्ञा वाला । दे. 'धियन्धा'

सुक्रतू – द्वि.व.। (१) एक काल और एक देश में समान रूप से क्रियाशील –अग्नि और सोम अथवा प्रकाश और वायु ।
'युवमेतानि दिवि रोचनानि
अग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम्'
ऋ. १.९३.५; तै.सं. २.३.१४.२; मै.सं. ४.१०.१:१४४.१४; का.सं. ४.१६; ऐ.ब्रा. २.९.५; तै.ब्रा. ३.५.७.२; कौ.सू. ५.१
समान एक काल और देश में क्रियाशील होकर (सक्रतू) अग्नि और सोम, तुम दोनों (प्रकाश और वायु) आकाश या सूर्य के प्रकाश में (दिवि) नाना रुचिकर कार्यों को (रोचनानि) धारण करते हो (अधत्तम्) ।

सुक्षत्रं – (१) उत्तम क्षात्र बल, (२) उत्तम राज्य व्यवस्था
'रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः
सुवीर्यं नासत्या वहन्ता'
ऋ. १.११६.१९

सुक्षय – सुन्दर निवास स्थान, सु + क्षप । 'क्षि' धातु निवास करना अर्थ में आया है । क्षि + अच् = क्षय । रहने का स्थान ।
'अव वेति सुक्षयं सुते मधु'
ऋ. १०.२३.; अ. २०.७३.५

स्तुका – फुंसी
'आ छिन्द्धि स्तुकामिन'
अ. ७.७४.२

स्तुकावीद,स्तुकाविन् – शिखा चोटी रखने वाला
'शर्धांसीव स्तुकाविनाम्'
ऋ. ८.७४.१३

सुकिंशुक – (१) उत्तम तोतों के चित्रों से सुसज्जित रथ ।
'सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपम्'
अ. १४.१६१
(२) सुष्ठु काशनम् दीपनम् (सुन्दर दीप्ति वाला) । दे. 'किंशुक,' 'अमृत'
(३) पलाश का वना । दे. 'अमृतस्य लोकः'
'सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपम्'
ऋ. १०.८५.२०
सुप्रकाश या पलाश के बने, मलरहित सेमरवृक्ष के बने, चित्र विचित्र....

सुक्षत – जिससे अच्छी प्रकार जड़ पकड़ती है–यक्ष्मा ।
'उभयोः सुक्षतस्य च'
अ. ७.७६.४

सुक्षिति – सु + क्षि (निवास करना) + क्ति न् = सुक्षिति (१) सुन्दर निवास स्थान । (२) उत्तम निवास भूमि (३) उत्तम राष्ट्र
'भये चित् सुक्षितिं दधे'
ऋ. १.४०.८
उत्तम निवास भूमि या राष्ट्र धारण करता है ।
(४) उत्तम भूमियों का स्वामी । दे. 'भरेषुजा'

(५) उत्तम भूमि में उत्पन्न (६) उत्तम निवास योग्य गृह या भूमि की स्वायिनी प्रजा ।
'स्तोतृभ्यः सुक्षितीरिषः '
ऋ. ५.६.८

सुकीर्तिः – उत्तम कीर्तिवाला
'अस्मत् सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः '
ऋ. १.६०.३

सुकुरीरा – उत्तम व्यवस्था वाली
'सुकुरीरा स्वौपशा '
वाज.सं. ११.५६; तै.सं. ४.१.५.३; का.सं. १६.५; श.ब्रा. ६.५.१.१०

सुकृत् – (१)उत्तम कर्त्ता, (२) आत्मा, (३) शुभ कर्म करने वाला
'येन गच्छथः सुकृतो दुरोणम्'
ऋ. १.११७.२
(४) पुत्र या पुत्री । दे 'जामि '
'यदी मातरो जनयन्त वह्निम्
अन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् '
ऋ. ३.३१.२; नि. ३.६
यदि ये माताएं कुल को बढ़ाने वाले पुत्र या पुत्री उत्पन्न करती हैं तो इन दोनों सुकृतों में एक पुत्र कुल का कर्ता होता है और दूसरी पुत्री पाली पोसी जाकर दूसरे को दी जाती है ।

सुकृतम् – न । सुन्दर कर्म करने वाला । धनुष् का विशेषण । दे. 'उभा '
'तुविक्षं ते सूकृतं सूमयं धनुः '
ऋ. ८.७७.११;नि. ६.३३
तेरा धनुष् बहुत बाणों को चलाने वाला (तुविक्षम्) सुन्दर कर्मों को करने वाला (सुकृतम्) तथा सुखकारक है (सूमयम्) ।

सुकृत – प्र.। (१) शुभ अन्नोत्पत्ति (२) उत्तम शिल्पी पुरुष (३) अन्यों का सुख उत्पन्न करना, (४) उत्तम धर्माचरण करने वाली
'असूदयत् सुकृते गर्भमद्रिः '
ऋ. ३.३१.७
(५) सुन्दर किया हुआ । दे. 'अमिन '
'उरु पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् '
ऋ. ६.१९.१; वाज.सं. ७.३९; तै.सं. १.४.२१.१; मै.सं. १.३.२५: ३८.१३;का.सं. ४.८;कौ.ब्रा. २१.४; श.ब्रा. ४.३.३.१८; तै. ब्रा. ३.५.७.५.
अन्धकार-निवारक विस्मृत सूर्य कर्म कर्त्ता मनुष्यों से सृकृत् हो ।
(६) शोभन कर्मकृत्-सुन्दर कर्म करने वाला । दे. 'जोहवीमि '

सुकृत्तरः – और अधिक उपकार करने वाला
'इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः '
ऋ. १.१५६.५
शुभगुणों और व्यवहारों में प्रवेश करने वाला (विष्णुः) विद्यादि ऐश्वर्य से युक्त गुरु को प्राप्त होता है और उत्तम उपकार करने वाले के लिए और अधिक उपकार करने वाला होता है ।

सुकृत्या – (१) उत्तम कर्तव्य कर्मों से युक्त । दे. 'इद्धाग्नि '
(२) उत्तम धर्मानुकूल क्रिया
'इद्धाग्नयः शम्या य सुकृत्यया '
ऋ. १.८३.४; अ. २०.२५.४
जो ज्ञानी पुरुष बाहर की यज्ञाग्नियों और भीतर की प्राणाग्नियों को प्रज्वलित कर उत्तम कर्तव्य कर्मों से युक्त शान्तिदायक साधना से (सुकृत्यया शम्या) प्रथम वय को ब्रह्मचर्य पूर्वक धारण करते हैं ।

सुकृत्वन् – उत्तम कार्य कुशल
'अरट्वे अक्षे नहुषे सुकृत्वनि '
ऋ. ८.४६.२७

सुकृतां लोकः – पुण्यात्मा पुरुषों का लोक
'ताभ्यां पतेम सुक्रतामुलोकम् '
वाज.सं. १८.५२

सुकृतोः – पिता का सुखकारी पोषण आदि कर्म का करने वाला-पुत्र ।
'अन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन्'
ऋ. ३.३१.२; नि. ३.६

सुकृत्वा – 'सुकृत्वन् ' के प्र.ए.व. का रूप । शुभ कर्म करने वाला
'मदे मदे ववक्षिथा सुकृत्वने '
ऋ. ८.१३.७

सुकृते – द्वि.। (१) द्यावापृथिवी का विशेषण, (२) सुन्दर निर्मित । दे. 'असश्चन्ती '
'घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते'
ऋ. ६.७०.२
सुन्दर निर्मित सुन्दर कर्मों वाली द्यावापृथिवी संसार के लिए जल देती है ।

सुकेतुः – (१) सुन्दर प्रज्ञा वाला (२) विद्याओं द्वारा

ज्ञान कराने वाला
'सुकेतव उषसो रेवदूपुः'
ऋ. ३.७.१०

सुक्षेत्र - उत्तम क्षेत्र । दे. 'श्रोतु'

सुक्षेत्रता - (१) उत्तम क्षेत्र को होना, (२) उत्तम क्षेत्र को सफल करना
'सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै सुजातम्'
अ. ७.२०.५

सुक्षेत्रिया - सुक्षेत्रा + डिपाच् = सुक्षेत्रिया । (२) वह नीति जिससे क्षेत्र मिले- दया. ।
(२) सुन्दर क्षेत्र, (३) कर्मों के उत्तम बीज रूप संस्कार के वपन (वोने) के लिये उत्तम देह, (३) सन्तान वपन के लिए उत्तम स्त्री, (४) अन्न-वपन के लिए उत्तम भूमि पाने की इच्छा ।
'सुक्षेत्रिया सुगातुया
वसूया च यजामहे'
ऋ. १.९७.२; अ. ४.३३.२; तै.आ. ६.११.१
सुक्षेत्र, सुन्दर मार्ग, भूमि, ज्ञान वाणी या व्यवहार प्राप्त करने की इच्छा से और प्राण, प्रजा और ऐश्वर्यों तथा उत्तम लोकों या निवास प्राप्त करने की इच्छा से तेरी उपासना करें ।

सुख - (१) 'सुखं सुहितं खेभ्यः' (सुख इन्द्रियों के लिए सुष्ठु प्रकार से सुखकारक होता है) ।
'ख' का अर्थ इन्द्रिय और आकाश दोनों हैं ।
(२) स्कन्दस्वामी ने 'खेभ्यः' का अर्थ 'इन्द्रियों के निमित्त' न कर पंचमी में इन्द्रियों से किया है (अतिशपेन सुखं पुरुषस्य खेभ्यः) ।
(३) निरुक्त में सुख के बीस नाम हैं, जैसे शिम्बाता, शतरा, शातयन्ता इत्यादि ।
शिञ् (नाशानार्थक) + ब = शिम्ब (मुम् निपातन से); अत + घञ् = आत; शिम्ब + आत् = शिम्बात् ।
दुःखों को कम करता हुआ जो प्रार्थिक होता है वह शिम्बात् अर्थात् सुख है । ह्रदमग्नानामिव शरीरं शीती भवति (तालाब में स्नान करने के बाद जैसे शरीर शीतल हो जाते हैं वैसे ही सुख से शरीर शीतल हो जाता है) - यह दुर्ग का मत है।
जल से भी बढ़कर शीतलता से सुख होता है । 'शातपन्ता' 'शान्तपापम्' से हुआ है (जहां पाप न हों वही हैं । निम्न लिखित ऋचा में शतरा और शातपपन्ता का प्रयोग है-
'मित्रेव ऋता शतरा शातपन्ता'
ऋ. १०.१०६.५
पुनः सुख का प्रयोग-
'अश्वो वोढा सुखं रथं
हसनामुपमन्त्रिणः
शेपो रोमण्वतौ भेदौ
वारिन्मण्डूक इच्छति
इन्द्रायेन्दो परि स्रव ।'
ऋ. ९.११२.४
हे सोम, जैसे वहन समर्थ अश्व (वोढा अश्वः) लक्ष्यदेश की प्राप्ति के निमित्त कल्याणकारी रथ चाहता है (सुखं रथम्) नर्म सचिव (उपमन्त्रिणः) उपहास प्रधान वाणी चाहते हैं (हसन्तम्) उसी प्रकार पुरुषलिंग (शेपः) तरुणी के रोमवान् विदलीभूत प्रदेशों को अर्थात् उपस्थ को चाहता है (रोमण्वन्तौ भेदौ) । मण्डूक जल ही चाहता है (मण्डूकः वार इत्) । इसी प्रकार मैं तेरा रस चाहता हूँ । अतएव तू इन्द्र के लिए रस रूप में स्रवण कर (इन्द्राय परिस्रव)।
(२) सुखदायक
'सुपेशसं सखं रथम्'
ऋ. १.४९.२
(३) उत्तम हृदयाकाश
'अर्वाञ्चं त्वा सुखे रथे'
ऋ. ३.४१.९; अ. २०.२३.९

सुखरथः - (१) सुखकारी रथ को चलाने वाला, (२) सुखपूर्वक आकाश में वेग से जाने वाला विद्युत, (३) सुखपूर्वक इन्द्रियों में रमण करने वाला आत्मा ।
'क्वस्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं
सुखरथमीयमानं हरिभ्याम्'
ऋ. ५.३०.१

सुखादि - (१) सुखादि + खादि । उत्तम रीति से ऐश्वर्यों का भोक्ता (२) सर्वजगत् का संहारक
'प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये
तवसे भन्ददिष्टये'
ऋ. ५.८७.१

सुखादी - (१) सुख + अद् + ई = सुखादि । सुखदायक या शोभन हवि का खाने वाला-मरुत् -सा.

(२) सुख भोगने वाले विद्वान् -दया.
दे. 'इष्मिन्'
'ते रश्मिभिस्त ऋक्विभः सुखादयः
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवः'
ऋ. १.८७.६
वे मरुत् लोगों के सुखदायक या शोभन हवि के खाने वाले (सुकादयः) सुन्दर स्तुतियों से युक्त (वाशीमन्तः) हवि या स्तुति के निकट जाने वाले या उनकी इच्छा वाले या प्रत्यक्ष रूप से सभी पदार्थों को देखने वाले (इष्मिणः) तथा भय-रहित हैं। वे रस हरने वाली सूर्य की रश्मियों के साथ (ऋक्वभिः रश्मिभिः) जल बरसाते हैं। -सा.
सुख भोगने वाले विद्वान् मनुष्य सुख सेवन के लिए (श्रियसे) प्रशस्त पदार्थों से (ऋक्वभिः) सुख की कामना करते हैं। वे वाग्मी वाशीमन्तः) क्रियाशील तत्वदर्थी निर्भय मानुषिक तेज प्राप्त करते हैं। (प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः)।

सुगः - सु + गम् + ड = सुग्। सुगम चलने योग्य मार्ग। दे. 'अलातृण'।
'सुगान् पथो अकृणोन्निरजे गाः'
ऋ. ३.३०.१०; नि. ६.२
हे इन्द्र, तूने मेघों के जल के बहने के लिए सुगम मार्ग बनाए। (२) सुखकारिणी
'न सुगं दुष्कृते भुवम्'
ऋ. १०.८६.५; अ. २०.१२६.५

सुगन्धिः - शोभनः शरीरगन्धः पुण्यगन्धो वा यस्य सः (उत्तम गन्ध का पुण्य गन्ध से युक्त)- त्र्यम्बक का विशेषण (२) ओषधि का विशेषण।
पुण्यकर्मणो गन्धः दूरात् एव याति (पुण्यकर्म की गन्ध दूर से ही जाती है)।
'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्'
ऋ. ७.५९.१२; वाज.सं. ३.६०; तै.सं. १.८.६.२; मै.सं. १.१०.४: १४४.१२; श.ब्रा. २.६.२.१२; वै.सू. ९.१९; नि. १४.३५
त्र्यम्बक का अर्थ सायण ने शिव किया है। अम्बा, अम्बिका तथा अम्बालिका नामक ओषधियों को भी त्र्यम्बक कहा गया है।

सुगभस्तिः - (१) उत्तम किरणों से युक्त सूर्य (२) उत्तम बाहु वाला पुरुष
'मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठाम्'
ऋ. ५.४३.४

सुगव - (१) सुखप्रद, उत्तम भूमि, गौ आदि सम्पत्ति का स्वामी
'अस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः'
ऋ. १.११६.२५; का.सं. १७.१८

सुगव्य - (१) उत्तम गौओं से युक्त (२) पृथिवी से उत्पन्न अन्नादि समृद्धि से युक्त।
'सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यम्'
ऋ. १.१६२.२२; वाज.सं. २५.४५; आश्व.श्रौ.सू. १०.८.४
(३) उत्तम इन्द्रियगण
'सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः'
ऋ. ८.१२.३३

सुग्म्यः - (१) उत्तम सुखदायिनी भूमि में सर्वश्रेष्ठ, (२) पृथिवी को विजय और पालन करने में कुशल
'नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः'
ऋ. १.१७३.४

सुगा - (१) सुष्ठु गच्छति या सा -दया.
जो सुन्दर प्रकार से चलती है वह सुगा है।
(२) नहर आदि
'सुगा अपश्चकार वज्रबाहुः'
ऋ. १.१६५.८; मै.सं. ४.११.३:१६९.६; का.सं. ९.१८; तै.ब्रा. २.८.३.६.

सुगतुया - सु + गातु + याच् = सुगातुया।
(१) उत्तम मार्ग, भूमि, ज्ञानवाणी और व्यवहार प्राप्त करने की इच्छा।
दे. 'सुक्षेत्रिया'।
(२) जिस नीति से पृथिवी मिले-दया.।

सुगाधा - (१) सुख से अवगाहन करने योग्य जलधारा
(२) उत्तम वेदवाणी
'करद् ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा'
ऋ. ७.९७.८

सुगार्हपत्य - उत्तम गृहपति के योग्य
'सुगार्हपत्याः समिषो दिदीहि'
ऋ. ५.४.२; तै.सं. ३.४.११.१; मै.सं. ४.१२.६:१९६.९; का.सं. २३.१२

सुगुः - (१) सुन्दर गौओं वाला, (२) सुन्दर ज्ञान

वाणियों से युक्त, (३) बलवान् इन्द्रियों से युक्त
'सुगुरसत् सुहिरण्यः स्वश्वः'
ऋ. १.१२५.२; नि. ५.१९
(४) सुन्दर धन वाला-दया.
गौ का अर्थ वैदिक साहित्य में धन भी किया गया है।

सुगू - द्वि.व.। उत्तम इन्द्रियों या गौओं से सम्पन्न पति पत्नी।
'सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथः'
अ. १४.२.४३

सुगृहौ - उत्तम गृह से युक्त वर वधू। दे. 'सुगू'

सुगोपाः - (१) उत्तम किरणों या भूमियों का पालक मेघ या सूर्य, (२) इन्द्रियों या वाणी का उत्तम, पालक, (३) उत्तम गोरक्षक, (४) इन्द्रियों का पालक आत्मा।
'प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा'
ऋ. ३.४५.३; साम. २.१०७०
(५) उत्तम रक्षक-परमेश्वर
'यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते'
ऋ. २.२३.५

सुगोपातमः - (१) उत्तम रक्षक
'स सुगोपातमो जनः'
ऋ. १.८६.१; अ. २०.१.२; वाज.सं. ८.३१; तै.सं. ४.२.११.२; ऐ. ब्रा. ६.१०.३; गो.ब्रा. २.२.२०; श.ब्रा. ४.५.२.१७
(२) सबसे उत्तम पृथ्वी का रक्षक

सुगोवृध् - सुख बढ़ाने वाला
'अदब्धाः सन्ति पायवः सुगोवृधः'
ऋ. ८.१८.२

सुघ्न - अच्छी प्रकार दण्ड देना
'सुघ्नाय दस्युं पर्वतः'
ऋ. ८.७०.११

सुचक्रम् - (१) शोभन चक्रः, (सुन्दर चक्रा वाला रथ) (२)'अमृतस्य लोकः' का विशेषण। दे. 'अमृतस्य लोकः
'हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्'
ऋ. १०.८५.२०; अ. १४.१.६१; आप.मं.पा. १.६.४; नि. १२.८
पुनः, दे. 'आसस्राणासः'।

सुचरित - उत्तम चरित्र
'आ मा सुचरिते भज'
वाज.सं. ४.२८; तै.सं. १.१.१२.१; का.सं. १.१२; ३१.११; श.ब्रा. ३.३.३.१३; तै.ब्रा. ३.३.७.९; आप.श्रौ.सू. २.१४.१०

स्रुच् - स्रुचतेः चेतत् वेदी व्याह
(१) स्रुचश्चैतद्वेदीश्चाह
श.ब्रा. ९.२.३.१७
(२) योषा हि स्रुक्
श.ब्रा. १.४.४.४.
(३) युजौ युजौ एतै यज्ञस्यत्
सुचौ- श.ब्रा. १.८.३.२७
(४) बाहू वै स्रुचौ
श.ब्रा. ७.४.१.३६
(५) वाग् वै स्रुक्
श.ब्रा. ६.३.१.८
(६) गौर्वा स्रुचः
तै.ब्रा. ३.३.५.४
(७) इमे वै लोका स्रुचः
तै.ब्रा. ३.३.१.२
(८) यजमानः स्रुचः
जै.ब्रा. ३.३.६.३
स्रुच् का अर्थ है-योषा, बाहू, वाक्, गौ, लोक, यजमान।
दे. 'यतस्रुचा'
'अभिस्रुचः क्रमते दक्षिणावृतः'
ऋ. १.१४४.१
आचार्य के दाहिने बैठा शिष्य उसकी वाणियों को प्राप्त करे।
अथवा वर के दाहिने भाग में बैठी कन्या उसके तेज आदि गुणों को ग्रहण करती है।

सुच्छर्दिस्तमः - उत्तम रक्षा गृह से युक्त
'तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिस्तमे नरः'
ऋ. ७.६६.१३

सुचित्रा - अति अद्भुत् या रमणीय
'तां सवितः सत्यसवां सुचित्राम्'
अ. ७.१५.१

सुचेतुः - (१) विज्ञान-दया.। दे. 'क्रिविर्दती' 'सुचेतुना'। (२) सुन्दर बुद्धि वाला-सा (३) उत्तम ज्ञान विज्ञान। दे. 'विश्वायु पोषस्'

सुचेतुना - व. व.। (१) सुन्दर बुद्धि वाले मरुद्गण-सा.।
(२) विज्ञान द्वारा-दया.। 'सुचेतु' शब्द के

तृतीया एक वचन का रूप ।
सायण ने इसे प्रथमा बहुवचन में मरुतों का विशेषण माना है । दे. 'सुचेतु'
'यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुना
अरिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन'
ऋ. १.१६६.६
हे उग्रमरुतो, सुन्दर बुद्धि वाले (सुचेतुना) तथा सदा साथ रहने वाले (अरिष्टग्रामाः) आप (यूयम्) हमारी बुद्धि को (सुमतिम्) पूर्ण करें (पिपर्तन)-सा. ।
हे संघशक्ति से सम्पन्न उग्र विद्वज्जन (अरिष्ट यामाः उग्रमरुतः), आप हमारी शिक्षा को (सुमतिम्) विज्ञान से पूर्ण करें (सुचेतुना पिपर्तन) -दया.

सुजन्मनी - द्वि.व. । (१) सुन्दर जन्म वाले द्यावापृथिवी (२) पति पत्नी
'सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते'
ऋ. १.१६०.१; ऐ.ब्रा. ४.३२.४; कौ.ब्रा. २१.२

सुजनिः - उत्तम रीति से जन्तुओं और अन्नादि ओषधियों को उत्पन्न करने में समर्थ पृथिवी ।
'उरुक्षितिं सुजनिमाचकार'
ऋ. ७.१००.४; मै.सं. ४.१४.५:२२१.८; तै.ब्रा. २.४.३.५

सुजात - (१) उत्तम गुणों से प्रसिद्ध (२) अग्नि, (३) परमेश्वर ।
'अग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे'
ऋ. २.१.१५
दे. 'सुशिश्वि'
(४) सुजननः पुत्रः (सुजात पुत्र), माता पिता से भी अधिक गुणी पुत्र ।
(५) सुजाततरः -यास्क (६) शोभनात् अपि शोभनतरः (अच्छा से भी अच्छा) ।
सु + जन + क्त = सुजात ।
'जनिष्टो अपोनर्यः सुजातः'
ऋ. १०.९५.१०; नि. ११.३६
जिनसे जल की ऊर्मियाँ सुजात पुत्र के समान शस्य रूपी सम्पत्ति को बढ़ाने वाली उत्पन्न होती हैं ।-सा.
अन्तरिक्षस्थ जलों से जल प्रपात की तरह रजवीर्य से उत्पन्न अधिक कर्मा, मनुष्यों के लिए हितकारी या मनुष्य की सन्तान तथा माता पिता से भी अधिक गुणी पुत्र उत्पन्न होता है ।
(७) उत्तम रीति से विद्या आदि में कुशल विद्वान् ।
'सं सुजातासः सूरय'
ऋ. ५.६.२; वाज.सं. १५.४२; साम. २.१०८९; मै.सं. २.१३.७:१५७.१

सुजातता - उत्तम उत्पत्ति जना
'संवर्तयति वर्तनिं सुजातता'
ऋ. १०.१७२.४; अ. १९.१२.१; साम. १.४५१

सुजाता - (१) शुभ कुल में उत्पन्न कन्या, (२) रात्रि
'वर्ये वन्दे सुभगे सुजाते'
अ. १९.४९.३

सुजिह्वः- (१) सुन्दर जिह्वा या ज्वाला वाला, (२) अग्नि । दे. 'अध्वर'
'मध्वा समञ्जन् स्वदया सुजिह्व'
ऋ. १०.११०.२; अ. ५.१२.२; वाज.सं. २९.२६; मै.सं. ४.१३.३:२०१.१०; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.१; नि. ८.६.
हे सुन्दर ज्वाला वाले अग्नि, हवि को मधुरस से मिलाकर स्वादिष्ट बना ।

सुजूर्णिः - उत्तम वेग वाली
'या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्नआपिः'
ऋ. १०.९५.६
(२) उत्तम रीति से सब कार्य वेग से करने वाली-उषा (३) ब्रह्मचारिणी

सुज्यैष्ठ्य - उत्तम श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न
'सुज्यैष्ठ्यो भवत् पुत्रस्त एषः'
अ. १४.२.२४

सुत - (१) अभिसुत सोमरस, (२०) पुत्र, (३) प्रजाजन (४) सृष्ट जगत्-दया. । दे. 'ईत्था'
'तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्य
उच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान'
ऋ. ४.३२.६
अभिसुत सोम से प्रसन्न, मनोरथ बरसाने वाले इन्द्र ने उस वृत्र को वज्र उठाकर मारा -सा. ।
पुत्र तुल्य प्रजाजन को आनन्द देने वाला राजा चोर व्यभिचारी आदि को उत्तमतया धमका कर दण्डित करे । दया.

सुतक्रिः - (१) सुसम्पन्न, (२) सुप्रसन्न, (३) उत्तम ऐश्वर्य द्वारा क्रीत, (४) सोमरस से क्रीत, (५)

उत्तम वेतन पर बद्ध, (६) उत्तम ऐश्वर्यों से अन्यों और अन्यों के श्रमों को अपने लिए खरीदने में समर्थ, (७) इन्द्र, परमेश्वर ।
'दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे'
ऋ. ६.३१.४

सुतपा - सुत + पा । (१) अभिसुत किए सोमरस को पीने वाला (२) हुतशिष्ट सोमपीती यजमान । दे. 'त्वेष'।
'इन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति'
ऋ. १.१५५.२; नि. ११.८
हे इन्द्र और विष्णु, आप दोनों के (वाम्) समागम को हुत शिष्ट सोमपीती यजमान (सुतया) पूजित या वर्णन करता है (उरुष्यति)।

सुतपावा - (१) उत्पन्न पदार्थों का रक्षक, (२) ज्ञान-निष्णात उपासकों का पालक परमेश्वर
'सुतपाव्ने सुता इमे'
ऋ. १.५.५; अ. २०.६९.३
(३) प्रजाजन को पुत्रवत्, पालन करने वाला, (४) ऐश्वर्य का रक्षक
'प्रेपोयन्धि सुतपावन् वाजान्'
ऋ. ६.२४.९

सुतम्भरः - (१) पुत्र को या प्रजा को भरण करने में समर्थ
'सुतंभरो यजमानस्य सत्पतिः'
ऋ. ५.४४.१३

सुतरणा - (१) सुख से पार करने योग्य । सु + तॄ ल्युट् + टाप् = सुतरणा ।
'सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून्'
ऋ. ४.१९.६

सुतरा - (१) उत्तम, (२) दुःखसागर से सुखपूर्वक तार देने वाली
'करद् ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा'
ऋ. ७.९७.८

सुतराः अपः- (१) सुखप्रद जल, (२) खूब वेग से जाने वाला जल, (३) सुख से पार तराने वाले कर्म ।
'द्युम्नाय सुतरा अपः'
ऋ. ६.६०.११; साम. २.५००

सुतष्ट - (१) सुखजनक, (२)उत्तम रीति से सुविचारित
'इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टम्
मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत्'
ऋ. २.३५.२; का.सं. १२.१५
(३) अच्छी तरह शिल्पियों से बनाया गया-रथ, (४) उत्तम रीति से अध्यापित ।
'अस्मत् सुतष्टो रथो न वाजी'
ऋ. ७.३४.१; मै.सं. ४.९.१४:१३४.११; तै.आ. ४.१७.१

सुतस्य अन्धसः धारा - अभिसुत भन्दनीय सोम रस की धारा से । दे. 'मन्दिन्'।
'तरत् स मन्दी धावति
धारा सुतस्यान्धसः'
ऋ. ९.५८.१; साम. १.५००; २.४०७; नि. १३.६.
जो स्तोत्र से देवताओं को प्रसन्न करने वाला है वह तरता है (मन्दी स तरत्) तथा अभिसुत भक्षणीय सोम रस की धारा से (सुतस्य अन्धसः धारा) ऊर्ध्व गति प्राप्त करता है या उन्नति करता या उच्च गति प्राप्त करता है (धावति)।

सुतस्यमन्दानः - (१) अभिसुत सोमरस से प्रसन्न, (२) पुत्र तुल्य प्रजाजन को आनन्द देने वाला-राजा, (३) सृष्ट जगत् से प्रसन्न । दे. 'इत्था,' 'सुत'।

सुतसमोम - (१) सोमरस- चलाने वाला यजमान, (२) यज्ञ कर्ता, (३) शिष्यों और पुत्रों को उत्पन्न करने वाला ।
'तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ।'
ऋ. १.१४२.१
हे अग्ने, तू सोम वाले यजमान के हितार्थ यज्ञ का सम्पादन करता है (तन्तुं तनुष्व) ।
अथवा,
शिष्यों और पुत्रों को उत्पन्न कर उनको उत्तम पद पर अभिषिक्त करने वाले, अपना सर्वस्व ज्ञान और धन सौंपने वाले वृद्ध पिता के लिए ही पूर्व पुरुषों से सुरक्षित प्रजा तन्तु और शिष्य तन्तु को विस्तृत कर ।
(४) ओषधियों को उत्पन्न करने वाला सूर्य, (५) ऐश्वर्य प्राप्त पुरुष ।
'गायद् गाथं सुतसोमो दुवस्यन्'
ऋ. १.१६७.६

स्तुत् - (१) स्तोता, (२) पदेष्टा ।
'स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च'
ऋ. ६.६३.८

दे. 'असंक्रा '
हे मधुपायी अश्विद्वय, तुम्हारे स्तोता भी हैं और सुन्दर स्तुतियाँ भी ।
'स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति'
ऋ. ८.२.२९

स्तुत - स्तवन द्वारा उपस्थित साम भाग
'उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम् '
अ. ११.७.५

स्तुतस्तोम - (१) स्तोमों या तीनों वेदों का ज्ञाता
'यस्ते अश्वसनिर्भक्षो यो
'गोसनिस्तस्य त इष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि'
वाज.सं. ८.१२

सुतावत् - उत्तम ऐश्वर्य वाला
'सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः'
ऋ. ३.५८.९

सुतवान् - पुत्रों वाला
'वयं घ त्वा सुतावन्तः'
अ. २०.५२.१

स्रुता - बहती हुई जल धारा
'सोममपि स्रुताविदत्'
ऋ. ८.९१.१; जै.ब्रा. १.२२०

सुत्रात्रः - (१) उत्तम रीति से रक्षा करने वाला
'उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः'
ऋ. ६.६८.७

सुत्राता - सुन्दर पालक
'उत त्रायेथां सुत्रात्रा'
ऋ. ५.७०.३; साम. २.३३७

सुत्रामा - (१) उत्तम रीति से प्रजा का पालक करने वाला,
(२) इन्द्र
'इन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व'
वाज.सं. १०.३१; १९.१; तै.सं. १.८.२१.१; मै.सं. २.३.८:३५.१६; ३.११.७:१५०.२; का.सं. १२.९; ३७.१८; तै.ब्रा. १.८.५.४; २.६.१.१; श.ब्रा. ५.५.४.२०; १२.७.३.६
(३) सु + त्रा + मनिन् = सुत्रामन् । प्रथमा एक वचन में सुत्रामा,
सुन्दर रक्षक - इन्द्र
सुत्रामा गोत्रभिद् वज्री-अमरकोष । दे. 'अस्मे' ।
'स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे '
ऋ. ६.४७.१३;१३१.७; अ. ७.९२.१; २०.१२५.७; वाज.सं. २०.५२; तै.सं. १.७.१३.५; मै.सं. ४.१२.५; १९१.७; का.सं. ८.१६
'सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे'
वाज.सं. १०.३२

सुत्रावा - उत्तम रक्षक (सुत्रावन्)
'आ सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः'
अ. १९.४२.३

सुत्वा - (१) राष्ट्र को अपने शासन में रखने वाला, (२) सोम यज्ञ करने वाला
'सुत्वा यज्वा च पूरुषः'
अ. २०.१२८.१; शां.श्रौ.सू. १२.२०.२.१

स्रुतिः - (१) जल धारा,
'विस्रुतयो यथा पथः'
साम. १.४५३; २.११२०; आश्व.श्रौ.सू. ६.२.६.
(२) ज्ञानमार्ग, (३) कर्म मार्ग (४) विविध गति -दया.
'तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम् '
ऋ. २.१३.१२
(५) स्रु + क्तिन् = स्रुति । स्रवन्ति गच्छन्ति यस्मिन् (जिस पर चलते हैं) । अर्थ मार्ग । दे. 'परिपन्थी '
'गवामिव स्रुतयः सञ्चरणीः'
ऋ. ६.२४.४
'पूर्वीर्हिते स्रुतयः सन्ति यातवे '
ऋ. ९.७८.२
'द्वे स्रुती अशृण्व पितृणाम् '
ऋ. १०.८८.१५; वाज.सं. १९.४७; मै.सं. २.३.८:३६.१४; का.सं. १७.१९;३८.२; श.ब्रा. १२.८.१.२१; १४.९.१.४; तै.ब्रा. १.४.२.३; २.६.३.५; शां.श्रौ.सू. १६.१३.१८; आप.श्रौ.सू. १९.३.५.

स्रुती - द्वि.व.। (१) दो मार्ग, (२) पितरों के दो मार्ग-उत्तरायण और दक्षिणायण । दे. 'स्तुति' ।

सुतीर्थ - (१) सुन्दर उतरने की जगह, (२) घाट
'सुतीर्थमर्वतो यथा'
ऋ. ८.४७.११

सुतुक - (१) उत्तम पुत्रों वाला पिता या (२) उत्तम शिष्यों वाला आचार्य ।
'मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश'
ऋ. १.१४९.५; साम. २.११२६.
(३) सु + तक (गति अर्थ में) + क = सुतुक

(बहुलक से अ का उ)।
'तुक्' का अर्थ अपत्य भी है।
शोभनाः तुकाः यस्य स सुतुकः।
सुतकनः सुगमनः स्तोतृभिः सुखेन प्राप्तव्यः (सुन्दर गतिवाला, स्तोताओं से सहज ही प्राप्य)
(४) शोभन प्रजाओं से युक्त (५) अग्नि का विशेषण (५) सुतुयुः सुतकवः सुयुजानि इति वा।
'स आ वक्षि महि न आ च सत्सि
दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वैः
रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः'
ऋ. १०.३.७
हे अग्नि, वह तू हमारे यज्ञ में महान् देवों को बुलाता है (महि आवक्षि) तथा होता बनकर बैठता भी है (आसत्सि च) और एक दूसरे से मिश्रित होती युवतियों के सदृश द्यौ और पवित्री के मध्य में (युवत्योः दिवस्पृथिव्योः) सूर्य के रूप में चलने वाला (अरतिः) या दुर्ग के अनुसार सभी भूतों के मध्य तू अलमति या पर्याप्तमति है। पुनः तू सुन्दर गति वाला या स्तोताओं से सुप्राप्य है या सुन्दर प्रजाओं से युक्त है (सुतुकः)। वेगयुक्त अग्नि (रभस्वान् अग्निः) सुन्दर गति या कुलवाले वेगवान् अश्वों के साथ (सुतुकेभिः रभस्वद्धिः अश्वैः) इस यज्ञ में आवे (इह आगम्याः)।
अन्य अर्थ - हे प्राज्ञ विद्वान्, वह आप हमें महान् तेज प्राप्त कराइए (सः नः महि आवक्षि) और युवावस्थापन्न माता पिता के आर्यपुत्र आप हमारे समीप रहिए (युवत्योः दिवस्पृथिव्याः अरतिः आसत्सि)। हे प्राज्ञ, शोभनगति वाली इन्द्रियों से सुगतिमान् (सुतुकैः अश्वैः सुतुकः) और बलवान् इन्द्रियों से बलवान् आप (रभस्वद्धिः रभस्वान्) यहां आइए (इह आगम्याः)।
(६) उत्तम पुत्र पौत्र से युक्त
'करो वज्रिन् सुतुका नाहुषाणि'
ऋ. ६.२२.१०; अ. २०.३६.१०
(७) अति हिंसक, (८) आत्मा को निर्बल करने वाला काम क्रोधादि
'तस्मै शत्रून् सुतुकान् प्रातरह्नः'
ऋ. १०.४२.५; अ. २०.८९.५
(९) उत्तम सुख पूर्वक वृद्धि शील, (१०) खूब हिंसक, (११) उत्तम बालकों या पुत्रों वाला
'सुदास इन्द्र सुतकाँ अमित्रान्'
ऋ. ७.१८९

सुतुका - (१) उत्तम केश वाली स्त्रियाँ, (२) उत्तम सुख भोग देने वाली प्रजा (३) उत्तम देह पालक प्राणगण
'आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्'
ऋ. १.१७८.२

सुत्य - (१) छोटे-छोटे नालों का अध्यक्ष
'नमः स्रुत्याय च पथ्याय च'
वाज.सं. १६.३७; तै.सं. ४.५.७.१; का.सं. १७.१५

सुतेकरः - यज्ञकार्य में कुशल
'न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः'
ऋ. १०.७१.९

सुतेगृभ - पुत्रवत् ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र में गर्भवत् सावधानी से पालन करने योग्य जन
'सजर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभम्'
ऋ. ५.४४.५

सुदक्ष - (१) उत्तम कार्य कुशल (२) शक्तियों और बैलों का वर्धक शुक्र।
'त्वायेन्द्र सोमं सुषमा सुदक्ष'
ऋ. १.१०१.९
(३) उत्तम कर्म करने वाला सोम परमेश्वर
'त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः'
ऋ. १.९१.२; मै.सं. ४.१४.१:२१४.६; तै.ब्रा. २.४.३.८.

सुदक्षा - द्वि.व.। (१) पापाचारों को भस्म करने वाले स्त्री पुरुष, (२) उत्तम ज्ञान और क्रम से युक्त, (३) उत्तम बलशाली
'अश्विना वायुना युवं सुदक्षा'
ऋ. ३.५८.७; ऐ.ब्रा. ४.११.१७; कौ.ब्रा. १८.५

सुदक्षिणः - (१) दाहिने हाथ से कर्म करने में कुशल, (२) उत्तम धन, दान, बल बुद्धि से सम्पन्न (३) परमेश्वर।
'यः सुषव्यः सुदक्षिणः'
ऋ. ८.३३.५

सुदत्रः - सु + दा + ष्ट्रन् = सुदत्र (बाहुलक से दा दद् या आ का अ)। कल्याण दानः (सुन्दर सुख देने वाला)।

'ता नो रासन् रातिषाचो वसूनि
आ रोदसी वरुणानी श्रृणोतु ।
वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु
त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायः '
ऋ. ७.३४.२२

देवपत्नियां (ताः) जो हवि का दान करने वाली हैं (रातिषाचः) हमें अभीष्ट धनों को दे (नः वसूनि रासन्) तथा द्यौ और पृथ्वी या रुद्र की पत्नियां (रोदसी) तथा वरुण की पत्नी (वरुणानी) सम्मुख हो सुनें (आ श्रृणोतु) और उपद्रवों के कारण होने वाली या श्रेष्ठ वरणीय देवियों के साथ (वरूत्रीभिः) कल्याण देने वाला (सुदत्रः) विश्वकर्मा या प्रजापति (त्वष्टा) हमारे लिए (नः) सुन्दर शरणप्रद होवें (सुशरणः अस्तु) तथा धन दे (रायः वि दधातु) ।

अन्य अर्थ – जैसे सूर्य और पृथ्वी तथा समुद्र (रोदसी वरुणानी) हमें अनेक विधि उत्तमोत्तम पदार्थ देते हैं (रातिषाचः) वैसे कर रूपी दान को रोकने वाले राज पुरुष हमें उन पदार्थों को भली प्रकार दें (नः वसूनि आ रासत्) । इसी प्रकार कल्याण के लिए दान देने वाला राजा रक्षा करने वाली विद्याओं से (वरूत्रीभिः) हमारा आश्रयदाता हो (सुशरणः अस्तु) और हमें ऐश्वर्य प्रदान करे (रायः विदधातु) ।

(२) उत्तम ज्ञानदाता
'यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः '
अ. ७.१०.१

(३) उत्तम दानशील

सुदर्शतरः – (१) सूर्य से या दिन के प्रकाश से भी अच्छी प्रकार दर्शनीय (२) उज्ज्वल स्पष्ट मार्ग दर्शी– अग्नि या आचार्य ।दे. 'अप्रायुष्' ।
नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरात्
'अप्रायुषे दिवातरात् '
अ. १.१२७.५

सुदंससा – (१) उत्तमरीति से दुःखनाशक द्यावापृथिवी ।
(२) उत्तम कार्य और ज्ञान से युक्त माता पिता या गुरु जन । दे. देवपुत्रे ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससा '
ऋ. १.१५९.१

सुदंसाः – (१) शोभन कर्म वाला, (२) समस्त कार्यों को सिद्ध करने वाला
'अधारयद् रोदसी सुदंसाः '
ऋ. १.६२.७

(३) उत्तम कर्मों का या उत्तम रीति से समस्त संस्कार का कार्य करने वाला प्रभु
'जज्ञान सूर्यमुषसं सुदंसाः '
ऋ. ३.३२.८

सुद्रव – (१) उत्तम 'द्रु' अर्थात् काष्ठ का बना या हुआ, (२) उत्तम स्थिर पुरुष
'नेमिं तष्टेव सुद्रवम् '
ऋ. ७.३२.२०

सुद्रविणस् – (१) उत्तमोत्तमधन को देने वाला, (२) अदिति या अग्नि का विशेषण । दे. 'अनागस्त्व '
'यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशः
अनागस्त्वमदिते सर्वताता '
ऋ. १.९४.१५; नि. ११.२४
हे उत्तमोत्तम धन को देने वाले, अखण्डनीय अग्नि, जिस यजमान को सभी कर्मों को विस्तारों में तू पापराहित्य प्रदान करता है ।

सुदानु – (१) कल्याणदायक, कल्याण देने वाला, (२) मरुतों का विशेष। दे. 'सामि ', (३) उत्तम दानशील, धनाढ्य, (४) वीर्यदान में समर्थ पुरुष ।
'पुत्रियन्ति सुदानवः '
अ. १४.२.७२

सुदानू – (१) उत्तम रीति में जल देने वाले अन्तरिक्ष और द्यौ (२) विद्युत् और सूर्य, (३) उत्तम दानशील, (४) बाधक विघ्नों को नाश करने में चतुर

सुदामन्वान् – सुन्दर बन्धन से युक्त
'दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् '
ऋ. ६.२४.४

सुदा – उत्तम दाता
'न सुषा न सुदा उत '
ऋ. ८.७८.४

सुदामाः – (१) उत्तम नियमों में बांधने वाला
'दामन्वन्तो सुदामानः सुदामन् '
ऋ. ६.२४.४

सुदावन् – सुखों और उत्तम ऐश्वर्यों को देने वाला

परमेश्वर या राजा ।दे. 'आतिथ्य'

सुदास् - सु + दा + असुन् = सुदास् । प्रथमा ए.व. में सुदाः ।
(१) सुन्दर दान देने वाला
यजमान, (२) सुदास, नामक एक राजा । दे. 'अस्मे' 'शिप्री'
'शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे'
ऋ. ७.२५.३
हे सुन्दर मुख वाले, मुकुटधारी या उष्णीषी इन्द्र सुन्दर दान करने वाले यजमान के लिए या सुदास् राजा के लिए आप की सैकड़ो रक्षाएं हैं ।

सुदास - (१) एक वैदिक राजा, शोभन दानशील
'विश्वाभिरूतिभिः सुदासम्'
अ. २०.३७.३
(३) सुदास नामक राजा, जिसे पैजवन कहा गया है ।
'अश्वं राये प्र मुञ्चता सुदासः'
ऋ. ३.५३.११
सुदास के अश्वमेधीय अश्व को धनादि के लिए छोड़े ।

सुसासस्तर - अतिशय सुष्ठु प्रदाता
'दिवो नपाता सुदासस्तराय'
ऋ. १.१८४.१
तुम दोनों में जो स्वामी है वह अधिक सुख देने वाले दूसके के लिए परस्पर की कामना या प्रेम को कभी नीचे न गिरने देने वाला ही रहे ।

सुदिन - उत्तम प्रकाश युक्त दिन
'अध यदेषां सुदिने न शरुः'
ऋ. १.१८६.९
दे. 'पराशर'।
'अधा सूरीभ्यः सुदिना व्युच्छन्'
ऋ. ७.१८.२१
और विद्वानों के साथ होने से उत्तम दिन बिताते हैं ।
'अशस्तिमेषि सुदिने बाधमानः'
अ. १७.१.१७

सुदीति - (१) उत्तम दीप्ति से युक्त, (२) उत्तम रीति से दृढ़ पदार्थों को भी खण्डित करने में समर्थ वैश्वानर अग्नि ।
'सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे'
ऋ. ३.२.१३
'समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः'
ऋ. १.१५९.४
'सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे'
ऋ. ८.९७.१२; अ. २०.५४.३; साम. २.२८१
(३) उत्तम दाता । एवं रक्षक अग्नि या परमेश्वर का विशेषण ।
'अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तः'
ऋ. ३.१७.४; मै.सं. ४.१३.५:२०५.१३; का.स. १८.२१; तै.ब्रा. ३.६.९.१; आश्व.श्रौ.सू. ९.९.७
'नरोऽग्निं सुदीतये छर्दिः'
अ. २०.१०३.१

सूदीदितिः - सुन्दर दीप्ति युक्त अग्नि
'ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिम्'
ऋ. ८.१९.४
(२) विद्या विनय प्रकाशयुक्तः -दया.
उत्तम ज्ञानप्रकाश से युक्त तेजस्वी (३) अग्नि
'अपां नपातं सुभगं सुदीदितिम्'
ऋ. ३.९.१; साम. १.६२; २.७.६४

सुदुघा - सु + दुह् + कप् (घ आदेश) + टाप् = सुदुघा । (१) बहुत दूध देने वाली गौ
(२) सुदोहा, सुष्टुदोग्ध्री, सुदोहना
(३) माध्यमिका वाक् । दे. 'रोहत्'।
'उप ह्वये सुदुघां धेनुमेताम्'
ऋ. १.१६४.२६; अ. ७.७३.७; ९.१०.४; ऐ.ब्रा. १.२२.२; आश्व. श्रौ.सू. ४.७.४; नि. ११.४३
मैं सुन्दर प्रकार से दुही जाने वली इस गौ या माध्यमिका वाक् को बुलाता हूँ ।
(४) आनन्द रस पान करने वाली, ब्रह्ममयी, चिन्मयी, आनन्द धन कामधेनु

सुदुघां धेनु - (१) सुन्दर सुख पूर्वक दुहने योग्य सुशीला गौ,
(२) सुखों को दोहन करने वाली वाणी, आत्मा, परमेश्वर, भूमि
'उपह्वये सुदुघां धेनुमेताम्'
ऋ. १.१६४.२६

सुद्युत् - (१) सुन्दर प्रकाशवान् -अग्नि । दे. 'वेदिषद्'। (२) उत्तम कान्तिवान सूर्य
दे. 'सुसंदृश्'।

सुद्रुः - वेग से दौड़ने वाला अश्व
'नि सुद्रवं दधतो वक्षणासु'

ऋ. १०.२८.८

सुदृक्- (संदृक) - समान रूप से दर्शनीय। अग्नि का विशेषण। दे. 'चित्', 'सुप्रतीक'

सुदक्षम् - उत्तम बलकारी

'तस्मा इदन्धः सुषमा सुदक्षम्'

ऋ. ४.१६.१; अ. २०.७७.१

सुदृशी - (१) सुन्दर, पूजनीय रूप से दीखने वाली, (२) उत्तम रूप से सब पदार्थों को देखने वाली, (३) सुलोचना

'सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः'

ऋ. १.१२२.२

सूर्य के समान तेजस्वी और विद्वान् पुरुष की लक्ष्मी औ‍र हितकारी रमणीय उत्तम गुणों से और सुवर्ण के आभूषणों से सुन्दर दीखने वाली तथा उत्तम रीति से सब पदार्थों को देखने वाली-स्त्री हो।

सुदृशीकः - (१) उत्तम द्रष्टा, (२) उत्तम अध्यक्ष-अग्नि

'विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे'

ऋ. ५.४.२; तै.सं. ३.४.११.१; मै.सं. ४.१२.६: १९६.८; का.सं. २३.१.

सुदेवः - (१) कल्याण देव, कमनीय देव शोभन देव, सुश्रीक पति, । दे. 'अनावृत्'

'सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्'

ऋ. १०.९५.१४; श.ब्रा. ११.५.१.८; नि. ७.३.

तेरा शोभनपति तुझ से वियुक्त हो, अर्थात्, पुनः आने वाले न होकर आज ही पर्वत से गिर कर मर जाय।

पुनः दे. 'सिन्धु'

(२) उत्तम अर्थों का प्रकाशक (३) उत्तम तेजस्वी राजा (४) पुरुष लिंग

'सुदेवस्त्वा महानग्निर्विबाधते'

अ. २०.१३६.१२

(५) उत्तम दानी, (६) ज्ञान प्रकाशक, । दे. 'सुहव्य'।

(६) सर्वश्रेष्ठ देव, (८) उत्तम सुख या कल्याण का दाता, (९) आत्मा

'सुदेवो असि वरुण'

ऋ. ८.६९.१२; अ. २०.९२.९; मै.सं. ४.७.८: १०४.११; नि. ५.२७

सुद्योतमन् - (१) सुष्टु प्रकाशः-दया (सुद्योत्मा) (२) सुद्योत्मा- उत्तम रीति से चमकने वाला- सुद्यः आत्मा या सुद्योत्मा, (३) प्रकाश स्वरूप आत्मा, (४) तेजस्वी पुरुष

'उत नः सुद्योत्मा जीराश्वः
होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः'

ऋ. १.१४१.१२

और वह उत्तमरीति से चमकने वाला प्रकाश स्वरूप आत्मा 'सुद्योत्मा' कर्मफल भोक्ता जीव ही (जीराश्वः) सब विद्याओं और ज्ञान ग्रहण करने वाला आह्लादक सुवर्ण या चन्द्र के समान प्रकाश स्वरूप अति हर्ष का सुना जाता है। राजा के पक्ष में-जीराश्व का अर्थ वेगवान् अश्वों वाला है।

(५) उत्तम रीति से प्रकाशित होने वाला अग्नि या विद्युत् (६) प्रकाश स्वरूप परमेश्वर

'हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिम्'

ऋ. २.४.१; का.सं. ३९.१४; कौ.ब्रा. २२.९

सुधन्वन्, सुधन्वा - (१) एक वैदिक राजा। दे. 'ऋभु' (२) यथार्थ वादी

सुधा - (१) उत्तम भरण पोषण करने वाली अमृतरूप शक्ति

'सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्'

अ. १७.१.६-१९; २४

सुधातुः - (१) उत्तम धारण करने वाला यज्ञपति

'सुधातुं यज्ञपतिं दवेयुवम्'

वाज.सं. १.१२, श.ब्रा. १.१.३.७

(२) उत्तम भरण पोषण, (३) उत्तम गृह, (४) उत्तम सोना चान्दी का आभूषण, (५) उत्तम वेतन, वृत्ति

'उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु'

ऋ. ७.६०.११

सुधातुदक्षिणः - उत्तम सुवर्ण आदि धातु की दक्षिणा प्राप्त करने वाला

'ऋषिमार्षेयं सुधातुदक्षिणम्'

वाज.सं. ७.४६; श.ब्रा. ४.३.४.१९

सुधित - (१) सुखपूर्वक धारण करने योग्य

'अश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा'

ऋ. २.२७.१०

(२) सुविचारित

'मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसम्'

ऋ. ७.३२.१३; अ. २०.५९.४

(३) सुख से धारण करने योग्य ।
'इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि'
ऋ. १.१४०.११
(४) अच्छी प्रकार नियत,
(५) उत्तम पुष्टि कारक
'अभि प्रयांसि सुधितानि वीतये '
ऋ. १.१३५.४
(६) उत्तम रीति से सुरक्षित
'अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतवे '
ऋ. ८.६९.१७; अ. २०.९२.१४

सुधिता - (१) अच्छी तरह से वर्तमान
'मिम्यश येषु सुधिता घृताची'
ऋ. १.१६७.३
(२) सम्यक् प्रकार से प्रयुक्त -सा. ।
(३) सुसम्पादित -दया. (४) सुस्थापित ।
'यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती
रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा'
ऋ. १.१६६.६; नि. ६.३०
जब आप को (मरुतों को) काटने वाली हेति आयुध (क्रिविर्दती दिद्युत्) मेघ समूह को इस तरह से काटती है (रदति) तथा पशुओं को मारती है (पश्वः रिणाति) जैसे सम्यक् प्रकार से प्रयुक्त बढ़ी हुई हिंसा भावना से पशुओं को काटता है (सुधिता बर्हणा इव) । -सा.
जिस विज्ञान में (यत्रा) तुम्हारे काटने वाले दांतों वाली विद्युत (वः क्रिविर्दती दिद्युत्) खोदने का काम करती है (रदति) तथा बहुत मात्रा में सुसम्पादित की हुई (बर्हणा सुधिता) पशुओं की तरह (पश्वः इव) ले जाती है (रिणाति)-दया. ।

सुधी - (१) सुन्दर कर्मों या बुद्धि वाली (२) शोभन कर्मा यजमान या विद्वान् । दे. 'अश्वयु ' 'निरेक'
'इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके'
ऋ. १.५१.१४
इन्द्रा शोभन कर्मा यजमानों या विद्वानों के निर्धन होने पर सेवा करतें हैं । -सा.
राजा सन्देह स्थलों में (निरेके) विद्वानों का आश्रय लें ।-दया. ।

सुधुरः - (१) उत्तम रूप से रथ को धारण करने वाला-अश्व ।
'अश्वो न वाजी सुधुरो जिहानः'
ऋ. ३.३८.१
(२) सुख से धारण करने योग्य
'रोहितं मे पाकस्थाया
सुधुरं कक्ष्यप्राम् '
ऋ. ८.३.२२

सुधुरा - द्वि.व.। गृहस्थादि भार को उत्तम रीति से धारण करने वाले स्त्री पुरुष, (२) अच्छी प्रकार रथ में जुते दो अश्व ।
'हरी सखाया सुधरा स्वङ्गा'
ऋ. ३.४३.४

सुधृष्ट - अच्छी प्रकार से ब्राह्माण्ड को धारण करने वाला-परमेश्वर ।
'नराशंसं सुधृष्टम्
अपश्यं स प्रथस्तमम् ।
दिवो न सद्ममखसम् '
ऋ. १.१८.९
मै सब मनुष्यों के प्रशंसा और स्तुति करने योग्य परमेश्वर को ही सबसे अधिक अच्छी प्रकार से ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला (सुधृष्टम्) और अति विस्तृत आकाश, काल, दिशा आदि पदार्थों के साथ, उनके समान ही व्यापक और सूर्यादि प्रकाशवान् लोकों के समान सबके आश्रय होकर तेज प्रकाश से युक्त महान् आकाश और सूर्य से भी महान् आश्रय के समान देखता हूं ।

सुधृष्टये - (१) उत्तम रीति से दृढ़, अच्छी प्रकार हृष्ट पुष्ट, सहनशील द्यावापृथिवी, (२) माता पिता
'सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी
पिता यत् सीमभि रुपैरवासयत् '
ऋ. १.१६०.२

सुनवाम - 'सु' धातु के लोट् उ.प्र. ब.व. का रूप । अभिपुनवाम (अभिसवन करें) । सो[illegible]स चुलावें ।

सुन्वत् मर्त्य - (१) उत्पन्न करने वाला, वैज्ञानिक पुरुष, (२) अभिषेक्ता प्रजाजन, (३) उपासक जन ।
'स सुन्वत इन्द्रः सूर्यम्
आ देवो रिणङ् मर्त्याय स्तवान् '
ऋ. २.१९.५

सुनाथ – उत्तम ऐश्वर्य वान्
'आपः शिक्षन्तीः पचता सुनाथाः'
अ. १२.३.२७
सुनामा– उत्तम गुणों से युक्त, सुगुण पुरुष
'दुर्णामा च सुनामा च'
अ. ८.६.४
सुनिरज – सु + निरज । अच्छी प्रकार सर्वत्र व्याप्त ।
दे. 'सुविवृत'
सुनिर्मथ् – (१) उत्तम मन्थन दण्ड (२) उत्तम शास्त्रालोडनरूप तप
'सुनिर्मथा निर्मथितः'
ऋ. ३.२९.१२
सुनिष्कः – (१) उत्तम सुवर्णादि के मोहरों से व्यवहार करने वाला, (२) सुख पूर्वक देह से निष्क्रमण करने में समर्थ जीव ।
'स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्काः'
ऋ ७.५६.११
सुनीतयः – (१) प्रशस्त नीतियों से युक्त मरुद्गण या (२) वैश्य व्यापारी वर्ग, । दे. 'वातासः'।
'प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः'
ऋ. १०.७८.२
प्रकृष्ट ज्ञान वाले (प्रज्ञातारः), प्रशस्त नीतियों से युक्त (सुनीतयः) मुखियों या नेताओं के समान (ज्येष्ठाःन) मरुद्गण...।
सुनीथ – सुष्ठु स्तोतुं शक्नुवन् (१) सुन्दर स्तुति करने वाला– सा.(२) सुनीति पर चलने वाला विद्वान् ज.दे.श. । दे. 'क्राणः'।
'सुनीथासो वसूयवः
गोभिः क्राणा अनूषतः ।'
नि. ४.१९
हे इन्द्र, तुझे सुन्दर स्तुति करने वाले (सुनीथासः) धनार्थी (वसूयवः) तुझे अभिमुख करते हुए (त्वां क्राणाः) स्तोत्रों से (गोभिः) स्तुति करते हैं (अनूषत) । –सा.
सुनीति पर चलने वाले विद्वान् (सुनीथासः) सबके निवासक प्रभु की कामना करते हुए (वसूयवः) वेदों में प्रतिपादित कर्मों को करते हुए आप की स्तुति करते हैं (गोभिः अनूषत) ।
(३) उत्तम रीति से लाने में समर्थ ।
'यः सुनीथो ददाशुषे'
ऋ. २.८.२
सुनौः – नुदयति प्रेरयति इति नौः । नुद् + डौ = नौ । सु + नौः = सुनौ । सुन्दर नौका उत्तम मार्ग से प्रेरित करने वाली नौका
'सुनावमारुहेयम्'
वाज.सं. २१.७
सुपक्ष – (१) सुन्दर पक्षों वाली (२) शोभनरीति से सबका आश्रय दाता ।
'सुयक्षमाशुं पतयनामर्णवे'
अ. १३.२.२
सुपदी – (१) शोभन रूप वाली या उत्तम वेग से जाने वाली विद्युत, (२) उत्तम पदों और संकेतों से युक्त ।
'अग्रं नयत् सुपद्यक्षराणाम्'
ऋ. ३.३१.६; वाज.सं. ३३.५९; मै.सं. ४.६.४:८३.११; का.सं. २७. ११; तै.ब्रा. २.५.८.१०; आप.श्रौ.सू. १२.१५.६.
सुपप्तनी – द्वि.व.। सुख से गमन करने में समर्थ–स्त्री पुरुष ।
(२) अश्विद्वय
'देव देवत्रा मनसा निरूहथुः
सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसोमहः'
ऋ. १.१८२.५
स्तुप – (१) स्तूप
'विष्णो स्तुपोऽसि'
वाज.सं. २.२; तै.सं. १.१.१.१
(२) हिंसा का प्रयोग
'रेश्माणं स्तुपेन'
वाज.सं. २५.२
सुपर्णा – द्वि.व. । (१) दो पक्षी, (२) सर्वोत्तम ज्ञानी, सबसे बड़ा पालक परमेश्वर और उत्तम कर्म करने वाला, (३) यम नियमादि का पालक और अधीनस्थ प्राणों और देहादि संघात का पालक होने से जीव (४) दो प्रकार के किरण जिनमें एक ताप से जल ग्रहण करते हैं और दूसरे प्रकाश से प्रकाशित करते हैं ।
'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'
ऋ. १.१६४.२०
सुपर्ण – (१) वायु । वायु अर्थ में एक वचन में भी 'सुपर्ण' का प्रयोग हुआ है, (२) सुन्दर गति वाला वायु, । दे. 'आविवेश'

'एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश'
ऋ. १०.११४.४; ऐ.आ. ३.१.६.१५; नि. १०.४६.
अद्वितीय वह एक वायु अन्तरिक्ष में रहता है । (२) सुन्दर पंख । 'पर्ण' शब्द पंख का भी पर्याय है ।
'सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तः'
ऋ. ६.७५.११; वाज.सं. २९.४८; तै.सं. ४.६.६.४; मै.सं. ३.१६.३ ; १८७.२; नि. ९.१९.
इषु (बाण) सुन्दर पंख को आच्छादित करता है (सुपर्णं वस्ते) और इसका दांत मृग के सिंह के समान होता है । (३) बड़ी गति का पक्षी, बाज
'संवत्सराय महतः सुपर्णान्'
वाज.सं. २४.२५; मै.सं. ३.१४.६:१७३.९
(४) पित्ता, हरिद्रा या दारु हरिद्रा । इसे सप्तपर्णी भी कहते हैं । यह गुल्म कृमि कुष्ठ का नाशक है ।
'सुपर्णो जातः प्रथमः'
अ. १.२४.१

सुपर्णचित् – (१) सुखदायी किरणों वाला आदित्य । (२) उत्तम पालन करने वाले साधनों से युक्त, (३) उत्तम पुष्टि कारी पदार्थों का संग्रह करने वाला, (४) अग्नि, (५) गरुक्ष
'सुपर्णचिदसि
वाज.सं. २७.४५; श.ब्रा. ८.१.४.८

सुपर्णयातु – बाज के समान झपटने वाला
'सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुम्'
ऋ. ७.१०४.२२; अ. ८.४.२२

सुपर्णसुवन – (१) जिससे सुपर्ण अर्थात् परमात्मा प्रकट होता है । (२) पर्वत, (३) गरुड़ आदि पक्षियों का उत्पादक हिमवान् आदि पर्वत
'सुपर्ण सुवने गिरौ
जातं हिमवतस्परि'
अ. ५.४.२

सुपर्णाः – ब. व. । (१) उत्तम ब्रह्मज्ञानी-मुक्तपुरुष, (२) सूर्य रश्मियाँ, (३) इन्द्रियगण,
(४) पक्षियाँ
(५) सुन्दर पर्ण अर्थात् गति वाली सुपतन आदित्य रश्मियाँ
'शोभयन्तः पतन्ति इति सुपर्णाः'
(जो शोभते हुए गिरते हैं वे सुपर्ण हैं) । अथवा – शोभनम् अर्थम् उद्दिश्य पतन्ति (सुन्दर उद्देश्य से गिरती हैं) । अन्धकार का नाश करना ही रश्मियों का शोभन उद्देश्य हैं ।) सूर्य की किरणें
'यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागम्
अनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।'
ऋ. १.१६४.२१; अ.९.९.२०; नि. ३.१२ .
जिस मण्डल में स्थित हो सूर्य की रश्मियाँ जल का भाग लेकर ज्ञानपूर्वक सतत सर्वत्र तपती रहती हैं या जिस शरीर में इन्द्रियाँ अपने अपने स्थान में अवस्थित हो विषय रस को मन में और मन आत्मा को समर्पित करता है अर्थात् जहाँ इन्द्रियाँ बुद्धि के समक्ष विषय विज्ञान लाकर सुख से चलती हैं ।
पुनः, दे. 'आववृत्रन्'
'कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णाः
अपो वसाना दिवमुत्पतनति ।'
ऋ. १.१६४.४७; अ. ६.२२.१; ९.१०.२२; १३.३.९; मै.सं. ४.१२.५: १९३.७; का.सं. ११.९,१३; नि. ७.२४.
ये रस हरने वाली तथा सुन्दर गति वाली सूर्य की किरणें सूर्य के दक्षिणायन पथ में लोकों का जल रखती हुई (अपो वसाना) सूर्य लोक में जली जाती हैं ।
(२) वायु या प्राण वायु, प्राण को प्राण पखेरू भी कहते हैं । दे. 'आविवेश'।
(३) जीवात्मा भी सुपर्ण है (४) पंख । दे. 'गो'

सुपलाश – (१) शोभनपर्णोपेतः (सुन्दर पतियों से युक्त) । (२) दीप्तिमान् । दे. 'पलाश' (३) हरे पत्तों से युक्त
'वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्'
ऋ. १०.४३.४; अ. २०.१७४

सुपरिविष्टा – उत्तम रूप से अर्द्धांगिनी के रूप में दी गई कन्या ।
'देवीरापः शुद्धा वोढ्वम्
सुपरिविष्टा देवेषु'
वाज.सं. ६.१३; श.ब्रा. ३.८.२.३

सुपर्णी – सुपतनाः रात्रयः (रातें सुन्दर पतन वाली होती हैं अर्थात् रात्रि का आगमन प्राणियों के लिए सुखकारी हैं) । अर्थ-रात्रि, । दे. 'अवर'
'यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकम्

सुपर्ण्यो वसते मातरिश्वः ।'
ऋ. १०.८८.१९; नि. ७.३१
हे मातरिश्वा, जितनी ही रात्रि उषा का प्रतीक आच्छादित करती हैं या जितनी ही उषाएं रात्रियों में देखी जाती हैं ।

सुप्रजा – सुपुत्र, सुन्दर प्रजा

सुप्रजावनि – उत्तम प्रजाओं को वृन्ति देने वाली
'सिंह्यसि सुप्रजावनी रायस्योपवनिः स्वाहा
वाज.सं. ५.१२; श.ब्रा. ३.५.२.१२

सुप्रजास्त्व – उत्कृष्ट सन्तान उत्पन्न करना ।
'रायस्योषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय'
वाज.सं. १३.१; तै.सं. ५.७.९.१; का.सं. ३५.१८; श.ब्रा. ७.४.१.२; तै.ब्रा. ३.७.१.९; तै.आ. ३.११.१२; शां.श्रौ.सू. ४.८.१ ; आप.श्रौ.सू. ६.५.७; ९.२.३; हि.गृ.सू. १.२०.२

सुप्रणीता – (१) उत्तम रीति से गृहस्थ कार्य में प्रवृत स्त्री, (२) सुविवाहिता
'यत् ते नाम सुहवं सुप्रणीते'
अ. ७.२०.४; का.सं. १३.१६;

सुप्रणीतिः – (१) अग्नि, (२) उत्तम रीति से सब से बढ़कर नीतिमान्
'त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः'
ऋ. ४.२.१३
(३) जिसकी नीति प्रशस्त हो (४) सुन्दर शिक्षा वाला सुशिक्षित विद्वान्
'सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः'
ऋ. १.७३.१
उसी प्रकार विद्वान् और राजा भी आचार्यादि पालक जनों में सुशिक्षित उत्तम शासकों द्वारा स्वीकृत होकर बल तथा दीर्घायु धारण करें ।

सुप्रतिवक्षः– (१) प्रत्येक कार्य, प्रत्येक बल विद्या को उत्तम रीति से देखने वाला । (२) अग्नि
'सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित्'
ऋ. ७.१.२; साम. २.७२४; का.सं. ३९.१५

सुप्रतिरा – सुप्रतिर (अच्छी तरह से बढ़ा)। प्रतिरा में दीर्घ छान्दस है । दे. 'असुनीति'।

सुप्रतिष्ठानः – उत्तम प्रतिष्ठा से युक्त
'सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानः'
वाज.सं. ८.८; तै.सं. १.४.२६.१; ६.५.७.३; मै.सं. १.३.२८.७; श.ब्रा. ४.४.१.१४; मा.श्रौ.सू. २.५.१.४४.

सुप्रतीकः – (१) सुन्दर प्रतीक (पूर्त्ति) वाला, (२) शोभन दर्शन (३) अग्नि का विशेषण । दे. 'चित्'
'यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि'
ऋ. १.९४.७
हे अग्नि, तू सर्वतः शोभन दर्शन एवं समान रूप रूप से दर्शनीय है (४) उत्तम रूपवान् – अग्नि
जो अग्नि उत्तम रुपवान्, सबको एक समान ही दीखने वाला (सुप्रीतकः सुदृङ्) है ।

सुप्रतीके – द्वि.व । विशेषण । (१) उत्तम ज्ञान चेतना देने वाली द्यावापृथिवी, (२) उत्तम मुख और ज्ञान प्रतीति वाले माता पिता ।
'दधाते ये अमृतं सुप्रतीके'
ऋ. १.१८५.६

सुप्रतूः – (१) उत्तम रीति से धन प्रदान करने वाला, (२) अग्नि का विशेषण ।
'त्वं हि सुप्रतूरसि'
ऋ. ८.२३.२९

सुप्रतूर्त्ती – द्वि.व.। विशेषण । (१) अति तूर्ण गति वाले द्यावापृथिवी या मातापिता (२) अति वेग वान् कार्य कुशल
'दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती'
ऋ. १.१८५.७; मै.सं. ४.१४.७:२२५.२; तै.ब्रा. २.८.४.८

सुप्रतूर्ति – (१) प्रकृष्ट शीघ्रता वाला, स्फूर्ति वाला, (२) सुखपूर्वक, उत्तम रीति से पार पहुंचा देने वाला, (३) क्रियावान्, (४) अग्नि, (५) परमेश्वर ।
'सुप्रतूर्तिमनेहसम्'
ऋ. १.४०.४; ३.९.१; साम. १.६२
(६) सुष्ठु प्रकृष्टा तूर्तिः त्वरिता प्राप्तिः यया सा (उत्तमता से शीघ्र प्राप्त करने वाली) ।
(७) सभी पदार्थों, ज्ञानों और सुखों को देने वाली ।
'तस्मा इडां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम्'
ऋ. १.४०.४
उस नायक के वीर्यवती (सुवीराम्), बहुत अच्छी प्रकार, सब ज्ञानों पदार्थों और सुखों को देने वाली गौ के समान कभी न मारने योग्य

निर्दोष निष्पाप कन्या के समान भूमि को हम प्रदान करें ।

सुप्रददिः - उत्तम दान देने वाला
'रेवान् सुप्रददिश्चयः'
अ. २०.१२८.९; क्षां.श्रौ.सू. १२.२१.२.४

सुप्रयाः - सु + प्र + या + असुन् = सुप्रयस् । प्र ए. व. में सुप्रयाः । 'या' धातु प्रापणार्थक है । अर्थ है- (१) सुप्रापणम्,
सुप्रगमनम् (सुखपूर्वक गमनीय) (२) जिस कुश पर देवतागण सुन्दर रीति से बिछाए जाने के कारण सुविधा से आ सके वह 'सुप्रपाः' है ।
(३) सुन्दर बैठने या आने योग्य आसन-सा.
(४) शुभागमनयुक्त-ज.दे.श. । दे. 'इयाते'।
'प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषाम्'
ऋ. ७.३९.२; वाज.सं. ३३.४४; नि. ५.२८
सुन्दर बैठने योग्य कुशासन बिछाया जाता है-सा. ।
सुन्दर आगमन युक्त वृद्धि प्रदान की जाती है - ज.दे.श.।

सुप्रपाण - (१) सुख से जल पान करने योग्य घाट
'सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती'
अ. १४.२.६
(२) पानी पीने के लिए उत्तम घाट
'शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः'
ऋ. ६.२८.७; अ. ४.२१.७;७.७५.१; मै.सं. ४.१.१:२.३; तै.ब्रा. २. ८.८.१२; आप.श्रौ.सू. १.२.८; मा.श्रौ.सू. १.१.१.२०
'सुप्रपाणा च वेशन्ता'
अ. २०.१२८.९; शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.४; वै.सू. ३८.२

सुप्रमतिः - सु + प्र + मति । (१) उत्कृष्ट कोटि की बुद्धि, (२) उत्तम ज्ञानयुक्त
'अस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति'
ऋ. १.३३.१
वह हमारे उत्कृष्ट कोटि के ज्ञान को अच्छी प्रकार बढ़ावे (वावृधाति) ।

सुप्रयावा - उत्तम प्रयाण कारी
'यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः'
ऋ. ५.४४.१२;

सृप्रवन्धुर - वेगवान् पदार्थों और वीर पुरुषों के बीच में व्यवस्थित
'सृप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः'
ऋ. १.१८१.३

सुप्रवाचन (१) उत्तम रीति से प्रवचन करने योग्य -वेदज्ञान ।
'नव्यं तदुक्थं हितम्
देवासः सुप्रवाचनम्'
ऋ. १.१०५.१२
हे विद्वानो और जिज्ञासु शिष्यो, आप लोग उस परम स्तुत्य सद्यः प्राप्त अपने में धारित और सबके हितकारी लाभदायक वेदमन्त्रों में विद्यमान उत्तम रीति से उपदेश करने योग्य सत्य वेदज्ञान को सब को प्रदान करो ।
(२) उत्तम रीति से आदर पूर्वक गुरुजनों से उपदेश किए जाने योग्य ।
सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यम्'
ऋ. २.१३.११
(३) उत्कृष्ट वचनोपदेश
'तन्नो देवा यच्छत सुप्रवाचनम्'
ऋ. १०.३५.१२

सुप्रवोचम् - सुप्रब्रवीमि (सुन्दर बोलता हूँ) । लट् के अर्थ में लुङ् का प्रयोग ।

सुप्सरस्तमः - उत्तम पूज्य रूप कान्ति वाला
'त्वां हि सुप्सरस्तमम्
नृषदनेषु हूमहे'
ऋ. ८.२६.२४; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१

सुपाणिः - (१) उत्तम हाथों वाला (२) कर्मों को उत्तम रीति से करने वाला, सिद्धहस्त (३) पूजनीय व्यवहार और स्तुति वचनों वाला ।
'सुकृत् सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा'
ऋ. ३.५४.१२
(४) शोभनहस्तः । पणं (पूजा अर्थ में) + इन् = पाणि । प्रगृह्य पाणी देवान् पूजयन्ति (हाथों को जोड़े देवों की पूजा करते हैं) ।
(५) सुन्दर बाहु या किरणों वाला, इन्द्र या सूर्य । दे. 'अपाहन्'
'देवोऽनयत् सवितासुपाणिः'
ऋ. ३.३३.६; नि. २.२६

सुपाणी - द्वि.व.। (१) उत्तम व्यवहारों से युक्त स्त्री पुरुष, (२) शुभ आभूषण आदि से उत्तम करवाले स्त्री पुरुष । दे. 'भद्रहस्ता'।

सुपारः - (१) उत्तम रीति से पूर्ण करने वाला, पुष्ट

करने वाला, पालन करने वाला (२) उत्तम पालक
'सुपारासो वसवो बर्हणावत् '
ऋ. ३.३९.८
'सुपारः सुन्वतः सखा'
ऋ. १.४.१०; ८.३२.१३; अ. २०.६८.१०
(३) सारी कामनाओं का पूरक
(४) सबको सुख से पालन करने वाला
'सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित्'
ऋ. ८.१३.२; साम. २.९७

सुपारक्षत्रः - सुख से सर्वपालक बल और ऐश्वर्य से युक्त वरुण परमेश्वर
'सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा'
ऋ. ७.८७.६

सुपारा - प्रजाओं को उत्तमरीति से से पालन करने में समर्थ
'अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा'
ऋ. १.१५२.७; मै.सं. ४.१४.१२:२३४.४; तै.ब्रा. २.८.६.६.

सुपाराः - स्त्री.ब.व.। (१) सुख से पालन और पूर्ण करने योग्य स्त्रियाँ (२) नदियां, (३) सुन्दर पालन आदि कर्म करने वाली -दया.।
'नि षू न मध्वं भवता सुपाराः '
ऋ. ३.३३.९

सुप्राङ् - (१) उत्तम प्रश्नशील विद्यार्थी, (२) उत्तम शोभा से युक्त, कान्तिमान्।
'सुप्राङ् अजो मेम्यद् विश्वरूपः
इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः '
ऋ. १.१६२.२; वाज.सं. २५.२५; तै.सं. ४.६.८.१; मै.सं. ३.१६.१ :१८१.१०; का.सं. (अश्व.) ६.४.
(३) सु + प्र + अञ्च् + क्विप् = सुप्राञ्च। प्र.ए.का रूप सुप्राङ्।
उत्तम रीति से आगे बढ़ने वाला, उन्नतिशील।

सुप्रायण - (१) सुगमन-सुप्रगमन सुन्दर गमन युक्त।
'होता यक्षदोजो न वीर्यम्
सहो द्वार इन्द्रमवर्धयन्
सुप्रायणा अस्मिन्यज्ञे वि श्रयन्ताम्
ऋतावृधो द्वार इन्द्राय मीढुषे
व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज।'
वाज.सं. २८.५
होता इन गृह द्वारों को या इन अग्नि की ज्वालाओं को पूजे, बड़े-बड़े हिंसा करने वाले किवाड़ युक्त कुषित किवाड़ें जिनके संवृत होने पर धन या हवि निकल कर अन्यत्र नहीं जा सकती इस प्रकार के द्वार या अग्निशिखाएं दिशाओं के साथ उठें (आताभिः उज्जिहताम्) तथा विश्रयण करें, अर्थात् विवृत हों। ये द्वार ऋत्विजों के लिए सुगम हों (यक्षोभिः सुप्रायणाः)। यज्ञ को बढ़ाने वाली ये अग्नि शिखाएं या द्वार (ऋतावृधः) इस यज्ञ में विवृत हों अर्थात् खुल जांय (विश्रयन्ताम्) और आज्य के अपने भाग्य को पीयें (आज्यस्य व्यन्तु)। हे होता, तू भी इसकी पूजा कर (होतः यज)।
अन्य अर्थ- ज्ञान-गृहीता इन इन्द्रियों को पूजे या सेवन करें, ये द्वार या इन्द्रियाँ दर्शनीय कुषित या किवाड़युक्त (कवष्यः) तथा जिनमें से कोष बाहर नहीं जा सकता (अकोष धावनीः) ये सत्य ज्ञान को बढ़ाने वाली (ऋतावृधः) सुगतियुक्त इन्द्रियाँ (सुप्रायणाः दुरः) इस शरीर यज्ञ में (अस्मिन् यज्ञे) आश्रित हों (विश्रयन्ताम्)। वे प्राप्तव्य ज्ञान को प्राप्त करें (आज्यस्य व्यन्तु)। हे ज्ञान-गृहीता (होतः), इन्द्रियों से ज्ञान प्राप्त करें (यज)।
(२) सु + प्र + अयन = सुप्रायणः। सुन्दर आने जाने लायक यज्ञ द्वार का विशेषण। दे. 'उर्विया'।
'देवेभ्यो भवत सुप्रायणा'
ऋ. १०.११०.५; अ. ५.१२.५; वाज.सं. २९.३०; मै.सं. ४.१३.३: २०२.४; का.सं. १६.२०; नि. ८.१०

सुप्रायणतम - सु + प्र + अयनतम्। सुन्दर सुख से आसन या स्थिति करने योग्य।
'अस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम्'
ऋ. ६.६३.३

सुप्रावर्ग - सु + प्रावर्ग। शत्रुओं को वर्जन करने वाला
'सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यम् '
ऋ. ८.२२.१८

सुप्राव्य = सु + प्र + अव्य (१) अच्छी प्रकार रक्षा करने योग्य (२) अच्छी प्रकार रक्षा करने में कुशल।
'सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः'

ऋ. २.१३.९
(२) सुष्ठु चलितुम् अर्हः (खूब चल सकने योग्य) (३) उत्तम रीति से सुख पूर्वक कार्य संचालन करने वाला (४) शीघ्र ही स्थानान्तर में जाने में सम्रर्थ ।
'सुप्राव्ये दूतं सद्यो अर्थम् '
ऋ. १.६०.१
सुखपर्वक कार्य संचालन करने वाले या खूब चल सकने योग्य स्थानान्तर जाने में समर्थ अग्नि विद्वान् या दूत को....।
(५) सुखपूर्वक उत्तम रीति से रक्षा करने वाला राजा, (६) उत्तम रीति से प्राप्त करने या उत्तम ज्ञान प्राप्त करने योग्य आचार्य, (७) सुष्ठु प्रवेश कराने योग्य ।
'त्रिः सुप्राप्ये त्रेधेव शिक्षतम् '
ऋ. १.३४.५
सुखपूर्वक उत्तम रीति से रक्षा करने वाले राजा या उत्तम रीति से प्राप्त करने या उत्तम ज्ञान प्राप्त करने योग्य आचार्य के अधीन रहकर पठन पाठन एव हस्तक्रिया से तीन बार अर्थात् बार बार ज्ञान का अभ्यास करो ।
(८) उत्तम रीति से पालने में कुशल ।
'सुप्राव्यः प्राशुषाडेष वीरः '
ऋ. ४.२५.६

सुप्रावी – (१) उत्तम रक्षक, उत्तम प्रजारक्षक पुरुष
'सुप्रावीरिद् वनवत् पृत्सु दुष्टरम् '
ऋ. २.२६.१
'सुवीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः '
ऋ. १.८३.२१; अ. २०.२५.१
उत्तम प्रजारक्षक पुरुष और रक्षा साधनों से रथ पर बैठे भूमि पर विचरण करें ।
(२) उत्तम रीति से वीर्य रक्षा करने वाला
प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी '
ऋ. ४.२५.५
'सुप्रावीरस्तु स क्षयः
प्र नु यामन् त्सुदानवः '
ऋ. ७.६६.५; साम. २.७०२

सुपित्र्य – उत्तम पिता के पुत्रवत् जीव ।
'वाजिन्तमाय सह्यसे सुपित्र्य '
ऋ. १०.११५.६; कौ.ब्रा. २१.३

सुपिप्पलः – (१) उत्तम पालन सामर्थों और योग्य ऐश्वर्यों से सम्पन्न उत्तम बलवान् , (२) उत्तम फलों वाला वृक्ष
'हिरण्यपर्णो अश्विभ्यां सरस्वत्या सुपिप्पलः '
वाज.सं. २१.५६; मै.सं. ३.११.५:१४७.१५; तै.ब्रा. २.६.१४.५
(३) ज्ञानमय फलों से युक्त
'हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलः '
वाज.सं. २८.२०; तै.ब्रा. २.६.१०.६

सुपिप्पला – (१) सुन्दर फलयुक्त ओषधि
'सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः '
ऋ. ७.१०१.५; का.सं. २०.१५; तै.आ. १.२९.१
'तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः '
वाज.सं. ११.३८; मै.सं. २.७.४:७८.६; ३.१.५: ६.२०; का.सं. १६. ४; १९.५; श.ब्रा. ६.४.३.२

सुप्रिया – बहुत प्रिया
'यथा तेऽसानि सुप्रिया '
अ. ७.३८.२

सुपिश् – सुन्दर दृढ़ शरीर वाला
'पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः '
ऋ. १.६४.८
सभी ऐश्वर्यों के स्वामी (विश्ववेदसः) दृढ़ सुन्दर शरीर वाले होकर (सुपिशः) बलवान् शरीर वाले गजों के समान (पिशा इव) गम्भीर वेदी हों ।

सुपीवाः – खूब हृष्ट पुष्ट
'सुपीवासो अतृषिता अतृष्णजः '
ऋ. १०.९४.११

सुपुत्रा – (१) सुख पूर्वक पुरुषों का त्राण करने वाली प्रकृति
'सुपुत्र आदु सुस्नुषे '
ऋ. १०.८६.१३; अ. २०.१२६.१३; नि. १२.९
(२) उत्तम पुत्रों या जीवों वाली प्रकृति

सुप्रैला – सु + प्र + एता । (१) उत्तम साधन रथ आदि से जाने वाला, (२) उत्तम सदाचार से या सत्कर्म से आगे बढ़ने वाला
'सुप्रैतुः सूयवसो न पन्थाः '
ऋ. १.१९०.६

सुबन्धवः – (१) उत्तम सम्बन्धों से सम्बद्ध, (२) परस्पर प्रेम और विद्यासम्बन्ध से बंधे हुए, (३) शरीर में एकत्र, बंधे हुए प्राण

सुबन्धु – (१) उत्तम बन्धु, निज सम्बन्धी (२) **प्रबन्ध**

कर्ता

'देवानां पुष्टे चकृमासु बन्धुम्'

ऋ. १.१६२.७; वाज.सं. २५.३०; तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं. ३.१६. १:१८२.५

(३) यूप में बंधा यज्ञीय अश्व-सा.

(४) सबके साथ बन्धुवत् उत्तम व्यवहार करने वाला

'देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम्'

ऋ. १.१६२.७; वाज.सं. २५.३०; तै.सं. २५.३०; तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं. ३.१६.१: १८२.५

देवातओं के पोषण के लिए (प्रष्टे) हम यूप में बांधे इस यज्ञीय अश्व को (सुबन्धुम्) करते हैं (चकृम)।

देवजनों के परिपुष्ट उस राष्ट्र में (देवानाम् पुष्टे) सबके साथ बन्धुवत् उत्तम व्यवहार करने वाले मनुष्य हम राजा बनाते हैं।

(५) सुन्दर उपकार करने वाला (अश्व)।

सुभगः - (१) सुन्दर ऐश्वर्य वाला, (२) सुन्दर रश्मि एवं धन वाला- अश्विनी कमारों में एक का विशेषण। दे. 'अरेपस्, ''जिष्णु, ''सुभख, ''सूरि'

'जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिः
दिवो अन्यः सुंभगः पुत्र ऊहे।'

ऋ. १.१८१.४; नि. १२.३

तुम दो अश्विनी कुमारों में एक जयशील तथा सुमहान् बल के प्रेरक हो और दूसरा द्युलोक का पुत्र आदित्य (दिवः पुत्रः) सुन्दर रश्मिरूप धनवाला (सुभगः) सदा वायु से वहन किया जाता है।

सुभगं करणी - सौभाग्य उत्पन्न करने वाली

'सुभगं करणी मम'

अ. ६.१३९.१

सुभगा - (१) पति द्वारा उत्तम रीति से सुख पूर्वक सेवन योग्य स्त्री (२) उत्तम सौभाग्य और ऐश्वर्यादि सुखों को देने वाली (३) सौभाग्य शालिनी

'विपाशामुर्वी सुभगामगन्म'

ऋ. ३.३३.३

(३) सु + भग + टाप्। सुन्दर भाग्य वाली या ऐश्वर्य वती।

'अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्'

ऋ. १०.१०.१०; अ. १८.१.११; नि. ४.२०

'इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्'

ऋ. १०.८६.११; अ. २०.१२६.११; नि. ११.३८.

सुभगासरस्वती - (१) सुख सौभाग्यमयी वेदवाणी

'पातु नो देवी सुभगा सरस्वती'

अ. ६.३.२

सुभद्र - सुकल्याण, सुन्दर, कल्याण करने वाला।

सुभद्रा - सुन्दर कल्याण देने वाली। दे. 'अध'

'अधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम्'

ऋ. १०.१०.१४; अ. १८.१.१६; नि. ११.३४.

हे यमी! तू सुन्दर भोगादि सुख कर।

सुभद्रिका - (१) उत्तम सुख सम्पदा से युक्त (२) परम सुखमय ब्रह्म में रहने वाली ब्रह्मविद्या

'सुभद्रिकां क़ाम्पील वासिनीम्'

वाज.सं. २३.१८; मै.सं. ३.१२.२०:१६६.१०

सुभर - (१) उत्तम रीति से ज्ञान को धारण करने वाला, (२) उत्तम रीति से युद्ध करने वाला, (३) उत्तम ऐश्वर्यों को धारण करने वाला

'युवोः दानाय सुभरा असश्चतः
रथमातस्थुः वचसं नमन्तवे'

ऋ. १.११२.२

उत्तम रीति से ज्ञान धारण करने वाले, विषय भोगादि से आसक्त न होने वाले (सुभरा असश्चतः) त्यागी पुरुष ज्ञान के लिए जैसे उत्तम प्रवक्ता के पास जाते हैं (मन्तवे न वचसम् आतस्थुः), उसी प्रकार उत्तम रीति से युद्ध करने वाले या उत्तम ऐश्वर्यों को धारण करने वाले कहीं भी आश्रय न पाते हुए प्रजाजन शत्रुओं के नाश के लिए और ऐश्वर्य के दान के लिए तुम दोनों विजयशील रथ पर स्थिरता प्राप्त करते हैं।

(४) अच्छी प्रकार भरण पोषण करने में समर्थ

'पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः'

ऋ. २.३.९; तैसं. ३.१.११.२; मै.सं. ४.१४.८:२२७.१; आश्व.श्रौ. सू. ३.८.१; शां.श्रौ.सू. १३.४.२.

सुभरा - (१) उत्तम रीति से भरण पोषण करने वाली नीति। (२) सुपुष्ट, (३) समस्त गुणों को धारण करने वाली,

सु + भृ (भरण करना) + अच् + टाप् = सुभरा।

'विश्वायुर्विश्वा सुभरा अहर्दिवि'

ऋ. ९.८६.४१

समस्त मनुष्य वर्ग या सर्वायु परिणत वय, या अप्रतिहत बुद्धि यजमान (विश्वायुः) सुपुष्ट या उत्तम गुणों को धारण करने वाली स्तुतियों को दिन रात करता है (विश्वा सुभरा अहर्दिवि)।
(४) सुख प्राप्त कराने वाली

सुभसत्तरा – (१) अधिक कान्तिमती
'न मत् स्त्री सुभसत्तरा'
ऋ. १०.८६.६; अ. २०.१२६.६

स्तुभ् – (१) स्तुति करने योग्य विद्वान्
'अनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति'
ऋ. ३.५१.३; मै.सं. ४.१२.३; १८४.१
(२) ब्रह्मचर्य से वीर्य का स्तम्भन करने वाला ब्रह्मचारी, (३) उत्तम भूमि, (४) स्तुति शील बली हिंसा कारी सेना, (५) स्तुतिशील भक्त (६) स्तुति
'सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति'
ऋ. १.१९०.७; आश्व.श्रौ.सू. ३.७.९
(७) स्थिर कारक, (८) स्थिर ताप, (९) स्थायी प्रबन्ध

सुभागः – उत्तम धन सम्पन्न
'सुभागान्नो देवाः कृणुता सुरत्नान्'
ऋ. १०.७८.८

सुभागाः – सुख सौभाग्य से युक्त, सुख से सेवन योग्य, उत्तम भाग्य वान्
'स्थिरा चित् जनीर्वहते सुभागाः'
ऋ. १.१६७.७

स्तुभ्वा – अर्चक, अर्चना करने वाला। स्तुभ् + वनिप्।
'ऋपिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तः'
ऋ. १.६६.४

स्तुभिषक्तमः – सब प्रकार के मानस और शारीरिक पीड़ाओं का सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक परमेश्वर।
'स एव सुभिषक्तमः'
अ. २.९.५

सुभ्र – (१) उत्तम, बलकारक, (२) उत्तम पाकं आदि संस्कारों से संस्कृत अन्न या कर्मफल।
'स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति'
ऋ. २.३५.७; का.सं. ३५.३

सुभूः – (१) उत्तम वृष्टि, अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करने वाली भूमि, (२) उत्तम सामर्थ्यवान् प्रजापालक जन
'ऋघायन्त सुभ्वः पर्वतासः'
ऋ. ४.१७.२
(३) सुन्दर भूमि वाला, उत्तम भूमिपति, (४) अति सामर्थ्यवान् पुरुष
'शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते'
ऋ. १.५२.१; साम. १.३७७
जिस इन्द्र के अधीन सैकड़ो उत्तम भूमिपति कांप जाते या एक साथ ही युद्ध यात्रा करते हैं।
(५) सर्वश्रेष्ठ, (६) सर्वपूज्य सत्ता वाला सर्वोत्पादक
'सुभूः स्वयम्भूः प्रथमः'
वाज.सं. २३.६३; श.ब्रा.१३.५.२.२३

सुभृत – उत्तम रीति से धारण पोषण करने वाला
'सहस्रवीर्यं सुभृतं सहस्कृतम्'
अ. ६.३९.१

सुवृत् – अच्छी प्रकार चलने वाला रथ।
'हिरण्ययेन सुवृता रथेन'
ऋ. ४.४४.५; अ. २०.१४३.५

सुभोजसौ – उत्तम पालन करने वाले द्यावापृथ्वी
'मन्वे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ युचेतसौ'
अ. ४.२६.१

सुभोजाः – उत्तम योग्य पदार्थों एवं रक्षा साधनों से सम्पन्न ऐश्वर्य
'नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व'
ऋ. ७.९२.३; वाज.सं. २७.२७; मै.सं. ४.१०.६:१५८.५; का.सं. १०.१२.

सुमखः – सुष्ठु, मंहनीयः, सुमहान् (सुमहान् बल)। दे. अरेपस् "जिष्णु"।
'जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिः'
ऋ. १.१८१.४, नि. १२.३
(तुम अश्विनीकुमारों, में एक जयशील तथा सुमहान बल के प्रेरक हो)।
'मख' शब्द का अर्थ 'महान्' है।
आधुनिक अर्थ – सुन्दर यज्ञ

सुमखस्य सूरिः – उत्तम गृहस्थ, यज्ञ करने वाला। दे. 'सुमख'

सुमखासः – ब.व.। ए.व. में 'सुमखः' (१) उत्तम सूर्य प्रकाश को धारण करने वाले वायु, (२) सुमहान बलवाले।
'वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः'

ऋ. १.८५.४

सुमंगल – शोभन मंगल करने वाला

'परिपाणः सुमंगलः '

अ. ८.५.१

सुमंगली – (१) उत्तम मंगल वाली उषा, या (२) स्त्री

'सुमंगलीर्बिभ्रती देववीतिम् '

इहाद्योषः श्रेष्ठतमाव्युच्छ'

ऋ. १.११३.१२

(३) उत्तम शुभ मंगत करने वाली नववधू

'सा नो अस्तु सुमंगली'

अ. ३.१०.२; १४.१.६०; साम.मं.ब्रा. २.२.१६; पा.गृ.सू. ३.२ .२; आप.मं.पा. २.२०.२७; हि.गृ.सू. २.१७.२;

सुमज्ञानिः – (१) सुष्ठु प्राप्तविद्यः–दया.

(२) स्वयं ही स्वभाव से ही ज्ञान प्राप्त करने में लग्न विष्णु या (३) विद्यार्थी

'सुमज्ञानये विष्णवे ददाशति'

ऋ. १.१५६.२; तै.ब्रा. २.४.३.९.

सुमत् – (१) उत्तम हर्ष दायक

'सीदतां बर्हिरा सुमत्'

ऋ. १.१४२.७

(२) अ.। अनायास

'सुमद् यूथं न पुरु शोभमानम् '

ऋ. ५.२.४

(३) स्वयम् ।

'सुमत् स्वयमित्यर्थः '

दे. 'उपप्रागात्'

'उप प्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म'

ऋ. १.१६२.७; वाज.सं. २५.३०;

मेरा मननीय कार्य स्वयं मेरे निकट आये–सा.। मेरा मन जिसका ध्यान करता है वह अभिलषित पदार्थ, जिस राष्ट्र यज्ञ में स्वयं प्राप्त होता है।

(४) सुमति–दया.

स्वा.दयानन्द ने 'सुमत्क्षराणाम्' का अर्थ सुमति का नाश किया है ।

(५) सुन्दर ज्ञाता

सुमत्क्षर – (१) सु + मद् + क्षर । उत्तम रीति से रस, तृप्ति और आनन्द देने वाला,

(२) उत्तम हर्षजनक,

(३) हर्ष आनन्द की वर्षा करने वाला

(४) सुमति का नाशक –दया.

'यवस प्रथमानां सुमत्क्षराणाम् '

वाज.सं. २१.४३

सुमद्गुः – उत्तम रीति से सुप्रसन्न इन्द्रियों से युक्त आत्मा ।

'असुरात्मा तन्वस्तत् सुमद्गु':

अ. ५.१.७

सुमति – (१) सुन्दर बुद्धि–सा (२) शिक्षा–दया. दे. 'क्रिविर्दती' 'सुचेतुना'

'यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुना

अरिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन '

ऋ. १.१६६.६

हे उग्र मरुतो, सुन्दर बुद्धि वाले तथा सदा साथ रहने वाले आप हमारी बुद्धि को पूर्ण करें । –सा.

हे संघशक्ति से सम्पन्न विद्वानो, आप हमारी शिक्षा को विज्ञान से पूर्ण करें (सुचेतुना पिपर्तन) ।–दया.।

दे. अथर्वन् ।

'तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानाम् '

ऋ. १०.१४.६; अ. ६.५५.३; १८.१.५८; वाज.सं. १९.५०; तै.सं. २.६.१२.६; ५.७.२.४; का.सं. १३.१५; मा.श्रौ.सू. १.६.४.२१; साम.मं.ब्रा. २.१.१२; पा.गृ.सू. ३.२.२; नि. ११.१९

'देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम् '

ऋ. १.८९.२; वाज.सं. २५.१५; मै.सं. ४.१४:२ २१७.७; नि. १२.३९

देवों की कल्याणकारिणी सद्भावना हमारी ओर हो ।

(६) अनुग्रहात्मिका बुद्धि । दे. 'कम्'

सुमतीवृध् – उत्तम स्तुति, मति और ज्ञान वृद्धि करने वाला ।

'सुष्टुतिं सुमतीवृधः '

वाज.सं. २२.१२

सुमदंशुः – (१) अति वेग और उत्साह से जाने वाली (२) शोभन ज्वलन वाली –अग्नि शिखा –दया. । दे. 'द्युक्षा' ।

'रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीः '

ऋ. १.१००.१६

सुमद्रथ – (१) उत्तम शोभायुक्त रथ सैन्य का स्वामी

'अग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः '

ऋ. ३.३.९
(२) उत्तम स्वरूप या रथ वाला
'हव्यवाट् स सुमद्रथः'
ऋ. ८.५६.५; का.सं. ३९.१५

सुमन् -. अ. । स्वयमेव । दे. 'अधायि'
'उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म'
ऋ. १.१६२.७; वाज.सं. २५.३०; तै.सं. ४.६.८.३; मै.सं. ३.१६.१ :१८२.४; का.सं. (अश्व) ६.४; नि. ६.२२.
यह इच्छा मेरे मन में स्वमेव आई ।

सुमनस्यमान - उत्तम कल्याणमय चित्त वाला
'धाता दधातु सुमनस्यमानः'
अ. ७.१९.१; मै.सं. २.१३.२२:१६८.२; २.१३.२३: १६९.४; का.सं. १३.१५,१६; ४०.१,१२; आप.श्रौ.सू. १४.२८.४; १७.१३.२

सुमन्तु - (१) उत्तम मनन करने योग्य ज्ञानी और मनन शील पुरुष ।
(२) शोभन विद्यायुक्त -दया. । दे. 'दुर्मन्मन्'
(३) सुख से मनन करने योग्य
'यमस्य यो मनवते सुमन्तु'
ऋ. १०.१२.६; अ. १८.१.३४
(४) उत्तम
'सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः'
ऋ. ५.४४.४

सुमनतुनामा - (१) उत्तम मननशील नाम से प्रसिद्ध-इन्द्र, परमेश्वर
'सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च'
ऋ. ६.१८.८

सुमन्मा - उत्तम रूप से मनन करने वाली चितिशक्ति ।
'सुमन्मा वस्वीरन्ती सूनरी'
साम. २.१००४; तै.ब्रा. २.१४४.

सुम्नम् - सुख । दे. 'आ' ।
'आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि'
ऋ. ८.६८.१; साम. १.३५४
हे इन्द्र, सुख के लिये तथा रक्षा के लिए तुझे आवर्तित करते हैं जैसे अशक्त पुरुष रथ में ।

सुम्नयी - प्रजा को सुख, धन या ऐश्वर्य देने वाली राजशक्ति
'पञ्चाशत् पञ्च सुम्नयि'
अ. १९.४७.४

सुम्नयुः - (१) सुख चाहने वाला
तं वः शर्धं मारुतं शुम्नयुर्गिरा'
ऋ. २.३०.११
(२) ज्ञानोपदेशयुक्त
'भरस्व सुम्नयुर्गिरः'
ऋ. १.७९.१०
(३) मन को प्रसन्न करने वाला
'यः सुम्नयुः सुहवो यः सुदत्रः'
अ. ७.१०.१

सुम्नहू - (१) सुखों का प्रदाता (२) सुषुम्ना द्वारा भीतर सुख देने वाला -परमेश्वर ।
'सुम्नहूर्यज्ञ आ च वक्षत्'
वाज.सं. १७.६२; तै.सं. ४.६.३.४; ५.४.६.६; मै.सं. २.१०.५: १३७.१६; ३.३.८:४१.७; का.सं. १८.३;२१.८; श.ब्रा. ९.२.३.२०; मा.श्रौ.सू. ६.२.५

सुम्ना - (१) सुख कारिणी दशा (२) सुमना, (३) सुषुम्ना नाड़ी ।
'तेभिः सुम्नया धेहिं नो वसो'
अ. ७.५५.१

सुमन्यात् - सुख की कामना करता हुआ'
'सुम्नायता मनसा तत् त्वेमहे'
ऋ. २.३२.२

सुम्नायन् - 'सुम्न' का अर्थ है 'सुख' । नाम धातु होने से अर्थ होगा-सुखी करता हुआ
'सुम्नायन्निद् विशो अस्माकमां चर'
ऋ. १.११४.३; का.सं. ४०.११; आप.श्रौ.सू. १७.२२.१
तू हमारी प्रजाओं को सुखी करता हुआ ।

सुम्नावरी - (१) उत्तम सुखों को देने वाली उषा या (२) स्त्री । दे. ' सूनृता' ।

सुमाता - (१) सुन्दर माता वाला, (२) उत्तन निर्माता पुरुषों के अधीन
'शिशूला न क्रीडयः सुमातरः'
ऋ. १०.७८.६

सुमायाः - ब.व.। (१) सुन्दर माया अर्थात् प्रज्ञा वाले-मरुतों का विशेषण । दे. 'आपप्तत' ।
'आ वर्षिष्ठया न इषा
वयो न पप्तता सुमायाः'
ऋ. १.८८.१; नि. ११.१४
हे सुप्रज्ञ मरुतो (सुमायाः), अति महान् अर्थात् प्रचुर अन्न से (वर्षिष्ठया इषा) उपलक्षित पक्षियों

की तरह (वयो न) शीघ्र आओ।
(२) मा + य + टाप् = माया। मीयन्ते परिच्छिद्यन्ते अनया पदार्था इति माया (इससे पदार्थ मापे या परिच्छिन्न किये जाते हैं अतः यह माया है)। निघण्टु ने 'माया' शब्द का अर्थ कर्म या प्रज्ञा माना है।
'सुमायाः' का अर्थ हुआ-जिन के कर्म सुन्दर हों। मरुतों का विशेषण। दे. 'अश्वपर्ण', वर्षिष्ठा'
'आ वर्षिष्ठया न इषा
वयो न पप्तता सुमायाः'
हे सुकर्मा, अत्यन्त अन्न को देख जैसे पक्षी आते हैं वैसे ही तुम आओ।

सुमारुतः - उत्तम वीरों का गण
'सुमारुतं न पूर्वीरति क्षपः'
ऋ. १०.७७.२

सुमति - सु + मित। उत्तम रीति से बनाया गया।
'मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी'
ऋ. १०.२९.६; अ. २०.७६.६

सुमित्रधः - उत्तम धारण पोषण करने वाला
'मित्रो न एहि सुमित्रधः'
वाज.सं. ४.२७.श.ब्रा. ३.३.३.१०

सुमति - बड़ा भारी परिमाण।
'सुमिती मीयपानो वर्चो-धा यज्ञवाहसे'
ऋ. ३.८.३; मै.सं. ४.१३.१:१९९.५; का.सं. १५.१२; ऐ.ब्रा. २.२ .८; तै.ब्रा. ३.६.१.१.;श.ब्रा. ५.२.४.१६

सुमखं सहः - सुमहत् बल, मख का अर्थ यज्ञ है। यज्ञ ही इन्द्र या परमात्मा का बल है। दे. 'नृम्ण'।
'इन्द्रस्य यस्य सुमखं सहो महि'
ऋ. १०.५०.१; वाज.सं. ३२.२३; नि. ११.९

सुमृडतु - सुन्दर सुख पहुंचावे। दे. 'पुलुकाय'।

सुमृडीक - उत्तम सुखप्रद
'सुमृडीकां अभिष्टये'
ऋ. ८.६७.१; तै.सं. २.१.११.५; मै.सं. ४.१२.१:१७७.६

सुमेके - द्वि.व.। 'मेक' का अर्थ है अंग। बनावट। रात्रि दिन का विशेषण। अर्थ-सुन्दर अंगवाले रातदिन। दे. 'मेथेते'
'न मेथेते न तस्थतुः सुमेके'
ऋ. १.११३.३; साम. २.११०.१
(२) स्वामी दयानन्द ने अर्थ किया है-'नियमे निक्षिप्ते' (नियम में लगाए रात्रि और उषा)।
(३) उत्तम कर्मों वाले, (४) हृष्ट पुष्टांग वाले वीर्यवान् (५) उत्तम सन्तान, उत्पन्न करने वाले माता पिता।
'विश्वग्धेनू वि चरतः सुमेके'
ऋ. १.१४६.३
(६) सुन्दर रूप वाले, (७) सुसम्बद्ध द्यावापृथिवी (८) उत्तम रीति से वीर्य सेचन में समर्थ स्त्री पुरुष।
'उर्वी गभीरे रजसी सुमेके'
ऋ. ४.४२.३; ५६.३; मै.सं. ४.१४.७:२२४.१०; तै.ब्रा. २.८.४.७

सुमेके रोदसी - (१) सुखप्रद मेघादि से युक्त सूर्य और भूमि (२) शुभवीर्य सेचन में समर्थ उत्तम सन्तानोत्पादक मातापिता
'उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके'
ऋ. ७.८७.३

सुयज्ञ - (१) सुन्दर यज्ञ करने वाला (२) सुन्दर उपास्य -इन्द्र, परमेश्वर
'इन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत्'
ऋ. २.२१.४

सुयम - (१) सुख पूर्वक व्यवस्था करने योग्य
'क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुभ्यम्'
अ. ७.८२.३
(२) उत्तम रीति से सुदृढ़
'सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व'
ऋ. ५.२८.३; अ. ७.७३.१०; वाज.सं. ३३.१२; मै.सं. ४.११.१:१५९. ६; का.सं. २.१५; तै.ब्रा. २.४.१.१; ५.२.४; आप.श्रौ.सू.३.१५.५
(३) सुखपूर्वक बांधने योग्य, सुदृढ़, (४) संयम सहित, दृढ़बद्ध
'सं जास्पत्यं सुयमस्तु देवाः'
ऋ. १०.८५.२३; आप.मं.पा. १.२.३

सुयमाः - (१) उत्तम नियमों में व्यवस्थित सूर्य की किरणें,
(२) सुख पूर्वक नियम में आने वाली प्रजा,
(३) शुभ रीति से विवाह करने वाली,
(४) उपरति करने में समर्थ स्त्री
'आ सीमारोहत् सुयमा भवन्तीः'
ऋ. ३.७३

(५) द्वि.व.। उत्तम रीति से वश में करने वाले।
'सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते '
ऋ. १०.४४.२; अ. २०.९४.२
(६) उत्तम नियम व्यवस्था में रहने वाली या रखने वाली।
'शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः'
अ. १४.२.१७

सुयमासः - ब.व.। (१) उत्तम रीति से वश किए घोड़े या इन्द्रिय।
'युवो रजांसि सुयमासो अश्वाः'
ऋ. १.१८०.१;

सुयभ्या - उत्तम मैथुन योग्य
'सुयम्या कन्या कल्याणी'
अ. २०.१२८.९; शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.४

सुयवस - तृण आदि से युक्त देश
'प्रजावतीः सुयवसे रुशन्ती'
अ. ४.२१.७; ७.७५.१

सुयवसाद् - सु + यवस + अद् + क्विप् = सुयवसाद्। (१) सुन्दर तृण को खाने वाली गौ, (२) सुन्दर जलधारक मेघ।

सुपामा - उत्तम रीति से नियम व्यवस्था करने वाला
'सुयामन् चाक्षुष'
अ. १६.७.७.

सुयामी - सुख से नियम में रहने वाला

सुयाशुतरा - (१) उत्तम क्रियाशील या शीघ्र कार्य करने वाली स्त्री (२) सुख पूर्वक पति का संग करने वाली
'न सयाशुतरा भुवत्'
ऋ. १०.८६.६ अ. २०.१२६.६

सुयुक् - (१) अच्छी तरह से रथ में जोड़े घोड़े, (२) उत्तम रीति से नियुक्त विद्वान्
'सुयुग् वहन्ति प्रति वामृतेन'
ऋ. ३.५८.२

सुयुक्त - उत्तम पद पर नियुक्त
'सुयुक्तां उप दाशुषे'
ऋ. ८.६९.१३; अ. २०.९२.१०

सुयुज् - उत्तम योगी
'अस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा'
अ. ५.२६.७; ८,१०,११

सुरणम् - न.। (१) जल,। (१) सुष्ठु रमणीय सुरमणीय, सुन्दर। दे. 'आहुवामहे'
'आ यस्मिन् तस्थौ सुरणानि बिभ्रती
सचा मरुत्सु रोदसी'
ऋ. ५.५६.८; नि. ११.५०
जिस मेघ में जलों को धारण करती (सुरणानि बिभ्रती) मरुतों के साथ (मरुत्सु सचा) मरुतों की निर्मात्री, रुद्र की पत्नी या वायु की पत्नी माध्यमिका देवी-विद्युत् (रोदसी) रहती है। (३) सुन्दर रण। दे. 'दक्षिणावत्'
आधुनिक अर्थ- 'ओल' नामक एक फल जो जमीन में बैठता है। सुरन।

सुरत्ना - सुन्दर, रत्न भूषण धारण करने वाली -स्त्री
'अनश्रवो अनमीवाः सुरत्ना'
अ. १२.२.३१

सुरभिः - गन्ध
'अध स्याम सुरभयो गृहेषु'
अ. १८.३.१७; का.सं. ४.१३

सुरभिष्टभः - सुरभिस्तमः (१) उत्तम प्रशंसनीय, (२) सबसे अधिक बल वाला, (३) सर्वोत्तर सुगन्ध युक्त वीर्यवान् वीर -परमेश्वर
'सुरभिष्टमं नरां नसन्त'
ऋ. १:१८६.७

स्फुरत् - स्फुरिष्यति, हिंसिस्यति (हिंसित करेगा)। निघंटु में 'स्फुर' या 'स्फुल' धातु वधार्थक है।

सुरा - षुञ् + क्रन् + टाप् = सुरा। 'सुरा सुनोतेः' (सु' धातु से सुरा शब्द बना है)।
साहि पिष्ठादिभिः अनेकैः द्रव्यैः अभिषूयते (सुरा पिष्ट गुड़, मधु आदि अनेक द्रव्यों से चुन कर बनाई जाती है)।
'हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्।
ऊधर्न नग्ना जरन्ते।'
ऋ. ८.२.१२
वे पीकर (पीतासः) खूब हृदय से संप्रहार करते हैं (हृत्सु युध्यन्ते) जैसे सुरा पीकर कुत्सित मद से मत्त हों 'मैं बड़ा मैं बड़ा' इस प्रकार परस्पर स्पर्धा करते हैं (सुरायां दुर्मदासो न) तथा वे यजमान तेरी उसी प्रकार स्तुति करते हैं (जरन्ते) जैसे नग्न पुरुष रात की कामना करते हैं (नग्ना ऊधः न)।
सायण का अर्थ-हे इन्द्र, तुझ से पीए गए सोम

तुझे मत्त करने के लिए इस प्रकार परस्पर तेरे भीतर युद्ध करते हैं। शराब मद पीने वाले को मत्त करता है तथा नग्न स्रोत मद से मत्त तेरी उसी प्रकार स्तुति करते हैं जैसे दूध से पूर्ण गाय के थन को।

'नग्नाः' का अर्थ-'ग्नाः छन्दांसि तानि न जहति इति नग्नाः'

निघण्टु में 'नग्नाः' 'वाक्' अर्थ में पठित है। स्वामी दयानन्द इस का अर्थ 'वेदः करते हैं। वैदिक धर्म से भरपूर वेदवेत्ता लोग इन्द्र तथा जीवात्मा की स्तुति करते हैं। (२) शुद्ध जल

'सुरायां सिच्यमानायाम्
यत् तत्र मधु तन्मयि'

अ. ९.१.१८

(३) जलधारा (४) सुख से रमण करने की प्रवृत्ति-

रजोगुणी काम। दे. 'ध्रुतिः सुरा' (५) उत्तम प्रवृत्ति

'सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः'

ऋ. ७.८६.६

सुराकार - सुरा चुलाने वाला पुरुष

'कीलालाय सुराकारम्'

वाज.सं. ३०.११

सुराधाः - (१) उत्तम घनों और उपायों को वेत्ता, (२) उत्तम धनों वाला। दे. 'पुष्टि'। (३) उत्तम ऐश्वर्य-सम्पन्न

'अभि प्रवः सुराधसम्'

ऋ. ८.४९.१; अ. २०.५१.१; साम. १.२३५; २.१६१; पंच.ब्रा. ११.९ .२; ऐ.आ. ५.२.४.२; आश्व.श्रौ.सू. ७.४.३; ८.६.१६; वै.सू. ३१.१८, २४;३३.७; ४१.८

सुराधाः वक्षणाः - उत्तम रीति से जल बहाने वाली नदियाँ

'प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधाः.
आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम्'

ऋ. ३.३३.१२

सुराधानी - (१) सुरा रखने का पात्र सुराही, (२) उत्तम रीति से सुख ऐश्वर्य का भोग देने वाली राज्य लक्ष्मी को धारण करने वाली।

'वेद्यै कुम्भी सुराधानी'

वाज.सं. १९.१६

सुराम - (१) उत्तम रीति से रमण करने योग्य, सुन्दर

'युवं सुराममश्विना'

ऋ. १०.१३१.४; अ. २०.१२५.४; वाज.सं. १०.३३; २०.७६; मै.सं. ३.११.४:१४५.१३; ४.१२.५:१९१.१. का.सं. १७.१९;३८.९; श.ब्रा.५.५.४.२५; तै.ब्रा. १.४.२१,८.६.१; आश्व.श्रौ.सू. ३.९.३; ८.३.३; वै.सू. ३०.११; आप.श्रौ.सू. १९.२.१९

(२) राज्य लक्ष्मी के साथ वर्तमान राष्ट्र (२) सु + राम। अति रमणीय राजपद

'यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः'

ऋ. १०.१३१.५; अ. २०.१२५.५; वाज.सं. १०.३४; २०.७७; मै.सं. ३.११.४:१४६.४; का.सं. १७.१९; ३८.९; श.ब्रा. ५.५.४.२६; तै.ब्रा. १.४.२.१; आप.श्रौ.सू. १९.२.१९

सुरामा - उत्तम राज्य लक्ष्मी को प्राप्त

'इमे सोमाः सुरामाणः'

वाज.सं. २१.४२; मै.सं. ३.११.४:१४५.१५; तै.ब्रा. २.६.११.१०

सुरावत् - आसव मदिरा बनाने वाला

'दृतिं सुरावतो गृहे'

ऋ. १.१९१.१०

सुराश्वः - (१) सुरा + अश्व। सुरारूपी अश्व पर आरूढ़-मदमत्त (२) सुरा सुख में रमण करने में योग्य स्त्री, भोग्य विषय (३) राज्य लक्ष्मी से बढ़ने वाला

सुराशुः - (१) सुरा = राज्य लक्ष्मी से समृद्ध, (२) मदकारी पदार्थों के सेवन से मदमत्त

'पीयन्ति ते सुराश्वः'

ऋ. ८.२१.१४; अ. २०.११४.२; साम. २.७४०

(३) सुरा पीकर मत्त

सुरासोम - (१) राज्य लक्ष्मी और राष्ट्र का अंश, (२) स्त्री पुरुष (३) अभिषेक क्रिया से अभिषिक्त पुरुष (४) सुरा और सोम

'इन्द्राय सुत्राम्णे सुरासोमान्'

वाज.सं. २१.५९; वाज.सं. (का.) २३.५८

सुरुक्मे - सु + रुच् + मक् = सुरुक्म। द्वि.व.। 'उषासानक्ते' का विशेषण (२) सुन्दर शोभायुक्त। दे. 'उपाके'

'दिव्ये पोषणे बृहती सुरुक्मे'

ऋ. ८.६.८

द्युलोक से उत्पन्न या द्युतियुक्त (दिव्ये) परस्पर

सम्मिश्र (योषणे) गुणों से महती या चिरकाल तक रहने से बड़ी (महती) तथा सुन्दर शोभायुक्त उषा और रात्रि (सुरुक्मे)।

सुरुच् - सु + रुच् + क्विप् = सुरुच्। (१) सुन्दर रुचि वाला, (२) सब को रुचने वाला, सर्वप्रिय
'दिवो रुचः सुरुचो रोचमाना'
ऋ. ३.७.५
(२) तेजस्वी-दया.
(३) स्तुत्य, शुशोभन-सा.। दे. 'अनर्वन्त'
(४) सुन्दर रुचने वाला, (५) सूर्य की किरणों का विशेषण
'गाथान्यः सुरुचो यस्य देवाः
आश्रृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः'
ऋ. १.१९०.१
जिस वैदिक ज्ञान के प्रदाता, तेजस्वी एवं बहुमान्य विद्वान् के उपदेशों को दाता गृहस्थ सदा सुनाते हैं-दया.।
जिस सुन्दर स्तुत्य बृहस्पति की स्तुतियां देवता और मनुष्य सुनाते हैं।

सुरूप कृत्नु - (१) अपने प्रकाश से सभी पदार्थों को सुन्दर बनाने वाला (२) सुनाने अर्थात् उत्तमोतम पदार्थों का रचयिता
'सुरूपकृत्नुमूतये'
ऋ: १.४.१; अ. २०.५७.१; ६८.१; साम. १.१६०; २.४३७; ऐ.ब्रा. ३.३०.३; पंच.ब्रा. १३.१०.२; ऐ.आ. ५.२.५.२; आश्व.श्रौ.सू. ५.१८.५; ७.४.३; ५.१५; शां.श्रौ.सू. ८.३.१३; ९.८.२; १२.४.५; वै.सू. २७.२५; ३३.१५; ३४.६; ३९.५; मा.श्रौ.सू. २.५.१.४८.
(३) उत्तम ज्ञान और रूपवान् लोकों और कर्मों का करने वाला इन्द्र।

सुरेक्णाः - उत्तम धनवान्
'अद्य त्वा वन्वन् सुरेक्णाः '
ऋ. ६.१६.२६; का.सं. २६.११; तै.ब्रा. २.४.६.२

सुरेतः - उत्तम वीर्योत्पादक। दे. 'तुरण'।

सुरेतसा - द्वि.व.। उत्तम वीर्यवान् माता पिता।
'सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुः'
ऋ. १.१५९.२

सुलाभिका - (१) उत्तम सुख का लाभ कराने वाली
'उवे अम्ब सुलाभिके '
ऋ. १०.८६.७; अ. २०.१२६.७
(२) सुख पूर्वक अनेक लाभ कराने वाली-प्रकृति

सुवज्र - उत्तम वज्र या विद्युत्
'य ईं जजान स्वर्यं सुवज्रम्'
ऋ. ४.१७.४

सुवद्धा - पति के साथ खूब अच्छी प्रकार ग्रन्थि-बद्धा कन्या
'सुबद्धा ममुत स्करम् '
ऋ. १०.८५.२५; अ. १४.१.१८; आप.मं.पा. १.४.५; ५.७.

सुबन्धु - उत्तम बन्धु, (२) परमेश्वर
'सुबन्धुं पति वेदनम्'
अ. १४.१.१७

सुवर्चाः - सुन्दर तेज से युक्त
'शुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः'
ऋ. १.९५.१; वाज.सं. ३३.५; तै.ब्रा. २.७.१२.२.

सुतवृतीमहि - (१) अच्छी तरह से वर्तमान रहें (२) अपनी ओर लाते हैं-सा.।

सुबर्हिष् - (१) उत्तम बल और आश्रय वाला, (२) उत्तम वृद्धिशील (३) बल और उत्तम प्रजाजन वाला (४) उत्तम आसन वाला (५) परमेश्वर. अग्नि या राजा
'जना आहुः सुबर्हिषम् '
ऋ. १.७४.५
(६) उत्तम रीति से आकाश में व्याप्त-सूर्य (७) उत्तम प्रजा से युक्त (८) धनधान्य सम्पन्न
'सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्'
वाज.सं. २१.१५; मै.सं. ३.११.११:१५८.४; का.सं. ३८.१०; तै. ब्रा. २.६.१८.२

सुवस्त - उत्तम रीति से युक्त
'सुवस्त्रं सुषेचनम्'
ऋ. १०.१०१.६

सुवह्निः - सुख पूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाने वाला
'स्योनं सुवह्निमधि तिष्ठ वाजिनम् '
अ. १३.२.७

सुव्रतः - (१) उत्तम रीति से व्रत, धर्माचरण और नियम-मर्यादाओं का पालन करने वाला गृहाश्रमी
'मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः'
ऋ. १.१२५.७

उत्तम रीति से व्रत धर्माचरण और मर्यादा पालन करने वाले ज़ार के समान दूसरे की स्त्री आदि पर लम्पटता न करे या बुद्धि बल और आयु का विनाश न करे ।

(२) उत्तम उद्योगी

'आ महे ददे सुव्रतो न वाजम् '

ऋ. ६.१८०.६

सुव्रतानां माता - (१) उत्तम पुण्य कर्मों को उत्पन्न करने वाली ब्रह्म की ज्ञानमयी या भवतारिणी शक्ति ।

'महीमू षु मातरं सुव्रतानाम्'

अ. ७.६.२; वाज.सं. २१.५; तै.सं. १.५.११.५; मै.सं. ४.१०.१: १४४.१०; का.सं. ३०.४,५; ऐ.ब्रा. १.९.७; आश्व.श्रौ.सू. २.१. २९; ३.८.१; ४.३.२; शां.श्रौ.सू. २.२.१४

सुब्रह्मण्यम् - (१) उत्तम वेद ज्ञान, (२) उत्तम ब्रह्मवर्चस्

'सुंब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु'

ऋ. १०.६२.४

सुब्रह्मा - (१) उत्तम वेदों का ज्ञाता (२) उत्तम धन-सम्पन्न राजा

'सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनाम् '

ऋ. ७.१६.२; साम. २.१००; वाज. सं. १५.३४; तै.सं. ४.४.४.४

(३) उत्तम पद तक पहुंचाने में समर्थ, (४) समस्त उत्तम पद और पदार्थों को धारण करने वाला

'स नो वक्षदनिमानः सुवह्मा'

ऋ. ६.२२.७; अ. २०.३६.७

'सुब्रह्मा ब्रह्मणःपुत्रः

अ. २०.१२८.७; शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.२

(५) चारों वेदों का सम्यक् ज्ञाता

'सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तम् '

ऋ. १०.४७.३

(६) सुखपूर्वक समस्त जगत् को वहन करने वाला

स्रुव - स्रुवा ।

'उनिन्यथुः सोममिव स्रुवेण'

ऋ. १.११६.२४

सुवाक् - (१) अच्छी वाणी बोलने वाला

'धृक्षग्रयजो द्रविणः सुवाचः '

ऋ. ३.७.१०

(२) उत्तम स्तुति, प्रशस्ति

'उप त्वा मदाः सुवाचो अगुः '

अ. २.५.२; साम. २.३०३; आश्व.श्रौ.सू. ६.३.१; शांश्रौ.सू. ९ .५.२.

सुवाचा - (१) सुवाचौ. प्रशस्तवचनी, सुस्तुतौ (सब प्रकार से स्तुत' किए गए) ।

'सुवाक्' शब्द के प्रथम द्विवचन का रूप ।

(२) सूर्य और अग्नि जो सुस्तुत या सुन्दर स्तुतियों से युक्त हैं-सा. ।

(३) अग्नि और वायु जो वाक् आदि इन्द्रियों को उत्तम बनाने वाले हैं-ज.दे.श.। दे. 'कारु'

'दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा'

ऋ. १०.११०.७; अ. ५.१२.७; वाज.सं. २९.३२; मै.सं. ४.१३.३:२०२.७; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.१२

देवताओं के होता सूर्य और अग्नि (दैव्या होतारा) जो मनुष्य होताओं से श्रेष्ठ हैं (प्रथमा) और तो सुस्तुत या स्तुतियों से युक्त हैं-सा. । दिव्यगुण सम्पन्न सुखकारक अग्नि और वायु (दैव्य होतारा) जो मनुष्य जीवन के लिए मुख्य हैं (प्रथम) और वाणी आदि इन्द्रियों को उत्तम बनाने वाले हैं (सुवाचा)-ज.दे.श. ।

सुवाचसा - द्वि.व.। उत्तम वाणी बोलने वाले-स्त्रीपुरुष ।

'प्रथमा हि सुवाचसा'

ऋ. १.१८८.७

सुवानः - (१) सिलाखंडों से कूटपीट कर निकाला हुआ सोम-रस ।

(२) विद्वानों से उपदेश किया हुआ ।

'पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः '

ऋ. १.१३०.२; आश्व.श्रौ.सू. ८.१.४

(३) उत्पन्न होने वाला

'इन्द्रे सुवानास इन्दवः '

ऋ. ८.३.६; अ. २०.११८.४; साम. २.९३८

सुवासाः - (१) उत्तम रीति से वास करने योग्य घर, (१) सुन्दर वस्त्रों से शोभित स्त्री

'जायेव पत्य उशती सुवासाः '

ऋ. १.१२४.७; ४.३.२; १०.७१.४; ९१.१३; नि. १.१९; ३.५.

'युवा सुवासाः परिवीत आगात्'

ऋ. ३.१.८.४; मै.सं. ४.१३.१:१९९.१३; का.सं. १५.१२; ऐ.ब्रा. २.२.२९; कौ.ब्रा. १०.२; तै.ब्रा. ३.६.१.३; आश्व.श्रौ.सू. ३.१.९; आश्व.गृ.सू. १.२०.९; पा.गृ.सू. २.२.९.

(३) कल्याण वासाः, सुन्दरवस्त्र महने हुई

सुवास्तु – (१) बसने के योग्य उत्तम स्थान, (२) नदी

सुवास्तुःनदीः ।

'अदान्मे पौरुकुत्स्यः पञ्चाशतम्
त्रसदस्युर्वधूनाम् ।
मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः ।'

ऋ. ८.१९.३६

'उत मे प्रयियोर्वयियोः
सुवास्त्वा अधि तुग्वनि ।
तिसृणां सप्ततीनां
श्यावः प्रणेता भुवद् वसुर्दियानां पतिः'

ऋ. ८.१९.३७

अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों का दान करने वाला (पौरुकुत्स्यः) पूजापूजित (मंहिष्ठः) श्रेष्ठ सज्जनों के रक्षक (अर्यः सत्पत्तिः) दस्युओं को भयभीत करने वाला (त्रसदस्युः) राजा ने मुझे पचास बहुएं दान दीं (मे पञ्चाशत् वधूनाम् अदात्) और नदी के तट पर रहने वाले (उत सुवास्त्वा अधि तुग्वनिः) सूर्यकिरणों के समान तेजस्वी (श्यावः) उत्तम नायक (प्रणेता)सम्पत्ति शाली (भुवद्वसु) दान के योग्य पदार्थों के स्वामी ने (दियानां पतिः) मुझे प्रचुर धन (मे प्रयियोः) अनेक वस्त्रं (वयियोः) और २१० गाएं (ति सृणां सप्ततीनाम्) दीं ।

(३) उत्तम भवनों वाली नगरी ।

सुबाहु – (१) सुन्दर भुजाओं वाली (२) संसार के जन्म मरण में पीड़ा देने वाली, (३)उत्तम रीति से जीवन को बांधने वाली प्रकृति ।

'किं सुबाहो स्वङ्गुरे '

ऋ. १०.८६.८; अ २०.१२६.८

सुवित – (१) उत्तम कर्मफल,

'सुविता कल्पयावहै'

ऋ. १०.८६.२१; अ. २०.१२६.२१; नि. १२.२८–

(२) सुख से चलने योग्य, (३) सुविधा जनक

'इषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः'

ऋ ४.५५.४

(४) उत्तम रीति से प्राप्त

'पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरे'

ऋ. ७.१००.२

(५) उत्तम कार्य में लगाया गया, (६) उत्तम मार्ग पर जाने वाला

'ते न आ वक्षन् सुविताय वर्णम्'

ऋ. १.१०४.२

वे हम प्रजाजनों के हितार्थ उत्तम कार्य में लगाए गए या उत्तम मार्ग पर जाने वाले (सुविताय) को वेतन आदि प्राप्त करावे (वर्णम् आवक्षन्) ।

(७) सु + इ + क्त = सुवित (उ का उवक् छान्दस है) अथवा ' पूङ् ' (विमोचनार्थक) + ते = सूते = सुविते ।

सु इते, सूते, सुगते प्रजायामिर्ति वा ।

प्रजनन अर्थ में भी 'सो' का प्रयोग हुआ है ।

अर्थ है –सुगत स्थान (जहां जाने वालों का सुन्दर गत होता है) ।

'सुगतं स्थानम् यत्र गगनां
शोभनं गतं भवति ।'

(८) जनयितव्य प्रजा (९) सुगति या सुखमय लोक सन्तान या सन्तान–दया. ।

सुगत स्थान के अर्थ में प्रयोग–

'आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि
तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वन ओजिष्ठाय'

वाज.सं. ५.५.; का.सं. २.८.; श.ब्रा. ३.४.२.१०

हे अग्नि या जगदीश्वर, सब प्रकार से इन्द्रियों का स्वामी बनने के लिए (आपतये) शुद्धमन रखने के लिए (परिपतये) शरीर नाशक न होने के लिए (तनूनप्त्रे) वैदिक ज्ञान के लिए (शाक्वराय) शक्तिमान् बनने के लिए (ओजिष्ठाय) तुझे ग्रहण करता हूँ (त्वागृह्णामि) ।

'अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽ
नभिशस्त्यभिशस्तिपा
अनभिशस्तेन्यमञ्जसा सत्यमुपगेपं
स्विते मा धा'

वाज.सं. ५.५.

तू तिरस्कार रहित है (अनाधृष्टम्,), भविष्य में भी तिरस्कार रहित है (अनाधृष्यः), तू सूर्यादि देवों का ओज है (देवानाम् ओजः), सब प्रकार. से नाश रहित है (अनभिशस्तिः), सभी दुःखों से बचाने वाला है (अभिशस्तिपाः), धर्ममार्ग

पर ले जाने वाला है (अनभिशस्तेन्यम्) अतः तेरी कृपा से शीघ्र सत्य को प्राप्त करूँ (अञ्जसा सत्यम् उपगेषम्)। मुझे सुगति में या सुखमय लोक में धारण कर (मा सविते धाः), या सायण के अनुसार, मैं बहुत सन्तानों से युक्त होऊं। (१०) यथा शास्त्र किए जाने वाला यज्ञ भी सुवित है। दे. 'आगन्तन,' 'इन्द्रवन्तः'।

'आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसः
हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन'

ऋ. ५.५७.१; नि. ११.१५

हे रुद्रो, आप इन्द्र के साथ समान प्रेम पूर्वक सोने के कारण रथ पर आरूढ़ यथा शास्त्र किए जाने वाले यज्ञ में आओ।

सुविता – सुप्रसूतकर्मा। दे. 'अस्तम्'।

'सुविता कल्पयावहै।'

ऋ. १०.८६.२१; अ. २०.१२६.२१; नि. १२.२८

इन्द्राणी और मैं सुप्रसूत कर्मों को करता हूँ।

सुविदत्र – (१) उत्तम दान शील, (२) उत्तम प्राप्त ऐश्वर्य का रक्षक, (३) उत्तम ज्ञान का रक्षक

'राजानं सुविदत्रमृञ्जते'

ऋ. २.१.८

(४) सुख प्राप्त कराने वाला

(४) प्रदान किया हुआ उत्तम ऐश्वर्य और दान

'बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या'

ऋ. २.२४.१०

(६) कल्याण विद्यः (कल्याण का ज्ञाता या कल्याण प्रद ज्ञान वाला)।

सु + विद् + कत्रन् = सुविदत्र। कल्याण कारी विद्या से युक्त। (७) योगैश्वर्य युक्त– दया.

(८) सु + वि + दा + कत्रन् = सुविदत्र।

(९) जिसे धर्म पूर्वक सन्मार्ग से प्राप्त किया जाय (१०) जिसका साधु भाव से अनेक प्रकार से दान दिया जाये वह धन।

'ये तातृषुर्देवत्रा जेहमानाः
होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ्
सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः'

ऋ. १०.१५.९; अ. १८.३.४७; मै.सं. ४.१०.६:१५८.१; तै.ब्रा. २. ६.१६.२

देवों के प्रति (देवत्रा) जाते हुए (जेहमानाः) अर्थात् क्रमशः देवत्व प्राप्त करते हुए हवन मंत्र के ज्ञाता या यज्ञकर्ता या स्तुतिज्ञ (होत्राविदः) स्तोत्रों से (अर्कैः) स्तोमकर्ता जो पितर तृषित होते हैं (सोम तष्टासः ये तातृषुः) उन कल्याण वेत्ता पितरों के साथ (सुविदत्रेभिः पितृभिः) हे अग्नि, हमारे सम्मुख आकर यथावत् संस्कृत पितृदैवत्य कव्यों से (सत्यैः कव्यैः) तथा यज्ञगत हवियों से तृप्त हो (घर्मसद्भिः उपयाहि) यज्ञवासी मेधावी पितरों से साथ आ।

अन्य अर्थ – जो देवभावों को प्राप्त करते हुए (ये देवत्रा जेहमानाः) यज्ञ कर्मों को जानने वाले (होत्राविदः) और प्रशंसित गुणों को धारण करने वाले गुरुजन (स्तोमतष्टासः) वेद मन्त्रों के द्वारा (अर्कैः) तर गए हैं (तातृषुः), हे राजन् (अग्ने) उन कल्याणकारी विद्याओं के ज्ञाता (सुविदत्रेभिः) सत्यवादी कवियों में प्रशस्त (सत्यैः कव्यैः) और तपस्वी गुरुजनों के साथ (घर्मसद्भिः पितृभिः) हमारे निकट आइए (अर्वाङ् आयाहि)।

(११) उत्तमोत्तम शिक्षाओं का दाता।

'आहं पितृन् सुविदत्रां अवित्सि'

ऋ. १०.१५.३; अ. १८.१.४५; वाज.सं. १९.५६; तै.सं. २.६.१२.३; मै.सं. ४.१०.६:१५६.१६; का.सं. २१.१४; ऐ.ब्रा. ३.३७.१५; आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२२; ५.२०.६

सुविदत्रियाः देवाः – सुविदत्रं धनं भवति। विद् (लाभार्थक) + अश्रन् = विदत्र। सुविदत्र = सुन्दर धन।

अथवा सु + वि + दा + अत्रन् = सुंविदत्र। अर्थ है– (१)सुन्दर ज्ञान या सुन्दर धन वाले देश। दे. गोपाः'

'अग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यःमृतात्मा'

ऋ. १०.१७.३; अ. १८.२.५४; तै.आ. ६.१.१; नि. ७.९.

हे मृतात्मा, वह आदित्य या अग्रणी परमेश्वर, तुझे सुन्दर ज्ञान या सुन्दर धन वाले देवों के पास (सुविदत्रियेभ्यः देवेभ्यः) पहुंचाने अर्थात् मृतात्मा देव लोक में जायं।

(२) योगैश्वर्य युक्त

सुविप्र – (१) यज्ञ के सात ऋत्विजों में ब्रह्मा नामक ऋत्विज, (२) उत्तम विद्वान् मेधावी

(३) सबकी न्यूनताओं को पूर्ण करने

वाला-सभापति ।

'ग्रावग्राभ उत शस्ता सुविप्रः'

ऋ. १.१६२.५; वाज.सं. २५.२८; तै.सं. ४.६.८.२; मै.सं. ३.१६. १:१८२.६; का.सं. (अश्व.) ६.४.

सुविवृत - सुष्ठुविकसित, सुखपूर्वक अच्छी प्रकार विकसित

'सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः'

ऋ. १.१०.७

हे ऐश्वर्यवान्, सुखपूर्वक अच्छी प्रकार विकसित एवं फैला हुआ और अच्छी प्रकार सर्वत्र व्याप्त ('सुनिरजम्) जल के समान अन्न, बल और ज्ञान तेरा ही शोधा हुआ प्रकाशित या प्रदान किया हुआ हैं ।

सुवीर - (१) वीरवान्, (२) पुत्रवान्, (३) अच्छावीर । दे. 'जरितृ, ' 'गो'

सुवीरता - उत्तम वीर पुत्र उत्पन्न करना ।

'सुक्षेवतायै सुवीरतायै सुजातम्'

अ. ७.२०.५

सुवीर्य - (१) उत्तम बल से युक्त, (२) वीर पुरुषों से युक्त - ऐश्वर्य

'उत द्युमत् सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि'

सुबुधा - उत्तम ज्ञान सम्पन्न

'इन्द्राणी सुबुधा बुध्यमाना'

अ. १४.२.३१

सुवृक्ति - (१) उत्तम रीति से पापादि मार्गों से रोकर सन्मार्ग में प्रेरित करने वाला । दे. 'प्रस्तुति (२) उत्तम, (३) दुःखरहित

'मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति'

ऋ. १.१८४.५

(४) पापों और दुराचारों को अच्छी प्रकार छुड़ाने वाला- अग्नि, (५) रोगहारी, (६) तमोनाशक (७) पापहारी परमेश्वर

'हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिम्'

ऋ. २.४.१; का.सं. ३९.१४; कौ.ब्रा. २२.९

(८) उत्तम शत्रुओं को पराजित करने वाली शक्ति, (९) उत्तम हृदयग्राही स्तुति

'एन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः'

ऋ. १.५२.१; साम. १.३७७; कौ.ब्रा. २६.९

इन्द्र को उत्तम हृदयग्राही स्तुतियों से रक्षा के लिए प्राप्त करूं ।

अथवा,

राजा को उत्तम शत्रुओं को पराजित करने वाली शक्तियों के साथ (सुवृक्तिभिः) अपनी रक्षा के लिए वरण करूं ।

(१०) उत्तम रीति से जाने वाला या शत्रु को रोकने वाला यान आदि वाहन ।

(११) शत्रुओं को अच्छी प्रकार दूर करने का बल ।

(१२) सु + वृज् + क्ति । अज्ञान को दूर करने वाला

'अग्निं महामवोचामा सुवृक्तिम्'

ऋ. १०.८०.७

(१३) सब विघ्नों का निवारक स्तुति

'भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति'

ऋ. १.६१.२; अ. २०.३५.२

(१४) उत्तम संविभाग

'कया नो अग्न वि वसः सुवृक्तिम्'

ऋ. ७.८.३

(१५) सु प्रवृक्ता- स्वर सौष्ठवादि युक्ता (जिसकी वृक्ति अर्थात् प्रवृत्ति सुन्दर हो) । विशेषण

'पारावतीघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः
सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः'

ऋ. ६.६१.२; मै.सं. ४.१४.७:२२६.१०; का.सं. ४.१६; तै.ब्रा.२.८.२.८; नि. २.२४.

उस पार अवार को तोड़ने वाली सरस्वती नदी को रक्षा के लिए सुप्रवृत्त कर्मों या स्तोत्रों से परिचारित करें (अग्निवासेम) ।

(१६) कायिक वाचिक या मानसिक शुद्धि । दे. 'गिर्वणस' ।

'घर्मं न सामं तपता सुवृक्तिभिः
जुष्टं गिर्वणसे बृहत्'

ऋ. ८.८९.७; साम. २७८१; का.सं. ८.१६; तै.सं. १.६.१२.

हे स्तोताओ, तुम सुन्दर स्तुतियों से प्रिय तथा बृहत् धर्म के समान (जुष्टं बृहत् घर्मं न) सुष्ठु एवं सुप्रयुक्त सोमपान को इन्द्र के लिए गाओ (गिर्वणसे जुष्टं बृहत्) ।

अथवा

ए मनुष्यो, तुम कायिक, वाचिक तथा मानसिक शुद्धियों के द्वारा (सुवृक्तिभिः) तपश्चरण करो (तपत) और पूज्य देव के लिए प्यारे तथा महान्

सामं गान के गाओ (गिर्वणसे जुष्टं बृहत्) ।

सुवृजना – उत्तम बल एवं आचार वाली प्रजा ।
'ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु'
ऋ. १०.१५.२; अ. १८.१.४६; वाज.सं. १९.६८

सुवृत् – (१) उत्तम रीति से सुख से चलने वाला रथ, (२) उत्तम रीति से चलने वाला सदाचार युक्त शरीर रूपरथ ।
'सुवृद् रथो वर्तते यन्नभिक्षाम्'
ऋ. १.१८३.२
(३) शोभन कर्म करने वाली, साधु कर्मकारिणी-गृहपत्नी या अमावास्या का विशेषण । दे. जोहवीमि ।
'कुहूमहं सुवृतं विद्मनापसम्
अस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि'
अ. ७.४७.१; नि. ११.३३
मैं शोभनकर्म करने वाली (अहं सुवृतम्) कर्म को जानने वाली सुन्दर आह्वान वाली अमावस्या को रस यज्ञ में बुलाता हूँ ।
अन्य अर्थ – मैं साधु कर्म कारिणी, अपने कर्तव्यों को जानने वाली, आदर पूर्वक बुलाने के योग्य (सहवाम्) गम्भीर पत्नी को (कुहम्) इस गृहस्थ यज्ञ में स्वीकार करता हूँ (अस्मिन् यज्ञे जोहवीमि) ।

सुवृत – सुन्दर वृत्ताकार । दे. 'अमृतस्य लोकः
'हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्'
ऋ. १०.८५.२०; अ. १४.१.६१; आप.मं.पा. १.६.४; नि. १२.८

सुवृध् – (१) उत्तम वृद्धि करने वाला
'त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते'
ऋ. २.२३.९; नि. ३.११
(२). सद्युवर्धित, (३) अनुगृहीत (४) सम्यक् प्रकार से वर्द्धित, पाला पोसा
हे ब्रह्मणस्पते, हम मनुष्य तेरे द्वारा सम्यक् प्रकार से वर्द्धित हुए हैं ।

सुवेद – उत्तम रीति से सुखपूर्वक आदर पूजा या भक्ति द्वारा जानने और मनन करने योग्य अग्नि, परमेश्वर ।
'सुवेदं क्वचिदर्थिनम्'
ऋ. ४.७.६

सुवेदना – उत्तम ज्ञानप्रद वाणी
'सुवदेनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम्'
ऋ. १०.११२.८

सुवेदाः – उत्तम ज्ञान वाला, वैज्ञानिक पुरुष
'सुवेदा नो वसू करत्'
ऋ. ६.४८.१५

सुवेनीः – सुन्दर ज्ञानवान् ।
'त्राज्यसि वाजिनेना सुवेनी'"
ऋ. १०.५६.३

सुश्रवाः – (१) उत्तम ज्ञान, यश एवं ऐश्वर्य से युक्त (२) उत्तम श्रवण युक्त विद्वान्
'तेना सुश्रवशं जनम्
प्रावाद्य दुहितर्दिवः'
ऋ. १.४९.२
हे सूर्य की कन्या उषा, तू उसी से आज शुभ अवसर पा उत्तम ज्ञान, यश ऐश्वर्य से युक्त प्रिय जन अर्थात् पति को निर्विघ्न रूप से प्राप्त हो ।

सुशका – सुख से सम्पन्न होने वाली
'अभूदु वः सुशका देवयज्या'
ऋ. १०.३०.१५

सुशमी – (१) उत्तम कर्मवान् सुकर्मा
'एते शमीभिः सुशमी अभूवन्'
ऋ. १०.२८.१२
(२) उत्तम शम का साधक
'सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनाम'
ऋ. ७.१६.२; साम. २.१००; वाज.सं. १५.३४; तै.सं. ४.४.४.४

सुशरणः – (१) उत्तम शरण देने वाला (२) सुशरण परमेश्वर
'प्र सू महे सु शरणाय मेधाम्'
ऋ. ५.४२.१३

सुशर्मा, सुशर्मिन् – (१) उत्तम घरों का स्वामी (२) दुष्टों का नाशक (३) सुख साधनों से युक्त
'सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्याम्'
ऋ. ३.१५.१; वाज.सं. ११.४९; तै.सं. ४.१.५.१; मै.सं. २.७.५:७९.१५ का.सं. १६.४; श.ब्रा. ६.४.४.२१.
(४) अच्छी प्रकार रोग कीटाणुओं का नाशक –अग्नि
(५) सुन्दर सुख या गृह से युक्त
'सुशर्माणं स्ववसं जरद्विषम्'
ऋ. ५.८.२

सुशर्माण – द्वि.व.। उत्तम सुख और शरण देने वाले अग्नि और सोम (अग्नि वायु) ।

'सुशर्माण स्ववसा हि भूतम् '
ऋ. ९३.७; तै.सं. २.३.१४.३; मै.सं. ४.१४.१८: २४८.९
हे अग्नि और सोम, तुम दोनों अपने सामर्थ्य से सुन्दर सुख और शरण देने वाले होओ।

सुशर्माणः - ब.व.। (१) सुन्दर सुख वाले बन्धुजन, सुखीबन्ध वर्ग (२) मरुद्गण, (३) व्यापारी वर्ग दे. 'वातासः'।
'सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते'
ऋ. १०.७८.२
यज्ञ के लिए प्रयत्नशील यजमान के लिए (ऋतं यते) मरुद्गण या व्यापारीवर्ग सुखी बन्धुजन की तरह (सुशर्माणः न) सौम्य होवें (सोमाः सन्तु)।

सुशमि - न.। उत्तम कर्म को बतलाने वाला-वचन।
'गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि'
ऋ. ५.८७.९; आश्व.गृ.सू. ३.५.७; शां.गृ.सू. ४.५.८

सुशंसः - (१) उत्तम कीर्तिवाला, (२) उत्तम उपदेष्टा
'प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि'
ऋ. २.२३.१०

सुशस्तय - उत्तम उपदेष्टा लोग
'उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः'
ऋ. ५.४६.६

सुश्चन्द्र - (१) उत्तम आल्हाददायक
'अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रम् '
ऋ. ४.२.१९
(२) स्तु + चन्द्र = सुश्चन्द्र (सुट्)। आल्हादक, (३) उत्तम रूपवान्, (४) वरण करने योग्य दृश्य या अन्न।
'सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् '
ऋ. २.३४.१३
(५) मनोहर उत्तम ऐश्वर्य वाला परमेश्वर, (६) विद्वान् (७) राजा
'हव्या सुश्चन्द्र वीतये'
ऋ. १.७४.६
हे उत्तम रीति से सबको आह्लादित करने वाले परमेश्वर, तू ग्रहण करने योग्य ज्ञान का प्रकाश करने और उत्तम अन्नों की रक्षा और खाने के लिए (हव्या वीतये) प्राप्त कर।

सुश्रवः - (१) उत्तम श्रवण और धारण शक्ति से युक्त।
'यस्त्वाश्रृण्वत् सुश्रवः'
अ. ११.४.१९
(२) श्रुतवान्। 'श्रृ' धातु के छान्दस लिट् में क्वस प्रत्यय कर सुश्रवस् बना है। अर्थ है-सभा। दे. 'अपुष्पा'।

सुश्रवस्तमः - (१) उत्तम यशस्वी ज्ञानी (२) प्रजाओं के कष्टों को उत्तम रूप से सुनने वाला
'जहि यो नो अघायति
श्रृणुष्व सुश्रवस्तमः।'
ऋ. १.१३१.७
(३) उत्तम यश कीर्ति बल आदि गुणों से युक्त -परमेश्वर
'भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे'
ऋ. १.९१.१७; का.सं. ३५.१३

सुश्रवस्या - (१) उत्तम यश या अन्न प्राप्त करने की इच्छा
'एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या'
ऋ. १.१७८.४

सुश्रवाः - (१) उत्तम यशों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों से युक्त। दे. 'भरेषुजा'
(३) उत्तम कीर्तिमान्
'अबन्धुना सुश्रुवसोपजग्मुषः'
ऋ. १.५३.९; अ. २०.२१.९

सुशस्तिः - उत्तम ज्ञान का उपदेष्टा
'वारेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्ति'
ऋ. १०.१०४.१०

सुशंसी - उत्तम वाणी बोलने वाला
'यो नः सोम सुशंसिनः'
अ. ६.६.२

सुशिप्रः - सृप् + रक् = सृप्र (तैल, सर्पिष् जो ढरकता है)। इसी सृप्र का बाहुलक नियम से 'शिप्र' हो गया है।
'सृप्रः सर्पणात् इदमपि इतरत् सृप्रम् एतस्मादेव सर्पिः वा तैलं वा। सुशिप्रम् एतेन व्याख्यातम्। निघण्टु में 'सुशिप्र' पुल्लिंग है पर नपुंसक में भी इसका प्रयोग हुआ है। अर्थ है- (१) सर्वत्र फैला हुआ -दया।
(२) शिप्र का अर्थ 'हनू' और नासिका भी है।
'शिप्रोहनू नासिके वा '
'शस्ते शिप्रे यस्य स सुशिप्रः।

दे. 'धेना'।
सुन्दर हनू या नासिका वाला-इन्द्र का विशेषण-सा.।
(३) क्षिप्रकारी-राजा का विशेषण। दे. 'तूर्णाश'
'हुवे सुशिप्रम मूतये'
ऋ. ८.३२.४
मैं सुन्दर हनू या नाक वाले इन्द्र को पुकारता हूँ-सा.।
क्षिप्रकारी राजा को रक्षार्थ पुकारता हूँ-ज.दे.श.।
दे. 'धेना'।
'आ त्वा सुशिप्र हेरयो वहन्तु'
ऋ. १.१०१.१०
हे सुन्दर हनू या नासिका वाले इन्द्र, तुझे अंश्व लावें।
'विद्मा सखित्वमुत शूर भोज्यम्
आ ते ता वज्रिन्नीमहे
उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो
वाजे सुशिप्र गोमति'
ऋ. ८.२१.८
cypher और शिप्र शब्द की समानता विचारणीय है।
(४) उत्तम ज्ञानों वाला (५) उत्तम शक्तिशाली।
'युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः'
ऋ. २.१२६; अ. २०.३४.६

सुशिल्पे - (१) सुन्दर कान्ति युक्त रातदिन
'देवी दिवो दुहितरा सुशिल्पे'
ऋ. १०.७०.६
(२) द्वि.व.। उत्तम शिल्पों के उत्पादक कार्य साधन में चतुर स्त्रीपुरुष।
'उषासा वां सुहिरण्ये सुशिल्पे'
वाज.सं. २९.६; तै.सं. ५.१.११.२; मै.सं. ३.१६.२:१८४.९; का.सं. (आश्व.) ६.२.

सुशिश्व - (१) सुष्ठुवर्धकः -दया. (२) उत्तम रीति से पुष्टि पाने वाला-गर्भस्थ शिशु
'वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिश्वम्
ऋतस्य योना गर्भे सजातम्'
ऋ. १.६५.४

सुशिष्टिः - उत्तम शासन
'मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ'
ऋ. १.१७३.१०

सुशीम - उत्तम सुख का उत्पादक
'सुशीमं सोम सत्सरु'
अ. ३.१७.३

सुशुक्वनिः - उत्तम पवित्र आचारों से युक्त।
'दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिः'
वाज.सं. ११.४१; तै.सं. ४.१.४.१; का.सं. १६.४; श.ब्रा. ६.४. ३..९

सुश्रुण - श्रवण करने योग्य ज्ञान। दे. 'सुश्रुत्'

सुश्रुत् - उत्तम श्रवण शक्ति से युक्त
'अरिष्टः सर्वाङ्गः सुश्रुत्'
अ. ८.२.८
'वनुं वार ये सुश्रुणं सुश्रुतोधुः'
ऋ. १०.७४.१

सुश्रृत - सु + शृ + क्त। उत्तम रीति से परिपक्व।
'सुश्रृतं मन्ये तदृतं नवीयः'
अ. ७.७२.३

सुश्रुति - उत्तम श्रवण शक्ति
'सुश्रुतिश्च मोपश्रुतिश्च मा हासिष्टाम्'
अ. १६.२.५

सुशेवः - (१) उत्तम सुख देने वाला- मित्र, सूर्य
'यातयज्जनो गृणते सुशेवः'
ऋ. ३.५९.५; तै.ब्रा. २.८.७.६
(२) उत्तम सुख स्वरूप
'सखा सुशेवो अद्वयः'
ऋ. १.१८७.३; का.सं. ४०.८; ऐ.आ. ४.९.
(३) सुसुखतमः (अत्यन्त सुखदायक)। शेव का अर्थ सुख है सुन्दर सुख देने वाला। दे. 'अध'
'नहि ग्रभायारणः सुशेवः
अन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ'
ऋ. ७.४.८; नि. ३.३.
जिससे जल-सम्बन्ध न हो वह अन्य से उत्पन्न बालक अत्यन्त सुखदायक होता हुआ भी ग्रहण करने योग्य नहीं होता। ऐसा मन से भी न सोंचे कि वह अपना होगा। दे. 'अमीवहन्'।
'सखा सुशेव एधि नः'
ऋ. १.९१.१५:७.५५.१; मै.सं. १.५.१३:८२.१२; कौ.सू. ४३.१३; पा.गृ.सू. ३.४.७; आप.मं.पा. २.१५.२१; नि. १०.१७.

सुशेवा - (१) सुख से सेवन करने योग्य
'अश्वावतीं प्र तर या सुशेवा'

अ. १८.२.३१.

(३) उत्तम रीति से सेवा करने योग्य परमेश्वर

'येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवा'

अ. १४.१.१९,५८

सुशेव्य – (१) सुख से सेवन योग्य, (२) सुखप्रद (३) प्रधानपुरुष

सुशोकः – सुन्दर दीप्ति वाला अग्नि

'अग्निः सुशोको विश्वानि अश्याः'

ऋ. १.७०.१

सुन्दर दीप्तिवाला अग्नि समस्त पदार्थों को व्यापाता है ।

सुश्रोतु – उत्तम श्रवण शीलपुरुष अर्थात् पिता, गुरु या उपदेशक । दे.' श्रोतु '।

सुषण – सु + सन् (१) सन् (१) सुख और शान्ति प्रदान करने वाला (२) सुख से सेवनीय । दे. 'विश्वसौभग'।

सुषणन – सु + सनन । उत्तम रीति से देने योग्य

'त्वे वसु सुषणनानि सन्तु'

ऋ. ७.१२.३; साम. २.६५६; तै.ब्रा. ३.५.२.३; ६.१३.

सुषद् – (१) सुखपूर्वक रहने योग्य (२) सुखपूर्वक जाने या गति करने वाला रथ

'सुखं रथं सुषदं भूरिवारम् '

ऋ. ८.५८.३

(३) उत्तम बैठने योग्य सवारी

'ह्स्ती मृगाणां सुषदाम् '

अ. ३.२२.६

'सं वो गोष्ठेन सुषदा'

अ. ३.१४.१

सुषद – पु. । सुख से आश्रय करने योग्य ।

'पृथुर्भव सुषदस्त्वम् '

वाज.सं. ११.४४; तै.सं. ४.१.४.२; मै.सं. २.७.४;७९.२; का.सं. १६.४; श.ब्रा. ६.४.४.३.

सुषदा – (१) उत्तम प्रकार से रहने योग्य घर

'सुषदा योनौ स्वाहा वाट् '

वाज.सं. २.२०, तै.सं. १.१.१३.३ श.ब्रा. १.९.२.२०; तै.ब्रा. ३.३.९.९.

(३) पशुओं के सुखपूर्वक बैठने योग्य

'प्रियो मृगाणां सुषदा बभूव'

अ. २.३६.४

सुषदा पश्चादेवास्य सवितु राधिपत्ये चक्षुर्मे दाः

वाज.सं. ३७.१२; मै.सं. ४.९.३:१२४.२; श.ब्रा. १४.१.३.२१; तै.आ. ४.५.३

सुषव्य – सु + सव्य । (१) बाएं हाथ से भी कर्म करने में समर्थ परमेश्वर (२) उत्तम रीति से पूजा करने योग्य (३) जगत् को उत्पन्न और संचालन करने में समर्थ ।

'यः सुषव्यः सुदक्षिणः'

ऋ. ८.३३.५

सुषहः – सुख से पराज्य करने योग्य

'अमित्रान् सुषहान् कृधि'

ऋ. ६.४६.६; अ. २०.८०.२

सुष्वयन्ती – सु + अय् + शतृ + ङीष् । = सुष्वयन्ती । 'वाछन्दसि' से प्रथमा द्विवचन में दीर्घ हो गया है ।

(१) सायण ने इसका अर्थ 'सुष्ठु अयन्त्यौ' (सुन्दर प्रकार से जाती हुई) किया है।

(२) यास्क ने 'सेष्मीयमाणे (परस्पर एक दूसरे का वैभव देख विस्मय करती हुई) या 'सुष्वापन्त्यौ ' (लोगों से सुष्ठु प्रकार से सुलाती हुई) किया है।

(३) मुस्कुराते हुए या शयनावस्था की तरह सौमन्य प्रदान करते हुए किया है।

(४) द्वि.व.। 'उषासानक्ता' का विशेषण, सुन्दर रीति से चलने वाली या परस्पर एक दूसरे का वैभव देख विस्मय करती हुई या लोगों को अच्छी तरह से सुलाती हुई उषा और रात्रि । दे. 'उपाके' ।

'आ सुष्वयन्ती यजने उपाके
उषासानक्ता सदतां नि योनौ'

ऋ. १०.११०.६, अ. ५.१२.६; वाज.सं. २९.३१, मै.सं. ४.१३.३:२०२.५; का.सं. १६.२०; तै.ब्रा. ३.६.३.३; नि. ८.११.

सुन्दर रीति से चलने वाली या परस्पर एक दूसरे का वैभव देख विस्मय करती हुई या लोगों को अच्छी तरह से सुलाती हुई या मुस्कराती हुई सुष्वयन्ती यज्ञ की सम्पादयित्रियां या यज्ञ करने योग्य (यजते) एक दूसरे से संलग्न या सेवित (उपाके) उषा और रात्रि (उषा सानक्ते) यज्ञस्थान या सृष्टि या गृह में (योनौ) निरन्तर रहें (नि आ सदताम्) ।

सुषाः – न्याय पूर्वक विभाग करने वाला

'न सुषा न सुदा उत '

ऋ. ८.७८.४

सुषामण - (१) सुषम से सुषामण हुआ है । अर्थ है- अत्यन्त सुन्दर ।

(२) उक्षण गोत्रीय सुषामण नामक राजा-सा.

स्नुषा - सु + सद् + उ = सुषा = स्नुषा । (१) साधुसादिनी । (२) (पुत्रवधू) । वह कुल में साधु-तया स्थित होती है । विवाह में शिलारोपण करते समय कहा जाता है-

'अश्वमेवत्वं सुस्थिरा भव'

(३) साधुसानिनी । पुत्रवधू सम्यक् प्रकार से अन्नादि पदार्थों को बांटती है। अतएव गृहपत्नी को 'अग्रसद्' कहते हैं ।

(४) अथवा यह अपत्य को देने वाली है ।

'स्नुषेव श्वसुरादधि'

अ. ८.६.२४

सुषामन् - (१) उत्तम समभूमि युक्त (सुषामा) मार्ग, (२) सबके प्रति समान भाव से रहने वाला-सुखप्रद

'रथं युक्तमसनाम सुषामणि'

ऋ. ८.२५.२२

सुषारथिः - कल्याणसारथिः, सुन्दर सारथि वाला । दे. 'अभीशु'

सुष्ठामा - उत्तम रूप से स्थिर होने वाला ।

'सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते'

ऋ. १०.४४.२; अ. २०.९४.२

(२) सुख पूर्वक ठहरने वाला, (३) उत्तम बैठने के स्थान से युक्त

सुषिर - शुष् + इन् = शुषि । शुषिः अस्य अस्ति शुशिरः । आदि में दन्त्य सभी पाया जाता है । अर्थ - (१) नगरोदक निस्सरण मार्ग । जिसके भीतर छिद्र हो । (२) अन्तश्छिद्र जिसके भीतर छिद्र है जल निकलने की नलिका

'शुषिरं वंशादि वाद्ये
विवरेऽपि नपुंसकम्,
शुषिरं न स्त्रियां गर्ते
वह्नौ नन्ध्रान्विते त्रिषु । दे. 'सिन्धु ।'

(३) एक धारा, एक स्रोत

'सूर्म्यं सुषिरामिव'

ऋ. ८.६९.१२; अ. २०.९२.९; मै.सं. ४.७.८:१०४.१२; नि. ५.२७

(४) छिद्रवती लोहे की नली

सुषिलीका - एक पक्षी जो बिल बनाकर रहती है ।

'ऋक्षो जतूः सुषिलीका त इतर जननाम्'

वाज.सं. २४.३६; मै.सं. ३.१४.१७:१७६.४

सुष्विः - (१) उत्तम अभिषेक योग्य । दे. 'सौवश्व्य'

(२) उत्तम यत्नशील

'सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्दः'

ऋ. १.६१.१५ अ. २०.३५.१५

(३) ऐश्वर्य के लिए उद्योग करने वाला

'ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात्'

ऋ. ४.२४.२

(४) उत्तम ऐश्वर्योत्पादक राष्ट्र

'यद् वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र'

ऋ. ६.२३.२

सुष्वितर - (१) उत्तम दाता

'प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः'

ऋ. ७.१९.१; अ. २०.३७.१

(२) सुष्ठु अतिशयितम् ऐश्वर्यं यः सुनोति-दया.

(३) उत्तम ज्ञानैश्वर्यवान् पुरुष (४) ज्ञान के प्रति मार्ग में चलाने वाला-आचार्य ।

सुषुम्णः - (१) उत्तम सुखप्रद (२) सुख स्वप्न या निद्रा देने वाला चन्द्रमा

'सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः'

वाज.सं. १८.४०.;तै.सं. ३.४.७.१; मै.सं. २.१२.२: १४५.४; का.सं. १८.१४; श.ब्रा. ९.४.१.९; नि. २.६

सुषुमान् - सु + सु + मान् । उत्तम ज्ञान सामर्थ्यों से सम्पन्न अग्नि ।

'रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि'

ऋ. १०.३.१; साम. २.८९६

सुषुपाण - (१) मदिरा पाना में खूब मत्त, (२) निरन्तर सोने वाला, (३) असावधान

'अबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र'

ऋ. ४.१९.३

सुषुप्वान् - सोता हुआ-बीज, (२) जीवात्मा, (३) गर्भगत बालक

'सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे
सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम्'

ऋ. १.११७.५

(४) सुख से शयन करने वाला

'सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छत'

ऋ. १.१६१.१३

हे सुख से शयन करने वाले विद्यार्थियो, आप लोग उस परम ज्ञान के सम्बन्ध में सदा प्रश्न किया करो।

सुष्टुतिः - (१) सुन्दर स्तुति।
'स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च'
ऋ. ६.६३.८
दे. 'राका'
(२) स्तुति की समाप्ति। दे. 'तुञ्ज'

सुष्टुती - सुष्टुति' के तृतीया एक वचन का रूप।
दे. 'उक्थ्य'
अर्थ- सुन्दर स्तुति से

सुष्टुभ् - सु + स्तुभ् + क्विप् = सुष्टुभ् (१) जो द्रव्य, गुण और क्रिया अच्छी तरह
'स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः'
ऋ. १.६२.४
(२) उत्तम रीति से स्तुति करने योग्य
'मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः'
अ. २०.२.१.
(३) उत्तम रीति से स्तुति करने वाले मन्त्रों से युक्त (४) शत्रु को स्तम्भित करने वाला, (५) उत्कृष्ट रूप से स्तुति करने वाला
'स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन'
ऋ. ४.५०.५;अ. २०.८८.५;तै.सं. २.३.१४.४; मै.सं. ४.१२.१:१७८५; का.सं. १०.१३

सुषूः - (१) उत्तम जननी, माता (२) उत्तम रीति से ऐश्वर्य देने वाली या अभिषेक करने वाली प्रजा।
'सुषूरसूत माता
क्राणा यदानशे भगम्'
ऋ. ५.७.८

सूषूदति - सदा दिया करता है, 'सूद' धातु वेद में दान अर्थ में आया है।
'अग्नि ईळ्या सुषूदति'
ऋ. १.१०५.१४; १४२.११

सुषूमा - (१) उत्तम रीति से सुखपूर्वक सन्तान उत्पन्न करने वाली
'सुषूमा बहुसूवरी'
ऋ. २.३२.७;अ. ७.४६.२;तै.सं. ३.१.११.४;मै.सं. ४.१२.६: १९५.६; का.सं. १३.१६
(२) उत्तम उत्पादक अंगों वाली (३) राष्ट्र में जल तथा दूध का उत्तम प्रबन्ध करने वाली

सुषेचन - सुखपूर्वक सेचन करने वाला- दूध

स्तुषेय्य - (१) स्तुति करने योग्य
'स्तुषेय्यं पुरुवर्पसमृभ्वम्'
ऋ. १०.१२०.६
(२) स्तु + केय्य = स्तुषेय्य (ष् का आगम)। सायण के मत से 'स्तु + स्केय्य = 'स्तुषेय्य' हुआ है।
दे. 'आदर्षते'
मैं स्तुत्य बहुरूप वाले एवं अति दीप्ति या सर्वव्यापी इन्द्र या परमात्मा को...

सुषोमा - सु (सवनार्थक) + मनिन् = सुषोमन्।
(१) एक नदी का नाम जिसे सिन्धु कहते हैं।
'सुषोमा सिन्धु'
यदेषाम् अभिप्रसुवन्ति नद्य (इसे पाकर नदियां प्रवृद्ध होती है)। सिन्धु नदी में बहुत नदियां आकर मिलती हैं अतः इसका नाम 'सुषोमा' पड़ा।
दे. 'आर्जीकीया'
'आर्जीकीये श्रृणुह्या सुषोमया'
ऋ. १०.७५.५; तै.आ. १०.१.१३; नि. ९.२६
(२) उत्तम प्रेरणा वाली या उत्तम वीर्य वाली नाड़ी या वह नाड़ी जो अंगों में शक्ति प्रदान करती है।
(३) उत्तम ऐश्वर्य युक्त या उत्तम अन्न जल से समृद्ध भूमि, (४) सरल समभूमि वाला प्रदेश जिसमें सोमलता उत्पन्न होती है।
'सुषोमायामधि प्रियः'
ऋ. ८.६४.११

सुसत्य - सुषद्, सद्मा आश्रय
'सुसत्यमिद् गवामस्यसि प्रखुदसि'
अ. २०.१३५.४; शां.श्रौ.सू. १२.२३.४

सुसंकाशा - सुष्ठुशिक्षया सम्यक् शासिता कन्या-दया.
(सुन्दर शिक्षा से सम्यक् प्रकार से शासित कन्या)।
उत्तम रीति से सुशिक्षिता।
'सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषा'
ऋ. १.१२३.११
दोनों कुलों को मिलाने वाली तू (योषा) उत्तम रीति से सुशिक्षित होकर (सुसंकाशा) माता द्वारा अच्छी प्रकार स्नान, अनुलेप, अलंकार,

उत्तम शिक्षा द्वारा सुशोधित और सुशोभित की जा कर (मातृमृष्टा इव) ...।

सुसन्नता - सु + सम् + नम् + क्त + टाप्। खूब उत्तम रीति से झुकाई हुई
'तां सुसन्नतां कृत्वा'
अ. ३.२५.२

सुसंमृष्ट - शुभ उत्तम प्रकार से शुद्ध एव विचारवान्
'सुसंमृष्टासो वृषभस्य मूराः'
ऋ. ३.४३.६

सुसमुब्ध - (१) सुष्ठु सम्यक् ऋजुः -दया. (सूधा) (२) अच्छी प्रकार धन धान्य से सम्पन्न
'दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः'
ऋ. १.१५८.५
मुझे भृत्य राष्ट्र के नाशकारी शत्रुजन (दासाः) धनधान्य से परिपूर्ण मुझ राष्ट्र पति को नीचे गिराने का यत्न न करें।
अथवा,
इस अति उत्तम विनीत विद्यार्थी को गुरु अपने अधीन रखे (यद् ईम् सुसुमब्धम् दासाः अव अधुः)

सुसंरब्ध - उत्तम रीति से बना एवं गति शील प्रकाशमान सूर्य आदि
'यद्देवाः अदः सलिले
सुसंरब्धा अतिष्ठत'
ऋ. १०.७२.६

सुमर्तू - शरीर की एक नाड़ी जिसके योग से आत्मा देह के समस्त रसों को अपने अपने स्थानों पर भेजता है।
"सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या '
ऋ. १०.७५.६

सुसंशाः - उत्तम रीति से शासन करने वाला
'सुसंशासः पितरो मृडता नः'
अ. १८.३.१६

सुसस्या - उत्तम धान्य से युक्त कृषि
'सुसस्याः कृषीस्कृधि'
वाज.सं. ४.१०; वाज.सं. (का.) ४.४.३; श.ब्रा. ३.२.१.३०

सुसंदृश - (१) उत्तम समान रूप से सुन्दर दीखने वाला, (२) सब पदार्थों को ज्ञान दृष्टि से देखने वाला
'अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः
सुसन्दृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः'
ऋ. १.१४३.३
'सुसंदृशं सुप्रतीकं स्वञ्चम्'
ऋ. ७.१०.३
'सुसंदृशं त्वा वयं
मघवन् वन्दिषीमहि'
ऋ. १.८२.३; ८२.३; वाज.सं. ३.५२; श.ब्रा. २.६.१.३८

सुसंसत् - उत्तम राजसभा का स्वामी
'सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः'
ऋ. ७.९.३

सुसंपिष्टम् - (१) अच्छी तरह से चूर्ण हुआ (२) मेघ का विशेषण। दे. 'आशये'
'एतदस्या अनः शये
सुसंपिष्टं विपाश्या'
ऋ. ४.३०.११; नि. ११.४८
यह उषा का आश्रय भूत मेघ वायु से संचूर्णित होकर तथा सभी बन्धनों से रहित हो सोया हुआ है।
अथवा,
सायण के अनुसार यह इन्द्र संचूर्ण्य शकट विपाशा नदी के तट पर पड़ा हुआ है।

सुसंस्कृता - द्वि.व.। सुसंस्कृतौ 'सुन्दर, सुडौल बाहु'।
'उभा ते बाहू रण्या सुसंस्कृता'
ऋ. ८.७७.११; नि. ६.२२.
तेरे दोनों बाहु सुन्दर, सुडौल एवं रमणीय या रण के योग्य है।

सुष्यदाः - सुख पूर्वक बहने वाला जल
'सुष्यदा यूयं स्यन्दध्वम् '
अ. १९.४०.२

सुस्रक् - सुन्दर माला धारण करने वाला
'इन्द्रमावह सुस्रजम् '
अ. २०. १२८.१५; १५, शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.२.

सुस्रस् - अच्छी प्रकार से बहने वाली गण्डमाला
'आ सुस्रसः सुस्रसः'
अ. ७.७६.१

सुस्वरु - उत्तम तेजस्वी, उत्तम उपदेष्टा
'वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः'
ऋ. ५.४४.५

सुषुम्ना - उत्तम सुख से युक्त

'सुषुम्ना सिन्धुवाहसा'
ऋ. ५.७५.२; साम २.१०९४

सुस्नुषाः - (१) सुख प्रस्रवण करने वाली (२) आत्मा में सुख बहाने वाली प्रकृति
'सुपुत्र आदु सुस्नुषे'
ऋ. १०.८६.१३; अ. २०.१२६.१३; नि. १२.९
(३) उत्तम सुखपूर्वक विराजने वाली सुखदायिनी

सुसूत - (१) उत्तम रीति से उत्पन्न होने योग्य पुत्र, (२) उत्तमरीति से उत्पन्न होने वाला अग्नि, (३) उत्तम रीति से ऐर्वर्ययुक्त और अभिषिक्त राजा
'उत्तानायामजनयत् सुसूतम्'
ऋ. २.१०.३

सुसूद् - दृढ़ नश्वर शरीर से युक्त पुरुष
'यान् राये मर्तान् सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च'
ऋ. १.७३.८
हे ज्ञानवान् राजन् परमेश्वर, जिन उत्तम दृढ़ नश्वर देहों से युक्त पुरुषों को (सुखदः मर्तान्) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए (राये) एकत्र कर उनको संगठित करता है वे और हम तेरे अधीन रहकर ऐश्वर्यवान् हों (मघवानः स्याम)।

सुहनः - दुष्ट जनों की ताड़ना करना
'वज्रं यश्चक्रे सुहनाय दस्यवे'
ऋ. १०.१०५.७
(२) सुख से हनन करने योग्य
'अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि'
ऋ. ४.२२.९

सुहव - शुभरूप से पुकारने योग्य
'यत् ते नाम सुहवं'
अ. ७.२०.४; का.सं. १३.१६

सुहव्य - (१) उत्तम स्तुति योग्य (२) आश्रयणीय, आश्रययोग्य, (३) दानी (४) परमेश्वर या अग्नि
'तमित् सुहव्यमंगिरः सुदेवं सहसो यहो'
ऋ. १.७४.५
हे समान देहों के अवयवों में रस या प्राण के समान समस्त ब्राह्माण्ड के अवयव में चेतनता या शक्तिरूप से व्यापक (अंगिराः) हे शक्ति के रूप में प्रकट होने वाले प्रभो ! (सहसः यहो) विद्वान् लोग तुम्हें ही उत्तम स्तुति योग्य, उत्तम दानी, ज्ञान प्रकाशक और सब का द्रष्टा तथा उत्तम ज्ञान बल और आश्रय वाला बतलाते हैं।

सुहवा - (१) सुन्दर आह्वान वाली अमावास्या (२) आदरपूर्वक बुलाए जाने वाली स्त्री दे. 'जोहवीमि' 'सुवृत्'
'अस्मिन् यज्ञे सुहवां जोहवीमि'
अ. ७.४७.१
(३) उत्तम रीति से पति की आज्ञा में रहने वाली, (४) उत्तम ज्ञान से पूर्ण
'अश्वक्षमा सुहवा संभृतश्रीः'
अ. १९.४९.१
(५) शुभनाम और ख्याति वाली स्त्री
'ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत'
ऋ. ५.४६.७; अ. ७.४९.१; मै.सं. ४.३.१०:२१३.८; तै.ब्रा. ३.५. १२.१; नि. १२.४५
(६) द्वि.व.। सुखपूर्वक आहुत किए जाने वाले अग्नि और पर्जन्य। दे. 'इला'
'अस्मिन् हवे सुहवा सुष्टुतिं नः'
ऋ. ६.५२.१६
हे सुखपूर्वक आहुत किए जाने वाले अग्नि और पर्जन्यि, इस यज्ञ में (हवे) हमारी सुन्दर स्तुति आप सुनें।
(७) ए.व.। स्त्री। सुह्वाना (सुन्दर आह्वान् वाल, जिसका आह्वान् सुन्दर हो, आह्वान् प्रयोजन कारिणी)।
दे. 'राजा'
(८) सुन्दर आह्वानवाली राका, पूर्मिमा का विशेषण। दे. 'उक्थ्य'।
'राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे'
ऋ. २.३२.४
मैं सुन्दर आह्वान वाली पूर्णिमा को सुन्दर स्तुति से पुकारता हूँ।

सुहस्तः - (१) कल्याणहस्तः (जिसका हाथ अभ्यस्त हो, कुशल हो, (२) सुन्दर हाथों वाला (३) दुहने में जिसका हाथ सधा हो। दे. दोहत'
'सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्'
ऋ. १.१६४.२.६; अ. ७.७३.७; ९.१०.४; नि. ११.४३
और माध्यमिका वाक् रूपी धेनु को सुन्दर हाथ वाला (सुहस्तः) ग्वाला रूपी सविता (गोधुक्) दुहे।

सुहस्त्यः - सुन्दर हस्त क्रिया में कुशल

'अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यः'
ऋ. १.६४.१
जैसे बुद्धिमान् पुरुष मन से विचार कर और उत्तम हस्त क्रिया से कुशल पुरुष नाना कर्मो विद्वानों तथा हाथों द्वारा बनाने योग्य शिल्पों को (अपः) प्रकट करता है।

सुहस्ती – (१) सुन्दर हाथों वाला (२) ऋत्विक् का विशेषण। दे. गो'
'आ धावता सुहस्त्यः'
ऋ. ९.४६.४
ऐ सुन्दर हाथों वाले ऋत्विजो, आप शीघ्र आयें।

सुहार्त् – उत्तम हृदय वाला (good -hearted)
'यः सुहार्त तेन नः सह'
अ. २.७.५

सुहिरण्य – (१) सुन्दर हिरण्य या धन से युक्त –सा.। दे. 'असत्'।
'सुगुरसत् सुहिरण्य स्वश्वः'
ऋ. १.१२५.२; नि. ५.१९
(२) सुन्दर यश वाला–दया.

सुहिरण्ये – द्वि.व.। (१) उत्तम रीति से हितकर और रमणीय–स्त्रीपुरुष (२) दिन रात
'उषासा वां सुहिरण्ये सुशिल्पे'
वाज.सं २९.६; तै.सं. ५.१.११.२; मै.सं. ३.१६.२: १८४.९; का.सं. (अश्व.) ६.२

सुहुत – उत्तम आहुति
'अग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु'
अ. ६.७१.१, २; १०.९.२६

सुहुताद् – सुहुत + अद् + क्विम्।(१) उत्तम रीति से आहुति देने के बाद यज्ञ–शेष खाने वाला।
'आ यस्मिन् गावः सुहुताद ऊधनि'
ऋ. ९.७१.४

सुहूः – उत्तम रीति से आहुति देने वाला
'अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यः'
वाज.सं. १.३०; श.ब्रा. १.३.१.१९

सुहूति – (१) उत्तम रीति से अपने को देह में अर्पण करने वाला आत्मा (२) संसार यज्ञ में अपने को अर्पण करने वाला परमात्मा
'एकया च दशभिश्चा सुहूते'
अ. ७.४२.१
(२) अपने को योग द्वारा इष्ट देव में समर्पण करने वाला।

सूः – (१) यः 'सूते' (जो जन्म देता है। उत्पादक
'पुरुत्रा यदभवत् सूरहैभ्यः'
ऋ. १.१४६.५
(२) स्त्री। उत्पन्न करने वाली माता (३) पृथिवी
'उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीत्'
ऋ. १.३२.९
अन्तरिक्ष रूपी माता ऊपर और जलरूपी पुत्र नीचे हो गया।
(४) पुत्र और भृत्यादि को आज्ञा करने का सामर्थ्य।
'ज्ञात्रं च मे सूश्च मे'
वाज.सं. १८.७

स्यूः – सीने वाली सूई
'विष्णोः स्यूरसि'
वाज.सं. ५.२१; तै.सं. १.२.१३.३; ६.२.९४; मै.सं. १.२.९:१०; ३.८.७; का.सं. २.१०; २५.८; श.ब्रा. ३.५.३.२५

सूकर – (१) उत्तम किरणों वाला या उत्तम शोधन करने वाला सूर्य
'सूकरस्य विजिहीते मृगाय'
अ. १२.१.४८
(२) प्राणरूप वायु, (३) प्रागायाम का उत्तम अभ्यासी
'सूकरस्त्वा खनन् नसा'
अ. २.२७.२; ५.१४.१.
(४) यः सुष्ठु करोति उत्तम कार्य करने वाला, (५) उत्तम रीति से वंश करने योग्य, (६) उत्तम युद्ध कर्ता
'त्वं सूकरस्य दर्दृहि'
ऋ. ७.५५.४
(७) सूअर

सूक्तभाज् – वह देवता जिसका वर्णन (सूक्तभाक्) एक या अनेक सूक्तों में हो

सूक्तवाक् – उत्तम वाणी बोलने वाला
'ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः'
ऋ. ५.४९.५

सूक्तवाकः – (१) उत्तम सुवचनों का उपदेश
'सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि'
वाज.सं. २१.६१
(२) यज्ञ का सूक्त प्रयोक्ता

(३) उत्तम वचन का प्रयोग
'सूक्तवाकेनाशिषः'
वाज.सं. १९.२९
(४) सुखपूर्वक कहने योग्य वचन
'सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निम्'
ऋ. १०.८८.८

सूपस्थः उत्तम रीति से राष्ट्र में व्यवस्थित
'सूपस्था अद्य देवः'
वाज.सं. २१.६०

सूक्तोदि – जिसमें वेद सूक्त प्रमाण रूप में कहे जांय
'यज्ञस्यत्वा यज्ञपते सूक्तोकौ'
वाज.सं. ८.२५; तै.सं. १.४.४५.२; श.ब्रा. ४.४.५.२०.

सूची – षिव (सीना) + चट् + ङीष् = सूची (षिव् के इ का ऊ और टित् होने से ङीष्)। अर्थ–सुई । दे. 'उक्थ्य' 'सीव्यतु
'सीव्यत्वपः सूच्याऽच्छिद्यमानया'
ऋ. २.३२.४; अ. ७.४८.१; तै.सं. ३.३.११.५; मै.सं. ४.१२.६; १९५.१; का.सं. १३.१६; नि. ११.३१.
राका हमारी सन्तति रूपी वस्त्र की (अपः) अविच्छिन्न सुई से (अविच्छिद्यमानया सूच्या) सीए (सीव्यतु) ।
(२) ज्ञान को सूचित करने वाली ऋचा, (३) ज्ञान और साधनों की सूचना देने वाली
(४) नाना देशों को मिलाकर सन्धियों से एक कर देने वाली वाणी
'सूचीभिः शम्यन्तु त्वा'
वाज.सं. २३.३३–३६;

सूचीक – सूई के समान कांटे से काटने वाला जीव
'सूचीका ये प्रकङ्कताः'
ऋ. १.१९१.७

सूचीमुख – सुई के समान तीक्ष्ण चोंच वाला त्रिषन्धि नामक बाण
'अयोमुखाः सूचीमुखाः'
अ. ११.१०.३

स्थूणम् – रथ का ढांचा । रथ के विशेषण के रूप में 'अयः स्थूण' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है–वह रथ जिसका ढांचा लोहे का निर्मित हो ।
'हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टौ अयः स्थूण मुदिता सूर्यस्य'
ऋ. ५.६२.८
हे मित्र और वरुण, तुम दोनों उषा के उच्छेद होने पर तथा सूर्य के उदय होने पर तथा सूर्य के बने स्थूण वाले रथ पर सवार होओ (२) स्तम्भ, खम्भा ।

स्थूण – (१) मुख्य कीलक, प्रधान स्तम्भ
'हिरण्य निर्णिगयो अस्य स्थूणा'
ऋ. ५.६२.७
(२) स्थिर टेक, (३) व्यवस्था की प्रतिज्ञा
'एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु ते'
ऋ. १०.१८.१३; तै. आ. ६.७.१

स्थूणाध्रुना – मुख्य सम्स्भ, सर्वाश्रम
'वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणा'
ऋ. ८.१७.१४; साम. १.२७५; शां.गृ.सू. ३.४.८.

सूत – (१) दूसरे से प्रेरित होने वाला (२) नाटक के पात्रों का प्रेरक पुरुष (३) क्षत्रियात् ब्राह्मण्यां जातम् इति दयानन्द ।
'क्षत्रिय पिता और ब्राह्मणी मात्र से उत्पन्न पुत्र) ।
'नृत्ताय सूतम्'
वाज.सं. ३०.६
(४) रथवाहक
'नमः सूतायाहन्त्यै'
वाज.सं. १६.१८

सूतवशा – (१) वशा गौ की एक जाति । व्रह भूभाग जिसमें अभी अभी स्वतन्त्र प्रजातन्त्र शासन उत्पन्न हुआ हो ।
'या च सूतवशा वशा'
अ. १२.४.४४

सूतवै – सुख पूर्वक पुरुष करने के लिए
'वि पर्वाणि जिहतां सूत वा उ'
अ. १.११.१

सूति – बाल प्रसव कार्य
'वषट् ते पूषन्नस्मिन सूतौ'
अ. १.११.१

सूत्रा – जन्म देने वाली नाड़ी सूत्री
'नदी सूत्री वर्वस्य पतय'
अ. ९.७.१४

सूतुम् – सन्तान के रूप में
'अनु सूतुं सवितवे'

अ. ६.१७.१-४

सूद - (१) दान देना । दे. सुसूदति '

'अग्निर्हव्या सुषूदति'

ऋ. १.१४२.११

(२) सं. । हिंसाकारी शस्त्र

'च्यवानः सूदैरमिमीत वेदिम् '

ऋ. १०.६१.२

(३) धा. । बहाना, अधिक मात्रा में उत्पन्न करना,प्राप्त करना ।

'गावो न हव्या सुषूदिम'

ऋ. १.१८७.११

(४) प्रवाहित करना

'नराशंसः सुषूदति'

ऋ. ५.५.२

(५) जल

सूददोहाः - (१) जल प्रदान करने वाला कूप, (२) मेघ

'ता अस्य सूददोहसः
सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।'

ऋ. ८.६९.३; वाज.सं. १२.५५; तै.सं. ४.२.४.४; ५.५.६.३; मै.सं. २.८.१:१०६.५; ३..२.८: २८.१४; का.सं. १६.१९, श.ब्रा. ८.७.३.२१; तै.ब्रा. ३.११.६.२.

सूद्या - झरने का जल

'सूद्याभ्यः स्वाहा'

वाज.सं. २२.२५; तै.सं. ७.४.१३.१; का.सं. (अश्व.) ४.२.

सूदाः - सु + उदाः । (१) वर्षशील मेघ, (२) उत्तम करप्रद प्रजाएं

'अपीप्रयन्त धेनवो न सूदाः'

ऋ. ७.३६.३

सून् - सुतराम् ऊनयति ।

अनृतं यत् कर्म तत् सून् (मिथ्या को नष्ट करने वाला कर्म) ।

सूनर - (१) उत्तम पुरुषों या नायकों से युक्त, (२) जिससे सुन्दर नर हो । ऐश्वर्य का विशेषण ।

'यो वाधते ददाति सूनरं वसु'

ऋ. १.४०.४

जो विद्वान् पुरुष को उत्तम पुरुषों या नायकों से युक्त या उत्तम पुरुषों को उत्पन्न करने वाला-ऐश्वर्य होता है ।

'वि दाशुषे भजति सूनरं वसु'

ऋ. ५३४.७

सूनरी - (१) या सुष्ठु नयति (अच्छी तरह प्राप्त कराने वाली) (२) उत्तम कार्यों में प्रवृत्त करने वाली उषा का विशेषण ।

'आ घा योषेव सूनरी
उषा याति प्रभुञ्चती'

ऋ. १.४८.५

निश्चय ही (घा) उषा स्त्री के समान (योषा इव) उत्तम कार्यों में प्रवृत्त कराने वाली है ।

(सूनरी) वह उत्तम भोग प्रदान करती हुई (प्रभुञ्चती) अर्थात् पति और सन्ताओं को व्रत नियमादि का पालन कराती हुई प्राप्त होती है ।

(३) उत्तम शरीर रथ की नेत्री चिति शक्ति ।

'सुमन्मा वस्वी रन्ती सुनरी'

साम. २.१००४, जै.ब्रा. २.१४४

(४) उत्तम नायिका (५) विदुषी स्त्री (६) उषा

'ज्योतिष्कृणोति सूनरी'

ऋ. ७.८१.१

सूनाः - (१) स्नान करने के तीर्थ आदि स्थान, (२) भीतरी विचारों को बाहर प्रेरित करना 'सूना' है ।

'अङ्काः सूनाः परि परिभूषन्त्यश्वम् '

ऋ. १.१६२.१३; वाज.सं. २५.३६; तै.सं. ४.६.९.१; मै.सं. ३.१६. १:१८२.५; का.सं. (अश्व.) ६.४.

(३) हिंसा-दया. ।

(४) हल की फाली, (५) अन्नोत्पादक क्रिया, (६) उत्पादक क्रिया

'मांसमेकः पिंशति सूनयामृतम् '

ऋ. १.१६१.१०

एक पुरुष हल की फाली से या अन्नोत्पादक क्रिया से प्राप्त मन को उत्तम लगने वाले अन्नादि को पैदा करता और रुचिर बनाता है ।

अथवा,

गुरु की प्रेरणा या उपदेश क्रिया से मनन योग्य ज्ञान को . ..।

अथवा,

उत्पाद क्रिया द्वारा प्राप्त मांस मय शरीर को रूपवान् बनाता है ।

(४) परब्रह्म की ओर प्रेरणा करने वाली तीव्र

बुद्धि ।

'असिं सूनां नवं चरुम् '

ऋ. १०.८६.१८; अ. २०.१२६.१८

(८) स्नान करने के तीर्थ स्थान (९) आभ्यन्तर विचार को बाहर प्रकट करना-'सून' है ।

(१०) इन्द्रियों को सन्मार्ग में प्रेरित करने वाली बुद्धि शक्ति

सूनु - (पु.) पुत्र । सू (उत्पन्न करना धातु से सम्पन्न) ।

'अवस्युरह्वे कुशिरुस्य सूनुः '

ऋ. ३.३३.५; नि. २.२५

मैं कुशिक पुत्र अपनी रक्षा का इच्छुक पुकारता हूं ।

अंग्रेजी का पुत्र वाचक son शब्द सून से ही बना है ।

(२) प्रेरक, उत्पादक परमात्मा

'तमु ष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः '

अ. ६.१.२.

'स नः पितेव सूनवे

अग्ने सूपायनो भव । '

ऋ. १.१.९; वाज.सं. ३.२४; तै.सं. १.५.६.२; मै.सं. १.५.३:६९.७; का.सं. ७.१,८; श.ब्रा. २.३.४.३०.

हे अग्ने ! या परमेश्वर ! तू हमारे पुत्र के लिए पिता की तरह उपहार या उपचार लाने वाला हो ।

सूनुमत - (१) पुत्र पौत्रों से युक्त , (२) उत्तम शासन से युक्त

'शिशीहि न सूनुमतः '

ऋ. ३.२४.५; तै.सं. २.२.१२.६; मै.सं. ४.१२.२: १८०.६; का.सं. ६.१०

सूनृत - (१) सुतराम् अनयति अनृतं यत् तत् सून् (जो कर्म मिथ्या को नष्ट कर डालता है वह सूनृत है) । सून् + ऋत = सूनृत् । मिथ्या को नष्ट तथा सत्य को सेवन करने वाली यथार्थ वाणी ।

'चोदयित्री सूनृतानाम्'

ऋ. १.३.११; वाज.सं. २०.८५; तै.सं. १.४.११.२

(२) अन्न

'प्र सूनृता दिशमान ऋतेन'

ऋ. ३.३१.२१

सूनृता - (१) उत्तम शुभ वाणी

'सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती '

ऋ. १.११३.१२

उत्तम सुखों को देने वाली, उत्तम शुभवाणियों का उच्चारण करती हुई स्त्री....

(२) उत्तम शब्दमयी वाणी (३) विराट् के चार विभाग है- ऊर्जा, स्वधा, सूनृता और इरावती । उन्हीं में एक सूनृता है ।

'सूनृत एहि '

अ. ८.१०.११; मै.सं. ४.२.५: २६.१४; ४.२.६: २७.११; शां.श्रौ.सू. २.१२.३, आप.श्रौ.सू. ४.१०.४

'वैश्वदेवीं सूनृतामारभध्वम् '

(सत्य वाणी बोलना आरम्भ करो) ।

सूनृता धेनुः - उत्तम सत्यमयी वाणी

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता '

ऋ. ८.१४.३; अ. २०.२७.३; साम. २.११८६.

सूनृताना नेत्री - उत्तम धन, ज्ञान, यश और ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाली उषा । दे. 'भास्वती'

सूनृतावत् - सत्यभाषी

'सूनृतावन्तः सुभगाः '

अ. ७.६०.६

सूनृतावती - (१) प्रशंसनीय बुद्धि से युक्त ।

'या वां कशा मधुमती

अश्विना सुनृतावती '

ऋ. १.२२.३; वाज.सं. ७.११; तै.सं. १.४.६.१; मै.सं. १.३.८:३३.२; का.सं. ४.२; श.ब्रा. ४.१.५.१७

हे नाना विद्याओं कों व्यापने वाले अध्यापक और शिष्य, तुम दोनों की जो मधुर ऋग्वेदादि ज्ञान यज्ञ उत्तम सत्य ज्ञान से पूर्ण (कशा अर्थों का प्रकाश करने वाली वाणी है) ।

(२) अनृशंस्य कर्मों वाली,

(३) भक्तों की स्तुतियों से युक्त उषा

(४) उत्तम ज्ञान वाणी को बोलने वाली

(५) विवाह में नववधू

'रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति '

ऋ. १.९२.१४; साम. २.१०८२

भक्तों की स्तुति से युक्त उषा या मधुरालापिनी नववधू । तू हमें ऐश्वर्य सम्पन्न गृह सुख विविध प्रकार से प्रदान कर ।

(६) उत्तम वेद वाणी से युक्त

'अश्वावती गोमती सूनृतावती '

अ. ३.१२.२; शां.गृ.सू. ३.३.१; पा.गृ.सू. २.१७.९:

३.४.४, हि.गृ.सू. १.२७.३

(७) उत्तम ऋतज्ञान और धन की स्वामिनी

'चोदयित्री मघोनः सूनृतावती'

ऋ. ७.८१.६

(८) उषा या विशोका प्रज्ञा का विशेषण,

(९), उत्तम ऋत अर्थात् त्रिकाल बाधित ज्ञान से सम्पन्न।

(१०) सूनृता अर्थात् वेदवाणी का दर्शन, मनन और निविध्यास करने वाली

सूपसर्पणा – (१) उत्तम रीति से उपसर्पण करने वाली, शरण में आने वाली।

'सूपायनास्मै भव सूपसर्पणा'

अ. १८.३.५०

स्तूप – स्त्यै (शब्द करना, संघात, एकचित्त होना) + य = स्तूप (धातु का स्तू) अर्थ- संघात स्तूयः स्त्यायतेः संघातः। दे. 'अवस्'

अथवा

– स्त्यै + कूपन् = स्त्यूप = स्तूप।

(२) तेजः समूह। दे. 'अबुध्न

'अबुध्ने राजा वरुणो वनस्य

ऊर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः'

ऋ. १.२४.७

सूखायन – सु + उप + अयन = सूपायन (१) सुन्दर उपचार या उपहार लाने वाला। दे. 'अस्ति' 'सूनः'।

'अग्ने सूपायनो भव'

ऋ. १.१.९; वाज.सं. ३.२४; तै.सं. १.५.६.२; मै.सं. १.५.३:६९.७; का.सं. ७.१; ८; श.ब्रा. २.३.४.३०

हे अग्नि या परमात्मा, तू सुन्दर उपचार या उपहार लाने वाला हो।

(२) सम्यक् प्रकार से उपचरणीय या उपगमनीय, (३) सुखदायक – दया। दे. 'सचस्व'।

सूभर्वः – सु + हृञ् + वन् = सूभर्वः अथवा सु + भर्व + घञ् = सूभर्व। निघण्टु में भर्व धातु भक्षणार्थक है।

(१) सुन्दर –सा.

(२) धनापहारक या प्रजाभक्षक शत्रुराजा –ज.दे.श.। दे. 'आजि'।

'तेन सूभर्वं शतवत्सहस्रम्

गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय'

ऋ. १०.१०२.५; नि. ९.२३

उस वृषभ से सुन्दर सौ गुना सहस्र अर्थात् एक लक्ष गाएं मैं मुद्गल ने संग्राम में जीता –सा.। उस सांढ के द्वारा सात्विकान्त भोजी जितेन्द्रिय निरभिमान या हर्ष शोक में समचित्त राजा (मुद्गलः) युद्ध में (प्रधने) धनापहारक या प्रजाभक्षक शत्रुराजा को (सूभर्वम्) तथा गाय आदि अनेक उत्तमोत्तम पदार्थों को जीतता है।

(३) शोभन भोग,

(४) धनापहारक

(५) प्रजाभक्षक दया.

(६) उत्तम सुखजनक फल या अन्न का भोक्ता।

'ते सूभर्वा वृषभाः प्रेराविषुः'

ऋ. १०.९४.३

(७) सुख से मरण धारण करने योग्य

सूमय – (१) उत्तम सुख कारक

'तुविक्षं ते सुकृतं सूमयं धनुः'

ऋ. ८.७७.११

(२) सुख + मयट् = सूमय (ख का लोप, उ का ऊ)। सुन्दर सुखों को करने वाला, धनुष का विशेषण। दे. 'उभा,' 'सुकृतम्'।

तेरा धनुष बहुबाण वर्षी (तुविक्षुम्) सुन्दर कर्मों का करने वाला (सुकृतम्) तथा सुखकर है (सूमयम्)।

स्यूम गभस्ति – (१) सुखकारी किरणों वाला सूर्य, (२) सुखकारी शासन व्यवस्था वाला राजा, (३) सुखकारी साधनों से युक्त आत्मा,। दे. 'दीर्घाप्सा'

(४) सुखकारी रश्मियों या रासों से युक्त (५) सुप्रबद्ध रथ

'स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैः'

ऋ. ७.७१.३

स्यूमगृभ् – एक दूसरे से सम्बद्ध दृढ़ सैन्य को वश में करने वाला

'स्यूमगृभे दुधयेऽर्वते च'

ऋ. ६.३६.२

स्यूमना – (१) एक दूसरे से सम्बद्ध और उत्तम ज्ञानों से ओतप्रोत वाणी, (२) सुखजनक वाणी

'स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः'

ऋ. १.११३.१७

वह्नि या ज्ञानों को धारण करने वाला विद्वान्

या विवाहने वाला पुरुष (वह्निः) एक दूसरे से सम्बद्ध उत्तम ज्ञानों से ओतप्रोत वेदवाणी या सुखजनक वाणी बोला करें ।

स्यूमन्यु - (१) शीघ्र गमनेच्छुक -दया. ।
(२) सुखकारक -ज.दे.श. । दे. 'स्यूमन्यू'

स्यूमन्यू - द्वि.व.। ए.व. में 'स्युमन्यु' । (१) शीघ्र गमनेच्छुक घोड़े (२) सुखकारक
'स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा'
ऋ. १.१७४.५

स्यूमरश्मि - (१) जिसकी रश्मियां या न्याय दीप्तियां संयुक्त हो ।-दया .
(२) किरणों से ओतप्रोत सूर्य,
(३) शासन मर्यादा को बांधने वाला शासक पुरुष, । दे. 'शादी' ।
(४) रश्मियों से युक्त तेजस्वी
'स्यूमरश्मावृजूनसि'
ऋ. ८.५२.२

स्यूमा - (१) सूत उत्पन्न करने वाली चरखे की तकली, (२) सन्तान रूप सूत्र उत्पन्न करने वाली स्त्री
'अव स्यूमेव चिन्वती मघोनी'
ऋ. ३.६१.४

सूयवस् - (१) उत्तम अन्नादि के साथ (सूयवाः) लेकर चलने वाला, पथिक (२) उत्तम अन्न आदि भोग्य पदार्थों का उपभोग करने वाला
'सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था'
ऋ. १.१९०.६
(३) उत्तम मन आदि अन्नों और ओषधियों से युक्त देश
'अभि सूयवसं नय'
ऋ. १.४२.८
हमें यवादि सम्पन्न देश में पहुंचा ।

सूयवस - (१) बल
'क्षामेवोर्जा सूयवसात् सचेथे'
ऋ. १०.१०६.१०

सूयवसाद् - (१) सु + यवस + अद् + क्विप् । सुन्दर यवस नामक तृण को खाने वाली गौ, दे. 'अघ्न्या'
'सूयवसाद् भगवती हि भूयाः'
ऋ. १.१६४.४०; अ. ७.७३.११; ९.१०.२०; ऐ.ब्रा. १.२२.१३; ५.२७.६; ७.३.३; कौ.ब्रा. ८.७; आश्व.श्रौ.सू. ३.११.४; ४.७.४; आप.श्रौ.सू. ९.५.४; नि. ११.४४
हे गौ या माध्यमिका वाक् ! तू सुन्दर यवस नामक घास खाने वाली होकर प्रभूत क्षीर वाली हो ।
(२) विट् वैयवः, राष्ट्रं यवः
तै.ब्रा. ३.९०.७८
उत्तम यव का भूसा खाने वाली गौ
(३) कभी जुदा न होने वाले पुण्यों का भोग करने वाली चितिशक्ति
(४) राष्ट्र की आय खाने वाली शासनशक्ति

सूयवसिनी - (१) उत्तम अन्न, और और से युक्त पृथ्वी
'सूयवसिनी मनुषे दशस्या'
ऋ. ७.९९.३; वाज.सं. ५.१६; श.ब्रा. ३.५.३.१४
(२) सु + यव + सनी = उत्तम अन्न वाली या अन्न देने वाली द्यावापृथिवी

सूयवस्यू - द्वि.व.। (१)उत्तम रीति से यवस् अर्थात् चारा चाहने वाली दो गौएं
(२) सुखदायक विवेक और शत्रुच्छेद चाहने वाली
'यस्य गावावरुषा सूयवस्यू'
ऋ. ६.२७.७

सूरः - शु (गत्यर्थक) + कन् = शूर = सूर । सूर भी इसी अर्थ में प्रयुक्त है ।
(ख) सूर (प्रेरणार्थक) + क्रन् = शूर । अर्थ है- (१) प्रेरक परमात्मा । दे. 'उत्' 'सूरश्चक्रं हिरण्ययम्'
प्रेरक परमात्मा आदित्य के लिए काल रूपी सुवर्णमय चक्के को जलाता है ।(२) सूर्य, (३) वीर सूर्य सदा चलता हुआ दीख पड़ता है। उसी प्रकार वीर भी शत्रुओं की ओर बढ़ जाता है ।
'सूरसूर्यार्यमादित्य
द्वादशात्मदिवाकरः'
-अमरकोष
शरण शब्द का भी आदित्य अर्थ में प्रयोग हुआ है। दे. 'अज्म' 'शूर
'सूर्य' अर्थ में प्रयोग -
'यमेन दत्तं त्रित एनमायुनक्
इन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।

गन्धर्वे अस्य रशनामगृभ्णात्
सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ।'
ऋ. १.१६३.२; वाज.सं. २९.१३; तै.सं. ४.६.७.१; का.सं. ४०.६;
सब लोक नियामक यम या अग्नि से दिए हुए इस अश्व को (यमेन दत्तम् एनम्) वायु ने (त्रितः) रथ में जोता (आ युनक्) तथा उस अश्व पर (एणम्) इन्द्र सवार हुए (प्रथम अध्यतिष्ठत्) । इस अश्व की रशना अर्थात् लगाम को (अस्य रशनाम्) गन्धर्व राज सोम ने पकड़ा (गन्धर्वः अगृभ्णात्) । इस लक्षण वाले अश्व को सूर्य से वसुओं ने बनाया (सूरात् अश्वं वसवो निरतष्ट) ।
(४) रोगी को तड़पाने वाला-ज्वर
(५) सबको प्रेरणा करने वाला परमात्मा, सूर्य ।
'सूरो रथस्य नप्त्यः'
ऋ. १.५०.९; अ. १३.२.२४; २०.४७.२१; का.सं. ९.१९

सूरचक्षसः, सूरचक्षस् - (१) सूर्याख्यानाः (सूर्य के समान) (२) ऋभुओं का विशेषण, (३) सूर्य-समान दर्शन वाले, (४) सूर्य समान दर्शन वाले-सा . (५) परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार चलने वाले
'सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः'
ऋ. १.११०.४; नि. ११.१६
सुधन्वा के पुत्र (सौधन्वना)-सूर्य समान दर्शन वाले (सूरचक्षसः) ऋभु लोग (ऋभवः) संवत्सर के वसन्तादि ऋतुओं में (संवत्सरे) अग्निष्टोमादि अनुष्ठेय कर्मों से (धीतिभिः) संयुक्त हुए (समपृच्यन्त)-सा. ।
ये सूर्य समान यथार्थवादी या परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार चलने वाले (सौधन्वनाः सूर चक्षसः) आर्य व्यापारी लोग (ऋभवः) वर्षभर (संवत्सरे) व्यापारिक कर्मों में संयुक्त रहते हैं (धीतिभिः सम पृच्यन्त) ।
(६) सूर्य के प्रकाश से प्रेरित (७) सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् को अपनी आंखों के समान मार्ग दर्शक बनाने वाले ।
'अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसः'
ऋ. १.८९.७; वाज.सं. २५.२०, का.सं. ३५.१; आप.श्रौ.सू. १४.१६.१

स्थूर - स्थूल चूतड़
'आक्रमणं स्थूराभ्याम्'
वाज.सं. २५.३;६, तै.सं. ५.७.१५.१; मै.सं. ३.१५.३: १७८.९ ; ३.१५.६: १७९.९; का.सं. (अश्व.) १३.५

सूर्त - सु + ईर् (गत्यर्थक) + क्त = सूर्त (वेद में इट् का अभाव हैं । ई का पूर्व सवर्ण उ का दीर्घ) ।
अर्थ है- (१) सुगत, (२) जंगम-सा.
(३) सुसमीरित-यास्क
(४) सुविस्तीर्ण । दे. 'असूर्त' ।
'असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते
ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ।'
ऋ. १०.८२.४; वाज.सं. १७.२८; नि. ६.१५
जिसने सुविस्तृत निश्चित रूप से संस्थित अन्तरिक्ष में (सूर्ते निषत्ते रजसि) इन जीवों की रचना की ।

सूर्य - (क) सृ + क्यप् = सूर्य (निपातन से) (ख) सु (प्रेरणार्थक) + कयप् = सूर्य (ग) सु + ईर् + क्यप् = सूर्य । सुःधातु प्रेरणार्थक है । दुर्ग ने यहां इसे प्रसवार्थक माना है । (घ) सू (सवन करना) + ईर् + क्यप् = सूर्य ।
अर्थ - (१) सृष्टि कर्त्ता सूर्य
ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन् '
ऋ. १०.८८.६; नि. ७.२७
(२) उदय कालीन सूर्य
(३) मेघ ।
'संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत्'
ऋ. १०.४३.५; अ. २०.१७.५
जब (यत्) इन्द्र (मघवा) सम्यक् प्रकार से वृष्टि देने वाले (संवर्गम्) मेघ को (सूर्यम्) जीतता है (जयत्) । - दुर्ग
दुर्ग ने ही यहां 'सूर्य' का अर्थ मेघ माना है । सूर्य भी वृष्टि देता है ।
'संवर्ग' का अर्थ आर्यसमाजी विद्वानों के अनुसार, 'दुर्गुणों को हटाने वाला तेज है। दे. 'संवर्ग' (४) उदयकालीन आदित्य सूर्य है ।
'सरति अन्तरिक्षे, सुवति प्रेरयति जनान् कर्मसु, सीर्यते प्रेर्यते त्रितेन वायुना इतिवा सूर्यः' ।
(अन्तरिक्ष में सरण करने से जनों को कर्मों में लगाने से या त्रित वायु से प्रेरित होने से यह सूर्य है ।)

(५) सबका प्रेरक उत्पादक सूर्य, प्रभु
'ज्योतिष्कृदसि सूर्य '
ऋ. १.५०.४; अ. १३.२.१९; २०.४७.१६; आ.सं. ५.९; वाज.सं. ३३.३६; तै.सं. १.४.३१.१; मै.सं. ४.१०.६: १५८.१२ का.सं. १०.१३; तै.आ. ३.१६.१
(६) दक्षिण नासिका का प्राण जिसे अमृत कहते हैं, दक्षिण प्राण
'सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके'
अ. ८.१.१.
'य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिवि'
ऋ. १०.६२.३

सूर्यत्वक् - (१) सूर्य के समान कान्ति वाली कन्या
'अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम्'
अ. १४.१.४१.
(२) सूर्य के समान किरणों वाला (३) शरीर भोक्ता आत्मा को त्वचा या देह के समान सुरक्षित रखने वाला
तेन नासत्या गतम् '
ऋ. १.४७.९; ८.२२.५

सूर्यत्वचः - ब.व.। 'सूर्यत्वक्' ए व.का रूप है। (१) सूर्य के समान त्वचा वाले उज्ज्वल पुरुष ।
(२) मरुद्गण
'कवयः सूर्यत्वचः'
ऋ. ७.५९.११; मै.सं. ४.१०.३:१५०.६;

सूर्यत्वचाः (सूर्यत्वचस्) - सूर्य के समान उज्ज्वल मरुत्
'मरुतः सूर्यत्वचसः '
अ. १.२०.३; का.सं. २०.१५; तै.आ. १.४.३
(२) सूर्य के दीप्तिमान आवरण के समान उज्ज्वल आवरण वाला तेजस्वी
'सूर्यत्वचसस्थ राष्ट्रदाः'
वाज.सं. १०.४; श.ब्रा. ५.३.४.१२

सूर्यतेजाः (सूर्यतेजस्) - सूर्य के समान तेजस्वी
'द्यौ संशितः सूर्यतेजाः'
अ. १०.५.२७

सूर्यपत्नी - द्वि.व.। सूर्य की पत्नी रूप । सायं प्रातः रूप दोनों उषाएं ।
'सूर्यपत्नी संचरतः प्रजानती'
अ. ८.९.१२

सूर्यरश्मि - (१) सविता, परमेश्वर जिसके सूर्य आदि रश्मिवत् हैं ।
'सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात् '
ऋ. १०.१३९.१; वाज.सं. १७.५८; तै.सं. ४.६.३.३; ५.४.६.३; शा.ब्रा. ९.२.३.१२.
(२) सूर्य की रश्मियों से प्रदीप्त होने वाला चन्द्रमा
'सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः'
वाज.सं. १८.४०; मै.सं. २.१२.२:१४५.४; का.सं. १८.१४; श.ब्रा. ९.४.१.९; नि. २.६.

सूर्यवर्चाः(सूर्यवर्चस्) - सूर्य के समान तेज वाला
'सूर्यवर्चसस्थ राष्ट्रदाः'
वाज.सं. १०.४; श.ब्रा. ५.३.४.१३

सूर्यश्वित् - सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष ।
'पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः'
ऋ. १०.९४.५; का.सं. ३५.१४

सूर्यस्य आवृत - सूर्य का व्रत
'सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते'
अ. १०.५.३७; वाज.सं. २.२६; २७; का.सं० ५.५; ३२.५; श.ब्रा. १.९.३.१७
'अष्टौमासान् यथादित्यः
तोयं हरति रश्मिभिः ।
तथा हरेत् करं राष्ट्रात्
नित्यमर्कव्रतं हितत् ।'
- मनुस्मृति

सूर्यस्य जनिता - (१) सूर्य का उत्पादक परमेश्वर -इन्द्र ।
(२) सूर्य तुल्य व्यक्तित्व का उत्पादक ।
'क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य'
ऋ. ३.४९.४

सूर्यस्य दुहिता - (१) सूर्य की दुहिता-उषा, (२) प्रकाशक तेजस्वी पुरुष की वाणी ।
'आ सूर्यस्य दुहिता ततान
श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम् '
ऋ. ३.५३.१५

सूर्यस्य सातिः - (१) सूर्य की प्राप्ति, (२) सूर्य के समान तेज की प्राप्ति (३) सूर्य अर्थात् दक्षिण नासागत प्राण की प्राप्ति ।
'तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ'
ऋ. ७.३०.२; कौ.ब्रा. २५.२

सूर्व्य - सु + उर्वी + यत् । उत्तम भूमियों का स्वामी

'नम ऊर्व्याय च सूर्व्याय च'
वाज.सं. १६.४५

स्थूर – (१) स्थूरः समाश्रित मात्रो महान् (स्थूल पर रथों में समस्त तन्मात्राएं समाश्रित होती हैं अतःवह स्थूर है)। (२) स्थूल, (३) सांसारिक स्थूल धन।
'धा रत्नं महिस्थूरं बृहन्तम्'
ऋ. ६.१९.१०
महान् स्थूल एवं बृहत् रमणीय धन हमें दे।
पुनः-
'स्थूरं राधः शताश्वं
कुरङ्गस्य दिविष्टिषु
राजस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु
तुर्वशेष्वमन्महि'
ऋ. ८.४.१९
दीप्त एवं महान् (त्वेषस्य) सुन्दर धनयुक्त कुरंग नामक राजा की मनुष्यों के लिए (तुर्वशेषु) दानरूपी स्वर्ग प्राप्त करने वाली वाली दान क्रियाओं में (रातिषु दिविष्टिषु) हम लोगों ने स्थूल सौ अश्वों से युक्त (शताश्वम्) धन (राधस्) पाया (अमन्महि)।
अन्य अर्थ – शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले तेजस्वी और सौभाग्यवान् राजा के (कुरङ्गस्य त्वेषस्य सुभगस्य राज्ञः) तेजस्विता तथा प्रसन्नता प्राप्त करने वाले दोनों में से (दिविष्टिषु रातिषु) प्रजाजनों में दिए गए प्रचुर पराक्रम धन को (तुर्वशेषु शताश्वं राधः) हम बड़ा दान समझते हैं (स्थूरं अमन्महि)।

स्फूर्जयन् – तडपता हुआ
'तमर्चिषा स्फूर्जयन् जातवेदः'
ऋ. १०.८७.११; अ. ८.३.११

सूर्या – (१) उषा, (२) सूर्य की लड़की, कान्तिमती उत्तम ऐश्वर्यवाली सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ स्त्री।
'आ यद्वां सूर्या रथम्'
ऋ. ५.७३.५
'आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकम्'
ऋ. १०.८५.२०; अ. १४.१.६१; नि. १२.८
(३) विद्वानों के हित की वाणी
'यःसूर्यां वहति वन्धुरायुः'
ऋ. ४.४४.१; अ. २०.१४३.१
(४) संसार को उत्पन्न करने वाली जगदम्बा शक्ति
'सूर्यायै देवेभ्यः'
ऋ. १०.८५.४; अ. १४.२.४६
(५) उत्तम समान उत्पन्न करने में समर्थ नवयुवती वधू
'यदयात् सूर्या पतिम्'
ऋ. १०.८५.७

सूर्याः – ब.व.। (१) आदित्य के समान तेजस्वी, (२) ज्ञान के भण्डार आदित्य योगी
'कण्वा इव भृगवः सूर्या इव'
ऋ. ८.३.१६; अ. २०.१०.१; ५९.२; साम. २.७.१३; मै.सं. १.३.३९; ४६.७; आप.श्रौ.सू. १३.२१.३

सूर्यामासा – (१) सूर्य और चन्द्रमा, (२) दिन और रात
'सूर्यामासा मिथ उच्चरातः'
ऋ. १०.६८.१०
'सूर्यामासा दृशे कम्'
ऋ. ८.९४.२
'सूर्यामासयोरक्षितम्'
अ. ३.२९.५

सूर्यावसू – द्वि.व.। (१) अश्विद्वय, (२) सूर्य के समान तेजस्वी गुरु जन, (३) विद्या-प्रकाशक गुरुओं के अधीन ब्रह्मचर्य पूर्वक रहने वाले ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणी, (४) सूर्य और सूर्या के समान पतिपत्नीवत् बसने वाले वरवधू (५) सूर्यवत् तपस्या का अभ्यास करने वाले
'अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः'
ऋ. ७.६८.३

सूरिः– (१) सूर्य
'विश्लोक एति पथ्येव सूरिः'
अ. १८.३.३९
(२) विद्वान्
'अधा सूरिभ्यः सुदिना व्यच्छान्'
ऋ. ७.१८.२१
और उन विद्वानों के सुदिन आते हैं।
और उन विद्वानों के साथ मित्रता होने पर उत्तम दिन बिताते हैं। ('व्युच्छान्')।
(३) 'स्वृ' शब्द करना और उपगमन अर्थ में आया है।
शब्दनम् उपदेश तत्कर्त्ता सूरिः विद्वान् अभिज्ञ

इति सायणः ।
अथवा- उपतापकः शत्रूणां सूरिः
'सूरिरसि वर्चोधा असि'
अ. २.११.४
(४) प्रेरक ।
'जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिः'
ऋ. १.१८१.४; नि. १२.३
तुम दो अश्विनी कुमारों में एक सुमहान् बल के प्रेरक हैं ।
(५) मेधावी विद्वान् , गुरुजन

सूर्भि - (१) सु + ऊर्मि । उत्तम धारा युक्त
'सूर्म्यं सुषिरामिव'
ऋ. ८.६९.१२; अ. २०.९२.९; मै.सं. ४.७.८; १०४.१२; नि. ५.२७.
(२) उत्तम क्रिया या वाणी
(३) उत्तम ज्वाला
'अजस्त्रया सूर्म्या यविष्ठ'
ऋ. ७.१.३; साम. २.७२५; वाज.सं. १७.७६; तै.सं. ४.६.५.४; मै. सं. २.१०.६; १३९.५; का.सं. १८.४; ३५.१; ३९.१५

स्थूरि - एक बैल या घोड़े वाली गाड़ी ।
'नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति'
ऋ. १०.१३१.३; अ. २०.१२५.३

स्थूरी - स्थिर पड़ी हुई गाड़ी
'नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति'
ऋ. १०.१३१.३

सूर्येप्रियः - सूर्य में चमकने वाला परमेश्वर ।
'प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवति'
ऋ. १०.४५.१०

सूर्योज्योतिः - भौतिक सूर्य परमात्म ज्योति की प्रतिनिधि है !
'सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा'
साम. २.११८१; वाज.सं. ३.९; मै.सं. १.६.१०: १०२.१२; २.७.१६: ९९.६; का.सं. ६.५; ४०.६; ऐ.ब्रा. ५.३१.४; कौ.ब्रा. २.८; १४.१; श.ब्रा. २.३.१.३०; ३३,३६

सूर्योवर्चः - भौतिक सूर्य दीप्तिमान् है ।
'सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा
वाज.सं. ३.९; श.ब्रा. २.३.१.३१.

स्थूल गुदा - स्थूल गुदा
'अन्धाहीन् स्थूलगुदया'
वाज.सं. २५.७

स्थूलपृषती - बड़ी बड़ी छींट वाली पोशाक वाली स्त्री ।
'पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः'
वाज.सं. २४.२; मै.सं. ३.१३.३:१६९.४

स्थूलभ - स्थूल रूप
'वातेन स्थूलभं कृतम्'
अ. ६.७२.२

सूषणा- बालक को प्रसन्न करने वाली माता
'श्रथया सूषणे त्वम्'
अ. १.११.३

सूष्यन्ती - प्रसववती स्त्री
'योनिः सूष्यन्त्या इव'
ऋ. ५.७८.५

सूषा - सु + उषा (१) प्रभात के समान उत्तम प्रकाशवान् (२) पापों का दण्ड करने वाला
'स्वासदसि सूषा'
अ. १६.४.२
(३) सुख से बालक को प्रसव कराने वाली दाई
सूषा व्यूर्णोतु वि योनिं हापयामसि
(४) उत्तम उषा काल
'सूषा च मे सुदिनञ्च मे'
वाज.सं. १८.६

स्तृ - धा. । (१) फैलाना, बिछाना
'नवं बर्हिरोदनाय स्तृणीत'
अ. १२.३.३२
(२) विनाश करना, destroy
'तं वधै स्तृणवामहे'
अ. १०.५.४२
(३) नक्षत्र
'द्यौर्न स्तृभिश्चितयद् रोदसी अनु'
ऋ. २.२.५
(४) विस्तृत गृह (५) शरीर का आच्छादक उत्तम वस्त्र
'दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः'
ऋ. १.१६६.११

स्वृ - धा. । शब्द करना, उपताप अर्थ में भी प्रयुक्त ।

सृक - सृं (चलना, मरना) + क = सृक । अर्थ-
(१) सरण शील, गतिशील चलने वाला

(३) वज्र का विशेषण । दे. 'कुचर'
'सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मम्'
ऋ. १०.१८०.२; अ. ७.८४.३; साम. २.१२२३; वाज.सं. १८.७१; तै.सं. १.६.१२.५; मै.सं. ४.१२.३: १८३.१५ का.सं. ८.१६
हे इन्द्र, तू सरणशील (सृकम्) वज्र को (पविम्) सम्यक् प्रकार से तेजकर (संशाय) शत्रुओं को
(२) वज्र, (३) किरण समूह । निघण्टु २-२० में वज्र का वाचक सृक कहा गया है ।

सृक्वण् - सान् समागच्छन् (१) नीचे जाता हुआ सूर्य -यास्क
(२) रस हरणशील भूलोक -दया.
'सृक्वाणं धर्ममभिवावशाना'
ऋ. १.१६४.२८; अ. ९.१०.६; नि. ११.४२
नीचे जाते हुए सूर्य को देख बार बार कामना करती हुई माध्यमिका वाक् - यास्क ।
पुनः चलने वाले रस-हरणशील भूलोक की कामना करती हुई माध्यमिका वाक् -दया. ।

सृकायी - खांडे को धारण करने वाला ।
'नमः सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यः'
वाज.सं. १६.२१; तै.सं. ४.५.३.१; मै.सं. २.९.३; १२३.५; का.सं. १७.१२.

सृकाहस्तः - हाथ में भाला लिए हुआ ।
'सुकाहस्ता निषङ्गिणः'
वाज.सं. १६.६१

सृक्कार - सृक् + कार । खाने के समय सुरकने की ध्वनि
'स्रक्कारेण वषट्कारेण'
अ. ९.६.५

सृजन् - उगता हुआ
'सृजन् पूर्यो न रश्मिभिः'
ऋ. ८.४३.३२

सृजयः - वेग से विजय करने वाला
'शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः'
वाज.सं. २४.३३; मै.सं. ३.१४.१४:१७५.६

सृजामि - बनाता हूं । दे. 'आगहि', 'सोम्यं मधु' ।

सृञ्जय - (१) आगन्तुक शत्रुओं को विजित करना ।
'स सृञ्जयाय तुर्वशं परादात्'
ऋ. ६.२७.७
(२) शत्रु विजय का कार्य
'अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते'
ऋ. ४.१५.४
(३) प्राप्त शत्रुओं का विजेता
'भृगुं हिंसित्वा सृञ्जयाः'
अ. ५.१९.१

स्तृणन्ति - बिछाते हैं । 'स्तृ' धातु का बिछाना अर्थ भी है । दे. 'आनुषक्' ।
'स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्'
ऋ. ८.४५.१; साम. १.१३३; २.६८८; वाज.सं. ७.३२; मै.सं. ४.१२.६:१९४.९; का.सं. १३.१५; श.ब्रा. १.३.३.१०; तै.ब्रा. २.४.५.७; आप.श्रौ.सू. ११.१०.७; नि. ६.१४
जो क्रम से या निरन्तर (आनुषक्) कुशों को बिछाते हैं, अर्थात् यज्ञ करते हैं ।

सृणिः - (१) वेग से जाने वाली सेना । (२) आयुध संचालन में कुशल पुरुष
'वृक्षो न पक्वः सृपयो न जेता'
ऋ. ४.२०.५
सृ + नि = सृणिः । अंकुशः (३) अंकुश, हंसुआ । दे. 'इत्', 'समरा' ।
'नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात्,'
ऋ. १०.१०१.३; वाज.सं. १२.६८; श.ब्रा. ७.२.२.५; नि. ५.२८
पका हुआ अन्न हंसुआ या अंकुश से भी निकट आ जाए ।

सृणी - (स्त्री.) द्वि.व.। सृ + नि = सृणि । अंकुशो भवति सरणात् (सृ धातु से सृणि बना है जिसका, अर्थ है-हंसुआ, अंकुश) । सृणि हस्ती के सिर पर जाती है) ।
(१) अंकुश
'सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू '
ऋ. १०.१०६.६; नि. १३.५
हे अश्विनी कुमारो, तुम अंकुश के समान एकत्र स्थापित करने वाले एवं नाश करने वाले हो ।
(२) दात्री (हुंसुआ) । धान्यादि काटने के लिए यह चलायी जाती है । दे. 'इत्'
(३) सन्मार्ग में ले जाने वाले दो नायक ।

सृत्वा - सरण या आक्रमण करने में सदा तैयार
'अत्यो न सृत्वा सनये धनानाम् '
ऋ. ९.९६.२०

सृध् - (१) देह या राष्ट्र का धन और सब शोषण

करने वाला
(२) कुत्सित आचरण वाला
'अति निहो अति सृधः '
अ. २.६.५; मै.सं. २.१२.५:१४९.४

स्पृध् - (१) स्पर्धा करने वाला
(२) शत्रु सेना
'विश्वा यदजयः स्पृधः '
ऋ. ८.१४.१३; अ. २०.२९.३; साम. १.२११; वाज.सं. १९.७१; श.ब्रा. १२.७.३.४
(२) स्पृध्, + क्विप्
'स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः '
ऋ. १.११९.१०
परस्पर स्पर्धा करने वाले प्रतिस्पर्धी शत्रुओं के पार पहुंचा देने वाले (स्पृधा तरुतारम्) अति अधिक वेग से आक्रमण करने वाले (श्वेतम्) सैन्य वर्ग को प्रदान करो (दुवस्यथः)

सृप् - चलना
'गूढः पृथिव्या मोत् सृपत् '
अ. ६.१३४.२

सृप्र - सृप् (गत्यर्थक) + रक = सृप्र । अर्थ है-सर्पिप् (घृत या तैल) ।
'सृप्रः सर्पणात् इदमपि इतरत् सृप्रम् एतस्मादेव सर्पिर्वा'
तैलं वा ।
(२) दीर्घ । दे. 'बृबदुक्थ'
(३) अति व्यापक,. सर्वगामी
'पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वम् '
ऋ. ४.५०.२; अ. २०.८२.२

सृप्रकरस्न - सृप्रौ करस्नौ बाहू यस्य सः (जिसकी भुजाएं अदीर्घ हों) । दे. 'करना' 'बृबदुक्थ' ।
'बृबदुक्थं हवामहे
सृप्रकरस्नमूतये । '
ऋ. ८.३२.१०; साम. १.२१७; नि. ६.४
तुम अदीर्घ बाहु वाले (सृप्रकरस्नम्) बृबदुक्थ को रक्षा के लिए बुलाते हैं ।

सृप्रदानु - (१) सर्पणशील चेतना या बल को देने वाला परमेश्वर या द्रविणोदा अग्नि । दे. 'ऊर्जः,' 'पुत्र' ।

सृप्रदानू - विस्तृत रूप से देने वाले मित्रावरुण
२। स्त्री पुरुष
सृप्रदानू इषो वास्त्वधिक्षित
ऋ. ८.२५.५

सृप्रभोजाः - प्राप्त हुए शरणागत को पालन करने वाला परमेश्वर-इन्द्र ।
'अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसम् '
ऋ. ६.४८.१४

स्तृभि - स्तृ + क्विप् = स्तृ (तुक् का अभाव) ।
अर्थ - नक्षत्र वाची 'स्तृ' शब्द में 'भिस्' को अव्यय के रूप में वेद में जोड़ा गया है । वेद में ऐसे तृतीयान्त शब्द आए हैं । इसे विमतयन्त प्रतिरूपक अव्यय भी कहा जा सकता है ।
स्तृभिः तीर्णानि इव ज्ञायन्ते ख्यायन्ते (नक्षत्र गगनमण्डल में तिर्यक् गत की तरह दीख पड़ते हैं ।)
'ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः
विश्वषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे '
ऋ. ४.७.३
यज्ञवान् , विशिष्ट ज्ञानयुक्त (ऋतावानम् विचेतसम्) एवं सभी यज्ञों में स्पर्धाभाव उत्पन्न करने वाले अग्नि को (विश्वेषां अध्वराणाम् हस्कर्तारम्) पृथ्वी में घर घर में प्रज्वलित होने वाले उसी प्रकार हमें देखते हैं जैसे नक्षत्रों से देदीप्यमान अन्तरिक्ष, (स्तृभिः द्याम् इव पश्यन्तः) ।

सृमरः - पथ प्रदर्शक गवयपशु
'अरण्याय सृमरः '
वाज.सं. २४.३९; तै.सं. ५.५.१६.१; का.सं. (अश्व.) ७.६

सृबिन्द - आक्रमण कर प्रजा का धन हरण करने वाला ।
'यः सृबिन्दमनर्शनिम् '
ऋ. ८.३२.२

सृष्टा आपः - फेंके हुए जल । दे. 'कला' ।
'आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः '
फेंके हुए जल की तरह (सृष्टाः आपः न) नीचे (नीचीः) पहुंचा । दे. ('अधवन्त) ।

सृष्टा - (स्त्री.) । सृज् + क्त + टाप् । प्रेरित, सिरजी गई, रची गई । प्रेरित अर्थ में प्रयोग । दे. 'अप्'
'सेनेव सृष्टामं दधाति '
ऋ. १.६६.७; नि. १०.२१
सेनापति के द्वारा प्रेरित सेना की तरह बल या भय देता हुआ-अग्नि ।

सृष्टा सेना – (१) चक्रव्यूहादि से रची सेना, (२) सेनापति की आज्ञा से प्रेरित हो छूट निकली सेना ।
'सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः '
ऋ. १.१४३.५

स्पृहयद्वर्णः – (१) दीप्ति के कारण मन लुभाने वाले रूप वाला अग्नि, (२) चाहने योग्य वर्ण रूप एवं उद्योग वाला
'मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निः
ऋ. २.१०.५; वाज.सं. ११.२४; तै.सं. ४.१.२.५; ५.१.३.३; मै.सं. २.७.२:७६.६; का.सं. १६.२; श.ब्रा. ६.३.३.२०

स्पृहयाय्य – चाहने योग्य
'वसूनि राजन् स्पृहयाय्यणि'
ऋ. ६.७.३; का.सं. ४.१६
'विश्वप्स्नस्य स्पृहयाय्यस्य राजन् '
ऋ. ८.९७.१५

सेक् – सिच् + क्विप् = सेक्वा, (२) वीर्य सिञ्चन करने वाला पति । दे. 'ऋञ्जन '
'पिता यत्र दुहितु सेकमृञ्जन् '
ऋ. ३.३१.१; नि. ३.४.
विवाह करते समय (यत्र) अपुत्र पिता (पिता) लड़की के सेक्ता या पति को (दुहितुः सेकम्) अलङ्कृत करता हुआ (ऋञ्जन्) ।

सेक – (१) वीर्य-सेचन, (२) वर्षा, (३) वीर्य-सेचन करने वाला पति । दे. 'ऋञ्जन्' (4) ज्ञानवर्षण (५) आनन्द रस का प्रवाह
'गोर्नसेके मनुषो दशस्यन् '
ऋ. १.१८१.८
'वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात्'
ऋ. ४.१६.३; अ. २०.७७.३

सेक्ता – (१) प्यालों को भरने वाला
'सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै'
ऋ. ३.३२.१५; अ. २०.८.३
(२) सिंचन करने वाला, बरसाने वाला । (४) वीर्य सेचक पति

स्तेग – (१) गर्जन करता हुआ मेघ, (२) सूर्य, (३) वेग से जाने वाला हिरण । अंग्रेजी का stag इसी शब्द का बिगड़ा रूप है ।
'स्तेगो न क्षामत्येति पृथिवीम् '
ऋ. १०.३१.९; अ. १८.१.३९

(४) समस्त प्रकृति के परमाणु आदि का संघात करने वाला परमेश्वर ।

सेता – सि + तृच् । बन्धन करने वाला ।
'यौ सेतृभिरज्जुभिः सिनीथः '
ऋ. ७.८४.२

स्वेद – (१) पसीना
'कीनास्वेद स्वदेमासिष्विदाना'
ऋ. १०.१०६.१०
(२) परिश्रमी । दे. 'सत्य शवसः'

स्वेदाञ्जी – (१) स्वेदों को प्रकट करने वाले प्राणों का आयमन रूप तप, (२) स्वेद चुलाने वाला श्रम
'स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानः '
ऋ. १०.६७.६; अ. २०.९१.६; मै.सं. ४.१४.५:२२२.६

सेदिः – (१) क्लान्ति, थकान
'सेदिरुग्रा व्यृद्धिः '
अ. ८.८.९
(२) अन्नादि के न मिलने के कारण उत्पन्न विपत्ति, दुर्भिक्ष आदि,
(३) प्रजा जन का नाश (४) रोगादि क्लेश, (४) भूख प्यास का कष्ट
'यत्र सेदिर्न विद्यते'
वाज.सं. २०.२६
(५) दुःख, विनाश
'तत्र सेदिर्न्युच्यतु
अ. २.१४.३

स्वेदुहव्य – (१) आप ही प्रकाशित दान आदान व्यवहार । (२) स्व + इदु + हव्य । अपने आह्लादक जल रूप दानों से युक्त मेघ (३) प्रकाशमान जलग्राहक किरण, (४) चमचमाता साधन शस्त्र ।
'अर्चद् वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैः '
ऋ. १.१७३.२

सेध – (१) निवारण करना, (२) नाश करना (३) ठीक राह पर लाना
'अग्नी रक्षांसि सेधति'
ऋ. १.७९.१२;१२; ७.१५.१०; १०
'विश्वेदग्निः प्रतिरक्षांसि सेधति'
ऋ. ८.२३.१३; साम. १.११४

सेधति – सेधतु (दूर रखें) । दे. 'सहस्राक्ष' ।

सेनाजित् – सेना जीतने वाला

'तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ'
वाज.सं. १५.१९; तै.सं. ४.४.३.२; मै.सं. २.८.१०:११५.३; का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.२०

सैन्यः - (१) सेनासु साधुः सेनाभ्यो हितो वा (सेनाओं में सबसे श्रेष्ठ और उनका हितकारी)। (२) सेना द्वारा संग्राम करने में कुशल (३) इन अर्थात् स्वामी रूप आत्मा से युक्त इन्द्रियों में सबसे श्रेष्ठ आत्मा।
'असि हि वीर सेन्यः
ऋ. १.८१.२; अ. २०.५६.२; साम. २.३५३
(४) सेना सम्बन्धी
'यो अद्य सेन्यो वधः'
अ. १.२०.२; ६.९९.२; आश्व.श्रौ.सू. ५.३.२२.

सेन्य वध - (१) सेना सम्बन्धी शस्त्रास्त्र
'यो अद्य सेन्यो वधः'
अ. १.२०.२

स्तेन - (क) स्त्यै (एकत्र होना, संघात्) + इनच् = स्त्या इन = स्तेन-निरुक्त।
(ख) स्तेन (चुराना) + कन् = स्तेन - पाणिनि।
(ग) संस्त्यानम् अस्मिन् पापकम् इति नैरुक्ताः (चौर में पाप संहत होकर निवास करता है अतः उसका नाम स्तेन हुआ)। पाणिनि के अनुसार चुराने वाला स्तेन है।

स्तैनहृदय - चोर के समान भीरु हृदय वाला, चोर के हृदय के समान अप्रकट छिपे आचार विचार का पुरुष।
'ऋतये स्तेनहृदयम्'
वाज.सं. ३०.१३

सेना - (१) इ (गत्यर्थक) + नक् = इन। अर्थ है-ईश्वर,। प्रभु, इनेन सह इति सेना (प्रभु के साथ जो चलती है वह सेना है या एक मात्र जय के उद्देश्य से जो चलती है वह सेना है)।
'सेना सेश्वरः समानगतिः वा
अथवा समान गतिः यस्याः सा सेना (सैनिकों की गति सदा समान- एक सी रहती है अतः वह सेना है)।
सेना। दे. 'अम'
'सेनेव सृष्टामं दधाति'
ऋ. १.६६.७; नि. १०.२१.
सेनापति के द्वारा प्रेरित सेना की तरह यह अग्नि भी भय या बल देता है।

'विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः'
ऋ. १.१८६.९

सेनाजू - वेग से सेना को चलाने वाला।
'सेनाजुवा न्यूहतू रथेन'
ऋ. १.११६.१
वेग से सेना के चलाने वाले रथ से सुरक्षित रूप से लाते हैं।

सेनानी - सेना नायक, सेनापति,। दे. 'त्विष्'
'सेनानीर्नः सहुरे हुत एधि'
ऋ. १०.८४.२; अ.४.३१.२
हे सहनशील मन्यु, तू हमारे संग्राम में बुलाए जाने पर सेनापति बन।

स्तेयकृत् - (१) चोरी करने वाला
'रिपुस्तेनस्तेयकृद् दभ्रमेतु'
ऋ. ७.१०४.१० अ.८.४.१०

स्रेवयन् - उल्लंघन करता हुआ
'दुराध्यो अदितिं स्रेवयन्तः'
ऋ. ७.१८.८

सेहानः - पराजित करता हुआ
'विश्वाः सेहानः पृतना पुरुज्रयः'
ऋ. ८.३६.१-६

सेहाना - शत्रु पर विजय करने वाली
'सेहानाया उपाचरेत्'
ऋ. १०.१५९.२; आप.मं.पा. १.१६.२

स्रेहिती - (१) हिंसाकारिणी दुष्ट सेना
'अप स्रेहितीर्नृमणां अधत्त'
ऋ. ८.९६.१३; अ. २०.१३७.७; साम. १.३२३; का.सं. २८.४
(२) नाशकारिणी दुर्वासना (३) मोहमयी दुष्ट प्रवृत्ति

सेहु - (१) शुष्क
'सेहुः नाम विप्रकीर्णवयवः अत्यन्तं निस्सारः तूलादिपदार्थः -सा।
'सेहोररसतरा'
अ. ७.७६.१

स्त्रैण - (१) कन्या का शरीर (२) स्त्री सम्बन्धी अंग-सा।
'सुवामा स्त्रैणमिच्छतम्'
अ. ८.६.४

स्त्रैणसख्य - स्त्री आदि भोग्य पदार्थों का उद्देश्य कर की गई मैत्री।

'न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति'
ऋ. १०.९५.१५; श.ब्रा. ११.५.१.९.

स्वैतुः - स्व + एतु। (१) स्वयं आगे आने वाला, अग्रसर (२) धन प्राप्त कराने वाला।
'स्वैतवा ये वसवो न वीराः'
ऋ. ५.४१.९

सैन्धव गुल्गलु - नदी के तट पर उत्पन्न होने वाला गूगुल
'यद् गुल्गलु सैन्धवम्'
अ. १९.३८.२

सैर्य - नदियों या तालाबों के तटों पर उत्पन्न घासों के बीच पाये जाने वाला जीव।

सैलग - (१) दुष्टों को वश करने वाला
(२) दुष्ट पुरुषों का सन्तान या शिष्य
'पाम्मने सैलगम्'
वाज.सं. ३०.१८

स्त्रैषूय - कन्या के गर्भ में धारण करना
'स्त्रैषूयमन्यत्रदधत्'
अ. ६.११.३

स्तोक - (१) थोड़ी थोड़ी मात्रा में स्थित पदार्थ
'स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य'
ऋ. ३.२१.१; मै.सं. ४.१३.५:२०४.९; का.सं. १६.२१; ऐ.ब्रा. २.१२.८; तै.ब्रा. ३.६.७.१.
(२) बिन्दुओं के समान अल्पबल और अल्पज्ञानी शिष्यगण
घृतवन्त पावक ते
'स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः'
ऋ. ३.२१.२
(३) शत्रुहन्ता वीरजनों का स्तुति कर्ता अल्पशक्तिशाली पुरुष, (४) जलधाराओं के समान ज्ञान जल प्रवाहित करने वाला विद्वान्।
'श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि'
ऋ. ३.२१.५; मै.सं. ४.१३.५:२०५.१; का.सं. १६.२१; ऐ.ब्रा. २.१२.१६; तै.ब्रा. ३.६.७.२
(४) पदार्थ, Stock
'मथव्यान्त्स्तोकानप यान् रराध'
अ. २.३५.२
(५) कण। दे. 'अध्रिगु'।
'तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य।'
ऋ. ३.२१.४; मै.सं. ४.१३.५: २०४.१४; का.सं. १६.२१; ऐ.ब्रा. २.१२.१४; तै.ब्रा. ३.६.७.२.
हे कर्मनिष्ठ अग्ने, तेरे लिए मेदा और घृत के कण टपक रहे हैं।
(६) गुणों का ग्राहक मनुष्य-दया.

स्तोका - श्चुतिद् (च्युत होना) + घञ् = स्कोता = स्तोका। आप्यन्ते विपर्यय हुआ है।

स्वोजाः - सु + ओजस्। उत्तम बलशाली
'अच्युता चिद् वीडिता स्वोजः'
ऋ. ६.२२.६; अ. २०.३६.६

सोतवे - सुञ् + तवेन् = सोतवे, रस निकालने के लिए।
'ऊर्ध्वो भवति सोतवे'
ऋ. १.२८.१

सोत्वः - (१) उत्पन्न होने वाला ऐश्वर्य या तैयार किया जाने वाला सोमरस।
'तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासः'
ऋ. १०.१६०.२; अ.२०.९६.२
(२) भविष्य में निष्पादित किया जाने वाला
'सुतासो ये च सोत्वाः'
सा. १०.२१२

सोता - (१) ज्ञानमार्ग में ले जाने वाला (२) अन्नवत् कूटपीट कर सार पदार्थ देने वाला।
'ग्रावेव सोता मधुषद् यमीडे'
ऋ. ४.३.३.
(३) संचालक
'सोतुर्बाहुभ्यं सुयतो नार्वा'
ऋ. ७.२२.१; अ. २०.११७.१; साम. १.३९८; २.२२७; तै.सं. २.४.१४.४; पंच.ब्रा. १२.१०.१

सोत्वासः - उत्पन्न होने वाले भावी पदार्थ। दे. 'सोत्व'।

स्तोता - (१) 'स्तु' धातु के मध्यम पुरुष बहुवचन का लोट् में रूप। दे 'उक्थ'।
'इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते'
ऋ. ८.१.१; अ. २०.८५.१; साम. १.२८२; २.७१०
सोम रस तैयार होने पर संसार में (सुते) एकत्र होकर (सचा) मनोरथ बरसाने वाले इन्द्र की स्तुति करो (वृषणम् इन्द्र मित् स्तोता)।
(२) स्तु + तृच् = स्तोतृ। प्रथमा ए.व. का रूप स्तोता। स्तुति करने वाला। दे. 'आधी'।
'स्तोतारं ते शतक्रतो'
ऋ. १.१०५.८; १०.३३.३; नि. ४.६.

स्तोत्रियः - (१) प्रथम तीन ऋचाओं का पाठ, (२) विद्वान् (३) सत्या सत्य विवेकयुक्त विद्याओं के योग्य विद्यार्थी ।
'आ श्रावयेति स्तोत्रियाः'
वाज.सं. १९.२४

सोतुः - उत्पादक, स्रष्टा ।
'वि हि सोतोरसृक्षत
नेन्द्रं देवममंसत'
ऋ. १०.८६.१; अ. २०.१२६.१; वै.सू. ३२.१७; नि. १.४; १३.४

स्रोतस् - (१) प्रवाह, धारा, । दे. 'यामि'।
'उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजत्'
ऋ. १.५१.११

स्रोतस्याः - ब.व.। स्रोतों से उत्पन्न होने वाले जल ।
'अपां स्रोतस्यानाम्'
अ. १९.२.४.

स्रोत्या - (१) स्रोत से बहने वाली नदी
'यत्र यन्ति स्रोत्या स्तजितं ते'
अ. ६.९८.३; मै.सं. ४.१२.२:१८१.१०; तै.सं. २.४:१४.१; का.सं. ८.१७
(२० प्रवाह (३) विनय से चलने वाली स्त्री, (४) रजः स्राव से शुद्ध स्त्री
(५) स्रोतसि भवा-गति -दया.
'अधोअक्षाः, सिन्धवः स्रोत्याभिः'
ऋ. ३.३३.९

स्रोत्य - (१० सोता, (२) आन्तरिक लहर, (२) समुद्रगामिनी महानदी
'समुद्रस्येव स्रोत्याः'
अ. १.३२.३.

सोतोः - षु + तोसुन् (तमप् अर्थ में) = सोतोः प्रसोतुम् । (१) सर्वभूत के प्रसव के लिएं (२) सभी जीवों को उत्पन्नं करने के लिए । दे. 'मत्सखा'
'वि हि सोतोरसृक्षत'
ऋ. १०.८६.१; अ. २०.१२६.१; गो.ब्रा. २.६.१२; वै.सू. ३२.१४; १७; नि. १३.४
आदित्य जब प्रतिदिन जीवों की सृष्टि के लिए (सोतोः) किरणें बिखेरते हैं (व्यवस्था)...।
(३) रसग्रहण करने के लिंए

सोन्त - ऋग्वेद कालीन एक देश ।

स्योन - (१) न. । सुख । पापी इसे नाश करते हैं अतः यह स्योन है । (अवस्यन्ति नाशयन्ति पापिन एतदिति स्योनम्) ।
'स्योनं ते अस्तु सहसंभलायै'
अ. १४.१.१९
(३) सुखप्रद, (३) निर्भय
'त्वं चकर्थ मनवे स्योनान्'
ऋ. १०.७३.७
दे. 'अमृतस्य लोक'
'स्योनं पत्ये वहतुं कृणुस्व'
ऋ. १०.८५.२०; साम.मं.ब्रा. १.३.११; आप.मं.पा. १.६.४; नि. १२.८.
हे सूर्ये पति के लिए सुखद विवाह कर ।
पुनः, दे. 'अनृक्षर'।

स्योनकृत् - सुखकारक, सुखी करने वाला । दे. 'स्वादु क्षद्मा'

स्योनशीः - स्योन + शी । (१) सुख से शयन करने वाला, (२) सुख जनक उत्तम पुरुषार्थ में स्थित, (३) जो सुख से या विद्या धर्म या पुरुषार्थ में स्थित हो ।
'स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानः'
ऋ. १.७३.१
जो सुख से शयन करने वाले, अतिथि के समान समस्त सुख जनक उत्तम पुरुषार्थ में स्थित हो और सबको प्रसन्न करने वाला हो ।
(४) सुख से रहने वाला या प्राप्त होने वाला
'स्योनशीरतिथिराचिकेतत्'
ऋ. ७.४२.४

स्योना - अवस्यन्ति नाशयन्ति पापिन एतदिति स्योनम् (पापी इसे नाश करते हैं अतः यह स्योन है) ।
षो (अन्त करना) + न = स्योन । अथवा 'सेवितव्य' होने से यह स्योन है ।
सेव + न = स्यून (टि का यूट्) = स्योन ।
दे. 'स्योन'। स्योन + टाप् = स्योना । सुखकारी, सुख दायिनी, । दे. 'अनृक्षरा'
स्योना पृथिवी भव । हे पृथ्वी ! तू सुखदायिनी बन ।
'शिवा स्योना पतिलोके विराज'
अ. १४.१.६४

स्तोभति - स्तौति (स्तुति करता है) स्तुभ अर्चनार्थक

धातु है ।

सोभरि - (१) उत्तम रीति से पालक
'यथा वाजेषु सोभरिम्'
ऋ. ८.५.२६
(२) उत्तम रीति से प्रजा का पोषण करने वाला ।
'अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे
प्रेमध्वराय पूर्व्यम्'
ऋ. ८.१९.२; साम. २.१०३८

सोभरी - उत्तम रीति से पुष्ट करने वाला ।
'श्यावाश्वः सोभर्यर्चनानाः'
अ. १८.३.१५

सोभरीयुः - उत्तम पालक पोषक को चाहने वाला ।
'यज्ञमा सोभरीयवः'
ऋ. ८.२०.२

सोम - (१) षु + मन् = सोमन् । स्वयं उत्पन्न होने वाली लता ।
(२) सोमलता, (३) दुग्ध । दे. 'अनूप' ।
'अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः
सोमो दुग्धाभिरक्षाः'
ऋ. ९.१०७.९; साम. २.३४८; नि. ५.३.
सोम जल प्राप्त देश में गोओं के साथ रहता है । सोम सभी गात्रों से निकलकर झरता है । -सा. जब जल प्राय देश में गोस्वामी गौओं के साथ निवास करता है तो दोही हुई गोओं से भी दूध निकलता है ।
विभिन्न भाषाओं में सोम के नाम -
संस्कृत-सोमलता, सोम, कल्पलता; तिब्बती-सोम । फारसी-इमहूय
बिलोचिस्तानी-उमान । अंग्रेजी-एफिडा वलगेरिस । आजकल साटिया वलवरिडो को भी लोग सोमलता कहते हैं । लैटिन- कस्टेमा ब्रेवि सटिमा ।
पारसी 'सोम' को होम कहते हैं । कच्छ में 'सिगड़ी ओ' लैटिन में 'पेरिकलोआ अफिला एन् ओ असेमि मियाडो एफेड्रा' पंजाब में अप्सनिया चेना सोम के नाम से प्रचलित है। डा० एचीसन औरनकर जोसेफ वरुमुला इसी को सच्चा सोम मानते हैं । सुफिड्रा जोनस की और दो जातियां भी सोम नाम से प्रचलिति है । 'एफ्रेड्रा पैचिक्लाडा' को ही सच्चा सोम मानते हैं । ड़ा० एचीसन के अनुसार हरिसद् घाटी में एफिड्रो पैचिस्का गहुंम हुम सोम ही है । यह उत्तम बलूचिस्तान के हासिद घाटी और इरान के पहाड़ी प्रदेशों में पाया जाता है । एफेड्रा की ही दूसरी जाति 'हुम-इ वदक' है । मैक्स मूलर के अनुसार वेद और अवेस्ता में सोम का उल्लेख है ।
वेद में सोम रस को दुग्ध और मधु के साथ बनाने की बात है । 'सोम्यं मधु' से यह सिद्धि है ।
धूर्तस्वामी के अनुसार सोमलता श्यामवर्ण की खट्टी, बिना पत्ते की दुग्धपूर्ण होती है । इससे उल्टी होने का भी (कै) वेद में जिक्र है ।
सोम रस -पान अमर बनाता है । चरक और सुश्रुत ने भी इसकी महिमा बताई है । सुश्रुत में इसकी आकृति भी दी गई है ।
हिमालय, आबू, सहयाद्रि, महेन्द्र, मलय, पर्वत देवगिरि, देवसह पारिपात्र विन्ध्य, देवसुन्द्र आदि पर्वतों पर वितसा नदी के उत्तर कश्मीर आदि स्थानों में सोम लभ्य है । परन्तु सुश्रुत के अनुसार इसे धर्मात्मा ही देख सकते हैं ।
'न तान् पश्यन्त्यधर्मिष्ठाः
कृतघ्नाश्चापि मानवाः
भेषजद्वेषिण श्चापि ।
ब्राह्मण द्वेषिणस्तथा ।'
सु. २९.३१
आयुर्वेद में इसे 'जरा व्याधिनाशनम्' कहा है ।
'ब्रह्माद्यो ऽसृजन् पूर्वम्
अमृतं सोमसंज्ञितम्
जरामृत्यु विनाशाय'
सुश्रुत -२९
चौबीस प्रकार का सोम समान गुणवाला बनाया गया है ।
आकार-सर्व एव तु विज्ञेयाः
'सोमा पञ्चदशच्छदाः,
क्षीरकन्दलगवन्तः
पत्रैर्नानाविधैः स्मृताः ।'
सु. २९.२६
पुनः सुश्रुत में कश्मीर के क्षुद्रक मानस में इसका होना बताया है ।
'कश्मीरेषु सरोदिव्यम्
नाम्ना क्षुद्रकमानसम् ।'

सु. २९.३१
चरक ने भी इसे ऐसा ही बताया है। नौ हजार से बारह फीट की ऊंचाई पर सोम किसी पर्वत पर मिलता है।

'हिमवत्यर्बुदे सह्ये
महेन्द्र मलये तथा
श्री पर्वते देवगिरौ
गिरौ देवसहे तथा
पारिपत्रे च विन्ध्ये च
देवसुन्दे ह्रदे तथा।
उत्तरेण वितस्तायाः
प्रवृद्धः ये महीधराः।'

सोम का आकार चन्द्रमा सा है, अतः यह सोम कहलाया।
सोम के पन्द्रह पत्र चन्द्रमा के कृष्ण शुक्ल के अनुसार बढ़ते और सूखते हैं।

'सर्वेषामेव सोमानां
पत्राणि दशपञ्च च'
तानि शुक्ले च कृष्णे च
जायन्ते निपतन्ति च।
एकैकं जायते पत्रं
सोमस्या हरहस्तथा
शुक्लस्य पौर्णमास्यान्तु
भवेत्यञ्चदशच्छदः।
शीर्षते पत्रमेकैकं
दिवसे दिवसे पुनः
कृष्णपक्षक्षये चापि
लता भवति केवलः।
सुश्रुत'

इफेड्रा जेरार्डियाना (सोम) की बनी टिकिया विदेशों से आ रही है जिसे श्लेमाानाश के लिए खिलाया जाता है।
वेद में सोम के विविध नाम और विवरण-
(१) वीरुधां मतिः
'आर्जीकात् सोम मीढ्वः'
ऋ. ९.११३.२
इस के पत्ते होते हैं।
'दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षि सोम '
ऋ. ९.९७.३३
(२) अंशु,
'सोम विश्वेभिरंशुभिः'
ऋ. १.९१.१७; ९.६७.२८; वाज.सं. १२.११४; का.सं. ३५.१३
इसे पीकर तैयार किया जाता है।
'सोता हि सोममद्रिभिरेमेनमप्सु धावत'
ऋ. ८.१.१७
इसमें कांटे भी होते हैं।
सोम अरुण वृक्ष की शाखा है।
'वृक्षस्य शाखामरुणस्य बप्सतः'
ऋ. १०.९४.३
सोम का दुग्ध अरुण है.
'अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुम्'
ऋ. ७.९८.१
हरित वर्ण अंशु से रस निकाला जाता है।
'परि सुवानो हरिरंशुः पवित्रे'
ऋ. ९.९२.१
(१) हरि। सोम का 'हरि' शब्द भी एक पर्याय है। हरि हरा, पीला एवं कुछ लाल वर्ण है। शथपथ ब्राह्मण में इसका रंग अरुण बतलाया गया है।
श.ब्रा. ४.५.१०.१
गाय देकर सोम खरीदा जाता था और उस गाय का भी रंग लाल होना चाहिए।
तै.सं. ६.१.६
श.ब्रा. ३.३.१.१४
(४) पूतिका तृण या पूत तृण भी सोम का प्रतिनिधि है।
महाराष्ट्र में इसे 'मयाल' कहते है।
इस लता के लाल और सफेद दो रंग होते हैं। इसका रस कुछ अरुण , ठहनियां अगूठे सी मोटी होती हैं।
(५) फाल्गुनी लता भी अरुण पुष्प वाली होती है। इसके अभाव में अरुण दूर्वा विहित है।
सोमरस मधुर, मदकारी और कुछ तिक्त होता है।
इसमें कुछ दुर्गन्ध भी है।
पर्वत, नदी एवं अनूप देशों में रस की उत्पत्ति होती है
'पवित्रे क्षोमो अक्षाः'
ऋ. ९.१८.१
'शर्मणावति सोमम्'
ऋ. ९.११३.१;

'आर्जीकात् सोम मीढ्वः '
ऋ. ९.११३.२
सोम की जल रूपी बहनें हैं ।
इसे जल का गर्भ कहा गया है ।
'अपां ह्येष गर्भः '
श.ब्रा. ४.४.५.२१
इसकी माता जल है ।
ऋग्वेद में सोम के १२० सूक्त हैं । आर्यों के आदि निवास में सोम प्रचुर मात्रा में मिलता रहा होगा ।
भंग शब्द सोम के विशेषण के रूप में आया है ।
'उपो षु जातमप्तुरम् गोभिर्भंगं परिष्कृतम् ।
इन्दुं देवा अयासिषुः '
ऋ. ९.६१.१३; साम. १.४८७; २.११२,६८५
ऋग्वेद में सोम का हवन लिखित है । अवेस्ता में 'हवोम' का हवन वर्णित है ।
ऋग्वेद में सोम का रंग पीला बताया गया है और उसमें दुग्धमिश्रित करने की विधि है ।
(६) सोम के अभाव में उशना (अशना) दूसरी प्रतिनिधि लता है,
सोम का आस्तरण मूज या शण कहलाता है ।
(७) जगदुत्पादक प्रभु को भी सोमकहा गया है । दे. 'आहनस् '
सोमरस स्वादिष्ट और मदिष्ट दोनों हैं ।
'स्वादिष्ठया मदिष्ठया
पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः । '
ऋ. ९.१.१; १००.५; साम. १.४६८; २.३९; वाज.सं. २६.२५; ऐ.ब्रा . ८.८.९; २०.३; पंच ब्रा. ८.४.५; नि. ११.३
वस्तुतः सोमरस वही पीता है जो यज्ञशील हो सत्य की उपासना करता है ।
'सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिषन्त्योधिम्
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन । '
ऋ. १०.८५.३; अ. १४.१.३; नि. ११.४
दीर्घायुष्य के लिए विधिपूर्वक रस के सेवन की भी बात कही गई है ।
'अध्वाकल्पेन हृतमाभिषुतं
यमनियमाभ्याम् आत्मानं संयोज्य ' । '
तीन मास तक सोमरस के सेवन से अणिमा लघिमा आदि सिद्धियां प्राप्त होती हैं ।
सुश्रुत में निम्नलिखित २५ प्रकार के सोम हैः - (१) अंशुमान् (२) मुञ्जवान् (३) चन्द्रमा (४) रजतप्रभ, (५) रजतप्रभ, (६) दुर्वासोम, (७) कनीयान् (७) पर्वताक्ष, (८) कनकप्रभ (१०) प्रतानवान्, (११) करवीर (१२) अंशवान् (१३) स्वयं प्रभु, (१४) महासोम, (१५) गरुड़हृति, (१६) श्येनमाहृत, (१७) गायत्र, (१८) त्रैष्टुभ् (१९) पंक्ति, (२०) जागत (२१) शाङ्कर, (२२) अग्निष्टोम, (२३) दैवत (२४) सोम, (२५) उडुपति (नक्षत्रराट्) ।
अंशुमान् सोम की कोई घृत के समान होती है, मुञ्जवान् में कदली के समान कन्द होता है । चन्द्रमा सुवर्ण के समान होता और और जल में उपजता है ; गुरुडांहृत और श्वेताक्ष पाणु वर्ण होता है । और सांप की केंचुली के समान वृक्ष के अगले भाग पर लटके रहते हैं। सब प्रकार के सोम पन्द्रह पत्ते वाले होते होते हैं और इसमें दूध, कुन्द तथा लता होती है । पत्ते भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं ।
हिमालय, आबू, (अर्बुद) सह्य, महेन्द्र, मलय, श्रीपर्वत, देवगिरि, देवसह, पारिपात्र और विन्ध्याचल पर्वतों में पाया जाता है । देवसुन्द तालाब व्यास नदी के उत्तरवर्ती पर्वतों में और जहां पंजाब की पांचो नदियां सिन्धु में गिरती हैं चन्द्रमा नामक सोम पाया जाता है और उनके आस पास अंशुमान् और मुञ्जवान् सोम भी है । मानसरोवर में गायत्र, त्रैष्टुभ, पांक्त, जागत और शांकर सोम मिलते हैं ।
मुञ्जवान् पर्वत पर सोम पाए जाने की बात 'प्रायेया मा ' ऋचा मे मिलती है। दे. 'अच्छान'
सोम का आधुनिक अर्थः
-...सोमस्वोषधीतद्रसेन्दुषु
वसुप्रभेदे सलिलो वानरे किन्नरेश्वरे '
- हेम ।
सोमलता, सोमरस, अमृत, देवताओं का मध्य, चन्द्रमा, प्रकाश किरण, कर्पूर, जल, वायु, कुबेर का एक नाम, शिव का एक नाम, यम का एक नाम, चावल की मांड़, आत्मा, परमात्मा ।
'सोमः पवते जनिता मतीनाम्

जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य
जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः'
ऋ. ९.९६.५; साम. १.५२७; २.२९३; नि. १४.१२.
'ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनाम्
ऋषिर्विप्राणां महिमो मृगाणाम्
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानाम्
सोमः पावित्रमत्येति रेभन् '
ऋ. ९.९६.६; साम. २.२९४; तै.सं. ३.४.११.१; मै.सं. ४.१२.६: १९६.१२; का.सं. २३.१२; तै.आ. १०.१०.१;५०.१; नि. १४.१३
'तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निः
ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् '
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः
सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ।'
ऋ. ९.९७.३४; साम. १.५२५; २.२०९; नि. १४.१४
डा. सम्यानो ने अन्वेषण कर हिमालय में सोम का पता लगाया था । उनके अनुसार सोम नशीला नहीं है और शिकंजनी के समान यह स्वादु है ।
वस्तुतः सोम अत्यन्त रमणीय पदार्थ है ।
"अथैतं महान्त मात्मान मेतानि
सूक्तानि एताऋचोऽनुवदन्ति "
अथाध्यात्मं सोम आत्माऽव्ये-तस्मादेव, इन्द्रियाणां जनिता इत्यर्थः ।
'अपि वा सर्वाभिः विभूतिभिः
विभूत आत्मेत्यात्यगतिमाचष्टे ।'
पुनः-
'विज्ञानोऽस्मि विशेषोऽस्मि
सोमोऽस्मि संकुलोऽस्म्यहम्
मैत्रेयी उपनिषद्
सोम संज्ञोऽयं भूतात्मा'
(८) श्री, (९) राजा, (१०) प्राण, (११) प्रजापति, (१२), गूढरूप अग्नि (१३) विष्णु, (१४) परमात्मा, (१५) वायु, (१६) सम्राट्, (१७) क्षत्रिय, (१८) वीर्य, (१९) यज्ञ, (२०) केवल आनन्दमय, (२१) परब्रह्म, (२२) ब्राह्मण, (२३) यजमान, (२४) क्षत्र, (२५) यश, (२६) रेतस्
श्री वैं सोमः- श.ब्रा. ४.१.३.९
अथो राजा वै सोमः- श.ब्रा. १४.१.३.१२
यदाह गयोऽसि इति सोम वा एतदाह -गो.ब्रा. ५.१.५.२६
'सोमो हि प्रजापतिः
यदाह श्येनोऽसि इति सोमं वा एतदाह
एषह वा अग्निर्भूत्वा संश्यायति '
ऐ.ब्रा. ५.५.३२
'यो वै विष्णुः सोमः - सः श.ब्रा
'योऽयं वायुःवनते एषसोमः - श.ब्रा.
स यदाह सम्राट् असि, इति सोमम् एतदाह ।
एष ह वै वायुर्भूत्वा अन्तरिक्ष लोकः सम्राजति
गो.ब्रा.
'एष वै यजमानो यत् सोम तै.ब्रा. '
क्षत्रं वै सोमः - श.ब्रा. ३.४.१.१०
(२७) चन्द्रमा, (२८) वेदज्ञान, (२९) वेद ।
वीर्य के अर्थ में-
'सोमेनादित्या बलिनः
सोमेन पृथिवी महीः
अप्यो नक्षत्राणामेषाम्
उपस्थे सोम आहितः ।'
ऋ. १०.८५.२; अ. १४.१.२; आप.मं.पा. १.९.२
वेदानां दुह्यं भृग्वंगिरसः सोमपानं मन्यन्ते । सोमात्मको ह्ययं वेदः । तदप्येतत् ऋचोक्तं सोमं मन्यते पपिवान्-गो.ब्रा.
(३०) वीर्यवान् पुरुष
'सोमो वधूयुरभवत् '
ऋ. १०.८५.९; अ. १४.१.९

सोमक्रयणी - (१) शासन कार्य, (२) ऐश्वर्य तथा सोमादि ओषधियों के ग्रहण करने की क्रिया ।
'पूषा क्षोमक्रयण्याम् '
वाज.सं. ८.५४; तै.सं. ४.४.९.१; का.सं. ३४.१४.

सोमकामः - (१) संसार में कामना या संकल्प रूप से प्रेरक होकर सर्वत्र विद्यमान, (२) राष्ट्र की कामना वाला ।
'अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुः '
ऋ. १.१०४.९; अ. २०.८.२; ऐ.ब्रा. ६.११.१०; गो.ब्रा. २.२.२१; आश्व.श्रौ.सू. ५.५.१९
(३) ब्रह्मानन्द रस की कामना करने वाला, (४) सोम रस की कामना करने वाला -इन्द्र (५) राष्ट्र शासन का अभिलाषी ।
'यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिः'
अ. २०.३४.१७
(४) सोम की कामना वाला ।

'सोमकामं हिते मनः'

ऋ. ८.६१.२; अ. २०.११३.२; साम. २.५८४

सोमजा – बन्धन के दो प्रकार इन्द्रजा और सोमजा में एक । सोमजा वह बन्धन है जो अन्न के आधार पर वश किया जाता है ।

'इन्द्रजाः सोमजाः'

अ. ४.३.७

सोमजामयः – (१) लोकोत्पादक पंचमहाभूतगण, (२) जीवगण के उत्पादक बन्धुवत् पञ्चमहा भूतगण ।

'बृहस्पतिर्वृषभः सोमजामयः'

ऋ. १०.९२.१०

सोमजुष्ट – सोम् -विद्वान् पति और पत्नी द्वारा प्रेमपूर्वक स्वीकृत ।

'सोमजुष्टं ब्रह्मजुष्टम्'

अ. २.३६.२

स्तोम – (१) वीर्य, (२) वीर पुरुषों की उत्पन्न करने का कार्य

'वीर्यं वै स्तोमा-श.ब्रा.

वीरजननं वै स्तोमः-तै.ब्रा.'

(३) राजा का बल, (४) सेनाबल

'अस्य स्तोमस्य सुभगे नि बोध'

अ. १९.४९.५

स्तोमतष्ट – स्तुति वचनों के द्वारा स्तुति करने वाला

'होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः'

ऋ. १०.१५.९; अ. १८.३.४७; मै.सं. ४.१०.६:१५७.१६; तै.ब्रा. २.६.१६.२

स्तोमतष्टा – स्तुतिमन्त्रों द्वारा सुअलंकृत

'अच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति'

ऋ. ३.३९.१

स्तोमतष्टासः – वेद के सूक्तों को खोलकर बतलाने वाले विद्वान्

'होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्स्कैः'

ऋ. १०.१५.९; अ. १८.३.४७; मै.सं. ४.१०.६; १५७.१६; तै.ब्रा. २.६.१६.२

सोमधानः – (१) सोम से भरा हुआ, (२) जीवन शक्ति से पूर्ण

'यो अस्याः हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः'

अ. ९.१.६

(२) सोम उत्तम शिष्य वा शास्ता के धारण करने योग्य पात्र या आश्रम

'इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश'

ऋ. ९.७०.९; १०८.१६

(३) सोम या अन्न को रखने वाला पात्र

'ह्रदा इव कुक्षयः सोमधानाः'

ऋ. ३.३६.८

सोमधाना – द्वि.व.। अन्न और ऐश्वर्य को धारण करने वाले इन्द्रा विष्णू

'इन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना'

ऋ. ६.६९.२

सोमनेत्रः – (१) आचार्य के अधीन रहने, वाला विद्वान् शासक (२) सौम गुणवान् नेता वाला राजा पुरुष ।

'सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य उपरिसद्भ्यो दुवस्वद् भ्यः स्वाहा'

वाज.सं. ९.३५; वाज.सं. (का.) ११.१.१.; श.ब्रा. ५.२.४.५.

सोमपर्व – (१) सोम की गांठ, (२) राजपद या राज्य का पालन करने वाला पुरुष ।

'विश्वेभिः सोमपर्वभिः'

ऋ. १.९.१; अ. २०.७१.७ साम. १.१८०: वाज.सं. ३३.२५

(३) जगत् का अवयव, (४) राष्ट्र का अंग, (५) सोमलता की गांठ ।

सोमया – उत्पन्न संसार का रक्षक

'यच्चिद्धि सत्य सोमयाः'

ऋ. १.२९.१; अ. २०.७४.१; ऐ.ब्रा. ७.१६.९; आश्व.श्रौ.सू. ७.११.३९; शां.श्रौ.सू. १५.२२; वै.सू. ३२.८

सोमपातमः – (१) पदार्थों को किरणों से रक्षा करने वाला ।

'यः कुक्षिः सोमपातमः'

ऋ. १.८.७; अ. २०.७१.३

जो सूर्य के समान समस्त पदार्थों से रस भाग अपने भीतर से लेने में समर्थ है ।

(२) सोमेभिः सोमपातमम्

ऋ. ६.४२.२; ८.१२.२०; साम. २.७९१

सोमपावत् – (१) सोम पीने वाला-इन्द्र (सोमपावा) (२) ऐश्वर्य या ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र का रक्षक । ज.दे.श.।

'दानाय मनः सोमपावन्नस्तु ते'

ऋ. १.५५.७

(२) सोम रस का पान करने वाला इन्द्र, (३) सन्तानों का रक्षक (४) सज्जनों का रक्षक। दे. 'ऋजीष'
'शुष्मी राजा वृत्रहासोमपावा'
ऋ. ५.४०.४; अ. २०.१२.७; तै.सं. १.७.१३.४
(५) सोम रस के समान समस्त उत्पादक और प्रेरक बल का स्वयं धारक-इन्द्र (६) जगत् ऐश्वर्य पुत्र शिष्यादि का पालक
'वृत्रघ्नः सोमपाव्नः'
ऋ. ८.७८.७

सोमपीति - स्त्री.। (१) सोम रस का पान सा. (२) अग्नायी, (३) 'यज्ञिय' (४) शान्ति-रक्षा-दया.। दे. 'सधमाद्या'

सोमपीथ - (१) सोमपान, (२) राष्ट्र का पालन कार्य
'अनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः'
ऋ. १०.१५.८; वाज.सं. १९.५१; अ. १८.३.४६
'विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथः'
वाज.सं. ८.५; वाज.सं. (का.) ८.१.३; मै.सं. ४.६.९: ९२.५; श.ब्रा. ४.३.५.१८; मा.श्रौं.सू. २.५.१.५
(३) राज्य, ऐश्वर्य या राजपद का पालन एवं भोग।

सोमपुत्राः - (१) सौम्यगुण सम्पन्न चन्द्रवत् आह्लादकारी पुत्र को उत्पन्न करने वाली स्त्री
'इन्द्रपुत्रे सोमपुत्रे'
अ. ३.१०.१३

सोमपुरोगवः - (१) सोम रस या ब्रह्म रस प्राप्ति में अग्रसर (२) राजा के आगे आगे चलने वाला, (३) ऐश्वर्य या राष्ट्र का नेता
'ब्रह्मा सोमपुरोगवः'
वाज.सं. २३.१४; श.ब्रा. १३.२.७.१०

सोमपूर्णकलश - कल (गत्यर्थक) + अशच् = कलश। अर्थ - सोम से पूर्ण कलश, (२) संसार को उत्पन्न करने वाले सामर्थ्य जीवन रस, जीवन रस, वीर्य एवं अमृत से पूर्ण ब्रह्माण्ड या गतिशील जगत्।
'सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि'
अ. ९.४.६

सोमपृष्ठा - आत्मा और ब्रह्म को अपने पीठ पर धारण करने वाली आत्मा और ब्रह्म ज्ञान की पोषिका इडा। (२) बुद्धि रूपी कामधेनु।
'घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठा'
ऋ.खि. ९.८६.१; अ. ७.२७.१

सोमपृष्ठ - (१) शान्ति आदि गुण वाले विद्वान् जिसके पृष्ठ रूप राजा हैं, (२) वेधाः (३) ज्ञान धारण करने वाला
'सोमपृष्ठाय वेधसे'
ऋ. ८.४३.११: अ. ३.२१.६; २०.१:३; तै.सं. १.३.३४.७; मै.सं. २.१३.१३:१६३.४; का.सं. ७.१६;४०.५; ऐ.ब्रा. ६.१०.५; गो.ब्रा. २.२.२०
(४) वीर्य प्रेरक परमैश्वर्यवान् परमेश्वर।
(६) राष्ट्र या राजपद को पालन करने एवं उसको अपने ऊपर लेने वाला। (७) संसार का पालक, (८) सौम्य गुण का पोषक
'कीलालये सोमपृष्ठाय वेधसे'
ऋ. १०.९१.१४; वाज.सं. २०.७८; मै.सं. ३.११.४:१४६.१४; का.सं. ३८.९; तै.ब्रा. १.४.२.२; आप.श्रौ.सू. १९.३.२.

सोमपृष्ठासः अद्रयः - (१) जल वर्षणकारी मेघ, (२), जिनके पीठ पर सोमरस हों, ऐसे सोमरस चुलाने वाले अद्रि-पत्थर (३) अभिषिक्त नामक या राजा के अपने पीठ पर रखने वाले तदधीन सेनाजन, (४) सर्वोत्पादक प्रभु के भक्त, (५) वीर्य द्वारा पुष्ट ऊर्ध्वरता जन
'दिवो मानं नोत्सद्दन्
सोमपृष्ठासो अद्रयः।'
ऋ. ८.६३.२

सोमपेय - (१) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र का पालक या उपभोक्ता, (२) सोमपाल करने वाला -इन्द्र
'वर्धन्तु त्वा सोमपेयाय धृष्णो'
ऋ. ३.५२.८
(३) सोमवान (४) ऐश्वर्य भोग का पालन करने योग्य पद
'अष्टाभिर्दशभिः सोमपेयम्'
ऋ. २.१८.४
(५) ऐश्वर्य का पान-दया.। दे. 'मृधस्'

सोमभृत् - (१) उत्पादक राष्ट्र का पालन पोषण करने वाला, (२) सोम की रक्षा करने वाला
'श्येनाय त्वा सोमभृते'
वाज.सं. ५.१;६.३२; तै.सं. १.२.१०.१; ६.२.१.३; मै.सं. १.२.६:१६.४; १.३.३; ३०.१७; ३७.९: ८८.११; का.सं. २.८;३.१०; २८.८; श.ब्रा

३.४.१.१२; ९.४.१०

सोमयोग - सोम आदि ओषधियों का साधन
'जिष्णवे योगाय सोमयोगैर्वा युनज्मि'
अ. १०.५.४

सोमरभस्तरः - प्रेरक बल से बलवाली
'वायोश्चिदा सोमरभस्तरेभ्यः'
ऋ. १०:७६.५

सोमराज्ञी - (१) ओषधियों की एक संज्ञा (२) ओषधि जिसका राजा सोम है अथवा जिनमें सबसे अधिक गुणकारी सोमलता है।
'उत् त्वा मृत्योरोषधयः सोमराज्ञीरपीपरन्'
अ. ८.१.१७
(३) सोम के समान गुणों वाली ओषधि
'या ओषधीः सोमराज्ञीः'
ऋ. १०.९७.१८; १९; वाज.सं. १२.९२,९३; ऐ.ब्रा. ८.२७.५,६; साम.मं.ब्रा. २.८.३,४

सोमवत् पिता - सोमयुक्त पिता, सोमराजा, पालक पुरुष
'पितृभ्यः सोमवद्भ्यः स्वधा नमः'
अ. १८.४.७३

स्तोमवर्धनः - (१) प्रजा समूहों को उठाने वाला (२) स्तुति समूहों से हृदय में वृद्धि प्राप्त करने वाला
'त्वं हि स्तोमवर्धनः'
ऋ. ८.१४.११; अ. २०.२९.१

स्तोमवाहाः - (१) स्तुति समूहों को या वेद मन्त्रों को धारण करने वाला विद्वान्।
'सखाय स्तोमवाहसः'
ऋ. १.५.१; अ. २०.६८.११; साम. १.१६४; 2.90; जै.ब्रा. १.२२६

सोमशित - (१) न्यायाधीश से तीक्ष्ण किया हुआ, (२) दण्डनीय रूप से निर्धारित, (३) दण्डनीय पुरुष
'सोमशितं मघवन् सं शिशाधि'
ऋ. ७.१०४.१९; अ. ८.४.१९
(२) सोम, ऐश्वर्य का उत्तम शासक से तीव्र हुआ शत्रु

सोमशिताः - प्रेरक वीर्य से तीक्ष्ण प्राणगण।
'एह गमन्नृषयः सोमशिताः'
ऋ. १०.१०८.८

सोमसखा - (१) ईश्वर का सहवर्ती-पुरुष या विद्या
'स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि'
वाज.सं. ४.२०; तै.सं. १.२.४.२; मै.सं. १.२.४:१३.७; ३.७.६: ८२.११; १३; का.सं. २.५; २४.३; श.ब्रा. ३.२.४.२०
(२) सोम ही जिसका सखा हो-इन्द्र

सोम सत्सरुं - (१) सोमबीज रूप अन्न के स्थापन के लिये जो हल चलाया जाता है-कृषि
(२) ब्रह्मास्वाद रस का आश्रयस्थान ब्रह्मरन्ध्र तक ले जाने वाला
'सुशीमं सोमसत्सरु'
अ. ३.१७.३

सोमस्य तनूः - सोमस्वरूप, आल्हाद कारी चन्द्रमा का स्वरूप।
'सोमस्य तनूरसि'
वाज.सं. ५.१; तै.सं. १.२.११.१; ६.१.१.३; मै.सं. १.२.६:१६.३; ३.७.९: ८८.९; का.सं. २.८; २४.८; श.ब्रा. ३.४.१.१०; आप.श्रौ.सू. १०.६.६; आप.मं.पा. २.७.२०; हि.गृ.सू. १.१०.५

सोमस्यनीविः - (१) उत्पादक जल को एकत्र करने वाली पृथ्वी
'सोमस्य नीविरसि'
वाज.सं. ४.१०; का.सं. २.३; श.ब्रा. ३.२.१.१५; आ.श्रौ.सू. १०.६.६

सोमस्य भक्षः - उत्पन्न जगत् का या जीव संसार का प्राण
'सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रः'
अ. ९.४.५
'प्राणो वै भक्षः'
श.ब्रा. ४.२.१.२९

सोमस्यभ्राता - शरीर में उत्पन्न होने वाले वीर्य का पोषक वृष्ण्य या वृष ओषधि
'उत सोमस्य भ्रातसि'
अ. ४.४.५

सोमस्य वेना - (१) प्रेरक बल, वायु या विद्युत् की वेगवती गमन करने वाली शक्ति, (२) वीर्य की कान्ति या तेज।
'सोमस्य वेनामनु विश्व इद् विदुः'
अ. १.३४.२
रथ में प्रेरक बल वायु या विद्युत की वेगवानी शक्ति विद्वान् गण बताते हैं।

शरीर में समस्त कान्ति और तेज को धारण करने के लिए विद्वान् उपदेश करते हैं ।

सोमस्यांशुः - (१) सोम का पुत्र बुध-सा (२) सबके प्रेरक बल का भण्डार, (३) शुक्लप्रतिपदा में दीखता हुआ चन्द्र

'सोमस्यांशो युधां पते'

अ. ७.८१.३

सोमसुत् - (१) सोम रस चुराने वाला (२) ऐश्वर्यों को उत्पन्न करने वाला (३) ओषधिरस से पुष्ट करने वाला उपायज्ञ

'दुरोण आ विशितं सोमसुद्भिः'

ऋ. ४.२४.८

सोमसुत्वा - (१) सोमरस चुलाने वाला, (२) परमेश्वर का उपासक (३) ब्रह्मचर्य पालन करने वाला-ब्रहमचारी, (४) ऐश्वर्य वान् पुरुष । दे. 'उदर्क'

सोमसुद् - सोम अर्थात् अभिषेक योग्य विद्वान् पुरुषों का अभिषेक करने वाला ।

'एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः सोमपाः'

ऋ. ८.४६.२६

स्तोमपृष्ठा - (१) बल को अपनी पृष्ठ या पालन सामर्थ्य में धारण करने वाली राजशक्ति, (२) पृथ्वी के ऊपर पालक होकर या श्रीसमृद्ध होकर विद्यमान स्त्री ।

'स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद'

वाज.सं. १४.४;१५.३; तै.सं. ४.३.४.२; मै.सं. २.८.१:१०७.३; २.८.७:१११.११; का.सं. १७.१,६; श.ब्रा. ८.२.१.७.

सोममाद् - सोम, अन्न ऐश्वर्य या बल वीर्य से हर्षयुक्त इन्द्र

'सोममादो विदथे दुध्रवाचः'

ऋ. ७.२१.२

सोमराज्ञी - (१) सोमवल्ली के गुणों से प्रकाशित ओषधि

'या ओषधीः सोमराज्ञीः'

ऋ. १०.९७.१८.१९; वाज.सं. १२.९२; ९३; ऐ.ब्रा: ८.२७.५; ६; साम.मं.ब्रा. २.८.३; ४

सोम्यः - (१) सोम + यत् = स्तोम्य, सोम सम्यादिन् - (सोमरस बनाने वाला)।

(२) सोम रस-मिश्रित

'तेभिर्दुग्धं पपिवान्त्सोम्यं मधु
इन्द्रो वर्धते प्रथते विषायते'

ऋ. १०.९४.९

उन सैनिकों के साथ सोममिश्रित दूध पीकर राजा वृद्धि प्राप्त करते हैं-ज.दे.श.।

इन्द्र का अर्थ सायण ने इन्द्र ही किया है

(३) सोम बनाने वाला । दे. 'अच्छा'

'रमध्वं मे वचसे सोम्याय
ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवैः'

ऋ. ३.३३.५; नि. २.२५

ऐ नदियो, मुझ सोम बनाने के लिए अपनी तेज गति से मुहूर्त मात्र ठहर जाओ ।

(४) सोमपान करने योग्य-सा. (५) सोमपान करने वाला-सा. (६) योगैश्वर्य सम्पादक-दया. दे. 'अथर्वन्'

'अंगिरसो नः पितरो नवाग्वाः
अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः'

ऋ. १०.१४.६; अ. १८.१.५८; वाज.सं. १९.५०; तै.सं. २.६.१२.६; नि. ११.१९.

(७) ऐश्वर्य -सम्पादक (८) सौम्य स्वभाव वाला

'उपहूताः नः पितरः सोम्यासः'

ऋ. १०.१५.५; अ. १८.३.४५, वाज.सं. १९.५७; तै.सं. २.६.१२.३; मै.सं. ४.१०.६: १५६.१४; का.सं. २१.४; आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२२ .

(९) अपने राष्ट्र और पर राष्ट्र में रहने वाला प्रणिधि ।

(१०) सोमयज्ञ करने वाला-सा.

(११) सौम्य पुरुष-दया. ।

'आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां
भूमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम्

ऋ. १.३१.१६; ला.श्रौ.सू. ३.२.७

हे अग्नि, तू सोम यज्ञ करने वालों का प्रापणीय पिता है, प्रकृष्ट मति वाला है, संसार का भ्रामक या कर्म-निर्वाहक है (भूमिः) सभी पदार्थों को प्रत्यक्ष कराने वाला या दर्शन कारी है ।-सा.

हे परमेश्वर, तू सौम्य पुरुषों को तत्वदर्शी बनाने वाला (सोम्यानां मर्त्यानाम् ऋषिकृत्) एवं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नायक है (भूमिःअसि) ।

सोम्यंसदः - विद्वानों की सभा'

'अस्माददय सदसः सोम्यादा'

ऋ. १.१८२.८

स्तोमः - (१) स्तोमः स्तवनात् (सत्य विद्या के स्तवन के वेद को स्तोम कहा गया है)।
(२) अग्नि होत्र आदि कर्म-सा. । दे. 'अजीजात्'।
'स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निम्
अजीजनञ्छक्तिभी रोदिसि प्राम्'
ऋ. १०.८८.१०; नि. ७.२८
देवताओं ने द्युलोक में होत्रादि कर्मों द्वारा द्यौ और पृथ्वी के आपूरक आदित्य रूपी अग्नि को उत्पन्न किया।
(३) प्रशस्त, स्तवनीय-दया. दे. 'अश्वयुः'
'वज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः'
ऋ. १.५१.१४
उपार्जन कर्मों में प्रशस्त द्वारस्थ स्तम्भ की तरह-दया.।
जो इन्द्र युद्धों में स्तोम अर्थात् स्तोत्र की तरह निश्चल या प्रधान हो खड़े रहते हैं।
(४) यज्ञ। दे. 'उरण'

स्तोमाः - (१) प्राणधारी जीव
'तत षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमाः'
अ. ८.९.६
सप्तस्तोमाः - श.ब्रा. ९.५.२.८
त्रिवृत पञ्चदशः सप्तदश एक
'विंश ऐते वै स्तोमानां वीर्यवत्तमाः श.ब्रा.'
प्राणाः वै स्तोमाः- श.ब्रा. ८.४.१.३
स्तोमाः वै परमाः स्वर्गलोकाः - ऐ.ब्रा. ४.१८
'तं पञ्च दशस्तोमं वोजो वलमित्याहुः'
प्राणो वै त्रिवृदात्मा पञ्चदशः - तै.ब्रा. १९.११.३
'चतुर्दश हि एव एतेषां करूकराणि
भवन्ति वीर्यं पञ्चदशम् - गो.ब्रा.'
प्रजापतिःसप्तदश गो.ब्रा.
सप्तदशो वै पुरुषो दश प्राणाः'
चत्वारि अंगानि आत्मा पञ्च-
सप्तदशम् - श.ब्रा.
तद् बै तोमेति द्वे अक्षरे, त्वगिति द्वे, असृग् इति द्वे, मेद इति द्वे, मज्जेति द्वे, मांसमिति द्वे, स्नावे ति द्वे, अस्थीनि द्वे, तर उ षोड़शकलाः।
'अथ य एतदन्तरेण प्राणः सञ्चरति'
स एव सप्तदशः प्रजापतिः - श.ब्रा. १०.४.१.१७
सप्तदशएषस्तोमो भवति प्रतिष्ठायै'
प्रजात्यै। तै.ब्रा १२.६.१३
एक विंशोऽयं पुरुषं दशहस्ता
अंगला यो दशपाद्या आत्मा एकविंशः'
ऐ.ब्रा. १.१९.
एक विंशस्तोमम्। देवतल्प इत्याहुः'
तै.ब्रा. १०.१.१२
पञ्चदश स्तोम ओज और बल है, प्राण त्रिवृत है। आत्मा का नाम पञ्चदश है। इस मेरुपष्ठि या रीढ़ में १४ करूरक (मोहरें) हैं। उनका धारक बल पन्द्रहवां है। प्रजापति सप्तदश है। दश प्राण चार अंग ग्रीवा सिरऔर सत्रहवां स्तोम प्रतिष्ठा और प्रजोत्पत्ति का निमित्त है। एक विंश स्तोम भी यह पुरुष है। यही देवतल्प (इन्द्रियों की शय्या) है जिसमें दस प्राण सोते हैं।

स्तोमपृष्ठाः - स्तोम ही जिसका पृष्ठ हो इष्टका-यज्ञ। दे. 'अप्सस्'
'स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद'
वाज.सं. १४.४;१५.३; तै.सं. ४.३.४.२; मै.सं. २.८.१:१०७.३; २.८.७:१११.११; का.सं. १७.१,६; श.ब्रा. ८.२.१.१७.

स्तोमवाहाः - स्तुतिवचनों और स्तुत्य पदाधिकार को धारण करने वाला
'श्रोताहवं गृणतः स्तोमवाहाः'
ऋ. ६.२३.४

सोम्यंमधु - सोममय मधुर रस

सोमा (सोमन्) - (१) अभिषव कर्ता, सोम रस चुलाने वाला। दे. 'उशिज' (२) सौम्य। दे. 'वातासः' 'सुशर्माणः'
'सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते'
ऋ. १०.७८.२
यज्ञ के लिए प्रयत्नशील यजमान के लिए मरुद्गण या व्यापारिकवर्ग सुखी बन्धु वर्ग के समान (सुशर्माणः न) सौम्य होवें (सोमा)। (३) यज्ञ कर्म करने वाला।
'सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते'
ऋ. १.१८.१; साम. १.१३९; वाज.सं. ३.२८; तै.सं. १.५.६.४;८.४; मै.सं. १.५.४: ७०.१३; का.सं. ७.२,९; श.ब्रा. २.३.४.३५; तै.आ १०.१.११; नि. ६.१०
हे वेदों तथा वेदज्ञ विद्वानों को पालन करने वाले परमेश्वर, तू यज्ञ कर्म करने वाले अपने

उपासक को उत्तम पदार्थों का ज्ञाता एवं उपदेष्टा (स्वरणं) बना ।
(४) सु + मनिन् = सोमन । प्रथमा एक वचन में रूप है 'सोमा' । उद्योगी, सदा सृजनशील पुरुष-दया. ।
सोमरस बनाने वाला -सा. । दे. 'उशिज्' ।
हे ब्रह्मणस्पते, मुझ सोम कर्ता को सुयशस्वी, ज्ञानवान, या प्रकाशवान् बना-सा. ।
हे वेदपति परमेश्वर, मुझे उद्योगी पुरुष की तरह ऐश्वर्य-सम्पादक और तेजस्वी कीजिए ।

सोमादः - ब.व.। ए.व. में सोमाद् । सोम + अद् + क्विप् = सोमाद् । (१) सोमरस पीने वाले या खाने वाले ।
(२) पत्थर (मावा) जिनके द्वारा सोम रस चुलाया जाता है । (३)सोम रस पीने वाले सैनिक
'ते सोमादो हरी इन्द्रस्य निंसते
अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि '
ऋ. १०.९४.९
वे पत्थर इन्द्र के घोड़ों को चुभते हैं । -सा. ।
सोमरस पीने वाले सैनिक राजा की तरह बलवीर्य प्राप्त करते हैं (इन्द्रस्य हरी निंसते) ।
(४) प्रेरक आत्मा की शक्ति प्राप्त करने वाले दश प्राण ।

सोमानां पाता - सोमों - समस्त जगत् के जीवों का पालन कर्ता ।

सोमापूषणा - (१) सोम और पूषा, (२) उत्पादक पिता और पोषक माता, (३) नर मादा (४) देह में प्राण और अपान, (५) सूर्य और पृथिवी
'सोमापूषणा जनना रयीणाम् '
ऋ. २.४०.१; तै.सं. १.८.२२.५; मै.सं. ४.११.२:१६३.१४; का.सं. ८.१७; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१.
'प्रजापतिरमृतम् - श.ब्रा.
स्वा वै म एषा इति तस्मात्
सोमो नाम- श.ब्रा. '
(वह पुत्रोत्पादक स्त्री और ऐश्वर्योत्पादक स्त्री और ऐश्वर्योत्पादक प्रजा मेरी ही है -ऐसा कहने वाला पुरुष प्रजापति राजा सोम है) ।
'सोमः राज्यम् आदत्त
राजा वै सोमः '
- श.ब्रा.
सोमो राजा राजपतिः- श.ब्रा.
'स यदाह सम्राड् इति सोमं वा '
एतदाह -गो.ब्रा.
क्षत्रं सोमः- ऐ.ब्रा.
प्राणः सोमः श.ब्रा.
रेतः सोम-कौ.ब्रा.
सोमो रेतोऽधात् - तै. ब्रा.
सोमो वै ब्राह्मणाः - तै.ब्रा.
इयं वै पूषा । इयं तीदं सर्वं पुष्यतिं तदिदं किञ्च ।
'इयं वै पृथिवी पूषा- '
श.ब्रा. २.५.४.७
प्रजाननं वै पूषा-श.ब्रा.
यशवः पूषा - ऐ.ब्रा.
इस प्रकार सोम और पूषा के अनेक अर्थ ब्राह्मण ग्रन्थों में किए गए हैं ।

सोमरुद्रा - (१) सोम और रुद्र, (२) चन्द्रमा और रुद्र, (३) चन्द्रवत आह्लादक और वैद्य के समान देश से दुष्टों को भगाने वाला राजा, (४) औषधि और वैद्य
'सोमारुद्रा धारयेमसुर्यम् '
ऋ. ६.७४.१; मै.सं. ४.११.२: १६५.९; का.सं. ११.१२

सोमावती - (१) सोमवत् रसवीर्य विपाकवाली, (२) बल उत्पन्न होने वाली ओषधि ।
'अश्वावतीं सोमवतीम् '
ऋ. १०.९७.७; वाज.सं. १२.८१; तै.सं. ४.२.६.४; मै.,सं. २.७.१३; ९३.१५; का.सं. १६.१३; तै.ब्रा. २.८.४.८.

स्तोम्या - (१) स्तुत्या उषा, (२) गुणवती, (३) स्तुति कारी मन्त्र समूह को पढ़ाने वाली विदुषी स्त्री ।
'अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मे
अवीवृधध्वमुशतीरुषासः '
ऋ. १.१२४.१३
हे स्तुतियोग्य, गुणवती प्रभात बेलाओं के समान उत्तम गुणों से युक्त विदुषी स्त्रियां (स्तोम्याः), अपने आदरयुक्त पुरुषों का गुणानुवाद करो (अस्तोढम्) और मेरे महान् धन से, बल और ज्ञान से उत्तम गुणों और मन से कामना करती हुई वृद्धि को प्राप्त हो

(अवीवृधध्वम्) ।

सोम्यासःपितरः - सोम + यत् = सोम्य । ब.व.। में सोम्यासः (१) ऐश्वर्य सम्पन्न पितर (२) सौम्य सोमार्ह, सोम सम्पादक पितर जो मरने के बाद प्राणमात्र धारण करते हैं-सा. । दे. 'अवन्तु' ।

'उदीरतामवर उत्परासः
उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञाः
ते नोऽवन्तु पितरो हनेषु'

ऋ. १०.१५.१;अ. १८.१.४४;वाज.सं. १९.४९;तै.सं. २.६.१२.४; मै.सं. ४.१०.६;१५७.५;नि. ११.१८

पितरों का मृत्यु के बाद अल्प लोकों में रहने की इस ऋचा में चर्चा है । थियोसोफी मत वाले इस सिद्धान्त को मानते हैं परन्तु आर्य समाजी विद्वान् यहां 'पितरः' का अर्थ विद्वान् ऐश्वर्य सम्पादक पुरुष समझते हैं ।

सोमिन् - सोम + इन् । सोम यज्ञ करने वाला ऋत्विज् । दे. 'अद्रि'

'श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः'

ऋ. १०.९४.१; नि. ९.९.

हे ऋत्विजो, आप इन्द्र के लिए स्तुति पूर्ण वचन बोलें ।

अथवा,

तुम राजा के लिए प्रशस्त वचनों वाले शब्दों को धारण करोगे तब तुम ऐश्वर्य सम्पन्न रहोगे । (२) यज्ञशील, (३) ऐश्वर्यवान् । दे. 'आशु'

सोमिनःब्राह्मणासः - (१) सोमयज्ञ करने वाले ब्राह्मण, (२) अपने अधीन ब्रह्मचारियों को शिक्षा देने वाले ब्राह्मण

'ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत'

ऋ. ७.१०३.८

सोमीयज्ञ - (१) परमानन्द रूप वाले परमेश्वर की उपासना (२) सोम यज्ञ

'या यज्ञादिन्द्र सोमिनः'

ऋ. १०.५६.१;अ. १३.१.५९;ऐ.ब्रा. ३.११.१६;जै.ब्रा. ४.१६८; आप.श्रौ.सू. ६.२४.८; मा.श्रौ.सू. १.६.३.१०

स्तोषम् - स्तौमि (स्तुति करता हूँ) । लट् के अर्थ में लुङ् का प्रयोग हुआ है । अट् का अभाव आर्ष है ।

स्तोषाम - स्तुयः (स्तुति करते हैं) लट् के अर्थ में लुङ् का प्रयोग दे. 'धियन्धा' ।

सौकृत्य - उत्तम रीति से कार्य का किया जाना ।

'सौकृत्याय सखा हितः'

ऋ. १०.१३६.४

सौत्रमणी - एक यज्ञ ।

'स यो भ्रातृव्यवान् स्यात्
स सौत्रामण्या यजेत'

(शत्रुवाला राजा सौत्रामणी यज्ञ करता है) । यजुर्वेद के १९ से २१ अध्याय सौत्रामणी यज्ञ का उल्लेख करते हैं ।

सौत्रामणी यज्ञ - सूत्राणि यज्ञोपवीतादिनी मणिना ग्रन्थिना युवानि ध्रियन्ते यस्मिन् इति सौत्रामणी-दया. ।

(१) स्वाध्याय रूप यज्ञ में जो यज्ञोपवीत आदि सूत्र मणि ग्रन्थि आदि के सहित शिष्य द्वारा धारण कराया जाता है वही स्वा. दयानन्द के अनुसार सौत्रामणी यज्ञ है ।

(२) सुत्रामा उत्तम रीति से त्राण पालन करने वाले त्राण पालन करने वाले राजा के राष्ट्र पालन के निमित्त अभिषेक करने में भी यज्ञ का पूर्ण स्वरूप उपलब्ध होता है ।

'तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते'

वाज.सं. १९.३१

सौधन्वनाः - (१) ऋभु जो सुधन्वा के पुत्र थे । -सा. (२) यथार्थवादी ज .दे.श.। दे. 'ऋभु'

'सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः
संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः'

ऋ. १.११०.४; नि. ११.१६

सुधन्वा के पुत्र (सौधन्वनाः) सूर्यसमान दर्शन वाले (सूरचक्षसः) ऋभुलोग (ऋभवः) संवत्सर के वसन्तादि ऋतुओं से अग्निष्टोमादि अनुष्ठेय कर्मों से (धीतिभिः) संयुक्त हुए (समपृच्यन्त) -सा. ।

हे सूर्य समान यथार्थवादी या परमेश्वर की आज्ञा के अनुसार चलने वाले (सौधन्वनाः सूरचक्षसः) आर्य व्यापारी लोग (ऋभवः) वर्ष भर (संवत्सरे) व्यापारिक कर्मों से संयुक्त रहते हैं (धीतिभिः समपृच्यन्त) ।

स्तौनः - चोर

'न ये स्तौना अयासो मह्ना

नू चित् सुदानुरव यासदुग्रान्'
ऋ. ६.६६.५

सौपर्णं चक्षुः - गरुड़ या बाज के समान आंख
'सौपर्णं चक्षु रजस्त्रं ज्योतिः'
अ. १६.२.५

सौप्रजास्त्व - उत्तम प्रजाओं का उत्पादक सामर्थ्य
'आशीर्ण ऊर्जमुत सौप्रजस्त्वम्'
अ. २.२९.३

सौभग - (१) ऐश्वर्य
'अग्निर्वव्ने सुवीर्यम्'
अग्निः कण्वाय सौभगम्'
ऋ. १.३६.१७
(२) सौभाग्य
'उच्च तिष्ठ महते सौभगाय'
अ. २.६.२; वाज.सं. २७.२; तै.सं. ४.१.७.१; मै.सं. २.१२.५: १४८.१३; का.सं. १८.१६

सौमनसः - ब.व.। (१) उत्तम हृदय वाले।
'सायंप्रातः सौमनसो वो अस्तु'
अ. ३.३०.७
(२) ए.व.। चित्त का उत्तम भाव
'यजा महे सौमनसाय देवान्'
ऋ. १.७६.२; आप.श्रौ.सू. २४.१२.१०
तू चित्त का उत्तम भाव बनाए रखने के लिए देवों या विद्वानों की पूजा या सत्संग कर (महे सौमनसाय देवान् यज)।
'इन्द्रावरुणा सौमनसमदृप्तम्'
ऋ ८.५९.७
(३) उत्तम चित्त वाला, (४) प्रसन्न, कृपालु, (४) शुभ संकल्प करने वाला
'येषु सौमनस्ते बहुः'
अ. ७.६०.३; वाज.सं. ३.४२; आप.श्रौ.सू. ६.२७.३; ला.श्रौ.सू. ३.३.१.
(४) सुन्दर संकल्प, (५) अध्यवसाय। दे. 'अथर्वन्'
'तेषां वयं सुमतौ यज्ञिपानाम्
अपि भद्रे सौमनसे स्याम।'
ऋ. १०.१४.६; अ. ६.५५.३; १८.१.५८; वाज.सं. १९.५०; तै.सं. २.६.१२.६; नि. ११.१९ (६) सत्य मनोभाव-सा. (७) कृपा-दया। दे. 'अस्मै'।

सौमापौष्णः - (१) सोम और पूषा देवता वाला, (२) राष्ट्र के ऐश्वर्य और प्रजा को पोषण कारी हरितवर्ण का खेतों में लगे अन्न, (३) औषधि रस का वेत्ता वैद्य और कृषि विभागाध्यक्ष।
'सौमापौष्ण श्यामो नाभ्याम्'
वाज.सं. २४.१

सौर्य - (१) सूर्य सम्बन्धी, (२) प्रकाशकारी विभाग का
'श्वेताः सौर्याः
वाज.सं. २४.१९; आप.श्रौ.सू. २०.१५.३

सौर्ययामौ - (१) सूर्य और यम (२) वायु और आकाश इन दो के गुणों को दिखाने वाले काले और सफेद पोशाक को पहनने वाले मुख्य अधिकारी
'सौर्ययामौ श्वेतश्च कृष्णश्चपार्श्वयोः'
वाज.सं. २४.१; मै.सं. ३.१३.२:१६८.१२

सौर्यवर्चस - सूर्य के समान कान्तिमान्
'तस्याश्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत्'
अ. ८.१० (५).६

सौरी - सूर्य के समान तेजस्वी प्ररुष की
'सौरी बलाका'
वाज.सं. २४.३३; तै.सं. ५.५.१६.१; मै.सं. ३.१४.१४: १७५.६; का.सं. (अश्व.) ७.६.

स्तौता - महती, बड़ी, tall
'ससवान् स्तौलाभिर्धौतरीभिः'
ऋ. ६.४४.७.

सौव - (१) प्रजापति का स्वर या आकाश रूप श्रोत्र। आकाश की तन्मात्रा से ही श्रोत्र बना है।
'तस्य श्रोत्रं सौवम्'
वाज.सं. १३.५७, तै.सं. ४.३.२.२, मै.सं. २.७.१९:१०४.१९; का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.५

सौवश्व्य - (१) उत्तम अश्व से प्राप्तव्य यश
'सौवश्व्यं यो वनवत स्वश्वः'
ऋ. ६.३३.१
(२) उत्तम व्यापक किरणों वाला -सूर्य।
'प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानम्'
सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः'
ऋ. १.६१.१५; अ. २०.३५.५
तेज में उत्तम व्यापक किरणों वाले सूर्य में स्पर्धा करने वाले, अश्ववत् निर्भीक एवं उत्तम अभियक योग्य (सुष्विम्)
पुरुष को ही राष्ट्र चक्र प्राप्त होता है।

(३) सुन्दर अश्वों से युक्त, (४) सुन्दर इन्द्रियों से युक्त (५) उत्तम रश्मियों से युक्त

सौव्रत्य - उत्तमोत्तम व्रत

'मित्रं सौव्रत्येन'

वाज.सं. ३९.९

सौश्रवसम् - न. । उत्तम अन्न, ज्ञान और कीर्ति युक्त ऐश्वर्य

'अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु'

ऋ. ६.१.१२; ७४.२; मै.सं. ४.११.२: १६५.१२; ४.१३.६: २०७.१४; का.सं. ११.१२; १८.२०; तै.ब्रा. ३.६.१०.५

(२) उत्तम कीर्ति

'त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति'

ऋ. १.१६२.१३; वाज.सं. २५.२६; तै.सं. ४.६.८.१; मै.सं. ३.१६.१:१८२.१; का.सं. (अश्व.) ६.४.

(३) उत्तम ज्ञानोपदेश का अवसर

'आ तं भज सौश्रवसेष्वग्ने'

ऋ. १०.४५.१०; वाज.सं. १२.२७; तै.सं. ४.२.२.३; मै.सं. २.७.९: ८७.३; का.सं. १६.९; आप.मं.पा. २.११.२९.

सौश्रवस् - (१) उत्तम यश, कीर्ति जनक संग्राम, (२) उत्तम अन्नप्रद वर्षा

'तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम'

ऋ. ७.९८.४; अ. २०.८७.४

ह

ह - (१) विनिग्रहार्थक अव्यय । अह इति च ह इति च विनिग्राहार्थीयौ पूर्वेण संप्रयुज्येते । अहं और ह विनिग्रहार्थक अव्यय हैं, जैसे- अयम् अह इदं करोतु अयम् इदम् (यही ऐसा करे यह ऐसा)।

इदं ह करिष्यति इदं न करिष्यति (यही करेगा यह न करेगा) ।

(२) निश्चयार्थक अव्यय जिसका वैदिक साहित्य में प्रचुर प्रयोग मिलता है । दे. 'अवात ।

'तस्माद्धान्यन्न परः किं चरास'

ऋ. १०.१२९.२; तै.ब्रा. २.८.९.४

उस सत् ब्रह्म से दूसरा और कुछ नहीं था ।

'उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरम्'

ऋ. १.१५१.७

और (ह) तुम उसके निकट जाते हो (तम् उपगच्छथ) ।

'यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति'

ऋ. १.१५१.७; नि. ६.८.

और (ह) जो तुम्हें पञ्चयज्ञों से स्तुति या सत्कार करता हुआ (शशमानः) हवि आदि या योग्य पदार्थ देता है ।

'त्व हं त्यदिन्द्र कुत्समावः'

ऋ. ७.१९.२; अ. २०.३७.२

हतभ्राता - वह क्रिमि जिसका पोषक क्रिमि नष्ट कर दिया गया हो ।

'हतभ्राता हतस्वसा'

अ. २.३२.४; ५.२३.११

(२) कीटों के सहवर्ती कीटों को मारना

हतमाता - (१) कृमि जिसकी उत्पादक माता मार दी गई हो ।

'हतो हतमाता क्रिमिः'

अ. २.३२.४; ५.२३.११

(२) कीटाणुओं को प्रसव करने वाली रानी काट को मारना ।

हतवर्चा - निस्तेज

'अयज्ञियो हतवर्चा भवति'

अ. १२.२.३७

हतवर्चस् - हत मार्ग, जिसका वर्त्म अर्थात् मार्ग बन्द हो जाय । दे. 'अभ्राता' ।

'अमूर्या यन्ति योषितः
हिरा लोहितवाससः
अभ्रातर इव जामयः
तिष्ठन्तु हतवर्चसः'

अ. १.१७.१; नि. ३.४

बिना भाई की कन्या जिस प्रकार अपने पिता के कुल की ही पुत्र होने पर हो जाती है उसी प्रकार सभी रक्त बहाने वाली नाड़ियां रक्त बहाना बन्द कर दें ।

हतवृष्णीः - (१) ताड़ित हुए वर्षण शील (वृष्णि) मेघ से युक्त- जलधाराएं, (२) मारे गए बलवान् पुरुष या वृष्णि

'सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः'

ऋ. ४.१७.३

हतस्वसा - (१) कीट जिस वंश के मादा कीट नष्ट

कर दिए गए हों ।
'हतभ्राता हतस्वसा'
अ. २.३२.४; ५.२३.११
(२) कीटाणुओं को इस तरह से मारना कि इसकी भगिनी मादा कीट भी मारी जाय ।

हतांघशंस - पाप की शिक्षा देने वाले दुष्ट पुरुषों का नाश करने वाला ।
'हताघशंसावाभार्ष्टां वसु वार्याणि'
वाज.स. २८.१७; वाज.सं. (का.) ३०.१७; तै.ब्रा. २.६.१०.४

हत्नु - हन् क्त्नु = हत्नु । हतन कर्म
'मा नो वधाय हत्नवे
जिहीडानस्य रीरधः
मा हृणानस्य मन्यये'
ऋ. १.२५.२

हत्वाय - हत्वा । हन् + क्त्वा = हत्वा (वेद में क्त्वा के बाद में 'य' का आगम होता) है । मारकर ।
'हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेदः'
ऋ. १०.८४.२; अ. ४.३१.२
हे सेनापति, तू शत्रुओं को मार (शत्रून् हत्वाय) धन को (वेदम्) बांट (विभजस्व) ।

हथः - 'हन्' धातु से सिद्ध । हत्या, हनन, मृत्यु । दे. 'अभिधेतन्'
'जीवान्नो अभिधेतन
आदित्यासः पुरा हथात्'
ऋ. ८.६७.५; नि. ६.२७.
आदित्यास, हमारे मरने के पूर्व हमारे प्राणों की रक्षा के लिए तुम दौड़ पड़ो ।

ह्रद - (१) छोटा तालाब । ताल, जलाशय
'सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम्'
ऋ. १०.४३.७; अ. २०.१७.७
'ह्रदान् कुक्षिभ्याम्'
वाज.सं. २५.८; मै.सं. ३.१५.७:१७९.१४
'ह्रदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः'
ऋ. १०.९५.६
'ह्रदा इव कुक्षयः सोमधानः'
ऋ. ३.३६.८
(२) ह्राद् (अव्यक्त शब्द करना अथवा ह्लाद् (शीतीभाव या सुखी होना) । अच् - ह्रद (ल् का र्) । अर्थ है ह्रद, तालाब । ह्रद शीतल होने से सुखदायक होता है । दे. 'अक्षण्वत्' 'मण्डूकी ।
'आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे
ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ।'
ऋ. १०.७१.७; नि. १.९.
(३) गहरी झील, बड़ा और गहरा सरोवर, (४) गहरी गुफा, (५) किरण

हन् - (१) बढ़ना, (२) उठना,
'उद्व ऊर्मिः शम्या हन्तु'
ऋ. ३.३३.१३; अ. १४.२.१६
(३) बजाना
'क एषां दुन्दुभिं हनत्'
अ. २०.१३२.९; शां.श्रौ.सू. १२.१८.१६
(४) प्रेरित कर, (५) मारा-सा.
(६) पहुंचाता हुआ-ज.दे.श. । दे. 'जरूथ'
'त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो
जरूथं हन् यक्षि राये पुरन्धिम्'
ऋ. ७.९.६; नि. ६.१७
हे अग्नि, वसिष्ठ ने बहुकर्मतम तुझे (पुरन्धिम्) संदीप्त कर (समिधानः) धन प्रति के लिए (राये) स्तोत्र के द्वारा (जरूथं हन्) धनवान् पूजित किया (यक्षि)- यास्क ।
हे अग्नि, तुझे वसिष्ठ प्रदीप्त करते हैं (वसिष्ठः समिधानः) । तू परुष भाषी राक्षस को मार (जरूथं हन्) धनवान् यजमान के लिए (राये) बुद्धिमान देवगण की पूजा कर (पुरन्धि यक्षि) ।-सा.
हे हमारे नायक विद्वान्, विद्या ज्योति प्रदीप्त करता हुआ धनाढ्य मनुष्य (अग्ने समिधानः वसिष्ठः) बहुत बुद्धिवाले आप के प्रति (त्वां पुरन्धिम्) आदर भाव को (जरूथम्) पहुंचाता हुआ (रहन्) धर्म धन की प्राप्ति के लिए (राये) आपकी संगति करता है (यक्षि) ।
(६) यः दण्डयते (जो दण्डित किया जाता है) । दण्डनीय ।
(७) दबकर रहने वाला । दे. 'अयोधनः'

हनव्या - ठुढ्ढी, दाढ़ी में विद्यमान्
'वि ते हनव्यां शरणिम्'
अ. ६.४३.३

हन्त - हा का भाव

हन्त्व - मारने योग्य

'निषङ्गिणो रिपथो हन्वासः'

ऋ. ३.३०.१५

हन्मन् - हन् + मनिन = हन्मन्। हनन करने वाला हथियार

'आभोगं हन्मना हतम्'

ऋ. ७..९४.१२

'ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून्'

ऋ. १.३३.११; मै.सं. ४.१४.१२: २३५.८; तै.ब्रा. २.८.३.४.

'तपिष्ठेन हन्मना हन्तनातम्'

ऋ. ७.५९.८; मै.सं. ४.१०.५;१५४.१०

हनिष्ठ - खूब दण्ड देने वाला

'इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा'

ऋ. ६.३७.५

हनीयाः - बहुत अधिक मारने वाला

'नमो हन्त्रे च हनीयसे च'

वाज.सं. १६.४०; तै.सं. ४.५.८.१; मै.सं. २.९.७:१२६.३; का.सं. १७.१५

हन्तुः - हन् + तुन् = हन्तु। हत्या मारा जाना। दे. 'अलातृण'

'अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः'

'पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार'

ऋ. ३.३०.१०; नि. ६.२.

हे इन्द्र या राजन्, आकाश में छाया, घुमड़ता पका हुआ मेघ बिजली की कड़क से हन होने के पूर्व ही मानों भयभीत हो इधर इधर उधर तितर-बितर हो गया।

हन्तो नु - भला अब

'हन्तो नु किमाससे'

ऋ. ८.८०.५

हन, हनू - द्वि.व.। हन् (हनन् करना) + ऊ = हनु। द्विवचन में हनू। (२) हनन करने में समर्थ (२) हनन समर्थ वैश्वानर अग्नि की ज्वाला (३) दोनों जबड़े

'नाना हनू विभृते सं भरेते
असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः'

ऋ. १०.७९.१

हनन समर्थ वैश्वानर, अग्नि की ज्वालाएं नाना रूप में रह कर भी एकत्र हो हवि या लकड़ियों को जलाती हैं और एकत्र कर बिना चबाए खाती हुई (असिन्वती बप्सती) प्रचुर मात्रा में हवि और लकड़ी खाती है (भूरि अत्तः) -सा.। अथवा,

बचपन में ही सृष्टि कर्ता की ओर से धारण किये हुए बच्चे के दोनों जबड़े दुग्ध का आहरण करते हैं (संभरेते) और बिना चबाए खाते हुए प्रभूत दुग्ध का पान करते हैं, -दया.

हनू - जबड़ा। हन् + ऊङ्।

'हनूभ्यां स्वाहा

तै.सं. ७.३.१६.१; का.सं. (अश्व.) ३.६; तै.ब्रा. ३.८.१७.४; आप.श्रौ.सू. २०.११.२

ह्यः - ह + यत्। बीता दिन, yesterday।

'अद्या ममार स ह्यः समान'

ऋ. १०.५५.५; अ. ९.१०.९; साम. १.३२५; २.११.२; तै.आ. ४.२०.१ ; नि. १४.१८

हय - (१) अश्व, (२) गमन करने वाला, प्रेरक

'हयो न विद्वान् अयुजि स्वयं धुरि'

ऋ. ५.४६.१; कौ.ब्रा. २२.१

हया - अश्वा, घोड़ी, (२) अश्व के समान सर्वांग में बलवती

'हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे'

ऋ. १०.९५.१; श.ब्रा. ११.५.१.६

हये - हे, सम्बोधनार्थन अव्यय

हये देवा यूयमिदापयः स्थ'

ऋ. २.२९.४

हर - पाप हरने वाला और गुणसुख लाने वाला, (२) तेज

'पृथिव्यामस्तु यद्धरः'

अ. १८.२.३६

हरयः - रस हरने वाली सूर्य की किरणें। दे. 'आववृत्रन्'

'कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णाः
अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति'

ऋ. १.१६४.४७; अ. ६.२२.१; ९.१०.२२; १३.३.९; मै.सं. ४.१२.५: १९३.७; का.सं. ११.९;१३;

हरयाण - (१) हरण शील वेगवान् अश्वों या यंत्रों से जाने योग्य

(२) दुःखों को हरने वाला प्रभु

(३) हृ + शानच् (लट् में) = हरमाण = हरयाण। हरयाणः यानः यस्य सहरयाणः (जिसका रथ हरण शील हो वह हरयाण है)। (४) एक दूसरे को आकर्षित करने वाले सूर्य

चन्द्रादि रथों का निवास स्थान अन्तरिक्ष।
(५) नित्य शत्रुओं का ऐश्वर्य आदि हरण करता हुआ यान या रथ।
'ऋज्रुमुक्षण्यायने रजतं हरयाणो रथं युक्तमसनाम सुषामणि '
ऋ. ८.२५.२२
उक्षण गोत्रीय सुषामा के पुत्र वस नामक राजा के नित्य प्रति शत्रुओं का धन लाते हुए रहने पर (उक्षण्यायने हरयाणो सुषामणि) हमलोगों ऋतु नामी (ऋज्रम्) अश्वों से युक्त रथ को (युक्तं रथम्) प्राप्त किया (असनाम्)।
अन्य अर्थ - बड़े बड़े लोकों के गमन स्थान (उक्षण्यायने) और एक दूसरे को हरण करने वाले आकर्षण कर्ता सूर्य चन्द्रादि रथों के निवास स्थान (सुषामणि) सबके मित्र और श्रेष्ठ जगदीश्वर के द्वारा युक्त किए हुए (युक्तम्) सुसज्जित् (ऋज्रम्) तथा रजतसमान चन्द्रतारका बलिरूपी रथ को (रजतं रथम्) हम प्रतिदिन रात के समय भजते हैं (असनाम)।

हरस् - न.। (१) तेज
'अवयाता हरसो दैव्यस्य '
ऋ. ८.४८.२; अ. २.२.२.
(२) क्रोध
(३) हृ + असुन् = हरस्। हरण करने वाला। हरः हरतेः ज्योतिर्हर उच्यते लोका हरांसि उच्यन्ते।
(४) ज्योति, (५) उदक, (६) लोक, जाति प्राणियों द्वारा हरी जाती है। या ज्योति अन्धकार का हरण करती है या अभ्यन्तर स्थित तैल को हरती है। इसी प्रकार प्राणियों द्वारा उदक जीवन रक्षा के लिए हरा जाता है, अतः वह हरस् है। पाप क्षीण होने पर प्राणी लोकों से हर लिए जाते हैं अतः लोकों को भी हरस् कहते हैं।
(७) असृगहणी हर उच्यते (रुधिर और रात दिन भी हरस् है)। रुधिर क्षीणता से प्राप्त होता है। दिन अन्धकार को हरता है तथा रात्रि प्राणियों की थकावट को हरती है।
ज्योति और रुधिर के ज्योति के अर्थ में प्रयोगः-
'प्रत्यग्ने हरसा हरः श्रृणीहि विश्वतः प्रति। यातुधानस्य रक्षसो बलं वि रुज वीर्यम् '
ऋ. १०.८७.२५; साम. १.९५
हे अग्नि, तू ज्योति से (हरसा) राक्षस का रुधिर नष्ट कर (यातुधानस्य हरः प्रतिश्रृणीहि) तथा उस रक्षस का बल (रत्रसः बलम्) सब प्रकार से नष्ट कर और उसके प्रभाव को भी विशेष प्रकार से भग्न कर (वीर्यं विरुज)।
आधुनिक अर्थ-'हरना, हटाना, वञ्चित करना, आकर्षण करने वाला, हरण करने वाला, भाग बांटने वाला, गणित में अंश का भाग बतलाने वाला।

हरस्वती - वेगवती सेना या तलवार
'स्वं तं मर्मतु दुच्छुना हरस्वती '
ऋ. २.२३.६

हरिः - (१) शत्रुओं का प्राण हार
'हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः '
ऋ. १०.९६.३; अ. २०.३०.३
(२) अश्व। हृ + इ = हरि। अश्व सवार ले चलता है। दे. ' हरिष्ठा'
(३) हरा सोमरस। दे. 'अश्मन्मयी '
'आ तू पिञ्च हरिभीं द्रोरुपस्थे '
ऋ. १०.१०१.१०; नि. ४.१९
हे अध्वर्यो, द्रोणकलश के ऊपर इस हरे सोमरस को ढाल।
अथवा,
इस हरे रंग के सोम में लकड़ी के बने बर्तन से जल डाल।
(४) हरित वर्ग। (हरा रस)। दे. 'अश्मन्मयी'
(५) सोमरस। सोमरस हरे रंग का होता है।
'हरिः सोमो हरितवर्णः अयमपि इतरो हरिः एतस्मादेव।'
अश्व केअर्थ में -
'ऋक्सामेव इन्द्रस्य हरी। '
(६) वानर, (७) आदित्य रश्मि। दे. 'आववृत्रन्
(८) धारण तथा संहरण गुण-दया।
आधुनिक अर्थ- हरा, हरापीला, कमिश, लाल और भूरा, विष्णु, शिव, ब्रह्म, यम, सूर्य, चन्द्रमा, मनुष्य, रश्मि, अग्नि, वायु, सिंह, अश्व, इन्द्र का अश्व, वानर, कोमल, मेढक, तोता, सर्प, पीतवर्ण, मयूर, भर्तृहरि।

हरिक्निका - हरि + कणिका। (१) आत्मा की

सूक्ष्मकला, चितिकला, (२) प्राण हरण करने वाले कणों को छोड़ने वाली, (३) छर्रों को छोड़ने वाली, (४) मनोहर कन्या (५) हरि + कलिका। हरण। शील गर्भधारण समर्थकला (६) कामकला से युक्त कन्या (७) सबके हर्ता आत्मा की दीप्ति रूप चिति कला

'तासामेका हरिक्निका'

अ. २०.१२९.३

हरिकेश – (१) दीप्तिमान् केशों वाला

'हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसः'

अ. २०.३१.३

(२) रश्मि रूप केशों से युक्त सूर्य

'पूर्वेभिरिन्द हरिकेश यज्वभिः'

ऋ. १०.९६.५; अ. २०.३०.५

(३) सुवर्ण समान हरित वर्ण की ज्वालाओं वाला-अग्नि।

(४) नए नए कोमल हरेपीले पत्रों से युक्त वसन्त ऋतु।

'अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिः'

वाज.सं. १५.१५; तै.सं. ४.४.३.१; मै.सं. २.८.१०: ११४.१३; का.सं. १७.९; श.ब्रा. ८.६.१.१६

(५) तेजोयुक्त किरणों वाला सूर्य

'अनागास्त्वेन हरिकेश सूर्य'

ऋ. १०.३७.९

(६) नील केश वाला (७) क्लेशों का हरण करने वाला वैद्य।

'नमो हरिकेशायोपवीतिने'

वाज.सं. १६.१७; तै.सं. ४.५.२.१; मै.सं. २.९.३:१२२.१०; का.सं. १७.१२

(८) तेजोमय किरणों वाला

(९) पीली रश्मि वाला वैश्वानर अग्नि (१०) तीव्र प्रकाशवान् किरणों से युक्त (११) प्रजा के क्लेशों को दूर करने वाला

'तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे'

ऋ. ३.२.१३

(१२) जिसके वायु आदि केशवत् हैं-सविता

'सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्'

ऋ. १०.१३९.१; वाज.सं. १७.५८; तै.सं. ४.६.३.३; ५.४.६.३; श.ब्रा. ९.२.३.१२

हरिजात – (१) वेगवान् वीर पुरुषों में सर्वप्रसिद्ध

'अरामि राधो हरिजातहर्यतम्'

ऋ. १०.९६.५ अ. २०.३०.५

(२) समस्त लोकों और किरणों का उत्पादक –इन्द्र

हरिणी – (१) मन को हरण करने वाली स्त्री

'रजता हरिणीः सीसा'

वाज.सं. २३.३७; तै.सं. ५.२.११.१; मै.सं. ३.१२.२१; १६७.७; का.सं. (अश्व.) १०.५.

(२) द्वि.व.। दीप्तियुक्त सूर्य और चन्द्र

'स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः'

ऋ. १०.९६.९; अ. २०.३१.४

(३) हरित या नीले रंग की गौ

'एनीर्धाना हरिणी श्येनीरस्य'

अ. १८.४.३४

(४) हरा मेढक, (५) ज्ञान ग्रहण कुशल

'पृश्निरेको हरित एक एषाम्'

ऋ. ७.१०३.६

हरित् – (१) रस हरने या खींचने वाली सूर्य रश्मि, (२) अश्व.। दे. 'आत्'

'यदेदयुक्त हरितः सधस्थात्'

ऋ. १.११५.४; अ. २०.१२३.१; वाज.सं. ३३.३७; मै.सं. ४.१०.२: १४७.२; तै.ब्रा. २.८.७.२; नि. ४.११.

जभी सूर्य रस खींचने वाली रश्मियों या अश्वों को इस लोक से या रथ से हटाकर दूसरे लोक में फैलाते हैं।

हरितः अश्वाः – (१) सूर्य की नील व श्याम वर्ण की किरणें, (२) सूर्य के हरित अश्व, (३) वेगवान् अश्वारोही, (४) विद्याओं से वेग से आगे बढ़ने के वाले विद्यार्थी

'भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य'

ऋ. १.११५.३; मै.सं. ४.१०.२: १४७.३; तै.ब्रा. २.८.७.१

हरिताःआस्नः – (१) सूक्ष्म प्राण, (२) हरणशील संहारकारी, तीव्र प्रलय कारी मुख, (३) विक्षेपप्रकारी शक्तियाँ।

'आसन्' शब्द मुख का वाचक है।

'अंशून् बभस्ति हरितेभिरासभिः'

अ. ६.४९.२

हरिभेषज – (१) नए नए ताजे रस वाले या पीलिया रोग का नाशक औषध (२) सब भक्तों एवं भ्रमात्मक ज्ञानों का नाशक-ज्ञानञ्जन या

अञ्जन ।
'अथो हरितभेषजम्'
अ. ४.९.३
हरितःवृषाः - (१) तेजस्वी पीतवर्ण या नील वर्ण का वर्षण करने वाला सूर्य, (२) कान्ति युक्त सबके मनों को हरने वाला बलवान् पुरुष ।
'जज्ञानो हरितो वृषा'
ऋ. ३.४४.४
हरितौ - (१) उज्ज्वल सूर्य और चन्द्रमा
'रात्री केशा हरितौ प्रवर्तौ कल्मलिर्मणिः'
अ. १५.२.५
हरित्य - शाक आदि हरे पदार्थों का व्यापारी ।
'नमः शुष्क्याय च हरित्याय च'
वाज.सं. १६.४५; तै.सं. ४.५.९.१; का.सं. १७.१५
हरितस्रक् - हरी पत्रमाला से ढका वृक्ष
'तस्या रुपेणेमे वृक्षा हरिता हरित स्राजः'
अ. १०.८.३१
हरिद्रुः - अश्वों के द्वारा वेग से जाने में समर्थ
'अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रवः'
ऋ. १०.९४.१२
हरिधायस् - (१) किरणों का धारण करने वाला आकाश, (२) वेगवान् अश्वों को धारण करने वाला ।
'द्यामिन्द्रो हरिधायसम्'
ऋ. ३.४४.३
हरिपाः - (१) वीरा सैनिकों का पति, (२) अश्वों का स्वामी
'तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत'
ऋ. १०.९६.८; अ. २०.३१.३
(३) समस्त मनुष्यों और जीवों का पालक
हरिप्रियः - (१) ज्ञानशील पुरुषों का प्रिय इन्द्र (२) अश्वों का प्रिय
'मारे अस्मद् वि मुमुचः हरिप्रियार्वाङ् याहि'
ऋ. ३.४१.८; अ. २०.२३.८
(३) अश्वों का प्रेमी-इन्द्र
हरिभ्याम् ईयमानः - (१) घोड़ो से खींचा जाता हुआ-इन्द्र (२) गति करने वाले दो तत्वों से प्रकट होने वाली विद्युत, (३) प्राण अपान से चलने वाला -आत्मा ।
'सुखरथमीयमानं हरिभ्याम्'
ऋ. ५.३०.१
हरिंभरः - (१) हरि का पालक -इन्द्र (२) समस्त लोकों का पालक पोषक- इन्द्र, परमेश्वर
'सहस्रशोका अभवद् हरिंभरः'
ऋ. १०.९६.४; अ. २०.३०.४
(३) हरणशील वीर पुरुषों को प्रकट करने वाला
हरिमन्युसायकः - (१) शत्रुमद हरने वाला मन्युरूप बाण
'द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्यु सायकाः'
ऋ. १०.९६.३; अ. २०.३०.३
(२) दुष्टों को हरण करने वाले, क्रोधरूप सायक वाला सूर्य, परमेश्वर
हरिमा- (१) पीलिया रोग
'यो हरिमा जायान्यः'
अ. १९.४४.२
(२) शरीर के नख चक्षु आदि में व्याप्त वर्ण जिसे कमला रोग कहते हैं ।
'हृद्द्योतो हरिमा च ते'
अ. १.२२.१
हरिमाण - (१) हरण शील चोर, (२) शरीर को हरने वाला रोग
'हृद् रोगं मम सूर्य'
'हरिमाणं च नाशय'
ऋ. १.५०.११; तै.ब्रा. ३.७.६.२२; आप.श्रौ.सू. ४.१५.१.
हरियूपीया - (१) हरि + यूपीया । मनुष्यों को गुणों से मुग्ध करने वाली विद्या
(२) हरियू + पीया । मनुष्यों के स्वामी राजा की पालन करने वाली नीति
'वृचीवतो यद्धरियूपीयायाम्'
ऋ. ६.२७.५
हरियोग - अश्वों से चलाए जाने वाला रथ । दे. 'ऋभ्वस्'
हरिवत् - (१) भूमि निवासी प्रजा या मनुष्यों का स्वामी (२) इन्द्र
'हरिवते हर्यश्वाय धानाः'
ऋ. ३.५२.७
(३) हरणशील इन्द्रियों से युक्त आत्मा, (४) अश्ववाला इन्द्र
'सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे'
ऋ. १०.९६.७; अ. २०.३०.२.
हरिवन् - (१) अश्व से युक्त -सा. (२) प्रशान्त

इन्द्रियों वाला - दया. दे. । 'अस्कृधोयु'

हरिवत् शूम् - (१) दुःख हारक गुणों वाला बल, (२) अश्ववाला बल

'इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत '

ऋ. १०.९६.२; अ. २०.३०.२

हरिव्रत - (१) अश्वाः व्रतं शीलं यस्य सः -दया (२) वेगवान् अश्वों और विद्वानों को शरण करने वाला उनका पालक ।

(३) दुःखहारी शीलवान् परमेश्वर, (४) अग्नि

हरिवर्पाः - (१)कमनीय शोभा से युक्त-इन्द्र

'आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः '

ऋ. १०.९६.१; अ. २०.३०.१

(२) हरित वनस्पतियों से हरे रूप वाली वनस्पति

'पृथिवीं हरिवर्पसम् '

ऋ. ३.४४.३

(३) रमणीय रूप वाला, (४) अश्व के रूप वाला ।

हरिवान् - (१) हरणशील इन्द्रियों पर विजय करने वाला 'योगी (२) समस्त लोकों और शक्तियों को वश करने वाला, (३) सारथि जो अश्व को वश में रखता है ।

'य इन्द्रो हरिवान् न दभन्ति तं रिपः '

ऋ. ७.३२.१२; अ. २०.५९.३

(४) मनुष्यों के स्वामी, (५) अश्वों या अश्वसैन्यों का स्वामी इन्द्र

हरिश्चन्द्र - (१) हरिश्चन्द्र (२) सब मनुष्यों को आह्लाद देंने वाला '

'हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः '

ऋ. ९.६६.२६; साम. २.६६१

हरिश्मशारु - (१) पीतवर्ण की श्मश्रुओं वाला

'हरिश्मशारुःर्हरिकेश आयसः '

ऋ. १०.९६.८; अ. २०.३१.३

(२) किरणों को श्मश्रुवत्,; धारण करने वाला सूर्य

हरीशिप्रः - (१) ज्ञानमय दुःख हारी रूप वाला, (२) अश्वरूप वाला

'तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः '

ऋ. १०.९६.४; अ. २०.३०.४

हरिश्रीः - (१) वेगवती शक्तियों का आश्रय भूत इन्द्र-परमेश्वर

'अद्रिवो हरिश्रियम् '

अ. २०.६१.१

हरिषाच् - मनुष्यों का समवाय बनाने वाला

'अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रवः '

ऋ. १०.९४.१२

हरिष्ठा - (१) विष हरने वाली ओषधि (२) विष वैद्य (३) हरिष्ठा नामक ओषधि जिसकी गुठली को पानी में पिस कर मिलाने से विष उतरता है ।

'आरे अस्य योजनं हरिष्ठाः
मधु त्वा मधुला चकार '

ऋ. १.१९१.१०-१३

(३) अश्वारूढ़, घुड़सवार, । दे.अभिवात् '

'य नु नकिः पृतनासु स्वराजं
द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् । '

ऋ. ३.४९.२

जिस युद्धों में चमकने वाले, अश्वारूप मनुष्यों के परम नेता को अस्त्र या शस्त्र दोनों से नहीं हरा सकता उस...।

हरी - (१) दो अश्व, (२) प्राण-अपान वायु, (३) दुःख और और अज्ञान को हरने वाले दो गुणों से युक्त रूप

'प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी '

ऋ. १०.९६.१;अ. २०.३०.१;ऐ.ब्रा. ४.१३.४;कौ.ब्रा. २५.७; तै.ब्रा. २.४.३.१०; ३.७.९.६; आश्व.श्रौ.सू. ६.२.६; आप.श्रौ.सू. १४.२.१३.

हरिणां स्थाता - (१) गतिमान् लोकों के बीच में संस्थापक इन्द्र-परमेश्वर (२) नाशवान पदार्थों के बीच में सदा स्थिर

'इंन्द्र स्थातर्हरीणाम् '

ऋ. ८.२४.१७; अ. २०.६४.५; साम. २.१०३५

हर्म्य - (१) बड़ा महल, (२) अन्तः पुर, (३) ऊंचा पद harem शब्द से हर्म्य की समानता विचारणीय है ।

'प्र यदानड्विश आ हर्म्यस्य '

ऋ. १.१२१.१

हर्म्येष्ठः - उच्च महलों में निवास करने वाला

'ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्राः '

ऋ. ७.५६.१६

हर्य - धा. । (१) चाहना, हहरना

'सोमं हर्य पुरुष्टुत '

ऋ. ३.४०.२; अ. २०.६.२; ७.४
(२) कामना करना
'धनोरधि प्रवता यासि हर्यन्'
ऋ. १०.४.३
'अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद् वचः'
ऋ. १.१४४.७; ऐ.ब्रा. १.३०.१२; कौ.ब्रा. ९.५; आश्व.श्रौ.सू. ४.१०.३.

हर्यक्ष – (१) सिंह का सूर्य के समान तेजस्वी चक्षु वाला, (२) हरे रंग के कांच का बना चश्मा या यन्त्र ।
'सूर्याय हर्यक्षम्'
वाज.सं. ३०.२१; तै.ब्रा. ३.४.१.१७.

हर्यत् – (१) देवता, (२) चाहने वाला, लालसा करने वाला, टहरने वाला । दे. 'जार'।
'इयक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति'
ऋ. १०.११.६; अ. १८.१.२३
क्योंकि (इ) यह यजमान देवताओं की पूजा करना चाहता है (यक्षति) तथा हृदय से (हृत्तः) अपने मनोरथों की पूर्ति चाहता है (इष्यति) । –सा. ।
चाहने वाले को दान दे (हर्यतः इ यक्षति) और हृदय से (हृत्तः) सर्व कर्म कर (इष्यति) ।

हर्यत – (१) स्पृहणीय, चाहने योग्य,
'प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम्'
ऋ. १०.९६.१; अ. २०.३०.१
(२) क्रान्तिमान्
'दिवि न केतुरधिधायि हर्यतः'
ऋ. १०.९६.४; अ. २०.३०.४
'घृताचीर्यन्तु हर्यत'
ऋ. ८.४४.५; साम. २.८९२; वाज.सं. ३.४; मै.सं. १.६.१: ८५.१; का.सं. ७.१२; तै.ब्रा. १.२.१.१०; आप.श्रौ.सू. ५.६.३.
(४) प्रज्ञाकर्म । दे. 'अपिहर्यत क्रतु'

हर्यताहरी – द्वि.व.। (१) कान्तियुक्त हरण शील आत्मा और मन, (२) सूर्य और भूमि, (३) परस्पर प्रेम करने वाले स्त्री पुरुष ।
'आदित् ते हर्यता हरी ववक्षतुः'
ऋ. ८.१२.२५-२७

हर्यते, हर्यति – हर्य धातु गति और कान्ति अर्थों में प्रयुक्त है । कामना अर्थ में भी इसका प्रचुर प्रयोग हुआ है ।
'इयं वो अस्मत् प्रति हर्यते मतिः'
ऋ. ५.५७.१; नि. ११.१५
हे रुद्रो, यह हमारी स्तुति आप लोगों की कामना करती है ।

हर्यन् – चाहने वाला, प्यारा
'आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानाम्'
ऋ. १०.९६.१२; अ. २०.३२.२.

हर्यमाणः – व्यापता हुआ । यहां 'हर्य' धातु व्यापना अर्थ में प्रयुक्त है ।
'आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा'
ऋ. १०.९६.११; अ. २०.३२.१.

हर्यश्व – हरि + अश्व । तेज अश्वों वाला
'हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहम्'
ऋ. ८.२१.१०; अ. २०.१४.४; ६२.४
(२) तीव्र अश्वों का स्वामी, (३) सारथि ।
'रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः'
ऋ. २.१७.३
(४) पीत किरणों से युक्त सूर्य (५) आकर्षण शील आत्मवान् महान् गुरु ।
'मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः'
ऋ. ३.३१.३
(६) सोम का स्वामी इन्द्र-सा. (७) हरण तथा भरण गुणों से युक्त परमेश्वर. (८) बल और पराक्रम से युक्त
दे. 'ऋदूदर ।
'यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः'
ऋ. ८.४८.१०; तै.सं. २.२.१२.३; मै.सं. ४.११.३; १६४.९; का.सं. ९.१९
हे सोम का स्वामी इन्द्र या हे हरण तथा गुणों से युक्त परमेश्वर, मुझे सोम या हलका भोजन खाने या पीने पर कष्ट न पहुंचाये ।

हर्यश्व प्रसूत – (१) जिसे हरण शील किरण हो उससे जनित, (२) ईश्वर से प्रसूत, (३) सूर्य से जनित
'दिवे दिवे हर्यश्वप्रसूताः'
ऋ. ३.३०.१२

हर्योः ईशानः – (१) बलशाली अश्वों का स्वामी इन्द्र-सा.
(२) वायु समान अश्वों का स्वामी-राजा-दया.
'तोदो वातस्य हर्योरीशानः'
ऋ. ४.१६.११

हे इन्द्र या हे राजन्, बलशाली अश्वों का स्वामी तू...

हर्षत् - (१) अन्यों का प्रमोदकारी

'अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो
विश्वे जुषन्त पन्थाम् '

ऋ. १.१२७.६

और जिस प्रकार (अधस्म) हर्षित और सुप्रसन्न ज्वाला वाले (हृषीवतः) अन्यों को प्रमोदकारी अग्नि के मार्ग को (पन्थाम्) सब नायक जन (नरः) सेवन करते हैं (जुषन्ते), लोग अपने कल्याण के लिए (शुभे) मार्ग के समान उससे प्रेम करें ।

हर्ष्य - हर्षकारक ।

'स्वर्मीढे यन्मद इन्द्र हर्थाहन् '

ऋ. १.५६.५

हर्ष्या - द्वि.व.। हर्षित

'नरः सोमस्य हर्ष्या '

ऋ. ८.६८.१४

हर्षु - हर्ष । दे. 'हर्षुमन्तः ।

हर्षुमन्तः - हर्षयुक्त

'हर्षुमन्तः शूरसातौ '

ऋ. ८.१६.४

हलिक्ष्णः - सिंह के समान निर्भय चक्षुवाला

'उलो हलिक्ष्णो वृषदंशस्ते धात्रे '

वाज.सं. २४.३१; मै.सं. २.१४.१२: १७४.११; का.सं. (अश्व). ७.२

हवः - ह्वञ् + अच् = हव । आह्वान्, प्रकार । हु + अच = हम । दे . 'अङ्गार' (२) उपदेश । दे. 'अभ्यर्द्धयज्वन् '

'श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध पाथ '

ऋ. ६.५०.५

हे मनुष्यो, उपदेश का श्रवण कर जो सब क्रियाएं करते हो ।

अथवा

तुम हमारा आह्वान सुनकर आते हो (३) स्तोत्र (हूयते एभिः) । स्तोत्रों से आह्वान किया जाता है ।

(४) यज्ञ

हवनश्रुत - हु + ल्युट् = हवन, श्रु (सुनना) + क्विप् = श्रुत् । आह्वान सुनने वाला, प्रकार सुनने वला, । दे. 'अभिधेतन'

'जीवान् नो अभि धेतन
आदित्यासः पुरा हथात्
कद्ध स्थ हवनश्रुतः '

ऋ. ८.६७.५; नि. ६.२७

हे आदित्यो, कहीं भी हो हमारी पुकार पर हमारे प्राणों को बचाने दौड़ पड़ी ।

हवन - हु + ल्युट् - हवन (१) पुकार, आह्वान, (२) हवनकर्म

हवनस्पद् - (१) ललकार पर वेग या शत्रुओं पर आक्रमण करने वाला, (२) भक्त आह्वान पर करुणा से द्रविता होने वाला ।

'अन्यं न वाजं हवनस्यदं रथम् '

ऋ. १.५२.१; साम. १.३७७; ऐ.ब्रा. ५.१६.१७

वेगवान् अश्व के समान (अत्यं न), गमन करने योग्य मार्ग या वेग से जाने वाले एवं शत्रु के ललकार पर वेग से आक्रमण करने वाले रथारोही शत्रुहन्ता राजा को या भक्त की पुकार पर करुणा से द्रवने वाले परमेश्वर को ।

हवस् - (१) ग्राह्य रूप, (२) देने योग्य वेतन, (३) स्वीकार योग्य उपहार (४) भक्ष्य भोज्य । दे. 'धृषु '

हव्यजुष्टि - हव्य या अन्न आदि पदार्थों का सेवन ।

'आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिम् '
नमसा देवाववसा ववृत्याम् '

ऋ. १.१५२.७; तै.ब्रा. २.८.६.५.

हव्य - हु + यत् । (१) अग्नि में दिया पदार्थ । दे. 'अध्रिगु ' अनिमिषा '।

'कविशस्तो बृहता भानुनागाः
हव्या जुषस्व मेधिर '

ऋ. ३.२१.४; मै.सं. ४.१३.५: २०४.१५; का.सं. १६.२१; तै.ब्रा. ३.६.७.१; ऐ.ब्रा. २.१२.१५

हे विद्वानों से प्रशंसित यज्ञवान् अग्ने, तू बृहत् प्रकाश के साथ आ और हव्यों का भोग्य कर ।

'मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत '

(२) हवनीय, (३) हवि का भागी । दे. 'अस्मदानिद् '

'हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति '

ऋ. १.१२९.६; नि. १०.४२

जो हव्य का भागी नहीं है ।

(४) सुख- दया. । दे. 'भात्रऋजीक ' (५) आह्वातव्य . दे. 'मेधिर '।

(६) अन्न उपजाने वाला खेत। दे. 'घृतपुष'
'घृतपुषा मनसा हव्यमुन्दन्'
ऋ. २.३.२; मै.सं. ३.११.१:१४१.१

हव्यदाति - (१) हव्य का दान, (२) देने योग्य पदार्थ का दान
'ददाशुर्हव्यदातिभिः'
ऋ. ४.८.५; का.सं. १२.१५

हव्यवाट् - हव्य + वह् + क्विप् = हव्यवाट्। हव्य पहुंचाने वाला - अग्नि।
दे. 'आदधिरे'
'अथा देवा दधिरे हव्यवाहम्'
इसीलिए इस हव्य ढ़ोने वाले अग्नि को देवताओं ने रखा-सा.।
आर्यलोग हव्यवाह् अग्नि को सदा धारण करते हैं।

हव्यसूक्ति - आदान योग्य उत्तम स्तुति वचनों को स्वीकार करना।
'स्वाहा हव्यसूक्तीनाम्'
वाज.सं. २८.११; तै.ब्रा. २.६.७.६

हव्य सूदः - (१) घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों को प्रदान करने वाली गाएं या भूमि
(२) ग्राह्य ज्ञान को झाड़ती हुई
'बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः'
अ. २०.८८.५

हव्यसूद् - (१) दुग्ध आदि खाद्य पदार्थों को देने वाली गौ, (२) अन्न उत्पादक भूमि
'आप्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः'
ऋ. १.९३.१२
हे अग्नि और जल या अग्नि और वायु (अग्नीषोमा), हमारे दुग्ध आदि खाद्य पदार्थों को देने वाली गौओं को और अन्न उत्पादक भूमियों को (हव्यसूदः) खूब हृष्ट पुष्ट और जल से सिञ्चित करो (आप्यायताम्)।

हव्यसूदन - हव्य, अन्न या ऐश्वर्य को क्षरित करने वाला-प्रदान करने वाला।
'मृष्टोऽसि हव्यसूदन'
वाज.सं. ५.३२

हव्यात् - (१) ग्राह्य, (२) भक्ष्य, (३) हवि को खाने वाला-अग्नि
'अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः'
ऋ. ७.३४.१४

हविः - (१) हवन, (२) अन्न आदि पौष्टिक सात्विक, पदार्थ, (३) आत्मशक्ति, (४) मस्तिष्क, शक्ति,
(५) मन और वाणी की शक्ति
'जीवं वै देवानां हविश्मृममृतानाम्'
श.ब्रा. १.२.१.२०
'तस्य पुरुषस्य शिर एव हविर्धनम्'
कौ.ब्रा.९.३
हवि, आत्मा, जीव, शिर की ज्ञानशक्ति वाणी और मन है।
'मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम्'
अ. ६.४१.१

हविरद् - (१) अन्नों को खोलने वाला, (२) विषयों पंसेवी
'ताभिर्हविरदान् गन्धर्वान्'
अ. ४.३७.८,९.
(३) हवि का पवित्र अन्न खाने वाला
'ये सत्यासो हविरदो हविष्पाः'
ऋ. १०.१५.१०; अ. १८.३.४८

हविस् - (१) (अ).। हवनीय पदार्थ जो हवन किया जाता है।
'यस्येदमप्यं हविः
प्रियं देवेषु गच्छति'
ऋ. १०.८६.१२; अ. २०.१२६.१२; तै.सं. १.७.१३.२; का.सं. ८.१७; नि. ११.३९.
(२) जल। दे. 'कुट'
'हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा'
ऋ. १.४६.४; नि. ५.२४.
जलों का शोषक (अपां जारः) पालक का तृप्त करने वाला (पपुरिः) सूर्य जल से (एविसा) सबको तृप्त करता या सबका पालन करता है (पिपर्ति)-दया.।
सायण का अर्थ - सूर्य हमारे दिए हवि से देवों को तृप्त करता है।
(३) दूध, दही
'छागस्य हविष आत्ताम्'
(बकरी के दूध दही खावें)।

हविर्दः - (१) हवि देने वाला, (२) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों को देने वाला
'कद्रुद्राय सुमखाय हविर्दे'
ऋ. ४.३.७

(३) भृति, जीविका, आदि उत्तम साधनों का दाता

'च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे'

ऋ. ७.६८.६

(४) यज्ञ कर्ता

'पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे'

ऋ. १.१५३.३

हविर्दा - (१) अन्न, बल, शक्ति तथा उनकी भोगशक्ति को देने वाला, (२) अन्न दाता

'प्रेमं वोचो हविर्दा देवतासु'

अ. ७.७८.२

हविर्धान - (१) यज्ञ का शकट जिसमें हवि के पदार्थ रखे जाते हैं।

'सदोहविर्धानान्येव तत् कल्पयन्ति'

अ. ९.६.७

(२) यज्ञ का कुण्ड

'इन्द्रो हविर्धाने'

वाज.सं. ८.५६; तै.सं. ४.४.९.१

(३) हवि या अन्न का आधार या आश्रयस्थान।

'अह्रुतमसि हविर्धानम्'

वाज.सं. १.९; तै.सं. १.१.४.१; मै.सं. १.१.५:३.१; ४.१.५; ६.१४; का.सं. १.४;३१.३; श.ब्रा. १.१.२.१२; तै.ब्रा. ३.२.४.५; आप.श्रौ.सू. १.१७.८; मा.श्रौ.सू. १.२.१.२७.

'हविर्धानमन्तरा सूर्यं च'

अ. ७.१०९.३; १४.२.३४

(४) हविः + धा + ल्युट्। सोम आदि हवनीय पदार्थ रखने का पात्र। इस शब्द का प्रयोग द्विवचन में किया गया है। एक मन्त्र में हविर्धान की स्तुति की गई है।

हविर्धाने - द्वि.व.। द्यौ और पृथिवी क्योंकि वे दोनों हवि के निधान है। दे. 'यज्ञिय'।

हविर्भाज् - (१) हवि का भागी, (२) वह देवता जिसके लिए हवि दी जाती है।

हविर्मथि - यज्ञविध्वंसक। दे. 'पराशर'

'इन्द्रो यातूनामभवत् पराशरः हविर्मथीनामभ्याविवासनाम्'

ऋ. ७.१०४.२१; अ. ८.४.२१; नि. ६.३०

इन्द्र या राजा यज्ञविध्वंसक और धर्म कर्म का विवासन करने और आततायियों का सम्पूर्णतया दमन करने वाला (पराशर) हो।

हविर्वाट् - (१) देवों को हवि पहुंचाने वाला अग्नि, (२) ग्राह्य ज्ञानों को प्राप्त करने वाला विद्वान्। (३) कर लेने वाला राजा

'अतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट्'

ऋ. १.७२.७

हविर्हविः - सब प्रकार का हवि या अन्न

'ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः'

ऋ. ९.७७.३

हविष्कृत् - (१) यज्ञ में हवि बनाने वाला।

'हविष्कृतमेव तत् ह्वयन्ति'

अ. ९.६.१३

(२) हवन करने वाला, (३) अन्न ज्ञान आदि का सम्पादन करने वाला

'ऋत्विजो ये हविष्कृतः'

अ. १९.४२.२; तै.ब्रा. २.४.७.११

(३) हवि को छिन्न भिन्न करने अथवा नाना पात्रों में रखे पदार्थों को क्रिया में प्रवृत्त कराने से अग्नि हविष्कृत् है।

(४) अन्न चरू का सम्पादन तथा ज्ञानोपदेश करने वाला विद्वान्।

'मधुजिह्वं हविष्कृतम्'

ऋ. १.१३.३; साम. २.६९९

हविष्कृतिः - (१) स्वीकार करने योग्य अन्नादि पदार्थ, (२) अन्नादि कर्मफलों का उत्पादक।

'आदृध्नोति हविष्कृतिम्'

ऋ. १.१८.८

हविष्पति - (१) हवियों का स्वामी इन्द्र (२) ग्राह्य पदार्थों का स्वामी

'स सुत्रामा हविष्पतिः'

वाज.सं. २०.७०; मै.सं. ३.११.३:१४५.८; का.सं. ३८.९; तै.ब्रा. २.६.१३.२.

हविष्पा - (१) पवित्र अन्न का पान या पालन करने वाला

'ये सत्यासो हविरदो हविष्पाः'

अ. १८.३.४८

हविष्पः - (१) समस्त अन्नों, ज्ञानों, बलों और साधनों का स्वामी

'हविर्हविष्मो महि सद्म दैव्यम्'

ऋ. ९.८३.५; ऐ.ब्रा. १.२२.१२; कौ.ब्रा. ८.७; आश्व.श्रौ.सू. ४.७.५

हविष्मान् - (१) हव्यपदार्थों का ग्रहीता या भक्त, (२) जल या हवि ग्रहण करने वाला -सूर्य (३) उत्तम ज्ञान और अन्न सम्पदा से युक्त
'अर्को यद् वो मरुतो हविष्मान्'
ऋ. १.१६७.६

हविष्य - (१) हवनीय पदार्थ, (२) उत्तम अन्न के समान श्रेष्ठ स्वीकार करने योग्य
'यद्धविष्यं ऋतुशो देवयानम्'
ऋ. १.१६२.४; वाज.सं. २५.२७; तै.सं. ४.६.८.२; मै.सं. ३.१६.१ ; १८८.२, का.सं. (अश्व.)६.४

हवीमन् (हवीमा) - (१) स्तुतियों योग्य, (२) सबको अपनाने वाला स्नेह
'मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः'
ऋ. १.१५९.२
(३) स्तुति
'अर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः'
ऋ. १.१३१.६; अ. २०.७२.३
(४) हु + मनिन् = हवीमन् (ईट् का आगम) 'हु' धातु दान और आदान अर्थों में प्रयुक्त है। अर्थ है-ग्रहण करने योग्य उपासना आदि (४) आहुति, (६) भोजन योग्य पदार्थ।
'अग्निमग्निं हवीमभिः
सदा हवन्त विश्पतिम्।'
ऋ. १.१२.२, अ. २०.१०१.२; साम. २.१४१; तै.सं. ४.३.१३.८; मै.सं. ४.१०.१:१४३.११
आहुति और भोजन योग्य पदार्थों से जिस प्रकार आहवहीय या जाठराग्नि को लोग अन्न हवि प्रदान करते हैं उसी प्रकार वहुतों को प्रिय लगने वाले प्रजाजनों को पालक अग्नि के समान ज्ञानवान् और तेज स्त्री पुरुष को स्वीकार करने योग्य अन्न आदि पदार्थों से सदा आदर सत्कार करो।
(७) शासन
'अयुक्त यो नासत्या हवीमन्'
ऋ. ६.६३.४

हस् - हस् + क्विप्। हंसी
'हसो नरिष्टा नृत्तानि'
अ. ११.८.२४

हस - (१) आनन्द, विनोद, परिहास
'हसाय कारिम्'
वाज.सं. ३०.६; २० तै.ब्रा. ३.४.१.२.

हंस - (१) शत्रुओं का नाशक
हंसः शुचिषद्'
ऋ. ४.४०.५; वाज.सं. १०.२४;१२.१४; तै.सं. १.८.१५.२; .मै.सं. २.६.१२:७१.१४; ३.२.१: १६.१; ४.४.६: ५७.३; का.सं. १५.८; १६.८ ;ऐ.ब्रा. ४.२०.५; श.ब्रा. ५.४.३.२२; ६.७.३.११; तै.आ. १०.१० .२; ५०.१
(२) हन् + स = हंस। हंसाः हन्तेः ध्वन्ति अध्वानम्। हंस अध्व अर्थात् मार्ग का हनन करता है।
'हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते'
ऋ. १.१६३.१०; ३.८.९; वाज.सं. २९.२१; तै.सं. ४.६.७.४; का.सं. (अश्व.) नि. ४.१३

हसना - (१) परस्पर उपहास, विनोद, हास्य
'अश्वो वोढा सुखं रथम्
हसनामुपमन्त्रिणः।
शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ
वारिन्मण्डूक इच्छति
इन्द्रायेन्दो परिस्रव।'
ऋ. ९.११२.४

हस्वर्ता - (१) प्रकाशक-अग्नि
(२) प्रत्येक लोक का प्रकाशक रूप परमेश्वर
'हस्कर्तारं दमेदमे'
ऋ. ४.७.३

हस्कार - 'हंसनम् हः तत् करोति यः स हस्कारः। अर्थ - (१) अति प्रकाश, (२) सूर्य
'हस्काराद् विद्युतस्परि
अतो जाता अवन्तु नः
ऋ. १.२३.१२
सूर्य से उत्पन्न और विद्युत् से उत्पन्न वायुगण हमारी रक्षा करें।

हस्कृतिः - (१) ब्राह्मदिन, (२) हर्ष का विलास
'तदर्क उत हस्कृतिः'
ऋ. ८.८९.६; साम. २.७८०

हस्त - (१) हनन करने में समर्थ
'स्वन भ्राजाङ्घरे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानो'
वाज.सं. ४.२७; तै.सं. १.२.७.१; श.ब्रा. ३.३.३.११.
(२) हस्त नामक नक्षत्र
'पुण्यं पूर्वा फाल्गुन्यौ चात्र
हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखे मे अस्तु'
अ. १९.२.३.

(३) हस्तो हन्तेः (हन् धातु से हस्त बना है)। हाथ, हाथ से हनन किया जाता है।
'प्राशु हनने। हाथ हनन क्रिया में अति शीघ्रता करता है।
दे. 'आत्मन्'
'यदिमा वाजयन्नहम्'
'ओषधीर्हस्त आदधे'
ऋ. १०.९७.११; वाज.सं. १२.८५; मै.सं. २.७.१३:९३.१७
जब इन ओषधियों की स्तुति करता हुआ इन्हें हाथ में रखता हूँ।

हस्तग्रामः – (१) हाथ ग्रहण करने वाला पति।
'हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवदेम्'
ऋ. १०.१८.८; अ. १८.३.२; तै.आ. ६.१.३

हस्तगृह्य – (१) हाथ पकड़ कर लाने की क्रिया
'अग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय'
ऋ. १०.१०९.२; अ. ५.१७.२

हस्तगृह्या – पाणि ग्रहण कर
'पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्या'
ऋ. १०.८५.२६; आश्व.गृ.सू. १.८.१; आप.मं.पा. १.२.८

हस्तच्युति, हस्तच्युती – हस्तच्युति का अर्थ है हस्त प्रच्युति, हस्तगति–झटका,
'हस्तच्युती' तृतीया 'एक वचन का रूप है। हस्तच्युत्या (हाथों से घर्षण द्वारा)। दे. 'अथर्यु'
'अग्निं नरो दीधितिभिररण्योः
हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम्'
ऋ. ७.१.१; साम. १.७२; २.७२३; का.सं. ३४.१९; ३९.१५; कौ.ब्रा. २२.७; आप.श्रौ.सू. १४.१६.१; मा.श्रौ.सू. ६.२.२; नि. ५.१०
'अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिः'
ऋ. ५.४५.७

हस्त्य – हाथ से तैयार किया हुआ। दे. 'जुषाण'।
'जुषाणो हस्त्यमभि वावशेवः'
ऋ. २.१४.९

हसामुद – हंसमुख, प्रसन्न
'इरावन्तो हसामुदाः'
अ. ७.६०.६; हि.गृ.सू. १.२९.१

हसामुदौ – (१) परस्पर हंसी विनोदयुक्त पतिपत्नी
'हरामुदौ महसा मोदमानौ'
अ. १४.२.४३

हस्तावनेजन – हस्त + अवनेजन हाथ धोने का जल।
'ऋतं हस्तावनेजनम्'
अ. ११.३.१३.

हस्रा – हस् (हसना) + र् + टाप् = हस्रा। हंसने वाली। हंसमुख। दे. 'अप्स'
'उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः'
ऋ. १.१२४.७; नि. ३.५.
उषा हंसने वाली स्त्री के समान अपना रूप दिखाती है।

हस्तिनी – हस्त क्रिया में कुशल स्त्री
'यथा हस्ती हस्तिन्याः'
अ. ६.७०.२

हस्तिय – हाथीवान्
'अर्मेभ्यो हस्तिपम्'
वाज.सं. ३०.११; तै.ब्रा. ३.४.१.१९

हस्तिन् (हस्ती) – (१) हाथी, (२) हस्त कर्म में कुशल पुरुष। दे. 'हस्तिनी'
'मृगा इव हस्तिनः खादथा वना'
ऋ. १.६४.७

ह्रस्व – ह्रस् + वन् = ह्रस्व। अल्पतम, ह्रसित, हल्का, छोटा (२) ह्रस्व स्वर जिसका उच्चारण हल्का होता है।

ह्वरः – कुटिल कर्म
'अदेवानि ह्वरांसि च'
ऋ. ६.४८.१०; साम. २.९७४

ह्वर् – कुटिलता, क्रोध
'बृहस्पते यो नो अभि ह्वरो दधे'
ऋ. २.२३.६

ह्रादुनी – शब्द करने वाली, विद्युत
'ह्रादुनीभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२६; तै.सं. ७.४.१३.१; का.सं. (अश्व.) ४.२.

ह्रादुनि – ह्राद् + उनि = ह्रादुनि। अव्यक्त शब्द करने वाली विद्युत्। दे. 'मिह्'
'ह्रादुनीर्दूषीकाभिः'
वाज.सं. २५.९; मै.सं. ३.१५.८:१८०.२

ह्रादुनीवृतः – ब.व.। गर्जती विद्युत को उत्पन्न करने वाले मरुद्गण, (२) ह्रादकारी शब्दों से बरतने वाले
'अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः'

ऋ. ५.५४.३

ह्लार - ह्लाद + अच् = ह्लाद । 'ह्लाद' धातु शीतीभाव तथा सुखकारक अर्थ में प्रयुक्त है । अर्थ है- प्रसन्नता

ह्लादिका - आह्लादित करने वाली
'ह्लादिके ह्लादिकावति'
ऋ. १०.१६.१४; अ. १८.३.६०
(२) चित्र में हर्ष उत्पन्न करने वाली लता

ह्लादिकावती -हर्षप्रद ओषधियों से युक्त भूमि । दे. 'ह्लादिका'
(२) आह्लाद देने वाली वाणियों से युक्त
'ह्लादिके ह्लादिकावति'
ऋ. १०.१६.१४; अ. १८.३.६०

हायन - (१) एक वर्ष का पुराना रोग
'सदन्दिर्यश्च हायनः'
अ. १९.३९.१०
(२) प्रतिवर्ष उगने वाली घास (३) वर्ष (४) दिन
'अयो इट इव हायनः'
अ. ६.१४.३
'आर्तवानुत हायनान्'
अ. ३.१०.९; ११.६.१७

हायनी - वर्षा
'ऋतवस्ते विहिता हायनीः'
अ. १२.१.३६

ह्लार - (१) गुप्तस्थान, (२) जिसमें पदार्थ कुटिल मार्ग से जाता है
'चन्द्रमिव सुरुचं ह्लार आ दधु'
ऋ. २.२.४
(३) आह्वान का साधन भूत हवन, (४) गर्भ
'तस्मा एतं सुरुचं ह्वार मध्यम्'
अ. ४.१.२; आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३; शां.श्रौ.सू. ५.९.६
(५) कुटिलतां वारयन् (कुटिल मार्ग से आता हुआ गर्भगत जीव)- दया. ।
दे. 'अनाकृत'।
'ह्लारो न वक्वा जरणा अनाकृतः'
ऋ. १.१४१.७
(६) ताप
'ह्लारो न शुचिर्यजते हविष्मान्'
ऋ. १.१८०.३

ह्लार्य - (१) कुटिल पुरुषों का नाशक अग्नि
'अत्यो न ह्लार्यः शिशुः'
ऋ. ६.२.८
(२) कुटिलगामी-सर्प
'उत्तस्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्लार्याणाम्'
ऋ. ५.९.४

हारिद्रव - (१) हल्दी या तद्वत् ग्रन्थिवाली औषधि (२) रोगहारी द्रव पदार्थ, (३) हारिद्रव नामक पक्षी-सा.
'अथो हारिद्रवेषु ते'
ऋ. १.५०.१२; अ. १.२२४; तै.सं. ३.७.६.२२; आप.श्रौ.सू. ४.१५.१
(४) सुख हरने और मल बहाने वाला रोग-दया.
(५) दुःखी पीड़ा को हरने तथा स्वतः शरीर के मलों को बहाकर निकालने वाली ओषधि । दे. 'शुक'

हारिद्रवा - द्वि.व. । हारिद्रव नामक दो जल पक्षी
'हारिद्रवेव पतथो वनेदुप'
ऋ. ८.३५.७

हारियोजनः (१) जो घोड़ो आदि को जोड़ता है-सारथि ।
(२) प्रजा के दुःख हारक विद्वानों की नियुक्ति और प्रबल उपायों का आयोजन करने वाला राजा (३) वेगवान् सैनिकों का वियोक्ता, (४) आज्ञापक तथा प्रबल तुरंगों और अश्वरोही वीरों तथा आग्नेयादि अस्त्रों का संचालक ।
'एवा ते हरियोजना सुवृक्ति'
ऋ. १.६१.१६; अ. २०.३५.१६
(५) ज्ञानी पुरुषों को योग द्वारा साक्षात् करने योग्य
(६) समस्त सूर्यों को प्रेरणा करने वाला

हार्दि - (१) हृदय का प्रेम का अभिप्राय (२) हार्दम् अस्मिन् अस्ति (जिसमें मन लगा हुआ हो) ।
'आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम्'
ऋ. २.२९.६; वाज.सं. ३३.५१; मै.सं. ४.१२.६:१९४.५
'हार्दिं ते शोचयामसि'
अ. ६.८९.१
(३) हृदय
'मा नो हार्दिलिपा वधीः'
ऋ. ८.७९.८

हृदय का भाव अर्थ में-
'अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजति'
ऋ. ५.४४.९
हृदय अर्थ में
'इन्द्रस्य हार्दिमाविशान् मनीषया'
अ. १८.४.५८

हासति - स्पर्धते, हृष्यति (स्पर्धा करता या हर्षित होता है)। 'हाराहासी' का प्रयोग स्पर्धा अर्थ में अन्य भी किया जाता है

हास्महि - हा (त्यागना) धातु का रूप। अर्थ है हम परिव्यक्त न हों। दे 'मा'।
'मा हास्मदि प्रजया मा तनूभिः'
ऋ. १०.१२८.५; अ. ५.३.७; तै.सं. ४.७.१४.२; आप.मं.पा. २.९.६.
हम पुत्रादि रूपी प्रजा से परिव्यक्त न हों और न अपने ही शरीरों से वियुक्त हों।

हासमाने - द्वि.व.। हास (हंसना) + शानच् + टाप् = हासमाना। द्वि. व., में 'हासमाने'।
हंसती हुई घोड़ियों के विशेषण के रूप में प्रयुक्त। दे. 'जवेते'।
'अश्वे इव विषिते हासमाने'
ऋ. ३.३३.१; नि. ९.३९
शुतुद्रि और विपाशा नदियां जल से पूर्ण हो जब पहाड़ से बहती हैं तो मालूम होता है जैसे वाजिशाला से छूटी (विषिते) दो घोड़ियां (अश्वे) हिनहिनाती आ रही हों (हासमाने)।

हास्तिन - हाथी का

हि - (१) प्रेरित करना, बढ़ाना, प्रार्थना करना अर्थों में प्रयुक्त धातु।
'अश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः'
ऋ. ७.७.१
(२) अ.। हेतु के अपदेश में प्रयुक्त अव्यय। जैसे
'इदं हि करिष्यति'
(यतः यह करेगा अतः)। यतः (क्योंकि)। दे. 'अश्रवम्'
'अश्रवं हि भूरिवत्तरा वाम्'
विजामातुरुत वा घा स्यालात्'
ऋ. १.१०९.२; तै.सं. १.१.१४.१; का.सं. ४.१५; नि. ६.९.
हे इन्द्राग्नी, या अध्यापक और उपदेशक, क्योंकि मैं ने सुना है कि क्रीता पति दायाद और स्याले से भी बढ़कर दानी हो ....
(३) प्रश्न पूछने पर 'हि' का प्रयोग।
कथं हि करिष्यति (कैसे करेगा)।
(४) असूया अर्थ में
'कथं हि व्या करिष्यति' (कैसे वह करेगा) अर्थात् उसमें करने की शक्ति नहीं है। (५) निश्चय अर्थ में
'अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसः'
ऋ. ८.२७.१०; नि. ६.१४
(तुम लोगों का सजात्य है)। दे. 'आप्य', 'कम्'।

हिकम् - (१) ही, निश्चय से।
'प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु'
ऋ. ८.११.१०; तै.आ. १०२.१ अ. ६.११०.१
(२) हि + कम्। क्योंकि।
कम् एक निरर्थक अव्यय है जो 'हि' के साथ मिल गया है।
'राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः'
ऋ. १.९८.१; वाज.सं. २६.७; तै.सं. १.५.११.३; मै.सं. ४.११.१: १६१.३; का.सं. ४.१६; नि. ७.२२
क्योंकि वैश्वानर अग्नि सम्मुख हो सेवनीय है और सभी जीवों का राजा है।

हिङ्करिक्रती - संसार की नाना घटनाओं को उत्पन्न करती हुई मधुकशा
'हिङ्करी क्रती बृहती वयोधाः'
अ. ९.१.८

हिङ्क - धा.। चाहना, सूंघना, पुचकारना, सामगान करना।
'मूर्धानं हिङ्ङ्कृणोन्मातवा उ'
ऋ. १.१६४.२८; अ. ९.१०.६; नि. ११.४२

हिङ्कृत - 'हि' कर चुकने वाला विद्वान्
'हिङ्कृताय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७; मै.सं. ३.१२.३:१६०.१२; श.ब्रा. १३.६.३.५.

हिङ्कार - (१) 'हि' रूप से साम के प्रारम्भ में उद्गावा आदि द्वारा किया गया सामगान।
'हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः'
अ. ११.७.५
(२) 'हि' शब्द करने वाला सामगायक विद्वान्, (३) राजा, (४) शुक्र
'शुक्रमेव हिङ्कारः'

जै.उप. १.३४.१
(६) प्राण
प्राणो वै हिङ्कारः
श.ब्रा. ४.२.२.११
(७) प्रजापति
'प्रजापतिः वै हिङ्कारः'
तै.ब्रा. ६.८.५
'हिंकाराय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७; मै.सं. ३.१२.३:१६०.१२; श.ब्रा. १३.१.३.५;का. श्रौ.सू. २०.३.३.

हित – (१) धारण किया हुआ कर्म धा + क्त'
'यद्धितं माव पादि तत्'
अ. ८.६.२०
(२) हि + क्त = हित। कल्याण कारक, मित्र, हित। दे. ' ईदृशए
'क्षेत्रस्य पतिना वयम्
.हितेनेव जयामसि'
ऋ. ४.५७.१; तै.सं. १.१.१४.२; मै.सं. ४.११.१:१६०.३; का.सं. ४.१५; आप.मं.पा. २.१८.४७; नि. १०.१५
हम जैसे मित्र के साथ संयुक्त जय प्राप्त करते हैं वैसे कृषक के साहाय्य से जय प्राप्त करें।

हित प्रपसा – द्वि.व.। (१) उत्तम ज्ञान, अन्न देने वाले (२) उत्तम यत्न करने वाले अश्विद्वय या स्त्री पुरुष।
'मन्दू हितप्रयशा विक्षु यज्यू'
ऋ. १०.६१.१५

हितप्रयाः – (१) जिसने 'प्रयस्' अर्थात् अन्न प्राप्त किया हो।
'हितप्रयस आनुषक्'
ऋ. ८.२७.७
(२) अन्नादि धारण करने वाला।
'अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा'
ऋ. ८.६०.१७
(३) हित + प्रयास। खेत में बीज बोने वाला कृषक। (४) यज्ञ में हविष् रखने वाला भक्त।
'हितप्रयसो वृषभ ह्वयन्ते'
ऋ. १०.११२.७
(५) प्राणों का नियमन करने वाला साधक, (६) ज्ञान प्राप्त करने वाला।
'हितप्रयस आशत'
ऋ. ८.६९.१८; अ. २०.९२.१५

हितमित्रः – (१) हितैषी मित्रों वाला परमेश्वर-राजा (२) जीवों को मरने से बचने वाले तत्व-वायु-सूर्य मेघादि को धारण करने वाला-परमेश्वर
'उपक्षेति हितमित्रो न राजा'
ऋ. १.७३.३; ३.५५.२१
(३) जलाशयों को अपने भीतर धारण करने वाला-सूर्य
(४) हितकारी मित्रों में युक्त-राजा

हितावान् – (१) हितं विद्यते यस्य सः-दया. (२) हित चाहने वाला (३) बहुत धन संग्रह करने वाला वणिक्
'विपन्यामहे वि पणिर्हितावान्'
ऋ. १.१८०.७

हितिः – (१) हेतु, प्रयोजन, (२) प्रयोजन का निधान दे. ' अस्मेहितिः'
'कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत्'
ऋ. १०.१०८.१; नि. ११.२५
हे सरमे, इर रात में हमारे यहां आने का क्या प्रयोजन था ? -सा.।
हे वेदवाणी, हमारी ओर आने का क्या काम ? यह आगमन क्यों हुआ ?

हित्वी – त्यागकर। दे. 'शश्वान्'
'शश्वां अपो विकृतं हित्व्यागात्'
ऋ. २.३८.६

हिनः – सर्व प्रेरक आत्मा
'स हि न त्वमसि'
अ. ६.१६.२

हिन्वः – सब को बढ़ाने वाला
'सूनो हिन्वस्य हरिवः'
ऋ. ८.४०.९

हिन्वन्ति – बहिष्कुर्वन्ति व्याकुर्वन्ति (बहिष्कृत या व्याकृत करते हैं)। हराते हैं।
हिविधातु प्रीणनार्थक हैः परन्तु धातु के अनेकार्थक होने से यहाँ अर्थ बदल गया है।

हिन्वानः – वृद्धि पाता हुआ
'न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रम्'
ऋ. १.३३.८
वृद्धि को प्राप्त हुए वीर पुरुष भी (हिन्वानासः) राष्ट्र के तेजस्वी स्वामी पर या इन्द्र को नहीं

लांघते (इन्द्रं न तितिरु) ।

हिन्विरे - महिमा गाते हैं ।

'त्वमापः पर्वतासश्च हिन्विरे'

अ. २.१०६.२

हिनु - (क्रिया) ।. धातु के लोट् म.प्र. ए.व. का रूप । अर्थ है (१) आगे बढ़ा -सा ।

(२). प्रदान कर -दया.

'क्रत्वे दक्षाय नो हिनु '

ऋ. ९.३६.३; वाज.सं. ३४.८; तै.सं. ३.३.११.४; मै.सं. ३.१६;४; १८९.११, आश्व.श्रौ.सू. ४.१२.२; शां.श्रौ.सू. ९.२७.२; नि. ११.३०

संकल्प की सिद्धि के लिए आगे बढ़ा-सा.।

हमारी सन्तान के लिए वृद्धि प्रद अन्न प्रदान कर - दया.

हिनुहि - प्राप्नुहि, प्रेरय, प्राप्त कर, प्रेरित कर ।

दे.-'ईरिरे'

'अग्नि तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे'

ऋ. १.१४३.४

उस अग्नि को स्तुतियों के द्वारा प्राप्त करो ।

'हि' धातु और गति और वृद्धि अर्थो में आया है । 'हिनिहि' लोट् म.पु. ए.व. का रूप है ।

हिनोत - (१) प्रहिणुत, प्रगमयत, प्रोत्सर्पय (ले चलो, प्रेरित करो) । दे. आसदे ।

'प्र नूनं जातवेदसम्
अश्वं हिनोत वाजिनम्
इदं नो बर्हिरासदे ।'

ऋ. १०.१८८.१; नि. ७.२०

समस्त जगत् को व्याप्त करने वाले गतिशील अग्नि या वेदवेत्ता विद्वान् को इस आस्तीर्ण कुशासन पर बैठने के लिए प्रेरित करो (प्रहिनोढ) ।

(२) प्रवृत्त करो, (३) आओ । दे. 'ऊधस्'।

'हिनोता नो अध्वरं देवयज्या
हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् ।'

ऋ. १०.३०.११; नि. ६.२२

हे ऋत्विजो, देवयजन मार्ग में इस हमारे यज्ञ को प्रवृत करो तथा धनों की प्राप्ति के लिए ब्रह्म को प्रवृत्त करो ।-सा.

हे आप्त देवियों, देवपूजा के लिए हमारे यज्ञ में आओ तथा धनों के लाभ के लिए वेद को जानो (ब्रह्म हिनोत) । (४) जानो , समझो

हिनोति - (१) बढ़ाता है ।

'सोमो हिनोति मर्त्यम्'

ऋ. १.१८.४

सोमलता आदि ओषधि मनुष्य को बढ़ाता है।

(२) समर्थन करता है ।

'न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति'

ऋ. ७.१०४.१३; अ. ८.४.१३

हिम् - हन् + मक् ।

'हन्ति उष्णं दुर्गन्धिं वा तत् हिमम् (जो उष्ण या दुर्गन्ध को नष्ट करता है वह हिम है) ।

अर्थ - (१) हेमन्त ऋतु

'हिमस्य माता सुहवा वो अस्तु'

अ. १९.४९.५

(२) हिमं पुनः हन्ते र्वा

हिनोतेर्वा (हिम 'हन्' धातु या वृद्ध्यर्थक 'हि' धातु से बना है) ।

हि (गत्यर्थक और वृद्ध्यर्थक) + मन् = हिमन् ।

हिम ओषधियों को नष्ट करता और भयादि की वृद्धि करता है ।

अर्थ- हिम, वर्ष

'वर्ष' के अर्थ में हिम शब्द का प्रयोग वेदों में हुआ है । दे. 'अतिक्रामत्' ।

'शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम'

अ. १२.२.२८; नि. ६.१२.

(३) शीतल जल । दे. 'अवनीत

'हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथाम्'

ऋ. १.११६.८; नि. ६.३६

हे अश्विनीद्वय, सूर्य और पृथिवी, तुम दोनों ने ग्रीष्मान्त में अत्यन्त बढी गर्मी को ठंडे जल से शान्त किया या अग्नि के समान दाहक गर्मी को दूर किया ।

(४) बर्फ

हिमस्य जरायुः - शीतल जल की जरायु अर्थात् शैवाल (सेवार) ।

'हिमस्य त्वा जरायुणा'

ऋ. खि.१०.१४२.१; अ. ६.१०६.३; वाज.सं. १७.५; तै.सं. ४.६.१.१ ; मै.सं. २.१०.१;१३१.७; का.सं. १७.१७; श.ब्रा. ९.१.२.६; मा.श्रौ.सू. ४.४.२०

हिम्या - हन् + मक् = हिम + यत् = टाप् = हिम्या । अर्थ है- (१)रात्रि, (२) शीतकाल

'युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससः'
ऋ. १.३४.१
तुम दोनों का यन्त्र उसी प्रकार अनुरूप हो जैसे रात्रि में अनुरूप वस्त्र शीत बेला के साथ अनुरूप होता है ।

हियान - (१) बढ़ता हुआ, (२) बल और ऐश्वर्य में निरन्तर बढ़ता हुआ ।
'संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः'
ऋ. २.४.४.
(३) प्रेरित होता हुआ
'आ नः स्तोममुप द्रवद्धियानः'
ऋ. ८.४९.५
(४) प्रेरित हुआ अश्व
'अत्यो न हियानो अभिवाजमर्ष'
ऋ. ९.८६.३

हिरण्यकर्ण - (१) जिसके कानों में सोने का कुण्डल हो, (२) हित और रमणीय साधनों से और प्राणों से युक्त आत्मा ।
दे. 'मणिग्रीव'।

हिरण्यकशिपु - (१) हिरण्य के वस्त्र से आच्छादित आरति
(२) कंजूसी
'हिरण्यकशिपुर्मही'
अ. ५.७.१०

हिरण्यकार - सुवर्णकार
'वर्णाय हिरण्यकराम्'
वाज.सं. ३०.१७; तै.ब्रा. ३.४.१.१४

हिरण्यकोशः - (१) सुवर्ण के समान तेज का ज्योति से युक्त अग्नि, (२) सूर्य
हिरण्यकेशो रजसो विसारे'
ऋ. १.७९.१; तै.सं. ३.१.११.४; ऐ.ब्रा. ७.९.४; आश्व.श्रौ.सू. २.१३.७; आप.श्रौ.सू. १९.२७.१०
अन्धकार और राजस आवरण को दूर करने के कार्य में और विविध दिशाओं में और आक्रमण करने में सुवर्ण के समान तेज या ज्योति से युक्त- अग्नि या सूर्य के समान हों ।

हिरण्यकेश्या - द्वि व.। (१) सुवर्ण के समान दीप्त तेज को केशवत् धारण करने वाले स्त्रीपुरुष, (२) हिरण्य केश वाले दो अश्व
'हरी हिरण्यकेश्या'
ऋ. ८.९३.२४

हिरण्यकेशी निऋतिः - सुवर्ण के कारण लाखों विपत्तियां डालने वाली पाप प्रवृत्ति
'तस्यै हिरण्य केश्यै
निऋत्यै अकरं नमः'
अ. ५.७.९

हिरण्यगर्भः - हिरण्यमयश्चासौ गर्भः हिरण्यमयः प्रचण्डः गर्भः यस्य स हिरण्यगर्भ (जिसके गर्भ में हिरण्मय गर्भ को वह सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ है) ।
हिरण्य का अर्थ सुवर्ण है परन्तु यहां दार्शनिक अर्थ है- सृष्टि का आरम्भ हिरण्यगर्भ से ही हुआ ।
(१) सृष्टि के पहले परमात्मा से उत्पन्न हिरण्य गर्भ जो जन्म, लेते मात्र अद्वितीय स्थावर तथा जंगम जगत् का पति या ईश्वर हुआ और अन्तरिक्ष द्युलोक तथा पृथिवी का धारण किया । दे. 'क'।
'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे'
ऋ. १.१२१.१; अ. ४.२.७; वाज.सं. १३.४; २३.१; २५.१०; तै.सं. ४.१.८.३; ५.५.१.२.; मै.सं. २.७.१५: ९६.१३; २.१३.२३:१६८.५; ३.१२.१६:१६५.१; का.सं. १६.१५; २०.५; ४०.१; श.ब्रा. ७.४.१.१९; १३.५.२.२३; नि. १०.२३.
सृष्टि के पहले हिरण्य गर्भ परमात्मा से उत्पन्न हुआ । (२) जीवन ज्योतिर्मय गर्भ जिसका गर्भ अर्थात् जीवात्मा ज्योतिर्मय हैं वह प्राणवायु । (३) विज्ञानमय गर्भ । हिरण्यश्चासौ गर्भश्च (यह हिरण्यमय भी है और गर्भ भी है) । (४) दुर्ग के मत से प्रकृति ही हिरण्यगर्भ है । प्रकृति से ही सृष्टि हुई है । वस्तुतः सृष्टि के आरम्भ में प्रकृति हिरण्यमय थी । हिरण्य द्रव्यमात्र का वाचक है ।
(५) ब्रह्मा । हिरण्यगर्भ ब्रह्मा भी वाचक है ।
आधुनिक अर्थ - विष्णु, सूक्ष्म शरीर जिसमें आत्मा रहता है ।
(६) जगत् के उत्पन्न होने के पहले सुवर्ण आदि तेजस पदार्थों को भी अपने गर्भ में रखने वाला (७) परमेश्वर जिसके गर्भ से सूर्यादि ज्योति है ।

हिरण्य गृह - (१) सुवर्णवत् तेजोमय सह को ग्रहण करने वाला सब देहोव का शासक-आत्मा

'अप्सु ते राजन् वरुण
नृ हो हिरण्ययो मिथः'
अ. ७.८३.१

हिरण्यचक्र – चमकीले चक्कों वाला दे. 'वराह'।

हिरण्यजिह्वः – सविता (२) सर्वहितकारी, सबको भली लगने वाली सूवर्णवत् कान्तियुक्त सत्य प्रकाश वाली को बोलने वाला।
'हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे'
ऋ. ६.७१.३; वाज.सं. ३३.६९; तै.सं. १.४.२४.१; मै.सं. १.३.२७ :३९.१४; का.सं. ४.१०; तै.ब्रा. २.४.४.७

हिरण्यज्योतिः – सुवर्ण सम्पत्ति से युक्त
'हिरण्यज्योतिषं कृत्वा
यो ददाति शतौदनाम्'
अ. १०.९.६

हिरण्यवत् – धनी सेठ। दे. 'जरती'।
'कार्मारो अश्मभिर्द्युभिः
हिरण्यवन्तमिच्छति।'
ऋ. ९.११२.२
जैसे चमकते हीरों से (द्युभिः अश्मभिः) सोनार (कार्मारः) धनी सेठ को चाहता है।

हिरण्यत्वङ् – (१) सुवर्ण या लौह के आवरण से युक्त–दृढ़ (२) जिसका ऊपरी वर्ण तेज और सुवर्ण हो।
'हिरण्यत्वङ् मधुवर्णो घृतस्नुः'
ऋ. ५.७७.३; आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१

हिरण्यत्वचसः – रमणीय त्वचा वाली सात, प्रोणश्मियां।
'हिरण्यत्वचसो बृहतीरयुक्त'
अ. १३.२.८

हिरण्यदः – सुवर्ण देने वाला
'हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते'
ऋ. १०.१०७.२

हिरण्यदन्तः – (१) स्वर्ण तुल्य दन्त के समान ज्वाला युक्त अग्नि, (२) चान्दी के तुल्य दांत वाला बालक, (३) लोहे के बने शस्त्र वाला
'हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात्'
ऋ. ५.२.३

हिरण्यद्रायि – सुवर्ण के कारण पाप फैलाने वाली–अराति। अर्थात् कंजूसी कृपणता
'तस्यै हिरण्यद्रायेऽरात्या अकरं नमः'
अ. ५.७.१०

हिरण्ययपवि – सोने या लोहे की बनी चक्रधारा
'हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन्'
ऋ. १.१८०.१

हिरण्यनिर्णिक् – सुवर्ण के समान क्रान्तिमान्
'हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा'
ऋ. ५.६२.७
(२) सुवर्ण के समान चमकने वाली, (३) हित और रमणीय ज्ञान से शिष्यों का ज्ञान सामर्थ्य बढ़ाने वाली
'हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः'
ऋ. १.१६७.३

हिरण्यप्रउग – (१) प्रकाशस्वरूप आत्मा द्वारा जानने योग्य अतिरमणीय आनन्दमय रस, (२) अग्नि रूप क्रान्ति, ताप मय स्वरूप (३) जिसमें ज्योति रूप अग्नि के मुख के समान स्थान हो।
'रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः'
ऋ. १.३५.५; तै.ब्रा. २.८.६.२
प्रकाश स्वरूप आत्मा द्वारा जानने योग्य अति रमणीय आनन्दमय रस को धारण करते हुए...।
अथवा,
अग्नि रूप कान्ति का प्रयोग करने वाले तापमय स्वरूप को धारण करते हुए...।

हिरण्ययः कोशः – तेजः स्वरूप प्राणों का एकमात्र आश्रय जीवात्मा
'तस्यां हिरण्ययः कोशः
सर्वर्गो ज्योतिषावृतः'
अ. १०.२.३१; तै.आ. १.२७.३

हिरण्यपाणिः – (१) सबको प्रकाश देने वाला–सूर्यादि प्रकाश पिण्डों को भी अपने रखने वाला–परमेश्वर
'हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपात् स्वः'
अ. ७.१४.२; साम. १.४६४; वाज.सं. ४.२५; तै.सं. १.२.६.१; मै. सं. १.३.१५:१४.६; का.सं. २.६; श.ब्रा. ३.३.२.१२; आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३; शा.श्रौ.सू. ५.९.७.
(२) सविता, (३) सुवर्ण रखने वाला
'हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात्'
ऋ. ६.७१.४
(४) तेजस्वी हाथों वाला– परमात्मा

हिरण्यपावाः – (१) अपने आत्मा को हिरण्य के

समान पवित्र करने वाले योगी जन (२) हित और अति प्रिय आत्मा को शोधने वाले विद्वान्
'हिरण्यपावाः पशुमासु गृहते'
ऋ. ९.८६.४३; अ. १८.३.१८; साम. १.५६४; २.९६४

हिरण्यः - सं. । (१) तेज से बना हुआ- तेजस सूर्य, (२) सुवर्णमय,
'विद्युत प्रकाशो हिरण्यो बिन्दुः'
अ. ९.१.२१
'सूरश्चक्रं हिरण्ययम्'
ऋ. ६.५६.३
प्रेरक परमात्मा ने आदित्य के लिए सुवर्णमय कालचक्र चलाया ।
ऋ. ६.५६.३

हिरण्मय पात्र - हिरण्मय ढक्कन
'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहिंत मुखम्'
वाज.सं. ४०.१७; ईश.उप. १५

हिरण्यपेशसा - सुवर्ण का अलंकार धारण करने वाले स्त्री पुरुष
'उभा हिरण्य पेशसा'
ऋ. ८.३१.८; आप.मं.पा. १.११.१०

हिरण्यम् - (१) ह्रियते आयाम्यमानम् इति वा (सोना जब आभूषण बनाने के लिए गला कर एवं पीटपाटकर विस्तीर्ण किया जाता है तब सोनार द्वारा हरण किया जाता है) ।
(ख) ह्रियते जनात् जनम् । इति वा (एक जन से दूसरा जन सोना ले जाता है, अतः हिरण्य है) ।
(ग) हृ + कन्यन् = हिरण्य (हर्यते = कन्यन् हिरच्) ।
(घ) हितं रमणीयं भवति इति वा (सुवर्ण की सभी इच्छा रखते हैं या वह अपनी प्रभा से दीप्त रहता है) ।
(ङ) हर्य (कामना करना) + कन्यन् = हिरण्य
(२) हित और रमणीय सत्वगुण का स्वामी, (३) सर्व दुःख दाहक 'उष्ट्र' के तीन नामों में एक ।
'हिरण्यं इत्येके अब्रवीत्'
अ. २०.१३२.१४

हिरण्यमणि - (१) हित, रमणीय तेजः स्वरूप हिरण्य ।
दक्ष या बलवान् पुरुष ही हिरण्य बांधता है ।
'यदाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यं शतानीकाय सुमनस्यमानाः'
ऋ.खि. १०.१२८.९; अ. १.३५.१; वाज.सं. ३४.५२
शुभ संकल्प वाले दाक्षायणों ने शतानीक को हिरण्य बांधा ।

हिरण्ययःवेतसः - (१) सुवर्ण के रंग का चमकता हुआ दण्ड के समान विद्युत, दण्ड, (२) सर्व हितकारी तेजस्वी विद्वान् ।
'हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम्'
ऋ. ४.५८.५; वाज.सं. १७.९३; तै.सं. ४.२.९.६; का.सं. ४०.७; तै. आ. (आंध्र) १०.४०; आप.श्रौ.सू. १७.१८.१

हिरण्यनी नौः - (१) हिरण्य की नौका-सूर्य
'हिरण्ययी नौरचरत्'
अ. ५.४.४; ६.९५.२; १९.३९.७

हिरण्ययुः - () हिरण्य, हितरमणीय का इच्छुक
'कामो गव्युर्हिरण्ययु'
ऋ. ८.७८.९
(२) ऐश्वर्य का हित एवं रमणीय कार्य की कामना करने वाला
'त्वं हिरण्ययुर्वसो'
ऋ. ७.३१.३; साम. २.६८

हिरण्यरथाः - ब.व.। सुवर्ण रूपी रथ पर आरूढ़ रुद्र ।
बहुवचन में व्यवहृत रुद्रों का यह विशेषण है ।
दे. 'आगन्तन' इन्द्रवन्त'
'आरुद्रासः इन्द्रवन्तः सजोषसः हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन'
ऋ. ५.५७.१; नि. ११.१५
हे रुद्रो, इन्द्र के साथ प्रेम सहित हिरण्य रथ पर आरूढ़ हो यथाशास्त्र किए जाने वाले यज्ञ के लिए आओ ।

हिरण्यरूपम् - (१) सुवर्ण के समान रूप वाला ।
अयः स्थूण का विशेषण दे. 'उषस्'
'हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टौ अयः स्थूणमुदिता सूर्यस्य'
ऋ. ५.६२.८
हे मित्र और वरुण, तुम दोनों उषा के उच्छेद काल में तथा सूर्य के उदय काल में अपने सुनहले लौह स्थूल वाले रथ पर चढ़ते हो ।
(२) अग्नि का विशेषण

'हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृक्
अपां नपात् सेदु हिरण्यवर्णः ।
हिरण्ययात् परि योनेर्निषद्या
हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै'
ऋ. २.३५.१०;
हिरण्य के समान रूप वाला वह मध्यम स्थानी वैद्युताग्नि देवता, आदित्य का पुत्र (स अपान्नपात्) व्रर्षाऋतु में धर्मार्त एवं अन्नार्थी प्रजा-गण के लिए हिरण्य के सदृश प्रीति जनक (हिरण्य संदृश्) तथा वही (सेदु) हिरण्य के समान प्रार्थनीय (हिरण्यवर्णः) तेजोमयी अपनी योनि से अर्थात् आदित्य से (हिरण्ययात् योनेः) चारों और अभ्रजाल से अन्तरिक्ष में व्याप्त हो (परिनिषद्य) हिरण्य का दाता (हिरण्यदः) अर्थात् अपान्नपात् अन्न के हेतु यह उदक (अन्नम्) चारों ओर से देता है (आददाति) । अन्य अर्थ - अग्नि तेजः स्वरूप है । वह सर्वदर्शन वाला है। वह अग्नि सुवर्ण वर्ण वाला है । तेजोमय पदार्थ से बाहर परिस्थित होकर (हिरण्यात् योनेः परिनिषद्य) यह उत्तमोत्तम पदार्थों का दाता अग्नि (हिरण्यदाः) मनुष्य जाति को अन्न देता रहे (अस्मै अन्नं ददाति) ।

हिरण्य वक्षाः - (१) बहुमूल्य धन, सम्पत्ति एवं हिरण्य जिसके वक्ष पर हो वह पृथ्वी
'हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी'
अ. १२.१.६
'तस्यै हिरण्यवक्षसे'
अ. १२.१.२६

हिरण्यवत् - हिरण्य वाला-सेठ । दे. 'जरती'

हिरण्यबन्धना - हिरण्य में बांधी नौका -सूर्य
'हिरण्यबन्धना दिवि'
अ. ५.४.४; ६.९५.२; अ. १९.३९.७

हिरण्यवन्धुर - सुवर्ण लोह आदि धातु से सुन्दर कान्तियुक्त-रथ
'रथं हिरण्यवन्धुरम्'
ऋ. ४.६.४; ८.५.२८

हिरण्यपर्ण - (१) सुवर्ण के समान तेजोयुक्त पत्र वाला- महावृक्ष (२) सुवर्ण समान पंखों वाला
'हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलः'
वाज.सं. २८.२०; तै.ब्रा. २.६.१०.६

हिरण्यवर्ण - (१) स्वर्ण के समान पीतवर्ण वाली सिलाची, लाक्षा, लाह नामक ओषधि
'हिरण्यवर्णे सुभगे'
अ. ५.५.६,७
(२) सुवर्णवत् शुद्ध निष्कपट हित और रुचिकर वर्णों या अक्षों पदों का प्रयोग करने वाला तेजस्वी ।
'हिरण्यवर्णमरुषं सपेम'
ऋ. ५.४३.१२; मै.स.
(३) गार्हपत्य अग्नि का विशेषण (४) पितृयज्ञ और अतिथि यज्ञ रूपी पंखों वाला ।
(५) तप्त ज्वाला युक्त । दे. 'रजिष्ठ'
(६) सुवर्ण के वर्ण का या सुवर्ण का बनाया हुआ अमृतलोक या रथ का विशेषण ।
दे. 'अमृतस्य लोकः'
हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्'
ऋ. १०.८५.२०; अ. १४.१.६१; आप.मं.पा. १.६.४; नि. १२.८
(७) यज्ञयूप का विशेषण । यज्ञयूप उसी काष्ठ का होता है, जो पका हुआ हो पर्ण गया हो । उसका रंग हिरण्य का सा पीत होता है । अतः वह हिरण्य का सा पीत होता है । अतः वह हिरण्यवर्ण कहलाया था

हिरण्यवर्णाः - ब.व.। अमृत स्वरूप या शब्द और प्रकाश को हरण करने वाले मरमात्माओं के जल ।
'हिरण्यवर्णा अतृपं यदा वः'
अ. ३.१३.६; तै.सं. ५.६.१.४; मै.सं. २.१३.१:१५३.३; का.सं. ३५.३

हिरण्यवर्तनिः - (१) हित और प्रिय मार्ग का उपदेश देने वाली -सरस्वती,(२) सुवर्ण रथ पर चढ़ने वाली
'घोरा हिरण्यवर्तनिः'
ऋ. ६.६१.७

हिरण्यवर्तनी - (१) आत्मा को अपना प्रेरक और आश्रय बनाने वाले प्राण और अपान ।
'दस्रा हिरण्यवर्तनी'
ऋ. १.९२.१८; ५.७५.२; ८.५.११; ८.९; साम. २.१०८५; १०९४
(२) द्वि.व.। अश्विद्वय का विशेषण, (३) हित और रमणीय मार्ग पर चलने वाले स्त्री पुरुष, (४) सुवर्ण आदि धातुओं का व्यापार करने

वाले, (५) हितकारी मनोरम मार्ग से जाने वाले 'हिरण्यवर्तनी नरा'
वाज.सं. २०.७४; मै.सं.३.११.४:१४६.७; का.सं. ३८.९; तै.ब्रा. २.६.१३.३; शांश्रौ.सू. ७.१०.१०
(६) हित और प्रिय व्यवहार मार्ग में चलने वाले-सूर्य और पवन ।
दे. 'मयोभुवा'।

हिरण्यवाशी - (१) हित और रमणीय वेद वाणी से युक्त बृहस्पति (२) लोहा आदि के चमकते शस्त्रास्त्रों वाला
'हिरण्यवाशीरिपिरः स्वर्साः'

हिरण्यवाशीसत्तमः - (१) सबसे अधिक हित और प्रिय वाणी बोलने वाला-परमेश्वर, (२) सुन्दर सुवर्ण और लोहादि से बने शस्त्रार्त्रों से सम्पन्न राजा (३) उत्तम वाणी से युक्त विद्वान्। दे. 'विश्वसौभगः'

हिरण्यबाहुः - (१) बाहु पर सुवर्णपदक धारण करने वाला वीर, (२) रुद्र, (३) सुवर्ण आदि धन के बल पर शासन करने वाला
'नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये'
वाज.सं. १६.१७; तै.सं. ४.५.२.१; मै.सं. २.९.३:१२२.९; का.सं. १७.१२; श.ब्रा. ९.१.१.१८

हिरण्यविः - हिरण्य + वि । हित रमणीय कान्ति से युक्त
'दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनाम्।
ऋ. ८.६५.१०

हिरण्यवेतस - (१) सुवर्ण रूप कोष सम्पत्ति का बना अति कमनीय आधाररूप स्तम्भ, (२) अति तेजस्वी कमनीय ब्रह्म, तत्व।
'हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम्'
ऋ. ४.५८.५; वाज.सं. १७.९३; तै.सं. ४.२.९.६; का.सं. ४०.७; आप.श्रौ.सू. १७.१८.१

हिरण्य शम्य - सुवर्ण एवं उच्च ज्योतियों को भी शान्त कर देने वाली- सूर्य का रथ या पिण्ड
'हिरण्य शम्यं यजतो बृहन्ताम्'
ऋ. १.३५.४; मै.सं. ४.१४.६:२२३.१५; तै.ब्रा. २.८.६.१
सुवर्ण एवं उच्च ज्योतियों को भी शान्त कर देने वाली प्रखर किरणों से युक्त ...।

हिरण्य शिप्रा - (१) सुवर्णवत् चमकने वाले तेज से युक्त, (२) हितकारी और रमणीय एवं सुवर्ण के समान उज्ज्वल सुन्दर मुख या वाणी और ज्ञान वाले (३) सुवर्ण या लौह मय शिरस्त्राण शस्त्रास्त्र पहने।
'हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः'
ऋ. २.३४.३

हिरण्यशृंगः - (१) धातु के बने अति प्रदीप्त श्रृंग अर्थात् हिंसा साधन शस्त्रों वाला नर श्रेष्ठ।
(२) शतवार नामक मणि
'मणि हिरण्यशृंग ऋषभः
शतवारो अयं मणिः'
ऋ. १९.३६.५
(३) सुवर्ण की कलंगी जो घोड़े के सिर पर रखी जाती है।
(४) सोने की सींग वाला। (५) सुवर्णादि को सिर पर रखने वाला ऐश्वर्य वान् धनी पुरुष (६) हितरमणीय शान्ति दायक स्वभाव का।
'हिरण्य श्रृंगोऽयो अस्य पादाः'
ऋ. १.१६३.९; वाज.सं. २९.२०; तै.सं. ४.६.७.४;

हिरण्यसंदृक् - (१) हिरण्य के समान प्रीति जनक का दीखने वाला दे 'हिरण्यरूप'
(२) सर्वदर्शन वाला

हिरण्यस्तूप - (१) हित और रमणीय प्रभु की स्तुति करने वाला
(२) सुवर्ण का स्तूय (हिरण्यमणः स्तूपः) (३) यज्ञस्तम्भ (४) अङ्गिरस का पुत्र तथा अर्चन का पिता-सा.। दे. 'अनस्'।
'हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वा
अङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन्'
ऋ. १०.१४९.५
हे सविता, जिस प्रकार अंगिरस का पुत्र तथा मेरे पिता हिरण्य स्तूप ने इस अन्न-निर्मित यज्ञ में तुझे आमन्त्रित किया।

हिरण्यस्रक् - सुवर्ण माला धारण करने वाला।
'हिरण्यस्रगयं मणिः'
अ. १०.६.४

हिरण्यहस्तः - (१) जिसके हाथ में हिरण्य अर्थात् धन हो, (२) सुवर्ण के समान कान्तिमान् हनन साधन (३) वल का स्वामी तेजस्वी पुरुष, (४) हित और रमणीय हाथ अर्थात् अवलम्ब वाला।

हिरण्याक्षः - (१) हितकारी रमणीय कृपादृष्टि से

युक्त, (२) मनोहर ज्योति रूप व्यापनशील किरणों वाला सूर्य

हिरण्याभीशु – उत्तम लोहा आदि धातु की बनी 'अभीशु–रोकथाम वाला रथ

'हिरण्याभीशुमश्विरना'

ऋ. ८.५.२८; २२.५

हिरणिन् – सुवर्णादि ऐश्वर्य का स्वामी

'त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः'

ऋ. ५.३३.८

'शांडो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन्'

ऋ. ६.६३.९

हिरा – (१) नाड़ी

'हिरा होलितवाससः'

अ. १.१७.१

(१) नदी

'हिराभिः प्रवन्तीः'

वाज.सं. २५.८; मै.सं. ३.१५.७:१७९.१३

हिरिमशः – (१) उज्ज्वल तेज वाला

'वज्रं यश्चके सुहनाय दस्यवे
हिरीमशो हिरीमान्'

ऋ. १०.१०५.७

हिरिश्मश्रुः – (१) अति मनोहर लोमवत् तेजों वाला

'हिरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम्'

ऋ. १०.४६.५

(२) पीली किरण रूप मूंछ दाढ़ी वाला सूर्य (३) चमकीले केश मूंछ दाढ़ी वाला।

'हिरिश्मश्रुः शुचिदन्'

ऋ. ५.७.७.

हिरिशिप्र – (१) हरणशील हनुवाला–अग्नि। दया. (२) नाश करने या खा जाने वाले दाढ़ो से युक्त, (३) समस्त जगत् को प्रलय काल में परमाणु कर ग्रस जाने वाला, (४) अतिप्रकाशमान स्वरूप वाला।

'हरिशिप्रो वृधमानासु जर्भुरत्'

ऋ. २.२.५

हिरीमान् – (१) वेगवान् पदार्थों का स्वामी

'हिरीमशो हिरीमान्'

ऋ. १०.१०५.७

हिरुक् – अ.। छिपा हुआ

(२) हिरुक् इति अन्तर्हित नाम (हिरुक् अन्तर्हित नाम का वाचक है)। ठीक से, सूक्ष्म दृष्टि से, तत्वतः। दे. 'इत्'

'य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्'

ऋ. १.१६४.३२; अ. ९.१०.१०; नि. २.८.

जो इस जठर में अन्तर्हित गर्भ का तत्व समझता है। 'य ईं हिरुक् ददर्श' उसी का यह गर्भ है (तस्मात् नु इत्)।

(३) पृथक् छिपा हुआ, अदृश्य। सन्थाली भाषा में 'हिरुक्' का प्रयोग पृथक् होने के अर्थ में किया गया है।

(४) छिपकर, शान्त भाव से दबकर

'हिरुङ्नमन्तु शत्रवः'

हीड – प्राप्त करने योग्य यज्ञो हीडो वो अन्तरः

'आदित्य अस्ति मृडत'

ऋ. ८.१८.१९

हीड़ित – हीड (हींड़ना, छिन्न भिन्न करना) + क्त = हीड़ित। अर्थ है–

(१) छिन्नभिन्न, (२) जो छिन्नभिन्न करना है। दे. 'दोधत्'।

'इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः
सानुं वज्रेण हीडितः,'

ऋ. १.८०.५

(३) क्रुद्ध, क्रोधित

'मा ते भूम प्रसितौ हीडितस्य'

ऋ. ७.४६.१

'देवा वृश्चन्ति हीडिताः'

अ. १२.४.२८

ही – लज्जा

'ह्रियै शल्यकः'

वाज.सं. २४.३५; मै.सं. ३.१४.१६:१७६.२

हुत – सं. (१) हवन करने वाला

'वषड्ढुतेभ्यो वषडहुतेभ्यः'

अ. ७..९७.७

(२) हू + क्त = हुत। बुलाए जाने पर। दे 'त्विष्'।

'सेनानीर्नः सहुरे हुत एधि'

ऋ. १०.८४.२; अ. ४.३१.२

हे सहनशील (सहुरे), बुलाए जाने पर (हुतः) तू हमारा (नः) सेनापति बन (सेनानीः एधि)।

हुतभाग – (१) आहुति रूप में अग्नि में डाले गए पदार्थों को अपने भीतर ग्रहण करने वाला

'हुतभागा अहुतादश्च देवाः'

अ. १.३०.४

(२) वेतन या अंश को प्राप्त करने वाला

'ये देवानां हुतभागा इहस्थ'

अ. १८.३.२५-३५; ४.१६.२४.

हुर - (१) बलात्कार करने वाला कुटिल

'मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गाः'

ऋ. ४.३.१३

हुरश्चित - हुरः + चित् । (१) कुटिलता से धन बटोरने वाला चोर

'अपप्रोथन्तः सनुतर्हुरश्चितः'

ऋ. ९.९८.११

(२) उत्कोचक (३) हस्तात् पर पदार्थपहर्ता (दूसरे का पदार्थ झटक लेने वाला) । दे. 'परिपन्थी

हुवत् - बुलाता हुआ । दे. 'दूत' 'हवानां स्तोमः'

हुवन्नरा - हुवत् + नरौ = हुवन्नरौ = हुवन्नरा (सुपां सुलुक् से 'औ' का 'आ')।

अश्विनीद्वय को नरौ अर्थात् नेतारौ, कहा गया है । 'हुवत्' का अर्थ है । 'हुवत्' का अर्थ है 'आह्वयत्'। दे. 'वाहिष्ठ'।

हुवानाः - हूयमानाः (आहूत होते हुए) । दे. 'अहिर्बुध्न्य'

हुवानां स्तोमः - (१) स्तोताओं के स्तोमों में स्तोम विशेष । दे. 'दूत'।

'वाहिष्ठोवां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा
युवाभ्यां भूत्वश्विना'

ऋ. ८.२६.१६

हे सबके नेताओ, हे अश्विद्वय, स्तोताओं के स्तोत्रों में जो स्तोम विशेष है वही आह्वाताओं में उत्तम दूत (वाहिष्ठः दूतः) तुम दोनों को बुलाता हुआ (वाम हुवत्) तुम्हें प्रियकर हो (युवाभ्या भूतु) ।

हुवे - ह्वये (पुकारता हूँ) । 'बहुलं छन्दसि' से ह्वेञ् का सम्प्रसारण, पूर्व रूपता और 'शप्' का लोप होकर 'हुवे' रूप हो गया है। दे. 'राका' 'अनानत'

हुवेम - आह्वयामहे (हम पुकारते हैं) । दे. 'आध्र' 'अरिष्टनेमि'

हूडु (रूढु) - 'रूढु' सायण का पाठ है । रुह् + तून् = रूढ़ = हूडु । अर्थ है- ज्वर जो शरीर को कंपता हुआ चढ़ जाता है । कदाचित् यही हुड़हुड़ा ज्वर है ।

'हूडुर्नामासि हरितस्य देव'

अ. १.२५.२,३

हृण - हरति इति हरिणः-दया. । अर्थ-हरिण । दे. 'हृणायन्'।

हृणानः - (१) क्रोध करता हुआ हृणीङ् (क्रोध करना) + शानच् = हृणानः । दे. 'अहृणानः ।

(२) लज्जा अनुभव करने वाला है । 'हत्नु'।

हृणायन् - 'हृण' का अर्थ है हरिण । अतः 'हृण' की ही 'हृणायन्' बना है । हृणाय + शतृ = हृणायत् ।

अर्थ है - हरिण के समान चंचल होता हुआ ।

'सुन्वद्भ्यो रंधया कं चिदव्रतम्
हृणायन्तं चिदव्रतम्'

ऋ. १.१३२.४

हरिण या पशु के समान चंचलता दिखाने वाले अविनयी व्रत-रहित शिष्य को भी दण्डित कर (रन्धय) ।

हृणीङ् - धा.। क्रोध करना । दे. 'अहृणान ।

हृणीयमानः - (१) क्रोध या तिरस्कार करता हुआ ।

'हृणीयमानो अप हि मदैयेः

ऋ. ५.२.८.

हृत् - हृदय, । दे. 'अप्वा'

'अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैः'

ऋ. १०.१०३.१२; अ. ३.२.५; साम. २.१२११; वाज.सं. १७.४४; नि. ९.३३.

अंग्रेजी का heart शब्द 'हृत्' का ही बिंगड़ा रुप है ।

हृत्तः - हृत् + तसिल् = हृत्त । अर्थ है-हृदय से । दे. 'जार' 'हर्यत'

'हृत्तः इष्यति'

हृदय से (हृत्तः) मनोरथों की पूर्ति चाहता है (इष्यति)-सा. । हृदय से सब कार्य कर ।

हृत् द्योतन - हृत् + द्योतन । हृदय को चौंकाने वाला

'हृद्द्योतानो द्विषनां याहि शीभम्'

अ. ५.२०.१२

हृत्स्वस् - हृत्सु + अस् । जो हृदय में बाण फेंकता है । मर्मभेदी ।

'आसन्निषून् हृत्स्वसो मयोभून्'

ऋ. १.८४.१६; अ. १८.१.६; तै.सं. ४.२.११.३; मै.सं. ३.१६.४ : १९०.५; नि. १४.२५

प्रजापति राजा, लक्ष्य भेदी, शत्रु के हृदय आदि मर्मस्थानों पर निशाना लगाने वाले, प्रजा को सुख शान्ति देने वाले (हृत्स्वसःमयो भून्) पुरुषों को राज्य कर्म में लगाए रखता है ।

(२) हृदयों में विद्यमान आत्मा

हृत्स्वसः – दे. 'हृत्स्वस्'। 'हृत्स्वस्'के प्रथमा ब.व. का रूप ।

(१) मर्म भेदी, हृदय में बाण फेंकने वाला, (२) हृदयों में विद्यमान इन्द्रिय आदि एवं आत्मा

(१) हृ (हरना) + दा (दानार्थक) + इ (गत्यर्थक) = हृदय, । यह अशुद्ध रक्त का हरण करने वाला शुद्ध रक्त का दाता और गति वाला है । रक्त संचार का सिद्धान्त इसी शब्द में है । Harvey ने ही इस सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया ।

दे. 'अविदाम'

'बतो बतासि यम
नैवते मनो हृदयं चाविदाम'

ऋ. १०.१०.१३; अ. १८.१.१५; नि. ६.२८

हे यम, तू निर्बल है, तू सच मुच दयनीय है । हम तेरे मन और हृदय को जानते हैं ।

हृदयश्रिष् – हृदय में आश्रित लगी ।

'कृणोमि हृदयश्रिषम्'

अ. ६.९.२

हृदयामय – हृदय + आमय, । हृदय की पीड़ा या रोग ।

'विद्रधं हृदयामयम्'

अ. ६.१२७.३

'आस्थितं हृदयामयम्'

अ. ६.१४.१

हृदयाविध् – (१) हृदय को बिधनें वाला बाण, हृदय को बींधना

'कृणोतु हृदयाविधम्'

अ. ८.६.१८

'उत्तापवक्ता हृदयाविधश्चित्'

ऋ. १.२४.८; वाज.सं. ८.२३; तै.सं. १.४.४५.१; मै.सं. १.३.३९: ४५.४; का.सं. ४.१३; श.ब्रा. ४.४.५.५

(२) हृदय +आ +विध् +क्विप् = हृदयाविध् ।

और वह कटु वचन बोलने वाले का भी निराकरण करे ।

हृदव्य – (१) हृदय को सदा प्रसन्न करने वाला-खिलौना, (२) मनोरञ्जक, दिलचस्प

'नमो हृदय्याय च निवेष्याय च'

वाज.सं. १६.४४

हृदय्या – (१) हृदय सम्बन्धिनी, हृदयगत, मनोभाव

'श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या'

ऋ. १०.१५१.४; तै.ब्रा. २.८.८.७

हृदयौपश – हृदय + ओपश । हृदय भाग में विद्यमान बल या रुधिर संञ्चार के उपकरण ।

'जीमूतान् हृदयौपशाभ्याम्'

वाज.सं. २५.८; तै.सं. ५.७.१६.१; मै.सं. ३.१५.७:१७९.११; का.सं. (अश्व.). १३.६

हृदंसनिः – (१) हृदय को संभक्त करने वाला । सोम-रस का विशेषण । दे. 'गिर्'

'य इन्द्रस्य हृदंसनिः'

ऋ. ९.६१.१४; साम. २.६८६.

जो सोम इन्द्र के हृदय को संभक्त करने वाला है ।

हृद्य – हृद् + यत् = हृद्य । हृदय में विराजमान आत्मा

'बृहस्पतिर्म आत्मा नृमणा नाम हृद्यः'

अ. १६.३.५.

हृदय समुद्र – (१) प्रजाओं के चित्तों को रमाने वाला समुद्र के समान गम्भीर राजा, (२) हृदयरूप समुद्र, (३) हृदय से जानने और अनुभव करने योग्य (४) श्रद्धा देव

'एता अर्षन्ति हृदयात् समुद्रात्'

ऋ. ४.५८.५; वाज.सं. १७.९३; का.सं. ४०.७; आप.श्रौ.सू. १७.१८.१ .

हृदिस्पृक्, हृदिस्पृश् – हृदय को स्पर्शी करने वाला, हृदयस्पर्शी

'अयं ते सोमो अग्रियः
हृदिस्पृगस्तु शन्तमः ।'

ऋ. १.१६.७

'क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम्'

ऋ. ४.१०.१; साम. १.४३४; २.११२७; वाज.सं. १५.४४; १७.७७; तै.सं. ४.४.४.७; मै.सं. १.१०.३:२.१३.८: १५७.१५; श.ब्रा. ९.२.३.४१.

हृद्योतः – हृद् + द्योत । हृदय का चमकना

'अनु सूर्यमुदयताम्

हृद्द्योतो हरिमा च ते'
अ. १.२२.१

हृषीवत् - (१) हर्षित सुप्रसन्न ज्वाला वाला-अग्नि ।
(२) स्वयं प्रसन्न । दे. 'हर्षत्'

हृषीवान् - हर्ष का अधिकारी
'श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः'
ऋ. २.३१.१

हेड - (१) क्रोध (२) अनादर
'मा हेडे भूम वरुणस्य वायोः'
ऋ. ७.६२.४
(३) अवज्ञा, उपेक्षा
'अव ते हेडो वरुण नमोभिः
अव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः'
ऋ. १.२४.१४; तै.सं. १.५.११.३; मै.सं. ४.१०.४: १५३.१०; ४.१४.१७:२४६.७; का.सं. ४०.११
हे सबों से वरणीय, दुःखवारक परमेश्वर, हम तेरे प्रति अवज्ञा या उपेक्षा द्वारा किए अपराध को नमस्कारों, हवि दान तथा उपासना द्वारा दूर करते हैं । दे. 'यजिष्ठ'।

हेडस् - क्रोध का पात्र
'तस्य वयं हेडसि मापि भूम'
अ. ७.२०.३

हेयः देवाः - उपद्रवकारी रोगों को शान्त करने वाले प्राची के देवता ।
'येऽस्यां स्थ प्राच्यां दिशि
हेतयो नाम देवास्तेषां वो अग्निरिषवः'
अ. ३.२६.१

हेत्व - प्रवृद्धो वेगवान् - दया. । वेगयुक्त ।
'प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तिः'
ऋ. ७.४३.२

हेता - (१) नाशक, दुष्टों का नाशक
'आशुं जेतारं हेतारं रथीतमम्'
ऋ. ८.९९.७; अ. २०.१०५.३; साम. १.२८३.
(२) सारथि
'आदीमश्वं न हेतारः'
ऋ. ९.६२.६; साम. २.३६०

हेतिः - हन् + क्तिन् = हेति । निपातन से सिद्ध । हिंसा,
'ज्याया हेतिं परिबाधमानः'
ऋ. ६.७५.१४; वाज.सं. २९.५१; तै.सं. ४.६.६.५; मै.सं. ३.१६.३:१८७.४; नि. ९.१५
ज्या होने वाली हिंसा का निवारण करता हुआ (हस्तघ्नः) (२) आयुध विशेष, हनन करने के लिए अस्त्र

हेमन्त - हन् + झच् = हेमन्त । 'हन्तेर्मुट् हि च' से हन् का हि और मुट् का आगम तथा 'झच्' का 'अन्त' आदेश ।
'हेमन्तो हिमवान्'
हेमन्त हिम वाली ऋतु है (१) छः ऋतुओं में एक ऋतु जिसमें हिम गिरता है ।

हेमन्तजब्ध - शीत से पीड़ित
'हेमन्तजब्धो भूमलो गुहा शये'
अ. १२.१.४६

हेम्या - (१) हेम्नि उदके भवा हेम्या रात्रिः-नि. १.१२
(२) सुवर्ण बढ़ाने वाली सम्पदा, (३) सुवर्ण से मढी कक्ष बन्धनी रस्सी या लगाम

हेम्यावत् - हेम्नि उदके भवा हेम्यारात्रिः नि. १-१२
(१) ध्रुव प्रदेश की रात्रि (२) जल से शीतल रात्रि से युक्त चन्द्रमा के तुल्य शीतल स्वभाव वाला ।
(३) हेम अर्थात् सुवर्ण को बढ़ाने वाली सम्पदा से युक्त । (४) सुवर्ण से मढ़ी कक्ष बन्धनी रज्जु या लगाम से युक्त घोड़ा (५) सुवर्ण सम्पदा से युक्त पुरुष
'अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान्'
ऋ. ४.२.८

हेषक्रतवः - ब.व.। उत्तम हर्ष ध्वनियों या उत्तम प्रज्ञा या कर्म वाले-मरुत्
'सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः'
ऋ. ३.२६.५; तै.ब्रा. २.७.१२.४

हेषस्वत् - गम्भीर गर्जनायुक्त वाणी बोलने वाला
'हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः'
ऋ. ६.३.३

है - हे । सम्बोधनार्थक अव्यय
'तर्द है पतङ्ग है'
अ. ६.५०.२

हैमन्ती पंक्ति - (१) हेमन्त से उत्पन्न पंक्ति (पकना) । हेमन्त के बाद अन्न पकने लगता है । (२) पंचम ऋतु हेमन्त से मानों यज्ञ में पंक्ति छन्द की उत्पत्ति हुई ।

'पंक्ति हैमन्ती'
वाज.सं. १३.५८; तै.सं. ४.३.२.३; मै.सं. २.७.१९;१०४.१३; का.सं. १६.१९; श.ब्रा. ८.१.२.८.

हैमनौ मासौ – हिम ऋतु के दो मास
'हैमनौ मासौ गोप्तारौ'
अ. १५.१(४).१४

हैमवतीः आपः – हिमवाले पर्वतों से बहने वाली
'शंत आपो हैमवतीः'
अ. १९.२.१

हैरण्य – अभिरमणीय इन्द्रिय आदि से भोग्य विषय
'हैरण्यै रन्यं हरितो वहन्ति'
अ. १३.२.११

होत्र – (१) होता।
'यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितो
होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत्'
ऋ. १०.९८.७; नि. २.१२.
'आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्
देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान्'
ऋ. १०.९८.५; नि. २.११
(२) होता का यज्ञ-सा.
(३) हवि का वृष्टि प्रद भाग -दया.
'अपाद्धोत्रा दूत पोत्रादमत्त'
ऋ. २.३७.४
जिस इन्द्र से होता के यज्ञ से लेकर सोमरस का पान किया-सा.
हितकारी हवि के वृष्टिप्रद भाग से पान करें।
(४) दान कर्म, (५) हवन
'त्रेषि होत्रमुत पोत्रं जनानाम्'
ऋ. १०.२.२; आप.श्रौ.सू. २४.१३.३.
(६)- हु + तृच् = होतृ। हवन करने वाला-अग्नि, वैश्वानर अग्नि, (७) सृष्टि कर्त्ता
'यो होतासीत् प्रथमो देवजुष्टः'
ऋ. १०.८८.४
जो वैश्वानर अग्नि देवों में प्रथम होने के कारण देवों से आसेवित हुए-सा.
अन्य अर्थ
जो अनादि विद्वत्सेवी सृष्टि कर्ता है।
'होतारं रत्नधातमम्'
ऋ. १.१.१; तै.सं. ४.३.१३.३; मै.सं. ४.१०.५:१५५.२; का.सं. २.१४.
(८) आदित्य या ग्रहोपग्रहों का आहर्ता आदित्य।
'अस्य वामस्य पलितस्य होतुः'
तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः'
ऋ. १.१६४.१; अ. ९.९.१; नि. ४.२६.
स्वर्ग में चमकने वाले, आरोग्यार्थियों के सेवनीय पालक उस आहवनीय या ग्रहोंपग्रहों के आहर्ता अदित्य का मध्यम स्थानी वायु या मेघ मध्य वर्ती अशनि दूसरा भाई है।
(९) यज्ञ कर्त्ता
'अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं
वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं
विप्रं न जातवेदसम्'
ऋ. १.१२७.१; अ. २०.६७.३; वाज.सं. १५.४७; तै.सं. ४.४.४.८; मै.सं. २.१३.८; १५८.३; का.सं. २६.११; ३९.१५.
मैं यज्ञकर्ता दाता, निवासक, साहसी वीर के पुत्र, प्रजा के प्रत्येक सुख दुःख के जानने वाले (जात वेदसम्) और ब्राह्मण के समान वेदज्ञ क्षत्रिय को (विप्रं न जातवेदसम्) अग्रणी अर्थात् राजा मानता हूँ (अग्निं मन्ये)।
सायण का अर्थ – मैं रोग-निष्पादक अत्यन्त दया शील, सभी के निवास हेतु, बल के पुत्र, प्राणियों के ज्ञाता, जातप्रज्ञ, जातबल तथा विप्र के सदृश जातविद्या या मेधावी अग्नि की स्तुति करता हूँ (अग्निं मन्ये)।
(१०) ह्वातव्य आह्वानार्ह, (११) प्रदाता, (१२) ज्ञानगृहीता विद्वान्, (१३) परमेश्वर (१४) स्वयं जगत् को अपने में ले लेने वाला प्रलय कारी (१५) सर्वदाता सूर्य
'अस्य वामस्य पलितस्य होतुः'
ऋ. १.१६४.१; अ. ९.९.१; ऐ.आ. १.५.३.७; ५.३.२.१४; शां.श्रौ.सू. १८.२२.७; नि. ४.२६.

होता चेतनः – (१) विद्या प्राप्त करने वाला ज्ञानवान् पुरुष, (२) सब शरीर का बलदाता चेतन जीव
'होता जनिष्ट चेतनः
पिता पितृभ्य ऊतये'
ऋ. २.५.१; कौ.ब्रा. १९.८; २१.२; ऐ.आ. १.१.१.१६

होत्रा – सब सुखों और ज्ञानों को देने वाली वाणी
'त्वं होत्रा भारतीवर्धसे गिरा'
ऋ. २.१.११
'वनेम तत् होत्रया चितन्त्या'

ऋ. १.१२९.७
(२) शिष्य, परम्परा से प्राप्त करने योग्य विद्या मयीवाणी,
(३) ऋग्वेद
'शुचिर्देवेषु अप्रिता
होत्रा मरुत्सु भारती '
ऋ. १.१४२.९
'यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधया '
ऋ. ७.१०४.६; अ. ८.४.६

होत्राविद् – (१) यज्ञकर्म का ज्ञाता (२) यज्ञकर्ता (३) स्तुतिज्ञ
(४) आहुति लेने वाला अग्नि, (५) वेदवाणी को जानने वाला
'होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम् '
ऋ. ५.८.३; तै.सं. ३.३.११.२; श.ब्रा. २.४.४.२; मा.श्रौ.सू. ५.१.२.१७.
(६) त्यागपूर्वक दिए अन्न पूर्वक ग्रहण करने योग्य या गुरु से उपदेश देने योग्य वेदवाणियों का ज्ञाता
'होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः '
ऋ. १०.१५.९; अ. १८.३.४७; मै.सं. ४.१०.६:१५७.१६; तै.ब्रा. २.६.१६.२

होत्रिय – (१) सबको अपने अधीन लेने में समर्थ, (२) सबको अपनी रक्षा देने में समर्थ
'आपो न देवीमुपयन्ति होत्रियम् '
ऋ. १.८३.२; अ. २०.२५.२; ऐ.ब्रा. २.२०.९; कौ.ब्रा. १२.१; आश्व.श्रौ.सू. ५.१.१३

होतुः अवरो ब्राह्मणः – होताओं में निकृष्ट या अल्प बुद्धि वाला-ब्राह्मण
'तावद्दधात्युपयज्ञमायन्
ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन् '
ऋ. १०.८८.१९; नि. ७.३१
उतना ही ज्ञान होताओं में अल्प ज्ञान वाला ब्राह्मण यज्ञ में आकर बैठता हुआ धारण करता है ।

होतृवूर्ये – द्वि.व .। (१) होतृणां स्वीकर्तव्ये- होताओं के स्वीकार योग्य वृ + क्यप् = वूर्य । उत्पादक और प्रलय कारी होता परमेश्वर से वरण करने या संविभाग करने योग्य द्यौ और पृथिवी
'अरेजतां रोदसी होतृवूर्ये '
ऋ. १.३१.३
सब को अपने भीतर से प्रकट करने और उनको अपने भीतर ले लेने वाले उत्पादक और प्रलयकारी होता परमेश्वर से वरण करने या संविभाग करने योग्य द्यौ और पृथिवी दोनों उसी के संकल्प से गति करते हैं ।
(२) होता का वरण करने वाले, ज्ञानादिक देने वाले विद्वानों का यज्ञों में वरण करने वाले-स्त्री पुरुष
'उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते '
ऋ. ६.७०.४

होतृषदन – (१) होता आदि ऋत्विजों के बैठने का स्थान-वेदि
(२) शासनाधिकार देने और विद्वानों के विराजने के स्थान-सभाभवन
'निः होता होतृषदने '
ऋ. २.९.१; वाज.सं. ११.३६; तै.सं. ३.५.११.२; ४.१.३.३; मै.सं. २.७.३:७७.१३; का.सं. १६.३; ऐ.ब्रा. १.२८.३२; कौ.ब्रा. ९.२; श.ब्रा. ६.४.२.७; आश्व.श्रौ.सू. २.१७.१०
(३) होता सबको देने वाले परमेश्वर का सदन
'होतृषदनं हरितं हिरण्ययम् '
अ. ७.९९.१

होम – (१) कारण पदार्थों का संयोग विभाग.
'कति होमासः कतिधा समिद्धः '
वाज.सं. २३.५७
(२) हवन करना

होषः – हु (हवन या स्तुति) से सिद्ध, (१) याग, (२) स्तोत्र, । जिसका अर्थ-'प्रसिद्ध याग वाले' या 'प्रसिद्ध स्तोत्र वाले ' किया गया है । (३) दान, (४) होता
'प्रहोषे चिदररुषः '
ऋ. १.१५०.२